श्री वीतरागाय नमः

भगवान महावीर के २५०० वें परिनिर्वाण के पुनीत अवसर पर प्रकाशित

श्री शिवसागर ग्रन्थमाला का छठा पुष्प

श्रीमन्नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति विरचित

त्रिलोकसार

(श्रीमन्माधवचन्द्रत्रैविद्यदेवकृत व्याख्या सहित)

हिन्दी टीकाकर्त्री :

पूज्य विदुषी आर्यिका १०५ श्री विशुद्धमति माताजी

(संघस्था, प० पू० आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज)

सम्पादक :

सिद्धान्तभूषण ब्र० पं० रतनचन्द जैन मुख्तार, सहारनपुर

प्रा० चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

प्रकाशक :

ब्र० लाडमल जैन

अधिष्ठाता, शान्तिवीर गुरुकुल

दि० श्री शान्तिवीर दिगम्बर जैन संस्थान, श्री महावीरजी (राजस्थान)

त्रिलोकाकृति

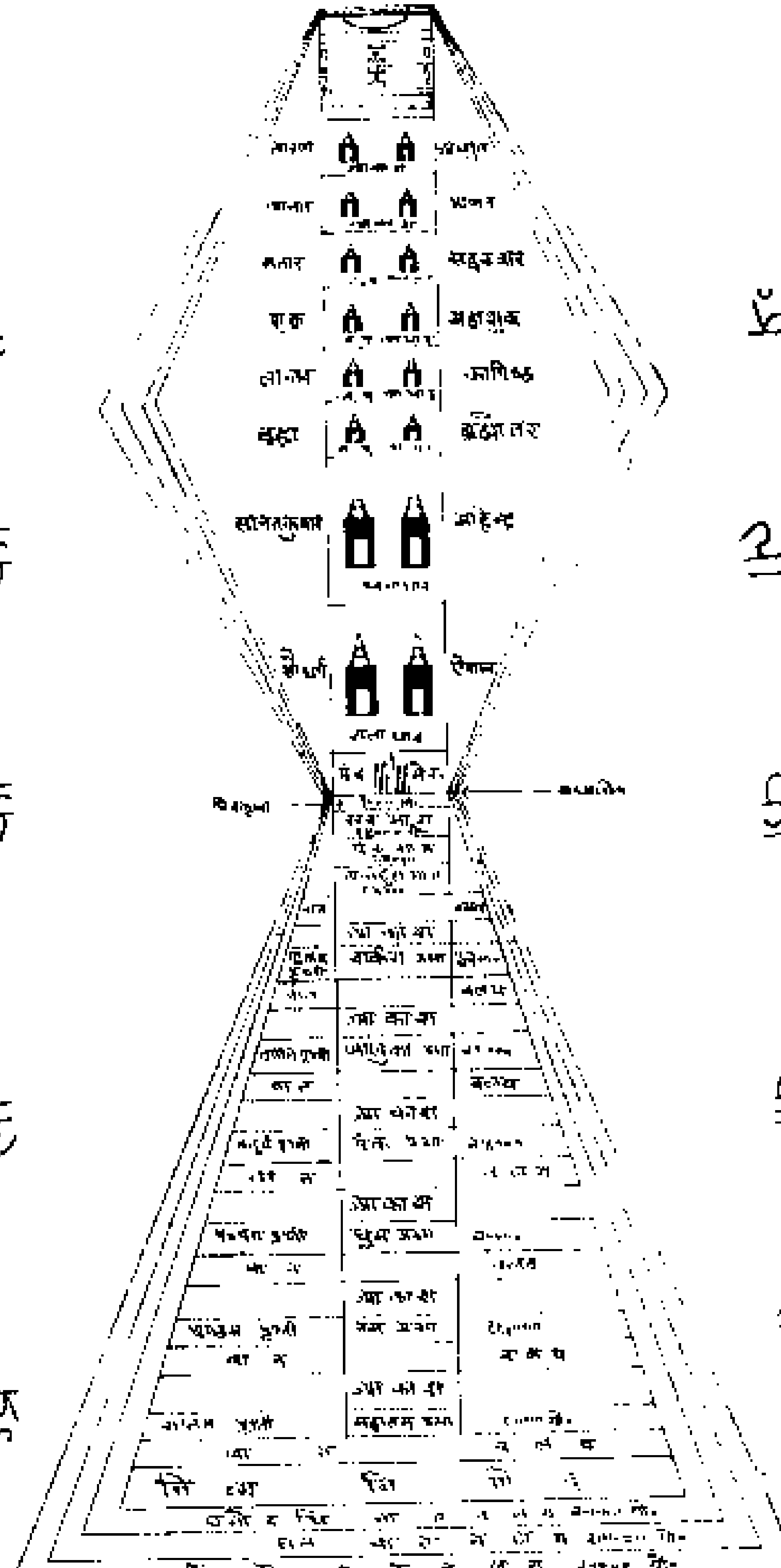

निवेदन

वि० सं० १०२९ का चातुर्मास अजमेर में सम्पन्न करने के अनन्तर आचार्य कल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज का किशनगढ़ में ससंघ पदार्पण हुआ। शरद अवकाश के कारण संयोग से मेरा भी किशनगढ़ जाना हुआ। उन दिनों श्री शिवसागर स्मृति ग्रन्थ प्रेस में था और पूज्य आर्यिका विशुद्धमति माताजी त्रिलोकसार की हिन्दी टीका लिखने में व्यस्त थीं। पूज्य पिताजी श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी (वर्तमान क्षुल्लक १०५ श्री समतासागरजी महाराज) के सान्निध्य में प्रथमानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के कतिपय ग्रन्थों का स्वाध्याय तो किया था परन्तु करणानुयोग के किसी ग्रन्थ का अब तक स्पर्श भी नहीं किया था। पूज्य माताजी के सम्पर्क से करणानुयोग के विषय में भी रुचि जाग्रत हुई और मैंने इच्छा व्यक्त की कि किसी बड़े अवकाश के समय आकर इसका अध्ययन करूँगा। किंचित् काल के बाद संघ का किशनगढ़ से विहार हो गया और मैंने जिज्ञासावश शास्त्रभण्डार से तिलोय-पण्णत्ती और जम्बूद्वीपपण्णत्ती लेकर स्वाध्याय प्रारम्भ किया।

वि सं० २०३० का चातुर्मास निवाई में हुआ। दीपमालिका के अवकाश में संघ के दर्शनों हेतु निवाई जाना हुआ। वहाँ उन दिनों पं० रतनचन्दजी मुख्तार (सहारनपुर) और पण्डित पन्नालालजी साहित्याचार्य (सागर) पूज्य श्री अजितसागरजी महाराज तथा पू० विशुद्धमति माताजी के साथ त्रिलोकसार की मुद्रित प्रति का दो तीन हस्तलिखित प्रतियों से मिलान कर आवश्यक संशोधन कर रहे थे। पूज्य बड़े महाराज व पू० माताजी की प्रेरणा से मैं भी इस महदनुष्ठान में सम्मिलित हो गया। प्रतियों से मिलान एवं संशोधन का काम पूरा हो चुकने पर समस्या आई शुद्ध प्रेस कापी तैयार करने की। मेरे अचानक सम्मिलित होने से पूर्व यह सुनिश्चित था कि यह गुरुतर उत्तरदायित्व पं० पन्नालालजी सा० सँभालेंगे क्योंकि वे विषय और भाषा दोनों के विशेषज्ञ हैं। पूज्य पण्डितजी ने मुझसे कहा कि "तुम्हें तो समय मिलता ही होगा, क्यों न यह काम तुम कर दो ? मेरी व्यस्तताओं के कारण मुझ से विलम्ब सम्भव है।" पण्डितजी के इस अप्रत्याशित प्रस्ताव से मैं हतप्रभ हुआ। कार्य की परिमा जटिलता, गम्भीरता एवं विशालता से मैं आतंकित था अतः मैंने निवेदन किया कि "यह कार्य गलत हाथों में नहीं जाना चाहिये, मेरी इस विषय में गति नहीं है अतः आप ही इस बृहत्कार्य को सम्पादित करें; ऐसे ग्रन्थों के शुद्ध प्रकाशन में यदि विलम्ब भी हो तो कोई हर्ज नहीं।" परन्तु मेरा निवेदन शायद उन्हें नहीं भाया और उन्होंने पं० रतनचन्दजी से परामर्श कर पूज्य बड़े महाराज व माताजी के समक्ष अपनी बात दोहराई। न जाने क्यों पण्डितजी का निर्णय ही सर्वमान्य रहा। अपनी सीमाओं से मैं परिचित था परन्तु पूज्य गुरुजनों के आदेश की अवज्ञा करने का दुस्साहस मैं न कर सका

और मुझ मूढ़ को यह बृहत्कार्य करने की हामी भरनी पड़ी। सारी सामग्री अपने साथ जोधपुर ले आया और देवशास्त्रगुरु के स्मरणपूर्वक इस गम्भीर एवं जटिल कार्य में संलग्न हो गया।

परेशानी यह थी कि प्रेस कापी करके सीधे प्रेस में भेजनी थी। मैं चाहता था कि मेरे लिखने के बाद पूज्य पण्डितजी उसे देख लेते, परन्तु मेरी यह बात भी उन्हें स्वीकार्य नहीं हुई। मैंने प्रेसकापी प्रेसको भेजी, यह सोचकर कि प्रूफ पण्डितजी के पास सागर जायेंगे तो वहाँ भूलों का निवारण हो ही जाएगा परन्तु पूज्य बड़े महाराज ने विलम्ब को देखते हुए सागर प्रूफ भेजने की अनुमति प्रेस को नहीं दी, यहाँ भी मुझे निराशा ही मिली। अस्तु, कई छोटी बड़ी कठिनाइयों के बाद भगवत्कृपा एवं गुरुजनों के आशीर्वाद से यह विशाल कार्य पूरा कर सका हूँ। मेरे अत्यन्त सीमित ज्ञान के कारण अशुद्धियाँ रहना सम्भव है। दूरस्थ होने के कारण सारे प्रूफ भी स्वयं नहीं देख सका हूँ।

सिद्धान्त चक्रवर्ती श्री नेमिचन्द्राचार्य की इस अद्भुत मौलिक कृति की संस्कृत टीका उन्हीं के शिष्य माधवचन्द्र त्रैविद्य देव ने की है। पूज्य आचार्यकल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज के निर्देशन-संरक्षण में पू० विशुद्धमति माताजी ने विशेष श्रमपूर्वक इसकी टीका सरल हिन्दी में लिखी है। भाषा सम्बन्धी भूलों का परिमार्जन पं० पन्नालालजी ने किया है, गणित के जटिल विषय को विशेषज्ञ पं० रतनचन्दजी ने हल किया है। चित्ररचना श्री विमलप्रकाशजी जैन (अजमेर) तथा श्री नेमीचन्दजी जैन कला अध्यापक, निवाई द्वारा हुई है। इस जटिल गणितीय विशालकाय ग्रन्थ का आकर्षक एवं सुरुचिपूर्ण मुद्रण असीम धैर्य के साथ कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज के सञ्चालक श्री नेमीचन्दजी बाकलीवाल एवं श्री पाँचूलालजी वैद ने विशेष मनोयोग से किया है।

वस्तुत: अपने वर्तमान रूप में प्रस्तुत यह सारी उपलब्धि इन्हीं महानुभावों की है, मैं तो कोरा नकलनवीस हूँ, अतः भूलें मेरी हैं। मैं इन सब पुण्य आत्माओं का हृदय से अत्यन्त आभारी हूँ। अपनी भूलों के लिए सुधी गुणग्राही विद्वानों से क्षमा चाहता हूँ। अस्तु।

६७१, सरदारपुरा
जोधपुर
२५ दिसम्बर, १९७४

विनीत :
चेतनप्रकाश पाटनी

सम्पादन सामग्री

त्रिलोकसार के प्रस्तुत संस्करण का सम्पादन विशेष अनुसन्धानपूर्वक निम्नलिखित ५ प्रतियों के आधार पर किया गया है।

'प' प्रति का परिचय

यह प्रति भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना से प्राप्त हुई है। इसमें ५ × ४ इंच विस्तारवाले ४२१ पत्र हैं। प्रतिपत्र में ८ पंक्तियाँ और प्रति पंक्ति में ३० से ३५ अक्षर हैं। लिपि सुवाच्य है। अन्त के दो पत्र जीर्ण हो जाने के बाद लिखकर २९-७-१९२६ ई० को लगाए गए हैं। शेष पत्र प्राचीन हैं। अन्तिम पत्रों के जीर्ण होकर नष्ट हो जाने से प्रति के लेखनकाल का ज्ञान नहीं हो सका है। बीच बीच में लाल स्याही से संदृष्टियों के अंक भी दिए गए हैं। इस प्रति में १६५ से १८० तक के पत्र नहीं हैं। पूना से प्राप्त होने के कारण इसका सांकेतिक नाम 'प' है।

'ब' प्रति का परिचय

यह प्रति ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन ब्यावर की है। श्रीमान् पं० हीरालालजी शास्त्री के सौजन्य से प्राप्त हुई है। इसमें २१९ पत्र हैं। प्रत्येक पत्र में १० पंक्तियाँ हैं किन्तु प्रारम्भिक पृष्ठ में ११ पंक्तियाँ हैं। प्रत्येक पंक्ति में ४०-४५ तक अक्षर हैं। लिखने में चमकदार काली और लाल स्याही का उपयोग किया गया है। लिपि सुवाच्य है। लिखित पत्र के चारों ओर के रिक्त स्थान में सघन टिप्पण दिए गए हैं। बीच बीच में अङ्क संदृष्टियाँ लाल स्याही से दीगई हैं। प्रति शुद्ध है। लिपिकाल प्रथम ज्येष्ठ कृष्ण द्वितीया बृहस्पतिवार विक्रम संवत् १७८८ है। प्रति की दशा अच्छी है फिर भी जीर्ण होने के सम्मुख है। अन्त में प्रशस्ति इसप्रकार दी है—

"स्वस्ति श्री। श्रीमच्छ्रीविक्रमार्कसमयात् वसुदिग्गजशैलशशाङ्क संमिते हायने प्रवरे श्रीमच्छालिवाहनभूपाल प्रवर्तित शाके मुहुर्द्धानुभूत भूपालप्रमिते मासोत्तम श्री ज्येष्ठवरिष्ठमासि सितेतरपक्षे द्वितीया कर्मवाट्यां (तिथौ) पुरन्दरपुरोहितवारे लिखितोऽयं ग्रन्थः। श्रीमदंचलगच्छाधिराजपूज्यभट्टारकपुरन्दर भट्टारक श्री विद्यासागरसूरीश्वराणामुपदेशात् श्री श्रीमालीज्ञातीय साह श्रीलालचन्द्रसुत साह श्री कस्तूरचन्द्र साहाय्येन श्री बुरहानपुरे लेखक हेमकुशलेन लिखितः। अग्रवालज्ञातीय साह श्री श्यामदासेन लिखापितोऽयं ग्रन्थः ज्ञानवृद्ध्यर्थं आत्मश्रेयसे च। श्रीमद्बुधजनैः पठ्यमानो वाच्यमानः भूयमाणश्चाचन्द्रार्कं चिरंजयतु ग्रन्थः। श्रीः श्रीः श्रीः श्रीरस्तु। करकृतमपराधं क्षन्तुमर्हन्ति सन्तः।"

ब्यावर से प्राप्त होने के कारण इसका सांकेतिक नाम 'ब' है।

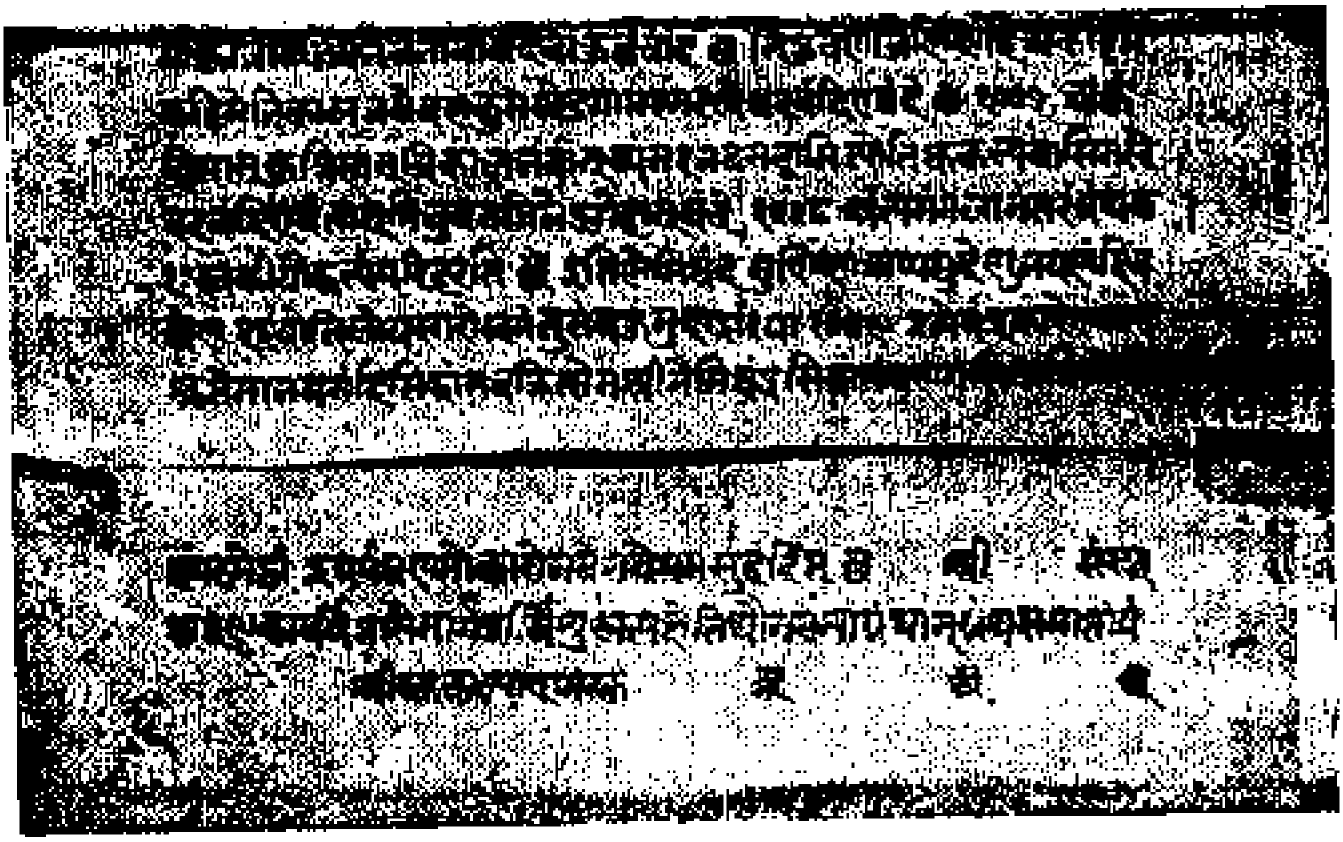

प' प्रति

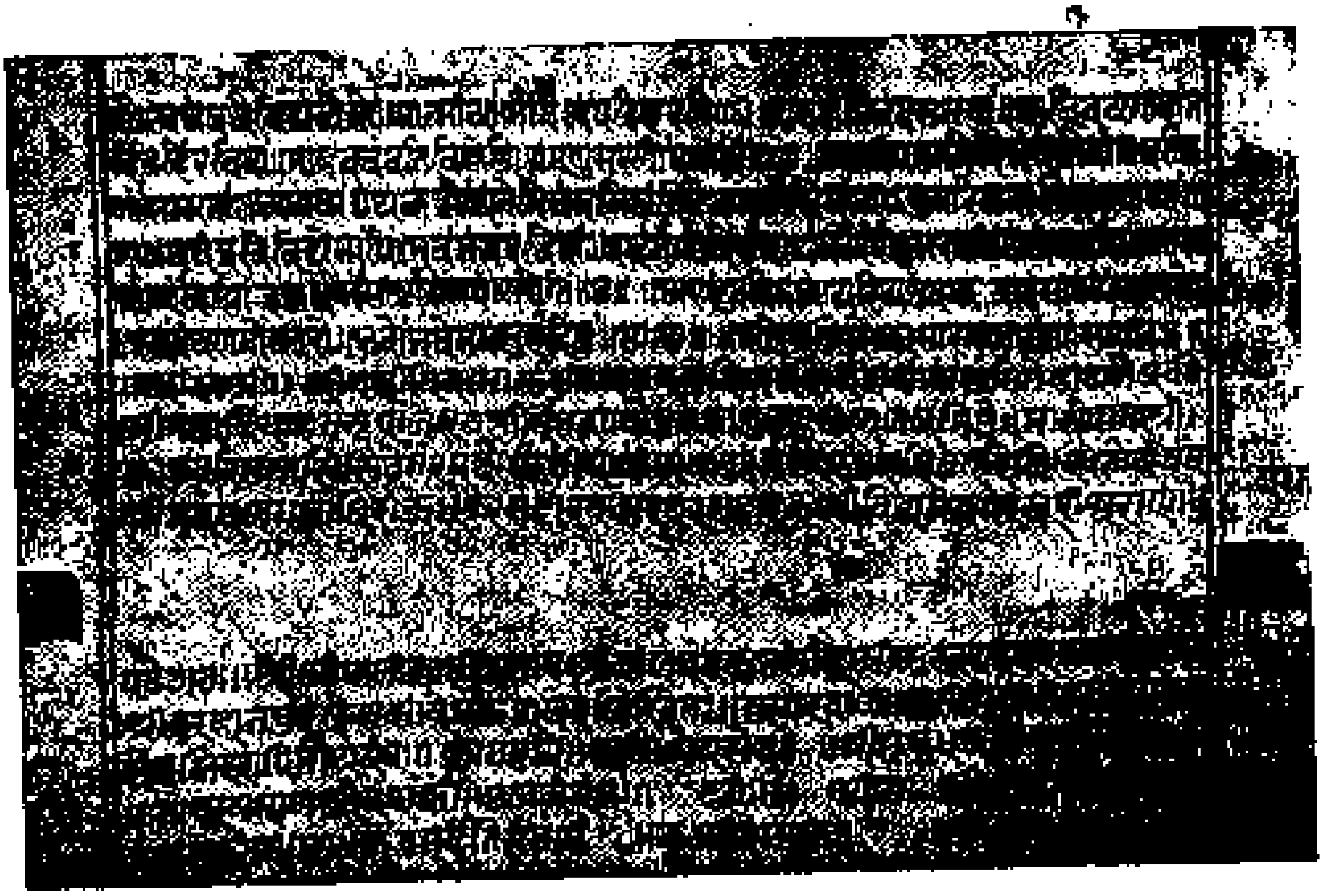

'ब' प्रति

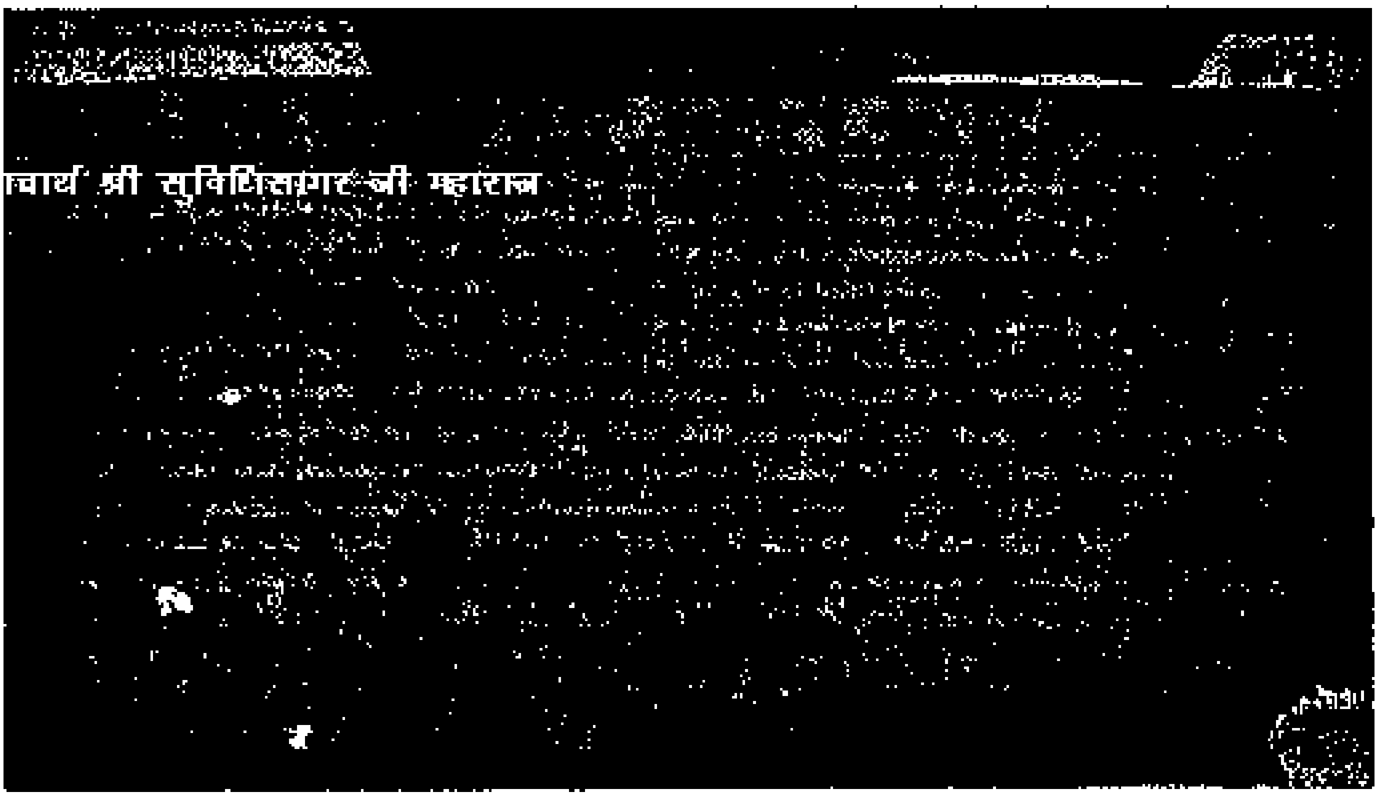

'अ' प्रति

'ब' प्रति

'ज' प्रति का परिचय

यह प्रति लूणकरण पाण्ड्या शास्त्रभण्डार जयपुर की है। श्रीमान् पं० मिलापचन्द्रजी के सौजन्य से प्राप्त हुई है। इसमें १३३/४ × ६३/४ इन्च विस्तारवाले ७१ पत्र हैं। प्रति पत्र में १३--१६ पंक्तियां हैं और प्रत्येक पंक्ति में ४०-४५ तक अक्षर हैं। गाथाएँ मूलपाठ हैं, आजू बाजू में टिप्पण दिये हैं तथा अनेक सुन्दर चित्र अंकित हैं। इसका लिपिकाल आषाढ़ बदी ५ सम्वत् १६१७ शनिवार है। अंकुलेश्वर में इसकी लिपि हुई है। अक्षर सुवाच्य हैं परन्तु दशा अत्यन्त जीर्ण है। इसके प्रत्येक पत्र को प्लास्टिक के पारदर्शक लिफाफे में सुरक्षित किया जाता है। इसकी प्रशस्ति इस प्रकार है—

"संवत् १६१७ वर्षे आषाढ़वदि ५ शनौ अंकुलेश्वरस्थाने श्रीपद्मप्रभचैत्यालये श्री श्रीमूलसंघे श्री सरस्वती गच्छे श्री बलात्कारगणे

'श्री विद्यानन्दीश्वरंदेवं मल्लिभूषणसद्गुरुम् ।
लक्ष्मीचन्द्रं च वीरेन्दुचन्द्रश्रीज्ञानभूषणम् ॥'

आचार्य श्री सुमतिकीर्तितच्छिष्य आचार्यश्रीरत्नभूषणस्येदं पुस्तकं श्री त्रैलोक्यसारमूलसूत्रग्रंथः। शुभं भवतु।"

जयपुर से प्राप्त होने के कारण इसका सांकेतिक नाम 'ज' है।

'स' प्रति का परिचय

यह प्रति ताड़पत्र पर कन्नड़ भाषा में लिखित है। लाला जम्बूप्रसादजी सहारनपुर के मन्दिर की है। इसमें २३३/४ × १३/४" व्यास के ११७ पत्र हैं, प्रति पत्र में ३ कालम और प्रत्येक कालम में ६-६ पंक्तियाँ हैं।

सहारनपुर से प्राप्त होने के कारण इसका सांकेतिक नाम 'स' है।

'म' प्रति का परिचय

यह प्रति मुद्रित है। श्री माणिक्यचन्द दिगम्बर जैन ग्रंथमाला समिति, बम्बई द्वारा ग्रन्थमाला के १२ वें पुष्प के रूपमें ज्येष्ठ, वीर निर्वाण सं० २४४४ में प्रकाशित हुई है। इस प्रथमावृत्ति का मूल्य एक रुपया बारह आना है। इसका सम्पादन संशोधन पं० मनोहरलालजी शास्त्री द्वारा हुआ है। प्रारम्भ में ग्रन्थमाला के मंत्री श्री नाथूरामजी प्रेमी द्वारा लिखित ग्रन्थकर्त्ता श्री नेमिचन्द्राचार्य का परिचय दस पृष्ठों में है। प्रत्येक गाथाके साथ संस्कृत छाया और श्री माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवकृत उसकी संस्कृत टीका है। मुद्रण स्वच्छ और सुरुचिपूर्ण है, यत्रतत्र प्रूफकी भूलें अवश्य हैं। त्रिलोकसार मूल ग्रन्थ ४०५ पृष्ठों में है, इसके बाद २० पृष्ठों में गाथाओं की अकारादिक्रम से सूची दी गई है। इस प्रकार पुस्तकाकार इस प्रतिमें कुल ४३५ (१०+४०५+२०) पृष्ठ हैं।

मुद्रित होने के कारण इसका सांकेतिक नाम 'म' है। प्रस्तुत संस्करण का मूल आधार यही मुद्रित प्रति है।

आद्यमिताक्षर

यह परम सौभाग्य की बात है कि भगवान कुन्दकुन्द की आम्नाय में प्रवर्तन करने वाले इस युग के महान तपस्वी चारित्र चक्रवर्ती स्व० आचार्य श्री १०८ शान्तिसागरजी महाराज की पवित्र परम्परा में मेरा जन्म (दीक्षा) हुआ। आपके प्रथम सुशिष्य स्व० आचार्य श्री वीरसागरजी महाराज थे जो अनेक गुण विभूषित एवं निर्मल रत्नत्रय से समन्वित थे। आपके प्रथम सुशिष्य स्व० आचार्य श्री १०८ शिव सागरजी महाराज हुए जो अपने समय में दिगम्बर धर्म रूपी नभ मण्डल के सूर्य थे। भवाताप से पीड़ित भव्य जीवों को शान्ति सुधा का पान कराने के लिए पूर्णमासी के चन्द्र थे, धार्मिक ज्योतिर्मय दीप के सदृश उन परमोपकारी गुरु ने मोहान्धकार में भटकने वाली भवभीरु मेरी आत्मा को रत्नत्रय रूपी ज्योति प्रदान कर मेरी अशुद्ध मति (बुद्धि) को विशुद्ध किया। सं० २०२५ में आपके स्वर्गारोहण के बाद आपके पट्टाधीश आचार्य १०८ श्री धर्मसागरजी महाराज हुए जो निर्भय, निःसंग एवं निर्लेपता के साथ आज भारत में अहिंसामय जैन धर्म का डंका बजा रहे हैं।

परम पूज्य स्व० आचार्य १०८ श्री वीरसागरजी महाराज के अन्तिम परम सुशिष्य परम पूज्य १०८ श्री सन्मतिसागरजी महाराज एवं परम पूज्य आचार्य कल्प १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज अनेक क्षेत्रों में मंगल विहार करते हुए स्वपर कल्याण कर रहे हैं। परम पूज्य आचार्य कल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज यथार्थ में श्रुत के ही सागर हैं। चारों अनुयोगों पर आपका विशिष्ट अधिकार होते हुए भी करणानुयोग रूपी सघनवन में बिना प्रयास प्रवेश करने की आपमें अपूर्व क्षमता है, इसी कारण सिद्धान्त भूषण श्री रतनचन्दजी मुख्तार सहारनपुर वाले करीब ८,१० वर्षों से चातुर्मास में निरन्तर आते हैं। मेरा भी आपसे परिचय हुआ और सिद्धान्त ग्रंथ षट्खण्डागम में प्रवेश करने की कुञ्जियाँ भी प्रायः आपके सौजन्य से प्राप्त हुईं। संभवतः २०२५ की बात है—आपने कहा कि त्रिलोकसार महान ग्रन्थ है आपको एक बार उसका स्वाध्याय करना चाहिए। बात हृदयंगत हो गई और हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय से प्रकाशित त्रिलोकसार की दो प्रतियाँ साथ भी रख लीं किन्तु इस ग्रन्थ में क्या, कितना और कैसा प्रमेय है यह कभी खोलकर नहीं देखा।

सं० २०२९ के अजमेर चातुर्मास में मैं धवल ग्रन्थ की सचित्रसंदृष्टियाँ तैयार कर रही थी, उन्हें देख श्री रतनचन्दजी ने मुझे पुनः त्रिलोकसार की स्मृति दिलाई, मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई और दूसरे ही दिन त्रिलोकसार का स्वाध्याय प्रारम्भ कर दिया। तीसरी गाथा का अर्थ जिस समय बुद्धिगत हुआ उस समय आत्मा में जो अपूर्व आह्लाद एवं उत्साह जाग्रत हुआ वह लेखनी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता इस प्रकार १४० गाथाओं का स्वाध्याय विशेष चिन्तन एवं मनन पूर्वक श्री रतनचन्दजी के सान्निध्य में हुआ। यह अपूर्व प्रमेय कहीं भविष्यके गर्त में न चो जाय इस भयसे मैंने रंगीन चित्रण सहित उसे नोट कर लिया। एक दिन अनायास वह रजिस्टर पूज्य बड़े महाराजजी के हाथ लग गया। आपने बड़े ध्यान से देखा और बोले यह तो छपना चाहिए। श्री रतनचन्दजी ने तत्काल उसका समर्थन कर

दिया । "तुम्हें शीघ्रातिशीघ्र इस ग्रंथ का पूरा अनुवाद करना है" गुरु का यह प्रेरणामय आदेश प्राप्त हुआ । सुनते ही मुझे ऐसा अनुभव हुआ मानों मकोड़े की पीठ पर गुड़ की परिया (भेली) रखी जा रही है । अपनी असमर्थता के लिए बहुत अनुनय विनय की किन्तु "आज्ञा माने आज्ञा, करना ही पड़ेगा" इस आदेश के आगे मुझे नत मस्तक होना पड़ा और उसी समय समयसार की गाथा याद आ गई कि— "पगरण चेट्ठा कस्स वि ण य पायरणो त्ति सो होई" अर्थात् प्रकरण की चेष्टा होते हुए भी मैं प्राकरणिक नहीं हूँ कारण यह कार्य मैं नहीं कर रही बल्कि गुरु का आदेश करा रहा है । आसौज कृ० ९ को श्री रतनचन्द्रजी सहारनपुर चले गये और मैंने श्री जिनेन्द्रदेव एवं गुरु के पवित्र चरणों को अपने हृदय कमल में स्थापित कर आसौज कृ० १३ गुरुवार की प्रातः गुरु की होरा में जब उच्च का बुध सूर्य एवं मंगल के साथ लग्न में था; चन्द्र एवं शुक्र सिंह राशि पर तथा स्वगृही गुरु केन्द्रस्थ था तब कार्य का श्री गणेश किया । प्रतिमाह २०० गाथा के हिसाब से माघ शु० दूज तक रंगीन चित्रण सहित ८०० गाथाओं की प्रेस कापी तैयार हो गई इसके बाद कुछ ऐसे कारण कलाप उपस्थित हो गये जिससे ३॥ माह लेखन कार्य बिलकुल बन्द रहा । महाराज श्री के आदेश एवं प्रेरणा से ज्येष्ठ माह में पुनः उत्साह जाग्रत हुआ और सं० २०३० ज्येष्ठ शु० पूर्णिमा शुक्रवार मृगशीर्ष नक्षत्र में जबकि कन्या लग्न में उच्च का चन्द्र सूर्य एवं शनि के साथ लग्न में, स्वगृही बुध धन स्थान में, मंगल दशम और गुरु धर्म स्थान (त्रिकोण) में स्थित था तब इस बृहद् कार्य की परिसमाप्ति हुई ।

पढ़ने पढ़ाने की बात तो दूर रही किन्तु जिस ग्रन्थ को आद्योपान्त कभी एक बार भी नहीं देखा उसके अनुवाद में कितनी कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं यह लिखने की बात नहीं है । किन्तु सरस्वती माता और गुरुजनों के प्रसाद से वे कठिनाइयाँ तत्क्षण सुलझती गईं । जिसप्रकार मृत्यु कभी स्वप्रत्यय से उपस्थित नहीं होती अर्थात् काम वह करती है और नाम किसी रोगादिक का होता है कि अमुक रोग से मृत्यु हुई, उसीप्रकार हृदय स्थित गुरु एवं गुरु भक्ति ने ही स्वयं यह सम्पूर्ण कार्य निर्विघ्न समाप्त किया है मेरा इसमें कुछ भी नहीं है मैं तो रोग के स्थानीय हूँ । अथवा श्री गुणभद्राचार्य के वचनानुसार आम्र के फलों में जो सरसता[1] आदि गुण हैं वे आम्र के स्वयं के नहीं हैं बल्कि वृक्ष के द्वारा ही प्रदत्त हैं, उसी प्रकार यह जो कुछ लिखा जा रहा है वह गुरु के द्वारा ही प्रदत्त है कारण गुरु मेरे हृदय में निरन्तर विद्यमान हैं और वे ही इस प्रमेय को संस्कारित कर रहे हैं अतः मुझे इसमें कुछ परिश्रम[2] भी नहीं हो रहा है । मेरी भी अक्षरशः यही बात है । अर्थात् हृदयस्थ गुरु चरणों ने ही सर्व कार्य सम्पन्न किया है । मैं ये सब बातें केवल शिष्टाचार की खाना पूर्ति के लिये नहीं लिख रही हूँ किन्तु अनुभव की यथार्थता

---

१ गुरूणामेव माहात्म्यं यदपि स्वादु मद्वचः ।

तरूणां हि स्वभावेण यत्फलं स्वादु जायते ॥आ० पु० ४३-१७

२ निर्यान्ति हृदयाद्वाचो हृदि मे गुरवः स्थिताः ।

ते तत्र संस्करिष्यन्ते तन्न मेऽत्र परिश्रमः ॥ आ० पु० ४३-१८

यह है कि जब कोई विषय या गणित कई घण्टों के चिन्तन के बाद भी समझ में नहीं आता तब थकावट से चूर होकर मन कहता 'अब छोड़ो। प्रातः पूज्य बड़े महाराज जी से पूछेंगे' बस–महाराज श्री की इतनी स्मृति आते ही विषय समझ में आ जाता, अन्यथा कभी कभी मन्दिर जाकर दर्शन करते ही समाधान हो जाता था। इसप्रकार ग्रन्थ के भावात्मक हार्द को प्रकाश में लाने के लिये जिन्होंने या जिनकी भक्ति ने यह बल प्रदान किया है तथा द्रव्यात्मक अर्थात् सम्पूर्ण प्रेस मैटर का जिन्होंने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण कर अनेक त्रुटियों का शोधन किया है वे परम पूज्य, करुणा सागर तारण तरण श्रुत के समुद्र आ० क० १०८ श्री श्रुतसागरजी महाराज ही इस ग्रन्थ के सच्चे अनुवादक हैं।

परमपूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी बालब्रह्मचारी अनन्य श्रद्धेय विद्यागुरु १०८ श्री अजितसागरजी महाराजके शिक्षा दान का ही यह फल है जो मैं आज गीर्वाण भाषाको हिन्दी भाषा के रूप में परिवर्तित कर सकी। आपने अपना बहुमूल्य समय देकर समय समय पर त्रिलोकसार की संस्कृत सम्बन्धी कठिनाइयों को बड़ी ही सुगमता पूर्वक सुलझाया है, अतः आपके अनन्य उपकारों के प्रति भी मेरा मन अत्यन्त आभारी है। श्री पं० टोडरमलजी कृत हिन्दी त्रिलोकसार, लोक विभाग, तिलोयपण्णत्ति और जम्बूद्वीप पण्णत्ति से भी बहुत कुछ सहयोग प्राप्त हुआ है अतः इन ग्रन्थों का भी मेरे ऊपर अनन्य उपकार है।

गाथा नं० १७, १९, २२, २५, ८४, ६६, १०३, ११७, ११८, १६५, २३१, ३२७, ३५६, ३६०, ३६१, ७१६ इत्यादि की वासना सिद्धि अत्यन्त कठिन थी जिसे सिद्धान्त भूषण श्री रतनचन्दजी मुख्तार ने अत्यन्त परिश्रम पूर्वक सुगम किया है। समय समय पर और भी अनेक स्थलों पर आपका सहयोग प्राप्त रहा। विषय की दृष्टि से आपने प्रेस मैटर को आद्योपान्त देखा है।

८०० गाथाएँ लिखने तक तो कहीं से त्रिलोकसार की अन्य कोई प्रति प्राप्त नहीं हुई किन्तु इसके बाद श्री मिलापचन्दजी गोधा लूणा पांड्या मन्दिर जयपुर के सौजन्य से करीब १६० वर्ष पुरानी एक अत्यन्त जीर्ण प्रति प्राप्त हुई जिसमें मूलगाथाएँ और गाथाओं से सम्बन्धित आकृतियों का दिग्दर्शन स्थान रेखाओं के द्वारा किया गया है। इस प्रतिसे कई नवीन चित्र लिये गये हैं और जिन्हें मैं पहिले बना चुकी था आवश्यकतानुसार किन्हीं किन्हीं में इस प्रति के आधार पर संशोधन भी किया गया है। त्रिलोकसार के पृ० ५४८ पर सौधर्म स्वर्ग के मानस्तम्भ का जो चित्र छपा हुआ है वह इसी प्रति का है। पुरानी कला की सुरक्षा को दृष्टि में रखते हुए उसका फोटो लेकर वैसा का वैसा ही छाप दिया गया है। इसप्रकार इस अत्यन्त जीर्ण प्रति का भी महान उपकार है।

ग्रन्थ समाप्ति के बाद संस्कृत टीका सहित एक प्रति पूना भाण्डारकर रिसर्च इंस्टीट्यूट से, एक प्रति ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन ब्यावर से और कन्नड़ भाषा की ताड़पत्रीय एक प्रति सहारनपुर मन्दिर से श्री रतनचन्दजी के सौजन्य से प्राप्त हुई। कन्नड़ भाषा की अनभिज्ञता के कारण इस प्रति का पूर्ण उपयोग नहीं हो सका। फिर भी गाथा ३२७ के चित्रों का मिलान इस प्रति की आकृतियों से करके ही उनकी यथार्थता का निर्णय किया गया है। अन्य दो प्रतियों का मिलान निवाई चातुर्मास में

परम पू० १०८ श्री अजितसागरजी महाराज, श्री रतनचन्द्रजी मुख्तार, श्री डॉ० पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर ने बड़े परिश्रम पूर्वक किया। उसी समय जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी प्राध्यापक श्रीचेतनप्रकाश पाटनी और श्रीनीरज जैन एम.ए. सतना वाले भी वहाँ उपस्थित थे। आप दोनों का भी सराहनीय सहयोग प्राप्त हुआ। पुरानी प्रतियोंके एवं मानस्तम्भ आदिके फोटो श्री नीरजजी जैनके सौजन्य से ही प्राप्त हुए हैं। सराहनीय अनेक सहयोगोंके साथ साथ संस्कृतकी प्रेस कापी श्रीचेतनप्रकाशजी ने की है। डॉ० पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य ने हिन्दी प्रेस मैटर का आद्योपान्त निरीक्षण कर स्वर व्यञ्जन जन्य त्रुटियों का संशोधन करने में अपना बहुमूल्य समय लगाया है।

श्री विमलप्रकाशजी ड्राफ्टमैन, रामगंज अजमेर वालों ने प्रेस कापी के आधार से ब्लॉक बनने योग्य करीब ४०–४५ चित्र निवाई आकर तैयार किये थे। तथा श्री नेमिचन्द्रजी गंगवाल निवाई वालों ने शेष सभी चित्र बड़े परिश्रम एवं लगन पूर्वक निरपेक्ष भाव से तैयार करने में जो उदारता प्रगट की है वह यथार्थ में सराहनीय है।

इसप्रकार जिन जिन भव्यात्माओं ने इस महान ज्ञानोपकरण में अपना हार्दिक सहयोग प्रदान किया है उन्हें परम्परया केवलज्ञान की प्राप्ति अवश्यमेव होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

श्रीमन्नेमिचन्द्र-सिद्धान्त चक्रवर्ति-विरचित त्रिलोकसार की संस्कृत टीका श्रीमन्माधवचन्द्र-त्रैविद्य देव कृत है। इसी टीका का हिन्दी में रूपान्तर किया गया है जिसे टीकार्थ नाम न देकर विशेषार्थ संज्ञा दी गई है। वैसे जहाँ तक शक्य हुआ है संस्कृत टीका का अक्षरशः अर्थ किया गया है (विषय स्पष्ट करने की दृष्टि से कहीं कहीं विशेष भी लिखना पड़ा है) किन्तु संस्कृत का पूरा ज्ञान न होने से अक्षरशः अनुवाद में कमी रहने की सम्भावना थी अतः इसे टीकार्थ संज्ञा न देकर विशेषार्थ संज्ञा दी गई है।

त्रैलोक्य के प्रमेयों को आत्मसात् कर लेने के कारण यह ग्रन्थ जितना महान है गणित के कारण उतना ही क्लिष्ट है और यहाँ मेरी बुद्धि अत्यन्त मन्दतम है अतः इसमें त्रुटियाँ होना सम्भव ही नहीं बल्कि स्वाभाविक है अतः गुरुजनों एवं विद्वज्जनों से यही अनुरोध है कि मेरे प्रमाद या अज्ञान से उत्पन्न हुई त्रुटियों का संशोधन करते हुए ही ग्रन्थके अन्तस्तत्त्व (सार) को हृदयंगत कर इसे अपने आत्म कल्याण का साधन बनावें।

अंतिमः—जिस गुरु भक्ति रूपी नौका के अवलम्बन से इस त्रिलोकसार रूपी महार्णव को पार कर सकी हूँ वही भक्ति रूपी नौका शीघ्रातिशीघ्र भवार्णव को पार करने में सहयोगी हो इसी सद्-भावना पूर्वक पूज्य गुरुजनों के पवित्र चरणारविन्दों में त्रियोग शुद्धि पूर्वक त्रिकाल नमोऽस्तु। नमोऽस्तु !! नमोऽस्तु !!!

—आर्यिका विशुद्धमति

इतिहास में गङ्गनरेश राचमल्ल का समय विक्रम संवत् १०३१ से १०४१ तक माना गया है। इनके सचिव या सेनापति होने से चामुण्डराय का भी यही समय सिद्ध है और इन्हीं के समय नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती हुए हैं। इसलिए इनका समय विक्रम की ११ वीं शताब्दी का पूर्वार्ध है।

रचनाएँ—

श्री नेमिचन्द्राचार्य रचित निम्नलिखित ग्रन्थ उपलब्ध हैं—गोम्मटसार (जीव काण्ड, कर्मकाण्ड) त्रिलोकसार, लब्धिसार और क्षपणासार।

ये सभी ग्रन्थ अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं, अतः इनके परिचय की आवश्यकता नहीं समझता। उपर्युक्त ग्रन्थों की रचना प्राकृत भाषा में है। संस्कृत का अभ्यासी विद्वान् इन रचनाओं का भाव सरलता से हृदयंगत कर लेता है।

प्रस्तुत टीका के प्रेरणा-स्रोत

श्री १०५ आर्यिका विशुद्धमतिजी ने त्रिलोकसार की यह टीका आचार्यकल्प श्री श्रुतसागरजी महाराज की प्रेरणा से की है जैसा कि उन्होंने अपने 'आद्यमिताक्षर' शीर्षक वक्तव्यमें स्पष्ट किया है। श्री १०८ श्रुतसागरजी महाराज 'यथा नाम तथा गुणः' हैं अर्थात् सचमुच ही श्रुत के सागर हैं। षट्खण्डागम आदि आगम ग्रन्थों का आपने अच्छा मनुगम किया है। प्राकृत और संस्कृत भाषा का क्रमबद्ध अध्ययन न होने पर भी आप उसमें प्रतिपादित विषय को बड़ी सूक्ष्मदृष्टि से ग्रहण कर लेते हैं। त्रिलोकसार का गणित एक गहन विषय माना जाता है परन्तु आपने अपनी प्रतिभा से उसे अच्छी तरह बैठाया है।

वात्सल्य गुण की मानों आप मूर्ति ही हैं। संघस्थ समस्त साधुओं और माताओं की दिनचर्या या प्रवृत्ति पर कठोर नियन्त्रण रखते हुए भी वात्सल्य रखते उन्हें प्रभावित करते रहते हैं। आप अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी हैं। आपके सम्पर्क में रहने वाला व्यक्ति यदि अध्यवसायी हो तो शीघ्र ही आगम का ज्ञाता बन जाता है।

टीकाकर्त्री श्री १०५ विशुद्धमतिजी

त्रिलोकसार ग्रंथ की हिन्दी टीका लिखकर जब इन्होंने देखने के लिए मेरे पास भेजी तब मैं आश्चर्य में पड़ गया। जब ये सागर के महिलाश्रम में पढ़ती थीं और मैं इन्हें पढ़ाता था तबसे इनके क्षयोपशम में अवनि-अन्तरीक्ष जैसा अन्तर दिखा। मुझे लगा कि इनका क्षयोपशम तपश्चरण के प्रभाव से ही इतनी वृद्धि को प्राप्त हुआ है। वास्तविक बात है भी यही। द्वादशाङ्ग के विस्तार का अध्ययन गुरुमुख से नहीं हो सकता, वह तो तपश्चरण के प्रभाव से क्षयोपशम में एक साथ आश्चर्यजनक वृद्धि होने से ही सम्भव हो सकता है। मुझे स्वयं भी त्रिलोकसार का गणित नहीं आता परन्तु इनके द्वारा निरूपित गणित की विविध रीतियाँ देखकर बहुत हर्ष हुआ।

श्री दि० जैन महिलाश्रम सागर की एक छात्रा सुमित्राबाई आज विशुद्धमति माता के रूप में जन जन की पूज्य हुई और उसने त्रिलोकसार जैसे गहन ग्रन्थ की विस्तृत हिन्दी टीका की, यह देख मुझे अपार हर्ष हो रहा है। आशा करता हूँ कि इनके द्वारा और भी अनेक ग्रन्थों की टीकाएँ होंगी। श्री १०८ अजितसागरजी महाराज भी जो उपर्युक्त माताजी के विद्यागुरु हैं और जिन्होंने संस्कृत प्राकृत भाषा के ग्रन्थों में इनका प्रवेश कराया है, त्रिलोकसार की इस टीका को देखकर अपने परिश्रम को सफल मान रहे हैं।

सम्पादन

सिद्धान्तभूषण श्री रतनचन्द्रजी मुख्त्यार, सहारनपुर और श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी, किशनगढ़ ने इस ग्रन्थ के सम्पादन में भारी श्रम किया है। श्री रतनचन्द्रजी मुख्त्यार पूर्वभव के संस्कारी जीव हैं। इस भव का अध्ययन नगण्य होने पर भी इन्होंने अपने अध्यवसाय से जिनागम में अच्छा प्रवेश किया है और प्रवेश ही नहीं, ग्रन्थ तथा टीकागत अशुद्धियों को पकड़ने की इनकी अद्भुत क्षमता है। इनका यह संस्कार पूर्व भवागत है, ऐसा मेरा विश्वास है। त्रिलोकसार के दुरूह स्थलों को इन्होंने सुगम बनाया है और माधवचन्द्र त्रैविद्यदेवकृत संस्कृत टीका सहित मुद्रित प्रति में जो पाठ छूटे हुए थे अथवा परिवर्तित हो गए थे उन्हें आपने अपनी प्रति पर पहले से ही ठीक कर रक्खा था। पूना और ब्यावर से प्राप्त हस्तलिखित प्रतियों से जब मैंने इस मुद्रित टीका का मिलान किया तब श्री मुख्त्यारजी के द्वारा संशोधित पाठों का मूल्याङ्कन हुआ।

पाठ भेद लेने के बाद मुद्रित प्रति में इतना अधिक काट कूट हो गया कि उसे सीधा प्रेस में नहीं दिया जा सकता था। मुझे अवकाश नहीं था और श्री माताजी तथा मुख्त्यारजी को संस्कृत का विशिष्ट अभ्यास न होने से संस्कृत की प्रेस कापी करना सुकर नहीं था। इसलिए असमंजस हो रही थी। इसी बीच में किशनगढ़ निवासी श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी, प्राध्यापक, जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर का पाठभेद लेते समय निवाई में आगमन हुआ तथा उन्होंने पाठभेद लेने में पर्याप्त सहयोग दिया। उनकी संस्कृत भाषा और गणित विषय सम्बन्धी क्षमता देखकर मुझे लगा कि यह काम इनके द्वारा अनायास हो सकता है। प्रसन्नता की बात थी कि उन्होंने अपना सहयोग देना स्वीकृत कर लिया।

श्री चेतनप्रकाशजी उन पण्डित महेन्द्रकुमारजी पाटनी काव्यतीर्थ किशनगढ़ के सुपुत्र हैं। जो अब श्री १०८ श्रुतसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ले चुके हैं। पं० महेन्द्रकुमारजी प्रकृति के शान्त और स्वाध्याय के रसिक हैं। एक बार भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद् के द्वारा सागर में आयोजित शिक्षण शिविर के समय लगभग एक माह तक हमारे सम्पर्क में रहे थे। श्री चेतनप्रकाशजी को स्वाध्याय की रसिकता अपने पिताजी से विरासत में मिली हुई है। मैं पाठभेदों से युक्त अपनी मुद्रित प्रति इन्हें सौंप कर निवाई से वापिस चला आया। इन्होंने प्रेस कापी कर मुद्रण का काम शुरू कराया। इनके एक वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद ही त्रिलोकसार का यह संस्करण सामने आ सका है।

इसप्रकार श्री रतनचन्द्रजी मुख्तार और श्री चेतनप्रकाशजी पाटनी ने ग्रन्थ के सम्पादन में जो श्रम किया है वह श्लाघनीय है।

प्रकाशन

इस ग्रन्थ की १००० प्रतियों के प्रकाशन का व्यय-भार श्री हीरालालजी पाटनी, निवाई की धर्मपत्नी श्रीमती रतनदेवी ने उठाया है। श्री पाटनीजी और उनकी धर्मपत्नी आदर्श दम्पति हैं। श्री पाटनीजी बहुत समय से सप्तम प्रतिमा का और उनकी धर्मपत्नी द्वितीय प्रतिमा का पालन कर रही हैं। मुनियों के प्रति आपकी अगाध भक्ति है। एक बार आप आचार्य श्री शिवसागरजी महाराज को समस्त संघ के साथ गिरनारजी ले गए और उसकी सारी व्यवस्था आपने स्वयं की। खानिया (जयपुर) तत्त्वचर्चा की व्यवस्था का पूर्ण भार भी आपने ही उठाया था। न [illegible] भार ही नहीं उठाया, आपने जिस तत्परता से आगत विद्वानों की सेवा की थी, उसे स्मरण कर हृदय में अपार हर्ष होता है। निवाई आने वाले महानुभाव आपके आतिथ्य से प्रभावित होते हैं। तथा श्रीमती सरदारी बाई धर्म पत्नि स्व० श्री सुरजमलजी बड़जात्या कामदार जोबनेर (जयपुर) ने १२५ प्रतियों के प्रकाशन का व्यय भार वहन कर जिनवाणी के प्रचार में अपना स्तुत्य सहयोग प्रदान किया है। हम उनके अत्यन्त आभारी हैं।

मुद्रण

त्रिलोकसार वैसे ही गणित के विभिन्न संकेतों से युक्त है उस पर माताजी ने विविध चित्रों, चार्टों तथा संदृष्टियों से इसे अलंकृत किया है अतः इसका मुद्रण करना सरल काम नहीं था। श्री नेमीचन्दजी पांचूलालजी जैन ने अपने कमल प्रिन्टर्स में इसका मुद्रण करना स्वीकृत किया, इसके लिए उपयुक्त टाइप की नयी व्यवस्था की और बड़ी समता व धीरज के साथ इसका मुद्रण किया, यह प्रसन्नता की बात है। कम्पोज किए हुए मैटर को बदलने की बात सुनते ही जहाँ अन्य प्रेसवालों का पारा गर्म हो जाता है वहाँ इन्होंने बड़ी सरलता दिखलाई और सौम्यभाव से ग्रन्थ का मुद्रण किया। अतः दोनों ही महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं।

आकृति निर्माण

श्री माताजी के अभिप्राय को हृदयंगत कर श्री विमलप्रकाशजी तथा श्री नेमीचन्दजी गंगवाल ने त्रिलोकसार की अनेक रेखाकृतियाँ बनाई हैं, अतः वे धन्यवाद के पात्र हैं।

इसप्रकार जिन जिन के सक्रिय सहयोग से इस ग्रन्थ का यह संस्करण निर्मित हुआ है, उन सबके प्रति नम्र आभार है। श्री पं० टोडरमलजी द्वारा कृत हिन्दी टीकावाला संस्करण वर्षों से अप्राप्य था इसलिए स्वाध्यायशील जनता में इस ग्रंथ की बड़ी मांग थी। पूज्य माताजी ने इस परिमार्जित टीका की रचना कर तथा श्री पाटनीजी की धर्मपत्नी ने इसका प्रकाशन कर इस ग्रन्थ को सुलभ किया है इसके लिए समस्त स्वाध्यायशील जनता इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करती है।

अपनी बात

श्री १०८ आचार्यकल्प श्रुतसागरजी महाराज की मुझ पर बड़ी अनुकम्पा है। इनके माध्यम से संघ में यदि किसी ग्रन्थ का प्रकाशन होता है तो वे बड़े स्नेह के साथ उस ग्रन्थ की सँभाल करने का आदेश मुझे देते हैं और उनकी आज्ञा का पालन करता हुआ मैं अपने आपको धन्य मानता हूँ। त्रिलोकसार की प्रस्तावना के रूप में कुछ लिख देने का आदेश मुझे प्राप्त हुआ अतः उपर्युक्त पंक्तियाँ लिखकर अपने को धन्य समझता हूँ। आजकल प्रस्तावनाएँ लम्बी लिखने की परम्परा चल पड़ी है परन्तु पूज्य महाराज का आदेश प्राप्त हुआ कि प्रस्तावना अधिक लम्बी न हो इसलिए यथासम्भव संक्षेप किया गया है। जिन विषयों को अधिक स्पष्ट करने की भावना थी, उनको संकेत मात्र कर छोड़ दिया है।

अन्त में, त्रुटियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

सागर
दीपावली २५०१

विनीत
पन्नालाल साहित्याचार्य

त्रिलोकसार के गणित की विशेषताएँ

तीन लोक के सम्पूर्ण प्रमेयों को अपने गर्भ में धारण करने वाले इस त्रिलोकसार ग्रंथ में तीन लोक की रचना से सम्बन्धित गणित का विवेचन विशद रूप से किया गया है, जो अन्यत्र नहीं पाया जाता।

सर्व प्रथम आचार्य ने 'माणं दुविहं लोगिग लोगुत्तरमेत्थ'......... गाथा ९ के द्वारा लौकिक और अलौकिक के भेद से मान दो प्रकार का बतलाया है। इसमें मान, उन्मान, अवमान, गणिमान, प्रतिमान और तत्प्रतिमान के भेद से लौकिक मान ६ प्रकार का और द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव के भेद से अलौकिकमान ४ प्रकार का कहा है। सामान्यतः द्रव्यमान से द्रव्य (पदार्थ), क्षेत्रमान से प्रदेश (सर्वाकाश तक), कालमान से समय और भावमान से अविभागप्रतिच्छेदों का ग्रहण किया जाता है।

जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से द्रव्यमान तीन प्रकार का है। जघन्य द्रव्यमान में एक परमाणु और उत्कृष्ट में सम्पूर्ण द्रव्य समूह का ग्रहण होता है। मध्यम द्रव्यमान दो प्रकार का है— (१) संख्या प्रमाण और (२) उपमा प्रमाण (गा० १, ११, १२) संख्यात, असंख्यात और अनन्त के भेद से संख्या प्रमाण तीन प्रकार का है। इसमें संख्यात एक ही प्रकार का है, किन्तु परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यात तथा परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्त के भेद से असंख्यात और अनन्त तीन-तीन प्रकार के होते हैं। इस प्रकार संख्या प्रमाण के कुल (१+३+३=)७ भेद होते हैं। ये सातों ही स्थान जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट की अपेक्षा तीन तीन प्रकार के होते हैं, अतः संख्या प्रमाण के कुल (७×३) २१ भेद हो जाते हैं (गा० १३, १४)।

एक में एक का भाग देने से या गुणा करने से कुछ भी हानि वृद्धि नहीं होती अतः संख्या का प्रारम्भ दो के अंक से होता है और इसीलिये जघन्य संख्यात का प्रमाण दो (२) है। ३, ४, ५ आदि से लेकर एक कम उत्कृष्ट संख्यात पर्यंतके सम्पूर्ण भेदों को मध्यम संख्यात और एक कम जघन्यपरीता-संख्यात को उत्कृष्ट संख्यात कहते हैं।

उत्कृष्ट संख्यात (एक कम जघन्य परीतासंख्यात) और जघन्यपरीतासंख्यात के प्रमाण का ज्ञान कराने के लिए अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका इन चार कुण्डों की कल्पना की गई है। ये चारों कुण्ड गोल होते हैं। इनका व्यास एक लाख योजन और उत्सेध एक हजार योजन प्रमाण है। प्रथम अनवस्था कुण्ड में गोल सरसों का प्रमाण प्राप्त करने के लिए व्यास व परिधि का अनुपात स्थूल रूप से तिगुणा और सूक्ष्म रूप से दश का वर्गमूल बतलाया है। वर्तमान गणित में इस अनुपात को 'पाइ' कहते हैं जिसका संकेत चिह्न (π) है। परिधि को चौथाई व्यास से गुणित करने पर वृत्ताकार क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त हो जाता है। अर्थात् व्यास (२ अर्धव्यास)×१० का वर्गमूल (पाइ)×

१/४ अर्धव्यास अर्थात् २ अर्धव्यास × २ अर्धव्यास/४ × पाइ = अर्धव्यास का वर्ग × पाइ = πr^2 । इस क्षेत्रफल को वेध से गुणा करने पर घनफल प्राप्त हो जाता है (गा० १७)। गोल गेंद का घनफल, समघनाकार के घनफल का ९/१६ होता है (गा० १९)। इसी विषय को (पृ० २६ से) वासना द्वारा सिद्ध किया गया है। प्रथम अनवस्था कुण्ड की शिखा का घनफल परिधि के ग्यारहवें भाग को परिधि के छठे भाग के वर्ग से गुणित करने पर प्राप्त होता है (गा० २२)। इसे भी वासना द्वारा सिद्ध किया गया है। इस जम्बूद्वीप सदृश प्रथम अनवस्था कुण्ड को गोल सरसों से शिखाऊ भरने पर सरसों का प्रमाण— १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ ४/११ अर्थात् छियालीस अंक प्रमाण प्राप्त होता है। इसके बाद जघन्यपरीतासंख्यात के प्रमाण की प्राप्ति तक का सम्पूर्ण विषय पृ० ३४ से ४० तक द्रष्टव्य है, यहाँ केवल दृष्टांत दर्शाया जा रहा है। मानलो— प्रथम अनवस्था कुण्ड (४६ अंक प्रमाण संख्या के स्थानीय) १० सरसों से भरा था, अतः बढ़ते हुए व्यास के साथ १० अनवस्था कुण्डों के बन जाने पर एक बार शलाका कुण्ड भरेगा तब एक सरसों का दाना प्रतिशलाका कुण्ड में डाला जाएगा। इसी प्रकार वृद्धिगत व्यास के साथ १० का वर्ग अर्थात् १०० अनवस्था कुण्डों के बन जाने पर १० बार शलाका कुण्ड भरेगा तब एक बार प्रतिशलाका कुण्ड भरेगा तब १ दाना महाशलाका कुण्ड में डाला जाएगा। इसी प्रकार बढ़ते हुए व्यास के साथ १० के घन अर्थात् १००० अनवस्था कुण्डों के बन जाने पर १० के वर्ग अर्थात् १०० बार शलाका कुण्ड भरेगा तब १० बार प्रतिशलाका कुण्ड भरेगा और तब एक बार महाशलाका कुण्ड भरेगा। इस प्रकार इस अन्तिम अनवस्था कुण्ड में शिखा सहित गोल सरसों की जितनी संख्या प्राप्त होती है वही संख्या जघन्यपरीतासंख्यात की है, और उसमें से एक अंक कम कर देने पर उत्कृष्ट संख्यात का प्रमाण प्राप्त होता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी आगे के मूल भेद के जघन्य भेदों में से एक घटा देने पर पिछले मूल भेद का उत्कृष्ट भेद प्राप्त हो जाता है, तथा जघन्य और उत्कृष्ट भेदों के बीच के सभी भेद मध्यम कहलाते हैं, अतः जघन्य का स्वरूप ही लिखा जाता है।

जघन्ययुक्तासंख्यात:— जघन्यपरीतासंख्यात का विरलन कर प्रत्येक एक एक अंक के ऊपर जघन्यपरीतासंख्यात ही देय देकर परस्पर गुणा करने से जो लब्ध उत्पन्न होता है वही जघन्ययुक्तासंख्यात की संख्या है जो आवली सदृश है। अर्थात् जघन्ययुक्तासंख्यात की जितनी संख्या है उतने ही समयों की एक आवली होती है। जघन्ययुक्तासंख्यात अर्थात् आवली का वर्ग करने पर जघन्य असंख्यातासंख्यात का प्रमाण प्राप्त होता है। जघन्य असंख्यातासंख्यात राशि के शलाकात्रय निष्ठापन (पृ० ४३) की समाप्ति होने पर जो मध्यम असंख्यातासंख्यात राशि उत्पन्न हो उस महाराशि में धर्मद्रव्य के असंख्यातप्रदेश, अधर्मद्रव्य के असंख्यात प्रदेश, एक जीव के असंख्यात प्रदेश, लोक के असंख्यात प्रदेश, लोक से असंख्यात गुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों का प्रमाण और असंख्यात लोक प्रमाण प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण मिलाने से जो राशि उत्पन्न

हो उसका पुनः शलाकात्रय निष्ठापन करना चाहिये। उसके बाद उत्पन्न होने वाली महाराशि में बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कल्पकाल के समय, इनसे भी असंख्यात लोक गुणे स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान, इससे भी असंख्यातगुणे अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान और इनसे भी असंख्यातगुणे योग के (मन, वचन काय के) उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेद स्वरूप ये चार राशियां मिलाकर पूर्वोक्त प्रकार पुनः शलाकात्रय निष्ठापन करने से जो महाराशि उत्पन्न होती है वही जघन्यपरीतानन्त का प्रमाण है। इस जघन्य-परीतानन्त का विरलन कर प्रत्येक अंक पर इसी को देय देकर परस्पर गुणा करने से जघन्ययुक्तानन्त की प्राप्ति होती है। इस जघन्ययुक्तानन्त की जितनी संख्या है उतनी संख्या प्रमाण ही अभव्यराशि है। जघन्य युक्तानन्त का वर्ग करने से जघन्य अनन्तानन्त प्राप्त होता है। इस महाराशि का पूर्वोक्त प्रकार शलाकात्रय निष्ठापन करने से जो मध्यम अनन्तानन्त उत्पन्न हो उसमें सम्पूर्ण जीव राशि के अनन्तवें भाग प्रमाण सिद्धराशि, इससे अनन्तगुणी निगोद राशि, सम्पूर्ण वनस्पतिकाय राशि, जीव राशि से अनन्तगुणी पुद्गलराशि, उससे भी अनन्तगुणे तीनों काल के समय और काल राशि से अनन्त-गुणी अलोकाकाश की प्रदेश राशि अर्थात् अनन्त स्वरूप इन छः राशियों का क्षेपण करने से जो योग-फल उत्पन्न हो उसका पुनः शलाकात्रय निष्ठापन करने से उत्पन्न होने वाली महाराशि में धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभागीप्रतिच्छेद मिलाने से उत्पन्न होने वाली राशि का पुनः शलाकात्रय निष्ठापन करने से जो महाराशि रूप लब्ध प्राप्त होगा वह भी केवलज्ञान के बराबर नहीं होगा, अतः केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों में से उक्त महाराशि घटा देने पर जो लब्ध उपलब्ध हो उसे वैसे का वैसा उसी में मिला देने पर केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदों के प्रमाण स्वरूप उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्राप्त होता है।

जितने विषयों को श्रुतज्ञान युगपत् प्रत्यक्ष जानता है उसे संख्या कहते हैं उससे बाहर जितने अधिक विषयों को अवधिज्ञान युगपत् प्रत्यक्ष जानता है उसे असंख्यात कहते हैं और अवधिज्ञान के विषय से बाहर जितने विषयों को केवलज्ञान युगपत् प्रत्यक्ष जानता है उसे अनन्त कहते हैं। (गा० ५२) मात्र केवलज्ञान का विषय होने से अर्धपुद्गल परिवर्तन को भी अनन्त कहा गया है किन्तु यह सक्षय अनन्त होने से परमार्थतः अनन्त नहीं है। आय के बिना व्यय होते रहने पर भी जिस राशि का अन्त नहीं होता उसे अक्षय अनन्त कहते हैं। त्रिलोकसार ग्रन्थ में (गा० ५३ से ९० तक) चौदह धाराओं का वर्णन है जो अन्यत्र नहीं पाया जाता।

नोटः—संस्कृत टीकाकार ने चौदह धाराओं को स्पष्ट करने के लिए अंकसंदृष्टि में उत्कृष्ट अनन्तानन्त स्वरूप केवलज्ञान का मान कहीं १६ और कहीं ६५५३६ माना है किन्तु हिन्दी टीका में उसे सर्वत्र ६५५३६ मानकर ही समझाया गया है।

१. एक अंक को आदि लेकर केवलज्ञान पर्यन्त के सर्व अंकों को सर्वधारा कहते हैं। (गा० ५४)
२. दो के अङ्क से प्रारम्भ कर दो दो की वृद्धि को प्राप्त होती हुई केवलज्ञान पर्यन्त समधारा होती है

(गा० ५५)। ३. एक के अंक से प्राप्त होकर दो दो की वृद्धि को प्राप्त होती हुई केवलज्ञान के प्रमाण से एक अंक हीन तक विषम धारा होती है (गा० ५६)। ४. जो संख्याएँ वर्ग से उत्पन्न होती हैं उन्हें कृतिधारा कहते हैं (गा० ५८)। ५. जो संख्याएँ स्वयं किसी के वर्ग से उत्पन्न नहीं होतीं वे संख्याएँ अकृतिधारा की हैं (गा० ५९)। ६. किसी भी संख्या को तीन बार परस्पर गुणा करने से जो संख्या आती है, वह घनधारा की संख्या है (गा० ६०)। ७. सर्वधारा में से घनधारा के स्थानों को कम कर देने पर केवलज्ञान पर्यन्त समस्त स्थान अघनधारा स्वरूप हैं (गा० ६१)। ८. जो संख्याएँ वर्ग को उत्पन्न करने में समर्थ हैं उन्हें वर्गमातृक कहते हैं (गा० ६२)। ९. जिन संख्याओं का वर्ग करने पर वर्ग संख्या का प्रमाण केवलज्ञान से आगे निकल जाता है वे सब संख्याएँ अवर्गमातृक हैं (गा० ६३)। १०. जो संख्याएँ घन उत्पन्न करने में समर्थ हैं उन्हें घनमातृक कहते हैं। इसके स्थान एक को आदि लेकर केवलज्ञान के आसन्नघनमूल पर्यन्त हैं (गा० ६४)। ११. जिन संख्याओं के घनफल का प्रमाण केवलज्ञान के प्रमाण से आगे निकल जाता है, वे सब संख्याएँ अघनमातृक हैं (गा० ६५)। १२. जिस धारा में दो के वर्ग से प्रारम्भ कर पूर्व पूर्व के स्थानों का वर्ग करते हुए उत्तर उत्तर स्थान प्राप्त होते हैं उसे द्विरूपवर्गधारा कहते हैं। इस धारा का वर्णन (६६—७१) सात गाथाओं में किया गया है। "अवरा खाइयलद्धी" गाथा ७१ में नेमिचन्द्राचार्य ने जघन्यक्षायिक लब्धि के अविभाग प्रतिच्छेदों का और "वरखइयलद्धिणामं" गा० ७२ द्वारा क्षायिक लब्धि के उत्कृष्ट अविभागप्रतिच्छेदों का उल्लेख किया है, जिसे टीकाकार ने स्पष्ट किया है कि (ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा तिर्यगस्यसंयत-सम्यग्दृष्टौ जघन्यक्षायिकसम्यक्त्वलब्धेरविभागप्रतिच्छेदाः) पर्यायनामा जघन्य लब्ध्यक्षर श्रुतज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों के प्रमाण से अनन्त स्थान आगे जाकर तिर्यंचगति में असंयतसम्यग्दृष्टि जीव के जघन्य क्षायिक सम्यक्त्व लब्धि के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण होता है। तथा केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल का एक बार वर्ग करने पर उत्कृष्ट क्षायिक लब्धि के अविभाग प्रतिच्छेदों की उत्पत्ति होती है। इस द्विरूपवर्गधारा के मध्यम स्थानों में १० राशियाँ प्राप्त होती हैं जो पृ० ६५, ६६ पर द्रष्टव्य हैं। १३. द्विरूपघन धारा में उपलब्ध वर्गरूप राशियों की जो घनरूप राशि है उनकी धारा को द्विरूपघन-धारा कहते हैं। इसका वर्णन छह गाथाओं (७७—८२) में किया गया है। १४. घन राशि का पुनः घन करने का नाम घनाघन है। द्विरूप वर्गधारा में जो जो राशि वर्ग रूप है उस प्रत्येक राशि का घनाघन इस धारा में प्राप्त होता है। इसका विवेचन आठ गाथाओं (८३—९०) द्वारा किया गया है। गा० ५४ से ९० तक किये जाने वाली धाराओं के विवेचन के मध्य वर्गमूल, घनमूल, (गा० ६८) जीवराशि, पुद्गलराशि, कालराशि, श्रेण्याकाश, प्रतराकाश (गा० ६९) धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, अगुरुलघुगुण/अविभागप्रतिच्छेद, पर्यायज्ञान (गा० ७०) जघन्यक्षायिक लब्धि, अष्टमूल आदि (गा० ७१) तथा वर्गशलाका और अर्धच्छेद (गा० ७६) का भी कथन किया गया है। संख्या प्रमाण का विवेचन समाप्त हुआ।

गा० ९२ में पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर और लोक इन आठ उपमा प्रमाणों के नाम दर्शाये गए हैं। व्यवहार पल्य, उद्धार पल्य और अद्धापल्य के भेद से पल्य तीन प्रकार का है (गा० ९३)। एक योजन लम्बे, एक योजन चौड़े और एक ही योजन गहरे कुण्ड को विशिष्ट मेढ़े (गा० ९४) के अविभागी रोम खण्डों से भरने पर, उन रोम खण्डों के द्वारा व्यवहार पल्य प्राप्त होता है। तथा प्रत्येक सौ वर्ष बाद एक एक रोम निकालने पर जितने काल में सम्पूर्ण रोम समाप्त हों उतने काल के समयों की संख्या व्यवहार पल्य के समयों की संख्या है। इस व्यवहार पल्य से संख्या का माप किया जाता है (गा० ९३—९९)।

व्यवहार पल्य × असंख्यात वर्षों के समयों की राशि = उद्धार पल्य (गा० १००)। इस उद्धार पल्य से द्वीप समुद्रों का माप किया जाता है।

उद्धार पल्य राशि × असंख्यात वर्षों के समयों की राशि = अद्धा पल्य (गा० १०१)। इससे कर्म स्थिति का माप किया जाता है।

व्यवहार पल्य × १० कोड़ाकोड़ी = एक व्यवहार सागर।

उद्धार पल्य × १० कोड़ाकोड़ी = एक उद्धार सागर
अद्धा पल्य × १० कोड़ाकोड़ी = एक अद्धा सागर } (गा० १०२)

गा० १०३ और १०४ में लवण समुद्र को सागरोपम संज्ञा की अन्वर्थता दिखलाने के लिए कुण्डों आदि का प्रमाण निकाला गया है।

गुण्यमान और गुणकार के अर्धच्छेदों को जोड़ने से लब्धराशि के अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं तथा भाज्य के अर्धच्छेदों में से भाजक के अर्धच्छेद घटाने पर लब्धराशि के अर्धच्छेद होते हैं (गा० १०५—१०६)। विरलन राशि में देय राशि के अर्धच्छेदों का गुणा करने से उत्पन्न (लब्ध) राशि के अर्धच्छेद प्राप्त हो जाते हैं (गा० १०७) विरलन राशि के अर्धच्छेदों को देय राशि के अर्धच्छेदों के अर्धच्छेदों (वर्गशलाकाओं) में मिलाने से विरलन एवं देय के द्वारा उत्पन्न हुई राशि की वर्गशलाकाओं का प्रमाण होता है (गा० १०८)। मूलराशि के अर्धच्छेदों से अधिक अर्धच्छेदों द्वारा गुणकार राशि उत्पन्न होती है (गा० ११०)। मूल राशि के अर्धच्छेदों से हीन अर्धच्छेदों द्वारा भागहार राशि उत्पन्न होती है (गा० १११)।

सूच्यंगुलः—इसी शास्त्र के २३ पृ० पर परमाणु से लेकर अंगुल तक का जो माप दिया गया है उसी अंगुल को सूच्यंगुल या उत्सेधांगुल या व्यवहारांगुल भी कहते हैं। इस सूच्यंगुल से देव, मनुष्य, तिर्यंच एवं नारकियों के शरीर की ऊँचाई का प्रमाण, देवों के निवास स्थान और नगरादि का प्रमाण मापा जाता है (गा० ८)। अथवा:—पल्य के जितने अर्धच्छेद होते हैं उतनी बार पल्य का परस्पर में गुणा करने से जो प्रमाण प्राप्त होता है उसे सूच्यंगुल कहते हैं। जो एक अंगुल लम्बे क्षेत्र में जितने प्रदेश हैं उतने प्रमाण है। (गा० ११२)

प्रतरांगुल:—सूच्यंगुल के वर्ग (सूच्यंगुल × सूच्यंगुल) को प्रतरांगुल कहते हैं। जो एक अंगुल लम्बे और अंगुल चौड़े क्षेत्र के प्रदेशों के प्रमाण है। (गा० ११२)

घनांगुल:—सूच्यंगुल के घन (सूच्य० × सूच्य० × सूच्य०) को घनांगुल कहते हैं (गा० ११२) जो एक अंगुल लम्बे एक अंगुल चौड़े और एक अंगुल ऊँचे क्षेत्र के प्रदेशों के बराबर है।

जगच्छ्रेणी:—पल्य के अर्धच्छेदों में असंख्यात का भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त हो उतनी बार घनांगुलों का परस्पर में गुणा करने पर जगच्छ्रेणी होती है (गा० ११२)।

जगत्प्रतर:—जगच्छ्रेणी के वर्ग को जगत्प्रतर कहते हैं।

लोक:—जगच्छ्रेणी के घन को लोक कहते हैं। उपमा प्रमाण का प्रकरण समाप्त हुआ।

चय:—मुख और भूमि में जिसका प्रमाण अधिक हो उसमें से हीन प्रमाण को घटा कर ऊँचाई अथवा एक कम गच्छ का भाग देने से चय प्राप्त होता है (गा० ११४, २००, ७४६)।

क्षेत्रफल:—मुख और भूमि के योग को आधा कर पद से गुणा करने पर क्षेत्रफल की प्राप्ति होती है (गा० ११४)।

(१) सामान्य, (२) ऊर्ध्वायत, (३) तिर्यगायत, (४) यवमुरज, (५) यवमध्य, (६) मन्दरमेरु, (७) दूष्य (डेरा) और (८) गिरिकटक इन आठ प्रकारों से अधोलोक का क्षेत्रफल निकाला गया है। (१) सामान्य, (२) प्रत्येक, (३) अर्धस्तम्भ, (४) स्तम्भ और (५) पिनष्टि इन पाँच प्रकारों से ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल प्राप्त किया गया है (गा० ११५—१२०)।

गाथा १६३ और १६४ में चय के द्वारा मुख भूमि और पदधन प्राप्त करने का विधान बतलाया गया है।

गा० १६५ में एक नरक के संकलित बिलों की संख्या प्राप्त करने के विधान का कथन है।

पद का जितना प्रमाण हो उतनी बार गुणकार का परस्पर में गुणा कर प्राप्त गुणनफल में से एक घटाकर शेष को एक कम गुणकार से भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसका मुख में गुणा करने से उत्तरोत्तर सदृश गुणकार के क्रम से पदों का गुण संकलित धन प्राप्त होता है। (गा० २३१) अंग्रेजी में इसे $S=\frac{a(r^n-1)}{r-1}$ इस प्रकार दर्शाया गया है।

इष्ट गच्छ के प्रमाण में से एक एक कम करके जो प्राप्त हो उतनी बार दो दो को परस्पर गुणित करके एक लाख से गुणित करने पर वलय व्यास प्राप्त होता है (गा० २०९)।

इष्ट गच्छ के प्रमाण को एक अधिक करने से जो प्राप्त हो उतनी बार दो दो को परस्पर गुणित करके, उसमें से तीन घटा कर एक लाख से गुणा करने पर सूची व्यास प्राप्त होता है (गा० २०९)।

गा० ३१० में लवणसमुद्र आदि समुद्रों और द्वीपों के अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य सूचियों के व्यास को प्राप्त करने का करणसूत्र है।

गा० ३११ से ३१४ तक में बादर व सूक्ष्म परिधि और क्षेत्रफल प्राप्त करने का विधान है। विवक्षित द्वीप तथा समुद्र में जम्बूद्वीप सदृश खण्ड प्राप्त करने के लिए करणसूत्र कहा गया है (गा० ३१६—३१८)।

गा० ३२७ में वासना रूप से शंख का मुरज क्षेत्रफल निकालने का विधान बतलाया गया है। टीका अत्यन्त जटिल है फिर भी अनेक आकृतियों द्वारा उसे समझाने का प्रयत्न किया गया है।

गाथा ३३२ में चित्रा पृथ्वी से सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहों की ऊँचाई योजनों में दर्शाई गई है, किन्तु इन योजनों की दूरी आजकल के प्रचलित माप में क्या होगी ? यह विचारणीय बात है। यदि २ हाथ—१ गज माना जाय तो स्थूल रूप से एक योजन ८०००००० हाथों के बराबर अथवा ४५४५.४५ मील के बराबर प्राप्त होता है, किन्तु यदि वर्तमान प्रचलित माप के अनुसार एक कोश में २ मील मान लिये जांय तो एक महायोजन के २००० कोशों के ४००० मील प्राप्त होते हैं। वैसे अनुमान यह है कि एक महायोजन में मीलों का प्रमाण ४००० से अधिक ही प्राप्त होना चाहिये, किन्तु इस त्रिलोकसार ग्रन्थ में स्थूल रूप से ४००० मील मानकर ही माप दर्शाया गया है। इस माप के अनुसार पृथ्वीतल से तारों की ऊँचाई ३१६०००० मील, सूर्य की ३२००००० मील, चन्द्रमा की ३५२०००० मील, नक्षत्रों की ३५३६००० मील, बुध की ३५५२००० मील, शुक्र की ३५६४ मील, गुरु की ३५७६००० मील, मंगल की ३५८८००० मील और शनि की ३६००००० मील प्राप्त होती है। अर्थात् संपूर्ण ज्योतिषी देव पृथ्वीतल से ३१६०००० मील की ऊँचाई से प्रारम्भ कर ३६००००० मील की ऊँचाई तक स्थित हैं। सर्वज्योतिर्विमान अर्धगोले के सदृश ऊपर को अर्थात् ऊर्ध्वमुख रूप से स्थित हैं, उनका केवल नीचे वाला गोलाकार भाग ही हमारे द्वारा दृश्यमान है, शेष भाग नहीं (गा० ३३६)। ढाई द्वीप के ज्योतिषी देवों के समूह मेरु पर्वत को ११२१ योजन अर्थात् ४४८४००० मील छोड़कर प्रदक्षिणा रूप से गमन करते हैं (गा० ३४५)।

सुमेरु पर्वत के मध्य से प्रारम्भ कर अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्र के एक पार्श्व भाग पर्यन्त का क्षेत्र अर्ध राजू प्रमाण है। अवशेष अर्धराजू के कितने अर्धच्छेद कहाँ कहाँ प्राप्त होते हैं यह विषय गा० ३५२ से ३५९ तक स्पष्ट किया गया है। ३६० और ३६१ ये दो गाथाएं ज्योतिर्बिम्बों की संख्या लाने के लिए गच्छ कहा गया है। (दोनों गाथाएं जटिल हैं।)

गा० ३७३ की टीका में केवल लवण समुद्र स्थित सूर्य का सूर्य से और चन्द्र का चन्द्र से अन्तर दिखाया गया है किन्तु हिन्दी टीका में धातकी खण्ड, कालोदक समुद्र और पुष्करार्ध द्वीप के सूर्यचन्द्रों का अन्तर भी स्पष्ट कर दिया गया है।

रविशशि के गमन करने की क्षेत्रगली को चारक्षेत्र कहते हैं अथवा चारों ओर का क्षेत्र संचरित होने से वह चार क्षेत्र कहलाता है। जम्बूद्वीप के दो चन्द्रों और दो सूर्यों के प्रति एक एक ही चार क्षेत्र होता है जिसका प्रमाण ५१० $\frac{48}{61}$ योजन अर्थात् २०४३१४७ $\frac{33}{61}$ मील है (गा० ३७४)। इस चार क्षेत्र में सूर्य के गमन करने की १८४ गलियां हैं, प्रत्येक गली का प्रमाण $\frac{48}{61}$ योजन (३१४७ $\frac{33}{61}$ मील)

है। इसे चयव्यास भी कहते हैं। एक गली से दूसरी गली का अन्तर २ योजन (८००० मील) है अतः सूर्य के प्रतिदिन गमन क्षेत्र का प्रमाण २ ४८/६१ योजन अर्थात् ११९४७ ३३/६१ मील है इसी प्रकार उसी चार क्षेत्र (५१० ४८/६१ यो०) में चन्द्रमा की १५ गलियाँ हैं। प्रत्येक गली का प्रमाण ५६/६१ योजन (३६७२ ८/६१ मील) है और एक गली से दूसरी गली का अन्तर ३५ २१४/४२७ योजन (१४२००४ २९२/४२७ मील) है, तथा चन्द्रमा के प्रतिदिन गमन क्षेत्र का प्रमाण ३६ २५/४२७ योजन (१४४२३४ ८२/४२७ मील है। (गा० २७७)।

गा० ३७८ में "सुरगिरिचन्दरवीणं" पद से ऐसा ज्ञात होता है कि सूर्य के सदृश चन्द्र की दिवस गति, मार्ग, अन्तर एवं परिधि आदि का वर्णन होना चाहिए था, किन्तु संस्कृत टीका में नहीं किया गया है; हिन्दी टीका में कुछ दर्शा दिया गया है।

सूर्य चन्द्र की सुमेरु के समीप वाली गली को अभ्यन्तर वीथी और लवण समुद्र स्थित अन्तिम गली को बाह्यवीथी कहते हैं। अपनी जिस परिधि को सूर्य ६० मुहूर्त (२४ घंटे) में पूर्ण करता है उसी प्रमाण वाली उसी परिधि को चन्द्र ६२ २३/२२१ (कुछ कम २५ घंटे) में समाप्त कर पाता है। सूर्य अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी में एक मुहूर्त में ५२५१ २९/६० योजन (२१००५९३३ १/३ मील) और एक मिनिट में ४३७६२३ ११/१८ मील चलता है। मध्यम वीथी में एक मुहूर्त में ५२७८ ... योजन (२१११३४६६ २/३ मील) और एक मिनिट में ४३९८६१ ... मील चलता है, तथा अन्तिम (बाह्य) वीथी में एक मुहूर्त में ५३०५ १४/६० योजन (२१२२०९३३ १/३ मील) चलता है और एक मिनिट में ४४२१०२ ७/९ मील चलता है। इसी प्रकार चन्द्रमा अभ्यन्तर वीथी में एक मुहूर्त में ५०७३ ७७४४/१३७२५ योजन (२०२९४२२५ ... मील) और एक मिनिट में ४२२७९६ ... मील चलता है और बाह्य वीथी में एक मुहूर्त में ५१२५ ६९९०/१३७२५ योजन (२०५०२०५४१ ... मील) और एक मिनिट में ४२७१७८ ... मील चलता है (गा० ३८८)।

प्रथम वीथी में भ्रमण करता हुआ सूर्य जब निषध कुलाचल के उत्तर तट से १४५२१ ... योजन पर्वत के ऊपर आता है तभी भरतक्षेत्र में उदित होते हुए दीखता है और तभी अयोध्या नगरी के मध्य स्थित चक्रवर्ती के द्वारा देखा जाता है, जिसका अध्वान ४७२६३ ७/२० योजन (१८९०५३४०० मील) है। इसी प्रकार प्रथम वीथी में भ्रमण करता हुआ सूर्य जब निषधाचल के दक्षिण तट पर कुछ कम १८७५ योजन आता है तब अस्त हो जाता है (गा० ३९१)।

उत्तरोत्तर दुगुण दुगुण संख्याओं के संकलित धन को प्राप्त करने के लिए करणसूत्र गा० ३९२ की टीका में है।

अभ्यन्तर वीथी में चन्द्रमा एक मिनिट में जितना चलता है सूर्य उससे १४८२६ ... मील अधिक चलता है और उसी एक मिनिट में नक्षत्र सूर्य की अपेक्षा ११९६ ... मील अधिक चलते हैं (गा० ४०३)।

गाथा ७६०, ७६१, ७६३, ७६४, ७६५ और ७६६ में धनुषाकार क्षेत्र की जीवा, बाण, धनुष एवं वृत्तविष्कम्भ निकालने के लिए करणसूत्र दिये गये हैं, तथा इन्हीं करण सूत्रों के आधार पर

कुरुक्षेत्र के धनुषाकार क्षेत्र की जीवा आदि निकाल कर उसी प्रकार भरत आदि क्षेत्रों और हिमवत् आदि पर्वतों की जीवा आदि निकालने की सूचना दी गई है। गा० ७६२ में धनुषाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त करने का विधान दर्शाया गया है। गा० ७६८ में जम्बूद्वीपस्थ हिमवत् आदि पर्वतों और भरतादि क्षेत्रों का बाण निकालने का विधान बतलाया गया है। यहाँ कृति स्वरूप संख्या का वर्गमूल निकालने के बाद अवशेष बचे अंकों को छोड़ दिया गया है। जैसे:—दक्षिण भरत की धनुषकृति का प्रमाण $\frac{३८४३२०८५३३५०}{३६१}$ है, इसका वर्गमूल $\frac{१९६११५५}{१९}$ होता है और २१४८७ अंक अवशेष बचते हैं जिनका ग्रहण नहीं किया। विजयार्ध की धनुषकृति के वर्गमूल प्राप्ति के बाद ७७८२६ अवशेष अंक त्याज्य हैं। इसी प्रकार अन्यत्र जानना चाहिए।

गा० १७ पृ० १९ पर नाना प्रकार की आकृतियों द्वारा वृत्ताकार क्षेत्र की परिधि व क्षेत्रफल के करण सूत्र को सिद्ध किया गया है। गा० १९ पृ० ८६ पर गेंद आदि गोल वस्तु के समघनाकार का घनफल $\frac{९}{२}$ होता है। विष्कम्भ और परिधि का अनुपात १० का वर्गमूल $\sqrt{१०}$ है। इसको अनेक आकृतियों द्वारा अत्यन्त कुशलतापूर्वक सिद्ध किया गया है। गा० १०३ पृ० ९६-९७ पर वृत्ताकार के सूक्ष्मक्षेत्र को चतुरस्र रूप करके सिद्ध किया है। गा० २३१ पृ० २१४ पर दृष्टान्त द्वारा नवीन प्रकार से गुणसंकलन धन के करणसूत्र को सिद्ध किया गया है। गा० ३०९ पृ० २५४ पर वलय व्यास और सूचीव्यास प्राप्त करने के लिए करणसूत्र की वासना का विवेचन किया गया है।

त्रिलोकसार की सबसे जटिल गा० ३९७ (पृ० ३७१) की टीका में अत्यन्त कुशलता पूर्वक नाना प्रकार की आकृतियों द्वारा शंख का क्षेत्रफल प्राप्त करने का प्रयास किया गया है, और भी अनेक गाथाओं में अनेक चित्रों एवं चार्टों द्वारा गणित सम्बन्धी जटिल ग्रंथों को सुगम करने का प्रयास किया गया है।

श्री नेमिचन्द्राचार्य कृत त्रिलोकसार रूपी गगन मण्डल पर करणसूत्र रूपी अनेक तारागणों की अनुपम छटा दिखाई देती है, जिनकी सिद्धि के लिए श्री माधवचन्द्राचार्य ने अपनी संस्कृत टीका में यत्र तत्र सर्वत्र वासना का प्रयोग किया है। यद्यपि करण सूत्र सरल हैं किन्तु उनकी वासना बहुत जटिल है। वासना के अतिरिक्त आपने अपनी टीका में कुछ गणित सम्बन्धी अन्य नियमों का भी उल्लेख किया है। ये नियम गणित के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

परिशिष्ट में करणसूत्र, वासना और नियमों का विवरण दिया गया है। इस ग्रन्थ में कुछ ऐसे भी करणसूत्र, वासना एवं नियम हैं जिनका अन्यत्र उल्लेख नहीं पाया जाता।

इस प्रकार यह त्रिलोकसार ग्रंथ लोकोत्तर गणित की अनेक विशेषताओं से सुशोभित होता हुआ अपने आप में परिपूर्ण एवं अद्वितीय है।

विषय-सूची

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
	करणानुयोग-परमागम केवल-ज्ञान के समान है।	१
१	मंगलाचरण	३
२	चैत्यालयों को नमस्कार	६
३	आकाश व लोक, लोकाकाश आठ मध्यप्रदेश	७
४	लोक के अन्यथा स्वरूप का खण्डन	९
५	लोक व अलोक की परिभाषा	१०
६	लोक के कल्पित आकार का खण्डन	१०
७	श्रेणी व रज्जु का प्रमाण	११
८	सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल	१२
९	मान लौकिक मान, अलौकिक मान के भेद	१२
१०	लौकिक मान के दृष्टान्त तथा अलौकिक मान के भेद	१३
११-१२	अलौकिक मानमें जघन्य व उत्कृष्ट द्रव्य क्षेत्र काल भाव का कथन तथा द्रव्य अलौकिक मान के भेद	१३
	संख्या प्रमाण	१४-४८
१३	संख्यात, असंख्यात, अनन्त के भेद प्रभेद	१४
१४	अनवस्था आदि कुंड	१५
	मान के भेदों का चार्ट	१६
१५	चारों कुंडों का व्यास व उत्सेध आदि	१७
१६	गणना, संख्यात और कृति की परिभाषा	१८
१७	परिधि, क्षेत्रफल घनफल का करण सूत्र	१८
	प्रथम अनवस्था कुंड का क्षेत्रफल व खातफल	१९
१८	प्रथम अनवस्था कुण्ड के व्यवहार योजन, घकोष व गोल सरसों का प्रमाण	२२
	अवसन्नासन, सन्नासन आदि का प्रमाण	२३
	उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल, आत्मांगुल	२३
	गोल सरसों का प्रमाण	२४
	गोल सरसों के प्रमाण की सिद्धि	२५

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
१९	घनाकार के घनफल का $\frac{1}{2}$ गोल गेंद आदि वस्तु का घनफल होता है तथा शिखा का घनफल घनाकार के घनफल का $\frac{1}{3}$ होता है।	२५
२०–२१	प्रथम अनवस्था कुण्ड में गोलसरसों का प्रमाण	२८
२२	शिखाफल (सूचीफल) प्राप्त करने का करणसूत्र तथा उसकी सिद्धि	२९
२३	तिल आदि वस्तुओं की शिखा की ऊंचाई परिधि के ग्यारहवें भाग होती है।	३०
२४–२५	प्रथम अनवस्था कुण्ड की शिखा में सरसों का प्रमाण	३१
२६	प्रथम अनवस्था कुण्ड और शिखा इन दोनों का सम्मिलित घनफल	३२
२७–२८	कुण्ड व शिखा इन दोनों में सरसों का प्रमाण	३३
२९–३०	द्वितीय अनवस्था कुण्ड का प्रमाण	३४
३१	द्वितीय आदि अनवस्था कुण्डों का प्रमाण लाने के लिये गच्छ का प्रमाण	३५
३२	शलाका कुण्ड में सरसों डालने का विधान	३६
३३	प्रतिशलाका कुण्ड में सरसों डालने का विधान	३८
३४	महाशलाका कुण्ड भरने का विधान	३९
३५	अन्तिम अनवस्था कुण्ड में जघन्य परीतासंख्यात सरसों	३९
३६–३७	मध्यम परीतासंख्यात, उत्कृष्ट परीतासंख्यात जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण आवली मध्यम युक्तासंख्यात, उत्कृष्ट युक्तासंख्यात, जघन्य असंख्याता संख्यात	४०
३८–४५	शलाका त्रय निष्ठापन के द्वारा जघन्य परीतानन्त की उत्पत्ति	४२–४५
४६–४७	उत्कृष्ट परीतानन्त, जघन्य युक्तानन्त प्रमाण अभव्य राशि, उत्कृष्ट युक्तानन्त, जघन्य अनन्तानन्त, प्रतिच्छेद	४५–४६
४८–५१	उत्कृष्ट अनन्तानन्त व केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद	४६–४८
५२	श्रुतज्ञान का विषय संख्यात अवधिज्ञान का विषय असंख्यात, केवलज्ञान का विषय अनन्त है।	४७

चौदह धारा ४९–८६

५३	सर्वधारा आदि १४ धाराओं के नाम	४९
५४	सर्वधारा का स्वरूप	४९
५५	समधारा का स्वरूप	५०
५६	विषमधारा	५१
५७	समधारा व विषमधारा के स्थानों का प्रमाण और उनको प्राप्त करने की विधि	५१
५८	कृतिधारा का स्वरूप	५२

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
५९	अकृतिधारा का स्वरूप	५३
६०	घनधारा का स्वरूप	५४
६१	अघनधारा का स्वरूप	५५–५६
६२	कृतिमातृकधारा (वर्गमातृक धारा) का स्वरूप व स्थान	५७
६३	अवर्ग (अकृति) मातृका धारा	५७
६४	घनमातृक धारा	५८
६५	अघन मातृक धारा	५९
६६	द्विरूप वर्गधारा	५९
६७	जघन्य परीता सङ्ख्यात की वर्ग शलाका, अर्धच्छेद, प्रथम वर्गमूल, तथा राशि आवली, प्रतरावली	६०
६८	द्विरूप वर्गधारा में अद्धापल्य की वर्गशलाका अर्धच्छेद, प्रथम वर्गमूल, पल्य, सूच्यंगुल प्रतरांगुल, जगत् श्रेणी का प्रथम घनमूल	६१
६९	द्विरूप वर्गधारा में जघन्य परीतानन्त की वर्गशलाका, अर्धच्छेद, प्रथम वर्गमूल, जघन्यपरीतानन्त, जघन्य युक्तानन्त, जघन्य अनन्तानन्त; जीव, पुद्गल, काल, आकाशश्रेणी, आकाश प्रतर	६२
७०	द्विरूप वर्गधारामें धर्माधर्म द्रव्य के अगुरुलघु गुण के अविभाग प्रतिच्छेद और एक जीव के अगुरुलघुगुण के अविभाग प्रतिच्छेद, जघन्य पर्याय नामक श्रुतज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद	६४
७१	द्विरूप वर्गधारा में जघन्य क्षायिक सम्यक्त्व के अविभाग प्रतिच्छेद तथा केवलज्ञान की वर्गशलाका, अर्धच्छेद, वर्गमूल प्राप्त होते हैं	६४
७२	द्विरूप वर्गधारा में केवलज्ञान अर्थात् उत्कृष्ट क्षायिक लब्धि के अविभाग प्रतिच्छेद, द्विरूप वर्गधारा के समस्त स्थान	६५
७३	जो राशि विरलन और देय के विधान से जिस धारा में उत्पन्न होती है उस धारा में उसकी वर्गशलाका व अर्धच्छेद नहीं पाये जाते हैं। यह नियम द्विरूप वर्गधारा, द्विरूप घनधारा व द्विरूप घनाघन धारा में लागू होता है।	६६
७४	द्विरूप वर्गधारा द्विरूप घनधारा, द्विरूप घनाघन धाराओं में वर्ग से ऊपर के वर्गमें अर्धच्छेद दुगुने दुगुने और परस्थान में तिगुने तिगुने होते हैं	६७
७५	वर्गशलाकाओं की अधिकता एवं सादृश्यता का विधान	६७
७६	वर्ग शलाका और अर्धच्छेद का स्वरूप	६९
७७–८०	द्विरूप घनधारा का कथन	७०

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
८१–८२	द्विरूप घनधारा में अन्तिम स्थान और उसका कारण	७१
८३–८४	द्विरूप घनाघन धारा के कथन में लोक, तेजस्कायिक जीव, तेजस्काय-स्थिति, अवधिज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र तथा इनकी गुणकार शलाका, वर्गशलाका, अर्धच्छेद, प्रथम मूल का कथन	७४
८५–८७	द्विरूप घनाघन धारा में स्थिति बन्ध कषाय परिणाम स्थान, अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान, निगोद शरीरों की उत्कृष्ट संख्या, निगोद काय स्थिति, सर्वोत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेद का प्रमाण तथा इनकी वर्ग शलाका, अर्धच्छेद, वर्गमूल	८१
८८	द्विरूप वर्गधारा के स्थान को परस्पर ६ बार गुणा करने से द्विरूप-घनाघन धारा का स्थान होता है।	८३
८९–९०	द्विरूप घनाघन धारा में सर्वोत्कृष्ट योग के उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेदों के प्रमाण से अनन्त स्थान ऊपर जाकर केवलज्ञान के चतुर्थ वर्गमूल का घनाघन अन्तिम स्थान है। समस्त स्थानों का प्रमाण चार कम केवलज्ञान की वर्गशलाकाओं के बराबर है।	८४–८५
९१	चौदह धाराओं का विस्तृतस्वरूप बृहद्धारापरिकर्म शास्त्र में है।	८६
	उपमा प्रमाण	८६–१०१
९२	उपमा प्रमाण आठ प्रकार का है—पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर, लोक	८६
९३	व्यवहार, उद्धार और अद्धा के भेद से पल्य तीन प्रकार का है	८७
९४–१०१	पल्य का प्रमाण प्राप्त करने का विधान	८७–९५
९६	परिधि व क्षेत्रफल का करण सूत्र व वासना	८८
९७–९८	पल्य (गड्ढे) में रोमों की संख्या	९२
९९	व्यवहार पल्य के समयों का प्रमाण	९३
१००	उद्धार पल्य का काल	९४
१०१	अद्धापल्य का काल	९४–९५
१०२	सागरोपम का काल	९५
१०३	सागरोपम काल की सिद्धि	९५
१०४	सागर में पल्यों के प्रमाण की सिद्धि	९६
१०५	गुणाकार और गुण्यमान इन दोनों के अर्धच्छेदों को जोड़ने से लब्ध राशि के अर्धच्छेद होते हैं। सागर की वर्गशलाका नहीं है	१०१

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
१०६	भाज्य के अर्धच्छेदों में से भाजक के अर्धच्छेदों को घटाने पर लब्ध राशि के अर्धच्छेद होते हैं	१०१
१०७	विरलन राशि में देय राशि के अर्धच्छेदों का गुणा करने से गुणा करने पर लब्ध राशि के अर्धच्छेद होते हैं	१०२
१०८	विरलन राशि के अर्धच्छेदों को देय राशि के अर्धच्छेदों के अर्धच्छेदों (वर्गशलाका) में मिलाने पर लब्धराशि की वर्गशलाका होती है।	१०२
१०९	जगत् श्रेणी की वर्गशलाका	१०४
११०	मूलराशि के अर्धच्छेदों से अधिक अर्धच्छेदों के द्वारा गुणकार राशि की उत्पत्ति होती है	१०६
१११	मूलराशि के अर्धच्छेदों से हीन अर्धच्छेदों द्वारा भागाहार राशि उत्पन्न होती है	१०७
११२	जगच्छ्रेणी का वर्ग जगत्प्रतर और घन घनलोक होता है	१०७
	लोक	११०
११३	लोक का विस्तार	११०
११४	हानि तथा चय का विधान, क्षेत्रफल तथा घन फल की उत्पत्ति	११०
११५	अधो लोक का आठ प्रकार से क्षेत्रफल (१) सामान्य, (२) ऊर्ध्वायत, (३) तिर्यगायत की अपेक्षा क्षेत्रफल	११३
११६	(४) यवमुरज (५) यवमध्य की अपेक्षा अधोलोक का क्षेत्रफल	११५
११७	(६) मन्दर, (७) दूष्य, (८) गिरिकटक की अपेक्षा अधोलोक का क्षेत्रफल	११८, ११९
११८	पांच प्रकार से ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल। (१) सामान्य, (२) प्रत्येक, (३) अर्धस्तम्भ, (४) स्तम्भ, (५) पिनष्टि की अपेक्षा ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल	१२५
११९-१२०	पिनष्टि द्वारा ऊर्ध्वलोक क्षेत्रफल में त्रिभुज की ऊंचाई तथा पिनष्टि द्वारा ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल	१३१
१२१-१२२	लोक की पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण परिधि	१३५
१२३-१२५	लोक को परिवेष्टित करने वाली तीन वातवलयों का स्वरूप व बाहुल्य	१३७
१२६	लोक शिखर पर तीन वातवलय का बाहुल्य	१४१
१२७	लोक के नीचे वातवलयों का क्षेत्रफल	१४१

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
१२८–१२९	सातवीं पृथ्वी तक पार्श्वभागों में वातवलयों का क्षेत्रफल	१४२
१३०–१३१	दक्षिणोत्तर वातवलयों का क्षेत्रफल	१४३
१३२–१३३	सातवीं पृथ्वी से मध्यलोक पर्यंत पूर्व पश्चिम दिशा में वातवलयों का क्षेत्रफल	१४५
१३४–१३५	दक्षिणोत्तर पार्श्वभागों में वातवलयों का क्षेत्रफल	१४६
१३६	पूर्व–पश्चिम दिशाओं में ऊर्ध्वलोक के पार्श्व भागों में वातवलयों का क्षेत्रफल	१४७
१३७	दक्षिणोत्तर दिशाओं में ऊर्ध्वलोक के पार्श्व भागों में वातवलयों का क्षेत्रफल	१४८
१३८	लोकाग्र में वातवलयों का क्षेत्रफल	१४८
१३९–१४०	लोक में सम्पूर्ण वातवलयों का क्षेत्रफल	१५०–१५२
१४१–१४२	सिद्ध परमेष्ठी की जघन्य व उत्कृष्ट अवगाहना	१५२–१५३
१४३	त्रसनाली का स्वरूप	१५४
	१४४–२०७ नरक	१५४–२००
१४४	त्रसनाली के अधो भाग में स्थित पृथिवियां	१५४
१४५	सातों नरकों के नाम	१५५
१४६	रत्नप्रभा के तीन भाग	१५६
१४७–१४८	खर भाग की १६ भूमियों के नाम	१५६
१४९	शर्करा आदि पृथ्वियों की मोटाई	१५७
१५०	नरक पृथ्वियों में स्थित पटलों व बिलों का स्थान	१५७
१५१	प्रत्येक नरक में बिलों की संख्या	१५८
१५२	नरकों में उष्ण व शीत वेदना का विभाग	१५८
१५३	नरकों में पटल इन्द्रक व श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या	१५९
१५४–१५८	प्रथमादि छह नरकों के इन्द्रक बिलों के नाम	१६०
१५९	सातवें नरक के बिलों के नाम	१६१
१५९–१६२	प्रत्येक पृथिवी में प्रथम इन्द्रक बिल संबंधी शेष चार श्रेणीबद्ध बिलों के नाम	१६१–१६४
१६३	प्रत्येक पृथिवी के प्रथम पटल के श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या द्वारा अन्तिम पटल में संख्या प्राप्त करने के लिये तथा अन्तिम पटल के श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या द्वारा प्रथम पटलमें संख्या प्राप्त करने के लिये करण सूत्र	१६४
१६४	श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण निकालने के लिये करण सूत्र	१६५
१६५	अन्य करण सूत्र के द्वारा श्रेणी बद्ध बिलों का प्रमाण प्राप्त करने का विधान	१६६

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
१६६	प्रकीर्णक बिलों की संख्या	१७०
१६७-१६९	नरक बिलों का विस्तार	१७१-१७३
१७०-१७१	सातों नरकों के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध, प्रकीर्णक बिलों का बाहुल्य	१७५
१७२	इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों का ऊंचाई में अंतराल	१७६
१७३-१७४	प्रथम आदि पृथ्वियों के अन्तिम पटल और द्वितीयादि पृथ्वियों के आदि पटलों का अन्तराल।	१७६
१७५-१७६	बिलों का तिर्यक् अंतराल	१८२
१७७	बिलों का आकार	१८२
१७८	नरक बिलों की दुर्गन्ध	१८३
१७९-१८०	नरक में उत्पत्ति का कारण तथा उपपाद स्थान का आकार, व्यास व बाहुल्य	१८३
१८१-१८२	नारकी जीव उत्पन्न होकर भूमि पर गिरकर उछलते हैं	१८४
१८३-१८४	पुराने और नवीन नारकियों का परस्पर व्यवहार	१८५
१८५	अपृथक् विक्रिया का विधान	१८६
१८६-१९१	क्षेत्रगत पदार्थों की क्रूरता तथा दुःखों का वर्णन	१८७
१९२-१९३	नारकी दुर्गंध वाली मिट्टी खाते हैं	१८९
१९४	शरीर का छिन्न भिन्न हो जाने पर भी मरण नहीं होता	१९०
१९५	नरक व स्वर्ग में तीर्थंकर प्रकृति वालों की मरण से छह माह पूर्व विशेषता	१९१
१९६	मरण होने पर सम्पूर्ण शरीर विलय हो जाता है	१९१
१९७	क्षेत्र जनित, मानसिक, शारीरिक, असुरकृत दुःख	१९२
१९८-२००	प्रत्येक पटल में जघन्य व उत्कृष्ट आयु	१९३
२०१	प्रत्येक पटल में शरीर का उत्सेध	१९५
२०२	अवधि क्षेत्र	१९७
२०३-२०४	नरक से निकलने वाले जीवों की उत्पत्ति	१९७
२०५	कौन जीव किस नरक तक उत्पन्न हो सकता है और कितनी बार उत्पन्न हो सकता है।	१९९
२०६	प्रथमादि नरकों में जन्म मरण का उत्कृष्ट अन्तर	२००
२०७	नरक में निमकार मात्र भी सुख नहीं	२००

लोक सामान्य अधिकार व नरक अधिकार समाप्त

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
	भवनाधिकार २	
२०८	भवनों में स्थित जिन-मन्दिरों को नमस्कार रूप मंगल	२०१
२०९-२११	भवन वासी देवों के दस भेद (कुल) तथा इन्द्रों के नाम	२०२
२१२	कौन इन्द्र किस इन्द्र से स्पर्धा करता है	२०३
२१३	असुरादि के चिह्न	२०३
२१४	चिह्न स्वरूप चैत्यवृक्षों के दस भेद	२०४
२१५-२१६	चैत्यवृक्षों के मूल में स्थित जिन प्रतिमा तथा मानस्तम्भ	२०४
२१७-२१८	भवनवासी इन्द्रों के भवनों की संख्या व विशेष स्वरूप	२०५
२१९	भवनवासी देवों का ऐश्वर्य	२०६
२२०	भवनों की भूगृह संज्ञा तथा उनका विस्तार	२०६
२२१	भवन, विमान, आवासों के स्थान	२०७
२२२	पङ्कभाग में असुरकुमार के भवन व राक्षसों के आवास हैं	२०८
२२३-२२५	इन्द्र प्रतीन्द्र आदि दस भेदों का उपमा सहित कथन	२०८
२२६-२२८	भवनवासी देवों में इन्द्र, प्रतीन्द्र, लोकपाल, त्रायस्त्रिंश, सामानिक अङ्गरक्षक, परिषद देवों की संख्या	२१०
२२९	तीनों परिषदों के विशेष नाम	२११
२३०	अनीक देवों के भेद तथा संख्या	२१२
२३१	उत्तरोत्तर सदृश गुणाकार के क्रम से प्राप्त सातों अनीकों के धन को प्राप्त करने के लिये गुण संकलन करण सूत्र	२१३
२३२-२३३	अनीकों के भेद तथा स्वरूप	२१६
२३४-२३५	भवनवासी इन्द्रों की देवियों की संख्या	२१७
२३६	चमर और वैरोचन इन्द्रों की पट्ट देवियों के नाम	२१८
२३७-२३९	प्रतीन्द्र, लोकपाल, त्रायस्त्रिंशत् और सामानिक की देवांगना इन्द्र के सदृश हैं। शेष देवों की देवांगनाओं का प्रमाण कहा गया है।	२१९
२४०-२४७	भवनवासी और व्यन्तर देवों व देवांगनाओं की आयु	२२०
२४८	उच्छ्वास व आहार का क्रम	२२४
२४९	भवनत्रिक का उत्सेध	२२५
	भवनत्रय में जन्म लेने वाले जीव गा० ४५० पृ० ३६७	

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
	व्यन्तरलोक अधिकार ३	२२६–२५०
२५०	व्यन्तर देवों तथा जिन चैत्यालयों का प्रमाण	२२६
२५१–२५२	व्यन्तर देवों के भेद तथा उनके शरीर का वर्ण	२२८
२५३–२५५	चैत्यवृक्षों के नाम, जिनप्रतिमा, मानस्तम्भ	२२९
२५६–२७८	आठ कुलों के अवान्तर भेद, प्रत्येक कुल के इन्द्र तथा उनकी वल्लभा तथा वल्लभा की आयु	२३०
२७९	प्रतीन्द्र, सामानिक, तनुरक्षक तथा पारिषद देवों की संख्या	२३६
२८०–२८१	सातों अनीकों के नाम, भेद तथा महत्तरों के नाम	२३८
२८२	अनीक और प्रकीर्णकादि देवों की संख्या	
२८३–२८९	व्यन्तर देवों के नगरों के आश्रयरूप द्वीपों के नाम, नगरों के नाम, आयाम, नगरों के कोट तथा दरवाजों की ऊँचाई, दरवाजों के ऊपर स्थित प्रासाद, तथा नगर बाह्य वन और उनमें गणिका महत्तरियों के नगरों का प्रमाण व संख्यादि	२४०
२९०	कुल भेदों की अपेक्षा निलय (भवन) भेदों का निरूपण	२४५
२९१–२९३	नीचोपपाद देवों के निवास क्षेत्र व आयु	२४५
२९४–३०१	भवनपुर, आवास और भवन के स्थान, स्वामी, आयाम आदि	२४७
३०१	आहार व उच्छ्वास का क्रम	२५०
	भवनत्रय में जन्म लेनेवाले जीव गा० ४५० पृ० ३६०	
	व्यन्तर लोक अधिकार समाप्त	
	ज्योतिर्लोकाधिकार	२५१–३९८
३०२	ज्योतिष देवों तथा ज्योतिर्बिम्ब एवं चैत्यालयों की संख्या	२५१
३०३	ज्योतिष देवों के भेद	२५२
	तिर्यग्लोक का कथन	
३०४–३०८	ज्योतिष देवों के आधारभूत द्वीप समुद्रों के नाम व संख्या तथा विस्तार व आकार	२५३
३०९	इच्छित द्वीप व समुद्र का सूची व्यास एवं वलय व्यास लाने के लिए करणसूत्र	२५४
३१०	अभ्यन्तर मध्य और बाह्य सूची प्राप्त करने के लिए करणसूत्र	२५६
३११	सूची व्यास के आधार से बादर व सूक्ष्म परिधि तथा बादर व सूक्ष्म क्षेत्र फल प्राप्त करने के लिए करण सूत्र	२५८

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
३१२-३१३	जम्बूद्वीप की सूक्ष्म परिधि व सूक्ष्म क्षेत्र फल का प्रमाण	२६०
३१४	जम्बूद्वीप की परिधि के द्वारा विवक्षित द्वीप या समुद्र की परिधि प्राप्त करने के लिए करणसूत्र	२६१
३१५	स्थूल एवं सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिए करणसूत्र	२६२
३१६-३१८	लवण समुद्रादिकों के जम्बूद्वीप प्रमाण खण्ड प्राप्त करने के लिए ४ करणसूत्र	२६३
३१९	समुद्रों के जल का स्वाद	२६५
३२०	किन समुद्रों में जल जीव हैं और किन में नहीं	२६६
३२१	तीन समुद्रों में रहनेवाले मत्स्यों की अवगाहना	२६७
३२२-३२४	मानुषोत्तर पर्वत व स्वयंप्रभ पर्वत	२६८
३२५-३२६	एकेन्द्रिय आदि जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना	२६९
३२७	शंख के क्षेत्रफल सम्बन्धी करण सूत्र	२७१
३२७	टीका एकेन्द्रियादि का क्षेत्रफल	२७२
३२८-३३०	पांच स्थावरों की, विकलत्रय, मत्स्य, सरीसृप पक्षी और सर्पों की उत्कृष्ट आयु तथा कर्मभूमिज मनुष्य व तिर्यंचों की जघन्य आयु।	२७८
३३१	चारों गतियों में वेद का कथन	२७९
	ज्योतिर्लोक	
३३२	चित्रा पृथ्वीसे ज्योतिर्बिम्बों की ऊंचाई	२८०
३३३	बुध और शनि के अन्तराल में स्थित ८३ ग्रहों के नाम	२८१
३३४-३३५	ज्योतिष देवों का बाहुल्य तथा तारागण का तिर्यग अन्तराल	२८२
३३६-३३८	ज्योतिष विमानों का आकार, व्यास तथा बाहुल्य	२८३
३३९-३४०	राहु केतु विमानों का व्यास, उनके कार्य और अवस्थान	२८५
३४१	चन्द्रमादि की किरणों का प्रमाण तथा उनकी तीव्रता व मन्दता	२८६
३४२	चन्द्रमण्डल वृद्धि व हानि का क्रम	२८७
३४३	चन्द्रमा आदि ज्योतिषदेवों के विमान वाहक देवों का आकार विशेष और संख्या	२८८
३४४	आकाश में गमन करने वाले कुछ नक्षत्रों का दिशा भेद	२८९
३४५	मेरु पर्वत से कितनी दूर जाकर ज्योतिष देव गमन करते हैं	२९०
३४६	अढाई द्वीप व समुद्रों में चन्द्र व सूर्य की संख्या	२९०
३४७	अढाई द्वीप में ध्रुव ताराओं की संख्या	२९१
३४८	ज्योतिष देवों का गमन क्रम	२९१

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
३४६–३५१	मानुषोत्तर पर्वत के पर भाग में चन्द्र व सूर्य का अवस्थान क्रम व संख्या व परस्पर में अन्तर	२९१
३५२–३५९	असंख्यात द्वीप समुद्रगत चन्द्रादिक की संख्या प्राप्ति के लिये असंख्यात द्वीप समुद्रों की संख्या का कथन	२९५
३६०	ज्योतिर्बिम्बों की संख्या लाने के लिये जो गच्छ कहा है उस की आदि कहते हैं	३०४
३६१	आदि, गुणाकार और गच्छ के द्वारा संकलन रूप धन को प्राप्त करके सर्व ज्योतिर्बिम्बों का प्रमाण लाने के लिए विधान	३०७
३६२	एक चन्द्रमा के परिवार सम्बन्धी ग्रह, नक्षत्र व ताराओं की संख्या	३११
३६३–३७०	८८ ग्रहों के नाम	३१२
३७१–३७२	जम्बूद्वीपस्थ भरतादि क्षेत्र और कुलाचल पर्वतों की शलाकाओं द्वारा भरतादि में ताराओं की संख्या	३१५
३७३	लवणादि समुद्र से पुष्करार्ध पर्यंत स्थित चन्द्र सूर्यों का अंतर	३१६
३७४–३७५	चार क्षेत्र और उनके विभाग का नियम	३२०
३७६–३७८	चन्द्र और सूर्य की वीथियों का प्रमाण, विथियों का अन्तराल, मेरु पर्वत से प्रत्येक मार्ग (वीथी) का अन्तर तथा मार्ग की परिधि	३२२
३७९–३८०	बाह्य और अभ्यन्तर वीथियों पर जब सूर्य होता है तब दिन व रात्रि का प्रमाण तथा प्रतिदिन होनेवाली हानि व वृद्धि का प्रमाण	३२८
३८१	सूर्य श्रावण में दक्षिणायन और माघ में उत्तरायण होता है	३३०
३८२	सर्व परिधियों में ताप और तम लाने का विधान	३३१
३८३	जिस परिधि में जो तापमान होता है उसका आधा सूर्य बिम्ब के पीछे और आधा सूर्य बिम्ब के आगे होता है	३३४
३८४	प्रत्येक दिन में ताप व तम की हानि वृद्धि का प्रमाण	३३४
३८५–३८६	पांचों परिधियों का प्रमाण	३३५
३८७–३८८	दक्षिणायन में सूर्य शीघ्रता से गमन करता है और उत्तरायण में सूर्य मंद मंद गति से गमन करता है, इसका दृष्टान्त तथा प्रत्येक वीथी में सूर्य का एक मुहूर्त में गमन क्षेत्र	३३६
३८९–३९१	अभ्यन्तर वीथी में स्थित सूर्य और चक्षु इन्द्रिय की दूरी	३३९
३९२–३९४	प्रयोजन भूत चाप का प्रमाण प्राप्त करने के लिये, उसके बाण को प्राप्त करने का विधान तथा निषध पर्वत की पार्श्व भुजा का प्रमाण	३४१

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
३९५	निषध, नील पर्वतों पर, हरि व रम्यक क्षेत्रों तथा लवण समुद्र में सूर्य उदय स्थानों की संख्या	३४६
३९६	दक्षिणायन में द्वीप संबंधी चार क्षेत्र तथा वेदिका के विभाग करके सूर्य व चन्द्रमा के उदय स्थानों की संख्या	३४७
३९७	दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व और अधःस्थानों में सूर्य का आताप क्षेत्र	३५६
३९८	एक एक नक्षत्र सम्बन्धी मर्यादा रूप गगन खण्ड	३५७
३९९-४००	जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम नक्षत्रों के नाम	३५८
४०१-४०२	सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों का परिधि में भ्रमण काल तथा गगन खंडों का प्रमाण	३५९
४०३	चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और नक्षत्रों की चाल में शीघ्रता की तरतमता	३६१
४०४	चन्द्रमा की नक्षत्रों के साथ तथा सूर्य की नक्षत्रों के साथ निकटता (अर्थात् भुक्ति) का काल	३६२
४०५-४०६	राहु की नक्षत्रों के साथ निकटता (भुक्ति) काल	३६३
४०७-४०८	एक अयन में तीन गतदिवस (अधिक दिन)	३६५
४०९	पुष्य नक्षत्र की विशेषता तथा दोनों अयनों में सूर्य, चन्द्रमा, राहु द्वारा नक्षत्रों का भुक्ति काल	३६७
४१०-४२०	अधिक मास होने का विधान तथा उसकी सिद्धि	३७१
४२१-४३१	किस पर्व, तिथि और नक्षत्र में दिन रात समान (विषुप) होंगे	
४३२-४३९	नक्षत्रों के नाम, अधि देवता, स्थिति विशेष का विधान तथा गमन वीथी	३८८
४४०-४४५	प्रत्येक नक्षत्र के ताराओं की संख्या, उन ताराओं के आकार तथा परिवार ताराओं की संख्या	३९२
४४६	पांचों प्रकार के ज्योतिषी देवों की आयु	३९५
४४७-४४८	चन्द्र और सूर्य की देवाङ्गना	३९६
४४९	देवाङ्गनाओं की आयु तथा प्रत्येक देव की देवियों की संख्या	३९७
४५०	भवनत्रय में उत्पन्न होने वाले जीव	३९७

चौथा ज्योतिर्लोक समाप्त

वैमानिक लोकाधिकार ५ ३९९-५७६

४५१	सर्व ८४९७०२३ विमानों में स्थित जिन मंदिरों को नमस्कार	३९९
४५२-४५३	कल्प और कल्पातीत में से कल्पों के नाम	३९९

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
४४४	इन्द्र अपेक्षा कल्पों की संख्या	४००
४४५–४४७	कल्पातीत विमानों का विन्यास तथा नाम	४०१
४४८–४५०	कल्प और कल्पातीत विमानों का अवस्थान	४०३ व ४०८
४५१–४६२	सौधर्मादि स्वर्ग विमानों की संख्या तथा पटलों की संख्या	४०४
४६३–४६९	इन्द्रक विमानों का ऊर्ध्व अन्तर तथा नाम	४०६
४७१	कल्प और कल्पातीतों की सीमा	४०९
४७२	इन्द्रक विमानों का विस्तार	४०९
४७३–४७४	श्रेणीबद्ध विमानों की संख्या व अवस्थान	४११
४७५	प्रकीर्णक विमानों का स्वरूप व प्रमाण	४१५
४७६–४७७	दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानों का विभाग तथा व्यास विस्तार	४१६
४७८–४७९	सौधर्मादि स्वर्गों में संख्यात व असंख्यात योजन विस्तार वाले विमानों की संख्या	४१७
४८०–४८२	विमानों का बाहुल्य, वर्ण व आकार	४१९
४८३–४८५	इन्द्र किस विमान में रहता है और उसका नाम	४२२
४८६–४८७	सौधर्म आदि देवों के मुकुट चिह्न	४२३
४८८–४९३	इन्द्रों के नगर स्थान व विस्तार, ऊँचाई, गाध (नींव) तथा गोपुरों का स्वरूप, संख्या, ऊँचाई व व्यास आदि	४२४
४९४–४९५	सामानिक, तनुरक्षक और अनीक देवों की संख्या	४२९
४९६–४९७	दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र के अनीक नायकों के नाम	४३०
४९८	पारिषद देवों की संख्या	४३०
४९९–५०१	इन्द्र के नगर बाह्य पांच कोटों का परस्पर में अंतराल तथा अन्तरालों में स्थित देवों के भेद	४३३
५०२–५०३	नगर बाह्य स्थित वनों के नाम तथा उनमें स्थित चैत्य वृक्षों का स्वरूप	४३४
५०४–५०६	लोकपाल के तथा गणिका महत्तरियों के नगरों का विस्तार तथा नाम	४३५
५०७–५०८	देव और देवांगनाओं के गृहों का विस्तार तथा उत्सेध	४३७
५०९	कल्पवासी देवों की अग्र एवं परिवार देवांगनाओं की संख्या	४३९
५१०–५१२	इन्द्रों की अग्र देवाङ्गनाओं के नाम और विक्रिया का प्रमाण	४३९
५१३–५१४	वल्लभा देवांगनाओं की संख्या तथा उनके प्रासादों के अवस्थानों की दिशा व प्रासादों का उत्सेध	४४१

गाथा सं०	विषय	पृ० सं०
५१५–५१८	इन्द्र के अवस्थान मण्डप का स्वरूप, उसमें स्थित आसन तथा मण्डप के द्वारों का विस्तार तथा आसनों की संख्या	४४८
५१९–५२२	आस्थान मण्डप के अग्रस्थित मानस्तम्भ का स्वरूप तथा उस पर स्थित करण्डों का स्वरूप	४४९
५२३	इन्द्र के उत्पत्ति गृह का स्वरूप	४४९
५२४–५२५	कल्पवासी देवांगनाओं के उत्पत्ति स्थान	४४९
५२६	कल्पवासी देवों के प्रवीचार (काम सेवन) का स्वरूप	४५०
५२७–५२८	वैमानिक देवों की विक्रिया शक्ति और ज्ञान का विषय	४५१
५२९–५३०	वैमानिक देवों के तथा इन्द्र, पट्ट रानी, लोकपाल, त्रायस्त्रिश, सामानिक, तनुरक्षक और पारिषद देवों के जन्म मरण का उत्कृष्ट अन्तर	४५२
५३१	कैसा मनुष्य कंदर्प, किल्विषिक और आभियोग्य की जघन्य आयु बांधकर कौन कौन से स्वर्ग तक उत्पन्न होता है	४५४
५३२	सौधर्म आदि युगलों में जघन्य व उत्कृष्ट आयु	४५६
५३३–५४१	घातायुष्क सम्यग्दृष्टि की प्रत्येक पटल में उत्कृष्ट आयु	४५७
५३४–५४०	लौकान्तिक देवों के अवस्थान, नाम, संख्या, विशेष स्वरूप	४६१
५४१, ५४३	घातायुष्क सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि की आयु में विशेषता	४६५
५४२	देवांगनाओं की आयु	४६५
५४३–५४४	देवों का उत्सेध, उच्छ्वास काल व आहार काल	४६६
५४५–५४७	कौन जीव किस स्वर्ग तक उत्पन्न हो सकता है	४६८
५४८	देवगति से च्यवकर निर्वाण को जाने वाले	४७०
५४९	मनुष्य, तिर्यंच और भवनत्रिक से आनेवाले त्रेसठ शलाका पुरुष नहीं होते	४७१
५५०–५५३	देवों की उत्पत्ति स्थान तथा उत्पन्न होने के अनंतर कार्य	४७१
५५४	कल्पवासी देव जिनेन्द्र महापूजा तथा पंचकल्याणकों में जाते हैं किन्तु अहमिन्द्र अपने स्थान पर ही नमस्कार करते हैं	४७३
५५५	देव सम्पत्ति किन जीवों को प्राप्त होती है	४७३
५५६–५५८	अष्टम पृथिवी, सिद्ध शिला व सिद्ध क्षेत्र	४७४
५५९–५६०	सिद्धों का सुख	४७५

४. वैमानिक लोकाधिकार समाप्त

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
	नरतिर्यंग्लोकाधिकार ६	४७७–
	नोट—[द्वीप समुद्रों की संख्या, नाम, विस्तार, आकार, सूची व्यास, वलयव्यास, परिधि, क्षेत्रफल, समुद्र जल का स्वाद तथा मत्स सहित या रहित, मत्स्यों की अवगाहना, मानुषोत्तर पर्वत व स्वयंप्रभ पर्वत, एकेन्द्रिय आदि जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना, उनका क्षेत्रफल, विभिन्न तिर्यंचों की उत्कृष्ट व जघन्य आयु तथा वेद के कथन के लिये गाथा ३०४–३३१ देखना चाहिये। द्वीप समुद्रों की संख्या का विशेष कथन गा० ३५२–३६० । जम्बूद्वीपस्थ भरतादि क्षेत्र व पर्वतों की शलाका गा० ३७१]	
५६१-५६२	नर तिर्यंग्लोक में स्थित ४५८ जिन मंदिरों को नमस्कार	४७७
५६३	५ मेरु गिरि	४७९
५६४-५७७	एक मेरु सम्बन्धी ७ क्षेत्र, ६ कुलाचल पर्वत तथा उन पर सरोवर, उन सरोवरों में कमल, कमलों पर देवियां व परिवार देव	४८०
५७८-५८१	महा नदियों के नाम, उभय तट, किस सरोवर से निकली है	४८१
५८२-५९६	गंगा नदी की उत्पत्ति आदि का विशेष कथन	४९३
५९७	सिन्धु नदी	५०१
५९८-६०२	शेष बारह नदियों का तथा तत् सम्बन्धित कुलाचल व सरोवरों, तोरण द्वार आदि का विस्तार आदि	५०२
६०३-६०४	शलाकाओं द्वारा वर्ष (क्षेत्र) वर्षधरों के विस्तार का कथन (गा० ३७१ भी देखनी चाहिये)	५०८
६०५	विदेह क्षेत्र स्थित नगर, वक्षारगिरि, विभंगा नदी, देवारण्यादि वनों की लम्बाई	५१०
६०६-६०८	विदेह क्षेत्र स्थित मन्दरगिरि, उस पर वन व वृक्षों का कथन	५१०
६०९-६१३	अन्य चार मेरु तथा तत् स्थित वन आदि के विस्तार आदि का कथन	५१३
६१४-६१६	चित्रा पृथ्वी के तल में मेरु का व्यास, तथा नन्दन सौमनस आदि का व्यास तथा वहां पर मेरु की ऊंचाई, हानिचय का कथन	५१६
६१७	पांचों क्षुल्लक मेरु पर्वतों का हानिचय तथा विस्तार आदि	५२१
६१८	पांचों मेरु की चूलिका	५२३
६१९-६२३	नन्दन, सौमनस और पाण्डुक वनों में स्थित भवनों के नाम, भवनों के स्वामी देव और उनकी देवांगना, आयु आदि, उन देव सम्बन्धित कल्पविमान	५२४
६२४-६३३	नंदन वन में कूट और उन पर रहने वाले व्यन्तर देव, तथा कुमारियां तथा वन में स्थित वापियां और बावड़ियों में प्रासाद	५२६

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
६३३-६३७	मेरु शिखर पर स्थित पांडुक शिलाओं के नाम व स्थान, किस क्षेत्र से सम्बन्धित हैं तथा शिलाओं का विन्यास व आकृति, सिंहासनों के स्वामी तथा सिंहासनों का विस्तार	५३०
६३८	पर्वत कूट आदि की विशेषता	५३३
६३९-६४०	जम्बूवृक्ष के स्थानादिक व परिकर	५३४
६४१-६४२	शाल्मली वृक्ष	५३८
६४३	भोगभूमि और कर्म भूमि का विभाग	५३९
६४४-६४५	यमकगिरि के स्थान, आकार, नाम तथा अन्तराल	५४०
६४६-६४९	मेरु पर्वत चारों दिशाओं में यमकगिरि पर्वतों से पांचसौ योजन दूर स्थित द्रह और उनके तट पर स्थित काञ्चन शैलों की संख्या व विस्तार	५४१
६५०	द्रहों से आगे नदी का गमन का प्रमाण तथा तटों पर स्थित पर्वतों व सरोवरों का कथन	५४३
६५१-६५२	दिग्गज पर्वतों का स्थान तथा विस्तार आदि	५४४
६५३-६५४	गजदन्त पर्वतों के नाम आदि	५४५
६५५-६७१	विदेह के देशों का विभाग तथा वक्षार पर्वतों व विभंगा नदियों के नाम आदि पर्वतों पर देव	५४६
६७२-६७३	देवारण्य वनों का स्थान वनमें वृक्ष सरोवर आदि	५५०
६७४-६७६	विदेह देशों के ग्रामादि का लक्षण व विस्तार आदि	५५१
६७७	विदेह देशों में स्थित उपसमुद्रों के अभ्यन्तर द्वीपों का कथन	५५२
६७८	मागध आदि तीन देवों के द्वीपों का कथन	५५३
६७९-६८०	विदेह क्षेत्र गत वर्षादि	५५३
६८१	पंचमेरु सम्बन्धी तीर्थंकर चक्रवर्ती, अर्धचक्री की उत्कृष्ट संख्या	५५४
६८२	चक्रवर्ती की सम्पदा	५५५
६८३-६८५	राजाधिराज आदि राजाओं के लक्षण	५५६
६८६	तीर्थंकर का विशेष स्वरूप	५५७
६८७-६९४	विदेह देशों के नाम तथा उनमें खण्ड विभाजन तथा विभाजन करने वाले विजयार्ध पर्वत व नदियां व विजयार्ध की दो श्रेणियां	५५७
६९५-७०९	विदेह स्थित विजयार्ध की दक्षिण उत्तर श्रेणी पर स्थित नगरों की संख्या व नाम व कोट आदि	५६२

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
६३३-६३७	मेरु शिखर पर स्थित पांडुक शिलाओं के नाम व स्थान, किस क्षेत्र से सम्बन्धित हैं तथा शिलाओं का विन्यास व आकृति, सिंहासनों के स्वामी तथा सिंहासनों का विस्तार	५३०
६३८	पर्वत कूट आदि की विशेषता	५३३
६३९-६५०	जम्बूवृक्ष के स्थानादिक व परिकर	५३४
६५१-६५२	शाल्मली वृक्ष	५३८
६५३	भोगभूमि और कर्म भूमि का विभाग	५३९
६५४-६५५	यमकगिरि के स्थान, आकार, नाम तथा अन्तराल	५४०
६५६-६५९	मेरु पर्वत चारों दिशाओं में यमकगिरि पर्वतों से पांचसौ योजन दूर स्थित द्रह और उनके तट पर स्थित काञ्चन शैलों की संख्या व विस्तार	५४१
६६०	द्रहों से आगे नदी का गमन का प्रमाण तथा तटों पर स्थित पर्वतों व सरोवरों का कथन	५४३
६६१-६६२	दिग्गज पर्वतों का स्थान तथा विस्तार आदि	५४४
६६३-६६४	गजदन्त पर्वतों के नाम आदि	५४५
६६५-६७१	विदेह के देशों का विभाग तथा वक्षार पर्वतों व विभंगा नदियों के नाम आदि पर्वतों पर देव	५४६
६७२-६७३	देवारण्य वनों का स्थान वनमें वृक्ष सरोवर आदि	५५०
६७४-६७६	विदेह देशों के ग्रामादि का लक्षण व विस्तार आदि	५५१
६७७	विदेह देशों में स्थित उपसमुद्रों के अभ्यन्तर द्वीपों का कथन	५५२
६७८	मागध आदि तीन देवों के द्वीपों का कथन	५५३
६७९-६८०	विदेह क्षेत्र गत वर्षादि	५५३
६८१	पंचमेरु सम्बन्धी तीर्थंकर चक्रवर्ती, अर्धचक्री की उत्कृष्ट संख्या	५५४
६८२	चक्रवर्ती की सम्पदा	५५५
६८३-६८५	राजाधिराज आदि राजाओं के लक्षण	५५६
६८६	तीर्थंकर का विशेष स्वरूप	५५७
६८७-६९४	विदेह क्षेत्रों के नाम तथा उनमें खण्ड विभाजन तथा विभाजन करने वाले विजयार्ध पर्वत व नदियां व विजयार्ध की दो श्रेणियां	५५७
६९५-७०९	विदेह स्थित विजयार्ध की दक्षिण उत्तर श्रेणी पर स्थित नगरों की संख्या व नाम व कोट आदि	५६१

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
७१०–७१७	विदेह की नगरियों के मध्य म्लेच्छ खण्ड के मध्य में स्थित, वृषभाचल पर्वत, तथा आर्यखण्डों की राजधानियां व उनके नाम व विशेष स्वरूप	५६६
७१८–७१९	नाभिगिरि पर्वतों के स्थान व उत्सेध आदि	५६९
७२०–७३०	हिमवन् आदि कुलाचल और विजयार्धों पर स्थित कूटों की संख्या, आकार व नाम आदि	५७१
७३१	पर्वत, कुण्ड, ह्रद, नदियों आदि पर वेदिकाओं की संख्या	५७५
७३२–७३६	भरत ऐरावत क्षेत्र के विजयार्धों के कूटों और उन पर अवस्थित देव तथा जिनालय के उदय, व्यास और लम्बाई	५७७
७३७–७४४	गजदन्त व वक्षार पर्वतों पर स्थित कूटों की संख्या व नामादि	५७९
७४५–७४६	वक्षार पर्वतों की ऊँचाई, उन पर अकृत्रिम चैत्यालय तथा कूटों की ऊँचाई	५८४
७४७–७५०	भरतादि क्षेत्रों में परिवार नदियों की संख्या	५८५
७५१–७५३	विदेह क्षेत्र में स्थित मेरु, नगर, वन, पर्वतों, नदियों आदि का व्यास	५८६
७५४–७५५	धातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीपों में मेरु व भद्रशाल वनों का विदेह देशों का व्यास	५९१
७५६–७५७	ढाई द्वीपों के गजदन्त पर्वतों का आयाम	५९२
७५८–७६६	कुरुक्षेत्र की जीवा, चाप, बाण, तथा वृत्त-विष्कम्भ, क्षेत्रफल	५९३
७६७–७६८	दक्षिण भरत, विजयार्ध, उत्तर भरतक्षेत्र, हिमवन् आदि पर्वतों तथा हैमवत आदि क्षेत्रों के बाण का प्रमाण	६०३
७६९–७७७	दक्षिण भरतादि क्षेत्र और पर्वतों की जीवा व धनुष का प्रमाण	६०६
७७८	चूलिका व पार्श्वभुजा का लक्षण व प्रमाण	६११
७७९–७८५	भरतैरावत क्षेत्रों में छह कालों का कथन	
७८६–७९१	भोग भूमि व कल्प वृक्ष आदि का कथन	६२२
७९२–८०२	कर्म भूमि प्रवेश, कुलकरों का स्वरूप, उत्सेध, आयु, परस्पर अन्तरकाल, दण्ड-विधान व उनके कार्यों का कथन	६२५
८०३	चतुर्थकाल में शलाका पुरुषों की गणना	
८०४–८१३	तीर्थंकरों की अवगाहना, आयु, परस्पर अन्तर काल तथा तीर्थंकाल	६३४
८१४	जिनधर्म का उच्छेद काल	६३५
८१५–८२४	बारह चक्रियों के नाम, वर्तना काल, वर्ण, उत्सेध, आयु, नवनिधि, चौदह रत्न, किस गति को प्राप्त हुए	६४०

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
८२५–८३३	नारायणों के नाम, उनके आयुध, बलभद्र के आयुध, उनका वर्तनाकाल, बलदेव व प्रतिनारायण के नाम तीनों का उत्सेध, आयु, गति	६४६
८३४–८३५	नारदों का नाम आदि	६५०
८३६–८४१	रुद्रों के नाम व संख्या, वर्तनाकाल, उत्सेध, आयु, गति तथा विशेष स्वरूप	६५१
८४२–८४६	चक्री, अर्ध चक्री व रुद्रों का वर्तनाकाल	६५५
८४७–८४९	तीर्थंकरों का वर्ण व वंश आदि	६६०
८५०–८६१	शक राजा और कल्कि राजा की उत्पत्ति व कार्य तथा अन्तिम कल्कि का स्वरूप	६६१
८६२–८६३	पंचम काल के अन्त में अग्नि आदि का नाश, मनुष्यों की गति आगति	६६५
८६४–८६७	अति दुःषमा छठा काल के अन्त का कथन तथा प्रलय	६६६
८६८–८७०	उत्सर्पिणी काल का प्रवेश	६६७
८७१–८७२	उत्सर्पिणी के दूसरे काल के अन्त में कुलकरों का कथन तथा तीसरे दुषमा-सुषमा काल का प्रारम्भ	६६८
८७३–८७६	उत्सर्पिणी के तीसरे काल के २४ तीर्थंकरों के नाम, प्रथम व अन्तिम तीर्थंकर की आयु व उत्सेध	६७०
८७७–८८०	उत्सर्पिणी काल के चक्रवर्ती, अर्धचक्री, बलदेव के नाम	६७१
८८१	उत्सर्पिणी के चतुर्थादि कालों में भोगभूमि	६७२
८८२	देवकुरु उत्तरकुरु में प्रथम काल, हरि, रम्यक क्षेत्र में दूसरा काल हैमवत हैरण्यवत में तीसरा काल, विदेह मे चतुर्थकाल	६७३
८८३	भरतैरावत के म्लेच्छ खण्डों में विद्याधरों की श्रेणियों में पंचम काल के आदि से अन्त पर्यन्त	६७३
८८४	देवों में प्रथम काल सदृश, नरकों में छठवें काल सदृश, मनुष्य और तिर्यंचों में छहों काल, अर्ध स्वयंभू रमण द्वीप और सम्पूर्ण स्वयंभूरमण समुद्रमें पंचमकाल सदृश वर्तना है	६७४
८८५–८९५	सर्व द्वीप और समुद्रों के अन्त में परिधि स्वरूप प्रकार व वेदिका, वन प्रासाद, वापिका, दरवाजे	६७५
८९६–९२४	**लवण समुद्र**	६८०
८९६–९००	लवण में स्थित पातालों के नाम, स्थान, संख्या, परिमाण, जल और वायु का प्रवर्तन, समुद्र के जल की ऊँचाई में हानि वृद्धि ।	६८०

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
९०१	जम्बूद्वीपस्थ चन्द्र सूर्य से समुद्र जल का अन्तर	६८६
९०२	पातालों का अन्तर	६९०
९०३–९०४	लवण समुद्र के प्रतिपालक नागकुमार देवों की संख्या अवस्थान, व्यास	६९२
९०५–९०८	दिग्गत पातालों के पार्श्वभागों में स्थित पर्वत और उन पर रहनेवाले देवों का कथन	६९३
९०९–९११	लवण समुद्र के अभ्यन्तर देवों के द्वीप	६९५
९१२–९१५	लवणसमुद्र व कालोदक समुद्र में कुमानुषों के ९६ द्वीप, तटों से उन द्वीपों का अन्तर, द्वीपों का विस्तार व ऊंचाई	६९६
९१६–९२०	कुभोग भूमि के मनुष्यों की आकृति और रहने के स्थान	७०२
९२१	९६ द्वीपों की संख्या का विशेष विवरण	७०४
९२२–९२४	कुभोग भूमि में उपजने के कारण	
९२५–९३६	**धातुकी खण्ड व पुष्करार्ध**	
९२५–९२७	इष्वाकार व कुलाचल आदि पर्वत व नदी आदि का कथन	७०७
९२८–९२९	क्षेत्रों के आकार, विष्कंभ आदि	७०९
९३०–९३३	विदेह क्षेत्र के कच्छादिक देशों का, पर्वतों का, नदियों का व वनों का आयाम आदि	७१७
९३४	धातकी वृक्ष व पुष्कर वृक्ष	७२७
९३५	गंगा आदि नदियों का पर्वत पर बहने का प्रमाण	७२७
९३६	मध्य लोक के सर्व पर्वतों का अवगाध	७२८
९३७–९४२	**मानुषोत्तर पर्वत**	
९३७–९३९	मानुषोत्तर पर्वत का स्वरूप	७२९
९३८–९४१	मानुषोत्तर पर्वत पर स्थित कूट	७२९
९४२	मानुषोत्तर पर्वत का व्यास, अवगाध	७३१
	ढाई द्वीप से बाहर	
९४३–९६०	कुण्डल गिरि व रुचक गिरि तथा उनके कूट तथा उन पर रहने वाली देवांगनाओं का कार्य	७३२
९६१–९६५	द्वीप व समुद्रों के स्वामी देव	७४०
९६६–९७७	नन्दीश्वर द्वीप का विशेष कथन	७४२
९७८–१०१४	अकृत्रिम चैत्यालयों का विशेष कथन	७४९

गाथा सं०	विषय	पृष्ठ सं०
१००९	अरहन्त प्रतिमा और सिद्ध प्रतिमा में अन्तर	७५९
१०१५-१०१८	मूलग्रंथकार का वक्तव्य	७९६
१.२	संस्कृत टीकाकार का वक्तव्य	७९८
१.२१	हिन्दी टीकाकर्त्री की प्रशस्ति	७९९

परिशिष्ट खण्ड

परिशिष्ट : १ करण सूत्र

पृष्ठ १ से ३

१ व्यास व परिधि का अनुपात व वृत्ताकार का क्षेत्रफल
२ गेंद आदि गोल वस्तु का घनफल
३ शिखा का घनफल
४ चय प्राप्त करना
५ विषम चतुर्भुज का क्षेत्रफल
६ मुख व भूमि प्राप्त करना
७ पदधन निकालना
८ बिलों का सङ्कलित धन
९ उत्तरोत्तर समान गुणाकार पदों का सङ्कलित धन
१० वलय व्यास व सूची व्यास
११ शंखावर्त का घनफल
१२ चय द्वारा विवक्षित पद प्राप्त करना
१३ धनुषाकार क्षेत्र के बाण, जीवा, धनुष, वृत्तविष्कम्भ व क्षेत्रफल
१४ हिमवद् पर्वत आदि पर्वतों व क्षेत्र का बाण

परिशिष्ट : २ नियम सूची

पृष्ठ ४-५

१ सम व विषम वर्गशलाका का अर्ध व चौथाई घन
२ वर्गराशि की वर्गशलाका व अर्धच्छेद
३ वर्गराशि व घन राशि के गुणाकार व भागाहार
४ हार का हार
५ गुणनफल व भाजफल के अर्धच्छेद
६ वर्गित समुवर्गित राशि के अर्धच्छेद व वर्गशलाका
७ अधिक अर्धच्छेद व हीन अर्धच्छेद

ॐ

❁ श्रीनेमिचन्द्राय नमः ❁

श्रीमन्नेमिचन्द्राचार्यविरचितः

त्रिलोकसारः

श्रीमन्माधवचन्द्राचार्यविरचिता संस्कृतटीका

त्रिभुवनचन्द्रजिनेन्द्रं भक्त्यानत्य त्रिलोकसारस्य ।
वृत्तिरियं किञ्चिज्ज्ञप्रबोधनाय प्रकाश्यते विधिना ॥ १ ॥

जीयादकलङ्काद्यस्सूरिर्गुणभूरिरतुलरूपधारी ।
अनवरतविनतजिनमतविरोधिवादिव्रजो जगति ॥ २ ॥

यस्मादखिलबुधानां विस्मयकृदभूत् प्रवृत्तिरिह यस्य ।
तच्छासनमपनुदतादनघं घनकुमततिमिरनिवहमतः ॥ ३ ॥

श्रीमदप्रतिहताप्रतिमनिःप्रतिपक्षनिःकरण-निःक्रमकेवलज्ञानतृतीयलोचनावलोकितसकलपदार्थेन[1] संरक्षितामरेन्द्रनरेन्द्रमुनीन्द्रादिसार्थेन[2] तीर्थंकरपुण्यमहिमावष्टम्भसम्भूतसमवसरणप्रातिहार्यातिशयादिबहिरङ्गलक्ष्मीविशेषेण निर्मूलीकृताष्टादशदोषेण सर्वाङ्गसमालिङ्गितानन्तचतुष्टयादिगुणगणात्मकान्तरंगलक्ष्मीप्रकटितपरमात्मप्रभावेण श्रीवर्धमानतीर्थंकरपरमदेवेन सर्वभाषास्वभाव[3]दिव्यभाषाभाषितार्थं सप्तर्द्धिसमृद्धगौतमस्वामिना विश्वविद्यापरमेश्वरेण श्रुतकेवलिना विरचिताक्षररचनाविशेषं तदर्थज्ञानविज्ञानसम्पन्नवर्ज्यभीरुगुरुपर्वक्रमेणा[4]व्युच्छिन्नतया प्रवर्तमानमविनष्टसूत्रार्थत्वेन केवलज्ञानसमानं करणानुयोगनामानं परमागमं कालानुरोधेन संक्षिप्य निरूपयितुकामो भगवान्नेमिचन्द्रसैद्धान्तदेवश्चतुरनुयोगचतुरुदधिपारगश्चामुण्डरायप्रतिबोधनव्याजेनाशेषविनेयजनप्रतिबोधनार्थं त्रिलोकसारनामानं ग्रन्थमारचयन् तदादौ निर्विघ्नतः शास्त्रपरिसमाप्त्यादिकं फलकुलमवलोक्य विशिष्टेष्टदेवतामभिष्टौति—

---

१ लोचनालोकितसकलपदार्थसार्थेन (ब०, प०) । २ मुनीन्द्रादिभव्यसार्थेन (ब०, प०) । ३ सर्वभाषास्वभावास्वभाव (प०) । ४ तदनुज्ञानविज्ञानसम्पन्नपापवर्ज्यगुरुपूर्वक्रमेण (प०) । तदनुज्ञानविज्ञानसम्पन्नवर्ज्यभीरुगुरुपर्व्वक्रमेण (ब०) ।

❁ हिन्दी टीकाकार का मङ्गलाचरण ❁

श्रीमत्पार्श्वजिनेन्द्रपादयुगलं, वाणीं जिनास्योद्गतां
सूरीन् श्रीवरवन्दनीयचरणान् श्रीनेमिचन्द्रादिकान् ।
शान्तिं वीरमहाम्बुधिं शिवयतिं, ज्ञानोदधिं सन्मतिं
धर्माब्धिं अजितं महागुणयुतं भव्यावलीसंनुतम् ॥१॥

नत्वा शुद्धहृदा महर्षिनिचयं भव्यौघमोहच्छिदे
टीकां मन्दजनप्रबोधजननीं, त्रैलोक्यसारस्य वै ।
कुर्वेऽहं शिवसूरिभूरि कृपया, प्राप्तार्यिकासद्व्रता
संत्राता श्रुतसागरेण मुनिना ह्याचार्यकल्पेन च ॥२॥

गुरूणां कृपया सैषा, विशुद्धमतिसंज्ञिता ।
प्रारब्धकार्यनिर्वाह दीक्षादक्षा भवत्वरम् ॥३॥

❁ हिन्दी भाषानुवाद ❁

सर्व प्रथम ग्रन्थ के प्रारम्भ में श्रीमन्नेमिचन्द्राचार्यविरचित प्राकृत गाथाबद्ध श्री त्रिलोकसार नामक ग्रन्थ की संस्कृत टीका के रचयिता श्रीमन्माधवचन्द्राचार्य मङ्गलाचरण करते हुए कहते हैं—

तीनों लोकों को चन्द्रमाके समान आह्लादक श्री जिनेन्द्र भगवान् को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अल्पज्ञों के ज्ञानके लिए विधिपूर्वक त्रिलोकसार की यह टीका मेरे द्वारा प्रकट की जाती है—रची जाती है ॥१॥

गुणों से परिपूर्ण, अनुपम धर्म के धारक तथा जिनमतके विरोधी वादियों के समूह को निरन्तर नम्रीभूत करने वाले श्री अकलङ्क आदि आचार्य जयवन्त हों ॥ २ ॥

यतः इस जगत् में जिसकी प्रवृत्ति समस्त विद्वज्जनों को आश्चर्य उत्पन्न करने वाली हुई थी अतः वह निष्कलंक जिनशासन मिथ्यामतरूपी सघन अन्धकार के समूह को नष्ट करे ॥ ३ ॥

इस युग के अन्तिम तीर्थप्रवर्तक श्री भगवान् वर्धमान स्वामी हैं। उन्होंने श्रीसम्पन्न, निर्बाध, अनुपम, विरोधरहित, इन्द्रियादि की सहायता से रहित तथा युगपत् प्रवर्तने वाले केवलज्ञान रूपी तृतीय नेत्र के द्वारा समस्त पदार्थों के समूह को देख लिया था। वे देवेन्द्र, नरेन्द्र और मुनीन्द्र आदि के समूह के संरक्षक थे। तीर्थङ्कर नामक पुण्य प्रकृति की महिमा के अवलम्बन से प्रकट होने वाले समवसरण, अष्टप्रातिहार्य तथा अनेक अतिशयरूप बहिरङ्ग लक्ष्मी से विशिष्ट थे। उन्होंने जन्म जरा मरण आदि

---

१ श्री श्रुतसागर जी

अठारह दोषों को नष्ट कर दिया था और आत्मा के समस्त प्रदेशों में प्रकट होने वाले अनन्तचतुष्टयादि गुण समूहरूप अन्तरङ्ग लक्ष्मी के कारण उनके परमात्मपद का प्रभाव प्रकट हुआ था। ऐसे श्रीवर्धमान तीर्थंकर परमदेव ने सर्व भाषारूप परिणमन करने वाली दिव्यध्वनि के द्वारा जिस करणानुयोग नामक परमागम का अर्थरूप से निरूपण किया था, उसकी शब्द रचना सप्त ऋद्धियों से युक्त तथा समस्त विद्याओं के परमेश्वर श्रुतकेवली गौतम स्वामी ने की थी। तदनंतर ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न निष्पाप गुरुओं की परम्परा से वह आज तक अव्युच्छिन्न रूप से चला आ रहा है। जिस अर्थ का निरूपण श्री वीतराग सर्वज्ञ वर्धमान स्वामी ने किया था उसी अर्थ के विद्यमान रहने से वह—करणानुयोग परमागम केवलज्ञान के समान है, परन्तु अवसर्पिणी काल के प्रभाव से लोगों की बुद्धि कम हो गई है इसलिये चारों अनुयोग रूपी शास्त्र समुद्र के पारगामी भगवान् नेमिचन्द्र सैद्धान्तदेव, उस करणानुयोग नामक परमागम का संक्षेप से वर्णन करना चाहते हैं। वे अपने शिष्य चामुण्डराय को प्रतिबुद्ध करने के बहाने समस्त शिष्यों को समझाने के लिये त्रिलोकसार नामक ग्रन्थ की रचना करते हुये ग्रन्थ के प्रारम्भ में निर्विघ्न रूप से शास्त्र समाप्ति आदि फल समूह का विचार कर मङ्गलाचरण के रूपमें विशिष्ट इष्ट देवता का स्तवन करते हैं—

बलगोविंदसिहामणिकिरणकलावरुणचरणणहकिरणं ।
विमलयरणेमिचंदं तिहुवणचंदं णमंसामि ॥ १ ॥

बलगोविन्दशिखामणिकिरणकलापारुणचरणनखकिरणम् ।
विमलतरनेमिचन्द्रं त्रिभुवनचन्द्रं नमस्यामि ॥ १ ॥

अस्यार्थः कथ्यते । णमंसामि नमस्यामि नमस्करोमि । कं ? विमलयरणेमिचंदं विमलतरनेमिचन्द्रं, विगतं[1] मलं द्रव्यभावात्मकं आत्मगुणघातिकर्म[2] देहधातवो[3] वा यस्मादसौ विमलः स्वयं विशुद्धैश्वर्यस्य परमकाष्ठामधिष्ठितः स्वसन्धेयामस्यामाश्रितानां कर्ममलक्षालनहेतुत्वातिशयेन विमलो विमलतरः । अनेनापायातिशयः प्रकाशितः । नेमिचन्द्रो द्वाविंशतीर्थंकरपरमदेवः[4] विमलतरनेमिचन्द्रस्तं[5] । कथंभूतम् ? 'त्रिभुवनचन्द्रं' त्रिभुवनानां चन्द्र इव चन्द्रः प्रकाशकस्तं त्रिलोकानां स्वरूपोपदेशकं तत्स्वरूपपरिच्छेदकं चेत्यर्थः । एतेन वागतिशयः प्राप्त्यतिशयो[6] वा प्रतिपादितः । प्रकृतोचितं चैतद्विशेषणं[7] । त्रयाणां भुवनानां स्वरूपनिरूपणे बद्धव्यवसायस्याचार्यस्य शब्दज्योतिषा ज्ञानज्योतिषा च तत्स्वरूपप्रकाशकस्यैव नमस्कारकरणं समुचितमेवेति । पुनरपि कथंभूतं ? 'बलगोविन्दशिखामणिकिरणकलापारुणचरणनखकिरणं'[8] निजपादपद्मावनतपद्मपद्मनाभमुकुटाग्रस्थ-

---

१ विगतं विनष्टं (ब०, प०)। २ आत्मगुणघातकं कर्म (ब०, प०)। ३ देहमलधातवो (ब०, प०)। ४ द्वाविंशस्तीर्थंकरपरमदेवः (ब०, प०)। ५ विमलतरश्चासौ नेमिचन्द्रस्तं (ब०, प०)। ६ प्राप्त्यतिशयो वा (ज्ञानातिशयो वा टि० ब०)। ७ चैतद्विशेषणं (ब०, प०)। ८ बलगोविन्दसिहामणिकिरणकलावरुणचरणणहकिरणं (ब०, प०)।

पद्मरागमणिमरीचिजालबालातपमञ्जरीपिञ्जरितपदकञ्जनखमरीचिपुञ्जमित्यर्थः । अनेन भगवतः पूजातिशयः शेषातिशयाविनाभावी निवेदितः । अत्रोपयोगी श्लोकः—

अपायप्राप्तिवाक्पूजा विहारास्त्याधिका तनु[1] ।
प्रवृत्तय इति ख्याता जिनस्यातिशया इमे ॥

अथवा नमस्यामि नमामि । कं ? विमलतरनेमिचन्द्रं, नेमिश्चक्रधारा नेमिरिव नेमिः धर्मरथप्रवर्तकत्वात् । चन्दयत्याह्लादयति भव्यजन[2]नयनमनांसीति चन्द्रः इन्द्राद्यसंभविरूपातिशयसम्पन्न[3] इत्यर्थः । नेमिश्चासौ चन्द्रश्च नेमिचन्द्रः विमलतरश्चासौ नेमिचन्द्रश्च विमलतरनेमिचन्द्रः । अथवा यथावस्थितमर्थं नयति परिच्छिनत्तीति नेमिर्बोधः विगतं मलमज्ञानं यस्मादसौ विमलः अतिशयेन विमलो विमलतरः विमलतरश्चासौ नेमिश्च विमलतरनेमिः सकलविमलकेवलज्ञानमिति यावत् तेनोपलक्षितश्चन्द्रो विमलतरनेमिचन्द्रः । अथवा विमलतरा रत्नत्रयपवित्रात्मानस्ते एव नेमयो नक्षत्राणि तेषां चन्द्र इव चन्द्रः स्वामी तं विमलतरनेमिचंद्रमंतिमतीर्थंकरस्वामिनं चतुर्विंशतितीर्थंकर समुदायं वेत्यर्थः । किं विशिष्टं । त्रिभुवनचंद्रं । त्रिभुवनशब्देनात्र त्रिभुवनस्था विनेया ग्राह्याः तेषां चंद्र इव चंद्रः अज्ञानतमोविनाशकस्तं । भूयः किं भूतं[4] । 'बल-किरणं' बलं जम्बूद्वीपपरावर्तनलक्षणं सत्वं[5] अतीन्द्रादिकं देवसैन्यं अतिमनोहरं रूपं वा विद्यते अस्येति बलः अत्रोपयोगी श्लोक : –

बलं शक्तिर्बलं सैन्यं बलं स्थौल्यं बलो बलः ।
बलं रूपं बलो दैत्यो बलः काको बलो बलः ॥

गां स्वर्गं विदति पालयतीति गोविन्दो देवेंद्रः बलश्चासौ गोविन्दश्च बलगोविन्दः तस्य शिखेत्यादि शब्दार्थः सुबोधः । भक्तिभरविनतशतमखप्रमुखनिखिललेखशिखामणिमयूखमालारुणीकृतचरणनखकिरणमित्तितात्पर्यार्थः । अथवा । णमंसामि । कं ? 'विमलयरणेमिचंदं' पञ्चविंशतिमलरहितसम्यक्त्वसमन्वितत्वाद्विशुद्धज्ञानसमृद्धत्वान्निरतिचारचारित्रपवित्रीभूतत्वाद्वा विमलतरः स चासौ नेमिचंद्राचार्यश्च विमलतरनेमिचंद्रस्तं नमस्यामीति चामुण्डराय: स्वगुरुनमस्कारपूर्वकं शास्त्रमिदं प्रारभते । कथंभूतं तं ? त्रिभुवनचन्द्रं चन्द्र इव चंद्रो धर्मामृतवर्षित्वात् । अथवा चन्द्रं काञ्चन सर्वजनैरादेयत्वात् । त्रिभुवनानां चन्द्रस्त्रिभुवनचंद्रस्तं । पुनरपि कथंभूतं ? बलकिरणं, बलं ग्रासप्ततिनियोग[6]वर्तनलक्षणं हस्त्यादिकं वा अस्येति बलश्चामुण्डरायः गां पृथ्वीं विदति पालयतीति गोविन्दो राचमल्लदेवः[7] बलश्च गोविन्दश्च बालगोविन्दौ तयोः शिखेत्यादि पूर्ववत् ॥ १ ॥

---

१ अभीहितवृत्त्या कायवाङ्मनसां व्यापार: (ब०–टि०) २ त्रिभुवनभव्यजन (ब०, प०) । ३ सम्पन्नमित्यर्थः (ब०, प०) । ४ कथंभूतं (ब० प०) । ५ बलमित्युच्यते (ब०, प०) । ६ विनियोग (प०) । ७ राजमल्लदेव: (ब०, प०) ।

गाथार्थ :—जिनके चरण सम्बन्धी नखों की किरणें बलदेव और नारायण की चूड़ामणि की किरणों के समूह से लाल हो रही हैं, तथा जो तीनलोक सम्बन्धी भव्यजीवों को आनन्दित करने के लिये चन्द्रमा स्वरूप हैं ऐसे अत्यन्त निर्मल श्री नेमिचन्द्र–नेमिनाथनामक बाईसवें तीर्थंङ्कर को मैं (श्री नेमिचन्द्राचार्य) नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

विशेषार्थ :—यहाँ संस्कृत टीकाकार श्री माधवचन्द्र आचार्य ने भगवान् नेमिनाथ के विमलतर विशेषण की व्याख्या करते हुए कहा है कि द्रव्य और भावरूप मल अथवा शरीर सम्बन्धी धातु उपधातुरूप मल नष्ट हो जाने से जो विमल कहलाते हैं और स्वयं विशुद्धि की परम सीमा को प्राप्त हो अपने आश्रित रहने वाले जीवों के कर्ममल का प्रक्षालन करने के कारण जो विमलतर कहलाते हैं, ऐसे विमलतर अर्थात् अत्यन्त निर्मल बाईसवें तीर्थंङ्कर को मैं नमस्कार करता हूँ। इस विमलतर विशेषण से यह सूचित होता है कि वे अपाय–अतिशय अर्थात् बाधक कारणों से रहित हैं। वे बाईसवें तीर्थंङ्कर त्रिभुवनचन्द्र हैं अर्थात् तीन लोक का स्वरूप प्रगट करने के लिये चन्द्रमा के समान प्रकाशमान हैं। अथवा त्रिलोकवर्ती जीवों को हितकारक उपदेश देने से चन्द्रमा के सदृश आह्लाददायी हैं। इस विशेषण से ग्रन्थकर्ता ने उनके वचनरूप अतिशय अथवा प्राप्ति-अतिशय का वर्णन किया है। बलगोविन्द आदि विशेषण से यह सूचित किया है कि उन्हें बलभद्र और नारायण पद के धारक बलदेव और श्रीकृष्ण सदा मस्तक से प्रणाम करते थे तथा प्रणाम करते समय उनके मस्तक पर स्थित पद्मरागमणि की लाल लाल किरणों से उन भगवान् के चरण नख लाल लाल हो जाते थे। इस तरह वे पूजातिशय से सम्पन्न थे। इस सन्दर्भ में जिनेन्द्र भगवान् के अतिशयों का वर्णन करते हुए कहा है—

'अपायप्राप्तिवाक्पूजाविहारास्थायिकातनु-
प्रवृत्तय इति ख्याता जिनस्यातिशया इमे ॥'

अर्थात् अपाय, प्राप्ति, वचन, पूजा, विहार, समवशरण सभा और शरीर की निर्दोष प्रवृत्ति ये अरहन्त भगवान् के अतिशय कहे गये हैं। टीकाकार ने 'विमलतर नेमिचंदं' का एक अर्थ यह भी प्रगट किया है कि भगवान् जिनेन्द्र धर्मरूपी रथ के प्रवर्तक होने से 'नेमि' (चक्र की धारा) हैं और भव्य जीवों के नेत्र और मन को आह्लादित करने से 'चन्द्र' हैं, तथा मल से रहित होने के कारण विमलतर हैं। इस तरह 'विमलतर नेमिचन्द्र' शब्द का अर्थ अत्यन्त निर्मल तीर्थंङ्कररूपी चन्द्रमा होता है। अथवा 'यथावस्थितमर्थं नयति परिच्छिनत्ति इति नेमिः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार नेमि का अर्थ ज्ञान होता है और विमलतर शब्द का अर्थ अत्यन्त निर्मल है 'विमलतरश्चासौ नेमिश्च' इस कर्मधारय समास से 'विमलतर नेमि' का अर्थ अत्यन्त निर्मल केवलज्ञान होता है और 'तेनोपलक्षितः चन्द्रो विमलतर नेमिचन्द्रः' इस समास के द्वारा पूर्ण पद का अर्थ अत्यन्त निर्मल केवलज्ञान से सहित आह्लाददायक होता है। अथवा 'विमलतरा रत्नत्रयपवित्रात्मानः, ते एव नेमयो नक्षत्राणि तेषां चन्द्र इव चन्द्रः स्वामी तम्' इस समास के द्वारा विमलतर चन्द्र का अर्थ अन्तिम तीर्थंङ्कर अथवा चौबीस तीर्थंङ्करों का समूह होता है, क्योंकि जिनकी आत्मा रत्नत्रय से पवित्र है वे विमलतर कहलाते हैं और

नेमि शब्द का अर्थ नक्षत्र होता है, इस तरह जो रत्नत्रय के धारक मुनिरूपी नक्षत्रों के चन्द्र अर्थात् स्वामी हैं ऐसे अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्धमान स्वामी अथवा सामान्य रूप से चौबीसों तीर्थंकरों का समूह ऐसा अर्थ होता है। इस पक्ष में 'त्रिभुवन चन्द्र' शब्द की व्याख्या इस प्रकार है—'त्रिभुवनशब्देनात्र त्रिभुवनस्था विनेया ग्राह्याः तेषां चन्द्र इव अज्ञानतमोविनाशकः तम्' अर्थात् जो तीनों लोकों में स्थित शिष्य जनों के अज्ञानान्धकार को नष्ट करने के लिये चन्द्रमा के समान हैं। बलगोविन्द आदि विशेषण का अर्थ करते हुये बल शब्द का अर्थ 'बलं शक्तिः तैजसं मनोहररूपं वा विद्यते यस्य स बलः' इस विग्रह के द्वारा बल से सहित और गां स्वर्गं विदति—पालयति इति गोविन्दः इस व्युत्पत्ति के अनुसार गोविन्द का अर्थ देवेन्द्र किया है। समुदाय में शक्ति सम्पन्न इन्द्र के चूडामणि की किरणावली से जिनके चरणनख लाल लाल हो रहे हैं, यह अर्थ किया है। भाव यह है कि जो सौ इन्द्रों के द्वारा वन्दनीय हैं।

अथवा टीकाकार श्री माधवचन्द्र आचार्य अपने गुरु श्री नेमिचन्द्र आचार्य को नमस्कार करते हुये कहते हैं कि जो पच्चीस दोषों से रहित सम्यक्त्व, निर्दोष ज्ञान और निरतिचार चारित्र से पवित्र होने के कारण अत्यन्त निर्मल हैं ऐसे नेमिचन्द्र आचार्य को नमस्कार करता हूँ। इस पक्ष में 'त्रिभुवन चन्द्र' विशेषण का अर्थ तीन लोक के जीवों के लिये धर्मामृत की वर्षा करने के कारण चन्द्रमा स्वरूप, होता है। अथवा चन्द्र का अर्थ सुवर्ण भी होता है इसलिये जो तीन लोक के जीवों के लिये सुवर्ण के सदृश उपादेय हैं। बल गोविन्द-आदि विशेषण का अर्थ करते हुये 'बल का अर्थ चामुण्डराय राजा और गोविन्द का अर्थ राचमल्ल किया है, इस तरह चामुण्डराय और राचमल्ल के शिखामणि की किरणों से जिनके चरणनख लाल लाल हो रहे हैं, अर्थात् उनके द्वारा जो निरन्तर वन्दित होते थे ऐसे नेमिचन्द्र आचार्य को मैं (माधवचन्द्र) नमस्कार करता हूँ ॥१॥

अथ प्रथमद्वितीय गाथाद्वयकृतचैत्यचैत्यालयनमस्कारकरणेन नवदेवतानमस्कारं[1] कुर्वन् ग्रन्थस्य पञ्चाधिकारं सूचयन्नाह—

भवणव्वेंतरजोइसविमाणणरतिरियलोयजिणभवणे ।
सव्वामरिंदणरवइसंपूजियवंदिए वंदे ॥ २ ॥

भवनव्यंतरज्योतिर्विमाननरतिर्यग्लोकजिनभवनानि ।
सर्वामरेंद्रनरपतिसंपूजितवंदितानि वंदे ॥ २ ॥

भवण । भवनव्यंतरज्योतिर्विमाननरतिर्यग्लोकजिनभवनानि सर्वामरेंद्रनरपतिसम्पूजित-वंदितानि वंदे ॥ २ ॥

आगे प्रथम और द्वितीय गाथाओं द्वारा किये हुए चैत्य और चैत्यालय के नमस्कार से नव देवताओं को नमस्कार करते हुए ग्रन्थ के पांच अधिकारों की सूचनारूप गाथा कहते हैं :—

---

1 अरहन्तसिद्धसाहूतिदयं जिणधम्मवयणपडिमाओ ।
जिणणिलयं इदि एदे णवदेवा दिंतु मे बोहिं ॥ (ब० टि०)

गाथार्थ :— भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, विमानवासी, मनुष्यलोक और तिर्यग्लोक में देवेन्द्र एवं चक्रवर्ती आदि से पूजित जितने जिनमन्दिर हैं उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

विशेषार्थ :— इस त्रिलोकसार ग्रन्थ में इसी क्रम से भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक, मनुष्यलोक और तिर्यग्लोक इन पांच अधिकारों का वर्णन किया गया है ॥२॥

अथ तानि जिनभवनानि कुत्रेत्याशङ्कायामाह:—

सव्वागासमणंतं तस्स य बहुमज्झदेसभागम्हि ।
लोगोसंखपदेसो जगसेढिघणप्पमाणो हु ॥ ३ ॥

सर्वाकाशमनंतं तस्य च बहुमध्यदेशभागे ।
लोकोऽसंख्यप्रदेशो जगच्छ्रेणिघनप्रमाणो हि ॥ ३ ॥

सव्व । सर्वाकाशमनंतं तस्य च बहुमध्यदेशभागे, बहव: अतिशयिता: रचनीकृता: असंख्याता आकाशस्य[1] मध्यदेशा यस्य स बहुमध्यदेश: स चासौ भागश्च खण्ड: तस्मिन् बहुमध्यदेशभागे । अथवा बहव: अष्टौ गोस्तनाकारा: आकाशस्य मध्यदेशा: मध्यदेशे यस्य स तथोक्तस्तस्मिन् । लोकोऽस्त्यसंख्यप्रदेश: स च जगच्छ्रेणी[2] घनप्रमाण: खलु ॥ ३ ॥

उपर्युक्त जिनभवन कहाँ हैं ? ऐसी शंका होने पर लोक का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :— सर्वाकाश अनन्तप्रदेशी है, और उसके बहुमध्य भाग में असंख्यात प्रदेशी लोक है, जो जगच्छ्रेणी के घनप्रमाण है ॥ ३ ॥

विशेषार्थ :— अनन्तप्रदेशी सर्वाकाश के बहुमध्य भाग में अतिशय रचनारूप जो असंख्यात प्रदेश हैं, वही आकाश के खण्डस्वरूप लोक है । अथवा जो गोस्तनाकार आठ प्रदेश आकाश के मध्य में हैं, वे ही आठ प्रदेश जिसके मध्य में हैं, ऐसे आकाश के खण्ड को लोक कहते हैं । लोक असंख्यात प्रदेशी है और वह निश्चयसे जगच्छ्रेणी के घनप्रमाण है ।

लोक के असंख्यात प्रदेश समसंख्यास्वरूप हैं, अत: एक प्रदेश मध्य न बन कर दो प्रदेशों का मध्य बनता है और लोक घनस्वरूप है, अत: दो प्रदेशों का घन रूप क्षेत्र आठ प्रदेशप्रमाण है। इन गोस्तनाकार आठ प्रदेशों की रचना निम्न प्रकार है :—

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]

---

१ वा आकाशस्य (ब०, प०) ।
२ जगच्छ्रेणी ५ घन ≡ ३४३ प्रमाण: (ब०, प०)

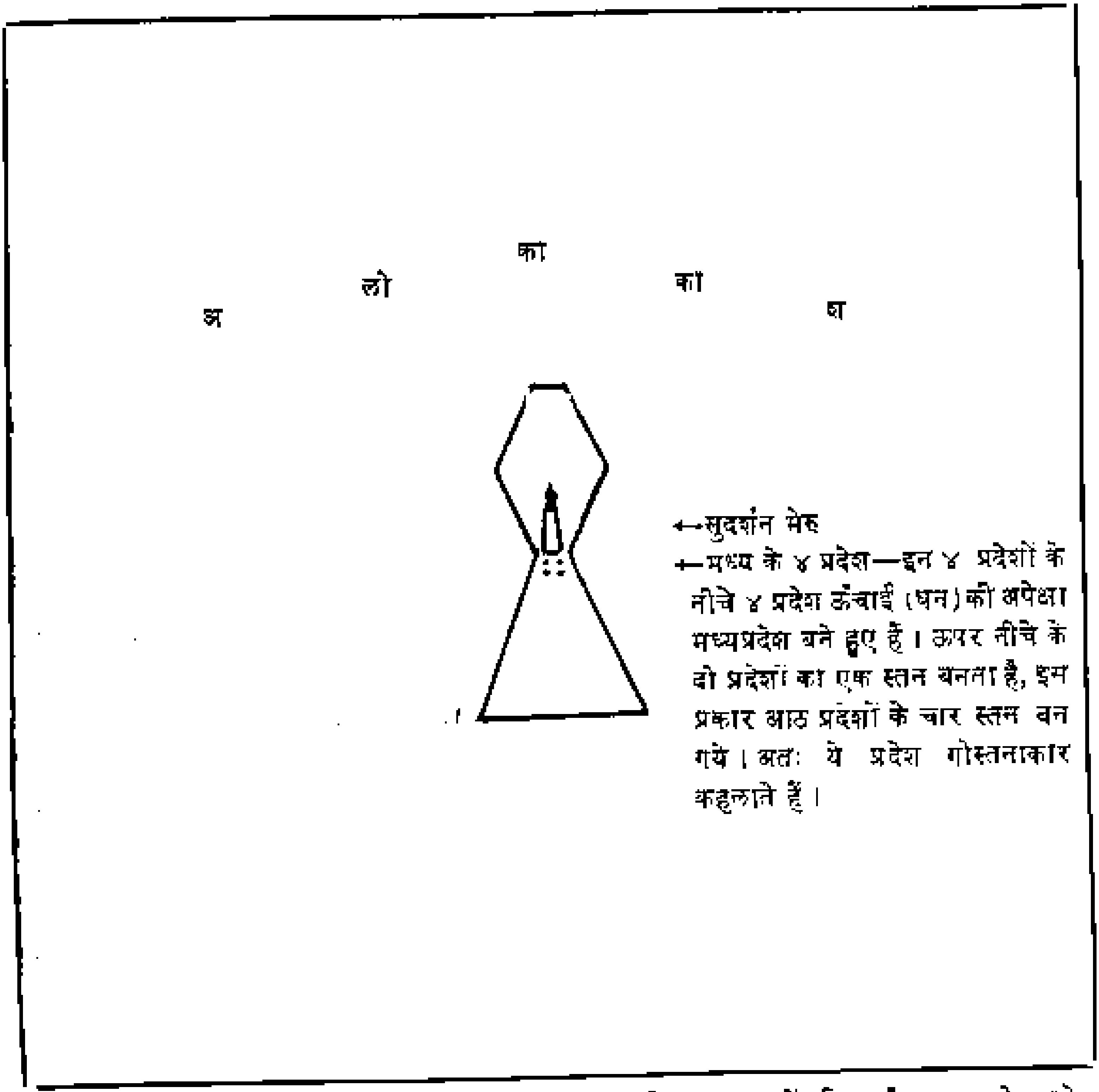

विशेष ज्ञातव्य :—(१) लोकाकाश, अलोकाकाश के मध्य भागमें स्थित है, अतः जो अलोकाकाश के ८ मध्य के प्रदेश हैं, वे ही आठ प्रदेश लोकाकाश के भी मध्य प्रदेश बन जाते हैं, तथा सुदर्शन मेरु के नीचे ठीक मध्य में ये आठ प्रदेश स्थित हैं, अतः सुमेरु का मध्य भी इन आठ प्रदेशों पर ही होता है।

(२) क्षेत्र परिवर्तन का प्रारम्भ गोस्तनाकार इन आठ मध्य के प्रदेशों से होता है। जघन्य अवगाहना वाला सूक्ष्मनिगोदिया जीव अपने आठ मध्य के प्रदेशों को इन आठ मध्य प्रदेशों पर स्थापित कर जन्म लेता है। जितने आकाश प्रदेशों को वह रोकता है, उतनी ही बार अपने आठ मध्य प्रदेशों को इन पर स्थापित कर जन्म लेता है।

(३) इन आठ मध्य प्रदेशों के अवलम्बन से लोकाकाश की चार दिशाओं का व्यवहार होता है।

(४) अरहन्त केवली तेरहवें गुणस्थान के अन्तमें जब केवलिसमुद्घात करते हैं, तब लोक पूर्ण अवस्था में इन आठ मध्य के प्रदेशों पर केवली के आठ मध्य प्रदेश स्थित होकर लोकाकाश को व्याप्त करते हैं।

अथ लोकविप्रतिपत्तिनिरासार्थमाह—

लोगो अकिट्टिमो खलु अणाइणिहणो सहावणिव्वत्तो।
जीवाजीवेहिं फुडो सव्वागासवयवो णिच्चो ॥ ४ ॥

लोकः अकृत्रिमः खलु अनादिनिधनः स्वभावनिर्वृत्तः।
जीवाजीवैः स्फुटः सर्वाकाशावयवः नित्यः ॥ ४ ॥

लोगो। अधिकारागतस्य लोकपदस्य पुनरुपादानं लोकमनूद्य ज्ञापनार्थं। लोकोऽस्तीति। अनेन विशेषणेन शून्यवादनिराकृतिः कृता। अकृत्रिमः खलु, अनेनेश्वरकर्तृकत्वं निराकृतम्। अनादिनिधनः। अनेन सृष्टिसंहार निराकरणं। स्वभावनिर्वृत्तः। अनेन परमाण्वारम्भवादनिराकृतिः। जीवाजीवैः स्फुटः अनेन मायावादिनिराकरणं[1]। सर्वाकाशावयवः। अनेन अलोकाभाववादापहारः। नित्यः। अनेन क्षणिकमतनिरासः। एतावता कथनेन लोक्यत इति लोकः इति षड्द्रव्यसमवायस्य लोकत्वमुक्तम् ॥४॥

लोकके अन्यथा स्वरूप के श्रद्धान को दूर करने के लिये कहते हैं :—

गाथार्थ :—निश्चय से लोक अकृत्रिम, अनादिनिधन, स्वभाव से निष्पन्न, जीवाजीवादि द्रव्यों से सहित, सर्वाकाश के अवयव स्वरूप और नित्य है ॥ ४ ॥

विशेषार्थ:—लोक का अधिकार तो था ही, किन्तु यहाँ लोक शब्द का ग्रहण शून्यवादी का निराकरण और 'लोक है' इसकी सिद्धि के लिये किया गया है।

अकृत्रिम—इस पद से 'लोक का कर्ता ईश्वर है' इसका खण्डन किया गया है।

अनादिनिधनः—इस पद से सृष्टि का संहार मानने वाले मत का खण्डन किया गया है।

स्वभावनिर्वृत्तः—इस पद से 'परमाणु द्वारा लोक का आरम्भ हुआ है' इस मान्यता का निरसन किया गया है।

जीवाजीवैः स्फुटः—इस विशेषण से 'लोक मायामय है' इस मान्यता का खण्डन किया गया है।

सर्वाकाशावयवः—इस विशेषण से जो अलोकाकाश का अभाव मानते हैं—उनके मत का निराकरण किया गया है।

नित्य :—इस पद से लोक को क्षणिक मानने वाले क्षणिकमत का खण्डन किया गया है। इस कथन से जो देखा जाता है, उसे लोक कहते हैं। अथवा छह द्रव्यों के समवाय को लोक कहते हैं।

---

१ निरात्मकरणं (प०)।

इदानीं तदाधारस्याकाशस्य लोकत्वमुच्यते—

धम्माधम्मागासा गदिरागदि जीवपोग्गलाणं च ।
जावत्तावल्लोगो आयासमदो परमणंतं ॥ ५ ॥

धर्माधर्माकाशा गतिरागतिः जीवपुद्गलयोः च ।
यावत्तावल्लोक आकाशं अतः परमनंतम् ॥ ५ ॥

धम्मा । धर्माधर्माकाशा गतिरागतिर्जीवपुद्गलयोः चकारात् कालाणवश्च यावदाकाशमभिव्याप्य वर्तन्ते तावदाकाशं लोकः अतः परमाकाशमनन्तं न संख्यातादि ॥ ५ ॥

अब षट्द्रव्यों के आधारभूत आकाश को लोक कहते हैं:—

गाथार्थ :— धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और गति आगति करने वाले जीव एवं पुद्गल द्रव्य तथा च शब्द से) काल द्रव्य जितने आकाश को अभिव्याप्त करते हैं उतने आकाशको लोक कहते हैं, इसके आगे अलोकाकाश है जो अनन्त है ॥ ५ ॥

विशेषार्थ :— जितने आकाश में छह द्रव्य पाये जाते हैं अथवा जितना आकाश छह द्रव्यों का आधार है, उसे लोक कहते हैं। लोक के आगे अनन्त अलोकाकाश है। आकाश द्रव्यमें लोक और अलोकका विभाजन धर्म, अधर्म द्रव्य के कारण हुआ है। ये धर्म, अधर्म द्रव्य जीव और पुद्गल की गति व स्थिति में कारण हैं।

अथ परपरिकल्पितलोकसंस्थाननिराकरणार्थमाह—

उब्भियदलेक्कमुरवद्धयसंचयसण्णिहो हवे लोगो ।
अद्धुदयो मुरवसमो चोद्दसरज्जूदओ सव्वो ॥ ६ ॥

उद्भूतदलैकमुरजध्वजसञ्चयसन्निभो भवेत् लोकः ।
अर्धोदयः मुरजसमः चतुर्दशरज्जूदयः सर्वः ॥ ६ ॥

उब्भिय । उद्भूतदलमुरजैकमुरजसन्निभः । अत्र[1] शून्यतानिराकरणार्थं ध्वजसञ्चयसन्निभो भवेल्लोकः । अर्धमुरजोदयः[2] एकमुरजोदयसमः मिलित्वा सर्वलोकश्चतुर्दशरज्जूदय ॥६॥

अब अन्यवादियों द्वारा परिकल्पित लोकरचना के निराकरण हेतु कहते हैं:—

गाथार्थ :— लोक का आकार खड़ी (ऊभी) डेढ़ मृदङ्ग के सदृश है, तथा मध्य में भी ध्वजाओं के समूह सदृश भरितावस्था स्वरूप है, शून्य नहीं है। अर्धमृदंग के समान अधोलोक और एक मृदंग के समान ऊर्ध्वलोक है, तथा दोनों को मिलाकर सर्व लोक चौदह राजू ऊंचा है ॥ ६ ॥

विशेषार्थ :— लोक का आकार डेढ़मृदंग के समान कहा, उसका अर्थ यह नहीं है कि लोक मृदंग के समान बीच में पोला भी है, किन्तु वह तो ध्वजाओं के समूह सदृश भरा हुआ है। अर्ध मुरज

१ अन्तः (ब०, प०) ।

२ एकमुरजोदयः (प०) ।

की ऊँचाई और एक मुरज की ऊँचाई मिला कर सम्पूर्ण लोक की चौदह राजू ऊँचाई (उदय) कही गई है।

यहाँ पर लोक को डेढ़ मृदंगाकार कहा गया है, उसका भाव यह है कि जैसे अर्ध मृदंग नीचे से चौड़ा और ऊपर संकरा होता है। उसी प्रकार अधोलोक नीचे सात राजू चौड़ा है, और क्रम से घटता हुआ ऊपर एक राजू चौड़ा रह गया है। इसके ऊपर एक मृदंगाकार ऊर्ध्व लोक कहा गया है। इसका भाव भी यह है कि जैसे मृदंग नीचे ऊपर संकरा और बीच में चौड़ा होता है, उसी प्रकार ऊर्ध्वलोक भी नीचे एक राजू चौड़ा है इसके ऊपर क्रम से बढ़ता हुआ बीच में ५ राजू चौड़ा हो जाता है। पुनः क्रम से घटता हुआ अन्त में एक राजू चौड़ा रह जाता है।

मृदङ्गाकार कहने का यह भाव नहीं है कि लोक मृदङ्ग के सदृश गोल है यदि लोक को मृदङ्ग के सदृश गोल माना जाय तो अधोलोक का घनफल १०६$\frac{३}{७}\frac{१}{४}$ घन राजू तथा ऊर्ध्वलोक का घन फल ५८$\frac{३}{७}\frac{१}{४}$ घन राजू प्राप्त होता है। इन दोनों को जोड़ने से मृदङ्गाकार गोल लोक का क्षेत्रफल १०६$\frac{३}{७}\frac{१}{४}$ + ५८$\frac{३}{७}\frac{१}{४}$ = १६४$\frac{३}{७}\frac{१}{४}$ घन राजू प्राप्त होता है। जो ३४३ घन राजू के संख्यातवें भाग प्रमाण है। अतः लोक चौकोर है; क्योंकि चौकोर लोक का घनफल ७ राजू के (श्रेणी के) घन स्वरूप ३४३ घन राजू प्राप्त है। (धवल पु० ४ पृष्ठ १२-२२)।

अथ प्रसङ्गायात रज्जुप्रतीत्यर्थमाह—

जगसेढिसत्तभागो रज्जू सेढीवि पल्लछेदाणं।
होदि असंखेज्जदिमप्पमाणविंदंगुलाण हदी ॥ ७ ॥

जगच्छ्रेणिसप्तमभागः रज्जुः श्रेणिरपि पल्यच्छेदानाम्।
भवति असंख्येयप्रमाणवृन्दांगुलानां हतिः ॥ ७ ॥

जग। अङ्कसंदृष्टिप्रदर्शनद्वारेण गाथार्थो विलिख्यते। जगच्छ्रेण्याः १८=४२= सप्तमभागो ७ रज्जुः। श्रेणिरपि केत्यत्रोच्यते। पल्य १६ छेदानां ४ असंख्येय भाग २ प्रमितवृन्दाङ्गुलानां ४२= ६५=४२=६५= परस्परा हतिः श्रेणिः १८=४२= ॥७॥

अत्र प्रसङ्गवश राजू का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :— पल्य के अर्धच्छेदों में असंख्यात का भाग देने पर जो एक भाग प्राप्त हो उतनी बार घनांगुलों का परस्पर में गुणा करने पर जगच्छ्रेणी होती है, और जगच्छ्रेणी के सातवें भाग प्रमाण राजू होता है ॥ ७ ॥

विशेषार्थ :— जगच्छ्रेणी के सातवें भाग को राजू कहते हैं जैसे जगच्छ्रेणी का प्रमाण बादाल से गुणित एकट्ठी—(६५५३६^{४} × ६५५३६^{२}) है। उसमें सात का भाग (६५५३६^{४} × ६५५३६^{२} / ७) देने पर जो एक भाग प्राप्त हो वह राजू का प्रमाण है। अथवा एकट्ठी (१८=) × बादाल (४२=) = / ७ राजू का प्रमाण प्राप्त होता है।

जगच्छ्रेणी का प्रमाण—पल्य के अर्धच्छेदों में असंख्यात का भाग देने पर जो एक भाग आवे उतनी बार घनांगुलों का परस्परमें गुणा करने पर जगच्छ्रेणी का प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे—मान लो अङ्कसंदृष्टि में पल्य का प्रमाण १६, असंख्यात का प्रमाण २ और घनांगुल का प्रमाण ४२= × ६५= अथवा ६५५३६³ है। अतः पल्य (१६) के अर्धच्छेद ४ ÷ २ असंख्यात)=लब्ध २ आया, इसलिये दो बार घनांगुलों (६५५३६³×६५५३६³) का परस्पर में गुणा करने से जगच्छ्रेणी का प्रमाण प्राप्त होता है। अर्थात् (६५५३६ × ६५५३६²)×(६५५३६ × ६५५३६²)=६५५३६² × ६५५३६⁴ (बादाल × एकट्ठी) अथवा (४२= × ६५=) × (४२= × ६५=) प्रमाण जगच्छ्रेणी होती है। यहाँ सूच्यंगुल=६५५३६ और घनांगुल=६५५३६³ है।

अथ वृन्दांगुलप्रतिपत्त्यर्थमाह—

पल्लछिदिमेत्तपल्लाणण्णोण्णहदीए अंगुलं सूई।
तव्वग्गघणा कमसो पदरघणंगुल समक्खादो ॥८॥

पल्यच्छेदमात्रपल्यानामन्योन्यहत्या अंगुलं सूची।
तद्वर्गघनौ क्रमशः प्रतरघनांगुले समाख्याते ॥ ८ ॥

पल्ल। पल्य १६ छेद ४ मात्रपल्यानां (१६ × १६ × १६ × १६) अन्योन्यहत्या सूच्यङ्गुलं ६५ = तद्वर्गघनौ प्रतर ४२=घनाङ्गुले ४२= × ६५= क्रमशः समाख्याते ॥८॥

अब घनांगुल का स्वरूप बताते हैं :—

गाथार्थ :—पल्य के जितने अर्धच्छेद होते हैं, उतनी बार पल्य का परस्पर में गुणा करने से सूच्यंगुल का प्रमाण प्राप्त होता है। इस सूच्यंगुल के वर्ग को प्रतरांगुल और इसीके घन को घनांगुल कहते हैं ॥ ८ ॥

विशेषार्थ :—मानलो—पल्य का प्रमाण १६ है। इसके अर्धच्छेद ४ हुए, अतः चार बार पल्य (१६ × १६ × १६ × १६) का परस्पर में गुणा करने से सूच्यंगुल ६५=(६५५३६) प्राप्त हुआ। इस सूच्यंगुल के वर्ग ४२=(६५५३६ × ६५५३६) को प्रतरांगुल तथा सूच्यंगुल के घन (६५५३६² × ६५५३६) या (६५५३६ × ६५५३६ × ६५५३६)=६५५३६³ को (४२= × ६५=) घनांगुल कहते हैं।

अथ मानप्रतीत्यर्थं प्रक्रियामाह—

माणं दुविहं लोगिग लोगुत्तरमेत्थ लोगिगं छद्धा।
माणुम्माणोमाणं गणिपडितप्पडिपमाणमिदि ॥ ९ ॥

मानं द्विविधं लौकिकं लोकोत्तरमत्र लौकिकं षोढा।
मानोन्मानावमानं गणिप्रतितत्प्रतिप्रमाणमिति ॥९॥

माणं। मानं द्विविधं लौकिकं लोकोत्तरमिति। अत्र लौकिकं षोढा मानोन्मानावमानगणि-मानप्रतिमानतत्प्रतिमानमिति ॥ ९ ॥

अब मान के भेद प्रभेद कहे जाते हैं :—

गाथार्थ :—मान दो प्रकार का है। १ लौकिक मान, २ अलौकिक मान। लौकिक मान छह प्रकार का है—मान, उन्मान, अवमान, गणिमान, प्रतिमान और तत्प्रतिमान ॥ ९ ॥

विशेषार्थ :—सुगम है।

एतेषां षण्णां यथासंख्यं दृष्टान्तमुखेनोपपत्तिमाह—

पत्थतुलचुलुयएगप्पहुदी गुंजातुरंगमोल्लादी ।
दव्वं खित्तं कालो भावो लोगुत्तरं चदुधा ॥ १० ॥

प्रस्थतुलाचुलुकैकप्रभृति गुञ्जातुरंगमूल्यादि ।
द्रव्यं क्षेत्रं कालो भावो लोकोत्तरं चतुर्धा ॥ १० ॥

पत्थ। प्रस्थप्रभृति तुलाप्रभृति चुलुकप्रभृति एकप्रभृति गुञ्जादि तुरङ्गमूल्यादीति। इतो लोकोत्तरमानमेव उच्यते। द्रव्यं क्षेत्रं कालो भाव इति लोकोत्तरं चतुर्धा ॥१०॥

इन छह मानों की यथाक्रम दृष्टान्तपूर्वक उत्पत्ति इस प्रकार है :—

गाथार्थ :—प्रस्थ, तुला, चुल्लू, एकादि, गुंजाफल और घोड़े आदि का मूल्य ये क्रमशः लौकिक मान हैं, और द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव ये चार लोकोत्तर मान हैं ॥१०॥

विशेषार्थ :—अन्नादि का जिससे माप किया जाता है, ऐसे प्रस्थादि को मान; तुलादि को उन्मान; चुल्लू से जो जलादि का माप होता है, उसे अवमान; एक, दो, तीन आदि को गणिमान; गुञ्जादि के माप को प्रतिमान और घोड़े के अवयवादि देख कर मूल्य करने को तत्प्रतिमान कहते हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये चार लोकोत्तर मान हैं।

अथ तेषां चतुर्णां यथासंख्येन जघन्योत्कृष्टप्रतीत्यर्थं गाथाचतुष्टयमाह—

परमाणु सयलदव्वं एगपदेसो य सव्वमागासं ।
इगिसमय सव्वकालो सुहुमणिगोदेसु पुण्णेसु ॥ ११ ॥
णाणं जिणेसु य कमा अवरं वरं मज्झिमं अणेयविहं ।
दव्वं दुविहं संखा उवमपमा उवम अट्ठविहं ॥१२॥

परमाणुः सकलद्रव्यं एकप्रदेशः च सर्वमाकाशम् ।
एकसमयः सर्वकालः सूक्ष्मनिगोदेषु अपूर्णेषु ॥ ११ ॥
ज्ञानं जिनेषु च क्रमात् अवरं वरं मध्यमं अनेकविधम् ।
द्रव्यं द्विविधं संख्या उपमाप्रमा उपमाष्टविधा ॥ १२ ॥

परमाणु। परमाणुः १ सकलद्रव्यं १६ ख एकप्रदेशः १ सर्वमाकाशं १६ ख ख ख एकसमयः १ सर्वकालः १६ ख ख सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकेषु ज्ञानम् ॥ ११ ॥

णाणं। जिनेषु च ज्ञानं क्रमाज्जघन्यमुत्कृष्टं मध्यमं अनेकविधं। तत्रापि द्रव्यं द्विविधं संख्याप्रमाणमुपमाप्रमाणमिति । तत्रोपमाप्रमाणमष्टविधं । अल्पबह्वचमध्ये अल्पकस्यैव पूर्वनिपातः इति न्यायेन यथोक्तोद्देशेन[1] निर्देशं मुक्त्वा उपमामेव उच्यते। उपमा अष्टविधेति ॥१२॥

लोकोत्तर चारों मानों की क्रमसे जघन्योत्कृष्ट की प्रतीति के लिए चार गाथाएं कहते हैं—

गाथार्थ :—द्रव्यमानमें जघन्य एक परमाणु और उत्कृष्ट सम्पूर्ण द्रव्य समूह; क्षेत्रमान में जघन्य एक प्रदेश और उत्कृष्ट सर्वाकाश; कालमान में जघन्य एक समय और उत्कृष्ट सर्वकाल; भावमान में जघन्य सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक का पर्याय नाम का ज्ञान और उत्कृष्ट जिनेन्द्र भगवान में केवलज्ञान—इस प्रकार क्रम से जघन्य और उत्कृष्ट मान हैं। मध्यम मान अनेक प्रकार का है। द्रव्यमान दो प्रकार का है। संख्या प्रमाण और उपमा प्रमाण। उपमा प्रमाण आठ प्रकार का है ॥११-१२॥

विशेषार्थ :—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार में से द्रव्य मान के दो भेद हैं—संख्या प्रमाण और उपमा प्रमाण। जिसका कथन अल्प है उसे पहले कहना चाहिये। इस नियम के अनुसार उपमा प्रमाण के भेद पहले कहते हैं। वह आठ प्रकार का है।

कारणप्रतिपत्तिपूर्वकत्वात् कार्यप्रतिपत्तेरिति तामपि त्यजति—

तं उवरि भणिस्सामो संखेज्जमसंखमणंतमिदि तिविहं[2] ।
संखं तिल्लदु तिविहं परित्तजुत्तंति दुगवारं ॥ १३ ॥

तामुपरि भणिष्यामः संख्येयं असंख्यं अनन्तमितित्रिविधम्।
संख्यं अन्तिमद्विकं त्रिविधं परीतं युक्तं इति द्विकवारम् ॥१३॥

तं उवरि। तामुपरि भणिष्याम इति। अवशिष्टमेव उच्यते—संख्येयं, असंख्यं, अनन्तमिति त्रिविधम्। संख्यं अन्तिमद्विकं त्रिविधं परीतं युक्तं द्विकवारमिति ॥१३॥

कारण का ज्ञान होने पर ही कार्य का ज्ञान होता है, इस न्यायानुसार उपमाको भी छोड़ते हैं—

गाथार्थ :—उस उपमा प्रमाण को आगे कहेंगे। संख्यात, असंख्यात और अनन्त के भेद से संख्या प्रमाण तीन प्रकार का है। इसमें संख्यात एक ही प्रकार का है। किन्तु असंख्यात और अनन्त परीत, युक्त और द्विकवार के भेद से तीन तीन प्रकार के हैं ॥१३॥

विशेषार्थ :—संख्यात एक ही प्रकार का है। किन्तु परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यात के भेद से असंख्यात तीन प्रकार का है। तथा परीतानन्त, युक्तानन्त और अनन्तानन्त के भेद से अनन्त भी तीन प्रकार का है। इस प्रकार तीनों के कुल सात भेद हुए।

---

१ यथोद्देशेन (ब०, प०)।

२ तिविहा (ब०, प०)।

ते अवर मज्झ जेट्ठं तिविहा संखेज्जणाणणिमित्तं ।
अणवत्थ सलागा पडिमहासला चारि कुंडाणि ॥१४॥

तानि अवरं मध्यं ज्येष्ठं त्रिविधा संख्येयज्ञाननिमित्तम् ।
अनवस्था शलाका प्रतिमहाशला चत्वारि कुण्डानि ॥ १४ ॥

ते अवर । तानि सप्तापि स्थानानि जघन्यं मध्यमं उत्कृष्टमिति त्रिधा । संख्येयज्ञाननिमित्तं अनवस्था शलाका प्रतिशलाका महाशलाकेति च[1] चत्वारि कुण्डानि कल्पयितव्यानि ॥१४॥

गाथार्थ :—ये सातों ही स्थान जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट के भेद से तीन तीन प्रकारके हैं। यहाँ संख्यात का ज्ञान करने के लिये अनवस्था शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका ऐसे चार कुण्डों की कल्पना करना चाहिये ॥१४॥

विशेषार्थ :– संख्या प्रमाण के प्रधानतः संख्यात, असंख्यात और अनन्त इस प्रकार तीन भेद किये थे। उनमें से संख्यात का ज्ञान कराने के लिये यहाँ निम्नलिखित चार कुण्डों की स्थापना की जाती है। जैसे :—

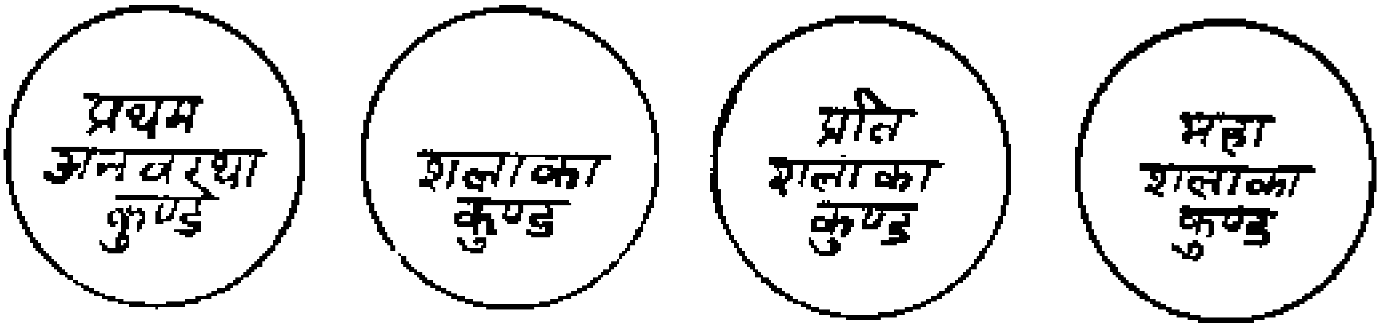

इन चारों कुण्डों का व्यास एक लाख योजन का तथा उत्सेध (गहराई) एक हजार योजन का है। ये चारों ही कुण्ड वृत्ताकार गोल हैं।

१ **अनवस्था कुण्ड :**—जिस कुण्ड का प्रमाण अनवस्थित है, वह अनवस्था कुण्ड है। प्रथम अनवस्था कुण्ड का व्यास एक लाख योजन का है, किन्तु दूसरे, तीसरे आदि अनवस्था कुण्डों का व्यास पूर्व पूर्व अनवस्था कुण्ड से संख्यात व असंख्यात गुणा है। शलाका आदि कुण्डों के समान इस अनवस्था कुण्ड का व्यास अवस्थित नहीं है। अतः इसका नाम अनवस्था कुण्ड है।

२ **शलाका कुण्ड :**—अनवस्था कुण्ड के एक बार भर जाने पर जिस कुण्ड में एक सरसों डाली जाती है, उसे शलाका कुण्ड कहते हैं। अनवस्था कुण्ड कितनी बार भर गया, उसका ज्ञान इस कुण्ड के द्वारा होता है, अर्थात् यह कुण्ड अनवस्था कुण्ड की शलाकाओं को बतलाता है अतः इस कुण्ड का नाम शलाका कुण्ड सार्थक है।

---

1 (ब०, प०) प्रतौ च नास्ति।

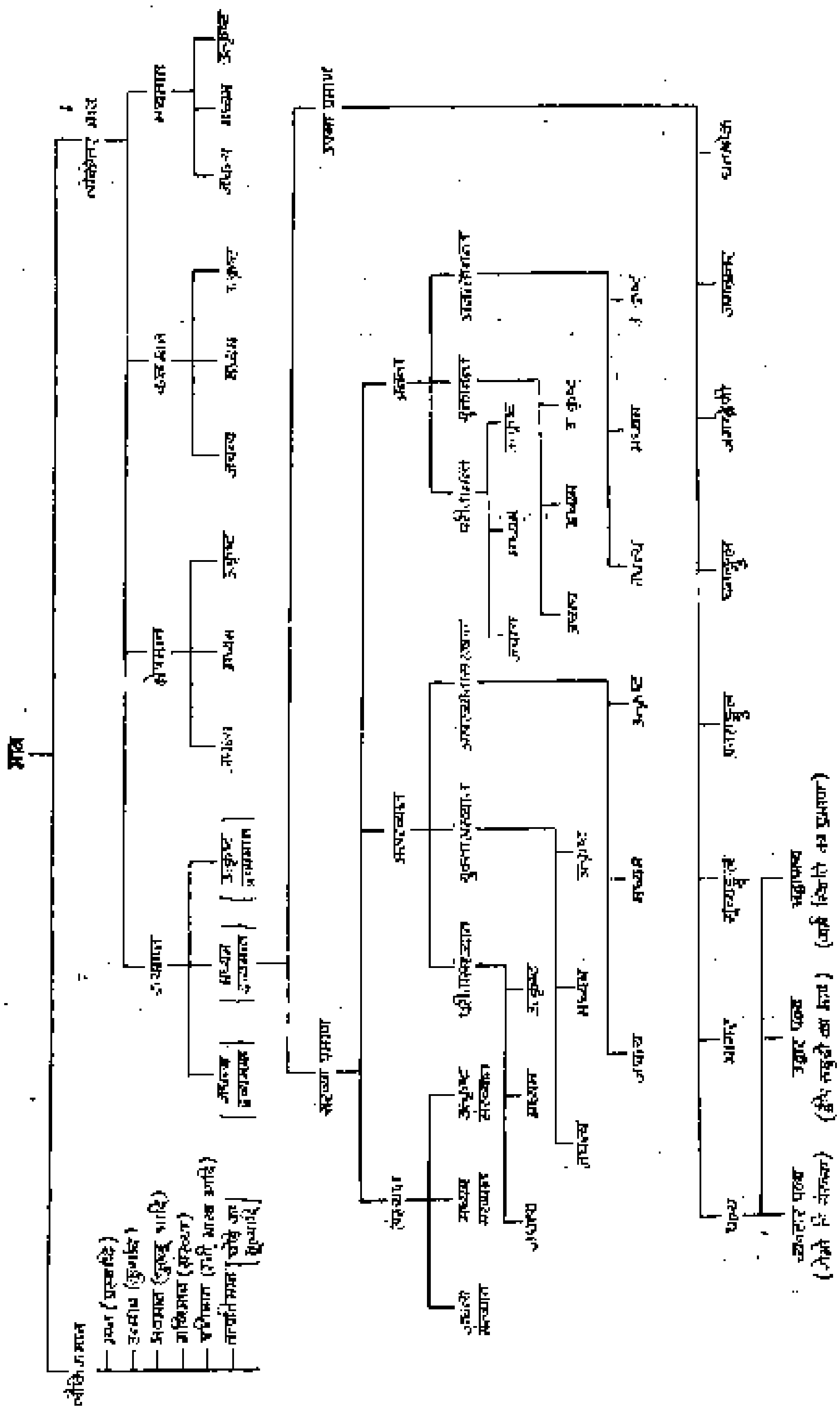

३ **प्रतिशलाका :**—शलाका कुण्ड के एक एक बार पूर्ण भरे जाने पर प्रतिशलाका कुण्ड में एक एक सरसों डाली जाती है अर्थात् इस कुण्ड के द्वारा शलाका कुण्ड की शलाकाओंका बोध होता है। अतः इसका नाम प्रतिशलाका कुण्ड सार्थक है।

४ **महाशलाका कुण्ड :**—प्रतिशलाका कुण्ड के प्रत्येक बार भर जाने पर इस अन्तिम कुण्ड में एक सरसों डाली जाती है। यह कुण्ड प्रतिशलाका कुण्ड की शलाकाओं की गणना बतलाता है, अतः इसका नाम महाशलाका कुण्ड है।

अथ चतुर्णां कुण्डानां व्यासादिप्रतीत्यर्थमाह—

जोयण लक्खं वासो सहस्समुस्सेहमेत्थ सव्वेसिं।
दुप्पहुदिसरिसवेहिं अणवत्था पूरयेदव्वा ॥१५॥

योजन लक्षं व्यासः सहस्रमुत्सेधः अत्र सर्वेषाम्।
द्विप्रभृतिसर्षपैः अनवस्था पूरयितव्या॥ १५॥

जोयण। योजनलक्षं व्यासः सहस्रमुत्सेधः स्यात्। अत्र सर्वेषां कुण्डानां द्विप्रभृतिसर्षपैरनवस्था पूरयितव्या ॥१५॥

अब चारों कुण्डों के व्यास आदि की प्रतीति के लिए कहते हैं—

गाथार्थ :—चारों कुण्डों का व्यास एक लाख योजन और उत्सेध एक हजार योजन प्रमाण है। इनमें से जिसके आदि में दो हैं ऐसे अनेकों सरसों से अनवस्था कुण्ड को भरना चाहिये ॥१५॥

विशेषार्थ :—अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका ये चारों कुण्ड गोल हैं। इन कुण्डों का व्यास १००००० योजन और उत्सेध १००० योजन है। इनमें से अनवस्था कुण्ड को दो आदि सरसों से भरना चाहिये।

गोल वस्तु के बीच की चौड़ाई का नाम व्यास है। जैसे—

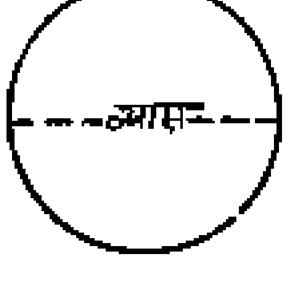

गोल वस्तु की गहराई या ऊँचाई का नाम उत्सेध है। जैसे—

द्विप्रभृतिभिरिति किमित्याशङ्कामपनुदन्नाह—

एयादीया गणणा बीयादीया हवंति संखेज्जा ।
तीयादीणं[1] णियमा कदित्ति सण्णा मुणेदव्वा[2] ।।१६।।

एकादिका गणना द्वयादिकाः भवन्ति संख्याताः ।
त्र्यादीनां नियमात् कृतिरिति संज्ञा मन्तव्या ।।१६।।

एया । एकादिका गणना द्वयादिका संख्याता भवन्ति त्र्यादीनां नियमात् कृतिरिति संज्ञा ज्ञातव्या । यस्य कृतौ मूलमपनीय शेषे वर्गिते वर्धते[3] सा कृतिरिति । एकस्य द्वयोश्च कृतिलक्षणा-भावात् एकस्य नोकृतित्वं द्वयोरवक्तव्यमिति[4] कृतित्वं । त्र्यादीनामेव तल्लक्षणयुक्तत्वात् कृतित्वं युक्तम् ।।१६।।

दो आदि सरसों क्यों कहे ? इसका समाधान—

गाथार्थ :—एक को आदि लेकर गणना और दो को आदि लेकर संख्यात होता है, तथा नियम से तीन को आदि लेकर कृति संज्ञा होती है ।। १६ ।।

विशेषार्थ :—गणना एक के अङ्क से प्रारम्भ होती है, यह एक की संख्या गणना होते हुये भी नोकृति है, क्योंकि एक संख्या का वर्ग करने पर वृद्धि नहीं होती, तथा उसमें से वर्गमूल के कम कर देने पर वह निर्मूल नष्ट हो जाती है । जैसे :—१ × १ = १—१ = ० अतः एक का अङ्क गणना होते हुये भी नोकृति है ।

संख्यात :—संख्यात दो के अङ्क से प्रारम्भ होता है । अर्थात् २ का अङ्क जघन्य संख्यात है । यह दो का अङ्क अवक्तव्य कृति है, क्योंकि दो का वर्ग करने पर इसमें वृद्धि तो देखी जाती है, किन्तु इसके वर्ग में से मूल घटा कर वर्ग करने पर वृद्धि नहीं होती । जैसे :—२ × २ = ४ वृद्धि तो हुई किन्तु ४—२ = २ × २ = ४ यहाँ वृद्धि नहीं हुई, अतः दो का अङ्क अवक्तव्य कृति है ।

कृति :—कृति तीन की संख्या को आदि लेकर होती है, क्योंकि जो राशि वर्गित होकर वृद्धि को प्राप्त होती है, और अपने वर्ग में से अपने वर्ग के मूल को घटा कर शेष का वर्ग करने पर वृद्धि को प्राप्त होती है, उसे कृति कहते हैं । जैसे :—३ × ३ = ९—३ मूलराशि = ६ × ६ = ३६ यहाँ वृद्धि हुई, अतः तीन का अङ्क कृति है ।

अथोक्तयोजनलक्षव्यासवृत्तस्य समस्तक्षेत्रफल[5]ज्ञापनार्थमाह—

वासो तिगुणो परिही वासचउत्थाहदो दु खेत्तफलं ।
खेत्तफलं वेहगुणं खादफलं होइ सव्वत्थ ।।१७।।

---

१ तेयादीणं (प०) । २ मुणेयव्वा (ब०) । ३ वर्द्धते (ब० प०) । ४ द्वयोरवक्तव्यकृतित्वं- (ब० प०) । ५ क्षेत्र स्थूलफल (ब०) ।

व्यासस्त्रिगुणः परिधिः व्यासचतुर्थाहतस्तु क्षेत्रफलम् ।
क्षेत्रफलं वेधगुणं खातफलं भवति सर्वत्र ॥ १७ ॥

वासो। व्यासस्त्रिगुणः परिधि, व्यासचतुर्थांशहतस्तु क्षेत्रफलं, क्षेत्रफलं वेधगुणितं खातफलं भवति सर्वत्र कुण्डेषु ॥ १ ल० व्यासः × ३ = ३ ल० परिधिः । $\frac{1}{4}$ ल० × ३ ल० क्षेत्रफलं । ३ ल० × $\frac{1}{4}$ ल० × १००० वे = खातफलं । अथ व्यासस्त्रिगुण इत्यस्य वासना कथ्यते । योजनलक्षव्यासवृत्तं १ ल० मर्धीकृत्य $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ तदर्द्धं पुनरप्यर्द्धीकृत्य $\frac{1}{4}$ $\frac{1}{4}$ $\frac{1}{4}$ $\frac{1}{4}$ मध्यमखण्डद्वयमेलने मर्द्धं स्यात् । पुनः परिधेः षष्ठांशं गत्वार्धीकृत्य एतदर्द्ध-द्वयं प्रत्येकमर्धीकृत्य मध्यमखण्डद्वयमेलने समचतुरस्रं स्यात् । पुनरपि तथा षष्ठांशं गत्वा तथाकृते षडर्धानि भवन्ति । तेषां षण्णां मेलने $\frac{1}{2}$ ल० अपहृते च व्यासस्त्रिगुण इत्यस्य वासना भवति ॥ इदानीं व्यासचतुर्थाहत इत्यस्य वासना निरूप्यते । शष्कुलीआकारवृत्तव्यासकुण्डं १ ल० ऊर्ध्वादधः मध्यपर्यन्तं छित्वा विरलय्यायतत्रिकोणं संस्थाप्य पुनरपि मुखभूमिसमासार्धं मध्यफलमिति मध्यफलं साधयित्वा $\frac{1}{4}$ ल० तत्पर्यन्तमूर्ध्वादधः छित्वा खण्डद्वये आयतचतुरस्रं यथाभवति तथा क्रमहीनपार्श्वद्वये स्थापिते क्षेत्रस्य व्यासचतुर्थाहतत्वं भवति ॥१७॥

अब पूर्वोक्त एक लाख योजन व्यास वाले कुण्ड का समस्त क्षेत्रफल कहते हैं—

गाथार्थ :—व्यास के प्रमाण को तिगुणा करने से परिधि का प्रमाण होता है। व्यास के चतुर्थांश से परिधि को गुणित करने पर क्षेत्रफल तथा क्षेत्रफल को वेध से गुणित करने पर सर्वत्र खात (घन) फल प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

विशेषार्थ :—कुण्ड का व्यास १ लाख योजन है। इसे तिगुणा (१ ल. × ३) करने से परिधि ३ ल योजन प्राप्त होती है। व्यास के चतुर्थांश $\frac{१ ल}{४}$ से परिधि (३ ल) को गुणित करने पर ३ ल × $\frac{१ ल}{४}$ कुण्ड का क्षेत्रफल एवं क्षेत्रफल को १००० योजन वेध से गुणित करने पर ३ ल × $\frac{१ ल}{४}$ × १००० सब कुण्डों का खातफल प्राप्त होता है। परिधि व्यास की तिगुणी होती है? इसकी वासना अर्थात् विश्वास[1] की प्रतिपत्ति के लिये दृष्टान्त कहते हैं :—

एक लाख योजन व्यास वाला गोलाकार

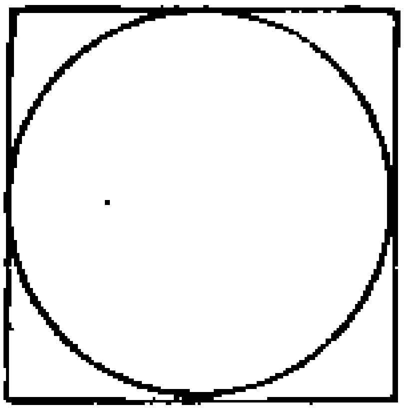

क्षेत्र है इसे आधा—

---

1 विश्वास प्रतिपत्त्यर्थं दृष्टान्तः कथ्यते । (ब प्रति)

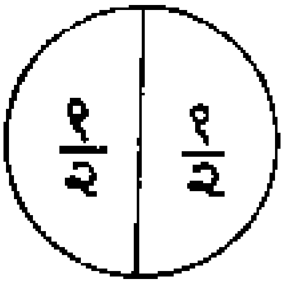

कर एक बार पुनः आधा

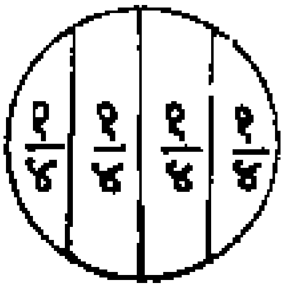

करना चाहिये । इन चारों खण्डों में से मध्य के दो खण्ड मिला देने पर मध्य में अर्धक्षेत्र

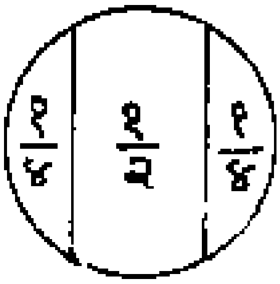

हो जाता है । परिधि के छठवें भाग जाकर पुनः आधा करने पर ये दो अर्ध

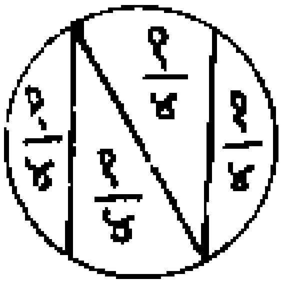

भाग प्राप्त होते हैं, अब इनमें से पुनः प्रत्येक का अर्ध—

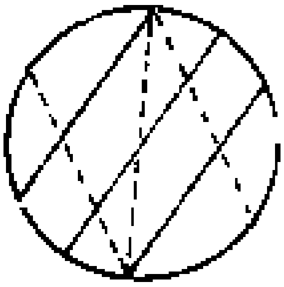

भाग करके मध्य के दो खण्ड मिला

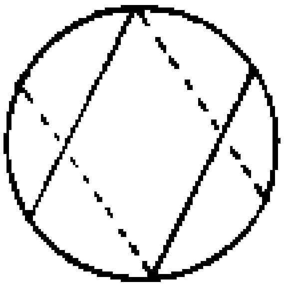

देना चाहिये । पुनः इसी प्रकार परिधि के छठवें भाग जाकर इस प्रकार करने पर छह अर्ध

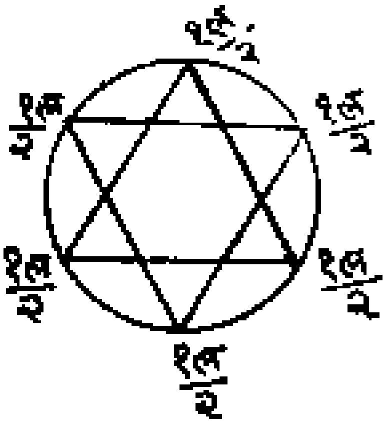

हो जाते हैं । इन छहों अर्ध भागों को मिलाने पर $\frac{१ल}{२}+\frac{१ल}{२}+\frac{१ल}{२}+\frac{१ल}{२}+\frac{१ल}{२}+\frac{१ल}{२}=\frac{६ल}{२}$ प्राप्त होते हैं । हर के २ से अंश के ६ को अपवर्तित करने पर ३ल प्राप्त होते हैं, अर्थात् व्यास से तिगुणी परिधि होती है यह सिद्ध हो जाता है

अब वृत्ताकार क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिये व्यास के चतुर्थ भाग से गुणा क्यों किया जाता है ? उसकी वासना कहते हैं :—

कर्ण की गोलक सदृश आकार का नाम शष्कुलि है। इस कर्ण की गोलक सदृश कुण्ड

(शष्कुलि)

का व्यास एक लाख योजन है।

इसी १ लाख व्यास वाले वृत्त को ऊर्ध्व, नीचे और मध्य से छेदकर फैलाने पर एक लम्बा त्रिकोणाकार क्षेत्र बन जाता है। यथा—

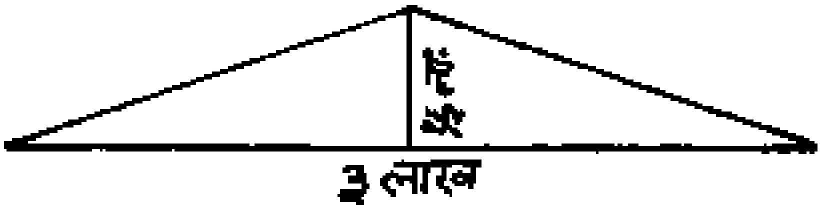

इसी आयत त्रिकोण क्षेत्र को मुख से भूमि तक आधा करने पर मध्य फल प्राप्त होता है, जिस मध्य फल का प्रमाण ३/२ लाख योजन है। इसी क्षेत्र को ऊर्ध्व से मध्यफल तक छेदने पर दो खण्ड हो जाते हैं। यथा—

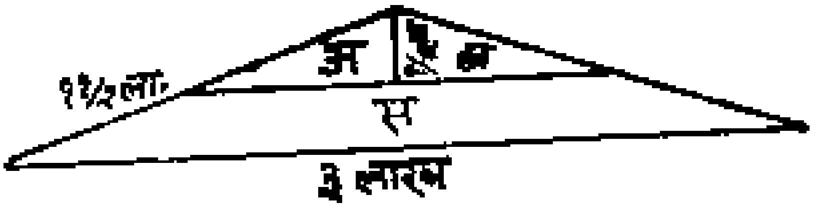

इन दोनों खण्डों का नाम क्रम से 'अ' और 'ब' है। अब इन दोनों खण्डों को अधः खण्ड 'स' के क्रम से घटते हुये दोनों पार्श्व भागों में स्थापित करने पर आयत चतुरस्र क्षेत्र प्राप्त होता है। इस आयत चतुरस्र क्षेत्र का क्षेत्रफल व्यास के चतुर्थांश $\left(\frac{१ल.}{४}\right)$ से गुणित करने पर प्राप्त हो जाता है। यथा—

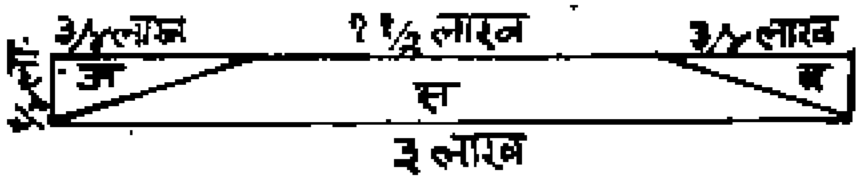

इसीलिये वृत्ताकार का क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिये परिधि को व्यास के चौथाई भाग से गुणित किया जाता है।

गोल वस्तु के घनफल निकालने का नियम :—परिधि में व्यास की चौथाई का गुणा कर उसी में उसके वेध (गहराई) का गुणा करने से खातफल अर्थात् घनफल प्राप्त होता है। जैसे—मानलो:—व्यास २ इन्च, परिधि ६ इन्च और गहराई ३ इंच है। अत: $६ \times \frac{२}{४} \times ३ = ९$ घन इन्च घनफल हुआ।

कुण्ड का क्षेत्रफल :—यहाँ अनवस्था कुण्ड का व्यास जम्बू द्वीप प्रमाण अर्थात् एक लाख योजन का है, और उसकी परिधि तीन लाख योजन की है, अत:— $३ल \times \frac{१ल}{४}$ (व्यास की चौथाई) $= ३ल \times \frac{१ल}{४}$ यह कुण्ड का क्षेत्रफल हुआ।

घनफल :– $३ल \times \frac{१ल}{४}$ क्षेत्रफल में सुदर्शन मेरु की जड़ प्रमाण कुण्ड की गहराई (१००० यो०) से गुणा करने पर घनफल प्राप्त होता है, अत: $३ल \times \frac{१ल}{४} \times १०००$ योजन यह कुण्ड का घनफल है। शेष तीनों कुण्डों का यही प्रमाण, यही क्षेत्रफल और यही घनफल है।

स्थूलक्षेत्रफलप्रमाणयोजनस्य व्यवहारयोजनादिकं कुर्वन्नाह—

> थूलफलं ववहारं जोयणमवि सरिसवं च कादव्वं।
> चउरस्ससरिसवा ते णवसोडस भाजिदा वट्टं ॥१८॥
>
> स्थूलफलं व्यवहारं योजनमपि सर्षपञ्च कर्तव्यः।
> चतुरस्रसर्षपास्ते नवषोडश भाजिता वृत्तम् ॥ १८ ॥

थूलफलं । स्थूलफलं $३ल \times \frac{१ल}{४} \times १०००$ एतत् । एकप्रमाणयोजनस्य पञ्चशतव्यवहारयोजनानि । इयतां प्रमाणयोजनानां किमिति त्रैराशिकविधिना व्यवहारयोजनं कर्तव्यं । अपि शब्दात् पुनरपि त्रैराशिकविधिनैव योजन प्र० १ कोश ४ । कोश १ दण्ड २००० । दण्ड १ हस्त ४ । हस्त १ अंगुल २४ परस्परगुणनेनैव कृतैकयोजनांगुलानि ७६८००० यवश्च ८ कर्तव्यानि[1] सर्षपश्च ८ कर्तव्यः । 'घनराशेर्गुणकारभागहारौ घनरूपेण भवत' इति न्यायेन एते सर्वे गुणकारा: घनरूपेण भवन्ति— $३ल \times \frac{१ल}{४} \times १००० \times ५००^३ \times ७६८००^३ \times ८^३ \times ८^३$ । एते सर्वे चतुरस्रसर्षपा भवन्ति । एते नव षोडश $\frac{९}{१६}$ भक्ता वृत्तसर्षपा भवन्ति । "हारस्य हारो गुणकोंऽशराशे:" इति षोडशापि गुणकारो भवति । तत्रैकाङ्कं त्रिकरूपेण विरलय्य ३।३।३ पञ्चशतानि गुणयित्वा । तत्र राशौ स्थितानि सर्वाणि शून्यानि एकत्रिंशत्संख्याकानि पृथक् कर्तव्यानि । पुनरप्येकाङ्कं तथा विरलय्य तत्रस्थत्रिकं ८।८।८ गुणयित्वा १६।१६।१६ प्राक्तनषोडश सहित चतु:षोडशानां परस्परगुणने पण्णट्ठि ६५५३६ अंगुलाङ्कं ७६८ × ७६८ × ७६८ त्रिभिर्भेदयित्वा २५६ × ३ × २५६ × ३ × २५६ × ३ तैसवम्प्रदवणाद्वयगुणने पण्णट्ठिर्जाता, पण्णट्ठयोर्द्वयोर्गुणने बादालमभूत् । परस्परगुणितत्रिकद्वयं ९ अवशिष्टाङ्केन भागहारचतुर्भि: समं चतुर्भिरपवर्तितेन २ गुणयेत् । अपरत्रिकद्वयं संगुण्य ९ भागहारेण नवभि: सममपवर्तयेत् राशिर्भवति । $४२ = \times २५६ \times ९ \times २$ एकत्रिंशत् शून्या: ॥ १८ ॥

---

१ ब० प० प्रतौ 'कर्तव्यानि' नास्ति ।

स्थूल क्षेत्रफल स्वरूप प्रमाण योजनों के व्यवहार योजनादि बनाने लिये कहते हैं :—

गाथार्थ :— स्थूल क्षेत्रफल के व्यवहार योजन और व्यवहार योजन के सरसों बनाना चाहिये। तथा चौकोर सरसों में $\frac{९}{१६}$ का भाग देकर गोल सरसों का प्रमाण निकलना चाहिये ॥ १८ ॥

विशेषार्थ :—तारतम्य बिना स्थूल रूप से निकाले हुए क्षेत्रफल को स्थूल क्षेत्रफल कहते हैं। यहाँ स्थूल क्षेत्रफल में ३ल × $\frac{३}{४}$ल × १००० प्रमाण योजन हैं, एक प्रमाण योजन के ५०० व्यवहार योजन होते हैं तो ३ल × $\frac{३}{४}$ल × १००० प्रमाण योजनों के कितने व्यवहार योजन होंगे, इस प्रकार त्रैराशिक कर व्यवहार योजन निकालना।

विशेष ज्ञातव्य :—जो[1] द्रव्य, आदि मध्य एवं अन्त से रहित हो, एक प्रदेशी हो, इन्द्रियों द्वारा अग्राह्य एवं विभाग रहित हो उसे परमाणु कहते हैं। इस प्रकार के अनन्तानन्त परमाणु-द्रव्यों से एक अवसन्नासन्न स्कन्ध उत्पन्न होता है।

८ अवसन्नासन्नों का एक सन्नासन्न नाम का स्कन्ध होता है।
८ सन्नासन्नों „ „ त्रुटिरेणु „ „ „ ।
८ त्रुटिरेणुओं „ „ त्रसरेणु „ „ „ ।
८ त्रसरेणुओं „ „ रथरेणु „ „ „ ।
८ रथरेणुओं „ „ उत्तम भोग भूमि का बालाग्र नामक स्कन्ध होता है।
८ उत्तम भोग भू० के बालाग्रों का एक मध्यम भोग भूमि का बालाग्र नाम स्कन्ध होता है।
८ मध्यम „ „ „ „ „ „ जघन्य „ „ „ „ „ „ „ „ ।
८ जघन्य „ „ „ „ „ „ कर्म „ „ „ „ „ „ „ „ ।
८ कर्म „ „ „ „ „ „ लीक नामक स्कन्ध होता है।
८ लीकों का एक जूँ नामक स्कन्ध होता है।
८ जूँ „ „ जौ „ „ „ „ ।
८ जौ „ „ अंगुल „ „ „ „ ।

अंगुल के भेद एवं लक्षण :—

अंगुल तीन प्रकार के हैं—उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल।

उत्सेधांगुल —ऊपर जो ८ जौ का एक अंगुल बताया है वही उत्सेधांगुल व्यवहारांगुल या सूच्यंगुल कहलाता है। इस उत्सेधांगुल से देव, मनुष्य, तिर्यञ्च एवं नारकियों के शरीर की ऊँचाई का प्रमाण और चार प्रकार के देवों के निवास स्थान व नगरादि का प्रमाण जाना जाता है।

प्रमाणांगुल :—पाँच सौ उत्सेधांगुलों का एक प्रमाणांगुल होता है। यह प्रमाणांगुल अवसर्पिणी काल के (प्रथम) भरत चक्रवर्ती का एक अंगुल है।

---

१ ति० प० भाग १ गाथा ९८ से ११२ तक।

द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड या सरोवर, जगती और भरतादिक क्षेत्रों का माप अर्थात् प्रमाण इस प्रमाणांगुल से ही होना है।

आत्मांगुल :– जिस जिस काल में भरतैरावत क्षेत्रों में जो जो मनुष्य हुआ करते हैं, उस उस काल में उन्हीं मनुष्यों के अंगुल का नाम आत्मांगुल है।

झारी, कलश, दर्पण, वेणु, भेरी, युग, शय्या, शकट, हल, मूसल, शक्ति, तोमर, सिंहासन, बाण, नालि, अक्ष, चामर, दुंदुभि, पीठ, छत्र मनुष्यों के निवास स्थान व नगर और उद्यानादिकों का माप आत्मांगुलों से होता है।

गाथा से सम्बन्धित विशेषार्थ :—

उत्सेधांगुल के द्वारा ही व्यवहार योजन का माप उत्पन्न होता है। उत्सेधांगुल से प्रमाणांगुल पांच सौ गुणा होता है, अतः प्रमाणांगुल में ५०० का गुणा करने से उत्सेधांगुलों का प्रमाण आता है। जैसे :—प्रथम अनवस्था कुण्ड का घनफल ३ल × १ल/४ × १००० घन योजन प्रमाण है। इसको ५००³ का गुणा करने से घनफल ३ल × १ल/४ × १००० × ५०० × ५०० × ५०० घन व्यवहार योजन प्राप्त होते हैं। इन व्यवहार योजनों के अंगुल, यव और सरसों बनाने पर निम्नलिखित प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे :—एक योजन के चार कोश, एक कोश के २००० धनुष, एक धनुष के चार हाथ और एक हाथ के २४ अंगुल होते हैं, इन सबका परस्पर में गुणा करने पर एक योजन के सात लाख अड़सठ हजार अंगुल होते हैं, इसलिये ३ल × १ल/४ × १००० × ५००³ व्यवहार घन योजनों में ७६८०००³ का गुणा करने से ३ × १ल/४ × १००० × ५००³ × ७६८०००³ प्रमाण व्यवहार घनांगुल प्राप्त होते हैं। ' घनराशि का गुणाकार व भागहार घनरूप ही होता है" इस सिद्धान्तानुसार यहाँ पर सर्व गुणाकार घनरूप ही लिये गये हैं।

एक अंगुल के ८ यव और एक यव के ८ चौकोर सरसों होते हैं, अतः उपर्युक्त व्यवहार घनांगुलों के प्रमाण में ८³ × ८³ का गुणा कर देने से—३ल × १ल/४ × १००० × ५००³ × ७६८०००³ × ८³ × ८³ अनवस्था कुण्ड के चौकोर सरसों का प्रमाण प्राप्त होता है। इन समस्त सरसों के प्रमाण में ९/१६ का भाग देने से गोल सरसों हो जाते हैं। कारण कि चौकोर वस्तु के घनफल में ९/१६ का भाग देने से गोल वस्तु का प्रमाण प्राप्त होता है। भागहार का हार गुणाकार हो जाता है इस नियम के अनुसार यहाँ १६ भी गुणाकार हो जावेंगे। (३०००००×१०००००×१०००×५००×५००×५००×७६८०००×७६८०००×७६८०००×८×८×८×८×८×८×१६)/(९×४) अथवा—बादाल (४२=) को २५६ और १८ से गुणा करके ३१ शून्य रखने पर गोल सरसों का प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे—४२९४९६७२९६ (बादाल) × २५६ × १८ × १०००००००००००००००००००००००००००००००० इनका परस्पर गुणा करने से १९७९१२०९२९९६६८००००००००००००००००००००००००००००००० यह ४५ अङ्क प्रमाण

संख्या गोल सरसों की प्राप्त हुई। यही गोल सरसों प्रथम अनवस्था कुण्ड में भरी जाती हैं। इसकी सिद्धि निम्न प्रकार होती है :—

उपरिम ८ के अङ्कों में से एक ८ का गुणन खण्ड करने पर २×२×२ प्राप्त होता है। ५०० का गुणाकार तीनबार है, अतः प्रत्येक ५०० को २ से गुणा करने पर तीन स्थान पर १००० गुणाकार प्राप्त होता है। प्रत्येक १००० में तीन तीन शून्य होते हैं, इसलिये तीन स्थानों पर एक एक हजार के ९ शून्य + एक हजार गहराई के ३ शून्य + तीन स्थानों पर स्थित ७६८००० के ९ शून्य + तीन लाख के ५ शून्य और + एक लाख के ५ शून्य इन सर्व शून्यों को मिलाने पर (९+३+९+५+५)=३१ शून्य प्राप्त हुए। इन्हें $\frac{१६ \times ३ \times ७६८ \times ७६८ \times ७६८ \times ८ \times ८ \times ८ \times ८ \times ८}{९ \times ४}$ संख्या के आगे रखना चाहिये। उपरिम पाँच आठ (८, ८, ८, ८, ८) के अङ्कों में से एक ८ के अङ्क का गुणनखण्ड करने पर २×२×२ प्राप्त होते हैं। इन तीन दो (२, २, २,) के अङ्कों से उन्हीं उपरिम तीन आठ (८, ८, ८) के अंकों को गुणित करने से ८×२, ८×२, ८×२=१६×१६×१६ प्राप्त हुये। इन तीन १६ के अंकों का और उपरिम एक १६ के अंक का परस्पर गुणा करने से (१६×१६×१६×१६)=६५५३६ प्राप्त होते हैं। प्रत्येक ७६८ के २५६×३ गुणन खण्ड होते हैं। अर्थात् ७६८=२५६×३, ७६८=२५६×३, ७६८=२५६×३=२५६×२५६×२५६×३×३×३=६५५३६×२५६×३×९ गुणनखण्ड हुए। प्रथम प्राप्त हुए ६५५३६ को इस ६५५३६ में गुणित करने पर बादाल (४२=) प्राप्त होता है। हर में ९ और अंश में ४ बार तीन (३, ३, ३, ३) हैं, अतः हर के ९ और अंश के चारों ३, ३ के अंकों $\left(\frac{३ \times ३ \times ३ \times ३}{९}\right)$ का छेद करने से अंश में दो बार ३, ३ अर्थात् ९ प्राप्त होते हैं। हर के ४ से ऊपर अवशिष्ट बचे ८ का छेद करने से अंश में ($\frac{८}{४}$)=२ का अंक प्राप्त होता है। उपर्युक्त समस्त प्रक्रिया से गोल सरसों का (४२=(बादाल)×२५६×९×२ अर्थात् ४२=×२५६×१८ और ३१ शून्य) प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

अथ नवषोडशभाजिता बहुमित्यस्य वासनारूपनिष्पन्नक्षेत्रफलमुच्चारयति—

वासद्धघणं दलियं णवगुणियं गोलयस्स घणगणियं।
सव्वेसिंपि घणाणं फलत्तिभागप्पिया सूई ॥१९॥

व्यासार्द्धघनः दलितः नवगुणितः गोलकस्य घनगणितम्।
सर्वेषामपि घनानां फलत्रिभागात्मिका सूची॥ १९॥

वासद्ध। व्यासार्धघनो $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{१}{२}$ दलितः $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \div २$ नवगुणितो $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{९}{२}$ गोलकस्य घन गणितं $\frac{९}{१६}$ सर्वेषां घनानां फलत्रिभागात्मकं सूचीफलं भवति। एवंषोडशभाजिता बहु-मित्यस्य वासना निरूप्यते। एकव्यासंकवृत्तगोलकमर्धीकृत्यार्धमपहाय अवशिष्टार्धं पुनरपि खण्डत्रयं कृत्वा तत्राप्येकखण्डं गृहीत्वा तवप्यूर्ध्वाधश्छित्वा चतुरस्रं यथा तथा संस्थाप्य तत्र गोलकस्य[1] बहु-

---

१ इतिवृत्तस्येत्यस्य (ब० प०)।

मध्यदेशे विवक्षितस्थानेवेधसङ्ख्यायेऽपि पार्श्वेषु क्रमहानिसङ्ख्यासमचतुरस्रकरणार्थं हीनस्थाने एतावत् खण्डं निक्षिप्य $\frac{३}{४}$ समस्थले सति तदपि पुनस्तिर्यग्मध्यं छित्वा उपरि संस्थाप्य समच्छेदेन खण्डमपनीय "भुजकोटी" इत्यादिना खातफलमानीय एकखण्डस्यैतावति $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{३}{४}$ षण्णां खण्डानां किं फलमिति सम्पात्यापवर्त्य $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{३}{२} \times \frac{३}{४}$ गुणिते $\frac{१}{२} \times \frac{९}{४} \times \frac{१}{२}$ गोलकस्य घनगुणितमेवं नव षोडशभाजितेत्यस्य वासना ज्ञाता। त्रिभुजचतुर्भुजवृत्तक्षेत्राणां फलं "मुखभूमि जोग" इत्यादिना "भुजकोडी" इत्यादिना "वासो तिगुण" इत्यादिना यथाक्रममानीय त्रिभिर्भक्ते तत्तत्सूचीफलं भवति ॥१९॥

नव के सोलहवें भाग का भाग देने पर गोल वस्तु होती है, इसके वासना रूप उत्पन्न हुये क्षेत्रफल (खातफल) को कहते हैं :—

गाथार्थ :—व्यास के अर्ध भाग का घन करना चाहिये। उस घन का पुन: अर्ध भाग कर ९ का गुणा कर देना चाहिये। जो लब्ध प्राप्त हो वही गोलवस्तु का घनफल है। समस्त घनरूप क्षेत्रफल के तीसरे भाग प्रमाण सूचीफल अर्थात् शिखाफल होता है ॥१९॥

विशेषार्थ : गेंद आकार व्यास १ है। व्यास का अर्ध भाग $\frac{१}{२}$ और इस अर्धव्यास का घन $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{१}{२}$ है। अर्ध व्यास के घन का आधा $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \frac{१}{२}$ है। इस घन को ९ से गुणा करने पर $\frac{९}{१६}$ घनात्मक सर्व गोल वस्तु का घनफल होता है, और क्षेत्रफल का तीसरा भाग सूची का क्षेत्रफल होता है।

गेंद सदृश घनात्मक गोल वस्तु का घनफल (समचतुरस्र घनात्मक के घनफल का) $\frac{९}{१६}$ होता है, इसकी वासना का निरूपण किया जाता है :—

एक व्यास और एक खात (गहराई) वाले गेंद जैसी गोल वस्तु

(व्यास १) को आधा करके उसके एक अर्धभाग को छोड़ कर अवशिष्ट दूसरे अर्ध भाग 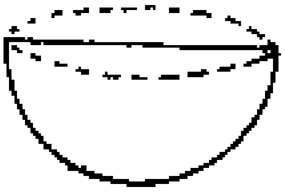

का उपरिम भाग जो कि पूर्ण वृत्त अर्थात् गोल 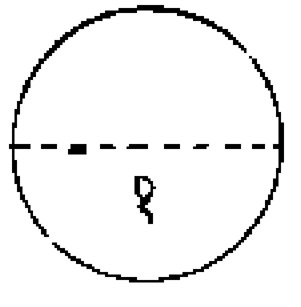

है उसे ग्रहण करना चाहिये। इस

ग्रहण किये हुये अर्ध भाग के तीन खण्ड

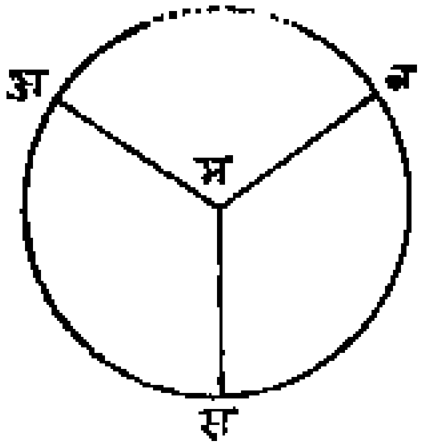

करना चाहिये। इन तीनों खण्डों में से ब-म-स खण्ड

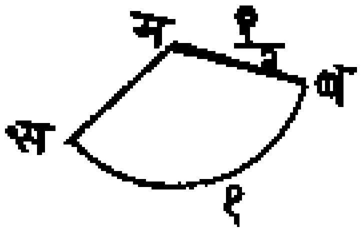

को ग्रहण करना चाहिये। इस तृतीयांश रूप खण्ड ऊपर से नीचे तक दो खण्ड

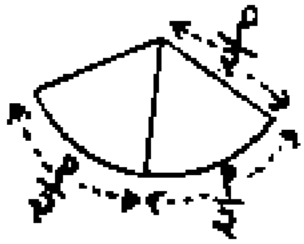

करके इस प्रकार रखना चाहिये कि चतुरस्र—

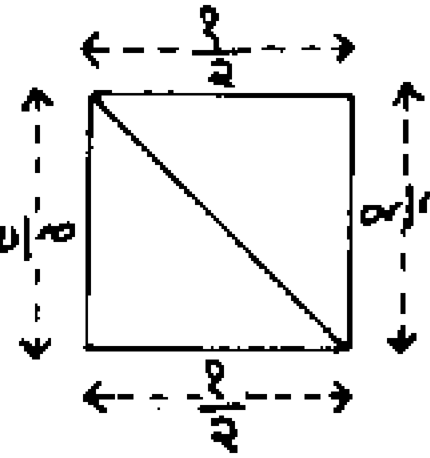

क्षेत्र बन जावे। उस गोलक खण्ड के बहुमध्य भाग में अर्थात् बीचों-बीच यद्यपि वेध ½ है तथापि दोनों पार्श्व भागों में क्रम से हीन

होता गया है। इस हीन स्थान में चतुर्थांश अर्थात् आधे का चौथाई (½ × ½) ऋणरूप से निक्षिप्त करने पर—

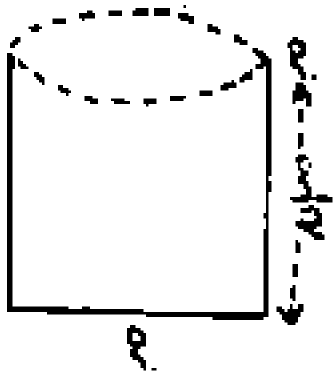

समस्थल हो जाता है। इसी समस्थल का तिर्यग्रूप से छेद कर ऊपर रख देने

एवं ऋण निकाल लेने पर [$\frac{१}{२}-(\frac{१}{२}\times\frac{१}{४})=\frac{१}{२}\times\frac{३}{४}$] वेध $\frac{१}{२}\times\frac{३}{४}$ 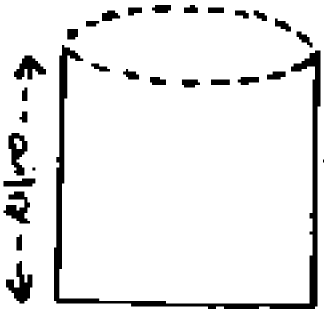

रह जाता है। अर्धगोलक के तीसरे खण्ड की भुजा $\frac{१}{२}$ और कोटि $\frac{१}{२}$ का परस्पर गुणा करने से ($\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}$) = $\frac{१}{४}$ क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इस $\frac{१}{४}$ क्षेत्रफल में वेध ($\frac{१}{२}\times\frac{३}{४}$) = $\frac{३}{८}$ है, अतः $\frac{१}{४}$ क्षेत्रफल को $\frac{१}{२}\times\frac{३}{४}$ ($\frac{३}{८}$) वेध से गुणित करने पर $\frac{१}{४}\times\frac{१}{२}\times\frac{३}{४}$ अर्धगोलक के तीसरे भाग का घनफल ($\frac{१}{४}\times\frac{१}{२}\times\frac{३}{४}$) प्राप्त होता है। पूर्ण गोलक में इसी प्रकार के ६ भाग होते हैं। जबकि अर्ध गोल गेंद के एक त्रिभाग का घनफल $\frac{१}{४}\times\frac{१}{२}\times\frac{३}{४}$ ($\frac{३}{३२}$) है तब पूर्ण गोल गेंद के ६ भागों का घनफल कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ६ भागों का घनफल $\frac{१}{४}\times\frac{१}{२}\times\frac{३}{४}\times\frac{६}{१}=\frac{१}{४}\times\frac{१}{२}\times\frac{३}{४}\times\frac{६}{१}=\frac{९}{१६}$ प्राप्त होता है। यही पूर्ण गोल का खातफल (घनफल) है। त्रिभुज क्षेत्र का क्षेत्रफल एवं घनफल "मुखभूमिजोगदले" गाथा १६३ के अनुसार, चतुर्भुज क्षेत्र का क्षेत्र फल और घनफल "भुजकोडि" गा० १२२ के अनुसार तथा वृत्तक्षेत्र का क्षेत्रफल और घनफल "वासो तिगुणो परिही" गा० १७ के अनुसार प्राप्त करना चाहिये। सूची-वेध को तिहाई से गुणित करने पर सूचीक्षेत्र का घनफल होता है।

अथ स्थूलफलराशिमुच्चारयति—

बादालं सोलसकदिसंगुणिदं दुगुणणवसमब्भत्थं ।
इगितीससुण्णसहियं सरिसवमाणं हवे पढमे ॥ २० ॥

बादालं षोडशकृतिसंगुणितं द्विगुणनवसमभ्यस्तम् ।
एकत्रिंशच्छून्यसहितं सर्षपमानं भवेत् प्रथमे ॥ २० ॥

बादालं। बादालं ४२ = षोडशकृति २५६ संगुणितं द्विगुणनव १८ समभ्यस्तं एकत्रिंशत्-शून्यसहितं सर्षपमानं भवेत् प्रथमे कुण्डे ॥ २० ॥

अब स्थूल क्षेत्रफल में सरसों का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—बादाल (४२=) को सोलह की कृति (२५६) से गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त हो उसमें दूने नव (१८) का गुणा कर ३१ शून्यों से सहित करने पर प्रथम अनवस्था कुण्ड के सरसों का प्रमाण प्राप्त होता है ॥२०॥

विशेषार्थ :—विशेष के लिये देखिये गाथा १८ का विशेषार्थ।

अर्थतद्गुणितफलमुच्चारयति—

विधुणिधिणगणरविणभणिधिणयणबलद्धिणिधिखराहत्थी ।
इगितीससुण्णसहिया जंबूए लद्ध मिद्धत्था ॥ २१ ॥

विधुनिधिनगनवरविनभोनिधिनयनबलर्द्धिनिधिखरहस्तिनः ।

एकत्रिंशच्छून्यसहिताः जम्बौ लब्धसिद्धार्थाः ॥ २१ ॥

विधु । एकनवसप्तनवद्वादशशून्यनवद्विनवनवनवषडष्टौ एकत्रिंशच्छून्यसहिताः जम्बूद्वीपे सर्षपसंख्या: १९७९१२०९२९९९६८०००००००००००००००००००००००००००००००० ॥ २१ ॥

इनको परस्पर गुणित करने से जो गुणनफल प्राप्त होता है, उसे कहते हैं—

गाथार्थ :—विधु, निधि, नग, नव, रवि, नभ, निधि, नयन, बल, ऋद्धि, निधि, खर और हाथी इनकी संख्याओं को ३१ शून्यों से सहित करने पर जम्बूद्वीपसदृश प्रथम अनवस्था कुण्ड के सरसों प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥

विशेषार्थ :— विधु चन्द्रमा का नाम है अतः विधु १, निधि ९, नग (पर्वत) ७ ९, रवि (सूर्य, राशि की अपेक्षा) १२, नभ ०, निधि ९, नयन २, बल (बलभद्र) ९, ऋद्धि ९, निधि ९, खर ६ तथा हाथी (दिग्गज) ८ इन समस्त संख्याओं को ३१ शून्यों से सहित करने पर निम्नलिखित प्रमाण प्राप्त होता है—१९७९१२०९२९९९६८०००००००००००००००००००००००००००००००० यह जम्बूद्वीप सदृश प्रथम अनवस्था कुण्ड के सरसों का प्रमाण है ।

सर्वेषां कुण्डानां सिद्धशिखाफलमुच्चारयति—

परिणाहेक्कारसमं भागं परिणाहछट्ठभागस्स ।

वग्गेण गुणं णियमा सिहाफलं सव्वकुंडाणं ॥२२॥

परिणाहैकादशभागः परिणाहषष्ठभागस्य ।

वर्गेण गुणं नियमात् शिखाफलं सर्वकुण्डानाम् ॥२२॥

परिणा । परिधे (३ल) रेकादशो भागः ($\frac{३ल}{११}$) परिधेः षष्ठभागस्य वर्गेण ($\frac{३ल}{६} \times \frac{३ल}{६}$) गुणितो नियमात् शिखाफ 'सर्वकुण्डानां भवति'[1] । अथ सिद्धफलस्य वासना कथमितिचेदाह । व्यासः त्रिगुणः परिधिः (३ल) व्यासचतुर्थाहतः ($३ल \times \frac{१ल}{४}$) क्षेत्रफलं परिध्येकादशभाग ($\frac{३ल}{११}$)–वेधेन गुणितं फलं ($३ल \times \frac{१ल}{४} \times \frac{३ल}{११}$) "फलत्रिभागमिव" इति आगतेन भागहारत्रिकेण समगुपरितनपरिधि त्रिकमपवर्त्य १ल व्यासचतुर्थांशस्य हारचतुष्कं विरलयित्वा ($\frac{३ल}{२} \times \frac{१ल}{२}$) गाथोक्तकारणार्थमुपर्यधश्च त्रिभिर्गुणितं दृष्ट्वा परिणाहेक्कारसमेत्याद्युक्तं । एतत्स्थूलफलं ($\frac{३ल}{६} \times \frac{३ल}{६} \times \frac{३ल}{११}$) पूर्ववत् व्यवहारयोजनादिकं कर्तव्यं ॥ २२ ॥

समस्त कुण्डों के सिद्ध हुए शिखाफल को कहते हैं :—

गाथार्थ :—परिधि के ग्यारहवें भाग को परिधि के छठवें भाग के वर्ग से गुणित करने पर समस्त कुण्डों का शिखाफल प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

---

१ ब०, प० प्रतौ 'भवति' नास्ति ।

विशेषार्थ :—कुण्ड का व्यास १ लाख योजन का होने से परिधि ३ लाख योजन की हुई। परिधि का ११ वाँ भाग $\frac{\text{परिधि}}{११}$ अथवा $\frac{३ल}{११}$ हुआ। इस $\frac{३ल}{११}$ को परिधि के छठवें भाग $(\frac{\text{परिधि}}{६})$ के वर्ग से गुणित करना है, $\frac{३ल}{११} \times \frac{३ल}{६} \times \frac{३ल}{६}$ का परस्पर में गुणा करने से समस्त कुण्डों का शिखाफल प्राप्त हो जाता है; क्योंकि शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका कुण्ड भी प्रथम अनवस्था कुण्ड के सदृश १ लाख योजन व्यास वाले हैं, अतः समस्त कुण्डों की शिखा समान होगी।

प्राप्तफल की वासना कैसे होती है ? उसे कहते हैं :—

व्यास से तिगुनी परिधि ($१ल \times ३$) $= ३ल$ हुई। इसको व्यास के चौथाई $(\frac{१ल}{४})$ से गुणित करने पर $३ल \times \frac{१ल}{४}$ क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इसको शिखा की ऊँचाई (वेध) $\frac{३ल}{११}$ से गुणित करने पर $३ल \times \frac{१ल}{४} \times \frac{३ल}{११}$ लब्ध प्राप्त होता है। 'फलतिभागप्पिय'' गा० १९ के अनुसार इसका ($३ल \times \frac{१ल}{४} \times \frac{३ल}{११}$) एक तिहाई करने से $३ल \times \frac{१ल}{४} \times \frac{३ल}{११} \times \frac{१}{३}$ शिखा का घनफल प्राप्त होता है। तिहाई के तीन से परिधि के ३ का छेद कर देने पर $१ल \times \frac{१ल}{४} \times \frac{३ल}{११}$ प्राप्त हुआ। $\frac{१}{४}$ के स्थान पर $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२}$ करने से $\frac{१ल}{२} \times \frac{१ल}{२} \times \frac{३ल}{११}$ प्राप्त हुआ। $\frac{१}{२}$ के अंश व हर को ३ से गुणित करने पर $\frac{३ल}{६} \times \frac{३ल}{६} \times \frac{३ल}{११}$ अथवा $(\frac{३ल}{६})^२ \times \frac{३ल}{११}$ हुआ। परिधि ३ल है, अतः ३ल के स्थान पर परिधि स्थापन करने से $(\frac{\text{परिधि}}{६})^२ \times \frac{\text{परिधि}}{११}$ अर्थात् परिधि के ११ वें भाग को परिधि के छठवें भाग के वर्ग से गुणा करने पर शिखा का घनफल प्राप्त होता है। यह स्थूल क्षेत्रफल है। पहिले के सदृश इनके भी व्यवहार योजन आदि बना लेना चाहिये।

अथ केषां केषां वेध परिध्येकादशभाग इत्याह—

तिलसरिसवचल्लाढइचणयतसिकुलत्थ रायमासादि ।
परिणाहेक्कारसमो वेहो जदि गयणगो रासी ॥२३॥

तिलसर्षपवल्लाढकीचणकातसिकुलत्थराजमाषादेः ।
परिध्येकादशो वेधो यदि गगनगो राशिः ॥ २३ ॥

तिल । तिलसर्षपवल्लाढकीचणकातसिकुलत्थराजमाषादेः परिध्येकादशो वेधो यदि गगनराशिः भवेत् ॥ २३ ॥

किन किन वस्तुओं का वेध (ऊँचाई) परिधि के ग्यारहवें भाग प्रमाण होता है, उसे कहते हैं:—

गाथार्थ :—आकाश को व्याप्त करने वाली तिल, सरसों, वल्ल, अरहड़ चना, अलसी, कुलत्थ और उड़द आदि की शिखाऊ राशि परिधि के ग्यारहवें भाग प्रमाण होती है ॥२३॥

विशेषार्थ :—तिल, सरसों आदि वस्तुओं के ढेर के मूल भाग की परिधि का जितना प्रमाण होता है आकाशगत ढेर का वेध (ऊँचाई) उसका ग्यारहवां भाग होता है जैसे :—पृथ्वी पर लगी हुई तिल की राशि की परिधि का प्रमाण ग्यारह हाथ है, तो वह राशि पृथ्वी से एक हाथ ऊँची होगी।

अथ गुणितराशिमुच्चारयति —

बेरूवतदियपंचमवग्गं अट्ठारसेहिं संगुणियं ।
तेत्तीससुण्णजुत्तं हरभजिदं जंबुदीवसिहा ।।२४।।

द्विरूपतृतीयपञ्चमवर्गः अष्टादशभिः संगुणितः ।
त्रयस्त्रिंशच्छून्ययुक्तः हरभक्तः जम्बूद्वीपशिखा ।।२४।।

बेरुव । **द्विरूपवर्गधारातृतीय (२५६) पञ्चमवर्गः (४२=) अष्टादशभिः संगुणितः त्रयस्त्रिंशच्छून्ययुक्तः हर (एकादश) भक्तश्चेत् जम्बूद्वीपशिखाफल भवति ।। २४ ।।**

अब गुणित राशि को कहते हैं :—

गाथार्थ :—द्विरूपवर्गधारा के तीसरे (२५६) और पाँचवें वर्गस्थान (बादाल) का परस्पर में गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त हो उसको १८ से गुणित कर तेतीस शून्यों से सहित करना चाहिये । इन्हीं लब्धाङ्कों में ११ का भाग देने से जम्बूद्वीप सदृश कुण्ड के ऊपर की हुई राशि के शिखाफल के गोल सरसों का प्रमाण प्राप्त होता है ।। २४ ।।

विशेषार्थ :— सुगम है ।

अथ सिद्धाङ्कमुच्चारयति—

इगिसगणवणवदुगणभणभट्ठचउपणचउक्कपणसोलं ।
सोलसछत्तीसजुदं हरहिदचउरो य पढमसिहा ।।२५।।

एकसप्तनवनवद्विकनभोनभोष्टचतुःपञ्चचतुष्क पञ्चषोडश ।
षोडशषट्त्रिंशद्युतं हरहितचतुष्कं च प्रथमशिखा ।। २५ ।।

इगि । **एकसप्तनवनवद्विकशून्यशून्याष्ट चतुःपञ्चचतुष्कपञ्चषोडशषोडशषट्त्रिंशद्युतं[1] एकादशभक्तचतुष्कं प्रथमकुण्डशिखाफलं भवति । १७९९२००८४५४५१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ $\frac{4}{11}$ ।। २५ ।।**

अब गुणनफल द्वारा प्राप्त हुए अंकों का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—एक, सात, नव, नव, दो, शून्य, शून्य, आठ, चार, पांच, चार, पाँच, सोलह और इसके आगे सोलह बार छत्तीस एवं चार का ग्यारहवाँ भाग प्रथम कुण्डकी शिखाके सरसों का प्रमाण है ।। २५ ।।

विशेषार्थ :—१७९९२००८४५४५१६३६ $\frac{4}{11}$ अङ्क प्रमाण जम्बूद्वीप सदृश प्रथम अनवस्था कुण्ड की शिखाके सरसों होते हैं ।

अथ कुण्डशिखयोः फलं मेलयित्वोच्चारयति—

वासद्धकदी तिगुणा वेहगुणेक्कारसहिदवासगुणा ।
एयारस पविभत्ता इच्छिदकुण्डाणमुभयफलम् ।। २६ ।।

---

१ हरहृतचतुष्कं $\frac{4}{11}$ (ब०, प०) ।

व्यासार्धकृतिः त्रिगुणा वेधगुणैकादशसहितव्यासगुणा ।
एकादशप्रविभक्ता इच्छितकुण्डानामुभयफलम् ॥ २६ ॥

वासना । 'व्यासार्धवर्गः $\frac{१ल}{२}\times\frac{१ल}{२}$ त्रिगुणो $\frac{१ल}{२}\times\frac{१ल}{२}\times३$ वेधगुणितैकादशसहितैकलक्षव्यासगुण एकादशप्रविभक्त $\frac{१ल}{२}\times\frac{१ल}{२}\times३\times\frac{१११०००}{११}$ ईप्सितकुण्डानामुभयफलं भवति । तद्यथा । "वासोतिगुणो परिही" इत्यादिना कुण्डफलमानीतं $३ल\times\frac{१ल}{४}\times१०००$ । "वासो" इत्यादि "परिणाहेक्कारसमं वेधेन गुणितं फलं तिभागविय" इति सूचीफलमानीतं $३ल\times\frac{१ल}{४}\times\frac{१ल}{११}\times\frac{१}{३}$ । पश्चात् कुण्डफलशिखाफलयोर्द्वयोः परिधिं "वासद्धकदी" इति गाथोच्चारितफलप्रदर्शनार्थं त्रिभिः सम्भेद्य तत्त्रिकमुभयत्र गुणकाररूपेण संस्थाप्य $१ल\times\frac{१ल}{४}\times३\times१०००$ यथायोग्यमपवर्त्य समच्छेदेनाङ्कस्याङ्कं लकारस्य लकारं वर्धयित्वा अधिकलक्षे इतराङ्क (११०००) मेलने उभयफलं स्यात् । इदं दृष्ट्वा 'वासद्धकदीत्यादि उक्तं । एतत्स्थूलफलं व्यवहारयोजनादिकं कर्तव्यम् ॥ २६ ॥

अब कुण्ड और शिखा दोनों के क्षेत्रफल को मिला कर कहते हैं :—

गाथार्थ :—व्यास के अर्धभाग का वर्ग कर उसको तिगुणा करना चाहिये, पुनः वेध को ११ से गुणित कर उसमें व्यास जोड़ना चाहिये । इस प्रकार प्राप्त हुई दोनों संख्याओं का परस्पर में गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त हो उसको ११ से भाजित करने पर विवक्षित कुण्ड और उसकी शिखा दोनों का सम्मिलित क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥२६॥

विशेषार्थ :—व्यास (१ल) के अर्ध भाग ($\frac{१ल}{२}$) के वर्ग $\frac{१ल}{२}\times\frac{१ल}{२}$ को तिगुना करने से $\frac{१ल}{२}\times\frac{१ल}{२}\times३$ प्राप्त होता है । कुण्ड की गहराई १००० योजन है, इसे ११ से गुणित (१०००×११ = ११०००) कर व्यास में जोड़ देने पर १११००० प्राप्त होते हैं, इसमें $\frac{१ल}{२}\times\frac{१ल}{२}\times३$ को गुणित करने से $\frac{१ल}{२}\times\frac{१ल}{२}\times३\times१११०००$ हुये । इन्हें ११ से भाजित करने पर कुण्ड और शिखा दोनों का सम्मिलित क्षेत्रफल $\frac{\frac{१ल}{२}\times\frac{१ल}{२}\times३\times१११०००}{११}$ प्राप्त होते हैं ।

तद्यथा—वासो तिगुणो परिही गा० १७ के अनुसार कुण्ड का क्षेत्रफल—$३ल\times\frac{१ल}{४}\times१०००$ प्राप्त होता है । "वासो" एवं गाथा २२ की टीकानुसार सूचीफल $३ल\times\frac{१ल}{४}\times\frac{१ल}{११}\times\frac{१}{३}$ है । गाथा २६ के अनुसार खातफल को सिद्ध करने के लिये, कुण्डफल और शिखाफल इन दोनों में परिधि को ३ से छेद कर और ३ को गुणकार रूप से रखने पर कुण्डफल ($१ल\times\frac{१ल}{४}\times१०००\times३$) और शिखाफल ($१ल\times\frac{१ल}{४}\times\frac{१ल}{११}\times३$) प्राप्त होता है । इन दोनों में $१ल\times\frac{१ल}{४}\times३$ समान हैं, तथा कुण्डफल में १०००, और शिखाफल में $\frac{१ल}{११}$ अधिक हैं । इन दोनों को जोड़ने पर ($१०००+\frac{१ल}{११}=\frac{११०००}{११}+\frac{१०००००}{११}$) $=\frac{१११०००}{११}$ प्राप्त होते हैं । इस प्रकार कुण्ड व शिखा इन दोनों का खातफल

---

1 व्यासार्धकृतिस्त्रिगुणो (ब०, प०,) ।

(१ल × $\frac{३ल}{४}$ × ३) × $\frac{१११०००}{११}$ अर्थात् ($\frac{१ल}{२}$ × $\frac{१ल}{२}$ × ३) × $\frac{१११०००}{११}$ अर्थात् ($\frac{व्यास}{२}$ × $\frac{व्यास}{२}$ × ३) × $\frac{१११०००}{११}$ अर्थात् $\frac{व्यास}{२}$ का वर्ग × ३ × $\frac{१११०००}{११}$ प्राप्त होता है। इसके व्यवहार योजन, अंगुल, यव, एवं गोल सरसों बनाना चाहिये।

शिखा सहित अनवस्था कुण्ड का चित्रण :—

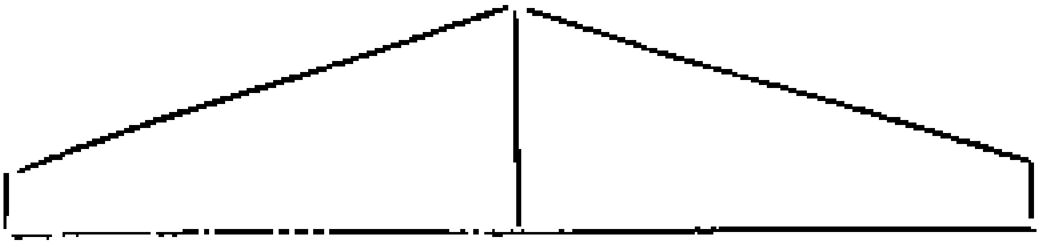

अथ राश्यङ्कमुच्चारयति—

बादालमट्ठघण इगिहीण सहस्साहदं एगारहिदं ।
इगितीससुण्णसहियं जंबूदीवुभयसिद्धत्था ॥ २७ ॥

बादालमष्टघनैकहीनसहस्राहतं एकादशहितम् ।
एकत्रिंशच्छून्यसहितं जंबूद्वीपोभयसिद्धार्थाः ॥ २७ ॥

बादाल। बादालं ४२= अष्टघन ५१२ एकहीनसहस्राभ्यां ९९९ आहतं ४२= × ५१२ × ९९९ एकादशहृतं ४२= × ५१२ × $\frac{९९९}{११}$ एकत्रिंशच्छून्यसहितं जम्बूद्वीपप्रमितकुण्डशिखाफलयोः सिद्धार्था ॥ २७ ॥

अत्र उपर्युक्त उभयफल में सरसों राशि के अङ्क कहते हैं—

गाथार्थ :—बादाल (४२=) को आठ के घन (५१२) एवं एक कम एक हजार (९९९) से गुणित कर ११ का भाग देने से जो लब्ध प्राप्त हो उसे ३१ शून्यों से सहित करने पर जम्बूद्वीप सदृश कुण्ड और उसकी शिखा, दोनों के क्षेत्रफल स्वरूप सरसों का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

विशेषार्थ :—सुगम है।

अथ परस्परगुणिताङ्कमुच्चारयति—

इगिणवणवसगिगिगिदुगणवतिण्णट्ठचउपणेक्कतिगिछक्कं ।
पण्णरछत्तीसजुदं हरहिदचउरो य पढमुभयं ॥ २८ ॥

एकनवनवसप्तैकैकद्विकनवत्रिअष्टचतुःपञ्चैकत्र्येकषट्कम् ।
पञ्चदशषट्त्रिंशद्युतं हरहितचतुष्कं च प्रथमोभयम् ॥ २८ ॥

इगिणव। एकनवनव सप्तैकैकद्विकनवत्रिअष्टचतुःपञ्चैकत्र्येकषट्कम् पञ्चदशषट्त्रिंशद्युतं हरहितचतुष्कं प्रथमानवस्थोभयफलं स्यात् ॥ १९९७११२९३८४५१३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ $\frac{४}{११}$ ॥ २८ ॥

अब परस्पर गुणा करने से जो अङ्क प्राप्त होते हैं, उन्हें कहते हैं :—

गाथार्थ :—एक, नव, नव, सात, एक, एक, दो, नव, तीन, आठ, चार, पाँच, एक, तीन, एक, छह, पन्द्रह जगह छत्तीस और चार का ग्यारहवाँ भाग यह प्रथम कुण्ड के उभय क्षेत्रफल के अंकों का प्रमाण है ॥ २८ ॥

विशेषार्थ :—१९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ $\frac{४}{११}$ यह प्रथम अनवस्था कुण्ड के उभय क्षेत्रफलों में सरसों के अङ्कों का प्रमाण है।

संख्या प्रमाण प्रारम्भ :—

१. जघन्यसंख्यात—संख्यात दो से प्रारम्भ होता है, अतः २ जघन्य संख्यात है।

२. मध्यमसंख्यात—जघन्य संख्यात में एकादि अङ्क द्वारा वृद्धि को प्राप्त तथा उत्कृष्ट संख्यात से एक एक अङ्क हीन तक के जितने विकल्प हैं वे सब मध्यम संख्यात हैं।

३. उत्कृष्ट संख्यात—जघन्य परीता संख्यात में से एक अङ्क हीन करने पर उत्कृष्टसंख्यात की प्राप्ति होती है।

अथ 'दुप्पहुदिसरिसवेहिं अणवत्था पूरयेदव्वा' इत्युक्त्वा तत्प्रसक्तानुप्रसक्त्या तदेतत्सम्बन्धं निरूप्येदानीं प्रकृतमनुसन्दधाति—

पुण्णा सइमणवत्था इदि एगं खिव सलागकुंडम्हि ।
तं मज्झिमसिद्धत्थे मदिए देवो व चित्तूणं ॥ २९ ॥
दीवसमुद्दे दिण्णे एक्केक्के परिसमप्पदे जत्थ ।
तो हिट्ठिमदी उवहीं कयगत्तो तेहिं भरिदव्वो ॥ ३० ॥

पूर्णा सकृदनवस्था इत्येकां क्षिपशलाकाकुण्डे ।
तन्मध्यसिद्धार्थान् मत्या देवो वा गृहीत्वा ॥ २९ ॥
द्वीपसमुद्रे दत्ते एकैकस्मिन् परिसमाप्यते यत्र ।
ततः अधस्तनद्वीपोदधिषु कृतगर्तस्तैः भर्तव्यः ॥ ३० ॥

पुण्णा सइ। पूर्णा सकृदनवस्था इत्येकां क्षिप शलाकाकुण्डे तन्मध्यसर्षपान् मत्या देवो वा गृहीत्वा ॥ २९ ॥

दीव। द्वीपे समुद्रे च दत्ते एकैकस्मिन् सर्षपे परिसमाप्यते यत्र तत् प्रारभ्य अधस्तन सर्वद्वीपोदधिषु प्राक्तनवेधप्रमाणेन (१०००) कृतगर्तः पुनस्तैः सर्षपैर्भर्तव्यः ॥ ३० ॥

४. गाथा १६ से २८ तक गाथा १५ में कहे हुये "दुप्पहुदि सरिसवेहिं अणवत्था पूरयेदव्वा" के प्रसङ्ग में कथन किया गया है। अब उसी गाथा १५ के सम्बन्ध को जोड़ते हुये (जघन्य परीतासंख्यात को) कहते हैं :—

गाथार्थ :—एक बार अनवस्था कुण्ड पूर्ण भर जाय तब एक सरसों शलाका कुण्ड में डालना चाहिये, तथा अनवस्था कुण्ड के जितने सरसों हैं, उन्हें बुद्धि द्वारा या देवों द्वारा ग्रहण कर प्रत्येक एक

एक द्वीप समुद्र में एक एक दाना डालते हुये जिस द्वीप या समुद्र पर दाने समाप्त हो जाँय वहाँ से नीचे के अर्थात् जम्बूद्वीप पर्यन्त पहिले के सभी द्वीप समुद्रों के (प्रमाण) बराबर एक कुण्ड बनाकर गोल सरसों से भरना चाहिये ॥ २९, ३० ॥

विशेषार्थ :— संख्या प्रमाण का ज्ञान कराने के लिये गाथा नं० १४ में चार कुण्डों की स्थापना की थी। उनमें से जम्बू द्वीप बराबर व्यास और सुमेरु की जड़ के बराबर गहराई वाले प्रथम अनवस्था कुण्ड को शिखा सहित गोल सरसों से पूर्ण भरकर एक सरसों शलाका कुण्ड में डालना चाहिये तथा अनवस्था कुण्ड की सरसों बुद्धि द्वारा या देवों द्वारा उठाकर एक एक दाना एक एक द्वीप समुद्र में डालते हुए जिस द्वीप या समुद्र पर सरसों समाप्त हो जाँय, वहीं से जम्बूद्वीप पर्यन्त व्यास वाला और १००० योजन गहरा दूसरा अनवस्था कुण्ड बनाकर गोल सरसों से भरना चाहिये।

अथ तस्य द्वितीयकुण्डस्य क्षेत्रफलानयनोपायभूतगच्छमाह :—

बिदिये पढमं कुंडं गच्छो तदिए दु पढमबिदियदुगं।
इदि सव्वपुव्वगच्छा तहिं तहिं सरिसवा सज्झा ॥ ३१ ॥

द्वितीये प्रथमं कुण्डं गच्छः तृतीये तु प्रथमद्वितीयद्विकम्।
इति सर्वपूर्वगच्छाः तैः तैः सर्षपाः साध्याः ॥ ३१ ॥

बिदिये। द्वितीयकुण्डसर्षपानयने प्रथमकुण्डसर्षप्रमाणं गच्छः, तृतीयकुण्डसर्षपानयने तु प्रथम-द्वितीयकुण्डसर्षपमानं गच्छः इति सर्वपूर्वपूर्वगच्छास्तैस्तैः सर्षपाः साध्याः तं तं गच्छं गृहीत्वा "रूऊणा-हियपद" इत्यादिना सूचीव्यासमानीय पश्चात् "वासो तिगुणो परिही" इत्यादिना तत्र तत्र कुण्डे सर्षपाः साध्याः इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

दूसरे आदि अनवस्था कुण्डों का प्रमाण लाने के लिये गच्छ का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :— दूसरे अनवस्था कुण्ड के लिये प्रथम कुण्ड के सरसों गच्छ हैं। तीसरे अनवस्था कुण्ड के लिये प्रथम और द्वितीय कुण्ड के सरसों गच्छ हैं। इसी प्रकार जो पूर्व पूर्व के गच्छ हैं, उन उन के द्वारा उत्तरोत्तर अनवस्था कुण्डों की सरसों का प्रमाण साधा जाता है ॥ ३१ ॥

विशेषार्थ :— दूसरे कुण्ड के सरसों का प्रमाण प्राप्त करने के लिये प्रथम कुण्ड के सरसों गच्छ स्वरूप हैं। तीसरे कुण्ड के सरसों के लिये प्रथम और द्वितीय कुण्डों के सरसों गच्छ स्वरूप हैं, तथा चौथे कुण्ड के सरसों के प्रमाण के लिये प्रथम, द्वितीय और तृतीय कुण्डों के सरसों का प्रमाण गच्छ है। इसी प्रकार सर्व पूर्व पूर्व गच्छों के द्वारा आगे के अनवस्था कुण्डों के सरसों का प्रमाण साधना चाहिये, और उन उन गच्छों को ग्रहण कर "रूऊणाहियपद" गाथा ३०९ में कहे गये करण-सूत्रानुसार द्वितीय आदि अनवस्था कुण्डों का सूची व्यास प्राप्त कर "वासोतिगुणोपरिहि" गा० १७ के करणसूत्रानुसार सूचीव्यास को ३ से गुणित कर परिधि का प्रमाण ज्ञात कर गाथा २६ के अनुसार घनफल निकाल कर सरसों का प्रमाण प्राप्त कर लेना चाहिये।

अथ तत्कुंडगर्ते भृते सति किं जातमित्यत्राह—

बिदिए वारे पुण्णे अणवट्ठिदमिदि सलागकुंडम्हि ।
पुणरपि णिक्खिविदव्वा अवरेगा सरिसवाण सला ॥ ३२ ॥

द्वितीये वारे पूर्णं अनवस्थितमिति शलाकाकुण्डे ।
पुनरपि निक्षेप्तव्या अपरैका सर्षपाणां शलाका ॥ ३२ ॥

बिदिए । द्वितीये वारे पूर्णं अनवस्थितकुण्डमिति शलाकागर्ते पुनरपि निक्षेप्तव्या अपरैका सर्षपाणां शलाका ॥ ३२ ॥

दूसरा अनवस्था कुण्ड भरने के बाद क्या करना चाहिये ? उसे कहते हैं :—

गाथार्थ :—दूसरी बार बनाये हुये अनवस्थित कुण्ड को पूर्ण भरकर पुन: एक दूसरी शलाका स्वरूप सरसों शलाका कुण्ड में डालना चाहिये ॥ ३२ ॥

विशेषार्थ :—द्वितीय बार बनाये हुये अनवस्थित कुण्ड को पूर्ण भरकर पुन: एक दूसरी शलाका स्वरूप सरसों शलाका कुण्ड में डालना चाहिये । जैसे—मान लो :—प्रथम अनवस्था कुण्ड १० सरसों से पूर्ण भरा गया था । एक एक द्वीप समुद्र में एक एक दाना डालने पर १० वें क्षीरवर समुद्र पर दाने समाप्त हो गये, अत: सुमेरु के पूर्व में जम्बूद्वीप का अर्ध भाग ½ लाख योजन + २ लाख लवण समुद्र + ४ लाख धातकी खण्ड + ८ लाख कालोदक समुद्र + १६ लाख पुष्करवर द्वीप + ३२ लाख यो० पुष्कर वर समुद्र + ६४ वारुणीवर द्वीप + १२८ लाख वारुणीवर समुद्र + २५६ लाख योजन क्षीरवर द्वीप + ५१२ लाख योजन क्षीरवर समुद्र = १०२२½ लाख योजन सुमेरु के पूर्व में और १०२२½ लाख योजन ही सुमेरु के पश्चिम में है अत: सम्पूर्ण व्यास (१०२२½ + १०२२½) = २०४५ योजन व्यास प्राप्त हुआ । जैसे :—

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]

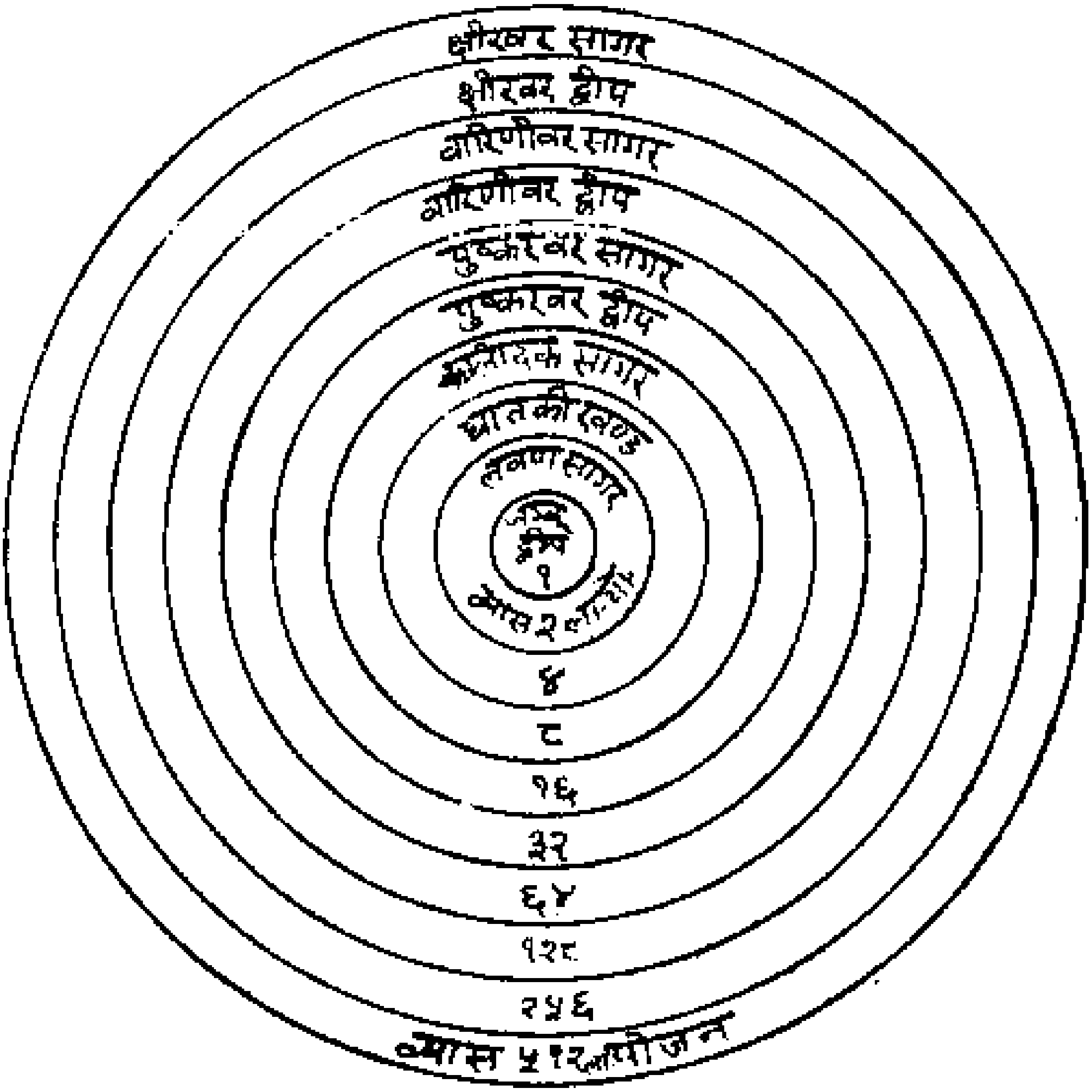

इस क्षीरवर समुद्र का व्यास २०४५ लाख योजन का है। व्यास की तिगुनी परिधि होती है, अत: २०४५ लाख × ३ = ६१३५ लाख योजन की परिधि हुई। परिधि $\frac{६१३५ \text{ लाख}}{१} \times \frac{२०४५ \text{ ला.}}{४}$ व्यास का चौथाई = ३१३६५१८७५०००००००० वर्ग योजन क्षेत्रफल हुआ। तथा $\frac{६१३५ \text{ ला०}}{१} \times \frac{२०४५ \text{ ला०}}{४} \times \frac{१०००}{१}$ वेध = ३१३६५१८७५००००००००००० घन योजन घनफल दूसरी बार बने हुये अनवस्था कुण्ड का प्राप्त हुआ। जैसे :—

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]

माना हुआ दूसरी वार अनवस्था कुण्ड :— गहराई १००० योजन है

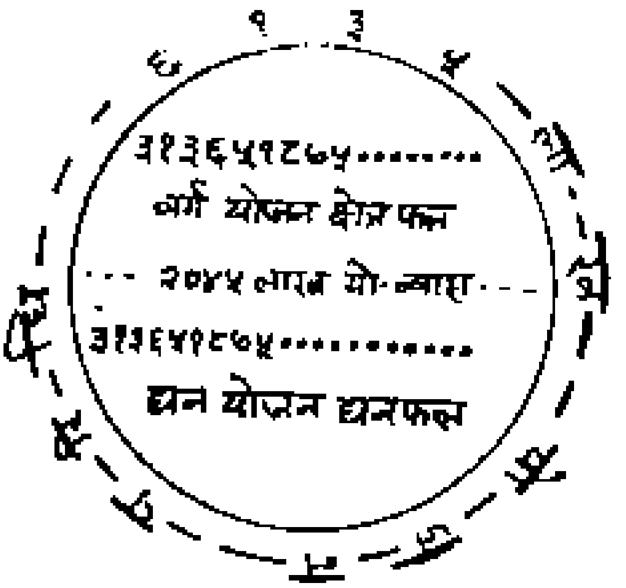

प्रथम कुण्ड के सदृश इस कुण्ड की शिखा का भी क्षेत्रफल निकालना चाहिये, तथा इस कुण्ड को भी शिखा सहित गोल सरसों से भरना चाहिये। यतः दश नम्बर तक दूसरी वार अनवस्था कुण्ड बन चुका है, अतः ग्यारहवें नम्बर से एक एक दाना एक एक द्वीप समुद्र में डालते हुये जहाँ सरसों समाप्त हो जाँय वहाँ से जम्बूद्वीप पर्यन्त व्यास वाला और १००० योजन गहराई वाला तीसरा अनवस्था कुण्ड भर कर शलाका कुण्ड में तीसरा सरसों का दाना डाल देना चाहिये।

अथैवं कृतेपि किमित्यत्राह—

एवं सलागभरणे रूवं णिक्खिवदु पडिसलागम्हि।
रित्तीकदेवि भरिदे अवरेगं पडिसलागम्हि ॥ ३३ ॥

एवं शलाकाभरणे रूपं निक्षिपतु प्रतिशलाकायाम्।
रिक्तीकृतेपि भृते अपरैकं प्रतिशलाकायाम् ॥ ३३ ॥

एवं। एवमेव शलाकाभरणे रूपं (एकं) निक्षिपतु प्रतिशलाकाकुण्डे रिक्तीकृतेपि भृते सति अपरैकं निक्षिपतु प्रतिशलाका कुण्डे ॥ ३३ ॥

इतना कर लेने पर आगे क्या करना है, उसे कहते हैं :—

गाथार्थ :— इसी क्रम से बढ़ते हुए जब शलाकाकुण्ड भर जाय तब एक दाना प्रतिशलाका कुण्ड में डालना और शलाकाकुण्ड को खाली करके पूर्वोक्त प्रकार ही पुनः उसे भर कर प्रतिशलाका कुण्ड में दूसरा दाना डालना चाहिए ॥ ३३ ॥

विशेषार्थ :— इसी प्रकार बढ़ते हुये व्यास के साथ हजार योजन गहराई वाले उतने वार अनवस्था कुण्ड बन जाँय, जितने कि प्रथम अनवस्था कुण्डमें सरसों थे, तब एक वार शलाका कुण्ड भरेगा। एक वार शलाका कुण्ड भरेगा तब एक सरसों प्रतिशलाका कुण्ड में डालकर शलाका कुण्ड

खाली कर दिया जायगा तथा जिस द्वीप या समुद्र की सूची व्यास सदृश अनवस्था कुण्ड बन चुका है उससे आगे के द्वीप समुद्रों में एक एक दाना डालते हुये जहां सरसों पुनः समाप्त हो जायें वहाँ से लेकर जम्बूद्वीप पर्यन्त नवीन अनवस्था कुण्ड बना कर भरा जायगा तब एक दाना शलाका कुण्ड में डाला जायगा। पुनः उस नवीन अनवस्था कुण्ड के सरसों ग्रहण कर आगे आगे के द्वीप समुद्रों में एक एक दाना डालते हुए जहाँ सरसों समाप्त हो जाँय, उतने व्यास वाला अनवस्था कुण्ड जब भरा जायगा तब शलाका कुण्ड में एक दाना और डाला जायगा। इस प्रकार करते हुये जब पुनः नवीन नवीन वृद्धिगत व्यास को लिये हुये प्रथम अनवस्था कुण्ड की सरसों के प्रमाण बराबर नवीन अनवस्था कुण्ड बन चुकेंगे तब शलाका कुण्ड भरेगा, और दूसरा दाना प्रतिशलाका में डाला जायगा।

अथैवं सत्यपि किमित्यत्राह—

एवं सावि य पुण्णा एगं णिक्खिव महासलागम्हि।
एसावि कमा भरिदा चत्तारि भरंति तक्काले॥ ३४॥
चरिमणवट्ठिदकुंडे सिद्धत्था जेत्तिया पमाणं तं।
अवरपरीतमसंखं रूऊणे जेट्ठ संखेज्जं॥ ३५॥

एवं सापि च पूर्णा एकं निक्षिप महाशलाकायाम्।
एषापि क्रमाद्भृता चत्वारि भ्रियन्ते तत्काले॥ ३४॥
चरमानवस्थितकुण्डे सिद्धार्थाः यावन्ति प्रमाणं तत्।
अवरपरीतमसंख्यं रूपोने ज्येष्ठं संख्येयम्॥ ३५॥

एवं सा। **एवमेव सापि च पूर्णेति एकं निक्षिपतु[1] महाशलाकाकुण्डे एषापि क्रमाद्भृता तस्मिन्नेव काले चत्वारि कुण्डानि भ्रियन्ते॥ ३४॥**

चरिम। **चरमानवस्थितकुण्डे सिद्धार्थाः यावन्ति प्रमाणानि तदवरपरीतासंख्यं। तत्र रूपे ऊने ज्येष्ठं संख्येयम्॥ ३५॥**

इस प्रकार करते हुए क्या होगा? उसे कहते हैं :—

गाथार्थ :—इस प्रकार जब प्रतिशलाका कुण्ड भी भर चुकेगा तब एक दाना महाशलाका कुण्ड में डाला जायगा। क्रम से भरते हुये जब (जितने काल में) ये चारों कुण्ड भर जायेंगे तब अन्त में जो अनवस्थित कुण्ड बनेगा उसमें जितने प्रमाण सरसों होंगे, वही जघन्यपरीतासंख्यात का प्रमाण होगा, इसमें से एक कम करने पर उत्कृष्ट संख्यात का प्रमाण प्राप्त होता है॥३४॥३५॥

विशेषार्थ :—इस प्रकार बढ़ते हुये क्रम से जितने सरसों प्रथम अनवस्था कुण्ड में थे, उसके वर्ग प्रमाण जब अनवस्था कुण्ड बन चुकेंगे, तब शलाका कुण्ड उतने ही सरसों प्रमाण बार भरेगा तब एक बार प्रति शलाका कुण्ड भरेगा और एक दाना महाशलाका में डाला जायगा। इस प्रकार

1 निक्षिप (ब०); निक्षिप्य (प०)।

क्रम से वृद्धिगत होने वाला अनवस्था कुण्ड जब प्रथम अनवस्था कुण्ड की सरसों के घन प्रमाण बन चुकेगा तब प्रथम अनवस्था कुण्ड की सरसों के वर्ग प्रमाण बार शलाका कुण्ड भरे जांयगे, तब प्रथम अनवस्था कुण्ड की सरसों प्रमाण बार प्रतिशलाका कुण्ड भरेंगे तब एक बार महाशलाका कुण्ड भरेगा।

मान लो :—प्रथम अनवस्था कुण्ड १० सरसों से भरा था, अतः बढ़ते हुये व्यास के साथ १० अनवस्था कुण्डों के बन जाने पर एक बार शलाका कुण्ड भरेगा तब एक दाना प्रतिशलाका कुण्ड में डाला जायगा। इसी प्रकार वृद्धिगत व्यास के साथ १० का वर्ग अर्थात् १०×१०=१०० अनवस्था कुण्डों के बन जाने पर १० बार शलाका कुण्ड भरेगा, तब एक बार प्रतिशलाका कुण्ड भरेगा, तब १ दाना महाशलाका कुण्ड में डाला जायगा। इसी प्रकार बढ़ते हुये व्यास के साथ १० के घन अर्थात् १०×१०×१०=१००० अनवस्था कुण्डों के बन जाने पर १० के वर्ग अर्थात् १०×१०=१०० बार शलाका कुण्ड भरेगा तब १० बार प्रतिशलाका कुण्ड भरेगा और तब एक बार महाशलाका कुण्ड भरेगा। जैसे :—

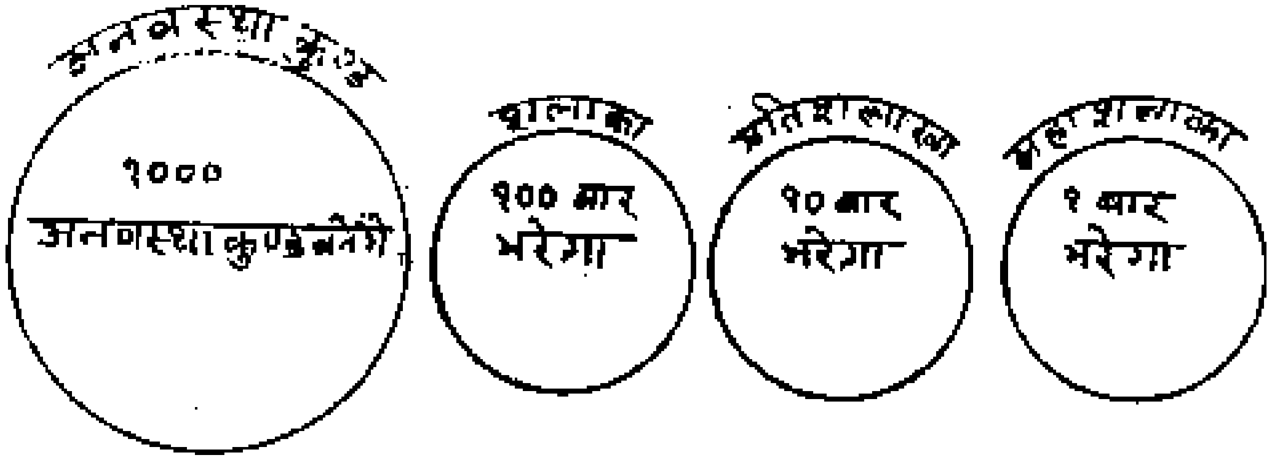

इस प्रकार इस अन्तिम अनवस्था कुण्ड में शिखा सहित गोल सरसों की जितनी संख्या है, वह संख्या जघन्य परीतासंख्यात की है। उसमें से एक अङ्क कम करने पर उत्कृष्ट संख्यात का प्रमाण प्राप्त होता है।

अथैतदेव धृत्वा संख्यातानन्तोत्पत्तिभेदप्रभेदं षोडशगाथयाह—

अवरपरित्तस्सुवरिं एगादीवड्ढिदे हवे मज्झं।
अवरपरित्तं विरलिय तमेव दादूण संगुणिदे ॥ ३६ ॥
अवरं जुत्तमसंखं आवलिसरिसं तमेव रूऊणं।
परिमिदवरमावलिकिदि दुगवारवरं विरूव जुत्तवरं ॥३७॥

अवरपरीतस्योपरि एकादिवर्द्धिते भवेन्मध्यम।
अवरपरीतं विरलय्य तदेव दत्वा संगुणिते ॥ ३६ ॥
अवरं युक्तमसंख्यं आवलिसदृशं तदेव रूपोनम्।
परिमितवरं आवलिकृतिर्द्विकवारावरं विरूपं युक्तवरम् ॥३७॥

अवर । अवरपरीतस्योपरि एकाद्विके वृद्धे सति भवेन्मध्यं जघन्यपरीतमेकैकरूपेण विरलय्य तदेव जघन्यपरिमितं रूपं प्रति दत्त्वा संगुणिते ॥ ३६ ॥

अवरं जघन्ययुक्तासंख्यं स्यात् । एतदेवावलिसदृशं । तदेव रूपोनं परिमितासंख्यातवरं आवलि-कृतिः द्विकवारासंख्यातजघन्य तदेव विगतरूपं चेत् युक्तासंख्यातोत्कृष्टं स्यात् ॥ ३७ ॥

अब इसी प्रमाण को मानकर असंख्यात और अनन्त की उत्पत्ति एवं उनके भेद-प्रभेदों को सोलह गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—जघन्यपरीतासंख्यात के ऊपर एक आदि अङ्क की वृद्धि हो जाने पर मध्यम-परीतासंख्यात होता है । जघन्यपरीतासंख्यात का विरलन कर प्रत्येक एक अंक पर उसी जघन्यपरीता-संख्यात को देय देकर परस्पर गुणा करने से जघन्ययुक्तासंख्यात प्राप्त होता है जो आवली सदृश है । अर्थात् आवली के समय जघन्ययुक्तासंख्यात प्रमाण हैं । इस प्रमाण में से एक अंक कम कर देने पर उत्कृष्टपरीतासंख्यात प्राप्त है । आवली प्रमाण जघन्ययुक्तासंख्यात का वर्ग करने से जघन्यअसंख्याता-संख्यात का प्रमाण आता है, और इसमें से एक अंक कम कर देने पर उत्कृष्टयुक्तासंख्यात प्राप्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

विशेषार्थ :—

५ **मध्यमपरीतासंख्यात :—**जघन्यपरीतासंख्यात से एक आदि अङ्क द्वारा वृद्धि को प्राप्त तथा उत्कृष्टपरीतासंख्यात से एक अंक हीन तक के जितने विकल्प हैं, वे सब मध्यमपरीता-संख्यात हैं ।

६ **उत्कृष्टपरीतासंख्यात :—**जघन्ययुक्तासंख्यात में से एक अंक कम कर देने पर उत्कृष्ट-परीतासंख्यात प्राप्त होता है ।

७ **जघन्ययुक्तासंख्यात :—**जघन्यपरीतासंख्यात का विरलन कर प्रत्येक एक एक अङ्क पर जघन्यपरीतासंख्यात ही देय देकर परस्पर गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त हो उतनी संख्या प्रमाण जघन्ययुक्तासंख्यात प्राप्त होता है, जो आवली सदृश है । अर्थात् जघन्ययुक्तासंख्यात की जितनी संख्या है उतने समयों की एक आवली होती है । जैसे—मानलो :—अंक संदृष्टि में जघन्यपरीतासंख्यात = ८ है, अतः जघन्यपरीतासंख्यात (८) का विरलन कर उसी को देय देकर परस्पर गुणा करने से— ($\overset{८}{१}$ $\overset{८}{१}$ $\overset{८}{१}$ $\overset{८}{१}$ $\overset{८}{१}$ $\overset{८}{१}$ $\overset{८}{१}$ $\overset{८}{१}$ = १६७७७२१६) जघन्ययुक्तासंख्यात का प्रमाण हुआ । अथवा—जघन्य-परीतासंख्यात = जघन्ययुक्तासंख्यात । (जघन्यपरीतासंख्यात$^{\text{जघन्यपरीतासंख्यात}}$) ।

८ **मध्यमयुक्तासंख्यात :—**जघन्ययुक्तासंख्यात से एक अधिक और उत्कृष्टयुक्तासंख्यात से एक कम करने पर जितने विकल्प बनते हैं वे सब मध्यमयुक्तासंख्यात हैं ।

९ **उत्कृष्टयुक्तासंख्यात :—**जघन्यअसंख्यातासंख्यात में से एक घटाने पर जो प्राप्त होता है, वह उत्कृष्टयुक्तासंख्यात का प्रमाण है ।

१० जघन्य असंख्यातासंख्यात :—आवली जो जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण है, उसकी कृति (वर्ग) करने पर जघन्य असंख्यातासंख्यात का प्रमाण प्राप्त होता है।

११ मध्यम असंख्यातासंख्यात :—जघन्य असंख्यातासंख्यात से एक एक अंक द्वारा वृद्धि को प्राप्त तथा उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात से एक अंक हीन तक के जितने विकल्प हैं, वे सब मध्यम असंख्यातासंख्यात हैं।

१२ उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात :—जघन्यपरीतानन्त में से एक अंक कम कर देने पर उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात होता है।

१३ जघन्यपरीतानन्त का स्वरूप :—

अवरे सलागविरलणदिज्जे बिदियं तु विरलिदूण तहिं।
दिज्जं दाऊण हदे सलागदो [1]रूवमवणिज्जं ॥ ३८ ॥
तत्थुप्पण्णं विरलिय तमेव दाऊण संगुणं किच्चा।
अवणय पुणरवि रूवं पुव्विल्लसलागरासीदो ॥ ३९ ॥
एवं सलागरासिं णिट्ठाविय तत्थतणमहारासिं।
किच्चा तिप्पडि विरलणदिज्जादी कुणदि पुव्वं व ॥ ४० ॥

अवरे शलाकाविरलनदेये द्वितीयं तु विरलय्य तस्मिन्।
देयं दत्वा हते शलाकातः रूपमपनेतव्यम् ॥ ३८ ॥
तत्रोत्पन्नं विरलय्य तदेव दत्वा संगुणं कृत्वा।
अपनयेत् पुनरपि रूपं पूर्वतनशलाकाराशितः ॥ ३९ ॥
एवं शलाकाराशिं निष्ठाप्य तत्रतनमहाराशिम्।
कृत्वा त्रिःप्रति विरलनदेयादि करोति पूर्वं व ॥ ४० ॥

अवरे। द्विकवारासंख्यातजघन्ये शलाकाविरलनदेयमानरूपेण त्रिधा कृते तत्र द्वितीयं विरलय्य तस्मिन् विरलिते देयं दत्वा अन्योन्यहतमिति शलाकाराशितःरूपमपनेतव्यम् ॥ ३८ ॥

तत्थुप्पण्णं। तत्रान्योन्याभ्यस्तं विरलय्य तदेव दत्वा संगुणं कृत्वा अपनयेत् पुनरपि रूपं पूर्वतनशलाकाराशितः ॥ ३९ ॥

एवं सला। एवं शलाकाराशिं निष्ठाप्य तत्रतनान्योन्याभ्यस्तमहाराशिं कृत्वा त्रिःप्रतिविरलन-देयादि पूर्वमिव शलाकात्रयनिष्ठापनं कुर्यात् ॥ ४० ॥

गाथार्थ :—जघन्य असंख्यातासंख्यात को शलाका, विरलन और देय रूप से स्थापन कर दूसरी विरलन राशि का विरलन कर प्रत्येक एक एक अंक पर देय राशि देकर परस्पर गुणा करना, और शलाका राशि में से एक अंक घटा देना चाहिये। उपर्युक्त देय राशि का परस्पर गुणा करने से

---

१ रूवमवणेज्जं (ब०)।

उत्पन्न हुई महाराशि का विरलन कर प्रत्येक अङ्क पर उसी को देय देना, और परस्पर गुणा कर शलाका राशि में से एक अङ्क घटा देना चाहिये। इस प्रकार शलाका राशि को समाप्त करने पर जो महाराशि उत्पन्न हो उसे पूर्वोक्त प्रकार विरलन, देय और शलाका के रूप में तीन प्रकार स्थापन करना चाहिये ॥ ३८, ३९, ४० ॥

विशेषार्थ :—जघन्य असंख्यातासंख्यात की शलाका, विरलन और देय राशि रूप मे तीन जगह स्थापन करना चाहिये। विरलन राशि का एक एक अंक विरलन कर देय राशि उस प्रत्येक अंक के प्रति देय देकर परस्पर गुणा करने के बाद शलाका राशि में मे एक घटा देना चाहिये। परस्पर के गुणन मे उत्पन्न हुई राशि का पुनः विरलन कर उसी प्रकार देय देकर परस्पर गुणा करने के बाद शलाका राशि में मे दूसरी बार एक अंक और घटा देना चाहिये। परस्पर के गुणन से प्राप्त हुये लब्धको पुनः विरलन कर उसी को देय देकर परस्पर गुणा करने के बाद शलाका राशि में से तीसरी बार एक अंक घटा देना चाहिये। इसी प्रकार पुनः पुनः विरलन, देय, गुणन और ऋण रूप क्रिया तब तक करना चाहिये जब तक कि शलाका राशि समाप्त न हो जाय। (यह एक बार शलाका राशि की समाप्ति हुई) इस प्रथम शलाका राशि के समाप्त हो जाने पर जो महाराशि उत्पन्न हो उसे पुनः पूर्वोक्त प्रकार से शलाका, विरलन एवं देय रूप से स्थापन करना चाहिये, तथा इस महाराशि का विरलन, देय, गुणन और ऋण रूप प्रक्रिया को पुनः पुनः तब तक करना चाहिये जब तक कि एक एक अंक घटाते घटाते शलाका रूप महाराशि की समाप्ति न हो जाय। (यह द्वितीयबार शलाका राशि की समाप्ति हुई) इस द्वितीय शलाका राशि के समाप्त होने पर जो महाराशि उत्पन्न हो उसे पुनः शलाका विरलन और देय रूप से स्थापित कर तृतीयबार उपर्युक्त विरलनादि क्रिया को तब तक करना जब तक कि एक एक अंक घटाते घटाते महाराशि स्वरूप शलकाराशि की परिसमाप्ति न हो जाय। (यह तृतीय बार शलाकाराशि की समाप्ति हुई)

उपर्युक्त समस्त क्रिया को शलाकात्रयनिष्ठापन (समाप्ति) भी कहते हैं।

एवं बिदियसलागे तदियसलागे च णिट्ठिदे तत्थ।
जं मज्झासंखेज्जं तहिमेदे पक्खिवेदव्वा ॥ ४१ ॥
धम्माधम्मिगिजीवगलोगागासप्पदेसपत्तेया।
तत्तो असंखगुणिदा पदिट्ठिदा छप्पि रासीओ ॥४२॥
तं कयतिप्पडिरासिं विरलादिं करिय पढमबिदियसलं।
तदियं च परिसमाणिय पुव्वं वा तत्थ दायव्वा ॥ ४३ ॥
कप्पठिदिबंधपच्चयरसबंधज्झवसिदा असंखगुणा।
जोगुक्कस्सविभागप्पडिच्छिदा बिदियपक्खेवा ॥ ४४ ॥
तं रासिं पुव्वं वा तिप्पडि विरलादिकरणमेत्थ किदे।
अवरपरित्तमणंतं रूऊणमसंखसंखवरं ॥ ४५ ॥

एवं द्वितीयशलाकायां तृतीयशलाकायां च निष्ठितायां तत्र ।
यत् मध्यासंख्यातं तस्मिन् एते प्रक्षेप्तव्याः ॥ ४१ ॥
धर्माधर्मैकजीवक लोकाकाशप्रदेशप्रत्येकाः ।
ततः असंख्यगुणिताः प्रतिष्ठिताः षडपि राशयः ॥ ४२ ॥
तं कृतत्रिःप्रतिराशि विरलनादि कृत्वा प्रथमद्वितीय शलाकाम् ।
तृतीयां च परिसमाप्य पूर्वं वा तत्र दातव्याः ॥ ४३ ॥
कल्पस्थितिबन्धप्रत्ययरसबन्धाध्यवसिता असंख्यगुणाः ।
योगोत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदाः द्वितीयप्रक्षेपाः ॥ ४४ ॥
तं राशि पूर्वं वा त्रिः प्रति विरलनादिकरणं अत्र कृते ।
अवरपरीतमनन्तं रूपोनमसंख्यासंख्यवरम् ॥ ४५ ॥

एवं । एवं द्वितीयशलाकायां तृतीयशलाकायां च निष्ठापितायां सत्यां तत्र यन्मध्यमासंख्यातं जातं तस्मिन् एते अग्रे वक्ष्यमाणा राशयः प्रक्षेप्तव्याः ॥ ४१ ॥

धम्मा । धर्माधर्मैकजीवलोकाकाशप्रदेशाः अप्रतिष्ठितप्रत्येकाः ततो लोकाकाशप्रदेशासंख्यातगुणिताः ≡ ९ । ततोपि प्रतिष्ठितप्रत्येका अपरैकासंख्यातलोकगुणिताः ≡ ९ × ≡ ९ । एते षडपि राशयः प्रक्षेप्याः ॥ ४२ ॥

तं कय । तं कृतत्रिःप्रतिराशि विरलादि कृत्वा प्रथमशलाकां द्वितीयशलाकां तृतीयशलाकां च परिसमाप्य पूर्वमिव एते तत्र दातव्याः ॥ ४३ ॥

कप्पठिदि । कल्पः संख्यातपल्यमात्रः, ततः स्थितिबन्धप्रत्ययाः असंख्यातलोकगुणिताः ≡ ९, ततः रसबन्धाध्यवसिताः असंख्यातलोकगुणाः ≡ ९ × ≡ ९, ततो योगोत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदाः असंख्यातलोकगुणाः ≡ ९ × ≡ ९ × ≡ ९ । एते द्वितीयप्रक्षेपाः ॥ ४४ ॥

तं रासि । तं राशिं पूर्वमिव त्रिःप्रति[1] कृत्वा विरलनादिकरणं च विधाय अस्मिन् कृते अवरपरीतानन्तं तत् रूपोनं चेत् असंख्यातासंख्यातवरम् ॥ ४५ ॥

गाथार्थ :—इसप्रकार द्वितीय शलाका और तृतीय शलाका का निष्ठापन होने पर (शलाकात्रय की परिसमाप्ति होने पर) जो मध्यम असंख्यातासंख्यात स्वरूप राशि उत्पन्न हो उसमें (असंख्यात प्रदेशी) (१) धर्म द्रव्य (२) अधर्मद्रव्य (३) एक जीव द्रव्य और (४) लोकाकाश । इन सबके प्रदेश तथा (५) अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवों का प्रमाण जो कि लोकाकाश के प्रदेशों से असंख्यात गुणा है । तथा (६) प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति जीवों का प्रमाण जो कि अप्रतिष्ठित जीव राशि से असंख्यात गुणा है । ये छह राशियाँ मिला देना चाहिये ।

---

१ त्रिःप्रतिकं (ब०, प०) ।

इस योग फल द्वारा मध्यम असंख्यातासंख्यात रूप जो महाराशि उत्पन्न हो उसको उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा शलाका विरलन एवं देय रूपसे स्थापित कर पुनः पुनः विरलन देय, गुणन और ऋण रूप क्रिया के द्वारा प्रथम शलाका राशि, द्वितीय शलाका राशि और तृतीय शलाका राशि की पूर्ववत् परिसमाप्ति होने के बाद जो महाराशि उत्पन्न हो उसमें (१) उत्सर्पिणी अवसर्पिणी स्वरूप कल्प काल (जो संख्यात पल्य मात्र है) के समयों का प्रमाण (२) स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान जो कल्प काल के समयों से असंख्यातलोक गुणे हैं। (३) अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान जो स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान से असंख्यात गुणे हैं। (४) योग के उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेद जो अनुभाग बंधाध्यवसाय स्थान से असंख्यात गुणे हैं। ये चार राशियाँ दूसरा प्रक्षेप है। अर्थात् पहिले छह राशियाँ मिलाईं थीं पुन ये चार राशियाँ मिलाईं।

इन चारों राशियों को मिलाकर जो महाराशि प्राप्त हुई उसका पूर्वोक्त प्रकार शलाका, विरलन और देय रूपसे स्थापन कर पुनः पुनः विरलन, देय, गुणन और ऋण रूप क्रिया करके शलाका त्रय निष्ठापन (समाप्त) करना चाहिये। इस अन्तिम प्रक्रिया से जो राशि उत्पन्न हो वह जघन्य परीतानन्त का प्रमाण है। इसमें से एक अङ्क घटाने पर उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ४१ से ४५ ॥

विशेषार्थः—गाथार्थ स्पष्ट है।

अवरपरित्तं विरलिय दाऊणेदं परोप्परं गुणिदे।
अवरं जुत्तमणंतं अभव्वसममेत्थ रूऊणे ॥ ४६ ॥
जेट्ठपरित्ताणंतं वग्गे गहिदे जहण्णजुत्तस्स।
अवरमणंताणंतं रूऊणे जुत्तणंतवरं ॥ ४७ ॥

अवरपरीतं विरलय्य दत्त्वा इदं परस्परं गुणिते।
अवरं युक्तमनन्तं अभव्यसमं अत्र रूपोने ॥ ४६ ॥
ज्येष्ठपरीतानन्तं वर्गे गृहीते जघन्ययुक्तस्य।
अवरं अनन्तानन्तं रूपोने युक्तानन्तवरम् ॥ ४७ ॥

अवरपरित्तं। जघन्यपरिमितानन्तं[1] विरलय्य तदेव दत्त्वा तस्मिन् राशौ परस्परं गुणिते अवरं युक्तानन्तं अभव्यसमं। अत्र रूपोने[2] सति ज्येष्ठपरीतानन्तं भवति। जघन्ययुक्तानन्तस्य वर्गे गृहीते अवरमनन्तानन्तं स्यात्। अत्र रूपोने[3] कृते युक्तानन्तस्य वरं स्यात् ॥४६-४७॥

१४ **मध्यमपरीतानन्त**:—जघन्यपरीतानन्त से एकादि अंक द्वारा वृद्धि को प्राप्त तथा उत्कृष्टपरीतानन्त से एक अंक हीन तक के जितने विकल्प हैं। वे सब मध्यमपरीतानन्त हैं।

१५ **उत्कृष्टपरीतानन्त**:—जघन्ययुक्तानन्त में से एक अङ्क कम कर देने पर उत्कृष्टपरीतानन्त प्राप्त होता है।

---

१ जघन्यपरीतानन्तं (ब०, प०)। २ रूपे ऊने (ब०, प०)। ३ रूपे ऊने (ब०, प०)।

१६ जघन्ययुक्तानन्त का स्वरूप :—

गाथार्थ :—जघन्यपरीतानन्त का विरलन कर प्रत्येक अंक पर जघन्यपरीतानन्त ही देय देकर परस्पर गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त हो उतनी संख्या प्रमाण (जघन्यपरीतानन्त) जघ० प० अनन्त = जघन्ययुक्तानन्त होता है, जो अभव्य राशि के सदृश है। अर्थात् जघन्ययुक्तानन्त की जितनी संख्या होती है, उतनी संख्या प्रमाण अभव्य राशि है। इसमें से एक अङ्क घटाने पर उत्कृष्टपरीतानन्त होता है। तथा जघन्ययुक्तानन्त का वर्ग ग्रहण करने पर जघन्य अनन्तानन्त होता है, और इसमें से एक अङ्क घटा देने पर उत्कृष्टयुक्तानन्त प्राप्त होता है॥ ४६, ४७॥

विशेषार्थ :— गाथा अर्थ स्पष्ट है।

१७ **मध्यमयुक्तानन्त** :—जघन्ययुक्तानन्त से एक अङ्क अधिक और उत्कृष्टयुक्तानन्त से एक अंक हीन करने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है, वह सब मध्यमयुक्तानन्त है।

१८ **उत्कृष्टयुक्तानन्त** :—जघन्यअनन्तानन्त में से एक अंक घटाने पर जो लब्ध प्राप्त होता है, वह उत्कृष्टयुक्तानन्त है।

१९ **जघन्यअनन्तानन्त** :—जघन्ययुक्तानन्त का वर्ग (कृति) करने पर जघन्यअनन्तानन्त प्राप्त होता है।

२० **मध्यमअनन्तानन्त**:—जघन्यअनन्तानन्त से एक अंक अधिक और उत्कृष्टअनन्तानन्त से एक अंक हीन तक के सभी विकल्प मध्यम अनन्तानन्त हैं।

२१ उत्कृष्टअनन्तानन्त का स्वरूप :—

अवराणंताणंतं तिप्पडि रासिं करित्तु विरलादिं।
तिसलागं च समाणिय लद्धे दे पक्खिवेदव्वा ॥४८॥
सिद्धा णिगोदसाहियवणप्फदिपोग्गलपमा अणंतगुणा।
काल अलोगागासं छच्चेदेणंतपक्खेवा ॥४९॥
तं तिण्णिवारवग्गिदसंवग्गं करिय तत्थ दायव्वा।
धम्माधम्मागुरुलघुगुणाविभागप्पडिच्छेदा ॥५०॥
लद्धं तिवार वग्गिदसंवग्गं करिय केवले णाणे।
अवणिय तं पुण खित्ते तमणंताणंतमुक्कस्सं ॥५१॥

अवरानन्तानन्तं त्रिःप्रतिराशिं कृत्वा विरलनादि।
त्रिशलाकां च समाप्य लब्धे एते प्रक्षेप्तव्याः॥ ४८॥
सिद्धा निगोदसाधिकवनस्पति पुद्गलप्रभा अनन्तगुणाः।
काल अलोकाकाशं षट् चैते अनन्तप्रक्षेपाः॥ ४९॥

तं त्रिवारवर्गितसंवर्गं कृत्वा तत्र दातव्याः ।
धर्माधर्मागुरुलघुगुणाविभाग प्रतिच्छेदाः ॥ ५० ॥
लब्धं त्रिवारं वर्गितसंवर्गं कृत्वा केवलज्ञाने ।
अपनीय तं पुनः क्षिप्ते समनन्तानन्तमुत्कृष्टम् ॥ ५१ ॥

अवरा । अवरानन्तानन्तं राशिं त्रिःप्रतिकं कृत्वा विरलनादिकं त्रिशलाकां च समाप्य अत्र लब्धे एते प्रक्षेप्तव्याः ॥ ४८ ॥

सिद्धा । सिद्धराशिः ३ जीवराशेः (१६) अनन्तैक भागः, ततोऽनन्तगुणः पृथिव्यादिचतुष्टय-प्रत्येकवनस्पतित्रसराशिभिर्न्यूनसंसारिराशिरेव १३ = निगोदराशिः, निगोदराशेः सकाशात् वनस्पति-राशिः प्रत्येकेन साधिकः १३ = । ततो जीवराशेरनन्तगुणः पुद्गलराशिः १६ ख, ततोऽनन्तगुणः[1] काल-राशिः १६ ख ख, ततोऽप्यनन्तगुणः अलोकाकाशराशिः १६ ख ख ख । षडेते अनन्तरूप-प्रक्षेपाः ॥ ४९ ॥

तं तिविगु । तं राशिं त्रिवारवर्गितसंवर्गं कृत्वा त्रिःप्रति विरलनादिकं त्रिशलाकां च समाप्येत्यर्थः । तत्र राशौ दातव्याः धर्माधर्मद्रव्यागुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदाः । ख ख ॥ ५० ॥

लद्धं तिवार । लब्धं त्रिवारं वर्गितसंवर्गं कृत्वा पूर्वमिव त्रिःप्रति विरलनादि त्रिशलाकां च समाप्येत्यर्थः । एतदेव केवलज्ञाने अपनीय तदेव तस्मिन् पुनर्निक्षिप्ते यो राशिरुत्पद्यते तं अनन्तानन्तस्योत्कृष्टं जानीहि ॥ ५१ ॥

गाथार्थः—जघन्य अनन्तानन्त रूप राशि का तीन बार पूर्वोक्त प्रकार विरलन, देय, गुणन और ऋणादि क्रिया को पुन पुनः करते हुये प्रथम शलाका, द्वितीयशलाका और तृतीय शलाका को पूर्वोक्त प्रकार से समाप्त करने के बाद मध्यम अनन्तानन्त स्वरूप जो लब्ध प्रमाण प्राप्त हो उसमें (१) जो सम्पूर्ण जीव राशि के अनन्तवें भाग प्रमाण है, ऐसी सिद्ध राशि । (२) (पृथ्वीकायादि चार स्थावर, प्रत्येक वनस्पति और त्रस इन तीन राशियों से रहित संसार राशि प्रमाण, ऐसे निगोद जीवों के प्रमाण रूप) निगोद राशि, जो कि सिद्ध राशि से अनन्त गुणी है । (३) प्रत्येक वनस्पति सहित निगोद वनस्पति राशि अर्थात् सम्पूर्ण वनस्पति । (४) जीव राशि से अनन्त गुणी पुद्गल राशि (५) पुद्गल राशि से अनन्तानन्त गुणी काल के समयों स्वरूप कालराशि । (६) काल राशि से अनन्त गुणे प्रमाणवाली अलोकाकाश राशि । अनन्त स्वरूप ये छह राशियाँ क्षेपण कर देना चाहिये ।

छह राशियों को मिलाने के बाद जो लब्ध प्राप्त हो उस महाराशि को तीन बार वर्गित संवर्गित करना है स्वरूप जिसका ऐसे विरलन, देय गुणन और ऋणादि क्रियाओं की पुनरावृत्ति द्वारा शलाका त्रय निष्ठापन कर जो विशद राशि उत्पन्न हो उसमें धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभागी प्रतिच्छेदों का प्रमाण मिला देना चाहिये ।

---

१ लोऽनन्तानन्तगुणः (ब०, प०)

उपर्युक्त प्रक्षेप के योग से जो लब्ध राशि प्राप्त हो उसको पुनः तीन बार वर्गित संवर्गित करें, अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार से विरलनादि क्रिया द्वारा शलाका त्रय की समाप्ति कर जो महाराशि रूप लब्ध प्राप्त होगा वह भी केवलज्ञान के बराबर नहीं होगा, अतः केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों में से उक्त महाराशि घटा देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसको वैसे का वैसा उसी महाराशि में मिला देनेपर केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों के प्रमाण स्वरूप उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्राप्त हो जावेगा ॥ ४८ से ५१ ॥

विशेषार्थ :—तीन गाथाओं का विशेषार्थ गाथार्थ सदृश ही है। (गा० ५१) केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों की संख्या सर्वोत्कृष्ट है। वह संख्या मध्यमअनन्तानन्त स्वरूप जीव, पुद्गल, काल और आकाश के प्रदेशों एवं समयों को गुणा करने से अथवा वर्गित संवर्गित करने से भी प्राप्त नहीं होती, अतः उस सर्वोत्कृष्ट संख्या को प्राप्त करने का मात्र एक यही उपाय है कि उसमें से मध्यम अनन्तानन्तको घटा कर जो शेष रहे वह उसी मध्यम अनन्तानन्त में जोड़ देने से उत्कृष्टअनन्तानन्त हो जाता है। जैसे :—५०० में से १०० को घटाने पर (५००—१००)=४०० शेष रहते हैं। इस शेष ४०० को १०० में जोड़ देने से (४०० + १००)=५०० हो जाते हैं।

केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेद सर्वोत्कृष्ट अनन्तानन्त स्वरूप हैं, अतः केवलज्ञान में यह शक्ति है कि ऐसे अनन्तानन्त लोकालोक होते तो उनको भी जान लेता। किन्तु उस शक्ति की व्यक्ति उतनी ही होती है जितने कि ज्ञेय हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रवचनसार की गाथा नं० २३ में जो यह कहा है कि 'णाणं णेय पमाणं' अर्थात् ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है वह केवलज्ञान की शक्ति की व्यक्ति की अपेक्षा कहा है।

ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है, जो केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों से अधिक हो, अतः केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों की संख्या को सर्वोत्कृष्ट अनन्तानन्त कहा है। संख्या प्रमाण में इससे बड़ा कोई प्रमाण नहीं है।

अथ श्रुतज्ञानादीनां विषयस्थानं निरूपयति—

जावदियं पच्चक्खं जुगवं सुदओहिकेवलाण हवे ।
तावदियं संखेज्जमसंखमणंतं कमा जाणे ॥५२॥

यावत्कं प्रत्यक्षं युगपत् श्रुतावधिकेवलानां भवेत् ।
तावत्कं संख्येयमसंख्यमनन्तं क्रमात् जानीहि ॥५२॥

जावदियं । यावन्मात्रं प्रत्यक्षं युगपत् श्रुतावधिकेवलज्ञानानां भवेत् तावन्मात्रं संख्यातमसंख्यातमनन्तं क्रमाज्जानीहि ॥ ५२ ॥

श्रुतज्ञानादिकों के विषय रूप स्थानों का निरूपण:—

गाथार्थ :—जितने विषय, युगपत् प्रत्यक्ष श्रुतज्ञान के हैं, अवधिज्ञान के हैं, और केवलज्ञान के हैं, उन्हें क्रम से संख्यात, असंख्यात और अनन्त जानो ॥ ५२ ॥

विशेषार्थ :—जितने विषयों को श्रुतज्ञान युगपत् प्रत्यक्ष जानता है, उसे संख्यात कहते हैं। जितने विषयों को अवधिज्ञान युगपत् प्रत्यक्ष जानता है, उसे असंख्यात कहते हैं। तथा जितने विषयों को केवलज्ञान युगपत् प्रत्यक्ष जानता है, उसे अनन्त कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार 'अर्धपुद्गल' परिवर्तन भी अनन्त है, क्योंकि वह अवधिज्ञान के विषय से बाहर है, किन्तु वह परमार्थ अनन्त नहीं है; क्योंकि सर्वपुद्गल परिवर्तन काल व्यय होते होते अन्त को प्राप्त हो जाता है अर्थात् समाप्त हो जाता है। आय के बिना व्यय होते रहने पर भी जिस राशि का अन्त न हो वह राशि अक्षय अनन्त कहलाती है।

अथ चतुर्दशधाराणां नामानि निवेदयति—

धारेत्थ सव्वसमकदिघणमाउगइदरवेकदीविंदं ।
तस्स घणाघणमादी अंतं ठाणं च सव्वत्थ ॥५३॥

धारा: अत्र सर्वसमकृतिघनमातृकेतरद्विकृतिवृन्दम् ।
तस्य घनाघनमादि अन्तं स्थानं च सर्वत्र ॥ ५३ ॥

धारेत्थ । धारा: अत्र शास्त्रे निरूप्यन्ते । सर्वधारा, समधारा, कृतिधारा, घनधारा, कृतिमातृकाधारा, घनमातृकाधारा, समादिभ्य इतरा विषमधारा, अकृतिधारा, अघनधारा, अकृतिमातृकाधारा, अघनमातृकाधारा इति, द्विरूपवर्गधारा, द्विरूपघनधारा, द्विरूपघनाघनधारा । आसामाद्यन्तस्थानानि च सर्वत्र धारासु कथ्यन्ते ॥ ५३ ॥

संख्यात असंख्यात और अनन्त की सिद्धि के लिये निम्नलिखित चौदह धाराओं का वर्णन किया जा रहा है :—

चौदह धाराओं के नाम:—

गाथार्थ :—यहाँ धाराओं का वर्णन करते हैं। १ सर्वधारा २ समधारा ३ कृतिधारा ४ घनधारा ५ कृतिमातृकाधारा ६ घनमातृका धारा तथा इनकी प्रतिपक्षी ७ विषम धारा ८ अकृति धारा, ९ अघन धारा, १० अकृतिमातृका धारा ११ अघनमातृका धारा १२ द्विरूप वर्ग धारा १३ द्विरूप घन धारा और १४ द्विरूप घनाघन धारा। ये चौदह धाराएं हैं। इनके आदि स्थान, अन्तस्थान और स्थान भेद धाराओं में सर्वत्र कहते हैं॥ ५३ ॥

अथ सर्वधारास्वरूपं निरूपयति—

उत्तेव सव्वधारा पुव्वं एगादिगा हवेज्ज जदि ।
सेसा समादिधारा तत्थुप्पण्णेत्ति जाणाहि ॥ ५४ ॥

उक्तं व सर्वधारा पूर्वं एकादिका भवेत् यदि ।
शेषा: समादिधारा: तत्रोत्पन्ना इति जानीहि ॥ ५४ ॥

उत्तेव । उक्तं व सर्वधारा स्यात् । पूर्वमेकादिका भवेद्यदि, शेषाः समादिधारा तत्रोत्पन्ना इति जानीहि । अङ्कसंदृष्टौ च ज्ञातव्या "१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, के॰ १६" ॥ ५४ ॥

समविषम धारा के स्थानों का प्रमाण और उन्हें प्राप्त करने की विधि :—

गाथार्थ :—सम और विषम दोनों धाराओं के स्थान केवलज्ञान के अर्ध प्रमाण (केवलज्ञान से आधे) होते हैं; क्योंकि आदि और अन्त स्थान को शुद्ध करके (अधिक प्रमाण में से हीन प्रमाण को घटा कर) वृद्धि चय का भाग देने पर जो लब्ध आवे उसमें १ अंक मिलाने से स्थानों का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ॥ ५७ ॥

विशेषार्थ :—"आदीअन्तेसुद्धे, वड्ढिहिदे रूवसंजुदे ठाणा" इस करण सूत्रानुसार आदि और अन्त स्थान को शुद्ध करने अर्थात् आदि और अन्त के प्रमाण में जो अधिक हो उसमें से हीन प्रमाण घटाना चाहिये प्रत्येक स्थान पर दो की वृद्धि हुई है अतः दो का भाग देकर जो लब्ध आवे उसमें एक जोड़ देने से स्थानों की प्राप्ति हो जायगी। जैसे :—समधारा का अन्तस्थान ६५५३६ और आदि स्थान दो है। प्रत्येक स्थान पर वृद्धिचय २ है, अतः ६५५३६—२=६५५३४÷२=३२७६७+१=३२७६८ ये केवलज्ञान के अर्धप्रमाण समधारा के स्थान हैं। इसी प्रकार :— विषमधारा का अन्तस्थान ६५५३५ है और आदि स्थान १ है। वृद्धिचय २ है। अतः ६५५३५—१=६५५३४÷२=३२७६७+१=३२७६८ ये विषम धारा के केवलज्ञान के अर्धप्रमाण स्थान हैं।

अथ कृतिधारामाह :—

इगिचादि केवलंतं कदी पदं तप्पदं कदी अवरं।
इगिहीण तप्पदकदी हेट्ठिमउक्कस्स सव्वत्थ ॥ ५८ ॥

एकं चत्वार्यादिः केवलान्ता कृतिः पदं तत्पदं कृतिः अवरं।
एकहीनतत्पदकृतिः अधस्तनमुत्कृष्टं सर्वत्र ॥ ५८ ॥

इगिचादि। एकं चत्वार्यादिः केवलज्ञानान्ता कृतिधारास्यात्। पदं कृतिधारास्थानं तत्पदं केवलज्ञानस्य प्रथममूलमात्रं संख्यातादीनां जघन्यं कृतिरूपमेव एकहीनस्वासंख्यातादीनां प्रथम-मूलस्य कृतिरेव सर्वत्राधस्तनाधस्तनोत्कृष्टप्रमाणं भवति। अङ्कसंदृष्टौ १, ४, ९, के १६॥ ५८॥

४. कृतिधारा का स्वरूप :—

गाथार्थ :—एक, चार आदि केवलज्ञान पर्यन्त कृतिधारा होती है। केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल पर्यन्त जो वर्गमूल हैं उनका वर्ग करने से जो राशियाँ उत्पन्न होती हैं वे ही इस धारा के स्थान हैं। सर्वत्र जघन्य स्थान तो कृतिरूप ही है। जघन्य स्थान के वर्गमूल में से एक घटाकर उसकी कृति करने पर अपने से अधस्तन का उत्कृष्ट भेद प्राप्त हो जाता है ॥ ५८ ॥

विशेषार्थ :—कृति नाम वर्ग का है, अतः जो संख्या वर्ग से उत्पन्न है अर्थात् किसी भी संख्या का परस्पर में गुणा करने से उत्पन्न होती है वह कृतिधारा की संख्या है। जैसे :—१×१=१, २×२=४, ३×३=९, ४×४=१६, २५, ३६ ... ...(२५४)^2=६४५१६, (२५५)^2=६५०२५ और अन्तिम स्थान (२५६)^2=६५५३६ उत्कृष्ट अनन्तानन्त केवलज्ञान स्वरूप है। अर्थात् एक से प्रारम्भ

कर एक एक की वृद्धि करते हुये केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल तक के समस्त वर्ग स्थान इस धारा के स्थान हैं। कृतिधारा के स्थान को तत्पद कहते हैं, और वह पद केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल की संख्या प्रमाण है।

इस धारा में जघन्य संख्यात (१) तो वर्ग रूप ही है। जघन्य असंख्यात (१६) का वर्गमूल निकाल कर उसमें से एक घटाना, जो अवशेष बचे उसकी कृति (वर्ग) करना। जो प्रमाण प्राप्त हो वह असंख्यात के अधस्तनवर्ती (संख्यात) का कृतिधारा में उत्कृष्ट भेद है। जैसे—अंकसंदृष्टि :—मानलो-जघन्य असंख्यात का प्रमाण १६ है, उसका वर्ग मूल ४ प्राप्त हुआ। चार में से एक घटाया (४—१=३) तीन रहे, ३ का वर्ग (३ × ३) ९ प्राप्त हुआ। असंख्यात के नीचे जो संख्यात है, इस धारा में संख्यात का उत्कृष्ट ९ है। वैसे—अंक संदृष्टि में उत्कृष्ट संख्यात १५ माना गया है, और ९ के बाद १० को आदि लेकर १५ पर्यन्त सभी संख्याएं ९ के अंकसे बड़ी हैं। किन्तु वे किसी भी संख्याके वर्ग से उत्पन्न नहीं हुईं अतः उत्कृष्ट स्थान को प्राप्त नहीं हुईं। ९ की उत्पत्ति ३ के वर्ग से हुई है, इसलिये इस धारा का उत्कृष्ट ९ ही है।

इस धारा में जघन्य परीतासंख्यात, जघन्य युक्तासंख्यात, जघन्य—असंख्यातासंख्यात, जघन्य परीतानन्त, जघन्य युक्तानन्त, जघन्य अनन्तानन्त और उत्कृष्ट अनन्तानन्त हैं। किन्तु उत्कृष्ट संख्यात, उत्कृष्ट परीतासंख्यात, उत्कृष्ट युक्तासंख्यात, उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात, उत्कृष्ट परीतानन्त और उत्कृष्ट युक्तानन्त नहीं हैं। इसलिये अपने अपने उत्कृष्ट से उपरितन जघन्य के वर्गमूल में से एक कम करके वर्ग करने पर कृतिधारा में अपना अपना उत्कृष्ट स्थान उत्पन्न होता है।

अथाकृतिधारोच्यते—

दुप्पहुदिरूववज्जिदकेवलणाणावसाणमकदीए ।
सेसविही विसमं वा सपदूणं केवलं ठाणं ॥ ५९ ॥

द्विप्रभृति रूपवर्जितकेवलज्ञानावसानमकृतौ ।
शेषविधिः विषमा वा स्वपदोनं केवलम् स्थानम् ॥ ५९ ॥

दुप्पहु। द्विप्रभृतिः रूपवर्जितकेवलज्ञानमवसानं अकृतिधारायां शेषविधिः संख्यातादीनां जघन्य-मुत्कृष्टं च विषमधारावत् "रूवजुदमवरमवरं वरं वरं होदि सव्वत्थ" इति ज्ञातव्यमित्यर्थः। कृति-स्थानरहितत्वात् स्वप्रथममूलोनं केवलज्ञानं स्थानं स्यात्। अङ्कसंदृष्टौ २, ३, ५, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १३, १४, के १५ ॥ ५९ ॥

५. अकृतिधारा का स्वरूप :—

गाथार्थ :— दो को आदि लेकर एक कम केवलज्ञान पर्यन्त अकृति धारा है इस धारा की शेष विधि विषम धारा सदृश है। केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल से कम इस धारा के स्थान हैं। क्योंकि वर्ग-रूप संख्याएं इस धारा में नहीं हैं ॥ ५९ ॥

विशेषार्थ :— जो संख्याएं स्वयं किसी के वर्ग से उत्पन्न नहीं होतीं वे संख्याएं अकृति धारा की हैं। कृतिधारा की संख्याओं के अतिरिक्त दो से प्रारम्भ कर एक कम केवलज्ञान पर्यन्त की सभी

संख्याएं अकृति धारा की हैं। जैसे :—२, ३, ५, ६, ७, ८, १० .... २५४, २५५, २५७ .... ६५५३३, ६५५३४ और ६५५३५ इस धारा में वर्ग रूप अर्थात् कृतिधारा के स्थान नहीं मिलते। जैसे:— १, ४, ९, १६, २५, ३६, ... ६५०२५ और ६५५३६ इस अकृति धारा में नहीं मिलेंगे, क्योंकि ये वर्ग रूप हैं। सर्वधारा के स्थानों में से कृति धारा के स्थान घटा कर जो शेष रहते हैं, वे अकृति धारा के स्थान हैं।

इस धारा की शेष विधि विषम धारा सदृश है। अर्थात् जैसे विषम धारा के जघन्य असंख्यात और जघन्य अनन्त की उत्पत्ति समधारा के जघन्य असंख्यात और जघन्य अनन्त (१६ और २५६) में एक एक अंक मिलाने से हुई थी, उसी प्रकार यहाँ भी होगी।

इस धारा में उत्कृष्ट संख्यात, उत्कृष्ट परीतासंख्यात, उत्कृष्ट युक्तासंख्यात, उत्कृष्ट असंख्याता-संख्यात, उत्कृष्ट परीतानन्त और उत्कृष्ट युक्तानन्त आते हैं, शेष अर्थात् उत्कृष्ट अनन्तानन्त और संख्यात असंख्यात तथा अनन्त के सभी जघन्य नहीं आते।

अथ घनधारा कथ्यते—

इगिअडपहुदिं केवलदलमूलस्सुवरि चडिदठाणजुदे।
तग्घणमंतं विंदे ठाणं आसण्णघणमूलम् ॥ ६० ॥

एकाष्टप्रभृति केवलदलमूलस्योपरि चटितस्थानयुते।
तद्घनमंतं वृन्दे स्थानं आसन्नघनमूलम् ॥ ६० ॥

इगि। अङ्कसंदृष्टिः प्रदर्श्यते। एकाष्टप्रभृति १, ८, २७, एवमनन्तानि घनस्थानानि गत्वा केवल ६५ = दलस्य ३२७६८ घनरूपस्य यन्मूलं ३२ तस्मिन् तदुपरि ३२ चटितस्थानानां उपर्युपरिगतघनमूल-स्थानानां ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, संख्याने युते [1]सति तस्य ४० घनो ऽन्तो भवति ६४०००। तस्यैति कथम्? यस्मादासन्नघनमूला ४० द्रूपाधिकस्य घनमूलस्य ४१ घने गृहीते ६८९२१ केवलज्ञानं व्यतिक्रम्य राशिरुत्पद्यते तस्मादस्यैव ४० घनः ६४००० घनधारायामन्तो भवति। स एवास-न्नघन इत्युच्यते, तन्मूलमेव चासन्नघनमूलमिति कथ्यते। स्थानं केवलज्ञानस्यासन्न घनमूलप्रमाणं स्यात् ॥ ६० ॥

६. घनधारा का स्वरूप—

गाथार्थ :—एक और आठ को आदि करके केवलज्ञान के अर्धभाग के घनमूल से ऊपर ऊपर जो घनमूलरूप स्थान प्राप्त हों, उनको केवलज्ञान के अर्धभाग के घनमूल में मिलाने से जो स्थान बनता है उसे आसन्नघनमूल कहते हैं। इस आसन्नघनमूल का घन ही इस घनधारा का अन्तिम स्थान है॥ ६० ॥

---

१ संख्याने युते घने गृहीते (ब०, प०)।

विशेषार्थ :—किसी भी संख्या को तीन बार परस्पर गुणा करने से जो संख्या आती है, वह घनधारा की संख्या कहलाती है। जैसे—१×१×१=१; २×२×२=८; ३×३×३=२७; ४×४×४=६४; ५×५×५=१२५ आदि। इस प्रकार अनन्त स्थान आगे जाकर केवलज्ञान के अर्ध भाग का घनमूल प्राप्त होता है। केवलज्ञान का अर्धभाग घनस्वरूप ही है।

केवलज्ञान के अर्धभाग का घनमूल निकाल कर उसके ऊपर एक एक स्थान चढ़ते हुए घनमूल के जो स्थान प्राप्त होते हैं उन्हें केवलज्ञान के अर्धभाग के घनमूलमें जोड़ देने से आसन्नघन प्राप्त होता है। इस आसन्नघनमूल का घन करने से जो स्थान प्राप्त होता है, वही इस धारा का अन्तिम स्थान है। आसन्नघनमूल से यदि एक अंक भी अधिक ग्रहण किया जाएगा तो उसका घन केवलज्ञान के प्रमाण से अधिक हो जायगा अतः आसन्नघनमूल से आगे ग्रहण नहीं करना चाहिये।

अंकसंदृष्टि :—१, ८, २७, ६४, १२५ ....इस प्रकार अनंत घनस्थान आगे जाकर केवलज्ञान (६५५३६) के आधे (३२७६८) का घनमूल (३२) प्राप्त होगा। इसके ऊपर एक एक स्थान चढ़ते हुए ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९ और ४० इन आठ स्थानों को ३२ में जोड़ देने पर (३२+८) ४० घनमूल प्राप्त हुआ। यही आसन्नघनमूल कहलाता है। इसका घन (४०×४०×४०) ६४००० होता है। यह घनधारा का अन्तिम स्थान है। यदि (४०) आसन्नघनमूल के आगे एक भी अंक अधिक (जैसे ४१) ग्रहण कर लिया जाए तो उसका घन (४१×४१×४१) ६८९२१ प्राप्त होगा जो केवलज्ञान के प्रमाण से अधिक हो जाएगा; किन्तु ऐसा हो नहीं सकता अतः आसन्नघनमूल ४० का घन ६४००० ही घनधारा का अन्तिम स्थान है।

६४००० को आसन्नघन कहते हैं और इसके घनमूल (४०) को आसन्नघनमूल कहते हैं। इस घनधारा के समस्त स्थान केवलज्ञान के आसन्नघनमूल प्रमाण ही होते हैं।

अथ केवलदलस्य घनात्मकत्वे उपपत्तिं पूर्वार्धेन दर्शयन्नुत्तरार्धेनाघनधारामाह—

समकदिसल विकदीए दलिदे घणमेत्थ विसमगे तुरिए।
अघणस्स दु सव्वं वा विघणपदं केवलं ठाणं ॥ ६१ ॥

समकृतिशला विकृतौ दलिते घनः अत्र विषमके तुरिये।
अघनस्य तु सर्वं वा त्रिघनपदं केवलं स्थानम् ॥ ६१ ॥

समक। द्विरूपवर्गधारायां समकृतिशलाके वर्गराशौ दलिते घनो जायते। यथा षोडशकाधिके १६। ६५=। १८=। अत्रैव धारायां विषमकृतिशलाके वर्गराशौ चतुर्भागे गृहीते घनो जायते। यथा चतुष्काधिके। ४। २५६। ४२=। एवमुक्तन्यायेन केवलज्ञानस्य वर्गशलाकानां समत्वात्तस्मिन् केवलज्ञाने दलिते घनो भवतीति सिद्धम्। तत्समत्वं कथं ज्ञायत इति चेदिदमुच्यते। केवलज्ञानस्य वर्गशलाकाराशे-र्द्विरूपवर्गधारायामेवोत्पन्नत्वात्। एतदपि कुत इति चेत् "अवरावाइयलद्धीवग्गसलागा तदो सगद्धछिदी" इति पुरस्ताद् वक्ष्यमाणत्वात्। अघनधारायाः सर्वधारावत् प्रक्रिया। अयं तु विशेषः, विघनपदं घनस्थान-

रहितसर्वधारावदिति ग्राह्यं । अघनस्थान प्रमाणं "काकाक्षिगोलकन्यायेन" विषमपदं केवलं घनस्थानन्यूनकेवलज्ञानमात्रं स्यात् । अंकसंदृष्टि २, ३, ४, ५, ६, ७, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६ ॥ ६१ ॥

७ अब गाथा के पूर्वार्ध में केवलज्ञान का अर्धभाग घन रूप ही होता है, इसको दर्शाते हुए उत्तरार्ध में अघन धारा का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ:—द्विरूपवर्गधारा में जिस वर्ग स्थान की वर्गशलाकाराशि सम होती है उस वर्ग-स्थान का अर्ध भाग नियम से घन रूप ही होता है तथा इसी द्विरूपवर्गधारा में जिस वर्गस्थान की वर्गशलाकाएं विषम होती हैं उस राशि का चौथाई भाग घनरूप होता है। सर्व धारा में से घनधारा के स्थानों को कम कर देने पर केवलज्ञान पर्यन्त समस्त स्थान अघनधारा स्वरूप ही होते हैं ॥६१॥

विशेषार्थ :—द्विरूपवर्गधारा में जिस वर्ग स्थान (१६, ६५५३६, एकट्ठी) की वर्गशलाकाएं सम (२, ४, ६, ८) होती हैं उस वर्ग स्थान का अर्धभाग नियम से घनरूप होता है। जैसे—द्विरूपवर्ग-धारा का द्वितीय स्थान १६ और चतुर्थ स्थान ६५५३६ है जिसकी वर्गशलाकाएं क्रमशः २ और ४ हैं जो समरूप ही हैं, अतः १६ का अर्धभाग ८ दो के घन (२ × २ × २) स्वरूप है और ६५५३६ का अर्धभाग ३२७६८ बत्तीस (३२) के घन (३२ × ३२ × ३२) स्वरूप है। इसी प्रकार द्विरूपवर्गधारा में जिस वर्ग स्थान (४, २५६, बादाल) की वर्गशलाकाएं विषम (१, ३, ५) होती हैं, उस वर्गस्थान का चतुर्थ भाग नियम से घनरूप ही होता है। जैसे :—द्विरूपवर्गधारा के प्रथम स्थान ४ और तृतीय स्थान २५६ की वर्गशलाकाएं १ और ३ हैं जो विषम हैं, अतः प्रथम स्थान ४ का चौथाई ($\frac{४}{४}$) = १ प्राप्त हुआ जो एक के घन स्वरूप है और तृतीय स्थान २५६ का चौथाई ($\frac{२५६}{४}$) = ६४ प्राप्त हुआ जो ४ के घन स्वरूप है। उपर्युक्त न्यायानुसार केवलज्ञान की वर्गशलाकाएं सम होने से केवलज्ञान का अर्ध भाग घनरूप ही होता है, यह सिद्ध हुआ।

शंका :—केवलज्ञान की वर्गशलाकाओं का समपना कैसे जाना जाता है ?

समाधान :—केवलज्ञान की वर्गशलाकाएं द्विरूपवर्गधारा में ही उत्पन्न होती हैं, अतः सम रूप हैं।

शंका :—केवलज्ञान की वर्गशलाकाएं द्विरूपवर्गधारा में ही उत्पन्न होती हैं यह कैसे ज्ञात हो ?

समाधान :—आगे कही जाने वाली "अवराखाइयलद्धीवग्गसलागा तदो समद्धछिदि" गाथा ७१ से जाना जाता है। अर्थात् द्विरूपवर्गधारा में जो राशियाँ उत्पन्न होती हैं वे समरूप ही होती हैं, और केवलज्ञान की वर्गशलाकाएं द्विरूपवर्गधारा में उत्पन्न हुई हैं अतः समरूप हैं। इसीलिये केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों का अर्धभाग घन स्वरूप है। अघन धारा की सम्पूर्ण प्रक्रिया सर्वधारा सदृश है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वधारा के स्थानों में से घनधारा के स्थान घटा देने पर शेष समस्त स्थान अघनधारा रूप हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए। इन स्थानों का प्रमाण 'काकाक्षिगोलक' न्यायानुसार है। अर्थात् जो स्थान घन स्वरूप हैं वे घन रूप ही हैं, अघन रूप नहीं और जो स्थान अघन स्वरूप है, वे

अघन रूप ही हैं; घन रूप नहीं। इसीलिये घनधारा के स्थानों को छोड़कर इस धारा के समस्त स्थान केवलज्ञान पर्यन्त ही हैं। जैसे :—२, ३, ४, ५, ६.................२५, २६, २८, २९.................६२, ६३, ६५..................६३९९९, ६४००१, ६४००२..................६५५३४, ६५५३५, और अन्तिम स्थान ६५५३६ है।

अथ वर्गमातृकधारामाह—

इह वग्गमाउआए सव्वगधारव्व चरिमरासीदु।
पढमं केवलमूलं तट्ठाणं चावि तव्वेव ॥ ६२ ॥

इह वर्गमातृकायां सर्वकधारा इव चरमराशिस्तु।
प्रथमं केवलमूलं तत्स्थानं चापि तदेव ॥ ६२ ॥

इह व। इह वर्गमातृकधारायां सर्वधारावत् चरमराशिस्तु केवलज्ञानस्य प्रथममूलं तस्थाः स्थानमपि तावदेव। अंकसंदृष्टौ। १, २, ३, के ४ ॥ ६२ ॥

८. वर्गमातृकधारा का स्वरूप :—

गाथार्थ :—इस वर्गमातृकधारा में स्थानादि की प्रक्रिया सर्वधारा सदृश ही है। इसका अंतिम स्थान केवलज्ञान का प्रथमवर्गमूल है। केवलज्ञान के प्रथमवर्गमूल प्रमाण पर्यन्त ही इस धारा के स्थान होते हैं ॥ ६२ ॥

विशेषार्थ :—जो संख्याएं वर्ग को उत्पन्न करने में समर्थ हैं उन्हें वर्गमातृक कहते हैं। इस वर्गमातृक धारा के समस्त स्थान सर्वधारा सदृश ही होते हैं। इस धारा की अन्तिम राशि केवलज्ञान का प्रथम वर्ग मूल है। एक से प्रारम्भ कर केवलज्ञान के प्रथममूल पर्यन्त जितने स्थान हैं, उतने ही स्थान इस धारा के हैं। जैसे :—मानलो—अङ्कसंदृष्टि में केवलज्ञान का प्रथम वर्गमूल २५६ है अतः इस धारा में १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८.................२५२, २५३, २५४, २५५ और अन्तिम स्थान २५६ है। यदि इसके आगे एक भी अंक अधिक (२५७) ग्रहण किया जाएगा तो उसका वर्ग केवलज्ञान से आगे निकल जाएगा।

२१ प्रकार के संख्या प्रमाण में से इस धारा में मध्यम अनन्तानन्त का अन्तिम बहुभाग और उत्कृष्ट अनन्तानन्त नहीं पाया जाता। शेष सभी संख्याएं पाई जाती हैं।

अथावर्गमातृकधारोच्यते :—

अवग्गमाउअ आदी केवलमूलं सरूवमंतं तु।
केवलमणेय मज्झं मूलूणं केवलं ठाणं ॥ ६३ ॥

अवर्गमातृकायां आदिः केवलमूलं स्वरूपमन्तं तु।
केवलमनेकं मध्यं मूलोनं केवलं स्थानम् ॥ ६३ ॥

अन्त्यो। अवर्गमातृकधारायाः आदिः केवलज्ञानस्य प्रथममूलं रूपसहितं अन्तस्तु केवलज्ञानं मध्यमनेकविधं तस्याः स्थानं रूपमूलोनकेवलज्ञानमात्रं। अंकसंदृष्टौ ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६ ॥ ६३ ॥

९. अवर्गमातृक धारा का स्वरूप :—

गाथार्थ :—इस अवर्गमातृक धारा का प्रथम स्थान केवलज्ञान के प्रथमवर्गमूल से एक अङ्क अधिक है, अन्तिमस्थान केवलज्ञान है और मध्यम स्थान अनेक प्रकार के हैं। इस धारा के समस्त स्थान केवलज्ञान के प्रथमवर्गमूल से रहित केवलज्ञान प्रमाण हैं ॥ ६३ ॥

विशेषार्थ :—जिन संख्याओं का वर्ग करने पर वर्गसंख्या का प्रमाण केवलज्ञान से आगे निकल जाता है, वे सब संख्याएं इस अवर्गमातृकधारा में ग्रहण की गई हैं। इस धारा का प्रथम स्थान एक अधिक केवलज्ञान का प्रथमवर्गमूल है। अन्तिम स्थान केवलज्ञान है, तथा मध्यम स्थान अनेक प्रकार के हैं। इस धारा के समस्त स्थान केवलज्ञान के प्रथम वर्गमूल से रहित केवलज्ञान प्रमाण हैं।

जैसे :—२५७, २५८, २५९, २६०.................. ६५५३४, ६५५३५ और अन्तिम स्थान ६५५३६ है। इस धारा में केवलज्ञान के अर्धच्छेद, वर्गशलाका और वर्गमूल आदि नहीं पाये जाते हैं।

अथ घनमातृकधारामाह—

घणमाउगस्स सव्वगधारं वा सव्वपच्छिमो रासी।
आसण्णविंदमूलं तमेव ठाणं विजाणाहि ॥ ६४ ॥

घनमातृकायाः सर्वकधारा इव सर्वपश्चिमो राशिः।
आसन्नवृन्दमूलं तदेव स्थानं विजानीहि ॥ ६४ ॥

घणमाउ। घनमातृकायाः सर्वधारावत् प्रक्रिया, अंकसंदृष्टौ प्रदर्श्यते—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ आदि : ४०। अयं तु विशेषः सर्वपश्चिमो राशिः। क इति चेत् केवलज्ञानस्य ६५=आसन्नघन ६४००० प्रथममूलं ४० तदेव तस्याः घनमातृकायाः स्थानमिति जानीहि ॥ ६४ ॥

१०. घनमातृकधारा का स्वरूप :—

गाथार्थ :—घनमातृकधारा की स्थानादि सम्बन्धी प्रक्रिया सर्वधारा सदृश होती है। इसमें इतनी ही विशेषता है कि इस धारा का अन्तिम स्थान केवलज्ञान के आसन्नघन के घनमूल प्रमाण है; अतः इस धारा के स्थान भी केवलज्ञान के आसन्नघन के घनमूल प्रमाण ही हैं ॥ ६४ ॥

विशेषार्थ :—जो संख्याएं घन उत्पन्न करने में समर्थ हैं उन्हें घनमातृक कहते हैं। केवलज्ञान के आसन्नघनमूल पर्यन्त तो सभी संख्याओं का घन हो सकता है किन्तु यदि इससे एक अंक अधिक का भी घन किया जाएगा तो केवलज्ञान के प्रमाण से अधिक प्रमाण हो जाएगा। इसलिए एक को आदि लेकर केवलज्ञान के आसन्नघनमूल पर्यन्त इस धारा के स्थान होते हैं। जैसे—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८,

६, १०............................ ३५, ३६, ३७, ३८, ३९ और ४०। केवलज्ञान का प्रमाण ६५५३६ है और आसन्नघन ६४००० है अतः इसका प्रथम घनमूल ४० है जो घनमातृकधारा का अन्तिम स्थान है। इस धारा में केवलज्ञान का द्वितीय वर्गमूल तो पाया जाता है क्योंकि उसका घन केवलज्ञान के प्रथमवर्गमूल से गुणित द्वितीयवर्गमूल होता है जो केवलज्ञान से कम है किन्तु केवलज्ञान का प्रथमवर्गमूल नहीं पाया जाता क्योंकि इसका घन केवलज्ञान से अधिक हो जाता है।

अथाघनमातृकधारोच्यते—

तं रूवसहिदमादी केवलमवसाणमघणमाउस्स।
आसण्णघणपदूणं केवलणाणं हवे ठाणं॥ ६५॥

तत् रूपसहितं आदिः केवलमवसानमघनमातृकायाः।
आसन्नघनपदोनं केवलज्ञानं भवेत् स्थानम् ॥ ६५ ॥

तं रूव। अंकसंदृष्टौ घनमातृकायाः अन्तः ४० सः रूपसहितश्चेत् ४१ अघनमातृकाया आदिः अस्या अवसानं केवलज्ञानमेव ६५=अस्याः स्थानं पुनः केवलज्ञानस्य ६५=आसन्नघन ६४००० मूलो ४० नं० केवलज्ञानमेव ६५४९६ भवेत् ॥ ६५ ॥

११. अघनमातृकधारा का स्वरूप :—

गाथार्थ :— घनमातृक धारा के अन्तिम स्थान में एक अंक मिलाने से अघनधारा का प्रथम स्थान होता है, यहाँ से प्रारम्भ कर केवलज्ञान पर्यन्त समस्त स्थान अघनधारा रूप ही हैं। इस धारा के स्थान आसन्नघनमूल रहित केवलज्ञान प्रमाण होते हैं ॥ ६५ ॥

विशेषार्थ :— जिन संख्याओं का घन करने पर घन रूप संख्या का प्रमाण केवलज्ञान से आगे निकल जाता है, वे सर्व संख्याएँ इस अघनमातृक धारा में ग्रहण की गई हैं। घनमातृक धारा के अंतिम स्थान (४०) में एक अंक मिलाने पर (४१) इस धारा का प्रथम स्थान बनता है। इस प्रथम स्थान से लेकर केवलज्ञान पर्यन्त सभी संख्याएं इस धारा के स्थान हैं। जैसे:—४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८ ....६५५३४, ६५५३५ और ६५५३६।

केवलज्ञान स्वरूप ६५५३६ में से आसन्नघन ६४००० का प्रथमघनमूल (४०) घटाने पर इस धारा के ६५४९६ स्थान बनते हैं। इस धारा में जघन्य संख्यात से लेकर जघन्य अनन्तानन्त तक का कोई भी स्थान नहीं है। उत्कृष्ट अनन्तानन्त है, किन्तु मध्यम अनन्तानन्त भजनीय है।

अथ द्विरूपवर्गधारां गाथासप्तकेनाह :—

बेरूववग्गधारा चउ सोलसबेसदसहियछप्पण्णं।
पण्णट्ठी बादालं एकट्ठं पुव्वपुव्वकदी ॥६६॥

द्विरूपवर्गधारा चत्वारः षोडश द्विशतसहितषट्पञ्चाशत्।
पण्णट्ठी द्वाचत्वारिंशत् एकाष्ठी पूर्वपूर्वकृतिः ॥ ६६॥

मेकस्य । द्विरूपवर्गधारा कथ्यते । चत्वारि ४ षोडश १६ द्विशतसहितषट्पञ्चाशत् २५६ पण्णट्ठी-पञ्चसयाछत्तीसा ६५५३६ "बादालं चउणउदी छण्णवदि विहुत्तरीयछण्णउदी" ४२९४९६७२९६ "एक्कट्ठं च चउ छस्सत्तयं च च ' यं सुण्णसत्तियसत्ता । सुण्णं णव पण पञ्च य एक्कं छक्केक्कगो य छक्कं च ।।" १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ ॥ एवमुत्तरोत्तरराशिः पूर्वपूर्वस्य कृतिः ॥ ६६ ॥

१२. सात गाथाओं द्वारा द्विरूपवर्गधारा का कथन करते हैं :—

गाथार्थ :— इस द्विरूपवर्गधारा में दो के वर्ग से आरम्भ कर पूर्व पूर्व स्थानों का वर्ग करते हुए उत्तर उत्तर स्थान प्राप्त होते हैं। इस धारा का प्रथम स्थान ४ है। इसका वर्ग १६, फिर २५६, ६५५३६, बादाल (४२=) और एकट्ठी प्राप्त होती है जो पूर्व पूर्व का वर्ग है ॥ ६६ ॥

विशेषार्थ :— द्विरूपवर्ग धारा में २ का वर्ग ४ यह प्रथम स्थान है। १६ द्वितीय स्थान है। इसी प्रकार २५६ तीसरा, (पण्णट्ठी पंचसया छत्तीसा) ६५५३६ चौथा, (बादालं चउणउदी छण्णउदी विहुत्तरीयछण्णउदी) ४२९४९६७२९६ (बादाल) पाँचवाँ, तथा (एक्कट्ठं च चउ छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्तियसत्ता। सुण्णं णव णव पंच य, एक्कं छक्केक्कगो य छक्कं च ।।) १८४४६७४४०७३७०९-५५१६१६ (एकट्ठी) छठा स्थान है इस प्रकार उत्तरोत्तर राशि पूर्व पूर्व राशि के कृति (वर्ग) स्वरूप होती है।

तो संखठाणगमणे वग्गसलागद्धछेदपढमपदं ।
अवरपरित्तासंखं आवलि पदरावली य हवे ।। ६७ ।।

तत: संख्यस्थानगमने वर्गशलाकार्धच्छेदप्रथमपदम् ।
अवरपरीतासंख्यं आवलिः प्रतरावली च भवेत् ॥ ६७ ॥

तो संखठाण । तत: संख्यातस्थानानि गत्वा वर्गशलाकाराशिरुत्पद्यते । तत: संख्यातस्थानानि गत्वा अर्धच्छेदराशिरुत्पद्यते । तत: संख्यातस्थानानि गत्वा प्रथममूलमुत्पद्यते । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जघन्यपरीतासंख्यातराशिरुत्पद्यते । तत: "उप्पज्जदि जो रासी विरलियविगुणिदकमेण" इत्यादिना वर्गशलाकादीनिविद्धस्वात् तत: संख्यात स्थानानि गत्वा आवलिरेवोत्पद्यते । तत्संख्यातस्थानमानं कथमितिचेत् । देयराशेरुपरि विरलितराश्यर्धच्छेदमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वा विवक्षितराशिरुत्पद्यते इति ज्ञातव्यं । तस्यामावल्यामेकवारं वर्गितायां प्रतरावलिर्भवेत् ॥ ६७ ॥

गाथार्थ :—इसी प्रकार पूर्व पूर्व का वर्ग करते हुए संख्यात स्थान आगे जाकर जघन्यपरीतासंख्यात की वर्गशलाका, अर्धच्छेद, प्रथमवर्गमूल, जघन्यपरीतासंख्यात की राशि, आवली और प्रतरावली की प्राप्ति होती है ॥ ६७ ॥

विशेषार्थ :—इसी प्रकार पूर्व पूर्व का वर्ग करते हुए संख्यात स्थान आगे जाकर (जघन्य परीतासंख्यातकी) वर्गशलाका राशि उत्पन्न होती है। इससे संख्यात स्थान आगे जाकर उसी की अर्धच्छेद

ाथा : ६८

ाशि उत्पन्न होती है। इससे संख्यात स्थान आगे जाकर उसका प्रथम वर्गमूल उत्पन्न होता है। इस
थम वर्गमूल का एक बार वर्ग करने से जघन्य परीतासंख्यात राशि की उत्पत्ति होती है। इससे संख्यात
थान आगे जाकर जघन्ययुक्तासंख्यात प्रमाण आवली की उत्पत्ति होती है। "जो राशि विरलन और
य के विधान से उत्पन्न होती है, उस राशि की वर्गशलाकाएं और अर्धच्छेद उस धारा में नहीं मिलते"
गा० ७३ इस नियम के अनुसार इस द्विरूपवर्गधारा में आवली की उत्पत्ति तो होती है किन्तु आवली की
वर्गशलाकाएं और अर्धच्छेद राशियों की उत्पत्ति नहीं होती।

शंका :—संख्यात स्थान आगे जाकर आवली उत्पन्न होती है। इसका क्या तात्पर्य है?

समाधान :—देय राशि के ऊपर विरलन राशि के जितने अर्धच्छेद हों, उतने वर्ग स्थान आगे जाकर विवक्षित राशि उत्पन्न होती है। अर्थात् जघन्यपरीतासंख्यात का विरलन कर जघन्य परीतासंख्यात ही देय देने पर विरलन राशि (जघन्यपरीतासंख्यात) के जितने अर्धच्छेद हैं परीता-संख्यातसे उतने वर्ग स्थान आगे जाकर आवली उत्पन्न होती है। अथवा—जघन्यपरीतासंख्यात का विरलन कर जघन्यपरीतासंख्यात ही देय देकर परस्पर गुणा करने से जघन्ययुक्तासंख्यात प्रमाण आवली उत्पन्न होती है। (जघन्य युक्तासंख्यात की जितनी संख्या है, उतने समयों की एक आवली होती है) जैसे :—यहाँ विवक्षित राशि २५६ है। विरलन राशि ४, विरलन राशि के अर्धच्छेद २ और देय राशि ४ है। अतः ४ का विरलन किया और उसके ऊपर ४ ही देय दिया। विरलन राशि के अर्धच्छेद दो हैं इसलिये दो वर्गस्थान [(४ × ४ = १६ एक वर्ग स्थान) (१६ × १६ = २५६ दूसरा वर्ग स्थान)] आगे जाकर विवक्षित राशि २५६ की प्राप्ति हो जाएगी। अथवा :—चार का विरलन कर उस पर ४ ही देय देकर परस्पर में गुणा करने से भी विवक्षित राशि २५६ की उत्पत्ति हो जाएगी।
जैसे :—$\overset{4}{1}\ \overset{4}{1}\ \overset{4}{1}\ \overset{4}{1}$ = २५६ विवक्षित राशि।

इस आवली का एक बार वर्ग करने से प्रतरावली की उत्पत्ति होती है।

गमिय असंखं ठाणं वग्गसलद्धच्छिदी य पढमपदं।
पल्लं च सूइअंगुल पदरं जगसेढिघणमूलं ॥ ६८ ॥

गत्वा असंख्यं स्थानं वर्गशलार्द्धच्छिदिश्च प्रथमपदम्।
पल्यं च सूच्यङ्गुलं प्रतरं जगच्छ्रेणिघनमूलम् ॥ ६८ ॥

गमिय। ततः असंख्यातस्थानानि गत्वा वर्गशलाकाराशिः उत्पद्यते ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा अर्धच्छेदराशिरुत्पद्यते। ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा प्रथममूलमुत्पद्यते। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते अद्धापल्यमुत्पद्यते। ततः विरलितराश्यर्धच्छेदमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वोत्पन्नत्वात्तदर्धच्छेदस्या संख्यातकल्पत्वादसंख्यातस्थानानि गत्वा सूच्यंगुलमुत्पद्यते। अत्र वर्गशलाकादीनामनुत्पत्तिः कथमिति चेत्। विरलनदेय [1]क्रमेणोत्पन्नस्य राशेः "उप्पज्जदि जो रासी" इत्यादिना धारायां वर्गशलाकादीनां

१ क्रमोत्पन्न राशे (ब०, प०)।

निषिद्धत्वात् अत्रापि सूच्यंगुलस्य “वग्गसिविमेत्तपदं” इत्यादिना विरलनदेयरूपेणोत्पन्नत्वात् । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रतरांगुलमुत्पद्यते । ततः असंख्यातस्थानानि गत्वा जगच्छ्रेणिघनमूलमुत्पद्यते ॥६८॥

गाथार्थ :—प्रतरावलीसे असंख्यात स्थान आगे जाकर अद्धापल्य की वर्गशलाकाएं, अर्धच्छेद और प्रथममूल प्राप्त होता है । इसके आगे पल्य, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल और जगच्छ्रेणी का प्रथम घनमूल प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥

विशेषार्थ :—प्रतरावली से असंख्यात स्थान आगे जाकर अद्धापल्य की वर्गशलाकाएं उत्पन्न होती हैं । उससे असंख्यात स्थान आगे जाकर उस की अर्धच्छेदराशि उत्पन्न होती है । उससे असंख्यात स्थान आगे जाकर उसी के प्रथमवर्गमूल की प्राप्ति होती है । इस प्रथम वर्गमूल का एक बार वर्ग करने पर अद्धापल्य की उत्पत्ति होती है । अद्धापल्य से असंख्यात स्थान आगे जाकर सूच्यंगुल उत्पन्न होता है । क्योंकि "विरलन राशि के अर्धच्छेद प्रमाण वर्ग स्थान आगे जाकर यह राशि उत्पन्न होती है । यहाँ सूच्यंगुल का प्रमाण उत्पन्न करने के लिये देय राशि पल्य है, और विरलन राशि पल्य के अर्धच्छेद हैं । तथा "विरलन राशि के अर्धच्छेद प्रमाण वर्ग स्थान आगे जाकर विवक्षित राशि उत्पन्न होती है" इस नियम के अनुसार विरलन राशि (पल्य) के अर्धच्छेद के अर्धच्छेद असंख्यात हैं, अतः पल्य के ऊपर असंख्यात वर्गस्थान आगे जाकर सूच्यंगुल प्राप्त होता है यह उक्त कथन का तात्पर्य है ।

उप्पज्जदि जो रासि ....गाथा ७३ के अनुसार इस द्विरूपवर्गधारामें सूच्यंगुल की वर्गशलाकाएं और अर्धच्छेद नहीं पाये जाते, क्योंकि सूच्यंगुल की उत्पत्ति देय एवं विरलन राशियों द्वारा हुई है ।

इस सूच्यंगुल का एक बार वर्ग करने पर प्रतरांगुल उत्पन्न होता है ।

प्रतरांगुल से असंख्यात स्थान आगे जाकर जगच्छ्रेणी का घनमूल उत्पन्न होता है । (जगच्छ्रेणी के घनमूल का घन करने से जगच्छ्रेणी की उत्पत्ति होती है ।)

नोट :—जगच्छ्रेणी घनधारा में है, द्विरूपवर्गधारा में नहीं ।

तिविह जहण्णाणंतं वग्गसलादलछिदी सगादिपदं ।
[1]जीवो पोग्गल काला सेढी आगास तप्पदरम् ॥ ६९ ॥

त्रिविधं जघन्यानन्तं वर्गशलाद्दलच्छेदाः स्वकादिपदं ।
जीवः पुद्गलः कालः श्रेण्याकाशं तत्प्रतरम् ॥ ६९ ॥

तिविह । ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा वर्गशलाकाः, ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा अर्धच्छेदाः, ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा प्रथममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते [2]परिमितानन्तस्य, जघन्यमुत्पद्यते । तस्मिन् राशौ विरलनदेयक्रमे [3]कृते विरलितराश्यर्धच्छेदमात्राणि वर्गस्थानानि गत्वोत्पन्नत्वात्तदर्धच्छेदस्यासंख्यातरूपत्वादसंख्यातस्थानानि गत्वा युक्तानन्तस्य जघन्यमेवोत्पद्यते । तत्र प्रागुक्तवर्गशलाकादीनां निषिद्धत्वात्[4] । तस्मिन्नेकवारं वर्गिते द्विकवारानन्तस्य जघन्यमुत्पद्यते, ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा

---

१ जीवा (प०) । २ परीतानन्तजघन्य (ब०, प०) । ३ क्रमेण (प०) । ४ निषेधत्वात् (ब०, प०) ।

वर्गशलाकाः, ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा अर्धच्छेदाः उत्पद्यन्ते, ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा तत्प्रथममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जीवराशिरुत्पद्यते । अत्र वर्गशलाकादीनामुपलक्षणेनोक्तत्वादुत्तरत्रापि ते वर्गशलाकाद्योऽवगन्तव्याः, ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा पुद्गलराशिरुत्पद्यते, ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा कालसमयराशिरुत्पद्यते, ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा श्रेण्याकाशमुत्पद्यते, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रतराकाशमुत्पद्यते ।। ६९ ।।

गाथार्थ :—जगच्छ्रेणी के घनमूल में असंख्यात स्थान असंख्यातस्थान आगे जाकर तीनों जघन्य अनन्तों में से जघन्यपरीतानन्त की वर्गशलाकाएँ, अर्धच्छेद, प्रथम वर्गमूल, जघन्यपरीतानन्त, जघन्य-युक्तानन्त, जघन्य अनन्तानन्त, जीव, पुद्गल, काल, आकाशश्रेणी और आकाशप्रतर की उत्पत्ति होती है ।। ६९ ।।

विशेषार्थ :—जगच्छ्रेणी के घनमूल से असंख्यात स्थान आगे जाकर जघन्य परीतानन्त की वर्गशलाका राशि उत्पन्न होती है। इससे असंख्यात स्थान आगे जाकर उसीको अर्धच्छेद राशि उत्पन्न होती है। उससे असंख्यात स्थान आगे जाकर उसी जघन्यपरीतानन्त का प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है। इस प्रथम वर्गमूल का एक बार वर्ग करने पर जघन्यपरीतानन्त राशि की उत्पत्ति होती है। जघन्य परीतानन्त से असंख्यात स्थान आगे जाकर जघन्य युक्तानन्त उत्पन्न होता है। अर्थात् "विरलन देय क्रम से उत्पन्न होने वाली राशि विरलन राशि के अर्धच्छेद प्रमाण वर्ग स्थान आगे जाकर उत्पन्न होती है," इस नियम के अनुसार यहाँ जघन्ययुक्तानन्त का प्रमाण लाने के लिये देय राशि जघन्यपरीतानन्त है, और विरलन राशि भी जघन्यपरीतानन्त ही है। विरलन राशि के अर्धच्छेद असंख्यात हैं अतः असंख्यातवर्ग स्थान आगे जाकर जघन्य युक्तानन्त का प्रमाण प्राप्त होता है। यहाँ पर भी पूर्वोक्त प्रकार से वर्गशलाकादि का निषेध है।

इस जघन्ययुक्तानन्त का एक बार वर्ग करने पर जघन्य अनन्तानन्त की उत्पत्ति होती है। इससे अनन्त स्थान आगे जाकर जीव राशि की वर्गशलाकाएँ प्राप्त होती हैं। उससे अनन्त स्थान आगे जाकर उसी के अर्धच्छेद और उससे अनन्त स्थान आगे जाकर उसी जीव राशि का प्रथमवर्गमूल प्राप्त होता है। इस प्रथम वर्गमूल का एक बार वर्ग करने से जीवराशि के प्रमाण की उत्पत्ति होती है। जीवराशि से अनन्त स्थान आगे जाकर पुद्गल राशि की वर्गशलाकाएँ उससे अनन्त स्थान आगे जाकर उसी के अर्धच्छेद और उससे अनन्त स्थान आगे जाकर उसी के प्रथम वर्गमूल की उत्पत्ति होती है। इस प्रथम-मूल का एक बार वर्ग करने पर पुद्गलराशि का प्रमाण उत्पन्न होता है।

पुद्गलराशि के प्रमाण से अनन्त स्थान आगे जाकर काल के समयों की वर्गशलाकाएँ, उससे अनन्त स्थान आगे जाकर उसी के अर्धच्छेद, और उससे अनन्त स्थान आगे जाकर उसी के प्रथमवर्गमूल की उत्पत्ति होती है। इस प्रथम वर्गमूल का एक बार वर्ग करने पर काल के जितने समय हैं उनका प्रमाण प्राप्त होता है।

कालसमय प्रमाण से अनन्त स्थान आगे जाकर श्रेणीरूप आकाश की वर्गशलाकाएँ, उससे अनन्त स्थान आगे जाकर उसीके अर्धच्छेद और उससे अनन्त स्थान आगे जाकर उसी आकाश श्रेणी

का प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है। इस प्रथम वर्गमूल का एक बार वर्ग करने से आकाशश्रेणी उत्पन्न होती है और आकाशश्रेणी का एक बार वर्ग करने से प्रतराकाश उत्पन्न होता है।

धम्माधम्मागुरुलघु इगिजीवागुरुलघुस्स होंति तदो।
सुहमणि अपुण्णणाणे अवरे अविभागपडिच्छेदा ॥ ७० ॥

धर्माधर्मागुरुलघोरेकजीवागुरुलघोः भवन्ति ततः।
सूक्ष्मनिगोदापूर्णज्ञाने अवरे अविभागप्रतिच्छेदाः ॥ ७० ॥

धम्माधम्म। ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा धर्माधर्मागुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदाः, ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा एकजीवागुरुलघुगुणाविभागप्रतिच्छेदा भवन्ति, ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तकजघन्यज्ञानाविभागप्रतिच्छेदा उत्पद्यन्ते ॥ ७० ॥

गाथार्थ :—प्रतराकाश से उत्तरोत्तर अनन्त स्थान आगे आगे जाकर क्रमशः धर्म अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुण के अविभागप्रतिच्छेद और एकजीव के अगुरुलघुगुण के अविभाग प्रतिच्छेदों की प्राप्ति होती है। पुनः अनन्त स्थान आगे जाकर सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तक जीव के जघन्य पर्याय नामक श्रुतज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों की उत्पत्ति होती है ॥ ७० ॥

विशेषार्थ :—प्रतराकाश से अनन्त स्थान आगे जाकर धर्म अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुणके अविभागप्रतिच्छेदों की उत्पत्ति होती है। उससे अनन्तस्थान आगे जाकर एक जीव के अगुरुलघुगुण के अविभागप्रतिच्छेदों की उत्पत्ति होती है। उससे अनन्त स्थान आगे जाकर सूक्ष्मनिगोदलब्ध्यपर्याप्तक जीव के पर्यायनामा जघन्य लब्ध्यक्षर श्रुतज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों का प्रमाण उत्पन्न होता है।

अवरा खाइयलद्धी वग्गसलागा तदो समद्धछिदी।
अडसगछप्पणतुरियं तदियं बिदियादि मूलं च ॥ ७१ ॥

अवरा क्षायिकलब्धिः वर्गशलाका ततः स्वकार्धच्छिदिः।
अष्टसप्तषट्पञ्चतुरीयं तृतीयं द्वितीयादिमूलं च ॥ ७१ ॥

अवरा। ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा तिर्यगसंयतसम्यग्दृष्टौ [1]जघन्यक्षायिकसम्यक्त्वरूपलब्धेरविभागप्रतिच्छेदाः ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा वर्गशलाकाः ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा अर्धच्छेदाः, ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा अष्टममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते सप्तममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते षष्ठमूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते पञ्चममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते चतुर्थमूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते तृतीयमूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते द्वितीयमूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते प्रथममूलं चोत्पद्यते ॥ ७१ ॥

गाथार्थ :—तथा उससे अनन्त स्थान आगे जाकर जघन्यक्षायिकलब्धि की वर्गशलाकाएँ, अर्धच्छेद, आठवाँ, सातवाँ, छठा, पाँचवाँ, चौथा, तीसरा, दूसरा और प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है ॥७१॥

---

1 क्षायिकसम्यक्त्वरूपलब्धेः (ब०, प०) रूपलब्धिः जघन्यलब्धिः (टि०)।

विशेषार्थ :—जघन्य लब्ध्यक्षर श्रुतज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंसे अनन्त स्थान आगे जाकर तिर्यञ्चगतिमें असंयत सम्यग्दृष्टि जीवके जघन्य क्षायिक सम्यक्त्वलब्धिके अविभाग प्रतिच्छेदोंके प्रमाणकी प्राप्ति होती है। उससे अनन्त स्थान आगे जाकर केवलज्ञानकी वर्गशलाकाओंका प्रमाण उत्पन्न होता है। उससे अनन्त स्थान आगे जाकर उसी केवलज्ञानके अर्धच्छेदोंका प्रमाण प्राप्त होता है। उससे अनन्त स्थान आगे जाकर केवलज्ञानका अष्टम वर्गमूल प्राप्त होता है।

इस अष्टम वर्गमूलका एकबार वर्ग करने पर केवलज्ञानका सप्तम वर्गमूल प्राप्त होता है। इसका एकबार वर्ग करनेपर केवलज्ञानका षष्ठ वर्गमूल प्राप्त होता है। इस का एक बार वर्ग करनेपर केवलज्ञानका पंचम वर्गमूल प्राप्त होता है। इसका एकबार वर्ग करनेपर केवलज्ञानका चतुर्थ वर्गमूल प्राप्त होता है। इसका एकबार वर्ग करनेपर केवलज्ञानका तृतीय वर्गमूल प्राप्त होता है। इसका एकबार वर्ग करनेपर केवलज्ञानका द्वितीय वर्गमूल प्राप्त होता है, और इसका एकबार वर्ग करने पर केवलज्ञानका प्रथम वर्गमूल उत्पन्न होता है।

विवक्षित राशिके वर्गमूलको प्रथम वर्गमूल कहते हैं। प्रथम वर्गमूलके वर्गमूलको द्वितीय और द्वितीयके वर्गमूलको तृतीय वर्गमूल कहते हैं। इसीप्रकार आगे आगे कहना चाहिये। जैसे :—एकट्ठीका प्रथम मूल बादाल, द्वितीयमूल पणट्ठी, तृतीयमूल २५६, चतुर्थमूल १६, पंचममूल ४ और षष्ठमूल दो है।

सइमादिमूलवग्गे केवलमंतं पमाणजेट्ठमिणं ।
वरखइयलद्धिणामं सगवग्गसला हवे ठाणं ॥७२॥

सकृदादिमूलवर्गे केवलमंतं प्रमाणजेष्ठमिदम् ।
वरक्षायिकलब्धिनाम स्वकवर्गशला भवेत् स्थानम् ॥७२॥

सइ । सकृदेकवारं तस्यादिमूलस्य वर्गे गृहीते केवलज्ञानस्याविभागप्रतिच्छेदाः । एतावदेव द्विरूपवर्गधारायामन्तं, इदमेव प्रमाणज्येष्ठं, एतदेवोत्कृष्टं, क्षायिकलब्धिनाम । अस्याः द्विरूपवर्गधारायाः स्थानं तस्य केवलज्ञानस्य वर्गशलाकाप्रमाणं भवेत् ॥७२॥

गाथार्थ :—केवलज्ञानके प्रथमवर्गमूलका एकबार वर्ग करनेपर केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण प्राप्त होता है। इतना मात्र ही द्विरूप वर्गधाराका अन्तिमस्थान है। यही उत्कृष्ट प्रमाण है। इसीका नाम उत्कृष्ट क्षायिकलब्धि है। केवलज्ञानकी वर्गशलाकाओंका जितना प्रमाण है, उतना ही प्रमाण द्विरूप वर्गधाराके समस्त स्थानों का है ॥७२॥

विशेषार्थ :—(सातों गाथाओं का) द्विरूपवर्गधाराका सर्व जघन्य और प्रथमस्थान २ का वर्ग चार है। तथा सबसे अन्तिम और उत्कृष्ट स्थान केवलज्ञानके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रमाण है। इस धाराके मध्यम स्थानोंमें निम्नलिखित राशियाँ प्राप्त होती हैं :—१ जघन्यपरीतासंख्यात २ जघन्य

युक्तासंख्यात प्रमाणरूप आवली ३. जघन्य असंख्यातासंख्यातरूप प्रतरावली ४. अद्धापल्य ५. सूच्यंगुल ६. प्रतरांगुल ७. जगच्छ्रेणीका घनमूल ८. जघन्य परीतानन्त ९. जघन्य युक्तानन्त (अभव्य राशि जघन्य युक्तानन्त प्रमाण है) १०. जघन्य अनंतानंत ११. सम्पूर्ण जीवराशि १२. सम्पूर्ण पुद्गलराशि १३. सम्पूर्णकालके समय १४. श्रेणी आकाश १५. प्रतराकाश १६. धर्माधर्म द्रव्यके अगुरुलघु गुणके अविभागप्रतिच्छेद १७. एक जीवके अगुरुलघु गुणके अविभागप्रतिच्छेद १८. सूक्ष्मनिगोदियाके लब्ध्यक्षर पर्याय श्रुतज्ञानके अविभागप्रतिच्छेद १९. असंयत तिर्यञ्चके जघन्य क्षायिक सम्यक्त्व रूप जघन्य लब्धि के अविभाग प्रतिच्छेद और २०. केवलज्ञानके अविभागप्रतिच्छेद ।

अथ धारात्रये सर्वत्राविशेषेण वर्गशलाकादिप्राप्तौ तन्नियममाह—

उप्पज्जदि जो रासी विरलणदिज्जक्कमेण तस्सेत्थ ।
वग्गसलद्धच्छेदा धारातिदए ण जायंते ॥७३॥

उत्पद्यते यः राशिः विरलनदेयक्रमेण तस्यात्र ।
वर्गशलार्धच्छेदा धारात्रितये न जायन्ते ॥७३॥

उप्पज्ज। यत्र धारायां विरलनदेयक्रमेणोत्पन्नो यो यो राशिरुत्पद्यते तस्य तस्य राशेर्वर्गशलाका अर्धच्छेदाश्च तत्रैव धारायां न जायन्ते । इयं व्याप्तिर्द्विरूपवर्गादिधारात्रये । अङ्कसंदृष्टौ विरलनराशिः पञ्च: १६ देयराशिः १६ उत्पन्नराशिः १८ = तस्यार्धच्छेदाः ६४ तस्य वर्गशलाका ६ द्विरूपवर्गधारायां न जायन्ते ॥७३॥

द्विरूपवर्गधारा, द्विरूपघनधारा द्विरूपघनाघनधारा – इन तीन धाराओंमें पाई जाने वाली राशियोंकी वर्गशलाकाओं एवम् अर्धच्छेदोंके सम्बन्धमें विशेष नियम :—

गाथार्थ :—जो राशि विरलन और देय के विधानसे जिस धारामें उत्पन्न होती है, उस धारामें उसकी वर्गशलाकाएं और अर्धच्छेद नहीं पाए जाते । यह नियम तीनों धाराओं में है ॥७३॥

विशेषार्थ :—जिस धारामें विरलन देयक्रमसे जो राशि उत्पन्न होती है, उस राशिकी वर्गशलाका और अर्धच्छेद उसी धारामें नहीं प्राप्त हो सकते । जैसे :— मानलो, अङ्क संदृष्टिमें विरलन राशि १६ है और देयराशि भी १६ है । अतः १६ का एक एक विरलन कर प्रत्येक अङ्क पर १६ देय देकर परस्पर गुणा करनेसे एकट्ठी (१८=) का प्रमाण प्राप्त हुआ । इस एकट्ठीके अर्धच्छेद ६४ और वर्गशलाकाएं ६ हैं जो इस द्विरूपवर्गधारामें नहीं मिलेंगी, किन्तु एकट्ठी मिलेगी । यह नियम तीनों धाराओंके लिए है ।

अथ धारात्रये उपर्युपरि राशावर्धच्छेदप्रमाणमाह —

वग्गादुवरिमवग्गे दुगुणा दुगुणा हवंति अद्धछिदी ।

धारातय सट्ठाणे तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे ॥७४॥

वर्गादुपरिमवर्गे द्विगुणा द्विगुणा भवन्ति अर्धच्छेदाः ।

धारात्रये स्वस्थाने त्रिगुणाः त्रिगुणाः परस्थाने ॥७४॥

वग्गा । वर्गादुपरिमवर्गे द्विगुणा द्विगुणा अर्धच्छेदाः भवन्ति धारात्रये स्वस्थाने, त्रिगुणास्त्रिगुणाः परस्थाने । इयं व्याप्तिद्विरूपवर्गादिधारात्रयेऽपि । द्विरूपवर्गधारायामनुसंदृष्टिः स्वबुद्धितोऽवसेया ॥७४॥

तीनों धाराओंमें ऊपर ऊपर की राशिमें अर्धच्छेदोंका प्रमाण कहते हैं—

गाथार्थ :—तीनों धाराओंके स्वस्थानमें वर्गसे ऊपरके वर्गमें अर्धच्छेद दुगुने दुगुने और परस्थानमें तिगुने तिगुने होते हैं ॥७४॥

विशेषार्थ :—जहाँ निजधारा की अपेक्षा होती है उसे स्वस्थान कहते हैं तथा जहाँ परधाराकी अपेक्षा होती है उसे परस्थान कहते हैं ।

तीनों धाराओंके स्वस्थानमें वर्गसे ऊपर वाले वर्गमें अर्धच्छेद नियमसे दुगुने दुगुने होते हैं और परस्थानमें तिगुने तिगुने होते हैं । जैसे :—द्विरूपवर्गधाराका प्रथम स्थान ४ है और इसके अर्धच्छेद २ हैं । इसके ऊपर दूसरा वर्गस्थान १६ है जिसके अर्धच्छेद ४ हैं जो दो के दुगुने हैं । इसके ऊपर तीसरा स्थान २५६ है जिसके अर्धच्छेद ८ हैं जो ४ के दुगुने हैं । इसी प्रकार आगे आगे भी जानना चाहिए ।

इसीप्रकार परस्थानापेक्षा — द्विरूपवर्गधाराके प्रथम स्थान ४ के अर्धच्छेद २ हैं तथा द्विरूप-घनधाराके दूसरे स्थान ६४ के अर्धच्छेद ६ हैं जो २ के तिगुने हैं । द्विरूपवर्गधारा के दूसरे स्थान १६ के अर्धच्छेद ४ हैं तथा द्विरूपघनधाराके तीसरे स्थान ४०९६ के अर्धच्छेद १२ हैं जो ४ के तिगुने हैं । इसी प्रकार परस्थानापेक्षा नीचे के स्थानसे ऊपर के स्थानके अर्धच्छेद नियमसे तिगुने तिगुने होते हैं । यह नियम तीनों धाराओंमें जानना ।

अथ वर्गशलाकादीनामाविर्भावप्रकारमाह —

वग्गसला रूवहिया सपदे परसम सवग्गसलमेत्तं ।

दुगमाहदमद्धछिदी तम्मेत्तदुगे गुणे रासी ॥७५॥

वर्गशला रूपाधिकाः स्वपदे परस्मिन् समाः स्ववर्गशलामात्रम् ।

द्विकमाहतमर्धच्छेदाः तन्मात्रद्विके गुणे राशिः ॥७५॥

वर्ग । वर्गशलाका रूपाधिकाः स्वस्थाने स्वकीयधारायां परस्मिन् स्थाने परधारायां स्वसमानाः स्वस्ववर्गशलाकामात्रं द्विकं परस्पराहतं चेत् राशेरर्धच्छेदाः भवन्ति । इयं व्याप्तिर्द्विरूपवर्गधारायामेव न द्विरूपघनद्विरूपघनाघनधारयोः तदर्धच्छेदमात्रे द्विके[1] परस्परगुणिते सति राशिर्भवति । इयं व्याप्तिर्धारात्रयेऽपि ॥७५॥

वर्गशलाकाओं की आधिक्यता एवं सादृश्यता का विधान :—

गाथार्थ :—स्वस्थानापेक्षा वर्गशलाकाएं एक अधिक और परस्थानापेक्षा अपने (स्वस्थान) सदृश ही होती हैं।

अपनी वर्गशलाका प्रमाण दुवा रखकर परस्पर गुणा करने से अर्धच्छेद तथा राशिके जितने अर्धच्छेद हैं, उतने दुवा रखकर परस्पर गुणा करनेसे राशिकी प्राप्ति होती है ॥७५॥

विशेषार्थ :—वर्गस्थानसे ऊपरके वर्गस्थान की वर्गशलाकाएं स्वस्थानमें नियमसे एक अधिक होती हैं, तथा परस्थानमें अपने सदृश ही होती हैं। जैसे :—द्विरूपवर्गधाराका प्रथम स्थान (२ का वर्ग) ४ है, दूसरा वर्गस्थान १६ और तीसरा वर्गस्थान २५६ है। यहाँ प्रथम स्थान ४ की वर्गशलाका १, दूसरे स्थान की दो और तीसरे स्थानकी ३ हैं, अर्थात् एक एक की वृद्धि को लिये हुए हैं। द्विरूपवर्गधारामें जैसे :—दो के वर्ग ४ की १ वर्गशलाका और ४ के वर्ग १६ की २ वर्गशलाकाएं होती हैं, उसीप्रकार द्विरूपघनधारामें ८ के घन ६४ की एक वर्गशलाका तथा ६४ के वर्ग ४०९६ की दो वर्गशलाकाएं होती हैं। द्विरूपघनाघनधारामें ५१२ के वर्ग २६२१४४ की एक वर्गशलाका और २६२१४४ के वर्ग की दो वर्गशलाकाएं होती हैं। इसप्रकार परस्थान में वर्गशलाकाएं समान होती हैं।

अर्धच्छेद निकालने का नियम :—जितनी वर्गशलाकाएं हैं, उतनी बार २ लिखकर परस्पर में गुणा करने से उसी राशिके अर्धच्छेद प्राप्त हो जाते हैं। जैसे :—२५६ की ३ वर्गशलाकाएं हैं। अतः २×२×२=८ अर्धच्छेद प्राप्त हुए (२५६ के आठ अर्धच्छेद होते हैं)। यह नियम केवल द्विरूपवर्गधारा के लिए ही है, द्विरूप घनधारा और द्विरूपघनाघनधाराके लिए नहीं है।

राशि निकालने का नियम :—राशिके जितने अर्धच्छेद होते हैं, उतनीबार २ लिखकर परस्पर गुणा करने से विवक्षित राशि प्राप्त होती है। जैसे :—२५६ के ८ अर्धच्छेद हैं, अतः (८ बार), २×२×२×२×२×२×२×२=२५६ विवक्षित राशि प्राप्त हो गई। यह नियम तीनों धाराओंके लिए है।

---

[1] द्विके द्विके (ब०)।

अथ वर्गशलाकार्धच्छेदयोः स्वरूपमाह—

वग्गिदवारा वग्गसलागा रासिस्स अद्धछेदस्स ।
अद्धिदवारा वा खलु दलवारा होंति अद्धछिदी ॥७६॥

वर्गितवारा वर्गशलाका राशेः अर्द्धच्छेदस्य ।
अर्धितवारा वा खलु दलवारा भवन्ति अर्धच्छेदाः ॥७६॥

वग्गिद । राशेर्वर्गितवारा वर्गशलाका, इयं व्याप्तिरपि धारात्रये । अर्धच्छेदस्य अर्धितवारा वर्गशलाकाः, इयं व्याप्तिः द्विरूपवर्गधारायामेव । राशेर्दलवारा अर्धच्छेदाः भवन्ति, इयं व्याप्तिरपि धारात्रये ॥७६॥

वर्गशलाका और अर्धच्छेदका स्वरूप —

गाथार्थ :— राशिके वर्गितवार अर्थात् जितने बार वर्ग करने से राशि उत्पन्न होती है, उतने बार वर्गशलाकाएँ कहलाती हैं अथवा अर्धच्छेद के अर्धच्छेद वर्गशलाकाएँ कहलाती हैं। राशिके जितनी बार अर्ध करते करते एक अङ्क रह जाए, वे बार अर्धच्छेद कहलाते हैं ॥७६॥

विशेषार्थ :— दो के वर्ग से प्रारम्भ कर पूर्व पूर्व का जितनी बार वर्ग करने पर विवक्षित राशि उत्पन्न हो उस राशिके वे वर्गितवार वर्गशलाका कहलाते हैं। जैसे :— दो का एक बार वर्ग करने से चार (२ × २ = ४) की उत्पत्ति हुई अतः ४ की एक वर्गशलाका कहलाई। १६ की उत्पत्तिके लिये दो बार वर्ग [(२ × २ = ४) ४ × ४ = १६)] किया जाता है, अतः १६ की दो वर्गशलाकाएँ हुई। २५६ के लिये तीन बार वर्ग [(२ × २ = ४ (४ × ४ = १६) (१६ × १६ = २५६)] किया जायगा इसलिये २५६ की वर्गशलाकाएँ ३ होंगी। यह नियम तीनों धाराओं में लागू होता है। विशेषता इतनी है कि द्विरूपघनधारा में दो के घन से प्रारम्भ कर पूर्व पूर्व का जितनी बार वर्ग किया जायगा उतनी वर्गशलाकाएँ होंगी। जैसे :— दो का घन ८ है, अतः ८ × ८ = ६४ (घन धारा का दूसरा स्थान) की एक वर्गशलाका और ६४ × ६४ = ४०९६ की दो वर्गशलाकाएँ हुई। कारण कि ८ घनरूप संख्या का दो बार वर्ग किया तब ४०९६ राशि की उत्पत्ति हुई है।

इसीप्रकार घनाघन धारामें दो का घनाघन ($\overline{२ \times २ \times २} \times \overline{२ \times २ \times २} \times \overline{२ \times २ \times २}$) = ५१२ है, जो इस धाराका प्रथम स्थान है। इस ५१२ का वर्ग (५१२ × ५१२) २६२१४४ हुआ। इसकी एक वर्गशलाका हुई, कारण कि घनाघन रूप ५१२ संख्या का एक बार वर्ग करने पर २६२१४४ राशि की उत्पत्ति हुई है। यह नियम तीनों धाराओंके लिए है।

अथवा :— विवक्षित राशिके अर्धच्छेदों के जितने अर्धच्छेद होते हैं, उतनी ही उस राशि की वर्गशलाकाएँ होती हैं। जैसे— २५६ के अर्धच्छेद ८ और ८ के अर्धच्छेद ३ हुये अतः २५६ की तीन वर्गशलाकाएँ हुई। यह नियम मात्र द्विरूप वर्गधारा में ही है। अन्य दो धाराओं में नहीं है।

विवक्षित राशिको जितनी बार आधा करते करते एक अङ्क रह जाय उतने उस राशिके अर्धच्छेद कहलाते हैं। जैसे :—२५६ को ८ बार आधा आधा करने पर एक अङ्क रहता है अतः २५६ के ८ अर्धच्छेद हुए। यह नियम तीनों धाराओं के लिए है।

अथ गाथा षट्केन द्विरूपघनधारामाह—

बेरूवविंदधारा अड चउसट्ठी चडित्तु संखपदे।
आवलि घनमावलिया कदिविंदं चापि जायेज्ज ॥७७॥

द्विरूपवृन्दधारा अष्ट चतुः षष्टिः चटित्वा संख्यपदानि।
आवलिघन आवल्याः कृतिवृन्दं चापि जायेत ॥७७॥

बेरूव। द्विरूपवर्गधारराशीनां ये घनास्तेषां धारा: अष्ट चतुः षष्टिः। एवं पूर्वपूर्ववर्ग[1]रूपेण ४०९६ संख्यातस्थानानि गत्वा जघन्यपरीतासंख्यातघनः ततो विरलितराश्यर्द्धच्छेदमात्रगत्योत्पन्नत्वात्। संख्यात स्थानानि चटित्वा आवलि २ घन ८ उत्पद्यते। तस्मिन्नेकवारं वर्गिते आवल्या: कृतिघनश्चापि जायेत ॥७७॥

छह गाथाओं द्वारा द्विरूपघन धाराका निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ:—द्विरूपघन धाराका प्रथम स्थान ८ तथा दूसरा स्थान ६४ है। इससे संख्यात स्थान आगे जाकर आवली का घन और आवलीके वर्गस्वरूप प्रतरावली का घन उत्पन्न होता है ॥७७॥

विशेषार्थ :—द्विरूपवर्गधारामें जो जो वर्ग रूप राशि हैं, उन वर्गरूप राशियोंकी जो घनरूप राशि है, उनकी धारा को द्विरूप घनधारा कहते हैं। जैसे :—द्विरूप वर्गधाराका प्रथम स्थान २ है। इसी दो का घन (२×२×२) ८ हुआ, अतः द्विरूप घनधाराका प्रथम स्थान ८ है। इसी प्रकार द्विरूप वर्गधाराका दूसरा स्थान ४ और इस ४ का घन (४×४×४) ६४ हुआ अतः द्विरूप घनधाराका दूसरा स्थान ६४ है, जो द्विरूप घनधाराके प्रथम स्थान ८ के वर्ग (८×८) स्वरूप भी है। इसीप्रकार द्विरूप वर्गधारा का तीसरा स्थान १६ और इस १६ का घन (१६×१६×१६) ४०९६ हुआ, अतः द्विरूपघन-धारा का तीसरा स्थान ४०९६ है, जो द्विरूपघनधाराके द्वितीय स्थान ६४ के वर्ग (६४×६४) स्वरूप भी है। इसीप्रकार पूर्व पूर्व राशिका वर्ग करते हुए उत्तर उत्तर स्थान प्राप्त होता है, और संख्यात स्थान आगे जाकर जघन्यपरीतासंख्यात का घन प्राप्त होता है। इससे संख्यात स्थान आगे जाकर आवली का घन उत्पन्न होता है। "विरलन राशिके अर्धच्छेद प्रमाण वर्ग स्थान आगे जाकर विवक्षित राशि उत्पन्न होती है" इस नियम के अनुसार यहाँ विरलन राशि जघन्यपरीतासंख्यात है और उसके अर्धच्छेद संख्यात हैं, इसलिये संख्यात स्थान आगे जाकर आवली का घन उत्पन्न हुआ है। मानलो - आवली ४ है

---

[1] रूपेण ततो (प०)

तो यहाँ ४ का घन ६४ उत्पन्न हुआ है। आवली (४) के घन (६४) का एक वार वर्ग करने से आवली के वर्ग स्वरूप प्रतरावली (४×४=१६) का घन (१६×१६×१६) =४०९६ उत्पन्न होता है।

पल्लघणं विंदंगुलजगसेढीलोयपदरजीवघणं ।
तत्तो पढमं मूलं सव्वागासं च जाणेज्जो ॥७८॥

पल्यघनं वृन्दांगुलजगच्छ्रेणीलोकप्रतरजीवघनम् ।
ततः प्रथमं मूलं सर्वाकाशं च जानीहि ॥७८॥

पल्ल । ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा वर्गशलाका, ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा अर्धच्छेदा, ततोऽसंख्यात स्थानानि गत्वा प्रथममूलं तस्मिन्नेकवारं वर्गिते पल्यघनमुत्पद्यते । ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा घनांगुलमुत्पद्यते । अत्र उप्पज्जदि जो रासित्यादिना निषिद्धत्वात् वर्गशलाकादीनामभावः । ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा जगच्छ्रेणिरुत्पद्यते, अत्रापि उप्पज्जदीति निषिद्धत्वात् वर्गशलाकादीनामभावः । तस्यामेकवारं वर्गितायां जगत्प्रतर उत्पद्यते । ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा वर्गशलाकाः, ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा अर्धच्छेदाः, ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा प्रथममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते जीवराशेर्घन उत्पद्यते । उप्पज्जदीति निषिद्धत्वादत्र वर्गशलाकादीनामभावः । ततोऽनन्तस्थानानि गत्वा प्रथममूलं तस्मिन्नेकवारं वर्गिते सर्वाकाशं च जानीहि ॥७८॥

गाथार्थ :—प्रतरावलीके घनसे आगे आगे पल्य का घन, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर, जीवराशिका घन, सर्वाकाशका प्रथमवर्गमूल और सर्वाकाश की प्राप्ति होती है ॥७८॥

विशेषार्थ :—प्रतरावलीके घनसे असंख्यात स्थान आगे जाकर पल्यकी वर्गशलाकाओं का घन प्राप्त होता है। उससे असंख्यात स्थान आगे जाकर उसीके अर्धच्छेदों का घन और उससे असंख्यात स्थान आगे जाकर उसी पल्यके प्रथम वर्गमूलका घन प्राप्त होता है। उस प्रथममूलके घनका एक वार वर्ग करनेसे पल्यका घन प्राप्त होता है।

पल्यके घन से असंख्यात स्थान आगे जाकर घनांगुलकी प्राप्ति होती है। उप्पज्जदि जो रासि …… सूत्रगाथा ७३ के अनुसार घनांगुलकी वर्गशलाकाएँ और अर्धच्छेद इस द्विरूपघनधारामें नहीं मिलेंगे, क्योंकि यह राशि विरलन-देय विधान से उत्पन्न हुई है। घनांगुलसे असंख्यात स्थान आगे जाकर जगच्छ्रेणीकी प्राप्ति होती है। उपर्युक्त नियमानुसार जगच्छ्रेणीकी भी वर्गशलाकादि इस राशिमें नहीं मिलेंगे। जगच्छ्रेणी का एक वार वर्ग करने पर जगत्प्रतर उत्पन्न होता है। जगत्प्रतर से अनन्तस्थान आगे जाकर जीवराशिकी वर्गशलाकाओं का घन, उससे अनन्तस्थान आगे जाकर उसीके अर्धच्छेदों का घन और उससे अनन्त स्थान आगे जाकर उसीके प्रथममूलका घन प्राप्त होता है। इस प्रथममूलका एक वार वर्ग करने पर जीवराशिके घन की उत्पत्ति होती है। उप्पज्जदि जो रासि ………… (गा० ७३ के) सूत्रानुसार सर्वाकाशके वर्गशलाकादिके घनका इस धारामें अभाव है, अत: जीवराशिके घनसे अनन्त

स्थान आगे जाकर सर्वाकाश का प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है। इस प्रथम मूलका एक बार वर्ग करने पर सर्वाकाशकी उत्पत्ति होती है। अर्थात् – लम्बे, चौड़े और ऊँचे ऐसे सर्वघनरूप आकाशके प्रदेशोंका प्रमाण प्राप्त होता है।

संखमसंखमणंतं वग्गट्ठाणं कमेण गंतूण ।
संखासंखाणंताणुप्पत्ती होदि सव्वत्थ ॥७९॥

संख्यमसंख्यमनन्तं वर्गस्थानं क्रमेण गत्वा ।
संख्यासंख्यानन्तानामुत्पत्तिः भवति सर्वत्र ॥७९॥

संखम। द्विकधारासंख्यातजघन्यपर्यन्तं संख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तदुपरि द्विकधारानन्तजघन्य पर्यन्तमसंख्यातवर्गस्थानानि गत्वा तदुपरि केवलज्ञानपर्यन्तं मनन्तवर्गस्थानानि गत्वा तत्र तत्र वर्ग-धारायां यथासंख्यं संख्यातासंख्यातानन्तानां राशीनामुत्पत्तिर्भवति सर्वत्र ॥७९॥

गाथार्थ :—तीनों धाराओंमें क्रमशः संख्यात, असंख्यात और अनन्तवर्ग स्थान आगे जाकर संख्यात, असंख्यात और अनन्त की उत्पत्ति होती है ॥७९॥

विशेषार्थ :—जघन्य असंख्यातासंख्यातरूप राशि पर्यन्त तो संख्यात वर्गस्थान आगे जाते हैं; इसके ऊपर जघन्य अनन्तानन्तरूप राशि पर्यन्त असंख्यात वर्गस्थान आगे जाते हैं; इसके ऊपर केवल-ज्ञानपर्यन्त अनन्त वर्गस्थान आगे जाते हैं। उन उन वर्गधाराओं में यथाक्रमसे संख्यात, असंख्यात और अनन्तरूप राशियों की उत्पत्ति होती है। यह नियम तीनों धाराओं के लिए है।

जत्थुद्देसे जायदि जो जो रासी विरूवधाराए ।
घणरूवे तद्देसे उप्पज्जदि तस्स तस्स घणो ॥८०॥

यत्रोद्देशे जायते यो यो राशिः द्विरूपधारायां ।
घनरूपे तद्देशे उत्पद्यते तस्य तस्य घनः ॥८०॥

जत्थुद्देसे। यत्रोद्देशे द्विरूपवर्गधारायां यो यो राशिर्जायते द्विरूपघनधारायां तद्देशे तस्य तस्य राशेर्घन उत्पद्यते ॥८०॥

गाथार्थ :—द्विरूपवर्गधारामें जिस स्थान पर जो जो राशि उत्पन्न होती है – द्विरूपघनधारामें उसी उसी स्थान पर उसी की घनरूपराशिकी उत्पत्ति होती है ॥८०॥

विशेषार्थ :—द्विरूपवर्गधारामें जिस स्थान पर जो जो राशि उत्पन्न होती है द्विरूपघनधारामें उसी उसी स्थान पर उसीकी घनरूप राशि उपलब्ध होती है। जैसे — द्विरूपवर्गधारामें २—४—१६—२५६—६५५३६—बादाल—एकट्ठी हैं और द्विरूपघनधारामें ८—६४—४०९६—$४०९६^{२}$—$४०९६^{४}$ $४०९६^{८}$—$४०९६^{१६}$ हैं। अभिप्राय यह है कि द्विरूपवर्गधारामें जो जो राशियाँ हैं, उनके घनसे ही द्विरूपघनधारा की उत्पत्ति होती है।

एवमणंतं ठाणं णिरंतरं गमिय केवलस्सेव ।
बिदियपदविंदमंतं बिदियादिममूलगुणिदसमं ॥८१॥

एवमनन्तं स्थानं निरन्तरं गत्वा केवलस्यैव ।
द्वितीयपदवृन्दमन्तो द्वितीयादिममूलगुणितसमः ॥८१॥

एवमरांतं । एवं[1] सर्वाकाशराशेरुपर्यनन्तस्थानं निरन्तरं गत्वा केवलज्ञानस्य द्वितीयमूलघन उत्पद्यते स एव द्विरूपघनधारायामन्तः । तत् किंविशिष्टं? द्वितीयादिममूलयोः परस्पर गुणितराशि समः ॥८१॥

गाथार्थ :—इसप्रकार निरन्तर अनन्त स्थान आगे जाकर केवलज्ञानके द्वितीय वर्गमूलका घन उत्पन्न होता है । यही द्विरूपघनधाराका अन्तिम स्थान है । यह द्वितीय वर्गमूल और प्रथम वर्गमूलका परस्पर गुणा करने से उत्पन्न हुई राशिके बराबर है ॥८१॥

विशेषार्थ :—सर्वाकाश राशि के आगे निरन्तर अनन्तस्थान आगे जाकर केवलज्ञानके द्वितीय वर्गमूलका घन उत्पन्न होता है । यही द्विरूपघनधाराका अन्तिम स्थान है । वह केवलज्ञानके द्वितीय वर्गमूल और प्रथम वर्गमूलका परस्पर गुणा करने से उत्पन्न हुई राशिके सदृश है । यथा— केवलज्ञान स्वरूप ६५५३६के द्वितीय वर्गमूल १६ का घन ४०९६ है और ६५५३६ के प्रथम वर्गमूल २५६ में द्वितीय वर्गमूल १६ का गुणा (२५६ × १६) करने से भी ४०९६ की प्राप्ति होती है । अर्थात् केवलज्ञानके द्वितीय वर्गमूलका घन = केवलज्ञानका प्रथम वर्गमूल × द्वितीयवर्गमूल है ।

एतदेवान्तस्थानं कथमित्याशङ्कायामाह —

चरिमस्स दुचरिमस्स य णेव घणं केवलव्वदिक्कमदो ।
तम्हा विरूवहीणा सगवग्गसला हवे ठाणं ॥८२॥

चरमस्य द्विचरमस्य च नैव घनः केवलव्यतिक्रमतः ।
तस्मात् द्विरूपहीना स्वकवर्गशला भवेत् स्थानम् ॥८२॥

चरिम । चरमराशेर्द्विचरमराशेश्च घनो नैवान्तः । कुतः ? केवलज्ञानव्यतिक्रमो यस्मात् । तस्मात्स्थानं पुनर्द्विरूपहीनस्वकीयवर्गशलाकामात्रं भवेत् । अङ्कसंदृष्टिरश्चमूह्या ॥८२॥

केवलज्ञानका यही अन्तिम स्थान कैसे है ?

गाथार्थ :—द्विरूपवर्गधाराकी चरम और द्विचरम राशिका घन, इस धारा का अन्तिम स्थान नहीं है । कारण कि इनका घन तो केवलज्ञानके प्रमाणसे अधिक हो जाएगा । इस धाराके समस्त स्थान, दो कम केवलज्ञानकी वर्गशलाका प्रमाण हैं ॥८२॥

---

[1] सर्वत्राकाशराशे (प०) ।

विशेषार्थ :—द्विरूपवर्गधाराकी चरमराशि केवलज्ञान है, और द्विचरमराशि केवलज्ञानका प्रथम वर्गमूल है। इन दोनों राशियोंके घनको ग्रहण कर इस धाराका अन्तिम (चरम) स्थान नहीं होता। अर्थात् इन दोनों को यहाँ ग्रहण नहीं किया गया है। कारण कि इनके घन को ग्रहण करने से केवलज्ञानसे अधिक प्रमाण वाली राशिकी प्राप्ति होनेका प्रसंग प्राप्त होता है। जैसे :—केवलज्ञान स्वरूप ६५५३६ का घन $(६५५३६)^3$ और ६५५३६ के प्रथम वर्गमूल २५६ का घन $(२५६)^3$ ये दोनों राशियाँ केवलज्ञानके प्रमाणको उल्लंघन करने वाली हैं। अतः द्विरूपघनधारामें इनका ग्रहण न करके केवलज्ञानके द्वितीय वर्गमूलका घन ग्रहण किया गया है। जैसे :—केवलज्ञान स्वरूप ६५५३६ का द्वितीय वर्गमूल १६ है, और इसका घन ४०९६ है जो केवलज्ञानके भीतर है। यही इस धाराका अन्तिम स्थान है।

इस द्विरूपघनधारा के समस्त स्थान दो कम केवलज्ञानकी वर्गशलाका प्रमाण हैं। इस धारा का आदि स्थान ८ और अन्त स्थान केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूलका घन है तथा द्विरूपवर्गधाराके सभी मध्यम स्थान घन स्वरूप होकर इस धारा के मध्यम स्थान बन जाते हैं।

इदानीं द्विरूपघनाघनधारां गाथाष्टकेनाह —

तं जाण विरूवगयं घणाघणं अट्ठविंदतव्वग्गं ।
लोगो गुणगारसला वग्गसलद्धच्छेदादिपदं ॥८३॥
तेउक्काइयजीवा वग्गसलागत्तयं च कायठिदी ।
वग्गसलादितिदयं ओहिणिबद्धं वरं खेत्तं ॥८४॥

तं जानीहि द्विरूपगतं घनाघनं अष्टवृन्दतद्वर्गम् ।
लोको गुणकारशला वर्गशलार्धच्छेदादिपदम् ॥८३॥
तेजस्कायिकजीवा वर्गशलाकात्रयं च कायस्थितिः ।
वर्गशलादित्रितयं अवधिनिबद्धं वरं क्षेत्रम् ॥८४॥

तं जाण। द्विरूपवर्गधारायां यो यो राशिः उक्तः तस्य तस्य घनाघन एवात्र धारायामित्यमुं क्रमं जानीहि। कथं चरतीति चेत्। आदिवृन्दघनः ५१२ तदुपरि वृन्दघनवर्गः २६२१४४ तदुपरि असंख्यातस्थानानि गत्वा लोक उत्पद्यते। अस्य वर्गशलाकाविरलापतितत्वादनुक्त इत्यवसेयः। ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा गुणकारशलाकाराशिरुत्पद्यते। स क इति चेत्, लोकं विरलयित्वा लोकमेव दत्वा समस्तराशीनन्योन्यं गुणयित्वा एकवारं गुणित मिति लोकमात्रशलाकाराशितो[1] रूपमपनयेत्। अत्र गुणकारशलाका रूपोनलोकमात्रा भवन्ति। तं पुनरप्यसंख्यात लोकमात्रं (≡a) अन्योन्यगुणित-राशिमेव विरलयित्वा तमेव दत्वा अन्योन्यं गुणितमिति प्राक्तनशलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत्; तत्र

१ पूर्ववत् एकं (प०)।

च गुणकारशलाका रूपोनासंख्यातलोकमात्रा भवन्ति । (≡a) एवं यावच्छलाकाराशिसमाप्तिस्तावद्-गुणकारशलाका वर्धन्ते । ≡ ≡ a | ≡ aa | ≡ aaa एवं सर्वैकवारशलाकानिष्ठापनं स्यात् । एवमाद्-द्वितीयवारं शलाकानिष्ठापने कृते यावन्त्यो गुणकारशलाकास्तावन्त्योऽत्र गुणकारशलाका इत्युच्यन्ते । ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा वर्गशलाकास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा अर्धच्छेदास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा प्रथममूलं तस्मिन्नेकवारं वर्गिते ॥८३॥

तेउ । तेजस्कायिकजीवराशेः संख्या उत्पद्यते । सा पुनराद्यद्वितीयवारशलाकानिष्ठापने यो राशि-रुत्पद्यते तत्प्रमाणमित्यवसेयं । अस्य वर्गशलाकायाः अधो गुणकारशलाका तिष्ठतीति । कथमिति चेत् अङ्कसंदृष्टौ प्रदर्श्यते । बादाले ४२ = ४२ = अन्योन्यं गुणिते एकट्ठमुत्पद्यते १८ = अस्य गुणकारशलाका एका वर्गशलाका पुनः षट्[1] ततस्तेजस्कायिकवर्गशलाकाया अधो गुणकारशलाका तिष्ठतीत्यवसेयं ।

---

[1] पुनः षट् – इत्यतोऽग्रे 'ब०' प्रतौ निम्नाङ्कितः पाठोऽधिको वर्तते–ततस्तेजस्कायिक, म क इति चेत् ? तेजस्कायिक जीवराशिप्रमाणानयनविधाने लोकानां परस्परगुणितवारा गुणकारशलाका उच्यन्ते । तद्यथा, सूत्राविरोधेनाचार्य परम्परागतोपदेशेन वक्ष्यामि । एकं लोकप्रमाणराशिं शलाकारूपेण स्थापयित्वा तमेव विरलनदेयराशिं कृत्वा (श ≡ वि ≡ दे ≡) विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति देयराशिं दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वाऽन्योन्यमेकवारं गुणितमिति लोकमात्रशलाकाराशितो रूपमपनयेत् ≡ तदा एकाऽन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाका लभ्यते । तत्रोत्पन्नराशेः पल्योप-मासंख्यातैकभागमात्रवर्गशलाका भवन्ति । तत्कथमिति चेत् ? देयराशेरुपरि विरलितराश्यर्द्धच्छेदमात्र वर्गस्थानानि गत्वा लब्धराशिरुत्पद्यते । इति पल्यासंख्यातैकभाग प्रमितलोकार्द्धच्छेदमात्रवर्गस्थानानि लोकस्योपरि गत्वा प्रकृत-राशिरुत्पन्न इत्यर्थः । तस्य राशेरर्द्धच्छेदशलाकाः असंख्यातलोकमात्रा भवन्ति । राशिरप्यसंख्यातलोकमात्रोऽभूत् । पुनरपि तं तत्रोत्पन्नमहाराशिं विरलन (देय) राशिं च कृत्वा (वि ≡ a दे ≡ a) विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रति-देयराशिं तमेव दत्त्वा वर्गित संवर्गं कृत्वा पूर्वशलाकाराशितो पर रूपमपनयेत् ≡ तदाऽन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाके द्वे भवतः । वर्गशलाका अर्द्धच्छेदशलाकाराशिश्च प्रत्येकमसंख्यातलोकमात्रा भवन्ति । अनेन क्रमेण लोकमात्रशलाका-राशिपरिसमाप्तिपर्यन्तं नेतव्यं स्यात् । तदाऽन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाः लोकमात्रा भवन्ति । अन्ये त्रयोऽपि राशयोऽ-संख्यातलोकमात्रा भवन्ति । पुनरपि तत्रोत्पन्नमहाराशिं शलाकाविरलनदेयरूपेण त्रिप्रतिकं कृत्वा (श ≡ a वि ≡ a दे ≡ a) विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रतिदेयराशिं तमेव दत्त्वा वर्गित संवर्गं कृत्वा द्वितीयवारशलाकाराशितः श ≡ a रूपमपनयेत् ≡ a तदाऽन्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाः रूपाधिकमात्रा भवन्ति ≡ । अन्ये त्रयोऽपि राशयः असंख्यातलोकमात्रा भवन्ति । पुनरपि तत्रोत्पन्नराशिं विरलनदेयराशीकृत्वा विरलनराशिं विरलयित्वा रूपं प्रतिदेयराशिं तमेव दत्त्वा वर्गित संवर्गं कृत्वा द्वितीयशलाकाराशितः अपरं रूपमपनयेत् ≡ a तदाऽन्योन्याभ्यस्त-गुणकारशलाका द्विरूपाधिकलोकमात्रा भवन्ति ≡ शेषवर्गशलाका अर्द्धच्छेदराशिरिति त्रयोऽप्यसंख्यातलोकमात्रा

ततोऽसंख्यात स्थानानि गत्वा वर्गशलाकास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा अर्धच्छेदास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा प्रथममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते कायस्थितिप्रमाणमुत्पद्यते । तत्कोऽत्रमिति चेत् । अन्यकायादागत्य तेजस्कायिकेषूत्पन्न जीवस्योत्कृष्टेन तेजस्कायिकत्वेनावस्थानकाल इति प्रकथयामः । ततोऽसंख्यात-स्थानानि गत्वा वर्गशलाकास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वार्धच्छेदास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा प्रथममूलं, तस्मिन्नेकवारं वर्गिते सर्वावधिनिबद्ध मुत्कृष्टक्षेत्रमात्र $\equiv$ ८ मुत्पद्यते । क्षेत्रस्य लोकमात्रत्वेऽपि $=$ दावत्यपे-क्षयोक्तत्वात् घटते ॥८४॥

१४. आठ गाथाओं द्वारा द्विरूपघनाघन धारा का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—द्विरूपवर्गधारामें जो जो राशि वर्गरूप है उस प्रत्येक राशि का घनाघन (घन का घन) इस धारामें प्राप्त होता है । इस धारा का प्रथम स्थान ८ का घन और द्वितीय स्थान आठ के घन का वर्ग जानो । उत्तरोत्तर आगे आगे जाकर लोक, गुणकारशलाका, वर्गशलाका, अर्धच्छेद और प्रथम वर्गमूल की प्राप्ति होती है । (इस प्रथम वर्गमूलका एक बार वर्ग करने पर) तेजस्कायिक जीव राशि उत्पन्न होती है। उससे आगे आगे असंख्यात वर्गस्थान जाने पर क्रमशः तेजस्काय-स्थिति की वर्गशलाका, अर्धच्छेद व प्रथममूल उत्पन्न होते हैं । इस प्रथममूलका एक बार वर्ग करने पर तेजस्काय स्थिति उत्पन्न होती है । पुनः असंख्यात-असंख्यात वर्गस्थान आगे जाने पर क्रमश अवधिज्ञानके उत्कृष्ट

भवन्ति । अनेन क्रमेण द्विरूपोनोत्कृष्टसंख्यातशलाकामात्रलोकशलाका यावद् भवन्ति तावन्नयेत् । $\overset{\circ}{१५}$ एतस्मिन्नन्योन्या-भ्यस्तगुणकारशलाकासु प्राक्तनद्विरूपाधिकलोकमात्रान्योन्याभ्यस्त शलाकाशलाकासु मिलितासु $\equiv$ १६ तदा चत्वारोऽपि राशयोऽसंख्यातलोकमात्रा आलापमात्रेण भवन्ति । एवं द्वितीयवार स्थापितशलाकाराशिपरिसमाप्तिर्यावत् तावन्नयेत् । तदा चत्वारोऽपि राशयोऽसंख्यातलोकमात्रा भवन्ति । पुनरपि तत्रोत्पन्नमहाराशि त्रिप्रतिकं कृत्वा (श $\equiv$ ८ वि $\equiv$ ८ दे $\equiv$ ८) विरलनराशि विरलयित्वा रूपं प्रतिदेयं तमेव दत्त्वा वर्गितसंवर्गं कृत्वा तृतीयवारशलाकाराशितः रूपमपनयेत् श $\overset{२}{\equiv}$ ८ तदा चत्वारोऽपि राशयोऽसंख्यातलोकमात्राः । एवं तृतीयवारस्थापित शलाकाराशिपरि-समाप्तिर्यावत् तावन्नयेत् । तदान्योन्याभ्यस्तगुणकार राशिर्वर्गशलाका राशिरर्धच्छेदराशिः लब्धराशिश्चेति चत्वारो राशयस्तदोऽसंख्यातलोकमात्रा भवन्ति । पुनरपि तं तत्रोत्पन्नमहाराशि त्रिप्रतिकं कृत्वा (श $\equiv$ ८ वि $\equiv$ ८ दे $\equiv$ ८) विरलनराशि विरलयित्वा रूपं प्रतिदेयं तमेव दत्त्वा वर्गित संवर्गं कृत्वा चतुर्थवारशलाकाराशितो रूप-मपनयेत् । एवमेव पुनः पुनस्तावन्नयेत् यावदतिक्रान्तान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकापरिहीण *चतुर्थवारस्थापितान्योन्या-भ्यस्तगुणकारशलाकाराशिपरिसमाप्तिर्भवति तदा तेजस्कायिक जीवराशिप्रमाणमुत्पद्यते । एवमाद्यद्वार शलाकानिष्पादने कृते यावत्यो गुणकारशलाकास्तावत्योऽत्र गुणकारशलाका इत्युच्यते । गुणकारशलाकाराश्युत्पत्ति विवरणमिदम् ।

*'चतुर्थवार स्थापितान्योन्याभ्यस्तगुणकारशलाकाराशि' के स्थान पर 'चतुर्थवारस्थापितशलाकाराशि' होना चाहिए । यहाँ पर लेखक से अशुद्ध लिखा गया है, ऐसा प्रतीत होता है ।

क्षेत्र की वर्गशलाका, अर्धच्छेद व प्रथमवर्गमूल प्राप्त होता है; जिसका एक बार वर्ग करने पर अवधि-ज्ञान के उत्कृष्ट क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त होता है ॥८३-८४॥

विशेषार्थ :— द्विरूपवर्गधारा में जो राशियाँ वर्गरूप हैं, उन राशियों का घनाघन ही इस धारा में प्राप्त होता है। घन के घन को ही घनाघन कहते हैं। जैसे:—द्विरूपवर्गधारा का प्रथम स्थान २ है। इस दो का घन (२×२×२) ही द्विरूपघनधारा का प्रथम स्थान ८ है, और इस ८ का घन (८×८×८) ही द्विरूपघनाघन धारा का प्रथम स्थान ५१२ है। अर्थात् दो का घनाघन (२×२×२×२×२×२×२×२×२) ५१२ है, जो द्विरूपघनाघन धारा का प्रथम स्थान है। इसी ५१२ का वर्ग (५१२×५१२)= २६२१४४ द्विरूपघनाघन धारा का दूसरा स्थान है, जो द्विरूपघन धारा के दूसरे स्थान ६४ के घन-स्वरूप है और द्विरूपवर्गधारा के दूसरे स्थान ४ के घनाघन (४×४×४×४×४×४×४×४×४) स्वरूप है। अर्थात् २६२१४४ द्विरूपघनधारा के दूसरे स्थान ६४ का घन है और द्विरूपवर्गधारा के दूसरे स्थान ४ का घनाघन है। इससे (२६२१४४) असंख्यात स्थान आगे जाकर लोकाकाश के प्रदेशों के प्रमाण स्वरूप लोक उत्पन्न होता है। इस लोक की वर्गशलाकादि इस धारा में नहीं आतीं अतः नहीं कही गई हैं, ऐसा जानना चाहिए। लोक के प्रमाण से असंख्यात स्थान आगे जाकर गुणकारशलाका राशि उत्पन्न होती है।

शङ्का :—गुणकारशलाका किसे कहते हैं ?

समाधान :—जगच्छ्रेणी के घन स्वरूप लोक को शलाका, विरलन और देय रूप से तीन जगह स्थापन करना चाहिए। लोक स्वरूप विरलन राशि का एक एक विरलन कर प्रत्येक एक अङ्क के ऊपर लोक देयरूप देकर परस्पर गुणा कर देना चाहिए। यहाँ एक बार गुणा हुआ है अतः लोक स्वरूप शलाका राशिमें से एक अंक कम कर देना चाहिए। यहाँ गुणकार शलाकाएँ एक कम लोक प्रमाण होती हैं। [यहाँ पर गुणकारशलाका राशि का प्रमाण एक कम लोकमात्र इसलिए है कि प्रथम देयरूप लोक को दूसरे देयरूप लोकसे गुणा करने पर एक गुणकार शलाका होती है। तीसरे देय रूप लोक से गुणा करने पर दूसरी गुणकार शलाका उत्पन्न होती है जो तीन से एक कम है। इसीप्रकार क्रमशः गुणित करते हुए अन्तिम देयरूपलोकसे गुणा करने पर एक कम लोक प्रमाण गुणकार शलाकाएँ होती हैं। जैसे – मान लीजिए :— अङ्कसंदृष्टिमें लोक का प्रमाण ४ है, अतः शलाका राशि ४, विरलन राशि ४ और देयराशि ४, इसप्रकार तीन जगह स्थापन किया। विरलन राशिका विरलन कर उसके ऊपर देयराशि देय देकर परस्पर गुणा करने से (४ ४ ४ ४ = २५६) एक बार गुणा हुआ अतः शलाका राशि ४ मे से एक अङ्क घटा (४—१=३) दिया। यहाँ पर लोकस्वरूप चार का गुणा ३ बार (४×४×४×४) ही हुआ है। अर्थात् ४×४=१६ एक बार, १६×४=६४ दूसरी बार और ६४×४=२५६ यह तीसरी बार गुणा हुआ, अतः गुणकार शलाकाएँ एक कम लोक मात्र कही गई हैं।]

परस्पर के गुणन से उत्पन्न हुई असंख्यात लोकप्रमाण राशि का पुनः विरलन कर, तथा उसी को प्रत्येक विरलित अङ्क पर देय देकर परस्पर में गुणा करना चाहिए, तब शलाका राशि में से दूसरी बार एक अङ्क घटा देना चाहिए। यहाँ पर गुणकार शलाकाएँ एक कम असंख्यात लोकमात्र प्रमाण होती हैं। इस प्रकार पुनः पुन विरलन, देय, गुणन और ऋण की क्रिया करते हुए जबतक लोक प्रमाण प्रथम शलाका राशि समाप्त होती है तबतक गुणकार शलाका राशि वृद्धिङ्गत होती जाती है। इसप्रकारसे शलाका राशि समाप्त करने को एक बार शलाका निष्ठापन कहते हैं। इसी विधिसे साढ़े तीन बार शलाका निष्ठापन करने पर जितनी गुणकार शलाका राशि उत्पन्न होगी उस गुणकार शलाका राशि का यहाँ कथन किया जा रहा है, क्योंकि यह गुणकार शलाका राशि तेजस्कायिक जीव राशि प्रमाण है। इस गुणकार शलाका राशि से असंख्यात स्थान आगे जाकर तेजस्काय जीव राशिकी वर्गशलाकाएँ, उससे असंख्यात स्थान आगे जाकर उसीके अर्धच्छेद और उनसे असंख्यात स्थान आगे जाकर उसी के प्रथमवर्गमूल की उत्पत्ति होती है। इस प्रथममूल का एक बार वर्ग करने पर तेजस्कायिक जीव राशि की संख्या उपलब्ध होती है। साढ़े तीन बार शलाका निष्ठापन करने से जो राशि उत्पन्न होती है, उतना ही प्रमाण तेजस्कायिक जीव राशि की संख्या का जानना चाहिए। इस तेजस्कायिक जीवराशि की वर्गशलाकाओं से उसी की गुणकार शलाकाएँ अल्प हैं। वर्गशलाकाओं से गुणकार शलाकाएँ कम क्यों हैं ? इसको अङ्कसंदृष्टि द्वारा दर्शाते हैं :—बादाल (४२ =) को बादाल से गुणा करने पर (४२= × ४२ =) एकट्ठी (१८=) उत्पन्न होती है। इसकी गुणकार शलाका १ है क्योंकि गुणा एक बार ही किया गया है; किन्तु वर्ग शलाकाएँ ६ हैं, क्योंकि दो का उत्तरोत्तर ६ बार वर्ग करने से १८= (एकट्ठी) उत्पन्न होती है। तेजस्कायिक जीव राशि का प्रमाण प्राप्त करने के विधान में लोक का जितनी बार परस्पर गुणा किया गया है उतनी गुणकार शलाकाएँ कही गई हैं। सूत्र से अविरुद्ध तथा आचार्य परम्परा से आए हुए उपदेशानुसार इसे कहा जाता है :—लोक शलाका रूप से स्थापित कर उसी लोक को विरलन एवं देय राशि रूप से भी स्थापित [शलाका ≡, विरलन ≡, देय ≡] करना चाहिए। विरलन राशि लोक को विरलित कर, प्रत्येक अङ्क के प्रति देय राशि लोक को देकर, वर्गित संवर्गित द्वारा एक बार परस्पर गुणा करने पर शलाका रूप लोक राशि में से एक कम [शलाका ≡ — १] कर देना चाहिए। इस प्रकार परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो उसकी अन्योन्याभ्यस्त गुणकार शलाका तो एक होगी और वर्गशलाकाएँ पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण होंगी। क्योंकि देय राशि से आगे, विरलन राशि के अर्धच्छेद प्रमाण वर्गस्थान आगे जाकर विरलन राशि उत्पन्न होती है। लोक स्वरूप विरलन राशि के अर्धच्छेद पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं, अतः लोक रूप देय राशि से पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण वर्ग स्थान आगे जाकर यह महान राशि उत्पन्न होती है। इस राशि की अर्धच्छेद शलाकाएँ असंख्यात लोक मात्र हैं, तथा यह महान राशि भी असंख्यात लोक मात्र है। इसप्रकार असंख्यात लोक प्रमाण जो महाराशि उत्पन्न हुई है, उसे विरलन और देय रूप से स्थापन करना चाहिए। [विरलन राशि असंख्यात लोक प्रमाण और

देय राशि भी असंख्यात लोक प्रमाण] विरलन राशि को विरलित कर, प्रत्येक अङ्क पर देय राशि देकर वर्गित-संवर्गित करके पूर्व स्थापित लोक प्रमाण शलाका राशि में से पुनः एक कम [शलाका राशि = − २] कर देना चाहिए। अब इस राशि की अन्योन्याभ्यस्त गुणकार शलाका दो, तथा वर्गशलाकाएँ और अर्धच्छेदशलाकाएँ असंख्यात लोकमात्र हो जाती हैं। यही (विरलन, देय, गुणन एवं ऋण रूप) क्रम लोक मात्र शलाका राशि की परिसमाप्ति तक जानना चाहिए। जब लोकमात्र शलाका राशि समाप्त होगी तब अन्योन्याभ्यस्त गुणकार शलाका तो लोकमात्र होंगी और अन्य दो अर्थात् विरलन राशि तथा देय राशि असंख्यात लोक मात्र होंगी।

पुनः इसप्रकार उत्पन्न हुई महाराशि को शलाका, विरलन और देय इन तीनों रूप स्थापित करना चाहिए। [शलाका राशि असंख्यातलोक, विरलन राशि असंख्यात लोक और देयराशि असंख्यात लोक] विरलन राशि को विरलित कर प्रत्येक अंक पर देय राशि देकर, वर्गित संवर्गित करने पर दूसरी शलाका राशि (असंख्यात लोक) में से एक कम [असंख्यात लोक — १] कर देना चाहिये। इस महाराशि की अन्योन्याभ्यस्त गुणकार शलाका एक अधिक लोकमात्र [= + १] हैं, तथा अन्य दो अर्थात् विरलन और देय राशियां असंख्यात लोक मात्र हैं।

पुनः इसप्रकार उत्पन्न हुई महाराशि को विरलन एवं देय रूप से स्थापित कर, विरलन राशि को विरलित कर प्रत्येक अंक पर देय राशि देकर वर्गित संवर्गित करने पर दूसरी शलाका राशि में से पुनः एक कम कर देना चाहिये, अब दूसरी शलाका राशि का प्रमाण दो कम असंख्यात लोक [= ८ − २] है, और अन्योन्याभ्यस्त गुणकार शलाका दो अधिक लोक [= + २] प्रमाण है, शेष वर्गशलाका एवं अर्धच्छेद शलाका राशि असंख्यात लोकमात्र हैं। इस प्रकार तीनों राशियां (शलाका राशि, वर्गशलाका राशि एवं अर्धच्छेद शलाका राशि) असंख्यात लोकमात्र हैं। इस क्रम को तब तक करते रहना चाहिए जबतक कि लोकशलाका दो कम उत्कृष्ट संख्यात बार [= १५ — २][1] न हो जाएँ। इतनी अन्योन्याभ्यस्त गुणकार शलाकाओं में पूर्वोक्त दो अधिक अन्योन्याभ्यस्त गुणकारशलाकाएँ और मिला देने से अन्योन्याभ्यस्त गुणकार शलाकाएँ − असंख्यात लोक [= १६][2] प्रमाण हो जाती हैं ऐसा आलाप करने में तब चारों ही राशियाँ (गुणकारशलाका राशि, शलाका राशि, विरलन राशि एवं देय राशि) असंख्यात लोक प्रमाण हो जाती हैं। जबतक दूसरी बार स्थापित शलाका राशि समाप्त न हो जाए तब तक इसी प्रकार करते रहना चाहिए। तब भी चारों राशियां (गुणकारशलाका राशि, शलाका राशि, विरलन राशि और देय राशि) असंख्यात लोक प्रमाण रहती हैं।

पुनः इस प्रकार दूसरी शलाका राशि की पर समाप्ति पर उत्पन्न हुई महाराशि तीन

१: लोक का चिन्ह = है, और उत्कृष्ट संख्यात का चिन्ह १५ है।

२. जघन्य असंख्यात का चिन्ह १६ है।

[असंख्यात लोक प्रमाण शलाका राशि, असंख्यात लोक प्रमाण विरलन राशि और असंख्यात लोक प्रमाण देय राशि] रूप स्थापित कर, विरलन राशि को विरलित कर, प्रत्येक अंक पर देय राशि देकर वर्गित संवर्गित करना चाहिए। तीसरी बार की शलाका राशि के समाप्त होने तक इसी (पूर्वोक्त) प्रकार करते रहना चाहिए। तब अन्योन्याभ्यस्त गुणकार राशि, वर्गशलाका राशि, अर्धच्छेद राशि और उत्पन्न हुई महान राशि, ये चारों राशियां अपने अपने योग्य असंख्यातलोक प्रमाण हो जाती हैं।

तृतीयबार शलाका राशि के समाप्त होने पर उत्पन्न हुई राशि को फिर भी तीन रूप [असंख्यात लोक प्रमाण शलाका राशि, असंख्यात लोक प्रमाण विरलन राशि एवं असंख्यात लोक प्रमाण देय राशि] स्थापित करके, विरलन राशि को विरलित कर, प्रत्येक अंक पर देय राशि देकर वर्गित संवर्गित करने पर चतुर्थबार शलाका राशि में से एक कम करना चाहिए। इस प्रकार पुन: पुन: तब तक एक एक कम करना चाहिए जब तक कि अतिक्रान्त अन्योन्याभ्यस्त गुणकार शलाका से हीन चतुर्थबार स्थापित शलाका राशि समाप्त न हो जाए (अर्थात् तृतीयशलाका निष्ठापन – परिसमाप्ति पर जो अन्योन्याभ्यस्त गुणकार शलाका राशि उत्पन्न हुई थी वह तृतीय शलाका राशि का उल्लंघन कर उत्पन्न हुई है, अतः अतिक्रान्त अन्योन्याभ्यस्त गुणकार शलाका राशि कहा गया है। इस राशि को चतुर्थबार स्थापित शलाका राशि में से घटाने पर जो राशि अवशेष रहती है वही अर्धशलाका राशि मानी गई है। प्रत्येक बार वर्गित संवर्गित करते हुए उस अर्धशलाका राशि में से एक एक कम करते रहना चाहिए) । जब यह शेष (चतुर्थ बार स्थापित शलाका राशि – अतिक्रान्त अन्योन्याभ्यस्त गुणकार शलाका राशि) अर्धशलाका राशि समाप्त हो जाए, तब जो महान राशि प्राप्त होती है वह तेजस्कायिक जीव राशि के प्रमाण स्वरूप ही उत्पन्न होती है।

इस प्रकार साढ़े तीन बार शलाका राशि स्थापित करने पर जितनी गुणकार शलाकाएँ उत्पन्न होती हैं उतनी ही यहाँ पर गुणकार शलाका कही गई हैं। यह गुणकार शलाका राशि का विवरण है। वर्गशलाका राशि से गुणकार शलाका राशि अल्प हैं ऐसा इस कथन से जानना चाहिए।

तेजस्कायिक जीवराशि की गुणकार शलाका राशि से असंख्यात वर्गस्थान आगे जाकर तेजस्कायिक जीव की कायस्थिति की वर्गशलाकाएँ प्राप्त होती हैं। वर्गशलाकाओं से असंख्यातवर्गस्थान ऊपर जाकर उसीकी अर्धच्छेदशलाकाएं प्राप्त होती हैं। अर्धच्छेद शलाकाओं से असंख्यात वर्ग स्थान ऊपर जाकर उसीका प्रथम मूल प्राप्त होता है। उस प्रथम वर्गमूल का एक बार वर्ग करने पर तेजस्कायिक जीव की कायस्थिति का प्रमाण प्राप्त होता है। तेजस्कायस्थिति से क्या प्रयोजन है ? पृथिवी जल आदि अन्य काय से आकर तेजस्कायिक में उत्पन्न हुए किसी एक जीव का उत्कृष्ट रूप से तेजस्कायिक पर्याय को छोड़े बिना उसी में अवस्थित रहने का जितना काल है अर्थात् उस काल के जितने समय हैं वह कायस्थिति है। तेजस्काय स्थिति से असंख्यात वर्गस्थान ऊपर जाकर सर्वावधि ज्ञान के उत्कृष्ट क्षेत्र की वर्गशलाकाएँ प्राप्त होती हैं। वर्गशलाकाओं से असंख्यात वर्गस्थान ऊपर जाकर उसी

क्षेत्र की अर्धच्छेदशलाकाएँ प्राप्त होती हैं। अर्धच्छेद राशि से असंख्यातवर्गस्थान ऊपर जाकर उसी क्षेत्र का प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है। उस प्रथम वर्गमूल का एक बार वर्ग करने पर सर्वावधि के विषय भूत उत्कृष्ट क्षेत्र [≡ ৪] के प्रदेशों का प्रमाण प्राप्त होता है, जो असंख्यात लोक प्रमाण है। यद्यपि अवधिज्ञान रूपी पदार्थ को जानता है और रूपी पदार्थ लोक [≡] के बाहर नहीं है, अतः अवधिज्ञान का क्षेत्र लोक मात्र है। तथापि शक्ति अपेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण क्षेत्र कहा गया है। (सर्वावधिज्ञान की योग्यता मात्र लोकाकाश के ज्ञेयों को जानने की ही हो, ऐसा नहीं है, किन्तु यदि असंख्यात लोक प्रमाण क्षेत्र में अवधिज्ञान का विषयभूत ज्ञेय होता तो सर्वावधि उसे भी जान लेता, ऐसी शक्ति सर्वावधिज्ञान में है)।

वग्गसलात्तिदयं तत्तो ठिदिबंधपच्चयट्ठाणा ।
वग्गसलादीरसबंधज्झवसाणाण ठाणाणि ॥८५॥

वग्गसलाप्पहुदी णिगोदजीवाण कायवरसंखा ।
वग्गसलादितियं णिगोदकायट्ठिदी होदि ॥८६॥

तत्तो असंखलोगं कदिठाणं चडिय वग्गसलतिदयं ।
दिस्संति सव्वजेट्ठा जोगस्सविभागपडिछेदा ॥८७॥

वर्गशलाकात्रितयं ततः स्थितिबन्धप्रत्ययस्थानानि ।
वर्गश लादिरसबन्धाध्यवसानानां स्थानानि ॥८५॥

वर्गशलाकाप्रभृति निगोदजीवानां कायवरसंख्या ।
वर्गशलाकादित्रयं निगोदकायस्थितिर्भवति ॥८६॥

ततो असंख्यलोकं कृतिस्थानं चटित्वा वर्गशलाकात्रितयम् ।
दृश्यन्ते सर्वज्येष्ठा योगस्याविभागप्रतिच्छेदाः ॥८७॥

वग्गसला। ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा वर्गशलाकास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा र्धच्छेदास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा प्रथममूलं, तस्मिन् एकवारं वर्गिते ज्ञानावरणादिकर्मणां स्थितिबन्धकारणकषायपरिणामस्थानान्युत्पद्यन्ते। तत्परिणामसंख्या इत्यर्थः। ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा वर्गशलाकास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा अर्धच्छेदास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा प्रथममूलं तस्मिन्नेकवारं वर्गिते सति ज्ञानावरणादिकर्मणां तीव्रादिशक्तिलक्षणरसबन्धकारणकषायपरिणामस्थानानि उत्पद्यन्ते ॥८५॥

वग्ग। ततोऽसंख्यातस्थानानि[1] गत्वा वर्गशलाकास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वार्धच्छेदास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा प्रथममूलं तस्मिन्नेकवारं वर्गिते निगोदजीवानां सर्वशरीराणामुत्कृष्टसंख्यो-

१. असंख्यातवर्गस्थानानि (प०)

ख्यते। नियतानामनन्तसंख्यावच्छिन्नानां जीवानां गां क्षेत्रं ददाति इति निगोदं कर्म तद्युक्ता जीवा निगोदजीवा इत्युच्यन्ते। ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा वर्गशलाकास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा अर्धच्छेदास्ततोऽसंख्यातस्थानानि गत्वा प्रथममूलं तस्मिन्नेकवारं वर्गिते निगोदकायस्थितिर्भवति। सा कीदृशीति चेत्। अत्र निगोदकायस्थितिरित्युक्ते तावदेकजीवस्य निगोदेषूत्कृष्टेनावस्थानकालो न गृह्यते तस्यार्धतृतीयपुद्गलपरिवर्तत्वात्। तर्हि किं गृह्यते? निगोदशरीररूपेण परिणतपुद्गलानां तदाकारमत्यक्त्वोत्कृष्टेनावस्थान कालो गृह्यते ॥८६॥

ततो। तत उपर्यसंख्यातलोकमात्रकृतिस्थानानि चटित्वा वर्गशलाकास्ततोऽसंख्यातलोकमात्र-कृतिस्थानानि गत्वार्धच्छेदास्ततोऽसंख्यातलोकमात्रकृतिस्थानानि चटित्वा प्रथममूलं तस्मिन्नेकवारं वर्गिते सर्वत्वेषूत्कृष्टयोगोत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदा दृश्यन्ते। कर्माकर्षणशक्तिर्योगस्तस्याविभागप्रतिच्छेदाः कर्माकर्षणशक्त्यविभागांशा इत्यर्थः ॥८७॥

गाथार्थ :—[सर्वावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र प्रमाण] से असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान आगे आगे जाकर स्थितिबन्ध में कारणभूत कषायपरिणामों के स्थानों की वर्गशलाकाएं, अर्धच्छेद, प्रथममूल और उसी प्रथमवर्गमूल का एक बार वर्ग करने पर कषायपरिणामों के स्थानों का प्रमाण प्राप्त होता है। उसके आगे अनुभागबन्ध स्थान के कारण भूत परिणामों की वर्गशलाकाएं, अर्धच्छेद, प्रथमवर्गमूल और उसी प्रथममूल का एक बार वर्ग करने पर अनुभागबन्ध योग्य अध्यवसान स्थानों का प्रमाण प्राप्त होता है। उससे असंख्यात वर्ग स्थान आगे आगे जाकर वर्गशलाकादिकों के साथ साथ निगोद जीवों के शरीरों की उत्कृष्ट संख्या का प्रमाण प्राप्त होता है तथा उससे असंख्यात वर्गस्थान आगे आगे जाकर वर्गशलाकादि तीनों के साथ साथ निगोदकाय स्थिति प्राप्त होती है। उससे असंख्यात लोक प्रमाण वर्ग स्थान आगे आगे जाकर वर्गशलाकादित्रय के साथ साथ योग के सर्वोत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण प्राप्त होता है ॥८५-८७॥

विशेषार्थ :—सर्वावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र प्रमाण से असंख्यात वर्ग स्थान आगे जाकर स्थितिबंध में कारणभूत कषाय परिणामों के स्थानों की वर्गशलाकाएं उत्पन्न होती हैं। उससे असंख्यात वर्गस्थान आगे जाकर उसी के अर्धच्छेद और उससे असंख्यात वर्गस्थान आगे जाकर उसी के प्रथम वर्गमूल की उत्पत्ति होती है। इस प्रथम वर्गमूल का एक बार वर्ग करने पर ज्ञानावरणादि कर्मों के स्थितिबन्ध के कारणभूत कषाय परिणामों के स्थानों की उत्पत्ति होती है। अर्थात् आठों कर्मों के स्थितिबन्ध के कारणभूत परिणामों का जितना प्रमाण है उतनी संख्या प्राप्त होती है। उससे असंख्यात वर्गस्थान आगे जाकर अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थान की वर्गशलाकाएं उत्पन्न होती हैं। उससे असंख्यात वर्गस्थान आगे जाकर उसी के अर्धच्छेद और उससे असंख्यात वर्गस्थान आगे जाकर उसी का प्रथम वर्गमूल प्राप्त होता है। इस प्रथम वर्गमूल का एक बार वर्ग करने पर ज्ञानावरणादि कर्मों के तीव्रादि शक्ति लक्षण वाले अनुभाग बन्ध में कारणभूत कषाय परिणामों के स्थानों का प्रमाण प्राप्त होता है। उससे

असंख्यात वर्ग स्थान आगे जाकर निगोद शरीरों की वर्गशलाकाएं उत्पन्न होती हैं उससे असंख्यात वर्ग स्थान आगे जाकर उसी के अर्धच्छेदों की उत्पत्ति होती है और उससे असंख्यात वर्ग स्थान आगे जाकर उसी के प्रथमवर्गमूल की प्राप्ति होती है। इस प्रथमवर्गमूल का एक बार वर्ग करने पर निगोद जीवों के समस्त शरीरों की उत्कृष्ट संख्या का प्रमाण प्राप्त होता है। अनन्त जीवों को जो क्षेत्र देता है उसे निगोद कहते हैं। तथा निगोद कर्म से युक्त जीवों को निगोद जीव कहते हैं।

निगोद शरीरों के प्रमाण से असंख्यात वर्ग स्थान आगे जाकर निगोदकाय स्थिति की वर्गशलाकाएं उत्पन्न होती हैं। उससे असंख्यात वर्गस्थान आगे जाकर उसी के अर्धच्छेद उत्पन्न होते हैं और उससे असंख्यात वर्गस्थान आगे जाकर उसी का प्रथमवर्गमूल प्राप्त होता है। इस प्रथम वर्गमूल का एक बार वर्ग करने पर निगोदकायस्थिति का प्रमाण प्राप्त होता है।

वह निगोदकायस्थिति किस प्रकार है? यदि ऐसा पूछते हो तो आचार्य कहते हैं कि यहाँ पर निगोदकाय स्थिति ऐसा कहने पर एक जीव का उत्कृष्ट रूप से निगोद में रहने का काल ग्रहण नहीं करना चाहिए कारण कि एक जीव इतर निगोद में भी ढाई पुद्गल परिवर्तन काल तक रहता है जो अनन्तकालात्मक है। तो फिर निगोदकाय स्थिति से क्या ग्रहण करना चाहिए?

निगोद शरीर रूप से परिणत हुए पुद्गल परमाणुओं का उस आकार को छोड़े बिना उत्कृष्ट काल तक निगोद शरीरपने से अवस्थित रहने का नाम निगोदकाय स्थिति है। यहाँ निगोदकाय स्थिति से उस उत्कृष्ट काल के समयों का ग्रहण करना चाहिये।

निगोदकाय स्थिति के प्रमाण से असंख्यात लोक प्रमाण वर्गस्थान ऊपर चढ़ कर सर्वोत्कृष्ट योग के उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेदों की वर्गशलाकाएं उत्पन्न होती हैं। उससे असंख्यात लोक प्रमाण वर्ग स्थान आगे जाकर उसी के अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं। तथा उससे असंख्यात लोक प्रमाण वर्गस्थान आगे जाकर उसी का प्रथम वर्गमूल उत्पन्न होता है। इसका एक बार वर्ग करने पर सर्वोत्कृष्ट योग के उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण प्राप्त होता है।

कर्माकर्षण की शक्ति विशेष को योग कहते हैं। तथा कर्माकर्षण की शक्ति के अविभाग अंश को अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं। यह प्रमाण इसी योग के अविभागप्रतिच्छेदों का है।

जो जो रासी दिस्सदि बिरूववग्गे सगिट्ठठाणम्हि।

तट्ठाणे तस्सरिसा घणाघणे णवणवुद्दिट्ठा ॥८८॥

यो यो राशिः दृश्यते द्विरूपवर्गे स्वकेष्टस्थाने।

तत्स्थाने तत्सदृशा घनाघने नव नव उद्दिष्टाः ॥८८॥

जो। द्विरूपवर्गधारायां स्वकीयेष्टस्थाने विवक्षितस्थाने यो यो राशिर्दृश्यते तत्स्थाने घनाघन-

धारायां तत्सदृशा द्विरूपवर्गधारास्थानसदृशाः राशयः द्विरूपवर्गधाराराशय एव नववारं परस्परं गुणिता उद्दिष्टाः ॥८८॥

गाथार्थ :—द्विरूपवर्गधारामें अपने इष्ट स्थान पर जो जो राशि वर्गरूप दिखाई देती है द्विरूपघनाघनधाराके उसी उसी स्थान पर द्विरूपवर्गधारा के स्थान सदृश अर्थात् द्विरूपवर्गधारा की राशियों का ही नौ नौ बार गुणा करने को कहा गया है ॥८८॥

विशेषार्थ :—द्विरूपवर्गधारामें अपने विवक्षित स्थान पर जो जो राशियां वर्गरूप दिखाई देती हैं; द्विरूपघनाघनधारामें उसी उसी स्थान पर द्विरूपवर्गधारा के स्थान सदृश राशियों का अर्थात् द्विरूपवर्गधारा की स्थानगत राशियों का ही परस्पर नौ नौ बार गुणा करने से द्विरूपघनाघनधारा के स्थानों की प्राप्ति होती है। जैसे :— द्विरूपवर्गधारा में २ — ४ — १६ — २५६ — ६५५३६ राशियां हैं अतः द्विरूपघनाघनधारा में ५१२ — २६२१४४ — ६८७१९४७६७३६ — २५६[९] — ६५५३६[९] राशियां प्राप्त होती हैं। अर्थात् द्विरूपवर्गधारा के प्रथम स्थान २ का घनाघन (२×२×२×२×२×२×२×२×२) ५१२ द्विरूपघनाघनधारा का प्रथम स्थान है और द्वितीय स्थान ४ का घनाघन २६२१४४ द्विरूपघनाघनधारा का दूसरा स्थान है; इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए।

चडिदूणोवमणंतं ठाणं केवलचउत्थपदविंदं ।
सगवग्गगुणं चरिमं तुरियादिपदाहदेण समं ॥८९॥

चटित्वैवमनन्तं स्थानं केवलचतुर्थपदवृन्दम् ।
स्वकवर्गगुणश्चरमः तुरीयादिपदाहतेन समः ॥८९॥

चडि। ततो योगोत्कृष्टाविभागप्रतिच्छेदात् उपर्यनन्तस्थानानि चटित्वा केवलज्ञानस्य ६५ = चतुर्थमूलं २ [1]पुनस्तस्यघनः ८ स्वकीयवर्ग ६४ गुणितो ५१२ घनाघनधारायाश्चरमः। स च चतुर्थ-प्रथममूलयोः परस्पराहत्या समः ॥८९॥

गाथार्थ :— [सर्वोत्कृष्ट योग के उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेदों के प्रमाण से] अनन्त स्थान ऊपर जाकर केवल के चतुर्थवर्गमूल के घन को इसी चौथे वर्गमूल के घन के वर्ग से गुणा करने पर इस धारा का अन्तिम स्थान प्राप्त होता है। जो केवलज्ञान के चतुर्थ और प्रथम वर्गमूल के परस्पर के गुणन से प्राप्त हुए लब्ध के सदृश है ॥८९॥

विशेषार्थ :—उपर्युक्त उत्कृष्ट योग के उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेदों के प्रमाण से अनन्त स्थान आगे जाकर केवलज्ञान (६५५३६) के चतुर्थवर्गमूल (२) के घन (८) को इसी चतुर्थवर्गमूल के घन के वर्ग (६४) से गुणा करने पर घनाघन धारा का अन्तिम स्थान प्राप्त है और वह स्थान केवलज्ञान

---

1 मूलं २ पुनस्तस्य ८ तस्य वर्गः पुनः तेन गुणितः स्वकीयवर्गं ६४ तेन गुणितः (प०)।

के चतुर्थ और प्रथम वर्गमूल के परस्पर गुणन से प्राप्त हुए लब्ध के सदृश है। जैसे :—केवलज्ञान ६५५३६ के चतुर्थ वर्गमूल २ का घन ८ और इसका अपना वर्ग ६४ है, अतः ६४ को ८ से गुणित करने पर ५१२ की उत्पत्ति होती है। जो केवलज्ञान ६५५३६ के प्रथमवर्गमूल २५६ को इसी के चतुर्थ वर्गमूल २ से गुणित करने पर लब्ध प्राप्ताङ्क (२५६ × २) = ५१२ के सदृश है। यही ५१२ घनाघन धारा का अन्तिम स्थान है।

अन्येषां चरमत्वं कथं न सम्भवतीति चेत् —

चरिमादिचउक्कस्स य घणाघणा एत्थ णेव संभवदि ।
हेदू भणिदो तम्हा ठाणं चउहीणवग्गसला ।।९०।।

चरमादिचतुष्कस्य च घनाघना अत्र नैव सम्भवन्ति ।
हेतुः भणितः तस्मात् स्थानं चतुर्हीनवर्गशलम् ।।९०।।

चरिमा। केवलज्ञानाद्यधश्चतुर्णां स्थानानां ६५=, २५६, १६, ४, घनाघना अत्र द्विरूपघनाघन-धारायां नैव सम्भवन्ति। कुतः ? केवलज्ञानस्यातिक्रमत इति हेतुर्भणितस्तस्मात् स्थानं केवलज्ञानस्य चतुर्हीनवर्गशलाकाप्रमाणं स्यात् ।।९०।।

अन्य स्थानों में चरमपना क्यों सम्भव नहीं है ? इसका समाधान :—

गाथार्थ :—केवलज्ञानके अन्तिम चार स्थानों का घनाघन इस घनाघन धारा में सम्भव नहीं है। इसका कारण पहिले, कहा जा चुका है। अतः द्विरूपघनाघन धारा के समस्त स्थानों का प्रमाण चार कम केवलज्ञान की वर्गशलाकाओंके बराबर है ।।९०।।

विशेषार्थ :—केवलज्ञानको आदि करके नीचे के चार स्थान अर्थात् प्रथमवर्गमूल, द्वितीय वर्ग मूल और तृतीय वर्गमूल तथा अन्तिम स्थान स्वयं केवलज्ञान। इन चारों स्थानों का घनाघन इस घनाघनधारा में सम्भव नहीं है। कारण कि इन चारों के घनाघन का प्रमाण केवलज्ञानके प्रमाण से अधिक हो जाएगा। जैसे :— केवलज्ञान का प्रमाण ६५५३६ है। इसका प्रथम वर्गमूल २५६, दूसरा वर्गमूल १६ और तीसरा वर्गमूल ४ है। ये चारों स्थान द्विरूपवर्गधारा में हैं। अतः द्विरूपवर्गधारा के— ४ १६ २५६ ६५५३६ ये चार स्थान हैं। द्विरूपघनाघन धारा के — २६२१४४ १६⁹ २५६⁹ ६५५३६⁹ इन चारों स्थानों के घनाघन का प्रमाण केवलज्ञान के प्रमाण से अधिक है। इसीलिए केवलज्ञान के चतुर्थ वर्गमूल के घन का इसी चतुर्थ वर्गमूल के घन के वर्ग से गुणा (६४×८) करने पर जो राशि उत्पन्न हो उसी (५१२) में घनाघन धारा का अन्तिमपना सम्भव है, अन्य स्थानों में नहीं, और इसीलिये घनाघन धारा के समस्त स्थानों का प्रमाण भी केवलज्ञान की चार कम वर्गशलाकाओं के बराबर है।

अथोक्तानां धाराणां निगमनमाह—

ववहारुवजोग्गाणं धाराणं दरिसिदं दिसामेत्तं ।
वित्थरदो वित्थररुइसिस्सा जाणंतु परियम्मे ॥९१॥

व्यवहारोपयोग्यानां धाराणां दर्शितं दिशामात्रम् ।
विस्तरतो विस्तररुचिशिष्या जानन्तु परिकर्मणि ॥९१॥

ववहार । व्यवहारोपयोग्यानां धाराणां दिग्मात्रं दर्शितं, विस्तरतो विस्तररुचिशिष्या बृहद्धारापरिकर्मणि जानन्तु ॥९१॥

इति संख्याप्रमाणं समाप्तम् ।

उपर्युक्त चौदह धाराओं के प्रसङ्ग का उपसंहार करते हुए कहते हैं —

गाथार्थ :—संख्या व्यवहार में उपयोगी उपर्युक्त चौदह धाराओं के स्वरूप का यहाँ निर्देश मात्र किया गया है। विस्तार से जानने में रुचि रखने वाले शिष्यों को इनका विस्तृत स्वरूप 'बृहद्-धारापरिकर्म' शास्त्र से जानना चाहिए ॥९१॥

विशेषार्थ :—उपर्युक्त चौदह धाराएँ संख्या व्यवहार के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। जैसे कोई अंगुलि से पूर्वादि दिशा का दिग्दर्शन कराता है, उसी प्रकार इन चौदह धाराओं के स्वरूप का यहाँ संकेत मात्र किया गया है। विस्तार से जानने की इच्छा रखने वाले शिष्यों को इनका व्यापक वर्णन 'बृहद्धारापरिकर्म' नामक ग्रंथ से जानना चाहिए।

संख्या-प्रमाण प्रसङ्ग समाप्त हुआ।

अथ संख्याप्रमाणविशेषाश्चतुर्दशधाराः सप्रपञ्चं प्रदर्श्य इदानीं प्रकृतमुपमाप्रमाणाष्टं निरूपयति—

पल्लो सायर सूई पदरो य घणंगुलो य जगसेढी ।
लोयपदरो य लोगो उवमपमा एवमट्ठविहा ॥९२॥

पल्यं सागरः सूची प्रतरं च घनांगुलं च जगच्छ्रेणी ।
लोकप्रतरश्च लोकः उपमाप्रमा एवमष्टविधा ॥९२॥

पल्ले । पल्यं सागरः सूच्यंगुलं प्रतरांगुलं घनांगुलं च जगच्छ्रेणिः, जगत्प्रतरश्च घन लोक इत्येवमुपमाप्रमाणमष्टविधं स्यात् ॥९२॥

संख्या प्रमाण के विशेषभूत चौदह धाराओं का विस्तारपूर्वक वर्णन कर अब विवक्षित उपमा-प्रमाण के आठ भेदों का निरूपण करते हैं —

गाथार्थ :—पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर तथा लोक इस प्रकार उपमा प्रमाण आठ प्रकार का है ॥९२॥

विशेषार्थ :—गाथार्थ सदृश ही है।

अथ तेषां मध्ये पल्यभेदं स्वस्वविषयनिर्देशपूर्वकमाह —

ववहारुद्धारद्धापल्ला तिण्णेव होंति णायव्वा ।
संखा दीवसमुद्दा कम्मट्ठिदि वण्णिदा जेहिं ॥९३॥

व्यवहारोद्धाराद्धापल्यानि त्रीण्येव भवन्ति ज्ञातव्यानि ।
संख्या द्वीपसमुद्राः कर्मस्थितयो वर्णिता यैः ॥९३॥

ववहार । व्यवहारोद्धाराद्धापल्यानीति पल्यानि त्रीण्येव भवन्ति इति ज्ञातव्यानि । यैः पल्यत्रयैर्यथासंख्यं संख्या द्वीपसमुद्राः कर्मस्थित्यादयश्च वर्णिताः ॥९३॥

अब अपने अपने विषयों के निर्देश सहित पल्य के भेदों का वर्णन करते हैं —

गाथार्थ :—व्यवहार पल्य, उद्धार पल्य और अद्धा पल्य के भेद से पल्य तीन होते हैं। व्यवहार पल्य से संख्या का, उद्धार पल्य से द्वीप समुद्रों का और अद्धापल्य से कर्मस्थिति का माप किया जाता है ॥९३॥

विशेषार्थ :—गाथार्थ सदृश ही है।

अथ पल्यज्ञापनार्थमाह —

सत्तमजम्मावीणं सत्तदिणब्भंतरम्हि गहिदेहिं ।
सण्णट्ठं सण्णिचिदं भरिदं वालग्गकोडीहिं ॥९४॥

[1]सत्तमजन्मावीनां सप्तदिनाभ्यन्तरे गृहीतैः ।
संनष्टं संनिचितं भरितं बालाग्रकोटिभिः ॥९४॥

सत्तम । सत्तमजन्मनामवीनां सप्तदिनाभ्यन्तरे गृहीतबालाग्रकोटिभिः संनष्टं संनिचितं भरितं ॥९४॥

पल्य का ज्ञान कराने के लिए कहते हैं —

गाथार्थ :—उत्तम भोग भूमि में जन्म लेने वाले मेमने (भेड़-शावक) के जन्म से सात दिन के भीतर तक के रोमों को ग्रहण कर उनके अग्रभाग के बराबर खण्ड कर, संचित किए हुए करोड़ों रोमों से गड्ढा भरना चाहिए ॥९४॥

---

१ अतिशयेन तनुः सत्तमः उत्तमभोगभूमिः तत्र समुत्पन्नमेषाणां (टि०, ब०)।

विशेषार्थ :—जिसने उत्तम भोगभूमि में जन्म लिया है और जो मात्र सात दिन की आयु का है ऐसे मेमने के रोमों को ग्रहण कर रोम के अग्रभाग के बराबर टुकड़े करना चाहिए तथा करोड़ों की संख्या में सञ्चित हुए उन रोम-खण्डों से कुण्ड भरना चाहिए।

तत्किमित्याह —

जं जोयणविस्थिण्णं तत्तिउणं परिरयेण सविसेसं।
तं जोयणमुव्विद्धं पल्लं पलिदोवमं णाम ॥९५॥

यत् योजनविस्तीर्णं तत् त्रिगुणं परिधिना सविशेषम्।
तत् योजनमुद्विद्धं पल्यं पलितोपमं नाम ॥९५॥

जं जो। यद्योजनविस्तीर्णं तत् त्रिगुणं परिधिना सविशेषं सूक्ष्मफलत्वात् योजनमुद्विद्धं तत् कुण्डलोमप्रमाणं पल्योपमं पलितोपमं वा[1] इति संज्ञा ॥९५॥

वह कुण्ड कैसा है सो बताते हैं —

गाथार्थ :—वह कुण्ड एक योजन विस्तीर्ण (व्यासवाला) है; उसकी परिधि विस्तार के तीन गुने से कुछ अधिक है, उसकी गहराई भी एक योजन है ऐसे विशाल कुण्ड में भरे हुए रोम खण्डों का जितना प्रमाण है, उसे पल्य अथवा पलितोपम कहते हैं ॥९५॥

विशेषार्थ :—वह कुण्ड एक योजन गहरा और एक योजन व्यास वाला है। उसकी परिधि तिगुने से कुछ अधिक है। ऐसे कुण्ड में भरे हुए उपर्युक्त रोमों का जितना प्रमाण है, उतने रोम प्रमाण ही पल्य अथवा पलितोपम होता है।

अथ परिधेः सविशेष इति विशेषणार्थं ज्ञापयन्नाह —

विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरयो होदि।
विक्खंभचउब्भागे परिरयगुणिदे हवे गणियं ॥९६॥

विष्कम्भवर्गदशगुणकरणिः वृत्तस्य परिधिः भवति।
विष्कम्भचतुर्भागे परिधिगुणिते भवेत् गणितम् ॥९६॥

विक्खंभ। विष्कम्भवर्गो (वि १ × वि १) दशगुणितः (वि १ × वि १ × १०) करणिर्मूलप्रहणयोग्यराशिर्भवेदिति मूलं गृहीत्वा ($3\frac{1}{6}$) समानछेदेन मेलयित्वा ($\frac{18}{6}+\frac{1}{6}=\frac{19}{6}$) एवं सति वृत्तस्य सूक्ष्मपरिधिर्भवति। विष्कम्भचतुर्थांशे ($\frac{1}{4}$) परिधिना ($\frac{19}{6}$) गुणिते ($\frac{19}{24}$) वेधेन गुणिते च ($\frac{19}{24}$) समस्तसूक्ष्मक्षेत्रफलं भवेत्। एतत् सूक्ष्म क्षेत्रफलं व्यवहारयोजनात्मकं कर्तव्यं। कथं। एकप्रमाणयोजनक्षेत्रस्य पञ्चशतव्यवहारयोजने सति ५०० एतावत्प्रमाणयोजनक्षेत्रस्य $\frac{19}{24}$ किमिति सम्पात्य

---

1 चेति (ब०, प०)।

प्र १ फ ५०० इ $\frac{१९}{२४}$ घनराशेः गुणकारभागहारा घनात्मका भवन्ति $\frac{१९}{२४}$ × ५०० × ५०० × ५०० । पुनरंगुल ७६८००० × ७६८००० × ७६८००० यव ८ तिल ८ लिक्षा ८ कर्मभूमिजरोम ८ जघन्यभोगभूमिजरोम ८ मध्यमभोगभूमिजरोम ८ उत्तमभोगभूमिजरोमाद्यष्टेवमेव क्रमेण त्रैराशिकं कृत्वा गुणयेत् । विष्कम्भस्य वासनां निरूपयति। एकयोजनवृत्तक्षेत्रं दशभागेन चतुरस्रं कृत्वा भुजकोटयोः कृत्योः परस्परं गुणयित्वा 'वि वि १ वि वि १ समासे वि वि २' कर्णकृतिः तस्यामर्धितायां द्वितीयांशः 'तस्मिन्नर्धिते चतुर्थांशः, तस्मिन्नर्धिते अष्टमांशं खण्डं, तदेकखण्डं गृहीत्वा भुजकोटयोः द्वाभ्यां समानच्छेदेन मेलनं कृत्वा एकखण्डस्य एतावति फले अष्टखण्डस्य कि ? वर्गराशेर्गुणकारभागहारौ वर्गात्मकौ भवत इति न्यायेन इच्छाङ्कः वर्गरूपेण गुणकारो भवति । तयोर्गुणकारभागहारयोरपवर्तने दशगुणिते विष्कम्भवासना भवति ॥९६॥

पूर्व गाथा में "परिधि का सविशेष" ऐसा विशेषण कहा गया है, अतः परिधि की सूक्ष्मता को जानने के लिए करण सूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :— व्यास के वर्ग को १० से गुणा करने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है उसी का वर्गमूल वृत्ताकार क्षेत्र की सूक्ष्म परिधि होती है। परिधि को व्यास के चौथाई भाग से गुणा करने पर गोलक्षेत्र का क्षेत्रफल होता है। इसी क्षेत्रफल में गहराई का गुणा करने से कुण्ड का घनफल प्राप्त होता है ॥९६॥

विशेषार्थ :— विष्कम्भ (व्यास) के वर्ग वि १ × वि १ को १० से गुणा करने पर वि १ × वि १ × १० लब्ध प्राप्त हुआ। जिसका वर्गमूल ३ $\frac{१}{६}$ होता है, इसे समच्छेद विधान द्वारा जोड़ने पर $\frac{१८}{६}$ + $\frac{१}{६}$ = $\frac{१९}{६}$ वृत्ताकार क्षेत्र की सूक्ष्म परिधि होती है। यहाँ कुण्ड का व्यास १ योजन है, इसका वर्ग (१ यो० × १ यो०) = १ वर्ग योजन हुआ। इसमें १० का गुणा करने से (१ वर्ग यो० × १०) १० वर्ग योजन हुए। १० वर्ग योजन का वर्गमूल ३ $\frac{१}{६}$ ($\frac{१९}{६}$) योजन हुआ, यही परिधि का सूक्ष्म प्रमाण है। $\frac{१९}{६}$ योजन परिधि को व्यास के चौथाई भाग $\frac{१}{४}$ से गुणा करने पर ($\frac{१९}{६}$ × $\frac{१}{४}$) = $\frac{१९}{२४}$ वर्ग योजन कुण्ड का सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इस $\frac{१९}{२४}$ वर्ग योजन क्षेत्रफल को १ योजन गहराई से गुणित कर देने पर ($\frac{१९}{२४}$ × १ यो०) = $\frac{१९}{२४}$ घन योजन कुण्ड का सूक्ष्म घनफल प्राप्त होता है। यह सूक्ष्म क्षेत्रफल प्रमाण घन योजन स्वरूप है, अतः इसके व्यवहार घन योजन आदि करना चाहिए। व्यवहार योजन कैसे करना चाहिए ? उसे कहते हैं :—जबकि एक प्रमाण योजन क्षेत्र के ५०० व्यवहार योजन होते हैं, तब $\frac{१९}{२४}$ प्रमाण योजनों के कितने व्यवहार योजन होंगे ? इसप्रकार त्रैराशिक करने पर प्रमाण राशि १, फल राशि ५०० और इच्छा राशि $\frac{१९}{२४}$ हुई। 'घन राशि का गुणाकार या भागहार घनात्मक ही होता है' इस नियम के अनुसार $\frac{१९}{२४}$ को तीन बार ५०० से गुणा करने पर $\frac{१९}{२४}$ × ५०० × ५०० × ५०० व्यवहार घन योजन होते हैं। एक व्यवहार योजन में ७६८००० अंगुल होते हैं, अतः $\frac{१९}{२४}$ × ५००

१ पुनरप्यंगुलानां (प०)।

×५०० × ५०० व्यवहार योजनों में १९/६ × ५०० × ५०० × ५०० × ७६८००० × ७६८००० × ७६८००० घनांगुल हुए। एक अंगुल के ८ यव, १ यव के ८ तिल, एक तिल के ८ लीख, १ लीख के ८ कर्मभूमिज रोम, एक कर्मभूमिज रोम के ८ मध्यम भोगभूमिज रोम और १ भोगभूमिज रोम के ८ उत्तम भोग-भूमिज रोम होते हैं। इन्हें घनात्मक करने पर ८ की संख्या (७ × ३) = २१ बार प्राप्त हुई।

जबकि एक घनांगुल में १ घनांगुल × ८ (२१ बार) प्रमाण रोम हैं, तब उपर्युक्त घनांगुलों में कितने कितने रोम होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर कुण्ड के रोमों का प्रमाण १९/६ × ५०० × ५०० × ५०० × ७६८००० × ७६८००० × ७६८००० × ८ (का परस्पर गुणा करने से जो महाराशि उत्पन्न होती है उतने प्रमाण) है। विष्कम्भ की वासना का निरूपण करते हैं :—

एक योजन व्यास वाला एक गोल

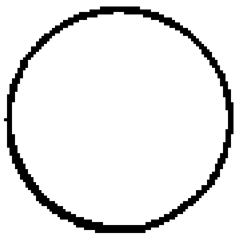

क्षेत्र है। इसका एक योजन प्रमाण

वाला समचतुरस्र

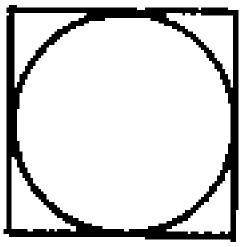

क्षेत्र बनाना चाहिए (इस चित्र का केवल समचतुरस्र क्षेत्र ही ग्राह्य है)। एक योजन विष्कम्भ का चिन्ह (संहनानी) "वि १" मान लेने पर समचतुरस्र क्षेत्र की

भुजकोटि

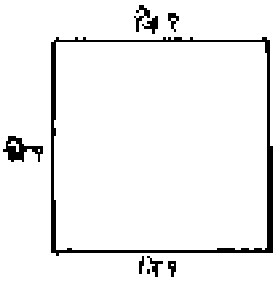

समान होती है। इस समचतुरस्र क्षेत्र के करण कृति का प्रमाण भुजवर्ग + कोटि वर्ग अर्थात् वि १ × वि १ + वि १ × वि १ = वि वि १ + वि वि १ =

वि वि २

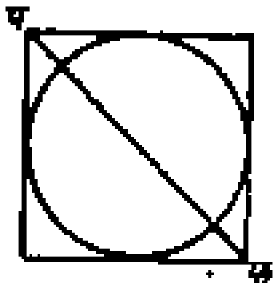

होता है (इस चित्रण की प फ पंक्ति वि वि २ की ही सूचक है)।

इस कर्णाकृति को आधा करने पर उसके दो अंश 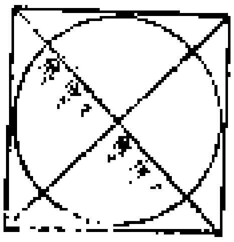 हो जाते हैं। इन अर्धांशों के

पुनः अर्ध भाग करने पर चतुर्थांश 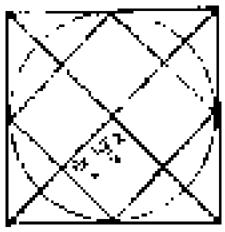 प्राप्त होता है। चतुर्थांश का भी आधा करने पर

आठवां अंश 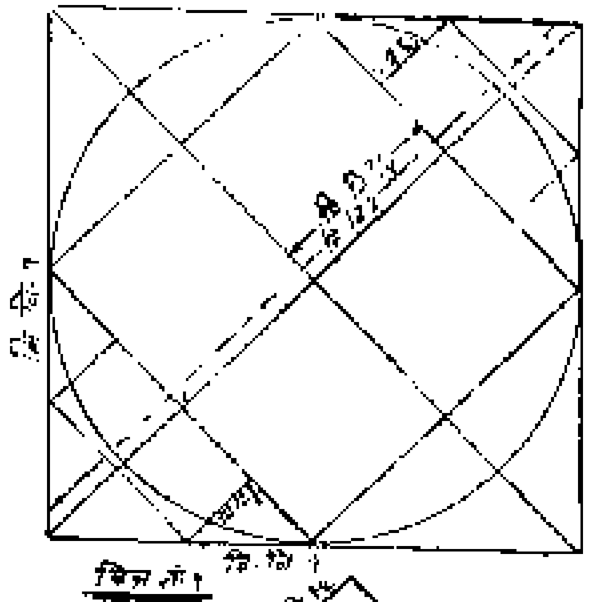 प्राप्त हो जाता है।

उसमें से एक अष्टमांश 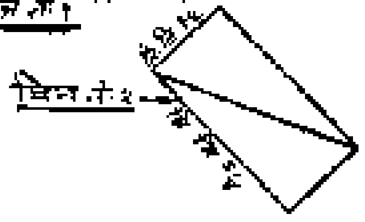 को अलग स्थापित करना

चाहिए। इस अष्टमांश की भुजा $\frac{\text{वि}}{४}\,\frac{\text{वि}}{४}\,२$ है, और कोटि $\frac{\text{वि}}{८}\,\frac{\text{वि}}{८}\,२$ है। भुज और कोटि इन दोनों का समान छेद करने पर भुज $\frac{\text{वि}}{८}\,\frac{\text{वि}}{८}\,२\times२\times२$ हो जाती है, और कोटि $\frac{\text{वि}}{८}\,\frac{\text{वि}}{८}\,२$ रहती है। भुज और कोटि को अर्थात् $\frac{\text{वि}}{८}\,\frac{\text{वि}}{८}\times२\times२\times२$, $\frac{\text{वि}}{८}\,\frac{\text{वि}}{८}\,२$ को जोड़ने पर अष्टमांश का प्रमाण $\frac{\text{वि}}{८}\,\frac{\text{वि}}{८}\,१०$ प्राप्त होता है। जबकि एक अष्टमांश का प्रमाण $\frac{\text{वि}}{८}\,\frac{\text{वि}}{८}\,१०$ है, तब ८ खण्डों का प्रमाण कितना होगा ? इसप्रकार त्रैराशिक कर इच्छाराशि ८×८ को फल राशि $\frac{\text{वि}}{८}\,\frac{\text{वि}}{८}\,१०$ से गुणित कर प्रमाण राशि १ से भाग देने पर $\frac{\text{वि}}{८}\,\frac{\text{वि}}{८}\,१०\times६४$ प्राप्त होते हैं। इन्हें ८ से अपवर्तित करने पर वि वि १० की प्राप्ति होती है। अर्थात् १० गुणित वर्गात्मक विष्कम्भ का वर्गमूल वृत्ताकार की परिधि है। वर्गरूप राशि का

गुणकार एवं भागहार वर्गात्मक ही होता है। इस न्यायानुसार ८ खण्डों में ८ के वर्ग अर्थात् ८×८ से गुणा किया गया है। इस प्रकार दश गुणित विष्कम्भ की वासना सिद्ध हुई।

अथ सिद्धाङ्कमुच्चारयति —

एकट्ठी पण्णट्ठी उणवीसट्ठारसेहिं संगुणिदा।
विगुणणवसुण्णसहिया [1]पल्लस्स दु रोमपरिसंखा ॥९७॥

एकाष्टी पञ्चषष्टी एकोनविंशाष्टादशैः संगुणिता।
द्विगुणनवशून्यसहिता पल्यस्य तु रोमपरिसंख्या ॥९७॥

एकट्ठी। १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ × ६५५३६ × १९ × १८ × १८ शून्य इति सुगमं।

परस्पर गुणन से प्राप्त हुए अङ्क बताते हैं —

गाथार्थ :— एकट्ठी, पण्णट्ठी, उन्नीस और अठारह का परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो उसे १८ शून्यों से सहित करने पर पल्य के रोमों की संख्या प्राप्त हो जाती है ॥९७॥

विशेषार्थ:— गाथा ९६ की संख्याओं का संक्षिप्त गुणन—एकट्ठी (१८४४६७४४०७३७०९५५१६१६) × पण्णट्ठी (६५५३६) × उन्नीस (१९) × अठारह (१८) इनका परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो उसे १८ बिन्दुओं (शून्यों) से युक्त करने पर जो प्रमाण उत्पन्न हो वही प्रमाण पल्य के रोमों का है।

अथ सुगमं गुणितफलं दर्शयति —

वटलवणरोचगोनगनजरनगंकाससमघधमपरकधरं।
विगुणणवसुण्णसहिया पल्लस्स दु रोमपरिसंखा ॥९८॥

वट ....।
द्विगुणनवशून्यसहिता पल्यस्य तु रोमपरिसंख्या ॥९८॥

वट। अत्र 'कटपय' इत्यादिना संख्या कथिता। ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०० ०००००००००००००००० पल्यस्य रोमसंख्या भवति ॥९८॥

परस्पर के गुणन से उत्पन्न हुआ प्रमाण रूप फल दिखाते हैं :—

गाथार्थ :— व (४), ट (१), ल (३), व (४), ण (५), र (२), च (६), ग (३), न (०), ग (३), न (०), ज (८), र (२), न (०), ग (३), क (१), स (७), स (७), स (७), घ (४), ध (९), म (५),

---

1 पलिदोपम रोम परिसंखा (ब०, प०)।

प (१), र (२), क (१), थ (९), र (२) अर्थात् ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२ को द्विगुणनव अर्थात् १८ शून्यों से सहित करने पर पल्य के रोमों की संख्या प्राप्त होती है ॥९८॥

विशेषार्थ :—इस गाथा में पल्य के रोमों की संख्या निकालने के लिए अक्षर संज्ञा से अङ्क प्राप्त किये गये हैं। अक्षर संज्ञा का ज्ञान कराने के लिये निम्नलिखित गाथा सूत्र प्राप्त होता है :—
कटपयपुरस्थवर्णैर्नवनवपञ्चाष्टकल्पितैः क्रमशः। स्वरजन शून्यं संख्या, मात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यं ॥
अर्थ :—क अक्षर से झ अक्षर पर्यन्त (९ अक्षर), ट अक्षर से ध अक्षर पर्यन्त (९ अक्षर) तथा पवर्ग के ५ अक्षर और य से प्रारम्भ कर ह पर्यन्त (आठ अक्षर) अक्षरों में क्रम से जो अक्षर जितने नम्बर का हो वही अङ्क समझना चाहिए तथा अकारादि स्वर, ञ, और न जहाँ हों उनका शून्य ग्रहण करना चाहिए। तथा मात्राओं और संयोगी अक्षरों को छोड़ देना चाहिए। उपर्युक्त सूत्रानुसार गाथा में उल्लिखित अक्षरों से अङ्क ग्रहण कर तथा उन अङ्कों को १८ बिन्दुओं अर्थात् शून्यों से सहित करने पर चार, एक, तीन, चार, पांच, दो, छह, तीन, बिन्दी, तीन, बिन्दी, आठ, दो, बिन्दी, तीन, एक, सात, सात, सात, चार, नव, पांच, एक, दो, एक, नौ और दो अर्थात् ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००० पल्य के रोमों की संख्या प्राप्त होती है।

अथ व्यवहारपल्यसमयं दर्शयति —

वस्ससदे वस्ससदे एक्केक्के अवहिदम्हि जो कालो।
तक्कालसमयसंखा णेया ववहारपल्लस्स ॥९९॥

वर्षशते वर्षशते एकैकस्मिन् अपहृते यः कालः।
तत्कालसमयसंख्या ज्ञेया व्यवहारपल्यस्य ॥९९॥

वस्स। वर्षशते वर्षशते एकैकस्मिन्रोम्णि अपहृते तदपहरणपरिसमाप्तिनिमित्तं यावत्काल-स्तावत्कालसमयसंख्या व्यवहारपल्यस्य ज्ञातव्या। एकरोमापहृतौ वर्षशते १०० एतावद्रोमा ४१ = पहृतौ कियान् वर्ष इति सम्पात्य एवमेव दिनं ३६० मुहूर्तो ३० श्वास ३७७३ संख्यातावलीनां सङ्ख्यात-गुणनेन यावान् समयः २२२ स व्यवहारपल्यस्य कालः ॥९९॥

अथ व्यवहार पल्य के समयों का प्रमाण दर्शाते हैं —

गाथार्थ :—प्रत्येक सौ वर्ष बाद एक एक रोम के निकाले जाने पर जितने काल में समस्त रोम समाप्त हों, उतने काल के समय ही व्यवहार पल्य के समयों की संख्या है ॥९९॥

विशेषार्थ :—कुण्ड में भरे हुए उपर्युक्त रोमों में से प्रत्येक सौ वर्ष बाद एक एक रोम के निकालने पर जितने काल में समस्त रोम समाप्त हों, उतने काल के समयों की संख्या ही व्यवहार पल्य के समयों की संख्या है।

एक रोम १०० वर्ष के बाद निकाला जाता है तो ४५ अङ्क-प्रमाण रोम कितने वर्षों में निकाले जाएंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक कर जो वर्षों का प्रमाण प्राप्त हो उसके निम्न प्रकार से समय बनाने चाहिए —

एक वर्ष के ३६० दिन, एक दिन के ३० मुहूर्त, एक मुहूर्त के ३७७३ उच्छ्वास, एक उच्छ्वास की संख्यात आवली और एक आवली के जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय होते हैं तो ऊपर त्रैराशिक द्वारा प्राप्त हुए वर्षों के कितने समय होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने से जो समयों का प्रमाण प्राप्त हो वही व्यवहार पल्य के समयों की संख्या का प्रमाण है।

उद्धारपल्यकालं दर्शयति —

ववहारेयं रोमं छिण्णमसंखेज्जवासस्समयेहिं ।
उद्धारे ते रोमा तक्कालो तत्तियो चेव ॥१००॥

व्यवहारकं रोम छिन्नं असंख्येयवर्षसमयैः।
उद्धारे तानि रोमाणि तत्कालः तावान् चैव ॥१००॥

वव । व्यवहारैकरोमासंख्येयवर्षसमयैः समं छिन्नं चेत् तदा तानि रोमाणि उद्धारपल्यस्य भवन्ति । तदपहरणकालश्च तावान् उद्धारपल्यरोमसमान एव । प्रतिसमयमेकैकरोमापह्रियत इति भावः ॥१००॥

अब उद्धारपल्य के काल का प्रमाण दर्शाते हैं —

गाथार्थ :—व्यवहार पल्य के रोमों में से प्रत्येक रोम के उतने खण्ड करने चाहिए जितने कि असंख्यात वर्षों के समयों का प्रमाण है। इन समस्त रोम खण्डों का समूह ही उद्धारपल्य के रोमों का प्रमाण है; तथा जितना उद्धारपल्य के रोमों का प्रमाण है, उतना ही उद्धारपल्य के समयों का प्रमाण है।

विशेषार्थ :—असंख्यात वर्षों के जितने समय हैं उतने उतने खण्ड व्यवहार पल्य के प्रत्येक रोम के करना। जब समस्त रोमों के खण्ड हो चुकें तब उद्धारपल्य के रोमों का प्रमाण प्राप्त होगा। जितना प्रमाण उद्धारपल्य के रोमों का है, उतना ही प्रमाण उद्धारपल्य के समयों का भी है।

अथवा — एक एक समय में एक एक रोम निकालते हुए जितने समयों में उद्धारपल्य के सम्पूर्ण रोम खण्ड समाप्त हों उतने ही समयों का एक उद्धार पल्य होता है।

अथाद्धारपल्यं निदर्शयति —

उद्धारेयं रोमं छिण्णमसंखेज्जवाससमयेहिं ।
अद्धारे ते रोमा तत्तियमेत्तो य तक्कालो ॥१०१॥

उद्धारैकं रोम छिन्नमसंख्येयवर्षसमयैः।
अद्धारे तानि रोमाणि तावन्मात्रश्च तत्कालः ॥१०१॥

उद्धा। उद्धारैकं रोमाऽसंख्यातवर्षसमयैः समं छिन्नं चेत् तदा तानि रोमाणि अद्धार पल्यस्य भवन्ति। तत्पल्यकालश्च तावन्मात्र एव ॥१०१॥

अब अद्धापल्य के काल का प्रमाण दर्शाते हैं—

गाथार्थ :—उद्धारपल्य के रोमों में से प्रत्येक रोम के उतने खण्ड करना जितने कि असंख्यात वर्षों के समयों का प्रमाण है। इन समस्त रोम खण्डों का समूह ही अद्धापल्य के रोमों का प्रमाण है। जितना अद्धापल्य के रोमों का प्रमाण है उतना ही अद्धापल्य के समयों का प्रमाण है ॥१०१॥

विशेषार्थ :—उद्धारपल्य के सम्पूर्ण रोमों में से प्रत्येक रोम के असंख्यात वर्षों के समय प्रमाण खण्ड करने से अद्धापल्य के रोम खण्डों का प्रमाण प्राप्त होता है, तथा अद्धापल्य के रोम खण्डों का जितना प्रमाण है, उतने ही समयों का एक अद्धापल्य होता है। अथवा—एक एक समय में एक एक रोम खण्ड ग्रहण करते हुए जितने काल में अद्धापल्य के समस्त रोम समाप्त हो जाँय, उतना ही काल अद्धापल्य का है। यहाँ पर मध्यम असंख्यात प्रयोजनीय है।

अथ सागरोपमस्वरूपं सूचयति—

एदेसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिदा।
तं सागरोवमस्स दु हवेज्ज एक्कस्स परिमाणम् ॥१०२॥

एतयोः पल्ययोः कोटीकोटी भवेत् दशगुणिता।
तत् सागरोपमस्य तु भवेत् एकस्य परिमाणम् ॥१०२॥

एदे। एतयोरुद्धाराद्धारपल्ययोर्दशगुणिता कोटीकोटी भवेद्यदि तदा तद्विवक्षितपल्यं विवक्षितस्य एकसागरोपमस्य प्रमाणं भवति[1] ॥१०२॥

अब सागरोपम का स्वरूप सूचित करते हैं—

गाथार्थ :—इन दोनों पल्यों में से प्रत्येक को दश कोड़ाकोड़ी से गुणा करने पर विवक्षित (अपने, अपने) एक एक सागर का प्रमाण प्राप्त होता है ॥१०२॥

विशेषार्थ :—उद्धार पल्य में दस कोड़ाकोड़ी का गुणा करने से एक उद्धार सागर होता है तथा अद्धा पल्य में दस कोड़ाकोड़ी का गुणा करने से एक अद्धा सागर होता है।

अथ सागरोपमसंज्ञाया अन्वर्थतादर्शनार्थमाह—

लवणंबुहिसुहुमफले चउरस्से एक्कजोयणस्सेव।
सुहुमफलेणवहरिदे वट्टं मूलं सहस्सवेहगुणं ॥१०३॥

---

१ भवेत् (ब०, प०)।

लवणाम्बुधिसूक्ष्मफले चतुरस्रे एकयोजनस्यैव ।
सूक्ष्मफलेनापहृते वृत्तं मूलं सहस्रवेधगुणम् ॥१०३॥

लवणं । "अंतादि ५ ल सूचि १ ल जोगं ६ ल रुंद २ ल गु १ ल गुणिदु ६ ल ल दुप्पडि ६ ल ल ६ ल ल किच्चातिगुणं १८ ल ल दहकरणिगुणं ६ ल ल × ६ ल ल × १० बादरसुहुम फलं वलये" मूलं । 'अनेनोक्त प्रकारेण लवणाम्बुधि सूक्ष्मफलं चतुरस्रं कथमिति चेत्तस्य वासना[2] वर्ण्यते । लवणाम्बुधिवलयं ऊर्ध्वं छित्वा रुन्द्र २ ल प्रमाणेन त्रिकलचतुर्भुजं कृत्वा "मिलिदेनावल" इत्यादिना मुखसूक्ष्मफलं १ ल × १ ल × १० भूमि सूक्ष्मफलं ५ ल × ५ ल × १० मानीय मुखभूम्योर्संस्थाप्य मुखभूमिसमासार्धमिति मध्यफलमानीय ६ ल/२ × ६ ल/२ × १० मध्ये संस्थाप्य उपरितन भागे ऊर्ध्वं छित्वा चतुरस्रार्थं व्यस्तन्यासेन[3] ६ ल/४ ६ ल/४ १० । ६ ल/४ ६ ल/४ १० ॥ ६ ल/४ ६ ल/४ १०, १२ ल/४ १२ ल/४ १० ६ ल/४ ६ ल/४ १० ॥ समानछेदेन मेलनं कृत्वा अपवर्तिते एवं ६ ल ६ ल × १० दन्तार्थेन १ ल गुणिते सति "वर्गराशेर्गुणाकारभागहारावर्गात्मिका ।" एवं १ ल १ ल इति न्यायेन गुणिते सति चतुरस्रं स्यात् । ६ ल ल ६ ल ल १० । एतावच्चतुरस्र सूक्ष्मफलस्य प्र १० × १/२ × १/२ एकयोजनस्य वृत्तकुण्डे फ० १ एतावच्चतुरस्रसूक्ष्मफलस्य इ० ६ ल ल ६ ल ल १० किमिति । त्रैराशिकक्रमेणागतेनैकयोजन-सूक्ष्मफलेनापहृतेऽपवर्त्य ६ ल ल ६ ल ल १० एवं "हारस्य हारो गुणकोंऽशराशेरिति" गुणिते पदलब्धं २४ ल ल २४ ल ल वृत्तवर्गभूतकुण्डफलशलाका स्यात् । मूलं २४ ल ल एतावत् २४ ल ल सहस्रवेधेन १००० गुणितं कर्त्तव्यं २४ ल ल × १००० ॥१०३॥

अब सागरोपम संज्ञा की अन्वर्थता दिखलाने के लिए कहते हैं :—

गाथार्थ :—लवण समुद्र के सूक्ष्म क्षेत्रफल को चतुर्भुजाकार करके (तथा उसका वर्ग करके) उसमें एक योजन वाले गोलकुण्ड के सूक्ष्म क्षेत्रफल (के वर्ग) से भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसके वर्गमूल को गहराई अर्थात् १००० से गुणा करने पर लवण समुद्र में एक योजन व्यास वाले व एक योजन गहरे कुण्डों का प्रमाण प्राप्त होता है ॥१०३॥

---

१ "अंतादिसूइजोगं रुंदद्धगुणिदु दुप्पडि किच्चा ।
तिगुणं दहकरणिगुणं बादरसुहुमं फलं वलये ।" गा० ३१५ ।

२ वासनां दर्शयति (ब०, प०) ।

३ विपरीतेन विपरीतेन किं द्विक स्थाने चतुष्कं स्थापयित्वा ६ ल/४ ६ ल/४ १० ६ ल/४ ६ ल/४ १० पश्चात् मध्य-द्विकहारस्य षेडुकवार १२ कृत्वा मेलनं क्रियते — ६ ल/४ ६ ल/४ १० । १२ ल/४ १२ ल/४ १० । ६ ल/४ ६ ल/४ १० । तदा एवं जायते । पश्चादपवर्तनं क्रियते तदा एवं भवति ६ ल ६ ल × १० (बटि०)

विशेषार्थ :—"अन्तादि सूयि जोगं, रुंदद्धगुणित्तु दुप्पडि किच्चा ।
तिगुणं दहकरणि गुणं, बादर सुहमं फलं वलये" ॥३१५॥

अर्थ :—अन्त की सूची और आदि की सूची को जोड़ने पर जो प्रमाण प्राप्त हो उसे रुन्द्र व्यास के आधे से गुणा करना चाहिए। इसका जो लब्ध प्राप्त हो उसको दो स्थानों पर रख कर उनमें से एक को तीन से गुणा करने पर वृत्ताकार क्षेत्र का स्थूल क्षेत्रफल प्राप्त होता है और दूसरे को दश करणि (१० के वर्गमूल) से गुणा करने पर वलयाकार का सूक्ष्म क्षेत्रफल होता है। अन्तरङ्ग एवं बाह्यादि सूची व्यास को दर्शाने वाला चित्रण :—

मान — १ लाख = १ इञ्च

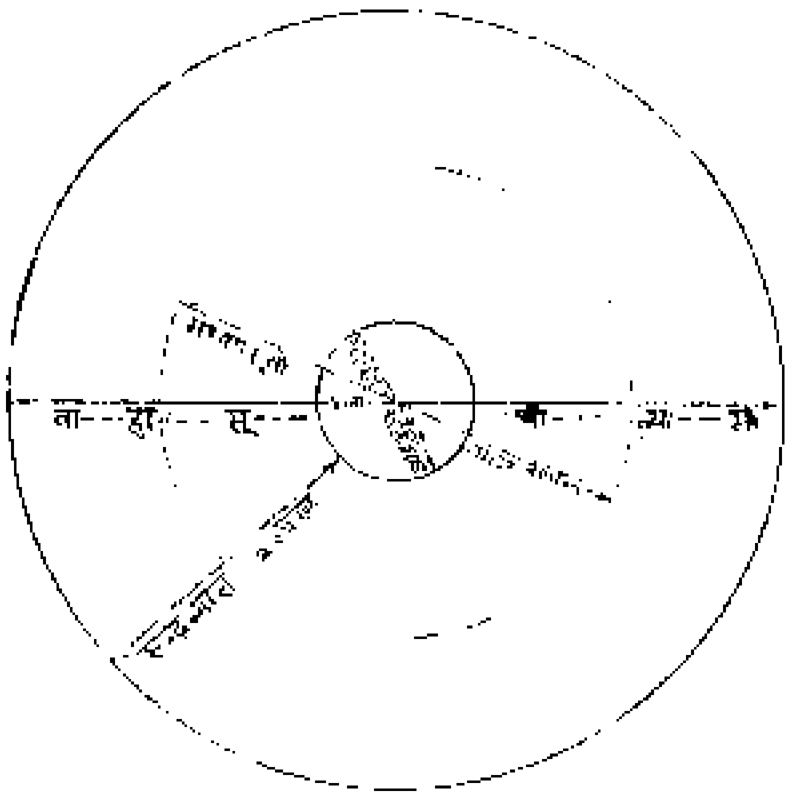

लवण समुद्र का बाह्यसूची व्यास ५ लाख योजन है।
लवण समुद्र का अन्तरङ्ग सूची व्यास १ लाख योजन है।
लवण समुद्र का मध्यम सूची व्यास ३ लाख योजन है।
लवण समुद्र की बाह्य परिधि ५ ला० × ५ ला० × १० का वर्गमूल है।
लवण समुद्र की अन्तरङ्ग परिधि १ ला० × १ ला० × १० का वर्गमूल है।
लवण समुद्र की मध्यम परिधि ३ ला० × ३ ला० × १० का वर्गमूल है।
लवण समुद्र का रुन्द्र सूची व्यास २ लाख योजन है।

५ ल और १ ल को जोड़ने से (५ + १) = ६ ल प्राप्त होते हैं। रुन्द्र व्यास २ लाख योजन है जिसका आधा (२ ल × $\frac{1}{2}$) = १ ल होता है। ६ ल को इस १ ल से गुणित करने पर ६ ल × १ ल =

६ ल ल प्राप्त हुए। ६ ल ल को दो स्थानों पर (६ ल ल, ६ ल ल) स्थापित करना चाहिए। इनमें से एक स्थान के ६ ल ल को ३ से गुणित करने पर लवण समुद्र का स्थूल क्षेत्रफल १८ ल ल प्राप्त होता है। दूसरे स्थान पर स्थापित ६ ल ल का वर्ग कर १० से गुणित करने पर ६ ल ल × ६ ल ल × १० प्राप्त हुए। इन संख्याओं को परस्पर गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त हो उसका वर्गमूल ही लवण समुद्र का सूक्ष्म क्षेत्रफल है।

लवण समुद्र का सूक्ष्म क्षेत्रफल चतुरस्र रूप कैसे प्राप्त होता है? उसकी वासना कहते हैं :—

लवण समुद्र के वलय व्यास

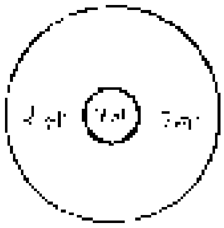

को ऊपर से छेद

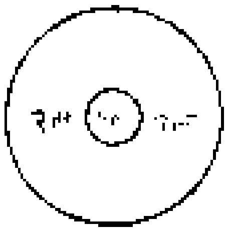

कर फैला देने पर एक विषम चतुर्भुज

बन जाता है। गाथा ९६ के अनुसार मुख का सूक्ष्म प्रमाण १ ल × १ ल × १० का वर्गमूल और भूमि का सूक्ष्म प्रमाण ५ ल × ५ ल × १० का वर्गमूल है तथा रुन्द्र व्यास सदृश कोटि २ ल प्रमाण है। मुख और भूमि के प्रमाण का वर्ग जोड़ देने पर ५ ल × ५ ल × १० + १ ल × १ ल × १० = ६ ल × ६ ल × १० होता है। इसका आधा करने पर $\frac{६ ल \times ६ ल \times १०}{२ \times २}$ मध्य फल प्राप्त हुआ। इस मध्य फल को मध्य

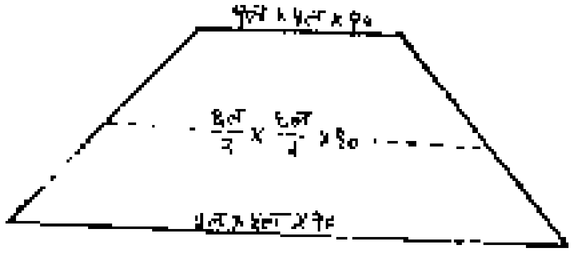

में रखकर ऊर्ध्व भाग को मध्य से छेदना

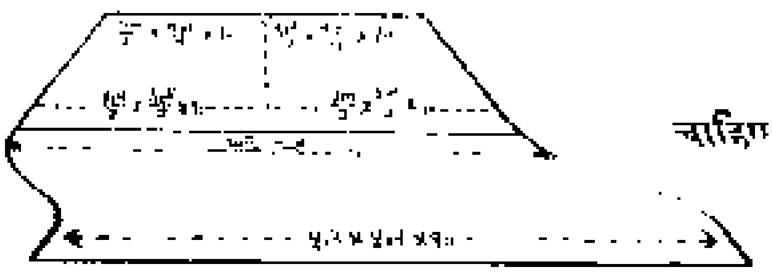

चाहिए। इस विषम चतुर्भुज का चतुरस्र अर्थात् आयत चतुर्भुज बनाने के लिए ऊपर के दोनों खण्डों को विपरीत क्रम से स्थापन करना चाहिए।

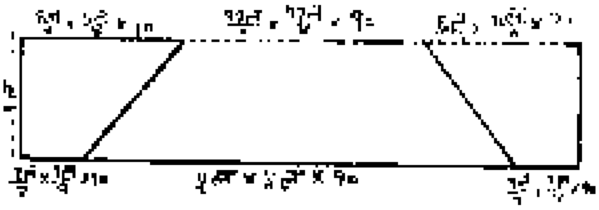

इस आयत चतुरस्र क्षेत्र के समस्त प्रमाण को समान छेद (हर) द्वारा जोड़ कर अपवर्तित करने से ($\frac{६ ल}{४} \times \frac{६ ल}{४} \times १० + \frac{१२ ल}{४} \times \frac{१२ ल}{४} \times १० + \frac{६ ल}{४} \times \frac{६ ल}{४} \times १०$) = ६ ल × ६ ल × १० प्राप्त हुआ। यही ६ ल × ६ ल × १० आयत चतुरस्र क्षेत्र की भुजा का प्रमाण है। रुन्द्र २ ल के अर्ध भाग (१ ल) का वर्ग १ ल × १ ल होता है। यह आयतचतुरस्र क्षेत्र की कोटि का वर्ग है। भुजा (६ ल × ६ ल × १०) और कोटि (१ ल × १ ल) का परस्पर में गुणा कर देने से आयतचतुरस्रक्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त हो जाता है। वर्गात्मक राशि का गुणकार या भागहार वर्गरूप ही होता है, इसलिए { (६ ल × ६ ल × १०) × (१ ल × १ ल) = ६ ल ल × ६ ल ल × १० } आयत चतुरस्रक्षेत्र का क्षेत्रफल ६ ल ल × ६ ल ल × १० प्राप्त हुआ।

एक योजन वृत्ताकार क्षेत्र का क्षेत्रफल $\frac{व्यास}{२} \times \frac{व्यास}{२} \times \sqrt{१०}$ अर्थात् $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times \sqrt{१०}$ होता है। इसका वर्ग $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times १०$ है, तथा लवण समुद्र के क्षेत्र के क्षेत्रफल का वर्ग ६ ल ल × ६ ल ल × १० है। जबकि $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times १०$ वर्गात्मक क्षेत्रफल का १ योजन व्यास वाला एक कुण्ड होता है, तब ६ ल ल × ६ ल ल × १० वर्गात्मक क्षेत्रफल के एक योजन व्यास वाले कितने कुण्ड होंगे ? इस प्रकार के त्रैराशिक में $\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times १०$ प्रमाण राशि से ६ ल ल × ६ ल ल × १० को भाजित कर इच्छित राशि १ से गुणा करने पर २४ ल ल × २४ ल ल प्राप्त होते हैं। अथवा — (६ ल ल × ६ ल ल × १०) ÷ ($\frac{१}{२} \times \frac{१}{२} \times १०$) = ६ ल ल × ६ ल ल × १० × $\frac{२}{१} \times \frac{२}{१} \times \frac{१}{१०}$ = २४ ल ल × २४ ल ल प्राप्त होते हैं। २४ ल ल × २४ ल ल का वर्गमूल २४ ल ल होता है। इसको १००० वेध से गुणित करने पर घनफल २४ ल ल × १००० प्राप्त होता है। अर्थात् लवण समुद्र के घनफल में १ योजन वाले तथा १ योजन गहरे कुण्डों का प्रमाण — २४ ल ल × १००० प्राप्त होता है।

अथ गुणकारान्तरं दर्शयति —

रोमहदं छक्केसजलोस्सेगे पणुवीससमयाचि।
संपादं करिय हिदे केसेहिं सागरुप्पत्ती ॥१०४॥

रोमहृतं षट्केशजलोत्सेके पञ्चविंशसमया इति।
सम्पातं कृत्वा हृते केशैः सागरोत्पत्तिः ॥१०४॥

रोम। प्र कुण्ड १ फ रोम ४१ = × ८ × ८ कुण्ड २४ ल ल १००० इति त्रैराशिकेनागतं रोमभिर्गुणितं २४ ल ल १०००, ४१ = × ८ × ८ षट्केशजलोत्सेके पंचविंशतिसमयाश्चेत् २४ ल ल १०००, ४१ = एतावद् रोमजलोत्सेके कियन्तः समया इति त्रैराशिकं कृत्वा प्रमाणीभूतषट्केशैरप-

हृत्यापवर्त्य २५, ४ ल ल, १०००, ४१ = एतावत्समयस्य एकस्मिन् पल्ये एतावत्समयानां किमिति २५, ४ ल ल १०००, ४१ = लब्धाल्यापवर्तिते सागरोपमोत्पत्तिर्भवति ॥१०४॥

अब अन्य गुणाकार दिखाते हैं :—

गाथार्थ :—गाथा १०३ के अनुसार लवण समुद्र में पल्यों (कुण्डों) का प्रमाण २४ × ला. × ला. × १००० है। इस प्रमाण को (गाथा ९८ में कही गई १ पल्य की) रोम संख्या ४१ = से गुणा करने पर लवण समुद्र में रोम सं० २४ × ला × ला. १००० × ४१ = प्राप्त होती है। छह रोम के बराबर जल निकालने में यदि २५ समय लगते हैं तो लवण समुद्र की रोम संख्या बराबर जल निकालने में कितना काल लगेगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करके जो लब्ध प्राप्त हो उसको पल्य की रोम संख्या से भाग देने पर एक सागर में पल्य संख्या की उत्पत्ति होती है।

विशेषार्थ:—व्यवहार पल्य के रोमों का चिन्ह ४१ = है। व्यवहार पल्य से असंख्यात गुणे रोम उद्धार पल्य में हैं जिसका चिन्ह ४१ = × असं० है। इनसे भी असंख्यात गुणे रोम अद्धापल्य में हैं जिसका चिन्ह ४१ = × असं० × असं० है। जबकि अद्धापल्य स्वरूप एक कुण्ड में ४ = × असं० × असं० रोम हैं, तब लवण समुद्र में प्राप्त २४ ल ल × १००० पल्यों (कुण्डों) में कितने रोम होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर फलराशि ४१ = × असं० × असं० को इच्छा राशि २४ ल ल × १००० कुण्डों से गुणित कर प्रमाण राशि १ कुण्ड का भाग देने पर लवण समुद्र गत कुण्डों में रोमों का प्रमाण ४१ = × असं० × असं० × २४ ल ल × १००० प्राप्त होता है (एक कुण्ड में जितने रोम हैं उतने ही समयों का एक पल्य होता है, अतः कुण्ड और पल्य में भेद नहीं कहा)। जबकि ६ रोम जितने क्षेत्र को रोकते हैं उतने क्षेत्र का जल निकालने में २५ समय लगते हैं, तब ४१ = × असं० × असं० × २४ लल × १००० रोमों से अवरुद्ध क्षेत्र का जल निकालने में कितने समय लगेंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर समयों का प्रमाण (४१ = × असं० × असं० × २५ × २४ ल ल × १०००) / ६ होता है। यहाँ प्रमाण राशि ६ से २४ को अपवर्तन करने पर ४१ = × असं० × असं० × २५ × ४ ल ल × १००० समय प्राप्त होते हैं। जबकि ४१ = × असं० × असं० समयों का एक अद्धापल्य होता है तब ४१ = × असं० × असं० × २५ × ४ ल ल × १००० समयों में कितने अद्धापल्य होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर (४१ = × असं० × असं० × २५ × ४ ल ल × १०००) / (४१ = × असं० × असं०) अद्धापल्य प्राप्त हुये। यहाँ ४१ = × असं० × असं० को ४१ = × असं० × असं० से अपवर्तित करने पर २५ × ४ ल ल × १००० अथवा (२५ × ४) १०० ल ल × १००० अथवा (१००० × १०० = १००००० एक लाख) ल × ल × ल = दश कोड़ा कोड़ी पल्य प्राप्त हुये। इस प्रकार दश कोड़ा कोड़ी पल्यों का एक सागर होता है।

अथद्विरूपवर्गधारायां सागरोपमस्यानुत्पन्नत्वात्तस्यार्धच्छेदं ज्ञापयन्नाह —

गुणयारद्धच्छेदा गुणिज्जमाणस्स अद्धछेदजुदा ।
लद्धस्सद्धच्छेदा अहियस्सच्छेदणा णत्थि ॥१०५॥

गुणकारार्धच्छेदा गुण्यमानस्यार्धच्छेदयुताः ।
लब्धस्यार्धच्छेदा अधिकस्य छेदना नास्ति ॥१०५॥

गुण । गुणकारा दशकोटीकोटयस्तासामर्धच्छेदाः संख्याताः, ते पुनर्गुण्यमानस्याद्धापल्यस्यार्धच्छेदयुताः लब्धस्य सागरोपमस्यार्धच्छेदा भवन्ति । यतः अधिकस्य छेदना नास्ति ततः सागरोपमस्य वर्गशलाका नास्ति ॥१०५॥

द्विरूपवर्गधारामें सागरोपम की उत्पत्ति नहीं है अतः सागरोपम के अर्धच्छेदोंको दिखाते हैं—

गाथार्थ :— गुणकार राशि के अर्धच्छेदों को गुण्यमान राशि के अर्धच्छेदों में मिला (जोड़) देने से लब्धराशिके अर्धच्छेदों का प्रमाण प्राप्त हो जाता है । यहाँ अधिक की छेदना नहीं है ॥१०५॥

विशेषार्थ :— मान लीजिए, गुण्यमान राशि १६ है और गुणकार राशि ८ है । १६ × ८ = १२८ लब्धराशि प्राप्त हुई । यहाँ गुण्यमान राशि १६ के अर्धच्छेद ४ और गुणकार राशि ८ के अर्धच्छेद ३ हैं अतः ४ + ३ = ७ अर्धच्छेद लब्धराशि १२८ के प्राप्त हुए । इस नियमानुसार — गुण्यमान राशि पल्य और गुणकार राशि १० कोड़ा कोड़ी है अतः गुण्य को गुणकार राशि से गुणा (पल्य × १०कोडा०) करने पर सागर की उत्पत्ति होती है । गुणकार राशि १० कोड़ा कोड़ी के अर्धच्छेद संख्यात हैं, इन्हें गुण्यमानराशि पल्य के अर्धच्छेदों में जोड़ देने से सागर के अर्धच्छेद प्राप्त हो जाते हैं । यहाँ अधिक की छेदना नहीं है इसलिए सागरोपम की वर्गशलाकाएँ नहीं हैं । क्योंकि अर्धच्छेदों के अर्धच्छेदों का नाम ही वर्गशलाका है ।

अथ गुण्यगुणकारयोः छेदप्रदर्शने प्रसङ्गाद्भाज्यभाजकयोरपि छेदं प्रदर्शयति —

भज्जस्सद्धच्छेदा हारद्धच्छेदणाहिं परिहीणा ।
अद्धच्छेदसलागा लद्धस्स हवंति सव्वत्थ ॥१०६॥

भाज्यस्यार्धच्छेदा हारार्धच्छेदनाभिः परिहीनाः ।
अर्धच्छेदशलाका लब्धस्य भवन्ति सर्वत्र ॥१०६॥

भज्ज । अङ्कसंदृष्टौ भाज्यस्य ६४ अर्धच्छेदाः ६ हारा (४) र्धच्छेदनाभिः २ परिहीना ४ लब्धस्य १६ अर्धच्छेदशलाका भवन्ति सर्वत्र ॥१०६॥

गुण्य और गुणकार के अर्धच्छेदों के प्रदर्शन में प्रसङ्गवश भाज्य भाजक के अर्धच्छेदों का भी स्वरूप दिखाते हैं—

गाथार्थ :—भाज्य के अर्धच्छेदों में से भाजक (हर) के अर्धच्छेद घटाने पर लब्धराशि (भजनफल) के अर्धच्छेद प्राप्त हो जाते हैं ॥१०६॥

विशेषार्थ :—जैसे — ६४ ÷ ४ = १६ यहाँ भाज्य राशि ६४ के ६ अर्धच्छेदों में से भाजक राशि ४ के २ अर्धच्छेदों को घटा देने पर लब्धराशि (भजनफलराशि) १६ के ४ अर्धच्छेद प्राप्त हो जाते हैं। यही नियम सर्वत्र जानना चाहिए।

अथ सूच्यंगुलस्यार्धच्छेदं दर्शयन्नाह—

> **विरलिज्जमाणरासिं दिण्णस्सद्धच्छिदीहिं संगुणिदे ।**
> **अद्धच्छेदा होंति हु सव्वत्थुप्पण्णरासिस्स ॥१०७॥**
>
> विरल्यमानराशौ देयस्यार्धच्छिदिभिः संगुणिते ।
> अर्धच्छेदा भवन्ति हि सर्वत्रोत्पन्नराशेः ॥१०७॥

विर। विरल्यमानराशिः पल्यच्छेदस्तस्मिन् देयस्य पल्यस्यार्धच्छेदैः संगुणिते सत्युत्पन्नराशेः सूच्यंगुलस्यार्धच्छेदा भवन्ति खलु सर्वत्र ॥१०७॥

सूच्यंगुल के अर्धच्छेदों का उल्लेख करते हैं—

गाथार्थ:—विरलन राशि में देय राशि के अर्धच्छेदों का गुणा करने से उत्पन्न (लब्ध) राशि के अर्धच्छेद प्राप्त हो जाते हैं ॥१०७॥

विशेषार्थ :—जैसे – विरलन राशि ४ और देय राशि १६ है। अत: १६ १६ १६ १६ = ६५५३६ लब्ध राशि हुई। यहाँ पर विरलन राशि ४ में देय राशि १६ के ४ अर्धच्छेदों का गुणा (४ × ४ = १६ अर्ध०) करने से लब्धराशि ६५५३६ के अर्धच्छेद १६ की प्राप्ति होती है। उपर्युक्त नियमानुसार — यहाँ पर विरलनराशि पल्य के अर्धच्छेद हैं। इसमें पल्य स्वरूप देय राशि के अर्धच्छेदों का गुणा करने पर सूच्यंगुल स्वरूप लब्धराशि के अर्धच्छेदों का प्रमाण प्राप्त होता है। जो पल्य के अर्धच्छेदों के वर्ग प्रमाण है। यह नियम सर्वत्र जानना चाहिए।

अथ सूच्यंगुलस्य वर्गशलाकां दर्शयन्नाह—

> **विरलिदरासिच्छेदा दिण्णद्धच्छेदछेदसंमिलिदा ।**
> **वग्गसलागपमाणं होंति समुप्पण्णरासिस्स ॥१०८॥**
>
> विरलितराशिच्छेदा देयार्धच्छेदच्छेदसम्मिलिताः ।
> वर्गशलाकाप्रमाणं भवन्ति समुत्पन्नराशेः ॥१०८॥

विरलिद। सूच्यंगुलार्धच्छेदस्याधिकवारा व १ व १ युताः व २ सूच्यंगुलस्य वर्गशलाका भवन्ति। "वग्गादुवरिमवग्गे दुगुणा दुगुणा हवंति अद्धछिदी" इति न्यायेन द्विगुणाः सूच्यंगुलार्धच्छेदाः।

छे छे २ प्रतरांगुलार्धच्छेदा भवन्ति । "वग्गसला रूवहिया" इति न्यायेन रूपाधिकसूचीवर्गशलाका: व २ प्रतरांगुलवर्गशलाका भवन्ति । द्विरूपवर्गधारोत्पन्नस्य सूच्यंगुलस्य समानस्थाने द्विरूपघनधारायां घनांगुलस्योत्पन्नत्वात् । "तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे" इति न्यायेन त्रिगुणाः सूच्यंगुलार्धच्छेदा: घनांगुलार्धच्छेदा भवन्ति । "सपदे परसम" इति न्यायेन सूच्यंगुलवर्गशलाका एव घनांगुलस्य वर्गशलाका भवन्ति व २ । "विरलिज्जमाणरासिं दिण्णस्स" इत्यादिन्यायेन विरलनराशेः पल्यार्धच्छेदासंख्यातभागेषु (छे/a)घनांगुलच्छेदैः (छे छे छे ३) गुणितेषु (छे/a छे छे ३) सत्सु जगच्छ्रेण्याः छेदाः भवन्ति ॥१०८॥

अब सूच्यंगुल की वर्गशलाकाओं को दिखाते हुए कहते हैं :—

गाथार्थ :—विरलन राशि के अर्धच्छेदों को देय राशि के अर्धच्छेदों के अर्धच्छेदों में मिलाने (जोड़ देने) से विरलन एवं देय के द्वारा उत्पन्न हुई राशि की वर्गशलाकाओं का प्रमाण होता है ॥१०८॥

विशेषार्थ :—मान लीजिए — विरलन राशि ४, देय राशि १६ और उत्पन्न राशि ६५५३६ है। यहाँ विरलन राशि ४ के अर्धच्छेद २ हैं, इन्हें देय राशि १६ के अर्धच्छेद (४) के अर्धच्छेद अर्थात् ४ अर्धच्छेदों के अर्धच्छेद २ में मिला (२+२ = ४) देने से उत्पन्न राशि ६५५३६ की ४ वर्गशलाकाएँ होती हैं।

उपर्युक्त दृष्टान्तानुसार यहाँ पर भी विरलन राशि पल्य के अर्धच्छेद हैं अत: विरलन राशि के अर्धच्छेद ही पल्य की वर्गशलाकाएँ हैं। (क्योंकि अर्धच्छेद के अर्धच्छेदों का नाम वर्गशलाका है।) देय राशि पल्य है, और देयराशि के अर्धच्छेदों के अर्धच्छेद भी पल्य की वर्गशलाकाएँ हैं।

इस प्रकार विरलन राशि के अर्धच्छेद = पल्य की वर्गशलाकाएँ + देयराशि के अर्धच्छेदों के अर्धच्छेद = पल्य की वर्गशलाकाएँ = पल्य की दो अर्थात् दुगनी वर्गशलाकाएँ प्राप्त हुईं। यही वर्गशलाकाएँ सूच्यंगुल की वर्गशलाकाओं का प्रमाण है।

"वग्गादुवरिमवग्गे दुगुणा दुगुणा हवन्ति अद्धछिदी (गा० ७४) सूत्रानुसार सूच्यंगुल के अर्धच्छेदों से प्रतरांगुल के अर्धच्छेद दूने होते हैं। "वग्गसला रूवहिया" (गाथा ७५) सूत्रानुसार सूच्यंगुल की वर्गशलाकाओं से प्रतरांगुल की वर्गशलाकाएँ एक अधिक प्रमाण वाली होती हैं।

द्विरूपवर्गधारा में जिस स्थान पर सूच्यंगुल उत्पन्न होता है, द्विरूपघनधारा में उसी स्थान पर घनांगुल की उत्पत्ति होती है। "तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे" (गाथा ७४) सूत्रानुसार सूच्यंगुल के अर्धच्छेदों से घनांगुल के अर्धच्छेद नियम से तिगुने होते हैं। "सपदे परसम" (गाथा ७५) न्यायानुसार सूच्यंगुल और घनांगुल की वर्गशलाकाएँ बराबर ही होती हैं।

"विरलिज्जमाणरासिं दिण्णस्स" (गाथा १०७) न्यायानुसार पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग स्वरूप विरलन राशि को, देय राशि स्वरूप घनांगुल के अर्धच्छेदों से गुणा करने पर

जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद उत्पन्न हो जाते हैं। अर्थात् विरलन राशि × देय राशि के अर्धच्छेद = जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद।

अथवा — $\frac{\text{पल्य के अर्धच्छेद}}{\text{असंख्यात}}$ × घनांगुल के अर्धच्छेद = जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद

अथ जगच्छ्रेण्या वर्गशलाकाप्रदर्शनार्थमाह—

दुगुणपरीतासंखेणवहरिदद्धारपल्लवग्गसला ।
विंदंगुलवग्गसलासहिया सेढिस्स वग्गसला ॥१०९॥

द्विगुणपरीतासंख्येनापहृताद्धारपल्यवर्गशलाः ।
वृन्दांगुलवर्गशलासहिता श्रेण्या वर्गशलाः ॥१०९॥

दुगुण। द्विगुणपरिमितासंख्यातजघन्येन १६।२ अपहृताद्धारपल्यवर्गशलाका $\frac{\text{व}}{१६ \times २}$ वृन्दांगुल ६ वर्गशलाका सहिता $\frac{\text{व}}{१६ \times २}$ + व २ जगच्छ्रेण्या वर्गशलाका भवन्ति। द्विगुणपरिमितासंख्यातजघन्येनापहृतत्वे उपपत्तिरुच्यते। अद्धापल्यार्धच्छेद (छे) राशेरर्धच्छेदाः (व) पल्यवर्गशलाकामात्राः छेदराशेः प्रथममूलस्यार्धच्छेदाः पल्यवर्गशलाकार्धं भवन्ति। द्वितीयमूलस्यार्धच्छेदास्तदर्धं, तृतीयमूलस्यार्धच्छेदाश्च तदर्धम्। एवं प्रतिवर्गमूलमर्धच्छेदाः अर्धार्धक्रमेण तावद् गच्छन्ति यावच्छेदराशेरधस्ताद्वर्गमूलानि जघन्यपरिमितासंख्यातस्य रूपाधिकार्धच्छेदमात्राणि गत्वा चरमं यद्वर्गमूलं तस्यार्धच्छेदा द्विगुणपरिमितासंख्यातजघन्येनापहृताद्धारपल्यवर्गशलाकामात्रा जायन्ते। यथा उपर्युपरिवर्गेषु अर्धच्छेदा द्विगुणा द्विगुणा जायन्ते तथाधोऽधोवर्गमूलेष्वर्धच्छेदा अर्धार्धमात्रा जायन्ते इति युक्त्या जघन्यपरिमितासंख्यातस्य रूपाधिकार्धच्छेदमात्रपूरणवर्गमूलस्यार्धच्छेदा रूपाधिकार्धच्छेदमात्रद्विकसंवर्गेण द्विगुणपरिमितासंख्यातजघन्यप्रमाणेन विभक्ताद्धारपल्यवर्गशलाकामात्राः $\frac{\text{व}}{१६ \times २}$।

"दिण्णद्धच्छेदच्छेदसंमिलिदा" देयस्य घनांगुलस्य छेदच्छेदाः वर्गशलाकास्तेषु सम्मिलिताः $\frac{\text{व}}{१६ \times २}$ + व २। एवं समुत्पन्नराशेर्जगच्छ्रेण्या वर्गशलाकाप्रमाणं भवति। इदं सर्वं मनसि कृत्वा "दुगुणपरीतासंखे" इत्याद्युक्तं। "वग्गादुवरिमवग्गे" इत्यादिन्यायेन द्विगुणश्रेणिच्छेदा जगत्प्रतरच्छेदा $\frac{\text{छे छे छे ६}}{४}$ भवन्ति। "वग्गसला रूवहिया" इति न्यायेन रूपाधिकश्रेणिवर्गशलाका $\frac{\text{व}}{१६ \times २}$ + व २ + १ जगत्प्रतरवर्गशलाका भवन्ति। "तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे" इति न्यायेन त्रिगुणश्रेणिच्छेदा एव $\frac{\text{छे छे छे ९}}{४}$ घनलोकच्छेदा भवन्ति। "सपदे परसम" इति न्यायेन श्रेणिवर्गशलाका एव घनलोकवर्गशलाका भवन्ति ॥१०९॥

अब जगच्छ्रेणी की वर्गशलाकाओं का प्रदर्शन करने के लिए कहते हैं :—

गाथार्थ :—अद्धापल्य की वर्गशलाकाओं में जघन्यपरीतासंख्यात के दुगुणे का भाग देने पर जो लब्ध उपलब्ध हो उसमें घनांगुल की वर्गशलाकाओं को जोड़ देने से जगच्छ्रेणी की वर्गशलाकाएँ प्राप्त होती हैं ॥१०९॥

विशेषार्थ :—दुगुणपरीतासंख्यात से भाजित अद्धापल्य की वर्गशलाकाओं में घनांगुल की वर्गशलाकाएँ मिला देने पर जगच्छ्रेणी की वर्गशलाकाएँ प्राप्त हो जाती हैं।

यहाँ दुगुणजघन्यपरीतासंख्यात का भाग कैसे दिया ? उसे कहते हैं—अद्धापल्य की अर्धच्छेद राशि के अर्धच्छेद ही पल्य की वर्गशलाकाओं का प्रमाण हैं। पल्य की अर्धच्छेद राशि के प्रथमवर्गमूल के अर्धच्छेद $\frac{\text{पल्य की वर्गशलाका}}{२}$ अर्थात् पल्य के अर्धभाग प्रमाण होते हैं। दूसरे वर्गमूल के अर्धच्छेद $\frac{\text{पल्य की वर्गशलाका}}{४}$ अर्थात् पल्य के चतुर्थ ($\frac{१}{४}$) भाग प्रमाण होते हैं। तीसरे वर्गमूल के अर्धच्छेद $\frac{\text{पल्य की वर्गशलाका}}{८}$ अर्थात् पल्य के अष्टम ($\frac{१}{८}$) भाग प्रमाण होते हैं। तथा पल्य की अर्धच्छेद राशि के चतुर्थ वर्गमूल के अर्धच्छेद $\frac{\text{पल्य की वर्गशलाका}}{१६}$ अर्थात् पल्य के सोलहवें भाग प्रमाण होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक वर्गमूल के अर्धच्छेद तब तक अर्ध अर्ध करना चाहिए जब तक कि अर्धच्छेद राशि के नीचे जघन्यपरीतासंख्यात के अर्धच्छेदों से एक अधिकवाँ वर्गमूल प्राप्त न हो जाय। अन्त में जो वर्गमूल प्राप्त होगा उसके अर्धच्छेद दो जघन्यपरीतासंख्यात से भाजित अद्धापल्य की वर्गशलाका प्रमाण होंगे।

जिस प्रकार ऊपर ऊपर के वर्गों में अर्धच्छेद दूने दूने होते हैं, उसी प्रकार नीचे नीचे के वर्गमूलों में (अर्धच्छेद) आधे आधे होते हैं। इस युक्ति से जिस नम्बर का वर्गमूल हो उतनी बार दो लिखकर परस्पर गुणा करने से अद्धापल्य की शलाकाओं का भागहार प्राप्त होता है। जैसे :— चतुर्थ वर्गमूल है, अतः ४ बार दो का गुणा (२×२×२×२) करने से पल्य की शलाकाओं के भागहार १६ की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार यहाँ जघन्यपरीतासंख्यात के अर्धच्छेदों से एक अधिकवाँ वर्गमूल है, अतः जघन्यपरीतासंख्यात से एक अधिक अर्धच्छेद प्रमाण दो के अङ्क लिख कर परस्पर गुणा करने से अद्धापल्य की वर्गशलाकाओं के भागहार स्वरूप दो जघन्यपरीतासंख्यात की प्राप्ति होती है, अतः $\frac{\text{अद्धापल्य की वर्गशलाका}}{\text{२ जघन्यपरीतासंख्यात}}$ में "दिवगाद्धच्छेद छेद संमिलिदा" (गाथा १०८) के अनुसार देय राशि घनांगुल के अर्धच्छेदों के अर्धच्छेद अर्थात् घनांगुल की वर्गशलाकाएँ मिला देने पर जगच्छ्रेणी की वर्गशलाकाएँ उपलब्ध हो जाती हैं। यह सब मन में विचार कर आचार्य ने "दुगुणपरीतासंखे" इत्यादि सूत्र कहा है। "वग्गादुवरिमवग्गे" (गाथा ७४) के अनुसार जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेदों से जगत्प्रतर के अर्धच्छेद दूने होते हैं। "वग्गसलारूवहिया" (गाथा ७५) के न्यायानुसार जगच्छ्रेणी की वर्गशलाकाओं

से जगत्प्रतर की वर्गशलाकाएं एक अधिक होती हैं। "तिगुणा तिगुणा परट्ठाणे" (गाथा ७४) के अनुसार जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेदों से घनलोक के अर्धच्छेद तिगुने होते हैं। "सपदेपरसम" (गाथा ७५) के अनुसार घनलोक की वर्गशलाकाएँ जगच्छ्रेणी की वर्गशलाकाओं के बराबर ही होती हैं।

अथ "तम्मेत्तदुगे गुणे रासी" इति न्यायेनार्धच्छेदमात्रद्विकानामन्योन्याहतौ राशिना भवितव्यमित्यत्र साधिकच्छेदानां छे छे ३ कथमित्यत्राह—

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि अहियरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी गुणगारो लद्धरासिस्स ॥११०॥

विरलितराशितः पुनः यावन्मात्राणि अधिकरूपाणि।
तेषां अन्योन्यहतिः गुणकारो लब्धराशेः ॥११०॥

विर। विरलितराशितः छे पुनर्यावन्मात्राण्यधिकरूपाणि को. को. १० तासां छेदाः तावन्मात्रद्विकानामन्योन्यहतिः को. को. १० लब्धपल्यराशेर्गुणकारो भवति। अङ्कसंदृष्टौ विरलितराशिः प १६ पल्यछेदः ४ तस्मादधिकरूपछेदः ३ तन्मात्रद्विकान्योन्याहतौ ८ लब्धपल्यराशिः १६ गुणकारो भवति। १६ × ८ तयोः गुण्यगुणकारयोर्गुणने सागरोपमः १२८ स्यात् ॥११०॥

अब "तम्मेत्तदुगे गुणेरासी" (गाथा ७५) के न्यायानुसार अर्धच्छेदों के प्रमाण बराबर दो के अङ्क लिखकर परस्पर गुणा करने से मूलराशि उत्पन्न होती है। जो साधिक अर्धच्छेद होते हैं वे कैसे होते हैं ? अर्थात् मूलराशि के अर्धच्छेदों से अधिक अर्धच्छेदों द्वारा किस राशि की उत्पत्ति होती है, उसे कहते हैं—

गाथार्थ :—अर्धच्छेद स्वरूप विरलन राशि में जितने अर्धच्छेद अधिक हों उतनी जगह २ का अङ्क लिखकर परस्पर गुणा करने से जो लब्ध उत्पन्न हो वही लब्ध राशि का गुणकार होता है ॥११०॥

विशेषार्थ :—सागरोपम के अर्धच्छेदों का प्रमाण संख्यात अधिक पल्य के अर्धच्छेदों के प्रमाण बराबर है। यहाँ विरलन राशि पल्य के अर्धच्छेद हैं, इनसे जो संख्यात अर्धच्छेद अधिक हैं, उतनी बार दो का अङ्क रखकर परस्पर गुणा करने से दश कोड़ाकोड़ी का प्रमाण प्राप्त होता है और विरलन राशि प्रमाण दो का अङ्क रखकर परस्पर गुणा करने से पल्य के प्रमाण की उपलब्धि होती है। तथा इस पल्य के प्रमाण में उपर्युक्त दशकोड़ाकोड़ी का गुणा करने पर सागरोपम की उपलब्धि होती है।

अङ्क संदृष्टि — मान लीजिये :—सागरोपम के अर्धच्छेद ७ है, और विरलन राशि पल्योपम के अर्धच्छेद ४ है, इनसे सागरोपम के अर्धच्छेद (७ — ४) = ३ अधिक हैं। अतः ३ जगह दो का अङ्क रखकर (२ × २ × २) परस्पर में गुणा करने से ८ प्राप्त हुये जो दशकोड़ाकोड़ी के तुल्य है। पल्य (१६) के अर्धच्छेद (४) प्रमाण विरलन राशि है, अतः उतने बार (४ बार) २ का अङ्क

लिखकर परस्पर में गुणा करने से पल्य का प्रमाण (१६) प्राप्त होता है। तथा पल्य (१६) में दश कोड़ाकोड़ी (८) का गुणा करने से (१६ × ८ = १२८) सागरोपम का प्रमाण प्राप्त होता है।

अथ प्रसंगेन हीनच्छेदानां किमित्याकांक्षायामाह[1]—

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि।
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ॥१११॥

विरलितराशितः पुनः यावन्मात्राणि हीनरूपाणि।
तेषामन्योन्यहतिः हार उत्पन्नराशेः ॥१११॥

विरलिद। अस्यार्थः छायामात्रमेव ॥१११॥

अब प्रसङ्गवश हीन (कम) अर्धच्छेदों का क्या विधान है ? ऐसी शङ्का होने पर कहते हैं—

गाथार्थ :— विवक्षित विरलनराशि के अर्धच्छेदों से जितने हीन अर्धच्छेद हैं, उतनी जगह दो (२) के अङ्क रखकर परस्पर गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त हो वह उत्पन्न (लब्ध) राशि का भागहार होता है। १११॥

विशेषार्थ :— विरलनराशि पणट्ठी के अर्धच्छेद १६ हैं और विवक्षित राशि के अर्धच्छेद १२ हैं, जो १६ से ४ कम हैं। अतः चार बार दो का अङ्क रखकर परस्पर गुणा करने से १६ की उपलब्धि हुई; जो विरलनराशि (१६) प्रमाण २ का अङ्क रखकर परस्पर गुणा करने से ६५५३६ का भागहार है अर्थात् ६५५३६ में उपर्युक्त १६ का भाग देने से विवक्षित राशि ४०९६ की प्राप्ति होती है।

अर्थान्तरप्रकरणस्य पातनिकागाथामाह—

जगसेढीए वग्गो जगपदरं होदि तग्घणो लोगो।
इदि बोहियसंखाणस्सेत्तो पगदं परूवेमो ॥११२॥

जगच्छ्रेण्या वर्गः जगत्प्रतरो भवति तद्घनो लोकः।
इति बोधितसंख्यानस्य इतः प्रकृतं प्ररूपयामः ॥११२॥

जग। जगच्छ्रेण्या वर्गः तत्प्रतरो भवति। तस्याः श्रेण्या घनो लोक इत्यस्माभिर्बोधित संख्यानस्य शिष्यस्य इतः परं प्रकृतं प्ररूपयामः ॥११२॥

[2]उपमाप्रकरणं समाप्तम्।

अब पूर्व प्रकरण के उपसंहार रूप गाथा कहते हैं :—

---

१ किमित्याशङ्कायामाह (ब०, प०)।

२ उपमाप्रमाः समाप्ताः (प०); उपमाप्रमाणं समाप्तम् (ब०)।

गाथार्थ :—जगच्छ्रेणी का वर्ग जगत्प्रतर और जगच्छ्रेणी का घन घनलोक होता है। इस प्रकार जिसे संख्या का ज्ञान हो गया है, उसके लिए प्रकरणभूत लोक का वर्णन करते हैं ॥११२॥

विशेषार्थ :—आठ प्रकार के उपमा प्रमाण में से पल्य और सागर के प्रमाण का कथन समाप्त हो चुका है। तथा सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल और जगच्छ्रेणी का वर्णन "जगच्छ्रेणी का घन प्रमाण लोक है" इस कथन के प्रसंग में किया जा चुका है।

जगच्छ्रेणी के वर्ग को जगत्प्रतर और उसी के घन को घनलोक कहते हैं। पल्य के समयों का प्रमाण ही पल्य है। दश कोड़ाकोड़ी पल्यों के समूह को सागर कहते हैं। पल्य के जितने अर्धच्छेद हैं, उतनी बार पल्य रखकर परस्पर गुणा करके जो राशि उत्पन्न हो, वही सूच्यंगुल है। जो एक अंगुल लम्बे क्षेत्र में जितने प्रदेश हैं, उतने प्रमाण है। सूच्यंगुल का वर्ग प्रतरांगुल है। जो एक अंगुल लम्बे और एक अंगुल चौड़े क्षेत्र के प्रदेशों के प्रमाण है। सूच्यंगुल के घन को घनांगुल कहते हैं। जो एक अंगुल लम्बे, एक अंगुल चौड़े और एक अंगुल ऊँचे क्षेत्र के प्रदेशों के बराबर है।

पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण घनांगुल स्थापन कर परस्पर गुणा करने से जगच्छ्रेणी की प्राप्ति होती है। जो मध्य लोक से ऊर्ध्व एवं अधोलोक पर्यन्त सात राजू के प्रदेशों के प्रमाण है। जगच्छ्रेणी के वर्ग को जगत्प्रतर कहते हैं, जो जगच्छ्रेणी प्रमाण लम्बे और चौड़े क्षेत्र के प्रदेशों के प्रमाण है। इसी जगच्छ्रेणी के घन को जगद् घन या घनलोक कहते हैं, जो जगच्छ्रेणी प्रमाण लम्बे चौड़े और ऊँचे क्षेत्र के प्रदेशों के प्रमाण है अर्थात् ३४३ घन राजू प्रमाण है इसी की सिद्धि के लिए नीचे क्षेत्रफल एवं दक्षिणोत्तर व्यास को दर्शानेवाला मानचित्र दिया जा रहा है।

ऊपर जो आकाश क्षेत्र के प्रदेशों द्वारा सूच्यंगुल आदि का प्रमाण बताया गया है उसमें केवल प्रमाण से प्रयोजन है, प्रदेशों से प्रयोजन नहीं है।

इस प्रकार हमारे (नेमिचन्द्राचार्य) द्वारा जान लिया है संख्या का स्वरूप जिसने, ऐसे शिष्य के लिये अब इससे आगे प्रकरणभूत लोक के प्रमाणादि को कहते हैं।

लोक, जगच्छ्रेणी के घन स्वरूप है, इसकी सिद्धि करते हैं :—

[सम्बन्धित चित्र पृष्ठ १०९ पर देखिये]

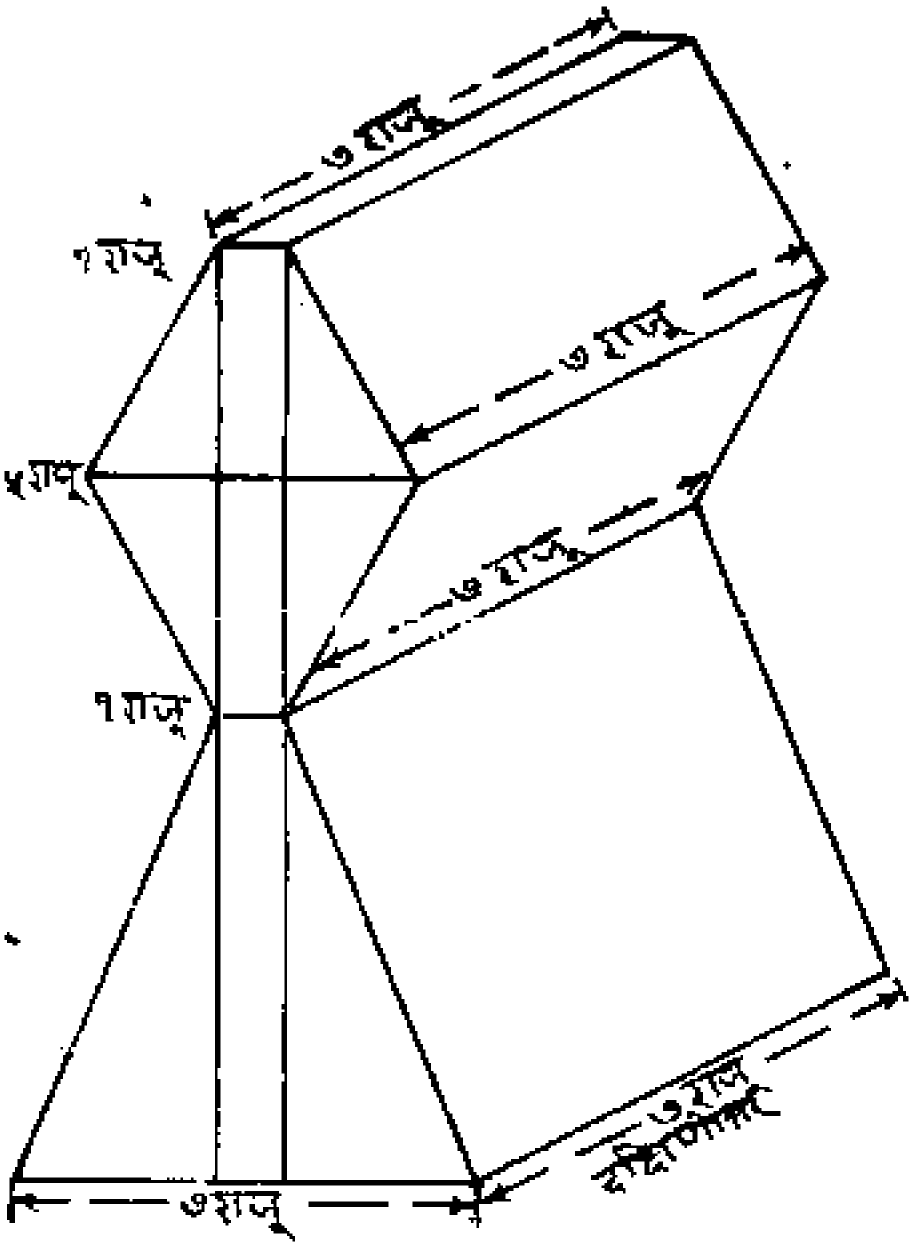

अधोलोक का क्षेत्रफल :—अधोलोक में भूमि ७ राजू, मुख १ राजू और उत्सेध ७ राजू है। भूमि व मुख का जोड़ (७ + १) = ८ राजू होता है। इसका आधा ८ ÷ २ = ४ × ७ राजू उत्सेध = २८ वर्ग राजू अधोलोक का क्षेत्रफल हुआ।

ऊर्ध्व लोक का क्षेत्रफल :— भूमि १ राजू (मध्य लोक की) मध्य में ५ राजू, ऊपर मुख एक राजू तथा उत्सेध ७ राजू है। अतः ५ + १ = ६ ÷ २ = ३ × ७ राजू उत्सेध = २१ वर्ग राजू ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल।

सम्पूर्ण लोक का घनफल :— २८ + २१ = ४९ वर्ग राजू जगत्प्रतर में दक्षिणोत्तर सर्वत्र ७ राजू का गुणा (४९ × ७) करने से ३४३ घन राजू सम्पूर्ण लोक का क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

— उपमा प्रमाण का प्रकरण समाप्त हुआ —

पूर्वगाथयैवोक्ता पातनिका—

उदयदलं आयामं वासं पुव्वावरेण भूमिमुहे ।
सत्तेकपंचएक्क य रज्जू मज्झम्हि हाणिचयं ॥११३॥

उदयदलं आयामः व्यासः पूर्वापरेण भूमिमुखे ।
सप्तैकं पञ्चैकं च रज्जुः मध्ये हानिचयम् ॥११३॥

उदय । उदय १४ दलं ७ आयामः दक्षिणोत्तरव्यास इत्यर्थः । पूर्वापरहानिचयकथनात् चतुर्दशरज्जूत्सेधपर्यन्तमायामः सर्वत्र सप्तरज्जुरेवेति ज्ञातव्यं । पूर्वापरेण व्यासस्तु भूमौ मुखे च यथासंख्यं सप्तरज्जवः भू ७ एका रज्जुः मु १ पञ्चरज्जवः भू ५ एका रज्जुः मु १ तयोर्मुखभूम्योर्मध्ये हानिचयौ साध्यौ ॥११३॥

लोक

पूर्व गाथा द्वारा ही कही हुई पातनिका :—

गाथार्थ :—लोक का उदय (ऊँचाई) १४ राजू प्रमाण है, उसका आयाम उदय का अर्धभाग — ७ राजू प्रमाण है। अर्थात् दक्षिणोत्तर व्यास ७ राजू है। पूर्व पश्चिम व्यास भूमि मुख में सात, एक और पाँच, एक राजू है। तथा मध्य में हानिचय स्वरूप है ॥११३॥

विशेषार्थ:—लोक की ऊँचाई चौदह राजू प्रमाण है। इसका आधा (१४/२) ७ राजू प्रमाण दक्षिणोत्तर आयाम अर्थात् चौड़ाई है। दक्षिणोत्तर दिशा में लोक के अधोभाग से ऊपर चौदह राजू ऊँचाई पर्यन्त लोक सर्वत्र ७ राजू चौड़ा है, कहीं भी हीनाधिक नहीं है। पूर्व पश्चिम दिशाओं का व्यास अध व मध्य लोक में क्रम से भूमि ७ राजू, मुख १ राजू तथा ऊर्ध्व लोक के मध्य में भूमि ५ राजू और मुख अधः एवं शिखर पर एक राजू प्रमाण है। इन दोनों (मुख और भूमि) के बीच में हानि और वृद्धि चय को साधना चाहिए। आदि प्रमाण का नाम भूमि, अन्त प्रमाण का नाम मुख तथा घटने का नाम हानि और क्रम से बढ़ने का नाम चय है।

अथ तत्साधनप्रकारं कथयन्नाह—

मुहभूमीण विसेसे उदयहिदे भूमुहादु हाणिचयं ।
जोगदले पदगुणिदे फलं घणो वेधगुणिदफलं ॥११४॥

मुखभूम्योः विशेषे उदयहिते भूमुखतः हानिचयं ।
योगदले पदगुणिते फलं घनो वेधगुणितफलम् ॥११४॥

मुह । भूमौ ७ मुखं १ हीनं कृत्वा ६ सप्तरज्जूदयस्य षड्रज्जुहानौ एकरज्जूदयस्य कियती हानिरिति सम्पात्य तद्धानि ६/७ समच्छेदेनन सप्त रज्ज्वायामे ४९/७ स्फोटयेत् ४३/७ पुनस्तद्धानिमेव ६/७ तत्रावशिष्ट

एक रज्जुपर्यन्ते स्फेटयेत् । तदा तत्तद्धानिरहिता तत्र तत्र व्यायतिर्भवेत् ३७/७, ३१/७, २५/७, १९/७, १३/७, ७/७ । ऊर्ध्वलोकार्धचयानयने मुख १ भूम्योः ५ विशेषे ५ सति ४ पश्चादर्धचतुर्थस्य ७/२ चतुश्चये ४ द्वितीयार्धस्य ७/२ कियांश्चय इति सम्पात्यापवर्त्य गुणितराशौ ८/७ एकरज्जु १ समानच्छेदेन ७/७ मेलने कृते १५/७ तत्पूर्व-द्वितीयस्य प्रथमचयस्तस्मिन्नचये प्राक्तन १५/७ चय ८/७ मेलने कृते २३/७ उपरितनार्धद्वितीयचयो भवति । अर्धचतुर्थस्य ७/२ चतुश्चये ४ दलस्य १/२ किमिति सम्पात्यापवर्त्य ४/७ तत्प्राक्तनचये २३/७ मेलयेत् २७/७ तदुपरितनचयः स्यात् । उपरितनोर्ध्वलोकहान्यानयनेऽपि अर्धचतुर्थस्य २ चतुर्हानौ ४ दलोदयस्य १/२ किमिति सम्पात्यागतहानि ४/७ प्राक्तनदलचये ३५/७ स्फेटयेत् ३१/७ । एवं सति उपरितनदलहानिफलं स्यात् । एवमूर्ध्व-दलचतुष्टयहान्यानयनेऽपि पूर्वपूर्वहानिफले ३१/७ अतः सप्तम हानिस्फेटने २७/७ तत्तद्धानिरहितायतिर्भवति २३/७ । १९/७ । १५/७ दलोदयस्य १/२ एतावद्धानौ ४/७ एकोदयस्य १ किमिति सम्पात्य ८/७ चतुर्दलहानिफले १५/७ स्फेटने एकरज्जुफलं स्यात् । अधोलोकक्षेत्रफलानयने मुखं १ भूमि ७ योग ८ दले ४ पद ७ गुणिते २८ क्षेत्रफलं स्यात् । तदेव[1] वेधेन ७ गुणितं घनफलं १९६ स्यात् ॥११४॥

हानि और चय के साधने का विधान कहते हैं :—

गाथार्थ :—मुख और भूमि में जिसका प्रमाण अधिक हो उसमें से हीन प्रमाण को घटाकर ऊँचाई (उदय) का भाग देने से भूमि और मुख की हानि तथा चय प्राप्त होता है। भूमि और मुख के योग को आधा कर पद (ऊँचाई) से गुणा करने पर क्षेत्रफल की प्राप्ति होती है, तथा उसी क्षेत्रफल में वेध का गुणा करने से घनफल होता है ॥११४॥

विशेषार्थ :—सात राजू भूमि में से एक राजू मुख घटाने पर (७ — १ = ६) छह राजू अवशेष रहा। अतः ७ राजू ऊँचाई पर ६ राजू घटते हैं, तो एक राजू ऊँचाई पर कितना घटेगा ? ऐसा त्रैराशिक करने से हानि का प्रमाण ६/७ राजू आता है। अतः प्रत्येक एक राजू ऊपर जाने पर छह राजू का सातवाँ भाग घट जायगा। इसको समच्छेद (लघुतम) विधान से घटाने पर ४३ राजू के ७वें भाग प्रमाण व्यास रहेगा। जैसे :— ४९/७ — ६/७ = ४३/७ राजू शेष रहा। अर्थात् सप्तम पृथ्वी के समीप पूर्व पश्चिम व्यास ४३/७ राजू प्राप्त होगा। इसी प्रकार प्रत्येक एक राजू पर ६/७ राजू घटा देने से :—छठवीं पृथ्वी के समीप का व्यास ३७/७ राजू, पाँचवीं पृथिवी के समीप ३१/७ राजू, चौथी पृथिवी के समीप २५/७ तीसरी पृथिवी के समीप १९/७ राजू, दूसरी पृथ्वी के समीप का व्यास १३/७ राजू, तथा पहिली पृथ्वी के अन्त में अर्थात् मध्य लोक के समीप ७/७ (१) राजू प्रमाण व्यास प्राप्त होगा। अर्धप्रमाण ऊर्ध्वलोक का चय निकालने के लिये मध्यलोक के समीप मुख एक राजू, ब्रह्म लोक के समीप भूमि ५ राजू है, अतः भूमि ५ — १ राजू मुख = ४ राजू अवशेष रहा। मध्यलोक से ब्रह्मलोक साढ़े तीन राजू की ऊँचाई पर है। और सौधर्म युगल १½ राजू की ऊँचाई पर है। अतः ३½ रा० की ऊँचाई पर ४ रा० की वृद्धि

1 एतदेव (प०) ।

है, तो $१\frac{१}{२}$ राजू पर क्या वृद्धि होगी ? इस प्रकार वृद्धि का प्रमाण ($\frac{२}{७} \times ४ \times \frac{३}{२}$) $= \frac{१२}{७}$ राजू प्राप्त हुआ। मध्य लोक के समीप व्यास १ राजू का था, अतः $\frac{७}{७} + \frac{१२}{७} = \frac{१९}{७}$ राजू प्रमाण व्यास सौधर्मैशान युगल के पास प्राप्त होगा। प्रथम युगल से दूसरा युगल भी $१\frac{१}{२}$ राजू ऊँचा है, और डेढ़ राजू की वृद्धि का प्रमाण $\frac{१२}{७}$ राजू है, अतः $\frac{१९}{७} + \frac{१२}{७} = \frac{३१}{७}$ राजू व्यास सानत्कुमार माहेन्द्र युगल के समीप प्राप्त होगा। इस दूसरे युगल से तीसरा युगल $\frac{१}{२}$ (आधा) राजू ऊँचा है, अतः जबकि $३\frac{१}{२}$ राजू पर ४ राजू की वृद्धि होती है तब अर्ध राजू पर कितनी वृद्धि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने से ($\frac{२}{७} \times ४ \times \frac{१}{२}$) $= \frac{४}{७}$ राजू वृद्धि का प्रमाण प्राप्त होता है। इसे $\frac{३१}{७}$ में जोड़ने से ($\frac{३१}{७} + \frac{४}{७}$) $= \frac{३५}{७}$ राजू व्यास तीसरे युगल के समीप प्राप्त होगा। तीसरे युगल से ऊपर की चौड़ाई का माप निकालने के लिये भूमि ५ राजू, मुख १ राजू (लोक के अन्त पर) है, अतः ५ — १ = ४ राजू अवशेष रहा। जबकि $\frac{७}{२}$ राजू की ऊँचाई पर ४ राजू की हानि होती है तब अर्ध राजू पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने से हानि का प्रमाण $\frac{४}{७}$ राजू प्राप्त होता है। तीसरे युगल से चौथा युगल आधा राजू ऊँचा है (३रे युगल से ८वें यु० तक की ऊँचाई आधे आधे राजू की ही है।) अतः $\frac{३५}{७} — \frac{४}{७} = \frac{३१}{७}$ राजू व्यास लान्तव कापिष्ठका, $\frac{३१}{७} — \frac{४}{७} = \frac{२७}{७}$ राजू व्यास शुक्र महाशुक्र युगल का, $\frac{२७}{७} — \frac{४}{७} = \frac{२३}{७}$ राजू व्यास शतार सहस्रार युगल का, $\frac{२३}{७} — \frac{४}{७} = \frac{१९}{७}$ राजू आनत प्राणत युगल का, $\frac{१९}{७} — \frac{४}{७} = \frac{१५}{७}$ राजू व्यास आरण अच्युत युगल का प्राप्त होगा। यहाँ से लोक का अन्त एक राजू ऊँचा है। अतः $३\frac{१}{२}$ राजू की ऊँचाई पर ४ राजू की हानि है तब १ रा० की ऊँचाई पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने से हानि का प्रमाण ($\frac{२}{७} \times ४ \times १$) $= \frac{८}{७}$ राजू प्राप्त होगा। अतः $\frac{१५}{७} — \frac{८}{७} = \frac{७}{७}$ अर्थात् एक राजू का व्यास लोक के अन्त भाग का प्राप्त हुआ। इस प्रकार पूर्व पश्चिम की अपेक्षा लोक का व्यास हीनाधिकता को लिये हुये है।

अधोलोक का समस्त क्षेत्रफल :—मुख और भूमि को जोड़ कर आधा करना और उसमें पद योग अर्थात् ७ राजू ऊँचाई का गुणा करने से क्षेत्रफल प्राप्त होता है, और क्षेत्रफल में वेध अर्थात् मोटाई का गुणा करने से घनफल प्राप्त होता है। यहाँ अधोलोक के तल में व्यास ७ राजू है, अतः भूमि सात राजू हुई, और मध्य लोक के समीप का एक राजू व्यास मुख है। पद ७ राजू और वेध भी सात राजू है, अतः भूमि ७ + १ राजू मुख = ८ ÷ २ = ४ × ७ राजू पद योग = २८ वर्ग राजू क्षेत्रफल हुआ। २८ × ७ राजू ऊँचाई = १९६ राजू प्रमाण घनफल प्राप्त हुआ। यदि अधोलोक के एक एक राजू प्रमाण लम्बे चौड़े और ऊँचे खण्ड किये जायें तो १९६ खण्ड हो सकते हैं।

गाथा नं० ११४ के अनुसार सम्पूर्ण लोक के व्यास का चित्रण :—

[सम्बन्धित चित्र पृष्ठ ११३ पर देखिये]

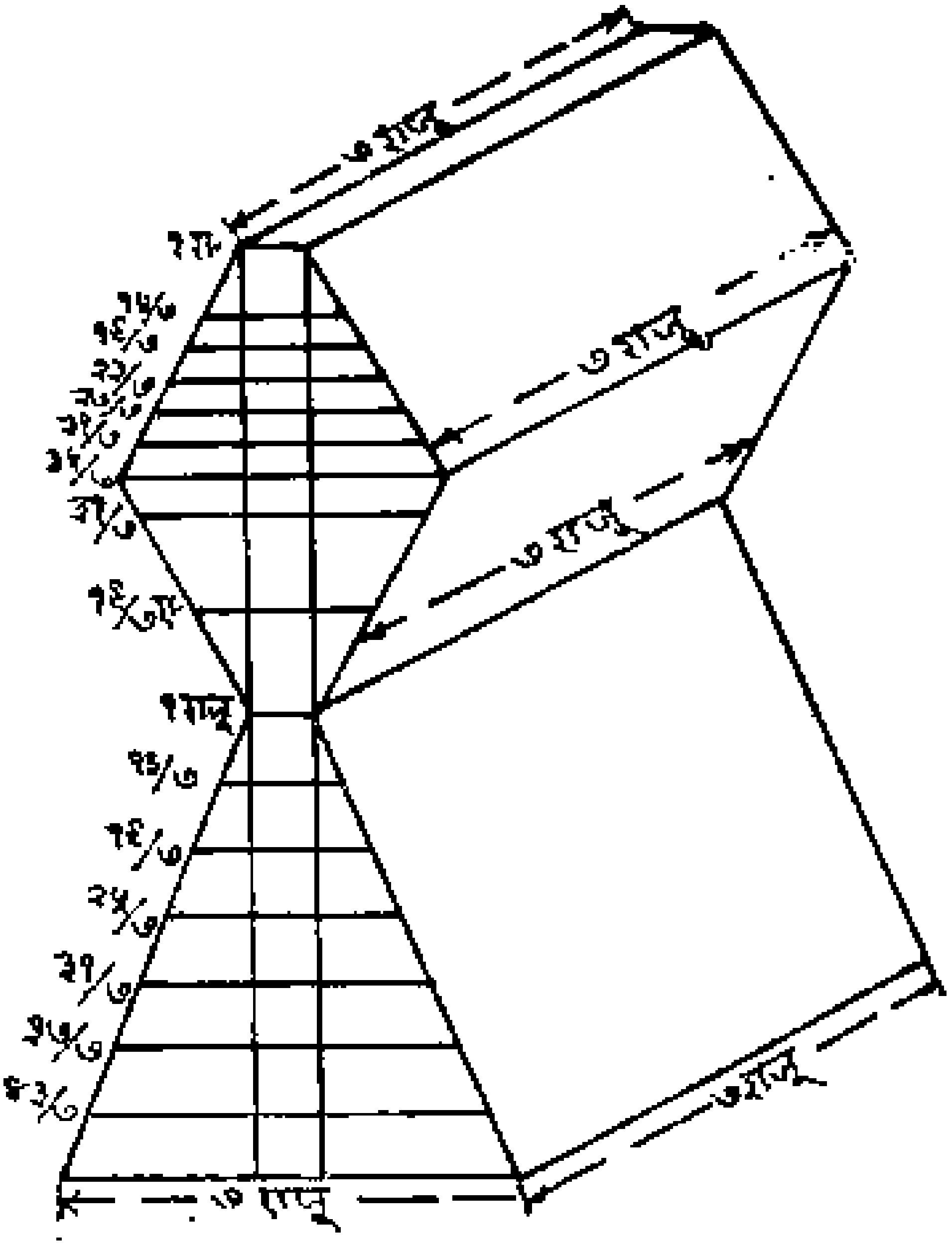

इतोऽधोलोकोऽष्टधा भेदयति—

सामण्णं दो आयद जवमुर जवमज्झ मंदरं दूसं ।
गिरिगडगेण विजाणह अट्ठवियप्पो अधो लोगो ॥११५॥

सामान्यं द्व्यायतं यवमुरजं यवमध्यं मन्दरं दूष्यम् ।
गिरिकटकेनापि जानीहि अष्टविकल्पः अधोलोकः ॥११५॥

सामण्णं । सामान्यमूर्ध्वायतं तिर्यगायतं यवमुरजं यवमध्यं मन्दरं दूष्यं गिरिकटकेन सह अष्टविकल्पो अधोलोक इति जानीहि । सामान्यक्षेत्रफलं "मुखभूमीजोगदले" इत्यादिना सुगमं । अधोलोकस्य मध्यं छित्वा आयतचतुरस्रं यथा भवति तथा व्यत्यासेन संस्थाप्य "भुजकोटिवध" इत्यादिना गुणिते ऊर्ध्वायतक्षेत्रफलं स्यात् । अधोलोकस्य मध्यफलं "मुखभूमिसमास" इत्यादिनानीय ऊर्ध्वं छित्वा तिर्यगायतचतुरस्रं यथा भवति तथा संस्थाप्य "भुजकोटिवधे" इत्यादिना तिर्यगायतक्षेत्रफलमानयेत् ॥११५॥

अधोलोक के क्षेत्रापेक्षा आठ भेद करते हैं :—अर्थात् अधोलोक का क्षेत्रफल आठ प्रकार से कहते हैं :—

गाथार्थ :—१. सामान्य २. ऊर्द्धायत ३. तिर्यगायत ४ यवमुरज ५ यवमध्य ६ मन्दर ७ दूष्य और गिरिकटक। इस प्रकार अधोलोक के आठ भेद जानना चाहिये ।।११५।।

विशेषार्थ :—सामान्य, ऊर्द्धायत, तिर्यगायत, यवमुरज, यवमध्य, मन्दर, दूष्य और गिरिकटक के भेद से अधोलोक आठ प्रकार का जानना चाहिये।

१. सामान्य अधोलोक का क्षेत्रफल :—

"मुख भूमि जोग दले"............ इस सूत्रानुसार मुख और भूमि को जोड़कर उसका आधा करने से जो लब्ध प्राप्त हो उसमें पदयोग अर्थात् ऊँचाई का गुणा करने पर सामान्य अधोलोक का क्षेत्रफल प्राप्त हो जाता है। जैसे :—भूमि ७ राजू मुख १ राजू और पद ७ राजू है, अतः ७ + १ = ८ ÷ २ = ४ × ७ राजू ऊँचाई = २८ वर्ग राजू सामान्य अधोलोक का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ।

२. ऊर्द्धायत अधोलोक का क्षेत्रफल :—

ऊर्द्धायत अर्थात् लम्बे और चौकोर क्षेत्र के क्षेत्रफल को ऊर्द्धायत क्षेत्रफल कहते हैं। अधोलोक की चौड़ाई के मध्य में अ और ब नाम के दो खण्ड कर ब खण्ड के समीप अ खण्ड को उल्टा रखने से आयतचतुरस्र क्षेत्र प्राप्त होता है। जैसे :—

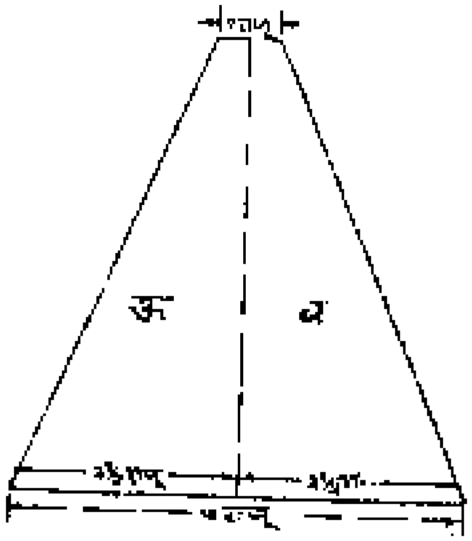

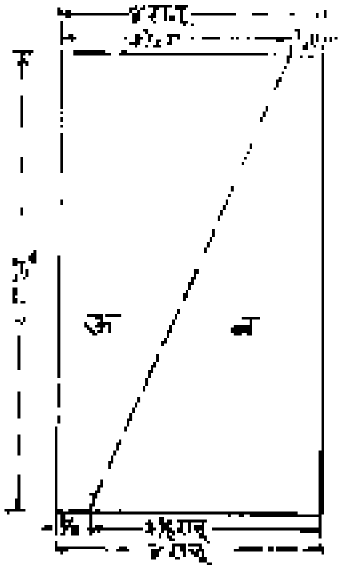

क्षेत्रफल :—यह आयतचतुरस्र क्षेत्र ४ राजू चौड़ा और ७ राजू ऊँचा है। इसकी ऊपर नीचे की भुजा समान है, तथा आमने सामने की कोटि भी समान है, अतः कोटि ७ राजू × ४ राजू भुजा = २८ वर्ग राजू ऊर्द्धायत अधोलोक का क्षेत्रफल है।

३. तिर्यगायत अधोलोक :—

जिस क्षेत्र की लम्बाई अधिक और ऊँचाई कम हो उसे तिर्यगायत क्षेत्र कहते हैं। अधोलोक सात राजू ऊँचा है। भूमि ७ राजू और मुख १ राजू है। ७ राजू ऊँचाई के बराबर बराबर दो भाग करने पर नीचे (नं० १) का भाग ३½ राजू ऊँचा, और ७ राजू भूमि तथा ४ राजू मुख वाला हो जाता है। ऊपर के भाग की चौड़ाई की अपेक्षा दो भाग करने पर प्रत्येक भाग ३½ राजू ऊँचा, २ राजू भूमि और ½ राजू मुख वाला हो जाता है। इन दोनों (नं० १ और २) भागों के नीचे वाले (नं० १) भाग के दाईं बाईं ओर उलट कर स्थापन करने से ३½ राजू ऊँचा और ८ राजू लम्बा तिर्यग् आयत क्षेत्र बन जाता है। जैसे :—

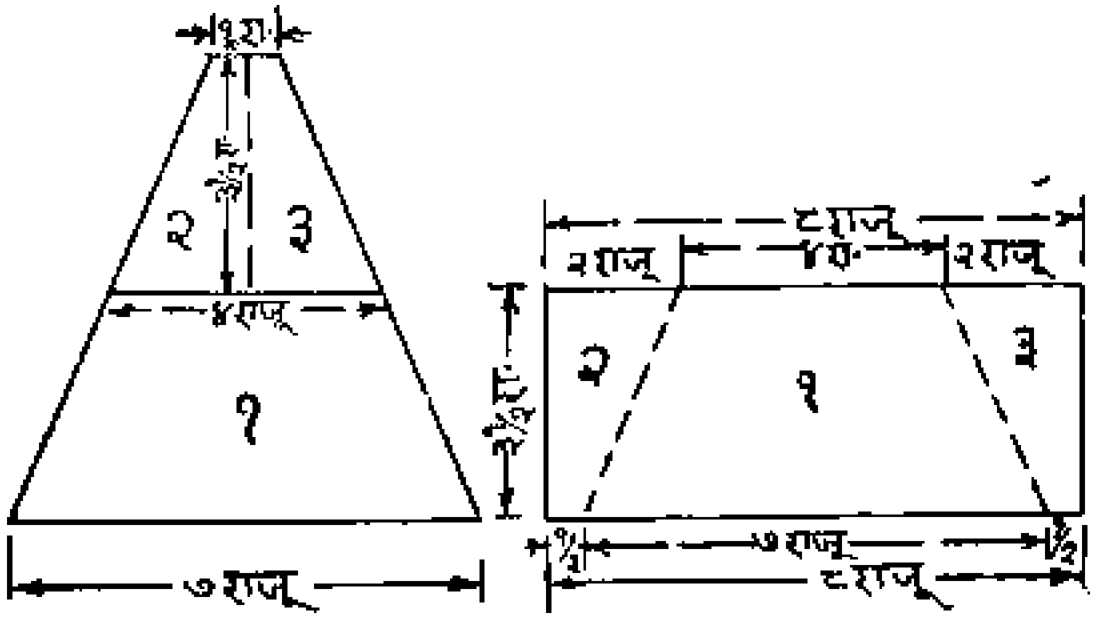

क्षेत्रफल :—यह आयत क्षेत्र ८ राजू लम्बा और ३½ राजू ऊँचा है। इसकी ऊपर नीचे की कोटि समान है। तथा आमने सामने की भुजा भी समान है, अत: ८ राजू कोटि को ३½ राजू भुजा से गुणा ($\frac{८}{१} \times \frac{७}{२}$) करने पर २८ वर्ग राजू तिर्यगायत अधोलोक का क्षेत्रफल प्राप्त हो जाता है।

अथ यवमुरजक्षेत्रफलमानयति—

रज्जुत्तयस्सोसरणे सत्तुदओ जदि हवेज्ज एक्केसे।
किमिदि कदे संपादे एक्कजउस्सेहमाणमिणं ॥११६॥

रज्जुत्रयस्यापसरणे सप्तोदयो यदि भवेत् एकस्याम्।
किमिति कृते सम्पाते एकयवस्योत्सेधमानमिदम् ॥११६॥

रज्जु । रज्जुत्रयस्यापसरणे सप्तोदयो यदि भवेत् एक रज्ज्वपसरणे कियानुदय इति संपाते कृते

यागतमेकयवोत्सेधप्रमाणमिदं[1] ७/३। एकयवस्य १ इयत्युदये ७/३ अर्धयवस्य १/२ किमिति सम्पाते अर्ध-यवोत्सेधमानं स्यात्। पश्चादर्धयवक्षेत्रफलं "मुखभूमिजोगदले (मु० भूमि १ जो १ दले १/२) इत्यादि-नानीय ७/१२ एकार्धयवस्य १ इयति ७/१२ फले अष्टाविंशत्यर्धस्य किमिति सम्पात्य षड्भिरपवर्तिते सर्व यवक्षेत्रफलं ४९/३ स्यात्। मुख १ भूमि ४ जोग ५ दले ५/२ पदे ७/३ गुणिते ३५/६ पदधनं होदीत्यर्धमुरजक्षेत्र-फलमानीयार्धमुरजस्यैतावति ३५/६ फले एकमुरजस्य किमिति सम्पात्यापवर्त्य ३५/३ एतद्यवक्षेत्रफले ४९/३ संयोज्य भाजिते २८ यवमुरजक्षेत्रफलं भवति। यवमध्यक्षेत्रस्ययवान् सर्वान् गुणयित्वा २४ पूर्ववदर्ध-यवक्षेत्रफलमानीय ७/१२ पुनरर्धयवस्य १/२ एतावति ७/१२ एकयवस्य किमिति सम्पात्यापवर्तिते एकयवक्षेत्र-फलं ७/६ स्यात्। एकयवस्य एतावति फले ७/६ चतुर्विंशतियवानां किमिति सम्पात्य षड्भिरपवर्तिते यवमध्यक्षेत्रफलं २८ भवति ॥११६॥

यवमुरज अधोलोक :—

गाथार्थ :— जबकि एक ओर ३ राजू के घटने पर ७ राजू की ऊँचाई प्राप्त होती है, तब एक राजू घटने पर कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर एक यव की ७/३ राजू ऊँचाई प्राप्त होगी ॥११६॥

विशेषार्थ :— अधोलोक को मुरज (मृदङ्ग) व यव (जौ अन्न) के आकार में विभाजित करने का नाम यवमुरजाकार है।

उपर्युक्त गाथा में यवमुरज आकार द्वारा अधोलोक का क्षेत्रफल ज्ञात करने की सूचना दी गई है। जैसे :—

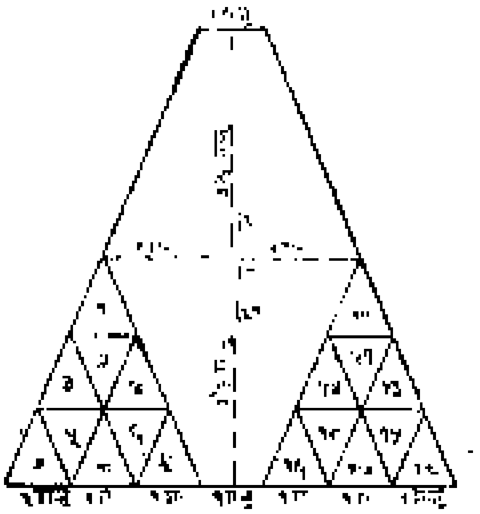

अधोलोक नीचे ७ राजू चौड़ा है। दोनों ओर क्रम से (समान अनुपात में ३, ३ राजू) घटते हुये मध्यलोक के समीप एक राजू की चौड़ाई अवशेष रहती है, अतः जबकि (एक ओर) ३ राजू घटने

---

१ मानं स्यात् (ब०, प०)।

पर ७ राजू ऊँचाई प्राप्त होती है, तब एक राजू घटने पर कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने से ७/३ राजू ऊँचाई प्राप्त हुई। यही ७/३ राजू एक यव की ऊँचाई है। जबकि एक यव की ऊँचाई ७/३ राजू है तब अर्धयव की कितनी होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर अर्धयव की ऊँचाई ७/६ राजू प्राप्त होती है। अर्धयवों का क्षेत्रफल :—अधोलोक के दोनों पार्श्व भागों में १८ अर्धयव हैं। एक अर्धयव की भूमि १ राजू, मुख० और उत्सेध ७/६ राजू है। "मुखभूमि जोगदले" सूत्रानुसार १ + ० = १. ÷ २ = १/२ × ७/६ = ७/१२ राजू एक अर्धयव का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ। जबकि एक अर्धयव का क्षेत्रफल ७/१२ राजू है, तब १८ अर्धयवों का कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक कर (७/१२ × १८/१) छह से अपवर्तित करने पर १८ अर्धयवों का क्षेत्रफल २१/२ अर्थात् १०½ वर्ग राजू प्राप्त हुआ। मुरज का क्षेत्रफल :– दोनों पार्श्व भागों के १८ अर्धयव अलग कर देने के बाद अधोलोक का आकार एक मुरज सदृश अवशेष रहता है। इसे ऊँचाई में से आधा कर देने पर दो अर्धमुरज होते हैं। एक अर्धमुरज का मुख १ राजू और भूमि ४ राजू है। दोनों का योग (४ + १) = ५ राजू हुआ। इसे आधा करने पर (५ ÷ २) ५/२ राजू हुये, इनको ३½ राजू उत्सेध से गुणित करने पर (५/२ × ७/२) = ३५/४ राजू पद धन होता है। जबकि अर्ध (१/२) मुरज का क्षेत्रफल ३५/४ राजू है, तब एक मुरज का कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर (२ × ३५/४) = ३५/२ अर्थात् १७½ राजू सम्पूर्ण मुरज का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ। इस प्रकार १८ अर्धयवों का क्षेत्रफल १०½ राजू और सम्पूर्ण मुरज का क्षेत्रफल १७½ राजू है, अतः १७½ + १०½ = २८ वर्ग राजू यवमुरज अधोलोक का क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

यवमध्य अधोलोक :—

अधोलोक के सम्पूर्ण क्षेत्र में यवों की रचना करने को यवमध्य कहते हैं। जिस प्रकार यव-मुरज के दोनों पार्श्व भागों में अर्धयव की रचना की थी उसी प्रकार सम्पूर्ण अधोलोक में यव की रचना करने से २० पूर्ण यव और ८ अर्धयव प्राप्त होते हैं। इन ८ अर्धयवों के ४ पूर्ण यव बनाकर सम्पूर्ण अधोलोक में २४ पूर्ण यवों की प्राप्ति हुई।

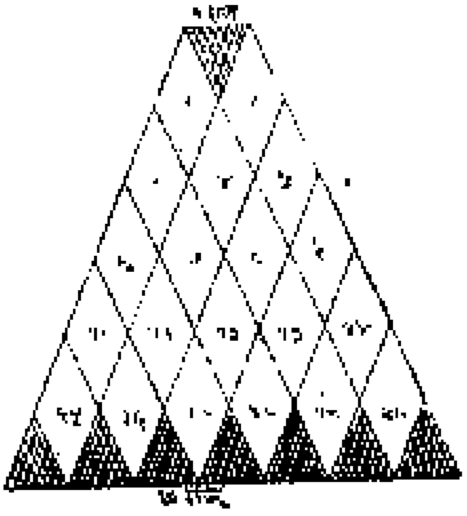

क्षेत्रफल :—जबकि $\frac{1}{2}$ (अर्ध) यव की ऊँचाई $\frac{7}{6}$ राजू है। तो एक यव की कितनी होगी इस प्रकार त्रैराशिक करने से एक यव की ऊँचाई $\frac{7}{3}$ राजू प्राप्त हुई। प्रत्येक यव की बीच की चौड़ाई १ राजू और ऊपर नीचे की चौड़ाई शून्य है। अतः १ + ० = १ राजू, इसका आधा (१ ÷ २) $\frac{1}{2}$ राजू प्राप्त हुआ। इसमें $\frac{7}{3}$ राजू ऊँचाई का गुणा करने से ($\frac{1}{2} \times \frac{7}{3}$) = $\frac{7}{6}$ वर्ग राजू एक यव का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ। सम्पूर्ण यव (२० + ४) = २४ हैं। अतः $\frac{7}{6} \times \frac{24}{1}$ = २८ वर्ग राजू प्राप्त हुआ। यही २८ वर्ग राजू क्षेत्रफल यवमध्य अधोलोक का है। अथवा :— (१ + ० = १ ÷ २ = $\frac{1}{2} \times \frac{7}{6}$ उ०) = $\frac{7}{12}$ वर्ग राजू अर्ध यव का क्षेत्रफल है, तो एक यव का क्षेत्रफल $\frac{7}{12} \times \frac{2}{1}$ = $\frac{7}{6}$ वर्ग राजू होता है। जबकि १ यव का $\frac{7}{6}$ वर्ग राजू है तब २४ यवों का क्षेत्रफल $\frac{7}{6}$ × २४ = २८ वर्ग राजू हुआ। यही २८ वर्ग राजू क्षेत्रफल यवमध्य अधोलोक का है।

अथ मन्दर क्षेत्रफलानयनप्रकारं दर्शयति—

अद्धं चउत्थभागो सगबारसमं तिदालबारंसो ।
सगबारंस दिवड्ढं रज्जुदओ मंदरे खेत्ते ॥११७॥

अर्धं चतुर्थभागः सप्तद्वादश त्रिचत्वारिंशत्द्वादशांशाः ।
सप्तद्वादशांशा द्व्यर्धा रज्जूदयो मंदरे क्षेत्रे ॥११७॥

अद्धं । अर्धं $\frac{1}{2}$ चतुर्थांशः $\frac{1}{4}$ तयोः[1] मेलने $\frac{3}{4}$ [2] सप्तद्वादशांशाः $\frac{7}{12}$ त्रिचत्वारिंशत् द्वादशांशाः $\frac{43}{12}$ पुनरपि सप्तद्वादशांशाः $\frac{7}{12}$ अर्धद्वितीयांशाः $\frac{3}{2}$ रज्जूदयामन्दरक्षेत्रे भवन्ति। मुखं १ भूमि ७ विशेषे इति हानिमानीय ६ सप्त रज्जूदयस्य ७ षड्हानौ ६ त्रिचतुर्थ $\frac{3}{4}$ रज्जूदयस्य किमिति सम्पात्य द्वाभ्यां तिर्यगपवर्त्य $\frac{3}{7}\frac{3}{2}$ गुणिते $\frac{9}{14}$ समानछिन्न[3] सप्तरज्ज्वां $\frac{98}{14}$ स्फोटिते $\frac{89}{14}$ त्रिचतुर्थांशोपरितनायामः स्यात्। सप्तरज्जूदयस्य षड्हानौ ६ सप्तद्वादश $\frac{7}{12}$ रज्जूदयस्य किमिति सम्पात्यापवर्त्य गुणिते $\frac{7}{14}$ पूर्वहिमसायामे $\frac{89}{14}$ स्फोटिते $\frac{82}{14}$ उपरितनायामः स्यात्। सप्तरज्जूदयस्य षड्हानौ ६ त्रिचत्वारिंशद्द्वादश $\frac{43}{12}$ रज्जूदयस्य किमिति सम्पात्यापवर्त्य गुणिते $\frac{43}{14}$ पूर्वहिमसायामे $\frac{82}{14}$ स्फोटिते[4] $\frac{39}{14}$ उपरितनायामः स्यात्। सप्तरज्जूदयस्य ७ षड्हानौ ६ सप्तद्वादश $\frac{7}{12}$ रज्जूदयस्य किमिति तथा गुणिते $\frac{7}{14}$ पूर्वहिमसायामे $\frac{39}{14}$ स्फोटिते $\frac{32}{14}$ उपरितनायामः स्यात्। सप्तरज्जूदयस्य ७ षड्हानौ ६ अर्धद्वितीय $\frac{3}{2}$ रज्जूदयस्य किमिति गुणिते $\frac{9}{7}$ समानछेदेन $\frac{18}{14}$ अधस्तात् $\frac{32}{14}$ स्फोटने कृते $\frac{14}{14}$ उपरितनायामः स्यात्। चूलिकामध्यमार्धं सप्तद्वादशोदयक्षेत्रद्वयमायतचतुरस्रं कृत्वा तत्तन्मुखं $\frac{82}{14}$ $\frac{32}{14}$ तत्तद्भूमौ $\frac{89}{14}$ $\frac{39}{14}$ स्फोटयित्वा $\frac{7}{14}$ $\frac{7}{14}$ सप्तभिरपवर्त्य $\frac{1}{2}$ $\frac{1}{2}$ खण्डद्वयस्य २ एतावति $\frac{1}{2}$ एकखण्डस्य किमिति सम्पातितं $\frac{1}{4}$ एकैकखण्डस्य भूमिः। तत्र्येकखण्डभूमि $\frac{1}{4}$ मुपरितनं कृत्वा खण्डत्रयभूमियोगमधस्तनभूमिं कृत्वा $\frac{3}{4}$ सप्त-

---

१ तयोरर्द्धं चतुर्थांशयो (ब०, प०)। २ इति जातं (ब०, प०)।
३ समानच्छेदेन (ब०, प०)। ४ स्फोटने कृते (ब० प०)।

द्वादशोदया चूलिका कुर्यात् । पश्चाद्विषमचतुरस्रक्षेत्रफलं मुखभूमियोगदलेत्यादिनानीय आयतचतुरस्रक्षेत्रफलं[1] भुजकोटिवेधादित्यादिनानीय षण्णां फलानां च त्रि ३ द्वि २ द्वि २ षट् ६ चतुर्दश १४ भिः समानच्छेदेन मेलनं कृत्वा ९४०८/३३६ हृते च मन्दरक्षेत्रफलं भवति २८ ।[2] रज्जुत्रयस्येत्यादिनार्धयवोत्सेधमानीय ७/६ समानच्छिन्न[3] सप्तरज्ज्वां ४२/६ स्फोटने ३५/६ सप्तरज्जुभूमेर्मुखं स्यात् । तत्रैव ३५/६ पुनरर्धयवोत्सेधस्फोटने २८/६ तदुत्तरस्य मुखं स्यात् । एवं पूर्वपूर्वमुखे पुनः पुनः अर्धयवोत्सेधस्फोटने तत्तदुत्तरोत्तरस्य मुखं स्यात् । मुखभूमियोगेत्यादिना षण्णां क्षेत्राणां फलमानीय मेलयित्वा ५८८/२१ हृत्वा २१ सप्तरज्जूमेलने २८ दूष्यक्षेत्रफलं भवति । रज्जुत्रयेत्यादिनार्धयवक्षेत्रफलमानीय ७/१२ एकखण्डस्यैतावति ७/१२ अष्टचत्वारिंशत्खण्डानां किमिति सम्पात्य द्वादशभिरपवर्त्य भक्त्वा ४ गुणिते २८ गिरिकटकक्षेत्रफलं भवति ॥११७॥

मन्दर अधोलोक :—

गाथार्थ :— अधोलोक में नीचे से ऊपर आधे राजू में चौथाई राजू मिला देने से ($\frac{१}{२}$ + $\frac{१}{४}$) पौन राजू होता है । $\frac{३}{४}$ राजू में $\frac{४७}{२८}$ राजू, इसमें $\frac{६०}{२८}$ राजू, इससे $\frac{४७}{२८}$ राजू और इससे $\frac{३}{४}$ राजू ऊपर, ऊपर जाकर जिस आकार का निर्माण होता है, वही मन्दराकार का क्षेत्र बन जाता है ॥११७॥

विशेषार्थ :— अधोलोक में सुदर्शन मेरु के आकार की रचना कर क्षेत्रफल प्राप्त करने को मन्दर क्षेत्रफल कहते हैं ।

अधोलोक ७ राजू ऊँचा है। उसमें नीचे से ऊपर की ओर ($\frac{१}{२}$ + $\frac{१}{४}$ राजू) $\frac{३}{४}$ राजू का पहिला भाग बनाया है । जो ५०० योजन के स्थानीय है, क्योंकि मन्दर मेरु (सुदर्शन मेरु) पर नन्दन बन तल भाग (भद्रशाल वन) से ५०० योजन ऊपर जाकर है ।

$\frac{३}{४}$ राजू क्षेत्र का उपरितन आयाम :—भूमि ७ राजू और मुख १ राजू है । भूमि में से मुख घटा देने पर (७ — १) = ६ राजू अवशेष रहा । अतः जबकि ७ राजू की ऊँचाई पर ६ राजू की हानि होती है, तब $\frac{३}{४}$ राजू पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने से ($\frac{६}{७}$ × $\frac{३}{४}$) = $\frac{९}{१४}$ राजू की हानि प्राप्त हुई । इसे ७ राजू आयाम में से घटा देने पर ($\frac{७}{१}$ — $\frac{९}{१४}$ = $\frac{९८ - ९}{१४}$ = $\frac{८९}{१४}$ राजू आयाम $\frac{३}{४}$ राजू की ऊँचाई के उपरितन क्षेत्र का है ।

$\frac{३}{४}$ राजू से ऊपर $\frac{४७}{२८}$ राजू ऊँचे जाकर दूसरा खण्ड है । जो नन्दन वन के स्थानीय है । इसका उपरितन आयाम :—

जबकि ७ राजू की ऊँचाई पर ६ राजू की हानि होती है, तब $\frac{४७}{२८}$ राजू की ऊँचाई पर कितनी

---

१ चतुरस्रस्य क्षेत्रफलं (ब०, प०) । २ अथ दूष्यक्षेत्रस्वरूपमाह (ब०, प०) ।
३ समानच्छेदेन (ब०, प०) ।

हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{६}{७} \times \frac{७}{१००}$) = $\frac{६}{१००}$ राजू की हानि प्राप्त होती है। इसे $\frac{७०३}{१००}$ राजू आयाम में से घटा देने पर ($\frac{७०३}{१००} - \frac{६}{१००}$) = $\frac{६९७}{१००}$ राजू का आयाम नन्दनवन के उपरितन क्षेत्र का है।

दूसरे ($\frac{७}{१००}$) खण्ड के ऊपर तीसरा खण्ड $\frac{४३७\frac{१}{२}}{१००}$ राजू ऊँचा है। जो ६२$\frac{१}{२}$ हजार योजन के स्थानीय है, क्योंकि नन्दन वन से सौमनस् वन साढ़े बासठ (६२$\frac{१}{२}$) हजार योजन ऊँचा है।

$\frac{४३७\frac{१}{२}}{१००}$ राजू का उपरितन आयाम :—जबकि ७ राजू की ऊँचाई पर ६ राजू की हानि होती है, तब $\frac{४३७\frac{१}{२}}{१००}$ राजू की ऊँचाई पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{६}{७} \times \frac{४३७\frac{१}{२}}{१००}$) = $\frac{३७५}{१००}$ राजू की हानि प्राप्त होती है। इसे $\frac{६९७}{१००}$ राजू आयाम में से घटा देने पर ($\frac{६९७}{१००} - \frac{३७५}{१००}$) = $\frac{३२२}{१००}$ राजू का आयाम $\frac{४३७\frac{१}{२}}{१००}$ राजू ऊँचे क्षेत्र के उपरितन भाग का है।

तीसरे खण्ड के ऊपर चौथा खण्ड $\frac{७}{१००}$ राजू ऊँचा है। जो सौमनस् वन स्वरूप है।

सौमनस वन के उपरितन क्षेत्र् का आयाम :—जबकि ७ राजू की ऊँचाई पर ६ राजू की हानि होती है, तब $\frac{७}{१००}$ राजू की ऊँचाई पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{६}{७} \times \frac{७}{१००}$) = $\frac{६}{१००}$ राजू की हानि प्राप्त होती है। इसे $\frac{३२२}{१००}$ राजू आयाम में से घटा देने पर ($\frac{३२२}{१००} - \frac{६}{१००}$) = $\frac{३१६}{१००}$ राजू आयाम सौमनस वन के उपरितन क्षेत्र का है।

चौथे खण्ड के ऊपर पाँचवाँ खण्ड $\frac{२५२}{१००}$ राजू ऊँचा है। इसके ऊपर पाण्डुक वन है- जो सौमनस वन से ३६ हजार योजन ऊँचा है। अधोलोक ऊपर में एक राजू चौड़ाई वाला है; जो पाण्डुक वन के स्थानीय है।

पाण्डुक वन का आयाम :—जबकि ७ राजू की ऊँचाई पर ६ राजू की हानि होती है, तब $\frac{२५२}{१००}$ राजू की ऊँचाई पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार के त्रैराशिक से ($\frac{६}{७} \times \frac{२५२}{१००}$) = $\frac{५४}{२५}$ राजू की हानि प्राप्त हुई। इस $\frac{५४}{२५}$ अर्थात् $\frac{२१६}{१००}$ राजू को $\frac{३१६}{१००}$ राजू आयाम में से घटा देने पर ($\frac{३१६}{१००} - \frac{२१६}{१००}$) = $\frac{१००}{१००}$ अर्थात् १ राजू आयाम पाण्डुक वन का है।

पाण्डुक वन के ऊपर चूलिका है। अतः अधोलोक के ऊपर भी चूलिका बनाने के लिये कहते हैं :—

नन्दन वन और सौमनस वन पर सुदर्शन मेरु सीधा अर्थात् आयत चतुरस्र स्वरूप है। अङ्क संदृष्टि में इन दोनों वनों की ऊँचाई $\frac{७}{१००}$, $\frac{७}{१००}$ राजू प्रमाण है। इन दोनों वनों को आयतचतुरस्र स्वरूप करने के लिये निम्नलिखित विधान है :—नन्दन वन की भूमि ($\frac{७०३}{१००}$) में से मुख ($\frac{६९७}{१००}$) घटाने पर ($\frac{७०३}{१००} - \frac{६९७}{१००}$) = $\frac{६}{१००}$ अर्थात् $\frac{३}{५०}$ राजू प्राप्त होता है। इसी प्रकार सौमनस वन की भूमि ($\frac{३२२}{१००}$) में से मुख ($\frac{३१६}{१००}$) घटा देने पर ($\frac{३२२}{१००} - \frac{३१६}{१००}$) = $\frac{६}{१००}$ अर्थात् $\frac{३}{५०}$ राजू प्राप्त हुआ। जबकि दो खण्डों पर $\frac{३}{५०}$ राजू प्राप्त होता है, तब १ खण्ड पर क्या प्राप्त होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने से ($\frac{३}{५० \times २}$) = $\frac{३}{१००}$

राजू प्राप्त हुआ। एक खण्ड का $\frac{१}{२}$ भाग प्राप्त हुआ, अतः दोनों वनों के चार कोनों के चार खण्ड $\frac{१}{२}$ राजू भूमि, ० मुख और $\frac{५}{१२}$ राजू ऊँचाई वाले प्राप्त हुये। इन चारों ($\frac{१}{२}, \frac{१}{२}, \frac{१}{२}, \frac{१}{२}$) खण्डों में से एक खण्ड की भूमि ऊपर और मुख नीचे करके, तथा तीन खण्डों की भूमि नीचे और मुख ऊपर करके स्थापन करने से तल भाग में $\frac{३}{२}$ राजू आयाम, चोटी पर $\frac{१}{२}$ राजू आयाम और $\frac{५}{१२}$ राजू ऊँचाई वाली चूलिका प्राप्त हो जाती है।

अधोलोक में सुदर्शन (मन्दर) मेरु की रचना :—

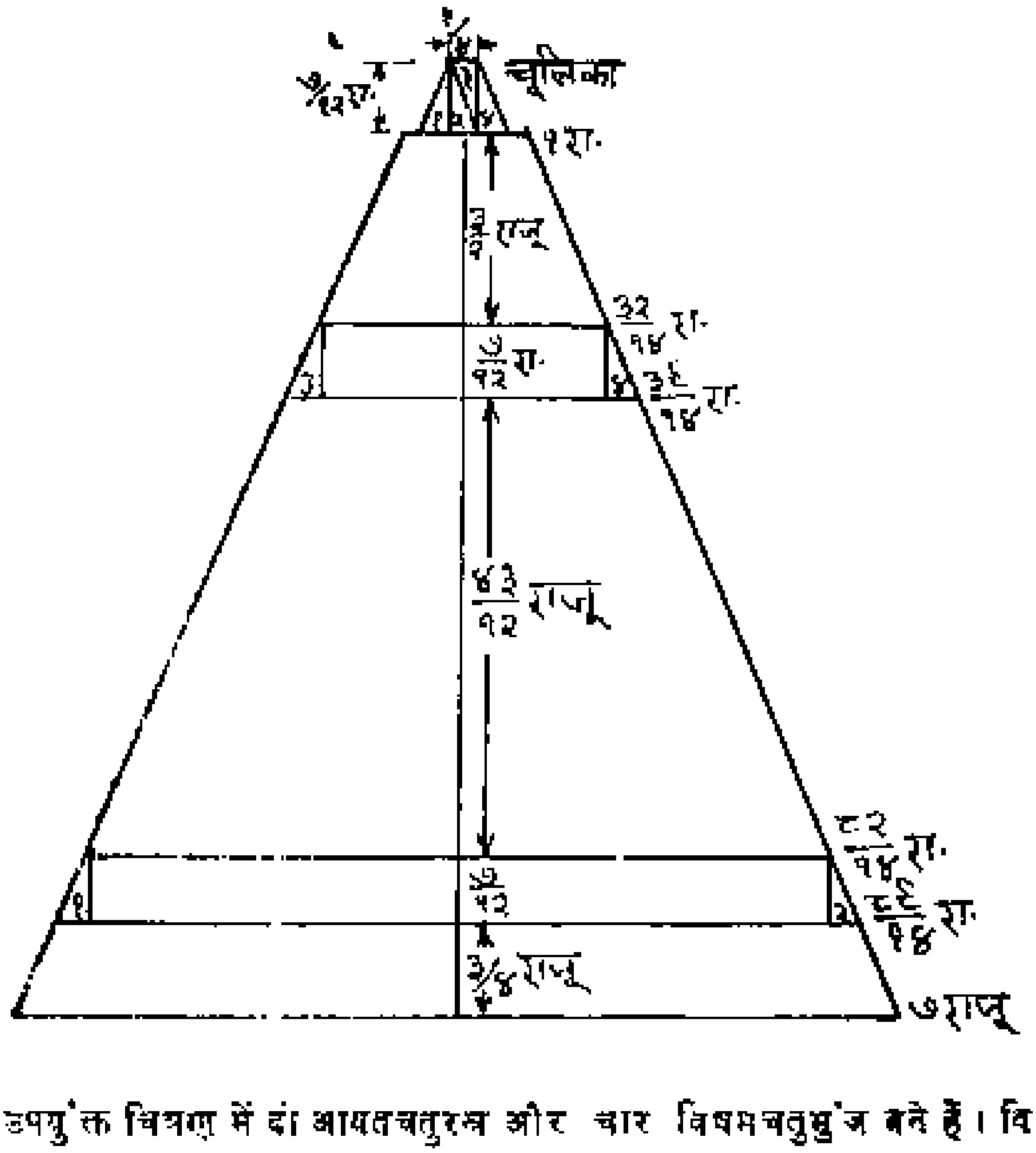

इस उपर्युक्त चित्रण में दो आयतचतुरस्र और चार विषमचतुर्भुज बने हैं। विषम चतुर्भुजों का क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिये मुख और भूमि को मिलाकर आधा करना चाहिये (पुनः उत्सेध से गुणा करना चाहिये)। तथा आयतचतुरस्र का क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिये भुजा और कोटि का परस्पर में गुणा करना चाहिये। इन छहों क्षेत्रों के क्षेत्रफलों को क्रम से ३, २, १, २, ६ और १४ से गुणा करने पर समान छेद (३३६) प्राप्त होता है। यथा $\frac{१२१३}{११२} \times \frac{३}{३} = \frac{३६३९}{३३६}$; $\frac{७२९}{१६८} \times \frac{२}{२} = \frac{१४५८}{३३६}$; $\frac{१२०३}{३३६} \times \frac{१}{१} = \frac{१२०३}{३३६}$; $\frac{३४५}{१६८} \times \frac{२}{२} = \frac{६९०}{३३६}$; $\frac{१०९}{५६} \times \frac{६}{६} = \frac{६५४}{३३६}$; $\frac{६९}{२४} \times \frac{१४}{१४} = \frac{९६६}{३३६}$ प्राप्त हुये।

इन्हें परस्पर में जोड़ने पर $\frac{१६८३}{३३६}+\frac{११४८}{३३६}+\frac{५२०३}{३३६}+\frac{४४८}{३३६}+\frac{८२८}{३३६}+\frac{९८}{३३६}$ अर्थात्

$=\frac{१६८३+११४८+५२०३+४४८+८२८+९८}{३३६}=\frac{९४०८}{३३६}$ = २८ वर्गराजू मन्दर अधोलोक का क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

विशेष विवरणयुक्त मन्दर मेरु का क्षेत्रफल :—

१. प्रथम खण्ड का क्षेत्रफल :—प्रथम खण्ड की भूमि ७ राजू, मुख $\frac{८९}{१४}$ राजू और उत्सेध $\frac{३}{४}$ राजू है। अत: $\frac{७}{१}+\frac{८९}{१४}=\frac{१८७}{१४}$ राजू हुआ। इसका आधा $\frac{१८७}{१४}\times\frac{१}{२}=\frac{१८७}{२८}\times\frac{३}{४}$ ऊँ० $=\frac{५६१}{११२}$ अर्थात् $५\frac{१}{११२}$ वर्ग राजू प्रथम खण्ड का क्षेत्रफल होता है।

२. दूसरे खण्ड का :— दूसरे खण्ड की भूमि व मुख दोनों $\frac{८२}{१४}$ राजू हैं, तथा उत्सेध $\frac{७}{१२}$ राजू है। अत: $\frac{८२}{१४}\times\frac{७}{१२}=\frac{४१}{१२}$ अर्थात् $३\frac{५}{१२}$ वर्ग राजू दूसरे खण्ड का क्षेत्रफल।

३. तीसरा खण्ड :—तीसरे खण्ड की भूमि $\frac{८२}{१४}$ राजू, मुख $\frac{३९}{१४}$ राजू और उत्सेध $\frac{४३}{१२}$ राजू है। अत: $\frac{८२}{१४}+\frac{३९}{१४}=\frac{१२१}{१४}$ राजू हुआ। इसका आधा $\frac{१२१}{१४}\times\frac{१}{२}=\frac{१२१}{२८}$ राजू। $\frac{१२१}{२८}\times\frac{४३}{१२}$ राजू उत्सेध $=\frac{५२०३}{३३६}$ अर्थात् $१५\frac{१६३}{३३६}$ वर्ग राजू तीसरे खण्ड का क्षेत्रफल।

४ चौथा खण्ड :—चौथे खण्ड की भूमि व मुख दोनों $\frac{३२}{१४}$ राजू, और उत्सेध $\frac{७}{१२}$ राजू है। अत: $\frac{३२}{१४}\times\frac{७}{१२}=\frac{४}{३}$ अर्थात् $१\frac{१}{३}$ वर्ग राजू चौथे खण्ड का क्षेत्रफल।

५. पाँचवाँ खण्ड :—पांचवें खण्ड की भूमि $\frac{३२}{१४}$ राजू, मुख १ राजू और उत्सेध $\frac{३}{२}$ राजू है। अत: $\frac{३२}{१४}+\frac{१४}{१४}$ (अर्थात् १ राजू) $=\frac{४६}{१४}\times\frac{१}{२}$ आधा किया $=\frac{२३}{१४}$। $\frac{२३}{१४}\times\frac{३}{२}$ उत्सेध $=\frac{६९}{२८}$ वर्ग राजू पाँचवें खण्ड का क्षेत्रफल $२\frac{१३}{२८}$ वर्ग राजू है।

६ चूलिका :—चूलिका की भूमि $\frac{३}{४}$ राजू, मुख $\frac{१}{४}$ राजू और उत्सेध $\frac{७}{१२}$ राजू है। अत: $\frac{३}{४}+\frac{१}{४}$ = १ राजू। $१\times\frac{१}{२}$ (आधा किया) $=\frac{१}{२}\times\frac{७}{१२}$ उत्सेध $=\frac{७}{२४}$ वर्ग राजू चूलिका का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ। इन छहों खण्डों का योगफल :—

$$\frac{५६१}{११२}+\frac{४१}{१२}+\frac{५२०३}{३३६}+\frac{४}{३}+\frac{६९}{२८}+\frac{७}{२४}$$

$$=\frac{१६८३+११४८+५२०३+४४८+८२८+९८}{३३६}=\frac{९४०८}{३३६}=२८ \text{ वर्ग राजू।}$$

२८ वर्ग राजू मन्दर अधोलोक का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ।

दूष्य अधोलोक :—

दूष्य का अर्थ डेरा [TENT] होता है। अधोलोक के मध्य क्षेत्र में डेरों की रचना करके क्षेत्रफल निकालने को दूष्य क्षेत्रफल कहते हैं। यह रचना निम्नांकित चित्र द्वारा स्पष्ट हो जाती है :—

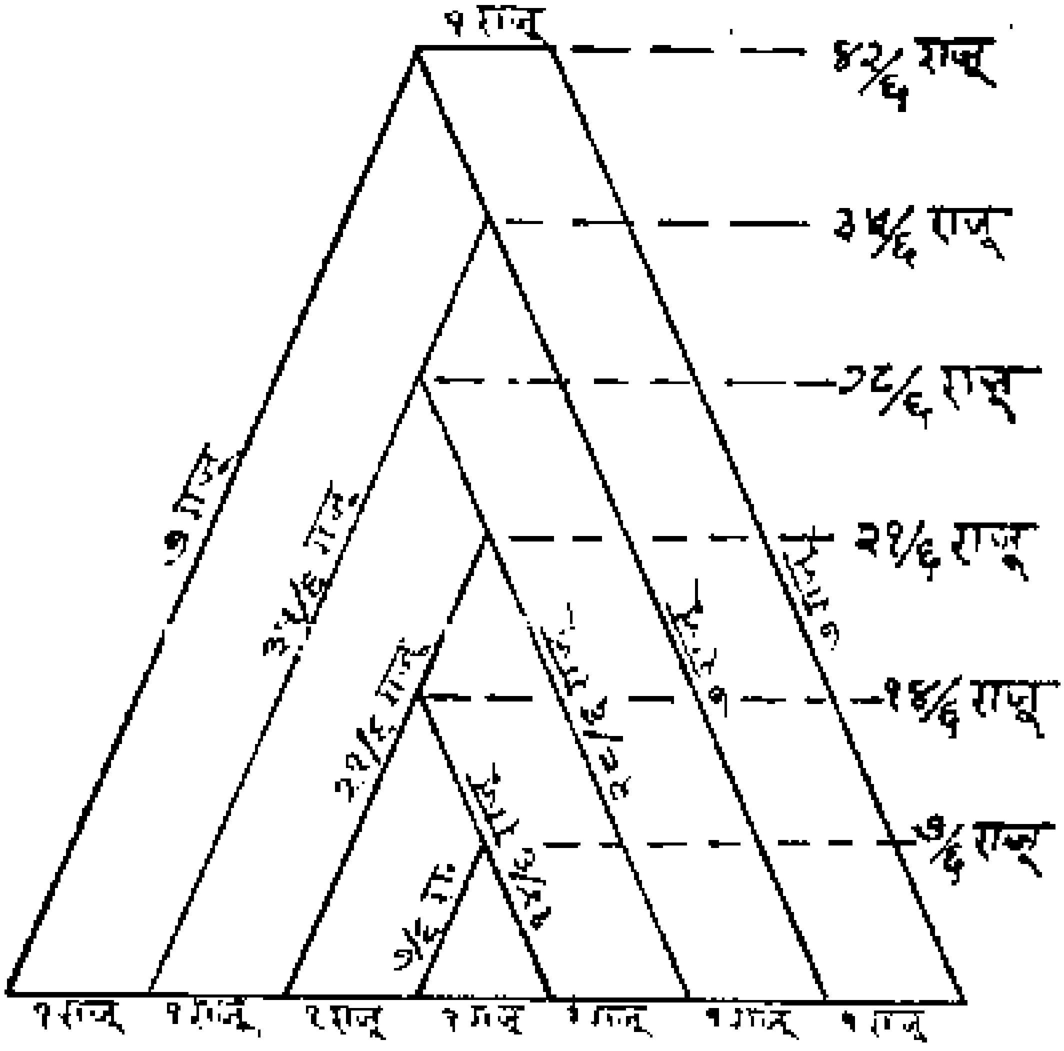

इस दृष्य क्षेत्र में प्रथम क्षेत्र आयतचतुरस्र है, जिसकी भुजा ७ राजू और कोटि १ राजू है। दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें और छठवें क्षेत्र विषमचतुरस्र हैं; तथा इन सबकी कोटि एक एक राजू है। अन्तिम सातवाँ क्षेत्र त्रिकोण है जिसकी ऊँचाई $\frac{7}{6}$ राजू तथा आधार एक राजू है। गाथा ११६ में अर्धयव का उत्सेध $\frac{7}{6}$ राजू कहा गया है। इसको समान छेद के द्वारा ७ राजू में से घटाने पर ($\frac{42}{6}$ — $\frac{7}{6}$) = $\frac{35}{6}$ राजू अवशेष रहता है। अर्थात् प्रथम चतुर्भुज की भूमि ७ राजू, मुख $\frac{35}{6}$ राजू है। उस $\frac{35}{6}$ राजू में से अर्धयव का उत्सेध $\frac{7}{6}$ राजू घटा देने पर ($\frac{35}{6}$ — $\frac{7}{6}$) = $\frac{28}{6}$ राजू दूसरे विषम चतुर्भुज का मुख प्राप्त होता है। इसी प्रकार पूर्व पूर्व के मुख में से पुनः पुनः अर्धयव का उत्सेध $\frac{7}{6}$ राजू घटाने पर उत्तर उत्तर विषमचतुर्भुज का मुख प्राप्त होता है। मुख और भूमि को जोड़ लब्ध को आधा कर कोटि से गुणा करने पर विषमचतुर्भुज का क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

सातों क्षेत्रों का क्षेत्रफल :—

नं० १ का क्षेत्रफल :—७ × १ = ७ वर्ग राजू नं० २ का :—($\frac{42}{6}$ + $\frac{35}{6}$) × $\frac{1}{2}$ × १ = $\frac{77}{12}$ वर्ग राजू नं० ३ का :—($\frac{35}{6}$ + $\frac{28}{6}$) × $\frac{1}{2}$ × १ = $\frac{63}{12}$ वर्ग राजू नं० ४ का :—($\frac{28}{6}$ + $\frac{21}{6}$) × $\frac{1}{2}$ × १ = $\frac{49}{12}$ वर्ग राजू नं० ५ का :—($\frac{21}{6}$ + $\frac{14}{6}$) × $\frac{1}{2}$ × १ = $\frac{35}{12}$ वर्ग राजू

नं० ६ का :—($\frac{१२}{७}$ + $\frac{६}{७}$) × $\frac{१}{२}$ × १ = $\frac{१८}{१४}$ वर्ग राजू तथा नं० ७ का क्षेत्रफल :—($\frac{६}{७}$ + ०) × $\frac{१}{२}$ × १ = $\frac{६}{१४}$ वर्ग राजू है।

= $\frac{७८}{१४}$ + $\frac{६६}{१४}$ + $\frac{४२}{१४}$ + $\frac{३०}{१४}$ + $\frac{१८}{१४}$ + $\frac{६}{१४}$ = $\frac{२९४}{१४}$ = २१ वर्ग राजू ।

२१ + ७ वर्ग राजू नं० १ का = २८ वर्ग राजू दूष्य अधोलोक का सम्पूर्ण क्षेत्रफल प्राप्त हुआ।

८. गिरिकटक अधोलोक :—

गिरिकटक — गिरि पहाड़ी को कहते हैं। पहाड़ी नीचे से चौड़ी और ऊपर सकरी अर्थात् चोटी युक्त होती है। कटक इससे विपरीत अर्थात् नीचे सकरा और ऊपर चौड़ा होता है। अधोलोक में गिरिकटक की रचना करने से २७ गिरि और २१ कटक प्राप्त होते हैं। जैसे :—

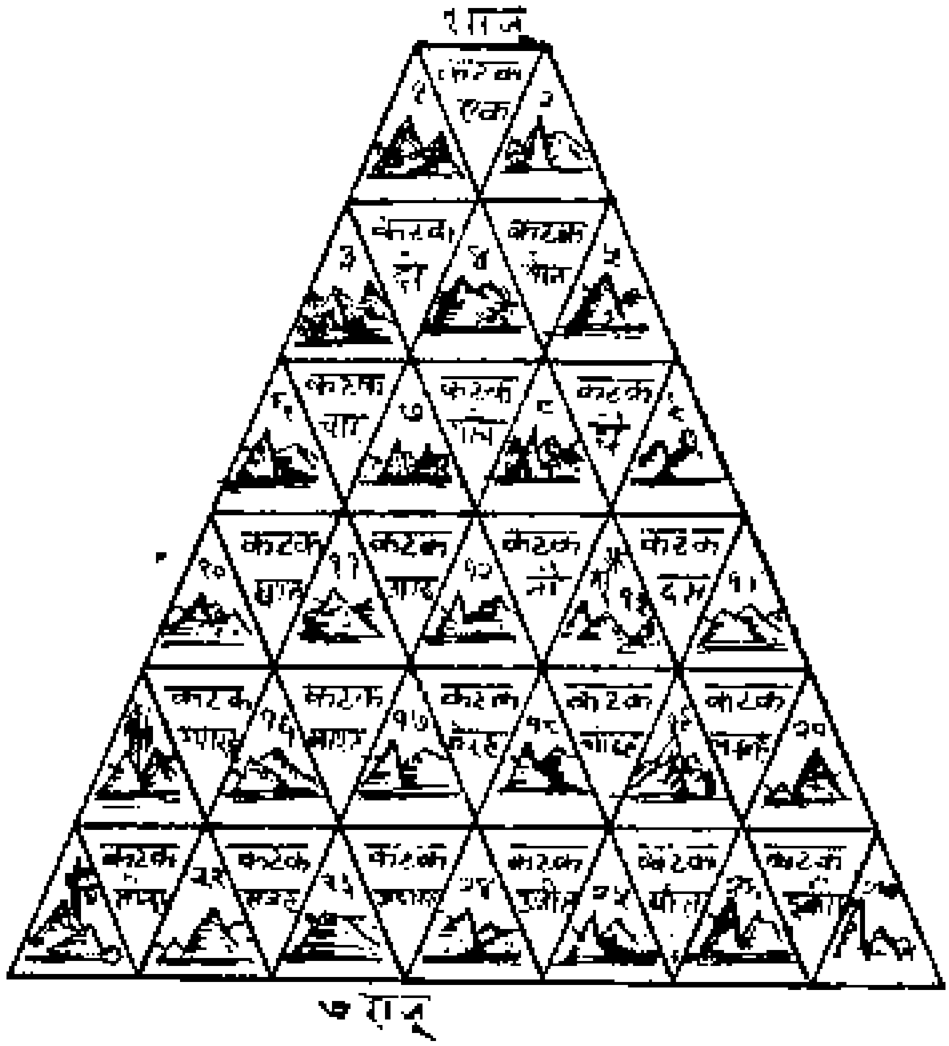

क्षेत्रफल :—प्रत्येक गिरि व कटक का क्षेत्रफल — भूमि १ राजू, मुख ० और उत्सेध $\frac{७}{६}$ राजू है। भूमि १ + ० मुख = १ राजू। इसका आधा (१ × $\frac{१}{२}$) = $\frac{१}{२}$ राजू प्राप्त होता है। इसे $\frac{७}{६}$ राजू उत्सेध से गुणा करने पर ($\frac{१}{२}$ × $\frac{७}{६}$) = $\frac{७}{१२}$ वर्ग राजू क्षेत्रफल एक गिरि व एक कटक का प्राप्त हुआ। अधोलोक के क्षेत्र में २७ गिरि-पर्वत हैं। अतः — जबकि एक गिरि का क्षेत्रफल $\frac{७}{१२}$ वर्ग राजू

है, तो २७ का कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक कर $\frac{7}{12} \times \frac{27}{1} = \frac{63}{4}$ अर्थात् १५¾ वर्ग राजू गिरि का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार पुनः त्रैराशिक करना चाहिये कि — १ कटक का $\frac{7}{12}$ वर्ग राजू क्षेत्रफल है, तो २१ कटक का कितना होगा ? इस प्रकार $\frac{7}{12} \times \frac{21}{1} = \frac{49}{4}$ अर्थात् १२¼ वर्ग राजू कटक का क्षेत्रफल हुआ।

१५¾ वर्ग राजू + १२¼ व० रा० = २८ वर्ग राजू गिरि-कटक अधोलोक का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ।

अथवा — गिरि कटक दोनों की संख्या ४८ है। जबकि एक खण्ड का क्षेत्रफल $\frac{7}{12}$ वर्ग राजू है, तो ४८ खण्डों का कितना होगा ? $\frac{7}{12} \times \frac{48}{1}$ प्राप्त हुआ। यहाँ १२ से ४८ को अपवर्तित करने पर ४ प्राप्त हुए जिसे ७ से गुणित कर देने पर गिरिकटक अधोलोक का क्षेत्रफल २८ वर्ग राजू प्राप्त होता है।

इदानीमूर्ध्वलोकक्षेत्रभेदमाह—

सामण्णं पत्तेयं अद्धत्थंभं तहेव पिणद्धी ।
एदे पंचपयारा लोयक्खेत्तम्हि णायव्वा ॥११८॥

सामान्यं प्रत्येकं अर्धं स्तम्भं तथैव पिनष्टिः ।
एते पञ्चप्रकारा लोकक्षेत्रे ज्ञातव्याः ॥११८॥

सामण्णं। समीकृतं प्रत्येकं अर्धं स्तम्भं तथैव पिनष्टिः एते पञ्चप्रकारा ऊर्ध्वलोकक्षेत्रे ज्ञातव्याः। मुख १ भूमि ५ जोग ६ दले ३ इत्यादिना समीकृतोर्ध्वलोकार्धक्षेत्रफलं ३ × $\frac{7}{2}$ मानीय एकस्यैतावति ३ × $\frac{7}{2}$ द्वयोः किमिति सम्पात्यापवर्त्य गुणिते सामान्यक्षेत्रफलं २१ भवति।[1] भूमौ ५ मुखं १ शोधयित्वा ४ अर्धचतुर्थोदयस्य $\frac{7}{2}$ चतुश्चये ४ अर्धद्वितीयो $\frac{3}{2}$ दयस्य किमित्यपवर्त्य सम्पादितं $\frac{12}{7}$ समानच्छिन्नैकरज्ज्वां $\frac{7}{7}$ मेलने कृते $\frac{19}{7}$ अर्धद्वितीयोपरितनव्यासः $\frac{19}{7}$ तत्रैव $\frac{12}{7}$ तत्सम्पात $\frac{12}{7}$ मेलने $\frac{31}{7}$ तदुपरितनव्यासः। अर्धचतुर्थोदयस्य $\frac{7}{2}$ चतुश्चये ४ अर्धोदयस्य $\frac{1}{2}$ किमित्यपवर्त्य सम्पादितं $\frac{4}{7}$ अधस्तात् $\frac{31}{7}$ मेलने उपरितनव्यासः $\frac{35}{7}$। एवमर्धोदयस्य चय $\frac{4}{7}$ मेव तत्तद्भूमौ स्फेटने $\frac{4}{7}$ उपर्युपरि व्यासः स्यात् यावत्पञ्चवलं $\frac{31}{7}$ $\frac{27}{7}$ $\frac{23}{7}$ $\frac{19}{7}$। अर्धचतुर्थोदयस्य $\frac{7}{2}$ चतुश्चये ४ एकोदयस्य १ किमिति सम्पादितं $\frac{8}{7}$ अधस्तात् $\frac{15}{7}$ स्फेटने $\frac{7}{7}$ लोकाग्रव्यासः स्यात्। मुखभूमिजोगदलेत्यादिना अर्धद्वितीयो-दयादिक्षेत्रफलमानीय सर्वेषां मेलने कृते $\frac{147}{7}$ प्रत्येकक्षेत्रफलं भवति २१। अर्धस्तम्भयोः क्षेत्रफलं सुगमं। मुह १ भूमीए ५ विसेसे ४ उदयहिदे $\frac{8}{7}$ इत्यादिना विवक्षितादुपरितनभवभूमिव्यासमानीय $\frac{19}{7}$ $\frac{31}{7}$ $\frac{35}{7}$ $\frac{31}{7}$ $\frac{27}{7}$ $\frac{23}{7}$ $\frac{19}{7}$ $\frac{15}{7}$ $\frac{7}{7}$ विवक्षितोपरितनव्यासे $\frac{19}{7}$ समच्छेदेन मध्यमैकरज्जुं स्फेटयित्वा $\frac{12}{7}$ उभयभाग-

---

[1] अथ प्रत्येकक्षेत्रं स्वरूपं निरूपयति (ब०, प०)।

र्यैतावति एकभागस्य किमिति त्रैराशिकं कृत्वा लब्धिते अधोदिग्वृद्धसहशत्रिभुजभूमिः अधो-विवृद्धोपरिमध्यासं समच्छिन्नत्रिरज्ज्वा स्फेटयित्वा लब्धिते बहिः सूचीभूमिः ॥११८॥

ऊर्ध्व लोक के क्षेत्रफल प्राप्त करने की अपेक्षा भेद कहते हैं :---

गाथार्थ : — सामान्य ऊर्ध्वलोक, प्रत्येक ऊर्ध्वलोक, अर्धस्तम्भ ऊर्ध्वलोक स्तम्भ ऊर्ध्वलोक और पिनष्टि ऊर्ध्वलोक, इस प्रकार क्षेत्र की अपेक्षा ऊर्ध्वलोक के पाँच भेद जानना चाहिये ॥११८॥

विशेषार्थ :—सामान्य को समीकृत भी कहते हैं। १. समीकृत २. प्रत्येक ३. अर्धस्तम्भ ४ स्तम्भ और ५. पिनष्टि क्षेत्र की अपेक्षा ऊर्ध्वलोक के पाँच भेद जानने चाहिए।

१. सामान्य ऊर्ध्वलोक :--

जिस क्षेत्र को हीनाधिक चौड़ाई को समान करके क्षेत्रफल निकाला जाता है उसे सामान्य क्षेत्रफल कहते हैं। ऊर्ध्वलोक के अर्ध भाग की भूमि ५ राजू, मुख एक राजू और ऊँचाई ३½ राजू है। भूमि और मुख को जोड़ कर आधा करने से (५ + १ = ६ ÷ २) = ३ राजू प्राप्त हुआ। इसमें ऊँचाई का गुणा करने से ($\frac{३}{१}$ × $\frac{७}{२}$) $\frac{२१}{२}$ वर्ग राजू प्राप्त होता है। जबकि १ अर्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल $\frac{२१}{२}$ वर्ग राजू है, तो दो अर्ध क्षेत्रों का क्षेत्रफल कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{२१}{२}$ × $\frac{२}{१}$) = २१ वर्ग राजू सामान्य ऊर्ध्व लोक का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ। जैसे :—

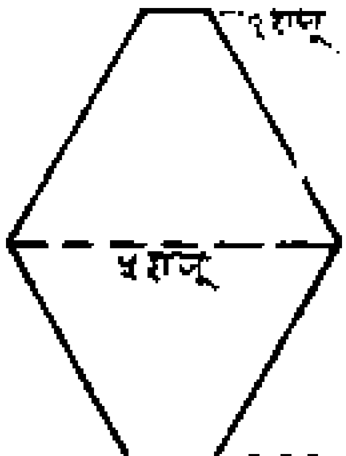

२. प्रत्येक ऊर्ध्वलोक :--

भिन्न भिन्न युगल का क्षेत्रफल निकालने को प्रत्येक क्षेत्रफल कहते हैं। ब्रह्मलोक के समीप भूमि ५ राजू मुख १ राजू और ऊँचाई ३½ राजू है। तथा प्रथम युगल की ऊँचाई १½ राजू है। भूमि ५ — १ मुख = ४ राजू अवशेष रहा। जबकि $\frac{७}{२}$ राजू पर ४ राजू की वृद्धि होती है, तो १½ राजू पर कितनी वृद्धि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{४}{१}$ × $\frac{२}{७}$ × $\frac{३}{२}$) = $\frac{१२}{७}$ राजू वृद्धि प्राप्त हुई।

इसे १ राजू व्यास में जोड़ने से ($\frac{7}{7}$ + $\frac{12}{7}$) = $\frac{19}{7}$ राजू व्यास प्रथम युगल के समीप है। २रा युगल भी प्रथम युगल से १½ राजू ऊंचा है, अतः $\frac{19}{7}$ + $\frac{12}{7}$ = $\frac{31}{7}$ वर्ग राजू प्रमाण व्यास सानत्कुमार माहेन्द्र युगल के समीप है। यहां से ब्रह्मलोक ½ राजू ऊंचा है। अतः जबकि $\frac{7}{2}$ राजू की ऊँचाई पर ४ राजू की वृद्धि है, तब ½ राजू पर कितनी वृद्धि होगी ? ($\frac{4}{1}$ × $\frac{2}{7}$ × $\frac{1}{2}$) = $\frac{4}{7}$ राजू वृद्धि हुई। इसे $\frac{31}{7}$ वर्ग राजू में जोड़ने से ($\frac{31}{7}$ + $\frac{4}{7}$) = $\frac{35}{7}$ या ५ वर्ग राजू व्यास ३रे युगल के समीप है। इसके आगे प्रत्येक युगल ½ राजू ऊँचा होने से हानि का प्रमाण भी $\frac{4}{7}$ राजू ही होगा। अतः $\frac{35}{7}$ — $\frac{4}{7}$ = $\frac{31}{7}$ वर्ग राजू व्यास लान्तव कापिष्ठ युगल के समीप, $\frac{31}{7}$ — $\frac{4}{7}$ = $\frac{27}{7}$ वर्ग राजू व्यास शुक्र महाशुक्र युगल के समीप, $\frac{27}{7}$ — $\frac{4}{7}$ = $\frac{23}{7}$ वर्ग राजू व्यास शतार-सहस्रार युगल के समीप, $\frac{23}{7}$ — $\frac{4}{7}$ = $\frac{19}{7}$ वर्ग राजू व्यास आनत-प्राणत युगल के समीप और $\frac{19}{7}$ — $\frac{4}{7}$ = $\frac{15}{7}$ वर्ग राजू व्यास आरण-अच्युत युगल के समीप है। यहां से लोक के अन्त तक की ऊँचाई एक राजू है, अतः ३½ की ऊँचाई पर ४ राजू की हानि है, तब एक राजू की ऊँचाई पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर हानि का प्रमाण ($\frac{4}{1}$ × $\frac{2}{7}$ × $\frac{1}{1}$) = $\frac{8}{7}$ राजू प्राप्त हुआ। इसे $\frac{15}{7}$ वर्ग राजू में से घटाने पर ($\frac{15}{7}$ — $\frac{8}{7}$) = $\frac{7}{7}$ अर्थात् १ राजू का व्यास लोक के अन्त भाग का है।

इस प्रकार पूर्व पश्चिम की अपेक्षा लोक का व्यास हीनाधिकता को लिये हुये है। जिसका चित्रण निम्नप्रकार है :—

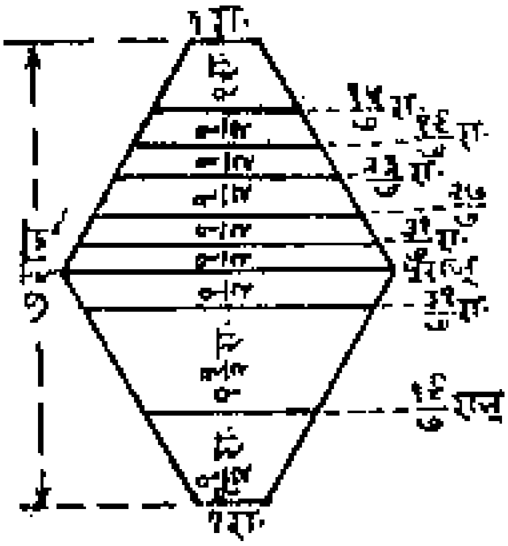

मुखभूमिजोगदले सूत्रानुसार क्षेत्रफल :—

[सम्बन्धित चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिये]

युगलों के समीप	भूमि +	मुख =	योगफल ×	अर्ध भाग =	फल ×	ऊँचाई =	क्षेत्रफल	= क्षेत्रफल
सौधर्मैशान के समीप	$\frac{१९}{७}$ +	१ रा =	$\frac{२६}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{२६}{१४}$ ×	$\frac{३}{२}$ =	$\frac{७८}{२८}$ या $\frac{३९}{१४}$	= $२\frac{११}{१४}$ वर्गराजू
सानत्कुमार मा० "	$\frac{३१}{७}$ +	$\frac{१९}{७}$ =	$\frac{५०}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{५०}{१४}$ ×	$\frac{३}{२}$ =	$\frac{७५}{१४}$	= $५\frac{५}{१४}$
ब्रह्मब्रह्मो० "	$\frac{५}{१}$ +	$\frac{३१}{७}$ =	$\frac{६६}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{६६}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{३३}{१४}$	= $२\frac{५}{१४}$
लान्तव का० "	$\frac{३१}{७}$ +	$\frac{५}{१}$ =	$\frac{६६}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{६६}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{३३}{१४}$	= $२\frac{५}{१४}$
शुक्र महा० "	$\frac{२७}{७}$ +	$\frac{३१}{७}$ =	$\frac{५८}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{५८}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{२९}{१४}$	= $२\frac{१}{१४}$
सतार सह० "	$\frac{२३}{७}$ +	$\frac{२७}{७}$ =	$\frac{५०}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{५०}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{२५}{१४}$	= $१\frac{११}{१४}$
आनत प्रा० "	$\frac{१९}{७}$ +	$\frac{२३}{७}$ =	$\frac{४२}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{४२}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{२१}{१४}$	= $१\frac{७}{१४}$
आरण अच्युत "	$\frac{१५}{७}$ +	$\frac{१९}{७}$ =	$\frac{३४}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{३४}{१४}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{१७}{१४}$	= $१\frac{३}{१४}$
उपरिम क्षेत्र "	$\frac{७}{७}$ +	$\frac{१५}{७}$ =	$\frac{२२}{७}$ ×	$\frac{१}{२}$ =	$\frac{२२}{१४}$ ×	१ =	$\frac{२२}{१४}$	= $१\frac{८}{१४}$
								$१७ + \frac{५६}{१४}$ या ४ = २१ वर्ग राजू

अथवा :— $\frac{३९}{१४} + \frac{७५}{१४} + \frac{३३}{१४} + \frac{३३}{१४} + \frac{२९}{१४} + \frac{२५}{१४} + \frac{२१}{१४} + \frac{१७}{१४} + \frac{२२}{१४}$

$= \frac{३९ + ७५ + ३३ + ३३ + २९ + २५ + २१ + १७ + २२}{१४} = \frac{२९४}{१४}$ वर्ग राजू

= २१ वर्ग राजू प्रत्येक ऊर्ध्व लोक का क्षेत्रफल।

२. अर्धस्तम्भ ऊर्ध्वलोक :—

ऊर्ध्वलोक के आकार को मध्य से छेद कर निम्नप्रकार स्थापन करने से जो आकार विशेष बनता है, उसे अर्धस्तम्भ कहते हैं।

त्रस नाड़ी को चौड़ाई के रूप से दो खण्ड करने पर ½ राजू चौड़े, ७ राजू ऊँचे 'अ' और 'ब' नाम के दो अर्धस्तम्भ प्राप्त होते हैं। इन दोनों को एक दूसरे से २ राजू की दूरी पर स्थापित करना चाहिये। शेष क्षेत्र को क ख ग और घ इन चार भागों में विभाजन कर ख को उलट कर घ को दाई

और एवं क को उलट कर व की दाईं ओर स्थापन करने से ७ राजू ऊँचा और २ राजू चौड़ा आयतक्षेत्र बन जाता है। इसको उपर्युक्त दोनों अर्धस्तम्भों (अ ब) के बीच में रखने से अर्धस्तम्भाकार बन जाता है; क्योंकि 'अ' 'ब' अर्धस्तम्भ हैं। अर्थात् स्तम्भस्वरूप लोक नाड़ी के अर्ध अर्ध भाग हैं। जैसे:—

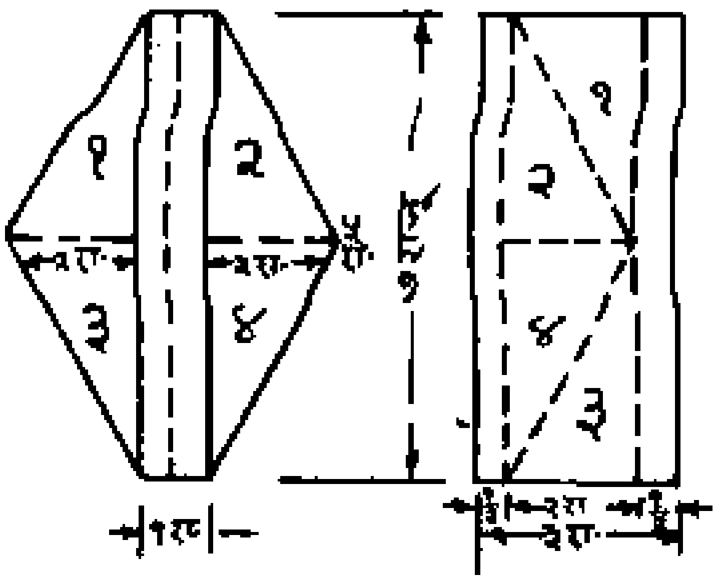

क्षेत्रफल :—'अ' एवं 'ब' दोनों अर्धस्तम्भों का क्षेत्रफल :—७ राजू ऊँचाई $\frac{1}{2}$ राजू चौड़ाई ($\frac{7}{1} \times \frac{1}{2}$) = $\frac{7}{2}$ राजू एक अर्धस्तम्भ का क्षेत्र है। $\frac{7}{2} \times \frac{2}{1}$ = ७ वर्ग राजू क्षेत्रफल दोनों अर्धस्तम्भों का हुआ। आयताकार क्षेत्र ७ राजू ऊँचा और २ राजू चौड़ा है। अतः ७ × २ = १४ वर्ग राजू क्षेत्रफल हुआ। १४ वर्ग राजू + ७ वर्ग राजू = २१ वर्ग राजू अर्धस्तम्भ ऊर्ध्व लोक का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ।

स्तम्भ क्षेत्रफल :—

ऊर्ध्वलोक मध्य में ५ राजू चौड़ा है। जिसमें एक राजू चौड़ी त्रस नाड़ी है, इस त्रस नाड़ी के दोनों ओर दो दो राजू क्षेत्र अवशेष रहता है। त्रस नाड़ी से दोनों ओर एक एक राजू हट कर ऊर्ध्व-अध: $\frac{7}{2}$ राजू लम्बी रेखा द्वारा खण्ड करने पर दोनों ओर दो दो खण्ड हो जाते हैं। इसमें से बाह्य की ओर वाले प्रत्येक खण्ड का मध्य में पूर्व-पश्चिम रेखा द्वारा खण्ड करने से दो दो खण्ड हो जाते हैं। यथा :—

चित्र नं० १

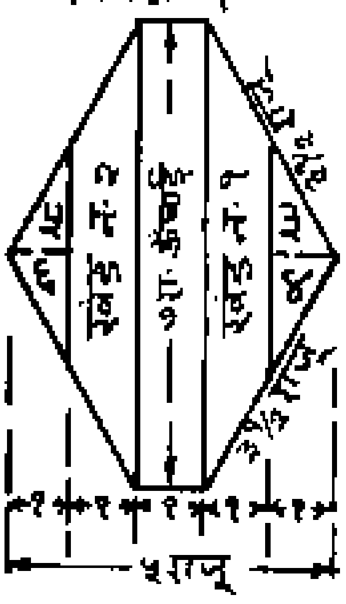

चित्र नं० २

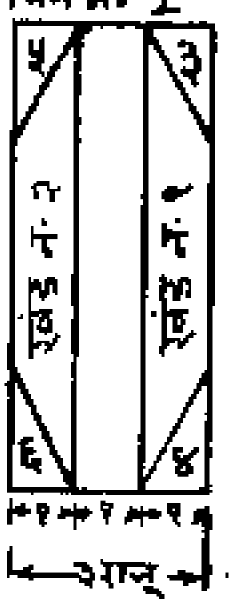

इस उपर्युक्त चित्र नं० २ के अनुसार त्रस नाड़ी को स्तम्भ के मध्य भाग रूप से स्थापन कर इसके दोनों पार्श्वों में दोनों अन्तरङ्ग खण्ड नं० १ व २ को स्थापन करना चाहिये। खण्ड नं० १ के

ऊपर तथा नीचे खण्ड नं० ३ एवं ४ को पलट कर रखना चाहिये। तथा इसी प्रकार खण्ड नं० ७ के ऊपर-नीचे खण्ड नं० ५ व ६ को पलट कर रखने से ३ राजू चौड़ा और ७ राजू ऊँचा पूर्ण स्तम्भ बन जाता है, जिसका क्षेत्रफल ३ × ७ = २१ वर्ग राजू प्राप्त होता है।

पिनष्टि ऊर्ध्वलोक :—

पिनष्टि का अर्थ :— पिनष्टि का अर्थ खण्ड करना है। अतः ऊर्ध्वलोक में खण्डों की रचना द्वारा क्षेत्रफल ज्ञात करने को पिनष्टि क्षेत्रफल कहते हैं।

पिनष्टि की रचना :— ऊर्ध्वलोक में सर्वप्रथम स्वर्ग युगलों की रचना द्वारा खण्ड करना चाहिये। पुनः त्रस नाड़ी से बाहर पूर्व व पश्चिम की ओर एक एक राजू जाकर ऊपर-नीचे की ओर खण्ड करने से उन्हीं स्वर्ग युगल खण्डों के पूर्व दिशा की ओर त्रिकोणादि आकार वाले ११ खण्ड तथा समकोण आयताकार चार खण्ड हो जाते हैं। इसी प्रकार इतने ही खण्ड पश्चिम दिशा में भी हो जाते हैं।

ऊर्ध्व लोक की भूमि ५ राजू और मुख एक राजू है। भूमि में से मुख घटाने पर ४ राजू अवशेष रहते हैं, इसमें ऊँचाई आदि का गुणा करने से ऊर्ध्वलोक की उपरितन नौ भूमियों का व्यास क्रमशः $\frac{19}{7}$, $\frac{37}{7}$, $\frac{35}{7}$, $\frac{31}{7}$, $\frac{27}{7}$, $\frac{23}{7}$, $\frac{19}{7}$, $\frac{15}{7}$ और $\frac{7}{7}$ है।

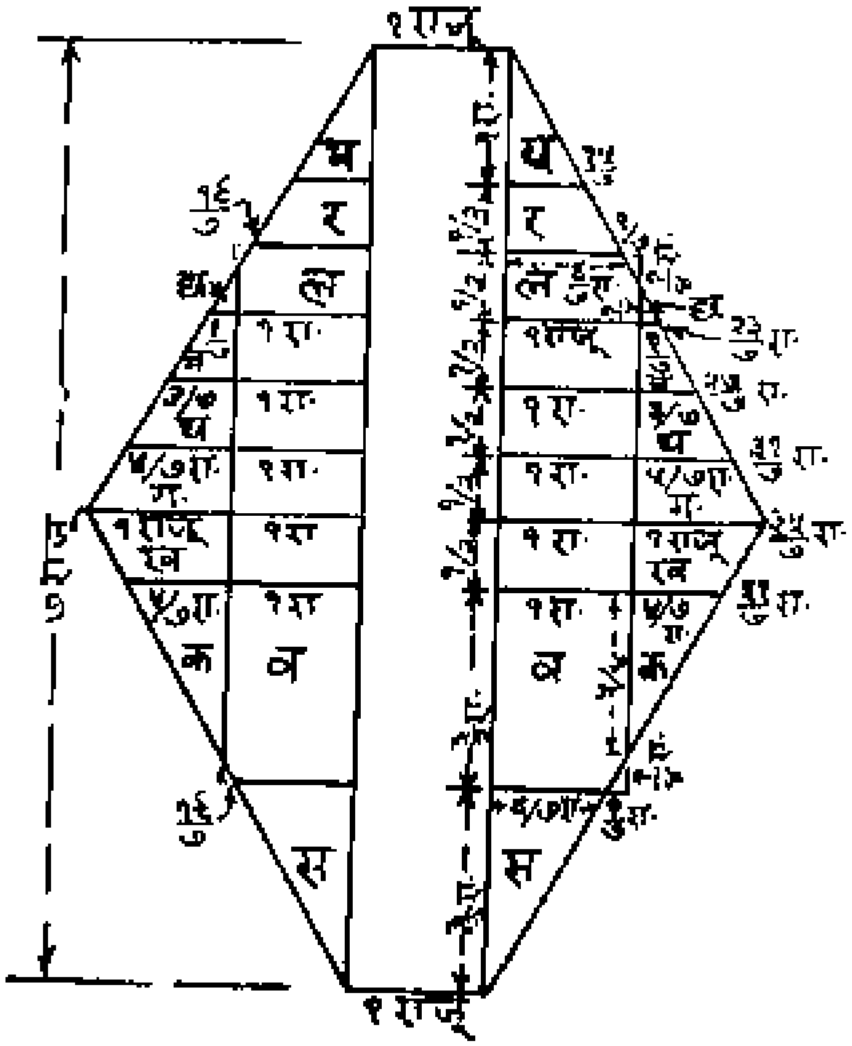

$\frac{19}{7}$ व्यास में से १ राजू घटा देने पर ($\frac{19}{7}$ — $\frac{7}{7}$) = $\frac{12}{7}$ राजू शेष रहा। दो पार्श्व भागों की चौड़ाई $\frac{12}{7}$ राजू है, अतः एक भाग का ($\frac{12}{7}$ × $\frac{1}{2}$) = $\frac{6}{7}$ राजू प्राप्त हुआ। यह प्रथम स्वर्ग के समीप 'स' त्रिभुज की चौड़ाई है।

प्रथम स्वर्ग के उपरितन व्यास को ३ राजू ($\frac{21}{7}$) में से घटाने पर ($\frac{21}{7}$ — $\frac{19}{7}$) = $\frac{2}{7}$ राजू शेष रहा। इसका आधा ([illegible] — [illegible] = [illegible] राजू बहि सूची क्षेत्र की भूमि हुई।

अथ त्रिभुजोदयार्थं गाथाद्वयमाह—

रज्जुदुगहाणिठाणे अद्धुट्ठुदओ जदीह एक्किस्से ।
किमिदि तेरासियकरणे फलं दलूणं तिबाहुदओ ॥११९॥

रज्जुद्विकहानिस्थाने अर्धचतुर्थोदयो यदीह एकस्य ।
किमिति त्रैराशिककरणे फलं दलोनं त्रिबाहूदयः ॥११९॥

रज्जु । रज्जुद्विक २ हानिस्थाने अर्धचतुर्थोदयो [illegible] यदि तदैकस्य १ किमिति त्रैराशिककरणे फलं [illegible] दलविवक्षुदयो [illegible] [illegible] प्रणिधिक्षेत्रदयोदयः तत्फलं [illegible] समविक्षुम्नदलन्यूनं [illegible] द्विकहदसहज· त्रिबाहूदयः ॥११९॥

अब दो गाथाओं में त्रिभुज की ऊंचाई बताते हैं—

गाथार्थ :– ऊर्ध्वलोक मध्य में ५ राजू चौड़ा है, और नीचे १ राजू है अतः [illegible] राजू पर एक ओर २ राजू की हानि होती है, तब १ राजू की हानि ([illegible] × [illegible]) = [illegible] राजू पर होगी। इसमें से [illegible] राजू घटाने पर ([illegible] — [illegible]) = [illegible] राजू त्रिभुज की ऊँचाई है ॥११९॥

नोट :—चित्र में [illegible] राजू 'क' त्रिभुज की ऊँचाई है।

विशेषार्थ :—[illegible] राजू की ऊँचाई पर २ राजू की हानि होती है, तो ([illegible] — [illegible]) = [illegible] राजू की ऊँचाई पर १ राजू की हानि होगी। [illegible] — [illegible] = [illegible] राजू 'क' त्रिभुज की ऊँचाई हुई।

तिभुजुदयूणुहयुच्चं सूईखेत्तस्स भूमिमुह सेसे ।
भूमीतप्फलहीणं चउरस्सधरा फलं सुद्धं ॥१२०॥

त्रिभुजोदयोनमुभयोच्चं सूचीक्षेत्रस्य भूमिमुखशेषे ।
भूमितत्फलहीनं चतुरस्रधराफलं शुद्धम् ॥१२०॥

तिभुज । त्रिभुजोदयेन [illegible] ऊनः समुच्छ्रिन्नविवक्षुदोदयः [illegible] बहिः सूचीक्षेत्रस्योदयः भूमिमुखयोः

[illegible] शेषभूमिः [illegible] तत्फलहीनं शुद्धं चतुरस्रधराफलं भवति। समच्छिन्नत्रिरज्जु [illegible] द्वितीयद्विकद्वयोपरि-तनव्यासे [illegible] अपनीय अवशिष्टे [illegible] अर्धिते [illegible] अन्तस्त्रिभुजभूमिः तत्र तत्र व्यासे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तत्त्रिरज्जु [illegible] अपनीय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [1]अर्धिते [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] तत्त्रिभुजभूमिः। रज्जुयुगेत्यादिना त्रैराशिकफलमानीय [illegible] तत्र समच्छिन्नत्रिदल [illegible] न्यूने [illegible] उपरितनान्तःसूच्युदयः [illegible] तदुदये [illegible] समच्छिन्नदलोदये [illegible] अपनीते अवशिष्टे [illegible] उपरितनबहिःसूच्युत्सेधः। तदुपरितनव्यासं [illegible] समच्छिन्नत्रिरज्ज्वा [illegible] अपनीय अवशिष्टे [illegible] अर्धिते [illegible] तद्बहिः सूचीभूमिः। पुनरपि तद्व्यासे [illegible] एक-समच्छिन्नरज्जु [illegible] अपनीय [illegible] अवशिष्टे अर्धिते [illegible] उपरितनत्रिभुजभूमिः। एतदुपरितनव्यासे [illegible] एकरज्जु [illegible] अपनीय [illegible] अवशिष्टे अर्धिते [illegible] अग्रसूचीभूमिः। मुख ० भूमि [illegible] जोगदलेत्यादिना अधउपरितन-बहिःसूचीक्षेत्रफल [illegible] [illegible] मानीय तत् तयोरन्तःक्षेत्रफले भुज [illegible] कोटि [illegible] वधेत्यादिना आनीते [illegible] [illegible] अष्टाविंशत्याः समच्छिन्ने [illegible] [illegible] स्फेटयित्वा एकक्षेत्रयेतावति [illegible] [illegible] द्वयोः किमिति सम्पात्याप्यपवर्तिते [illegible] [illegible] अधस्तनोपरितनबहिः सूच्यन्तःक्षेत्रफलं भवति। इतरेषां क्षेत्राणां फलं मुखभूमिजोगदलेत्यादि-मानीय चतुर्भिः समानच्छेदं कृत्वा परस्परं मेलयित्वा भवते दशरज्जवः मध्यसप्तरज्जवः तत्पार्श्वद्विदलानां चतूरज्जवः। एवं सर्वेषां मेलने पिनष्ठि क्षेत्रफलं २१ भवति ॥१२०॥

गाथार्थ :—सानत्कुमार युगल की ऊँचाई ३/२ राजू है, इसमें से त्रिभुज 'क' की १/४ राजू ऊँचाई घटाने से सूची क्षेत्र की ऊँचाई (३/२ — १/४) = ५/४ राजू हुई। भूमि मुख में अवशेष भूमि त्रिकोण 'क' है, इसका क्षेत्रफल दूसरे युगल की त्रसनाड़ी के बाह्य भाग के क्षेत्रफल में से घटाने पर शेष चतुरस्रक्षेत्र का क्षेत्रफल [illegible] वर्ग राजू होता है ॥१२०॥

विशेषार्थ :—सानत्कुमार युगल की ३/२ राजू ऊँचाई में से 'क' त्रिभुज की १/४ राजू ऊँचाई घटाने पर (३/२ — १/४) = ५/४ राजू बाह्य सूची क्षेत्र की ऊँचाई प्राप्त होती है। (एक राजू) भूमि में से [illegible] राजू मुख कम कर देने पर शेष [illegible] राजू बाह्य सूची क्षेत्र की भूमि रह जाती है। शुद्ध चतुरस्र क्षेत्र (३/२ राजू ऊँचे और १ राजू चौड़े) के क्षेत्रफल में से बाह्य सूची क्षेत्र (५/४ राजू ऊँचा, [illegible] राजू चौड़े) का क्षेत्रफल कम कर देने से 'ख' क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

३ राजू ([illegible]) को दूसरे युगल के व्यास में से घटाकर अवशिष्ट का आधा करने पर अन्तस त्रिभुज अर्थात् 'क' त्रिभुज की भूमि प्राप्त होती है। जैसे :—

[illegible] — [illegible] = [illegible] × १/२ = [illegible] राजू ('क') त्रिभुज की भूमि, [illegible] — [illegible] = [illegible] × १/२ = [illegible] राजू 'ग' क्षेत्र की भूमि, [illegible] — [illegible] = [illegible] × १/२ = [illegible] राजू 'घ' क्षेत्र की भूमि, [illegible] — [illegible] [illegible] × १/२ = [illegible] राजू 'च' क्षेत्र की भूमि, और [illegible] — [illegible] = [illegible] × १/२ = [illegible] राजू 'छ' क्षेत्र की भूमि है। गाथा

१ अवशिष्टे (ब०, प०)।

११९ में त्रैराशिक फल से प्राप्त हुये [illegible] में से [illegible] अर्थात् [illegible] कम करने पर ([illegible] — [illegible]) = [illegible] राजू उपरितन अन्तः सूची क्षेत्र 'छ' की ऊँचाई प्राप्त होती है।

ऊँचाई [illegible] राजू में से [illegible] राजू घटाने पर ([illegible] — [illegible]) = [illegible] राजू उपरितन बहिःसूची वाले क्षेत्र का उत्सेध प्राप्त हुआ। उपरितन व्यास [illegible] को ३ राजू ([illegible]) में से घटाने पर ([illegible] — [illegible]) = [illegible] राजू शेष रहा। इसका आधा ([illegible] — [illegible]) = [illegible] राजू बहिःसूची की भूमि हुई। पुनः उसी [illegible] राजू व्यास में से [illegible] राजू घटाने पर ([illegible] — [illegible]) = [illegible] राजू हुआ तथा आधा करने पर [illegible] × [illegible] = [illegible] 'र' त्रिभुज की भूमि हुई।

उपरितन व्यास [illegible] में से १ राजू ([illegible]) घटाने पर ([illegible] — [illegible]) = [illegible] राजू अवशेष रहा। इसका आधा ([illegible] × [illegible]) = [illegible] राजू 'य' क्षेत्र की भूमि प्राप्त हुई। 'मुखभूमिजोगदले' सूत्रानुसार नीचे और ऊपर के बहिःसूची क्षेत्र का क्षेत्रफल — [illegible] भूमि + ० मुख = [illegible] × [illegible] (आधा किया) = [illegible] में [illegible] राजू ऊँचाई से गुणा करने पर ([illegible] × [illegible]) = [illegible] वर्ग राजू नीचे और ऊपर की बाह्य सूचियों का क्षेत्रफल है।

इन दोनों सूचियों का अन्तः क्षेत्रफल जो कि भुज कोटि वेधादि सूत्रानुसार प्राप्त हुआ है, वह 'व' क्षेत्र का [illegible] और 'ल' क्षेत्र का [illegible] है। इस छेद से गुणित करने पर [illegible] और [illegible] प्राप्त होता है। अन्तः सूची क्षेत्रफल [illegible] और [illegible] में से बहिःसूची क्षेत्रफल [illegible] और [illegible] घटा देने पर ([illegible] — [illegible]) = [illegible] 'व' का क्षेत्रफल, तथा ([illegible] — [illegible]) = [illegible] राजू 'ल' का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ। एक एक क्षेत्र का [illegible] राजू और [illegible] राजू है, तब दो दो क्षेत्रों का कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ([illegible] × [illegible]) = [illegible] एवं ([illegible] × [illegible]) = [illegible] राजू अधः और उपरितन बहिःसूची एवं अन्तरङ्ग क्षेत्र का क्षेत्रफल हुआ। अर्थात् [illegible] दो 'व' क्षेत्रों का और [illegible] दो 'ल' क्षेत्रों का क्षेत्रफल प्राप्त हुआ।

'मुखभूमिजोगदले' सूत्रानुसार अन्य क्षेत्रों का क्षेत्रफल भी निम्न प्रकार है :—

[सम्बन्धित चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिये]

क्रमाङ्क	क्षेत्रों के नाम	भूमि +	मुख	योग	आधा किया	लम्बाई ×	ऊँचाई	क्षेत्रफल ×	दो क्षेत्र	सम्पूर्ण क्षेत्रफल		
१	क	० +	५/७ =	५/७ ×	१/२ =	५/१४ ×	५/४ =	२५/५६ ×	२/१ =	२५/२८ वर्ग राजू	दोनों ओर का	
२	ख	१/७ +	५/७ =	६/७ ×	१/२ =	३/७ ×	१/१ =	३/७ ×	२/१ =	६/७	"	"
३	ग	३/७ +	९/७ =	१२/७ ×	१/२ =	६/७ ×	१/२ =	३/७ ×	२/१ =	६/७	"	"
४	घ	९/७ +	३/७ =	१२/७ ×	१/२ =	६/७ ×	१/३ =	२/७ ×	२/१ =	४/७	"	"
५	च	३/७ +	१/७ =	४/७ ×	१/२ =	२/७ ×	१/२ =	१/७ ×	२/१ =	२/७	"	"
६	छ	१/७ +	० =	१/७ ×	१/२ =	१/१४ ×	१/४ =	१/५६ ×	२/१ =	१/२८	"	"
७	य	४/७ +	० =	४/७ ×	१/२ =	२/७ ×	१ =	२/७ ×	२/१ =	४/७	"	"
८	र	५/७ +	५/७ =	१०/७ ×	१/२ =	५/७ ×	१/२ =	५/१४ ×	२/१ =	५/७	"	"
९	ल							२७/५६ ×	२/१ =	२७/२८	"	"
१०	व							८३/५६ ×	२/१ =	८३/२८	"	"
११	स	० +	६/७ =	६/७ ×	१/२ =	३/७ ×	३/२ =	९/१४ ×	२/१ =	९/७	"	"
१२	आयताकार	१ +	१ =	२ ×	१/२ =	१ ×	२/१ =	२ ×	२ क्षेत्र	४	"	"
१३	त्रस नाड़ी	१ +	१ =	२ ×	१/२ =	१ ×	७ =	७ ×	१ "	७	"	"

दोनों भागों के ११, ११ क्षेत्रों के क्षेत्रफल का योग :—

२५/२८ + ६/७ + ६/७ + ४/७ + २/७ + १/२८ + ४/७ + ५/७ + २७/२८ + ८३/२८ + ९/७

= (२५ + २४ + २४ + १६ + ८ + १ + १६ + २० + २७ + ८३ + ३६) / २८

= २८०/२८ वर्ग राजू अर्थात् दोनों भागों के ११, ११ क्षेत्रों का क्षेत्रफल १० राजू + दोनों भागों के ४, ४ आयताकार का क्षेत्रफल ४ राजू + मध्य की त्रस नाली का क्षेत्रफल ७ राजू = २१ वर्ग राजू। पिनहि ऊर्ध्वलोक का सम्पूर्ण क्षेत्रफल २१ वर्ग राजू प्राप्त हुआ।

अतो लोकस्य पूर्वापरेण दक्षिणोत्तरेण च परिधिं दर्शयन्नाह—

पुव्वावरेण परिही उगुदालं साहियं तु रज्जूणं ।
दक्खिणउत्तरदो पुण बादालं होंति रज्जूणं ॥१२१॥

पूर्वापरेण परिधिः एकोनचत्वारिंशत् साधिकं तु रज्जूनाम् ।
दक्षिणोत्तरतः पुनः द्वाचत्वारिंशत् भवन्ति रज्जूनाम् ॥१२१॥

पुव्वा । पूर्वापरेण परिधिः एकोनचत्वारिंशत् ३९ साधिका $\frac{६३}{२६३}$ रज्जूनां, दक्षिणोत्तरतः पुनर्द्वाचत्वारिंशत् भवन्ति रज्जूनाम् ॥१२१॥

लोक की पूर्व पश्चिम और दक्षिणोत्तर परिधि को दर्शाते हुए कहते हैं—

गाथार्थ :—लोक की परिधि पूर्व पश्चिम अपेक्षा ३९ $\frac{६३}{२६३}$ राजू है तथा दक्षिणोत्तर ४२ राजू है ॥१२१॥

विशेषार्थ :—लोक की पूर्व पश्चिम परिधि ३९ $\frac{६३}{२६३}$ राजू तथा दक्षिणोत्तर परिधि ४२ राजू है; कारण कि लोक दक्षिणोत्तर सर्वत्र ७ राजू चौड़ा है। (ऊपर भी ७ राजू चौड़ा है और नीचे भी ७ राजू चौड़ा है) लोक की ऊंचाई १४ राजू है अतः ऊपर नीचे की सात सात राजू चौड़ाई और दोनों पार्श्व भागों की १४, १४ राजू ऊंचाई जोड़ने से (७ + ७ + १४ + १४) ४२ राजू दक्षिणोत्तर परिधि होती है।

दक्षिणोत्तर परिधि का चित्रण:—

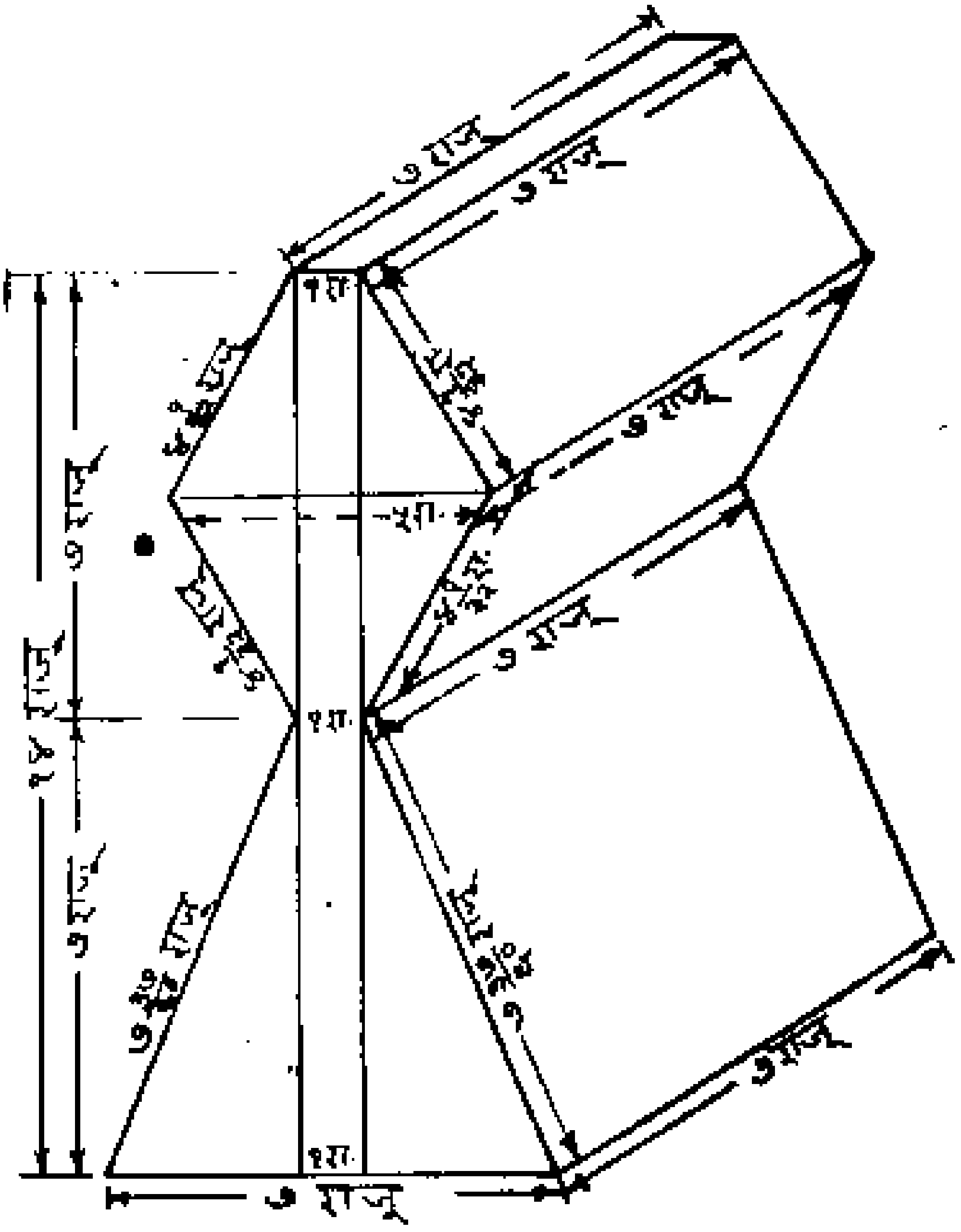

साधिकत्वं कथमिति चेदाह—

भुजकोडिकदिसमासो कण्णकदी होदि वग्गरासिस्स।
गुणयारभागहारा वग्गाणि [1]होंति णियमेण ॥१२२॥

भुजकोटिकृतिसमासः कर्णकृतिः भवति वर्गराशेः।
गुणकारभागहारौ वर्गौ भवतः नियमेन ॥१२२॥

भुज। भुज ७ कोटि ३ कृति ४९।९ समासः ५८ कर्णकृतिर्भवति। एकपार्श्वस्यैतावति ५८ द्वयोः पार्श्वयोः किमिति वर्गराशेर्गुणकारभागहारौ वर्गात्मकौ भवतः ५८।२।२ नियमेन। एतद् संगुण्य २३२ मूले गृहीते १५ $\frac{७}{३०}$ अधोलोकस्य साधिकत्वमभूत्। भुज $\frac{१}{२}$ कोटि २ कृति $\frac{१}{४}$। ४ चतुर्भिस्समच्छेदेन समासे $\frac{१७}{४}$ कर्णकृतिः एकपार्श्वस्यैतावति $\frac{१७}{४}$ चतुर्णाम् ४ किमिति सम्पात्यापवर्त्य गुणयित्वा २६० अस्य मूले गृहीते १६ $\frac{४}{३२}$ ऊर्ध्वलोकस्य साधिकत्वमभूत्। मिलितोभयपरिधि १५ + १६ रज्जुषु ३१ अधोलोकाधः परिधिः ७। ऊर्ध्वलोकपरिधेश्च १ मेलने ८ एकोनचत्वारिंशत् ३९ अधिकोभयहारा ३०।३२ वर्गीकृत्य १५।१६ ताभ्यामन्योन्यमंशच्छेदौ $\frac{१६ \times ७}{१६ \times ३०}$ $\frac{१५ \times ४}{१५ \times ३२}$ गुणयित्वा $\frac{११२}{४८०}$ $\frac{६०}{४८०}$ सम्मेल्य $\frac{१७२}{४८०}$ चतुर्भिरपवर्तने $\frac{४३}{१२०}$ उभयलोकाधिक्यं स्यात्। दक्षिणोत्तरपरिधिः सुगमः ॥१२२॥

पूर्व पश्चिम अपेक्षा (लोक की) परिधि साधिक ३९ राजू कैसे है ? उसे ज्ञात करने के लिए करणसूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—भुजा और कोटि के वर्ग को परस्पर जोड़ने से करण का वर्ग होता है। वर्ग राशि का गुणकार व भागहार नियम से वर्गरूप ही होता है ॥१२२॥

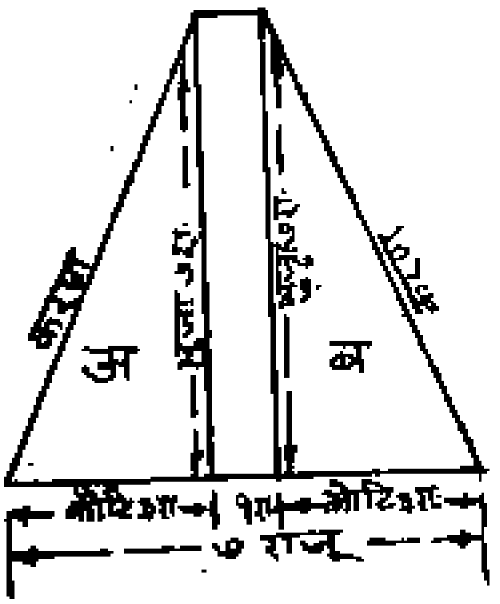

विशेषार्थ :—अधोलोक में त्रस नाड़ी के दोनों ओर अ और ब दो समकोण त्रिभुज हैं। प्रत्येक त्रिभुज की भुजा ७ राजू और कोटि ३ राजू है। अतः दोनों का वर्ग अर्थात् $(७)^2 + (३)^2 =$ करण का वर्ग (४९ वर्ग राजू + ९ वर्ग राजू) = ५८ वर्ग राजू प्राप्त हुआ। एक पार्श्व भाग का ५८ वर्ग राजू है तो दोनों पार्श्व भागों का कितना होगा ? ऐसा पूछने पर २ के वर्ग (२ × २) = ४ का गुणा करना चाहिए क्योंकि वर्गराशि का गुणकार वर्गरूप ही होता है, अतः ५८ × ४ = २३२ वर्ग राजू हुआ। २३२ का वर्गमूल १५ $\frac{७}{३०}$ राजू है। यही अधोलोक के दोनों त्रिभुजों के करणों का परिधि है।

---

1 हुवंति (म०)।

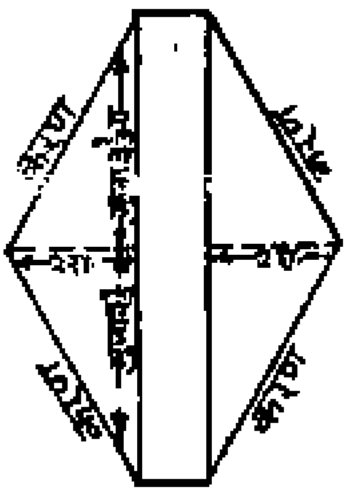

ऊर्ध्वलोक में त्रस नाड़ी के अतिरिक्त क ख ग और घ ये चार समकोण त्रिभुज हैं। प्रत्येक त्रिभुज की भुजा ७/२ राजू और कोटि २ राजू है। अत: प्रत्येक त्रिभुज के करण का वर्ग (७/२)² + (२)² = ४९/४ + ४/१ = ६५/४ वर्ग राजू हुआ। एक त्रिभुज का ६५/४ वर्ग राजू है, तो ४ त्रिभुजों का कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक कर ६५/४ में (४ × ४) = १६ का गुणा करना चाहिए, क्योंकि वर्गराशि का गुणकार वर्गरूप ही होता है, अत: ६५/४ × १६/१ = २६० वर्ग राजू प्राप्त हुआ। २६० का वर्गमूल १६ ४/३२ राजू है। जो ऊर्ध्वलोक के चारों करणों की परिधि है।

लोक ऊपर १ राजू चौड़ा और नीचे ७ राजू चौड़ा है, अत: ७ + १ = ८ राजू हुआ। ऊर्ध्व एवं अधोलोक की साधिक (१४/३०, ४/३२) परिधि के बिना शेष परिधि (१५ + १६) = ३१ राजू में ८ राजू मिलाने से (१५ + १६ + ८) = ३९ राजू होते हैं। साधिक दोनों राशियों (१४/३० + ४/३२) के हर (३०, ३२) को आधा (१५, १६) कर इन्हीं साधिक राशियों के अंशों से समच्छेद करने पर १४/३० × १६/१६, ४/३२ × १५/१५ प्राप्त होते हैं, जिनका गुणनफल (१४×१६/३०×१६) २२४/४८० और (४×१५/३२×१५) ६०/४८० है। इन दोनों का जोड़ (२२४/४८० + ६०/४८०) २८४/४८० है। इसे ४ से अपवर्तित करने पर ७१/१२० राजू दोनों लोकों के अधिक का प्रमाण प्राप्त होता है। इस प्रकार लोक की परिधि पूर्व पश्चिम अपेक्षा ३९ ७१/१२० राजू प्रमाण है।

अथ लोकपरिवेष्टितवायुस्वरूपादिनिर्णयार्थमाह—

गोमुत्तमुग्गणाणावण्णाण घणंबुघणतणूण हवे ।
वादाणं वलयतयं रुक्खस्स तयं व लोगस्स ॥१२३॥

गोमूत्रमुद्गनानावर्णानां घनाम्बुघनतनूनां भवेत् ।
वातानां वलयत्रयं वृक्षस्य त्वगिव लोकस्य ॥१२३॥

गोमुत्त । गोमूत्रमुद्गनानावर्णानां घनोदधिघनवाततनुवातानां वलयत्रयं लोकस्य भवेत् वृक्षस्य त्वगिव ॥१२३॥

लोक को परिवेष्टित करने वाली वायु के स्वरूपादि का निर्णय करने के लिए कहते हैं :—

गाथार्थ :—जिस प्रकार वृक्ष त्वच् (छाल) से वेष्टित रहता है, उसी प्रकार लोक तीन वातवलयों से वेष्टित है। तीन वहों के सदृश सर्वप्रथम गोमूत्र के वर्णवाला घनोदधिवातवलय है। उसके पश्चात् मूंग के वर्णवाला घनवातवलय है और उसके पश्चात् अनेक वर्णों वाला तनुवातवलय है ॥१२३॥

विशेषार्थ :—वृक्ष की छाल जिस प्रकार सम्पूर्ण वृक्ष को वेष्टित किए होती है उसी प्रकार सम्पूर्ण लोक को वेष्टित करने वाले तीन वातवलय हैं। १. घनोदधिवातवलय २ घनवातवलय और ३. तनुवातवलय। घनोदधिवातवलय गाय के मूत्र सदृश वर्णवाला है। घनवातवलय मूंग (अन्न) के सदृश वर्णवाला है और तनुवातवलय अनेक प्रकार के रङ्गों को धारण किए हुए है।

अथ तद्वायूनां बाहुल्यनिर्णयार्थमाह—

जोयणवीससहस्सं बहलं वलयत्तयाण पत्तेयं।
भूलोयतले पासे हेट्ठादो जाव रज्जुत्ति ॥१२४॥

योजनविंशसहस्रं बाहुल्यं वलयत्रयाणां प्रत्येकम्।
भूलोकतले पार्श्वे अधस्तात् यावत् रज्जुरिति ॥१२४॥

जोयण। योजनविंशतिसहस्रं [1]बाहुल्यं वलयत्रयाणां प्रत्येकम् भवेत्। कुत्र कुत्रेतिचेत्। भुवां ८ तले लोकतले पार्श्वे अधस्तादायावदेका रज्जुस्तावत् ॥

उन वातवलयों के बाहुल्य का निर्णय करने के लिए कहते हैं :—

गाथार्थ :—लोकाकाश के अधोभाग में, दोनों पार्श्वभागों में नीचे से लगाकर एक राजू की ऊँचाई पर्यन्त तथा आठों भूमियों के नीचे तीनों वातवलय (प्रत्येक) बीस बीस हजार मोटाई वाले हैं ॥१२४॥

विशेषार्थ :—लोकाकाश के अधोभाग में, दोनों पार्श्व भागों में नीचे से एक राजू ऊँचाई पर्यन्त अर्थात् निगोद स्थान तक एवं आठों भूमियों के नीचे तीनों वातवलय बीस बीस हजार मोटे हैं।

अथोपरिमवायुबाहुल्यनिर्णयार्थमाह—

सत्तमखिदिपणिधिम्हि य सग पणचत्तारिपणचउक्कतियं।
तिरिये बम्हे उड्ढे सत्तमतिरिए च उक्कमं ॥१२५॥

सप्तमक्षितिप्रणिधौ च सप्त पञ्च चतुष्कं पञ्च चतुष्कं त्रिकम्।
तिरश्चि ब्रह्मे ऊर्ध्वे सप्तमतिरश्चि च उत्क्रमः ॥१२५॥

सत्तम। सप्तमक्षितिसमीपे[2] च वायुत्रयाणां यथासंख्येन सप्त ७ पञ्च ५ चतुष्कं ४ बाहुल्यं, तिर्यक्क्षितिप्रणिधौ पंच चतुष्कं त्रिकं बाहुल्यं। ब्रह्मलोकोर्ध्वलोकप्रणिधौ पुनः सप्तमतिर्यक्क्षितौ उत्क्रमः। इदानीं सप्तमक्षितिमारभ्य तिर्यग्भूमिपर्यन्तं मध्यक्षितीनां हानि - मुह १२ भूमीए १६ विसेसे ४ उदय ६ हृते एवाधिका हानि आनीय ६/४ भूमौ १६ एकं निकाष्य १५ समच्छिन्ने ६/४ तस्मिन् तद्धानि स्फेट-

---

१ बाहुल्यं (ब०)।

२ सप्तमक्षितिसदृशे (ब०)।

पित्वा २/६ अपवर्तिते १/३ षष्ठभूप्रणिधिवायुबाहुल्यं स्यात् १५ १/३ तत्रैकं १ गृहीत्वा तद्धानिं ४/६ मेव तथा छेद-यित्वा २/६ पवर्त्य १/३ प्राक्तनत्रिभागमेलने पंचमभूवायुबाहुल्यं स्यात् १४ २/३। एवमेव तिर्यग्लोकपर्यन्तं वायुहानिबाहुल्यं ज्ञातव्यं १४।१३ १/३।१२ २/३।१२ । इत ऊर्ध्वलोकवायुचयं मुख १२ भूम्योः १६ विशेषं कृत्वा ४ बाहुल्योदयस्य ७/२ चतुश्चये ४ अर्धराजूदयस्य १/२ कियानुचय इति सम्पात्यानीय तत् ४/७ एतावन्मुखे १२ समच्छेदेन ८४/७ संयोज्य ८८/७ भक्ते १२ ४/७ विवक्षितप्रणिधिवायुबाहुल्यं स्यात्। एवमेव तत्र तत्र पृथक् पृथक् त्रैराशिकविधिना उपरितनतत्तद्वायुचयहानिबाहुल्यमानयेत् ॥१२५॥

अथ उपरिम वायु के बाहुल्य का निर्णय करने के लिये कहते हैं :—

गाथार्थ :—दोनों पार्श्व भागों में एक राजू के ऊपर सप्तम पृथ्वी के निकट घनोदधिवातवलय सातयोजन, घनवातवलय पाँच योजन और तनुवातवलय चार योजन मोटाई वाले हैं। इस सप्तम पृथ्वी के ऊपर क्रम से घटते हुए तिर्यग्लोक के समीप तीनों वातवलय क्रम से पाँच, चार और तीन योजन बाहुल्य वाले तथा यहाँ से ब्रह्मलोक पर्यन्त क्रम से बढ़ते हुए, सप्तम पृथ्वी के निकट सदृश सात, पाँच और चार योजन बाहुल्य वाले हो जाते हैं तथा ब्रह्मलोक से क्रमानुसार हीन होते हुए तीनों वातवलय ऊर्ध्वलोक के निकट तिर्यग्लोक सदृश पाँच, चार और तीन योजन बाहुल्य वाले हो जाते हैं ॥१२५॥

विशेषार्थ :—तीनों वातवलय यथाक्रम सप्तम पृथ्वी के निकट सात, पाँच और चार योजन बाहुल्य वाले, तिर्यग्लोक के निकट पाँच, चार और तीन योजन बाहुल्यवाले, ब्रह्मलोक के निकट सात, पाँच और चार योजन बाहुल्य वाले तथा ऊर्ध्वलोक के निकट मध्यलोक सदृश पाँच, चार और तीन योजन बाहुल्य वाले हैं।

सप्तम पृथ्वी से तिर्यग् पृथ्वी पर्यन्त मध्यम पृथ्वियों के वातवलयों का प्रमाण :—सप्तम पृथ्वी के निकट तीनों पवनों के बाहुल्य का प्रमाण १६ (७ + ५ + ४) योजन है, यह भूमि है। तथा तिर्यग्लोक के निकट १२ (५ + ४ + ३) योजन बाहुल्य है यह मुख है। भूमि में से मुख घटाने पर (१६ — १२) = ४ योजन अवशेष रहे। सातवीं पृथ्वी से तिर्यग्लोक ६ राजू ऊँचा है, अतः अवशेष रहे ४ योजनों में ६ का भाग देने पर (४ ÷ ६) = ४/६ योजन प्रतिप्रदेश क्रम से एक राजू पर होने वाली हानि का प्रमाण प्राप्त हुआ।

१६ भूमि में से एक निकालकर उस एक को भिन्न स्वरूप करने से (१/१ × ६/६) = ६/६ हुये। इसमें से ४/६ योजन हानि घटाने पर (६/६ — ४/६) = २/६ योजन शेष रहे। इन्हें २ से अपवर्तित करने पर १/३ हुआ, इसको (१६ — १) = १५ में मिलाने से १५ १/३ योजन होता है, अतः षष्ठ पृथ्वी के निकट १५ १/३ योजन तीनों पवनों का बाहुल्य है। पुनः १ निकाला, उस एक को समुच्छिन्न (६/६) कर ४/६ योजन हानि घटाने पर १/३ योजन की प्राप्ति हुई, इसे पूर्वोक्त त्रिभाग में मिलाने से (१/३ + १/३) = २/३ योजन हुये। अर्थात् १५ १/३ — १ = १४ १/३ + १/३ = १४ २/३ योजन हुये, अतः पञ्चम पृथ्वी के निकट पवनों का बाहुल्य १४ २/३ योजन है। पुनः १४ में से एक निकाला और उस एक में से ४/६ हानि घटाने पर (६/६ — ४/६)

= २/६ अर्थात् १/३ शेष रहा। इसे पूर्वोक्त २/३ में मिलाने से (२/३ + १/३) = ३/३ अर्थात् १ प्राप्त हुआ, अतः चतुर्थ पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य (१३ + १) = १४ राजू प्रमाण है।

पुनः १४ में से १ निकाला और उस एक में से हानि का प्रमाण ४/६ घटाने पर (६/६ — ४/६) = २/६ अर्थात् १/३ शेष रहा। इस १/३ को (१४ — १) = १३ में मिलाने पर तृतीय पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य १३ १/३ योजन है। पुनः पूर्वोक्त क्रिया करने से १/३ शेष रहे। इन्हें उपर्युक्त (१३ १/३ — १) = १२ १/३ के १/३ में मिला देने से (१/३ + १/३) = २/३ प्राप्त हुये, अतः द्वितीय पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य १२ २/३ योजन है। पुनः पूर्वोक्त क्रिया करने से १/३ शेष रहे, इन्हें २/३ में मिलाने से (२/३ + १/३) = ३/३ अर्थात् १ प्राप्त हुआ, अतः मध्य लोक के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य (११ + १) = १२ योजन प्रमाण है।

अथवा :— सप्तम पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य (७ + ५ + ४) = १६ योजन था, अतः १६ योजन में से हानि का प्रमाण ४/६ घटाने पर निम्न बाहुल्य प्राप्त हुआ — ९६/६ — ४/६ = ९६-४/६ = ९२/६ योजन। अर्थात् छठवीं पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य १५ १/३ योजन है। ९२/६ — ४/६ = ८८/६ = ४४/३ योजन। अर्थात् ५वीं पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य १४ २/३ योजन है। ८८/६ — ४/६ = ८४/६ = ४२/३ योजन। अर्थात् ४थी पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य १४ योजन है। ८४/६ — ४/६ = ८०/६ = ४०/३ योजन। अर्थात् ३री पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य १३ १/३ योजन है। ८०/६ — ४/६ = ७६/६ = ३८/३ योजन। अर्थात् २री पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य १२ २/३ योजन है। ७६/६ — ४/६ = ७२/६ = ३६/३ योजन। अर्थात् १ली पृथ्वी के निकट तीनों पवनों का बाहुल्य १२ योजन है।

इसी प्रकार ऊर्ध्वलोक में भूमि १६ योजन और मुख १२ योजन है। अतः १६ — १२ = ४ योजन की वृद्धि अवशेष रही। प्रथम और द्वितीय युगलों की ऊँचाई १½ (३/२) राजू की है, तथा शेष ६ युगलों की ऊँचाई आधा आधा (½) राजू की है, अतः जबकि ३½ राजू की ऊँचाई पर ४ योजन की वृद्धि होती है, तब १½ राजू पर कितनी वृद्धि होगी ? और आधे (½) राजू पर कितनी वृद्धि होगी ? इस प्रकार दो त्रैराशिक करने पर वृद्धि का प्रमाण क्रमशः १२/७ राजू और ४/७ राजू प्राप्त होता है।

मेरुतल से ऊपर सौधर्म युगल के अधोभाग में वायु का बाहुल्य ८४/७ अर्थात् १२ योजन (५ + ४ + ३) है, तथा सौधर्मेशान के उपरिम भाग में ८४/७ + १२/७ = ९६/७ योजन अर्थात् १३ ५/७ योजन (बाहुल्य) है। सानत्कुमार माहेन्द्र के निकट ९६/७ + १२/७ = १०८/७ योजन अर्थात् १५ ३/७ योजन का बाहुल्य है। अब प्रत्येक युगलों की ऊंचाई आधा आधा राजू है। जिसकी वृद्धि एवं हानि का प्रमाण ४/७ है। अतः १०८/७ + ४/७ = ११२/७ योजन अर्थात् १६ योजन ब्रह्म ब्रह्मोत्तर पर पवनों का बाहुल्य है। ११२/७ — ४/७ = १०८/७ योजन अर्थात् १५ ३/७ योजन बाहुल्य लान्तव कापिष्ट युगल का है। १०८/७ — ४/७ = १०४/७ योजन अर्थात् १४ ६/७ योजन बाहुल्य शुक्र महाशुक्र युगल का है। १०४/७ — ४/७ = १००/७ योजन अर्थात् १४ २/७ योजन बाहुल्य सतार सहस्रार युगल का है। १००/७ — ४/७ = ९६/७ योजन

अर्थात् १३$\frac{3}{7}$ योजन बाहुल्य आनत प्राणत युगल का है। [illegible] – [illegible] = [illegible] योजन अर्थात् १२[illegible] योजन बाहुल्य आरण अच्युत युगल का है। [illegible] – [illegible] = $\frac{87}{7}$ योजन अर्थात् १२$\frac{3}{7}$ योजन बाहुल्य ग्रैवेयकादि का है। [illegible] – [illegible] = $\frac{84}{7}$ योजन अर्थात् १२ योजन बाहुल्य सिद्धक्षेत्र का है।

अथ लोकाग्रवायुबाहुल्यं गोतयन्नाह—

कोसाणं दुगमेक्कं देसूणेक्कं च लोयसिहरम्मि।
ऊणधणूण पमाणं पणुवीसज्झहियचारिसयं ॥१२६॥

कोशानां द्विकमेकं देशोनैकं च लोकशिखरे।
ऊनधनुषां प्रमाणं पञ्चविंशाधिकचतुः शतम् ॥१२६॥

कोसाणं। कोशानां द्विकमेकं देशोनैकं १५७५ धनुष च लोकशिखरे ऊनधनुषां प्रमाणं। किमित्युक्ते पञ्चविंशत्यधिकचतुः शतमित्युक्तम् ४२५ ॥१२६॥

लोक के उपरिम भाग में पवनों का बाहुल्य प्रकट करते हैं—

गाथार्थ :—लोक के शिखर पर पवनों का प्रमाण क्रमशः २ कोश, १ कोश और कुछ कम एक कोश है। यहाँ कुछ कम का प्रमाण ४२५ धनुष है ॥१२६॥

विशेषार्थ:—लोक के अग्रभाग पर घनोदधि वातवलय की मोटाई २ कोश, घनवातवलय की १ कोश और तनुवातवलय की कुछ कम एक कोश है। यहाँ कुछ कम का प्रमाण ४२५ धनुष है। अर्थात् २००० धनुषों में से ४२५ धनुष कम कर देने पर (२००० — ४२५ =) १५७५ धनुष शेष रहते हैं। यही तनुवातवलय का बाहुल्य (मोटाई) है।

अथ लोकाधस्तनवायुक्षेत्रफलमानयन्नाह—

लोयतले वादतये बाहल्लं सट्ठिजोयणसहस्सं।
सेढिभुजकोडिगुणिदं किंचूणं वाउखेत्तफलं ॥१२७॥

लोकतले वातत्रये बाहुल्यं षष्टियोजनसहस्रम्।
श्रेणिभुजकोटिगुणितं किञ्चिदूनं वायुक्षेत्रफलम् ॥१२७॥

लोयतले। लोकतले वातत्रये बाहुल्यं षष्टियोजनसहस्रं ६००००, श्रेणिभुज ७ कोटि ७ गुणितं = ६०००० पूर्वापरेण समचतुरस्रत्वाभावात् किञ्चिन्न्यूनमेवं वायुक्षेत्रफलं = ६०००० स्यात् ॥१२७॥

लोक के नीचे तीनों पवनों से अवरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिए कहते हैं—

गाथार्थ :—लोक के नीचे तीनों पवनों का बाहुल्य ६०००० योजन तथा लम्बाई और चौड़ाई जगच्छ्रेणी प्रमाण है। पवनों की यही लम्बाई और चौड़ाई जगच्छ्रेणी की भुजा एवं कोटि है अतः

जगच्छ्रेणी प्रमाण भुजा और कोटि का परस्पर गुणा करने से कुछ कम जगत्प्रतर गुणित ६० हजार योजन क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥१२७।

विशेषार्थ :— लोक के नीचे तीनों पवनों का बाहल्य ६० हजार (२० + २० + २० हजार) योजन है। इनकी लम्बाई चौड़ाई जगच्छ्रेणी प्रमाण है। जगच्छ्रेणी की दक्षिणोत्तर चौड़ाई का नाम भुजा तथा पूर्व पश्चिम चौड़ाई का नाम कोटि है। भुजा और कोटि (जगच्छ्रेणी × जगच्छ्रेणी) का परस्पर गुणा करने से जगत्प्रतर की प्राप्ति होती है।

लोक की दक्षिणोत्तर चौड़ाई (भुजा) सर्वत्र ७ राजू है अतः भुजा तो हीन नहीं है किन्तु पूर्व पश्चिम चौड़ाई (कोटि) में हानि होने से कोटि में कुछ हीनता है, इसलिए जगत्प्रतर कुछ कम है। इस कुछ कम जगत्प्रतर को ६० हजार योजनों से गुणित करने पर लोक के नीचे तीनों पवनों से अवरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल, कुछ कम जगत्प्रतर × ६० हजार योजन प्राप्त होता है।

अथ तदुपरि वायुक्षेत्रफलानयनमाह—

किंचूणरज्जुवासो जगसेढीदीहरं हवे वेहो।
जोयणसट्ठिसहस्सं सत्तमखिदिपुव्वअवरे य ॥१२८॥

किञ्चिदूनरज्जुव्यासः जगच्छ्रेणिदैर्घ्यं भवेत् वेधः।
योजनषष्टिसहस्रं सप्तमक्षितिपूर्वापरे च ॥१२८॥

किचूण। किञ्चिन्न्यूनरज्जुव्यासः ७ = १ जगच्छ्रेणि ७ दैर्घ्यं भवेत्। वेधः योजनषष्टिसहस्रं सप्तमपृथिव्याः पूर्वापरद्वयोः क्षेत्रयोः फलं। भुजकोटिवेधेत्यादिना एकभागस्यैतावति ७। ६०००० द्वयोर्भागयोः किमिति सम्पातेन चानेतव्यम् ॥१२८॥

अधोलोक के एक राजू ऊपर तक वायुरुद्ध पार्श्वभागों में पवनों का क्षेत्रफल—

गाथार्थ :— तीनों पवनों का व्यास (चौड़ाई) कुछ कम (६० हजार योजन कम) एक राजू है। उनकी लम्बाई जगच्छ्रेणी (७ राजू) प्रमाण है तथा सप्तम पृथ्वी पर्यन्त पूर्व पश्चिम ६० हजार योजन वेध (मोटाई) है ॥१२८॥

विशेषार्थ :— अधोलोक के एक राजू ऊपर के पार्श्व भागों तक तीनों पवनों की चौड़ाई कुछ कम एक राजू प्रमाण है। दीर्घता (लम्बाई) जगच्छ्रेणी प्रमाण (७ राजू) है। वेध (मोटाई) पूर्व पश्चिम सप्तम पृथ्वी पर्यन्त ६० हजार योजन है। इसका क्षेत्रफल निकालने के लिए भुजा (जगच्छ्रेणी = ७ राजू) को कोटि ($\frac{७}{७}$ = १ राजू) से गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें वेध (६० हजार योजन) का गुणा करने से एक पार्श्व भाग का क्षेत्रफल प्राप्त हो जाता है। एक पार्श्वभाग का क्षेत्रफल इतना है तो दोनों पार्श्व भागों का कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करना चाहिए।

इतः परं सिद्धफलमाह—

जगपदरसत्तभागं सट्ठिसहस्सेहिं जोयणेहिं गुणं ।
विगगुणिदमुभयपासे वादफलं पुव्वअवरे य ॥१२९॥

जगत्प्रतरसप्तभागः षष्टिसहस्रैः योजनैः गुणः ।
द्विकगुणितः उभयपार्श्वे वातफलं पूर्वापरयोः च ॥१२९॥

जग । जगत्प्रतरसप्तभागः ७ षष्टिसहस्रं ६०००० योजनैर्गुणितः द्विक २ गुणितः उभयपार्श्वे वातफलं पूर्वापरयोः ॥१२९॥

उपर्युक्त क्रिया करने से प्राप्त हुए सिद्धफल का कथन करते हैं—

गाथार्थ :— जगत्प्रतर के सातवें भाग ($\frac{४९}{७}$) को ६० हजार योजन से गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो, उसमें दो का गुणा करने से पूर्व पश्चिम दोनों पार्श्व भागों का क्षेत्रफल प्राप्त हो जाता है ॥१२९॥

विशेषार्थ :— अधोलोक के एक राजू ऊपर के पार्श्व भागों तक तीनों पवनों की चौड़ाई (व्यास) १ राजू अर्थात् $\frac{७}{७}$ राजू है। लम्बाई जगच्छ्रेणी प्रमाण अर्थात् $\frac{७}{१}$ राजू है। यही भुजा और कोटि हैं। इनका परस्पर गुणा ($\frac{७}{७} \times \frac{७}{१}$) करने से जगत्प्रतर का सातवां भाग अर्थात् $\frac{४९}{७}$ वर्ग राजू प्राप्त हो जाता है। इस ($\frac{४९}{७}$) को ६० हजार योजन (वेध) से गुणा करने पर ($\frac{४९}{७} \times \frac{६० \text{ हजार}}{१}$) एक पार्श्व भाग का क्षेत्रफल प्राप्त होता है। एक पार्श्व भाग का क्षेत्रफल $\frac{\text{जगत्प्रतर}}{७} \times \frac{६००००}{१}$ है तो दोनों पार्श्वभागों का कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{\text{जगत्प्रतर}}{७} \times \frac{६००००}{१} \times \frac{२}{१}$ अर्थात् $\frac{\text{जगत्प्रतर}}{७} \times \frac{१२००००}{१}$ क्षेत्रफल प्राप्त होता है। यहाँ ४९ जगत्प्रतर के स्थानीय है।

अथ दक्षिणोत्तरवातक्षेत्रफलानयनप्रकारमाह—

उदयमुहभूमिवेहो रज्जुससत्तमछरज्जुसेढी य ।
जोयणसट्ठिसहस्सं सत्तमखिदिदक्खिणुत्तरदो ॥१३०॥

उदयमुखभूमिवेधाः रज्जुससप्तमषड्रज्जुश्रेण्यः च ।
योजनषष्टिसहस्रं सप्तमक्षितिदक्षिणोत्तरतः ॥१३०॥

उदय । उदयमुखभूमिवेधाः यथासंख्यं रज्जु ७ ससप्तमषड्रज्जु $\frac{४३}{७}$ श्रेण्यः ७ योजनषष्टिसहस्र'

६०००० सप्तमक्षितिदक्षिणोत्तरतः । मुखभूमिजोगदलेत्यादिना प्राग्वत् त्रैराशिकविधिना आनेतव्यम् ॥१३०॥

दक्षिणोत्तर वातवलयों का क्षेत्रफल प्राप्त करने हेतु नियम कहते हैं—

गाथार्थ :— दक्षिणोत्तर अपेक्षा लोक के नीचे से सप्तम पृथ्वी पर्यन्त पवनों का उदय (ऊँचाई) १ राजू, सप्तम पृथ्वी के समीप मुख (चौड़ाई) ६$\frac{१}{७}$ राजू, भूमि जगच्छ्रेणी प्रमाण अर्थात् ७ राजू तथा वेध (मोटाई) ६० हजार योजन है ॥१३०॥

विशेषार्थ :—लोक के नीचे की चौड़ाई का प्रमाण ७ राजू है, यही भूमि है। सातवीं पृथ्वी के निकट लोक की चौड़ाई का प्रमाण ६$\frac{१}{७}$ राजू है, यही मुख है। लोक के नीचे से सप्तम पृथ्वी पर्यन्त उदय (ऊँचाई) $\frac{४९}{४९}$ राजू अर्थात् १ राजू है तथा यहीं पर पवनों का वेध (मोटाई) ६० हजार योजन है। इन सबका क्षेत्रफल निम्नलिखित प्रकार से होगा—

भूमि $\frac{७}{१}$ राजू + $\frac{४३}{७}$ राजू मुख = $\frac{४९ + ४३}{७}$ = $\frac{९२}{७}$ राजू प्राप्त हुआ। इसका आधा ($\frac{९२}{७}$ × $\frac{१}{२}$) $\frac{४६}{७}$ राजू हुआ। पार्श्व भाग दो हैं अतः $\frac{४६}{७}$ × $\frac{२}{१}$ (दूना करने से) = $\frac{९२}{७}$ राजू हुआ। इस $\frac{९२}{७}$ राजू को उदय (ऊँचाई) से गुणा करने पर ($\frac{९२}{७}$ × $\frac{४९}{४९}$ अर्थात् १ राजू) $\frac{४९}{४९}$ × $\frac{९२}{७}$ प्राप्त हुआ। इसमें ६० हजार योजन मोटाई का गुणा करने से — $\frac{४९}{४९}$ × $\frac{९२}{७}$ × $\frac{६००००}{१}$ क्षेत्रफल प्राप्त होता है। यहाँ ($\frac{४९}{४९}$) पर ऊपरवाला (अंश स्वरूप) ४९ जगत्प्रतर स्वरूप है। अतः $\frac{\text{जगत्प्रतर} \times ९२ \times ६००००}{४९ \times ७}$ क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

अथैतत्फलमुच्चारयति—

तस्स फलं जगपदरो सट्ठिसहस्सेहिं जोयणेहिं हदो ।
वाणउदिगुणो सगघणभजिदो उभयपासम्हि ॥१३१॥

तस्य फलं जगत्प्रतरः षष्टिसहस्रैः योजनैः हतः ।
द्वानवतिगुणः सप्तघनभक्तः उभयपार्श्वे ॥१३१॥

तस्स । छायामात्रमेवार्थः ॥१३१॥

उपर्युक्त क्रिया का फल कहते हैं :—

गाथार्थ :—जगत्प्रतर को ६०००० योजन से एवं ९२ से गुणा कर ७ के घन (३४३ राजू) का भाग देने पर दोनों पार्श्व भागों का क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥१३१॥

विशेषार्थ :—सप्तम पृथ्वी पर्यन्त दोनों पार्श्व भागों का दक्षिणोत्तर (पवनों से रुद्ध) क्षेत्र का क्षेत्रफल इस प्रकार से होगा, $\frac{\text{जगत्प्रतर} \times ६०००० \times ९२}{४९ \times ७}$ = $\frac{\text{जगत्प्रतर} \times ५५२००००}{३४३}$

सेढी छरज्जू चोद्दसजोयणमायामवासमुस्सेहं ।
पुव्वावरपासजुगले सत्तमदो तिरियलोगोत्ति ॥१३२॥

श्रेणी षड्रज्जु चतुर्दशयोजनं आयामव्यासोत्सेधम् ।
पूर्वापरपार्श्वयुगले सप्तमतः तिर्यग्लोकान्तम् ॥१३२।

सेढी । श्रेणी ७ ७ षड्रज्जु ३ ६ चतुर्दश १४ योजनानि आयामव्यासोत्सेधाः पूर्वापरपार्श्वयुगले सप्तमतस्तिर्यग्लोकपर्यन्त । भुजकोटीत्याबिना द्विरपवर्त्यो मध्यपार्श्वयोः द्वाभ्यां संगुण्यानेतव्यम् ॥१३२॥

सप्तम पृथ्वी से मध्यलोक पर्यन्त पूर्व पश्चिम दिशा में वातवलयों का प्रमाण कहते हैं—

गाथार्थ :—सप्तम पृथ्वी से तिर्यग्लोकपर्यंत पूर्व पश्चिम पार्श्वयुगलों में पवनों का आयाम श्रेणी (७ राजू), व्यास (चौड़ाई) ६ राजू और उत्सेध (मोटाई) १४ योजन प्रमाण है ॥१३२॥

विशेषार्थ :—सप्तम पृथ्वी के पास पवनों की मोटाई १६ योजन (७ + ५ + ४) और तिर्यग्लोक के पास १२ (५ + ४ + ३) योजन है। औसत मोटाई (१६ + १२ = २८ ÷ २) १४ योजन प्राप्त हुई।

सप्तम पृथ्वी से तिर्यग्लोक पर्यन्त पवनों का आयाम (लम्बाई) श्रेणी अर्थात् $\frac{४९}{७}$ राजू है। जिसे भुजा कहते हैं। नीचे से मध्यलोक पर्यन्त ६ राजू व्यास है जिसे कोटि कहते हैं। दोनों वातवलयों का वेध १४ योजन है, अतः $\frac{४९}{७} \times \frac{६}{१} \times \frac{१४}{१} \times \frac{२}{१}$ (दूना किया)। यहाँ भी ४९ जगत्प्रतर के स्थानीय हैं। अतः $\frac{\text{जगत्प्रतर} \times ६ \times १४ \times २}{७}$ प्राप्त हुआ। नीचे के ७ से ऊपर के १४ को अपवर्तित कर देने पर २ प्राप्त होते हैं अतः जगत्प्रतर × ६ × २ × २ = जगत्प्रतर × २४ लब्ध प्राप्त होता है।

अथ तस्य सिद्धफलमुच्चारयति—

तव्वादरुद्धखेत्तं जोयणचउवीसगुणिदजगपदरं ।
उभयदिसासंजणिदं णादव्वं गणिदकुसलेहिं ॥१३३॥

तद्वातरुद्धक्षेत्रं योजनचतुर्विंशतिगुणितजगत्प्रतरम् ।
उभयदिशासञ्जातं ज्ञातव्यं गणितकुशलैः ॥१३३॥

तव्वाद । तद्वातावरुद्धक्षेत्रं योजनचतुर्विंशतिगुणितजगत्प्रतरं उभयदिशासञ्जातं ज्ञातव्यं गणितकुशलैः ॥१३३॥

दोनों पार्श्व भागों का सिद्धफल कहते हैं—

गाथार्थ :—उपर्युक्त दोनों दिशाओं के वायुरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल जगत्प्रतर × २४ है। ऐसा गणित-विशेषज्ञों द्वारा जाना गया है ॥१३३॥

विशेषार्थ :—गाथा १३२ में कहे गए वायुरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल गणित विशेषज्ञों के द्वारा जगत्प्रतर × २४ जाना गया है।

अथ दक्षिणोत्तरपार्श्ववातफलमानयति—

उदयं भूमुह वेहो छरज्जु सत्तमछरज्जु रज्जू य।
जोयण चोद्दस सत्तमतिरियोत्ति हु दक्खिणुत्तरदो ॥१३४॥

उदयः भूमुखं वेधः षड्रज्जवः सप्तमषट्रज्जवः रज्जुश्च।
योजनचतुर्दश सप्तमस्तिर्यगन्तं हि दक्षिणोत्तरतः ॥१३४॥

उदयं। उदयः ६ भू $\frac{४३}{७}$ मुखं $\frac{७}{७}$ वेधः १४ षड्रज्जवः ससप्तमषड्रज्जवः एकरज्जुः योजनचतुर्दशसप्तमतस्तिर्यग्पर्यन्तं खलु दक्षिणोत्तरतः मुखभूमीत्येकवारमपवर्त्यानितव्यम् ॥१३४॥

दक्षिणोत्तर पार्श्वभागों में पवनों से अवरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल—

गाथार्थ :—दक्षिणोत्तर अपेक्षा सप्तम पृथ्वी से मध्यलोक पर्यन्त पवनों का उदय (ऊँचाई) ६ राजू, भूमि ६$\frac{१}{७}$ राजू, मुख १ राजू और वेध (मोटाई) १४ योजन प्रमाण है ॥१३४॥

विशेषार्थ :—सप्तम पृथ्वी के निकट पवनों की चौड़ाई ६$\frac{१}{७}$ अर्थात् $\frac{४३}{७}$ राजू है, यह भूमि है। तिर्यग्लोक के निकट पवनों की चौड़ाई १ राजू अर्थात् $\frac{७}{७}$ राजू है, यह मुख है। भूमि और मुख को जोड़ कर आधा करने पर जो लब्ध आवे उसमें सप्तम पृथ्वी से मध्य लोक पर्यन्त पवनों की ऊँचाई ६ राजू से गुणा करना चाहिए तथा लब्धाङ्कों को पुनः पवनों की मोटाई (वेध) १४ योजन से गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो, वह एक पार्श्वभाग का क्षेत्रफल होगा। दोनों पार्श्वभागों का क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिए २ से गुणा कर दुगुना कर लेना चाहिए। जैसे — भूमि + मुख अर्थात् $\frac{४३}{७} + \frac{७}{७} = \frac{५०}{७}$ आधा करने पर $\frac{२५}{७}$ राजू लब्ध आया। $\frac{२५}{७} \times \frac{६}{१} \times \frac{१४}{१} \times \frac{२}{१} = \frac{२५ \times ६ \times १४ \times २}{७} = ६००$ योजन क्षेत्रफल दोनों पार्श्वभागों में वायुरुद्ध क्षेत्र का प्राप्त हुआ।

अथ तत्सिद्धफलमुच्चारयति—

तत्थाणिलखेत्तफलं उभये पासम्हि होइ जगपदरं।
छस्सयजोयणगुणिदं पविभत्तं सत्तवग्गेण ॥१३५॥

तत्रानिलक्षेत्रफलं उभयस्मिन् पार्श्वे भवति जगत्प्रतरः।
षट्शतयोजनगुणितः प्रविभक्तः सप्तवर्गेण ॥१३५॥

तत्था। छायामात्रमेवार्थः ॥१३५॥

प्राप्त हुए सिद्धफल को कहते हैं—

गाथार्थ :—वहाँ (दक्षिणोत्तर में सप्तम पृथ्वी से मध्यलोक पर्यन्त) दोनों पार्श्व भागों का क्षेत्रफल जगत्प्रतर को ६०० योजनों से गुणित कर ७ के वर्ग (४९) से भाग देने पर प्राप्त हो जाता है ॥१३५॥

विशेषार्थ :—उपर्युक्त गाथा में ($\frac{२५ \times ६ \times १४ \times २}{७}$) ६०० योजन क्षेत्रफल प्राप्त हुआ था। इसे जगत्प्रतर स्वरूप बनाने के लिए ४९ से गुणा कर ४९ से ही भाग देना चाहिए। अर्थात् $\frac{४९ \times ६००}{४९}$ हुआ। यहाँ ४९ जगत्प्रतर के स्थानीय है क्योंकि ७ × ७ = ४९ वर्ग राजू = जगत्प्रतर होता है। अत: $\frac{\text{जगत्प्रतर} \times ६००}{४९}$ क्षेत्रफल दोनों पार्श्वभागों का प्राप्त हुआ।

अथोर्ध्वलोकपूर्वापरस्थ पार्श्ववायुरुद्धक्षेत्रानयनमाह—

अउट्ठरज्जुसेढी जोयणचोद्दस य वासभुजवेहो ।
बम्होत्ति पुव्वअवरे फलमेदं चदुगुणं सव्वं ॥१३६॥

अर्धचतुर्थरज्जुश्रेणिः योजनचतुर्दश च व्यासभुजवेधः ।
ब्रह्मान्तं पूर्वापरे फलमेतत् चतुर्गुणम् सर्वम् ॥१३६॥

अउट्ठ । अर्धचतुर्थ $\frac{७}{२}$ रज्जुश्रेणि ७ योजनचतुर्दश १४ च व्यासभुजवेधा ब्रह्मलोकपर्यन्तं पूर्वापरे फलमेतच्चतुर्गुणं सर्वं भुजकोटीव्यासैर्वधम् ॥१३६॥

पूर्व पश्चिम अपेक्षा ऊर्ध्वलोक के चारों पार्श्वभागों के वातवलयों से रुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल—

गाथार्थ :—तिर्यग्लोक से ब्रह्मलोक पर्यन्त पवनों की ऊँचाई ३½ राजू है। इसीका नाम व्यास है। यहाँ इसे कोटि भी कहा है। श्रेणी अर्थात् ७ राजू को भुजा है और पवनों की मोटाई १४ योजन प्रमाण है। इन तीनों का परस्पर गुणा कर, फिर ४ से गुणा कर देने पर (चार क्षेत्र) ऊर्ध्व लोक में पूर्व व पश्चिम वातवलयों से रुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त हो जाता है ॥१३६॥

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोक पूर्व और पश्चिम की ओर सर्वत्र ७ राजू है। यह भुजा है। मध्यलोक से अर्ध ऊर्ध्वलोक (ब्रह्म स्वर्ग) पर्यन्त ३½ राजू ऊँचा है। यह कोटि है। तीनों वातवलय तिर्यग्लोक के समीप १२ (५ + ४ + ३) योजन और ब्रह्म स्वर्ग के समीप १६ (७ + ५ + ४) योजन मोटे हैं। वातवलयों की मोटाई का औसत (१६ + १२ = २८ ÷ २ = १४) १४ योजन है अत: $\frac{७}{२} \times \frac{७}{१} \times \frac{१४}{१}$ = ४९ × ७ अर्थात् ४९ वर्ग राजू × ७ राजू प्राप्त हुआ। क्योंकि ४९ जगत्प्रतर स्वरूप है अत: अर्ध ऊर्ध्वलोक के एक दिशा के वातवलय का क्षेत्रफल जगत्प्रतर × ७ प्राप्त होता है, इसलिए दोनों दिशाओं के पूर्ण ऊर्ध्वलोक (चारों भागों) के वातवलयों से रुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल — जगत्प्रतर × ७ × ४ = जगत्प्रतर × २८ प्राप्त होता है।

अथोर्ध्वलोकदक्षिणोत्तरचतुःपार्श्ववायुफलमाह—

पंचद्धचदुगिरज्जू भुजुंगमुहं विसचजोयणयं ।
वेहो तं चउगुणिदं खेत्तफलं दक्खिणुत्तरदो ॥१३७॥

पञ्चार्धचतुरेकरज्जवः भुजतुङ्गमुखं द्विसप्तयोजनकः ।
वेधः तच्चतुर्गुणितं क्षेत्रफलं दक्षिणोत्तरतः ॥१३७॥

पंचा । पञ्चा ५ र्धचतुर्थे ७/२ क १ रज्जवः भुजतुङ्गमुखानि द्विसप्त १४ योजनो वेधः तच्चतुर्गुणितं क्षेत्रफलं दक्षिणोत्तरतः मुखभूमीत्यानेतव्यम् ॥१३७॥

दक्षिणोत्तर अपेक्षा ऊर्ध्वलोक के चारों पार्श्व भागों के वातवलयों से रुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल—

गाथार्थ :— ब्रह्मस्वर्ग पर ऊर्ध्वलोक ५ राजू चौड़ा है यही भूमि है। तिर्यग्लोक से ब्रह्मस्वर्ग ३½ राजू ऊँचा है। तिर्यग्लोक पर ऊर्ध्वलोक १ राजू चौड़ा है। यही मुख है। द्विसप्त अर्थात् १४ योजन वेध अर्थात् वातवलयों की मोटाई १४ योजन है। इन चारों का परस्पर गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त हो, उसे पुनः ४ से गुणित करने पर ऊर्ध्वलोक की दक्षिणोत्तर दोनों दिशाओं के चारों भागों का क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥१३७॥

विशेषार्थ :— ऊर्ध्वलोक ब्रह्मस्वर्ग के पास ५ राजू चौड़ा है, अर्थात् भूमि ५ राजू है। तिर्यग्लोक पर १ राजू चौड़ा है अर्थात् मुख १ राजू है, इस प्रकार भूमि + मुख ५ + १ = ६ राजू। इसका आधा (६/१ × १/२) ३ राजू व्यास हुआ। यही भुजा है। ७/२ राजू की ऊँचाई कोटि है और १४ योजन मोटाई है, अतः ३/१ × ७/२ × १४/१ = ७ × ७ × ३ वर्ग राजू अथवा ४९ × ३ वर्ग राजू = जगत्प्रतर × ३ यह अर्ध ऊर्ध्वलोक की एक दिशा के वातवलयों से रुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल है। जगत्प्रतर × ३ को ४ से गुणा करने पर जगत्प्रतर × १२ यह पूर्ण ऊर्ध्वलोक की दोनों दिशाओं में वातवलयों से रुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

अथ लोकाग्रवायुफलमानयति—

वासुदयभुजं रज्जू इगिजोयणवीसतिसदखंडेसु ।
सतितिसदं सेढी फलमीसिपभारुवरि दंडवाऊणं ॥१३८॥

व्यासोदयभुजा रज्जुः एकयोजनविंशत्रिशतखण्डेषु ।
सत्रित्रिशतं श्रेणिः फलमीषत्प्राग्भारोपरि दण्डवायूनाम् ॥१३८॥

वासु । व्यासोदयभुजारज्जुः १ एकयोजनविंशत्युत्तरत्रिशत ३२० खण्डेषु सत्रित्रिशतं ३०३ — ३०३/३२० श्रेणिश्च ७ एतदीषत्प्राग्भारोपरि दण्डवायूनां फलं। त्रीसतिसदखण्डेसु सत्ति तिसद ३०३/३२० मित्यस्य बीजमुच्यते। दण्डीकृतद्विकोश ४००० एककोश २००० पंचविंशत्यधिकचतुःशतः शतहीनैककोशानां १५७५

मेलनं कृत्वा ७५७५ एतावतां दण्डानाम्। ८००० एकयोजने प्र ८००० फ १ एतावतां ७५७५ कियद्योजन-मिति सम्पात्य पंचविंशतिभिरपवर्तने कृते $\frac{३०३}{३२०}$ तद्वासमाबीजं स्यात्। भुजकोटीमिफल $\frac{=}{७}\times\frac{३०३}{३२०}$ मानेतव्यम्। लोकाग्रवायुफलं $\frac{=}{७}\times\frac{३०३}{३२०}$ मुक्त्वा इतरेषां वायुफलानां $=\times\frac{६००००}{१}$, $=\frac{१२००००}{७}$, $=\frac{५५२००००}{३४३}$, $=\frac{२४}{१}$, $=\frac{६००}{७}$, $=\frac{७८}{१}$, $=\frac{१२}{१}$ सप्तघन सप्तवर्गं सप्तघन सप्त [illegible] सप्तघनैः समच्छेदं कृत्वा [illegible] + [illegible] + [illegible] + [illegible] + [illegible] + [illegible] + [illegible] मेलनं विधाय [illegible] एतत्सर्वं विंशत्युत्तरत्रिशतेन $\frac{३०३}{३२०}\times\frac{=}{७}$ सप्तवर्गमक्तभणितोपरितनवायुफलेन [illegible] सह समच्छेदं कृत्वा [illegible] अनयोर्मेलने [illegible] सर्ववातावरुद्धक्षेत्रफलं भवति ॥१३८॥

लोक के अग्र भाग पर वायुरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल :—

गाथार्थ :—(पूर्व पश्चिम अपेक्षा लोक के व्यास सदृश) वातवलय का व्यास १ राजू, उदय (ऊँचाई) $\frac{३०३}{३२०}$ योजन और श्रेणी (दक्षिणोत्तर ७ राजू चौड़ाई = श्रेणी) प्रमाण भुजा है। इन तीनों ($\frac{१}{१}\times\frac{३०३}{३२०}\times\frac{७}{१}$) का परस्पर गुणा करने से ईषत् प्राग्भार पृथ्वी के ऊपर वायुरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥१३८॥

विशेषार्थ :—१ राजू व्यास × $\frac{३०३}{३२०}$ योजन उदय (मोटाई) × भुजा (श्रेणी स्वरूप ७राजू की भुजा) इनके गुणनफल को ईषत्प्राग्भार पृथ्वी के ऊपर पवनरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल कहा है। यहाँ १ योजन के ३२० खण्डों में से ३०३ खण्ड प्रमाण तीनों पवनों की मोटाई कही है, उसका बीज कहते हैं :—

८००० (आठ हजार) धनुष का एक योजन होता है, और २००० धनुष का १ कोष होता है। लोक के अग्र भाग पर घनोदधि वातवलय दो कोश मोटा है। इसके ४००० धनुष हुए। घनवात एक कोश मोटा है, इसके २००० धनुष हुए और तनुवात ४२५ धनुष कम १ कोश मोटा है। अर्थात् १५७५ धनुष मोटा है। इन तीनों का योग (४००० + २००० + १५७५) = ७५७५ धनुष होता है। जबकि ८००० धनुष का एक योजन होता है तब ७५७५ धनुष के कितने योजन होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने से $\frac{१}{८०००}\times\frac{७५७५}{१}=\frac{३०३}{३२०}$ योजन मोटाई लोक के अग्रभाग की कही गई है।

एक राजू श्रेणी का सातवाँ भाग है, अतः १ राजू = $\frac{\text{श्रेणी}}{७}$ हुआ यह कोटि है। भुजा स्वरूप श्रेणी (७ राजू) का और कोटि ($\frac{\text{श्रेणी}}{७}$) का परस्पर गुणनकर पुनः $\frac{३०३}{३२०}$ योजन उदय से गुणित करने पर क्षेत्रफल प्राप्त होता है। जैसे :— $\frac{\text{श्रेणी}}{१}\times\frac{\text{श्रेणी}}{७}\times\frac{३०३}{३२०}=\frac{\text{जगत्प्रतर}}{७}\times\frac{३०३}{३२०}$ योजन क्षेत्रफल लोक के शिखर पर पवनों द्वारा रुद्ध क्षेत्र का प्राप्त हुआ।

सम्पूर्ण क्षेत्रफलों का योग :—

१. लोक के नीचे तीनों पवनों से अवरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल — जगत्प्रतर × ६० हजार

२. लोक के १ राजू ऊपर पूर्व पश्चिम में अवरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल — $\frac{\text{जगत्प्रतर}}{७} \times \frac{१२००००}{१}$

३. लोक के १ राजू ऊपर दक्षिणोत्तर में अवरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल — $\frac{\text{जगत्प्रतर} \times ५५२००००}{३४३}$

४. ७वीं पृथ्वी से मध्यलोक तक पूर्व प० अवरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल — जगत्प्रतर × २४

५. ७वीं पृथ्वी से मध्यलोक तक दक्षिणोत्तर में अवरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल — $\frac{\text{जगत्प्रतर} \times ६००}{४९}$

६. ऊर्ध्वलोक के चार पार्श्व भागों का पूर्व प० में अवरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल — जगत्प्रतर × २८

७. ऊर्ध्वलोक के चार पार्श्व भागों का दक्षिणोत्तर में अवरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल— जगत्प्रतर × १२

८ लोक के अग्र भाग पर वातवलयों से अवरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल — $\frac{\text{जगत्प्रतर}}{७} \times \frac{३०३}{३२०}$

यहाँ लोक के अग्रभाग के क्षेत्रफल को छोड़कर शेष समस्त क्षेत्रफलों का योग निम्नप्रकार है:—

यहाँ पर जगत्प्रतर का चिन्ह 'ज' है। अत: ज × ६०००० + ज × $\frac{१२००००}{७}$ + ज × $\frac{५५२००००}{३४३}$ + ज × २४ + ज × $\frac{६००}{४९}$ + ज × २८ + ज × १२ को समच्छेद विधान द्वारा मिलाने के लिए जहाँ भागहार नहीं है। वहाँ ७ के घन (३४३) से, जहाँ भागहार ७ है, वहाँ ७ के वर्ग (४९) से, जहाँ भागहार ३४३ है, वहाँ १ से, और जहाँ भागहार ४९ है वहाँ ७ से गुणा करना चाहिए। इस समच्छेद विधान में जिस गुणाकार के गुणा करने पर हारों की समानता होती है, उसी गुणाकार से अंशों में गुणा करना चाहिए। इस प्रकार की क्रिया से :— ज × ($\frac{२०५८००००}{३४३}$ + $\frac{५८८००००}{३४३}$ + $\frac{५५२००००}{३४३}$ + $\frac{८२३२}{३४३}$ + $\frac{४२००}{३४३}$ + $\frac{९६०४}{३४३}$ + $\frac{४११६}{३४३}$) = ज × $\frac{३२००६१५२}{३४३}$ क्षेत्रफल प्राप्त होता है। अथवा — ज × ($\frac{६००००}{१}$ + $\frac{१२००००}{७}$ + $\frac{५५२००००}{३४३}$ + $\frac{२४}{१}$ + $\frac{६००}{४९}$ + $\frac{२८}{१}$ + $\frac{१२}{१}$) =

$$\text{ज} \times \frac{२०५८०००० + ५८८०००० + ५५२०००० + ८२३२ + ४२०० + ९६०४ + ४११६}{३४३}$$

= ज × $\frac{३२००६१५२}{३४३}$ अर्थात् जगत्प्रतर × तीन करोड़ बीस लाख छह हजार एक सौ बावन, भाजित तीन सौ तैतालीस प्राप्त होते हैं।

गाथा १३८ में लोक के अग्रभाग पर वायुरुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल $\frac{\text{जगत्प्रतर}}{७} \times \frac{३०३}{३२०}$ बतलाया गया है, इसे उपर्युक्त क्षेत्रफल में जोड़ देने से सर्व लोक का क्षेत्रफल प्राप्त हो जाता है। जैसे:— ज × $\frac{३२००६१५२}{३४३}$ + $\frac{\text{ज} \times ३०३}{७ \times ३२०}$ यहाँ पर भागहार ३२० को ७ से गुणित करने पर २२४० प्राप्त

हुए, अतः धनराशि की संख्या $\frac{ज \times ३०३}{२२४०}$ हुई। इसका समच्छेद करने के लिये अंश ३०३ और हर २२४० को ७ के वर्ग (४९) से गुणित करने पर ज × $\frac{१४८४७}{१०९७६०}$ प्राप्त हुए। पूर्वोक्त राशि ज × $\frac{३२००११५२}{३४३}$ के हर और अंश को भी ३२० से गुणित करने पर ज × $\frac{१०२४०३६८६४०}{१०९७६०}$ प्राप्त हुए, तथा इन दोनों — [ज × ($\frac{१०२४०३६८६४०}{१०९७६०}$ + $\frac{१४८४७}{१०९७६०}$)] को जोड़ने से ज × $\frac{१०२४०३८३४८७}{१०९७६०}$ क्षेत्रफल प्राप्त होता है। अथवा — ज × $\frac{३२००११५२}{३४३}$ + $\frac{ज \times ३०३}{७ \times ३२०}$ = ज × $\frac{१०२४०३६८६४० + १४८४७}{१०९७६०}$ = ज × $\frac{१०२४०३८३४८७}{१०९७६०}$ समस्त पवनों से रुद्ध क्षेत्र का क्षेत्रफल है।

लोक के सम्पूर्ण वायुमण्डल का चित्रण :—

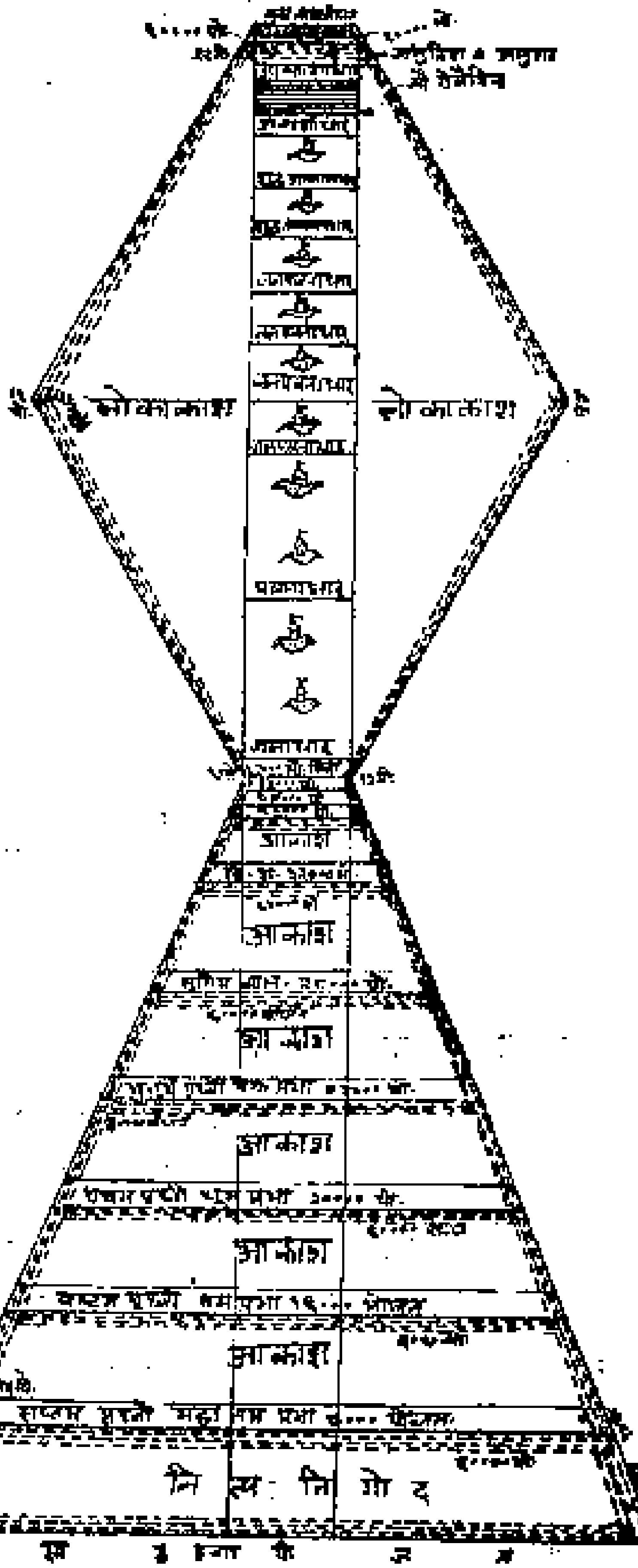

एतत्सिद्धफलमुच्चारयति—

सत्तासीदिचदुस्सदसहस्सतेसीदिलक्ख उणवीसं ।
चउवीसहियं कोडिसहस्सगुणियं तु जगपदरं ॥१३९॥
सट्ठीसत्तसएहिं णवयसहस्सेगलक्खभजियं तु ।
सव्वं वादारुद्धं गणियं भणियं समासेण ॥१४०॥

सप्ताशीतिचतुः शतसहस्रत्र्यशीतिलक्षैकोनविंशम् ।
चतुर्विंशाधिकं कोटिसहस्रगुणितं तु जगत्प्रतरम् ॥१३९॥
षष्टि सप्तशतैः नवकसहस्रैकलक्षभक्तं तु ।
सर्वं वातारुद्धं गणितं भणितं समासेण ॥१४०॥

सत्तासी । सप्ताशीतिचतुः शतसहस्रत्र्यशीतिलक्षैकोनविंशतिचतुर्विंशतिसहितकोटिसहस्रगुणित-जगत्प्रतरं फलं भवति ॥१३९॥

सट्ठी । छायामात्रमेवार्थः ॥१४०॥

वातवलयों द्वारा रुद्ध समस्त क्षेत्रों के क्षेत्रफलों का योग—

गाथार्थ :—सम्पूर्ण वातवलयों से रोके हुए क्षेत्रों के क्षेत्रफलों को जोड़ने पर, एक लाख नौ हजार सात सौ साठ से भाजित जगत्प्रतर गुणित एक हजार चौबीस करोड़ उन्नीस लाख तेरासी हजार चार सौ सत्तासी प्राप्त होता है। यह गणित संक्षेप से कहा गया है ॥१३९-१४०॥

विशेषार्थ :—लोक के जितने क्षेत्र को तीनों पवनों ने रोका है उस समस्त क्षेत्र के क्षेत्रफलों का योग करने पर ज $\times$ $\frac{१०२४१९८३४८७}{१०९७६०}$ प्राप्त होता है।

अथ सिद्धानां जघन्योत्कृष्टेनावगाहक्षेत्रमाह—

णवपण्णारसलक्खा सयाण खंडाणमेयखंडम्हि ।
सिद्धाणं तणुवादे जहण्णमुक्कस्सयं ठाणं ॥१४१॥

नवपञ्चदशलक्षाणां शतानां खण्डानामेकखण्डे ।
सिद्धानां तनुवाते जघन्यमुत्कृष्टं स्थानम् ॥१४१॥

णव । नवलक्षपञ्चदशशतयोजन ९०००००। १५०० खण्डानां मध्ये एकस्मिन् खण्डे सिद्धानां तनुवाते जघन्यमुत्कृष्टं च स्थानम् ॥१४१॥

लोक के अग्रभाग पर तनुवातवलय में विराजमान सिद्ध परमेष्ठी की जघन्योत्कृष्ट अवगाहना द्वारा रुद्ध क्षेत्र कहते हैं—

गाथार्थ:—तनुवातवलय के बाहुल्य के नव लाख खण्ड करने पर एक खण्ड में जघन्य अवगाहना वाले सिद्ध परमेष्ठी हैं और उसी बाहुल्य के पन्द्रह सौ खण्ड करने पर उसके एक खण्ड में उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हैं ।।१४१।।

अथ तदवगाहं व्यवहारं कुर्वन्नाह—

पणसयगुणतणुवादं इच्छियउग्गाहणेण पविभत्तं ।
हारो तणुवादस्स य सिद्धाणोगाहणाणयणे ।।१४२।।

पञ्चशतगुणतनुवातः इच्छितावगाहनेन प्रविभक्तः ।
हारस्तनुवातस्य च सिद्धानामवगाहनानयने ।।१४२।।

पण । पञ्चशत ५०० गुणित ७८७५०० तनुवात: १५७५ ईप्सितावगाहनेन प्रविभक्तः $\frac{७}{८}$ हारस्तनुवातस्य च सिद्धानामवगाहनानयने । एतावत्खण्डानां ९००००० एतावत्सु ७८७५०० व्यवहारधनुषु एकखण्डस्य कियन्तो दण्डा इति सम्पात्य एतावता ११२५०० अपवर्तने $\frac{७}{८}$ जघन्यावगाहः एवमुत्कृष्टावगाहो ज्ञातव्यः । उभयत्र चतुर्थापवर्तनविधिश्च ज्ञातव्यः ।।१४२।।

उस अवगाहना को व्यवहार रूप करने के लिए कहते हैं--

गाथार्थ:—तनुवातवलय के बाहुल्य को ५०० से गुणा कर इच्छित (जघन्योत्कृष्ट) अवगाहना का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसका तनुवातवलय के बाहुल्य में भाग देने पर सिद्धों की इच्छित अवगाहना प्राप्त हो जाती है ।।१४२।।

विशेषार्थ:- तनुवातवलय का बाहुल्य तो प्रमाणाङ्गुल की अपेक्षा है, और सिद्धों की अवगाहना व्यवहाराङ्गुल अपेक्षा है. अतः तनुवातवलय के बाहुल्य (मोटाई) १५७५ धनुष को ५०० से गुणित करने पर (१५७५ × ५००) सात लाख सत्तासी हजार पांच सौ (७८७५००) व्यवहार धनुषों का प्रमाण प्राप्त हो जाता है । इसमें जघन्य अवगाहना $\frac{७}{८}$ धनुष का भाग देने पर (७८७५०० ÷ $\frac{७}{८}$ अर्थात् $\frac{७८७५००}{१}$ × $\frac{८}{७}$) ९००००० खण्ड प्राप्त होते हैं । जबकि ९००००० खण्डों में ७८७५०० व्यवहार धनुष होते हैं, तब १ खण्ड में कितने धनुष प्राप्त होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक कर $\frac{७८७५००}{९०००००}$ को ११२५०० से अपवर्तित करने पर $\frac{७}{८}$ व्यवहार धनुष प्रमाण सिद्धों की जघन्य अवगाहना प्राप्त होती है ।

सिद्धों की जघन्य अवगाहना ३½ हाथ की होती है, तथा ४ हाथ का एक धनुष होता है, अतः जब कि ४ हाथ का १ धनुष होता है, तब ३½ हाथ के कितने धनुष होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{७}{२}$ × $\frac{१}{४}$) = $\frac{७}{८}$ धनुष प्राप्त होंगे । जबकि ७८७५०० धनुष के ९००००० खण्ड प्राप्त होते हैं, तब $\frac{७}{८}$ धनुष के कितने खण्ड प्राप्त होंगे ? इस प्रकार पुनः त्रैराशिक कर ($\frac{९०००००}{७८७५००}$ × $\frac{७}{८}$) अपवर्तित करने पर १ खण्ड प्राप्त होता है, अतः जघन्य अवगाहना वाले सिद्ध परमेष्ठी तनुवातवलय के $\frac{१}{९०००००}$ भाग में विराजमान हैं, यह बात सिद्ध हुई ।

उत्कृष्ट अवगाहना:—सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ धनुष की होती है, तथा तनुवातवलय की मोटाई १५७५ धनुष है, जिसके ७८७५०० व्यवहार धनुष होते हैं ? जबकि ५२५ धनुष का १ खण्ड होता है, तब ७८७५०० धनुष के कितने खण्ड होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{७८७५००}{५२५}$ = १५०० खण्ड प्राप्त हुए । जबकि ७८७५०० धनुष के १५०० खण्ड होते हैं, तब ५२५ धनुष के कितने खण्ड होंगे ? इस प्रकार पुन: त्रैराशिक करने पर ($\frac{१५०० × ५२५}{७८७५००}$)= १ खण्ड प्राप्त हुआ, अत: सिद्ध हुआ कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध परमेष्ठी तनुवातवलय के $\frac{१}{१५००}$ भाग में रहते हैं ।

अथ त्रसनालीस्वरूपमाह—

लोयबहुमज्झदेसे रुक्खे सारव्व रज्जुपदरजुदा ।
चोद्दसरज्जुत्तुंगा तसणाली होदि गुणणामा ॥१४३॥

लोकबहुमध्यदेशे वृक्षे सार इव रज्जुप्रतरयुता ।
चतुर्दशरज्जूत्तुङ्गा त्रसनाली भवति गुणनामा ॥१४३॥

लोय । लोकबहुमध्यदेशे वृक्षे सार इव रज्जुप्रतरयुता चतुर्दशरज्जूत्तुङ्गा त्रसनाली भवति गुणनामा । भुजकोटीवेधाभिना तत्फलमानेतव्यं — $\frac{१४}{३४३}$ ॥१४३॥

त्रस नाली का स्वरूप.—

गाथार्थ:—लोकाकाश के बहुमध्य प्रदेशों में (बीच में) वृक्ष के मध्य में रहने वाले सार भाग के सदृश, तथा एक राजू प्रतर से सहित चौदह राजू ऊंची और सार्थक नाम वाली त्रस नाली है ॥१४३॥

विशेषार्थ:—लोक के बहुमध्य प्रदेशों में त्रसनाली उसी प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार वृक्ष के (छाल आदि तो उपरिम भाग है) मध्य में सारभूत लकड़ी विद्यमान रहती है । यह त्रसनाली १ राजू लम्बी एक राजू चौड़ी और १४ राजू ऊंची है । यहां १ राजू लम्बाई भुजा और १ राजू चौड़ाई कोटि है, तथा १४ राजू ऊंचाई का नाम उत्सेध है । इन १ राजू भुजा, १ राजू कोटि और १४ राजू ऊंचाई का परस्पर गुणा करने से (१ × १ × १४) त्रस नाली का क्षेत्र फल १४ घन राजू प्रमाण प्राप्त होता है । लोक, ३४३ घन राजू प्रमाण है, उसमें मात्र १४ घन राजू प्रमाण में त्रस नाली है अर्थात् त्रस जीव पाये जाते हैं, शेष ३२९ घन राजू में मात्र स्थावर जीव ही प्राप्त होते हैं, त्रस नहीं । उपपाद, मारणान्तिक एवं केवलिसमुद्धात वाले त्रस जीवों के आत्म प्रदेशों का सत्त्व अवश्य ३२९ घन राजू में पाया जाता है किन्तु उसकी यहां विवक्षा नहीं है ।

अथ त्रसनाल्यधस्थभूमेदादिमाह—

मुरवदले सत्तमही उवरीदो रयणसक्करावालू ।
पंका धूमतमोमहतमप्पहा रज्जुअंतरिया ॥१४४॥

मुरजदले सप्तमह्य: उपरितो रत्नशर्करा वालु: ।
पङ्का धूमतमोमहातमप्रभा रज्ज्वंतरिता ॥१४४॥

मुरव । मुरजदले सप्तमह्यः उपरित आरभ्य रत्नशर्करा वालुका पङ्कधूमतमोमहातमः प्रभाः सर्वा रज्ज्वंतरिताः । अत्र प्रभाशब्दः प्रत्येकमभिसम्बन्ध्यः ॥१४४॥

इस १४ घन राजू प्रमाण क्षेत्र से बाहर त्रस जीव नहीं पाये जाते इसीलिये इसका त्रस नाली नाम सार्थक है ।

त्रस नाली के अधोभाग में स्थित पृथ्वियों के भेद आदि कहते हैं:—

गाथार्थ:—अर्ध मृदङ्गाकार में सात पृथ्वियाँ हैं । सबसे ऊपर (१) रत्नप्रभा फिर (२) शर्करा प्रभा (३) वालुका प्रभा (४) पङ्क प्रभा (५) धूम प्रभा (६) तमः प्रभा और (७) महातमः प्रभा हैं । प्रत्येक पृथ्वी एक एक राजू के अन्तर मे है ॥१४४॥

विशेषार्थ —लोक का आकार डेढ़ मृदङ्ग के सदृश कहा गया है । जिसमें अर्धमृदङ्गाकार में अधो लोक है । इसी अर्धमृदङ्गाकार में ही रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियां हैं । ये सातों पृथ्वियाँ सार्थक नाम वाली हैं, क्योंकि इनमें क्रम से रत्न, मिश्री, रेत, कादा (कीचड़) धुँआ, अन्धकार और महा अंधकार के सदृश प्रभा पाई जाती है । ये सातों पृथ्वियां एक एक राजू के अन्तर से स्थित हैं । मध्य लोक और प्रथम पृथ्वी के बीच में कोई अन्तर नहीं है अर्थात् प्रथम पृथ्वी का उपरिम भाग मध्य लोक है । (मध्य लोक के तल भाग से स्पर्शित ही प्रथम पृथ्वी है) । प्रथम पृथ्वी से एक राजू के अन्तर पर दूसरी पृथ्वी है । इसी प्रकार तीसरी आदि पृथ्वियां एक एक राजू के अन्तराल से हैं । यहां प्रभा शब्द प्रत्येक भूमि के साथ लगा लेना चाहिए ।

अथ तासां संज्ञान्तराण्याह—

घम्मा वंसा मेघा अंजणरिट्ठा य होंति अणिउज्झा ।
छट्ठी मघवी पुढवी सत्तमिया माघवी णामा ॥१४५॥

घर्मा वंशा मेघा अञ्जनारिष्टा च भवन्ति अनियोध्याः ।
षष्ठी मघवी पृथ्वी सप्तमिका माघवी नाम ॥१४५॥

घम्मा । घर्मा वंशा मेघा अञ्जनारिष्टाश्च भवन्ति अनियोध्याः याद्दच्छिकनामानः षष्ठी मघवी पृथ्वी सप्तमी माघवी नाम ॥१४५॥

इन पृथ्वियों के नामान्तर कहते हैं—

गाथार्थ:—१ घर्मा २ वंशा ३ मेघा ४ अञ्जना ५ अरिष्टा ६ मघवी, और ७ माघवी ये सात पृथ्वियाँ अनियोध्या अर्थात् अर्थरहित नाम वाली हैं ॥१४५॥

विशेषार्थ:—सातों नरक पृथ्वियों के घर्मा, वंशा, मेघा, अञ्जना, अरिष्टा, मघवी और माघवी ये अनादिरूढ पर्यायान्तर नाम हैं । इन नामों का कोई अर्थ नहीं है ।

अथ तत्र प्रथमपृथिवीभेदमाह—

रयणप्पहा तिहा खरभागा पंकापबहुलभागाचि ।
सोलस चउरासीदी सीदी जोयणसहस्सबाहल्ला ॥१४६॥

रत्नप्रभा त्रिधा खरभागा पङ्कापूबहुलभागा इति ।
षोडश चतुरशीतिः अशीतिः योजनसहस्र बाहुल्या ॥१४६॥

रय । रत्नप्रभा त्रिधा खरभागा पङ्कभागा अप्‌बहुलभागा चेति षोडश चतुरशीति अशीति-योजनसहस्रबाहुल्या[1] ॥१४६॥

प्रथम पृथ्वी के भेद:—

गाथार्थ:—रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन भाग हैं—खरभाग, पङ्कभाग और अप्‌बहुल भाग । इन तीनों का बाहुल्य क्रमशः सोलह हजार, चौरासी हजार और अस्सी हजार योजन है ॥१४६॥

विशेषार्थ:—प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी खरभाग, पङ्कभाग और अप्‌बहुल भाग के भेद से तीन प्रकार की कही गई है । इनमें खरभाग नामका प्रथम भाग सोलह हजार (१६०००) योजन मोटा, द्वितीय भाग चौरासी हजार (८४०००) योजन मोटा और तृतीय भाग अस्सी हजार (८००००) योजन मोटा है ।

षोडशभुवां संज्ञा गाथाद्वयेनाह—

चित्ता वज्जा वेलुरियलोहिदक्खा मसारगल्लवणी ।
गोमेदा य पवाला जोदिरसा अंजणा णवमी ॥१४७॥
अंजणमूलिय अंका फलिहा चंदण सवत्थगा वकुला ।
सेलक्खा य सहस्सा एगेगा लोगचरिमगया ॥१४८॥

चित्रा वज्रा वैडूर्या लोहिताख्या मसारकल्पावनिः ।
गोमेदा च प्रवाला जोतिरसा अञ्जना नवमी ॥१४७॥
अञ्जनमूलिका अङ्का स्फटिका चन्दना सर्वार्थका बकुला ।
शैलाख्या च सहस्रा एकैका लोकचरमगता ॥१४८॥

चित्ता । चित्रा वज्रा वैडूर्या लोहिताख्या मसारकल्पावनिः गोमेदा च प्रवाला ज्योतिरसा अञ्जना नवमी ॥१४७॥

अंजण । अञ्जनमूलिका अङ्का स्फटिका चन्दना सर्वार्थका बकुला शैलाख्या च सहस्रप्रमिता एकैका लोकचरमगताः ॥१४८॥

---

1 बाहल्या (ब०) ।

खरभाग में १६ पृथ्वियां हैं, उनके नाम दो गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थः—१ चित्रा २ वज्रा ३ वैडूर्या ४ लोहिता ५ मसारकल्पा ६ गोमेदा ७ प्रवाला ८ ज्योतिरसा ९ अञ्जना १० अञ्जनमूलिका ११ अङ्का १२ स्फटिका १३ चन्दना १४ सर्वार्थका १५ बकुला और १६ शैला ये एक एक हजार योजन प्रमाण बाहुल्य वाली सोलह पृथ्वियां हैं जो लोक के अन्त तक गई हैं ॥१४७-१४८॥

विशेषार्थ:—खरभाग सोलह हजार योजन मोटा है; उसमें एक एक हजार योजन मोटी चित्रा आदि सोलह पृथ्वियां हैं; इनके बीच में किसी प्रकार का अन्तराल नहीं है। जैसे किसी अपेक्षा पर्वत के भाग कर लिए जाते हैं, उसी प्रकार यहां खर भाग के सोलह भाग किए गए हैं। ये सोलह पृथ्वियाँ लोक के अन्त तक फैली हैं अर्थात् इन पृथ्वियों की लम्बाई चौड़ाई लोक के समान है।

अथ द्वितीयादीनां बाहुल्यमाह—

बत्तीसमट्ठवीसं चउवीसं वीस सोलसट्ठाणि ।
हेट्ठिमछप्पुढवीणं सहस्समाणेहिं बाहुलियं ॥१४९॥

द्वात्रिंशदष्टाविंशतिः चतुर्विंशतिः विंशति षोडशाष्टौ ।
अधस्तनषट्पृथ्वीनां सहस्रमानैः बाहुल्यम् ॥१४९॥

बत्तीस । द्वात्रिंशदष्टाविंशतिः चतुर्विंशतिः विंशतिः षोडशाष्टौ अधस्तनषट्पृथ्वीनां योजनसहस्रबाहुल्यम् ज्ञेयम् ॥१४९॥

द्वितीयादि नरक पृथ्वियों का बाहुल्य कहते हैं :—

गाथार्थः—शर्करा पृथ्वी को आदि लेकर नीचे की छह पृथ्वियों की मोटाई क्रमशः बत्तीस हजार, (३२०००) अट्ठाईस हजार (२८०००), चौबीस हजार (२४०००), बीसहजार (२००००), सोलह हजार (१६०००) और आठ हजार (८०००) योजन प्रमाण है ॥१४९॥

विशेषार्थ—द्वितीय शर्करा पृथ्वी की मोटाई ३२००० योजन, बालुका की २८००० योजन, पङ्क प्रभा की २४००० योजन, धूमप्रभा की २०००० योजन, तमः प्रभा की १६००० योजन और महातमः प्रभा की ८००० योजन मोटाई है।

अथ तासु स्थितपटलानां स्थानान्याह—

सत्तमखिदिबहुमज्झे बिलाणि सेसासु अप्पबहुलोत्ति ।
हेट्ठुवरिं च सहस्सं वज्जिय पडलक्कमे होंति ॥१५०॥

सप्तमक्षितिबहुमध्ये बिलानि शेषासु अब्बहुलान्तम् ।
अध उपरि च सहस्रं वर्जयित्वा पटलक्रमेण भवन्ति ॥१५०॥

सप्तम। सप्तमक्षितिबहुमध्ये बिलानि शेषासु अब्बहुलभागपर्यन्तं अध उपरि च सहस्रयोजनं वर्जयित्वा पटलक्रमेण भवन्ति ॥१५०॥

उन पृथ्वियों में स्थित पटलों का स्थान कहते हैं —

गाथार्थ:—सप्तम पृथ्वी के बहुमध्य भाग में बिल हैं तथा अवशेष पाँच पृथ्वियों एवं प्रथम पृथ्वी के अब्बहुल भाग पर्यन्त नीचे व ऊपर एक एक हजार योजन छोड़कर पटलों के क्रम से बिल पाए जाते हैं ॥१५०॥

विशेषार्थ:—सातवीं पृथ्वी आठ हजार योजन मोटी है। इसमें ऊपर और नीचे बहुत मोटाई छोड़कर मात्र बीच में बिल हैं। किन्तु, अन्य पाँच पृथ्वियों में और प्रथम पृथ्वी के अब्बहुल भाग में नीचे ऊपर की एक एक हजार योजन मोटाई छोड़कर बीच में जितने जितने पटल बने हैं, उनमें अनुक्रम से बिल पाए जाते हैं।

अथ प्रथमादीनां बिलसंख्यामाह —

तीसं पणुवीसं पण्णरसं दस तिण्णि पंचहीणेक्कं।
लक्खं सुद्धं पञ्च य पुढवीसु कमेण णिरयाणि ॥१५१॥

त्रिंशत् पञ्चविंशतिः पञ्चदश दश त्रीणि पञ्चहीनैकम्।
लक्षं शुद्धं पञ्च च पृथ्वीषु क्रमेण निरयाणि ॥१५१॥

तीसं। त्रिंशत् पञ्चविंशतिः पञ्चदश दश त्रीणि पञ्चहीनैकं एतत्सर्वं लक्षं शुद्धं पञ्च च पृथ्वीषु क्रमेण निरयाणि बिलानि इत्यर्थः ॥१५१॥

प्रथमादि पृथ्वियों में बिलों की संख्या —

गाथार्थ:—छह पृथ्वियों में क्रमशः तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दश लाख, तीन लाख और पाँच कम एक लाख बिल हैं तथा सातवीं पृथ्वी में शुद्ध अर्थात् लक्ष विशेषण रहित केवल पाँच बिल ही हैं ॥१५१॥

विशेषार्थ:—प्रथम नरक में ३००००००, दूसरे में २५०००००, तीसरे में १५०००००, चौथे में १००००००, पाँचवें में ३०००००, छठेमें पाँच कम एक लाख और सातवें नरक में पाँच बिल हैं।

अथ तास्वतिशीतोष्णविभागमाह—

रयणप्पहपुढवीदो पंचमतिचउत्थओत्ति अदिउण्हं।
पञ्चमतुरिए छट्ठे सत्तमिए होदि अदिसीदं ॥१५२॥

रत्नप्रभापृथ्वीतः पञ्चमत्रिचतुर्थ ओत्ति अदिउण्हं।
पञ्चमतुरीये षष्ठ्यां सप्तम्यां भवति अतिशीतम् ॥१५२॥

रयणा । रत्नप्रभापृथ्वीमारभ्य पञ्चमभुवः त्रिचतुर्भागपर्यन्तं अत्युष्णं पञ्चमभुवश्चतुर्थे भागे षष्ठ्यां सप्तम्यां च भुवि भवत्यतिशीतम् ॥१५२॥

उन पृथ्वियों में अति शीत और अति उष्ण का विभाग कहते हैं :—

गाथार्थ:—रत्नप्रभा पृथ्वी से पाँचवीं पृथ्वी के तीन चौथाई भाग पर्यन्त अति उष्ण वेदना और पाँचवीं पृथ्वी के शेष एक चौथाई भाग में तथा छठी और सातवीं पृथ्वीमें अतिशय शीतवेदना है ॥१५२॥

विशेषार्थ:—रत्नप्रभा पृथ्वी से पाँचवीं धूमप्रभा पृथ्वी के तीन बटे चार भाग ($\frac{३००००००\times३}{४}$) अर्थात् ३०००००० + २५००००० + १५००००० + १०००००० + २२५००० = ८२२५००० (बयासी लाख पच्चीस हजार) बिलों पर्यन्त अति उष्ण वेदना है और पाँचवीं पृथ्वी के शेष एक बटे चार भाग ($\frac{३००००००\times१}{४}$) से सातवीं पृथ्वी पर्यन्त अर्थात् ७५००० + ९९९९५ + ५ = १,७५००० (एक लाख पिचहत्तर हजार) बिलों में अत्यन्त शीतवेदना है।

अथ नारकेन्द्रकश्रेणीबद्धसंख्यामाह—

तेरादि दुहीणिंदय सेढीबद्धा दिसासु विदिसासु ।
उणवण्णडदालादी एक्केक्केणूणया कमसो ॥१५३॥

त्रयोदशाद्या द्विहीना इन्द्रकाः श्रेणीबद्धा दिशासु विदिशासु ।
एकोनपञ्चाशदष्टचत्वारिंशादि एकैकेन न्यूनाः क्रमशः ॥१५३॥

तेरादि । त्रयोदशाद्या द्विहीना इन्द्रकाः श्रेणीबद्धा दिशासु विदिशासु यथासंख्यमेकोनपञ्चाशद-ष्टचत्वारिंशदादि पटलं पटलं प्रत्येकैकेन न्यूनाः क्रमशः ॥१५३॥

उन पृथ्वियों के इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या कहते हैं—

गाथार्थ:—तेरह को आदि करके प्रत्येक पृथ्वी में उत्तरोत्तर दो दो हीन इन्द्रक बिल हैं तथा श्रेणीबद्ध बिल दिशा और विदिशा में क्रमशः ४९ और ४८ से प्रारम्भ होकर प्रत्येक पटल प्रति एक एक हीन होते गए हैं ॥१५३॥

विशेषार्थ:—प्रथम पृथ्वी में सर्व इन्द्रक बिल तेरह हैं। शेष छह पृथ्वियों में वे क्रमशः दो दो हीन होते गये हैं (११, ९, ७, ५, ३, १)। इस प्रकार सर्व इन्द्रक ४९ हैं। एक एक पटल में एक एक इन्द्रक बिल है, अतः पटल भी ४९ ही हैं। प्रथम पृथ्वी के प्रथम पटल की एक एक दिशा में उनचास उनचास (४९, ४९) श्रेणीबद्ध बिल, और एक एक विदिशा में अड़तालीस, अड़तालीस (४८, ४८) श्रेणीबद्ध बिल हैं, तथा द्वितीयादि पटल से सप्तम पृथ्वी के अन्तिम पटल पर्यन्त एक एक दिशा एवं विदिशा में क्रमशः एक एक घटते हुए श्रेणीबद्ध बिल हैं, अतः सप्तम पृथ्वी के पटल की दिशाओं में तो एक एक श्रेणीबद्ध है किन्तु विदिशाओं में उनका अभाव है।

प्रथम पृथ्वी के प्रथम पटल की दिशामें ४९ और विदिशा में ४८ श्रेणीबद्ध हैं। प्रथम पृथ्वी के अन्तिम पटल की दिशामें ३७ और विदिशा में ३६ श्रेणीबद्ध हैं। द्वितीय पृथ्वी के प्रथम पटल की दिशामें ३६ और विदिशा में ३५ श्रेणीबद्ध हैं। द्वितीय पृथ्वी के अन्तिम पटल की दिशा में २६ और विदिशा में २५ श्रेणीबद्ध हैं। तृतीय पृथ्वी के प्रथम पटल की दिशा में २५ और विदिशा में २४ श्रेणीबद्ध हैं। तृतीय पृथ्वी के अन्तिम पटल की दिशा में १७ और विदिशा में १६ श्रेणीबद्ध हैं। चतुर्थ पृथ्वी के प्रथम पटल की दिशा में १६ और विदिशा में १५ श्रेणीबद्ध हैं। चतुर्थ पृथ्वी के अन्तिम पटल की दिशा में १० और विदिशा में ६ श्रेणीबद्ध हैं। पंचम पृथ्वी के प्रथम पटल की दिशामें ९ और विदिशा में ८ श्रेणीबद्ध हैं। पंचम पृथ्वी के अन्तिम पटल की दिशा में ५ और विदिशा में ४ श्रेणीबद्ध हैं। षष्ठ पृथ्वी के प्रथम पटल की दिशा में ४ और विदिशा में ३ श्रेणीबद्ध हैं। षष्ठ पृथ्वी के अन्तिम पटल की दिशा में २ और विदिशा में १ श्रेणीबद्ध हैं। सप्तम पृथ्वी में एक ही पटल है, और उसकी एक एक दिशा में एक एक ही श्रेणीबद्ध बिल है, तथा विदिशाओं में श्रेणीबद्ध बिलों का अभाव है।

अथ तात्स्विन्द्रकसंज्ञां गाथाषट्केनाह—

सीमंतणिरयरोरवभंतुब्भंतिंदया य संभंतो।
तत्तोवि असंभंतो वीभंतो तत्तओ तसिओ ॥१५४॥
तसिदो वक्कंतक्खो होदि अवक्कंतणाम विक्कंतो।
पढमे तडगो थणगो वणगो मणगो खडा खडिगा ॥१५५॥
जिब्भा जिब्भिगसण्णातो लोलिगलोलवत्थथणलोलो।
बिदिए तत्तो तविदो तवणो तावणणिदाहा य ॥१५६॥
उज्जलिदो पज्जलिदो संजलिदो संपजलिदणामा य।
तदिए आरा मारा तारा चच्चा य तमगी य ॥१५७॥
घादा घसा चउत्थे तमगा भमगा य झसग अंधिंदा।
तिमिसा य पंचमे हिमवद्दललल्लगिनयं छट्ठे ॥१५८॥

सीमन्तनिरयरौरवभ्रान्तोद्भ्रान्तेन्द्रकाः च संभ्रान्तः।
ततोऽपि असम्भ्रान्तः विभ्रान्तः तप्तः त्रस्तः ॥१५४॥
त्रसितो वक्रान्ताख्यः भवति अवक्रान्तनाम विक्रान्तः।
प्रथमायां ततकः स्तनकः वनकः मनकः खडा खडिका ॥१५५॥
जिह्वा जिह्विकसंज्ञा ततो लोलिकलोलवत्सस्तनलोलाः।
द्वितीयायां तप्तः तपितः तपनः तापननिदाघौ च ॥१५६॥

उज्ज्वलितः प्रज्वलितः सञ्ज्वलितः सम्प्रज्वलितनामा च ।
तृतीयायां आरा मारा तारा चर्चा च तमकी च ॥१५७॥
घाटा घटा चतुर्थ्यां तमका भ्रमका च झषका अन्धेन्द्रा ।
तिमिस्रा च पञ्चम्यां हिमवार्दलिलल्लकास्त्रितयं षष्ठ्याम् ॥१५८॥

सीमंत । सीमन्तनिरयरौरवभ्रान्तोद्भ्रान्तेन्द्रकाः च सम्भ्रान्तः ततोऽप्यसम्भ्रान्तः विभ्रान्तः नवमः त्रस्तः ॥१५४॥

तसिदो । त्रसितो वक्रान्ताख्यातो[1] भवति अवक्रान्तनाम विक्रान्तः प्रथमपृथिव्यां १३ ततकः स्तनकः वनकः मनकः खडा खडिका ॥१५५॥

जिब्भा । जिह्वा जिह्विकसंज्ञा ततो लौलिकलोलवत्सस्तनलोलाः द्वितीयायां ११ तप्तस्तपितस्तपनस्तापननिदाघौ च ॥१५६॥

उज्ज । उज्ज्वलितः प्रज्वलितः सञ्ज्वलितः सम्प्रज्वलितनामा च तृतीयायां ९ आरा मारा तारा चर्चा च तमकी च ॥१५७॥

घाडा । घाटा घटा चतुर्थ्यां ७ तमका भ्रमका च झषका अन्धेन्द्रा तिमिस्रा च पञ्चम्यां ५ हिमवार्दलिलल्लक्यः इति त्रयं ३ षष्ठ्याम् ॥१५८॥

इन्द्रक बिलों के नाम छह गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ:—१ सीमन्त २ निरय ३ रौरव ४ भ्रान्त ५ उद्भ्रान्त ६ सम्भ्रान्त ७ असम्भ्रान्त ८ विभ्रान्त ९ त्रस्त १० त्रसित ११ वक्रान्त १२ अवक्रान्त और १३ विक्रान्त, ये तेरह इन्द्रक बिल प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी में हैं। १ ततक २ स्तनक ३ वनक ४ मनक ५ खडा ६ खडिका ७ जिह्वा ८ जिह्विक ९ लौकिक १० लोलवत्स और ११ स्तनलोला, ये ग्यारह इन्द्रक बिल द्वितीय शर्कराप्रभा पृथ्वी में हैं। १ तप्त २ तपित ३ तपन ४ तापन ५ निदाघ ६ उज्ज्वलित ७ प्रज्वलित ८ सञ्ज्वलित ९ सम्प्रज्वलित, ये नौ इन्द्रक बिल तृतीय बालुकाप्रभा पृथ्वी में हैं। १ आरा २ मारा ३ तारा ४ चर्चा ५ तमकी ६ घाटा और ७ घटा, ये सात इन्द्रक बिल चतुर्थ पङ्कप्रभा पृथ्वी में हैं। १ तमका २ भ्रमका ३ झषका ४ अन्धेन्द्रा और ५ तिमिस्रका ये पांच इन्द्रक बिल पञ्चम धूमप्रभा पृथ्वी में हैं तथा १ हिम २ वार्द्लि और ३ लल्लकि, ये तीन इन्द्रक बिल छठी तमःप्रभा पृथ्वी में हैं ॥१५४–१५८॥

विशेषार्थ:—सुगम है।

ओहिट्ठाणं चरिमे तो सीमंतादिसेढिबिलणामा।
पुव्वादिदिसे कंखापिवास महकंख अइपिवासा य ॥१५९॥

अप्रतिस्थानं चरमे ततः सीमन्तादिश्रेणिबिलनामानि ।
पूर्वादिदिशायां काङ्क्षा पिपासा महाकाङ्क्षा अतिपिपासा च ॥१५९॥

---

१ वक्रान्ताख्यो (ब०)।

मोहि । अवधिस्थानं अप्रतिष्ठितस्थानं वा सप्तमे चरमायां । ततः सीमन्तादिश्रेणिबिलनामानि । घर्मायाः पूर्वादिदिशायां काङ्क्षा पिपासा महाकाङ्क्षा अतिपिपासा च ॥१५९॥

गाथार्थ:—सप्तम महातमःप्रभा पृथ्वी में अवधि स्थान (अप्रतिष्ठित) नामका एक ही इन्द्रक बिल है। सीमन्तादिक इन्द्रक सम्बन्धी पूर्वादि दिशाओं में जो चार चार श्रेणीबद्ध बिल है उनके नाम १. कांक्षा, २ पिपासा, ३ महाकांक्षा, और ४ महापिपासा है ॥१५९॥

विशेषार्थ—नरक पृथ्वियां सात हैं। इनमें जीवों की उत्पत्ति स्थानों के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक ये तीन नाम हैं। जो अपने पटल के सर्व बिलों के ठीक मध्य में होता है, उसे इन्द्रक कहते हैं, इस इन्द्रक बिल की चारों दिशाओं एवं विदिशाओं में जो बिल पंक्ति रूप से स्थित हैं, उन्हें श्रेणीबद्ध, तथा जो श्रेणीबद्ध बिलों के बीच में बिखरे हुए पुष्पों के समान यत्र तत्र स्थित हैं, उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं। प्रत्येक नरक में क्रम से १३,११,९,७,५,३ और १ (इस प्रकार ४९) इन्द्रक बिल हैं। गाथा नं० १५४ से १५८ तक तथा गाथा १५९ के पूर्वार्ध में इन ४९ इन्द्रक बिलों के नाम दर्शाये गये हैं।

प्रत्येक पृथ्वी के प्रथम इन्द्रक की चारों दिशाओं में जो श्रेणीबद्ध बिल हैं, उनमें से चारों दिशाओं के प्रथम प्रथम श्रेणीबद्ध बिलों के नाम दर्शाये जाने के लिए गाथा १५९ के उत्तरार्ध में प्रथम घर्मा पृथ्वी के प्रथम सीमन्त इन्द्रक बिल की चारों दिशाओं में जो ४९,४९ श्रेणीबद्ध बिल हैं, उनमें से चारों दिशाओं के प्रथम श्रेणीबद्धों के क्रम से कांक्षा, पिपासा, महाकांक्षा और महापिपासा ये नाम कहे गये हैं।

अथोत्तरार्थस्य पातनिकां गर्भीकृत्य गाथात्रयमाह—

> वंसतदगे अणिच्छा अविज्ज महणिच्छ महअविज्जा य ।
> तत्ते दुक्खा वेदा महदुक्ख महादिवेदा य ॥१६०॥
>
> वंशातप्तके अनिच्छा अविद्या महानिच्छा महाऽविद्या च ।
> तप्ते दुःखा वेदा महादुःखा महादिवेदा च ॥१६०॥

वंस। वंशायास्तप्तकेन्द्रके अनिच्छा अविद्या महानिच्छा महाविद्या च। मेघायाः तप्तेन्द्रके दुःखा वेदा महादुःखा महावेदा च ॥१६०॥

शेष २४ श्रेणीबद्ध बिलों के नाम तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं:—

गाथार्थ:—वंशा पृथ्वी के तप्त इन्द्रक बिल की चारों दिशाओं में क्रम से अनिच्छा, अविद्या, महानिच्छा और महाविद्या नामक चार प्रथम श्रेणीबद्ध बिल हैं। मेघा पृथ्वी के तप्त इन्द्रक की चारों दिशाओं में दुःखा, वेदा, महादुःखा और महावेदा नामक चार बिल हैं ॥१६०॥

विशेषार्थ:—द्वितीय वंशा पृथ्वी के तत नामक प्रथम इन्द्रक बिल की चारों दिशाओं में क्रमशः ३६,३६ श्रेणीबद्ध बिल हैं। उनमें से प्रथम प्रथम श्रेणीबद्धों के क्रम से अनिच्छा, अविद्या, महानिच्छा और महाविद्या नाम हैं, तथा तृतीय मेघा पृथ्वी के तप्त नामक प्रथम इन्द्रक की चारों दिशाओं में २५, २५ श्रेणीबद्ध हैं। उनमें से प्रथम प्रथम श्रेणीबद्धों के क्रम से दुःखा, वेदा, महादुःखा और महावेदा नाम हैं।

आराए दु णिसिट्ठाणिरोहअणिसिट्ठमहणिरोहा य।
तमग णिरुद्धविमद्दण अइपुव्वणिरुद्धमहविमद्दणया ॥१६१॥

आरायां तु निसृष्टा निरोधा अनिसृष्टा महानिरोधा च।
तमके निरुद्धविमर्दनअतिपूर्वनिरुद्धमहाविमर्दनाः ॥१६१॥

आराए। अञ्जनायाः आरेन्द्रके तु निसृष्टा निरोधा अनिसृष्टा महानिरोधा च। अरिष्टायाः तमकेन्द्रके निरुद्धविमर्दन अतिनिरुद्धमहाविमर्दनकाश्च ॥१६१॥

गाथार्थ:—आरा इन्द्रक की चारों दिशाओं में क्रमशः निसृष्टा, निरोधा, अनिसृष्टा और महानिरोधा नामक श्रेणीबद्ध हैं। तथा तमका इन्द्रक की चारों दिशाओं में क्रमशः निरुद्ध, विमर्दन, अतिनिरुद्ध और महाविमर्दन श्रेणीबद्ध बिल हैं ॥१६१॥

विशेषार्थ—चतुर्थ अञ्जना पृथ्वी के आरा नामक प्रथम इन्द्रक की चारों दिशाओं में क्रमशः १६,१६ श्रेणीबद्ध हैं, उनमें प्रथम प्रथम श्रेणीबद्धों के क्रम से निसृष्टा, निरोधा, अनिसृष्टा और महानिरोधा नाम हैं। पञ्चम अरिष्टा पृथ्वी के तमका नामक प्रथम इन्द्रक की चारों दिशाओं में ९,९ श्रेणीबद्ध बिल हैं, उनमें प्रथम प्रथम श्रेणीबद्धों के क्रम से निरुद्ध विमर्दन, अतिनिरुद्ध और महा विमर्दन नाम हैं।

हिमगा णीला पंका महणील महादिपंक सत्तमये।
पढमो कालो रउरवमहकालमहादिरउरवया ॥१६२॥

हिमके नीला पङ्का महानीला महादिपङ्का सप्तम्याम्।
प्रथमः कालः रौरवमहाकालमहादिरौरवाः ॥१६२॥

हिमगा। मघव्याः हिमकेन्द्रके नीला पङ्का महानीला महापङ्का च। सप्तम्यां प्रथमः कालः रौरवमहाकालमहारौरवाः ॥१६२॥

गाथार्थ:—हिम इन्द्रक बिल की चारों दिशाओं में नीला, पङ्का, महानीला और महापङ्का श्रेणीबद्ध हैं। तथा सप्तम पृथ्वी के अवधिस्थान इन्द्रक की चारों दिशाओं में क्रमशः काल, रौरव, महाकाल और महारौरव नाम के श्रेणीबद्ध बिल हैं ॥१६२॥

विशेषार्थ—षष्ठ मघवा पृथ्वी के हिम नामक प्रथम इन्द्रक बिल की चारों दिशाओं में ४,४ श्रेणीबद्ध बिल हैं। उनमें प्रथम प्रथम श्रेणीबद्ध बिलों की क्रमशः नीला, पङ्का, महानीला और महापङ्का संज्ञाएँ हैं। सप्तम माघवी पृथ्वी में अवधिस्थान नामक एक ही इन्द्रक बिल है और इसकी चारों दिशाओं में क्रमशः काल, रौरव, महाकाल और महारौरव नाम के कुल ४ ही श्रेणीबद्ध बिल हैं।

अथ प्रतिपृथ्वि प्रथमपटलधनं धृत्वा चरमपटलधनमानेतुं चरमपटलधनं धृत्वा प्रथमपटलधनमानेतुं वा गाथामाह—

वेगपदं चयगुणिदं भूमिम्हि मुहम्मि रिणधनं च कए ।
मुहभूमीजोगदले पदगुणिदे पदधणं होदि ॥१६३॥

व्येकपदं चयगुणितं भूमौ मुखे ऋणं धनं च कृते ।
मुखभूमियोगदले पदगुणिते पदधनं भवति ॥१६३॥

वेगपदं। प्रथमपटलविग्विदिग्गतश्रेणिबद्धे ४९+४८ मेलयित्वा ९७ चतुर्भिः सङ्गुणिते ३८८ भूमिर्भवति। चरमपटलविग्विदिग्गतश्रेणिबद्धे ३७+३६ मेलयित्वा ७३ चतुर्भिर्गुणिते २९२ मुखं स्यात्। तत्र भूमौ ३८८ मुखे च २९२ यथासंख्येन विगतैकपदं १२ चय ८ गुणितं ९६ ऋणे धने च कृते २९२।३८८ मुखभूमी स्याताम्। तयोर्योगे ६८० दलिते ३४० पद १३ गुणिते ४४२० प्रथमपृथ्वीश्रेणिबद्ध-सङ्कलितपदधनं भवति। इन्द्रकसहितमेवमानेतव्यं ४४३३। समस्तपृथ्वीश्रेणीबद्धानयनेऽप्येवमेवानेतव्यम्। तत्र मुखं ५ भूमिः ३८९ ॥१६३॥

अब प्रत्येक पृथ्वी के प्रथम पटल का धन रखकर अन्तिम पटल का धन लाने के लिए तथा अन्तिम पटल का धन रख कर प्रथम पटल का धन लाने के लिए कहते हैं—

गाथार्थ:—एक कम पद का चय में गुणा कर जो लब्ध प्राप्त हो उसे भूमि में से घटा देने पर मुख की प्राप्ति होती है तथा मुख में जोड़ देने से भूमि की प्राप्ति होती है। मुख और भूमि को जोड़कर आधा करने से जो लब्ध प्राप्त हो उसमें पदका गुणा करने से पद धन की प्राप्ति हो जाती है ॥१६३॥

विशेषार्थ:—स्थान को पद या गच्छ कहते हैं। अथवा जिन स्थानों में समान रूप से वृद्धि या हानि होती है, उन्हें पद या गच्छ कहते हैं। अनेक स्थानों में समान रूप से होने वाली वृद्धि अथवा हानि के प्रमाण को चय या उत्तर कहते हैं। आदि और अन्त स्थान में जो हीन प्रमाण होता है उस मुख या प्रभव तथा अधिक प्रमाण को भूमि कहते हैं। पद में से एक घटाकर चय से गुणित कर जो लब्ध आवे उसे मुख में जोड़ने से भूमि और भूमि में से घटा देने पर मुख का प्रमाण प्राप्त होता है।

प्रथम पृथ्वी के प्रथम पटल की दिशा विदिशा के श्रेणीबद्ध बिलों को जोड़कर चार से गुणा करने पर भूमि होती है। जैसे : ४९+४८=९७×४=३८८ (भूमि), तथा इसी पृथ्वी के अन्तिम पटल की दिशा विदिशाओं के श्रेणीबद्ध बिलों को जोड़कर चार से गुणित करने पर मुख प्राप्त होता

है। जैसे :—३७+३६=७३×४=२९२ मुख हुआ। पदमें से एक घटाकर चय से गुणित कर जो लब्ध आवे उसे मुख में जोड़ने से भूमि और भूमि में से घटा देने पर मुख का प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे:—१३—१=१२×८ चय=९६। भूमि ३८८—९६=२९२ मुख और मुख २९२+९६=३८८ भूमि प्राप्त हुई।

भूमि और मुख को जोड़, आधा कर उसे पद से गुणा कर देने पर सङ्कलित पद धन प्राप्त हो जाता है। जैसे:—

भूमि मुख पद

३८८+२९२=६८०÷२=३४०×१३=४४२० प्रथम पृथिवी के श्रेणीबद्ध बिल।

२८४+२०४=४८८÷२=२४४×११=२६८४ द्वितीय पृथिवी के श्रेणीबद्ध बिल।

१९६+१३२=३२८÷२=१६४×९=१४७६ तृतीय पृथिवी के श्रेणीबद्ध बिल।

१२४+७६=२००÷२=१००×७=७०० चतुर्थ पृथिवी के श्रेणीबद्ध बिल।

६८+३६=१०४÷२=५२×५=२६० पञ्चम पृथिवी के श्रेणीबद्ध बिल।

२८+१२=४०÷२=२०×३=६० षष्ठ पृथिवी के श्रेणीबद्ध बिल।

४+०=४ =४ सप्तम पृथिवी के श्रेणीबद्ध बिल।

इन्द्रक सहित श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या भी इसी प्रकार निकाल लेना चाहिए। प्रथम पृथ्वी के इन्द्रक एवं श्रेणीबद्ध ४४३३, द्वितीय पृथ्वी के २६९५ इत्यादि।

सातों पृथ्वियों के इन्द्रक और श्रेणीबद्धों की सामूहिक संख्या निकालने के लिए मुख ५ और भूमि ३८९ है, अतः ३८९+५=३९४÷२=१९७×४९=९६५३ इन्द्रक+श्रेणीबद्ध।

इन्द्रकश्रेणीबद्धप्रमाणानयने सङ्कलितसूत्रमाह—

पदमेगेणविहीणं दुभाजिदं उत्तरेण संगुणिदं।
पभवजुदं पदगुणिदं पदगणिदं तं विजाणाहि ॥१६४॥

पदमेकेन विहीनं द्विभक्तं उत्तरेण सङ्गुणितं।
प्रभवयुतं पदगुणितं पदगणितं तत् विजानीहि ॥१६४॥

पद। पदं १३ एकेन विहीनं १२ द्वाभ्यां भक्तं ६ उत्तरेण ८ सङ्गुणितं ४८ प्रभव २९२ युतं ३४० पद १३ गुणितं ४४२० तत्सङ्कलितपदगणितमिति विजानीहि। एवं द्वितीयादि सर्वपृथिव्यामानेतव्यम् ॥१६४॥

इन्द्रक और श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण निकालने लिए करण सूत्र कहते हैं—

गाथार्थ:—पदमें से एक घटाकर दो का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें उत्तर अर्थात् चय से गुणाकर प्रभव अर्थात् मुख में जोड़कर पद से गुणा करने पर पद धन प्राप्त होता है ॥१६४॥

विशेषार्थः—पद १३ है, इसमें से १ घटाने पर १२ अवशेष रहते हैं, उन्हें २ से भाजित करने पर ६ लब्ध प्राप्त हुआ। इस ६ को उत्तर अर्थात् चय (८) से गुणित करने पर ४८ प्राप्त होते हैं। इनको आदि धन २९२ में जोड़ने पर मध्य धन (२९२ + ४८)=३४० प्राप्त हुआ। इसे पद (१३) से गुणित करने पर (३४० × १३)=४४२० प्रथम नरक के कुल बिलों की संख्या प्राप्त होती है। इसी प्रकार द्वितीयादि पृथिवियों में भी जानना चाहिये। यथा.—

पृथिवियाँ—पद—१ = ÷ २ = × चय = + मुख = × पद = श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण
प्रथम पृ०—१३-१=१२ ÷ २=६ × ८=४८ + २९२ = ३४० × १३ = ४४२० श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण
द्वि० पृथिवी–११—१=१० ÷ २=५ × ८=४० + २०४ = २४४ × ११ = २६८४ श्रेणीबद्ध बिलोंका प्रमाण
तृतीय पृथिवी—९—१ = ८ ÷ २ = ४ × ८ = ३२ + १३२ = १६४ × ९ = १४७६ श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण
चतुर्थ पृथिवी—७—१ = ६ ÷ २ = ३ × ८ = २४ + ७६ = १०० × ७ = ७०० श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण
पञ्चम पृथिवी—५—१ = ४ ÷ २ = २ × ८ = १६ + ३६ = ५२ × ५ = २६० श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण
षष्ठ पृथिवी—३—१ = २ ÷ २ = १ × ८ = ८ + १२ = २० × ३ = ६० श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण
सप्तम पृथिवी—१ ४ श्रेणीबद्ध बिलों का प्रमाण

अथ प्रकारान्तरेण सङ्कलितानयनमाह—

पुढविंदयमेगूणं अद्धकयं वग्गियं च मूलजुदं ।
अट्ठगुणं चउसहिदं पुढविंदयताडियं च पुढविधणं ॥१६५॥

पृथिवीन्द्रकमेकोनं अर्धकृतं वर्गितं च मूलयुतम् ।
अष्टगुणं चतुः सहितं पृथ्वीन्द्रकताडितं च पृथ्वीधनम् ॥१६५॥

पुढवि। पृथ्वीन्द्रकसंख्या १३ एकोनां १२ संस्थाप्य अनेन हानिवृद्ध्योरभावात् प्रथमपटले चयशलाका प्ररूपिता। अद्धकयं अर्धीकृतां चयशलाकां ६।८ स्थापयेत्। अनेन सर्वत्र पटलेषु रूपोनगच्छार्धमात्राश्चयशलाकाः समीकृता जाता इति अद्धकयमित्युक्तं। वग्गियं च अत्र विगतेषु सर्वत्र रूपचतुष्टयमपनीय पृथक् संस्थाप्य अपनीतदिग्विदिग्गतसंख्या ३६।८ सर्वत्र समाना। इदमेवादिधनं। इदं सर्वत्र सदृशमेवावतिष्ठते। इदं दृष्ट्वा वर्गितं चेत्युक्तं। मूलजुदं आदिधनवर्गमूल प्रमाणया चयशलाकया ६।८ युतं आदिधनं ३६।८ गुणकारयोः साम्यात् आदिधने ३६ चयशलाका ६ संयोज्य ४२ अट्ठगुणं दिग्विदिग्गतगुणकाराष्टकेन ८ चयशलाकायुतादि ३६।६ धनं ४२ गुणयेत् ३३६। अथ चउसहियं पूर्वं पृथक्स्थापितदिग्गताधिकरूपचतुष्टयं मेलयेत् ३४० पुढविंदयताडियं च इदं समीकरणवशात् सर्वेषु पटलेषु समानमिति कृत्वा एकस्मिन् पटले १ एतावन्ति श्रेणिबद्धानि यदि स्युः ३४० तदा अयोदशसु

पटलेषु १३ किंचित्म्युरिति चंराशिकेन समुत्पन्नगुणकारेण पृथ्वीन्द्रकप्रमाणेन ताडिते पुद्धविषणं पृथ्वीगतश्रेणीबद्धप्रमाणं स्यात् ४४२०। एवं द्वितीयादिषु पृथ्वीष्वपि श्रेणिबद्धप्रमाणमानेतव्यम् ॥१६५॥

अन्य प्रकार से सङ्कलन धन निकालने का विधानः—

गाथार्थः—विवक्षित पृथिवी के इन्द्रक बिलों की संख्या में से एक घटा कर आधा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसका वर्ग कर उसमें उसीका वर्गमूल जोड़ देना चाहिये, तथा आठ से गुणा कर पुनः ४ जोड़ने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे इन्द्रक बिलों की संख्या से गुणित कर देने पर विवक्षित पृथ्वी का सङ्कलित धन प्राप्त हो जाता है ॥१६५॥

विशेषार्थः—प्रथम पृथ्वी में १३ इन्द्रक हैं। एक कम करने पर (१३−१) १२ प्राप्त हुए। प्रथम पटल में हानि वृद्धि का अभाव होने से १ कम करके चय की शलाका १२ ली गई है। चय शलाका १२ के आधे ($\frac{12}{1} \times \frac{1}{2}$)=६ हुए। प्रत्येक पटल में ८,८ श्रेणीबद्ध बिलों की हानि है, अतः चय का प्रमाण ६×८ होता है। इस प्रकार एक कम पटल संख्या के आधे में चय शलाकाओं का जोड़ प्राप्त होता है, (यह चय धन है)। इसलिये गाथा में "अद्धकयं" 'आधा किया गया' ऐसा कहा गया है।

यहाँ पर दिशाओं में से सर्वत्र चार विमान कम करके पृथक् स्थापित करने चाहिए। इस प्रकार चारों दिशाओं में से एक एक विमान कम करने पर प्रथम पृथ्वी के अन्तिम पटल की प्रत्येक दिशा व विदिशा में विमानों की संख्या ३६ प्राप्त होती है (जो १२ के आधे ६ का वर्ग) (६×६=३६) है।

दिशा विदिशा आठ हैं, अतः सर्व दिशाओं और विदिशाओं में ३६×८ विमान संख्या प्राप्त होती है (यह आदि धन है)। सर्वत्र अर्थात् प्रत्येक दिशा व विदिशा में ३६,३६ समान संख्या को देख कर गाथा में "वग्गिय च" अर्थात् १२ के आधे ६ का वर्ग किया गया, ऐसा कहा गया है।

आदि धन (३६×८) में, ३६ के वर्गमूल (६) को चय शलाका प्रमाण करके अर्थात् ६ को ८ से गुणित करके, [६×८ (चय धन)] जोड़ना चाहिए। आदि धन (३६×८) में गुणकार ८ है और चय शलाका (चय धन) ६×८ में भी गुणकार ८ है, अतः आदि धन के ३६ में चय शलाका के ६ जोड़ देने से (३६+६)=४२ हो जाते हैं।

दिशा—विदिशा ४,४ अर्थात् ८ हैं, अतः आठ गुणकार कहा गया है। चय शलाका (चय धन) ६×८ को आदि धन ३६×८ में जोड़ने पर ४२ का गुणकार ८ प्राप्त होता है, अतः ८ से ४२ को गुणित करने पर दिशा विदिशाओं में श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या (४२×८)=३३६ प्राप्त होती है।

दिशाओं में बिल संख्या चार अधिक होने के कारण पूर्व में जो ४ पृथक् स्थापित किये गये थे, उन ४ को मिला देने पर (३३६ × ४) = ३४० श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या प्राप्त होती है। (यह मध्य धन है)

समीकरण (सर्वत्र समान) करने के अभिप्राय से सर्व पटलों में श्रेणीबद्ध बिलों को समान संख्या मान ली गई है। यदि १ पटल में ३४० श्रेणीबद्ध बिल हैं, तब १३ पटलों में कितने होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक द्वारा ३४० को प्रथम पृथ्वी के इन्द्रक विमानों की संख्या १३ से गुणा करने पर (३४० × १३) = ४४२० प्रथम पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या प्राप्त हो जाती है।

नोटः—प्रथम पृथ्वी में १३ पटल हैं। प्रत्येक पटल में एक एक इन्द्रक बिल है, अतः इन्द्रक बिल भी १३ हैं। १३ से गुणा करने के लिए इन्द्रक बिल प्रमाण से गुणा करने के लिए कहा गया है।

इसी प्रकार द्वितीयादि पृथ्वियों में भी श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या प्राप्त कर लेना चाहिए।

प्रथम पृथ्वी के प्रथम एवं अन्तिम पटल के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों का चित्रण—

प्रथम पृथ्वी के प्रथम इन्द्रक का परिवार—

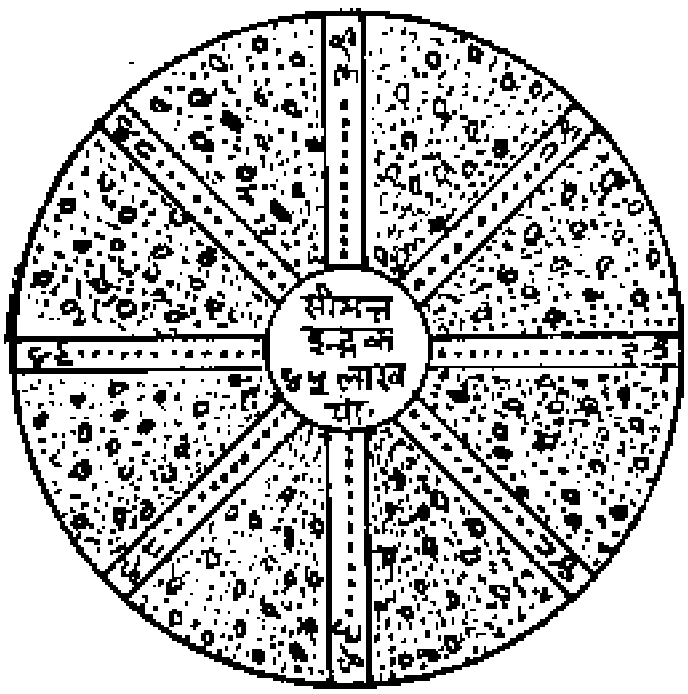

प्रथम पृथ्वी के अन्तिम इन्द्रक का परिवार—

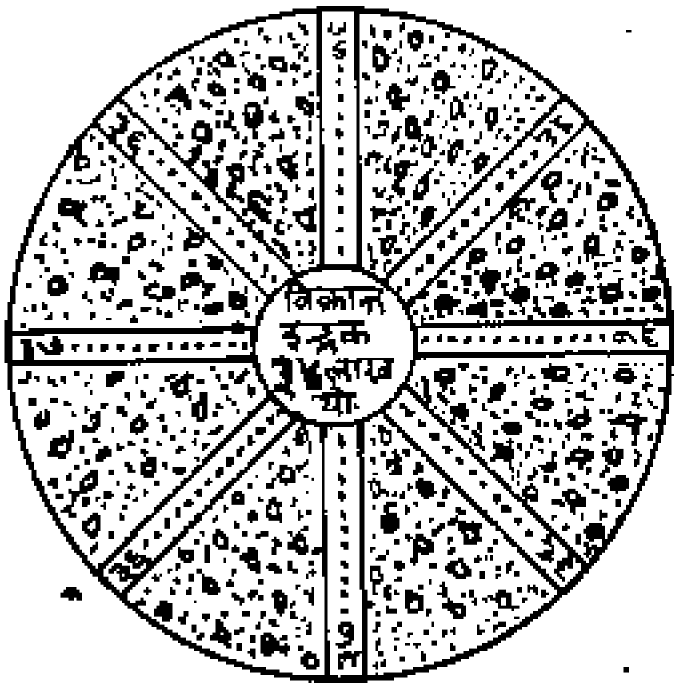

प्रथम पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या सिद्ध करने के लिए यन्त्र											सिद्ध हुए प्रथम पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिलों की संख्या का स्पष्ट विवरण			
क्रमांक	इन्द्रक नाम	दिशागत	विदिशागत	दिशाओं में से एक कम करने पर	कम किया हुआ प्रमाण	दोनों का मिला कर		अधिक धन	आदि धन	चय धन	मुख	गुणकार	चय	अधिक रूप
१	सीमन्त	४९×४	४८×४	४९—१=४८×४	१×४	४८×८	१×४	४	३६×८	८८८८८८८८८८८८	३६	८	८८८८८८	४
२	निरय	४८×४	४७×४	४८—१=४७×४	१×४	४७×८	१×४	४	३६×८	८८८८८८८८८८८	३६	८	८८८८८८	४
३	रौरव	४७×४	४६×४	४७—१=४६×४	१×४	४६×८	१×४	४	३६×८	८८८८८८८८८८	३६	८	८८८८८८	४
४	भ्रान्त	४६×४	४५×४	४६—१=४५×४	१×४	४५×८	१×४	४	३६×८	८८८८८८८८८	३६	८	८८८८८८	४
५	उद्भ्रान्त	४५×४	४४×४	४५—१=४४×४	१×४	४४×८	१×४	४	३६×८	८८८८८८८८	३६	८	८८८८८८	४
६	संभ्रान्त	४४×४	४३×४	४४—१=४३×४	१×४	४३×८	१×४	४	३६×८	८८८८८८८	३६	८	८८८८८८	४
७	असंभ्रांत	४३×४	४२×४	४३—१=४२×४	१×४	४२×८	१×४	४	३६×८	८८८८८८	३६	८	८८८८८८	४
८	विभ्रान्त	४२×४	४१×४	४२—१=४१×४	१×४	४१×८	१×४	४	३६×८	८८८८८	३६	८	८८८८८८	४
९	त्रस्त	४१×४	४०×४	४१—१=४०×४	१×४	४०×८	१×४	४	३६×८	८८८८	३६	८	८८८८८८	४
१०	त्रसित	४०×४	३९×४	४०—१=३९×४	१×४	३९×८	१×४	४	३६×८	८८८	३६	८	८८८८८८	४
११	वक्रान्त	३९×४	३८×४	३९—१=३८×४	१×४	३८×८	१×४	४	३६×८	८८	३६	८	८८८८८८	४
१२	अवक्रा०	३८×४	३७×४	३८—१=३७×४	१×४	३७×८	१×४	४	३६×८	८	३६	८	८८८८८८	४
१३	विक्रान्त	३७×४	३६×४	३७—१=३६×४	१×४	३६×८	१×४	४	३६×८		३६	८	८८८८८८	४

योग फल (३६×८+८×६+४) × १३ = ३४० × १३ = ४४२०

अथ प्रकीर्णकसंख्यानयनमाह—

सेढीणं विच्चाले पुप्फपइण्णय इव ट्ठिया णिरया ।
होंति पइण्णयणामा सेढिंदयहीणरासिसमा ॥१६६॥

श्रेणीनां अन्तराले पुष्पप्रकीर्णकानि इव स्थितानि निरयाणि ।
भवन्ति प्रकीर्णकनामानि श्रेणीन्द्रकहीनराशिसमानि ॥१६६॥

सेढीणं । श्रेणीनां विच्चाले अन्तराले पुष्पाणि प्रकीर्णकानीव स्थितानि निरयाणि भवन्ति । प्रकीर्णकनामानि श्रेणीन्द्रक ४४२०।१३ हीनराशि ३०००००० समानानि २९९५५६७ । एवं पृथ्वीं पृथ्वीं प्रत्यानेतव्यम् ॥१६६॥

प्रकीर्णक बिलों की संख्या निकालने के लिए कहते हैं : —

गाथार्थः—श्रेणीबद्ध बिलों के बीचों बीच बिखरे हुए फूलों के सदृश यत्र तत्र स्थित बिलों को प्रकीर्णक कहते हैं । विवक्षित पृथ्वी के सम्पूर्ण बिलों की संख्या में से इन्द्रक और श्रेणीबद्धों की संख्या घटा देने पर प्रकीर्णक बिलों की संख्या प्राप्त होती है ॥१६६॥

विशेषार्थः—दिशा और विदिशा में स्थित श्रेणीबद्ध बिलों के अन्तराल में पंक्ति रहित पुष्पों के सदृश यत्र तत्र बिखरे हुए बिलों को प्रकीर्णक बिल कहते हैं । प्रत्येक पृथ्वी के सम्पूर्ण बिलों की संख्या में से इन्द्रक और श्रेणीबद्धों की संख्या घटाने पर प्रकीर्णक बिलों की संख्या प्राप्त होती है । जैसे: —

सर्व बिल—(श्रेणीबद्ध + इन्द्रक) = प्रकीर्णक
३००००००—(४४२० + १३) = २९९५५६७ प्रथम पृथ्वी के प्रकीर्णकों की संख्या ।
२५०००००—(२६८४ + ११) = २४९७३०५ द्वितीय पृथ्वी के प्रकीर्णकों की संख्या ।
१५०००००—(१४७६ + ९) = १४९८५१५ तृतीय पृथ्वी के प्रकीर्णकों की संख्या ।
१००००००—(७०० + ७) = ९९९२९३ चतुर्थ पृथ्वी के प्रकीर्णकों की संख्या ।
३०००००—(२६० + ५) = २९९७३५ पञ्चम पृथ्वी के प्रकीर्णकों की संख्या ।
९९९९५—(६० + ३) = ९९९३२ षष्ठ पृथ्वी के प्रकीर्णकों की संख्या ।
५—(४ + १) = ० सप्तम पृथ्वी में प्रकीर्णकों का अभाव है ।

अथ नरकबिलानां विस्तारप्रतिपादनार्थमाह—

पंचमभागपमाणा णिरयाणं होंति संखवित्थारा ।
सेसचउपंचभागा असंखवित्थारया णिरया ॥१६७॥

पञ्चमभागप्रमाणा निरयाणां भवन्ति संख्यविस्ताराः ।
शेषचतुः पञ्चभागा असंख्यविस्ताराणि नरकाणि ॥१६७॥

पंचम । पञ्चमभागप्रमाणा ३०००००० नरकाणां भवन्ति संख्येयविस्ताराः ६००००० तच्छेषचतुः पञ्चभागाः २४००००० असंख्येयविस्ताराणि नरकाणि संख्येयविस्तारेषु ६००००० इन्द्रकापनयने १३ कृते ५९९९८७ अवशिष्टानि संख्येयविस्तारप्रकीर्णकानि भवन्ति । असंख्येयविस्तारेषु २४००००० श्रेणीबद्धा ४४२० पनयने कृते २३९५५८० शेषाणि असंख्येयविस्तारप्रकीर्णकानि भवन्ति प्रत्येकं द्वितीयादिपृथिवीनां समस्ते च धनमेवमानेतव्यम् ॥१६७॥

नरक बिलों का विस्तार:—

गाथार्थ:—प्रत्येक पृथ्वी के सम्पूर्ण बिलों के १/५ वें भाग प्रमाण बिल संख्यात योजन विस्तार वाले हैं, और शेष ४/५ भाग प्रमाण असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं ॥१६७।

विशेषार्थ:—३०००००० का १/५ = ६००००० संख्यात यो० वि० वाले इन्द्रक+प्रकीर्णक तथा शेष ४/५ भाग अर्थात् ३०००००० का ४/५ = २४००००० असंख्यात यो० वि० वाले श्रेणी० + प्रकीर्णक बिलों की प्रथम पृथ्वी की संख्या है। इन ६००००० में से १३ इन्द्रक घटा देने पर ५९९९८७ संख्यात योजन विस्तार वाले प्रकीर्णक शेष रहते हैं। तथा २४ लाख में से ४४२० श्रेणीबद्ध घटा देने पर २३९५५८० असंख्यात योजन विस्तार वाले प्रकीर्णक बिल शेष रहते हैं। द्वितीयादि पृथ्वियों की संख्या भी इसी प्रकार निकाल लेनी चाहिए। जैसे:—

२५००००० × १/५ =	५००००० — ११	= ४९९९८९	द्वितीय पृथ्वी के संख्यात यो० वि० वाले प्रकीर्णक
२५००००० × ४/५ =	२०००००० — २६८४	= १९९७३१६	द्वितीय पृथ्वी के असंख्यात यो० वि० वाले प्रकीर्णक
१५००००० × १/५ =	३००००० — ९	= २९९९९१	तृतीय पृथ्वी के संख्यात यो० वि० वाले प्रकीर्णक
१५००००० × ४/५ =	१२००००० — १४७६	= ११९८५२४	तृतीय पृथ्वी के असंख्यात यो० वि० वाले प्रकीर्णक
१०००००० × १/५ =	२००००० — ७	= १९९९९३	चतुर्थ पृथ्वी के संख्यात यो० वि० वाले प्रकीर्णक
१०००००० × ४/५ =	८००००० — ७००	= ७९९३००	चतुर्थ पृथ्वी के असंख्यात यो० वि० वाले प्रकीर्णक
३००००० × १/५ =	६०००० — ५	= ५९९९५	पञ्चम पृथ्वी के संख्यात यो० वि० वाले प्रकीर्णक
३००००० × ४/५ =	२४०००० — २६०	= २३९७४०	पञ्चम पृथ्वी के असंख्यात यो० वि० वाले प्रकीर्णक
९९९९५ × १/५ =	१९९९९ — ३	= १९९९६	षष्ठ पृथ्वी के संख्यात यो० वि० वाले प्रकीर्णक
९९९९५ × ४/५ =	७९९९६ — ६०	= ७९९३६	षष्ठ पृथ्वी के असंख्यात यो० वि० वाले प्रकीर्णक
५ × १/५ =	१ — १	= ०	सप्तम पृथ्वी के संख्यात यो० वि० वाले प्रकीर्णक
५ × ४/५ =	४ — ४	= ०	सप्तम पृथ्वी के असंख्यात यो० वि० वाले प्रकीर्णक

अथ संख्यातासंख्यातयोर्नियतत्वं प्रदर्शयति—

इंदयसेढीबद्धा पइण्णयाणं कमेण वित्थारा ।
संखेज्जमसंखेज्जं उभयं च य जोयणाण हवे ॥१६८॥

इन्द्रकश्रेणीबद्धप्रकीर्णकानां क्रमेण विस्ताराः ।
संख्येयमसंख्येयमुभयं च च योजनानां भवेत् ॥१६८॥

इंदय । छायामात्रमेवार्थः ॥१६८॥

बिलों में संख्यात और असंख्यात का नियतपना दिखाने के लिए कहते हैं:—

गाथार्थ:—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों का विस्तार क्रम से संख्यात योजन, असंख्यात योजन और संख्यात एवं असंख्यात अर्थात् उभयरूप होता है ॥१६८॥

विशेषार्थ:—इन्द्रक बिल संख्यात योजन विस्तार वाले ही होते हैं । श्रेणीबद्ध बिल असंख्यात योजन विस्तार वाले ही होते हैं । तथा प्रकीर्णकों में कुछ प्रकीर्णक संख्यात योजन और कुछ असंख्यात योजन विस्तार वाले होते हैं । जैसे:—सातों पृथ्वियों के ४९ इन्द्रक बिल और १६७९९५१ प्रकीर्णक बिल संख्यात योजन विस्तार वाले ही हैं; तथा ९६०४ श्रेणीबद्ध और ६७१०३९६ प्रकीर्णक बिल असंख्यात योजन विस्तार वाले ही हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण बिल (६७१०३९६ + १६७९९५१ + ९६०४ + ४९) = ८४००००० प्रमाण हैं ।

अथेन्द्रकगतचन्द्रत्वं विशेषयति—

माणुसखेत्तपमाणं पढमं चरिमं तु जंबुदीवसमं ।
उभयविसेसे रूऊणिंदयभजिदम्हि हाणिचयं ॥१६९॥

मानुषक्षेत्रप्रमाणं प्रथमं चरमं तु जम्बूद्वीपसमम् ।
उभयविशेषे रूपोनेन्द्रकभक्ते हानिचयं ॥१६९॥

माणुस । मानुषक्षेत्रप्रमाणं ४५००००० प्रथमेन्द्रकप्रमाणं चरमेन्द्रकं जम्बूद्वीप १००००० समं उभयोर्विशेषे शोधने ४४००००० रूपन्यूनेन्द्रक ४८ भक्ते शेषे च $\frac{३२}{४८}$ षोडशभिरपवर्तिते ९१६६६ $\frac{२}{३}$ हानिचयं ज्ञातव्यं । एतद्धानिचयं पञ्चचत्वारिंशल्लक्षे स्फेटने कृते ४४०८३३३ $\frac{१}{३}$ द्वितीयेन्द्रकायामप्रमाणं स्यात् । एवमुपर्युपरीन्द्रकायामप्रमाणे ४४०८३३३ $\frac{१}{३}$ तद्धानिमेव ९१६६६ $\frac{२}{३}$ स्फेटयित्वा अवधिस्थानगतो ४९ इन्द्रकायामप्रमाणं स्यात् ॥१६९॥

इन्द्रक बिलों का विस्तार दिखाते हैं:—

गाथार्थ:—प्रथम इन्द्रक बिल का विस्तार मनुष्य क्षेत्र प्रमाण तथा अन्तिम इन्द्रक का विस्तार जम्बूद्वीप प्रमाण है। दोनों का शोधन कर, एक कम इन्द्रकों के प्रमाण का भाग देने पर हानि चय प्राप्त होता है ॥१६९॥

विशेषार्थ:—प्रथम सीमन्त इन्द्रक बिल का विस्तार मनुष्य क्षेत्र सदृश अर्थात् ४५००००० योजन प्रमाण है और अन्तिम अवधि स्थान इन्द्रक बिल का विस्तार जम्बूद्वीप सदृश अर्थात् १००००० योजन प्रमाण है। इन दोनों का शोधन करने पर (४५०००००—१०००००) =४४००००० लाख योजन शेष रहे। इनमें एक कम इन्द्रकों का अर्थात् ४९—१=४८ का भाग देने पर ९१६६६ $\frac{३२}{४८}$ अर्थात् $\frac{२}{३}$ योजन प्रत्येक इन्द्रक का हानि चय है। इस हानि चय को ४५००००० (४५ लाख) में से घटा देने पर दूसरे निरय इन्द्रक का (४५०००००—९१६६६ $\frac{२}{३}$) =४४०८३३३ $\frac{१}{३}$ योजन प्रमाण प्राप्त होता है। ४४०८३३३ $\frac{१}{३}$ योजन में से ९१६६६ $\frac{२}{३}$ घटा देने पर तीसरे रौरव इन्द्रक का ४३१६६६६ $\frac{२}{३}$ योजन प्रमाण प्राप्त होता है। इसी प्रकार उत्तरोत्तर हानि चय घटाते हुए निम्नलिखित प्रकार विस्तार प्राप्त होगा :—

[चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिये]

प्रथम पृथ्वी		द्वितीय पृथ्वी		तृतीय पृथ्वी		चतुर्थ पृथ्वी		पञ्चम पृथ्वी		षष्ठ पृथ्वी		सप्तम पृथ्वी	
इन्द्रक	विस्तार योजनों में	इन्द्रक	विस्तार योजनों में	इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार	इन्द्रक	विस्तार
सीमन्त	४५००००० यो०	ततक	३३०८३३३ $\frac{१}{३}$ यो.	तप्त	२३००००० यो	आरा	१४७५००० यो.	तमका	८३३३३३ $\frac{१}{३}$ यो.	हिम	३७५००० यो	अप्रतिष्ठान	१०००००
निरय	४४०८३३३ $\frac{१}{३}$,,	स्तनक	३२१६६६६ $\frac{२}{३}$,,	तपित	२२०८३३३ $\frac{१}{३}$,,	मारा	१३८३३३३ $\frac{१}{३}$,,	भ्रमका	७४१६६६ $\frac{२}{३}$,,	वार्द०	२८३३३३ $\frac{१}{३}$,,		
रौरव	४३१६६६६ $\frac{२}{३}$,,	वनक	३१२५००० ,,	तपन	२११६६६६ $\frac{२}{३}$,,	तारा	१२९१६६६ $\frac{२}{३}$,,	झषका	६५०००० ,,	लल्लक	१९१६६६ $\frac{२}{३}$,,		
भ्रान्त	४२२५००० ,,	मनक	३०३३३३३ $\frac{१}{३}$,,	तापन	२०२५००० ,,	चर्चा	१२००००० ,,	अन्धेन्द्रा	५५८३३३ $\frac{१}{३}$,,				
उद्भ्रांत	४१३३३३३ $\frac{१}{३}$,,	खडा	२९४१६६६ $\frac{२}{३}$,,	निदाघ	१९३३३३३ $\frac{१}{३}$,,	तमकी	११०८३३३ $\frac{१}{३}$,,	तिमि०	४६६६६६ $\frac{२}{३}$,,				
सम्भ्रांत	४०४१६६६ $\frac{२}{३}$,,	खडि०	२८५०००० ,,	उज्ज०	१८४१६६६ $\frac{२}{३}$,,	घाटा	१०१६६६६ $\frac{२}{३}$,,						
असं०	३९५०००० ,,	जिह्वा	२७५८३३३ $\frac{१}{३}$,,	प्रज्व.	१७५०००० ,,	घटा	९२५००० ,,						
विभ्रा.	३८५८३३३ $\frac{१}{३}$,,	जिह्विक	२६६६६६६ $\frac{२}{३}$,,	संज्व	१६५८३३३ $\frac{१}{३}$,,								
त्रस्त	३७६६६६६ $\frac{२}{३}$,,	लोकि.	२५७५००० ,,	संप्रज्व	१५६६६६६ $\frac{२}{३}$,,								
त्रसित	३६७५००० ,,	लोल०	२४८३३३३ $\frac{१}{३}$,,										
वक्रांत	३५८३३३३ $\frac{१}{३}$,,	स्तनलोला	२३९१६६६ $\frac{२}{३}$,,										
अव०	३४९१६६६ $\frac{२}{३}$,,												
विक्रा०	३४००००० ,,												

अथेन्द्रकादित्रयाणां बाहुल्यं प्रमाणयति—

छक्कट्ठचोद्दसादिसु पडिपुढविमुखद्धसहियकोसेसु ।
छहिं भजिदेसु बहल्लं इंदयसेढीपइण्णाणं ॥१७०॥

षडष्टचतुर्दशादिषु प्रतिपृथ्वीमुखार्धसहितक्रोशेषु ।
षड्भिः भक्तेषु बाहुल्यं इन्द्रकश्रेणीप्रकीर्णानाम् ॥१७०॥

छक्कट्ठ । षट्का ६ ष्ट ८ चतुर्दशसु १४ आदिषु प्रथमपृथ्वीमुखादिषु षड्भिर्भक्तेषु १, ४/३, ७/३ प्रथमक्षितीन्द्रकादिबाहुल्यं स्यात् । द्वितीयादि प्रतिपृथ्विमुखार्धं ३।४।७। सहितेषु तेषु ६।८।१४ क्रोशेषु ९ १२।२१ च १२।१६।२८ च १५।२०।३५ च १८।२४।४२। च २१।२८।४९ च २४।३२।० षड्भिर्भक्तेषु ३/२।२।७/२ इत्यादि बाहुल्यं इन्द्रकश्रेणीबद्धप्रकीर्णकानाम् ॥१७०॥

इन्द्रकादि तीनों बिलों के बाहुल्य का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ:— प्रत्येक पृथिवी के इन्द्रकादि बिलों का बाहुल्य निकालने के लिए आदि अर्थात् मुख छह, आठ और चौदह में मुख (६,८,१४) का आधा (३,४,७) जोड़कर छह का भाग देने से क्रमशः इन्द्रक, श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक बिलों का बाहुल्य प्राप्त होता है ॥१७०॥

विशेषार्थ:—प्रथम पृथ्वी का आदि अर्थात् मुख ६,८ और १४ है। इसमें दूसरी पृथ्वी से सातवीं पृथ्वी पर्यन्त उत्तरोत्तर इसी आदि अर्थात् मुख के अर्ध भाग को जोड़कर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें ६ का भाग देने पर क्रमशः इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों का बाहुल्य प्राप्त हो जाता है। जैसे: –

	मुख आदि + प्रमाण	अर्ध मुख का = प्रमाण	योग फल ÷	भाग हार	इन्द्रक बिलों का बाहुल्य	श्रेणीबद्धों का बाहुल्य	प्रकीर्णकों का बाहुल्य
१	६,८,१४ +	०,०,० =	६,८,१४ ÷	६ =	१ कोश बाहुल्य	१ १/३ कोश बाहुल्य	२ १/३ कोश बाहुल्य
२	६,८,१४ +	३,४,७ =	९,१२,२१ ÷	६ =	१ १/२ ,, ,,	२ ,, ,,	३ १/२ ,, ,,
३	९,१२,२१ +	३,४,७ =	१२,१६,२८ ÷	६ =	२ ,, ,,	२ २/३ ,, ,,	४ २/३ ,, ,,
४	१२,१६,२८ +	३,४,७ =	१५,२०,३५ ÷	६ =	२ १/२ ,, ,,	३ १/३ ,, ,,	५ ५/६ ,, ,,
५	१५,२०,३५ +	३,४,७ =	१८,२४,४२ ÷	६ =	३ ,, ,,	४ ,, ,,	७ ,, ,,
६	१८,२४,४२ +	३,४,७ =	२१,२८,४९ ÷	६ =	३ १/२ ,, ,,	४ २/३ ,, ,,	८ १/६ ,, ,,
७	२१,२८,० +	३,४,० =	२४,३२,० ÷	६ =	४ ,, ,,	५ १/३ ,, ,,	० ,, ,,

अथ पुनरपि तद्बाहुल्यं प्रकारान्तरेणाह—

रूवहियपुढविसंखं तियचउसत्तेहि गुणिय छब्भजिदे ।
कोसाणं बेहुलियं इंदयसेढीपइण्णाणं ॥१७१॥

रूपाधिकपृथ्वीसंख्यां त्रिकचतुःसप्तभिः गुणयित्वा षड्भक्ते ।
कोशानां बाहुल्यं इन्द्रकश्रेणीप्रकीर्णानाम् ॥१७१॥

रूव । रूपाधिकपृथ्वीसंख्यां २।२।२। एवं ३।३।३ एवं ४।४।४ एवं इत्यादि, त्रि ३ चतु: ४ सप्तभि ७ गुणयित्वा ६।८।१४ एवं ९।१२।२१। एवं १२।१६।२८ इत्यादि प्रत्येकं षड्भिर्भागे कृते १।४/३।७/३।३/२।२।७/२।२।८/३।२८/६ इत्यादि कोशानां बाहुल्यं इन्द्रकश्रेणीबद्धप्रकीर्णकानाम् ॥१७१॥

अन्य प्रकार से इसी बाहुल्य को कहते हैं:—

गाथार्थ:—एक अधिक पृथ्वी संख्या को तीन, चार और सात से गुणित कर छह का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतने कोश प्रमाण क्रमशः इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों का बाहुल्य होता है ।।१७१।।

विशेषार्थ:—नारक पृथिवियों की संख्या में १,१ मिला करके तीन जगह स्थापन कर क्रमशः तीन, चार और सात का गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें ६ का भाग देने से इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णकों का बाहुल्य (ऊँचाई) प्राप्त होता है । जैसे:—

	इन्द्रकों का बाहुल्य ।	श्रेणीबद्धों का बाहुल्य ।	प्रकीर्णकों का बाहुल्य ।
प्रथम पृ.	—१+१=२×३=६÷६=१ कोश	२×४=८÷६=१ १/३ कोश	२×७=१४÷६=२ १/३ कोश
द्वितीय पृ.	—२+१=३×३=९÷६=१ १/२ कोश	३×४=१२÷६=२ "	३×७=२१÷६=३ १/२ "
तृतीय पृ.	—३+१=४×३=१२÷६=२ "	४×४=१६÷६=२ २/३ "	४×७=२८÷६=४ २/३ "
चतुर्थ पृ.	—४+१=५×३=१५÷६=२ १/२ "	५×४=२०÷६=३ १/३ "	५×७=३५÷६=५ ५/६ "
पञ्चम पृ.	—५+१=६×३=१८÷६=३ "	६×४=२४÷६=४ "	६×७=४२÷६= ७ "
षष्ठ पृ.	—६+१=७×३=२१÷६=३ १/२ "	७×४=२८÷६=४ २/३ "	७×७=४९÷६=८ १/६ "
सप्तम पृ.	—७+१=८×३=२४÷६=४ "	८×४=३२÷६=५ १/३ "	प्रकीर्णकों का अभाव है ।

अथेन्द्रकप्रभृतीनां व्यवधानप्रमाणमाह—

पदराहय बिलबहलं पदरट्ठिदभूमिदो विसोहित्ता ।
रूऊणपदहिदाए बिलंतरं उड्ढगं तीए ॥१७२॥

प्रतराहतं बिलबाहुल्यं प्रतरस्थितभूमितः विशोध्य ।
रूपोनपदहृतायां बिलान्तरं ऊर्ध्वगं तस्याः ॥१७२॥

एवं । प्रतर १३ हतं बिलबाहुल्यं इन्द्रक १ श्रेणीबद्ध $\frac{४}{३}$ प्रकीर्णकानां $\frac{७}{३}$ बाहुल्यं १३ । $\frac{५२}{३}$ । $\frac{९१}{३}$ चतुः कोशानां एकयोजने इयतां कोशानां किमिति सम्पाद्य योजनं कृत्वा तद् $\frac{१३}{४}$ । $\frac{५२}{१२}$ । $\frac{९१}{१२}$ प्रतरस्थितभूमितः ऊर्ध्वाधः सहस्रसहस्रयोजनहीना अशीति सहस्रं ७८००० तथा हीनबत्तीस ३०००० अट्ठावीसादि २६००० सहस्रं च समच्छेदेनापनीय $\frac{३११९८७}{४}$ श्रेणीबद्धं चतुर्भिरपवर्त्यापनीय $\frac{२३३९८७}{३}$ प्रकीर्णकं समच्छेदेनापनीय $\frac{९३५९०९}{१२}$ रूपन्यूनपद १२ हृतायां सत्यां $\frac{३११९८७}{४८}$ । $\frac{२३३९८७}{३६}$ । $\frac{९३५९०९}{१४४}$ तत्पृथिव्यां[1] ऊर्ध्वगं बिलान्तरं भवति ॥१७२॥

इन्द्रकादि बिलों के अन्तराल का प्रमाण कहते हैं—

गाथार्थः—प्रत्येक पृथ्वी में बिलों के बाहुल्य को पटलों के प्रमाण से गुणित कर तथा प्रतर स्थित भूमि में से घटा कर, एक कम प्रतरों (पटलों) के प्रमाण का भाग देने पर ऊँचाई में इन्द्रकादिक बिलों का अन्तर प्राप्त होता है ॥१७२॥

विशेषार्थः—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक बिलों के पृथक् पृथक् बाहुल्य को विवक्षित पृथ्वी के पटलों (प्रतरों) की संख्या से गुणित कर प्रतर स्थित भूमि (अर्थात् नीचे ऊपर की एक एक हजार योजन भूमि छोड़ कर जितनी भूमि में बिल स्थित हैं उस) में से विशोध्य अर्थात् घटाकर एक कम प्रतर प्रमाण से भाजित करने पर ऊँचाई में बिलों का अन्तराल प्राप्त होता है। जैसे:—प्रथम पृथ्वी के इन्द्रक का बाहुल्य प्रमाण १ कोश, श्रेणीबद्धों का $\frac{४}{३}$ कोश, और प्रकीर्णकों का $\frac{७}{३}$ कोश है, अतः $१ \times १३ = १३$, $\frac{४}{३} \times १३ = \frac{५२}{३}$ और $\frac{७}{३} \times १३ = \frac{९१}{३}$ को प्रतर स्थित भूमि में से अर्थात् यहाँ अब्बहुल भाग की मोटाई वैसे ८० हजार योजन है किन्तु ऊपर नीचे एक एक हजार योजन में बिल नहीं हैं, अतः प्रतरस्थित भूमि मात्र ७८००० हजार योजन में से घटाने के लिए कोश के योजन बनाने पड़ेंगे। ४ कोश का एक योजन होता है, तो $\frac{१३}{१}$, $\frac{५२}{३}$ और $\frac{९१}{३}$ कोशों के कितने योजन होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करनेपर $\frac{१३}{४}$, $\frac{५२}{१२}$ और $\frac{९१}{१२}$ योजन प्राप्त होते हैं अतः $(\frac{७८०००}{१} — \frac{१३}{४}) \div \frac{१३-१}{१} =$ $(\frac{७८०००}{१} — \frac{१३}{४}) \times \frac{१}{१२} = \frac{३११९८७}{४८} = ६४९९\frac{३५}{४८}$ योजन प्रथम पृथ्वी के इन्द्रक बिलों का अन्तराल है। $(\frac{७८०००}{१} — \frac{५२}{१२}) \div \frac{१२}{१} = (\frac{७८०००}{१} — \frac{५२}{१२}) \times \frac{१}{१२} = \frac{२३३९८७}{३६} = ६४९९\frac{२३}{३६}$ योजन या ६४९९ योजन $२\frac{५}{९}$ कोश प्रथम पृथ्वी में श्रेणीबद्ध बिलों का अन्तराल है।

$(\frac{७८०००}{१} — \frac{९१}{१२}) \div \frac{१२}{१} = (\frac{७८०००}{१} — \frac{९१}{१२}) \times \frac{१}{१२} = \frac{९३५९०९}{१४४} = ६४९९\frac{५३}{१४४}$ योजन या ६४९९ योजन $१\frac{१७}{३६}$ कोश प्रथम पृथ्वी में प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल है।

द्वितीय वंशा पृथ्वी की मोटाई ३२००० यो० है। —२००० यो० = ३०००० योजन अवशेष रहे — $\frac{३००००}{१} — (\frac{१}{१} \times \frac{११}{१} \times \frac{१}{४}) \div \frac{१०}{१} = (\frac{३००००}{१} — \frac{११}{४}) \times \frac{१}{१०} = २९९९\frac{२९}{४०}$ योजन या $२\frac{९}{१०}$ कोश वंशा पृथ्वी में इन्द्रक बिलों का अन्तराल है।

१ तत्पृथिव्याः (ब०)।

३००००/१ — ([illegible] × [illegible] × [illegible]) ÷ [illegible] = (३००००/१ — [illegible]) × [illegible] = [illegible] = २९९९ [illegible] योजन या [illegible] कोश या ३६०० दण्ड श्रेणीबद्ध बिलों का अन्तराल है।

३००००/१ — ([illegible] × [illegible] × [illegible]) ÷ [illegible] = (३००००/१ — [illegible]) × [illegible] = [illegible] = २९९९ [illegible] यो० या [illegible] कोश या २०० दण्ड वंशा पृथ्वी में प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल है।

तृतीय मेघा पृथ्वी की मोटाई २८००० योजन है — २००० यो = २६००० योजन अवशेष रहे — २६०००/१ — ([illegible] × [illegible] × [illegible]) ÷ [illegible] = (२६०००/१ — [illegible]) × [illegible] = [illegible] = ३२४९ [illegible] योजन या [illegible] कोश या ३५०० दण्ड मेघा पृथ्वी में इन्द्रक बिलों का अन्तराल है।

२६०००/१ — ([illegible] × [illegible] × [illegible]) ÷ [illegible] = (२६०००/१ — [illegible]) × [illegible] = [illegible] = ३२४९ [illegible] योजन या १ कोश या २००० दण्ड मेघा पृथ्वी में श्रेणीबद्ध बिलों का अन्तराल है।

२६०००/१ — ([illegible] × [illegible] × [illegible]) ÷ [illegible] = (२६०००/१ — [illegible]) × [illegible] = [illegible] = ३२४९ [illegible] योजन या [illegible] कोश या ५५०० दण्ड मेघा पृथ्वी में प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल है।

चतुर्थ अञ्जना पृथ्वी की मोटाई २४००० यो० है — २००० योजन = २२००० योजन अवशेष रहे — २२०००/१ — ([illegible] × [illegible] × [illegible]) ÷ [illegible] = (२२०००/१ — [illegible]) × [illegible] = [illegible] = ३६६५ [illegible] योजन या [illegible] कोश या ७५०० दण्ड अञ्जना पृथ्वी में इन्द्रक बिलों का अन्तराल है।

२२०००/१ — ([illegible] × [illegible] × [illegible]) ÷ [illegible] = (२२०००/१ — [illegible]) × [illegible] = [illegible] = ३६६५ [illegible] योजन या [illegible] कोश या ५५५५ [illegible] दण्ड अञ्जना पृथ्वी में श्रेणीबद्ध बिलों का अन्तराल है।

२२०००/१ — ([illegible] × [illegible] × [illegible]) ÷ [illegible] = (२२०००/१ — [illegible]) × [illegible] = [illegible] = ३६६४ [illegible] योजन या [illegible] कोश या [illegible] दण्ड अञ्जना पृथ्वी में प्रकीर्णक बिलों का अन्तराल है।

पाँचवीं अरिष्टा पृथ्वी की मोटाई २०००० योजन है — २००० योजन = १८००० योजन अवशेष रहे — १८०००/१ — ([illegible] × [illegible] × [illegible]) ÷ [illegible] = (१८०००/१ — [illegible]) × [illegible] = [illegible] = ४४९९ [illegible] योजन या [illegible] कोश या ५०० दण्ड (धनुष) अरिष्टा पृथ्वी में इन्द्रक बिलों का ऊर्ध्व अन्तराल है।

१८०००/१ — ([illegible] × [illegible] × [illegible]) ÷ [illegible] = (१८०००/१ — [illegible]) × [illegible] = [illegible] = ४४९८ [illegible] योजन या [illegible] कोश या ६००० दण्ड अरिष्टा पृथ्वी में श्रेणीबद्ध बिलों का ऊर्ध्व अन्तराल है।

१८०००/१ — ([illegible] × [illegible] × [illegible]) ÷ [illegible] = (१८०००/१ — [illegible]) × [illegible] = [illegible] = ४४९७ [illegible] योजन या [illegible] कोश या ६५०० दण्ड (धनुष) अरिष्टा पृथ्वी में प्रकीर्णक बिलों का ऊर्ध्व अन्तराल है।

छठी मघवी पृथ्वी की मोटाई १६००० योजन है — २००० योजन = १४००० योजन अवशेष रहे — १४०००/१ — ([illegible] × [illegible] × [illegible]) ÷ [illegible] = (१४०००/१ — [illegible]) × [illegible] = [illegible] = ६९९८ [illegible] योजन या [illegible] कोश या ५५०० दण्ड मघवी पृथ्वी में इन्द्रक बिलों का ऊर्ध्व अन्तराल है।

$\frac{१४०००}{१}$—($\frac{१४}{३}$ × $\frac{३}{१}$ × $\frac{१}{४}$) ÷ $\frac{२}{१}$ = ($\frac{१४०००}{१}$ — $\frac{७}{२}$) × $\frac{१}{२}$ = $\frac{२७९९३}{२×२}$ = ६९९८ $\frac{१}{४}$ योजन या १ कोश या २००० दण्ड मघवी पृथ्वी में श्रेणीबद्ध बिलों का ऊर्ध्व अन्तराल है।

$\frac{१४०००}{१}$—($\frac{२५}{६}$ × $\frac{३}{१}$ × $\frac{१}{२}$) ÷ $\frac{२}{१}$ = ($\frac{१४०००}{१}$ — $\frac{५०}{८}$) × $\frac{१}{२}$ = $\frac{१११९५०}{८×२}$ = ६९९६ $\frac{३५}{४०}$ योजन या ३ $\frac{१}{२}$ कोश या ७५०० दण्ड (धनुष) मघवी पृथ्वी में प्रकीर्णक बिलों का ऊर्ध्व अन्तराल है।

सातों पृथ्वियों के बिलों का ऊर्ध्व अन्तराल

क्रमांक	पृथ्वियां	इन्द्रक बिलों का ऊर्ध्व अन्तर	श्रेणीबद्ध बिलों का ऊर्ध्व अन्तर	प्रकीर्णक बिलों का ऊर्ध्व अन्तर
१	घम्मा	६४९९ $\frac{३५}{४८}$ योजन	६४९९ $\frac{३३}{३६}$ योजन	६४९९ $\frac{५३}{१४४}$ योजन
२	वंशा	२९९९ $\frac{४७}{४८}$ योजन	२९९९ $\frac{१}{८}$ योजन	२९९९ $\frac{३}{८}$ योजन
३	मेघा	३२४९ $\frac{७}{१६}$ योजन	३२४९ $\frac{१}{४}$ योजन	३२४९ $\frac{३}{१६}$ योजन
४	अञ्जना	३६६५ $\frac{५}{१८}$ योजन	३६६५ $\frac{२५}{३६}$ योजन	३६६४ $\frac{१३}{१८}$ योजन
५	अरिष्टा	४४९९ $\frac{१}{१६}$ योजन	४४९८ $\frac{३}{४}$ योजन	४४९७ $\frac{३}{१६}$ योजन
६	मघवी	६९९८ $\frac{१}{१२}$ योजन	६९९८ $\frac{१}{४}$ योजन	६९९६ $\frac{३५}{४०}$ योजन
७	माघवी	०	०	०

अथोपरिमाधस्तनपटलयोरन्तरं निरूपयति—

उवरिमपच्छिमपडला हिट्ठिमपढमिल्लपत्थरंतरयं ।
रज्जू तिसहस्सूणिदघम्मा वंसुदयपरिहीणा ॥१७३॥

उपरिमपश्चिमपटलात् अधस्तनप्रथमप्रस्तरान्तरका ।
रज्जुः त्रिसहस्रोनितघर्मा वंशोदयपरिहीना ॥१७३॥

उवरिम। उपरिमपश्चिमपटलात् अधस्तनप्रथमपटलान्तरका रज्जुः ७ सा कथम्भूता? घर्मोपरिमविश्रान्तस्य घर्मापश्चिमपटलाधस्तनसहस्रं वंशाप्रथमपटलोपरितनसहस्रमिति त्रिसहस्रोनितघर्मा १८०००० वंशो ३२००० दय २१२००० परिहीना स्यात् ७ — २०९००० ॥१७३॥

पहली पृथ्वी के अन्तिम पटल और दूसरी पृथ्वी के प्रथम पटल का अन्तराल:—

गाथार्थ:— ऊपर की घर्मा पृथ्वी के अन्तिम पटल से नीचे की वंशा पृथ्वी के प्रथम पटल तक का अन्तर तीन हजार कम घर्मा और वंशा पृथ्वी के बाहुल्य से हीन एक राजू प्रमाण है ॥१७३॥

विशेषार्थ:—प्रथम पृथ्वी की मोटाई १८०००० योजन और द्वितीय पृथ्वी की मोटाई ३२००० योजन प्रमाण है। इन दोनों का योग २१२००० योजन प्रमाण है। इसमें से प्रथम पृथ्वी के (दो हजार) २००० योजन और द्वितीय पृथ्वी के १००० योजन इस प्रकार कुल तीन हजार योजन (३०००) कम कर देने चाहिए, क्योंकि चित्रा पृथ्वी की मोटाई एक हजार योजन है, जो कि प्रथम पृथ्वी की मोटाई में सम्मिलित है, किन्तु उसकी गणना ऊर्ध्वलोक की मोटाई में की गई है। अतएव १००० योजन चित्रा पृथ्वी के और प्रथम पृथ्वी के नीचे तथा द्वितीय पृथ्वी के ऊपर एक एक हजार योजन में बिल नहीं हैं, अतः २०००+१०००=३००० योजन हुए। इन्हें २१२००० योजन बाहुल्य में से घटाने पर (२१२०००—३०००) =२०९००० योजन प्राप्त होते हैं। इनको एक राजू में से घटा (१ राजू—२०९००० योजन) कर जो अवशेष रहे वही प्रथम पृथ्वी के अन्तिम पटल से द्वितीय पृथ्वी के प्रथम पटल के बीच का अन्तराल है।

अथ ततोऽप्यधोऽधो भूमीनां पटलयोरन्तरं निरूपयति—

कमसो बिसहस्सूणियमेघादीणं च वेहपरिहीणा ।
चरिमे बितिभागाहियजोयणतिसहस्सपरिवज्जा ॥१७४॥

क्रमशो द्विसहस्रोनितमेघादीनां च वेधपरिहीना।
चरमे द्वित्रिभागाधिकयोजनत्रिसहस्रपरिवर्जा ॥१७४॥

कमसो । क्रमशो द्विसहस्रोनितमेघादीनां च वेध २८०००-२००० । २४०००-२००० । २००००-२००० । १६०००-२००० परिहीना चरमान्तरानयने द्वित्रिभागा $\frac{२}{३}$ धिकयोजनत्रिसहस्रपरिवर्जिता[1] रज्जुः । बितिभागाहीय इत्यादेर्वासनोच्यते । सप्तमपृथ्वीबाहुल्ये ८००० श्रेणीबद्धबाहुल्यं $\frac{४}{३}$ योजनीकृत्य $\frac{४}{३×४}$ अपवर्तित श्रेणीबद्ध बाहुल्यं $\frac{१}{३}$ समच्छेदेन $\frac{२४०००}{३}$ अपनीय $\frac{२३९९६}{३}$ अर्धीकृत्य $\frac{११९९८}{३}$ अथवा ३९९९ $\frac{१}{३}$ एतन्मिश्रियपस्तनपटलाधः सहस्रमत्र मेलयित्वा ४९९९ $\frac{१}{३}$ इदं सप्तम पृथ्वीबाहुल्ये ८००० स्फेटिते ३००० $\frac{२}{३}$ तद्वासना भवति ॥१७४॥

अब नीचे नीचे की पृथ्वियों के आदि अन्त पटलों के अन्तर का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ:—अनुक्रम से मेघादि पृथ्वियों के आदि अन्त पटलों का अन्तर २००० योजन से हीन प्रत्येक पृथ्वी के बाहुल्य से कम एक राजू प्रमाण है, तथा अन्तिम पृथ्वी के आदि अन्त पटलों का अन्तर ३०००$\frac{२}{३}$ योजन कम एक राजू प्रमाण है ॥१७४॥

---

1. परिवर्जा (म०) ।

विशेषार्थ:—मेघा पृथ्वी की मोटाई २८००० योजन है। वंशा पृथ्वी के नीचे का १००० योजन + मेघा पृथ्वी के ऊपर का एक हजार योजन (१०००+१०००) = दो हजार योजनों को २८००० योजन वेध में से कम कर देने पर (२८०००—२०००) = २६००० योजन अवशेष रहे। इन्हें एक राजू में से घटा देने पर (१ राजू—२६००० योजन) जो अवशेष रहे, वही वंशा पृथ्वी के अन्तिम पटल से मेघा पृथ्वी के प्रथम पटल का अन्तराल है।

अञ्जना पृथ्वी की मोटाई २४००० योजन है, अतः २४०००—२०००=२२००० योजन कम एक राजू (१ राजू—२२००० योजन) प्रमाण अन्तराल मेघा पृथ्वी के अन्तिम पटल और अञ्जना पृथ्वी के आदि पटल के बीच का प्राप्त होता है।

अरिष्टा पृथ्वी की मोटाई २०००० योजन है, अतः २००००—२०००=१८००० योजन कम एक राजू (१ राजू—१८००० योजन) अञ्जना के अन्तिम पटल और अरिष्टा के प्रथम पटल का अन्तराल है। मघवी पृथ्वी की मोटाई १६००० योजन है, अतः १६०००—२०००=१४००० योजन कम राजू प्रमाण अरिष्टा के अन्तिम पटल और मघवी के आदि पटल के बीच का अन्तराल है। सभी पृथ्वियों में ऊपर नीचे एक एक हजार योजन में बिल नहीं हैं, अतः दो हजार योजन तो ऊपर नीचे पृथ्वी है और बीच में पोल है। अतएव वेध में से २००० योजन घटाकर अवशेष लब्ध को एक राजू में घटा देने पर अन्त आदि बिलों के बीच का अन्तर प्राप्त होता है।

मघवी पृथ्वी के अन्त पटल से माघवी पृथ्वी के आदि पटल का अन्तर ३००० $\frac{१}{६}$ योजन कम एक राजू प्रमाण है। इसकी वासना निम्न प्रकार है :—

सप्तम पृथ्वी की मोटाई ८००० योजन और श्रेणीबद्धों का बाहुल्य $\frac{४}{३}$ कोश है। $\frac{४}{३}$ कोश के $\frac{४}{१२}$ योजन हुए। इन्हें ४ से भाजित करने पर $\frac{१}{३}$ योजन श्रेणीबद्ध बिलों का बाहुल्य प्राप्त हुआ। इसे ८००० मोटाई में से घटाने पर ($\frac{८०००}{१} - \frac{१}{३} = \frac{२४०००-१}{३}$) = $\frac{२३९९९}{३}$ योजन अवशेष रहा इसका आधा ($\frac{२३९९९}{३} \times \frac{१}{२}$) = $\frac{२३९९९}{६}$ योजन अर्थात् ३९९९ $\frac{५}{६}$ योजन प्राप्त हुआ। यही सप्तम पृथ्वी के पटल की उपरिम भूमि की मोटाई है। छठी मघवी पृथ्वी के अन्तिम पटल के नीचे भी १००० योजन मोटाई वाली भूमि है, अतः दोनों को मिलाने से (१०००+३९९९ $\frac{५}{६}$) =४९९९ $\frac{५}{६}$ योजन प्राप्त हुए, इन्हें सप्तम पृथ्वी के बाहुल्य में से घटाने पर (८०००—४९९९ $\frac{५}{६}$) ३००० $\frac{१}{६}$ योजन अवशेष रहे। इन्हें एक राजू में से घटा देने पर (१ राजू—३००० $\frac{१}{६}$) जो अवशेष रहे वही मघवी पृथ्वी के अन्तिम पटल से माघवी पृथ्वी के अवधि पटल के बीच का अन्तराल है।

अथ बिलानां तिर्यगन्तरं गाथाद्वयेन निरूपयति—

संखेज्जवासणिरये तेरिच्छं अंतरं अहण्णमिणं ।
इगिजोयणमद्धजुदं जोयणतिदयं हवे जेट्ठं ॥१७५॥
जोयणसत्तसहस्सं असंखवित्थारजुत्तणिरयाणं ।
अंतरमवरं णेयं जेट्ठमसंखेज्जजोयणयं ॥१७६॥

संख्यातव्यासनिरये तैरश्चमन्तरं जघन्यमिदं ।
एकयोजनमर्धयुतं योजनत्रितयं भवेत् ज्येष्ठम् ॥१७५॥
योजनसप्तसहस्रं असंख्यविस्तारयुक्तनिरयाणाम् ।
अन्तरमवरं ज्ञेयं ज्येष्ठमसंख्येययोजनकम् ॥१७६॥

संखेज्ज । संख्यातव्यासनरकबिले प्रकीर्णके तिर्यगन्तरं जघन्यमिदं एकयोजनमर्धयुतं $\frac{3}{2}$ योजनत्रयं भवति ज्येष्ठम् ॥१७५॥

जोयण । योजनसप्तसहस्रं [1]असंख्यातविस्तारयुक्तनरकाणां तिर्यगन्तरमवरं ज्ञेयं ज्येष्ठमसंख्येययोजनकम् ॥१७६॥

बिलों का तिर्यक् अन्तराल दो गाथाओं द्वारा निरूपित किया जाता है—

गाथार्थः—संख्यात योजन व्यास वाले नरक बिलों का जघन्य तिर्यग् अन्तर $1\frac{1}{2}$ योजन और उत्कृष्ट तिर्यग् अन्तर ३ योजन है ॥१७५॥

असंख्यात योजन व्यास वाले नरक बिलों का जघन्य तिर्यग् अन्तर सात हजार योजन और उत्कृष्ट तिर्यग् अन्तर असंख्यात योजन प्रमाण है ॥१७६॥

विशेषार्थः—सुगम है ।

अथ तेषां बिलानां संस्थानादिकं निरूपयति—

वज्जघणभित्तिभागा वट्टतिचउरंसबहुविहायारा ।
णिरया सयावि भरिया सव्विंदियदुक्खदाईहिं ॥१७७॥

वज्रघनभित्तिभागा वृत्तत्रिचतुरस्रबहुविधाकारा: ।
निरयाः सदापि भृताः सर्वेन्द्रियदुःखदायिभिः ॥१७७॥

वज्ज । वज्रघनभित्तिभागा वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रबहुविधाकारा निरयाः सदापि भृताः सर्वेन्द्रियदुःखदायिभिर्द्रव्यैः ॥१७७॥

---

1. असंख्य (म०) ।

बिलों के आकारादि का निरूपण करते हैं—

गाथार्थ:—जिनकी दीवारें (भीतें) वज्र के समान सघन हैं, ऐसे गोल, त्रिकोन, चौकोर आदि अनेक प्रकार के आकार वाले नरक बिल हैं। ये हमेशा सभी इन्द्रियों को दुःख देने वाली सामग्री से भरे रहते हैं ॥१७७॥

विशेषार्थ:—सुगम है।

अथ तत्रस्थदुर्गन्धं दृष्टान्तमुखेन निर्दिशति—

मज्जारसाणसूयरखरवाणरकरहहत्थिपहुदीणं ।

कुहिदादइदुग्गंधा णिरया णिच्चंधयाररचिदा ॥१७८॥

मार्जारश्वसूकरखरवानरकरभहस्तिप्रभृतीनाम् ।

कुथितादतिदुर्गन्धा निरया नित्यान्धकाररचिताः ॥१७८॥

मज्जार । छायामात्रमेवार्थः ॥१७८॥

नरकबिलों की दुर्गन्ध के बारे में दृष्टान्त द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ:—बिल्ली, कुत्ते, सूअर, गदहे, बन्दर, ऊँट और हाथी आदि के सड़े हुए मृत एवं कलेवर की दुर्गन्ध से भी अत्यधिक दुर्गन्ध नरक बिलों में है तथा वहाँ सर्वदा अन्धकार ही व्याप्त रहता है ॥१७८॥

विशेषार्थ:—सुगम है।

अथ तत्रोत्पद्यमानजीवान् तदुत्पत्तिस्थानं च निर्दिशति—

उप्पज्जंति तहिं बहुपरिग्गहारंभसंचिदाउस्सा ।

उट्टादिमुहायारेसुवरिल्लुववादठाणेसु ॥१७९॥

उत्पद्यन्ते तेषु बहुपरिग्रहारम्भसञ्चितायुष्याः ।

उष्ट्रादिमुखाकारेषु उपरितनोपपादस्थानेषु ॥१७९॥

उप्पज्जंति । उत्पद्यन्ते तेषु बहुपरिग्रहारम्भसञ्चितनरकायुषः उष्ट्रादिमुखाकारेषु उपरितनोपपादस्थानेषु ॥१७९॥

नरकबिलों में उत्पन्न होनेवाले जीवों तथा उनके उत्पत्ति स्थानों के बारे में बताते हैं—

गाथार्थ:—अधिक आरम्भ और परिग्रह के कारण नरकायु का बन्ध करने वाले जीव ही नरकबिलों में जन्म लेते हैं। इनके उपपाद स्थानों का आकार ऊँट आदि के मुख सदृश होता है, तथा ये उपपाद स्थान ऊपर होते हैं ॥१७९॥

विशेषार्थ:—नारकियों के उपपाद स्थान नीचे की भूमि पर नहीं हैं। ऊपर के भाग में ऊँटादि के मुख की तरह सँकरे होते हैं। अधिक आरम्भ और अधिक परिग्रह नरकायु के बन्ध का प्रधान कारण है। इस अवस्था में जो आयुबन्ध करते हैं, वे जीव वहाँ जन्म लेकर घोरातिघोर दुःख भोगते हैं।

अथ तेषामुपपादस्थानानां व्यासबाहुल्ये कथयति—

इगिबितिकोसो वासो जोयणमवि जोयणं सयं जेट्ठं।
उट्टादीणं बहलं सगवित्थारेहिं पंचगुणं ॥१८०॥

एकद्वित्रिकोशः व्यासः योजनमपि योजनशतं ज्येष्ठम्।
उष्ट्रादीनां बाहुल्यं स्वकविस्तारेभ्यः पञ्चगुणम् ॥१८०॥

इगिबि। एकद्वित्रिक्रोशो व्यासः योजनमपि एकद्वित्रियोजनानियोजनानां शतं। एतानि रत्नपूर्व्वीनां यथासंख्येन ज्येष्ठव्यासप्रमाणानि उष्ट्राद्युपपादस्थानानां तद्बाहुल्यं स्वकविस्तारेभ्यः पञ्चगुणम् ॥१८०॥

उन उपपाद स्थानों का व्यास एवं बाहुल्य कहते हैं—

गाथार्थ:—ऊँट आदि आकारवाले उपपाद स्थानों का उत्कृष्ट व्यास (चौड़ाई) क्रमशः एक कोस, दो कोस, तीन कोस, एक योजन, दो योजन, तीन योजन और सौ (१००) योजन प्रमाण है तथा बाहुल्य (ऊँचाई) अपने अपने प्रमाण से पांच गुना है ॥१८०॥

विशेषार्थ:—पहली पृथ्वी से सातवीं पृथ्वी तक के उपपाद स्थानों का उत्कृष्ट व्यास (चौड़ाई) क्रमशः एक कोस, दो कोस, तीन कोस, एक योजन, दो योजन, तीन योजन और सौ योजन प्रमाण है तथा बाहुल्य अपनी अपनी शरीर अवगाहना से पांच गुणा है।

अथोपपादस्थानेषूत्पन्नाः किंकुर्वन्तीत्यत आह—

अंतोमुहुत्तकाले तदो चुदा भूतलम्हि तिक्खाणं।
सत्थाणमुवरि पडिदूणुड्डीय पुणोवि णिवडंति ॥१८१॥

अन्तर्मुहूर्तकाले ततश्च्युता भूतले तीक्ष्णानाम्।
शस्त्राणामुपरि पतित्वा उड्डीय पुनरपि निपतन्ति ॥१८१॥

अंतो। गाथामात्रमेवार्थः ॥१८१॥

उपपादस्थानों में उत्पन्न होने वाले जीव क्या करते हैं ? उसे बताते हैं—

गाथार्थ:—नारकी जीव अन्तर्मुहूर्त काल में उपपाद स्थान से च्युत हो नरक भूमि के तीक्ष्ण शस्त्रों पर गिरकर ऊपर उछलते हैं और पुनः उन्हीं पर गिरते हैं ॥१८१॥

विशेषार्थ:—नारकी जीव नरक बिलों के उपपाद स्थानों में जन्म लेकर एक अन्तर्मुहूर्त में पर्याप्तियाँ पूर्ण कर उपपाद स्थान से च्युत हो नरक भूमि के तीक्ष्ण शस्त्रों पर गिरकर ऊपर उछलते हैं और पुनः उन्हीं शस्त्रों से व्याप्त पृथ्वी पर आ पड़ते हैं।

अथ कियदुड्डीयन्ते इत्यत आह—

पणघणजोयणमाणं सोलहिदं उप्पडंति णेरइया ।
घम्माए वंसादिसु दुगुणं दुगुणंति णादव्वं ॥१८२॥

पञ्चघनयोजनमानं षोडशहृतं उत्पतन्ति नैरयिकाः ।
घर्मायां वंशादिषु द्विगुणं द्विगुणं इति ज्ञातव्यम् ॥१८२॥

पण । पञ्चघनयोजनमानं षोडशहृतं उत्पतन्ति नैरयिकाः घर्मायां वंशादिषु पुनर्द्विगुणं द्विगुणमिति ज्ञातव्यम् ॥१८२॥

नारकी जीव कितने ऊँचे उछलते हैं ? ऐसा पूछने पर कहते हैं :—

गाथार्थ:—पाँच के घन को सोलह से भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतने योजन प्रमाण प्रथम घर्मा पृथ्वी के नारकी उछलते हैं, तथा द्वितीयादि पृथ्वियों के नारकी इनसे दूने दूने उछलते हैं। ऐसा जानना चाहिए ॥१८२॥

विशेषार्थ:—पाँच के घन १२५ को १६ से भाजित करने पर ७$\frac{13}{16}$ योजन प्राप्त हुआ। इसका दूना १५$\frac{5}{8}$ योजन, इसका दूना ३१$\frac{1}{4}$ योजन .... इत्यादि। अर्थात् घर्मापृथ्वी के नारकी ७ योजन ३$\frac{1}{4}$ कोश, वंशा पृथ्वी के १५ योजन २$\frac{1}{2}$ कोश, मेघा के ३१ योजन १ कोश, अञ्जना के ६२ योजन २ कोश, अरिष्टा के १२५ योजन, मघवी के २५० योजन और माधवी पृथ्वी के नारकी ५०० योजन ऊँचे उछलते हैं।

अथ तत्रस्थाः पुराणनारका उड्डीय पतितान् किं कुर्वन्ति इत्यत आह—

पोराणिया तदा ते दट्ठूणइणिट्ठुरारवागम्म ।
खोचंति णिसिंचंति य वणेसु बहुखारवारीणि ॥१८३॥

पोरा । पौराणिका नारकास्तदा तान् नूतनान् दृष्ट्वा अतिनिष्ठुरारवा आगम्य घ्नन्ति निषिञ्चन्ति च व्रणेषु बहुक्षारवारीणि ॥१८३॥

वहाँ रहने वाले नारकी, उछल कर गिरने वाले नारकी के प्रति क्या करते हैं ?

गाथार्थ :—पुराने नारकी नये नारकियों को देखकर अति कठोर शब्द करते हुए पास आकर उन्हें मारते हैं और उनके घावों पर अति खारा जल सींचते हैं ॥१८३॥

विशेषार्थः—पुराने नारकी नवीन नारकी को देखकर अति कठोर शब्द बोलते हुए उसके पास आकर उसे मारते हैं। मारने से तथा शस्त्रों पर गिरने से जो घाव हो जाते हैं उन पर वे अत्यन्त खारा जल सींच सींचकर पीड़ा पहुँचाते हैं।

अथ ते नूतनाः किं कुर्वन्तीत्यत आह—

तेवि विहंगेण तदो जाणिद पुव्वावरारिसंबंधा।
असुहापुहविक्किरिया हणंति हण्णंति वा तेहिं ॥१८४॥

तेपि विभङ्गेन ततः ज्ञातपूर्वापरारिसम्बन्धाः।
अशुभापृथग्विक्रिया घ्नन्ति हन्यन्ते वा तैः ॥१८४॥

तेवि। तेपि विभङ्गेन ततः परं ज्ञातपूर्वापरारिसम्बन्धाः अशुभापृथग्विक्रिया सन्तः घ्नन्ति परान् स्वयं हन्यन्ते वा तैरन्यैः ॥१८४॥

नवीन नारकी क्या करते हैं? ऐसा पूछने पर कहते हैं—

गाथार्थः—विभङ्गज्ञान से पूर्वापर के वैर का सम्बन्ध जानकर वे नवीन नारकी भी अशुभ और अपृथक् विक्रिया द्वारा उन्हें मारते हैं और उनके द्वारा स्वयं मारे जाते हैं ॥१८४॥

विशेषार्थः—नरकों में पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद कुअवधिज्ञान हो जाता है जिससे नए नारकी पूर्वापर का वैर जानकर पूर्वनारकियों को मारते हैं और उनके द्वारा स्वयं भी मार खाते हैं।

अथापृथग्विक्रियाकरणप्रकारमाह—

वयवग्घघूगकागहिविच्छियभल्लूकगिद्धसुणयादिं।
सूलग्गिकोंतमोग्गरपहुदी सगं विकुव्वंति ॥१८५॥

वृकव्याघ्रघूककाकाहिवृश्चिकभल्लूकगृध्रशुनकादि।
शूलाग्निकुन्तमुद्गरप्रभृति स्वाङ्गं विकुर्वन्ति ॥१८५॥

वय। छायामात्रमेवार्थः ॥१८५॥

अपृथक् विक्रिया करने का विधान कहते हैं—

गाथार्थः—नारकी जीव अपने ही शरीर में भेड़िया, व्याघ्र, घुग्घू, कौआ, सर्प, बिच्छू, रीछ, गिद्ध, कुत्ता आदि रूप तथा त्रिशूल, अग्नि, बरछी, मेल, मुद्गरादि रूप विक्रिया करते हैं ॥१८५॥

विशेषार्थः—नारकी जीव परस्पर दुःख देने के लिए अपने शरीर का व्याघ्रादि रूप तथा त्रिशूलादि रूप परिणमन कराकर नाना प्रकार के दुःख दूसरों को देते हैं और स्वयं भोगते हैं।

अथ क्षेत्रगतपदार्थक्रौर्यं गाथाद्वयेनाह—

वेदालगिरी भीमा जंतसयुक्कडगुहा य पडिमाओ ।
लोहणिहग्गिकणड्ढा परसुछुरिगासिपत्तवणं ॥१८६॥
कूडा सामलिरुक्खा वइदरणिणदीउ खारजलपुण्णा ।
पूयरुहिरा दुगंधा दहा य किमिकोडिकुलकलिदा ॥१८७॥

वेतालगिरयः भीमा यन्त्रशतोत्कटगुहाश्च प्रतिमाः ।
लोहनिभाग्निकणाढ्याः परशुक्षुरिकासिपत्रवनम् ॥१८६॥
कूटाः शाल्मलिवृक्षाः वैतरणिनद्यः क्षारजलपूर्णाः ।
पूयरुधिरा दुर्गन्धाः ह्रदाश्च कृमिकोटिकुलकलिताः ॥१८७॥

वेदाला । वेतालाकृतिगिरयः भीमाः यन्त्रशतोत्कटगुहाश्च तत्रस्थाः प्रतिमा लोहनिभाग्निकणाढ्या वनं च परशुक्षुरिकासिपत्रवनम् ॥१८६॥

कूडा । कूटाः असत्याः शाल्मलिवृक्षाः वैतरण्याख्या नद्यः क्षारजलपूर्णाः पूयरुधिरा दुर्गन्धाः ह्रदाश्च कृमिकोटिकुलकलिताः ॥१८७॥

क्षेत्रगत पदार्थों की क्रूरता का वर्णन दो गाथाओं द्वारा करते हैं—

गाथार्थ—उन नरकों में वेताल सदृश भीमाकृति पर्वत हैं । दुःखदायक सैकड़ों यन्त्रों से भरी गुफाएँ हैं । वहाँ स्थित प्रतिमाएँ लोहमयी हैं एवं अग्निकणों से व्याप्त हैं । फरसी, छुरिकादि शस्त्र सदृश पत्रों से युक्त असिपत्र वन हैं । मिथ्या शाल्मलि वृक्ष हैं । वहाँ की वैतरणी नामकी नदियाँ और तालाब खारे जल से भरे हैं, दुर्गन्धित पीप, खून से युक्त हैं तथा उनमें करोड़ों कीड़े भरे हैं ॥१८६-१८७॥

विशेषार्थ—सुगम है ।

अथ तथाविधनदीमाप्य किं भवन्तीत्यत आह—

अग्गिभया धावंता मण्णंता सीयलंति पाणीयं ।
ते वइदरणिं पविसिय खारोदयदड्ढसव्वंगा ॥१८८॥

अग्निभयाद्धावन्तः मन्यमानाः शीतलमिति पानीयं ।
ते वैतरणीं प्रविश्य क्षारोदकदग्धसर्वाङ्गाः ॥१८८॥

अग्गि । अग्निभयात् धावन्तः मन्यमानाः शीतलमिति पानीयं ते नूतननारका वैतरणीं प्रविश्य क्षारोदकदग्धसर्वाङ्गाः सन्तः ॥१८८॥

ऐसी नदी को प्राप्त कर क्या होता है ? उसे कहते हैं—

गाथार्थ:—अग्नि के भय से दौड़ कर आने वाले नारकी 'यह शीतल जल है' ऐसा मानकर जब उस नदी में प्रवेश करते है तो खारे जल से उनका सारा शरीर जल जाता है ॥१८८॥

विशेषार्थ:—नवीन नारकी जीव अग्नि के भय से दौड़कर आते हैं और वैतरणी नदी के जल को शीतल मानकर शीतलता की कामना करते हुए उसमें प्रवेश कर जाते हैं किन्तु शीतलता मिलने के स्थान पर, नदी के खारे जल से उनका सर्वाङ्ग दग्ध हो जाता है।

अथ ते पुनः किं कुर्वन्तीत्यत आह—

उट्ठिय वेगेण पुणो असिपत्तवणं पयांति छायेत्ति ।
कुंतासिसत्तिजट्ठिहिं छिज्जंते वादपडिदेहिं ॥१८९॥

उत्थाय वेगेन पुनः असिपत्रवनं प्रयान्ति छायेति ।
कुन्तासिशक्तियष्टिभिश्छिद्यन्ते वातपतितैः ॥१८९॥

उट्ठिय । सर्वांति शेषः छायामात्रमेवार्थः ॥१८९॥

उसके बाद वे नारकी क्या करते हैं ? उसे कहते हैं—

गाथार्थ:—वे नारकी शीघ्र ही वहाँ से उठकर 'यहाँ छाया है' ऐसा मानते हुए असिपत्रवन में प्रवेश करते हैं किन्तु वहाँ वायुसे गिरने वाले सेल, तलवार, शक्ति और लकड़ी आदि के सदृश पत्रों से उनके शरीर छिद जाते हैं ॥१८९॥

विशेषार्थ:—नारकी जीव अग्नि से तप्त हुए वैतरणी में प्रवेश करते हैं, वहाँ खारे जलके कारण उनकी वेदना और बढ़ जाती है। उस भयङ्कर वेदना से त्राण पाने के लिए वे शीतल छाया की कामना करते हुए वन में प्रवेश करते हैं तो वहाँ भी बाणों के समान तीखे पत्तों से उनके शरीर छिद जाते हैं ॥

अथ तेषां बहिर्दुःखसाधनमाह—

लोहोदयभरिदाओ कुंभीओ तत्तबहुकडाहा य ।
संतत्तलोहफासा भू सूईसद्दुलाइण्णा ॥१९०॥

लोहोदकभरिताः कुम्भ्यः तप्तबहुकटाहाश्च ।
सन्तप्तलोहस्पर्शा भूः सूचीशाड्वलाकीर्णा ॥

लोहो । छायामात्रमेवार्थः ॥१९०॥

अब नारकियों के दुःख के बाह्य साधन कहते हैं—

गाथार्थ:—उन नरकों में (पिघले हुए) गर्म लोहे के समान जल से भरे कुम्भी हैं, अत्यन्त गर्म कड़ाह हैं। वहाँ की भूमि गर्म, तपे हुए लोहे के समान स्पर्शवाली और सूई के समान पैनी दूब से व्याप्त है ॥१९०॥

विशेषार्थ:—जिस प्रकार यहाँ हँडिया आदि में रखकर भोजन पकाते हैं तथा कड़ाही के गर्म तेल आदि में भोज्य पदार्थ तलते हैं, उसी प्रकार नरकों में नारकी जीव एक दूसरे को कुम्भी में रखकर पकाते हैं और गर्म कड़ाहों में डालकर तलते हैं।

अथ क्षेत्रस्पर्शजदुःखं दृष्टान्तमुखेनाह—

विच्छियसहस्सवेयणसमधियदुक्खं धरित्तिफासादो।
कुक्खक्खिसीसरोगगछुधतिसभयवेयणा तिव्वा ॥१९१॥

वृश्चिकसहस्रवेदनासमधिकदुःखं धरित्रीस्पर्शात्।
कुक्ष्यक्षिशीर्षरोगगक्षुधातृषाभयवेदना तीव्राः ॥१९१॥

विच्छिय। स्यादिति शेषः। छायामात्रमेवार्थः ॥१९१॥

वहाँ की भूमि के स्पर्श से होने वाले दुःख दृष्टान्त द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ:—हजार बिच्छुओं के एक साथ काटने पर जो वेदना होती है, उससे भी अधिक वेदना वहाँ की भूमि के स्पर्श-मात्र से होती है। उन नारकियों को उदर, नेत्र एवं मस्तक आदि के रोगों से उत्पन्न तीव्र वेदना तथा भूख, प्यास, भय आदि की तीव्र बाधाएँ होती हैं ॥१९१॥

विशेषार्थ:—सुगम है।

अथ ते किं भुञ्जते इत्यत आह—

सादिकुहिदातिगंधं सणिमप्पं मट्टियं विभुंजंति।
घम्मभवा वंसादिसु असंखगुणिदासुहं तत्तो ॥१९२॥

श्वादिकुथितातिगन्धामशनैरल्पां मृत्तिकां विभुञ्जते।
घर्मभवा वंशादिषु असंख्यगुणिताशुभां ततः ॥१९२॥

सादि। श्वादिकुथितातिदुर्गन्धामशनैरल्पां मृत्तिकां विभुञ्जते घर्मभवा वंशादिषु ततः असंख्यगुणिताशुभां मृत्तिकां विभुञ्जते ॥१९२॥

नारकी जीव क्या खाते हैं? उसे कहते हैं—

गाथार्थ:– प्रथम घर्मा पृथ्वी में उत्पन्न हुए नारकी जीव श्वानादि निकृष्ट प्राणियों के सड़े हुए कलेवरों की दुर्गन्ध से भी अधिक दुर्गन्धवाली मिट्टी खाते हैं। वह दुर्गन्धित मिट्टी भी उन्हें अपनी भूख-प्रमाण नहीं मिलती अर्थात् अल्प मात्रा में ही मिलती है, जिससे क्षुधा शांत नहीं होती। वंशादि पृथ्वियों के नारकी इससे असंख्यातगुणित अशुभ मिट्टी का भक्षण करते हैं ॥१९२॥

विशेषार्थ:– सुगम है।

अथ तदाहारदु:खकरणसामर्थ्यं वर्णयति—

पढमासणमिह खित्तं कोसद्धं गंधदो विमारेदि।
कोसद्धद्धहियधराट्ठियजीवे पत्थरक्कमदो ॥१९३॥

प्रथमाशनमिह क्षिप्तं कोशार्धं गन्धतो विमारयति।
कोशार्धार्धाधिकधरास्थितजीवान् प्रस्तरक्रमतः ॥१९३॥

पढमा। प्रथमपृथ्वीप्रथमपटलाशनं इह मनुष्यक्षेत्रे क्षिप्तं चेत् कोशार्धं गन्धतो विमारयति। कोशार्धार्धाधिकधरास्थितान् जीवान् अतः परं प्रस्तरक्रमतः विमारयति।

नारकियों के उस आहार में कितना दु:ख देने की क्षमता है; उसे कहते हैं:—

गाथार्थ:—प्रथम नरक के प्रथम पटल के नारकियों के भोजन की वह दुर्गन्धमय मिट्टी यदि मनुष्य क्षेत्र में डाल दी जाय तो वह अपनी दुर्गन्ध से आधे कोस के जीवों को मार डालेगी। इसी प्रकार प्रत्येक पटल के आहार की मिट्टी क्रम से आधा आधा कोस अधिक पृथ्वी-स्थित जीवों को मारने की क्षमता वाली है ॥१९३॥

विशेषार्थ:—प्रथम नरक के प्रथम सीमन्त नामक पटल के नारकी जिस मिट्टी का आहार करते हैं, वह मिट्टी अपनी दुर्गन्ध से मनुष्य क्षेत्र के अर्ध कोस में स्थित जीवों को मार सकती है। द्वितीय निरय पटल के आहार की मिट्टी एक कोस के तथा तृतीय रौरव पटल के आहार की मिट्टी अपनी दुर्गन्ध से १½ कोस में स्थित जीवों को मारने की सामर्थ्य वाली है। इसी क्रम से प्रति पटल आधा आधा कोस वृद्धिगत होते हुए सप्तम पृथ्वी के अवधिस्थान नामक ४९ वें पटल के नारकी जिस मिट्टी का आहार करते हैं, वह मिट्टी अपनी दुर्गन्ध से मध्यलोक में स्थित साढ़े चौबीस (२४½) कोस के जीवों को मारने की सामर्थ्यवाली है।

अथ एतैर्दु:खसाधनैर्म्रियन्ते किमित्याशङ्कायामाह—

ण मरंति ते अकाले सहस्सखुत्तोवि छिण्णसव्वंगा।
गच्छंति तणुस्स लवा संघादं सूदगस्सेव ॥१९४॥

न म्रियन्ते ते अकाले सहस्रकृत्वोऽपि छिन्नसर्वाङ्गाः।
गच्छन्ति तनोः लवाः सङ्घातं सूतकस्येव ॥१९४॥

ण मरंति । छायामात्रमेवार्थः ॥१९४॥

इतने दुःख साधनों द्वारा नारकी जीव क्या मरण को प्राप्त होते हैं ? ऐसी शंका होने पर कहते हैं :—

गाथार्थ —सम्पूर्ण शरीर को हजारों बार छिन्न भिन्न कर देने पर भी उन नारकी जीवों का अकाल में मरण नहीं होता। पारे के कणों के सदृश नारकी जीवों के शरीर के टुकड़े भी संघात को प्राप्त हो जाते हैं। अर्थात् पुनः पुनः मिल जाते हैं ॥१९४॥

विशेषार्थ:—जिस प्रकार पारे के कण भिन्न भिन्न नहीं रह सकते शीघ्र ही चारों ओर से आकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार नारकियों के शरीर खण्ड खण्ड हो जाने पर भी मिल कर एक हो जाते हैं। आयु पूर्ण हुए बिना उनका मरण नहीं होता, चाहे कितना ही दुःख क्यों न हो।

अथैतैर्दुःखसाधनैः सर्वदा सर्वे दुःखमाप्नुवन्ति किमित्यत्राह—

तित्थयरसंतकम्मुवसग्गं णिरए णिवारयंति सुरा ।

छम्मासाउगसेसे सग्गे अमलाणमालंको ॥१९५॥

तीर्थंकरसत्कर्मोपसर्गं निरये निवारयन्ति सुराः ।

षण्मासायुष्कशेषे स्वर्गे अम्लानमालाङ्कः ॥१९५॥

तित्थ। तीर्थंकृत्सत्कर्मणां जीवानामुपसर्गं निरये निवारयन्ति सुराः षण्मासायुः शेषे स्वर्गे अम्लानमालाङ्कः ॥१९५॥

इन दुःख साधनों के द्वारा क्या हमेशा सर्व नारकी दुःखको प्राप्त होते हैं ? इसका समाधानः—

गाथार्थ – नरक में जिन नारकी जीवों के तीर्थंकर नाम कर्म सत्तामें है, उनकी आयु के छह माह शेष रहने पर देवगण उन नारकियों का उपसर्ग निवारण कर देते हैं, तथा स्वर्ग में भी तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले देवों की आयु छह माह शेष रहने पर माला नहीं मुरझाती ॥१९५॥

विशेषार्थ:—तीर्थङ्कर प्रकृति की सत्ता वाले नारकियों की आयु छह माह शेष रहने पर देव उनके उपसर्ग दूर कर देते हैं; तथा इसी प्रकृति की सत्ता वाले देवों की छह माह आयु शेष रहने पर माला नहीं मुरझाती।

अथ तेषां देहविलयप्रकारमाह—

अणवट्टसगाउस्से पुण्णे वादाहदब्भपडलं वा ।

णेरइयाणं काया सव्वे सिग्घं विलीयंते ॥१९६॥

अनपवर्त्यस्वकायुष्ये पूर्णे वाताहताभ्रपटलमिव ।

नैरयिकाणां कायाः सर्वे शीघ्रं विलीयन्ते ॥१९६॥

अणवट्ट । छायामात्रमेवार्थः—

मरण के उपरान्त नारकियों के देह विलय का विधान कहते हैं :—

गाथार्थ:—अपनी अनपवर्त्यायु के पूर्ण होते ही नारकियों का सम्पूर्ण शरीर उसी प्रकार विलय को प्राप्त हो जाता है, जिस प्रकार पवन से ताड़ित मेघ पटल विलय हो जाते हैं ॥१९६॥

विशेषार्थ:—जिन जीवों की भुज्यमान आयु का कदली घात नहीं होता अर्थात् जहाँ अकाल मरण नहीं होता, उसे अनपवर्त्यायु कहते हैं। जिस प्रकार वायु से आहत मेघ पटल विलय को प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार अनपवर्त्य आयु समाप्त होते ही नारकियों का सम्पूर्ण शरीर विलय हो जाता है।

अथ तैरनुभूयमानदुःखभेदानाह—

खेत्तजणिदं असादं सारीरं माणसं च असुरकयं ।

भुंजंति जहावसरं भवट्ठिदीचरिमसमयोत्ति ॥१९७॥

क्षेत्रजनितं असातं शारीरं मानसं च असुरकृतम् ।

भुञ्जते यथावसरं भवस्थितेश्चरमसमयान्तम् ॥१९७॥

खेत्त । अन्तम् पर्यन्तम् । छायामात्रमेवार्थः ॥१९७॥

नारकियों के अनुभव में आने वाले विविध प्रकार के दुःख—

गाथार्थ:—नारकी जीव भवस्थिति के चरम समय पर्यन्त यथावसर क्षेत्रजनित, मानसिक, शारीरिक और असुरकृत असाता भोगते हैं ॥१९७॥

विशेषार्थ:—नरकों में मुख्यतः चार प्रकार के दुःख हैं। क्षेत्रसम्बन्धी, मानसिक, शारीरिक और असुरकृत। नरक क्षेत्र के सम्बन्ध से उत्पन्न आतापादि दुःख क्षेत्रजनित हैं संक्लेश परिणामों से उत्पन्न आर्तरौद्रादि ध्यान मानसिक दुःख है। शरीर में उत्पन्न नाना प्रकार के रोगादि से उत्पन्न होने वाली वेदना शारीरिक दुःख है तथा तृतीय नरक पर्यन्त असुरकुमार जाति के भवनवासी देवों द्वारा घातादि से उत्पन्न वेदना असुरकृत दुःख है। इसके अतिरिक्त परस्पर उदीरित दुःख को भी वे नारकी भोगते हैं।

अथ प्रतिपटलं तदायुर्जघन्योत्कर्षं गाथात्रयेणाह—

पढमिंदे दसणउदीवाससहस्साउगं जहण्णिदरं ।

तो णउदिलक्ख जेट्ठं असंखपुव्वाण कोडी य ॥१९८॥

प्रथमेन्द्रके दशनवतिवर्षसहस्रायुष्कं जघन्येतरत् ।

ततः नवतिलक्षं ज्येष्ठं असंख्यपूर्वाणां कोट्यश्च ॥१९८॥

पढ । प्रथमेन्द्रके दश १०००० नवति ९०००० वर्षसहस्रायुष्यं जघन्यमितरत् तत् उपरि वक्ष्यमाणं सर्वं ज्येष्ठं नवतिलक्षं असंख्यपूर्वाणां कोटयश्च ॥१९८॥

प्रत्येक पटल की जघन्योत्कृष्ट आयु तीन गाथाओं में कहते हैं—

गाथार्थः— प्रथम पृथ्वी के प्रथम सीमन्त बिल के नारकियों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष (१००००) और उत्कृष्ट आयु नब्बे हजार वर्ष (९००००) प्रमाण है । दूसरे निरय पटल की उत्कृष्टायु नब्बे लाख वर्ष (९००००००) तथा रौरव पटल की उत्कृष्ट आयु असंख्यातपूर्व कोटि प्रमाण है ॥१९८॥

विशेषार्थः—उपर्युक्त गाथा में प्रथम पटल की जघन्यायु दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट आयु नब्बे हजार वर्ष कही गई है । इससे आगे कही जाने वाली आयु उत्कृष्ट ही समझनी चाहिए; जैसे— निरय पटल की नब्बे लाख और रौरव पटल की असंख्यातपूर्व कोटि प्रमाण उत्कृष्ट आयु है ।

सायरदसमं तुरिये सगसगचरमिंदयम्हि इगि तिण्णि ।
सत्त दसं सत्तरसं उवही बावीस तेत्तीसं ॥१९९॥
आदी अंतविसेसे रूऊणद्धाहिदम्हि हाणिचयं ।
उवरिम जेट्ठं समयेणहियं हेट्ठिमजहण्णं तु ॥२००॥

सागरदशमं तुरीये स्वकस्वकचरमेन्द्रके एकं त्रीणि ।
सप्त दश सप्तदश उदधयः द्वाविंशतिः त्रयस्त्रिंशत् ॥१९९॥
आदिः अंतविशेषे रूपोनाद्धाहिते हानिचयं ।
उपरिमं ज्येष्ठं समये नाधिकं अधस्तनजघन्यं तु ॥२००॥

सायर । तुरीये चतुर्थे, उदधयः सागरोपमाणि इत्यर्थः । शेषं छायामात्रमेवार्थः ॥१९९॥

आदी । आदिः सागरदशमांशादिकं १/१० ।१।३।७।१०।१७।२२ अन्ते एकसागरोपमादौ १।३।७।१०।१७।२२।३३ यथायोग्यं समच्छेदेन स्फेटिते तत्तत्पृथ्वीनां हानिचयो स्यातां ९/१० ।२।४।३।७।५।११ कथितायुः प्रमाणपटलत्रयं मुक्त्वा प्राक्तनपटलसहितरूपोनतत्तत्पटलानां ९।११।९।७।५।३।१ प्रतिपृथ्वि एतावदेतावदायुश्चये ९/१० ।२।४।३।७।५।११ एकादिपटलानां कियदायुरिति सम्पात्य यथायोग्यमपवर्त्य गुणिते तत्तत्पटलानामायुश्चयं भवति । १/१० । २/११ । ४/९ । ३/७ । ७/५ । ५/३ । ११/१ एतच्चये प्राक्तनप्राक्तनस्थितौ संयोजिते तत्तत्पटलानामुत्कृष्टायुः प्रमाणं स्यात् । उपरिमज्येष्ठं ९०००० इत्यादि समयेनाधिकं चेत् अधस्तना-धस्तनजघन्यं स्यात् ॥२००॥

गाथार्थ:—चतुर्थ भ्रान्त पटल की उत्कृष्टायु एक सागर के दसवें भाग प्रमाण है। अर्थात् १/१० सागर है, तथा अपने अपने अन्तिम इन्द्रक की उत्कृष्टायु क्रमशः एक सागर, तीन सागर, सात सागर, दश सागर, सत्रह सागर, बाईस सागर और तेंतीस सागरोपम प्रमाण है। आदि प्रमाण को अन्तप्रमाण में से घटाने पर जो शेष प्राप्त हो उसमें एक कम गच्छ का भाग देने पर प्रति पटल का हानि चय प्राप्त होता है। ऊपर के पटलों की जो उत्कृष्ट आयु है, उसमें एक समय अधिक करने पर वही नीचे के पटलों की जघन्यायु बन जाती है ॥१९९-२००॥

विशेषार्थ:—प्रथम पटल के चतुर्थ भ्रान्त पटल की १/१० सागर आयु से प्रारम्भ करने पर आदि का प्रमाण क्रमशः १/१० १, ३, ७, १०, १७, और २२ सागर है, तथा अन्त का प्रमाण क्रमशः १, ३, ७, १०, १७, २२, और ३३ सागरोपम है। अन्त प्रमाण में से आदि प्रमाण घटाने पर क्रमशः ९/१०, २, ४, ३, ७, ५, और ११ सागरोपम शेष रहते हैं। पूर्व में तीन पटलों की आयु का प्रमाण कह चुके हैं तथा चतुर्थ पटल की भी आयु कह चुके हैं, अतः प्रथम पृथ्वी के तेरह पटलों में से चार पटल कम कर देने पर (१३-४) ९ प्राप्त होता है। गच्छ का प्रमाण क्रमशः ९, ११, ९, ७, ५, ३ और १ है। जब कि ९ पटलों पर ९/१० सागरोपम की हानि होती है, तब १ पटल पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार सभी पटलों का त्रैराशिक निकालने से क्रमशः १/१०, २/११, ४/९, ३/७, ७/५, ५/३ और ११/१ हानि चय प्राप्त होता है। इसे पूर्व पूर्व पटलों की आयु में जोड़ने से आगे आगे के पटलों की उत्कृष्ट आयु प्राप्त होती जाती है। जैसे :—चतुर्थ भ्रान्त पटल की उत्कृष्टायु १/१० सागर है, इसमें १/१० चय जोड़ने से (१/१० + १/१०) = २/१० सागर उद्भ्रान्त इन्द्रक की उत्कृष्ट आयु प्राप्त हुई। इसी प्रकार ६, संभ्रान्त (२/१० + १/१०) = ३/१० सागर, ७ असंभ्रान्त ४/१०, ८ विभ्रान्त ५/१०, ९ त्रस्त ६/१०, १० त्रसित ७/१०, ११ वक्रान्त ८/१०, १२ अवक्रांत ९/१० और १३ विक्रांत इन्द्रक की उत्कृष्टायु १०/१० अर्थात् १ सागर प्रमाण है।

द्वितीय शर्करा प्रभा पृथ्वी का हानि चय २/११ सागर है अतः तेरहवें विक्रांत इन्द्रक की १ सागर आयु में २/११ मिलाने से (११/११ + २/११) = १३/११ अर्थात् १ २/११ सागर १, ततक इन्द्रक की उत्कृष्टायु प्राप्त हुई। इसी प्रकार २, स्तनक (१३/११ + २/११) = १५/११ सागर, ३ वनक १७/११, ४ मनक १९/११, ५ खडा २१/११, ६ खडिका २३/११, ७ जिह्वा २५/११, ८ जिह्विक २७/११, ९ लौकिक २९/११, १० लोलवत्स ३१/११ और ११ स्तनलोला ३३/११ अर्थात् ३ सागर प्रमाण उत्कृष्टायु है।

तृतीय बालुका प्रभा पृथ्वी का चय ४/९ सागर है। इसे ३ सागर में जोड़ने से (२७/९ + ४/९) १ तप्त इन्द्रक की ३१/९, २ तपित (३१/९ + ४/९) = ३५/९, ३ तपन ३९/९, ४ तापन ४३/९, ५ निदाघ ४७/९, ६ उज्ज्वलित ५१/९, ७ प्रज्वलित ५५/९, ८ संज्वलित ५९/९, और ९ संप्रज्वलित ६३/९, अर्थात् ७ सागर उत्कृष्टायु है।

चतुर्थ पङ्क प्रभा पृथ्वी का हानि चय $\frac{३}{७}$ सागर है, अतः ($\frac{४९}{७}$ + $\frac{३}{७}$) १ आरा $\frac{५२}{७}$ २ मारा ($\frac{५२}{७}$ + $\frac{३}{७}$) = $\frac{५५}{७}$, ३ तारा $\frac{५८}{७}$, ४ चर्चा $\frac{६१}{७}$, ५ तमकी $\frac{६४}{७}$, ६ घाटा $\frac{६७}{७}$ और ७ घटा इन्द्रक की उत्कृष्टायु $\frac{७०}{७}$ अर्थात् १० सागरोपम प्रमाण है।

पञ्चम धूम प्रभा पृथ्वी का हानि चय $\frac{७}{५}$ सागर है। इसे १० सागर में मिलाने पर ($\frac{५०}{५}$ + $\frac{७}{५}$) = १ तमका $\frac{५७}{५}$, २ भ्रमका $\frac{६४}{५}$, ३ झषका $\frac{७१}{५}$, ४ अन्धेन्द्रा $\frac{७८}{५}$ और ५ तिमिश्रका इन्द्रक की उत्कृष्टायु $\frac{८५}{५}$ अर्थात् १७ सागर प्रमाण है।

षष्ठ तमः प्रभा पृथ्वी का हानि चय $\frac{५}{३}$ सागर है, अतः १ हिम ($\frac{५१}{३}$ + $\frac{५}{३}$) = $\frac{५६}{३}$ सागर २ वार्दलि $\frac{६१}{३}$; ३ लल्लकि $\frac{६६}{३}$ अर्थात् २२ सागर प्रमाण उत्कृष्टायु है।

सप्तम महातमः प्रभा पृथ्वी का हानि चय $\frac{११}{१}$ है, अतः अवधिस्थान नामक अन्तिम पटल की उत्कृष्टायु ($\frac{२२}{१}$ + $\frac{११}{१}$) = ३३ सागरोपम प्रमाण है। ऊपर ऊपर की उत्कृष्टायु ही एक समय अधिक करने पर नीचे नीचे के पटलों की जघन्यायु हो जाती है।

अथ तेषां नारकाणां पटलं प्रत्युत्सेधमाह—

पढमे सत्त ति छक्कं उदयं धणुरयणि अंगुलं सेसे ।
दुगुणकमं पढमिंदे रयणितियं जाण हाणिचयं ॥२०१॥

प्रथमे सप्तत्रिषट्कं उदयः धनूरत्न्यङ्गुलानि शेषे ।
द्विगुणक्रमं प्रथमेन्द्रके रत्नित्रयं जानीहि हानिचयम् ॥२०१॥

पढमे । प्रथमपृथिव्याश्चरमपटले सप्त ७ त्रि ३ षट्कं ६ उदयः धनूरत्न्यङ्गुलानि । द्वितीयादि-पृथ्व्याश्चरमपटले द्विगुणक्रमं, प्रथमपृथ्व्याः प्रथमेन्द्रके रत्नित्रयं । एतद्धृत्वा हानिचयं जानीहि । हानिचयसाधनं कथमिति चेत्, आदि ३ अन्ते दण्ड ७ हस्त ३ अंगुल ६ शोधयित्वा हस्तस्थाने स्फेटयित्वा ७।०।६ रूपोनगच्छहृते $\frac{७}{१२}$।$\frac{०}{१२}$।$\frac{६}{१२}$ भागो भवेद्दण्डं हस्तादिकं कृत्वा भक्ते हस्तः २ शेषमङ्गुलं कृत्वा $\frac{९६}{१२}$ तत्र प्राक्तनाङ्गुलं $\frac{६}{१२}$ मेलयित्वा $\frac{१०२}{१२}$ भक्ते लब्धमङ्गुलं ८ शेषे षड्भिरपवर्तिते अङ्गुलं $\frac{१}{२}$ एतत्सर्वं प्रथमपृथ्व्या हानिचयं दं० ह २ अं ८ भा $\frac{१}{२}$ इदं उपरितनस्वस्वजातौ मेलयित्वा दण्डादौ पृथक्कृतेऽधस्तन-पटलदेहोत्सेधः १।१।८ भा $\frac{१}{२}$ तत्रैव पुनस्तद्धानिचयं दं०।२।८।$\frac{१}{२}$ मेलने १।३।१७।० तदधस्तनदेहोत्सेधः । एवमेव सर्वत्र पटले योज्यः । एवं द्वितीयादि पृथिव्यां हानिचयमुत्सेधश्चानेतव्यः ॥२०१॥

प्रत्येक पटल के नारकियों के शरीर का उत्सेध कहते हैं :—

गाथार्थ:—प्रथम पृथ्वी के अन्तिम पटल के नारकियों के शरीर की ऊँचाई ७ धनुष तीन हाथ और छह अंगुल प्रमाण है। शेष द्वितीयादि पृथिवियों के अन्तिम पटल में रहने वाले नारकियों का उत्सेध क्रमशः दूना दूना है। प्रथम पृथ्वी के प्रथम इन्द्रक में रहने वाले नारकियों का उत्सेध तीन हाथ प्रमाण है। इसे ही हानि चय जानो ॥२०१॥

विशेषार्थः—प्रथम पृथ्वी के चरम (अन्तिम) पटल में सप्त धनुष तीन हाथ और छह अंगुल उत्सेध है। द्वितीयादि पृथ्वियों के अन्तिम पटल का उत्सेध दूना दूना होता गया है। प्रथम पृथ्वी के प्रथम पटल का उत्सेध तीन हाथ प्रमाण है, इसे रखकर ही हानि चय जानो।

हानि चय का साधन क्या है ? उसे कहते हैं :—आदि प्रमाण तीन हाथ को अन्तिम प्रमाण सात धनुष तीन हाथ छह अंगुल में से घटाने पर (७–३–६–०–३–०) पर ७ धनुष ० हस्त ६ अंगुल शेष रहते हैं। इसमें एक कम गच्छ (१३–१=१२) का भाग देने पर $\frac{७}{१२}$, $\frac{०}{१२}$ और $\frac{६}{१२}$ भाग होते हैं। अर्थात् ७ धनुष में १२ का भाग जाता नहीं इसलिये उसके अट्ठाईस हस्त बनाये, १२ का भाग देने पर दो हस्त प्राप्त हुए और ४ शेष के $\frac{९६}{१२}$ अंगुल हुए इन्हें पहिले के $\frac{६}{१२}$ अंगुलों में जोड़ देने पर ($\frac{६}{१२}$ + $\frac{९६}{१२}$) = $\frac{१०२}{१२}$ हुए। बारह का भाग देने पर ८ लब्ध आया। ६ शेष रहे ($\frac{६}{१२}$) अपवर्तन करने पर $\frac{१}{२}$ अंगुल हुआ। इस प्रकार प्रथम पृथ्वी का हानि चय २ हाथ ८$\frac{१}{२}$ अंगुल हुआ। इसे उपरिम पटल के उत्सेध में अपनी अपनी हस्तादिक जाति के क्रम से मिलाने पर या हस्तादि बना लेने पर उत्सेध प्राप्त होता है।

प्रथम पृथ्वी के प्रथम सीमन्त पटल का उत्सेध ३ हाथ था। २ हाथ ८$\frac{१}{२}$ अङ्गुल चय मिला देने पर (३ ह० + २ हाथ ८$\frac{१}{२}$ अं०) दूसरे निरय पटल का १ धनु० १ ह० ८$\frac{१}{२}$ अं० उत्सेध प्राप्त हुआ। इसमें पुन: चय मिलाने पर (१ध०, १ ह० ८$\frac{१}{२}$ अं० + २ह० ८$\frac{१}{२}$ अं०)=१ ध० ३ ह० १७ अं० तीसरे रौरव पटल का उत्सेध प्राप्त हुआ। इसी प्रकार प्रत्येक में चय जोड़ने से आगे आगे का उत्सेध प्राप्त होता जाता है। जैसे:—(४) भ्रान्त २ ध० २ ह० १$\frac{१}{२}$ अं०। (५) उद्भ्रान्त ३ ध० १० अं०। (६) संभ्रान्त ३ ध०, २ ह० १८$\frac{१}{२}$ अं०। (७) असंभ्रान्त ४ ध० २७ अं०। (८) विभ्रान्त ४ ध०, ३ ह०, ११$\frac{१}{२}$ अं०। (९) त्रस्त ५ ध०, १ ह०, २० अं०। (१०) त्रसित ६ ध० ४$\frac{१}{२}$ अंगुल। (११) वक्रान्त ६ ध०, २ ह०, १३ अं०। (१२) अवक्रान्त ७ ध० २१$\frac{१}{२}$ अं०। और (१३) विक्रान्त पटल का उत्सेध ७ धनुष ३ हाथ ६ अंगुल प्रमाण है।

द्वितीय पृथ्वी का चय लाने के लिए—अन्त उत्सेध १५ ध० २ ह० १२ अं० में से आदि उत्सेध ७ ध० ३ ह० ६ अं० घटाने पर ७ ध० ३ ह० ६ अं० शेष रहे। इसमें गच्छ ११ का भाग देने पर ($\frac{७}{११}$, $\frac{३}{११}$, $\frac{६}{११}$)=२ हाथ २०$\frac{२}{११}$ अं० हानि चय प्राप्त होता है। इसे ऊपर ऊपर के उत्सेध में जोड़ने से क्रमश: (१) ८ ध० २ ह० २$\frac{२}{११}$ अं०। (२) ९ ध० २२$\frac{४}{११}$ अं० (३) ९ ध०, ३ ह०, १८$\frac{६}{११}$ अं०। (४) १० ध०, २ ह०, १४$\frac{८}{११}$ अं०। (५) ११ ध०, १ ह०, १०$\frac{१०}{११}$ अं०। (६) १२ ध० ७$\frac{१}{११}$ अंगुल। (७) १२ ध०, ३ ह०, ३$\frac{३}{११}$ अं०। (८) १३ ध०, १ ह०, २३$\frac{५}{११}$ अं०। (९) १४ ध०, १९$\frac{७}{११}$ अं०। (१०) १४ ध०, ३ ह०, १५$\frac{९}{११}$ अं० और (११) स्तनलोला पटल का उत्सेध १५ ध० २ ह० १२ अं० प्रमाण है।

तृतीय पृथ्वी का हानि चय उपर्युक्त रीति से निकालने पर १ ध० २ ह० २२ २/३ अं० प्राप्त होता है । (१) १७ ध० ३४ २/३ अं० । (२) १९ ध० ९ १/३ अं० । (३) २० ध० ३ ह० ८ अं० । (४) २२ ध०, २ ह०, ६ २/३ अं० । (५) २४ ध० १ ह० ५ १/३ अं० । (६) २६ ध० ४ अं० । (७) २७ ध०, ३ ह० २ २/३ अं० । (८) २९ ध० २ ह०, १ १/३ अं० । (९) ३१ ध० १ हाथ प्रमाण है ।

चतुर्थ पृथ्वी का हानि चय:—४ धनुष १ हस्त २० ४/७ अं० प्राप्त होगा । अतः—(१) ३५, ध० २ ह, २० ४/७ अं० । (२) ४० ध० १७ १/७ अं० । (३) ४४ ध०, २ ह०, १३ ५/७ अं० । (४) ४९ ध० १० २/७ अं० । (५) ५३ ध०, २ ह०, ६ ६/७ अं० । (६) ५८ ध० ३ ३/७ अं० । और (७) ६२ ध० २ हस्त प्रमाण उत्सेध है ।

पञ्चम पृथ्वी में हानि वृद्धि चयका प्रमाण १२ ध० २ हाथ प्राप्त होगा । अतः–(१) ७५ ध० (२) ८७ ध० २ ह० (३) १०० ध० (४) ११२ ध० २ ह० (५) १२५ ध० प्रमाण उत्सेध—होगा । षष्ठ पृथ्वी में हानि-वृद्धि का चय–४१ ध० २ ह० १६ अं० प्राप्त होगा । अतः—(१) १६६ ध० २ ह० १६ अं० । (२) २०८ ध० १ ह० ८ अं० और (३) २५० ध० प्रमाण उत्सेध है । सप्तम पृथ्वी के अवधि स्थान नामक अन्तिम पटल के नारकियों का उत्सेध ५०० धनुष प्रमाण है ।

अथ नारकाणामवधिक्षेत्रमाह—

रयणप्पहपुढवीए चउरो कोसा य ओहिखेत्तं तु ।
तेण परं पडिपुढवी कोसद्धविवज्जियं होदि ॥२०२॥

रत्नप्रभापृथिव्याश्चत्वारः क्रोशाश्चावधिक्षेत्रं तु ।
ततः परं प्रतिपृथ्वि क्रोशार्धविवर्जितं भवति ॥२०२॥

रयण । छायामात्रमेवार्थः ।

नारकियों के अवधि क्षेत्र का प्रमाण कहते हैं:—

गाथार्थ:—रत्नप्रभा पृथ्वी का अवधि क्षेत्र चार कोस प्रमाण है । इसके बाद प्रत्येक पृथ्वी में आधा आधा कोस हीन होता गया है ॥२०२॥

विशेषार्थ:—रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी जीव अपने अवधिज्ञान से ४ कोस तक जानते हैं । शर्करा प्रभा के ३ १/२ कोस, बालुकाप्रभाके ३ कोस, पङ्क प्रभा के २ १/२ कोस, धूमप्रभा के २ कोस, तमःप्रभा के १ १/२ कोस और महातमप्रभा के नारकी जीव मात्र १ कोस तक ही अपने अवधिज्ञान से जान सकते हैं, इसके आगे नहीं ।

अथ नरकान्निःसृतस्य जीवस्योत्पत्तिनियममाह—

णिरयादो णिस्सरिदो णरतिरिए कम्मसण्णिपज्जत्ते ।
गब्भभवे उप्पज्जदि सत्तमपुढवीदु तिरिए व ॥२०३॥

निरयान्निःसृतः नरतिरश्चोः कर्मसंज्ञिपर्याप्ते ।
गर्भभवे उत्पद्यते सप्तमपृथिव्यास्तु तिरश्चि एव ॥२०३॥

तिरश्चा। निरयात्रिःसृतः नरतिरश्चोर्गत्योः कर्मभूमौ संज्ञिनि पर्याप्ते गर्भभवे उत्पद्यते। सप्तमपृथिव्यास्तु निर्गतस्ताहग्विधतिरश्चां गतौ उत्पद्यते ॥२०३॥

नरक से निकलने वाले जीवों की उत्पत्ति का नियम कहते हैं:—

गाथार्थ:—नरक से निकला हुआ जीव मनुष्यगति और तिर्यञ्चगति में कर्मभूमिज, संज्ञी, पर्याप्तक और गर्भज ही होता है, तथा सप्तम पृथ्वी से निकला हुआ जीव कर्मभूमिज, संज्ञी, पर्याप्तक और गर्भज तिर्यञ्च होता है ॥२०३॥

विशेषार्थ:—प्रथम पृथ्वी से षष्ठ पृथ्वी तक के नारकी जीव नरक से निकल कर मनुष्य गति और तिर्यञ्च गति में कर्मभूमिज, संज्ञी, पर्याप्तक और गर्भज होते हैं। भोगभूमिज, असंज्ञी, लब्ध्यपर्याप्तक और सम्मूर्च्छन नहीं होते, तथा सप्तम नरक के नारकी उपर्युक्त विशेषणों सहित मात्र तिर्यञ्च गति में जन्म लेते हैं, मनुष्य नहीं होते।

अथ नारतिरिए इति नियमे तत्रापि किं सर्वत्रेत्याशङ्कायामाह—

णिरयचरो णत्थि हरी बलचक्की तुरियपहुदिणिस्सरिदो।

तित्थचरमंगसंजद मिस्सतियं णत्थि णियमेण ॥२०४॥

निरयचरो नास्ति हरिः बलचक्रिणौ तुरीयप्रभृतिनिःसृतः।

तीर्थचरमाङ्गसंयताः मिश्रत्रयं नास्ति नियमेन ॥२०४॥

णिर। नरकचरो नास्ति हरिः बलचक्रिणौ तुर्यप्रभृतिनिःसृतः यथासंख्यं तीर्थकरचरमाङ्गसंयता मिश्रत्रयं मिश्रासंयतदेशसंयता न सन्ति नियमेन। असंयतस्यनिषेधात्सासादनस्याप्यभाव एव ॥२०४॥

उपर्युक्त नियमानुसार क्या वे जीव सर्वत्र उत्पन्न होते हैं? ऐसी शंका होने पर कहते हैं:—

गाथार्थ:—नरक से निकला हुआ जीव नारायण, बलभद्र और चक्रवर्ती नहीं होता। चतुर्थादि पृथ्वी से निकला हुआ जीव तीर्थंकर, पञ्चमादि से निकला हुआ चरम शरीरी, षष्ठ आदि से निकला हुआ सकल संयमी और सप्तम पृथ्वी से निकला हुआ नारकी जीव नियम से सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और देश संयमी नहीं होता ॥२०४॥

विशेषार्थ:—नरक से निकले हुए नारकी जीव नारायण, बलभद्र और चक्रवर्ती नहीं होते। तथा चतुर्थादि पृथिवियों से निकले हुए जीव यथाक्रम तीर्थङ्कर, चरमशरीरी, सकलसंयमी और मिश्रत्रय (सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और देशसंयम) में उत्पन्न नहीं होते। यहाँ असंयत सम्यग्दृष्टि का निषेध करने से ऐसा जानना चाहिए कि सातवीं पृथ्वी से निकला हुआ जीव सासादन सम्यग्दृष्टि भी नहीं हो सकता, मात्र मिथ्यादृष्टि ही होता है।

अथ नरकं गच्छतां जीवानां पृथ्वीं प्रति नियमाह—

असण्णिसरिसिवविहंगम फणिसिंहित्थीण मच्छमणुवाणं ।

पढमादिसु उप्पत्ती अडवारादो दु दोण्णिवारोत्ति ॥२०५॥

अमनस्कसरीसृपविहङ्गमफणिसिंहस्त्रीणां मत्स्यमनुष्याणाम् ।

प्रथमादिषु उत्पत्तिः अष्टवारतस्तु द्विवार इति ॥२०५॥

असण्ण । अमनस्कसरीसृपविहङ्गमफणिसिंहस्त्रीणां मत्स्यमनुष्याणां प्रथमादिषु यथासंख्यमुत्पत्तिः निरन्तरं कथमिति चेत्, अष्टवारतः आरभ्य द्विवारपर्यन्तं अमनस्कः प्रथमनरकं गत्वा ततो निर्गत्य संज्ञी भूत्वा मृत्वा पुनरप्यसंज्ञी सम्भूय मृत्वा प्रथमनरकं गच्छति । इत्येकवारं । एवमसंज्ञिनोऽष्टवारं निरन्तरं योजयेत् । निरन्तरासम्भवेन एकमन्तरं गृह्णीयात्, नैवं सरीसृपादिषु । मत्स्यः सप्तमनरकं गत्वा ततः प्रच्युत्य तिर्यग्जीवो भूत्वा मृत्वा मत्स्यः संभूय मृत्वा सप्तमनरकं गच्छति । नरस्यैवं निरन्तरं द्विवारं योजयेत् ॥२०५॥

नरक जाने वाले जीवों का प्रत्येक पृथ्वी में उत्पत्ति का नियम कहते हैं:—

गाथार्थ:—असंज्ञी, सरीसृप, पक्षी, सर्प, स्त्री तथा मत्स्य और मनुष्य प्रथमादि पृथ्वियों में अनुक्रम से आठ बार से प्रारम्भ कर दो बार पर्यन्त उत्पन्न हो सकते हैं ॥२०५॥

विशेषार्थ:—असंज्ञी जीव प्रथम पृथ्वी पर्यन्त, सरीसृप द्वितीय पृथ्वी, पक्षी तृतीय पृथ्वी, सर्प चतुर्थ पृथ्वी, सिंह पञ्चम, स्त्री षष्ठ और मत्स्य एवं मनुष्य सप्तम पृथ्वी पर्यन्त ही जाते हैं। उपर्युक्त सातों पृथ्वियों में क्रमानुसार वे असंज्ञी आदि जीव उत्कृष्ट रूप से यदि निरन्तर उत्पन्न हों तो आठ, सात, छह, पांच, चार, तीन और दो बार ही उत्पन्न हो सकते हैं, इससे अधिक नहीं। निरन्तर कैसे उत्पन्न होते हैं ? ऐसा पूछने पर कहते हैं:—कोई असंज्ञी जीव मरकर प्रथम नरक गया। वहाँ से निकल कर उसने संज्ञी पर्याय प्राप्त की पुनः मरकर असंज्ञी हुआ। तथा मरकर पुनः प्रथम नरक गया। यह एक बार हुआ। पुनः वहाँ से निकल, संज्ञी होकर मरा और असंज्ञी पर्याय प्राप्त कर मरण किया तथा पुनः नरक चला गया यह दूसरी बार हुआ। इस प्रकार अधिक से अधिक आठ बार उत्पन्न हो सकता है, इससे अधिक नहीं। नरक से निकला हुआ जीव असंज्ञी नहीं होता इसलिए उसे बीच में संज्ञी पर्याय प्राप्त करनी पड़ी। इसी कारण यहाँ बीच में एक पर्याय का अन्तर होते हुए भी निरन्तर कहा है। सरीसृप, पक्षी, सर्प, सिंह और स्त्री के लिए ऐसा नियम नहीं है, वे बीच में अन्य किसी पर्याय का अन्तर डाले बिना ही उत्पन्न हो सकते हैं। मत्स्य सप्तम नरक जाकर वहाँ से निकल कर पहिले गर्भज होगा फिर मत्स्य हो मरण कर सप्तम नरक जाएगा। क्योंकि नरक से निकला जीव सम्मूर्च्छन नहीं होता। इसी प्रकार मनुष्य मरकर सप्तम नरक गया, मरकर गर्भज तिर्यंच हुआ फिर मनुष्य हो मरकर पुनः सप्तम नरक जाएगा। क्योंकि सप्तम नरक का जीव मनुष्य नहीं होता। इसी कारण इन दोनों जीवों के बीच में एक पर्याय का अन्तर होते हुए भी निरन्तर कहा है।

अथ प्रथमादिपृथिव्यां उत्कृष्टेन जननमरणयोरन्तरमाह—

चउवीसमुहुत्तं पुण सत्ताहं पक्खमेक्कमासं च ।

दुगचदुछम्मासं च य जम्मणमरणंतरं णिरये ॥२०६॥

चतुर्विंशतिमुहूर्ताः पुनः सप्ताहानि पक्षः एकमासश्च ।

द्विकचतुःषण्मासाश्च च जननमरणान्तरं निरये ॥२०६॥

चउवीस । यथासंख्यं इति शेषः । छायामात्रमेवार्थः ॥२०६॥

प्रथमादि पृथ्वियों में उत्कृष्ट रूप से जन्म मरण का अन्तर कहते हैं—

गाथार्थः—प्रथमादि पृथ्वियों में जन्म मरण के अन्तर का प्रमाण क्रमशः चौबीस मुहूर्त, सात दिन, एक पक्ष, एक माह, दो माह, चार माह और छह माह है ॥२०६॥

विशेषार्थः—कोई भी जीव यदि प्रथमादि पृथ्वियों में जन्म मरण न करे तो अधिक से अधिक यथाक्रम २४ मुहूर्त, ७ दिन, १ पक्ष, १ माह, २ माह, चार माह और छह माह तक न करे; इसके बाद नियम से जन्म मरण होगा ही होगा।

तेषां दुःखप्रागल्भ्यमाह—

अच्छिणिमीलणमेत्तं णत्थि सुहं दुक्खमेव अणुबद्धं ।

णिरए णेरइयाणं अहोणिसं पच्चमाणाणं ॥२०७॥

अक्षिनिमीलनमात्रं नास्ति सुखं दुःखमेव अनुबद्धम् ।

निरये नैरयिकाणां अहर्निशं पच्यमानानाम् ॥२०७॥

अच्छि । छायामात्रमेवार्थः ॥२०७॥ इति नरक स्वरूपनिरूपणं ।

नारकियों के दुःखों की अधिकता कहते हैं—

गाथार्थः—नारकी जीवों को नेत्र की टिमकार मात्र भी सुख नहीं है, वे सर्वदा दुःख में ही अनुबद्ध हैं। रात दिन दुःख रूपी अग्नि में ही जलते रहते हैं ॥२०७॥

विशेषार्थः—अनेक पापों के फलस्वरूप जीव नरक में जाकर निरन्तर दुःखरूपी अग्नि में जलता रहता है। नेत्र की पलक झपकने में जितना समय लगता है, उतने समय के लिए भी उसे वहाँ सुख नहीं मिलता।

नरक स्वरूपनिरूपण समाप्त हुआ।

इस प्रकार श्रीनेमिचन्द्राचार्य विरचित 'त्रिलोकसार' ग्रंथ में 'लोकसामान्याधिकार' नाम प्रथम अधिकार पूर्ण हुआ ॥१॥

२

भवनाधिकारः

अथ लोकस्य सामान्यवर्णनां कृत्वा "भवणव्विंतर" इत्यादिगाथासूचितपञ्चाधिकाराणां मध्ये तथैव भवनाधिकारं प्रक्रममाणस्तदधिष्ठानभूतां रत्नप्रभां तत्सहचरितां शर्कराप्रभादिभूमिं तद्गतनरक-प्रस्तरान् तद्गतनारकायुरादिकं च प्रासङ्गिकं सर्वं व्याख्याय प्रकृतं भवनाधिकारं प्रवक्तुकामस्तदादौ भवनलोकचैत्यालयान् वन्दमान इदं मङ्गलमाह—

भवणेसु सत्तकोडी बाहत्तरिलक्ख होंति जिणगेहा ।

भवणामरिंदमहिया भवणसमा ताणि वंदामि ॥२०८॥

भवनेषु सप्तकोट्यः द्वासप्ततिलक्षाणि भवन्ति जिनगेहानि ।

भवनामरेन्द्रमहितानि भवनसमानि तानि वन्दे ॥२०८॥

भवणे। भवनेषु सप्तकोट्यः द्वासप्ततिलक्षाणि भवन्ति जिनगेहानि। भवनामरेन्द्रमहितानि तेषां भवनसमानानि तानि वन्दे ॥२०८॥

लोक का सामान्य वर्णन करने के अनन्तर 'भवणव्विंतर' इत्यादि दो गाथासूत्रों में पाँच अधिकारों की जो सूचना दी गई थी, उनमें से अनुक्रम प्राप्त भवनाधिकार प्रारम्भ करने के लिए भवनों की आधारभूत रत्नप्रभा पृथ्वी और उसकी सहचारिणी शर्करा आदि छह पृथिवियों का, उनके पटलों का और पटलों में रहने वाले नारकी जीवों की आयु आदि सभी प्रासङ्गिक बातों की व्याख्या करके भवनाधिकार का वर्णन करने की इच्छा रखने वाले आचार्य सर्वप्रथम भवनलोक सम्बन्धी चैत्यालयों की वन्दना करने के लिए मंगलसूत्र कहते हैं—

गाथार्थः—भवनों में भवनवासी देव और उनके इन्द्रों से पूजित, भवनों की संख्या सदृश सात करोड़ बहत्तर लाख जिन-मन्दिर हैं। मैं (नेमिचन्द्राचार्य) उनकी वन्दना करता हूँ ॥२०८॥

विशेषार्थः—भवनों में सात करोड़ बहत्तर लाख जिन-भवन हैं। ये जिन-भवन भवनवासी देवों और भवनेन्द्रों से पूजित हैं। जितने भवन हैं उतने ही जिनमन्दिर हैं। उन सब जिनमन्दिरों को मैं (नेमिचन्द्राचार्य) नमस्कार करता हूँ।

अथ भवनवासिनां कुलभेदं तेषामिन्द्रनामानि च गाथात्रयेणाह—

असुराणागसुवण्णादीओदहिविज्जुथणिददिसअग्गी ।
वादकुमारा पढमे चमरो वइरोइणो इंदो ॥२०९॥

असुरो नागसुपर्णौ द्वीपोदधिविद्युत्स्तनितदिगग्नयः ।
वातकुमाराः प्रथमे चमरो वैरोचन इन्द्रः ॥२०९॥

असुरा । असुरः नागसुपर्णौ द्वीपोदधिविद्युत्स्तनितदिगग्नयः वातकुमारः । कुमारशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । प्रथमे कुले चमरो वैरोचनश्चेति द्वाविन्द्रौ ॥२०९॥

अब भवनवासी देवों के कुल-भेद और उनके इन्द्रों के नाम तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ:—असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार, दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार-भवनवासी देवों के ये दस कुल हैं। इनमें से प्रथम असुरकुमार कुल में चमर और वैरोचन नामके दो इन्द्र हैं ॥२०९॥

विशेषार्थ:—सरल है।

भूदाणंदो धरणाणंदो वेणू य वेणुधारी य ।
पुण्णवसिट्ठ जलप्पह जलकंतो घोसमहघोसो ॥२१०॥
हरिसेणो हरिकंतो अमिदगदी अमिदवाहणग्गिसिही ।
अग्गीवाहणणामा वेलंबपभंजणा सेसे ॥२११॥

भूतानन्दो धरणानन्दः वेणुश्च वेणुधारी च ।
पूर्णवशिष्टौ जलप्रभः जलकान्तः घोषमहाघोषौ ॥२१०॥
हरिषेणः हरिकान्तः अमितगतिः अमितवाहनः अग्निशिखी ।
अग्निवाहननामा वेलम्बप्रभञ्जनौ शेषे ॥२११॥

भूदा । शेषे नागादिकुले इत्यर्थः । शेषस्य छायामात्रमेवार्थः ॥२१०-२११॥

गाथार्थ:—'शेषे' अर्थात् नागादिकुलों में भूतानन्द-धरणानन्द; वेणु-वेणुधारी; पूर्ण-वशिष्ट; जलप्रभ-जलकान्त; घोष-महाघोष; हरिषेण-हरिकान्त; अमितगति-अमितवाहन; अग्निशिखी-अग्निवाहन; वेलम्ब और प्रभञ्जन इन्द्र हैं ॥२१०-२११॥

विशेषार्थ:—नागकुमारों के कुल में भूतानन्द और धरणानन्द नामक दो इन्द्र हैं। सुपर्णकुमारों में वेणु और वेणुधारी; द्वीपकुमारों में पूर्ण और वशिष्ट; उदधिकुमारों में जलप्रभ और जलकान्त;

विद्युत्कुमारों में घोष और महाघोष, स्तनितकुमारों में हरिषेण और हरिकान्त; दिक्कुमारों में अमितगति और अमितवाहन, अग्निकुमारों में अग्निशिखी और अग्निवाहन तथा वायुकुमारों में वेलम्ब और प्रभञ्जन नामके दो दो इन्द्र होते हैं। ये सब मिल कर बीस होते हैं।

अथ तेषां परस्परस्पर्धास्थानमाह—

चमरो सोहम्मेण य भूदाणंदो य वेणुणा तेसिं ।
बिदिया बिदियेहिं समं ईसंति सहावदो णियमा ॥२१२॥

चमरः सौधर्मेण च भूतानन्दश्च वेणुना तेषां ।
द्वितीया द्वितीयैः समं ईर्ष्यन्ति स्वभावतो नियमात् ॥२१२॥

चमरो । छायामात्रमेवार्थः ॥२१२॥

इन इन्द्रों के परस्परस्पर्धास्थान का कथन करते हैं—

गाथार्थ:—चमरेन्द्र सौधर्मेन्द्र से, वैरोचन ऐशानेन्द्र से, भूतानन्द वेणु से और धरणानन्द वेणुधारी से स्वभावतः नियम से ईर्ष्या करते हैं ॥२१२॥

विशेषार्थ:— द्वितीया का अर्थ वैरोचन और धरणानन्द तथा द्वितीयैः का अर्थ ऐशानेन्द्र और वेणुधारी है।

अथ तेषामसुरादीनां चिह्नमाह—

चूडामणिफणिगरुडं गजमयरं वड्ढमाणगं वज्जं ।
हरिकलसस्सं चिह्नं मउले चेत्तद्दुमाह धया ॥२१३॥

चूडामणिफणिगरुडं गजमकरं वर्धमानकं वज्रं ।
हरिकलशाश्वं चिह्नं मुकुटे चैत्यद्रुमा अथ ध्वजाः ॥२१३॥

चूडा । तेषां चिह्नाः इति शेषः । छायामात्रमेवार्थः ॥२१३॥

असुरादि कुलों के चिह्न—

गाथार्थ:—असुरकुमारादि भवनवासी देवों के मुकुटों में क्रमशः चूडामणि, सर्प, गरुड़, हाथी, मगर, वर्द्धमान (घड़ा), वज्र, सिंह, कलश और अश्व के चिह्न हैं। चैत्यवृक्ष और ध्वजा भी इनके चिह्न हैं ॥२१३॥

विशेषार्थ:— सरल है।

अथ तच्चैत्यवृक्षभेदानाह—

अस्सत्थसत्तसामलिजंबूवेतसकदंबकपियंगू ।
सिरिसं पलासरायद्दुमा य असुरादिचेत्ततरू ॥२१४॥

अश्वत्थसप्तच्छदशाल्मलिजम्बूवेतसकदम्बकप्रियङ्गवः ।
शिरीषः पलाशराजद्रुमौ च असुरादिचैत्यतरवः ॥२१४॥

अस्स । छायामात्रमेवार्थः ॥२१४॥

उन चैत्यवृक्षों के भेद कहते हैं—

गाथार्थः—अश्वत्थ (पीपल), सप्तपर्ण, शाल्मलि, जामुन, वेतस, कदम्ब, प्रियंगु, शिरीष, पलाश और राजद्रुम (चारोली का वृक्ष) ये दस चैत्यवृक्ष क्रम से उन असुरादिक कुलों के चिह्न स्वरूप होते हैं ॥२१४॥

विशेषार्थः—सरल है।

अथ चैत्यद्रुमाणामन्वर्थतां समर्थयते—

चेत्ततरूणं मूले पत्तेयं पडिदिसम्हि पंचेव ।
पलियंकठिया पडिमा सुरच्चिया ताणि वंदामि ॥२१५॥

चैत्यतरूणां मूले प्रत्येकं प्रतिदिशं पञ्चैव ।
पर्यङ्कस्थिताः प्रतिमाः सुरार्चिताः ताः वन्दे ॥२१५॥

चेत्त । छायामात्रमेवार्थः ॥२१५॥

चैत्यवृक्षों की सार्थकता का समर्थन करते हैं—

गाथार्थः— चैत्यवृक्षों के मूलभाग की चारों दिशाओं में पल्यङ्कासन से स्थित तथा देवों द्वारा पूज्य पाँच पाँच प्रतिमाएँ हैं, उन्हें मैं (नेमिचन्द्राचार्य) नमस्कार करता हूँ ॥२१५॥

विशेषार्थः—दस प्रकार के चैत्यवृक्षों के मूलभाग की चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में पद्मासन से स्थित और देवों द्वारा पूज्य पाँच पाँच जिन प्रतिमाएँ विराजमान हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

अथ तत्प्रतिमाग्रस्थमानस्तम्भस्वरूपमाह—

पडिदिसयं णियसीसे सगसगपडिमाजुदा विराजंति ।
तुंगा माणत्थंभा रयणमया पडिदिसं पंच ॥२१६॥

प्रतिदिशं निजशीर्षे सप्तसप्तप्रतिमायुता विराजन्ते ।
तुङ्गा मानस्तम्भा रत्नमय्यः प्रतिदिशं पञ्च ॥२१६॥

पडि । छायामात्रमेवार्थः ॥२१६॥

उन प्रतिमाओं के सामने स्थित मानस्तम्भों का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ:—उन प्रतिमाओं के आगे प्रत्येक दिशा में रत्नमयी उत्तुङ्ग पाँच पाँच मानस्तम्भ विराजमान हैं। वे अपने उपरिम भाग में चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में सात सात प्रतिमाओं सहित हैं ॥ २१६ ॥

विशेषार्थ:—प्रत्येक दिशा की पाँच पाँच जिनप्रतिमाओं के आगे अट्ठाईस अट्ठाईस जिनप्रतिमाओं सहित रत्नमयी पाँच पाँच मानस्तम्भ विराजमान हैं।

अथेन्द्राणां भवनसंख्यां ज्ञापयन्नाह—

चोत्तीसं चउदालं अडतीसं छसुवि ताल पण्णासं।
चउचउविहीण ताणि य इंदाणं भवणलक्खाणि ॥२१७॥

चतुस्त्रिंशच्चतुश्चत्वारिंशदष्टात्रिंशत् षट्सु अपि चत्वारिंशत् पञ्चाशत्।
चतुश्चतुर्विहीनानि तानि च इन्द्राणां भवनलक्षाणि ॥२१७॥

चोत्तीस। चतुस्त्रिंशच्चतुश्चत्वारिंशत् अष्टात्रिंशत् षट्सु स्थानेषु चत्वारिंशत् पञ्चाशदुत्तरेन्द्रान् प्रति चतुश्चतुर्विहीनानि तानि इन्द्राणां भवनलक्षाणि ॥२१७॥

भवनवासी इन्द्रों के भवनों की संख्या—

गाथार्थ:—दक्षिणेन्द्रों के क्रमशः चौंतीस लाख, चवालीस लाख, अड़तीस लाख, छह स्थानों में चालीस लाख और इसके आगे पचास लाख भवन हैं तथा उत्तरेन्द्रों के क्रमशः उपर्युक्त प्रमाणों में से चार चार हीन भवनों की संख्या है ॥२१७॥

विशेषार्थ:—चमरेन्द्र के ३४ लाख, भूतानन्द के ४४ लाख, वेणु के अड़तीस लाख, पूर्ण के ४० लाख, जलप्रभ के ४० लाख, घोष के ४० लाख, हरिषेण के ४० लाख, अमितगति के ४० लाख, अग्निशिखी के ४० लाख, और वेलम्ब के ५० लाख भवन हैं। इसीप्रकार उत्तरेन्द्रों में—वैरोचन के ३० लाख, धरणानन्द के ४० लाख, वेणुधारी के ३४ लाख, वशिष्ट के ३६ लाख, जलकान्त के ३६ लाख, महाघोष के ३६ लाख, हरिकान्त के ३६ लाख, अमितवाहन के ३६ लाख, अग्निवाहन के ३६ लाख और प्रभञ्जन के ४६ लाख भवन हैं।

अथ तेषां भवनानां विशेषस्वरूपमाह—

ससुगंधपुप्फसोहियरयणधरा रयणभित्ति णिच्चपहा।
सव्विंदियसुहदाहिं सिरिखंडादिहिं चिदा भवणा ॥२१८॥

ससुगन्धपुष्पशोभितरत्नधरा रत्नभित्तयः नित्यप्रभाः।
सर्वेन्द्रिय सुखदाभिः श्रीखण्डादिभिश्चिता भवनाः ॥२१८॥

सगुन्ध । छायामात्रमेवार्थः ॥२१८॥

उन भवनों का विशेष स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थः— भवनवासी देवों के भवन उत्तम सुगन्धित पुष्पों से शोभायमान हैं और उनकी भूमि रत्नमयी है। उनकी दीवारें भी रत्नमयी हैं। वे भवन सतत प्रकाशमान रहते हैं तथा सर्वेन्द्रियों को सुख देने वाली चन्दनादि वस्तुओं से सिक्त हैं।

विशेषार्थः—गाथार्थ की भाँति है।

अथ तत्रत्यदेवानामैश्वर्यमाह—

अट्ठगुणिड्ढिविसिट्ठा णाणामणिभूसणेहि दित्तंगा।
भुंजंति भोगमिट्ठं सगपुव्वतवेण तत्थ सुरा ॥२१९॥

अष्टगुणर्द्धिविशिष्टाः नानामणिभूषणैः दीप्ताङ्गाः।
भुञ्जते भोगमिष्टं स्वकपूर्वतपसा तत्र सुराः ॥२१९॥

अट्ठ । छायामात्रमेवार्थः ॥२१९॥

भवनवासी देवों का ऐश्वर्य—

गाथार्थः—नाना प्रकार की मणियों के आभूषणों से दीप्त तथा अष्टगुण ऋद्धियों से विशिष्ट वे भवनवासी देव अपने पूर्व तपश्चरण के फलस्वरूप अनेक प्रकार के इष्ट भोग भोगते हैं॥२१९॥

विशेषार्थः—जो जीव मनुष्य पर्याय में तपश्चरण कर पुण्य सञ्चय करते हैं और जिनके देवायु का बन्ध हो जाता है तथा जो बाद में सम्यक्त्वादि से च्युत हो जाते हैं, वे जीव अनेक गुण ऋद्धियों से युक्त भवनवासी देव होकर मनोहर इष्ट भोग भोगते हैं।

अथ तेषां भवनानां भूगृहोपमानानां व्यासादिकमाह—

जोयणसंखासंखाकोडी तव्वित्थडं तु चउरस्सा।
तिसयं बहलं मज्झं पडि सयतुंगेक्ककूडं च ॥२२०॥

योजनसंख्यासंख्यकोट्यः तद्विस्तारस्तु चतुरस्राः।
त्रिशतं बाहल्यं मध्यं प्रति शततुङ्गैककूटश्च ॥२२०॥

जोयण । जघन्येन योजनानां संख्यातकोट्यः उत्कर्षेण असंख्यातकोट्यः। तद्विस्तारस्तु चतुरस्राः। त्रिशतयोजनबाहुल्यं। तत्र प्रतिमध्यं शततुङ्गैककूटस्तदुपरि चैत्यालयश्च ॥२२०॥

भूमिगृह की उपमा को धारण करने वाले भवनों का व्यासादि कहते हैं:—

गाथार्थ:—भवनों की लम्बाई चौड़ाई का जघन्य प्रमाण संख्यात करोड़ योजन और उत्कृष्ट प्रमाण असंख्यात करोड़ योजन है। वे समस्त भवन चौकोर हैं, तथा उनका बाहुल्य (ऊँचाई) तीन सौ योजन है। प्रत्येक भवन के बीच में सौ योजन ऊँचा एक एक पर्वत है और उन पर्वतों के ऊपर चैत्यालय हैं ॥२२०॥

विशेषार्थ:—भवनों का जघन्य विस्तार संख्यात करोड़ योजन और उत्कृष्ट विस्तार असंख्यात करोड़ योजन है। इनका आकार चौकोर है। ऊँचाई तीन सौ योजन है प्रत्येक भवन के ठीक मध्य में सौ योजन ऊँचा एक पर्वत है, और प्रत्येक पर्वत पर एक चैत्यालय है।

शंका:—भवनों को भूमिगृह की उपमा क्यों दी गई है ?

समाधान:—जैसे यहाँ मकान में पृथ्वी के नीचे जो कमरा बनाते हैं, उसे तहखाना तलघरा या भूमिगृह कहते हैं, वैसे ही भवनवासियों के भवन रत्नप्रभा पृथ्वी में चित्रा पृथ्वी के नीचे खर भाग और पङ्क भाग में हैं, अतः इन्हें भूमिगृह की उपमा दी गई है।

शंका:—नरक बिल भी इसी प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी में चित्रादि पृथ्वियों के नीचे अब्बहुल भाग में बने हुए हैं, फिर उन्हें भवन संज्ञा न देकर बिल संज्ञा क्यों दी गई है ?

समाधान:—जिस प्रकार यहाँ सर्पादि पापी जीवों के स्थानों को बिल कहते हैं, और पुण्यवान् मनुष्यों के रहने के स्थानों को भूमिगृह आदि कहते हैं उसी प्रकार निःकृष्ट पाप के फल को भोगने वाले नारकी जीवों के रहने के स्थानों की संज्ञा बिल है और पुण्यवान देवों के स्थानों की संज्ञा भवन है।

अथ तेषां भवनावस्थितस्थानानि गाथाद्वयेनाह—

> वेंतर अप्पमहड्ढियमज्झिमभवणामराण भवणाणि।
>
> भूमीदोधो इगिदुगबादालसहस्सइगिलक्खे ॥२२१॥
>
> व्यन्तराणां अल्पमहद्धिकमध्यमभवनामराणां भवनानि।
>
> भूमितोधः एकद्विकद्वाचत्वारिंशत्सहस्रएकलक्षाणि ॥२२१॥

वतर। व्यन्तराणां अल्पधिमहद्धिकमध्यमर्धिभवनामराणां च भवनानि चित्राभूमितः अधोधः एकसहस्रद्विसहस्रद्वाचत्वारिंशत्सहस्रएकलक्षाणियोजनानि गत्वा भवन्ति ॥२२१॥

अब उन भवनों में स्थित स्थानों का वर्णन दो गाथाओं में किया जाता है—

गाथार्थ:—चित्रा पृथ्वी से एक हजार योजन नीचे व्यन्तर देवों के आवास हैं। दो हजार योजन नीचे जाकर अल्पऋद्धि के धारक भवनवासी देवों के विमान हैं। बयालीस हजार योजन नीचे जाकर महाऋद्धि के धारक भवनवासी देवों के भवन हैं तथा एक लाख योजन नीचे जाकर मध्यमऋद्धिधारक देवों के भवन हैं ॥२२१॥

विशेषार्थ:—व्यन्तर देव तथा अल्पर्द्धि, महर्द्धिक और मध्यम ऋद्धि के धारक भवनवासी देवों के आवास और भवन क्रमशः चित्रा पृथ्वी के नीचे नीचे एक हजार, दो हजार, बयालीस हजार और एक लाख योजन जाकर हैं।

आवास और भवन में अन्तर:—रमणीक तालाब, पर्वत तथा वृक्षादिक के ऊपर स्थित निवासस्थानों को आवास कहते हैं तथा रत्नप्रभा पृथ्वी में स्थित निवासस्थानों को भवन कहते हैं।

रयणप्पहपंकद्धे भागे असुराण होंति आवासा।
भौम्मेसु रक्खसाणं अवसेसाणं खरे भागे ॥२२२॥

रत्नप्रभापङ्काढ्ये भागे असुराणां भवन्ति आवासाः।
भौमेषु राक्षसानां अवशेषाणां खरे भागे ॥२२२॥

रयण। भौमेषु व्यन्तरेषु, अवशेषाणां नागादीनां इत्यर्थः। शेषं छायामात्रमेवार्थः ॥२२२॥

गाथार्थ:—रत्नप्रभा पृथ्वी के पङ्कभाग में असुरकुमारों के भवन हैं; भौमेषु अर्थात् व्यन्तरों में केवलराक्षसों के आवास पङ्कभाग में हैं, शेष भवनवासी एवं व्यन्तरों के आवास खरभाग में हैं ॥२२२॥

विशेषार्थ:—रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रधानतः तीन भाग हैं; पहले खर भाग में नागकुमारादि नौ प्रकार के भवनवासियों के भवन तथा राक्षसों के अतिरिक्त शेष सात प्रकार के व्यन्तरों के आवास हैं। यह भाग १६००० योजन मोटा है। दूसरा पङ्क भाग ८४००० योजन मोटा है और इसमें असुरकुमारों के भवन और राक्षस देवों (व्यन्तर) के आवास हैं। तीसरा, अब्बहुलभाग ८०००० योजन मोटा है, इस भाग में नारकी जीव हैं।

इदानीमिन्द्रादिभेदमाह—

इंदपडिंददिगिंदा तेत्तीससुरा समाणतणुरक्खा।
परिसत्तयआणीया पइण्णगभियोगकिब्बिसिया ॥२२३॥

इन्द्रप्रतीन्द्रदिगिन्द्राः त्रयस्त्रिंशत्सुराः सामानिकतनुरक्षकौ।
परिषत्त्रयानीकौ प्रकीर्णकाभियोग्यकिल्बिषिकाः ॥२२३॥

इदं। छायामात्रमेवार्थः ॥२२३॥

अब इन्द्रादिक के भेद कहते हैं—

गाथार्थ:—इन्द्र, प्रतीन्द्र, दिगिन्द्र, त्रायस्त्रिंशदेव, सामानिक, तनुरक्षक, तीन प्रकार के परिषद, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्बिषिक, देवों के ये दस भेद होते हैं ॥२२३॥

विशेषार्थ:—सरल है।

अथ इन्द्रादिपदवीनां दृष्टान्तमाह—

रायजुवतंतराए पुत्तकलत्तंगरक्खवरमज्झे ।
अवरे तंडे सेणापुरपरिजणगायणेहिं समा ॥२२४॥

राजयुवतन्त्रराजैः पुत्रकलत्राङ्गरक्षवरमध्येन ।
अवरेण तण्डेण सेनापुरपरिजनगायकैः समाः ॥२२४॥

राय । राजयुवतन्त्रराजैश्च पुत्रकलत्राङ्गरक्षैः वरेण मध्येन अवरेण च तण्डेण प्रकीर्णेन सेनापुरपरिजनगायकैः समाः ॥२२४॥

अब इन्द्रादिक पदवियों का दृष्टान्त कहते हैं—

गाथार्थ:— ये उपर्युक्त देव राजा, युवराज, सेनापति, पुत्र, कलत्र, अङ्गरक्षक, उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से तीन प्रकार के सभासद, सेना, प्रजाजन, परिजन (दास) और गायक के सदृश होते हैं ॥२२४॥

विशेषार्थ:— उपर्युक्त देवों में से इन्द्र राजा के सदृश, प्रतीन्द्र युवराज सदृश, दिगिन्द्र तन्त्रराज (सेनापति) सदृश, त्रायस्त्रिंशदेव पुत्र सदृश, सामानिक देव पत्नी सदृश, तनुरक्षक अङ्गरक्षक सदृश, तण्डेण अर्थात् तीनों प्रकार की परिषद् राजा की बाह्य, मध्यम और अभ्यन्तर समिति के सदृश, अनीक सेना सदृश, प्रकीर्णक व्यापारी सदृश, आभियोग्य दास सदृश और किल्विषिक वा बजाकर आजीविका चलाने वालों के सदृश होते हैं।

अथ चतुर्निकायामरेष्विन्द्रादीनां सम्भवप्रकारमाह—

वेंतरजोयिसियाणं तेत्तीससुरा ण लोयपाला य ।
भवणे कप्पे सव्वे हवंति अहमिंदया तत्तो ॥२२५॥

व्यन्तरज्योतिष्काणां त्रयस्त्रिंशत्सुरा न लोकपालाः च ।
भवने कल्पे सर्वे भवन्ति अहमिन्द्रका ततः ॥२२५॥

वेंतर । व्यन्तरज्योतिष्काणां त्रयस्त्रिंशत्सुरा न संति लोकपालाश्च भवने कल्पे च सर्वे भवन्ति ततः परमहमिन्द्राः ॥२२५॥

अब चारों प्रकार के देवों में पाए जाने वाले इन्द्रादिक (सम्भव) भेदों को कहते हैं—

गाथार्थ:—व्यन्तरवासी और ज्योतिषी देवों में त्रायस्त्रिंशत् और लोकपाल ये दो भेद नहीं होते। भवनवासी और कल्पवासी देवों में सभी भेद होते हैं तथा कल्पातीत देवों में कोई भेद नहीं है, वे सभी अहमिन्द्र हैं ॥२२५॥

विशेषार्थ:—व्यन्तर और ज्योतिषी देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल ये दो भेद नहीं होते, शेष नौ भेद होते हैं। भवनवासी और कल्पवासियों में सभी ग्यारह भेद होते हैं। कल्पातीतों में सभी अहमिन्द्र हैं, समान विभूतिवाले हैं, हीनाधिक नहीं हैं।

अथ भावनेन्द्रादिपरिषत्त्रयान्तानां संख्यां गाथात्रयेणाह—

इंदसमा हु पडिंदा सोमो यम वरुण तह कुवेरा य।
पुव्वादिलोयवाला तेत्तीससुरा हु तेत्तीसा ॥२२६॥
चमरतिये सामाणियतणुरक्खाणं पमाणमणुकमसो।
अडसोलकदिसहस्सा चउसोलसहस्सहीणकमा ॥२२७॥
पण्णसहस्स विलक्खा सेसे तट्ठाण परिसमादिल्लं।
अडछव्वीसं छच्चदुसहस्स दुसहस्सवड्ढिकमा ॥२२८॥

इन्द्रसमाः खलु प्रतीन्द्राः सोमो यमो वरुणस्तथा कुबेरश्च।
पूर्वादिलोकपालाः त्रयस्त्रिंशत्सुराः हि त्रयस्त्रिंशत् ॥२२६॥
चमरत्रिके सामानिकतनुरक्षाणां प्रमाणमनुक्रमशः।
अष्टषोडशकृतिसहस्राणि चतुः षोडशसहस्रहीनक्रमाणि ॥२२७॥
पञ्चाशत्सहस्राणि द्विलक्षे शेषे तत्स्थाने परिषदादिमा।
अष्टषड्विंशषट्चतुः सहस्राणि द्विसहस्रवृद्धिक्रमः ॥२२८॥

इदं : हि एव इत्यर्थः। शेषं छायामात्रमेवार्थः ॥२२६॥

चमर। चमरत्रिके सामानिकतनुरक्षाणां प्रमाणमनुक्रमशः अष्टकृतिषोडशकृतिसहस्राणि चतुःसहस्रषोडशसहस्रहीनः क्रमशः[1] ॥२२७॥

पण्ण। पञ्चाशत्सहस्राणि द्विलक्षे शेषे नागादिषु तत्स्थाने चमरत्रिकशेषस्थाने आदिमा परिषदष्टाविंशति सहस्राणि षड्विंशतिसहस्राणि षट्सहस्राणि चतुःसहस्राणि मध्यमबाह्यपारिषदेषु उक्तसहस्रेष्वेव द्विसहस्रवृद्धिक्रमो ज्ञातव्यः ॥२२८॥

भवनवासी देवों में इन्द्र से प्रारम्भ कर तीन प्रकार के पारिषद, देव पर्यन्त देवों की संख्या तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ:—इन्द्र समान ही प्रतीन्द्र हैं अर्थात् एक इन्द्र है और एक ही प्रतीन्द्र है। पूर्वादि दिशाओं के सोम, यम, वरुण और कुबेर ये चार लोकपाल हैं। तथा त्रायस्त्रिंशदेव तेंतीस होते हैं। चमरत्रिक

---

[1] क्रमः (प०)।

में सामानिक और अङ्गरक्षकों का प्रमाण क्रम से आठ का वर्ग=६४ हजार, सोलह का वर्ग=२५६ हजार, ४ हजार और १६ हजार हीन हीन क्रम से जानना अवशेष सत्रह इन्द्रों में से सामानिक पचास हजार, तनुरक्षक दो लाख, इन्हीं स्थानों की आभ्यन्तर परिषद् में चमरेन्द्र के २८ हजार, वैरोचन के २६ हजार, भूतानन्द के छह हजार तथा अवशेष के ४ हजार हैं। आभ्यन्तर परिषद् से मध्य परिषद् का प्रमाण दो हजार अधिक है, तथा मध्य से बाह्य परिषद् का प्रमाण दो हजार अधिक है। ॥२२६,२२७,२२८॥

विशेषार्थ:—प्रत्येक कुल में इन्द्र और प्रतीन्द्र एक एक ही होते हैं, तथा उपर्युक्त बीस इन्द्रों में से प्रत्येक के त्रायस्त्रिंश देव तेंतीस और पूर्वादि दिशाओंमें स्थित एक एक लोकपाल अर्थात् लोकपाल कुल चार चार ही होते हैं। चमरत्रिक का अर्थ है चमरेन्द्र, वैरोचन और भूतानन्द।

सामानिक देवों की संख्या:—चमरेन्द्र के ६४ हजार सामानिक देव, वैरोचन के चार हजार कम अर्थात् ६० हजार, भूतानन्द के (६० ह०—४ ह०) =५६ हजार, तथा शेष सत्रह इन्द्रों के ५०,५० हजार सामानिक देव हैं।

तनुरक्षक देवों का प्रमाण:—चमरेन्द्र के दो लाख ५६ हजार (२५६०००), वैरोचन के १६ हजार कम अर्थात् दो लाख ४० हजार, भूतानन्द के (२४०००० — १६०००) = दो लाख २४ हजार, तथा शेष सत्रह इन्द्रों के बीस, बीस हजार तनुरक्षक देव हैं।

आदि पारिषद देवों का प्रमाण:—चमरेन्द्र के २८००० हजार, वैरोचन के २६०००, भूतानन्द के ६००० और शेष सत्रह इन्द्रों के चार चार हजार (४०००) पारिषद देव हैं।

मध्य पारिषद देवों का प्रमाण:—चमरेन्द्र के ३००००, वैरोचन के २८०००, भूतानन्द के ८००० और शेष सत्रह इन्द्रों के छह छह (६०००) हजार पारिषद देव हैं।

बाह्य पारिषद देवों का प्रमाण:—चमरेन्द्र के ३२०००, वैरोचन के ३०००० भूतानन्द के १०००० और शेष सत्रह इन्द्रों के आठ आठ हजार (८०००) पारिषद देव हैं। आभ्यन्तर परिषद् से मध्यपरिषद् में प्रत्येक इन्द्र के पारिषद देव दो दो हजार अधिक होते हैं, तथा मध्यपरिषद् से बाह्य परिषद् के दो दो हजार (२०००) देव अधिक होते हैं।

अथ परिषत्प्रमाणां विशेषाभिधानमाह—

पढमा परिसा समिदा बिदिया चंदोत्ति णामदो होदि ।
तदिया जदुअहिधाणा एवं सव्वेसु देवेसु ॥२२९॥

प्रथमा परिषत् समित् द्वितीया चन्द्रा इति नामतो भवति ।
तृतीया जत्वभिधाना एवं सर्वेषु देवेषु ॥२२९॥

चद्रमा । छायामात्रमेवार्थः ॥२२९॥

अब तीनों परिषदों के विशेष नाम कहते हैं—

गाथार्थः—सर्वदेवों की सभाओं में प्रथम परिषद् का नाम समिद्, दूसरी का नाम चन्द्रा तथा तीसरी का नाम जतु है ॥२२९॥

विशेषार्थः—सरल है ।

इदानीमानीकभेदं तत्संख्यां चाह—

> सत्तेव य आणीया पत्तेयं सत्तसत्तकक्खजुदा ।
> पढमं ससमाणसमं तद्दुगुणं चरिमकक्खोत्ति ॥२३०॥
>
> सप्तैव च आनीकाः प्रत्येकं सप्तसप्तकक्षयुताः ।
> प्रथमं स्वसामानिकसमं तद्द्विगुणं चरमकक्ष इति ॥२३०॥

सत्तेव । सप्तैवानीकाः प्रत्येकं सप्तसप्तकक्षयुताः प्रथमानीकं स्वसामानिकसमं तद्द्विगुणं चरमकक्षं यावत् ॥२३०॥

अनीक देवों के भेद और उनकी संख्या कहते हैं:—

गाथार्थः—अनीक देव सात ही होते हैं। उनमें अलग अलग सात सात कक्षाएँ (फौजें) होती हैं, उनमें से प्रथम कक्षा में संख्या की अपेक्षा अपने सामानिक देवों के बराबर देव रहते हैं आगे वे अंतिम कक्षा तक उत्तरोत्तर दूने दूने होते गये हैं ॥२३०॥

विशेषार्थः—एक एक इन्द्र के पास सात सात अनीक (फौज या सेना) होती हैं। प्रत्येक अनीक की सात सात कक्षाएँ होती हैं। प्रथम कक्षा का प्रमाण अपने सामानिक देवों की संख्या के बराबर होता है, इसके आगे का प्रमाण दूना दूना होता गया है। जैसे:—भवनवासियों का प्रथम कुल असुरकुमार का है, और असुरकुमारों में, महिष, घोड़ा, रथ, हाथी, पादचारी, गन्धर्व और नर्तकी ये सात अनीक हैं। असुरकुमारों के चमरेन्द्र के पास ६४००० सामानिक देव हैं, अतः इसके प्रथम अनीक महिषों की संख्या भी ६४००० ही है। द्वितीय कक्षा के महिषों की संख्या १२८ हजार, तृतीय कक्षा के २५६ हजार, चतुर्थ कक्षा के ५१२ हजार, पंचम कक्षा के १०२४०००, षष्ठ कक्षा के २०४८००० और सप्तम कक्षा के महिषों की संख्या ४०९६००० है। इस प्रकार चमरेन्द्र के पास सातों कक्षाओं के कुल भैंसे ८१२८००० हैं, तथा इतने ही अश्वादि हैं।

अथ गुणोत्तरक्रमेणागतसप्तानीकधनानयने प्रयुक्तमिदं गुणसंकलितसूत्रम्—

पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणिय रूवपरिहीणे ।
रूऊणगुणेणहिए मुहेण गुणियम्मि गुणगणियं ॥२३१॥

पदमात्रान् गुणकारान् अन्योन्यं गुणयित्वा रूपपरिहीणे ।
रूपोनगुणेन हृते मुखेन गुणिते गुणगणितम् ॥२३१॥

पद । पदमात्रगुणकारान् २।२।२।२।२।२।२ अन्योन्यं सङ्गुण्य लब्धे १२८ रूपेण परिहीणे १२७ रूपोनगुणेन हृते $\frac{१२७}{१}$ मुखेन ६४००० गुणिते सति ८१२८००० गुणसङ्कलितधनमायाति । एतस्मिन् सप्तभिर्गुणिते ५६८९६००० सप्तानीकसमस्तधनमायाति । एवं वंरोचनादिषु ज्ञातव्यं । अस्य करणसूत्रस्य वासना उदाहरणान्तरेण प्रदर्श्यते । आदि २ गुणोत्तर ५ गच्छ ४ । अस्य न्यासः २×५×५×५×१+२×५×५×१+२×५×१+२×१ अस्य समस्तधनं पदमेत्तेत्यानीतं ३१२। ऋणन्यासः २×५×५×५×३+२×५×५×३+२×५×३+२×४ । तद्यथा । आदेरात्मप्रमाणे एकस्मिन्रूपे २×१ रूपोनगुणोत्तरगुणितमादिमात्र [२×४] ऋणप्रक्षेपणे मङ्कुस्याङ्कुसदृशं वर्णयित्वा तत्सदृशस्थाने मेलयेत् [२×५] । इदं द्वितीयधने योजने मङ्कुस्याङ्कुसदृशं वर्णयित्वा तत्सदृशस्थाने मेलयेत् [२×५] । उपरितनात्मप्रमाणेकरूपे अधस्तनात्मप्रमाणेकरूपं युञ्ज्यात् [२×५×२] । अत्र द्विरूपोनगुणकारगुणितगुणघ्नमादि [२×५×३] ऋणं निक्षिप्य [२×५×५] इदं तृतीयधने युञ्ज्यात् [२×५×५×२] अत्र द्विरूपोनगुणघ्नगुणकारवर्गगुणितमादि [२×५×५×३] ऋणं निक्षिप्य [२×५×५×५] इदं चतुर्थधने युञ्ज्यात्[1] [२×५×५×५×२] । अत्र द्विरूपोनगुणघ्नगुणकारघन गुणितमादि [२×५×५×५×३] ऋणं निक्षिपेत् [२×५×५×५×५] । एवमुपरि सर्वत्र द्विरूपोनगुणेन रूपोनगच्छमात्रगुणकारैश्च गुणितमादि ऋणं निक्षिपेत् । तथा च सति अन्तधने आदेर्गच्छमात्र गुणकारा भवन्ति । एतत्सर्वं मनसि कृत्य "पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणिये" त्युक्तं । एवमिह गच्छमात्रेषु गुणकारेषु अन्योन्यं गुणितेष्वेवं [२×६२५] । इदं ऋणसहितं धनं । अत्र प्राग्निक्षिप्तऋणापनयने तावत्प्रथमं ऋणे एकरूपगुणितमादि [२×१] उद्धृत्यापनयेत् । इदमेवाभिप्रायं "रूवपरिहीणे" इत्युक्तं । अपनीतशेषमिदं [२×६२४] । अत्र सर्वऋणसंकलितमिदं [२×६२४×$\frac{३}{४}$] रूपोनगुणेन समच्छेदीकृते अस्मिन् [२×६२४×$\frac{४}{४}$] अपनयेत् । अपनीते सत्येवं [२×६२४×$\frac{१}{४}$] इदं मनसा सम्प्रधार्य "रूऊणगुणेणहिये" इति उक्तं । पुनरप्यत्र्यं आदिना गुणिते गुणसंकलितधनमागच्छति [३१२] । इदं विचार्य "मुहेण गुणियम्मि" इत्युक्तं । एवं सर्वत्र ऋणराशिः रूपोनगुणकारविभक्तसमस्तराशेर्बहुभागप्रमाणो जायते । शुद्धधनराशिस्तु तदेकभागो जायते इति व्याप्तिः सर्वत्र योज्या ॥२३१॥

---

1 युञ्ज्यते (ब०) ।

अब उत्तरोत्तर सदृश गुणकार के क्रम से प्राप्त सातों अनीकों के धन को प्राप्त करने के लिए गुण संकलन करण सूत्र को कहते हैं —

गाथार्थ:—पद का जितना प्रमाण है, उतनी बार गुणकार का परस्पर में गुणा कर प्राप्त गुणन फल में से एक घटा कर एक कम गुणकार से भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसका मुख में गुणा करने से गुण संकलित धन का प्रमाण प्राप्त होता है ।।२३१।।

विशेषार्थ:—स्थानों के प्रमाण को गच्छ या पद कहते हैं, तथा प्रत्येक स्थान पर जितने का गुणा किया जाता है उसे गुणकार कहते हैं। यहाँ गच्छ (पद) का प्रमाण ७ है। गुणकार २ (प्रत्येक कक्षा का प्रमाण दुगुना दुगुना है, इसलिए गुणकार का प्रमाण दो कहा गया है।) और मुख ६४००० है।

पद बराबर गुणकारों का परस्पर में गुणा करने से (२×२×२×२×२×२×२) १२८ फल प्राप्त हुआ। इसमें से १ घटा कर एक कम गुणकार का भाग देने से [१२८—१=१२७÷ (२–१)]= १२७/१ लब्ध प्राप्त हुआ। इसका मुख से गुणा करने पर (६४०००×१२७)=८१२८००० गुणसंकलित धन प्राप्त होता है। इसमें सात का गुणा करने से (८१२८०००×७) ५६८९६००० सातों अनीकों का समस्त धन प्राप्त हो जाता है। यह चमरेन्द्र की अनीकों का सर्व धन है।

वैरोचन का :—२×२×२×२×२×२×२=१२८—१=१२७÷ (२–१)=१= १२७/१ मुख ६००००×१२७=७६२०००० यह पृथक् पृथक् अनीकों का संकलित धन है और (७६२००००×७) =५३३४०००० सातों अनीकों का सामूहिक धन है।

भूतानन्द का :—२×२×२×२×२×२×२=१२८—१=१२७÷(२–१)=१२७ ५६००० मुख ×१२७=७११२००० भिन्न भिन्न अनीकों का धन है, तथा ७११२०००×७=४९७८४०००, चार करोड़ सत्तानवे लाख चौरासी हजार प्रमाण सातों अनीकों का सर्व संकलित धन है।

शेष सत्रह इन्द्रों का :—२×२×२×२×२×२×२=१२८—१=१२७÷ (२–१)=१२७ मुख ५००००×१२७=६३५००००—त्रेसठ लाख पचास हजार; शेष सत्रह इन्द्रों में से प्रत्येक के प्रथम अनीक का प्रमाण धन है। ६३५००००×७=४४४५००००, चार करोड़ चवालीस लाख पचास हजार यह शेष सत्रह इन्द्रों में से प्रत्येक के सातों अनीकों का संकलित धन है।

उपर्युक्त करण सूत्र उदाहरण द्वारा सिद्ध किया जाता है :—

आदि (मुख) २ है, उत्तरोत्तर गुणकार ५ है, गच्छ (पद) ४ है, अतः इसका प्रथम स्थान २, दूसरा स्थान २×५, तीसरा स्थान २×५×५, चौथा स्थान २×५×५×५ है।

इसका न्यास इस प्रकार है:—२× (५×५×५×५—१)। इसमें से ऋण धन २× (१+५+५×५+५×५×५)×३ को घटा देने पर ३१२ समस्त धन प्राप्त होता है। अर्थात् २× (६२५—१)—२× (१+५+२५+१२५) ×३=२×६२४—२×१५६×३=१२४८—९३६=३१२। यह ऋण धन इस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है:— प्रथम स्थान २×१ है, इसको एक कम गुणाकार (५—१=४) से गुणा करने पर चार आदि स्थान अर्थात् २×४ प्राप्त होते हैं। इस २×४ ऋण धन को आदि स्थान २×१ में प्रक्षेप करने (जोड़ने) से (२×४)+(२×१)= २×५ प्राप्त होते हैं, क्योंकि २ का अङ्क दोनों में सदृश है, तथा १ व ४ का अङ्क असदृश होने से इनको जोड़ने पर ४+१=५ प्राप्त होते हैं। इसको (२×५ की एक संख्या को) दूसरे स्थान की एक संख्या २×५ में जोड़ने से २×५×१+२×५×१=२×५×२ प्राप्त होते हैं। इसमें दो कम गुणाकार (५—२=३) से गुणित गुणधन अर्थात् ऋण का दूसरा स्थान (२×५×३) निक्षेप करने (जोड़ने) से २×५×२+२×५×३=२×५×५ होते हैं। इसको तीसरे स्थान २×५×५ में जोड़ने से २×५×५×१+२×५×५×१=२×५×५×२ प्राप्त होते हैं। इसमें दो कम गुणोत्तर गुणाकार (५—२=३) से गुणित गुणकार का वर्ग (५×५) गुणित आदि (२) अर्थात् २×५×५×३ को जोड़ने से २×५×५×२+२×५×५×३=२×५×५×५ प्राप्त होते हैं। इसको चतुर्थ स्थान के धन २×५×५×५ जोड़ने से २×५×५×५×१+२×५×५×५×१=२×५×५×५×२ प्राप्त होते हैं। इसमें दो कम गुणोत्तर गुणाकार (५—२=३) से गुणित गुणकार का घन ५×५×५ गुणित आदि २ अर्थात् २×५×५×५×३ ऋणधन को निक्षेप करने (जोड़ने) पर २×५×५×५×२+२×५×५×५×३=२×५×५×५×५ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार सबसे ऊपर दो कम गुणकार (५—२=३) से गुणित एक कम गच्छ (४—१=३) प्रमाण गुणकार (५×५×५) गुणित आदि (२) अर्थात (३×५×५×५×२) निक्षेप किया (जोड़ा) गया है। ऐसा करने से अन्तधन में आदि (२) का गच्छ प्रमाण (४) गुणकार (५) होते हैं। अर्थात् अन्तधन=२×५×५×५×५ होता है। यह सर्व विचार कर गाथा में 'पद (गच्छ) प्रमाण गुणकार को परस्पर गुणा करना चाहिए' ऐसा कहा गया है। इस प्रकार गच्छ प्रमाण (४) गुणकार को परस्पर गुणा करने से ५×५×५×५=६२५ प्राप्त होते हैं। इसमें आदि (२) का गुणा करने से २×६२५ यह ऋण सहित धन प्राप्त होता है। पूर्व में जो ऋण धन निक्षेप किये गये हैं, उनमें से प्रथम ऋण २×४ है, इसमें से एक गुणित आदि २×१ को ग्रहण कर २×६२५ में से घटाना चाहिए। इसी का अवधारण कर गाथा में 'रूवपरिहीणे' अर्थात् एक कम करना चाहिए—ऐसा कहा गया है इस २×१ को घटाने पर (२×६२५)—(२×१)=२×६२४ प्राप्त होते हैं। प्रथम ऋण (२×४—२×१)=२×३, दूसरा ऋण २×५×३, तीसरा ऋण २×५×५×३ चौथा ऋण २×५×५×५×३ इन चारों ऋणों में २×३ सदृश है, अतः इन चारों ऋणों का संकलित धन= (२×३)×(१+५+५×५+५×५×५)=(२×३)×(१+५×२५+१२५)=२×३×

१५६=१ X ३ X $\frac{१५६×४}{३}$ = $\frac{२×३×६२४}{३}$ = २ X ६२४ X $\frac{३}{४}$ होता है। २ X ६२४ को एक कम गुणकार (५—१=४) से भाजित करने पर २×६२४×$\frac{५}{४}$ होते हैं। इसमें से २×६२४×$\frac{१}{४}$ को घटाने से २×६२४×$\frac{५}{४}$—२×६२४×$\frac{१}{४}$=२×६२४×$\frac{४}{४}$ प्राप्त होते हैं। इसको मन में धारण कर गाथा में 'रूऊणगुणेण हिये अर्थात् एक कम गुणकार से भाजित' ऐसा कहा गया है। पुनः ६२४ को ४ से अपवर्तन करने पर '$\frac{६२४}{४}$=१५६, इसको आदि (२) से गुणा करने पर १५६×२=३१२ गुण संकलित धन प्राप्त होता है। ऐसा विचार कर गाथा में 'मुहेणगुणियम्मि' अर्थात् मुख से गुणा करना चाहिये-ऐसा कहा गया है। लौकिक गणित मे भी इस कारण सूत्र को इस प्रकार दर्शाया गया है:—

$$S = \frac{a(r^n - 1)}{r - 1}$$

इस प्रकार सर्वत्र समान राशि को एक कम गुणकार से भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें से बहुभाग अर्थात् एक कम गुणकार तो ऋण राशि होती है और एक भाग शुद्ध राशि होती है। यह व्याप्ति सर्वत्र लगा लेनी चाहिए।

इदानीमानीकभेदस्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

असुरस्स महिसतुरगरथेभपदाती कमेण गंधव्वा।
णिच्चाणीय महत्तर महत्तरी छक्क एक्का य ॥२३२॥
णावा गरुडिभमयरं करभं खग्गी मिगारिसिविगस्सं।
पढमाणीयं सेसे सेमाणीया हु पुव्वं व ॥२३३॥

असुरस्य महिषतुरगरथेभपदातयः क्रमेण गन्धर्वाः।
नृत्यानीकं महत्तरा महत्तरी षट् एका च ॥२३२॥
नौगरुडेभमकरं करभः खड्गी मृगारिशिबिकाश्वम्।
प्रथमानीकं शेषे शेषानीकास्तु पूर्वं इव ॥२३३॥

असुर। असुरस्य महिषतुरगरथेभपदातयः क्रमेण गन्धर्वाः नृत्यानीकं प्रथमा षट् महत्तरा नृत्यानीकमेकं महत्तरी ॥२३२॥

णावा। शेषे नागादौ इत्यर्थः। अन्यच्छायामात्रं ॥२३३॥

अब अनीकों के भेद एवं स्वरूप दो गाथाओं द्वारा कहते हैं:—

गाथार्थः—असुरकुमार (भवनवासी) देवों के महिष, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नृत्यकी ये सात अनीक (सेना) देव होते हैं। इनमें से आदि की छह अनीकों में छह महत्तर (प्रधानदेव) और अन्तिम अनीक में एक महत्तरी (प्रधानदेवी) होती है। शेष नागकुमारादि नौ

भवनवासी देवों में क्रम से नाव, गरुड़पक्षी, हाथी, मगर, ऊँट, खड्गी, सिंह, शिविका और अश्व ये प्रथम अनीक होते हैं। शेष (द्वितीयादि) अनीकें पूर्ववत् अर्थात् असुरकुमारों के ही समान होती हैं ॥ २३२,२३३ ॥

विशेषार्थः—दशों भवनवासी देवों में निम्न लिखित अनीकें होती हैं:—

१. असुरकुमार : महिष, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नृत्यकी।
२. नागकुमार : नाव, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नृत्यकी।
३. सुपर्णकुमार : गरुड़, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नृत्यकी।
४. द्वीपकुमार : हाथी, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नृत्यकी।
५. उदधिकुमार : मगर, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नृत्यकी।
६. विद्युत्कुमार : ऊँट, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नृत्यकी।
७. स्तनितकुमार : खड्गी, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नृत्यकी।
८. दिक्कुमार : सिंह, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नृत्यकी।
९. अग्निकुमार : शिविका, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नृत्यकी।
१०. वायुकुमार : अश्व, घोड़ा, रथ, हाथी, पयादे, गन्धर्व और नृत्यकी।

अथ भवनदेवानामसंख्यातत्वात् प्रकीर्णकादिदेवानामसंख्यातत्वमनुक्तमप्यवगन्तव्यमिति तत्प्रमाणमनुक्त्वा साम्प्रतमसुरादिदेवीनां संख्यां गाथाद्वयेनाह—

असुरतिए देवीओ छप्पण्णसहस्स तत्थ वल्लभिया।
सोलसहस्सं छक्कसहस्सेणूणक्कमो होइ ॥२३४॥
बत्तीस वे सहस्सा सेसे पण पण सजेट्ठदेवीओ।
तिसु अट्ठ छस्सहस्सं विगुव्वणामूलतणुसहियं ॥२३५॥

असुरत्रिके देव्यः षट्पञ्चाशत्सहस्राणि तत्र वल्लभिकाः।
षोडशसहस्राणि षट्सहस्रेणोनक्रमो भवति ॥२३४॥
द्वात्रिंशत् द्वे सहस्राणि शेषे पञ्च पञ्च स्वज्येष्ठदेव्यः।
त्रिषु अष्ट षट्सहस्रं विकुर्वणामूलतनुसहिताः ॥२३५॥

असुर। तत्र तासु देवीषु इत्यर्थः। शेषं छायामात्रं ॥२३४॥

बत्तीस। द्वात्रिंशत्सहस्राणि द्वे सहस्रे शेषे द्वीपादौ तासां मध्ये पञ्च पञ्च ज्येष्ठदेव्यः असुरादि-देवीत्रित्यालेषु शेषे च ज्येष्ठदेव्यः अष्टसहस्रषट्सहस्रविकुर्वणामूलतनुसहिताः ॥२३५॥

२८

भवनवासी देव असंख्यात हैं, अतः प्रकीर्णकादि शेष चार प्रकार के देव भी असंख्यात ही हैं, ऐसा गाथा में बिना कहे ही जाना जाता है। इसीलिए उनका प्रमाण नहीं कहा गया। अब यहाँ असुरकुमारादि देवों के इन्द्रों की देवियों की संख्या दो गाथाओं द्वारा कहते हैं:—

गाथार्थ:—असुर त्रिक में से असुरकुमारों के इन्द्र चमरेन्द्र की छप्पन हजार (५६०००) देवियाँ होती हैं। उनमें से सोलह हजार उसकी प्राण वल्लभाएँ हैं। शेष दो (नागकुमार, सुपर्णकुमार) की देवियाँ क्रम से छह, छह हजार कम होती हैं। शेष द्वीप कुमारादिकों के इन्द्रों की बत्तीस बत्तीस हजार देवांगनाएँ होती हैं जिनमें दो दो हजार प्राण वल्लभाएँ हैं। इन उपर्युक्त देवांगनाओं में पांच पांच अपनी अपनी ज्येष्ठ अर्थात् पट्टरानी सदृश महादेवियां होती हैं। असुरत्रिक इन्द्रों की ज्येष्ठ देवियाँ मूलशरीर सहित आठ आठ हजार और शेष द्वीपकुमारादि इन्द्रों की ज्येष्ठ देवियाँ मूलशरीर सहित छह, छह हजार विक्रिया करती हैं ॥ २३४,२३५ ॥

विशेषार्थ:—असुरत्रिक का अर्थ है—असुरकुमार, नागकुमार और सुपर्णकुमार।

कुल	इन्द्र	अग्रदेवि० + वल्लभाएं + परिवारदेवि० = कुल संख्या	मूलशरीर सहित, विक्रिया शक्ति
१. असुर कु०	चमरेन्द्र—	५ + १६००० + ३९९९५ = ५६०००	८०००
	वैरोचन—	५ + ,, + ३९९९५ = ,,	,,
२. नाग कु०	भूतानन्द—	५ + १०००० + ३९९९५ = ५००००	,,
	धरणानन्द—	५ + १०००० + ३९९९५ = ,,	,,
३. सुपर्ण कु०	वेणु—	५ + ४००० + ३९९९५ = ४४०००	,,
	वेणुधारी—	५ + ४००० + ,, = ,,	,,
शेष ७ कुलों के इन्द्रों की—		५ + २००० + २९९९५ = ३२००० (प्रत्येक की)	६०००

अथ चमरवैरोचनयोः पट्टदेवीनां संज्ञामाह—

किण्हा सुमेघसुकड्ढा रयणि य जेट्ठित्थि पउम महपउमा ।
पउमसिरी कणयसिरी कणयादिममाल, चमरदुगे ॥२३६॥

कृष्णा सुमेघा सुकाढ्या रत्नी च ज्येष्ठस्त्रियः पद्मा महापद्मा ।
पद्मश्रीः कनकश्रीः कनकादिमाला चमरद्विके ॥२३६॥

किण्हा। कृष्णा सुमेघा सुका आढ्या रत्नी च ज्येष्ठस्त्रियः पद्मा महापद्मा पद्मश्रीः कनकश्री, कनकमाला एताश्चमरद्विके ॥२३६॥

अब चमर और वैरोचन इन्द्रों की पट्ट देवियों के नाम कहते हैं:—

गाथार्थ:—चमरद्विक में क्रम से ज्येष्ठ देवियाँ कृष्णा, सुमेघा, सुका, आढ्या और रत्नी तथा पद्मा, महापद्मा, पद्मश्री, कनकश्री और कनकमाला हैं ॥२३६॥

विशेषार्थ:—कृष्णा, सुमेधा, सुका, आढ्या और रत्नी ये पांच पट्टदेवियाँ चमरेन्द्र की हैं। तथा पद्मा, महापद्मा, पद्मश्री, कनकश्री और कनकमाला ये पांच पट्टदेवियाँ वैरोचन इन्द्र की हैं ॥

अथेन्द्रादिपञ्चानां देवीमानं समानमित्यनुक्त्वा इतरेषां कान्ता निरूपयति गाथात्रयेण—

अड्ढाइज्जं तिसयं पण्णासूणं कमं तु चमरदुगे ।
पारिसदेवी णागे बिसयं तु सपट्ठितालमयं ॥२३७॥
गरुडे सेसे सोलस चउदस दससंगुणं तु बीसूणा ।
सयसयदेवी पेधामहत्तराणंगरक्खाणं ॥२३८॥
सेणादेवाणं पुण देवीयो तस्स अद्धपरिमाणं ।
सव्वणिगिट्ठसुराणं बत्तीसा होंति देवीओ ॥२३९॥

अर्धतृतीयं त्रिशतं पञ्चाशदूनः क्रमस्तु चमरद्विके ।
पारिषद्देव्यः नागे द्विशतं तु सषष्टिचत्वारिंशच्छतं ॥२३७॥
गरुडे शेषे षोडशचतुर्दश दशसङ्गुणाः तु विशोनाः ।
शतशतदेव्यः पृतनामहत्तराणां अङ्गरक्षाणाम् ॥२३८॥
सेनादेवानां पुनः देव्यः तस्य अर्धपरिमाणं ।
सर्वनिकृष्टसुराणां द्वात्रिंशद्भवन्ति देव्यः ॥२३९॥

अड्ढा । अर्धतृतीयं शतं त्रिशतं पञ्चाशदूनक्रमस्तु शातव्यश्चमरद्विके पारिषद्देव्यः । नागे तु द्विशतं सषष्टिशतं सचत्वारिंशच्छतं ॥२३७॥

गरुडे । गरुडे शेषे दशसङ्गुणाः षोडश दशसङ्गुणाश्चतुर्दश । तत्रैव मध्यबाह्यपरिषदोर्विंशत्यूनाः शतशतदेव्यः पृतनामहत्तराणां अङ्गरक्षाणाम् ॥२३८॥

सेणा । तस्य तस्य सेनामहत्तरस्य ५० इत्यर्थः । शेषं छायामात्रं ॥२३९॥

इन्द्र, प्रतीन्द्र, लोकपाल, त्रायस्त्रिंशत् और सामानिक देवों की देवांगनाएँ, वल्लभाएँ एवं विक्रियाशक्ति आदि इन्द्र के ही सदृश हैं, इसलिये नहीं कही गई। शेष देवों की देवांगनाओं का प्रमाण तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ:—ढाई सौ और तीन सौ में से क्रम से पचास पचास कम चमरद्विक के पारिषद देवों की देवियों का प्रमाण है (२५०, २००, १५० तथा ३००, २५० और २००), तथा नागकुमार

देवों के पारिषद् देवों की देवियाँ क्रम से दो सौ, एक सौ साठ और एक सौ चालीस हैं। गरुड़ देवों के पारिषद देवों की देवियाँ सोलह में दश का गुणा और बीस बीस कम अर्थात् १६०, १४० और १२० हैं, तथा शेष देवों के पारिषदों की देवियाँ क्रम से चौदह में दश का गुणा और क्रम से बीस बीस कम अर्थात् १४०, १२० और १०० हैं। [illegible] अनीकों के प्रधान देवों की एवं अङ्ग रक्षकों की सौ सौ देवांगनाएं हैं। अनीक देवो की देवियाँ उसके अर्ध प्रमाण अर्थात् ५० हैं, तथा सर्व निःकृष्ट देवों के बत्तीस देवांगनाएं होती हैं ॥२३७,२३८,२३९।

विशेषार्थ:—पारिषद देवों की देवांगनाओं का प्रमाण

	अभ्यन्तर परिषद	मध्यम परिषद	बाह्य परिषद
चमरेन्द्र के—	२५०	२००	१५०
वैरोचन के—	३००	२५०	२००
नागेन्द्रों के—	२००	१६०	१४०
गरुडेन्द्रों के—	१६०	१४०	१२०
शेष इन्द्रों में प्रत्येक के—	१४०	१२०	१०० हैं।

अनीकों के प्रधान देवों की और अङ्गरक्षकों की १००, १०० देवांगनाएं हैं, अनीक देवों की ५० और निकृष्ट देवों की ३२ देवांगनाएं होती हैं। इनसे कम किसी भी देव की नहीं होतीं।

अथ भवनवासिनामग्रे वक्ष्यमाणव्यन्तराणां च जघन्योत्कृष्टमायुराचष्टे—

असुरादिचदुसु सेसे भोम्मे सायर तिपल्लमाउस्सं ।
दलहीणकमं जेट्ठं दसवाससहस्समवरं तु ॥२४०॥

असुरादिचतुर्षु शेषे भौमे सागरं त्रिपल्यं आयुष्यम् ।
दलहीनक्रमः ज्येष्ठं दशवर्षसहस्रं अवरं तु ॥२४०॥

असुरा । असुरादिषु चतुर्षु शेषे ६ भौमे च यथासंख्यं सागरोपमं त्रिपल्यं आयुष्यं दलहीनक्रमः । एतत्सर्वं ज्येष्ठं अवरं त्वायुर्दशवर्षसहस्रं ॥२४०॥

भवनवासी देवों की तथा आगे कहे जाने वाले व्यन्तरदेवों की जघन्योत्कृष्ट आयु कहते हैं—

गाथार्थ:—असुरकुमारादि चार कुलों के इन्द्रों की, शेष भवनवासियों की और व्यन्तरदेवों की उत्कृष्टायु क्रम से एक सागर, तीन पल्य तथा आधा आधा पल्य कम है, तथा जघन्यायु दस हजार वर्ष है ॥ २४० ॥

अथोक्तानामेव सविशेषेणायुः कथयन् तदेवाभ्यत्रेति निरूपयति—

असुरचउक्के सेसे उवही पल्लत्तियं दलूणकमं ।
उत्तरइंदाणहियं सरिसं इंदादिपंचण्हं ॥२४१॥

असुरचतुष्के शेषे उदधि: पल्यत्रिकं दलोनक्रमः ।
उत्तरेन्द्राणामधिकं सदृशं इन्द्रादिपञ्चानाम् ॥२४१॥

असुर । असुरचतुष्के शेषे उदधि: पल्यत्रिकं दलोनक्रम: । एतद्देवोत्तरेन्द्राणां साधिकं सदृशमिन्द्रादिपञ्चानाम् ॥२४१॥

पूर्वोक्त असुरकुमारादि चार और शेष भवनवासियों में दक्षिणेन्द्रों की आयु विशेष कहते हुए उत्तरेन्द्रों एवं इन्द्रादिकों की आयु का निरूपण करते हैं—

गाथार्थ:—असुरकुमारादि चार की, और शेष भवनवासी देवों की आयु क्रमश: एक सागर, तीन पल्य, तथा आधा आधा पल्य हीन कही है, वह दक्षिणेन्द्रों की है । उत्तरेन्द्रों की आयु उनसे कुछ अधिक होती है, तथा इन्द्रादि पांचों (इन्द्र, प्रतीन्द्र, लोकपाल, त्रायस्त्रिंशत् और सामानिक) की आयु सदृश ही होती है ॥२४१॥

विशेषार्थ:—असुरकुमारादि देवों की उत्कृष्ट आयु:—

१. असुरकुमार:—	१. चमरेन्द्र (दक्षिणेन्द्र)	एक सागर की उत्कृष्टायु है ।
	२ वैरोचन (उत्तरेन्द्र)	एक सागर से कुछ अधिक है ।
२. नागकुमार:—	३. भूतानन्द (दक्षिणेन्द्र)	तीन पल्य उत्कृष्टायु ।
	४. धरणानन्द (उत्तरेन्द्र)	तीन पल्य से कुछ अधिक ।
३. सुपर्णकुमार:—	५. वेणु (दक्षिणेन्द्र)	अढाई पल्य ।
	६. वेणुधारी (उत्तरेन्द्र)	अढाई पल्य से कुछ अधिक ।
४. द्वीपकुमार:—	७. पूर्ण (दक्षिणेन्द्र)	दो पल्य ।
	८. वसिष्ठ (उत्तरेन्द्र)	दो पल्य से कुछ अधिक

शेष बारह इन्द्रों में से प्रत्येक दक्षिणेन्द्रों की उत्कृष्ट आयु (१½) डेढ़ पल्य तथा प्रत्येक उत्तरेन्द्रों की कुछ अधिक डेढ़ पल्योपम प्रमाण है ।

इन्द्र, प्रतीन्द्र, लोकपाल, त्रायस्त्रिंश और सामानिक इन पांच देवों की आयु सदृश ही होती है । व्यन्तरों की उत्कृष्टायु एक पल्य की तथा उपर्युक्त सभी देवों की जघन्यायु दश हजार वर्ष की होती है ।

अथ तदेव सादृश्यं विशेषेण निरूपयति—

आउपरिवारिद्धीविक्किरियाहिं पडिंदयादि चऊ ।
सगसगइंदेहिं समा दहरच्छत्तादिसंजुत्ता ॥२४२॥

आयुः परिवारर्द्धिविक्रियाभिः प्रतीन्द्रादयः चत्वारः ।
स्वकस्वकेन्द्रैः समा दभ्रच्छत्रादिसंयुक्ताः ॥२४२॥

आऊ । किन्तु दभ्रं ह्रस्वं तेन छत्रादिना संयुक्ता इत्यर्थः । शेषं छायामात्रं ॥२४२॥

उपर्युक्त पाँचों देवों की समानता दिखाते हैं—

गाथार्थ:—प्रतीन्द्र, लोकपाल, त्रायस्त्रिंश और सामानिक देवों की आयु, परिवार, ऋद्धि और विक्रिया अपने अपने इन्द्र के समान ही होती है । ये इन्द्र से केवल कुछ हीन छत्रादिक के धारक होते हैं ॥ २४२ ॥

विशेषार्थ:—सरल है ।

असुरादीन्द्रदेवीनामायुः प्रमाणमाह—

अड्ढाइज्जतिपल्लं चमरदुगे णागगरुडसेसाणं ।
देवीणमट्ठमं पुण पुव्वाणस्साण कोडितयं ॥२४३॥

अर्धतृतीयत्रिपल्यं चमरद्विके नागगरुडशेषाणां ।
देवीनामष्टमं पुनः पूर्ववर्षाणां कोटित्रयम् ॥२४३॥

अड्ढा । अर्धतृतीयं पल्यं त्रिपल्यं चमरद्विके देवीनां नागगरुडशेषाणां देवीनां यथासंख्यं पल्याष्टमभागः पुनः पूर्वकोटित्रयं वर्षाणां कोटित्रयं ज्ञातव्यं ॥२४३॥

असुरकुमारादि इन्द्रों की देवांगनाओं की आयु कहते हैं:—

गाथार्थ:—चमरेन्द्र की देवियों की आयु अढ़ाई (२½) पल्य, वैरोचन इन्द्र की देवियों की तीन पल्य, नागकुमार की देवियों की आयु पल्य के आठवें (⅛) भाग, गरुडेन्द्र की देवियों की आयु तीन पूर्व कोटि की तथा शेष इन्द्रों की देवाङ्गनाओं की आयु तीन करोड़ (३००००००) वर्ष प्रमाण होती है ॥ २४३ ॥

विशेषार्थ:—चमरेन्द्र और वैरोचनेन्द्र की देवाङ्गनाओं की आयु क्रम से अढ़ाई पल्य और तीन पल्य की होती है, तथा नागकुमार, गरुडेन्द्र और शेष इन्द्रों की देवाङ्गनाओं की आयु क्रम से पल्य के आठवें भाग, तीन पूर्वकोटि और तीन करोड़ वर्ष की होती है ।

अङ्गरक्षकसेनामहत्तरानीकवाहनपरिषत्त्रयाणामायुष्यं गाथाचतुष्केणाह—

चमरंगरक्खसेणामहत्तराणाउगं हवे पल्लं ।
साणीकवाहणाणं दलं तु वइरोयणे अहियं ॥२४४॥
फणिगरुडसेसयाणं तट्ठाणे पुव्ववस्सकोडी य ।
वस्साण कोडि लक्खं लक्खं च तदद्धयं कमसो ॥२४५॥
चमरदुगे परिसाणं अड्ढाइज्जं तिपल्लमद्धूणं ।
णागे अट्ठमभागं सोलस बत्तीसभागं तु ॥२४६॥
गरुडे सेसे कमसो तिगदुगमेक्कं तु होदि पुव्वाणं ।
वस्साणं कोडीओ परिसाणब्भंतरादीणं ॥२४७॥

चमराङ्गरक्षसेनामहत्तराणामायुष्यं भवेत् पल्यं ।
सानीकवाहनानां दलं तु वैरोचने अधिकम् ॥२४४॥
फणिगरुडशेषाणां तत्स्थाने पूर्ववर्षकोटिः च ।
वर्षाणां कोटिः लक्षं लक्षं च तदर्धकं क्रमशः ॥२४५॥
चमरद्विके परिषदां अर्धतृतीयं त्रिपल्यमर्धोनम् ।
नागे अष्टमभागं षोडशद्वात्रिंशद्भागं तु ॥२४६॥
गरुडे शेषे क्रमशः तिस्रः द्वे एका तु भवति पूर्वाणाम् ।
वर्षाणां कोट्यः पारिषदानां अभ्यन्तरादीनाम् ॥२४७॥

चमरं । चमराङ्गरक्षसेनामहत्तराणामायुष्यं भवेत्पल्यं अनीकः आरोहकः तेन सहितानां वाहनानां दलं अर्धपल्यं एतदेव वैरोचने साधिकम् ॥२४४॥

फणि । फणिगरुडशेषाणां ७ तत्स्थाने अङ्गरक्षसेनामहत्तरानीकवाहनस्थाने पूर्वकोटिः वर्षकोटिश्च वर्षाणां कोटिः वर्षाणां लक्षं लक्षं च तदर्धकं क्रमशः ॥२४५॥

चमर । चमरद्विके परिषत्त्रयाणां अर्धतृतीयं पल्यं त्रिपल्यं । मध्यमबाह्यपरिषदोरर्धार्धपल्योनं । नागे पल्याष्टमभागं पल्यषोडशभागं पल्यद्वात्रिंशद्भागमायुः ॥२४६॥

गरुडे । गरुडे शेषे च क्रमशः तिस्रः द्वे एका तु भवति पूर्वाणां कोट्यः तथा वर्षाणां कोट्यः पारिषदानामभ्यन्तरादीनाम् ॥२४७॥

अङ्गरक्षकों और तीनों पारिषद देवों की आयु चार गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थः— चमरेन्द्र के अङ्गरक्षक देवों की एवं सेना महत्तरों की आयु एक पल्य की है, तथा अनीक (आरोहक) देवों सहित वाहन देवों की आयु आधा ($\frac{1}{2}$) पल्य की है। वैरोचनेन्द्र के

अङ्गरक्षक, आरोहक एवं वाहन देवों की आयु उपर्युक्त प्रमाण से कुछ अधिक होती है। नागकुमार, गरुड़कुमार और शेष इन्द्रों के उपर्युक्त पदधारी देवों की आयु क्रम से एक पूर्वकोटि, और एक करोड़ वर्ष, एक करोड़ वर्ष और एक लाख वर्ष, एक लाख वर्ष और अर्ध लाख वर्ष प्रमाण होती है। चमरद्विक इन्द्रों के तीनों पारिषद देवों की आयु क्रमशः अढ़ाई पल्य और तीन पल्य, दो पल्य और अढ़ाई पल्य, तथा डेढ़ पल्य और दो पल्य होती है। नागकुमार के पारिषद् देवों की क्रम से पल्य के आठवें भाग ($\frac{1}{8}$) पल्य के सोलहवें ($\frac{1}{16}$) भाग और पल्य के बत्तीसवें ($\frac{1}{32}$) भाग प्रमाण आयु होती है। गरुड़कुमारेन्द्रों के अभ्यन्तरादि तीनों पारिषदों की एवं शेष इन्द्रों के तीनों पारिषद देवों की आयु क्रम से तीन पूर्व कोटि, दो पूर्व कोटि और एक पूर्व कोटि तथा तीन करोड़ वर्ष, दो करोड़ वर्ष और एक करोड़ वर्ष मात्र होती है ॥२४४–२४७॥

विशेषार्थ:—अंगरक्षकादि देवों की उत्कृष्टायु निम्न प्रकार है —

इन्द्र–	अङ्गरक्षकों की आयु	सेनामहत्तरों की आयु	आरोहक और वाहन की आयु	अभ्यन्तर प० की आयु	मध्य प० की आयु	बाह्य प० की आयु
१ चमर	एक पल्य	एक पल्य	अर्ध पल्य	$2\frac{1}{2}$ पल्य	२ पल्य	$1\frac{1}{2}$ पल्य
२ वैरोचन	कुछ अधिक १ पल्य	साधिक ,, ,,	साधिक ,, ,,	३ ,,	$2\frac{1}{2}$,,	२ ,,
३ भूतानंद	एक पूर्व कोटि	एक पूर्व कोटि	१ करोड़ वर्ष	पल्य का $\frac{1}{8}$	$\frac{1}{16}$ भाग	$\frac{1}{32}$ भाग
४ धरणानंद	साधिक १ पूर्व को०	साधिक ,, ,, ,,	साधिक १ ,, ,,	साधिक $\frac{1}{8}$ भा०	सा० $\frac{1}{16}$,,	सा० $\frac{1}{32}$,,
५ वेणु	एक करोड़ वर्ष	१ करोड़ वर्ष	१ लाख वर्ष	३ पूर्व कोटि	२ पूर्व कोटि	१ पूर्व कोटि
६ वेणुधारी	साधिक १ करोड़ वर्ष	सा० १ करोड़ वर्ष	साधिक १ लाख वर्ष	साधिक ३ ,, ,,	सा. ,, ,, ,,	सा १ ,, ,,
७ शेष इन्द्र	एक लाख वर्ष	१ लाख वर्ष	अर्ध लाख वर्ष	३ करोड़ वर्ष	२ करोड़ वर्ष	१ करोड़ वर्ष

असुरादीनामुच्छ्वासाहारक्रमं कथयति—

असुरे तिचिसु सासाहारा पक्खं समासहस्सं तु ।
समुहुत्तदिणाणद्धं तेरस बारस दलूणहुं ॥२४८॥

असुरे त्रित्रिषु श्वासाहारौ पक्षं समासहस्रं तु ।
समुहूर्तदिनयोः अर्धंत्रयोदश द्वादश दलोनाष्टमं ॥२४८।

असुरे। असुरे त्रिस्त्रिषु च उच्छ्वासाहारौ पक्षे एकवारं समासहस्रे च एकवारं समुहूर्तदिनयो-र्द्धत्रयोदशे द्वादशे दलोनाष्टमे भागे एकैकवारं ॥२४८॥

असुरकुमारादि देवों के उच्छ्वास एवं आहार का क्रम कहते हैं:—

गाथार्थः—असुरकुमारों में एवं आगे शेष तीन तीन कुलों में आहार एवं श्वासोच्छ्वास क्रमशः एक हजार वर्ष और एक पक्ष, १२½ दिन और १२½ मुहूर्त, १२ दिन और १२ मुहूर्त तथा ७½ दिन और ७½ मुहूर्त में होता है ॥२४८॥

विशेषार्थः—असुरकुमार देव १००० वर्ष में आहार ग्रहण करते हैं, और १ पक्ष में श्वासो-च्छ्वास लेते हैं। नागकुमार, सुपर्णकुमार और द्वीपकुमार १२½ दिन में आहार ग्रहण करते हैं, तथा १२½ मुहूर्त में उच्छ्वास लेते हैं। उदधिकुमार स्तनितकुमार और विद्युत्कुमार १२ दिन में आहार ग्रहण करते हैं, एवं १२ मुहूर्त में श्वासोच्छ्वास लेते हैं, तथा दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार देव ७½ दिन में आहार ग्रहण करते हैं, और ७½ मुहूर्त में श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

अथ भवनत्रयाणामुत्सेधमाह—

पणवीसं असुराणं सेसकुमाराण दसधणू चेव।
वितरजोइसियाणं दससत्त सरीरउदओ दु ॥२४९॥

पञ्चविंशतिः असुराणां शेषकुमाराणां दशधनुषां चैव।
व्यन्तरज्योतिष्कयोः दशसप्त शरीरोदयः तु ॥२४९॥

पणवीसं। पञ्चविंशतिः असुराणां धनुषामुदयः शेषकुमाराणां दशधनुषां चैवोदयः। व्यन्तरज्योतिष्कयोः दशसप्तधनुः शरीरोदयस्तु ॥२४९॥

भवनत्रिक देवों का उत्सेध कहते हैं:—

गाथार्थः—असुरकुमार देवों के शरीर का उदय (ऊँचाई) पच्चीस धनुष, शेषकुमारों का दस धनुष, व्यन्तर देवों का दस धनुष और ज्योतिष देवों का सात धनुष प्रमाण है ॥२४९॥

विशेषार्थः—असुरकुमार देवों के शरीर की ऊँचाई २५ धनुष है। शेष नागकुमारादि नवप्रकार के भवनवासी एवं व्यन्तर देवों के शरीर की ऊँचाई दस धनुष तथा ज्योतिष देवों के शरीर की ऊँचाई ७ धनुष प्रमाण है।

इति श्री नेमिचन्द्राचार्य विरचिते त्रिलोकसारे भवनलोकाधिकारः ॥२॥

इस प्रकार श्री नेमिचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार में
भवनलोकाधिकार सम्पूर्ण हुआ ॥२॥

३

व्यन्तरलोकाधिकारः

इदानीं व्यन्तरलोकं निरूपयितुमनास्तावत्तल्लोकस्थितचैत्यालयानां प्रमाणपूर्वकं नतिं वितनोति—

तिण्णिसयजोयणाणं कदिहिदपदरस्स संखभागमिदे ।
भोमाणं जिणगेहे गणणातीदे णमंसामि ॥२५०॥

त्रिशतयोजनानां कृतिहृतप्रतरस्य संख्यभागमितान् ।
भौमानां जिनगेहान् गणनातीतान् नमस्यामि ॥२५०॥

तिण्णि । 'अंगुलसूच्यंगुलीकृत त्रिशतयोजनानां कृतिहृतप्रतरस्य संख्यातभागमितान् भौमानां जिनगेहान् गणनातीतान् नमस्यामि । त्रिशतयोजनस्य कृतिं गृहीत्वा ९०००० एकयोजनस्य १ एतावत्सु ७६८००० अंगुलेषु सत्सु इयतां योजनानां ९०००० किमिति त्रैराशिकविधिनांगुलानि कर्तव्यानि । वर्गराशेर्गुणकार भागहारो वर्गरूपेण भवत इति न्यायेन गुणकारोऽयं वर्गात्मको भवति २=७६८००० ×७६८००० तत्रैवमंगुलाङ्कं त्रिभिर्भेदयित्वा २५६×३×२५६×३ गुण्यगुणकारस्थितशून्यचतुष्कं पृथक् कृत्वा बेसदछप्पण्णद्वयपरस्परगुणने' पण्णट्ठिर्जाता ६५५३६ । परस्परगुणितत्रिकद्वयेन ९ प्राक्तननवकेन' ९ परस्परगुणिते एकाशीति ८१ बभूव । पुनरमुं राशिं ६५=×८१×१०००००००००० अंगुलकृतं । एकस्यांगुलस्य एकस्मिन् सूच्यंगुले २ सति इयतां किमिति सम्पात्य सूच्यंगुलं वर्गीकृत्य ४ गुणयेत् । पुनरनेन जगत्प्रतरे भक्ते =÷(४×६५=८१×१००००००००००) व्यन्तरपरिमाणं स्यात् । तदुक्तं —"तिण्णिसयजोयणाणं बेसदछप्पण्ण अंगुलाणं च । कदिहिदपदरं वेंतरजोइसियाणं च परिमाणं ॥" इति । पुनः संख्यातचैत्यानां प्र० एकस्मिन् जिनगेहे फ० १ इयतां =÷(४×६५=८१× १००००००००००) किमिति सम्पात्य संख्यातेन जगत्प्रतरे भक्ते =÷(४×६५=८१× १००००००००००) व्यन्तराणां जिनगेहप्रमाणं स्यात् ॥२५०॥

---

१ अंगुला सूच्यंगुलीकृतः (प०) । २ षण्णद्वय गुणने (प०) । ३ प्राक्तननवके (प०) ।

व्यन्तर लोकाधिकार

अब व्यन्तर लोक का निरूपण करने की इच्छा रखने वाले आचार्य व्यन्तरलोक में स्थित चैत्यालयों का प्रमाण बतलाते हुए नमस्कार करते हैं:-

गाथार्थ:—तीन सौ योजन के वर्ग का जगत्प्रतर में भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसके संख्यात भाग प्रमाण व्यन्तर देवों के असंख्यात जिन मन्दिरों को मैं (नेमिचन्द्राचार्य) नमस्कार करता हूँ ॥२५०॥

विशेषार्थ:—तीन सौ योजन की कृति के अंगुल बनाकर जगत्प्रतर में भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उतनी संख्या प्रमाण व्यन्तर देव हैं। तथा उनके संख्यातवें भाग प्रमाण चैत्यालय हैं जो गणनातीत अर्थात् असंख्यात हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

तीन सौ योजन का वर्ग (३०० × ३००) = ९०००० वर्ग योजन होता है। एक योजन में ७६८००० अंगुल होते हैं तो ९०००० वर्ग योजनों में कितने अंगुल होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक विधि द्वारा अंगुल निकाल लेना चाहिए। "वर्गराशि का गुणकार एवं भागहार वर्गरूप ही होता है" इस नियम के अनुसार अंगुल स्वरूप गुणकार वर्गात्मक ही होगा। अत: ७६८००० × ३०० × ७६८००० × ३०० प्राप्त हुआ। गुण्यमान और गुणकार राशियों के दसों शून्य भिन्न स्थापित करने पर ७६८ × ३ × ७६८ × ३ होते हैं। इसमें से ७६८ × ७६८ अंगुलों को तीन से भेद देने पर २५६ × ३ × २५६ × ३ प्राप्त हुआ। २५६ को २५६ से गुणित करने पर पणट्ठी (६५५३६) तथा ३ को ३ से गुणा करने पर ९ प्राप्त हुए। इस ९ को पूर्वोक्त ९ से गुणित करने पर ८१ लब्ध आया। अत: ६५५३६, ८१ और १० शून्य प्रतरांगुल स्वरूप प्राप्त हुए। एक सूच्यंगुल का चिन्ह २ और सूच्यंगुल के वर्ग का चिन्ह २ × २ = ४ होता है। ६५५३६ × ८१ × १०००००००००० प्रतरांगुलों से जगत्प्रतर में भाग देने पर व्यन्तर देवों का प्रमाण प्राप्त होता है। कहा भी है कि—३०० योजन के वर्ग का जगत्प्रतर में भाग देने पर व्यन्तर देवों का प्रमाण प्राप्त होता है, और जगत्प्रतर में २५६ अंगुल के वर्ग का भाग देने पर ज्योतिष देवों का प्रमाण प्राप्त होता है। यदि संख्यात देवों के प्रति एक जिन चैत्यालय है, तो ६५५३६ × ८१ × १०००००००००० से भाजित जगत्प्रतर के प्रति कितने जिन चैत्यालय प्राप्त होंगे ? इस प्रकार ६५५३६ × ८१ × १०००००००००० प्रतरांगुल अथवा ३०० योजन के वर्ग से भाजित जगत्प्रतर के संख्यातवें भाग व्यन्तर देवों के जिन चैत्यालयों का प्रमाण प्राप्त होता है। अर्थात् जगत्प्रतर को ३०० के वर्ग

(१००००) से भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो वह व्यन्तर देवों का प्रमाण है, अत: व्यन्तर देवों के प्रमाण को संख्यात से भाजित करने पर जिन चैत्यालयों का प्रमाण प्राप्त होता है।

अथ व्यन्तराणां कुलभेदं निरूपयति—

किंणरकिंपुरिसा य महोरगगंधव्व जक्खणामा य।
रक्खसभूयपिसाया अट्ठविहा वेंतरा देवा ॥२५१॥

किन्नरकिम्पुरुषो च महोरगगन्धर्वयक्षनामानः च।
राक्षसभूतपिशाचाः अष्टविधा व्यन्तरा देवाः ॥२५१॥

किणर। छायामात्रमेवार्थः ॥२५१॥

अब व्यन्तरों के कुलभेदों का निरूपण करते हैं—

गाथार्थ:—व्यन्तरदेव आठ प्रकार के हैं—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच ॥२५१॥

अथ तेषां शरीरवर्णं निरूपयति—

तेसिं कमसो वण्णो पियंगुफलधवलकालयसियामं।
हेमं तिसुवि सियामं किण्हं बहुलेवभूसा य ॥२५२॥

तेषां क्रमशः वर्णाः प्रियंगुफलधवलकालश्यामाः।
हेमः त्रिष्वपि श्यामः कृष्णः बहुलेपभूषा च ॥२५२॥

तेसिं। तेषां क्रमशः शरीरवर्णाः प्रियंगुफलधवलकालश्यामाः हेमवर्णास्त्रिष्वपि श्यामवर्णाः कृष्णवर्णाः। ते देवा बहुलेपभूषणाः ॥२५२॥

व्यन्तरों के शरीर के वर्ण का निरूपण करते हैं—

गाथार्थ:—इन व्यन्तरदेवों के शरीर का रंग क्रमशः प्रियंगुफल, धवल, काला श्याम वर्ण, स्वर्ण तथा तीन का श्याम वर्ण और अन्तिम व्यन्तरों का वर्ण काला होता है। ये सभी देव लेप एवं आभूषणों से सहित होते हैं ॥२५२॥

विशेषार्थ:—किन्नर नामके व्यन्तरदेवों के शरीर का वर्ण प्रियंगुपुष्प सदृश, किम्पुरुषों का वर्ण धवल, महोरगों का काला या श्याम, गन्धर्वों का स्वर्णसदृश कान्तिमान्, यक्ष, राक्षस और भूत जाति के देवों के शरीर का रंग श्याम तथा पिशाच जाति के व्यन्तर देवों का वर्ण काला होता है। ये देव बहुल से लेप और आभूषणों से विभूषित होते हैं।

अथ तेषां चैत्यतरुभेदमाह—

तेसिं असोयचंपयणागा तुंबुरुवडो य कंटतरू ।
तुलसी कदंबणामा चेत्ततरू होंति हु कमेण ॥२५३॥

तेषां अशोकचम्पकनागाः तुम्बुरुवटाश्च कण्टतरुः ।
तुलसी कदम्बनामा चैत्यतरवो भवन्ति खलु क्रमेण ॥२५३॥

तेसिं । नागा नागकेसर इत्यर्थः । शेषं छायामात्रम् ॥२५३॥

व्यन्तरदेवों के चैत्यवृक्षों के भेद—

गाथार्थ:—व्यन्तरदेवों के क्रमशः अशोक, चम्पा, नागकेसर, तुम्बरु, वट, कण्टतरु, तुलसी और कदम्ब चैत्यवृक्ष होते हैं ॥२५३॥

अथ तच्चैत्यतरुमूलस्थजिनप्रतिमादिमाह—

तम्मूले पलियंकगजिणपडिमा पडिदिसम्हि चत्तारि ।
चउतोरणजुत्ता ते भवणेसु च जंबुमाणद्धा ॥२५४॥

तन्मूले पल्यङ्कगजिनप्रतिमाः प्रतिदिशं चतस्रः ।
चतुस्तोरणयुक्तास्ताः भवनेषु च जम्बूमानार्धाः ॥२५४॥

तम्मूले । जम्बूमानार्धाः चैत्यतरवः जम्बूवृक्षपरिकरप्रमाणार्धा इत्यर्थः । शेषं छायामात्रमेव ॥२५४॥

उन चैत्यवृक्षों के मूल में स्थित जिनप्रतिमादि का कथन करते हैं—

गाथार्थ:—चैत्यवृक्षों के मूल की प्रत्येक दिशा में चार चार तोरणों से युक्त, पल्यङ्कासन चार चार जिन प्रतिमाएँ हैं। ये चैत्यवृक्ष भवनवासी देवों के वृक्षों के सदृश ही हैं। इनका प्रमाण आगे कहे जाने वाले जम्बूवृक्ष के परिकर के प्रमाण से आधा है ॥२५४॥

अथ तदग्रस्थमानस्तम्भं सविशेषं निरूपयति—

पडिपडिमं एक्केक्का माणत्थंभा तिपीढसालजुदा ।
मोत्तियदामं सोहइ घंटाजालादियं दिव्वं ॥२५५॥

प्रतिप्रतिमं एकैका मानस्तम्भाः त्रिपीठशालयुताः ।
मौक्तिकदाम शोभते घण्टाजालादिकं दिव्यम् ॥२५५॥

पद्धि । प्रतिप्रतिमां एकैका मानस्तम्भाः त्रिपीठत्रिशालयुताः । तत्र मौक्तिकं दाम शोभते दिव्यं घण्टाजालादिकं च ॥२५५॥

उन प्रतिमाओं के आगे स्थित मानस्तम्भ का विशेष निरूपण करते हैं—

गाथार्थः—प्रत्येक प्रतिमा के आगे एक एक मानस्तम्भ है जो तीन पीठ के ऊपर स्थित है और तीन शाल अर्थात् कोटों से सहित है तथा नाना प्रकार के मोतियों की मालाओं व दिव्य घण्टाजाल आदि से शोभायमान है ॥२५५॥

विशेषार्थः—त्रिपीठ पर स्थित प्रत्येक जिनप्रतिमा के अग्रभाग में एक एक मानस्तम्भ है। यह तीन कोटों से घिरा हुआ है तथा मोतियों की मालाओं और दिव्य घण्टाजाल आदि से शोभायमान है।

अथ अष्टविधव्यन्तराणां प्रतिकुलमवान्तरभेदमाह—

किण्णरचउ दसदसधा सेसा बारसगसत्तचोद्दसधा ।
दो दो इंदा दो दो वल्लभिया पुह सहस्सदेविजुदा ॥२५६॥

किन्नरचत्वारः दशदशधा शेषाः द्वादशसप्तचतुर्दशधा ।
द्वौ द्वौ इन्द्रौ द्वे द्वे वल्लभिके पृथक् सहस्रदेवीयुते ॥२५६॥

किण्णर । किन्नरादयः चत्वारः दशधा[1] दशधा भिद्यन्ते शेषाः यक्षादयः द्वादशधा सप्तधा[2] सप्तधा[3] चतुर्दशधा । अत्र द्वौ द्वौ इन्द्रौ तयोर्द्वे[4] वल्लभिके पृथक् पृथक् सहस्रदेवीयुते ॥२५६॥

व्यन्तर देवों के मुख्य आठ कुलों के अवान्तर भेद कहते हैं—

गाथार्थः—किन्नरादि प्रथम चार कुल तो दस दस प्रकार के हैं, शेष बारह, सात, सात और चौदह भेद वाले हैं। प्रत्येक कुल के दो दो इन्द्र, प्रत्येक इन्द्र की दो दो वल्लभा और प्रत्येक वल्लभा की एक एक हजार परिवार देवांगनाएँ होती हैं ॥२५६॥

विशेषार्थः—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग और गन्धर्व इन चार कुलों के दस दस अवान्तर भेद हैं, यक्ष बारह प्रकार के, राक्षस सात प्रकार के, भूत सात प्रकार के और पिशाच चौदह प्रकार के हैं। प्रत्येक कुल के दो दो इन्द्र होते हैं अतः ८ कुलों के १६ इन्द्र हुए। प्रत्येक इन्द्र की दो वल्लभा होती है अतः १६ इन्द्रों की ३२ वल्लभा देवांगनाएँ हुईं और प्रत्येक देवांगना एक एक हजार परिवार देवियों से युक्त होती है अतः आठों कुलों की कुल देवियाँ बत्तीस हजार हुईं।

---

१ घण्टादिकं (प०)। २ दशादशधा (प०)। ३ सप्तसप्तधा (प०)।
४ किन्नरकिम्पुरुष पृथक् सहस्रदेवीयुते (प०)।

अथ तेषां संज्ञां षोडशगाथाभिर्निरूपयति—

किंपुरिसकिंणरावि य हिदयंगमगा य रूपपाली य ।
किंणरकिंणर ऽणिंदित मणरम्मा किंणरुत्तमगा ॥२५७॥
रतिपियजेट्ठा इंदा किंपुरिसाकिंणरावतंसा हु ।
केतुमती रतिसेणा रतिप्पिया होंति वल्लभिया ॥२५८॥

किम्पुरुषकिन्नरावपि च हृदयङ्गमश्च रूपपाली च ।
किन्नरकिन्नरः अनिन्दितः मनोरमः किन्नरोत्तमः ॥२५७॥
रतिप्रियज्येष्ठौ इन्द्रौ किम्पुरुषकिन्नरौ अवतंसा हि ।
केतुमती रतिसेना रतिप्रिया भवन्ति वल्लभिकाः ॥२५८॥

किंपुरिस । छायामात्रमेवार्थः ॥२५७॥

रतिपिय । रतिप्रियज्येष्ठौ १० तमेन्द्रौ किम्पुरुषकिन्नरौ तयोरवतंसा केतुमतीरतिसेनारतिप्रियाः भवन्ति वल्लभिकाः ॥२५८॥

देवों और उनकी वल्लभाओं के नाम सोलह गाथाओं में कहते हैं—

किन्नर कुल के इन्द्रों और उनकी वल्लभाओं के नाम—

गाथार्थ:—(१) किम्पुरुष, (२) किन्नर, (३) हृदयंगम, (४) रूपमाली, (५) किन्नरकिन्नर, (६) अनन्दित, (७) मनोरम, (८) किन्नरोत्तम (९) रतिप्रिय (१०) ज्येष्ठ—ये दस प्रकार के किन्नर व्यन्तरदेव हैं। इनमें किम्पुरुष और किन्नर ये दो इन्द्र हैं। इनकी क्रमशः (१) अवतंसा (२) केतुमती और (१) रतिसेना (२) रतिप्रिया, ये दो दो वल्लभा देवांगनाएँ हैं ॥२५७-२५८॥

पुरुसा पुरुसुत्तमसप्पुरुसमहापुरुसपुरुसपहणामा ।
अतिपुरुसा मरुओमरुदेवमरुप्पहजसोवंतो ॥२५९॥
सप्पुरुसमहापुरुसा किंपुरिसिंदा कमेण वल्लभिया ।
रोहिणिया णवमी हिरि पुप्फवदी य इयरस्स ॥२६०॥

पुरुषः पुरुषोत्तमसत्पुरुषमहापुरुषपुरुषप्रभनामानः ।
अतिपुरुषः मरुर्मरुदेवमरुत्प्रभयशस्वन्तः ॥२५९॥
सत्पुरुषमहापुरुषौ किम्पुरुषेन्द्रौ क्रमेण वल्लभिकाः ।
रोहिणी नवमी ह्री पुष्पवती च इतरस्य ॥२६०॥

पुरुसा। छायामात्रमेवार्थः ॥२५९॥

सप्पुरुस। सत्पुरुषमहापुरुषौ किम्पुरुषेन्द्रौ। क्रमेण वल्लभिकाः रोहिणी नवमी देवो पूर्वेन्द्रस्य ह्री पुष्पवती चेतरस्य ॥२६०॥

किम्पुरुष व्यन्तर देवों के नाम, इन्द्र और उनकी वल्लभाएँ—

गाथार्थः—(१) पुरुष (२) पुरुषोत्तम (३) सत्पुरुष (४) महापुरुष (५) पुरुषप्रभ (६) अतिपुरुष (७) मरु (८) मरुदेव (९) मरुत्प्रभ (१०) यशस्वान—ये दस प्रकार के किम्पुरुष व्यन्तरदेव हैं। इनके सत्पुरुष और महापुरुष ये दो इन्द्र हैं जिनकी क्रमशः रोहिणी और नवमी तथा ह्री और पुष्पवती ये दो दो वल्लभा देवांगनाएँ हैं ॥२५९-२६०॥

महोरगदशभेदं वक्ति[1]—

भुजगा भुजंगसाली महकायतिकाय खंधसाली य।
मणहर असणिजवक्खा महसरगंभीरपियदरिसा ॥२६१॥
महकायो अतिकायो महोरगेंदा हु भोग भोगवदी।
इदरस्स पुप्फगंधी अणिंदिता होंति वल्लभिया ॥२६२॥

भुजगः भुजंगशाली महाकायो अतिकायः स्कन्धशाली च।
मनोहरः अशनिजवाख्यः महैश्वर्यगम्भीरप्रियदर्शिनः[2] ॥२६१॥
महाकायो अतिकायो महोरगेन्द्रौ हि भोगा भोगवती।
इतरस्य पुष्पगन्धी अनिंदिता भवतः वल्लभिके ॥२६२॥

भुजगा। छायामात्रमेवार्थः।

महकायो। महाकायोऽतिकायश्चेति महोरगेन्द्रौ खलु। भोगा भोगवती पूर्वस्य, इतरस्य पुष्पगन्धी अनिंदिता भवतः वल्लभिके ॥२६२॥

महोरग व्यन्तरदेवों के अवान्तर नामादि—

गाथार्थः—(१) भुजंग (२) भुजंगशाली (३) महाकाय (४) अतिकाय (५) स्कन्धशाली (६) मनोहर (७) अशनिजव (८) महैश्वर्य (९) गम्भीर और (१०) प्रियदर्शन, ये दस प्रकार के महोरग व्यन्तरदेव हैं। इनके इन्द्र महाकाय और अतिकाय हैं। इनकी क्रमशः भोगा और भोगवती तथा पुष्पगन्धी और अनिन्दिता ये दो दो वल्लभा देवांगनाएँ हैं ॥२६१-२६२॥

---

१ (प०)। २ दर्शनः (प०)।

हाहा हूहू णारयतुंबुरुककदंबवासवक्खा य ।
महसर गीतरतीवि य गीतयसा दइवता दसमा ॥२६३॥
गीतरती गीतजसो गंधव्विंदा हवंति वल्लभिया ।
सरसति सरसेणावि य णंदिणि पियदरिसिणादेवी ॥२६४॥

हाहा हूहू नारदतुंबुरुककदम्बवासवाख्याश्च ।
महास्वरो गीतरतिः अपि च गीतयशा दैवता दशमः ॥२६३॥
गीतरतिः गीतयशा गन्धर्वेन्द्रौ भवतः वल्लभिकाः ।
सरस्वती स्वरसेनापि च नन्दिनी प्रियदर्शनादेवी ॥२६४॥

हाहा । छायामात्रमेवार्थः ॥२६३॥

गीतरती । वल्लभिकाः तयोरिति शेषः । सम्यक्छायामात्रं ॥२६४॥

गन्धर्व व्यन्तरदेवों के अवान्तर नामादि—

गाथार्थः—(१) हाहा (२) हूहू (३) नारद (४) तुम्बुरु (५) कदम्ब (६) वासव (७) महास्वर (८) गीतरति (९) गीतयशा और (१०) दैवत—ये दस भेद गन्धर्व व्यन्तर देवों के हैं। गीतरति और गीतयशा ये दो प्रधान इन्द्र हैं। इनकी वल्लभा देवांगनाएँ क्रमशः सरस्वती और स्वरसेना तथा नन्दिनी और प्रियदर्शना हैं ॥२६३-२६४॥

अथ यक्षद्वादशधा कथयति[1]—

अह माणिपुण्णसेलमणोभद्दा भद्दगा सुभद्दा य ।
तह सव्वभद्द माणुस धणपाल सुरूवजक्खा य ॥२६५॥
जक्खुत्तमा मणोहरणामा तह माणिपुण्णभद्दिंदा ।
कुंद बहुपुत्त देवी तारा पुण उत्तमा देवी ॥२६६॥

अथ माणिपूर्णशैलमनोभद्राः भद्रकः सुभद्रः च ।
तथा सर्वभद्रः मानुषः धनपालः सुरूपयक्षश्च ॥२६५॥
यक्षोत्तमो मनोहरनामा तत्र माणिपूर्णभद्रेन्द्रौ ।
कुन्दा बहुपुत्रदेवी तारा पुनरुत्तमा देवी ॥२६६॥

---

१ (ब०)।

यह । अथ माणिभद्रपूर्णभद्रशैलभद्रमनोभद्राः भद्रकः सुभद्रश्च तथा सर्वभद्रः मानुषः धनपालः सुरूपयक्षश्च ॥२६५॥

अक्खु । यक्षोत्तमो मनोहरनामा १२ तत्र माणिभद्रपूर्णभद्राविन्द्रौ । तयोर्द्वयोः कुन्दा बहुपुत्रदेवी तारापुनरुत्तमा देवी ॥२६६॥

यक्ष देवों के अवान्तर नामादि—

गाथार्थ:—(१) माणिभद्र (२) पूर्णभद्र (३) शैलभद्र (४) मनोभद्र (५) भद्रक (६) सुभद्र (७) सर्वभद्र (८) मानुष (९) धनपाल (१०) सरूपयक्ष (११) यक्षोत्तम और (१२) मनोहर—ये बारह प्रकार के यक्ष व्यन्तरदेव हैं। इनमें से मणिभद्र और पूर्णभद्र ये दो इन्द्र हैं। इनकी कुन्दा और बहुपुत्रा तथा तारा और उत्तमा ये दो दो वल्लभा देवांगनाएं हैं ॥२६५-२६६॥

अथ राक्षसाः सप्तविधा भवन्ति । तेषां भेदान् कथयति[1]—

भीममहभीमविग्घविणायक तह उदकरक्खसा य तहा ।
रक्खसरक्खस तह बम्हरक्खसा होंति सत्तमया ॥२६७॥
भीमो य महाभीमो रक्खसइंदा हवंति वल्लभिया ।
पउमा वसुमित्तावि य रयणड्ढा कणयपह देवी ॥२६८॥

भीमो महाभीमः विघ्नविनायकः तथा उदकः राक्षसश्च तथा ।
राक्षसराक्षसः तथा ब्रह्मराक्षसः भवन्ति सप्तमकः ॥२६७॥
भीमश्च महाभीमो राक्षसेन्द्रौ भवतः वल्लभिका ।
पद्मा वसुमित्रापि च रत्नाढ्या कनकप्रभा देवी ॥२६८॥

भीम । छायामात्रमेवार्थः ॥२६७॥

भीमो । वल्लभिकाः तयोरिति शेषः । अन्यच्छायामात्रं ॥२६८॥

राक्षस व्यन्तरदेवों के अवान्तर भेदादि—

गाथार्थ:—(१) भीम (२) महाभीम (३) विघ्नविनायक (४) उदक (५) राक्षस (६) राक्षस-राक्षस और (७) ब्रह्मराक्षस—ये राक्षस व्यन्तरदेवों के प्रकार हैं। भीम और महाभीम राक्षसदेवों के इन्द्र हैं। इनकी दो दो वल्लभा देवांगनाएं क्रमशः पद्मा और वसुमित्रा तथा रत्नाढ्या और कनकप्रभा हैं ॥२६७-२६८॥

अथ भूताः सप्तविधा भवन्ति, तेषां नामानि कथयति—

---

1 (प०, ब०)।

भूदाणं तु सुरूवा पडिरूवा भूदउत्तमा तत्तो ।
पडिभूद महाभूदा पडिछण्णागासभूद इदि ॥२६९॥
इंदा य सुपडिरूवा वल्लभिया तह य होदि रूववदी ।
बहुरूवा य सुसीमा सुमुहा य हवंति देवीओ ॥२७०॥

भूतानां तु सुरूपः प्रतिरूपः भूतोत्तमः ततः ।
प्रतिभूतः महाभूतः प्रतिछन्नः आकाशभूत इति ॥२६९॥
इंद्रौ च सुप्रतिरूपौ वल्लभिकाः तथा च भवन्ति रूपवती ।
बहुरूपा च सुसीमा सुमुखा च भवन्ति देव्यः ॥२७०॥

भूदाणं । छायामात्रमेवार्थः ॥२६९॥

इंदा । इन्द्रौ च सुरूपप्रतिरूपौ तयोर्वल्लभिका तथा भवन्ति रूपवती बहुरूपा च सुसीमा सुमुखा च एता देव्यो भवन्ति ॥२७०॥

भूत व्यन्तर देवों के प्रकारादि—

गाथार्थः—(१) सुरूप (२) प्रतिरूप (३) भूतोत्तम (४) प्रतिभूत (५) महाभूत (६) प्रतिछिन्न और (७) आकाशभूत—ये सात प्रकार के भूत व्यन्तरदेव हैं। सुरूप और प्रतिरूप भूत व्यन्तर देवों के इन्द्र हैं। रूपवती और बहुरूपा तथा सुसीमा और सुमुखा—इनकी ये दो दो वल्लभा देवांगनाएँ हैं ॥ २६९-२७० ॥

अथ पिशाचाः चतुर्दशधा भवन्ति, तेषां नामानि कथयति—

कुम्भंड रक्ख जक्खा संमोहो तारका अचोक्खा य ।
काल महकाल चोक्खा सतालया देह महदेहा ॥२७१॥
तुण्हिय पवयणणामा इंदा तेसिं तु कालमहकाला ।
कमलकमलप्पहुप्पलसुदरिसणा होंति वल्लभिया ॥२७२॥

कूष्माण्डो रक्षोयक्षः सम्मोहः तारकः अशुचिश्च ।
कालः महाकालः शुचिः सतालकः देहः महादेहः ॥२७१॥
तूष्णीकः प्रवचननामा इन्द्रौ तेषां तु कालमहाकालौ ।
कमलाकमलप्रभोत्पलासुदर्शना भवन्ति वल्लभिकाः ॥२७२॥

कुंभं । छायामात्रमेवार्थः ॥२७१॥

तुण्हिय । तूष्णीकः प्रवचननामा १४ इन्द्रौ तेषां तु कालमहाकालौ कमला कमलप्रभा उत्पला सुदर्शना एतास्तयोर्वल्लभिकाः ॥२७२॥

पिशाच व्यन्तरदेवों के प्रकारादि—

गाथार्थः— (१) कूष्माण्ड (२) राक्षस (३) यक्ष (४) सम्मोह (५) तारक (६) अशुचि (७) काल (८) महाकाल (९) शुचि (१०) सतालक (११) देह (१२) महादेह (१३) तूष्णीक और (१४) प्रवचन, ये चौदह प्रकार के पिशाच व्यन्तर देव हैं। इनमें काल और महाकाल ये दो इन्द्र हैं। इनकी कमला और कमलप्रभा तथा उत्पला और सुदर्शना ये दो दो वल्लभा देवांगनाएँ हैं ॥२७१-२७२॥

अथ पुनरिन्द्रसंज्ञामेव पृथग्गृह्णाति गाथाद्वयेनाह—

किंपुरुस किंणरा सप्पुरुसमहापुरुसणामया कमसो।
महकायो अतिकायो गीतरती गीतयसणामा ॥२७३॥
तो माणिपुण्णभद्दा भीममहाभीमया सुरूवा य।
पडिरूवो काल महाकालो भोम्मेसु जुगलिंदा ॥२७४॥

किम्पुरुषः किन्नरः सत्पुरुषः महापुरुषनामा क्रमशः।
महाकायः अतिकायः गीतरतिः गीतयशोनामा ॥२७३॥
ततो माणिपूर्णभद्रौ भीममहाभीमौ सुरूपश्च।
प्रतिरूपः कालः महाकालः भौमेषु युगलेन्द्राः ॥२७४॥

किंपुरुस। छायामात्रमेवार्थः।

तो। ततो माणिभद्रः पूर्णभद्रः भीमः महाभीमः सुरूपश्च प्रतिरूपः कालो महाकालः एते सर्वे भौमेषु युगलेन्द्राः ॥२७४॥

दो गाथाओं द्वारा पुनः इंद्रों के नाम पृथक् से कहते हैं—

गाथार्थः—किम्पुरुष, किन्नर; सत्पुरुष, महापुरुष; महाकाय, अतिकाय; गीतरति, गीतयशा; माणिभद्र, पूर्णभद्र; भीम, महाभीम; सरूप, प्रतिरूप और काल, महाकाल—ये व्यन्तरदेवों के क्रमशः एक एक कुल के दो दो इन्द्र होते हैं ॥२७३-२७४॥

अथ किम्पुरुषादीन्द्राणां गणिकामहत्तरीर्गाथाचतुष्टयेन कथयति—

गणिकामहत्तरीयो इंदं पडि पल्लदलठिदी दो दो।
मधुरा मधुरालावा सुस्सर मउभासिणी कमसो ॥२७५॥
पुरिसपिया पुंकंता सोमा पुंदरिसिणी य भोगकखा।
भोगवदी य भुजंगा भुजगपिया तो सुघोस विमलेचि ॥२७६॥

सुस्सर अणिंदिदक्खा भद्द सुभद्दा य मालिणी होंति ।
पउमादिमालिणीवि य तो सव्वरि सव्वसेणेत्ति ॥२७७॥
रुदक्ख रुद्ददरिसिण भूदादीकंद भूद भूदादी ।
दच महाभुज अंबा कराल सुलसा सुदरिसिणया ॥२७८॥

गणिकामहत्तर्यः इंद्रं प्रति पल्यदलस्थितयः द्वे द्वे ।
मधुरा मधुरालापा सुस्वरा मृदुभाषिणी क्रमशः ॥२७५॥
पुरुषप्रिया पुङ्कान्ता सौम्या पुंदर्शिनी च भोगाख्या ।
भोगवती च भुजंगा भुजगप्रिया ततः सुघोषा विमला इति ॥२७६॥
सुस्वरा अनिन्दिताख्या भद्रा सुभद्रा च मालिनी भवन्ति ।
पद्मादिमालिनी अपि च ततः सर्वरी सर्वसेना इति ॥२७७॥
रुद्राख्या रुद्रदर्शना भूतादिकान्ता भूता भूतादि ।
दत्ता महाभुजा अम्बा कराला सुरसा सुदर्शनका ॥२७८॥

गणिका । पुरिस । सुस्सर । छायामात्रमेवार्थः ॥२७५-२७७॥

रुद्दक्ख । भूतादिकान्ता भूतकान्ता इत्यर्थः । भूतादिदत्ता भूतदत्ता इत्यर्थः । शेषं छायामात्रं ॥ २७८ ॥

चार गाथाओं द्वारा १६ इन्द्रों की गणिका महत्तरी के नाम कहते हैं—

गाथार्थ:—प्रत्येक इन्द्र के पास अर्ध (½) पल्य प्रमाण आयु को धारण करने वाली दो दो गणिका महत्तरी होती हैं ।

उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ किन्नरः मधुरा, मधुरालापा	२ सत्पुरुषः पुरुषप्रिया, पुंकान्ता	३ महाकायः भोगा, भोगवती
किम्पुरुषः सुस्वरा, मृदुभाषिणी	महापुरुषः सौम्या, पुंदर्शिनी	अतिकायः भुजङ्गा, भुजगप्रिया
४ गीतरतिः सुघोषा, विमला	५ मणिभद्रः भद्रा, सुभद्रा	६ भीमः शर्वरी (सर्वश्री), सर्वसेना
गीतयशाः सुस्वरा, अनिन्दिता	पूर्णभद्रः मालिनी, पद्ममालिनी	महाभीमः रुद्रा रुद्रदर्शना
७ सुरूपः भूतकान्ता, भूता	८ कालः अम्बा, कराला (कला)	
प्रतिरूपः भूतदत्ता, महाभुजा	महाकालः सुरसा, सुदर्शना,	

अथ किम्पुरुषादीन्द्राणां सामानिकादीनां संख्याभेदमाह—

इंदसमा हु पडिंदा समाणुतणुरक्खपरिसपरिमाणं ।
चउसोलसहस्सं पुण अट्ठसयं बिसदवड्ढिकमो ॥२७९॥

इन्द्रसमाः खलु प्रतीन्द्राः सामानिकतनुरक्षपारिषदप्रमाणं ।
चतुः षोडशसहस्रं पुनरष्टशतं द्विशतवृद्धिक्रमः ॥२७९॥

इंदसमा । इन्द्रसमाः खलु प्रतीन्द्राः सामानिकतनुरक्षपारिषदप्रमाणं चतुः सहस्रं षोडशसहस्रं पुनरष्टशतं मध्यमबाह्यपारिषदोः द्विशतवृद्धिक्रमः ॥२७९॥

किम्पुरुषादि इन्द्रों के सामानिकादि देवों की संख्या कहते हैं—

गाथार्थः—प्रतीन्द्र, इन्द्र के सदृश हैं अर्थात् एक इन्द्र के पास एक ही प्रतीन्द्र होता है। सामानिक देव चार हजार, तनुरक्षक सोलह हजार तथा पारिषद देव आठ सौ हैं, आगे दो दो सौ की वृद्धि होती गई है ॥२७९॥

विशेषार्थः—प्रत्येक इन्द्र के परिवार में प्रतीन्द्र, सामानिक, तनुरक्षक, तीनों पारिषद, सातों अनीक, प्रकीर्णक और आभियोग्य देव होते हैं।

एक इन्द्र के परिवार में प्रतीन्द्र एक ही होता है। सामानिक देव ४०००, तनुरक्षक १६०००, आभ्यन्तरपारिषद देव ८००, मध्यपारिषद देव १००० तथा बाह्यपारिषद देव १२०० प्रमाण होते हैं।

अथ तेषां सप्तानीकं कथयति—

कुंजरतुरयपदादीरहगंधव्वा य णच्चवसहेत्ति ।
सत्तेवय आणीया पत्तेयं सत्त सत्त कक्खजुदा ॥२८०॥

कुञ्जरतुरगपदातिरथगन्धर्वाश्च नृत्य वृषभाश्चेति ।
सप्तैव अनीकाः प्रत्येकं सप्त सप्त कक्षयुताः ॥२८०॥

कुंजर । छायामात्रमेवार्थः ॥२८०॥

सातों अनीकों के नाम एवं भेद—

गाथार्थः—हाथी, घोड़ा, पैदल, रथ, गन्धर्व, नृत्यकी और वृषभ—प्रत्येक इन्द्र की ये सात सात अनीक (सेनाएं) हैं तथा एक एक अनीक सात सात प्रकार की कक्षा एवं फौज से सहित होती है ॥ २८० ॥

अथ तत्सेनामहत्तरभेदमाह—

सेणामहत्तरा सुज्जेट्ठा सुग्गीवविमलमरुदेवा ।
सिरिदामा दामसिरी सत्तमदेवो विसालक्खो ।।२८१।।

सेनामहत्तराः सुज्येष्ठः सुग्रीवविमलमरुदेवाः ।
श्रीदामा दामश्रीः सप्तमदेवो विशालाक्षः ।।२८१।।

सेणा । छायामात्रमेवार्थः ।।२८१।।

सात अनीक देवों के महत्तरों के नाम—

गाथार्थः—हाथी आदि सात प्रकार की सेना के प्रधान देवों के नाम क्रमशः सुज्येष्ठ, सुग्रीव, विमल, मरुदेव, श्रीदामा, दामश्री और विशाल हैं ।।२८१।।

अथ तदानीकसंख्यामाह—

अट्ठावीससहस्सं पढमं दुगुणं कमेण चरिमोत्ति ।
सव्विंदाणं सरिसा पइण्णयादी असंखमिदा ।।२८२।।

अष्टाविंशसहस्राणि प्रथमं द्विगुणं क्रमेण चरमान्तम् ।
सर्वेन्द्राणां सदृशाः प्रकीर्णकादयः असंख्यमिताः ।।२८२।।

अट्ठावीस । अष्टाविंशतिः सहस्राणि प्रथमं प्रमाणं क्रमेण द्विगुणं चरमं यावत् । सर्वेन्द्राणां सदृशाः अनीकसंख्याः चतुर्णिकायेषु प्रकीर्णकादयः असंख्यातमिताः ।।२८२।।

अनीक और प्रकीर्णकादि देवों की संख्या—

गाथार्थः—प्रथम कक्ष अट्ठाईस हजार प्रमाण है तथा अन्त तक क्रमशः दूना दूना प्रमाण प्राप्त होता है। अनीकों का प्रमाण समस्त व्यन्तर इन्द्रों के समान ही है। प्रकीर्णकादिकों का प्रमाण असंख्यात है ।। २८२ ।।

विशेषार्थः—गाथा २३१ के अनुसार जितना गच्छ का प्रमाण हो उतने स्थान में २ का अङ्क रखकर परस्पर गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त हो उसमें से एक (१) घटाकर शेष में एक (१) कम गुणाकार का भाग देने पर जो लब्ध आवे, उसका मुख में गुणा कर देने से सङ्कलित धन का प्रमाण प्राप्त होता है। यहाँ पद प्रमाण ७ और मुख का प्रमाण २८००० है, अतः २८००० × [{ (२ × २ × २ × २ × २ × २ × २) — १ } ÷ (२—१)] = ३५५६०००, एक अनीक की सात कक्षाओं का प्रमाण प्राप्त हुआ। इसको सात (७) से गुणा करने पर (३५५६००० × ७) = २४८९२००० सातों अनीकों का प्रमाण प्राप्त होता है।

अथवा

कक्षाएँ	हाथी	घोड़ा	पैदल	रथ	गन्धर्व	नृत्यकी	बैल
प्रथम	२८०००	२८०००	२८०००	२८०००	२८०००	२८०००	२८०००
द्वितीय	५६०००	५६०००	५६०००	५६०००	५६०००	५६०००	५६०००
तृतीय	११२०००	११२०००	११२०००	११२०००	११२०००	११२०००	११२०००
चतुर्थ	२२४०००	२२४०००	२२४०००	२२४०००	२२४०००	२२४०००	२२४०००
पञ्चम	४४८०००	४४८०००	४४८०००	४४८०००	४४८०००	४४८०००	४४८०००
षष्ठ	८९६०००	८९६०००	८९६०००	८९६०००	८९६०००	८९६०००	८९६०००
सप्तम	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००	१७९२०००
योग	३५५६०००	३५५६०००	३५५६०००	३५५६०००	३५५६०००	३५५६०००	३५५६०००

सातों अनीकों का सर्व धन २४८९२०००

यह धन २४८९२००० एक इन्द्र की अनीक का है। कुल इन्द्र सोलह हैं–सभी समान धन के स्वामी हैं अतः २४८९२००० × १६ = ३९८२७२००० सम्पूर्ण व्यन्तर देवों की सेना का सर्वधन प्राप्त हुआ।

चतुर्निकाय रूप सम्पूर्ण देवों के प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विष देव असंख्यात होते हैं। मतान्तर से इन देवों का प्रमाण निरूपण करने वाला उपदेश नष्ट हो चुका है।

अथ व्यन्तरेन्द्राणां नगराश्रयद्वीपसंज्ञामाह—

अञ्जणकवज्जधाउकसुवण्णमणोसिलकवज्जरजदेसु।
हिंगुलिके हरिदाले दीवे भोमिंदणयराणि ॥२८३॥

अञ्जनकवज्रधातुकसुवर्णमनःशिलकवज्ररजतेषु।
हिंगुलिके हरिताले द्वीपे भौमेन्द्रनगराणि ॥२८३॥

अञ्जणक। छायामात्रमेवार्थः ॥२८३॥

अब व्यन्तरदेवों के नगरों के आश्रयरूपद्वीपों के नाम कहते हैं—

गाथार्थः—अञ्जनक, वज्रधातुक, सुवर्ण, मनः शिलक, वज्र, रजत, हिंगुलक और हरिताल इन आठ द्वीपों में क्रमशः किम्पुरुषादिक व्यन्तरेन्द्रों के नगर हैं ।।२८३।।

विशेषार्थः—जिन इन्द्रों का नामोच्चारण पहले किया जाता है वे दक्षिणेन्द्र हैं और जिनका नामोच्चारण बादमें किया जाता है, वे उत्तरेन्द्र कहलाते हैं।

आठ व्यन्तर कुलों के आठ द्वीप हैं—

अञ्जनक द्वीप की दक्षिण दिशा में किम्पुरुष और उत्तर दिशा में किन्नर इन्द्र के नगर हैं।
वज्रधातुक द्वीप की दक्षिण दिशा में सत्पुरुष और उत्तर दिशा में महापुरुष इन्द्र के नगर हैं।
सुवर्ण द्वीप की दक्षिण दिशा में महाकाय और उत्तरदिशा में अतिकाय इन्द्र के नगर हैं।
मनःशिलक द्वीप की दक्षिण दिशा में गीतरति और उत्तर दिशा में गीतयशा इन्द्र के नगर हैं।
वज्र द्वीप की दक्षिण दिशा मे माणिभद्र और उत्तर दिशा में पूर्णभद्र इन्द्र के नगर हैं।
रजत द्वीप की दक्षिण दिशा में भीम और उत्तर दिशा में महाभीम इन्द्र के नगर हैं।
हिंगुलक द्वीप की दक्षिण दिशा में सुरूप और उत्तर दिशा में प्रतिरूप इन्द्र के नगर हैं।
हरिताल द्वीप की दक्षिण दिशा में काल और उत्तर दिशा में महाकाल इन्द्र के नगर हैं।

अथ तन्नगरसंज्ञामायामं चाह—

भोमिंदंकं मज्झे पहकंतावत्तमज्झ चरिमंका ।
पुव्वादिसु जंबुसमा पणपणणयराणि समभागे ।।२८४।।

भौमेन्द्राङ्कं मध्ये प्रभकान्तावर्तमध्याः चरमाङ्काः ।
पूर्वादिषु जंबूसमानि पञ्च पञ्च नगराणि समभागे ।।२८४।।

भोमिंद । भौमेन्द्रः किन्नरस्तदेवाङ्कं मध्ये पुरि प्रभकान्तावर्तमध्याः । भौमेन्द्राङ्कचरमाङ्काः पूर्वादिषु जम्बूद्वीपसमानि पञ्च पञ्च नगराणि समभागे ।।२८४।।

अब उन नगरों के नाम और आयाम कहते हैं—

गाथार्थ।—समभूमि में व्यन्तर इन्द्रों के पाँच पाँच नगर होते हैं। पुर मध्य में होता है और प्रभ, कान्त, आवर्त एवं मध्य नगर पूर्वादिक दिशाओं में होते हैं, सबके साथ इंद्र विशेष का नाम जुड़ा रहता है। इन नगरों का आयाम जम्बूद्वीप[1] सदृश है ।।२८४।।[2]

विशेषार्थः—जिस प्रकार जम्बूद्वीप समतल भूमि पर है, भूमि के नीचे या पर्वत के ऊपर नहीं है, उसी प्रकार व्यन्तर देवों के नगर समतल भूमि पर बने हुए हैं। प्रत्येक इन्द्र के पाँच पाँच नगर होते

---

१ राजधान्यः पिशाचानां पञ्च प्रोक्तास्तु नामतः ।
जम्बूद्वीपप्रमाणाश्च चतुर्वनविभूषिताः ।।६१।। २ विभाग (लोक विभाग)

हैं। मध्य के नगर का नाम इन्द्र के नाम से अंकित होता है तथा पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः नाम के अन्त में प्रभ, कान्त, आवर्त और मध्य जुड़े होते हैं, जैसे—

इन्द्रनाम	मध्यनगर	पूर्व दिशा	दक्षिण दिशा	पश्चिम दिशा	उत्तर दिशा
१ किम्पुरुष २ किन्नर	किम्पुरुषपुर किन्नरपुर	किम्पुरुषप्रभ किन्नरप्रभ	किम्पुरुषकान्त किन्नरकान्त	किम्पुरुषावर्त किन्नरावर्त	किम्पुरुषामध्य किन्नरमध्य

इसी प्रकार शेष चौदह इन्द्रों के नगर भी जानना चाहिए। इन नगरों का आयाम जम्बूद्वीप के समान है।

अथ तन्नगरप्राकारद्वारयोरुदयादिभेदमाह—

तप्पायारुद्‌यतियं पणहत्तरिपणवीसपंचदलं।
दारुदओ वित्थारो पंचघणद्धं तदद्धं च ॥२८५॥

तत्प्राकारोदयत्रयं पञ्चसप्ततिपञ्चविंशतिपञ्चदलम्।
द्वारोदयो विस्तारः पञ्चघनार्धं तदर्धं च ॥२८५॥

तप्पाया। तत्प्राकारोदयत्रयं पञ्चसप्ततिदलं $\frac{७५}{२}$ पञ्चविंशतिदलं $\frac{२५}{२}$ पञ्चदलं $\frac{५}{२}$ तद्द्वारोदयो विस्तारश्च पञ्चघनार्धं $\frac{१२५}{२}$ तदर्धं च $\frac{१२५}{४}$ ॥२८५॥

अब उन नगरों के कोट तथा दरवाजों की ऊँचाई आदि कहते हैं—

गाथार्थः—उन नगरों के कोट की ऊँचाई, चौड़ाई और मोटाई क्रमशः पचहत्तर (७५) पच्चीस (२५) और पाँच (५) की आधी आधी है। द्वार की ऊँचाई पांच के घन की आधी और चौड़ाई ऊँचाई से आधी है ॥२८५॥

विशेषार्थः—नगर के कोट की ऊँचाई पचहत्तर की आधी ($\frac{७५}{२}$) अर्थात् साढ़े सैंतीस योजन, चौड़ाई पच्चीस की आधी ($\frac{२५}{२}$) अर्थात् साढ़े बारह योजन और मोटाई पाँच की आधी ($\frac{५}{२}$) अर्थात् ढाई योजन है। इसी प्रकार द्वारों की ऊँचाई पांच के घन की आधी (५ × ५ × ५ = $\frac{१२५}{२}$) अर्थात् साढ़े बासठ (६२½) योजन और चौड़ाई ऊँचाई की आधी ($\frac{१२५}{२ \times २}$) अर्थात् सवा इकतीस (३१¼) योजन है।

अथ तदुपरिमप्रासादस्वरूपं निरूपयति—

तस्सुवरिं पासादो पणहत्तरितुंगओ सुधम्मसहा ।
पणकदिदल तद्दल णव दीहरवासुदय कोस[1] ओगाढा ॥२८६॥

तस्योपरि प्रासादः पञ्चसप्ततितुङ्गः सुधर्मसभा ।
पञ्चकृतिदलं तद्दलं नव दीर्घव्यासोदयाः कोशः अवगाढः ॥२८६॥

तस्सुव । तस्योपरि प्रासादः पञ्चसप्ततितुङ्गः स एव सुधर्मसभा इत्याख्यायते । पञ्चकृतिदलं $\frac{२५}{२}$ तद्दलं $\frac{२५}{४}$ नव ९ एते यथासंख्यं दीर्घव्यासोदयाः तदवगाढः कुट्टिमा भूमिः एककोशः ॥२८६॥

अब द्वारों के ऊपर स्थित प्रासादों के स्वरूप का निरूपण करते हैं—

गाथार्थः—द्वार के ऊपर पचहत्तर (७५) योजन ऊँचे प्रासाद हैं। इनके भीतर सुधर्मा नामा सभा है जिसकी दीर्घता (लम्बाई), व्यास (चौड़ाई) और उदय (ऊँचाई) क्रमशः पांच की कृति (वर्ग) का आधा, लम्बाई का आधा और ९ योजन प्रमाण है। इस सभा का अवगाढ़ (अधिष्ठान) एक कोस है ॥२८६॥

विशेषार्थः— द्वार के ऊपर ७५ योजन ऊँचे प्रासाद हैं। प्रासादों के भीतर सुधर्मा नामा सभा है जो पाँच की कृति की आधी (५×५=$\frac{२५}{२}$) अर्थात् साढ़े बारह (१२$\frac{१}{२}$) योजन लम्बी है। लम्बाई से आधी ($\frac{२५}{२}$×$\frac{१}{२}$) अर्थात् सवा छह (६$\frac{१}{४}$) योजन चौड़ी और ९ योजन ऊँची है। इसकी नींव भूमि में एक कोस नीचे तक स्थित है।

अथ तत्प्रासादस्य द्वारोदयादीन्निरूपयति—

तिस्से दारुदओ दुगइगि वासो दक्खिणुत्तरिंदाणं ।
सव्वेसिं णगराणं पायारादीणि सरिसाणि ॥२८७॥

तस्या द्वारोदयः द्विकमेकं व्यासः दक्षिणोत्तरेन्द्राणाम् ।
सर्वेषां नगराणां प्राकारादीनि सदृशानि ॥२८७॥

तिस्से । तस्याः सुधर्मसभायाः द्वारोदयः द्वियोजनं एकयोजनव्यासः । दक्षिणोत्तरेन्द्राणां सर्वेषां नगराणां प्राकारादीनि सदृशानि ॥२८७॥

अब उन प्रासादों के द्वारों की ऊँचाई आदि का निरूपण करते हैं—

गाथार्थः—उस सुधर्मा सभा के द्वार का उदय (ऊँचाई) दो योजन और व्यास (चौड़ाई) एक योजन है। दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र इन सभी इन्द्रों के नगरों के प्राकारादिकों का प्रमाण समान ही होता है ॥२८७॥

---

1 कोस व गाढो (प०) ।

विशेषार्थ:—सुधर्मा सभा के दरवाजे की ऊँचाई दो योजन और चौड़ाई एक योजन है। दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र सभी इन्द्रों के नगरों के प्राकार, प्राकार के भीतर स्थित सुधर्मा सभा तथा उस सभा के दरवाजों आदि का प्रमाण समान ही है।

अथ तन्नगरबाह्यवनस्वरूपं निरूपयति—

पुरदो गंतूण बहिं चउदिसं जोयणाणि बिसहस्सं।
इगिलक्खायद तद्दलवासजुदा रम्मवणसंडा ॥२८८॥

पुराद्गत्वा बहिः चतुर्दिशं योजनानि द्विसहस्रं।
एकलक्षायताः तद्दलव्यासयुताः रम्यवनषंडाः ॥२८८॥

पुरदो। पुराद्गत्वा बहिश्चतसृषु दिशासु योजनानि द्विसहस्रं लक्षायताः तदर्धव्यासयुता रम्यवनखण्डाः ॥२८८॥

नगरों के बाहर स्थित वनों का स्वरूप—

गाथार्थ:—नगर से दो हजार योजन बाहर जाकर चारों दिशाओं में एक लाख योजन लम्बे और लम्बाई के अर्ध भाग (५० हजार) प्रमाण चौड़ाई वाले रमणीक वनखण्ड हैं ॥२८८॥

विशेषार्थ:—नगर से दो हजार योजन दूर चारों दिशाओं में सुन्दर रमणीक वनखण्ड हैं। इनकी लम्बाई एक लाख योजन और चौड़ाई पचास हजार योजन है।

अथ तद्वनस्थितगणिकानगरविस्तारसंख्यादिकं निरूपयति—

तत्थेव य गणिकाणं चुलसीदिसहस्सविउलणयराणि।
सेसाणं भोम्माणं अणेयदीवे समुद्दे य ॥२८९॥

तत्रैव च गणिकानां चतुरशीतिसहस्रविपुलनगराणि।
शेषाणां भौमानां अनेकद्वीपे समुद्रे च ॥२८९॥

तत्थेव। तत्रैव वने गणिकानां चतुरशीतिसहस्रविपुलनगराणि शेषाणां भौमानां अनेकद्वीपे अनेकसमुद्रे च नगराणि ॥२८९॥

अपने अपने इन्द्र के वनों में स्थित गणिका महत्तरियों के नगरों का प्रमाण एवं संख्यादि का निरूपण करते हैं—

गाथार्थ:—अपने अपने इन्द्रों के वनों में स्थित गणिकाओं के नगरों की लम्बाई और चौड़ाई दोनों ८४००० योजन प्रमाण है। शेष व्यन्तर देवों के नगर अनेक द्वीपों एवं अनेक समुद्रों में हैं ॥ २८९ ॥

विशेषार्थ:—सोलह इन्द्रों के आठ द्वीप हैं और बत्तीस गणिका महत्तर (प्रधानगणिकाएँ) हैं। एक एक द्वीप पर दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र दो दो इन्द्र रहते हैं। उनके अपने अपने वनों में अपनी अपनी गणिकाओं के नगर बने हुए हैं, जो ८४००० योजन लम्बे और ८४००० योजन चौड़े हैं। शेष व्यन्तरदेव अनेक द्वीपों और अनेक समुद्रों में रहते हैं।

अथ कुलविशेषमवलम्ब्य निलयभेदमाह—

भूदाण रक्खसाणं चउदस सोलस सहस्स भवणाणि ।
सेसाण वाणवेंतरदेवाणं उवरि णिलयाणि ॥२९०॥

भूतानां राक्षसानां चतुर्दश षोडश सहस्रं भवनानि ।
शेषाणां वानव्यन्तरदेवानां उपरि निलयानि ॥२९०॥

भूदाण। भूतानां खरभागे राक्षसानां पङ्कभागे चतुर्दश षोडशसहस्र भवनानि शेषाणां वानव्यन्तरदेवानां उपरि मध्यलोके निलयानि संति ॥२९०॥

अब कुल भेद की अपेक्षा निलय (भवन) भेदों का निरूपण करते हैं—

गाथार्थ:—भूतों और राक्षसों के भवन क्रमशः चौदह और सोलह हजार हैं और क्रमशः खरभाग और पङ्कभाग में हैं। शेष वानव्यन्तर देवों के भवन पृथ्वी के ऊपर हैं ॥२९०॥

विशेषार्थ:— रत्नप्रभा पृथ्वी के खर भाग में भूत व्यन्तरदेवों के १४००० भवन हैं तथा पङ्कभाग में राक्षसों के १६००० भवन हैं। शेष जो छह किन्नरादि कुल हैं उनके भवन पृथ्वी के ऊपर अर्थात् मध्यलोक में हैं।

अथ नीचोपपादादिव्यन्तरविशेषान् गाथाद्वयेनाह—

हत्थपमाणे णिच्चुववादा दिगुवासि अंतरणिवासी ।
कुंमंडा उप्पण्णाणुप्पण्ण पमाणया गंधा ॥२९१॥
महगंध भुजग पीदिक आगासुववण्णगा य उवरुवरिं ।
तिसु दसहत्थसहस्सं वीससहस्संतरं सेसे ॥२९२॥

हस्तप्रमाणे नीचोपपादाः दिग्वासिनः अन्तरनिवासिनः ।
कूष्माण्डाः उत्पन्ना अनुत्पन्नाः प्रमाणका गंधाः ॥२९१॥
महागन्धा भुजगाः प्रीतिका आकाशोत्पन्नाश्च उपर्युपरि ।
त्रिषु दशहस्तसहस्राणि विंशतिसहस्रान्तरं शेषे ॥२९२॥

हत्थ। छायामात्रमेवार्थः ॥२९१॥

नीचोपपाद व्यन्तर देवों की आयु का प्रमाण दस हजार वर्ष, दिग्वासी का बीस हजार, अन्तरवासी का तीस हजार, कूष्माण्ड का चालीस हजार, उत्पन्न का पचास हजार, अनुत्पन्न का साठ हजार, प्रमाणक का सत्तर हजार, गन्ध का अस्सी हजार, महागन्ध का चौरासी हजार, भुजङ्ग देवों का पल्य के आठवें भाग, प्रीतिक का पल्य के चतुर्थ भाग प्रमाण और आकाशोत्पन्न देवों की आयु का प्रमाण पल्य के अर्धभाग प्रमाण है।

अथ व्यन्तराणां निलयभेदमाह—

विंतरणिलयत्तियाणि य भवणपुरावासभवणणामाणि ।
दीवसमुद्दे दहगिरितरुम्हि चित्तावणिम्हि कमे ॥२९४॥

व्यन्तरनिलयत्रयाणि च भवनपुरावासभवननामानि ।
द्वीपसमुद्रे ह्रदगिरितरौ चित्रावन्यां क्रमेण ॥२९४॥

विंतर। व्यन्तराणां निलयत्रयाणि च भवनपुरं आवास भवनानि नामानि। दह कुत्र कुत्रेति चेत्। द्वीपसमुद्रे ह्रदगिरितरौ चित्रावन्यां च क्रमेण भवन्ति ॥२९४॥

व्यन्तरदेवों के निलय भेद—

गाथार्थः—व्यन्तरदेवों के निवास-स्थानों के तीन नाम हैं—भवनपुर, आवास और भवन। ये तीनों क्रमशः द्वीपसमुद्र, तालाब पर्वत और चित्रा पृथ्वी में स्थित हैं ॥२९४॥

विशेषार्थः—व्यन्तरदेवों के निवास स्थान तीन प्रकार के हैं—भवनपुर, आवास और भवन। भवनपुर द्वीप समुद्रों में स्थित हैं। आवास तालाब, पर्वत और वृक्षादि पर तथा भवन चित्रा पृथ्वी के नीचे स्थित हैं।

अथ निलयत्रयं विवृणोति—

उड्ढगया आवासा अधोगया विंतराण भवणाणि ।
भवणपुराणि य मज्झिमभागगया इदि तियं णिलयं ॥२९५॥

ऊर्ध्वगताः आवासा अधोगता व्यन्तराणां भवनानि ।
भवनपुराणि च मध्यमभागगतानीति त्रयं निलयम् ॥२९५॥

उड्ढगया। छायामात्रमेवार्थः ॥२९५॥

तीनों प्रकार के निलयों का वर्णन करते हैं—

गाथार्थः—व्यन्तरदेवों के जो निवास स्थान मध्यलोक की समभूमि पर है, उन्हें भवनपुर कहते हैं। जो स्थान पृथ्वी से ऊंचे हैं उन्हें आवास तथा जो स्थान पृथ्वी से नीचे हैं, उन्हें भवन कहते हैं ॥ २९५ ॥

अथ सर्वेषां व्यन्तराणां यथासम्भवं निवासप्रदेशमुपदिशति—

चित्तवइरादु जावय मेरुदयं तिरियलोयवित्थारं ।
भोम्मा हवंति भवणे भवणपुरावासगे जोग्गे ।।२९६।।

चित्रावज्रात् यावत् मेरूदयं तिर्यग्लोकविस्तारं ।
भौमा भवन्ति भवने भवनपुरावासके योग्यं ।।२९६।।

चित्त। चित्रावज्रामध्यादारभ्य यावन्मेरूदयं यावत्तिर्यग्लोकविस्तारं तावति क्षेत्रे भौमा भवन्ति स्वस्वयोग्यभवने भवनपुरे आवासे च ।।२९६।।

अब यथासम्भव सभी व्यन्तरदेवों के निवासक्षेत्र कहते हैं—

गाथार्थः—चित्रा और वज्रा पृथ्वी की मध्य सन्धि से प्रारम्भ कर मेरु पर्वत की ऊंचाई पर्यन्त तथा तिर्यग्लोक के विस्तार पर्यन्त व्यन्तरदेव अपने अपने योग्य भवनपुरों में, भवनों में और आवासों में निवास करते हैं ।।२९६।।

विशेषार्थः—चित्रा और वज्रा पृथ्वी की सन्धि से प्रारम्भ कर मेरु पर्वत की ऊँचाई तक के तथा मध्यलोक का विस्तार जहाँ तक है वहाँ तक के समस्त क्षेत्र में व्यन्तरदेव यथायोग्य भवनपुरों, आवासों एवं भवनों में रहते हैं।

अथ निलयसंक्रममावेदयति—

भवणं भवणपुराणि य भवणपुरावासयाणि केसिंपि ।
भवणामरेसु असुरे विहाय केसिं तियं णिलयं ।।२९७।।

भवनं भवनपुरे च भवनपुरावासकानि केषांचित् ।
भवनामरेषु असुरान् विहाय केषां त्रयं निलयम् ।।२९७।।

भवणं। केषांचित् भवनमेव, केषांचिद्भुवनभवनपुरे च भवतः, केषांचिद्भवनभवनपुरावासकानि च भवन्ति। भवनामरेषु असुरान् विहाय केषांचित् त्रयं निलयम् ।।२९७।।

अब निलयों का क्रम कहते हैं—

गाथार्थः—कुछ व्यन्तरदेवों के मात्र भवन ही हैं, कुछ के भवन और भवनपुर हैं तथा कुछ के भवन, भवनपुर और आवास ये तीनों हैं। भवनवासी देवों में असुरकुमारों को छोड़कर शेष में किन्हीं किन्हीं के भवन, भवनपुर और आवास, ये तीनों होते हैं ।।२९७।।

विशेषार्थः—व्यन्तर देवों में से कोई कोई व्यन्तरदेव मात्र भवनों में रहते हैं; कोई भवन और भवनपुर इन दोनों में रहते हैं तथा कोई कोई भवन, भवनपुर और आवास-इन तीनों में रहते हैं।

भवनवासी देवों में असुरकुमारों को छोड़कर शेष में से किन्हीं किन्हीं के तीनों प्रकार के निवास स्थान हैं।

अथ निलयत्रयाणां व्यासादिकं गाथात्रयेण कथयति—

जेट्ठावरभवणाणं बारसहस्सं तु सुद्ध पणुवीसं।
बहलं तिसय तिपादं बहलतिभागुदयकूडं च ॥२९८॥

ज्येष्ठावरभवनयोः द्वादशसहस्रं तु शुद्धपञ्चविंशतिः।
बाहुल्यं त्रिशतं त्रिपादं बाहुल्यत्रिभागोदयकूटं च ॥ २९८ ॥

जेट्ठा। ज्येष्ठजघन्यभवनयोर्विस्तारो द्वादशसहस्रयोजनानि शुद्धा पञ्चविंशतिः, तयोर्बाहुल्यं त्रिशतयोजनानि त्रिपादयोजनं तयोर्मध्ये तद्बाहुल्यत्रिभागोदयकूटं भवति ॥ २९८ ॥

तीन गाथाओं द्वारा तीनों निलयों का व्यासादि कहते हैं :—

गाथार्थ :— उत्कृष्ट और जघन्य भवनों का विस्तार क्रमशः बारह हजार (१२०००) और शुद्ध पच्चीस योजन मात्र है तथा उनका बाहुल्य तीन सौ और तिपाद अर्थात् पौन (¾) योजन है। बाहुल्य के तीसरे भाग प्रमाण ऊँचे कूट हैं ॥ २९८ ॥

विशेषार्थ :— भवनों का उत्कृष्ट विस्तार बारह हजार योजन और बाहुल्य तीन सौ योजन है। जघन्य विस्तार मात्र २५ योजन और बाहुल्य ¾ अर्थात् पौन योजन (तीन कोस) है। भवनों के मध्य में बाहुल्य के तीसरे भाग (३०० × ⅓) अर्थात् १०० योजन एवं एक कोस ऊँचे कूट हैं।

जेट्ठभवणाण परिदो वेदी जोयणदलुच्छिया होदि।
अवराणं भवणाणं दंडाणं पण्णुवीसुदया ॥ २९९ ॥

ज्येष्ठभवनानां परितः वेदी योजनदलोच्छ्रिता भवति।
अवराणां भवनानां दण्डाना पञ्चविंशत्युदया ॥ २९९ ॥

जेट्ठ। वेदी शब्दः द्विवारं सम्बध्यते। अन्यत् छायामात्रमेवार्थः ॥ २९९ ॥

गाथार्थ :— उत्कृष्ट भवनों के चारों ओर आधा योजन ऊँची वेदी है तथा जघन्य भवनों के चारों ओर पच्चीस धनुष ऊँची वेदी है ॥ २९९ ॥

वट्टादीण पुराणं जोयणलक्खं कमेण एक्कं च।
आवासाणं बिसयाहियबारसहस्स य तिपादं ॥३०० ॥

वृत्तादीनां पुराणां योजनलक्षं क्रमेण एकं च।
आवासानां द्विशताधिकद्वादशसहस्राणि च त्रिपादम् ॥३००॥

वट्टा। वृत्तादीनां पुराणां योजनलक्षमुत्कृष्टविस्तारः क्रमेण जघन्यमेकयोजनं। वृत्तादीना-मावासानां द्विशताधिकद्वादशसहस्राण्युत्कृष्टविस्तारः जघन्यं त्रिपादयोजनं है ॥ ३०० ॥

गाथार्थ :—गोल आदि भवनपुरों का उत्कृष्टादि विस्तार क्रमशः एक लाख योजन और एक योजन है। आवासों का उत्कृष्टादि विस्तार क्रमशः बारह हजार दो सौ (१२२००) योजन और पौन योजन है ॥ ३०० ॥

विशेषार्थ :- गोलादि आकार वाले भवनपुरों का उत्कृष्ट विस्तार एक लाख योजन और जघन्य विस्तार एक योजन प्रमाण है। इसी प्रकार गोल आदि आवासों का उत्कृष्ट विस्तार बारह हजार दो सौ (१२२००) योजन तथा जघन्य विस्तार पौन योजन अर्थात् तीन कोस है।

अथ निलयत्रयाणां विशेषस्वरूपं भौमाहारोच्छ्वासं च कथयति :—

भवणावासादीणं गोउरपायारणच्चणादिघरा।
भोम्माहारुस्सासा साहियपणदिणमुहुत्ता य ॥ ३०१ ॥

भवनावासादीनां गोपुरप्राकारनर्तनादिगृहाणि ।
भौमाहारोच्छ्वासौ साधिकपञ्चदिनानि मुहूर्ताश्च ॥३०१॥

भवणा । भवनावासादीनां गोपुरप्राकारनर्तनादिगृहाणि भवन्ति । भौमाहारोच्छ्वासौ यथाक्रमेण साधिकपञ्चदिनानि साधिकपञ्चमुहूर्ताश्च ॥ ३०१ ॥

तीनों प्रकार के निलयों का विशेष स्वरूप और व्यन्तरदेवों के आहार एवं उच्छ्वास का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—व्यन्तरदेवों के भवनों एवं आवासादिकों में द्वार, कोट तथा नृत्य आदि के लिए घर भी होते हैं। व्यन्तरदेवों का आहार और उच्छ्वास क्रमशः कुछ अधिक पाँच दिन में और कुछ अधिक पाँच मुहूर्त में होता है ॥ ३०१ ॥

विशेषार्थ :—व्यन्तर देवों के भवनों और आवासादिकों में दरवाजे, प्रासाद एवं नृत्यगृह आदि भी होते हैं। जिन व्यन्तरदेवों की आयु पल्य प्रमाण है वे पाँच दिन के अन्तर से आहार लेते हैं और पाँच मुहूर्त बाद उच्छ्वास लेते हैं। तथा[1] जिन व्यन्तरदेवों की आयु मात्र दस हजार वर्ष है, उनका आहार दो दिन बाद और श्वासोच्छ्वास सात पाणापाण (श्वासोच्छ्वास) पश्चात् होता है ॥

इति श्रीनेमिचन्द्राचार्यविरचिते त्रिलोकसारे व्यन्तरलोकाधिकारः ॥३॥

इस प्रकार श्री नेमिचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार में
व्यन्तर लोकाधिकार सम्पूर्ण हुआ।

---

१ ति० प० अधिकार ६ गाथा ८८-८९।

४
ज्योतिर्लोकाधिकारः

अथ व्यन्तरलोकाधिकारं निरूप्य तदनन्तरोद्देशभाजं ज्योतिर्लोकाधिकारं निरूपयितुकामस्तदादौ ज्योतिर्बिम्बसंख्याप्रदर्शनगर्भं ज्योतिर्लोकचैत्यालयवन्दनालक्षणं मङ्गलमाह—

बेसदछप्पण्णंगुलकदिहिदपदरस्स संखभागमिदे ।
जोइसजिणिंदगेहे गणणातीदे णमंसामि ॥ ३०२ ॥

द्विशतषट्पञ्चाशदङ्गुलकृतिहृतप्रतरस्य संख्यातभागमितान् ।
ज्योतिष्कजिनेन्द्रगेहान् गणनातीतान्नमस्यामि ॥ ३०२ ॥

बेसद । छायामात्रमेवार्थः ॥ ३०२ ॥

व्यन्तरलोकाधिकार का निरूपण करके उसके अनन्तर उद्देश्य को प्राप्त ज्योतिर्लोकाधिकार के निरूपण की इच्छा रखने वाले आचार्य सर्व प्रथम ज्योतिषदेवों के बिम्बों की संख्या दिखाने के लिए ज्योतिर्लोक के चैत्यालयों को नमस्कार करने रूप मंगल कहते हैं :—

गाथार्थ :—जगत्प्रतर को दो सौ छप्पन (२५६) अंगुलों के वर्ग (२५६ × २५६ = ६५५३६) का भाग देने पर ज्योतिष देवों का प्रमाण प्राप्त होता है। ज्योतिष देवों के संख्यात भाग प्रमाण ज्योतिर्बिम्ब एवं चैत्यालय हैं, जो असंख्यात हैं। उन्हें मैं (नेमिचन्द्राचार्य) नमस्कार करता हूँ ॥ ३०२ ॥

विशेषार्थ :—दो सौ छप्पन अंगुलों का वर्ग करने से (२५६ × २५६) = ६५५३६ वर्ग अंगुल अर्थात् पण्णट्ठी प्राप्त होती है, अतः जगत्प्रतर ÷ ६५५३६ वर्ग अंगुल = ज्योतिष देवों का प्रमाण। ज्योतिषदेव ÷ संख्यात = ज्योतिर्बिम्ब और चैत्यालय, जिनकी संख्या असंख्यात है, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

अथ तद्गेहस्थज्योतिष्कभेदमाह—

चंदा पुण आइच्चा गह णक्खत्ता पइण्णतारा य ।
पंचविहा जोइगणा लोयंतघणोदहिं पुट्ठा ॥ ३०३ ॥

चन्द्राः पुनः आदित्या ग्रहा नक्षत्राणि प्रकीर्णकताराश्च ।
पञ्चविधा ज्योतिर्गणा लोकान्तघनोदधि स्पृष्टवन्तः ॥ ३०३ ॥

चंदा । छायामात्रमेवार्थः ॥ ३०३ ॥

बिम्बों में स्थित ज्योतिषी देवों के भेद कहते हैं—

गाथार्थ :—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारा, इस प्रकार ज्योतिष देवों के समूह पाँच प्रकार के हैं। ये पाँचों लोक के अन्त में घनोदधिवातवलय का स्पर्श करते हैं ॥ ३०३ ॥

विशेषार्थ :—पूर्व पश्चिम अपेक्षा घनोदधि वातवलय पर्यन्त ज्योतिषी देवों के बिम्ब स्थित हैं।

अथ द्वीपसमुद्रनिरूपणमन्तरेण ज्योतिर्गणनिरूपणासम्भवात् तदाधारद्वीपसमुद्रान् गाथाचतुष्केण निरूपयति—

जंबूधादकिपुक्खरवारुणिखीरघदखोदवरदीओ ।
णंदीसरअरुणअरुणब्भासा वर कुंडलो संखो ॥ ३०४ ॥
तो रुजगभुजगकुसगयकोंचवरादी मणसिलस तत्तो ।
हरिदालदीवसिंदुरसियामगंजणयहिंगुलिया ॥ ३०५ ॥
रूप्पसुवण्णयवज्जयवेलुरियणागभूदजक्खवरा ।
तो देवाहिंदवरा सयंभुरमणो हवे चरिमो ॥ ३०६ ॥
लवणंबुहि कालोदयजलही तत्तो सदीवणामुवही ।
सव्वे अद्धाइज्जुद्धारुवहिसमया होंति ॥ ३०७ ॥

जम्बूधातकिपुष्करवारुणिक्षीरघृतक्षौद्रवरद्वीपाः ।
नन्दीश्वरारुणारुणाभासा वराः कुण्डलः शङ्खः ॥ ३०४ ॥
ततो रुचकभुजगकुशगक्रौंचवरादयः मनःशिला ततः ।
हरितालद्वीपसिन्दूरश्यामकाञ्जनकहिंगुलिकाः ॥ ३०५ ॥
रूप्यसुवर्णकवज्रकवैडूर्यकनागभूतयक्षवराः ।
ततो देवाहिन्द्रवरौ स्वयम्भूरमणो भवेत् चरमः ॥ ३०६ ॥
लवणाम्बुधिः कालोदकजलधिः ततः स्वद्वीपनामोदधयः ।
सर्वे अर्धतृतीयोद्धारोदधिमात्रा भवन्ति ॥ ३०७ ॥

जंबू । जम्बूद्वीपः धातकीखण्डद्वीपः पुष्करवरः वारुणिवरः क्षीरवरः घृतवरः क्षौद्रवरः नन्दीश्वरवरः अरुणवरः अरुणाभासवरः कुण्डलवरः शङ्खवरः ॥ ३०४ ॥

तो । ततो रुचकवरः भुजगवरः कुशगवरः क्रौंचवरावयः । एते अभ्यन्तरषोडशद्वीपाः तत उपरि असंख्यातद्वीपसमुद्रान् त्यक्त्वा अन्त्यषोडशद्वीपानाह—ततो मनःशिलाद्वीपः हरितालद्वीपः सिन्दूरवरः श्यामवरः अञ्जनकवरः हिंगुलिकवरः ॥ ३०५ ॥

रूप्प । रूप्यवरः सुवर्णवरः वज्रवरः वैडूर्यवरः नागवरः भूतवरः यक्षवरः ततो देववरः अहीन्द्रवरः स्वयम्भूरमणो अवेच्चरमः ॥ ३०६ ॥

लवणं । लवणाम्बुधिः कालोदकजलधिः ततः स्वस्वद्वीपनामोदधयः सर्वे द्वीपसमुद्राः कियन्त इति चेत्, अर्धतृतीयोद्धारसागरोपममात्रा भवन्ति ॥ ३०७ ॥

द्वीप समुद्रों के निरूपण बिना ज्योतिष्क देवों का निरूपण असम्भव है, अतः ज्योतिषी देवों के आधारभूत द्वीप समुद्रों का निरूपण चार गाथाओं द्वारा करते हैं :—

गाथार्थ :—(१) जम्बूद्वीप (२) धातकी खण्ड (३) पुष्करवर (४) वारुणिवर (५) क्षीरवर (६) घृतवर (७) क्षौद्रवर (८) नन्दीश्वरवर (९) अरुणवर (१०) अरुणाभासवर (११) कुण्डलवर (१२) शङ्खवर (१३) रुचकवर (१४) भुजगवर (१५) कुशगवर और (१६) क्रौञ्चवर (आदि ये अभ्यन्तर के सोलह द्वीप हैं । इसके बाद असंख्यात द्वीप समुद्रों को छोड़ कर अन्त के १६ द्वीपों के नाम) (१) मनःशिला द्वीप (२) हरिताल द्वीप (३) सिन्दूरवर (४) श्यामवर (५) अञ्जनवर (६) हिंगुलिकवर (७) रूप्यवर (८) सुवर्णवर (९) वज्रवर (१०) वैडूर्यवर (११) नागवर (१२) भूतवर (१३) यक्षवर (१४) देववर (१५) अहीन्द्रवर और अन्तिम (१६) स्वयम्भूरमण द्वीप है ॥ ३०४ ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥

गाथार्थ :—लवण समुद्र और कालोदक समुद्र के अतिरिक्त अन्य समुद्रों के नाम अपने अपने द्वीपों के नाम सदृश ही हैं । ढाई उद्धार सागर का जितना प्रमाण है, उतना ही प्रमाण सर्वद्वीप समुद्रों का है ॥ ३०७ ॥

विशेषार्थ :—सर्व समुद्र एक एक द्वीप को वेष्टित किए हुए हैं । सर्व प्रथम जम्बूद्वीप को वेष्टित करने वाले समुद्र का नाम लवण समुद्र है । दूसरे धातकीखण्ड द्वीप को परिलक्षित करने वाले समुद्र का नाम कालोदक समुद्र है । इसी प्रकार एक एक समुद्र एक एक द्वीप को घेरे हुए है । इन दो समुद्रों के अतिरिक्त अन्य समुद्रों के नाम द्वीपों के नाम सदृश ही हैं । सर्व द्वीप समुद्रों का प्रमाण ढाई उद्धार सागर के प्रमाण बराबर है । दश कोडा कोडी उद्धार पल्य का एक उद्धार सागर होता है । ऐसे ढाई उद्धार सागर के जितने रोम हैं, उतनी ही द्वीप समुद्रों की संख्या का प्रमाण है ।

इदानीं तेषां विस्तारं संस्थानं च निरूपयति—

जंबू जोयणलक्खो वट्टो तद्दुगुणदुगुणवासेहिं ।
लवणादिहि परिखित्तो सयंभुरमणुवहियंतेहिं ॥३०८॥

जम्बू योजनलक्षः वृत्तः तद्द्विगुणद्विगुणव्यासैः ।
लवणादिभिः परिक्षिप्तः स्वयम्भूरमणोदध्यन्तैः ॥३०८॥

जंबू । जम्बूद्वीपः योजनलक्षव्यासः वृत्तः तद्द्विगुणद्विगुणव्यासैः लवणसमुद्रादिभिः परिक्षिप्तः परिवेष्टितः स्वयम्भूरमणोदध्यन्तैः ॥ ३०८ ॥

द्वीप समुद्रों के विस्तार व आकार का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—जम्बू द्वीप एक लाख योजन प्रमाण तथा गोल है। लवण समुद्र से स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त जितने भी द्वीप समुद्र हैं वे सब जम्बूद्वीप से दूने दूने व्यास वाले हैं और एक दूसरे को घेरे हुए हैं ॥ ३०८ ॥

विशेषार्थ :— सर्व द्वीप समुद्रों के मध्य में जम्बूद्वीप है, जो गोल है। इसकी चौड़ाई का प्रमाण एक लाख योजन अर्थात् ४० करोड़ मील है। इसको घेरे हुये लवणसमुद्र है, जो जम्बूद्वीप से दूना अर्थात् दो लाख योजन व्यास वाला है। इसको घेरे हुए धातकी खण्ड है जो चार लाख योजन व्यास वाला है। इसी प्रकार द्वीप को समुद्र घेरे हुये हैं और समुद्र को द्वीप। स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त दूने दूने विस्तार के साथ यही क्रम है।

अथ तत्राभिमतस्य द्वीपस्य समुद्रस्य वा सूचीव्यासं वलयव्यासं चानेतुं करणसूत्रमिदम्—

रूऊणाहियपदमिददुगसंवग्गे पुणोवि लक्खहदे ।
गयणतिलक्खविहीणे वासो वलयस्स सूइस्स ॥ ३०९ ॥

रूपोनाधिकपदमितद्विकसंवर्गे पुनरपि लक्षहते ।
गगनत्रिलक्षविहीने व्यासो वलयस्य सूचेः ॥ ३०९ ॥

रूऊणा । द्वीपसमुद्राणामिष्टगच्छप्रमाणं कालोदके एकत्र रूपोनमन्यत्र रूपाधिकं च कृत्वा स्थापनीयं ३।५ तद्द्वयमपि विरलयित्वा ॥१,१,१।१,१,१,१,१॥ रूपं प्रति द्विकं दत्वा ॥२,२,२।२,२,२,२,२॥ अन्योन्य संवर्गे ईदृशौ राशी जायेते ८।३२ पुनर्लक्षेण हन्यात् । ८ ल० ३२ ल० तत्र प्रथमराशौ शून्यं विशोधयेत् द्वितीयराशौ लक्षत्रयं विशोधयेत् । एवं कृते सति वलयव्यासः ८ ल० सूचीव्यासश्च जायते २९ ल० । अत्र वलयव्यासानयने वासना । तद्यथा । जम्बूद्वीपव्यासात् १ ल० अस्माल्लवणसमुद्रादिव्यासाः द्विगुणद्विगुणप्रमाणा भवन्ति इति हेतोः रूपोनगच्छमात्रद्विकैः जम्बूद्वीपव्यासे गुणिते तत्र तत्रेष्टस्थाने वलयव्यासो भवति । इदं मनसिकृत्य ''रूऊणपदमिददुगसंवग्गे'' इत्युक्तं । इदं वलयव्यासप्रमाणं । शुद्धमेवागतमिति हीनाधिकाभावात् । 'गयणविहीणे' मित्युक्तम् । अथ सूचीव्यासानयने

वासना। इष्टस्य द्वीपस्य समुद्रस्य वा वलयव्यासं उभयविगतमेलनात् द्विगुणं स्थापयित्वा १६ल० तथा ततोऽर्वाचीनानां द्वीपसमुद्राणां वलयव्यासं द्विगुणं द्विगुणं स्थापयेत् ८ ल०। ४ ल०। जम्बूद्वीपस्य विगुणाभावादात्मप्रमाणमेव १ल० स्थापयेत्। ततः व्यासानां न्यासः। १६ल०, ८ल०, ४ल०, ०, १ल० गुणसङ्कलनार्थः। अत्र द्वितीयस्थाने शून्ये लक्षद्वयमृणं प्रक्षिपेत् १६ल०, ८ल०, ४ल०, २ल०, १ल०,। एवंकृते रूपाधिकगच्छोत्पत्तिः भवति। इदं सम्प्रधार्य "रूवाहियपदबुगं संवग्गे" इत्युक्तं। अत्र "पदमेत्ते गुणयारे" इत्यनेन गुणसङ्कलनसूत्रेण रूपाधिकपदमात्रद्विकसंवर्गेणोत्पन्नराशौ ३२ चैकरूपं प्राक् प्रक्षिप्तं ऋणद्वयं चापनयेत्। इदमेवावधार्यं "तिलक्खविहीणे" इत्युक्तं। एवं कृते इष्टस्थाने सूचीव्यास-प्रमाणमुत्पद्यते ॥ ३०९ ॥

इच्छित द्वीप व समुद्र का सूची व्यास एवं वलय व्यास लाने के लिये करण सूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ —इष्ट गच्छ के प्रमाण को एक जगह एक अङ्क (गच्छ—१) हीन और एक जगह एक अङ्क अधिक (गच्छ + १) कर स्थापित करने पर जो प्राप्त हो उतनी बार दो का संवर्गन कर अर्थात् उतनी बार दो का अङ्क रख कर परस्पर गुणा कर उसे पुनः एक लाख से गुणित करे, जो जो लब्ध प्राप्त हो उसमें से प्रथम स्थान के लब्ध में से शून्य और द्वितीय स्थान के लब्ध में से ३ लाख घटाने पर क्रम से वलय व्यास और सूची व्यास का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ॥ ३०९ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप से कालोदक समुद्र चौथा है, और यही चार हमारा इष्ट गच्छ है। इसे एक हीन और एक अधिक कर स्थापित करना चाहिये। यथा—

वलय व्यास=कालोदक समुद्र पर्यन्त द्वीप समुद्रों की संख्या ४—१ = ३

सूची व्यास=कालोदक समुद्र पर्यन्त द्वीप समुद्रों की संख्या ४ + १ = ५

वलय व्यास—२³ × लाख—० अर्थात् तीन का विरलन कर प्रत्येक एक के अङ्क पर दो दो देय देकर परस्पर गुणा कर जो लब्ध प्राप्त हो उसे एक लाख से गुणित कर लब्ध में से शून्य घटाने पर वलय व्यास का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। जैसे—$\overset{२}{१}\ \overset{२}{१}\ \overset{२}{१}$ = ८ × १ लाख = ८००००० ८०००००—० = ८००००० (आठ लाख) वलय व्यास का प्रमाण प्राप्त हुआ। इसी प्रकार सूची व्यास :—(पाँच का विरलन) $\overset{२}{१}\ \overset{२}{१}\ \overset{२}{१}\ \overset{२}{१}\ \overset{२}{१}$ = ३२ × १ लाख = ३२०००००—३००००० = २९००००० (उन्तीस लाख) अर्थात् ११६००००००००० मील सूची व्यास का प्रमाण प्राप्त हुआ।

वलय व्यास लाने के लिये वासना :—जम्बूद्वीप का व्यास एक लाख योजन प्रमाण है, इसके आगे लवणसमुद्रादि का व्यास दूने दूने प्रमाण वाला है, इसी कारण एक कम गच्छ प्रमाण दो के अङ्क स्थापित कर परस्पर में गुणा करने से जो लब्ध प्राप्त हो उसको जम्बूद्वीप के व्यास से गुणित

करने पर उस उस इष्ट स्थान का वलय व्यास 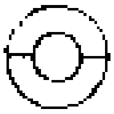 प्राप्त हो जाता है। इसीको मन में रख कर गाथा में "रूऊणपदमिद दुगसंवग्गे" ऐसा कहा गया है।

सूचीव्यास प्राप्त करने के लिये वासना :—

इष्ट द्वीप या समुद्र के वलय व्यास को दुगुना करने से दोनों ओर का सम्मिलित वलय व्यास प्राप्त होता है। जैसे—कालोदधि के वलयव्यास ८ को द्विगुणित करने पर दोनों ओर का वलयव्यास ८×२=१६ लाख योजन प्राप्त होता है। इष्ट द्वीप या समुद्र से पूर्ववर्ती द्वीप या समुद्र के दोनों ओर के वलय-व्यास को प्राप्त करने के लिये उनका वलय व्यास भी दूना करना चाहिये। जैसे—कालोदधि से पूर्ववर्ती धातकी खण्ड के वलयव्यास ४ लाख योजन का दूना ४×२=८ लाख योजन (दोनों ओर का वलयव्यास) होगा। इसी प्रकार लवण समुद्र का दोनों ओर का वलयव्यास २×२=४ लाख योजन होगा। जम्बू द्वीप सबके बीच में है, उसके दो दिशाओं (दो ओर के वलय व्यासों) का अभाव है, अतः उसका व्यास १ लाख योजन ग्रहण करना चाहिये। इसके व्यास को दो से गुणित नहीं किया गया। दूसरे स्थान पर शून्य (०) रखना, अतः कालोदधि के दोनों छोर तक का सूचीव्यास इस प्रकार है—१६ला०+८ला०+४ला०+०+१ला०=२९ लाख योजन हुआ। द्वितीय स्थान पर शून्य के स्थानीय १ लाख ऋण रखना चाहिये, ऐसा करने से एक अधिक गच्छ प्रमाण स्थान हो जाते हैं। ऐसा विचार कर गाथा में "रूवाहिय पद दुगंसवग्गे" अर्थात् एक अधिक गच्छ प्रमाण दो के अङ्कों को परस्पर गुणा करना चाहिये ऐसा कहा गया है। "पदमेत्ते गुणयारे" इस गाथा २३१ के गुण सङ्कलन सूत्रानुसार, एक अधिक गच्छ प्रमाण दो के अङ्कों को परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो उसमें से एक तथा पूर्व में ऋणरूप से रखे हुये २ अर्थात् १ला०+२ला०=३ लाख को कम करना चाहिये। ऐसा निश्चय करके गाथा में "तिलक्खविहीणं" अर्थात् तीन लाख कम करना ऐसा कहा गया है।

उपर्युक्त प्रकिया करने से विवक्षित द्वीप या समुद्र का सूची व्यास 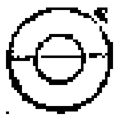 प्राप्त हो जाता है।

तथाभ्यन्तरमध्यमबाह्यसूच्यानयने इदं करणसूत्रम्—

लवणादीणं वासं दुगतिगचदुसंगुणं तिलक्खूणं।
आदिममज्झिमबाहिरसूइ त्ति भणंति आइरिया ॥३१०॥

लवणादीनां व्यासं द्विकत्रिकचतुः सङ्गुणं त्रिलक्षोनम्।
आदिममध्यमबाह्यसूची इति भणन्ति आचार्याः ॥ ३१० ॥

लवण। लवणसमुद्रादीनां मध्ये इष्टस्य द्वीपस्य समुद्रस्य वा वलयव्यासं द्विसङ्गुणं कृत्वा तत्र लक्षत्रये शोधिते अभ्यन्तरसूचीप्रमाणं भवति। तथाहि। विवक्षितवलयव्यास उभयपिण्डजनितः

अर्वाचीनानां द्वीपसमुद्राणां उभयदिक्सङ्कलितवलयव्याससुते: सकाशात् त्रिलक्षाधिको यतस्ततः त्रिलक्षोनः उभयदिक्सङ्कलितो। विवक्षितवलयव्यासः अभ्यन्तरसूचीप्रमाणमित्यभिप्रायः। विवक्षित-वलयव्यासं त्रिसंगुणं कृत्वा तत्र लक्षत्रये शोधिते मध्यमसूचीप्रमाणं भवति। तथाहि। विवक्षितस्य द्वीपस्य समुद्रस्य वा वलयव्यासो द्विगुणितस्त्रिलक्षोनश्चेत् तदा तदभ्यन्तरसूचीप्रमाणं भवति यतस्ततः कारणात् तस्मिन्नभ्यन्तरसूचीप्रमाणे विवक्षितवलयव्यासमध्यात्तवर्धस्य द्विकृद्वयगतस्य विवक्षितवलय-व्यासप्रमाणस्याभ्यधिकत्वात् मध्यमसूचीप्रमाणं त्रिगुणितत्रिलक्षोनविवक्षितवलयव्यासप्रमितमिति भावः। विवक्षितवलयव्यासं चतुः संगुणं कृत्वा तत्र लक्षत्रये शोधिते बाह्यसूचीप्रमाणं भवति। तथाहि। यतो द्विगुणितत्रिलक्षोनविवक्षितवलयव्यासप्रमिते अभ्यन्तरसूचीप्रमाणे विवक्षितवलयव्यासस्य दिग्द्वयगतस्य प्रक्षेपणात् बाह्यसूचीप्रमाणमुत्पद्यते ततः कारणात् चतुर्गुणितत्रिलक्षोनविवक्षितवलय-व्यासप्रमिता बाह्यसूचीत्याचार्याभिप्रायः॥ ३१०॥

अभ्यन्तर मध्य और बाह्य सूची प्राप्त करने के लिए करण सूत्र :—

गाथार्थ :—लवण समुद्रादि द्वीप समुद्रों के वलय व्यास को दो, तीन और चार से गुणित करने पर जो जो लब्ध प्राप्त हो उसमें से तीन तीन लाख घटा देने पर जो जो अवशेष रहे वही क्रम से अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य सूची के व्यास का प्रमाण होता है, ऐसा आचार्य कहते हैं॥ ३१०॥

विशेषार्थ :—लवण समुद्रादि में से जिस द्वीप या समुद्र का सूचीव्यास ज्ञात करना इष्ट हो उसके वलयव्यास को दो से गुणित कर प्राप्त लब्ध राशि में से ३ लाख घटाने पर अभ्यन्तर सूचीव्यास का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। विवक्षित द्वीप या समुद्र के बीच में, विवक्षित द्वीप या समुद्र से पूर्ववर्ती जितने भी द्वीप या समुद्र हैं, उन सबके दोनों ओर के वलयव्यासों को जोड़ने से जो प्रमाण प्राप्त होता है, उससे विवक्षित द्वीप या समुद्र का दोनों ओर का वलयव्यास तीन लाख योजन अधिक होता है, इसलिये दोनों ओर के विवक्षित वलयव्यास में से तीन लाख योजन कम करने से अभ्यन्तर सूचीव्यास का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

विवक्षित वलयव्यास को तीन से गुणित कर तीन लाख घटाने पर मध्यम सूचीव्यास का प्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि विवक्षित द्वीप या समुद्र के वलयव्यास को दुगुणा करके तीन योजन घटाने से अभ्यन्तर सूची व्यास होता है, उस अभ्यन्तर सूचीव्यास में दोनों दिशाओं के विवक्षित वलयव्यास के अर्ध अर्ध भाग को मिलाने से एक ओर का सम्पूर्ण वलयव्यास अधिक हुआ, अतः विवक्षित वलय-व्यास को तिगुना करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें से ३ ला० योजन घटा देने पर विवक्षित मध्य वलयव्यास का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

विवक्षित वलयव्यास को चार से गुणित कर तीन लाख योजन घटा देने पर बाह्य सूचीव्यास का प्रमाण प्राप्त होता है। तथा—विवक्षित वलयव्यास के दुगुने में से तीन लाख यो० घटा देने पर

अभ्यन्तर सूचीव्यास होता है, उस अभ्यन्तर सूची में दोनों दिशा सम्बन्धी वलयव्यास अथवा दुगुना वलय व्यास मिलाने से बाह्य सूची का प्रमाण होता है, इसीलिये विवक्षित वलयव्यास के चौगुने में से तीन लाख योजन घटा देने पर बाह्य सूचीव्यास होता है आचार्य का ऐसा अभिप्राय है। अर्थात् अभ्यन्तर सूची (२ × वलयव्यास − ३ ला०) + २ × वलयव्यास, बाह्य सूची व्यास के बराबर है। अथवा ४ × वलयव्यास— ३ लाख = बाह्य सूचीव्यास। जैसे :—कालोदधि का वलयव्यास ८ लाख योजन है। इसको दो से गुणित करने पर (८ × २) = १६ लाख प्राप्त हुये, अतः १६ ला०—३ ला० = १३ लाख कालोदधि का अभ्यन्तर सूची व्यास हुआ।

८ लाख × ३ लाख = २४ लाख — ३ला० = २१ला० कालोदधि का मध्यम सूचीव्यास हुआ और
८ लाख × ४ लाख = ३२ लाख — ३ला० = २९लाख कालोदधि का बाह्य सूची व्यास हुआ।

अभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य परिधि का चित्रण—

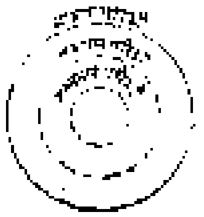

अथोक्तसूचीव्यासमाश्रित्य तत्तत्क्षेत्रबादरसूक्ष्मपरिधिं तत्तद्बादरसूक्ष्मक्षेत्रफलं चानयति—

तिगुणियवासं परिही दहगुणविक्खारवग्गमूलं च।
परिहिहदवासतुरियं बादर सुहुमं च खेत्तफलं ॥ ३११ ॥

त्रिगुणितव्यासः परिधिः दशगुणविस्तारवर्गमूलं च।
परिधिहतव्यासतुरीयं बादरं सूक्ष्मं च क्षेत्रफलम् ॥ ३११ ॥

तिगुणिय। त्रिगुणितव्यासो बादरपरिधिः ३ ल० दशगुणविस्तारवर्गः १ल × १ल × १० तस्मिन् मूले गृहीते सूक्ष्मपरिधिः योजन ३१६२२७ तच्छेषयोजनभागं ४८४४७१ चतुर्भिः संगुण्य क्रोशं कृत्वा १९३७८८४ पूर्वभागहारेण ६३२४५४ भागे कृते को० ३ तत्क्रोशशेषं ४०५२२ सहस्रद्वयेन २००० संगुण्य दण्डान् विधाय ८१०४४००० प्राक्तनभागहारेण भक्ते तस्मिन् दण्डाः स्युः १२८ तद्दण्डशेषं ८१८८८ चतुर्भिः हस्ते कृते ३२७५५२ भागाभावात् चतुर्विंशत्यंगुलं कृत्वा ७८६१२४८ प्राक्तन हारेण भक्ते तस्मिन् अंगुलानि स्युः १३ तदंगुलशेषं ४०७२४६ यावद्भागेन अपवर्तितं साधिकार्धं तावद्भागेन तद्धारोऽपि ६३२४५४ इत्यपवर्त्यते चेत् १/२ भवतः। एवं सति साधिकार्धं १/२ भवति। तत् योजनादिकं सर्वं सूक्ष्मपरिधिः स्थूलपरिधिना ३ ल० व्यास १ ल० चतुर्थांशेन २५००० हतो ७५०००००००० जम्बूद्वीपस्य बादरक्षेत्रफलं स्यात्। इदानीं योजनरूपसूक्ष्मपरिधिं ३१६२२७ व्यासचतुर्थांशेन २५००० गुणयित्वा ७९०५६७५००० अत्रैव क्रोशलक्षणसूक्ष्मपरिधिं क्रो० ३ तेनैव २५००० संगुण्य ७५००० चतुर्भागेन

योजनं कृत्वा १८७५० मेलयेत् ७९०५६९३७५० मनेन पुनर्दण्डलक्षणसूक्ष्मपरिधि १२८ तैनेव २५००० संगुण्य ३२००००० मष्टसहस्रभागेन योजनं कृत्वा ४०० मेलयेद् ७९०५६९४१५० मंगुललक्षणं सूक्ष्मपरिधि १३ १/२ समच्छेदेनान्योन्यं मेलयित्वा २७/२ द्वाभ्यां तिर्यगपवर्तितपञ्चविंशतिसहस्रेण १२५००० गुणयित्वा ३३७५०० तस्मिन् क्रोशांगुलेन १९२००० भक्ते साधिकक्रोशो भवति । एतत्सर्वं जम्बूद्वीपस्य सूक्ष्मक्षेत्रफलं स्यात् । एवमेव सर्वेषां द्वीपसमुद्राणां च स्थूलसूक्ष्मक्षेत्रफले पानेतव्ये ॥ ३११ ॥

पूर्वोक्त सूचीव्यास का आश्रय करके उस उस क्षेत्र की बादर सूक्ष्म परिधि और बादर सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त करने के लिए करण सूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—बादर परिधि, व्यास की तिगुनी होती है। व्यास का वर्ग कर उसको दश से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसका वर्गमूल निकालना चाहिए। वर्गमूल स्वरूप प्राप्त अंक ही सूक्ष्म-परिधि का प्रमाण है। बादर परिधि को बाह्य सूची व्यास के चोथाई ($\frac{1}{4}$) भाग से गुणित करने पर बादर क्षेत्रफल होता है, और सूक्ष्म परिधि को बाह्य सूची व्यास के चौथाई भाग से गुणित करने पर सूक्ष्म क्षेत्रफल होता है ॥ ३११ ॥

विशेषार्थ :—बादर परिधि, व्यास की तिगुनी होती है। जम्बूद्वीप का व्यास एक लाख योजन प्रमाण है, अतः १ लाख × ३ = ३ लाख जम्बूद्वीप की बादर परिधि का प्रमाण है।

सूक्ष्म परिधि :—व्यास का वर्ग कर दश से गुणित करना, तथा उसका वर्गमूल निकालना जो लब्ध प्राप्त हो वही सूक्ष्म परिधि का प्रमाण है। जैसे :—जम्बूद्वीप का व्यास १ लाख योजन है, अतः १ ला.² = एक हजार करोड़ वर्ग योजन अर्थात् १००००० × १००००० = १०००००००००० एक हजार करोड़ या दश अरब वर्ग योजन हुआ। इस एक हजार करोड़ योजन में १० का गुणा करने पर (१०००००००००० × १० = १००००००००००० दश हजार करोड़) अथवा एक खरब वर्ग योजन प्राप्त हुआ। इस एक खरब वर्ग योजन का वर्गमूल निकालने पर ३१६२२७ योजन प्राप्त हुए, और ४८४४७१ योजन शेष रहे। इनको चार से गुणित करने पर (४८४४७१ × ४) = १९३७८८४ कोश प्राप्त हुए इसमें पूर्व भागहार का भाग देने पर (१९३७८८४ ÷ ६३२४५४) = ३ कोश प्राप्त हुए और ४०५२२ शेष रहे। इन ४०५२२ को २००० से गुणित करने पर (४०५२२ × २०००) = ८१०४४००० धनुष या दण्ड प्राप्त हुए। इनमें पूर्वोक्त भागहार का भाग देने पर (८१०४४००० ÷ ६३२४५४) = १२८ दण्ड लब्ध आया और ८९८८८ धनुष शेष रहे। इन ८९८८८ को चार से गुणा करने पर (८९८८८ × ४) = ३५९५५२ हाथ प्राप्त हुए। इनमें पूर्वोक्त भागहार का भाग नहीं जाता, अतः २४ का गुणा करने पर (३५९५५२ × २४) = ८६२९२४८ अंगुल हुए। इनमें पूर्वोक्त भागहार का भाग देने पर (८६२९२४८ ÷ ६३२४५४) = १३ अंगुल हुए और ४०७३४६ अंगुल अवशेष रहे। इन ४०७३४६ अंगुल भाज्य को ३१६२२७ संख्या से अपवर्तित करने पर साधिक एक अङ्क आता है और ६३२४५४ भाजक को

३१६२२७ संख्या से अपवर्तित करने पर २ अङ्क आते हैं, अतः साधिक ½ प्राप्त हुआ (साधिक १३½)।

जम्बूद्वीप की सूक्ष्म परिधि ३१६२२७ योजन ३ कोश १२८ धनुष साधिक १३½ अंगुल प्रमाण हुई।

स्थूल क्षेत्रफल :—स्थूल परिधि को व्यास के चौथाई से गुणित करने पर स्थूल क्षेत्रफल होता है। जम्बूद्वीप की स्थूल परिधि तीन लाख योजन को व्यास के चतुर्थ भाग अर्थात् २५००० से गुणित करने पर (३००००० × २५०००) = ७५०००००००० सात सौ पचास करोड़ अर्थात् सात अरब पचास करोड़ वर्ग योजन जम्बूद्वीप का स्थूल क्षेत्रफल प्राप्त हुआ।

सूक्ष्म क्षेत्रफल :—सूक्ष्म परिधि में व्यास के चौथाई का गुणा करने से सूक्ष्म क्षेत्रफल प्राप्त होता है। जैसे :—सूक्ष्म परिधि ३१६२२७ योजन, ३ कोश, १२८ धनुष, साधिक १३½ अंगुल × २५००० यो० (व्यास का चतुर्थ भाग)। ३१६२२७ × २५००० योजन = ७९०५६७५००० योजन। ३ कोश × २५००० योजन = ७५००० कोश ÷ ४ = १८७५० योजन। १२८ दण्ड × २५००० योजन = ३२०००००÷२००० = १६०० कोश ÷ ४ = ४०० योजन १३½ अर्थात् २७/२ × २५००० = ३३७५०० अंगुल = १ कोश १५१५ धनुष २ हाथ और ११ अं० अथवा ३३७५०० ÷ १९२००० अंगुल = साधिक १ कोश। ७९०५६७५००० + १८७५० + ४०० = ७९०५६९४१५० योजन १ कोश १५१५ धनुष, २ हाथ और १२ अंगुल जम्बूद्वीप का सूक्ष्म क्षेत्रफल हुआ। इसी प्रकार सर्व द्वीप समुद्रों का स्थूल और सूक्ष्म क्षेत्रफल निकाल लेना चाहिए।

अथ जम्बूद्वीपस्य सूक्ष्मपरिधेः सिद्धाङ्कमुच्चारयति—

जोयणसगदुदु छक्किगि तिदयं तिक्कोसमट्ठदुगि दंडो।
अहियदलंगुलतेरस जंबूए सुहुमपरिणाहो ॥ ३१२ ॥

योजनानां सप्तद्विद्वि षडेकं त्रयं त्रिकोशा अष्टद्व्येके दण्डाः।
अधिकदलांगुलत्रयोदश जम्बौ सूक्ष्मपरिणाहः ॥ ३१२ ॥

जोयरा। योजनानां सप्तद्विद्विषडेकत्रयः त्रयः कोशाः अष्टद्व्येके दण्डाः अधिकदलानि त्रयोदशांगुलानि एतत्सर्वं जम्बूद्वीपस्य सूक्ष्मपरिधिप्रमाणं भवतियो० ३१६२२७, को० ३, दं० १२८, अं० १३½ ॥ ३१२ ॥

जम्बूद्वीप की सूक्ष्म परिधि के सिद्धाङ्क कहते हैं—

गाथार्थ :—(सप्त) ७ (द्वि) २ (द्वि) २ (षड्) ६ (एकं) १ (त्रयं) ३ अर्थात् ३१६२२७ योजन, ३ कोश, १२८ धनुष और साधिक १३½ अंगुल जम्बूद्वीप की सूक्ष्मपरिधि का प्रमाण है ॥३१२॥

अथ तत्क्षेत्रफलस्य सिद्धांकमुच्चारयति—

पण्णासमेक्कदालं णव छप्पण्णासमुण्णणवसदरी ।
साहियकोसं च हवे जंबूदीवस्स सुहुमफलं ॥ ३१३ ॥

पञ्चाशदेकचत्वारिंशन्नवषट् पञ्चाशच्छून्यं नवसप्ततिः ।
साधिकक्रोशश्च भवेज्जम्बूद्वीपस्य सूक्ष्मफलम् ॥ ३१३ ॥

पण्णास । पञ्चाशदेकचत्वा:---यो० ७९०५६९४१५० साधिक क्रोश १ ॥ ३१३ ॥

इसी जम्बूद्वीप के सूक्ष्म क्षेत्रफल के सिद्ध हुए अंक कहते हैं :—

गाथार्थ :—७९०५६९४१५० योजन और साधिक एक कोश जम्बूद्वीप के सूक्ष्म क्षेत्रफल का प्रमाण है ॥ ३१३ ॥

अथ जम्बूद्वीपस्य परिधिमाधार कृत्वा विवक्षितपरिध्यानयने करणसूत्रमिदम्—

जंबूउभयं परिही इच्छियदीउवहिसुइ संगुणिय ।
जंबूवासविभत्ते इच्छियदीउवहिपरिही दु ॥ ३१४ ॥

जम्बूभयं परिधी इच्छितद्वीपोदधिसूच्या सगुण्य ।
जम्बूव्यासविभक्ते ईप्सितद्वीपोदधिपरिधी नु ॥ ३१४ ॥

जंबू । जम्बूद्वीपस्योभयपरिधी स्थूल ३ ल० सूक्ष्म यो० ३१६२२७ क्रो० ३ दं० १२८ अंगुल १३ भा ½ ईप्सितद्वीपोदधिसूच्या लवणे ५ ल० धातकीखण्डे १३ ल० संगुण्य १५ ल० ल० स्थू० १५८११३९ ल० ल० सूक्ष्मजम्बूव्यासविभक्ते १५ ल० । १५८११३९ ल० ईप्सितद्वीपोदध्योः परिधी भवतः ॥ ३१४ ॥

जम्बूद्वीप की परिधि का आधार करके विवक्षित परिधि लाने के लिये करणसूत्र :—

गाथार्थ :—जम्बूद्वीप की स्थूल एवं सूक्ष्म परिधि को विवक्षित द्वीप अथवा समुद्र के सूची-व्यास से गुणित कर जम्बूद्वीप के व्यास का भाग देने पर विवक्षित द्वीप एवं समुद्र की स्थूल एवं सूक्ष्म परिधि होती है ॥ ३१४ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप की स्थूल परिधि तीन लाख योजन और सूक्ष्म परिधि ३१६२२७ योजन, ३ कोश, १२८ धनुष और साधिक १३½ अंगुल है, तथा लवणसमुद्र और धातकी खण्ड विवक्षित समुद्र एवं द्वीप हैं। लवण समुद्र का सूची व्यास ५ लाख योजन है, अतः ३ ला० × ५ ला० = १५ ला ला योजन हुये, इसमें जम्बूद्वीप के व्यास का भाग देने पर (१५ ला ला ÷ १ लाख) = १५ लाख योजन लवण

समुद्र की स्थूल परिधि का प्रमाण हुआ। जम्बूद्वीप की सूक्ष्मपरिधि ३१६२२७ यो० ३ कोश १२८ ध० १३½ अंगुल × ५ ला० लवणसमुद्र का सूची व्यास ÷ १ लाख जम्बूद्वीप का व्यास = १५८११३८ योजन १ कोश ६४० धनुष, २ हाथ और १९½ अंगुल लवण समुद्र की सूक्ष्म परिधि का प्रमाण प्राप्त हुआ।

धातकी खण्ड का सूची व्यास १३ ला० है, अतः ३ ला × १३ ला ÷ १ लाख = ३९ लाख धातकी खण्ड की स्थूल परिधि का प्रमाण हुआ।

जम्बूद्वीप की सूक्ष्म परिधि ३१६२२७ यो०, ३ कोश, १२८ धनुष, १३½ अंगुल × १३ लाख (धातकी खण्ड का सूची व्यास) ÷ १ लाख जम्बूद्वीप का व्यास = ४११०९६० योजन ३ कोश १६६५ धनुष ३ हाथ और ७½ अंगुल धातकी खण्ड की सूक्ष्म परिधि का प्रमाण प्राप्त हुआ।

इदानीमुभयक्षेत्रफलमानयति—

अंताइसूइजोगं रुंदद्धं गुणित्तु दुप्पडिं किच्चा।
तिगुणं दसकरणिगुणं बादरसुहुमं फलं वलये ॥३१५॥

अंतादिसूचियोगं रुन्द्रार्धेन गुणयित्वा द्विः प्रति कृत्वा।
त्रिगुणं दशकरणिगुणं बादरसूक्ष्मं फलं वलये ॥ ३१५ ॥

अंताइ। लवणस्यान्तादिसूच्योः ५ ल० १ ल० योगं ६ ल० रुन्द्रार्धेन १ ल० गुणयित्वा ६ ल० ल० द्विः प्रति कृत्वा ६ ल० ल०, ६ ल० ल०, एकं त्रिगुणितं १८ ल० ल०, अपरं दशकरणिगुणितं चेत् ६ ल० ल० √ ल० ल० १० बादरसूक्ष्मफले भवतः। स्थूल १८ ल० ल० सूक्ष्म १८९७३६६५९६१० वलयवृत्तक्षेत्रे ॥ ३१५ ॥

स्थूल और सूक्ष्म क्षेत्रफल लाने के लिए करण सूत्र :—

गाथार्थ :—अन्त सूची और आदि सूची को जोड़ कर अर्धरुन्द्रव्यास से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे दो जगह स्थापित कर एक स्थान के प्रमाण को तिगुना करने से बादर क्षेत्रफल का प्रमाण प्राप्त होता है, तथा दूसरे स्थान के प्रमाण का वर्ग कर जो लब्ध प्राप्त हो उसको दश से गुणित कर गुणनफल का वर्गमूल निकालने पर जो लब्ध प्राप्त होता है वह सूक्ष्म क्षेत्रफल का प्रमाण है ॥ ३१५ ॥

विशेषार्थ :—लवण समुद्र की अन्तसूची अर्थात् बाह्य सूचीव्यास ५ लाख योजन है, और आदि सूची अर्थात् अभ्यन्तर सूची व्यास १ लाख योजन है, इन दोनों का जोड़ (५ + १) = ६ लाख योजन हुआ। लवण समुद्र का रुन्द्रव्यास दो लाख योजन का है, इसका आधा (२ × ½) = १ लाख योजन हुआ। इस १ लाख से ६ लाख को गुणित करने पर (६ लाख × १ लाख) = ६ लाख × लाख

प्राप्त हुए। इसे ६ ला×ला, ६ ला×ला इस प्रकार दो जगह स्थापित कर एक जगह के प्रमाण को तिगुना करने से (६ ल ल × ३) = १८ ला ला अर्थात् १८ हजार करोड़ योजन लवण समुद्र के बादर क्षेत्रफल का प्रमाण प्राप्त हुआ।

सूक्ष्म क्षेत्रफल :—दूसरे स्थान के प्रमाण ६ ल ल का वर्ग करने पर ६ ल ल × ६ ल ल हुए। इनको १० से गुणित करने पर ६ ल ल × ६ ल ल × १० अर्थात् ३६ कोड़ाकोड़ी करोड़ (३६०००००००००००००००००००००) योजन प्राप्त हुए। इनका (√३६ कोड़ाकोड़ी करोड़) वर्गमूल १८९७३६६५९६१० योजन अर्थात् अठारह हजार नौ सौ तिहत्तर करोड़ छ्यासठ लाख, उनसठ हजार छह सौ दश योजन लवण समुद्र के सूक्ष्म क्षेत्रफल का प्रमाण प्राप्त होता है।

अथ जम्बूद्वीपप्रमाणेन लवणसमुद्रादीनां खण्डान्यानयति—

बाहिरसूईवग्गं अब्भंतरसूइवग्गपरिहीणं ।
जंबूवासविभत्ते तत्तियमेत्ताणि खण्डाणि ॥३१६॥
बाह्यसूचीवर्गः अभ्यन्तरसूचिवर्गपरिहीनः ।
जम्बूव्यासविभक्तः तावन्मात्राणि खण्डानि ॥ ३१६ ॥

बाहिर। बाह्यसूचीवर्गः २५ ल० ल०, अभ्यन्तरसूची १ ल० वर्गः १ ल० १ ल० परिहीनः २४ ल० ल० जम्बूव्यासेन वर्गराशिगुणकारभागहारयोर्वर्गात्मकेन १ ल० ल० विभक्तश्चेदागतानि तावन्मात्र-खण्डानि २४ ॥ ३१६ ॥

लवणसमुद्रादिकों के जम्बूद्वीप प्रमाण खण्ड लाने के लिये करणसूत्र :—

गाथार्थ :—बाह्य सूचीव्यास के वर्ग में से अभ्यन्तर सूची व्यास का वर्ग घटाने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें जम्बूद्वीप के व्यास (के वर्ग) का भाग देने पर जो प्रमाण प्राप्त होता है, लवण समुद्र के जम्बूद्वीप सदृश उतने ही खण्ड होते हैं ॥ ३१६ ॥

विशेषार्थ :—लवण समुद्र की बाह्य सूची का प्रमाण ५ लाख योजन है, इसका वर्ग (५ लाख × ५ लाख) = २५ ला × ला योजन होता है। इसी समुद्र की अभ्यन्तर सूची १ लाख योजन है, जिसका वर्ग (१ ला × १ ला) = १ ला ला योजन होता है, इसे बाह्य सूची व्यास के वर्ग में से घटा देने पर (२५ ला ला—१ ला ला) = २४ ला ला अवशेष रहे। "वर्ग राशि का गुणकार एवं भागहार वर्ग स्वरूप ही होता है" इस नियम के अनुसार जम्बूद्वीप के १ लाख योजन व्यास का वर्ग (१ ला × १ ला) = १ ला ला होता है। इसका उपर्युक्त प्रमाण (२४ ला ला) में भाग देने पर

$\left(\frac{\text{२४ ला ला}}{\text{१ ला ला}}\right)$ मात्र २४ लब्ध प्राप्त होता है, अतः सिद्ध होता है कि यदि लवण समुद्र के जम्बूद्वीप बराबर टुकड़े या खण्ड किये जाँय तो २४ खण्ड होंगे।

अथ प्रकारान्तरेण खण्डानयने गाथाद्वयमाह—

रूऊणसलाबारससलागगुणिदे दु वलयखंडाणि ।
बाहिरसूइसलागा कदी तदंताखिला खंडा ॥ ३१७ ॥

रूपोनशाला द्वादशशलाकागुणितास्तु वलयखण्डानि ।
बाह्यसूचिशलाका कृतेः तदन्ताखिलानि खण्डानि ॥ ३१७ ॥

रूऊण। लक्षद्वलयव्यासलक्षवाराः अत्र शलाका इत्युच्यन्ते। लवणे तद्रूपोनशलाकाः १ द्वादशभिः १२ शलाकाभ्यां च २ गुणिता २४ वलयखण्डानि। बाह्यसूचीशलाकाकृतेरेव २५ तदन्ताखिलानि खण्डानि स्युः ॥ ३१७ ॥

अब प्रकारान्तर से खण्ड करने के लिये दो गाथाएँ कहते हैं :—

गाथार्थ :—एक कम शलाका के प्रमाण को बारह से गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसको शलाका के प्रमाण से गुणित करने पर जम्बूद्वीप सदृश गोल खण्ड प्राप्त होते हैं, तथा बाह्य सूची शलाका का वर्ग करने पर जो लब्ध प्राप्त होता है वही सम्पूर्ण (जम्बूद्वीप से प्रारम्भ कर लवण समुद्र पर्यन्त) खण्डों का प्रमाण होता है ॥ ३१७ ॥

विशेषार्थ :—विवक्षित द्वीप या समुद्र का वलयव्यास जितने लाख योजन होता है, उतना ही उसकी शलाकाओं का प्रमाण कहलाता है।

लवण समुद्र का वलयव्यास दो लाख योजन प्रमाण है, अतः लवणसमुद्र की दो शलाकाएँ हुईं। एक कम शलाका में १२ का गुणा कर शलाकाओं का गुणा करना है, अतः २—१= १×१२=१२×२ शलाकाएँ=२४ लवण समुद्र के जम्बूद्वीप बराबर २४ खण्ड होते हैं।

बाह्य सूची व्यास का प्रमाण जितने लाख होता है, उतना ही उसकी सूची शलाकाओं का प्रमाण होता है। लवण समुद्र की बाह्य सूची शलाकाओं का प्रमाण ५ है, इसका वर्ग (५×५)= २५ हुआ। जम्बूद्वीप से लवण समुद्र पर्यन्त क्षेत्र के यही २५ खण्ड होते हैं। इनमें एक खण्ड स्वरूप जम्बूद्वीप है, और २४ खण्ड (जम्बूद्वीप के बराबर) लवण समुद्र के हो सकते हैं। अन्यत्र भी ऐसा ही जानना।

बाहिरसूई वलयव्वासूणा चउगुणिदुव्वाससहदा ।
इगिलक्खवग्गभजिदा जंबूसमवलयखंडाणि ॥३१८॥

बाह्यसूची वलयव्यासोना चतुर्गुणितेषुव्यासहता ।
एकलक्षवर्गभक्ता जम्बूसमवलयखण्डानि ॥ ३१८ ॥

बाहिर । लवणबाह्यसूची ५ ल, वलयव्यासो (—२ल) ना=३ल, चतुर्गुणिते (८ ल) वृव्यासहता २४ ल० ल० एक लक्ष वर्ग १ ल० ल० भक्ता २४ जम्बूसमवलयखण्डानि । एवं धातकीखण्डादिषु सर्वत्र प्राक्तनगाथापञ्चकविधानं ज्ञातव्यम् ॥ ३१८ ॥

गाथार्थ :—बाह्य सूची व्यास के प्रमाण में से वलयव्यास का प्रमाण घटा कर शेष प्रमाण को चौगुने वलयव्यास से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें एक लाख के वर्ग का भाग देने पर जम्बूद्वीप के प्रमाण बराबर गोल खण्डों का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ॥ ३१८ ॥

विशेषार्थ :—विवक्षित द्वीप या समुद्र की बाह्य सूची में से उसीके वलयव्यास का प्रमाण घटा कर चौगुने वलयव्यास से गुणित कर १ लाख के वर्ग का भाग देने पर उसी विवक्षित द्वीप या समुद्र के जम्बूद्वीप सदृश गोल खण्ड प्राप्त हो जाते हैं। जैसे :—लवण समुद्र विवक्षित है। इसका बाह्य सूचीव्यास ५ लाख योजन और वलयव्यास दो लाख योजन है। ५ लाख—२ लाख = ३ लाख योजन शेष रहे। चौगुना व्यास अर्थात् २ × ४ = ८ लाख का गुणा करने पर (३ ल × ८ ल) = २४ ल × ल अर्थात् चौबीस हजार करोड़ प्राप्त हुये। इसमें एक लाख के वर्ग (१ल × १ल) = १ल × ल अर्थात् एक हजार करोड़ का भाग देने पर $\left(\frac{\text{२४ ल ल}}{\text{१ ल ल}}\right)$ = २४ खण्ड प्राप्त हो जाते हैं। अथवा ३ ला × ८ ला ÷ १ ला × १ ला ($\frac{२४००००००००००}{१००००००००००}$) = २४ प्राप्त हुये। लवण समुद्र में जम्बूद्वीप सदृश २४ खण्ड प्राप्त होते है। इसी प्रकार धातकी खण्ड आदि में सर्वत्र पूर्वोक्त ५ गाथाओं द्वारा कथित विधानानुसार ही खण्ड करना चाहिये।

अधुनोदधीनां रसविशेषमाह—

लवणं वारुणितियमिदि कालदुगंतिमसयंभुरमणमिदि ।
पत्तेयजलसुवादा अवसेसा होंति इच्छुरसा ॥ ३१९ ॥

लवणं वारुणित्रयमिति कालद्विकमन्तिमस्वयम्भूरमणमिति ।
प्रत्येकजलस्वादा अवशेषा भवन्ति इक्षुरसाः ॥ ३१९ ॥

लवणं । लवणसमुद्रः वारुणीवरक्षीरवरघृतवरा इति प्रथमश्चेति चत्वारः कालोदकपुष्करवरान्तिमस्वयम्भूरमणसमुद्रा इति त्रयश्च यथासंख्येन प्रत्येकजलस्वादवः स्वनामानुगुणस्वादव इत्यर्थः जलस्वादवः । अवशिष्टाः असंख्यातसमुद्रा इक्षुरसस्वादवो भवन्ति ॥ ३१९ ॥

अब समुद्रों के रस विशेष अर्थात् समुद्रों के जल का स्वाद कहते हैं :—

गाथार्थ :—लवण समुद्र और वारुणी वर आदि तीन समुद्रों के जल का स्वाद अपने अपने नाम सदृश है। कालोदक आदि दो और अन्तिम स्वयम्भूरमण (इन तीन) समुद्रों के जल का स्वाद जल सदृश है, तथा अवशेष समुद्रों के जल का स्वाद इक्षु रस के स्वाद सदृश है ॥ ३१९ ॥

विशेषार्थ :—प्रथम लवण समुद्र, चतुर्थ वारुणीवर समुद्र, पाँचवाँ क्षीरवर और छठवाँ घृतवर समुद्र इन चार समुद्रों के जल का स्वाद अपने अपने नाम के अनुसार ही है। कालोदक (दूसरा), तीसरा पुष्करवर और अन्तिम स्वयम्भूरमण इन तीन समुद्रों के जल का स्वाद जल सदृश है, तथा शेष समुद्रों के जल का स्वाद इक्षुरस के सदृश है।

अथ तेषु जीवानां सम्भवासम्भवौ सकारणमाह—

जलयरजीवा लवणे काले यंतिमसयंभुरमणे य ।
कम्ममहीपडिबद्धे ण हि सेसे जलयरा जीवा ॥ ३२० ॥

जलचरजीवा लवणे कालेऽन्तिमस्वयम्भुरमणे च ।
कर्ममहीप्रतिबद्धे न हि शेषे जलचरा जीवाः ॥ ३२० ॥

जलयर । जलचरजीवा लवणसमुद्रे कालोदकसमुद्रे अन्तिमस्वयम्भूरमणसमुद्रे च कर्ममहीप्रतिबद्धत्वात् संति । शेषेषु न हि जलचरा जीवाः ॥ ३२० ॥

समस्त समुद्रों में जलचर जीवों का सम्भव असम्भवपना कारण सहित कहते हैं :—

गाथार्थ :—लवण समुद्र, कालोदक समुद्र और अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्र में जलचर जीव पाये जाते हैं, क्योंकि ये तीन समुद्र कर्मभूमि सम्बन्धी हैं। शेष समुद्रों में जलचर जीव नहीं होते ॥ ३२० ॥

विशेषार्थ :—कर्मभूमि से सम्बन्ध होने के कारण लवण समुद्र, कालोदक समुद्र और अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्र में जलचर जीव पाये जाते हैं। भोग भूमि में जलचर जीव नहीं होते और शेष समुद्र भोगभूमि सम्बन्धी हैं, अतः उनमें जलचर जीव नहीं पाये जाते।

अथ स्थाननिर्देशेन समुद्रत्रयावस्थितमत्स्यानां देहावगाहनमाह —

लवणदुगंतसमुद्दे णदीमुहुवहिम्हि दीह णव दुगुणं ।
दुगुणं पणसय दुगुणं मच्छे वासुदयमद्धकमं ॥ ३२१ ॥

लवणद्विकान्त्यसमुद्रे नदीमुखोदधौ दैर्घ्यं नव द्विगुणं ।
द्विगुणं पञ्चशतं द्विगुणं मत्स्ये व्यासोदयौ अर्धक्रमौ ॥ ३२१ ॥

लवण । लवणद्विके लवणकालोदकयोः अन्त्यसमुद्रे च नदीप्रवेशमुखे उदधौ च समुद्रमध्ये च यथासंख्यं लवणोदके मत्स्यदैर्घ्यं नव ९ यो: तद्द्विगुणं १८ कालोदके तयोर्द्विगुणं १८ । ३६ स्वयम्भूरमणे पञ्चशतं ५०० तद्द्विगुणं १००० मत्स्यव्यासोदयौ तत्तदर्धार्धक्रमौ भवतः ॥ ३२१ ॥

अब स्थान का निर्देश करके तीन समुद्रों में रहने वाले मत्स्यों के शरीर की अवगाहना कहते हैं :—

गाथार्थ :—लवण समुद्र, कालोदक समुद्र और अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्रों के नदी मुख पर और मध्य में मत्स्यों के शरीर की लम्बाई क्रम से नव योजन और द्विगुण अर्थात् अठारह योजन है। अठारह योजन और छत्तीस योजन है, तथा ५०० योजन और हजार योजन है। लम्बाई का अर्ध प्रमाण चौड़ाई (व्यास) और चौड़ाई के अर्धप्रमाण उदय (ऊँचाई) है ॥ ३२१ ॥

विशेषार्थ :—नदी प्रवेश करने वाले समुद्रतट को नदीमुख कहते हैं। लवण समुद्र, कालोदक समुद्र और स्वयंभूरमण समुद्रों में रहने वाले मत्स्यों के शरीर की अवगाहना :—लवणसमुद्र के तट (नदीमुख) पर रहने वाले मत्स्यों के शरीर की लम्बाई ९ योजन (७२ मील), चौड़ाई ४½ योजन (३६ मील), और ऊँचाई २¼ योजन (१८ मील) प्रमाण है, तथा लवण समुद्र के मध्य में रहने वाले मत्स्यों के शरीर की लम्बाई १८ योजन (१४४ मील), चौड़ाई ९ योजन (७२ मील), और ऊँचाई ४½ योजन (३६ मील) है।

कालोदक समुद्र के तट पर रहने वाले मत्स्यों के शरीर की लम्बाई १८ योजन (१४४ मील), चौड़ाई ९ योजन (७२ मील) और ऊँचाई ४½ योजन (३६ मील) है। इसी समुद्र के मध्य में रहने वाले मत्स्यों की लम्बाई ३६ योजन (२८८ मील), चौड़ाई १८ योजन (१४४ मील) और ऊँचाई ९ योजन (७२ मील) है।

स्वयम्भूरमण समुद्र के तट पर रहने वाले मत्स्यों के शरीर की लम्बाई ५०० योजन (४००० मील), चौड़ाई २५० योजन (२००० मील) और ऊँचाई १२५ योजन (१००० मील) है। इसी समुद्र के मध्य में रहने वाले मत्स्यों के शरीर की लम्बाई १००० योजन (८००० मील), चौड़ाई ५०० योजन (४००० मील) और ऊँचाई २५० योजन (२००० मील) है।

साम्प्रतं मनुष्यक्षेत्रेतरविभागस्य कर्मभोगभूमिविभागस्य च सीमानमानयतोः पर्वतयोः स्वरूपं निरूपयन् तद्विभागमेव समर्थयितुं गाथात्रयमाह—

पुक्खरसयंभुरमणाणद्धे उत्तरसयंपहा सेला ।
कुंडलरुचगद्धे वा सव्वं पुव्वं परिक्खित्ता ॥३२२॥

पुष्करस्वयम्भुरमणयोरर्धे उत्तरस्वयंप्रभौ शैलौ ।
कुण्डलरुचकार्धे वा सर्वे पूर्वं परिक्षिप्ता: ॥ ३२२ ॥

पुक्खर । पुष्करार्धे स्वयम्भूरमणार्धे च यथासंख्यं मानुषोत्तरस्वयंप्रभौ शैलौ भवतः कुण्डलरुचकार्धमिव कुण्डलगिरिः रुचकार्धे रुचकगिरिर्यथेत्यर्थः । एते सर्वे पर्वताः पूर्वं स्वस्वाभ्यन्तरद्वीपसमुद्रान् परिक्षिप्य तिष्ठन्ति ॥ ३२२ ॥

अब मनुष्य क्षेत्र और इतर क्षेत्र के विभाग का, कर्मभूमि और भोगभूमि के विभाग का तथा मर्यादा (सीमा) को प्राप्त कराने वाले पर्वतों का स्वरूप निरूपण करते हुए, उन्हीं के विभाग को दृढ करने के लिए तीन गाथाएँ कहते हैं—

गाथार्थ :—जिस प्रकार कुण्डलवर द्वीप के अर्धभाग (मध्य) में कुण्डलगिरि तथा रुचकवर द्वीप के मध्य में रुचकगिरि है, उसी प्रकार पुष्करवरद्वीप के वलयव्यास के बीच में मानुषोत्तर पर्वत है और अन्तिम स्वयम्भूरमण द्वीप के वलयव्यास के अर्धभाग में स्वयम्प्रभ पर्वत है । ये सब पर्वत अपने अपने अभ्यन्तर द्वीप समुद्रों को घेरे हुए हैं ॥ ३२२ ॥

विशेषार्थ :— जिस प्रकार कुण्डलवर द्वीप के अर्धभाग में कुण्डलगिरि और रुचकवर द्वीप के अर्धभाग में रुचकगिरि है, उसी प्रकार पुष्करवरद्वीप के अर्धभाग में मानुषोत्तर पर्वत और स्वयम्भूरमण द्वीप के अर्धभाग में स्वयंप्रभगिरि हैं । ये पर्वत अपने अपने अभ्यन्तरवर्ती सर्व द्वीप समुद्रों को घेरे हुए हैं ।

मणुसुत्तरोत्ति मणुसा मणुसुत्तरलंघसत्तिपरिहीणा ।
परदो सयंपहोत्ति य जहण्णभोगावणीतिरिया ॥ ३२३ ॥

मानुषोत्तरान्तं मनुष्याः मानुषोत्तरलङ्घशक्तिपरिहीनाः ।
परतः स्वयम्प्रभान्तं च जघन्यभोगावनितिर्यञ्चः ॥ ३२३ ॥

मणुसु । मानुषोत्तरपर्वतपर्यन्तं मनुष्याः मानुषोत्तरलङ्घनशक्तिपरिहीणाः । तस्मात् परतः स्वयम्प्रभाचलपर्यन्तं जघन्यभोगावनीतिर्यञ्चो भवन्ति ॥ ३२३ ॥

गाथार्थ :—मानुषोत्तर पर्वत पर्यन्त ही मनुष्य हैं, जो मानुषोत्तर पर्वत को उल्लङ्घन करने की शक्ति से हीन हैं। मानुषोत्तर पर्वत से आगे स्वयंप्रभ पर्वत पर्यन्त जघन्य भोगभूमियाँ तिर्यञ्च रहते हैं ।। ३२३ ।।

विशेषार्थ :—मनुष्यों में मानुषोत्तर पर्वत को उल्लङ्घन करने की शक्ति नहीं है। अतः मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत पर्यन्त ही हैं। मानुषोत्तर पर्वत से आगे स्वयंप्रभ पर्वत पर्यन्त जघन्य भोगभूमि के तिर्यञ्च ही पाये जाते हैं।

कम्मावणिपडिबद्धो बाहिरभागो सयंपहगिरिस्स ।
वरओगाहणजुत्ता तसजीवा होंति तत्थेव ।। ३२४ ।।

कर्मावनिप्रतिबद्धो बाह्यभागः स्वयम्प्रभगिरेः ।
वरावगाहनयुक्ताः त्रसजीवा भवन्ति तत्रैव ।। ३२४ ।।

कम्माव । छायामात्रमेवार्थः ।। ३२४ ।।

गाथार्थ :—स्वयंप्रभ पर्वत का बाह्य भाग कर्मभूमि सम्बन्धी है, और उत्कृष्ट अवगाहना वाले त्रस जीव वहाँ ही होते हैं ।। ३२४ ।।

विशेषार्थ :—असंख्यात द्वीपों में स्वयम्भूरमण अन्तिम द्वीप है, इस द्वीप के वलयव्यास के बीचों बीच एक स्वयंप्रभ नामक पर्वत है। इस पर्वत के बाह्य भाग में कर्मभूमि की रचना है, और उत्कृष्ट अवगाहना वाले त्रस जीव वहीं पाये जाते हैं।

अथैतद्गाथापरार्धोक्तोत्कृष्टावगाहनमेकेन्द्रियावगाहनपुरस्सरमाह—

अधियसहस्सं बारस तिचउत्थेक्कं सहस्सयं पउमे ।
संखे गोम्ही भमरे मच्छे वरदेहदीहो दु ।। ३२५ ।।

अधिकसहस्रं द्वादश त्रिचतुर्थमेकं सहस्रकं पद्मे ।
सङ्खे ग्रैष्मे भ्रमरे मत्स्ये वरदेहदीर्घं तु ।। ३२५ ।।

अधिय । साधिकसहस्रयोजनानि द्वादशयोजनानि योजनत्रिचतुर्थं एकयोजनं सहस्रयोजनं च यथासंख्येन पद्मे, शङ्खे, ग्रैष्मे सहस्रपद्याख्यत्रसविशेषे इत्यर्थः, भ्रमरे, मत्स्ये वरदेहदैर्घ्यं स्यात् ।। ३२५ ।।

उपर्युक्त गाथा के उत्तरार्ध में जो उत्कृष्ट अवगाहना कही है, उसे एकेन्द्रियों की उत्कृष्ट अवगाहना के साथ कहते हैं—

गाथार्थ :—साधिक हजार योजन, बारह योजन, पौन योजन, एक योजन और हजार योजन क्रम से कमल, शङ्ख, ग्रैष्म (चींटी), भ्रमर और महामत्स्य के शरीर की उत्कृष्ट लम्बाई है ॥ ३२५ ॥

विशेषार्थ :—एकेन्द्रियों में कमल के शरीर की उत्कृष्ट लम्बाई कुछ अधिक एक हजार योजन (कुछ अधिक ८००० मील), द्वीन्द्रियों में शङ्ख की उत्कृष्ट लम्बाई १२ योजन (९६ मील), त्रीन्द्रियों में ग्रैष्म (चींटी) की लम्बाई पौन ($\frac{3}{4}$) योजन अर्थात् ३ कोश (६ मील), चतुरिन्द्रियों में भ्रमर के शरीर की लम्बाई १ योजन (८ मील) और पञ्चेन्द्रियों में महामत्स्य के शरीर की उत्कृष्ट लम्बाई १००० योजन (८००० मील) प्रमाण होती है।

अथ तेषामेव व्यासोदयौ कथयति—

वासिगि कमले संख मुहुदओ चउपंचचरणमिह गोम्ही।
वासुदओ दिग्घट्ठमतद्दलमलिए तिपाददलं ॥ ३२६ ॥

व्यास एकं कमले शङ्खे मुखोदयौ चतुःपञ्चचरणं इह ग्रैष्मे।
व्यासोदयौ दीर्घाष्टमतद्दलमलौ त्रिपाददलम् ॥ ३२६ ॥

वासिगि। व्यासः एक योजनं कमलनाले तद्बाहुल्यं समवृत्तत्वात्तावदेव शङ्खे मुखोदयौ चत्वारि योजनानि पञ्च भवन्ति चरणाः चतुर्थांशाः योजनस्य। इह ग्रैष्मे व्यासोदयौ दीर्घात् ($\frac{3}{4}$) तुर्यभागदीर्घषोडशभागौ $\frac{3}{32}$। $\frac{3}{64}$ भ्रमरे व्यासोदयौ त्रयश्चरणा योजनस्य दलं च स्यातामर्धयोजनमित्यर्थः। "वासो तिगुणो परिही" इत्यादिना कमलस्य सर्वक्षेत्रफल ७५० मानयेत् ॥ ३२६ ॥

इन्हीं उपर्युक्त जीवों के शरीर की चौड़ाई और ऊँचाई कहते हैं :—

गाथार्थ :—कमल का व्यास (चौड़ाई) एक योजन, शङ्ख का मुख व्यास और ऊँचाई क्रम से ४ योजन और सवा योजन, ग्रैष्म (चींटी) का व्यास और उदय क्रम से लम्बाई के आठवें भाग और सोलहवें भाग प्रमाण, तथा भ्रमर का व्यास और उदय क्रम से पौन योजन और अर्ध योजन प्रमाण है ॥ ३२६ ॥

विशेषार्थ :—कमलनाल की चौड़ाई १ योजन (८ मील) प्रमाण है, जो समान गोल आकार वाली है, अतः उसका बाहुल्य (मोटाई) भी उतना (१ यो० अर्थात् ८ मील) ही जानना। शङ्ख का मुख व्यास ४ योजन (३२ मील) और ऊँचाई पञ्चचरण अर्थात् सवा ($1\frac{1}{4}$) योजन (१० मील)

है। ग्रैष्म (चींटी) का व्यास, दीर्घता (३/४ यो०) का आठवाँ भाग अर्थात् ३/३२ योजन (३/४ मील), तथा ऊँचाई, दीर्घता का सोलहवाँ भाग अर्थात् ३/६४ योजन (३/८ मील) है। भ्रमर का व्यास त्रिपाद अर्थात् पौन (३/४) योजन (६ मील) तथा ऊँचाई अर्ध (१/२) योजन (४ मील) प्रमाण है।

"वासो तिगुणो परिही" गाथा १७ के नियमानुसार कमल का क्षेत्रफल निम्न प्रकार है :— कमलनाल का व्यास १ योजन है, अतः परिधि (१ × ३) = ३ योजन हुई। इसको व्यास के चतुर्थ (१/४) भाग से गुणित करने पर (३ × १/४) = ३/४ योजन क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इस क्षेत्रफल को कमल की ऊँचाई १००० योजनों से गुणित करने पर (३/४ × १०००) = ७५० योजन कमल का सम्पूर्ण क्षेत्रफल (घनफल) प्राप्त हो जाता है। अर्थात् कमल का क्षेत्रफल ७५० योजन है।

अथ वासनारूपेण शङ्खस्य मुरजक्षेत्रफलमानयति—

आयामकदी मुहदलहीणा मुहवास अद्धवग्गजुदा।
बिगुणा वेहेण हदा संखावत्तस्स खेत्तफलं ॥ ३२७ ॥

आयामकृतिः मुखदलहीना मुखव्यास अर्धवर्गयुता।
द्विगुणा वेधेन हता सङ्खावर्तस्य क्षेत्रफलं ॥ ३२७ ॥

आयाम। एतावन्मुख १२ मुखव्यासे ४ शङ्खे एतावन्मात्रे क्षेत्रे निक्षिप्ते सम्पूर्णमुरजाकारो भवति। मुखायामसमासार्धं (४ + १२)/२ मध्यफलमिति कृते एवं भवति। खण्डद्वये कृते एवं। अत्रैकखण्डस्य क्षेत्रफलमानीयते। खण्डितस्याविशमर्धं मूर्णं [८/२]² भवति। "विक्खंभवग्गदहगुणकरणी वट्टस्स परिरयो होदि" इत्यनेन एकखण्डस्य मुख ४ भूम्यो ८ वर्गमूलमग्रे क्षेत्रखण्डनानुगुणेन गृहीत्वा १२ ४/७। २५ १/७ मुखमूलशेषे ४/२५ षड्भिरपवर्तिते ४/६ भूमिमूलशेषे ३/२५ षोडशभिरपवर्तिते ३/५ तयोः सूक्ष्मपरिधी स्याताम्। इदं क्षेत्रबाहुल्यं ८ मध्य ४ पर्यन्तं खण्डयित्वा प्रसारिते परिधिप्रमाणेन तिष्ठति। तत् क्षेत्रं पुनः मुख ० भूमि ४ समासार्धं मध्यफलमिति वेधरूपमध्यफलं साधयित्वा तत्रत्योभयपार्श्वस्थितक्षेत्रं गृहीत्वा चतुरस्ररूपेण रचिते एवं [८/२]²। तत्र खातपूरणार्थं कोणद्वयस्थितयोरेकैकरूपं गृहीत्वा शून्यस्थाने निक्षिप्तेऽपि सम्पूर्णं न भवतीति एतावति क्षेत्रे [८/२]² निक्षिप्ते सम्पूर्णं भवति [३/१ ३/४]² ।

पार्श्वद्वयवर्तित्रिकोणक्षेत्ररहितशेषचतुरस्रक्षेत्रं एकस्योपरि एकस्मिन् विपर्यासरूपेण निक्षिप्ते एवं। तस्योपरि पूर्वमानीते क्षेत्रे निक्षिप्ते एवं। अत्रस्यतृतीयांशं पृथक् स्थापयित्वा त्रिधा खण्डिते सत्येवं। अस्मिन् खण्डत्रये एकमुजरूपेण रचिते सत्येवं। तदपि तिर्यग्रूपेण वलयित्वा पार्श्वे संस्थाप्य रचिते एवं। ते पुनरपि तिर्यग्रूपेण वलयित्वा पृथक् स्थापिते क्षेत्रद्वये एवं। अत्रैकक्षेत्रं द्वितीयमध्येन

समानमिति लक्ष्यं ज्ञातव्यं। त्रिभागरहितमुहक्षेत्रं तिर्यग्रूपेण दलयित्वा पार्श्वे संस्थाप्य सन्धिते एवं। तदपि पुनस्तिर्यग्रूपेण दलयित्वा ऊर्ध्वभागे ६ सन्धिते सत्येवं। एवं समभुजकोटी सत्यां आयामकर्णेत्युक्तं तथायामकृतौ १४४ वेधस्य $\frac{४}{६}$ वेधं $\frac{४}{६}$ दर्शयित्वा चतुरस्रक्षेत्रकरणं ६ मध्ये लोपयते इति हेतोः मुहदलहीनेत्युक्तं। अत्र मुखदलसमस्थानहीनराशौ १४२ स्थानाय दत्वा अवशिष्टक्षेत्रफल ४ वेधसमं दर्शयित्वा अधुना संयुज्यत इति कृत्वा "मुहवास अद्धवग्गजुदा" इत्युक्तं। तत्र मुखव्यासार्धवर्गयुक्तराशिः १४६ एक मुरजखण्डस्यैतावति १४६ द्वयोस्तथा खण्डयोः किमित्यागतेन गुणकारद्वयेन गुण्यत इति दृष्ट्वा "विगुणा" इत्युक्तं। एष द्विहतराशिः २९२ वेधेन चतुर्भिरपवर्तितेन ७३।५ हन्यत इति "वेहेण हदा" इत्युक्तं। एतच्छङ्खावर्तक्षेत्रफलं ३६५ भवति। श्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियपञ्चेन्द्रियाणां खातफलं "भुजकोडि वधा" विद्यांविना नेतव्यं। एकेन्द्रियादिखातफलानां घनाङ्गुलप्रदेशस्वजापनार्थमिदमुच्यते। तत्रायदपं त्रीन्द्रियखातफलं $\frac{८७६८}{१६}$ एकयोजनस्यैतावत्स्वङ्गुलेषु ७६८००० एतावतः $\frac{८७६८}{१६}$ किमिति सम्पाद्य घनरूपराशित्वात्तद्गुणकारमपि घनरूपेणैव संस्थाप्यांगुलं कृत्वा $\frac{८७६८}{१६}$। ७६८०००। ७६८०००। ७६८००० तथैवैकांगुलस्य सूच्यङ्गुलप्रदेशे एतावदंगुलानां किमिति सम्पातेन सूच्यंगुलं कृत्वा सूच्यंगुलस्य प्रमाणांगुलत्वात् व्यवहाररूपप्राक्तनांगुलानां $\frac{८७६८}{१६}$। ७६८०००। ७६८०००। ७६८००० प्रमाणांगुलकरणार्थं पञ्चशत ५०० व्यवहारांगुलानामेकस्मिन् प्रमाणांगुले एतावद्व्यवहारांगुलानां $\frac{८७६८}{१६}$ ७६८०००। ७६८०००। ७६८००० किमिति सम्पातं कृत्वा पञ्चशतगतषट्शून्यानि अंगुलगतषट्शून्यैरपवर्त्य तदंगुलानि $\frac{७६८}{५}$ त्रिभिः सम्मेल्य $\frac{३६८}{५}$।३ पणट्ठि नव च कृत्वा तत्खातफलहारेण ८१९२ पणट्ठिमपवर्त्य ८ पञ्चघनेन १२५ अवशिष्टांगुले ७६८००० अपवर्तिते एवं ६१४४ एषां २७।८। ६१४४।९ परस्परगुणने घनाङ्गुलस्य ६ गुणकारो भवति। अस्य गुणकारं सर्वं एकसंख्यातं कृतवन्तः ६ a। एवं चतुरिन्द्रियखातफलस्य कर्तव्यं। तत्रैतावता ६१४४ सह तत्रस्य ८ भागहारे अष्टभिरपवर्तिते एवं ७६८ एव गुणकारः ६५५३६।७६८।९।३ त्रीन्द्रियगुणकारात्संख्याताधिकमितिघनांगुलस्य संख्यातद्वयं गुणकारं कृतवन्तः ६ aa। एवं द्वीन्द्रियस्य संख्यातत्रयं एकेन्द्रियस्य संख्यातचतुष्टयं, पञ्चेन्द्रियस्य संख्यातपञ्चकं घनांगुलस्य गुणकारं कृतवन्तः॥ ३२७॥

अब वासना रूप से शंख का मुरज क्षेत्रफल निकालते हैं:—

गाथार्थ:—लम्बाई के वर्ग में से मुख व्यास का अर्ध प्रमाण घटा देने पर जो अवशेष रहे उसमें अर्धमुखव्यास के वर्ग का प्रमाण मिला देना चाहिये, जो लब्ध प्राप्त हो उसे द्विगुणित कर वेध से गुणित करने पर शंखावर्तक्षेत्र के क्षेत्रफल का प्रमाण प्राप्त होता है॥ ३२७॥

नोट:—आकृतियों के मध्य में जो संख्या लिखी जा रही है वह उन आकृतियों की मोटाई, वेध या खात की सूचक है।

विशेषार्थ :—(असंख्यात द्वीप समुद्रों के अन्त में स्वयम्भूरमण समुद्र है, जिसमें उत्कृष्ट अवगाहना वाला शंख है) वह शंख

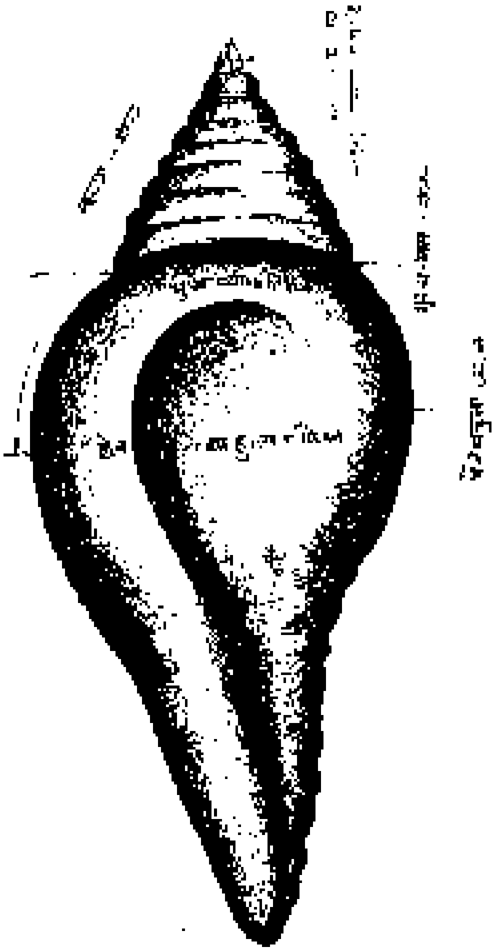

१२ योजन लम्बा है, तथा उसके वृत्ताकार मुख का व्यास ४ योजन है। वह शंख पूर्ण मुरजाकार नहीं है, अतः उसमें [५/४]² ऋण निक्षेपण करना चाहिये, जिससे वह पूर्ण मुरजाकार हो जाता है। मुख ४ और आयाम १२ को जोड़ (४ + १२ = १६) कर आधा (१६ × ½) करने से ८ योजन (मध्य व्यास) प्राप्त होता है। इस मुरजाकार शंख के मध्य में से दो खण्ड करने चाहिए। इन दो खण्डों में से एक खण्ड को ग्रहण कर क्षेत्रफल प्राप्त किया जाता है।

मुरजाकार शंख के मध्य में से उपर्युक्त दो खण्ड करने पर उपर्युक्त ऋण [५/४]² की प्रत्येक खंड में आधा [५/४]² हो जाता है। (प्रत्येक खण्ड का मुख व भूमि गोलाकार है)। एक खण्ड के मुख का व्यास ४ योजन और भूमि व्यास ८ योजन है। गाथा १७ के अनुसार मुखव्यास ४ योजन के वर्ग (४ × ४) = १६ योजन को और भूमि व्यास ८ योजन के वर्ग (८ × ८) = ६४ योजन को १० गुणा करने पर १६ × १० = १६० योजन और ६४ × १० = ६४० योजन प्राप्त होते हैं। क्षेत्रगुणानुखण्ड द्वारा वर्गमूल

प्राप्त करने पर मुख की परिधि १२$\frac{३}{८}$ और भूमि की परिधि २४$\frac{५}{६}$ योजन होती है। मुख के वर्गमूल में से शेष $\frac{२}{३}$ को ८ से अपवर्तित करने पर $\frac{३}{४}$ प्राप्त होता है इसी प्रकार भूमि वर्गमूल के अवशिष्ट भाग $\frac{३}{६}$ को १६ से अपवर्तित करने पर $\frac{५}{६}$ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार मुख की सूक्ष्मपरिधि का प्रमाण १२$\frac{३}{४}$ योजन और भूमि की सूक्ष्म परिधि का प्रमाण २४$\frac{५}{६}$ योजन होता है। यहाँ पर क्षेत्र बाहुल्य ८ को मध्य ४ तक चीरकर फैलाने से परिधि प्रमाण क्षेत्र 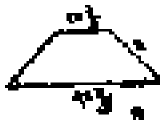 इस प्रकार प्राप्त हो जाता है (इस क्षेत्र के कोनों पर वेध ० है, किन्तु वह क्रम से वृद्धिङ्गत होते हुये मध्य में ४ योजन हो जाता है)। वेध के मुख ० को और भूमि ४ योजन को जोड़कर (०+४=४) आधा करने पर (४×$\frac{१}{२}$) वेध का मध्यफल २ योजन प्राप्त होता है। उस वेध को प्रगट करने के लिये मुख को दो खण्डों में विभाजित करने पर अ, ब, स और द नाम के चार खण्ड हो जाते हैं। इस क्षेत्र के दोनों पार्श्व भागों में स्थित अ और द त्रिकोण क्षेत्रों को इस प्रकार स्थापित करना चाहिये जिससे च, छ, झ और ज नाम के एक चतुर्भुज 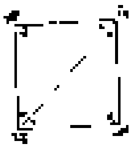 क्षेत्र की प्राप्ति हो जाय (इस चतुर्भुज क्षेत्र के च और ज क्षेत्रों के कोणों का वेध २, २ योजन तथा छ और झ क्षेत्रों के कोणों पर वेध का प्रमाण ० है)। खात पूर्ण करने के लिये च और छ क्षेत्रों के कोनों में स्थित २, २ योजन क्षेत्र में से यदि एक एक योजन ग्रहण कर शून्य स्थान च, झ क्षेत्रों पर निक्षिप्त कर दिया जाय तो भी खात (हीन स्थान) पूर्ण नहीं होता अर्थात् वेध सर्वत्र एक एक योजन नहीं होता। उस हीन स्थान को पूर्ण करने के लिये इतना ऋण $[\frac{१}{२}]^२$ निक्षेपण करना चाहिये, इसे निक्षेपण करने से खात पूर्ण हो जाता है। अर्थात् च, छ, ज और झ इन चारों कोणों का वेध सर्वत्र एक एक योजन 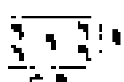 हो जाता है। दोनों पार्श्ववर्ती अ और द त्रिकोण क्षेत्रों से रहित शेष चतुर्भुज क्षेत्र ब और स को विपर्यास रूप से एक (ब) के ऊपर दूसरे (स) को स्थापित करने से य र ल और व नाम का 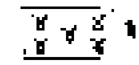

एक क्षेत्र प्राप्त हो जाता है (य कोण पर ब क्षेत्र का मुख वेध ० और स क्षेत्र का भूमि वेध मिलाने से (०+४=) ४ योजन हो जाता है। र कोण पर ब क्षेत्र का मुख वेध २ तथा स क्षेत्र का भूमि वेध २ मिलाकर (२+२)=४ हो जाता है। ल कोण पर ब क्षेत्र का भूमि वेध ४ और स क्षेत्र का मुख वेध ० मिलकर (४+०)=४ हो जाता है। व कोण पर ब क्षेत्र का भूमि वेध २ तथा स क्षेत्र का मुख वेध २ मिलकर (२+२)=४

हो जाता है। इस प्रकार य र ल और व क्षेत्रों में सर्वत्र वेध ४ योजन प्राप्त करने के लिये व क्षेत्र पर स क्षेत्र को विपर्यास रूप से रखा है]। इस य र ल और व क्षेत्र के ऊपर पूर्व प्राप्त क्षेत्र च छ ज और झ को स्थापित कर देने से [५ ५ ५ / ६$\frac{1}{3}$]¹ यह क्षेत्र प्राप्त हो जाता है। (क्षेत्र य र ल व का सर्वत्र वेध ४ था और क्षेत्र च छ ज झ का सर्वत्र वेध १ था। एक क्षेत्र पर दूसरे क्षेत्र को स्थापित कर देने से सर्वत्र वेध (४+१)=५ हो जाता है।) इस क्षेत्र की भुजा ६$\frac{1}{3}$ योजन में से तृतीय अंश $\frac{1}{3}$ को [५ / $\frac{1}{3}$]¹ पृथक् स्थापित करने से शेष क्षेत्र [५ / ६]¹ रह जाता है। पृथक् किये हुये तृतीय अंश [५ / $\frac{1}{3}$]¹ के तीन खण्ड

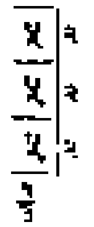

करना चाहिये। इन तीनों खण्डों को एक भुज स्वरूप

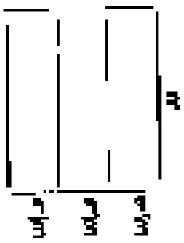

स्थापित करने से [५ / १]² (भुजा $\frac{1}{3}+\frac{1}{3}+\frac{1}{3}$=१ योजन, कोटि २ योजन और वेध ५ योजन वाला) इस क्षेत्र की प्राप्ति होती है। इस क्षेत्र [५ / १]² को तिर्यग्रूप अर्थात् मोटाई में से आधा आधा कर पास पास स्थापित करने पर इस प्रकार के क्षेत्र [$\frac{5}{2}$ | $\frac{5}{2}$ / २]² की प्राप्ति होती है। (इस क्षेत्र का वेध (५ का आधा) $\frac{5}{2}$ और भुजा १+१=२ योजन हो गई किन्तु कोटि २ योजन ही रही।) उपर्युक्त क्षेत्र [$\frac{5}{2}$ / २]² को पुनः तिर्यग् रूप अर्थात् मोटाई ($\frac{5}{2}$) में से आधा कर पृथक् पृथक् स्थापित करने पर 'प' 'फ' नाम के दो क्षेत्र

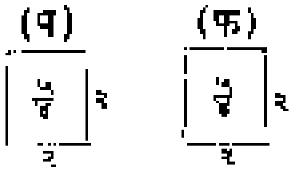

बन जाते हैं। (जिनमें से प्रत्येक का वेध $\frac{5}{2}$ योजन का आधा $\frac{5}{4}$ योजन और भुजा एवं कोटि पूर्ववत् दो दो योजन है)। इनमें से प क्षेत्र [$\frac{5}{4}$ / २]² दूसरे ऋण [$\frac{5}{4}$ / २]¹ के बराबर है, अतः एक क्षेत्र द्वितीय ऋण को दे देना चाहिये।

त्रिभाग ($\frac{1}{3}$ यो०) रहित जो बड़ा क्षेत्र [५ ५ ५ / ६]¹ है, उसको तिर्यग् रूप अर्थात् मोटाई (५) में से आधा ($\frac{5}{2}$) करके पास पास

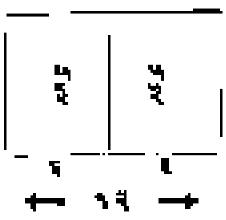

रखना चाहिये। इनमें से [$\frac{5}{2}$ / १२]¹ क्षेत्र को फिर भी

तिर्यग् रूप अर्थात् मोटाई ($\frac{5}{4}$ यो०) में से आधा ($\frac{5}{8}$ यो०) कर ऊर्ध्व रूप से जोड़ने पर एक

समचतुरस्र क्षेत्र की प्राप्ति होती है [जिसका वेध $\frac{5}{4}$ यो० तथा भुज व कोटि दोनों बारह बारह योजन अर्थात् समान हो जाती है। अथवा शंख के आयाम १२ योजन के समान भुज व कोटि हो जाती है। इस १२ भुज और १२ कोटि का परस्पर में गुणा करने से एक खण्ड का क्षेत्र (१२×१२) =१४४ वर्ग योजन प्राप्त होता है। शंख के आयाम १२ की कदी अर्थात् वर्ग भी (१२×१२) =१४४ वर्ग योजन होता है]। इस समचतुरस्र क्षेत्र की भुजा १२ योजन और कोटि भी १२ योजन है। अर्थात् भुज कोटि आयाम के बराबर हो जाने के कारण ही गाथा में 'आयाम कदी' ऐसा कहा गया है। यहाँ आयाम का वर्ग १२×१२=१४४ वर्ग योजन है। "वेधस्य" अर्थात् प्रथम अर्ध ऋण का वेध $\frac{5}{4}$ है तथा समचतुरस्रक्षेत्र का वेध भी $\frac{5}{4}$ है. इस प्रकार दोनों का वेध समान देख कर समचतुरस्रक्षेत्र के क्षेत्रफल में से प्रथम अर्धऋण के क्षेत्रफल (२×१) २ को घटाने के लिये गाथा में "मुहदलहीना" अर्थात् मुख ४ के आधे २ को कम करने के लिये कहा गया है। समचतुरस्र क्षेत्र के क्षेत्रफल १४४ में से मुखार्ध के बराबर ऋण राशि २ को कम करने पर (१४४—२)=१४२ प्राप्त होते है।

द्वितीय ऋण में प क्षेत्र देने के पश्चात् फ क्षेत्र $[\frac{4}{2}]^2$ बचता है, जिसका क्षेत्रफल (२×२)=४ वर्ग योजन होता है। इस फ क्षेत्र का वेध $\frac{5}{4}$ है और समचतुरस्र बड़े क्षेत्र का वेध भी $\frac{5}{4}$ है, इस प्रकार समान वेध देखकर १४२ में ४ जोड़ने के लिये गाथा में "मुहवासद्धवग्गजुदा" कहा गया है। अर्थात् मुखव्यास ४ का आधा २ और २ का वर्ग (२×२)=४ जोड़ने को कहा गया है। मुखव्यासार्ध २ का वर्ग ४ जोड़ने पर (१४२+४)=१४६ वर्ग योजन हो जाते हैं। जबकि एक मुरजखण्ड का क्षेत्रफल १४६ वर्ग योजन है तब दोनों खण्डों का कितना होगा ? यहाँ गुणकार दो है। अर्थात् दो से गुणा करने के लिये ही गाथा में 'विगुणा' कहा गया है। दो से गुणा करने पर (१४६×२=) २९२ वर्ग योजन प्राप्त होते हैं। इन २९२ को वेध $\frac{5}{4}$ के हर (४) से अपवर्तित करने पर ७३ आते हैं और ७३ को वेध के अंश ५ से गुणित करने पर (७३×५=) ३६५ घन योजन प्राप्त होते हैं, अतः गाथा में "वेहेणहदा" अर्थात् वेध से गुणा करना चाहिये ऐसा कहा गया है। इस प्रकार शंखावर्त सर्व क्षेत्रफल (घनफल) ३६५ घन योजन प्राप्त होता है।

त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना का घनफल भुजकोटि को गुणित कर प्राप्त कर लेना चाहिये। एकेन्द्रिय आदि जीवों के (शरीरों के) घनफलों के

अल्पबहुप्रदेशों का कथन किया जाता है। यहाँ त्रीन्द्रिय का घनफल $\frac{२७ \text{ घन योजन}}{८१९२}$ है जो सबसे अल्प है।

जबकि एक योजन के ७६८००० अंगुल होते हैं तब $\frac{२७ \text{ घन यो०}}{८१९२}$ के कितने अंगुल होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करना चाहिये। "घनरूप राशि का गुणकार एवं भागहार घनरूप ही होता है" इस न्यायानुसार $\frac{२७ \text{ घन यो०}}{८१९२}$ के $\frac{२७}{८१९२} \times ७६८००० \times ७६८००० \times ७६८०००$ घनांगुल होते हैं। शरीरों की अवगाहना का माप व्यवहार अंगुलों से होता है और ५०० व्यवहारांगुलों का एक प्रमाणांगुल होता है, अतः $\frac{२७}{८१९२} \times ७६८००० \times ७६८००० \times ७६८०००$ को ५०० के घन से भाजित करने पर $\frac{२७}{८१९२} \times \frac{७६८०००}{५००} \times \frac{७६८०००}{५००} \times \frac{७६८०००}{५००}$ प्राप्त होते हैं। इसमें भागाहार के ६ शून्यों को अंश के ६ शून्यों से अपवर्तित कर देने पर $\frac{२७ \times ७६८००० \times ७६८ \times ७६८}{८१९२ \times ५ \times ५ \times ५}$ प्राप्त होते हैं। अंश के ७६८ × ७६८ को ३ से खण्डित करने पर २५६ × ३ × २५६ × ३ अर्थात् ६५५३६ × ९ प्राप्त होते हैं। ८१९२ से ६५५३६ को अपवर्तित करने पर ८ और ५ × ५ × ५ = १२५ से ७६८००० को अपवर्तित करने पर ६१४४ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार अंश संख्या २७ × ६१४४ × ८ × ९ प्राप्त हो जाती है। इनका परस्पर में गुणा करने से संख्यात घनांगुल (६) प्राप्त होते हैं। यहाँ पर घनांगुल का चिह्न ६ है और संख्यात का चिह्न a यह है, अतः त्रीन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट अवगाहना का घनफल a ६ होता है।

इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय के खात (घन) फल के अंगुल प्राप्त करना चाहिये। चतुरिन्द्रिय का घनफल $\frac{३ \text{ घन योजन}}{८}$ है। इस $\frac{३ \text{ घन यो०}}{८}$ को उपर्युक्त विधानानुसार ६१४४ × ६५५३६ × ९ से गुणा करने पर व्यवहार अंगुल प्राप्त होते हैं। हर के ८ से ६१४४ को अपवर्तित करने पर ७६८ आते हैं, अतः चतुरिन्द्रिय जीव का घनफल ६५५३६ × ७६८ × ९ × ३ व्यवहारांगुल प्राप्त होता है। यह त्रीन्द्रिय की संख्या से संख्यात गुणी है, अतः इसका चिह्न ६ a a करना चाहिये। द्वीन्द्रियों के घनफल की अंगुल संख्या चतुरिन्द्रिय से संख्यात गुणी है, अतः उसका चिन्ह ६ a a a यह है। एकेन्द्रिय के घनफल की अंगुल संख्या द्वीन्द्रिय से संख्यातगुणी है, अतः उसका चिह्न ६ a a a a यह है। पंचेन्द्रिय के घनफल की अंगुल संख्या एकेन्द्रिय से संख्यात गुणी है अतः उसका चिन्ह ६ a a a a a है। इस प्रकार चिन्हों द्वारा प्रदेश अल्पबहुत्व प्राप्त हो जाता है।

एवमुत्कृष्टावगाहप्रसंगे एकेन्द्रियादीनां पृथिव्यादिविशेषणविशिष्टानामुत्कृष्टजघन्यस्थितिप्रतिपादनार्थं गाथात्रयमाह—

सुद्धखरभूजलाणं बारस बावीस सत्त य सहस्सा ।
तेउतिए दिवसतियं सहस्सतियं दस य जेट्ठाओ ॥३२८॥

शुद्धखरभूजलानां द्वादश द्वाविंशतिः सप्त च सहस्राणि ।
तेजस्त्रये दिवसत्रयं सहस्रत्रयं दश च ज्येष्ठम् ॥ ३२८ ॥

सुद्ध । शुद्धखरभूजलानामायुर्ज्येष्ठं यथासंख्यं द्वादशवर्षसहस्राणि । द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि सप्तवर्षसहस्राणि । तेजस्त्रये तेजोवातवनस्पतिकायिके यथासंख्यं दिवसत्रयं सहस्रवर्षत्रयं दशवर्षसहस्राणि ज्येष्ठमायुः ॥ ३२८ ॥

इसी उत्कृष्ट अवगाहना के प्रसङ्ग में पृथ्वी आदिक विशेषणों से विशिष्ट एकेन्द्रियादि जीवों की जघन्योत्कृष्ट स्थिति का प्रतिपादन करने के लिये तीन गाथाएँ कहते हैं।—

गाथार्थ :— शुद्ध पृथ्वी, खर पृथ्वी और जल इनकी उत्कृष्टायु क्रम से बारह हजार, बावीस हजार और सात हजार वर्ष है, तथा तेजस्कायिक आदि तीन (तेज०, वायु और वनस्पति०) की उत्कृष्ट आयु क्रम से तीन दिन, तीन हजार वर्ष और दश हजार वर्ष है ॥ ३२८ ॥

विशेषार्थ :— पृथ्वी के मूल में दो भेद होते हैं, (१) शुद्ध पृथ्वी (२) खर पृथ्वी । शुद्ध पृथ्वी की उत्कृष्टायु १२ हजार वर्ष, खर पृथ्वी की बाईस हजार वर्ष, जलकायिक जीवों की ७ हजार वर्ष, तेजस्कायिक जीवों की तीन दिन, वायुकायिकों की तीन हजार वर्ष और वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्टायु दश हजार वर्ष प्रमाण है।

वासदिणमास बारसहुगुवण्णं छक्क वियलजेट्ठाओ ।
मच्छाण पुव्वकोडी णव पुव्वंगा सरिसपाणं ॥ ३२९ ॥

बावत्तरि बादालं सहस्समाणाहि पक्खिउरगाणं ।
अंतोमुहुत्तमवरं कम्ममहीणरतिरिक्खाऊ ॥ ३३० ॥

वर्षदिनमासाः द्वादशैकोनपञ्चाशत् षट्काः विकलज्येष्ठम् ।
मत्स्यानां पूर्वकोटिः नव पूर्वाङ्गानि सरीसृपाणाम् ॥ ३२९ ॥

द्वासप्ततिः द्वाचत्वारिंशत् सहस्रमानानि पक्ष्युरगाणाम् ।
अन्तर्मुहूर्तमवरं कर्ममहीनरतिरश्चामायुः ॥ ३३० ॥

वास । वर्षदिनमासाः द्वादश १२ एकोनपञ्चाशत् ४९ षट्काः ६ विकलेन्द्रियाणां यथासंख्यं ज्येष्ठमायुः मात्स्यादीनां पूर्वकोटिः नवपूर्वाङ्गानि नवगुणितचतुरशीति लक्षवर्षाणीत्यर्थः सरी-**सृपाणाम् ॥ ३२९ ॥**

बावत्तरि । द्वासप्ततिः द्वाचत्वारिंशत्सहस्रप्रमितानि पक्षिणामुरगाणां च अन्तर्मुहूर्तमवरमायुः शुद्धभुवादीनां सर्वेषां कर्ममहीनरतिरश्चाम् ॥ ३३० ॥

गाथार्थ :—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्टायु क्रम से बारह वर्ष, ४९ दिन और छह मास प्रमाण है, तथा मत्स्य की उत्कृष्टायु पूर्वकोटि प्रमाण और सरीसृपों की उत्कृष्टायु नवपूर्वाङ्ग प्रमाण होती है।

पक्षियों और सर्पों की उत्कृष्टायु क्रम से बहत्तर हजार और बयालिस हजार वर्ष प्रमाण तथा कर्मभूमि के सर्व तिर्यञ्च और मनुष्यों की जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है ॥ ३२९, ३३० ॥

विशेषार्थ :—द्वीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्टायु १२ वर्ष, त्रीन्द्रियों की ४९ दिन चतुरिन्द्रियों की ६ माह, मत्स्य की पूर्वकोटि और सरीसृपों की नवपूर्वाङ्ग प्रमाण होती है। (८४ लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग तथा ८४ लाख पूर्वाङ्गों का एक पूर्व होता है)। ८४ लाख वर्षों में ९ का गुणा करने से ९ पूर्वाङ्ग होते हैं, तथा ८४ लाख वर्षों के वर्ग (८४ लाख × ८४ लाख) को एक करोड़ से गुणित करने पर एक पूर्वकोटि होती है। पक्षियों की ७२ हजार वर्ष और सर्पों की ४२ हजार वर्ष प्रमाण उत्कृष्ट आयु होती है। शुद्ध पृथ्वी आदिक को आदि लेकर कर्मभूमिज सर्व मनुष्यों और तिर्यञ्चों की जघन्यायु अन्तर्मुहूर्त मात्र होती है।

अथ प्रागायुष्यं निरूप्येदानीं तेषामेव वेदगतविशेषं निरूपयति—

णिरया इगिविगला संमुच्छणपंचक्खा होंति संढा हु ।
भोगसुरा संढूणा तिवेदगा गब्भणरतिरिया ॥ ३३१ ॥

निरया एकविकलाः सम्मूर्च्छनपञ्चाक्षाः भवन्ति षण्ढाः खलु ।
भोगसुराः षण्ढोनाः त्रिवेदगाः गर्भनरतिर्यञ्चः ॥ ३३१ ॥

णिरया । नारका एकेन्द्रियाः विकलत्रयाः सम्मूर्च्छनपञ्चेन्द्रियाश्च भवन्ति षण्ढा खलु । भोगभूमिजाः सुराश्च षण्ढवेदोनाः । त्रिवेदगा गर्भजनरतिर्यञ्चः ॥ ३३१ ॥

पहिले जिनकी आयु का निरूपण किया है, अब उन्हीं के वेद विशेष का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—नारकी, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सम्मूर्च्छनपंचेन्द्रिय ये सर्व जीव नपुंसक ही होते हैं। भोगभूमिज एवं देव ये नपुंसकवेदी नहीं होते। गर्भज मनुष्य और तिर्यञ्च तीनों वेद वाले होते हैं ॥ ३३१ ॥

विशेषार्थ :—नारकी, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रियसम्मूर्च्छन ये सब नपुंसक वेदी ही होते हैं, भोगभूमिज तिर्यञ्च और मनुष्य तथा देव स्त्री और पुरुष वेदी ही होते हैं नपुंसक वेदी नहीं होते, तथा कर्मभूमिज, गर्भज, मनुष्य और तिर्यञ्च तीनों वेद वाले होते हैं।

एवं प्रासङ्गिकानुषङ्गिकार्थं प्रतिपाद्येदानीं प्रकृतार्थं तारादिस्थितिस्थानं गाथात्रयेण निदिशति :—

णउदुत्तरसत्तसए दस सीदी चदुदुगे तियचउक्के ।
तारिणससिरिक्खबुहा सुक्कगुरुंगारमंदगदी ॥ ३३२ ॥

नवत्युत्तरसप्तशतानि दश अशीतिः चतुर्द्विके त्रिकचतुष्के ।
तारेनशशिऋक्षबुधाः शुक्रगुर्वङ्गारमन्दगतयः ॥ ३३२ ॥

णउदु। चित्रातः आरभ्य नवत्युत्तरसप्तशतयोजनानि, तत उपरि दशयोजनानि, ततः अशीतियोजनानि, ततश्चत्वारि चत्वारि योजनानि द्विस्थाने, ततस्त्रीणि त्रीणि योजनानि चतुः स्थाने गत्वा यथासंख्येन ताराः इनाः शशिनः ऋक्षाणि बुधाः शुक्राः गुरवः अङ्गाराः मन्दगतयश्च तिष्ठन्ति ॥ ३३२ ॥

प्रासङ्गिक प्रसङ्ग रूप अर्थ का प्रतिपादन करके अब प्रकृत ज्योतिर्लोकाधिकार में तारादिकों के स्थान का निर्देश तीन गाथाओं द्वारा करते हैं :—

गाथार्थ :—[चित्रा पृथ्वी से] सात सौ नब्बे योजन ऊपर, इससे दश, अस्सी दो बार चार अर्थात् चार, चार और चार बार तीन योजन अर्थात् तीन, तीन, तीन और तीन योजन ऊपर क्रम से तारा, सूर्य, चन्द्र, ऋक्ष, (नक्षत्र) बुध, शुक्र, गुरु, अंगारक (मंगल) और मन्दगति (शनिश्चर) स्थित हैं ॥ ३३२ ॥

विशेषार्थ :—चित्रा पृथ्वी से ज्योतिर्बिम्बों की ऊंचाई निम्नलिखित प्रकार से है :—

[चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिये]

क्रम	ज्योतिर्बिम्बों के नाम	चित्रापृथ्वी से योजनों में ऊँचाई	मीलों में ऊँचाई
१	तारागण	चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन ऊपर स्थित हैं।	३१६०००० मील ऊपर
२	सूर्य	७९० + १० = ८०० योजन ऊपर स्थित हैं।	३२००००० " "
३	चन्द्र	८०० + ८० = ८८० योजन ऊपर स्थित हैं।	३५२०००० " "
४	ऋक्ष (नक्षत्र)	८८० + ४ = ८८४ योजन ऊपर स्थित हैं।	३५३६००० " "
५	बुध	८८४ + ४ = ८८८ योजन ऊपर स्थित हैं।	३५५२००० " "
६	शुक्र	८८८ + ३ = ८९१ योजन ऊपर स्थित हैं।	३५६४००० " "
७	गुरु	८९१ + ३ = ८९४ योजन ऊपर स्थित हैं।	३५७६००० " "
८	अङ्गारक (मंगल)	८९४ + ३ = ८९७ योजन ऊपर स्थित हैं।	३५८८००० " "
९	मन्दगति (शनि)	८९७ + ३ = ९०० योजन ऊपर स्थित हैं।	३६००००० " "

इस प्रकार ज्योतिषी देवों की ऊँचाई (१० + ८० + ४ + ४ + ३ + ३ + ३ + ३) ११० योजन (४४०००० मील) मात्र है। अर्थात् सम्पूर्ण ज्योतिषीदेव पृथ्वी तल से ७९० योजन (३१६०००० मील) की ऊँचाई से प्रारम्भ कर ९०० योजन (३६००००० मील) की ऊँचाई तक स्थित हैं।

अवसेसाण गहाणं णयरीओ उवरि चित्तभूमीदो ।
गंतूण बुहसणीणं विच्चाले होंति णिच्चाओ ॥ ३३३ ॥

अवशेषाणां ग्रहाणां नगर्य उपरि चित्राभूमितः ।
गत्वा बुधशन्योः विच्चाले भवन्ति नित्याः ॥ ३३३ ॥

अवसेसा । अवशिष्टानां ग्रहाणां ८३ नगर्यः उपरि चित्राभूमितो गत्वा बुधशनैश्चरयोर्विच्चाले अन्तराले भवन्ति नित्याः ॥ ३३३ ॥

गाथार्थ :— चित्रा पृथ्वी से ऊपर जाकर बुध और शनिश्चर के अन्तराल में अवशिष्ट ८३ ग्रहों की नित्य नगरियाँ अवस्थित हैं॥ ३३३ ॥

विशेषार्थ :— चित्रा पृथ्वी से ऊपर जाकर बुध और शनिश्चर ग्रहों के अन्तराल अर्थात् ८८८ योजन और ९०० योजन के बीच में अवशेष ८३ ग्रहों की ८३ नगरियाँ नित्य-अवस्थित हैं।

सम्पूर्ण ग्रह ८८ हैं, उनमें से (१) बुध, (२) शुक्र, (३) गुरु, (४) मंगल और (५) शनि इन पाँच ग्रहों को छोड़कर अवशेष १ काल विकाल, २ लोहित, ३ कनक, ४ कनक संस्थान, ५ अन्तरद,

६ कणयव, ७ दुन्दुभि:, ८ रत्ननिभ, ९ रूपनिर्भास, १० नील, ११ नीलाभास, १२ अश्व, १३ अश्वस्थान, १४ कोश, १५ कंसवर्ण, १६ कंस, १७ शङ्ख परिणाम, १८ शङ्ख वर्ण, १९ उदय, २० पञ्चवर्ण, २१ तिल, २२ तिलपुच्छ, २३ क्षारराशि, २४ धूम, २५ धूमकेतु, २६ एक संस्थान, २७ अक्ष, २८ कलेवर, २९ विकट, ३० अभिन्नसंधि, ३१ ग्रन्थि, ३२ मान, ३३ चतु:पाद, ३४ विद्युज्जिह्वा, ३५ नभ, ३६ सदृश, ३७ निलय, ३८ काल, ३९ कालकेतु, ४० अनय, ४१ सिंहायु, ४२ विपुल, ४३ काल, ४४ महाकाल, ४५ रुद्र, ४६ महारुद्र, ४७ सन्तान, ४८ सम्भव, ४९ सर्वार्थी, ५० दिशा, ५१ शान्ति, ५२ वस्तुन, ५३ निश्चल, ५४ प्रलम्भ, ५५ निर्मन्त्री, ५६ ज्योतिष्मान्, ५७ स्वयंप्रभ, ५८ भासुर, ५९ विरज, ६० निर्दु:ख, ६१ वीतशोक, ६२ सीमङ्कर, ६३ क्षेमङ्कर, ६४ अभयङ्कर, ६५ विजय, ६६ वैजयन्त, ६७ जयन्त, ६८ अपराजित, ६९ विमल, ७० त्रस्त, ७१ विजयिष्णु, ७२ विकस, ७३ करिकाष्ठ, ७४ एकजटि, ७५ अग्निज्वाल, ७६ जलकेतु, ७७ केतु, ७८ क्षीरस, ७९ अघ, ८० श्रवण, ८१ राहु, ८२ महाग्रह और ८३ भावग्रह इन ८३ ग्रहों की नगरियाँ बुध और शनि ग्रह के अन्तराल में अवस्थित हैं।

अत्थइ सणी णवसये चित्तादो तारगावि तावदिए।

जोइसपडलबहल्लं दससहियं जोयणाण सयं ॥ ३३४ ॥

आस्ते शनि: नवशतानि चित्रात: तारका अपि तावन्त:।

ज्योतिष्कपटलबाहल्यं दशसहितं योजनानां शतम् ॥ ३३४ ॥

अत्थइ। आस्ते शनिर्नवशतयोजनानि चित्रात: तारका अपि तावन्नवशतयोजनपर्यन्तं तिष्ठन्ति। ज्योतिष्कपटलबाहल्यं दशसहितं योजनानां शतम् ॥ ३३४ ॥

गाथार्थ :—चित्रा पृथ्वी से शनिश्चर नौ सौ योजन ऊपर स्थित है और तारागण भी नौ सौ योजन पर्यन्त अवस्थित हैं, अत: ज्योतिषी देवों के पटलों का बाहुल्य मात्र ११० योजन ही है ॥ ३३४ ॥

विशेषार्थ :—चित्रा पृथ्वी से ९०० योजन (३६००००० मील) ऊपर जाकर शनिश्चर ग्रह स्थित है, तथा इसी पृथ्वी से ७९० योजन (३१६०००० मील) ऊपर जाकर अर्थात् ७९० योजन से ९०० योजन पर्यन्त तारागणों की नगरियाँ स्थित हैं। अत: ज्योतिषी देवों का कुल क्षेत्र ११० योजन (४४०००० मील) मात्र प्राप्त होता है।

अथ प्रकीर्णकतारकाणां त्रिविधमन्तरं निरूपयति—

तारंतरं जहण्णं तेरिच्छे कोससत्तभागो दु ।
पण्णासं मज्झिमयं सहस्समुक्कस्सयं होदि ॥ ३३५ ॥

तारान्तरं जघन्य तिर्यक् कोशसप्तभागस्तु ।
पञ्चाशत् मध्यमकं सहस्रमुत्कृष्टकं भवति ॥ ३३५ ॥

तारंतरं । तारकायाः सकाशात् तारकान्तरं जघन्यं तिर्यग्रूपं क्रोशसप्तमभागः $\frac{1}{7}$ पञ्चाशद्यो-जनानि मध्यमान्तरं योजनसहस्रमुत्कृष्टान्तरं भवति ॥ ३३५ ॥

प्रकीर्णक ताराओं का तिर्यग् रूप से तीन प्रकार के अन्तर का निरूपण करते हैं ।—

गाथार्थ :—एक तारा से दूसरी तारा का तिर्यग् जघन्य अन्तर एक कोश का सातवाँ $\frac{1}{7}$ भाग, मध्यम अन्तर पचास योजन और उत्कृष्ट अन्तर एक हजार योजन है ॥ ३३५ ॥

विशेषार्थ :—एक तारा से दूसरी तारा का तिर्यग् जघन्य अन्तर $\frac{1}{7}$ कोश, (१४२$\frac{6}{7}$ मील) मध्यम अन्तर ५० योजन (२००००० मील) और उत्कृष्ट अन्तर १००० योजन (४०००००० मील) प्रमाण है ।

इदानीं ज्योतिर्विमानस्वरूपं निरूपयति—

**उत्ताणट्ठियगोलकदलसरिसा सव्वजोइसविमाणा ।
उवरिं सुरनयराणि य जिणभवणजुदाणि रम्माणि ॥३३६ ॥**

उत्तानस्थितगोलकदलसदृशाः सर्वज्योतिष्कविमानाः ।
उपरि सुरनगराणि च जिनभवनयुतानि रम्याणि ॥ ३३६ ॥

उत्ताणं । उपरि 'तेषामुपरि' इत्यर्थः । शेषच्छायामात्रमेवार्थः ॥ ३३६ ॥

अब ज्योतिर्विमानों का स्वरूप-निरूपण करते हैं ।—

गाथार्थ :—सर्व ज्योतिर्विमान अर्धगोले के सदृश ऊपर को अर्थात् ऊर्ध्व मुख रूप से स्थित हैं, तथा इन विमानों के ऊपर ज्योतिषीदेवों की जिन चैत्यालयों से युक्त रमणीक नगरियाँ हैं ॥ ३३६ ॥

विशेषार्थ :—जिस प्रकार एक गोले के दो खण्ड करके उन्हें ऊर्ध्व मुख रखा जावे तो चौड़ाई का भाग ऊपर और गोलाई वाला संकरा भाग नीचे रहता है । उसी प्रकार ऊर्ध्व मुख अर्धगोले के सदृश

ज्योतिषी देवों के विमान स्थित हैं। जैसे—

इन उपर्युक्त विमानाकृतियों का मात्र नीचे वाला गोलाकार भाग ही हमारे द्वारा दृश्यमान है, शेष भाग नहीं। इन्हीं विमानों के ऊपर जिन चैत्यालयों से सहित सुन्दर रमणीक नगरियाँ बसी हुई हैं।

अथ तेषां विमानव्यास बाहुल्यं च गाथाद्वयेनाह—

जोयणमेक्कट्ठिकए छप्पण्णडदालचंदरविवासं।
सुक्कगुरिदरतियाणं कोसं किंचूणकोस कोसद्धं ॥३३७॥
कोसस्स तुरियमवरं तुरियहियकमेण जाव कोसोत्ति।
ताराणं रिक्खाणं कोसं बहलं तु वासद्धं ॥ ३३८ ॥

योजनं एकषष्टिकृते षट्पञ्चाशदष्टचत्वारिंशत् चन्द्ररविव्यासौ।
शुक्रगुरितरत्रयाणां कोशः किञ्चिदूनकोशः कोशार्धम् ॥ ३३७ ॥

कोशस्य तुरीयमवरं तुर्याधिकक्रमेण यावत् कोश इति।
ताराणां ऋक्षाणां कोशं बाहुल्यं तु व्यासार्धम् ॥ ३३८ ॥

जोयण। एकयोजने एकषष्टिभागे कृते तत्र षट्पञ्चाशद्भागा $\frac{56}{61}$ अष्टचत्वारिंशद्भागाश्च $\frac{48}{61}$ क्रमेण चन्द्ररविविमानव्यासौ भवतः शुक्रगुर्वोरितरत्रयाणां बुधमङ्गलशनीनां विमानव्यासः कोशः १ किञ्चिन्न्यूनकोशः १ कोशार्धं $\frac{1}{2}$ च स्यात् ॥ ३३७ ॥

कोसस्स। कोशस्य च तुर्यांशः अवरो व्यासस्तुर्याधिकक्रमेण यावदेकः कोशो भवति तदर्धं $\frac{1}{2}$ त्रिचरणं $\frac{3}{4}$ कोशो मध्यमः एककोशः उत्कृष्टताराणां ऋक्षाणां विमानव्यासः कोशः १ सर्वेषां बाहुल्यं स्वस्वव्यासार्धं ॥ ३३८ ॥

दो गाथाओं द्वारा विमानों का व्यास और बाहुल्य कहते हैं:—

गाथार्थ:—एक योजन के ६१ भाग करने पर उनमें से छप्पन भागों का जितना प्रमाण है, उतना व्यास चन्द्रमा के विमान का है, और अड़तालीस भागों का जितना प्रमाण है उतना व्यास सूर्य

के विमान का है। शुक्र, गुरु और अन्य तीन ग्रहों का व्यास क्रम से एक कोश, कुछ कम एक कोश और अर्ध अर्ध कोश प्रमाण है। ताराओं का जघन्य व्यास एक कोश का चतुर्थ भाग अर्थात् पाव ($\frac{१}{४}$) कोश है। मध्यम व्यास $\frac{१}{४}$ कोश से कुछ अधिक लेकर कुछ कम एक कोश तक है, तथा उत्कृष्ट व्यास (विस्तार) एक कोश प्रमाण है। नक्षत्रों का व्यास भी एक कोश प्रमाण है। सर्वज्योतिर्विमानों का बाहुल्य (मोटाई) अपने अपने व्यास के अर्ध प्रमाण है ॥ ३३७, ३३८ ॥

विशेषार्थ :—सर्वज्योतिर्विमानों का व्यास और बाहुल्य निम्न प्रकार से है :—

क्रमांक	ज्योतिर्बिम्बों के नाम	व्यास (विस्तार)		बाहुल्य (मोटाई)	
		योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में
१	चन्द्र विमान	$\frac{५६}{६१}$ योजन	३६७२$\frac{८}{६१}$ मील	$\frac{२८}{६१}$ योजन	१८३६$\frac{४}{६१}$ मील
२	सूर्य	$\frac{४८}{६१}$ योजन	३१४७$\frac{३३}{६१}$ मील	$\frac{२४}{६१}$ योजन	१५७३$\frac{४७}{६१}$ मील
३	शुक्र	१ कोश	१००० मील	$\frac{१}{२}$ कोश	५०० मील
४	गुरु	कुछ कम १ कोश	कुछकम१००० "	कुछ कम $\frac{१}{२}$ कोश	कुछ कम५०० "
५	बुध	आधा कोश	५०० मील	$\frac{१}{४}$ (पाव) "	२५० मील
६	मंगल	" "	५०० "	$\frac{१}{४}$ " "	२५० "
७	शनि	" "	५०० "	$\frac{१}{४}$ " "	२५० "
८	ताराओं का जघन्य	पाव ($\frac{१}{४}$) कोश	२५० "	$\frac{१}{८}$ कोश	१२५ "
	" " मध्यम	$\frac{१}{४}$ व $\frac{१}{४}$ कोश			
	" " उत्कृष्ट	१ कोश	१००० "	$\frac{१}{२}$ कोश	५०० "
९	नक्षत्र विमान	१ कोश	१००० "	$\frac{१}{२}$ "	५०० "
१०	राहु "	कुछ कम १ योजन	कुछकम४००० "	कुछ कम $\frac{१}{२}$ योजन	" कम२००० "
११	केतु "	कुछ कम १ योजन	४००० मील	" " $\frac{१}{२}$ योजन	" " २००० "

अथ राहुरिष्टग्रहयोर्विमानव्यासं तत्कार्यं तदवस्थानं च गाथाद्वयेनाह—

राहुअरिट्ठविमाणा किंचूणं जोयणं अधोगंता ।
छम्मासे पव्वंते चंदरवी छादयंति कमे ॥ ३३९ ॥

राहुरिष्टविमानौ किञ्चिदूनौ योजनं अधोगन्तारौ ।
षण्मासे पर्वान्ते चन्द्ररवी छादयतः क्रमेण ॥ ३३९ ॥

राहु । राह्वरिष्टविमानौ किञ्चिन्न्यूनयोजनव्यासौ चन्द्ररव्योरधोगन्तारौ षण्मासे पर्वान्ते चन्द्ररवी आवृणुतः क्रमेण ॥ ३३९ ॥

राहु, केतु विमानों का व्यास, उनके कार्य और उनका अवस्थान दो गाथाओं द्वारा कहा जाता है :—

गाथार्थ :—राहु और अरिष्ट (केतु) के विमानों का व्यास कुछ कम एक योजन प्रमाण है। इन दोनों के विमान चन्द्र सूर्य के विमानों के नीचे गमन करते हैं, और दोनों छह माह बाद पर्व के अन्त में क्रम से चन्द्र और सूर्य को आच्छादित करते हैं ॥ ३३९ ॥

विशेषार्थ :—राहु और केतु, दोनों के विमानों का व्यास कुछ कम एक एक योजन प्रमाण है। राहु का विमान चन्द्र विमान के नीचे और केतु का विमान सूर्य विमान के नीचे गमन करता है। प्रत्येक छह माह बाद पर्व के अन्त में अर्थात् क्रम से पूर्णिमा और अमावस्या के अन्त में राहु चन्द्रमा को और केतु सूर्य को आच्छादित करता है, इसी का नाम ग्रहण है।

राहुअरिट्ठविमाणधयादुवरि पमाणअंगुलचउक्कं ।
गंतूण ससिविमाणा सूरविमाणा कमे होंति ॥ ३४० ॥

राह्वरिष्टविमानध्वजादुपरि प्रमाणांगुलचतुष्कम् ।
गत्वा शशिविमानाः सूर्यविमानाः क्रमेण भवन्ति ॥ ३४० ॥

राहु । राह्वरिष्टविमानध्वजदण्डादुपरि प्रमाणांगुलचतुष्कं गत्वा शशिविमानाः सूर्यविमानाश्च क्रमेण भवन्ति ॥ ३४० ॥

गाथार्थ :—राहु और केतु विमानों की ध्वजा दण्ड से चार प्रमाणांगुल ऊपर जाकर क्रम से चन्द्र का विमान और सूर्य का विमान है ॥ ३४० ॥

विशेषार्थ :—राहु विमान की ध्वजा दण्ड से चार प्रमाणांगुल ऊपर चन्द्रमा का विमान है, और केतु विमान की ध्वजा से चार प्रमाणांगुल ऊपर सूर्य का विमान है।

अथ चन्द्रादीनां किरणप्रमाणं तत्स्वरूपं चाह—

चंदिण बारसहस्सा पादा सीयल खरा य सुक्के दु ।
अड्ढाइज्जसहस्सा तिव्वा सेसा हु मंदकरा ॥ ३४१ ॥

चन्द्रेनयोः द्वादशसहस्राः पादाः शीतलाः खराश्च शुक्रे तु ।
अर्धतृतीयसहस्राः तीव्राः शेषा हि मन्दकराः ॥ ३४१ ॥

चंविरा । चन्द्रादित्ययोः द्वादशसहस्रा: पादाः कराः शीतलाः खराः उष्णाश्च । शुक्रस्यर्धतृतीय २५०० सहस्राः तीव्राः प्रकाशेनोज्ज्वलाः शेषास्तु मन्दकराः मन्दप्रकाशाः ॥ ३४१ ॥

चन्द्रमा आदि ग्रहों की किरणों का प्रमाण और उनका स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—चन्द्रमा और सूर्य की क्रम से शीतल और तीक्ष्ण बारह बारह हजार किरणें हैं। शुक्र की किरणें तीव्र हैं, तथा अढ़ाई हजार हैं। शेष ज्योतिषी मन्द प्रकाशवाली किरणों सहित हैं ॥ ३४१ ॥

विशेषार्थ :—चन्द्रमा की किरणें बारह हजार प्रमाण हैं, और शीतल हैं। सूर्य की किरणें भी बारह हजार हैं, किन्तु वे तीक्ष्ण हैं। शुक्र की किरणें अढ़ाई (२५००) हजार हैं, वे तीव्र अर्थात् प्रकाश से उज्ज्वल हैं। शेष ज्योतिषी देवों की किरणें मन्द प्रकाश वाली हैं।

अथ चन्द्रमण्डलस्य वृद्धिहानिक्रममावेदयति—

> **चंदो णियसोलसमं किण्हो सुक्को य पण्णरदिणोत्ति ।**
> **हेट्ठिल्ल णिच्च राहूगमणविसेसेण वा होदि ॥ ३४२ ॥**
>
> चन्द्रो निजषोडशं कृष्णः शुक्लश्च पञ्चदशदिनान्तम् ।
> अधस्तनं नित्यं राहुगमनविशेषेण वा भवति ॥ ३४२ ॥

चंदो । चन्द्रः निजषोडशभागमभिव्याप्य कृष्णः शुक्लश्च भवति । पञ्चदशदिनपर्यन्तं षोडशकलानां १६ मेतावति बिम्बक्षेत्रे ५६/६१ एककलायाः किमिति सम्पात्याप्ताभिरपवर्त्य गुणिते एवं ८९६/६१ एककलायाः एतावति क्षेत्रे ८९६/६१ षोडशकलानां १६ किमिति सम्पात्य द्वाभ्यामपवर्त्य गुणिते एवं ५६/६१ आचार्यान्तराभिप्रायेणाधस्तननित्यराहुगमनविशेषेण वा भवति ॥ ३४२ ॥

चन्द्रमण्डल की वृद्धि-हानि का क्रम बताते हैं :—

गाथार्थ :—चन्द्र मण्डल पन्द्रह दिनों में अपनी सोलह कलाओं द्वारा स्वयं कृष्ण और शुक्ल रूप होता है। अन्य आचार्यों के अभिप्राय से राहु, चन्द्र विमान के नीचे विशेष प्रकार से गमन करता है, जिस कारण चन्द्र प्रत्येक पन्द्रह दिनों में कृष्ण और शुक्ल होता है ॥ ३४२ ॥

विशेषार्थ :—चन्द्र विमान के कुल १६ भाग हैं। एक एक दिन में एक एक भाग जब कृष्ण रूप परिणमन करता जाता है तब चन्द्रमा १५ दिन में स्वयं कृष्ण रूप हो जाता है, और जब प्रत्येक दिन एक एक भाग श्वेतरूप परिणमन करता है तब चन्द्र, १५ दिन में क्रम से शुक्ल रूप हो जाता है।

चन्द्रमा का विस्तार $\frac{५६}{६१}$ योजन है, और उसके भाग १६ हैं, अतः जब कि १६ भागों का $\frac{५६}{६१}$ योजन विस्तार है, तो एक भाग का कितना व्यास होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक कर ($\frac{५६}{६१} \times \frac{१}{१६}$) को आठ से अपवर्तन करने पर $\frac{७}{१२२}$ योजन (२२९$\frac{३१}{६१}$ मील) व्यास एक कला का प्राप्त होता है। १ कला का विस्तार $\frac{७}{१२२}$ योजन है तो १६ कला का कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर वही $\frac{५६}{६१}$ योजन प्राप्त हो जायगा।

अन्य आचार्यों का अभिप्राय है कि :—अञ्जनवर्ण राहु का विमान प्रतिदिन एक एक पथ में पन्द्रह कला पर्यन्त चन्द्र बिम्ब के एक एक भाग को आच्छादित करता है, और पुनः वही राहु प्रतिपदा से एक एक वीथी में अपने गमन विशेष के द्वारा पूर्णिमा तक एक एक कला को छोड़ता जाता है।

अथ चन्द्रादीनां विमानवाहकदेवानामाकारविशेषं तत्संख्यां चाह—

सिंहगयवसहजडिलस्सायारसुरा वहंति पुव्वादिं ।
इंदुरवीणं सोलससहस्समद्धद्धमिदरतिये ॥ ३४३ ॥

सिंहगजवृषभजटिलाश्वाकारसुरा वहन्ति पूर्वादिम् ।
इन्दुरवीणां षोडशसहस्रं अर्धार्धमितरत्रये ॥ ३४३ ॥

सिंह । सिंहगजवृषभजटिलाश्वाकारसुरा वहन्ति तद्विमानपूर्वादिकं तत्संख्या इन्दुरवीणां षोडशसहस्राणि तदर्धार्धक्रममितरत्रये ग्रहनक्षत्रतारकारूपे ॥ ३४३ ॥

चन्द्रादिक ज्योतिषी देवों के विमान, वाहक देवों का आकार विशेष और संख्या कहते हैं :—

गाथार्थ :—सिंह, हाथी, बैल और जटा युक्त घोड़ों के रूप को धारण करने वाले सोलह सोलह हजार देव चन्द्र और सूर्य के हैं, तथा अन्य तीन के अर्ध अर्ध प्रमाण हैं। ये सभी आभियोग्य देव अपने अपने विमानों को पूर्वादि दिशाओं में ले जाते हैं ॥ ३४३ ॥

विशेषार्थ :—सिंह आदि आकार वाले देव क्रम से पूर्वादि दिशाओं में अपने अपने विमानों को ले जाते हैं। चन्द्र सूर्य के वाहन देव १६, १६ हजार हैं। शेष के अर्ध अर्ध प्रमाण हैं। जैसे :—

[चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिये]

	पूर्व दिशा के वाहन		दक्षिण दिशा के वाहन		पश्चिम दिशा के वाहन		उत्तर दिशा के वाहन		योग
चन्द्र	सिंह	४०००	हाथी	४०००	बैल	४०००	घोड़े	४०००	१६०००
सूर्य	"	"	"	"	"	"	"	"	१६०००
शुक्र	"	२०००	"	२०००	"	२०००	"	२०००	८०००
गुरु	"	"	"	"	"	"	"	"	८०००
बुध	"	"	"	"	"	"	"	"	८०००
शनि	"	"	"	"	"	"	"	"	८०००
मंगल	"	"	"	"	"	"	"	"	८०००
नक्षत्र	"	१०००	"	१०००	"	१०००	"	१०००	४०००
तारे	"	५००	"	५००	"	५००	"	५००	२०००

अथाकाशे चरतां कियन्नक्षत्राणां दिग्विभागमाह—

उत्तरदक्खिणउड्ढाधोमज्झे अभिजिमूलसादी य।
भरणी कित्तिय रिक्खा चरंति अवराणमेवं तु ॥ ३४४ ॥

उत्तरदक्षिणोर्ध्वाधोमध्ये अभिजिन्मूलस्वातिश्च।
भरणी कृत्तिका ऋक्षाणि चरन्ति अवराणामेवं तु ॥ ३४४ ॥

उत्तर । उत्तरदक्षिणोर्ध्वाधोमध्ये यथासंख्यं अभिजिन्मूलस्वातिभरणिकृत्तिकाख्य नक्षत्राणि चरन्ति । अवराणां क्षेत्रान्तरगतानामभिजिदादिपञ्चानामेवमेवावस्थितिः ॥ ३४४ ॥

आकाश में गमन करने वाले कुछ नक्षत्रों का दिशा-भेद कहते हैं :—

गाथार्थ :—उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व, अधो और मध्य में क्रम से अभिजित्, मूल स्वाति भरणी और कृत्तिका नक्षत्र गमन करते हैं। क्षेत्रान्तर को प्राप्त होने वाले इन नक्षत्रों को ऐसी ही स्थिति है ॥ ३४४ ॥

विशेषार्थ :—नक्षत्रों में से उत्तर दिशा में अभिजित् नक्षत्र का, दक्षिण में मूल नक्षत्र का, ऊपर स्वाति का, नीचे भरणी का और मध्य में कृत्तिका नक्षत्र का गमन होता है। क्षेत्रान्तर को प्राप्त होने वाले इन अभिजितादि पाँच नक्षत्रों की ऐसी ही स्थिति है।

अथ मन्दरगिरेः कियद्दूरं गत्वा कथं चरन्तीत्यारेकायामाह—

इगिवीसेयारसयं विहाय मेरुं चरंति जोइगणा ।
चंदतियं वज्जित्ता सेसा हु चरन्ति एक्कपहे ।। ३४५ ।।

एकविंशैकादशशतानि विहाय मेरुं चरन्ति ज्योतिर्गणाः ।
चन्द्रत्रयं वर्जयित्वा शेषा हि चरन्ति एकपथे ।। ३४५ ।।

इगि । एकविंशत्युत्तरैकादशशतानि योजनानि मेरुं विहाय चरन्ति ज्योतिर्गणाः चन्द्रादित्यग्रहा इति त्रयं वर्जयित्वा शेषाः खलु चरन्त्येकस्मिन् पथि ॥ ३४५ ॥

ज्योतिषीदेव मेरु पर्वत से कितनी दूर जाकर और कैसे गमन करते हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं :—

गाथार्थ :—ज्योतिर्गण सुदर्शन मेरु को ग्यारह सौ इक्कीस योजन छोड़कर गमन करते हैं। चन्द्र त्रय (चन्द्र, सूर्य, ग्रह) को छोड़कर शेष सभी ज्योतिषी देव एक ही पथ में गमन करते हैं ।। ३४५ ।।

विशेषार्थ :—ज्योतिषी देवों के समूह मेरु पर्वत को ११२१ योजन (४४८४००० मील) छोड़ कर प्रदक्षिणा रूप से गमन करते हैं। अर्थात् मेरु पर्वत से ११२१ योजन पर्यन्त कोई भी ज्योतिषी देव नहीं पाये जाते। चन्द्र, सूर्य और ग्रह इन तीन को छोड़ कर शेष नक्षत्र व तारागण सदा एक ही मार्ग में गमन करते हैं।

इदानीं जम्बूद्वीपमारभ्य पुष्करार्धपर्यन्तं चन्द्रादित्यप्रमाणं निरूपयति—

दो दोवग्गं बारस बादाल बहत्तरिंदुइणसंखा ।
पुक्खरदलोत्ति परदो अवट्ठिया सव्वजोइगणा ।।३४६।।

द्वौ द्विवर्गं द्वादश द्वाचत्वारिंशत् द्वासप्ततिरिन्द्विनसंख्या ।
पुष्करदलान्तं परतः अवस्थिताः सर्वज्योतिर्गणाः ।। ३४६ ।।

दो दो । जम्बूद्वीपादारभ्य द्वौ द्विवर्गद्वादश द्वाचत्वारिंशत् द्वासप्ततयः यथासंख्यमिन्द्विनानां संख्या पुष्करदलं यावत् । ततः परतः अवस्थिताः सर्वज्योतिर्गणाः ॥ ३४६ ॥

जम्बूद्वीप से प्रारम्भ कर पुष्करार्ध पर्यन्त चन्द्र सूर्य के प्रमाण का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—चन्द्र और सूर्य की संख्या जम्बूद्वीपादि में क्रमशः दो, चार, बारह, बयालिस और बहत्तर है। पुष्करार्ध के पर भाग में सर्व ज्योतिर्गण अवस्थित हैं, गमन नहीं करते ।। ३४६ ।।

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा और दो सूर्य हैं। लवणोदक समुद्र में चार, चार हैं।

धातकी खण्ड में बारह, बारह हैं। कालोदक समुद्र में ४२, ४२ हैं और अर्ध पुष्कर द्वीप में ७२ चन्द्रमा और ७२ सूर्य हैं। इस प्रकार अढ़ाई द्वीप में कुल (२+४+१२+४२+७२)=१३२ चन्द्रमा और १३२ सूर्य हैं। जैसे :—

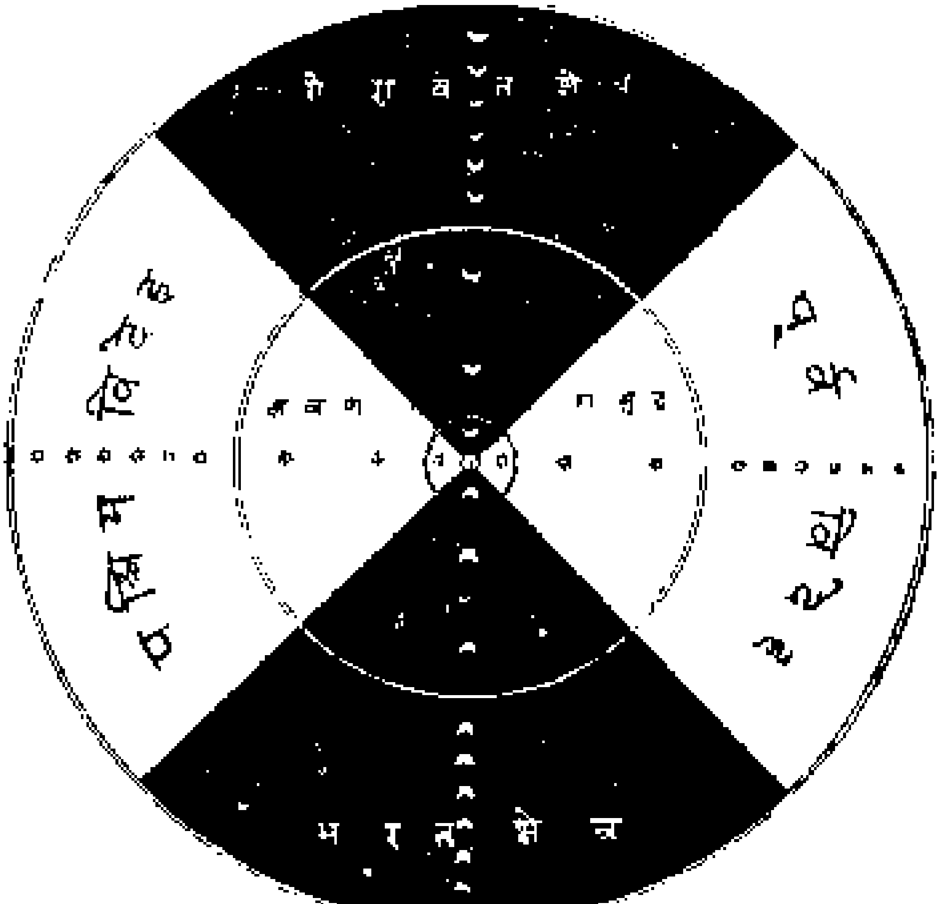

चित्रण में जिस प्रकार जम्बूद्वीप लवणसमुद्र और धातकीखण्ड के चन्द्र सूर्य दर्शाये गये हैं, उसी प्रकार कालोदक एवं पुष्करार्ध में भी जानना चाहिए अढ़ाई द्वीप के बाहर के सभी ज्योतिर्गण अवस्थित हैं, कभी सञ्चार नहीं करते।

अथ तत्र स्थितस्थिरताराः निरूपयति—

छक्कदि णवतीससयं दसयसहस्सं खबार इगिदालं ।
गयणतिदुगतेवण्णं थिरतारा पुक्खरदलोत्ति ॥ ३४७ ॥

षट्कृतिः नवत्रिंशशतं दशकसहस्रं खद्वादश एकचत्वारिंशत् ।
गगनत्रिद्विकत्रिपञ्चाशत् स्थिरताराः पुष्करदलान्तम् ॥ ३४७ ॥

छक्कदि। षट्कृतिः ३६ नवत्रिंशदुत्तरशतं १३९ दशोत्तरसहस्रं १०१० खद्वादशोत्तरैकचत्वारिंशत्सहस्राणि ४११२० गगनत्रिद्विकोत्तरत्रिपञ्चाशत्सहस्राणि ५३२३० स्थिरताराः पुष्करार्धपर्यन्तम् ॥ ३४७ ॥

अढ़ाई द्वीप में स्थित स्थिर ताराओं का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—पुष्करार्ध पर्यन्त ध्रुव तारा क्रम से छत्तीस, एक सौ उन्तालीस, एक हजार दश, इकतालीस हजार एक सौ बीस और त्रेपन हजार दो सौ तीस हैं ॥ ३४७ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप में स्थिर तारा ३६ हैं, लवणोदक समुद्र में १३९, धातकी खण्ड में १०१०, कालोदक में ४११२० और पुष्करार्ध में ५३२३० ध्रुव ताराएँ हैं।

अथ ज्योतिर्गणानां चारक्रमं विचारयति—

सगसगजोइगणद्धं एक्के भागम्हि दीवउवहीणं ।
एक्के भागे अद्धं चरंति पंतिक्कमेणेव ॥ ३४८ ॥

स्वकीयस्वकीयज्योतिर्गणार्धं एकस्मिन् भागे द्वीपोदधीनाम् ।
एकस्मिन् भागे अर्धं चरन्ति पङ्क्तिक्रमेणैव ॥ ३४८ ॥

सग छायामात्रमेवार्थः ॥ ३४८ ॥

अब ज्योतिषी देवों के गमन क्रम का विचार करते हैं :—

गाथार्थ :—अपने अपने द्वीप समुद्रों के ज्योतिषी देवों के समूह का अर्धभाग अपने अपने द्वीप समुद्र के एक भाग में और दूसरा अर्ध भाग एक भाग में पंक्ति रूप गमन करता है ॥ ३४८ ॥

विशेषार्थ :—जिस जिस द्वीप समुद्र में जितने जितने ज्योतिषी देव रहते हैं, उनमें से आधे ज्योतिषी देव तो उसी अपने द्वीप या समुद्र के एक भाग में सञ्चार करते हैं, और आधे एक भाग में करते हैं। ज्योतिषी देवों का गमन पंक्तिबद्ध होता है।

अथ मानुषोत्तरात्परतश्चन्द्रादित्यानामवस्थानक्रमं निरूपयति—

मणुसुत्तरसेलादो वेदियमूलादु दीवउवहीणं ।
पण्णाससहस्सेहिं य लक्खे लक्खे तदो वलयं ॥ ३४९ ॥

मानुषोत्तरशैलात् वेदिकामूलात् द्वीपोदधीनाम् ।
पञ्चाशत्सहस्रैश्च लक्षे लक्षे ततो वलयं ॥ ३४९ ॥

मणुसु । मानुषोत्तरशैलात् द्वीपोदधीनां वेदिकामूलात् पञ्चाशत्सहस्रयोजनानि गत्वा वलयं भवति । ततः परं लक्षलक्षयोजनानि गत्वा वलयानि भवन्ति ॥ ३४९ ॥

मानुषोत्तर पर्वत के परभाग में चन्द्र और सूर्य के अवस्थान क्रम को कहते हैं :—

गाथार्थ :—मानुषोत्तर पर्वत से और द्वीप समुद्रों की वेदिका के मूल से (५००००) पचास हजार योजन आगे जाकर प्रथम वलय है, तथा दोनों स्थानों के प्रथम वलयों से एक एक लाख योजन आगे जाकर द्वितीयादि वलय हैं ॥ ३४९ ॥

विशेषार्थ :—मानुषोत्तर पर्वत से पचास हजार (५००००) योजन जाकर बाह्य पुष्करार्ध में (चन्द्र सूर्य का) प्रथम वलय है, और प्रथम वलय से एक एक लाख योजन आगे जाते हुए क्रम से द्वितीयादि वलय हैं। इसी प्रकार द्वीप समुद्रों की वेदिका के मूल से ५० हजार योजन जाकर प्रथम वलय है, इसके बाद एक एक लाख योजन आगे आगे द्वितीयादि वलय हैं।

अथ तेषु वलयेषु व्यवस्थितानां चन्द्रादित्यानां संख्यामाह—

दीवद्धपढमवलये चउदालसयं तु वलयवलयेसु ।
चउचउवड्ढी आदी आदीदो दुगुणदुगुणकमा ॥ ३५० ॥

द्वीपार्धप्रथमवलये चतुश्चत्वारिंशच्छतं तु वलयवलयेषु ।
चतुश्चतुर्वृद्धयः आदिः आदितः द्विगुणद्विगुणक्रमः ॥ ३५० ॥

दीव । मानुषोत्तराद्बहिः स्थितपुष्करद्वीपार्धप्रथमवलये चतुश्चत्वारिंशदुत्तरशतं १४४ तत उपरि वलयवलयेषु चतस्रश्चतस्रो वृद्धयो भवन्ति । १४८ । १५२ । १५६ । १६० । १६४ । १६८ । १७२ उत्तरोत्तरस्य द्वीपस्य समुद्रस्य वा आदिः प्रथमप्रथमस्य द्वीपस्य समुद्रस्य वा प्राक्तनवलयस्यादितः द्विगुणद्विगुणक्रमः २८८ ॥ ३५० ॥

इन वलयों में स्थित चन्द्रों और सूर्यों की संख्या :—

गाथार्थ :—बाह्य पुष्करार्ध द्वीप के प्रथम वलय में १४४ चन्द्र और १४४ सूर्य हैं, तथा द्वितीयादि वलयों में प्रथमादि वलयों से चार चार की वृद्धि को लिए हुए हैं। पूर्व पूर्व द्वीप समुद्रों के आदि में चन्द्र, सूर्य की जो संख्या है, उससे उत्तरोत्तर द्वीप समुद्रों की आदि में चन्द्र सूर्य की संख्या दूनी दूनी है ॥ ३५० ॥

विशेषार्थ :—मानुषोत्तर पर्वत से बाहर जो पुष्करार्ध द्वीप है, उसके प्रथम वलय में चन्द्र और सूर्यों की संख्या १४४, १४४ है। दूसरे, तीसरे आदि वलयों में चार चार की वृद्धि होते हुए क्रम से १४८, १५२, १५६, १६०, १६४, १६८, १७२ ...... हैं। पूर्व पूर्व द्वीप समुद्रों के आदि में चन्द्र सूर्य की जो संख्या है, उत्तरोत्तर द्वीप समुद्रों के आदि में उससे दूनी दूनी है। जैसे :— पुष्करार्ध द्वीप के आदि (प्रथम) वलय में चन्द्र, सूर्यों की संख्या १४४, १४४ है और पुष्कर समुद्र के आदि में दोनों की संख्या २८८, २८८ है, इसके बाद प्रत्येक वलय में ४, ४ की वृद्धि होगी।

अथ तत्तद्वलयव्यवस्थितचन्द्रचन्द्रान्तरं सूर्यसूर्यान्तरं च निवेदयति—

सगसगपरिधिं परिधिगरविंदुभजिदे दु अंतरं होदि ।
पुस्सम्हि सव्वसूरट्ठिया हु चंदा य अभिजिम्हि ॥ ३५१ ॥

स्वकस्वकपरिधिं परिधिगरवीन्दुभक्ते तु अन्तरं भवति ।
पुष्ये सर्वसूर्याः स्थिता हि चन्द्राश्च अभिजिति ॥ ३५१ ॥

सग । स्वकीयस्वकीयसूक्ष्मपरिधौ परिधिगतरवीन्दुप्रमाणेन भक्ते सति अन्तरं भवति । तत्र तावज्जम्बूद्वीपादारभ्योभयभागगतसमुद्रद्वीपसमुद्रवलयव्यासमेलनसञ्जातद्वितीयपुष्करार्धप्रथमवलयसूची-व्यासस्य ४६००००० 'विक्खंभवग्ग' इत्यादिना परिधिमानीय १४५४६४७७ तस्मिन् तत्परिधिगतरवीन्दु-प्रमाणेन १४४ भक्ते बिम्बसहितान्तरं चन्द्रादीनां १०१०१० शेष $\frac{३७}{१४४}$ बिम्बरहितान्तरानयने बिम्बसहितान्तरलब्धादेकमपनीय १०१००९ शेषेण $\frac{१८१}{१४४}$ सह समच्छेदं कृत्वा $\frac{१८१}{१४४}$ तच्छेदे मेलयित्वा $\frac{१८१}{१४४}$ अनेन सह चन्द्रबिम्बं $\frac{५६}{६१}$ सूर्यबिम्बं वा $\frac{४८}{६१}$ परस्परहारगुणने समच्छेदं कृत्वा शेषं $\frac{११०४१}{८७८४}$ चन्द्र $\frac{८०६४}{८७८४}$ सूर्यं $\frac{६९१२}{८७८४}$ बिम्बे तस्मिन् चन्द्रबिम्बे अपनीते $\frac{२९७७}{८७८४}$ सूर्यबिम्बे अपनीते $\frac{४१२९}{८७८४}$ बिम्बरहितं चन्द्रसूर्यान्तरं स्यात् । पुष्ये सर्वे सूर्याः स्थिताः चन्द्राश्च अभिजिति स्थिताः ॥ ३५१ ॥

अब उन उन वलयों में स्थित चन्द्र से चन्द्र का सूर्य से सूर्य का अन्तर कहते हैं :—

गाथार्थ :—अपनी अपनी परिधि में अपनी अपनी परिधि (वलय) गत चन्द्र और सूर्यों की संख्या का भाग देने पर वहाँ स्थित एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का और एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अन्तर ज्ञात होता है । सर्व सूर्य पुष्य नक्षत्र पर और सर्व चन्द्र अभिजित् नक्षत्र पर स्थित हैं ॥ ३५१ ॥

विशेषार्थ :—अपनी सूक्ष्म परिधि में परिधिगत सूर्य चन्द्रों की संख्या का भाग देने से दोनों का अपना अपना अन्तर प्राप्त होता है ।

जम्बूद्वीप से प्रारम्भ कर दोनों ओर के अभ्यन्तर द्वीप समुद्रों का वलय व्यास मिलाने से बाह्य पुष्करार्ध के प्रथम वलय का सूची व्यास छ्यालीस लाख (४६०००००) योजन प्रमाण प्राप्त होता है । जैसे :—मानुषोत्तर पर्वत का सूची व्यास पैंतालीस लाख (४५०००००) योजन है, इसमें दोनों ओर का पचास, पचास हजार (१ लाख) योजन वलयव्यास मिला देने से (४५ लाख + १ लाख)= ४६ लाख योजन सूची व्यास प्राप्त हो जाता है । "विक्खम्भ वग्गदह" इत्यादि करण सूत्र (गा० ९६) के द्वारा ४६ लाख योजन सूचीव्यास की परिधि का प्रमाण १४५४६४७७ योजन (एक करोड़ पैंतालीस लाख छ्यालीस हजार चार सौ सतत्तर योजन) होता है । इस परिधि में तद्गत चन्द्र सूर्यों की संख्या का भाग देने पर उन उन चन्द्र सूर्यों का बिम्ब सहित अन्तर प्राप्त होता है । जैसे :— १४५४६४७७ ÷ १४४ = १०१०१०$\frac{३७}{१४४}$ योजन अन्तर बिम्ब सहित एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का और एक

सूर्य से दूसरे सूर्य का हुआ। इसमें से चन्द्र बिम्ब का विस्तार $\frac{५६}{६१}$ योजन और सूर्य बिम्ब का विस्तार $\frac{४८}{६१}$ योजन कम कर देने पर उनका बिम्ब रहित अन्तर इस प्रकार प्राप्त हो जाता है—बिम्ब सहित अन्तराल का प्रमाण १०१०१७ योजन था। इसमें से एक योजन निकाल (१०१०१७—१=१०१०१६) कर इसमें $\frac{१७६९}{८७८४}$ योजन जो अवशेष थे उन्हें लघुतम विधान से मिलाने पर—$\frac{१}{१}+\frac{१७६९}{८७८४}$ अर्थात् $\frac{८७८४}{८७८४}+\frac{१७६९}{८७८४}=\frac{१०५५३}{८७८४}$ हुआ इसमें से चन्द्र बिम्ब का प्रमाण $\frac{५६}{६१}$ योजन और सूर्य बिम्ब का प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ योजन घटा देने पर $\frac{१०५५३}{८७८४}-\frac{५६}{६१}=\frac{१०५५३-८०६४}{८७८४}=\frac{२४८९}{८७८४}$ योजन अर्थात् १०१०१६$\frac{२४८९}{८७८४}$ योजन बिम्ब रहित एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर प्राप्त होता है। इसी प्रकार $\frac{१०५५३}{८७८४}-\frac{४८}{६१}=\frac{१०५५३-६९१२}{८७८४}=\frac{३६४१}{८७८४}$ योजन अर्थात् १०१०१६$\frac{३६४१}{८७८४}$ योजन बिम्ब रहित एक सूर्य से दूसरे सूर्य के अन्तर का प्रमाण प्राप्त होता है।

सर्व वलय सम्बन्धी चन्द्र अभिजित् नक्षत्र पर और सर्व वलय सम्बन्धी सूर्य पुष्य नक्षत्र पर स्थित हैं। अर्थात् नक्षत्रों के विमान नीचे और चन्द्र सूर्य के विमान ऊपर हैं।

अथासंख्यातद्वीपसमुद्रगतचन्द्रादिसंख्यानयने गच्छमानयन् तत्कारणभूतासंख्यातद्वीपसमुद्रसंख्यां गाथाद्वयेनाह—

रज्जूदलिदे मंदिरमज्झादो चरिमसायरंतोत्ति।
पडदि तदद्धे तस्स दु अब्भंतरवेदिया परदो ॥ ३५२ ॥

दसगुणपण्णत्तरिसयजोयणमुवगम्म दिस्सदे जम्हा।
इगिलक्खहिओ एक्को पुव्वगसव्वुवहिदीवेहिं ॥ ३५३ ॥

रज्जूदलिते मन्दरमध्यतः चरमसागरान्त इति।
पतति तदर्धे तस्य तु अभ्यन्तरवेदिका परतः ॥ ३५२ ॥

दशगुणपञ्चसप्ततिशतयोजनमुपगम्य दृश्यते यस्मात्।
एकलक्षाधिकः एकः पूर्वगसर्वोदधिद्वीपेभ्यः ॥ ३५३ ॥

रज्जू। रज्जूदलने कृते सति मन्दरमध्यतः आरभ्य चरमसागरान्तं यावत् तावद् गत्वा पतति तस्यां पुनरर्धविताया तस्य चरमसागरस्याभ्यन्तरवेदिकापरतः ॥ ३५२ ॥

दस। दशगुणपञ्चसप्ततिशत ७५००० योजनमुपगम्य रज्जुर्दृश्यते। कुत इति चेत्। यस्मात् कारणात् पूर्वस्थितेभ्यः सर्वोदधिद्वीपेभ्यः सकाशात् उत्तरः एकः कश्चिद्द्वीपः समुद्रो वा एकलक्षाधिकः। एतदेव स्पष्टीकरोति। एकं ३२ ल०, स्वयम्भूरमणं तत्कुलस्य जम्बूद्वीपस्यार्धलक्षसहितं सर्वद्वीपसमुद्रवलयव्यासाङ्क० ५०००० । २ ल० । ४ ल० । ८ ल० । १६ ल० । ३२ ल० । इत्यादि मेलयित्वा ६२५०००० अर्धीकृते ३१२५००० द्वितीयवारच्छिन्नरज्जुप्रमाणं। तस्मिन् तस्मात्प्राक्तनसर्ववलयव्यासे

३०५०००० न्यूने सति तदभ्यन्तरवेदिकापरतो गत्वा पतितरज्जुप्रमाणं स्यात् ७५००० । तस्मिन्नर्धितेऽपि ३१२५००० अर्धिते १५६२५०० तृतीयवारछिन्नरज्जुप्रमाणं स्यात् । तस्मिन् तस्मात्प्राक्तनसर्ववलयव्यासे १४५०००० अपनीते सति तदभ्यन्तरवेदिकापरतः पतितरज्जुक्षेत्रफलप्रमाणं स्यात् ११२५०० । एवमेव तत्तत्प्राक्तनार्धमर्धीकृत्य तस्मिन् तस्मात्प्राक्तनसर्ववलयव्यासमपनीय तत्तदभ्यन्तरवेदिकापरतः पतित-रज्जुक्षेत्रप्रमाणं ज्ञातव्यम् ॥ ३५३ ॥

अब असंख्यात द्वीप समुद्रगत चन्द्रादिक की संख्या प्राप्ति के लिए गच्छ का प्रमाण लाकर उसके कारणभूत असंख्यात द्वीप समुद्रों की संख्या आठ गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—सुमेरु पर्वत के मध्य से अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्र के एक पार्श्व भाग पर्यन्त राजू का दल अर्थात् अर्धराजू क्षेत्र होता है, तथा उसका आधा स्वयम्भूरमण समुद्र की अभ्यन्तर वेदिका से दश गुणित पचहत्तर सौ योजन आगे जाकर दिखाई देता है, क्योंकि पूर्व के सर्व द्वीप समुद्रों का जितना व्यास होता है, उससे उत्तरवर्ती द्वीप समुद्रों का व्यास एक लाख योजन अधिक होता है ॥ ३५२, ३५३ ॥

विशेषार्थ :—सुमेरु पर्वत के मध्य से प्रारम्भ कर अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्र के एक पार्श्व भाग पर्यन्त का क्षेत्र अर्धराजू प्रमाण है तथा स्वयम्भूरमण समुद्र की अभ्यन्तर वेदी से पचहत्तर हजार (७५०००) योजन आगे जाकर उस अर्ध राजू का भी अर्ध भाग का प्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि पूर्व स्थित सर्वद्वीप समुद्रों के व्यास को जोड़ने से जो प्रमाण प्राप्त होता है, उससे उत्तरवर्ती सर्व द्वीप समुद्रों के व्यास का प्रमाण एक लाख योजन अधिक होता है। इसीका स्पष्टीकरण करते हैं :—मान लीजिए कि स्वयम्भूरमण समुद्र का व्यास बत्तीस (३२) लाख योजन है। जम्बूद्वीप के अर्धव्यास सहित सर्वद्वीप समुद्रों के व्यास का प्रमाण जोड़ने पर निम्नलिखित राशि उत्पन्न होती है :—जम्बूद्वीप का अर्धव्यास ५०००० योजन + २ लाख + ४ लाख + ८ लाख + १६ लाख + ३२ लाख = ६२५०००० (साढ़े बासठ लाख) हुआ, यही (६२५०००० योजन) कल्पना किए हुए राजू का प्रमाण है। इसको आधा करने पर (१२५००००/२) ३१२५००० योजन प्रमाण होता है। यही दूसरी बार अर्ध किया हुआ राजू का प्रमाण है। इन ३१२५००० योजनों में से पूर्व द्वीप समुद्रों के वलय व्यास ५०००० + २ लाख + ४ लाख + ८ लाख + १६ लाख = ३०५०००० को घटा देने पर (३१२५०००—३०५००००) स्वयम्भूरमण समुद्र की अभ्यन्तर वेदी से ७५००० योजन आगे जाकर अर्ध राजू का भी अर्ध प्रमाण प्राप्त होता है। आधा किया हुआ जो राजू का ३१२५००० प्रमाण है, उसे पुनः आधा करने पर (३१२५०००/२) = १५६२५०० (पन्द्रह लाख बासठ हजार पांच सौ) योजन तीसरी बार आधा किया हुआ राजू का प्रमाण है। इसमें से पूर्व द्वीप समुद्रों के वलय व्यास ५०००० + २ ला० + ४ लाख + ८ लाख = १४५०००० को घटा देने पर (१५६२५००—१४५००००) = ११२५०० (एक

लाख बारह हजार पाँच सौ) योजन शेष रहे, अतः स्वयम्भूरमण द्वीप की अभ्यन्तर वेदी से ११२५०० योजन आगे जाकर तृतीयवार अर्ध किया हुआ राजू का प्रमाण प्राप्त होता है।

इसी प्रकार पूर्व पूर्व प्रमाण को अर्ध अर्ध करते हुए उसमें से पूर्व पूर्व के वलयव्यास को घटाने पर जो जो प्रमाण प्राप्त हो वही चतुर्थादि बार अर्ध किये हुए राजू क्षेत्र का प्रमाण जानना चाहिए।

पुणरवि छिण्णो पच्छिमदीवब्भंतरिमवेदियापरदो ।
सगदलजुदपण्णचरिसहस्समोसरिय णिवडदि सा ॥ ३५४ ॥

पुनरपि छिन्नायां पश्चिमद्वीपाभ्यन्तरवेदिकापरतः ।
स्वदलयुतपञ्चसप्ततिसहस्रमपसृत्य निपतति सा ॥ ३५४ ॥

पुण । द्वितीयवारच्छिन्नरज्ज्वां ३१२५००० पुनरपि छिन्नायां १५६२५०० पश्चिमद्वीपाभ्यन्तर-वेदिकापरतो गत्वा स्वकीयदल ३७५०० युक्तपञ्चसप्ततिसहस्र ११२५०० मपसृत्य निपतति सा रज्जुः ॥ ३५४ ॥

गाथार्थ :—पुनः आधा किया हुआ राजू का प्रमाण पिछले द्वीप की अभ्यन्तर वेदी से अपने अर्ध भाग सहित ७५००० (पचहत्तर हजार) योजन अर्थात् (७५०००+३७५००)=११२५०० योजन दूर जाकर पड़ता है ॥ ३५४ ॥

विशेषार्थ :—अङ्क संदृष्टि में दूसरी बार छिन्न (अर्ध) किया हुआ राजू का प्रमाण ३१२५००० योजन था, इसे पुनः आधा करने पर ($\frac{3125000}{2}$)=१५६२५०० योजन हुआ। यह प्रमाण पिछले द्वीप की अभ्यन्तर वेदी के पर भाग से आगे उस द्वीप में अपने अर्ध भाग [($\frac{75000}{2}$)=३७५०० योजन] सहित ७५००० योजन अर्थात् (७५०००+३७५०० यो०)=११२५०० योजन दूर जाकर पड़ता है।

दलिदे पुण तदणंतरसायरमज्झंतरत्थवेदीदो ।
पडदि सदलचरणण्णिदपण्णत्तरिदससयं गत्ता ॥ ३५५ ॥

दलितं पुनः तदनन्तरसागरमध्यान्तरस्थवेदीतः ।
पतति स्वदलचरणान्वितपञ्चसप्ततिदशशतं गत्वा ॥ ३५५ ॥

दलिदे । तस्मिन् तृतीयवारछिन्नखण्डे १५६२५०० दलिते ७८१२५० पुनस्तदनन्तरसागराभ्यन्तर-स्थवेदिकापरतः पतति स्वकीयदल ३७५०० चतुर्थांशाभ्यां १८७५० अन्वितपञ्चसप्ततिदशशतं १३१२५० गत्वा ॥ ३५५ ॥

गाथार्थ :—पुनः आधा किया हुआ राजू का प्रमाण उस द्वीप के बाद वाले समुद्र की अभ्यन्तर वेदी से आगे अपने अर्ध और चतुर्थ भाग से सहित ७५००० योजन दूर जाकर पड़ता है ॥ ३५५ ॥

विशेषार्थ :—अङ्क संदृष्टि में तीसरी बार आधा किया हुआ राजू का प्रमाण १५६२५०० योजन था। इसे पुनः अर्ध करने पर ($\frac{1562500}{2}$)=७८१२५० योजन प्राप्त हुआ। यह ७८१२५०

योजन प्रमाण अहीन्द्रवर नामा समुद्र की अभ्यन्तर वेदी से आगे उस समुद्र में ७५००० योजन, इसका आधा ३७५०० यो० और इसका भी आधा (३७५००/२)=१८७५० योजन अर्थात् (७५०००+३७५००+१८७५० योजन)=१३१२५० योजन दूर जाकर पड़ता है।

इदि अब्भंतरतडदो सगदलतुरियट्ठमादिसंजुत्तं ।
पण्णत्तरिं सहस्सं गंतूण पडेदि सा ताव ।। ३५६ ।।

इति आभ्यन्तरतटतः स्वकदलतुर्याष्टमादिसंयुक्तम् ।
पञ्चसप्ततिसहस्रं गत्वा पतति सा तावत् ।। ३५६ ।।

इदि। इति अभ्यन्तरतटतः आरभ्य स्वकीयदल ७५०००/२ तुर्य ७५०००/(२×२), ७५०००/(२×२×२) अष्टमाद्यंशैः संयुक्तं पञ्चसप्ततिसहस्रं आविशत्वात् षोडशांश ७५०००/१६ द्वात्रिंशांश ७५०००/३२ इत्यर्धार्धक्रमेण गत्वा पतति सा रज्जुस्तावत् यावदेवमर्धार्धक्रमेणैकयोजनमुद्धरति ते पञ्चसप्ततिसहस्रच्छेदा इयन्तः १७ अवशिष्टैकयोजनमंगुलं कृत्वा ७६८००० यावदेकांगुलमुद्धरति तावत्त्वंगुलेषु छिन्नेषु इयन्तश्छेदा १९ तांश्छेदान् सर्वान् १७+१९ संख्यातं कृत्वा (a) तत्संख्यातं अवशिष्टैकांगुलं सूच्यंगुलं कृत्वा तस्य छेदेषु। छे छे मिलितमिति (छे छे a) मनसि धृत्वा 'संखेज्जेति' गाथामाह ।। ३५६ ।।

गाथार्थ :— इस प्रकार अभ्यन्तर तट से अपने अर्ध भाग, चौथाई भाग और आठवें भाग आदि से सहित ७५००० हजार योजन आगे जाकर राजू का प्रमाण तब तक पड़ता है, जब तक अर्ध अर्ध करते हुए एक योजन रहता है ।। ३५६ ।।

विशेषार्थ :— इसीप्रकार अभ्यन्तर तट से आरम्भ कर ७५००० योजनों से सहित-७५०००/२, ७५०००/४, ७५०००/८, ७५०००/१६, ७५०००/३२ अर्ध अर्ध क्रम से जाता हुआ राजू तब तक पड़ता है, जब तक कि अर्ध अर्ध करते हुए एक योजन रह जाता है। जैसे—(उपर्युक्त गाथाओं में तीन बार अर्ध भाग किया जा चुका है) चतुर्थ बार अर्ध किये हुए अहीन्द्रवर नामक द्वीप के अभ्यन्तर तट से अपने ७५०००/२+७५०००/४+७५०००/८ से सहित ७५००० योजन अर्थात् ७५०००+३७५००+१८७५०+९३७५=१४०६२५ योजन आगे जाकर राजू का पाँचवाँ अर्धच्छेद पड़ता है।

पाँचवीं बार आधे किये देववर नामक समुद्र के अभ्यन्तर तट से अपना ७५०००/२+७५०००/४+७५०००/८+७५०००/१६ अर्थात् ७५०००+३७५००+१८७५०+९३७५+४६८७½=१४५३१२½ योजन आगे जाकर राजू पड़ता है।

छठवीं बार आधे किये देववर नामक द्वीप के अभ्यन्तर तट से अपना ७५०००/२+७५०००/४+७५०००/८+७५०००/१६+७५०००/३२ अर्थात् ७५०००+३७५००+१८७५०+९३७५+४६८७½+२३४३¾=१४७६५६¼ योजन आगे जाकर राजू पड़ता है। इसी प्रकार अर्ध अर्ध के क्रम से जाते हुए जहाँ एक योजन प्राप्त होता है, वहाँ ७५००० के १७ अर्धच्छेद हो जाते हैं। [इसका चित्रण अगले पृष्ठ में दर्शाया जा रहा है।] प्राप्त हुए इस एक योजन के अंगुल बनाने पर ७६८००० अंगुल हुए।

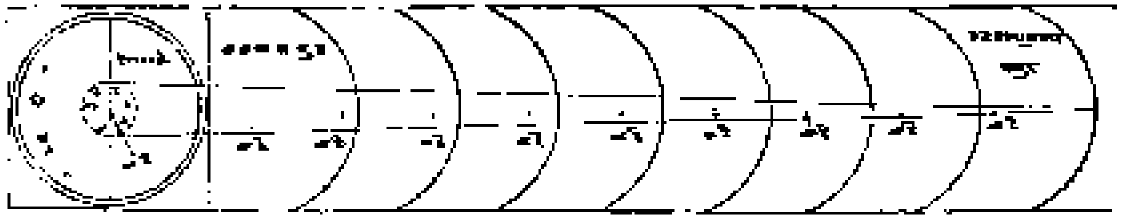

७५०००								
७५००० +	७५०००/२ =	११२५०० योजन						
७५००० +	७५०००/२ +	७५०००/४ =	१३१२५० यो०					
७५००० +	७५०००/२ +	७५०००/४ +	७५०००/८ =	१४०६२५ यो०				
७५००० +	७५०००/२ +	७५०००/४ +	७५०००/८ +	७५०००/१६ =	१४५३१२½ यो०			
७५००० +	७५०००/२ +	७५०००/४ +	७५०००/८ +	७५०००/१६ +	७५०००/३२ =	१४७६५६¼ यो०		
७५००० +	७५०००/२ +	७५०००/४ +	७५०००/८ +	७५०००/१६ +	७५०००/३२ +	७५०००/६४		
७५००० +	७५०००/२ +	७५०००/४ +	७५०००/८ +	७५०००/१६ +	७५०००/३२ +	७५०००/६४ +	७५०००/१२८	....

उपर्युक्त क्रमानुसार अर्ध अर्ध भाग करते हुए जब एक अंगुल प्राप्त होगा, तब ७६८००० अंगुलों के १९ अर्धच्छेद प्राप्त होते हैं। अर्थात् १९ बार अर्ध अर्ध करने पर एक अंगुल अवशेष रहता है। इन १७ और १९ अर्धच्छेदों को मिला देने पर जो लब्ध प्राप्त होता है, उसका नाम संख्यात है। तथा प्राप्त हुए १ अंगुल के प्रदेश बनाकर उन्हें उपर्युक्त क्रम से अर्ध अर्ध करते हुए जितनी बार में एक प्रदेश प्राप्त हो उतने ही सूच्यंगुल के अर्धच्छेद हैं। इन सूच्यंगुल के अर्धच्छेदों में उपर्युक्त रूप से प्राप्त हुए संख्यात का प्रमाण मिलाने के लिए ही 'संखेज्जरूवसंजुद' इत्यादि गाथा कहते हैं।

संखेज्जरूवसंजुदसूईअंगुलछिदिप्पमा जाव ।
गच्छंति दीवजलही पडदि तदो सादृलक्खेण ॥३५७॥

संख्येयरूपसंयुतसूच्यंगुलछेदप्रमा यावत् ।
गच्छन्ति द्वीपजलधयः पतति ततः सार्धलक्षेण ॥ ३५७ ॥

संखेज्ज । संख्यातरूपसंयुतसूच्यंगुलछेदप्रमाणं यावत्तावद्गच्छन्ति ते द्वीपजलधयः तच्छेदसमाप्तौ ततः परं सर्वेषु द्वीपोदधिषु सार्धलक्षमेव गत्वा गत्वा पतति। एतत्कथमितिचेत्, अन्तधणं ७५००० गुण २ गुणियं १५०००० आदिविहीणं १५०००० रूऊणुत्तरभजियं । इति कृते भवति । ७५००० । $\frac{७५०००}{२}$ । $\frac{७५०००}{२ \times २}$ । .... । पू० २ । $\frac{३}{२}$ । $\frac{३}{४}$ । $\frac{३}{८}$ । .... । ४ । २ । १ अर्धसंदृष्टिः । तथा अङ्कसंदृष्टिः ६४ । ३२ । १६ । ८ । ४ । २ । १ । एवं सार्धलक्षक्रमेणैव लवणसमुद्रपर्यन्तमसंख्यातद्वीपसमुद्रं गत्वा ॥ ३५७ ॥

गाथार्थ :— जब तक संख्यातरूपों से सहित सूच्यंगुल के अर्धच्छेदों का प्रमाण प्राप्त होता है तभी तक वे द्वीपसमुद्र पूर्वोक्तक्रमानुसार अभ्यन्तर-वेदी से आगे जाकर राजू के पतन रूप क्षेत्र को प्राप्त होते हैं, उसके पीछे सर्वद्वीप समुद्रों में डेढ़ डेढ़ लाख (१५००००) योजन आगे आगे जाकर राजू पड़ता है ॥ ३५७ ॥

विशेषार्थ :— सूच्यंगुल के अर्धच्छेदों में संख्यात जोड़ने से जो प्रमाण प्राप्त होता है, उतने ही द्वीपसमुद्रों में पूर्वोक्त अर्ध-अर्धानुक्रम से राजू का पतन होता है, उसके बाद सर्व द्वीप समुद्रों में डेढ़ डेढ़ लाख योजन आगे जा जाकर ही राजू का पतन होता है। इसी को स्पष्ट करते हैं :— "अन्तधणं गुणगुणियं, आदिविहीणं रूऊणुत्तर भजियं"— इस करणसूत्रानुसार अन्तधन ७५००० और गुणकार २ है। ७५००० में २ का गुणा करने से १५०००० (डेढ़ लाख) होता है, इसमें से आदिविहीणं अर्थात् आदि धन एक प्रदेश घटा कर (क्योंकि आदि धन एक प्रदेश है) रूऊणुत्तर भजियं अर्थात् एक हीन गुणकार (२ – १ = १) का भाग देने पर एक प्रदेश हीन डेढ़ लाख योजन प्राप्त होते हैं। जैसे :—

(७५००० यो० × २ – १ प्रदेश ÷ (२ – १) = १) = १ प्रदेश हीन डेढ़ लाख लब्ध प्राप्त हुआ, अतः संख्यात सहित सूच्यंगुल के अर्धच्छेदों के प्रमाण बराबर द्वीप समुद्र हुए। अन्त में अभ्यन्तर वेदी से इतने आगे जाकर राजू पड़ता है। अर्ध अर्ध की अर्थसंदृष्टि निम्न प्रकार है :—

मान लीजिए—सूच्यंगुल का प्रतीक २ है, जिसके अर्धच्छेद करते करते चार प्रदेश प्राप्त हो जाते हैं।

योजन—७५०००, $\frac{७५०००}{२}$, $\frac{७५०००}{४}$, $\frac{७५०००}{८}$ ....

सूच्यंगुल—२, $\frac{२}{२}$, $\frac{२}{४}$, $\frac{२}{८}$, $\frac{२}{१६}$ ....

प्रदेश—४, २, और १ इस प्रकार अर्ध अर्ध की अर्थ संदृष्टि हुई।

अङ्कसंदृष्टि में—६४, ३२, १६, ८, ४, २ और १ है।

इस प्रकार डेढ़ डेढ़ लाख योजन के क्रम से लवण समुद्र पर्यन्त असंख्यात द्वीप समुद्रों को जाकर क्या होता है, उसे कहते हैं :—

लवणे दुप्पडिदेक्कं जंबूए देजमादिमा पंच।
दीउवही मेरुसला पयदुवजोगी ण छच्चेदे ॥ ३५८ ॥

लवणे द्विः पतितः एकं जम्बौ देहि आदिमाः पञ्च।
द्वीपोदधयः मेरुसलाः प्रकृतोपयोगिनः न षट् चेते ॥ ३५८ ॥

लवणे लवणसमुद्रे द्विः छेदः पतितः तत्रैकं जम्बूद्वीपे देहि। तत्र छेदे आदिमाः पञ्च द्वीपोदधिच्छेदाः मेरुशलाका च षडेते प्रकृते ज्योतिर्बिम्बानयने उपयोगिनो न भवन्ति इत्यर्थोऽप-नेतव्यः ॥ ३५८ ॥

गाथार्थ :—लवण समुद्र में दो अर्धच्छेद पड़ते हैं। उन दो में से एक अर्धच्छेद जम्बूद्वीप का (एक लवण समुद्र का) है। आदि के पाँच द्वीप समुद्रों के पाँच अर्धच्छेद और मेरुशलाका का एक, ऐसे ये छह अर्धच्छेद प्रकृत में अर्थात् ज्योतिर्बिम्बों का प्रमाण लाने में उपयोगी नहीं है ॥ ३५८ ॥

विशेषार्थ :—लवण समुद्र में दो अर्धच्छेद पड़ते हैं, उनमें से एक अर्धच्छेद जम्बूद्वीप का मानना, क्योंकि जम्बूद्वीप का पचास हजार मिलाने पर ही दो लाख होते हैं। इन अर्धच्छेदों में जम्बूद्वीपादि पाँच द्वीप समुद्रों के पाँच अर्धच्छेद और मेरुशलाका (राजू को आधा करते समय जो प्रथम अर्धच्छेद कहा था उस) का एक, ऐसे ये छह अर्धच्छेद ज्योतिर्बिम्बों का प्रमाण लाने में कार्यकारी नहीं हैं, कारण कि तीन द्वीप और दो समुद्रों के ज्योतिर्बिम्बों का प्रमाण ३४६ गाथा में

कह चुके हैं, इसलिए ये पाँच अर्धच्छेद उपयोगी नहीं हैं, और मेरुशलाका रूप प्रथम अर्धच्छेद में कोई द्वीप समुद्र नहीं आया इसलिए वह भी यहाँ उपयोगी नहीं है।

कुत्रेति चेदाह—

> तियहीणसेढिछेदणमेत्तो रज्जुच्छिदी हवे गच्छो।
> जंबूदीवच्छिदिणा छरूवजुत्तेण परिहीणा ॥ ३५९ ॥
>
> त्रिकहीनश्रेणिछेदनमात्रः रज्जुछेदः भवेत् गच्छः।
> जम्बूद्वीपछेदेन षड्रूपयुक्तेन परिहीनः ॥ ३५९ ॥

तिय। त्रिहीनश्रेणिच्छेदनमात्रो छे छे छे ३—३ रज्जुच्छेदः तस्मिन् जम्बूद्वीपस्याभ्यन्तरे अधिकं पञ्चाशत्पञ्चाशत्सहस्राणि इति मिलित्वा एकलक्षयोजनानि तेषां छेदान् १७ तद्गताङ्गुल ७६८००० छेदान् १९ मेरुमध्यैकच्छेदं च मेलयित्वा तत् सर्वमेकसंख्यातं a कृत्वा तेन a सहितसूच्यंगुलच्छेदान् a छे छे अपनयनत्रैराशिकविधिना अपनीते द्वीपसमुद्राणां संख्या भवति। कथमपनयनत्रैराशिकविधिरिति चेत्। एतावत्। प्र = छे छे ३ गुणकारं प्रवर्त्य यदि गुण्ये $\frac{छे}{a}$ एकं फल = १ रूपमपनीयेत एतावत् इ० छे छे गुणकारं प्रवर्त्य कियदपनीयते इति त्रैराशिकेन फलगुणितामिच्छां प्रमाणेन विभज्य गुणकार छे छे a भागहारयोः छे छे ३ पल्य छेदवर्ग पल्यच्छेदवर्गेण सदृशं प्रवर्त्य अधस्तनं छे छे ३ यावद्भागेनैकं उपरितनं छे छे a तावद्भागेन साधिकमिति[1] अपवर्त्य $\frac{१}{३}$ एतद्रज्जुच्छेदस्य गुण्ये छे छे छे ३—३ अपनयेत् छे छे छे ३—३ —$\frac{१}{३}$ इदमेव द्वीपसमुद्राणां संख्यानं भवति। इदानीं प्रकृतमनुसरयाति। जम्बूद्वीपच्छेदेन षड्रूपयुक्तेन छे a छे परिहीनो रज्जुच्छेद एव समस्तद्वीपसमुद्रगतचन्द्रादिबिम्बप्रमाणानयने गच्छो भवति ॥ ३५९ ॥

ये छह अर्धच्छेद आगे कहाँ घटाएंगे, उसे कहते हैं—

गाथार्थ :—जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेदों में से तीन कम करने पर राजू के अर्धच्छेदों का प्रमाण प्राप्त होता है। जम्बूद्वीप के अर्धच्छेदों में उपर्युक्त छह अर्धच्छेद मिलाने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे राजू के अर्धच्छेदों में से घटाने पर जो शेष रहे वही ज्योतिर्बिम्बों की संख्या प्राप्त करने के लिए गच्छ का प्रमाण होता है ॥ ३५९ ॥

विशेषार्थ :—जगच्छ्रेणी ७ राजू लम्बी है, जिसमें समस्त द्वीप समुद्रों को अपने गर्भ में धारण करने वाले तिर्यग् लोक का आयाम एक राजू है। ७ राजू का तीन बार उत्तरोत्तर अर्ध

१ साधिकमेकं (ब०, प०)।

अर्ध करने पर एक राजू प्राप्त होता है, अतः जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेदों में से ३ अर्धच्छेद कम किये गये हैं जिसका प्रतीक चिह्न छे छे—३ है।

जम्बूद्वीप की वेदी से मेरु के मध्य तक ५०००० योजन, तथा उक्त वेदी से लवण समुद्र में द्वितीय अर्धच्छेद तक ५०००० अर्थात् जम्बूद्वीप से अभ्यन्तर ५०००० योजन और बाह्य ५०००० योजन दोनों मिलकर (५० हजार + ५० हजार) = १००००० योजन होते हैं, जिनको उत्तरोत्तर १७ बार अर्ध अर्ध करने पर एक योजन प्राप्त होता है। इस एक योजन के ७६८००० अंगुल होते हैं, इन्हें उत्तरोत्तर १९ बार अर्ध अर्ध करने पर एक अंगुल प्राप्त होता है। इन (१७ + १९ + १) को जोड़ देने पर संख्यात प्राप्त होते हैं, जिसका चिह्न a है। राजू का प्रथमवार अर्ध करने पर प्रथम अर्धच्छेद मेरु के नीचे पड़ा था अतः एक लाख योजन के अर्धच्छेद (१७ + १९ + a + अंगुल के अर्धच्छेद अर्थात् अवशिष्ट एक अंगुल के प्रदेश बना कर उनके अर्धच्छेद) छे a छे होते हैं। जम्बूद्वीप भी एक लाख योजन का है, अतः गाथा में एक लाख योजन के अर्धच्छेदों को जम्बूद्वीप के अर्धच्छेद कहा गया है।

गाथा ९८ के अनुसार अंगुल के अर्धच्छेद पल्य के अर्धच्छेदों की कृति (वर्ग) के बराबर हैं। पल्य के अर्धच्छेदों की कृति को संक्षेप में प० छे०^{2} अथवा छे छे भी लिखा जा सकता है क्योंकि पल्य के अर्धच्छेदों का चिह्न छे है, अतः जम्बूद्वीप के अर्धच्छेद = ३७ अधिक प० छे^{2} अथवा संख्यात अधिक प० छे^{2} अथवा छे छे a है।

गाथा १०८ की टीकानुसार तथा गाथा १०७ व १०९ के अनुसार जगच्छ्रेणी (७ राजू) के अर्धच्छेद $\frac{\text{प० छे}}{\text{असंख्यात}}$ × साधिक प० छे^{2} × ३ होते हैं, क्योंकि पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग $\left(\frac{\text{प० छे}}{\text{असं०}}\right)$ को विरलन कर उस पर घनांगुल देय देकर परस्पर गुणित करने से जगच्छ्रेणी उत्पन्न होती है और गाथा १०७ के अनुसार देयराशि घनांगुल के अर्धच्छेद (प० छे^{2} × ३) को विरलन राशि $\left(\frac{\text{प० छे}}{\text{असं०}}\right)$ से गुणा करने पर जगच्छ्रेणी के ($\frac{\text{प० छे०}}{\text{असं०}}$ × प० छे^{2} × ३) अर्धच्छेद होते हैं। इनमें से ३ अर्धच्छेद कम करने पर ($\frac{\text{प० छे०}}{\text{असं०}}$ × प० छे^{2} × ३ — ३) एक राजू के अर्धच्छेद होते हैं। इनमें से जम्बूद्वीप के (संख्यात अधिक प० छे^{2}) अर्धच्छेद कम कर देने से द्वीप समुद्रों की संख्या प्राप्त हो जाती है।

इसको घटाने के लिए अपनयन त्रैराशिक विधि निम्न प्रकार है :—

प० छे^{2} × ३ × $\frac{\text{प० छे}}{\text{असं०}}$ में से प० छे^{2} × ३ को कम करने के लिए गुणाकार राशि $\frac{\text{प० छे}}{\text{असं०}}$ में से एक कम कर देना चाहिए। जैसे ७ × ६ में से यदि ७ कम करने हों तो गुणाकार ६ में से एक अङ्क

कम कर देने से [{७ × (६ — १) } = (७ × ५) = ४२ — ३५ = ७] कम हो जाते हैं जबकि प० छे² × ३ कम करना है तो $\frac{\text{प० छे०}}{\text{असं०}}$ में एक अङ्क कम होता है। यदि साधिक प० छे०² कम करने हैं तो $\frac{\text{प० छे०}}{\text{असं०}}$ में से कितने अङ्क कम होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने से $\frac{\text{साधिक प० × छे}^2 \times १}{\text{प० छे}^2 \times ३}$ = $\frac{\text{साधिक१}}{३}$ प्राप्त होते हैं। अर्थात् $\frac{\text{प० छे}}{\text{असं०}}$ में से $\frac{\text{साधिक १}}{३}$ कम होंगे। इसप्रकार $\left[\left(\frac{\text{प० छे०}}{\text{असं०}} - \frac{\text{साधिक १}}{३}\right) \times (\text{प० छे}^2 \times ३)\right]$—जम्बूद्वीप के अर्धच्छेद। यदि असंख्यात का प्रतीक चिह्न a हो तो यह संख्या निम्न प्रकार से लिखी जा सकती है। यथा—$\left(\frac{\text{छे}}{a} - \frac{१}{३}\right)$ × छे छे × ३)—छे छे a। अर्थात् एक राजू के अर्धच्छेदों में से छह अधिक जम्बूद्वीप के अर्धच्छेद (छे a छे) कम करने से समस्त द्वीप समुद्र गत चन्द्र सूर्यों की संख्या प्राप्त करने के लिए गच्छ का प्रमाण होता है।

अथ ज्योतिर्बिम्बसंख्यानयनगच्छस्यादिमाह—

पुक्खरसिंधुभयधणं चउघणगुणसयछहत्तरीपभवो ।
चउगुणपचओ रिणमवि अट्ठकदिमुहमुवरि दुगुणकमं ॥ ३६० ॥

पुष्करसिंधूभयधनं चतुर्घनगुणशतषट्सप्ततिः प्रभवः ।
चतुर्गुणप्रचयः ऋणमपि अष्टकृतिमुखमुपरि द्विगुणक्रमं ॥ ३६० ॥

पुक्खर। पुष्करसमुद्रस्याद्युत्तरधनमानेतव्यं। कथमिति चेत्। 'आदो आदीदो दुगुण दुगुण कमे' इति न्यायेन पुष्करोत्तरार्धस्यादितः १४४ पुष्करसिन्धोरादिर्द्विगुणा १४४ × २ भवति। तं मुखं कृत्वा पद ३२ हत मुखं १४४ × २ × ३२ मुखस्थितेन द्विकेन २ पदं ३२ गुणयित्वा स्थापिते १४४ × ६४ आदिधनं स्यात्। व्येकपद ३१ मर्ध ३१/२ घ्नचय ४ गुणो गच्छः ३१/२ × ४ × ३२ अत्राधस्तनद्विकमुपरितनचतुष्केणापवर्त्य अवशिष्टद्विकेन पदे गुणिते एवं ३१ × ६४ अस्मिन्नुत्तरधने ऋणनिक्षेपार्थं उत्तरधनगतगुणकारस्य ३१ × ६४ ऋण १ × ६४ गुणकारं ६४ सदृशं प्रदर्श्य १ × ६४ आत्मप्रमाणैकरूपं ऋणं निक्षिप्य ३२ × ६४ इदमप्यादिधने १४४ × ६४ तथा सादृश्यं प्रदर्श्य चतुरुत्तर-चत्वारिंशच्छतरूपे १४४ × ६४ आदिधनगुण्ये द्वात्रिंशद्रूपोत्तरधनगतगुण्ये ३२ × ६४ मिलिते सति चतुर्घनगुणितषट्सप्तत्युत्तरशतरूप १७६ × ६४ पुष्करसिंधूभयधनमेव ज्योतिर्बिम्बानयनगच्छस्य प्रभवः स्यात्। एवमुत्तरत्र वारुणीवरद्वीपादिषु सर्वत्र प्राक्तनादितः १४४ × २ द्विगुणक्रमेण स्थितं मुखं १४४ × २ × २ पदहतं कृत्वा १४४ × २ × २ × ६४ द्विकद्वयमन्योन्यं संगुण्य चतुःषष्टिरग्रे स्थापिते आदिधनं १४४ × ६४ × ४ × १ व्येकपदेत्यादिना उत्तरधनमप्यानीय ३१/२ × ४ × ६४ तस्मिन्नपवर्तितद्विकं

चतुः पङ्क्तिषु संस्थाप्य ६३×६४×२ निक्षिप्य अन्तिमधनगुणकारगुणितंकरूपं ६४×२ निक्षिप्य सर्वत्र चउरणगुणसयछहत्तरिणा भजितव्यमित्येतदर्थं द्वात्रिंशदवशिष्यते यथा तथा सम्मेल्य तद्वृद्धिकेन पूर्वद्धिकं संगुण्य ३२×६४×४ आदिधन १४४×६४×४ उत्तरधनयोः ३२×६४×४ मेलने १७६×६४×४ चतुर्गुणप्रचयो भवतीति ज्ञातव्यं। एवं सर्वत्र धनं चतुर्गुणोत्तरक्रमेण गच्छति। ऋणमपि अष्टकृतिमुखं उपर्युपरि द्विगुणोत्तरक्रमः च स्यात् ॥ ३६० ॥

अब ज्योतिर्बिम्बों की संख्या लाने के लिये जो गच्छ कहा है उसको आदि कहते हैं :—

गाथार्थ :—चार के घन (६४) से गुणित १७६ पुष्कर समुद्र का उभय (आदि+उत्तर) धन है, यही यहाँ प्रभव (मुख) है, और आगे प्रत्येक द्वीप-समुद्र में चतुर्गुण अर्थात् चौगुणा चौगुणा प्रचय (वृद्धि क्रम) है, तथा ऋण में भी आठ की कृति (६४) मुख है, और ऊपर ऊपर द्विगुण क्रम अर्थात् क्रम से दुगुणा दुगुणा प्रचय (वृद्धि क्रम) है ॥ ३६० ॥

विशेषार्थ :—जितने स्थानों में अधिक अधिक होता जाय, उन सब स्थानों की संख्या को पद या गच्छ कहते हैं। प्रथम स्थान को आदि, मुख या प्रभव कहते हैं। प्रति स्थान में जितना जितना अधिक होता है, उस अधिक के प्रमाण को प्रचय कहते हैं। वृद्धि के प्रमाण बिना आदि स्थान के प्रमाण के समान जो धन सर्व स्थानों में होता है, उसके जोड़ को आदि धन कहते हैं। आदि धन के बिना सर्व स्थानों में वृद्धि का जो प्रमाण है, उसके योग को उत्तर धन कहते हैं।

जैसे—४, ४×२=८, ८×२=१६, १६×२=३२, ३२×२=६४, ६४×२=१२८। इस प्रकार ४, ८, १६, ३२, ६४ और १२८ ये छह स्थान हैं, अतः गच्छ तो ६ है। प्रथम स्थान ४ है, अतः आदि ४ है। प्रत्येक स्थान दुगुना दुगुना होता गया है, अतः प्रचय दुगुना है। आदि के सदृश छहों स्थानों में कुल द्रव्य ४×६=२४ है, अतः आदि धन २४ है। दूसरे स्थान में (८—४)=४ की वृद्धि हुई है। तीसरे स्थान में (१६—४=१२) १२ की वृद्धि हुई है चौथे स्थान में (३२—४)=२८ की वृद्धि हुई है। पाँचवें स्थान में (६४—४)=६० की वृद्धि हुई है। छठवें स्थान में (१२८—४)=१२४ की वृद्धि हुई है, अतः वृद्धि धन ४, १२, २८, ६० और १२४ का योग २२८ उत्तर धन है।

पुष्कर समुद्र का आदि धन व उत्तर धन दोनों मिलकर (६४×१७६)—(८^{2}=६४) है। इसको निम्न प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है :—

बाह्य पुष्करार्ध द्वीप के आदि वलय में १४४ सूर्य हैं, और उससे दुगुने सूर्य (१४४×२) पुष्कर समुद्र के आदि वलय में हैं (गा० ३५०)। पुष्कर समुद्र का वलय व्यास ३२००००० (३२ लाख) योजन है, अतः उसमें ३२ वलय हैं। प्रत्येक वलय में चार चार की वृद्धि है। इस प्रकार

चतुः पङ्क्तिषु संस्थाप्य ६३ × ६४ × २ निक्षिप्य अर्धतद्गुणकारगुणितसंकलनं ६४ × २ निक्षिप्य सर्वत्र चउघणगुणसपग्गहसरिणा भवितव्यमित्येतदर्थं द्वात्रिंशदवशिष्यते यथा तथा सम्भेद्य तद्वृद्धिकेन पूर्वद्विकं संगुण्य ३२ × ६४ × ४ मादिधन ११० × ६४ × ४ उत्तरधनयोः ६६ × ६४ × ४ मेलने १७६ × ६४ × ४ चतुर्गुणप्रचयो भवतीति ज्ञातव्यं। एवं सर्वत्र धनं चतुर्गुणोत्तरक्रमेण गच्छति। ऋणमपि अष्टकृतिमुखं उपर्युपरि द्विगुणोत्तरक्रमः च स्यात् ॥ ३६० ॥

अब ज्योतिर्बिम्बों की संख्या लाने के लिये जो गच्छ कहा है उसको आदि कहते हैं :—

गाथार्थ :—चार के घन (६४) से गुणित १७६ पुष्कर समुद्र का उभय (आदि + उत्तर) धन है, यही यहाँ प्रभव (मुख) है, और आगे प्रत्येक द्वीप-समुद्र में चतुर्गुण अर्थात् चौगुणा चौगुणा प्रचय (वृद्धि क्रम) है, तथा ऋण में भी आठ की कृति (६४) मुख है, और ऊपर ऊपर द्विगुण क्रम अर्थात् क्रम से दुगुणा दुगुणा प्रचय (वृद्धि क्रम) है ॥ ३६० ॥

विशेषार्थ :—जितने स्थानों में अधिक अधिक होता जाय, उन सब स्थानों की संख्या को पद या गच्छ कहते हैं। प्रथम स्थान को आदि, मुख या प्रभव कहते हैं। प्रति स्थान में जितना जितना अधिक होता है, उस अधिक के प्रमाण को प्रचय कहते हैं। वृद्धि के प्रमाण बिना आदि स्थान के प्रमाण के समान जो धन सर्व स्थानों में होता है, उसके जोड़ को आदि धन कहते हैं। आदि धन के बिना सर्व स्थानों में वृद्धि का जो प्रमाण है, उसके योग को उत्तर धन कहते हैं।

जैसे—४, ४ × २ = ८, ८ × २ = १६, १६ × २ = ३२, ३२ × २ = ६४, ६४ × २ = १२८। इस प्रकार ४, ८, १६, ३२, ६४ और १२८ ये छह स्थान हैं, अतः गच्छ तो ६ है। प्रथम स्थान ४ है, अतः आदि ४ है। प्रत्येक स्थान दुगुना दुगुना होता गया है, अतः प्रचय दुगुना है। आदि के सदृश छहों स्थानों में कुल द्रव्य ४ × ६ = २४ है, अतः आदि धन २४ है। दूसरे स्थान में (८—४) = ४ की वृद्धि हुई है। तीसरे स्थान में (१६—४ = १२) १२ की वृद्धि हुई है चौथे स्थान में (३२—४) = २८ की वृद्धि हुई है। पाँचवें स्थान में (६४—४) = ६० की वृद्धि हुई है। छठवें स्थान में (१२८—४) = १२४ की वृद्धि हुई है, अतः वृद्धि धन ४, १२, २८, ६० और १२४ का योग २२८ उत्तर धन है।

पुष्कर समुद्र का आदि धन व उत्तर धन दोनों मिलकर (६४ × १७६)—(८² = ६४) है। इसको निम्न प्रकार से सिद्ध किया जा सकता है :—

बाह्य पुष्करार्ध द्वीप के आदि वलय में १४४ सूर्य हैं, और उससे दुगुने सूर्य (१४४ × २) पुष्कर समुद्र के आदि वलय में हैं (गा० ३५०)। पुष्कर समुद्र का वलय व्यास ३२००००० (३२ लाख) योजन है, अतः उसमें ३२ वलय हैं। प्रत्येक वलय में चार चार की वृद्धि है। इस प्रकार

मुख १४४ × २ और वलय ३२ इन दोनों का परस्पर में गुणा करने से (१४४ × २ × ३२ = १४४ × ६४) पुष्कर समुद्र के ३२ वलयों में आदि धन[1] प्राप्त होता है। एक कम गच्छ (३२ — १ = ३१) का आधा कर (३१/२) चय के प्रमाण ४[2] को गुणा करे (३१/२ × ४ = ३१ × २) जो प्राप्त हो, उसका गच्छ (३२) से गुणा करने पर (३१ × २ × ३२ = ३१ × ६४) उत्तर धन[3] प्राप्त हो जाता है। यदि उत्तर धन (३१ × ६४) में ६४ जोड़ दिये जांय और ६४ ही घटा दिये जांय तो उत्तर धन ज्यों का त्यों रहेगा, किन्तु आगामी द्वीप समुद्रों के सूर्यों का प्रमाण प्राप्त करने में सुविधा हो जायगी।

३१ × ६४ + १ × ६४ — ६४ = ३२ × ६४ — ६४ यह उत्तर धन का प्रमाण प्राप्त होता है। इसमें आदि धन १४४ × ६४ जोड़ देने से पुष्कर समुद्र का उभय धन (आदि व उत्तर दोनों धन) का प्रमाण १४४ × ६४ + ३२ × ६४ — (६४) = १७६ × ६४ — (६४) = १७६ × $४^{३}$ ऋण $८^{२}$ है। इसीलिये गाथा में "पुक्खर सिन्धुभय धणं चउघण गुण सयछहत्तरि रिणमवि अडकदि मुहमुवरि दुगुण कमं" ऐसा कहा गया है।

पुष्कर समुद्र के पश्चात् वारुणीवर द्वीप है। जिसका वलय व्यास ६४ लाख योजन है, अतः उसमें सूर्य चन्द्रमा के ६४ वलय हैं। गाथा में "पभओ" द्वारा यह बतलाया गया है कि पुष्कर समुद्र का जो उभय धन (आदिधन + उत्तर धन) १७६ × ६४ है वह वारुणीवर द्वीप का मुख है, और 'चउगुण पचओ' द्वारा यह बतलाया गया है कि १७६ × ६४ को चार से गुणा करने पर वारुणीवर द्वीप का कुल धन १७६ × ६४ × ४ ऋण ६४ × २ होता है। इसकी सिद्धि निम्न प्रकार है :—

गाथा ३५० के अनुसार पुष्कर समुद्र के आदि वलय में १४४ × २ सूर्यों की संख्या बतलाई है। उससे दुगुनी (१४४ × २ × २) वारुणीवर द्वीप के आदि वलय में (सूर्यों की संख्या) है। यह वारुणीवर द्वीप का मुख अर्थात् आदि है। वारुणीवर द्वीप में ६४ वलय हैं, अतः (१४४ × २ × २ × ६४ = १४४ × ४ × ६४) आदि धन का प्रमाण है, क्योंकि मुख १४४ × २ × २ को गच्छ (पद) ६४ से गुणा करने पर आदि धन प्राप्त होता है। इस प्रकार वारुणीवर द्वीप का आदि धन १४४ × ६४ × ४ प्राप्त होता है।

एक कम गच्छ (६४ — १ = ६३) के अर्ध भाग (६३/२) को प्रतिवलय वृद्धि के प्रमाण (४) स्वरूप प्रचय से गुणा करने पर ६३/२ × ४/१ = ६३ × २ प्राप्त होता है। इसको पद (गच्छ ६४) से गुणा कर ६३ × २ × ६४ में २ × ६४ जोड़ने और घटाने (ऋण करने) से (६३ × २ × ६४ + २ × ६४

---

१ "पदहतमुखादि धनं"। २ "वलयंवलयेसु चउ चउवड्ढी" गाथा ३५०।

३ "व्येकपदार्धघ्न चय गुणो गच्छ"।

ऋण ६४×२)=(६४×२×६४ ऋण ६४×२)=(२×३२×२×६४ ऋण ६४×२)=(३२×६४×४ ऋण ६४×२) उत्तर धन प्राप्त होता है।

आदि धन १४४×६४×४+उत्तर धन (३२×६४×४ ऋण ६४×२) को जोड़ने से १७६×६४×४ ऋण ६४×२ होता है। जो पुष्कर समुद्र के धन १७६×६४ से चौगुना और ऋण ६४ से दुगुना है। इसलिये गाथा में "चउगुण पचओ, रिणमवि दुगुण कमं" कहा गया है।

इस प्रकार आगे आगे प्रत्येक द्वीप समुद्र में धन चौगुना होता गया है और ऋण दुगुना होता गया है।

अथैवमादि १७६×६४ उत्तर ४ गच्छ छे/८ छे छे ३ मानीय तत्सङ्कलितधनमानयन् सर्वज्योतिर्बिम्बानयनप्रकारमाह—

आणिय गुणसंकलिदं किंचूणं पंचठाणसंठविदं ।
चंदादिगुणं मिलिदे जोइसबिंबाणि सव्वाणि ॥ ३६१ ॥

आनाय्य गुणसंकलितं किञ्चिदूनं पञ्चस्थानसंस्थापितम् ।
चन्द्रादिगुणं मिलिते ज्योतिष्कबिम्बानि सर्वाणि ॥ ३६१ ॥

आणिय । 'पदमेत्ते गुणयारे' इत्यादिना पदगतोपरितनराशि छे/८ × छे × छे × ३ मात्रगुणकारद्विके २×२ अन्योन्यं गुणिते सति 'अण्णोण्णगुणे गुणे रासी' इति न्यायेन श्रेणिर्भवति। तन्मात्रगुणकारापरद्विके गुणिते अपरा श्रेणिर्भवति। पदगताधस्तनराशि ३ गतैकलक्षयोजनछेद १७ मात्रद्विकद्वये परस्परं गुणिते लक्षवर्गो भवति १ल×१ल, तद्गतांगुल ७६८००० छेद १९ मात्रद्विकद्वये अन्योन्यं गुणिते अंगुलवर्गो भवति। ७६८०००×७६८०००। सूच्यंगुलछेदमात्रद्विकद्वये अन्योन्यं २×२ गुणिते प्रतरांगुलो ४ भवति। तद्गतषट्रूपद्विकद्वयेऽन्योन्यं गुणिते चतुःषष्टिवर्गो भवति ६४×६४ तद्गतत्रिकमात्रद्विकद्वये अन्योन्यं गुणिते सप्तवर्गो भवति ७×७, एवमात्रगुणकारहृतराशावेकस्मिन्रूपे अपनीते रूपन्यूनगुणकारेण ३ हृते मुखेन १७६×६४ गुणिते च सङ्कलितधनं भवतीति

= × १७६ × ६४ / ४×७६८०००×७६८०००×१ल×१ल×६४×६४×७×७×३ एवमेव ऋणसंकलितधनमप्यानेतव्यं।

६४— / २×७६८०००×१ल×७×६४×१ संकलितधनराशिस्योपरितनबहुसप्तशिवालं १७६ अधस्तनचतुःषष्ट्या ६४ सह षोडशभिरपवर्तनीयं। उपरितनचतुःषष्टि ६४ अधस्तनचतुःषष्ट्या ६४ सह तावतैव ६४ अपवर्तयेत्। अंगुलगतषट्शून्यानि लक्षगतपञ्चशून्यैः सह षोडशशून्यानि पृथक् कृत्वा स्थापयेत्। अंगुला-

कवर्गं त्रिभिः सम्भेद्यः शेषवर्गस्पण्णवर्गमन्योन्यं गुणिते पण्णट्ठी स्यात् । अथस्तनत्रिकत्रयमन्योन्यं गुणयित्वा २७ तेन सप्तवर्गं ४९ संगुण्य जातं १३२३ पश्चादवशिष्टचतुष्केण गुणयित्वा ५२९२ तस्मिन् तानि शून्यानि मेलयेत् $$\frac{\text{= × ११}}{\text{४ × ६५५३६ × ५२९२००००००००००००००००}}$$ एवमानीते गुणसंकलिते ।

जम्बूद्वीपादारभ्य "दो दो वग्गं" इत्याद्युक्तं । चन्द्राद्यङ्कं सर्वं २ । ४ । १२ । ४२ । ७२ । मेलयित्वा १३२ तस्मिन् पुनः पुष्करोदारार्धगतचन्द्राणां संकलितधनं "पदमेगेण विहीणं ७ दुभाजिदं $\frac{७}{२}$ उत्तरेण संगुणिद $\frac{७}{२}$ × ४ अपवर्त्य १४ प्रभव १४४ जुदं १५८ पद ८ गुणिदं १२६४ इत्यानीय मेलयित्वा १३९६ । पञ्चसु स्थानेषु संस्थाप्य १३९६ । १३९६ । १३९६ । १३९६ । १३९६ । चन्द्रादिप्रमाणेन १ । १ । ८८ । २८ । ६६९७५०००००००००००००० गुणयित्वा लब्ध १३९६ । १३९६ । १२२८४८ । ३९०८८ । ९३४९७००००००००००००००० परस्परं संयोज्य ९३४९७००००००००००००००० १६४७२८ इदं ऋणसंकलितधनेन समच्छेदं कृत्वा ९३४९७०००००००००००००१६४७२८ × सू २ × ७६८००० × १ल × ६४ × ७ × १ ÷ सू २ × ७६८००० × १ल × ६४ × ७ × १ एतत्सर्वं संख्यातं सूच्यंगुलं कृत्वा सू २ ८ । ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं भवतीति न्यायेन ऋणसंकलितधनमपनयेत्—

$$\frac{\text{(६४—)—(२ ८)}}{\text{२ × ७६८००० × १ल × ७ × ६४ × १}}$$ एवम्भूतऋणसंकलितधनमंकधनेभ्यः सह ऋणसहितधनसंकलितं समानछेदं कृत्वा—

$$\frac{\text{— × सू २ × ६४ × ७६८००० × १ल × ७ × ६४ × ३}}{\text{४ × ७६८००० × ७६८००० × १ल × १ल × ७ × ७ × ६४ × ६४ × ३}}$$ तस्य सूच्यंगुलव्यतिरिक्तगुणकारं सर्वं संख्यातं कृत्वा तत्संख्यातसूच्यंगुलगुणकारमध्ये—सू २ ८ संकलितधनैकधनेभ्यः साम्यं प्रदर्श्य तत्रैवापरस्यां श्रेण्यामपनीते किञ्चिन्न्यूनं भवति $$\frac{\text{(= - — × २ ८) × ११}}{\text{४ × ६५= × ५२९२००००००००००००००००}}$$

एतत्पञ्चसु स्थानेषु संस्थाप्य चन्द्रादिप्रमाणेन गुणयित्वा—

$$\frac{\text{(= - — × २ ८) × ११ × १}}{\text{४ × ६५= × ५२९२ × १६ शून्य}} \Bigg\| \frac{\text{(= - — × २ ८) × ११ × १}}{\text{४ × ६५= × ५२९२ × १६ शून्य}} \Bigg\| \frac{\text{(= - — × २ ८) × ११ × ८८}}{\text{४ × ६५= × ५२९२ × १६ शून्य}}$$

$$\frac{\text{(= - — × २ ८) × ११ × २८}}{\text{४ × ६५= × ५२९२ × १६ शून्य}} \Bigg\| \frac{\text{(= - — × २ ८) × ११ × ६६९७५ × १४ शून्य}}{\text{४ × ६५= × ५२९२ × १६ शून्य}}$$ सम्मिलिते

$$\frac{\text{=७३६७२५०००००००००००१२९८}}{\text{४ × ६५= × ५२९२००००००००००००००००}}$$ अत्र स्थानसदृशापवर्तन्यायेन विंशतिस्थानापवर्त्यं

★ इयं ज्योतिर्बिम्बसंख्या । पश्चात् त्रैराशिककरणे बिम्बसंख्या भवन्ति । कथमिति चेत् ? संख्यात-

जीवस्य प्र० = a एकबिम्बफले १ इच्छा: फ० $\frac{=}{४ \times ६५ =}$ कियल्लब्धं बिम्बसंख्या भवति

$\frac{=}{४ \times ६५ = \times a}$ । *[1] इदं मनसि कृत्य "वेसदछप्पण्णंगुलकदिहिदपदरस्स" इत्याद्युक्तं । एतदेव असंख्यातद्वीपसमुद्रगतसर्वज्योतिर्बिम्बप्रमाणं स्यात् ॥ ३६१ ॥

इस प्रकार आदि १९६ × ६४, उत्तर ४, गच्छ एक राजू के अर्धच्छेद ऋण छह अधिक जम्बूद्वीप के अर्धच्छेद होते हैं। इन तीनों के द्वारा संकलन रूप धन को प्राप्त करते हुए सर्व ज्योतिर्बिम्बों का प्रमाण लाने के लिए विधान कहते हैं—

गाथार्थ :—गुणसंकलन प्राप्त करके कुछ कम गुणसङ्कलन पाँच स्थानों पर पृथक् पृथक् रख कर चन्द्रमादि की संख्या से गुणा करके जो प्राप्त हो उन्हें परस्पर जोड़ देने से सर्व ज्योतिषबिम्बों का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ३६१ ॥

विशेषार्थ :—ज्योतिषबिम्बों की संख्या प्राप्त करने के लिए गाथा ३५६ के अनुसार गच्छ का प्रमाण जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद—३—जम्बूद्वीप के अर्धच्छेद—६ होता है। ऋण को पृथक् स्थापित करने से गच्छ जगत्श्रेणी के अर्धच्छेद प्रमाण रह जाता है। गाथा ३६० में धनराशि का गुणकार ४ अर्थात् २ × २ बतलाया था। गाथा २३१ के अनुसार गच्छ (जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद) प्रमाण गुणकार ४ = (२ × २) का परस्पर गुणा करना चाहिये। जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद प्रमाण दो को परस्पर गुणित करने से जगच्छ्रेणी प्राप्त होती है। (देखो गाथा ७५)। २ × २ को जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद प्रमाण परस्पर गुणा करने से जगच्छ्रेणी × जगच्छ्रेणी अर्थात् जगत्प्रतर प्राप्त होता है।

ऋण राशि में जम्बूद्वीप अर्थात् १ लाख योजन के अर्धच्छेद भी हैं। एक लाख योजन के १७ अर्धच्छेद हैं, अत: १७ बार दो को परस्पर गुणा करने से १ लाख प्राप्त होता है (गा० ७५)। २ × २ को १ लाख के १७ बार परस्पर गुणा करने से १ ला० × १ ला० प्राप्त होते हैं। एक योजन शेष के ७६८००० अंगुल होते हैं। जिनके १९ अर्धच्छेद होते हैं, अत: १९ बार २ × २ को परस्पर गुणित करने से ७६८००० × ७६८००० होते हैं। शेष एक अंगुल के अर्धच्छेद प्रमाण २ × २ को परस्पर गुणा करने से अंगुल × अंगुल अर्थात् प्रतरांगुल प्राप्त होते हैं। ऋण राशि में ६ भी हैं, क्योंकि गाथा ३५८ के अनुसार वे अनुपयोगी हैं। ६ बार २ × २ को परस्पर गुणा करने से ६४ × ६४ प्राप्त होते हैं। ऋण राशि में ३ का अंक ७ के अर्धच्छेदों का प्रतीक है। जगच्छ्रेणी ७ राजू प्रमाण है, और तिर्यग्लोक एक राजू का है, अत: जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेदों में से ३ घटाने पर एक राजू के अर्धच्छेद

1 यह पाठ 'ब' प्रति में अधिक है। ताडपत्र प्रति में व मुद्रित प्रति में नहीं है।

प्राप्त होते हैं। इसीलिये ३ बार २ × २ को परस्पर गुणित करने से ७ × ७ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार ऋण राशि का प्रमाण निम्न प्रकार है:—१ ला० × १ ला० × ७६८००० × ७६८००० × प्रतरांगुल × ६४ × ६४ × ७ × ७ प्राप्त होता है।

गाथा १११ के अनुसार ऋण अर्धच्छेदों से प्राप्त राशि भागाहार होती है, अतः दोनों प्राप्त राशियाँ इस प्रकार लिखी जा सकती हैं :—

$$\frac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times \text{१ ला०} \times \text{१ ला०} \times ७६८००० \times ७६८००० \times ७ \times ७ \times ६४ \times ६४}$$

गा० २३१ के अनुसार गच्छ प्रमाण गुणकार में से १ कम करना चाहिये। अर्थात्—

$$\frac{\text{जगत्प्रतर} - १}{\text{प्रतरांगुल} \times \text{१ ला०} \times \text{१ ला०} \times ७६८००० \times ७६८००० \times ७ \times ७ \times ६४ \times ६४}$$ । पुनः इसको एक कम गुणकार अर्थात् (४ — १ = ३) से भाग देकर आदि (मुख) अर्थात् ६४ × १७६ से गुणा करना चाहिये (देखो गा० ३६०) अतः प्राप्त संख्या इस प्रकार होगी :—

$$\frac{१७६ \times ६४ \times \text{जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times \text{१ ला०} \times \text{१ ला०} \times ७६८००० \times ७६८००० \times ६४ \times ६४ \times ७ \times ७ \times ३}$$ यहाँ ६४ को ६४ से तथा ६४ व १७६ को १६ से अपवर्तन करने पर फल निम्न प्रकार प्राप्त होता है :—

$$\frac{११ \times \text{जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times १०००००००००० \times २५६ \times ३ \times १००० \times २५६ \times ३ \times १००० \times ४ \times ४९ \times ३}$$

$$= \frac{११ \times \text{जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times १०००००००००००००००० \times ६५५३६ \times २७ \times ४ \times ४९}$$

$$= \frac{११ \times \text{जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल} \times ६५५३६ \times ५२९२ \times १०००००००००००००००००}$$ यह गाथा ३६० में कथित धनराशि का संकलन है। गा० ३६० में कथित ऋणराशि का संकलन निम्न प्रकार है। मुख (आदि) ६४ है। गुणकार २ है और गच्छ पूर्वोक्त जगच्छ्रेणी के अर्धच्छेद — ३ — जम्बूद्वीप के अर्धच्छेद है हैं। गाथा-२३१ व १११ के अनुसार ऋणराशि का प्रमाण $\frac{६४ \times \text{जगच्छ्रेणी}}{\text{सूच्यंगुल} \times ७६८००० \times १००००० \times ६४ \times ७ \times १}$ प्राप्त होता है। इसमें से पुष्कर द्वीप तक के सूर्यों की संख्या (जो गा० ३४६ व ३५० की टीका में दी है) २ + ४ + १२ + ४२ × ७२ + १४४ + १५२ + १५६ + १६० + १६४ + १६८ + १७२ = १३९६ (देखो गा० ३४६ व ३५० की टीका) कम करना है।

$$\frac{\text{६४ × जगच्छ्रेणी}}{\text{सूच्यंगुल × ७६८००० × १००००० × ६४ × ७}} - \frac{\text{१३१६}}{\text{१}} =$$

$$\frac{\text{जगच्छ्रेणी — (१३१६ × सूच्यंगुल × ७६८००० × १००००० × ७)}}{\text{सूच्यंगुल × ७६८००० × १००००० × ७}}$$

$$= \frac{\text{जगच्छ्रेणी — संख्यात सूच्यंगुल}}{\text{सूच्यंगुल × ७६८००० × १००००० × ७}}$$ इस ऋण राशि को धन राशि में से घटाने पर गुण संकलन प्राप्त होता है। ऋणराशि में जो ऋण है वह धनराशि का धन हो जाता है, अतः ऋणराशि के ऋण संख्यात सूच्यंगुल को पृथक् कर देने से ऋणराशि $\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\text{सूच्यंगुल × ७६८००० × १००००० × ७}}$ प्रमाण रह जाती है। धन राशि व ऋणराशि को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है :—

$$\frac{\text{११ × जगत्प्रतर अथवा ११ × जगच्छ्रेणी × जगच्छ्रेणी}}{\text{प्रतरांगुल × ६५५३६ × ५२९२ × १०००००००००००००००००}} - \frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\text{सूच्यंगुल × ७६८००० × १००००० × ७}}$$

$$= \frac{\text{(११ × जगच्छ्रेणी × जगच्छ्रेणी) — (जगच्छ्रेणी × सूच्यंगुल × ७६८००० × ६४ × ३ × १००००० × ७)}}{\text{प्रतरांगुल × ६५५३६ × ५२९२ × १०००००००००००००००००}}$$

$$= \frac{\text{(११ × जगच्छ्रेणी × जगच्छ्रेणी) — (जगच्छ्रेणी × संख्यातसूच्यंगुल)}}{\text{प्रतरांगुल × ६५५३६ × ५२९२ × १०००००००००००००००००}}$$

$$= \frac{\text{(११ × जगच्छ्रेणी — संख्यात सूच्यंगुल) × जगच्छ्रेणी}}{\text{प्रतरांगुल × ६५५३६ × ५२९२ × १०००००००००००००००००}}$$

$$= \frac{\text{११ × जगत्प्रतर — संख्यात सूच्यंगुल गुणित जगच्छ्रेणी}}{\text{प्रतरांगुल × ६५५३६ × ५२९२ × १०००००००००००००००००}}$$ यह संकलन प्राप्त होता है, इसको पाँच जगह लिख कर एक स्थान को एक स्थान से गुणा करने पर चन्द्रमा की संख्या होती है। दूसरे स्थान को एक स्थान से गुणा करने पर सूर्यों की संख्या, तीसरे स्थान को ८८ से गुणा करने पर ग्रहों की संख्या, चौथे स्थान को २८ से गुणा करने पर नक्षत्रों की संख्या और पाँचवें स्थान को ६६९७५०००००००००००००००० से गुणित करने पर ताराओं की संख्या आती है। इन सब में किये जाने वाले गुणाकारों का जोड़ ६६९७५०००००००००००००००००+१+१+८८+२८=६६९७५०००००००००००००००० + ११८ होता है। इसको जगत्प्रतर के गुणकार ११ से गुणा करने पर ७३६७२५००००००००००००००० + १२९८ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार सर्व ज्योतिषबिम्बों की संख्या—

$$\frac{\text{(७३६७२५००००००००००००००००० + १२९८) × जगत्प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल × ६५५३६ × ५२९२ × १०००००००००००००००००}} \text{ अथवा } \frac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{६५५३६ प्रतरांगुल}} = \frac{\text{जगत्प्रतर}}{\text{(२५६ सूच्यंगुल)}^2}$$

होती है। इसमें ऋण को कम करने से संख्यातवाँ भाग हो जाता है, अतः गा० ३०२ में "बेसद छप्पण्णंगुलकदिहिद पदरस्स संख भागमिदे जोइस जिणिंद गेहे" अर्थात् जगत्प्रतर में २५६ अंगुल के वर्ग का भाग देने से जो प्रमाण प्राप्त हो उसके संख्यातवें भाग ज्योतिषबिम्बों में स्थित

जिन मन्दिर हैं ऐसा कहा गया है। यह असंख्यात द्वीप समुद्रों सम्बन्धी ज्योतिषी बिम्बों की संख्या है।

अथैकचन्द्रस्य परिवाराणां ग्रहनक्षत्रतारकाणां परिमाणं निवेदयति—

अडसीदट्ठावीसा गहरिक्खा तार कोडकोडीणं।
छावट्ठिसहस्साणि य णवसयपण्णत्तरिगि चंदे ॥३६२॥

अष्टाशीत्यष्टाविंशतिः ग्रहऋक्षयोस्तारा: कोटिकोटीनाम्।
षट्षष्टिसहस्राणि च नवशतपञ्चसप्ततिरेकस्मिन् चन्द्रे ॥३६२॥

अड। अष्टाशीत्यष्टाविंशति ८८ × २८ ग्रहनक्षत्रयोः तारकाणां प्रमाणं षट्षष्टिसहस्राणि नवशतपञ्चसप्ततिकोटीकोट्यः एकस्मिन् चन्द्रे परिवाराः ॥ ३६२ ॥

एक चन्द्रमा के परिवार में रहने वाले ग्रह, नक्षत्र और ताराओं का परिमाण कहते हैं—

गाथार्थ :—एक चन्द्रमा के परिवार में अठ्यासी ग्रह, अट्ठाईस नक्षत्र और छ्यासठ हजार नौ सौ पिचहत्तर कोड़ाकोड़ी तारागण हैं ॥ ३६२ ॥

विशेषार्थ :—एक चन्द्रमा के परिवार में ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र और ६६९७५०००००००००००००० तारागण हैं ॥ ३६२ ॥

अथाष्टाशीतिग्रहाणां नामान्यष्टभिर्गाथाभिर्निरूपयति—

कालविकालो लोहिदणामो कणयक्ख कणयसंठाणा
अंतरदो तो कचयव दुंदुभि रत्तणिहरूवणिब्भासो ॥ ३६३ ॥

णीलो णीलब्भासो अस्सस्सट्ठाण कोस कंसादि।
वण्णा कंसो संखादिमपरिमाणो य संखवण्णोवि ॥ ३६४ ॥

तो उदय पंचवण्णा तिलो य तिलपुच्छ छारासीओ।
तो धूम धूमकेदिगिसंठाणक्खो कलेवरो वियडो ॥ ३६५ ॥

इह भिण्णसंधि गंठी माण चउप्पाय विज्जुजिब्भणभा।
तो सरिस णिलय कालय कालादीकेउ अणयक्खा ॥ ३६६ ॥

सिंहाउ विउल काला महकालो रुद्दणाम महरुद्दा ।
संताणसंभवक्खा सव्वट्ठि दिसाय संति वत्थुणो ॥ ३६७ ॥

णिच्चलपलंभणिम्मंतजोदिमंता सयंपहो होदि ।
भासुर विरजा तत्तो णिदुक्खो वीदसोगो य ॥ ३६८ ॥

सीमंकर खेमभयंकर विजयादिचरउ विमलतत्था य ।
विजयिण्हु वीयसो करिकट्ठिगिजडिअग्गिजालजलकेदू ॥३६९॥

केदूखीरसऽघस्सवणा राहू महग्गहा य भावग्गहो ।
कुजसणि बुहसुक्कगुरू गहाण णामाणि अडसीदी ॥३७०॥

कालविकालो लोहितनामा कनकाख्यः कनकसंस्थानः ।
अन्तरदस्ततः कचयवः दुन्दुभिः रत्ननिभः रूपनिर्भासः ॥ ३६३ ॥

नीलो नीलाभासोऽश्वोऽश्वस्थानः कोषः कंसादिः ।
वर्णः कंसः शङ्खादिपरिमाणः च शङ्खवर्णोपि ॥ ३६४ ॥

तत उदयः पञ्चवर्णस्तिलश्च तिलपुच्छः क्षारराशिः ।
ततो धूमो धूमकेतुः एकसंस्थानः अक्षः कलेवरो विकटः ॥ ३६५ ॥

इहाभिन्नसन्धिः ग्रन्थिः मानश्चतुःपादो विद्युज्जिह्वो नभः ।
ततः सदृशो निलयः कालश्च कालादिकेतुरनयाख्यः ॥ ३६६ ॥

सिंहायुर्विपुलः कालो महाकालो रुद्रनामा महारुद्रः ।
सन्तानः सम्भवाख्यः सर्वार्थी दिशः शान्तिर्वस्तुनः ॥ ३६७ ॥

निश्चलः प्रलम्भो निर्मन्त्रो ज्योतिष्मान् स्वयम्प्रभो भवति ।
भासुरो विरजस्ततो निर्दुःखो वीतशोकश्च ॥ ३६८ ॥

सीमङ्करः क्षेमभयङ्करः विजयादिचरः विमलस्त्रस्तश्च ।
विजयिष्णुः विकसः करिकाष्ठः एकजटिरग्निज्वालः ज्वलकेतुः ॥ ३६९ ॥

केतुः क्षीरसः अघः श्रवणो राहुः महाग्रहश्च भावग्रहः ।
कुजः शनिः बुधः शुक्रः गुरुः ग्रहाणां नामानि अष्टाशीतिः ॥ ३७० ॥

काल । छायामात्रमेवार्थः (८) ॥ ३६३ ॥

णीलो। कंसादिः वर्णः कंसवर्णः शङ्खादिपरिमाणः शङ्खपरिमाण इत्यर्थः। शेषं छायामात्रं (९) ॥ ३६४ ॥

तो उदय। छायामात्रमेवार्थः (११) ॥ ३६५ ॥

रुद्द। छायामात्रमेवार्थः। कालादिः केतुः कालकेतुः (११) ॥ ३६६ ॥

सिहाउ। छायामात्रमेवार्थः (१२) ॥ ३६७ ॥

णिच्चल। छायामात्रमेवार्थः (९) ॥ ३६८ ॥

सोमंकर। सीमङ्करः क्षेमंकरः अभयंकरः विजयो वैजयन्तो जयन्तो अपराजित इति चत्वारः। विमलस्त्रस्तश्च विजयिष्णुर्विकसः करिकाष्ठः एकजटिरग्निज्वालो जलकेतु (१६) ॥ ३६९ ॥

केदू। इति ग्रहविशेषः ८८; छायामात्रमेवार्थः (११) ॥ ३७० ॥

आठ गाथाओं द्वारा ८८ ग्रहों के नाम कहते हैं :—

गाथार्थ :—१ काल विकाल, २ लोहित, ३ कनक, ४ कनकसंस्थान, ५ अन्तरद, ६ कचयव, ७ दुन्दुभि, ८ रत्ननिभ, ९ रूप निर्भास, १० नील, ११ नीलाभास, १२ अश्व, १३ अश्वस्थान, १४ कोश, १५ कंसवर्ण, १६ कंस, १७ शङ्खपरिणाम, १८ शङ्खवर्ण, १९ उदय, २० पञ्चवर्ण, २१ तिल, २२ तिल-पुच्छ, २३ क्षारराशि, २४ धूम, २५ धूमकेतु, २६ एकसंस्थान, २७ अक्ष, २८ कलेवर, २९ विकट, ३० अभिन्न सन्धि, ३१ ग्रन्थि, ३२ मान, ३३ चतुःपाद, ३४ विद्युज्जिह्व, ३५ नभ, ३६ सदृश, ३७ निलय, ३८ काल, ३९ कालकेतु, ४० अनय, ४१ सिंहायु, ४२ विपुल, ४३ काल, ४४ महाकाल, ४५ रुद्र, ४६ महारुद्र, ४७ सन्तान, ४८ सम्भव, ४९ सर्वार्थी, ५० दिशा, ५१ शान्ति, ५२ वस्तून, ५३ निश्चल, ५४ प्रलम्भ, ५५ निर्मन्त्र, ५६ ज्योतिष्मान, ५७ स्वयम्प्रभ, ५८ भासुर, ५९ विरज, ६० निर्दुःख, ६१ वीतशोक, ६२ सीमङ्कर, ६३ क्षेमङ्कर, ६४ अभयङ्कर और विजयादि चार अर्थात् ६५ विजय, ६६ वैजयन्त, ६७ जयन्त, ६८ अपराजित, ६९ विमल, ७० त्रस्त, ७१ विजयिष्णु, ७२ विकस, ७३ करि-काष्ठ, ७४ एकजटि, ७५ अग्निज्वाल, ७६ जलकेतु, ७७ केतु, ७८ क्षीरस, ७९ अघ, ८० श्रवण, ८१ राहु, ८२ महाग्रह, ८३ भावग्रह, ८४ मङ्गल, ८५ शनैश्चर, ८६ बुध, ८७ शुक्र और ८८ बृहस्पति ये ग्रहों के ८८ नाम हैं ॥ ३६३-३७० ॥

अथ जम्बूद्वीपस्थभरतादिक्षेत्रपर्वतानां तारा गाथाद्वयेन विभाजयति—

णउदिसयभजिदतारा सगदुगुण दुगुणसलसमब्भत्था ।
भरहादि विदेहोत्ति य तारा वस्से य वस्सधरे ।। ३७१ ।।

नवतिशतभक्तताराः स्वकद्विगुणद्विगुणशलाकासमभ्यस्ताः ।
भरतादिविदेहान्तं च ताराः वर्षे च वर्षधरे ।। ३७१ ।।

णउदि । नवत्युत्तरशतशलाकानां १९० चन्द्रद्वयताराश्चेत् १३३९५००००००००००००००० भरता-विदेहप्रमाणरूपैकशलाकादीनां १ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । ६४ । ३२ । १६ । ८ । ४ । २ । १ किय-त्यस्ताराः स्युरिति त्रैराशिकविधिना नवतिशतभक्ततारा: ७०५०००००००००००००० स्वकीय-स्वकीयद्विगुणद्विगुणशलाकासमभ्यस्ता भरतादिविदेहपर्यन्तं वर्षे क्षेत्रे वर्षधरे पर्वते च तारा भवन्ति ।। ३७१ ।।

जम्बूद्वीपस्थ भरतादिक्षेत्र और कुलाचलादि पर्वतों की ताराओं का विभाजन दो गाथाओं द्वारा करते हैं—

गाथार्थ :—भरतक्षेत्र से विदेहपर्यन्त की शलाकाएँ दुगुनी दुगुनी होती गई हैं । जम्बूद्वीप सम्बन्धी ताराओं की संख्या को १९० से भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसको अपनी अपनी शलाकाओं से गुणा करने पर तत् तत् क्षेत्र व पर्वत सम्बन्धी ताराओं की संख्या प्राप्त हो जाती है ।। ३७१ ।।

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप में दो चन्द्रमा से सम्बन्धित ताराओं का प्रमाण एक लाख तेंतीस हजार नव सौ पचास कोड़ाकोड़ी है । इस प्रमाण में १९० का भाग देने पर ७०५ कोड़ाकोड़ी लब्ध प्राप्त होता है । यही प्रथमशलाका है । ये भरतक्षेत्र से विदेहपर्यन्त दूनी दूनी होती गई हैं तथा विदेह से आगे के क्षेत्र व पर्वतों पर अर्ध अर्ध होती गई हैं । जैसे—१ । २ । ४ । ८ । १६ । ३२ । ६४ । ३२ । १६ । ८ । ४ । २ । १ ।

अथ लब्धांकमुच्चारयति—

पंचुत्तरसत्तसया कोडाकोडी य भरहताराओ ।
दुगुणा हु विदेहोत्ति य तेणपरं दलिददलिदकमा ।।३७२।।

पञ्चोत्तरसप्तशतकोटिकोट्यः च भरतताराः ।
द्विगुणाहि विदेहान्तं च तेन परं दलितदलितक्रमः ।। ३७२ ।।

पंचुत्तर । पञ्चोत्तरसप्तशतकोटिकोट्यः ७०५०००००००००००००० भरतताराः स्युः । द्विगुण-

द्विगुणाः खलु विदेहपर्यन्तं । हिमवति पर्वते १४१०००००००००००००००० हैमवतक्षेत्रे २८२०००००००००००००००० महाहिमवति पर्वते ५६४०००००००००००००००० हरिक्षेत्रे ११२८०००००००००००००००० निषधपर्वते २२५६०००००००००००००००० विदेहक्षेत्रे ४५१२०००००००००००००००० ततः एवं दलित-दलितक्रमो ज्ञातव्यः । नीलपर्वते २२५६०००००००००००००००० रम्यकक्षेत्रे ११२८०००००००००००००००० रुक्मिपर्वते ५६४०००००००००००००००० हैरण्यवतक्षेत्रे २८२०००००००००००००००० शिखरिपर्वते १४१०००००००००००००००० ऐरावतक्षेत्रे ७०५०००००००००००००० ॥ ३७२ ॥

उपर्युक्त शलाकाओं के द्वारा प्राप्त हुई ताराओं की संख्या कहते हैं—

गाथार्थ :— भरतक्षेत्र की ताराओं की संख्या ७०५ कोड़ाकोड़ी है। इसके बाद विदेह पर्यन्त यह संख्या दूनी दूनी और विदेह के बाद ऐरावत क्षेत्र तक की संख्या क्रम से आधी आधी होती गई है ॥ ३७२ ॥

विशेषार्थ :— भरत क्षेत्र में ७०५ कोड़ाकोड़ी तारागण हैं। इससे आगे विदेह पर्यंत दूनी दूनी और ऐरावत क्षेत्र तक अर्ध अर्ध ताराएँ होती गई हैं। जैसे :—

क्षेत्र और पर्वतों के नाम	ताराओं की संख्या	क्षेत्र पर्वतों के नाम	ताराओं की संख्या
भरतक्षेत्र	७०५ कोड़ाकोड़ी	नील पर्वत	२२५६० कोड़ाकोड़ी
हिमवन्पर्वत	१४१० ” ”	रम्यकक्षेत्र	११२८० ” ”
हैमवतक्षेत्र	२८२० ” ”	रुक्मि पर्वत	५६४० ” ”
महाहिमवन् पर्वत	५६४० ” ”	हैरण्यवतक्षेत्र	२८२० ” ”
हरि क्षेत्र	११२८० ” ”	शिखरि पर्वत	१४१० ” ”
निषधपर्वत	२२५६० ” ”	ऐरावतक्षेत्र	७०५ ” ”
विदेह क्षेत्र	४५१२० ” ”		

अथ लवणादिपुष्करार्धान्तस्थितचन्द्रार्काणामन्तरमाह—

सगरविदलबिंबूणा लवणादी सगदिवायरद्धहिदा ।
सूरंतरं तु जगदीआसण्णपहंतरं तु तस्स दलं ॥ ३७३ ॥

स्वकरविदलबिम्बोनं लवणादेः स्वकदिवाकरार्धहृता ।
सूर्यान्तरं तु जगत्यासन्नपथान्तरं तु तस्य दलं ॥ ३७३ ॥

भगवत । स्वकीयस्वकीयरवि ४ दलाहतं २ गुणितरविबिम्बेन $\frac{४८}{६१}$ तत्फलेन $\frac{९६}{६१}$ न्यूनसमानच्छेदीकृतलवणाब्धिव्यासः २ ल० । $\frac{१२१९९९०४}{६१}$ द्वयोरन्तरयो २ रेतावत्यन्तरे $\frac{१२१९९९०४}{६१}$ एकस्य कियदन्तरमिति सम्पातेनागतस्वकीयदिवाकरार्धहृतश्चेत् ९९९९९ शेषे $\frac{२६}{१२२}$ द्वाभ्यामपवर्तिते $\frac{१३}{६१}$ लवणसमुद्रगतसूर्यसूर्यान्तरं जगत्याः प्रत्यासन्नपथान्तरं पुनस्तस्य दलप्रमाणं स्यात् ४९९९९ विषमस्याद्दलनं कथमितिचेत्, राशावेकमपनीय ९९९९८ दलित्वा ४९९९९ अपनीतैकं दलरूपेण संस्थाप्य $\frac{१}{२}$ प्राक्तनशेषमपि $\frac{१३}{६१}$ तदर्धांशस्याद्दलित्वा $\frac{१३}{१२२}$ । २ अविभक्तमनीतदलरूपं समानच्छेदं कृत्वा $\frac{६१}{१२२}$ । २ मेलयित्वा $\frac{७४}{१२२}$ । २ द्वाभ्यामपवर्तिते $\frac{३७}{६१}$ जगत्यासन्नपथान्तरस्य शेषो भवति । एवं धातकीखण्डकालोदकसमुद्रपुष्करार्धस्थितसूर्यसूर्यान्तरं जगत्यासन्नपथान्तरं चानेतव्यं ॥ ३७३ ॥

अब लवणादि समुद्र से पुष्करार्ध पर्यन्त स्थित चन्द्रसूर्यों का अन्तर कहते हैं :—

गाथार्थ :—अपने अपने स्थानों के जितने सूर्य हैं, उनके अर्ध भाग से सूर्य बिम्ब के प्रमाण को गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे लवण समुद्र के व्यास में से घटाकर अवशेष में स्वकीय सूर्यों के अर्ध भाग का भाग देने पर एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अन्तर प्राप्त होता है, तथा जगती (वेदी) से निकटवर्ती सूर्य का अन्तर, उपर्युक्त अन्तर का अर्ध प्रमाण होता है ॥ ३७३ ॥

विशेषार्थ :— लवण समुद्र में सूर्यों की संख्या ४ है। इसका अर्ध प्रमाण (४ ÷ २) = २ हुआ। इस दो से सूर्य बिम्ब के प्रमाण को गुणित करने पर ($\frac{४८}{६१}$ X $\frac{२}{१}$) = $\frac{९६}{६१}$ योजन लब्ध प्राप्त हुआ। लवण समुद्र का व्यास दो लाख योजन है, उसमें से $\frac{९६}{६१}$ योजन घटाने पर ($\frac{२०००००}{१}$ — $\frac{९६}{६१}$ = $\frac{१२२०००००-९६}{६१}$) = $\frac{१२१९९९०४}{६१}$ योजन अवशेष बचे। ये अवशेष बचे हुये योजन दो अन्तरों के हैं, एक अन्तर तो सूर्य का सूर्य से, तथा दूसरा अन्तर प्रथम सूर्य से अभ्यन्तर वेदी का और दूसरे सूर्य से बाह्य वेदी का इस प्रकार दोनों को मिलाकर एक अन्तर हुआ। जबकि दो अन्तरालों में $\frac{१२१९९९०४}{६१}$ योजन हैं, तब १ अन्तराल में कितने योजन होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक कर, उसको लवण समुद्रों के ४ सूर्यों के अर्ध प्रमाण अर्थात् २ से भाजित करने पर $\left(\frac{१२१९९९०४}{६१ X २} \right)$ = ९९९९९ योजन पूर्ण प्राप्त हुए और $\frac{२६}{१२२}$ योजन शेष रहे। इन्हें दो से अपवर्तित करने पर $\frac{१३}{६१}$ हुए। एक सूर्य से दूसरे सूर्य के अन्तर का प्रमाण ९९९९९ $\frac{१३}{६१}$ योजन (३९९९९६८५२ $\frac{२८}{६१}$ मील) प्राप्त हुआ। वेदी से निकटवर्ती सूर्य का अन्तर उपर्युक्त अन्तर का अर्ध प्रमाण होता है। विषम राशि का अर्ध भाग कैसे करें ? यदि ऐसा प्रश्न है, तो राशि में से एक घटाकर अर्ध करने पर (९९९९९ — १ = ९९९९८ ÷ २) = ४९९९९ योजन प्राप्त हुये। अब राशि में से जो १ का अङ्क घटाया था उसे और राशि अंश $\frac{१३}{६१}$ इन दोनों को आधा आधा स्थापन कर जोड़ना, तथा लब्धांक को दो से अपवर्तन करना चाहिये—एक का आधा $\frac{१}{२}$ और $\frac{१३}{६१}$ का आधा $\frac{१३}{१२२}$ तथा दोनों का योग ($\frac{१}{२}$ + $\frac{१३}{१२२}$) = $\frac{७४}{१२२}$ अर्थात् $\frac{३७}{६१}$ योजन हुआ। इसे

उपर्युक्त अर्ध प्रमाण के साथ रखने से वेदी से निकटवर्ती सूर्य का अन्तर ४९९९९ ३७/६१ योजन (१९९९९८४२६ ३/६१ मील) प्रमाण प्राप्त होता है।

लवण समुद्र का वलय व्यास २ लाख योजन है। यहाँ ४ सूर्य हैं, जो एक एक परिधि में दो दो हैं। लवण समुद्र की अभ्यन्तर वेदी से ४९९९९ ३७/६१ योजन आगे जाकर सूर्य का विमान है, जिसका विस्तार ४८/६१ योजन (३१४७ ३३/६१ मील) है। इससे ९९९९९ १३/६१ योजन आगे जाकर परिधि है, उसमें भी ४८/६१ योजन व्यास वाला सूर्य है। इससे ४९९९९ ३७/६१ योजन आगे जाकर लवण समुद्र की बाह्य वेदी है, अतः इन सबका योग करने पर (४९९९९ ३७/६१ + ४८/६१ + ९९९९९ १३/६१ + ४८/६१ + ४९९९९ ३७/६१) = २००००० योजन लवण समुद्र का व्यास हो जाता है।

लवण समुद्र में चन्द्रों का अन्तर :—

{ २००००० — (५६/६१ X २/१) } ÷ २/१ = ९९९९९ ५/६१ योजन एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर ९९९९९ ५/६१ ÷ २ = ४९९९९ ३३/६१ परिधि से चन्द्र और चन्द्र से परिधि का अन्तर ४९९९९ ३३/६१ + ५६/६१ + ९९९९९ ५/६१ + ५६/६१ + ४९९९९ ३३/६१ = २ लाख व्यास हो गया।

धातकी खण्ड के सूर्यों का अन्तर :—धातकी खण्ड का वलय व्यास ४ लाख योजन है। सूर्य एवं चन्द्रों की संख्या १२, १२ है। दोनों का व्यास क्रमशः ४८/६१ और ५६/६१ योजन है।

{ ४००००० — (४८/६१ X १२/१) } ÷ १२/२ = ६६६६५ ११३/१२२ योजन सूर्य से सूर्य का अन्तर।

६६६६५ ११३/१२२ ÷ २ = ३३३३२ २३५/२४४ योजन परिधि से सूर्य का अन्तर।

धातकी खण्ड के ४ लाख व्यास में ६ जगह एक एक परिधि में दो दो सूर्य हैं, अतः इन छहों परिधियों के बीच (६) सूर्यों से सूर्यों के अन्तराल ५ होंगे, और बाह्य अभ्यन्तर की अपेक्षा परिधि के अन्तर दो होंगे। अतः :—

६६६६५ ११३/१२२ × ५ = ३३३३२५ ५६५/१२२ योजन पाँच अन्तरालों का क्षेत्र।

३३३३२ २३५/२४४ X २ = ६६६६५ ११३/१२२ योजन दो अन्तरालों का क्षेत्र।

४८/६१ X ६/१ = २८८/६१ योजन छह सूर्यों का क्षेत्र।

\+ ———————

४००००० योजन वलय व्यास प्राप्त हो जाता है।

धातकी खण्ड में चन्द्रों का अन्तर :—

{ ४००००० — ($\frac{५६}{६१}$ X $\frac{१२}{२}$) } ÷ $\frac{१२}{२}$ = ६६६६५ $\frac{२७४}{३६६}$ योजन चन्द्र से चन्द्र का अन्तर।

६६६६५ $\frac{२७४}{३६६}$ ÷ २ = ३३३३२ $\frac{६४०}{७३२}$ योजन परिधि से चन्द्र का अन्तर।

६६६६५ $\frac{२७४}{३६६}$ X ५ = ३३३३२८ $\frac{२७२}{३६६}$ योजन पाँच अन्तरालों का क्षेत्र।

३३३३२ $\frac{६४०}{७३२}$ X २ = ६६६६५ $\frac{२७४}{३६६}$ योजन दो अन्तरालों का क्षेत्र।

$\frac{५६}{६१}$ X $\frac{१२}{२}$ = $\frac{३३६}{६१}$ योजन छह चन्द्रों का क्षेत्र।

+ ————————

४००००० लाख योजन सम्पूर्ण वलय व्यास।

कालोदक समुद्र में सूर्य से सूर्य का अन्तराल :—

कालोदक समुद्र का वलय व्यास ८ लाख योजन है। तथा चन्द्र सूर्यों की संख्या ४२, ४२ है। अतः :—

{ ८००००० — ($\frac{४८}{६१}$ X $\frac{४२}{२}$) } ÷ $\frac{४२}{२}$ = ३८०९४ $\frac{५७८}{१२८१}$ योजन सूर्य से सूर्य का अन्तर।

३८०९४ $\frac{५७८}{१२८१}$ ÷ २ = १९०४७ $\frac{२८९}{१२८१}$ योजन परिधि से सूर्य का अन्तर।

३८०९४ $\frac{५७८}{१२८१}$ X २० = ७६१८८९ $\frac{३१}{१२८१}$ योजन बीस अन्तरालों का क्षेत्र।

१९०४७ $\frac{२८९}{१२८१}$ X २ = ३८०९४ $\frac{५७८}{१२८१}$ योजन दो अन्तरालों का क्षेत्र।

$\frac{४८}{६१}$ X $\frac{४२}{२}$ = $\frac{१००८}{६१}$ योजन २१ सूर्यों का क्षेत्र।

+ ————————

८००००० योजन वलय व्यास

कालोदक समुद्र में चन्द्र से चन्द्र का अन्तर :—

{ ८००००० — ($\frac{५६}{६१}$ X $\frac{४२}{२}$) } ÷ $\frac{४२}{२}$ = ३८०९४ $\frac{४१०}{१२८१}$ योजन चन्द्र से चन्द्र का अन्तर।

३८०९४ $\frac{४१०}{१२८१}$ ÷ २ = १९०४७ $\frac{२०५}{१२८१}$ योजन परिधि से चन्द्रमा का अन्तर।

३८०९४ $\frac{४१०}{१२८१}$ X २० = ७६१८८६ $\frac{५१४}{१२८१}$ योजन चन्द्र के २० अन्तरालों का क्षेत्र।

१९०४७ $\frac{२०५}{१२८१}$ X २ = ३८०९४ $\frac{४१०}{१२८१}$ योजन परिधि के दो अन्तरालों का क्षेत्र।

$\frac{५६}{६१}$ X $\frac{४२}{२}$ = $\frac{११७६}{६१}$ योजन २१ चन्द्रों का क्षेत्र।

+ ————————

८००००० योजन वलय व्यास

पुष्करार्ध द्वीप में सूर्य से सूर्य का अन्तर :—

अर्ध पुष्कर द्वीप का वलय व्यास ८ लाख योजन है। तथा यहाँ सूर्य चन्द्रों की संख्या ७२, ७२ है।

$\{ ८००००० - (\frac{४८}{६१} X \frac{७२}{२}) \} \div \frac{७२}{२} = २२२२१\frac{२३९}{५४९}$ योजन सूर्य से सूर्य का अन्तर।

$२२२२१\frac{२३९}{५४९} \div २ = १११९०\frac{३९४}{५४९}$ योजन परिधि से सूर्य और सूर्य से बाह्य परिधि का अन्तर।

$२२२२१\frac{२३९}{५४९} X ३५ = ७७७७३५\frac{८३६५}{५४९}$ योजन सूर्य के ३५ अन्तरालों का क्षेत्र।

$१११९०\frac{३९४}{५४९} X २ = २२२२१\frac{२३९}{५४९}$ योजन सूर्य की दो परिधि का क्षेत्र।

$\frac{४८}{६१} X ३६ = \frac{१७२८}{६१}$ योजन ३६ सूर्यों का क्षेत्र।

\+ ——————

८००००० योजन वलय व्यास

पुष्करार्ध द्वीप में चन्द्रों का अन्तरालः—

$\{ ८००००० - (\frac{५६}{६१} X \frac{७२}{२}) \} \div \frac{७२}{२} = २२२२१\frac{१६७}{५४९}$ योजन चन्द्र से चन्द्र का अन्तर

$२२२२१\frac{१६७}{५४९} \div २ = १११९०\frac{३५८}{५४९}$ योजन परिधि से चन्द्र का अन्तर

$२२२२१\frac{१६७}{५४९} X ३५ = ७७७७३५\frac{५८४५}{५४९}$ योजन चन्द्रों के ३५ अन्तरालों का क्षेत्र।

$१११९०\frac{३५८}{५४९} X २ = २२२२१\frac{१६७}{५४९}$ योजन परिधि से चन्द्र और चन्द्र से परिधि के अन्त० का क्षेत्र।

$\frac{५६}{६१} X \frac{७२}{२} = \frac{२०१६}{६१}$ योजन ३६ चन्द्रों का विस्तार क्षेत्र

\+ ——————

८००००० योजन वलय व्यास

इदानीं चारक्षेत्रमाह—

दो दो चंदरविं पडि एक्केक्कं होदि चारखेत्तं तु।
पंचसयं दससहियं रविबिंबहियं च चारमही ॥ ३७४ ॥

द्वौ द्वौ चन्द्ररवी प्रति एकैकं भवति चारक्षेत्रं तु।
पञ्चशतं दशसहितं रविबिम्बाधिकं च चारमही ॥ ३७४ ॥

दो द्वो। द्वौ द्वौ चन्द्ररवी प्रति एकैकं भवति चारक्षेत्रं। समस्तचारक्षेत्रं पुनः कियदिति चेत्, पञ्चशतानि दशसहितानि रविबिम्बप्रमाणेनाधिकानि $५१०\frac{४८}{६१}$ चारमहीप्रमाणं स्यात् ॥ ३७४ ॥

अब चार क्षेत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—दो चन्द्रों और दो सूर्यों के प्रति एक, एक ही चार क्षेत्र होता है। ये चार क्षेत्र सूर्य बिम्ब के (विस्तार) प्रमाण से अधिक ५१० योजन (५१०४⁸/६१ यो०) प्रमाण वाले होते हैं ॥ ३७४ ॥

विशेषार्थ :—चन्द्र सूर्य के गमन करने की क्षेत्रगली को चार क्षेत्र कहते हैं। दो चन्द्र और दो सूर्यों के प्रति एक एक चार क्षेत्र होते हैं। जम्बूद्वीप के दो सूर्यों का एक चार क्षेत्र है। लवण समुद्र के चार सूर्यों के दो चार क्षेत्र, धातकी खण्ड द्वीप के १२ सूर्यों के ६ चारक्षेत्र, कालोदक समुद्र के ४२ सूर्यों के २१ चार क्षेत्र और पुष्करार्ध द्वीप के ७२ सूर्यों के ३६ चार क्षेत्र हैं।

अथ तयोश्चारक्षेत्रविभागनियममाह—

> **जंबुरविंदू दीवे चरंति सीदिं सदं च अवसेसं ।**
> **लवणे चरंति सेसा सगसगखेत्ते व य चरंति ॥ ३७५ ॥**
>
> जम्बूरवीन्दवः द्वीपे चरन्ति अशीतिं शतं च अवशेषम् ।
> लवणे चरन्तिशेषाः स्वकस्वकक्षेत्रे एव च चरन्ति ॥ ३७५ ॥

जंबू । जम्बूद्वीपरवयोन्दवः अशीतिशतयोजनानि १८० द्वीपे चरन्ति । अवशिष्टयोजनानि ३३०⁴⁸/६१ लवणसमुद्रे चरन्ति । शेषाः पुष्करार्धपर्यन्तवर्त्तिनः स्वकीयस्वकीयक्षेत्रे एव चरन्ति ।

उन चार क्षेत्रों के विभाग का नियम कहते हैं :—

गाथार्थ :—जम्बूद्वीप सम्बन्धी चन्द्र और सूर्य, जम्बूद्वीप में तो १८० योजन ही विचरते हैं। अवशेष (३३०⁴⁸/६१ योजन) लवण समुद्र में विचरते हैं। शेष पुष्करार्ध पर्यन्त के चन्द्र सूर्य अपने अपने क्षेत्र में विचरते हैं ॥ ३७५ ॥

विशेषार्थ :—जम्बू द्वीप के चार क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप में मात्र १८० योजन (७२०००० मील) प्रमाण ही है। शेष ३३०⁴⁸/६१ योजन विस्तार लवण समुद्र में है, अतः जम्बूद्वीपस्थ सूर्य चन्द्र, जम्बूद्वीप के भीतर १८० योजन में ही विचरण करते हैं। शेष ३३०⁴⁸/६१ योजन लवण समुद्र में विचरते हैं। पुष्करार्ध पर्यन्त अवशेष द्वीपसमुद्रसम्बन्धी चन्द्र सूर्यों के चार क्षेत्र का व्यास अपने अपने द्वीप समुद्रों में ही है, बाहर नहीं, अतः वहाँ के चन्द्र सूर्य अपने अपने क्षेत्र में ही विहार करते हैं।

अथ तत्र सूर्याचन्द्रमसोर्वीथीप्रमाणं कथयति—

पडिदिवसमेक्कवीथिं चंदाइच्चा चरंति हु कमेण ।
चंदस्स य पण्णरसा इणस्स चउसीदिसय वीथी ॥ ३७६ ॥

प्रतिदिवसं एकवीथिं चन्द्रादित्याः चरन्ति हि क्रमेण ।
चन्द्रस्य च पञ्चदश इनस्य चतुरशीतिशतं वीथ्यः ॥ ३७६ ॥

पडिदिवस । द्वौ द्वौ मिलित्वा प्रतिदिवसमेकवीथीं चन्द्रादित्याश्चरन्ति खलु क्रमेण चन्द्रस्य पञ्चदशवीथ्यः इनस्य चतुरशीतिशतवीथ्यः स्युः ॥ ३७६ ॥

चन्द्र सूर्य की वीथी (गली) का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—चन्द्रमा की पन्द्रह वीथियाँ और सूर्य की १८४ वीथियाँ हैं। चन्द्र और सूर्य क्रम से प्रति दिन एक एक वीथी में ही सञ्चार करते हैं ॥ ३७६ ॥

विशेषार्थ :—५१० $\frac{४८}{६१}$ योजन (२०४३१४७ $\frac{१३}{६१}$ मील) प्रमाण वाले चार क्षेत्र में चन्द्रमा की १५ गलियाँ सूर्य की १८४ गलियाँ हैं। इनमें से क्रमशः प्रतिदिन दोनों सूर्य मिलकर एक एक वीथी में सञ्चार करते हैं।

लवण समुद्र के चार सूर्यों के दो चारक्षेत्र हैं। अतः दो सूर्य एक ओर और दो सूर्य दूसरी ओर सामने सामने रह कर ही संचार करते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिए।

अथ वीथीनामन्तरेण दिवसगतिं कथयति—

पथवाससिंडहीणे चारक्खेत्ते णिरेयपथभजिदे ।
वीथीणं विच्चालं सगबिम्बजुदो दु दिवसगदी ॥ ३७७ ॥

पथव्यासपिण्डहीना चारक्षेत्रे निरेकपथभक्ते ।
वीथीनां विचालं स्वकबिम्बयुतं तु दिवसगतिः ॥ ३७७ ॥

पथ । पथव्यासेन $\frac{४८}{६१}$ गुणिता वीथ्यः १८४ पथव्यासपिण्डः $\frac{८८३२}{६१}$ समानच्छेदीकृते दशोत्तर-पञ्चशते $\frac{३११००}{६१}$ आदित्यबिम्बे $\frac{४८}{६१}$ मिलिते सति $\frac{३११५८}{६१}$ चारक्षेत्रं[1] स्यात् । अस्मिन् पथव्यासपिण्डे $\frac{८८३२}{६१}$ अपनीते सति एवं $\frac{२२३२६}{६१}$ अस्यच भागहार ६१ निरेकपथेन १८३ गुणयित्वा ११६६३ अनेन भागहारेण अपनीतव्यासपिण्डे $\frac{२२३२६}{११६६३}$ भक्ते सति २ वीथीनां विचालं अन्तरालं स्यात् ।

---

१ चारक्षेत्रेऽस्मिन् (प०)।

एतस्स्वकीयबिम्ब $\frac{४८}{६१}$ युक्तं चेत् $\frac{१७०}{६१}$ प्रतिदिवसं गमनक्षेत्रप्रमाणं स्यात् । एवमेव चन्द्रस्य चारक्षेत्रं $\frac{३११५८}{६१}$ पथव्यासपिण्डं $\frac{८४०}{६१}$ वीथ्यन्तरालं ३५ $\frac{२१४}{४२७}$ दिवसगतिं ३६ $\frac{१७९}{४२७}$ आनेतव्यं ॥ ३७७ ॥

वीथियों के अन्तराल से प्रतिदिन की गति विशेष को कहते हैं :—

गाथार्थ :—पथ व्यास पिंड से हीन चार क्षेत्र के प्रमाण को १ कम पथ (वीथियों) से भाजित करने पर वीथियों का अन्तर प्राप्त हो जाता है, तथा इसी अन्तर में सूर्य बिम्ब का प्रमाण जोड़ देने से सूर्य के प्रति दिन के गमन क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ॥ ३७७ ॥

विशेषार्थ :—पथ व्यास पिंड का अर्थ "बिम्ब के प्रमाण से गुणित वीथियों का प्रमाण है" चार क्षेत्र का प्रमाण ५१० $\frac{४८}{६१}$ योजन है । इसमें सूर्य गमन की १८४ गलियाँ हैं, प्रत्येक गली का प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ योजन (३१४७ $\frac{३३}{६१}$ मील) है, इसीको पथ व्यास कहते हैं ।

१८४ × $\frac{४८}{६१}$ = $\frac{८८३२}{६१}$ योजन पथव्यास पिंड है । आदित्य बिम्ब के प्रमाण ($\frac{४८}{६१}$) सहित ५१० योजन (५१० $\frac{४८}{६१}$) का समानछेद करने पर $\frac{३११५८}{६१}$ योजन होते हैं । यह चारक्षेत्र का प्रमाण है । इसमें से पथ व्यास पिंड ($\frac{८८३२}{६१}$) घटा कर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें १८३ वीथी अन्तरालों का (क्योंकि १८४ गलियों के अन्तर १८३ ही होंगे) भाग देने पर एक गली से दूसरी गली का अन्तर प्राप्त हो जाता है । जैसे :—{ ($\frac{३११५८}{६१}$ — $\frac{८८३२}{६१}$) ÷ (१८४—१) } = २ योजन (८००० मील) एक गली से दूसरी गली का अन्तर प्राप्त होता है ।

अथवा :—१८४ × $\frac{४८}{६१}$ = $\frac{८८३२}{६१}$ या १४४ $\frac{४८}{६१}$ प्रमाण हुआ, अतः—५१० $\frac{४८}{६१}$ — १४४ $\frac{४८}{६१}$ = ३६६ योजन शेष बचे । इसमें १८३ का भाग देने से ३६६ ÷ (१८४—१) = २ योजन प्रत्येक गली का अन्तराल प्राप्त हो जाता है । इस २ योजन अन्तर में सूर्य बिम्ब का प्रमाण ($\frac{४८}{६१}$) मिला देने से $\frac{१७०}{६१}$ अर्थात् २ $\frac{४८}{६१}$ योजन (११९४७ $\frac{३३}{६१}$ मील) सूर्य के प्रतिदिन गमन क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ।

चन्द्र की गलियों का अन्तर एवं प्रति दिन का गति प्रमाण :—

चार क्षेत्र ५१० $\frac{४८}{६१}$ = $\frac{३११५८}{६१}$ — ($\frac{५६}{६१}$ × $\frac{१५}{१}$ = $\frac{८४०}{६१}$) = $\frac{३०३१८}{६१}$ ÷ (१५—१) = ३५ $\frac{२१४}{४२७}$ यो॰ चन्द्रमा की एक गली से दूसरी गली का अन्तर है । इसमें चन्द्र बिम्ब का प्रमाण मिलाने से ३५ $\frac{२१४}{४२७}$ या $\frac{१५१५९}{४२७}$ + $\frac{३९२}{४२७}$ = $\frac{१५५५१}{४२७}$ या ३६ $\frac{१७९}{४२७}$ योजन चन्द्रमा के प्रतिदिन गमन क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ।

एवमानीतदिवसगतिमाश्रित्यमेरोरारभ्य प्रतिमार्गमन्तरं तत्परिधिं चाह—

सुरगिरिचंदरवीणं मग्गं पडि अंतरं च परिहिं च ।
दिणगदिनप्परिहीणं खेवादो साहए कमसो ॥ ३७८ ॥

सुरगिरिचन्द्ररवीणां मार्गं प्रत्यन्तरं च परिधिः च ।
दिनगतितत्परिधीनां क्षेपात् साधयेत् क्रमशः ॥ ३७८ ॥

सुरगिरी । सुरगिरिचन्द्ररवीणां मार्गं प्रत्यन्तरं च परिधिश्चानेतव्यौ[1] । कथमिति चेत्, जम्बूद्वीपव्यासे एकस्मिन् लक्षे १ ल०, तद्द्वीपाभ्यन्तरोभयपार्श्वस्थचारक्षेत्रप्रमाणं (३६०) मपनीयते चेत् अभ्यन्तरवीथीविष्कम्भः ९९६४० स्यात् । तदेव सूर्यसूर्यांतरं स्यात् । तत्र मेरुव्यास १०००० मपनीय ८९६४० मर्धीकृते ४४८२० सुरगिर्यभ्यन्तरवीथीस्थसूर्यान्तरं स्यात् । तत्र दिवस $२\frac{४८}{६१}$ गतिक्षेपे कृते सति $४४८२२\frac{४८}{६१}$ द्वितीयवीथीगतसूर्यसुरगिर्योरन्तरं स्यात् । एवं प्राचीनप्राचीनसुरगिरि-सूर्यान्तरे दिनगति $२\frac{४८}{६१}$ क्षेपे कृते उत्तरोत्तरसुरगिरिसूर्यान्तरं स्यात् । अभ्यन्तरवीथीविष्कम्भे ९९६४० द्विगुणदिनगति $\frac{३४०}{६१}$ अथवा $५\frac{३५}{६१}$ क्षेपे कृते $९९६४५\frac{३५}{६१}$ द्वितीयवीथीगतसूर्यसूर्ययोरन्तरं स्यात् । एवं स्वस्वाभ्यन्तरे विष्कम्भे द्विगुणदिनगतिक्षेपं $५\frac{३५}{६१}$ कृत्वा उत्तरोत्तरसूर्यसूर्ययोरन्तरं ज्ञातव्यं । विष्कम्भेरथादिनाभ्यन्तरविष्कम्भस्य परिधिमानीय तस्मिन् अभ्यन्तरवीथीपरिधौ ३१५०८९ द्विगुणदिनगति $\frac{३४०}{६१}$ परिधि विष्कम्भ $\frac{३४०}{६१}$ वर्गदशगुण $\frac{११५६०००}{३७२१}$ करणी $\frac{१०७५}{६१}$ स्यादिनाभीष्य निजहारेण भक्त्वा $१७\frac{३८}{६१}$ निक्षिप्ते $३१५१०६\frac{३८}{६१}$ द्वितीयवीथीपरिधिः स्यात् । अमुमेव द्विगुणदिन-गतिपरिधिं पूर्वपूर्वपरिधौ क्षेपे कृते उत्तरोत्तरवीथीपरिधिः स्यात् । एवमुक्तप्रकारेण दिनगति-क्षेपात् द्विगुणदिनगतिक्षेपात् द्विगुणदिनगतिपरिधिक्षेपाच्च सुरगिरिसूर्यान्तरं परिधिं च साधयेत् क्रमशः ॥ ३७८ ॥

प्राप्त हुए दिवस गति के प्रमाण का आश्रय कर मेरुपर्वत से प्रत्येक मार्ग, अन्तर और उन मार्गों की परिधि कहते हैं :—

गाथार्थ :— दिन गति तथा दिन गति की परिधि को क्षेपण करने पर क्रमशः सुमेरु से सूर्य चन्द्रमा के मार्ग का अन्तर, सूर्य से सूर्य का तथा चन्द्रमा से चन्द्रमा का अन्तर और परिधि का प्रमाण सिद्ध होता है। अर्थात् दिन गति का क्षेपण करने पर सुमेरु से सूर्य व चन्द्र का अन्तर तथा एक सूर्य से दूसरे सूर्य का और एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर सिद्ध होता है। दिनगति की परिधि में क्षेपण करने से मार्ग की परिधि सिद्ध होती है ॥ ३७८ ॥

विशेषार्थ :— सुमेरु पर्वत से चन्द्र सूर्य के मार्ग का अन्तर और मार्ग (प्रत्येक गली) की परिधि का प्रमाण किस प्रकार लाना चाहिये ? उसे कहते हैं।

---

1 आनयेत् (ब०, प०) ।

दोनों सूर्यों के परस्पर अन्तर का प्रमाण :—जम्बूद्वीप का व्यास एक लाख (१०००००) योजन प्रमाण है। जम्बूद्वीप के भीतर सूर्य का गमन क्षेत्र १८० योजन एक पार्श्व भाग का प्रमाण है। दूसरे पार्श्व भाग का प्रमाण भी १८० यो० ही है, अतः १८०×२=३६० योजनों को जम्बूद्वीप के व्यास में से कम करने पर दोनों सूर्यों का पारस्परिक अन्तर प्राप्त हो जाता है। यथा—१००००० योजन (४० करोड़ मील) — ३६० योजन (१४४०००० मील)=९९६४० योजन (३९८५६०००० मील) प्राप्त हुआ। यही जम्बूद्वीपस्थ उभय सूर्यों के बीच अन्तर का प्रमाण है, और यही ९९६४० योजन अभ्यन्तर वीथी के सूची व्यास का प्रमाण है।

अभ्यन्तर वीथी में स्थित सूर्य और मेरु के बीच अन्तर का प्रमाण :—

उभय सूर्यों के अन्तर प्रमाण में से मेरु पर्वत का व्यास घटा कर उसे आधा करने पर वीथी स्थित सूर्य और मेरु के बीच का अन्तर प्राप्त होता है। यथा— $\frac{९९६४०-१००००}{२}$ =४४८२० योजन (१७९२८०००० मील) मेरु से अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी में स्थित सूर्य के अन्तर का प्रमाण है। इस प्रथम वीथी स्थित मेरु के अन्तर प्रमाण में सूर्य की दिवस गति का (२$\frac{४८}{६१}$ योजन) प्रमाण जोड़ देने से (४४८२०+२$\frac{४८}{६१}$)=४४८२२$\frac{४८}{६१}$ योजन द्वितीय वीथी गत सूर्य और मेरु के बीच का अन्तर प्राप्त होता है। इसी प्रकार पूर्व पूर्व गत सुमेरु और सूर्य के अन्तर प्रमाण में दिवस गति (२$\frac{४८}{६१}$) का प्रमाण मिलाते जाने पर उत्तरोत्तर वीथियों में स्थित सूर्य का मेरु से अन्तर प्राप्त हो जाता है। अथवा

विवक्षित वीथियों का दिवसगति के प्रमाण में गुणा कर जो लब्ध प्राप्त हो उसे प्रथम वीथी में स्थित सूर्य और सुमेरु के अन्तर प्रमाण (४४८२० यो०) में जोड़ देने से विवक्षित वीथी स्थित सूर्य और सुमेरु का अन्तर प्राप्त हो जाता है। यथा—४४८२०+(२$\frac{४८}{६१}$×१८३)=४५३३० योजन (१०१३२०००० मील) अन्तिम वीथी में स्थित सूर्य और सुमेरु के अन्तर का प्रमाण है।

उत्तरोत्तर सूर्य से सूर्य के बीच का अन्तर :—

अभ्यन्तर वीथी के विष्कम्भ (९९६४० योजनों) में द्विगुण दिनगति (२$\frac{४८}{६१}$×२=$\frac{३४०}{६१}$ या ५$\frac{३५}{६१}$ यो०) का प्रमाण (५$\frac{३५}{६१}$ यो०) जोड़ देने से (९९६४०+५$\frac{३५}{६१}$) ९९६४५$\frac{३५}{६१}$ योजन (३९८५८२२९५$\frac{५}{६१}$ मील) द्वितीय वीथीगत सूर्य से सूर्य के अन्तर का प्रमाण होता है। इसी प्रकार मध्यम वीथी के दोनों सूर्यों के अन्तर का प्रमाण { ९९६४०+(५$\frac{३५}{६१}$×$\frac{१८३}{२}$) }=१००१५० योजन और बाह्य (अन्तिम) वीथीगत दोनों सूर्यों का अन्तर { ९९६४०+(५$\frac{३५}{६१}$×१८३) }=१००६६० योजन (४०२६४०००० मील) प्रमाण है।

विवक्षित वीथी की संख्या से द्विगुण दिवसगति के प्रमाण को गुणित कर ९९६४० योजन प्रथम वीथी के विष्कम्भ में जोड़ देने से विवक्षित वीथीगत दो सूर्यों का पारस्परिक अन्तर प्राप्त हो जाता है, और वही उस अपनी अपनी वीथी के विष्कम्भ का प्रमाण होता है।

सूर्य की अभ्यन्तर (प्रथम) आदि वीथियों की परिधि :—

"विक्खंभवग्गदहगुण''...... गाथा ९६ के अनुसार अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी के विष्कम्भ (९९६४० यो०) की परिधि का प्रमाण ३१५०८९ योजन है। इसमें द्विगुण दिवसगति के विष्कम्भ की परिधि का प्रमाण जोड़ देने से द्वितीय वीथी की परिधि प्राप्त होती है। यथा—द्विगुण दिनगति के विष्कम्भ का प्रमाण ५ ३५/६१ या ३४०/६१ योजन है। इसका वर्ग ३४०/६१ × ३४०/६१ = ११५६००/३७२१ × १० = ११५६०००/३७२१ प्राप्त हुआ। इस ११५६०००/३७२१ का वर्गमूल १०६५/६१ अर्थात् १७ २८/६१ योजन प्राप्त होता है, अतः ३१५०८९ + १७ २८/६१ = ३१५१०६ २८/६१ योजन द्वितीय वीथी की तथा (३१५१०६ २८/६१ + १७ २८/६१) = ३१५१२४ ५६/६१ योजन तृतीय वीथी की परिधि का प्रमाण प्राप्त हुआ। इसी प्रकार आगे आगे की (चतुर्थादि) वीथियों के परिधि प्रमाण को लाने के लिये पूर्व पूर्व वीथी के परिधि प्रमाण में १७ २८/६१ योजनों को क्रमशः मिलाते जाना चाहिये। इस प्रकार अन्तिम (बाह्य) वीथी की परिधि का प्रमाण { ३१५०८९ + (१७ २८/६१ × १८३) } = ३१८३१४ योजन (१२७३२५६००० मील) है।

इस प्रकार दिनगति (२ ४८/६१ यो०), द्विगुण दिनगति (५ ३५/६१ यो०) और द्विगुण दिन गति की परिधि (१७ २८/६१ यो०) के प्रमाण को मिलाने से क्रमशः सुमेरु और सूर्य का अन्तर, सूर्य से सूर्य का अन्तर और मार्ग की परिधि का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

गाथा ३७८ में 'सुरगिरि चन्दरवीणं'' पद से ज्ञात होता है कि सूर्य के सदृश चन्द्र की दिवस गति, मार्ग, अन्तर एवं परिधि आदि का वर्णन होना चाहिये था। किन्तु संस्कृत टीका में नहीं किया गया। तथापि कुछ ज्ञातव्य है। यथा—

चन्द्रमा के चार क्षेत्र का प्रमाण ५१० ४८/६१ = ३११५८/६१ योजन तथा चन्द्र बिम्ब का प्रमाण ५६/६१ योजन है। इसकी वीथियाँ १५ हैं, और वह प्रतिदिन क्रमशः एक एक गली में सञ्चार करता है।

जम्बूद्वीप का व्यास एक लाख योजन है। जम्बूद्वीप में चन्द्रमा के दोनों पार्श्व भागों में चार क्षेत्र का प्रमाण (१८० × २) = ३६० योजन प्रमाण है, अतः—

१००००० — ३६० = ९९६४० योजन जम्बूद्वीप की अभ्यन्तर वीथीस्थ उभय चन्द्रों के बीच अन्तर का प्रमाण है। ९९६४०−१००००/२ = ४४८२० योजन, सुमेरु से अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी में स्थित चन्द्र के अन्तर का प्रमाण है।

चन्द्रमा के प्रतिदिन गमन क्षेत्र का प्रमाण एवं सुमेरु से वीथी स्थित चन्द्र का अन्तर :—

चन्द्र की एक वीथी का विस्तार $\frac{५६}{६१}$ योजन है, तो १५ वीथियों का कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{५६}{६१}$ × १५) = $\frac{८४०}{६१}$ योजन विस्तार प्राप्त हुआ। चार क्षेत्र का प्रमाण ५१० $\frac{४८}{६१}$ =($\frac{३११५८}{६१}$ — $\frac{८४०}{६१}$) ÷ (१५—१) = ३५ $\frac{२१४}{४२७}$ योजन हुआ इसमें चन्द्र बिम्ब का प्रमाण ($\frac{५६}{६१}$ यो०) जोड़ देने से (३५ $\frac{२१४}{४२७}$ + $\frac{५६}{६१}$) = ३६ $\frac{१७९}{४२७}$ योजन चन्द्रमा के प्रतिदिन के गमन क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त होता है।

सुमेरु से अभ्यन्तर वीथी में स्थित चन्द्रमा का अन्तर ४४८२० योजन है। इसमें दिवस गति का प्रमाण जोड़ देने से (४४८२० + ३६ $\frac{१७९}{४२७}$) = ४४८५६ $\frac{१७९}{४२७}$ योजन अन्तर द्वितीय वीथी में स्थित चन्द्र से सुमेरु के मध्य का है। ४४८५६ $\frac{१७९}{४२७}$ + ३६ $\frac{१७९}{४२७}$ = ४४८९२ $\frac{३५८}{४२७}$ योजन तृतीय वीथी में स्थित चन्द्र और सुमेरु के बीच का अन्तर है। इसी प्रकार पूर्व पूर्व वीथी के अन्तर प्रमाण में, उपर्युक्त चन्द्र दिवस गति का प्रमाण मिलाते जाने से चतुर्थादि वीथियों में स्थित चन्द्र और सुमेरु के बीच का अन्तर प्राप्त होगा।

बाह्य (अन्तिम) वीथी में स्थित चन्द्र और मेरु का अन्तर—

४४८२० + { ३६ $\frac{१७९}{४२७}$ × (१५—१) } = ४५३२९ $\frac{३७१}{४२७}$ योजन (१८१३१९४७५ $\frac{२५}{६१}$ मील) है।

द्विगुण दिवसगति एवं चन्द्र से चन्द्र के अन्तर का प्रमाण :—

३६ $\frac{१७९}{४२७}$ × २ = ७२ $\frac{३५८}{४२७}$ योजन चन्द्र की द्विगुण दिवस गति का प्रमाण है। इसे प्रथम वीथी स्थित दोनों चन्द्रों के अन्तर प्रमाण (९९६४० योजनों) में मिलाने से (९९६४० + ७२ $\frac{३५८}{४२७}$) = ९९७१२ $\frac{३५८}{४२७}$ योजन, एवं (९९७१२ $\frac{३५८}{४२७}$ + ७२ $\frac{३५८}{४२७}$) = ९९७८५ $\frac{२८९}{४२७}$ योजन क्रमशः द्वितीय और तृतीय वीथियों में स्थित युगल युगल चन्द्रों का अन्तर है। इसी प्रकार १५ वीं वीथी में स्थित दोनों चन्द्रों का अन्तर ९९६४० + (७२ $\frac{३५८}{४२७}$ × १४) = १००६५९ $\frac{३१५}{४२७}$ योजन है।

चन्द्र की द्विगुण दिवस गति एवं वीथियों की परिधि का प्रमाण :—

द्विगुण दिवस गति का प्रमाण ७२ $\frac{३५८}{४२७}$ = $\frac{३११०२}{४२७}$ योजन है। इसकी परिधि का प्रमाण $\sqrt{(\frac{३११०२}{४२७})^२ \times १०}$ = २३० $\frac{१४४}{४२७}$ योजन है। चन्द्र की प्रथम वीथी की परिधि का प्रमाण ३१५०८९ योजन है। ३१५०८९ + २३० $\frac{१४४}{४२७}$ = ३१५३१९ $\frac{१४४}{४२७}$ द्वितीय वीथी की परिधि का प्रमाण है, तथा ३१५०८९ + (२३० $\frac{१४४}{४२७}$ × १४) = ३१८३१३ $\frac{३०८}{४२७}$ योजन चन्द्र की अन्तिम (१५ वीं) वीथी की परिधि का प्रमाण है।

अथैवमुक्तपरिधौ परिभ्रमतः सूर्यस्य दिनरात्रिहेतुत्वं तयोः प्रमाणं च मार्गाश्रयेणाह—

सूरादो दिणरत्ती अट्ठारस बारसा मुहुत्ताणं ।
अब्भंतरम्हि एदं विवरीयं बाहिरम्हि हवे ॥ ३७९ ॥

सूर्यात् दिनरात्री अष्टादश द्वादश मुहूर्तानाम् ।
अभ्यन्तरे एतत् विपरीतं बाह्ये भवेत् ॥ ३७९ ॥

सूरादो । सूर्यात् मुहूर्तानामष्टादश द्वादशसंख्ये द्वे यथासंख्यं दिनरात्री स्याताम् । क्वेति चेद्, अभ्यन्तरपरिधौ । एतदेव विपरीतं बाह्यपरिधौ भवेत् ॥ ३७९ ॥

उक्त परिधि में भ्रमण करते हुये सूर्य के दिन रात्रि का कारण एवं उनका प्रमाण, मार्ग के आश्रय से कहते हैं :—

गाथार्थ :—अभ्यन्तर परिधि में भ्रमण करते हुए सूर्य से दिन अठारह मुहूर्त का और रात्रि बारह मुहूर्त की होती है, तथा बाह्य (अन्तिम) परिधि में भ्रमण करते हुये सूर्य से इससे विपरीत अर्थात् १८ मुहूर्त की रात्रि और १२ मुहूर्त का दिन होता है ॥ ३७९ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप की वेदी के पास १८० योजन की अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी में जब सूर्य भ्रमण करता है, तब दिन १८ मुहूर्त (१४ घं० २४ मिनिट) का और रात्रि १२ मुहूर्त (९ घंटे ३६ मि०) की होती है । किन्तु जब वही सूर्य लवण समुद्र की बाह्य (अन्तिम) परिधि में भ्रमण करता है, तब दिन १२ मुहूर्त का और रात्रि १८ मुहूर्त की होती है ।

अथ सूर्यस्यावस्थितिस्वरूपं दिनरात्र्योर्हानिचयं चाह—

कक्कडमयरे सव्वब्भंतरबाहिरपहट्ठिओ होदि ।
मुहभूमीण विसेसे वीथीणंतरहिदे य चयं ॥ ३८० ॥

कर्कटमकरे सर्वाभ्यन्तरबाह्यपथस्थितो भवति ।
मुखभूम्योः विशेषे वीथीनामन्तरहिते च चयः ॥ ३८० ॥

कक्कड । कर्कटके मकरे च यथासंख्यं सर्वाभ्यन्तरपथस्थितो बाह्यपथस्थितश्च भवति सूर्यः । तत्र तत्रावस्थितिपर्यन्तं किं तावत्येव १८ । १२ स्थितिरिति शंकायां प्रतिदिनं हानिचयोरस्तीत्याह । मुख १२ भूम्यो १८ विशेषे ६ त्र्यशीतिशत १८३ वीथ्यन्तराणां दिनकपाणां षण्मुहूर्ता यदि एक वीथ्यन्तरस्य कियन्मुहूर्ता इति सम्पातेनागतेन वीथीनामंतरेण १८३ हृते $\frac{6}{183}$ भागाभावात् त्रिभिरपवर्तिते च $\frac{2}{61}$ प्रतिदिनं हानिचयो भवति ॥ ३८० ॥

सूर्य की अवस्थिति का स्वरूप और दिन रात्रि के हानि चय को कहते हैं :—

गाथार्थ :—कर्क राशि स्थित सूर्य अभ्यन्तर परिधि में और मकर राशि स्थित सूर्य बाह्य परिधि में भ्रमण करता है। भूमि में से मुख घटाकर जो शेष बचे उसमें वीथियों के अन्तर (१८४—१=१८३) का भाग देने पर हानि चय प्राप्त होता है ॥ ३८० ॥

विशेषार्थ :—कर्कट (कर्क) राशि पर स्थित सूर्य अभ्यन्तर परिधि में भ्रमण करता है और मकर राशि पर स्थित सूर्य बाह्य परिधि में भ्रमण करता है। उस राशि की समाप्ति पर्यन्त दिन एवं रात्रि का प्रमाण उतना (१८, १२) ही रहता है, या घटता है ? ऐसी वाञ्छा होने पर प्रतिदिन होने वाले हानि चय को कहते हैं :—यहाँ १८ मुहूर्त तो भूमि है, और १२ मुहूर्त मुख है। भूमि में से मुख घटा देने पर (१८—१२)=६ मुहूर्त अवशेष रहते हैं। सूर्य की १८४ वीथियाँ हैं, किन्तु अन्तराल १८३ में ही पड़ता है। जबकि १८३ गलियों में ६ मुहूर्त का अन्तर पड़ता है, तब एक गली में कितना अन्तर पड़ेगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{६}{१८३}$ मुहूर्त प्राप्त हुआ। इसे ३ से अपवर्तित करने पर प्रतिदिन के हानि चय का प्रमाण $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त (१$\frac{३५}{६१}$ मिनिट) होता है।

जिस दिन सूर्य अभ्यन्तर वीथी में भ्रमण करता है, उस दिन १८ मुहूर्त का दिन होता है, किन्तु जिस दिन दूसरी वीथी में भ्रमण करता है, उस दिन $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त घट जाता है। अर्थात् $\frac{१८}{१}$ — $\frac{२}{६१}$ = १७$\frac{५९}{६१}$ मुहूर्त का दिन होता है। जब तीसरी वीथी में पहुँचता है, तब १७$\frac{५९}{६१}$ या $\frac{१०९६}{६१}$ — $\frac{२}{६१}$ = $\frac{१०९४}{६१}$ अर्थात् १७$\frac{५७}{६१}$ मुहूर्त का दिन होता है। इसी प्रकार प्रत्येक वीथी में $\frac{२}{६१}$, $\frac{२}{६१}$ घटते घटते १७$\frac{५५}{६१}$, १७$\frac{५३}{६१}$, १७$\frac{५१}{६१}$ .... मुहूर्त का दिन होते होते जिस दिन अन्तिम वीथी में पहुँचता है, उस दिन १२ मुहूर्त का दिन होता है। इसी प्रकार अभ्यन्तर वीथी की ओर बढ़ते हुए प्रत्येक वीथी में $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त बढ़ते हैं। तब दिनमान १२$\frac{२}{६१}$, १२$\frac{४}{६१}$, १२$\frac{६}{६१}$, १२$\frac{८}{६१}$ इत्यादि क्रम से बढ़ते हुए अभ्यन्तर वीथी में १८ मुहूर्त का हो जाता है। यथा :—

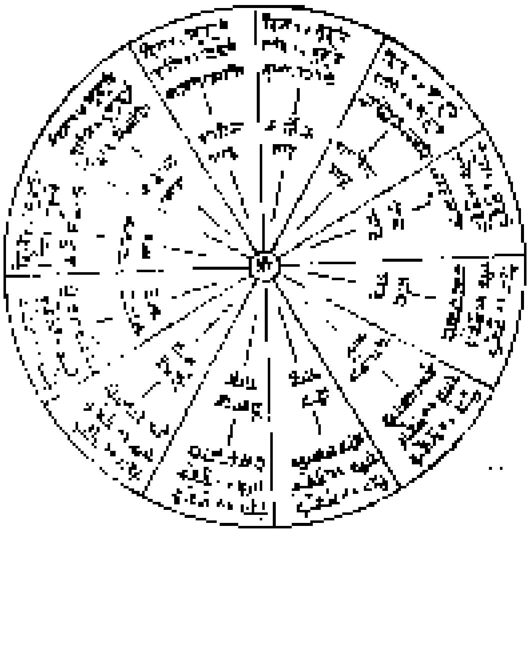

अथैवमुक्तदिनरात्र्योस्तापतमसो वर्तमानकालत्वात् तत्तापक्षेत्रप्रमाणं निरूपयन् श्रावणमाघमासादीनां दक्षिणोत्तरायनं निरूपयति—

सावणमाघे सव्वब्भंतरबाहिरपहट्ठिओ होदि ।
सूरट्ठियमासस्स य तावतमा सव्वपरिहीसु ।। ३८१ ।।

श्रावणमाघे सर्वाभ्यन्तरबाह्यपथस्थितो भवति ।
सूर्यस्थितमासस्य च तापतमसी सर्वपरिधीषु ।। ३८१ ।।

सावण । श्रावणमासे माघमासे यथासंख्यं सर्वाभ्यन्तरपथबाह्यपथस्थितो भवति सूर्यः । तस्य सूर्यस्थितमासस्य तापतमसी सर्वपरिधिष्वानेतव्ये । षण्णां मासानामेतावत्सु दिनेषु १८३ श्रावणाद्येकादिमासानां किमिति सम्पात्यापवर्तिते तत्तन्मासानां दिनसंख्याः स्युः । श्रा $\frac{६१}{२}$; भा ६१; आ $\frac{१८३}{२}$; का १२२; मा $\frac{३०५}{२}$; पु १८३; मा $\frac{६१}{२}$; फा ६१; चै $\frac{१८३}{२}$; वै १२२; ज्ये $\frac{३०५}{२}$; आ १८३ इमान्येव दक्षिणायनोत्तरायणदिनानि स्युः ॥ ३८१ ॥

इस प्रकार उपर्युक्त कहे हुये दिन और रात में ताप और तम मनुष्य लोक में होते हैं। उस ताप और तम के क्षेत्र का निरूपण करते हुए आचार्य श्रावण एवं माघ आदि माह में सूर्य के दक्षिणायन और उत्तरायण की प्ररूपणा करते हैं :—

गाथार्थ :—श्रावण माह में सूर्य सबसे अभ्यन्तर परिधि में तथा माघ माह में सबसे बाह्य परिधि में स्थित रहता है। सूर्य स्थित माह के ताप और तम को सर्व परिधियों में कहना चाहिये ।। ३८१ ।।

विशेषार्थ :—सूर्य श्रावण माह में सबसे अभ्यन्तर परिधि में और माघ मास में सबसे बाह्य परिधि में रहता है। (शेष महिनों में मध्यम परिधियों में रहता है) उन सूर्य स्थित माह के ताप और तम को सर्व परिधियों में कहना चाहिये। यथा—जबकि छह माहों में **१८३** दिन होते हैं। तब एक माह में कितने दिन होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर प्रत्येक माह की निम्नलिखित दिन संख्या प्राप्त होती हैं :—

१ श्रावण माह में $\frac{१८३}{६} = \frac{६१}{२} = ३०\frac{१}{२}$ दिन होते हैं।
२ भाद्रपद तक ($\frac{६१}{२} + \frac{६१}{२}$) = ६१ दिन होते हैं।
३ आसौज माह तक ($\frac{१२२}{२} + \frac{६१}{२}$) = $\frac{१८३}{२}$ दिन होते हैं।
४ कार्तिक तक ($\frac{१८३}{२} + \frac{६१}{२}$) = १२२ दिन होते हैं।
५ मार्गशीर्ष माह तक ($\frac{२४४}{२} + \frac{६१}{२}$) = $\frac{३०५}{२}$ दिन होते हैं।

६ पौष तक ($\frac{३०५}{२}$ + $\frac{६१}{२}$) = १८३ दिन होते हैं।
७ पुनः माघ माह में $\frac{१८३}{६}$ = $\frac{६१}{२}$ = ३०$\frac{१}{२}$ दिन होते हैं।
८ फाल्गुन तक ($\frac{६१}{२}$ + $\frac{६१}{२}$) = ६१ दिन होते हैं।
९ चैत्र माह तक ($\frac{६१}{१}$ + $\frac{६१}{२}$) = $\frac{१८३}{२}$ दिन होते हैं।
१० वैशाख तक ($\frac{१८३}{२}$ + $\frac{६१}{२}$) = १२२ दिन होते हैं।
११ ज्येष्ठ माह तक ($\frac{१२२}{१}$ + $\frac{६१}{२}$) = $\frac{३०५}{२}$ दिन होते हैं।
१२ आषाढ़ तक ($\frac{३०५}{२}$ + $\frac{६१}{२}$) = १८३ दिन होते हैं।

यही दिन क्रम से सूर्य के दक्षिणायन और उत्तरायण के हैं। अर्थात् श्रावण माह से पौष माह तक (१८३ दिन) सूर्य दक्षिणायन तथा माघ माह से आषाढ़ माह तक (१८३ दिन) उत्तरायण रहता है।

अथ सर्वपरिधिषु तापतमसोरानयनप्रकारमाह—

गिरिअब्भंतरमज्झिमबाहिरजलछट्ठभागपरिहिं तु।
सट्ठिहिदे सूरट्ठियमुहुत्तगुणिदे दु तावतमा ॥ ३८२ ॥

गिर्यभ्यन्तरमध्यमबाह्यजलषष्ठभागपरिधिं तु।
षष्ठिहृते सूर्यस्थितमुहूर्तगुणिते तु तापतमसी ॥ ३८२ ॥

गिरि। गिरिविष्कम्भः १०००० एतावानेव जम्बूद्वीपप्रमाणे १००००० द्वीपचारक्षेत्रं १८० द्विगुणीकृत्य ३६० एतस्मिन् अपनीते अभ्यन्तरवीथीविष्कम्भः, ९९६४०, चारक्षेत्र ५१० मर्धीकृत्य २५५ अस्मिन् द्वीपचारक्षेत्र १८० मपनीय ७५ इदमुभयपार्श्वयोर्द्विगुणीकृत्य १५० जम्बूद्वीपे १ ल० निक्षिप्ते १००१५० मध्यमवीथीविष्कम्भः, लवणसमुद्रचारक्षेत्र ३३० मुभयपार्श्वयोर्द्विगुणीकृत्य ६६० जम्बूद्वीपे १ ल० मिलिते १००६६० बाह्यवीथीविष्कम्भः। लवणसमुद्रप्रमाणं २ ल० षड्भिर्भक्तवेदं ३३३३३$\frac{१}{३}$ पार्श्वद्वयार्थं द्विगुणीकृत्य ६६६६६$\frac{४}{६}$ शेषमपवर्त्य $\frac{२}{३}$ इदं जम्बूद्वीपे निक्षिप्ते १६६६६६$\frac{२}{३}$ जलषष्ठभाग-विष्कम्भः स्यात्। एतान् पञ्चविष्कम्भान् धृत्वा “विक्खंभवग्ग” इत्यादिना गिरिपरिधि ३१६२२ अभ्यन्तरपरिधि ३१५०८९ मध्यमपरिधि ३१६७०२ बाह्यपरिधि ३१८३१४ जलषष्ठभागपरिधि ५२७०४६ मानीय एतेषां गिरिपरिध्यादीनां मध्ये विवक्षितपरिधि ३१६२२ मुहूर्तषष्ठ्या विभज्य ५२७$\frac{१}{३०}$ यस्मिन् मासे सूर्यस्तिष्ठति तन्मासदिनरात्रिमुहूर्तैः १८। १७। १६। १५। १४। १३। १२ गुणिते ९४८६ शेषे $\frac{१८}{३०}$ षड्भिरपवर्तिते $\frac{३}{५}$ च लब्धं तस्मिन् मासे तापतमसोर्विवक्षितक्षेत्रमागच्छति। विवक्षितपरिधिं ३१६२२ मुहूर्तषष्ठ्या ६० विभज्य मासं प्रति मुहूर्तवृद्ध्या गुणिते ५२७$\frac{१}{३०}$ मासं प्रति क्षेत्रहानिचयमागच्छति। मासं प्रत्येकमुहूर्तवृद्धिरिति कथं ? एकस्मिन् दिने मुहूर्तस्य द्व्येकषष्टि-

भागमात्रे $\frac{३}{६१}$ हानिचये एकषष्टिविभक्तस्य $\frac{१}{६१}$ कियद्धानिचयमिति सम्पात्यापवर्तिते लब्धमुहूर्त एकः १। एवं कृत्वा षष्टिमुहूर्तानामेतावति क्षेत्रे गते ३१६२२ एकमुहूर्तस्य कियत् क्षेत्रमिति सम्पात्यापवर्तिते लब्धमिदं ५२७ $\frac{१}{३०}$ मासं प्रति क्षेत्रहानिचयं स्यात्। इदं दक्षिणायने तत्तन्मासे तापक्षेत्रे अपनयेत् तमःक्षेत्रे युञ्ज्यात्। उत्तरायणे तत्तन्मासतापक्षेत्रे युञ्ज्यात् तमः क्षेत्रे अपनयेत्। एवं कृते विवक्षितमासे विवक्षितपरिधौ तापतमसेविषयक्षेत्रमागच्छति ॥ ३८२ ॥

सर्व परिधियों में ताप और तम लाने का विधान कहते हैं :—

गाथार्थ :—सुमेरु पर्वत की परिधि, अभ्यन्तर वीथी की, मध्यम वीथी की, बाह्य वीथी की और जल में लवण समुद्र के व्यास के छठवें भाग की (पाँच) परिधियों को साठ से भाजित करने पर जो जो लब्ध प्राप्त हो उसे सूर्यस्थित माह के (रात्रि और दिन के) मुहूर्तों से गुणित करने पर ताप और तम का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ३८२ ॥

विशेषार्थ :—सुमेरु पर्वत का विष्कम्भ १०००० (दश हजार) योजन है।

अभ्यन्तर वीथी का विष्कम्भ—जम्बूद्वीप का प्रमाण १०००००—(१८०×२=) ३६०= ९९६४० योजन प्रमाण है।

मध्यम वीथी का विष्कम्भ—चारक्षेत्र ५१०÷२=२५५ योजन अर्ध चारक्षेत्र। २५५—१८० (जम्बूद्वीप का चारक्षेत्र)=७५×२=१५० योजन उभय पार्श्व भागों का प्रमाण है, अत: १०००००+ १५०=१००१५० योजन मध्यम वीथी का सूची व्यास प्राप्त हुआ।

बाह्य वीथी का विष्कम्भ :—लवण समुद्र सम्बन्धी चार क्षेत्र ३३०×२=६६० योजन उभय पार्श्व भागों का हुआ, अतः (जम्बूद्वीप का व्यास) १०००००+६६०=१००६६० योजन बाह्य वीथी का विष्कम्भ है।

जलषष्ठ भाग का विष्कम्भ—लवण समुद्र का वलय व्यास २००००० योजन है। छठे भाग का विष्कम्भ प्राप्त करने के लिये इसमें ६ का भाग देने पर ($\frac{२०००००}{६}$) = $\frac{१०००००}{३}$ अर्थात् ३३३३३$\frac{१}{३}$ योजन हुआ। उभय पार्श्व भागों का ग्रहण करने पर ३३३३३$\frac{१}{३}$×२=६६६६६$\frac{२}{३}$ योजन हुआ। जम्बूद्वीप का व्यास १०००००+६६६६६$\frac{२}{३}$ योजन=१६६६६६$\frac{२}{३}$ योजन जल षष्ठ भाग का विष्कम्भ है।

"विक्खंभवग्गदहगुण"...... गाथा ९६ के करणसूत्रानुसार उपर्युक्त पाँचों विष्कम्भों की परिधि निकालने पर सर्व प्रथम—

(१) मेरु की परिधि का प्रमाण ३१६२२ योजन,

(२) अभ्यन्तर वीथी की परिधि ३१५०८९ योजन,

(३) मध्यम वीथी की परिधि ३१६७०२ योजन,

(४) बाह्य वीथी की परिधि ३१८३१४ योजन, और

(५) जलषष्ठ भाग की परिधि का प्रमाण ५२७०४६ योजन होता है।

उपर्युक्त पाँचों परिधियों में से विवक्षित परिधि में ६० का भाग देकर जो लब्ध प्राप्त हो उसको सूर्य स्थित माह के दिन एवं रात्रि के मुहूर्तों (१८ । १७ । १६ । १५ । १४ । १३ । १२ ।) से गुणित करने पर उस माह के ताप और तम के विषय का क्षेत्र प्राप्त हो जाता है यथा—मेरुगिरि की परिधि विवक्षित है तथा सूर्य श्रावण माह पर स्थित है। श्रावण माह में दिन १८ मुहूर्त (१४ घंटे २४ मिनिट) का और रात्रि १२ मुहूर्त (९ घंटे ३६ मिनिट) की होती है। मेरु की परिधि ३१६२२ योजन है। अतः $\frac{३१६२२ \times १८}{६०}$ = ९४८६ $\frac{३}{५}$ योजन मेरु पर्वत के ऊपर ताप क्षेत्र का तथा $\frac{३१६२२ \times १२}{६०}$ = ६३२४ $\frac{२}{५}$ योजन तम क्षेत्र का प्रमाण है। इसी प्रकार अन्य परिधियों में जानना चाहिये।

विवक्षित परिधि को ६० से भाजित कर, लब्ध को एक मुहूर्त से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे प्रत्येक माह के ताप तम के हानि वृद्धि क्षेत्र के प्रमाण रूप हानि चय जानना चाहिये। जैसे—मेरुगिरि की ३१६२२ योजन परिधि विवक्षित है, अतः $\frac{३१६२२ \times १ \text{ मुहूर्त}}{६०}$ = ५२७ $\frac{२}{६०}$ योजन हानि चय प्राप्त हुआ।

एक माह में एक मुहूर्त की वृद्धि कैसे होती है ? उसे कहते हैं :—

जबकि १ दिन में $\frac{२}{६१}$ मुहूर्त (१ $\frac{३५}{६१}$ मिनिट) की हानि होती है, तब अर्ध साठ दिन अर्थात् ३० $\frac{१}{२}$ दिन में कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर—$\frac{२}{६१} \times \frac{६१}{२}$ = १ मुहूर्त (४८ मिनिट) की हानि ३० $\frac{१}{२}$ दिन में होगी।

भ्रमण द्वारा दो सूर्य एक परिधि को ३० मुहूर्त में पूरा करते हैं। यदि मान लो एक ही सूर्य होता तो उसे ६० मुहूर्त एक परिधि की समाप्ति में लगते। जबकि ६० मुहूर्त में सूर्य ३१६२२ योजन क्षेत्र में भ्रमण करता है, तब एक मुहूर्त में कितना भ्रमण करेगा ? इस प्रकार त्रैराशिक निकालने पर $\frac{३१६२२}{६०}$ = ५२७ $\frac{१}{३०}$ योजन १ मुहूर्त का भ्रमण क्षेत्र प्राप्त हुआ। यही ताप क्षेत्र की हानि का प्रमाण है। अर्थात् श्रावण माह के ताप क्षेत्र के प्रमाण से भाद्रपद का ताप क्षेत्र ५२७ $\frac{१}{३०}$ योजन कम हो गया और श्रावण माह के तम क्षेत्र की अपेक्षा भाद्रपद के तमक्षेत्र में ५२७ $\frac{१}{३०}$ योजन की वृद्धि हो गई।

अथैवमागततापतमःक्षेत्रप्रवर्तनमाह—

परिधिम्हि जम्हि चिट्ठदि सूरो तस्सेव तावमाणदलं ।
बिंबपुरदो पसप्पदि पच्छाभागे य सेसद्धं ॥ ३८३ ॥

परिधौ यस्मिन् तिष्ठति सूर्यः तस्यैव तापमानदलम् ।
बिम्बपुरतः प्रसर्पति पश्चाद्भागे च शेषार्धम् ॥ ३८३ ॥

परिधि। यस्मिन् परिधौ सूर्यस्तिष्ठति तस्यैव तापप्रमाणदलं बिम्बपुरतः प्रसर्पति, शेषार्धं पश्चाद्भागे अपसर्पति ॥ ३८३ ॥

इस प्रकार प्राप्त हुए ताप और तम क्षेत्रों का प्रवर्तन (फैलाव) कहते हैं—

गाथार्थ :—जिस परिधि में सूर्य स्थित होता है उसी परिधि में आधा तापमान सूर्यबिम्ब के पीछे और आधा सूर्यबिम्ब के आगे फैलता है ॥ ३८३ ॥

विशेषार्थ :—जिस परिधि में सूर्य के तापमान का जो प्रमाण कहा गया है, उसका आधा भाग सूर्यबिम्ब के पीछे और आधा प्रमाण सूर्यबिम्ब के आगे आगे फैलता है।

इदानीं तापतमसोर्हानिवृद्धिमाह—

पणपरिधीयो भजिदे दसगुणसूरंतरेण जल्लद्धं ।
सा होदि हाणिवड्ढी दिवसे दिवसे च तावतमे ॥३८४॥

पञ्चपरिधिषु भक्तेषु दशगुणसूर्यान्तरेण यल्लब्धं ।
सा भवति हानिवृद्धिर्दिवसे दिवसे च तापतमसोः ॥ ३८४ ॥

पण। षष्टिमुहूर्तानां पञ्चपरिध्यन्यतरप्रमितेषु क्षेत्रेषु गतेषु द्वयेकषष्टि २/६१ मुहूर्तानां कियत् क्षेत्रमिति सम्पातेन पञ्चपरिधिषु दशगुणसूर्यान्तरेण १८३० भक्तेषु यल्लब्धं १७। ५५२/९१५० सा भवति हानिवृद्धिर्दिवसे दिवसे च तापतमसोः ॥ ३८४ ॥

तापतम की हानि वृद्धि को कहते हैं :—

गाथार्थ :—पाँचों परिधियों को दशगुणे सूर्य के अन्तराल के प्रमाण से भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो वही प्रत्येक दिन में हानि वृद्धि के तापतम का प्रमाण है ॥ ३८४ ॥

विशेषार्थ :—पाँचों परिधियों में विवक्षित परिधि मेरुगिरि की है। जबकि ६० मुहूर्तों में सूर्य ३१६२२ योजन प्रमाण क्षेत्र में सञ्चार करता है, तब २/६१ मुहूर्त में कितना करेगा ? इस प्रकार त्रैराशिक निकालने पर (३१६२२ × २)/(६० × ६१) = १७ ५१२/१८३० योजन प्राप्त होता है।

सूर्य के गमन की १८४ गलियाँ हैं, उनमें से अन्तराल गलियाँ १८३ ही हैं। इन्हें १० से गुणित करने पर (१८३ × १०) = १८३० प्राप्त होते हैं। इन १८३० से मेरुगिरि की विवक्षित परिधि ३१६२२ योजन को भाजित करने पर भी (३१६२२ ÷ १८३०) १७ ५१२/१८३० = १७ २५६/९१५ योजन प्राप्त होता है। यही देखकर आचार्यों ने ऐसा कहा है कि विवक्षित परिधि को दशगुणित अन्तराल से भाजित करने पर प्रत्येक दिन में ताप और तम की हानि वृद्धि का प्रमाण प्राप्त होता है। अर्थात् जब सूर्य उत्तरायण होता है, तब प्रतिदिन ताप का क्षेत्र १७ ५१२/१८३० योजन प्रमाण बढ़ता है और इतना ही क्षेत्र तम का घटता है, किन्तु जब सूर्य दक्षिणायन होता है, तब प्रतिदिन ताप का क्षेत्र १७ ५१२/१८३० योजन प्रमाण घटता है और तम का इतना ही क्षेत्र बढ़ता है। इसी प्रकार अन्य अन्य परिधियों में भी ताप तम की प्रतिदिन की हानि वृद्धि का प्रमाण निकाल लेना चाहिए। अर्थात् अभ्यन्तर वीथी में ताप तम की प्रति दिन की हानि वृद्धि का चय (३१५०८९/१८३०) = १७२ ३२९/१८३० योजन प्रमाण है।

मध्यम वीथी में ताप तम की प्रतिदिन की हानि वृद्धि का चय (३१६७०२/१८३०) = १७३ ५६/९१५ यो. है।

बाह्य वीथी में ताप तम की प्रतिदिन की हानि वृद्धि का चय (३१८३१४/१८३०) = १७३ ८६२/९१५ यो. है।

जल षष्ठ भाग वीथी में ताप तम की प्रतिदिन की हानि वृद्धि का चय (५२७०४६/१८३०) = २८८ १/३०५ योजन है।

अथ पञ्चपरिधीनां सिद्धाङ्कं गाथाद्वयेन कथयति—

> बावीस सोलतिण्णिय उणणउदी पण्णमेक्कतीसं च।
> दुखसत्तट्ठिगितीसं चोद्दस तेसीदि इगितीसं ॥ ३८५ ॥
>
> छादालसुण्णसत्तयबावण्णं होंति मेरुपहुदीणं।
> पंचण्णं परिधीओ कमेण अंकक्कमेणेव ॥ ३८६ ॥

> द्वाविंशतिः षोडशत्रीणि एकोननवतिपञ्चाशदेकत्रिंशच्च।
> द्विखसप्तषट्एकत्रिंशत् चतुर्दशत्र्यशीतिएकत्रिंशत् ॥ ३८५ ॥
> षट्चत्वारिंशच्छून्यसप्तकद्विपञ्चाशत् भवन्ति मेरुप्रभृतीनाम्।
> पञ्चानां परिधयः क्रमेण अङ्कक्रमेणैव ॥ ३८६ ॥

बावीस । **द्वाविंशतिषोडशशतीरिण ३१६२२ गिरिपरिधिः एकोननवति पञ्चाशदेकत्रिंशद-भ्यन्तरपरिधिः ३१५०८९ द्विसप्तशतषट्प्रेकत्रिंशत् मध्यपरिधिः ३१६७०२ चतुर्दशत्र्यशीत्येकत्रिंशद्बाह्य-परिधिः ३१८३१४ ॥ ३८५ ॥**

छादाल । **षट्चत्वारिंशच्छून्यसप्तद्विपञ्चाशज्जलषष्ठभागपरिधिः ५२७०४६ इति भवन्ति मेरुप्रभृतीनां पञ्चानां परिधयः क्रमेणाङ्कक्रमेणैव ॥ ३८६ ॥**

अब दो गाथाओं में पाँचों परिधियों के सिद्ध हुए अङ्क कहते हैं :—

गाथार्थ :—इकतीस हजार छह सौ बाईस; तीन लाख पन्द्रह हजार नवासी; तीन लाख सोलह हजार सात सौ दो; तीन लाख अठारह हजार तीन सौ चौदह और पांच लाख सत्ताईस हजार छयालीस मेरुगिरि की परिधि को आदि करके क्रम से पाँचों परिधियों के सिद्ध हुए अङ्कों का प्रमाण है ।। ३८५, ३८६ ।।

विशेषार्थ :—मेरुगिरि की परिधि का प्राप्त हुआ प्रमाण ३१६२२ योजन है। अभ्यन्तर वीथी की परिधि का प्रमाण ३१५०८९ योजन है। मध्यम वीथी की परिधि का प्रमाण ३१६७०२ योजन है। बाह्य वीथी की परिधि का प्रमाण ३१८३१४ योजन है और जलषष्ठ भाग की परिधि का प्रमाण ५२७०४६ योजन है।

अथ विसदृशान् परिधीन् कथं समानकालेन समापयति इत्यत्राह—

णीयंता सिग्घगदी पविसंता रविससी दु मंदगदी ।
विसमाणि परिरयाणि दु साहंति समाणकालेण ।। ३८७ ।।

नियान्तौ शीघ्रगती प्रविशन्तौ रविशशिनौ तु मन्दगती ।
विषमान् परिधींस्तु साधयतः समानकालेन ।। ३८७ ।।

णीयंता । नियान्तौ शीघ्रगती भूत्वा प्रविशन्तौ रविशशिनौ मन्दगती भूत्वा विषमान् परिधींस्तु साधयतः समापयतः समानकालेन ॥ ३८७ ॥

विसदृश प्रमाणवाली परिधियों को सूर्य समानकाल में कैसे समाप्त करता है ? इसे कहते हैं :—

गाथार्थ :—सूर्य और चन्द्र निकलते समय अर्थात् प्रथमादि वीथी से द्वितीयादि वीथियों में जाते समय शीघ्रगति से गमन करते हैं, किन्तु बाह्यादि वीथियों से ज्यों ज्यों पीछे की वीथियों

में आते हैं, त्यों त्यों मन्द गमन करते हैं। इस प्रकार विषम वीथियों को भी समानकाल में पूरा कर लेते हैं ॥ ३८७ ॥

विशेषार्थ :— अभ्यन्तर आदि वीथियों की परिधियों का प्रमाण समान नहीं है। अर्थात् वे हीनाधिक प्रमाण को लिये हुए हैं। दो सूर्य प्रत्येक वीथी को ६० मुहूर्त में अपने सञ्चार द्वारा समाप्त कर लेते हैं, अतः प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि समान काल में हीनाधिक प्रमाण वाली परिधियों को कैसे पूरा करते हैं? समाधान में आचार्य कहते हैं कि सूर्य चन्द्र का गमन अभ्यन्तर वीथी में अत्यन्त मन्द है, किन्तु जैसे जैसे वे द्वितीयादि वीथियों में पहुँचते जाते हैं, वैसे वैसे उनकी गति क्रमशः तेज होती जाती है। इसी प्रकार बाह्य वीथी में सबसे तेजगति है। वहाँ से वे जैसे जैसे भीतर प्रवेश करते जाते हैं, वैसे वैसे उनकी चाल क्रमशः मन्द होती जाती है। इस प्रकार समान समय में वे दोनों विसदृश वीथी के प्रमाण को पूरा करते हैं।

अथ तयो रविशशिनोर्गमनप्रकारं पुनर्दृष्टान्तमुखेनाह—

गयहयकेसरिगमणं पढमे मज्झन्तिमे य सूरस्स ।
पडिपरिहिं रविससिणो मुहुत्तगदिखेत्तमाणिज्जो ॥३८८॥

गजहयकेसरिगमनं प्रथमे मध्ये अन्तिमे च सूर्यस्य।
प्रतिपरिधि रविशशिनोः मुहूर्तगतिक्षेत्रमानेयम् ॥ ३८८ ॥

गय। गजगमनं हयगमनं केसरिगमनं प्रथमे मध्यमे अन्तिमे च पथि सूर्याचन्द्रमसोर्भवति। इदानीं रविशशिनोः प्रतिपरिधि मुहूर्तगतिक्षेत्रमानेयं। कथमिति चेत्। षष्टिमुहूर्ताना ६० मेतावति क्षेत्रे ३१५०८९ एकमुहूर्तस्य कियत् क्षेत्रमिति सम्पातेनानेतव्यं। सूर्यस्याभ्यन्तरपरिधौ मुहूर्तगतिरियं ५२५१ $\frac{२९}{६०}$ चन्द्रस्याप्येवं त्रैराशिकविधिनानेतव्यं। चन्द्रस्य परिधिसमाप्तकालः ६२ $\frac{२३}{२२१}$ समच्छेदेनानयोर्मेलने प्रमाणराशि। $\frac{१३७२५}{२२१}$ फल ३१५०८९ इच्छा मुहूर्त १ लब्ध ५०७३ शेष $\frac{७७४४}{१३७२५}$ ॥ ३८८ ॥

रविशशि के गमन प्रकार को दृष्टान्त द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :— सूर्य और चन्द्र प्रथम (अभ्यन्तर) वीथी में हाथीवत्, मध्यम वीथी में घोड़े वत् और अन्तिम (बाह्य) वीथी में सिंहवत् गमन करते हैं। इनकी प्रत्येक परिधि में एक मुहूर्त का गति क्षेत्र निकालते हैं ॥ ३८८ ॥

विशेषार्थ :— प्रथम मार्ग में सूर्य चन्द्र के गमन की गति गज सदृश (अतिमन्द) है, मध्यम मार्ग में घोड़े की चाल सदृश (मध्यमगति) है और अन्तिम मार्ग में दोनों की चाल सिंह सदृश (तेजगति) है।

सूर्य चन्द्र की प्रत्येक परिधि में एक मुहूर्त की गति का प्रमाण लाने के लिये कहते हैं—

अभ्यन्तर परिधि में सूर्य का एक मुहूर्त की गति का प्रमाण कहते हैं।—

जबकि ६० मुहूर्त में सूर्य ३१५०८९ योजन क्षेत्र में सञ्चार करता है तब एक मुहूर्त में कितने योजन सञ्चार करेगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर सूर्य का एक मुहूर्त के गमन का प्रमाण ५२५१ $\frac{२९}{६०}$ योजन (२१००५९३३ $\frac{१}{३}$ मील) प्राप्त होता है। [विशेष ज्ञातव्य :—जबकि सूर्य ४८ मिनिट (१ मुहूर्त) में २१००५९३३ $\frac{१}{३}$ मील जाता है, तब एक मिनिट में कितने योजन जायगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{२१००५९३३\frac{१}{३}}{४८}$ अर्थात् ४३७६२३ $\frac{११}{१८}$ मील जायगा। अर्थात् सूर्य अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी में एक मिनट में ४३७६२३ $\frac{११}{१८}$ मील चलता है] मध्यम वीथी की परिधि ३१६७०२ योजन है। ३१६७०२ ÷ ६० = ५२७८ $\frac{११}{३०}$ योजन मध्यम पथ में स्थित सूर्य की एक मुहूर्त परिमित गति का प्रमाण है। [५२७८ $\frac{११}{३०}$ योजन अर्थात् २१११४६६६ $\frac{२}{३}$ मील ÷ ४८ = ४३९८८८ $\frac{८}{९}$ मील मध्यम पथ में स्थित सूर्य के एक मिनिट की गति का प्रमाण है। अर्थात् मध्यम वीथी में सूर्य १ मिनिट में ४३९८८८ $\frac{८}{९}$ मील चलता है।] बाह्य वीथी की परिधि ३१८३१४ योजन है। ३१८३१४ ÷ ६० = ५३०५ $\frac{७}{३०}$ योजन बाह्य पथ में स्थित सूर्य की एक मुहूर्त परिमित गति का प्रमाण है। [५३०५ $\frac{७}{३०}$ योजन अर्थात् २१२२०९३३ $\frac{१}{३}$ मील ÷ ४८ मिनिट = ४४२१०२ $\frac{७}{९}$ मील बाह्य पथ में स्थित सूर्य के एक मिनिट की गति का प्रमाण है। अर्थात् सूर्य बाह्य (अन्तिम) वीथी में एक मिनिट में ४४२१०२ $\frac{७}{९}$ मील चलता है।]

चन्द्रमा का एक मुहूर्त का गति-प्रमाण :—

सूर्य को अपनी परिधि पूर्ण करने में कुल ६० मुहूर्त (२४ घंटे) लगते हैं, किन्तु चन्द्रमा को उसी प्रमाण वाली अपनी परिधि पूर्ण करने में ६२ $\frac{२३}{२२१}$ मुहूर्त (कुछ कम २५ घंटे) लगते हैं। जबकि चन्द्र ६२ $\frac{२३}{२२१}$ या $\frac{१३७२५}{२२१}$ मुहूर्तों में ३१५०८९ योजन (अपनी अभ्यन्तर परिधि प्रमाण) चलता है, तब एक मुहूर्त में कितने योजन चलेगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{३१५०८९}{१} \times \frac{२२१}{१३७२५} =$ ५०७३ $\frac{७७४४}{१३७२५}$ योजन अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी में स्थित चन्द्र की एक मुहूर्त परिमित गति का प्रमाण है। [५०७३ $\frac{७७४४}{१३७२५}$ योजन अर्थात् २०२९४२५६ $\frac{४९६}{५४९}$ मील ÷ ४८ मिनिट = ४२२७९७ $\frac{३१}{१६४७}$ मील प्रथम मार्ग में स्थित चन्द्र के एक मिनिट की गति का प्रमाण है।]

बाह्य पथ की परिधि का प्रमाण ३१८३१४ योजन है। ३१८३१४ ÷ $\frac{१३७२५}{२२१}$ (६२ $\frac{२३}{२२१}$ मु०) = ५१२५ $\frac{६७६९}{१३७२५}$ योजन बाह्य पथ में स्थित चन्द्र की एक मुहूर्त परिमित गति का प्रमाण है।

[५१२५ $\frac{६७६९}{१३७२५}$ योजन अर्थात् २०५०४४७२ [illegible] मील ÷ ४८ मिनिट = ४२७१७६ [illegible] मील बाह्य (अन्तिम) गली में स्थित चन्द्र के एक मिनिट की गति का प्रमाण है।]

अथाभ्यन्तरवीथीस्थसूर्यस्य चक्षुः स्पर्शाध्वानमानयति गाथात्रिकेन—

सट्ठिहिदपढमपरिहिं णवगुणिदे चक्खुपासअद्धाणं ।
तेणूणं णिसहाचलचावद्धं जं पमाणमिणं ॥ ३८९ ॥

इगिवीसब्भहियसयं साहियमागम्म णिसहउवरिम्मि ।
दिस्सदि अउज्झमज्झे तेणूणो णिसहपासभुजो ॥ ३९० ॥

णिसहुवरि गंतव्वं पणसयपण्णासयं च देसूणा ।
तेत्तियमेत्तं गत्ता णिसहे अत्थं च जादि रवी ॥ ३९१ ॥

षष्टिहितप्रथमपरिधौ नवगुणिते चक्षुःस्पर्शाध्वा ।
तेनोनं निषधाचलचापार्धं यत् प्रमाणमिदम् ॥ ३८९ ॥

एकविंशतिषट्चत्वारिंशच्छतं साधिकं आगत्य निषधोपरि इनः ।
दृश्यते अयोध्यामध्ये तेनोनः निषधपार्श्वभुजः ॥ ३९० ॥

निषधोपरि गन्तव्यं पञ्चशतपञ्चाशत्पञ्च देशोना ।
तावन्मात्रं गत्वा निषधे अस्तं च याति रविः ॥ ३९१ ॥

सट्ठि । षष्टिमुहूर्तानां एतावति गमनक्षेत्रे ३१५०८९ नव ९ मुहूर्तानां कियत् क्षेत्रमिति सम्पातक्रमेण षष्टिभिर्हृते प्रथमपरिधौ ३१५०८९ त्रिभिरपवर्तितैः $\frac{३१५०८९}{२०}$ × ३ गुणयित्वा $\frac{९४५२६७}{२०}$ भक्ते सति ४७२६३ शेषः $\frac{७}{२०}$ चक्षुःस्पर्शाध्वा भवति । निषधाचलचापा १२३७६८ $\frac{९}{१९}$ चं ६१८८४ शे० $\frac{९}{३८}$ तेन चक्षुःस्पर्शाध्वना न्यूनं यत्प्रमाणमिदं पुरो गाथायां कथ्यमानं ॥ ३८९ ॥

इगिवीस । एकविंशत्युत्तरषट्चत्वारिंशच्छतं साधिकं १४६२१ कियत्साधिकं, अध्वचापयोः शेषं $\frac{७}{२०}$ । $\frac{९}{३८}$ परस्परहारेणाधः उपरि गुणयित्वा $\frac{२६६}{७६०}$ । $\frac{१८०}{७६०}$ शोधिते $\frac{८६}{७६०}$ एवमनेन साधिकमित्युच्यते । एतावन्निषधस्योपर्यागत्य इनो दृश्यते अयोध्यामध्ये चक्रवर्तिभिः । निषधपार्श्वभुजः २०१६६ तेनागतक्षेत्रेण १४६२१ न्यूनः अग्रे वक्ष्यमाणं भवति ॥ ३९० ॥

णसहु । निषधोपरि गन्तव्यं पञ्च सप्त पञ्चाशत् पञ्च देशोना ५५७५ एतावन्मात्रमेव निषधस्योपरि गत्वा रविः अस्तं याति ॥ ३९१ ॥

तीन गाथाओं द्वारा अभ्यन्तर वीथी में स्थित सूर्य के चक्षु इन्द्रिय के स्पर्श का मार्ग निकालने के लिये कहते हैं :—

गाथार्थ :— प्रथम परिधि को ६० से भाजित करके प्राप्त लब्ध को ९ से गुणित करने पर चक्षु के स्पर्शन का मार्ग अर्थात् चक्षु इन्द्रिय के विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र का प्रमाण होता है। निषधाचल पर्वत के धनुष का जो (१२३७६८$\frac{१८}{१९}$) प्रमाण है, उसको आधा करने पर जो (६१८८४$\frac{९}{१९}$) लब्ध प्राप्त हो उसमें से चक्षु इन्द्रिय के स्पर्श क्षेत्र के प्रमाण (४७२६३$\frac{७}{२०}$) को कम कर देने पर अवशेष जो, कुछ अधिक १४६२१ योजन रहा, उतना (१४६२१$\frac{४७}{३८०}$ यो०) निषध पर्वत के ऊपर आकर सूर्य अयोध्यानगरी के मध्य में स्थित चक्रवर्ती के द्वारा देखा जाता है। इसको (१४६२१ यो०) निषधपर्वत की पार्श्व भुजा में से कम कर देने पर जो अवशेष बचता है, वह निषधाचल के ऊपर जाते हुए ५५७५ योजन होता है, अतः निषधाचल के ऊपर ५५७५ योजन जाकर सूर्य अस्त होता है ॥ ३८९, ३९०, ३९१ ॥

विशेषार्थ :— प्रथम (अभ्यन्तर) परिधि का प्रमाण ३१५०८९ योजन है, अतः ६० मुहूर्त का गमन क्षेत्र ३१५०८९ योजन है, तब ९ मुहूर्त का कितना गमन क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{३१५०८९ \times ९}{६०}$ हुये। इन्हें ३ से अपवर्तित करने पर $\frac{३१५०८९ \times ३}{२०}$ अर्थात् $\frac{९४५२६७}{२०}$ अर्थात् ४७२६३$\frac{७}{२०}$ योजन चक्षु स्पर्श अध्वान [चक्षु इन्द्रिय के विषयभूत उत्कृष्ट क्षेत्र का प्रमाण] प्राप्त होता है। निषधाचल पर्वत का चाप १२३७६८$\frac{१८}{१९}$ योजन है। इसका अर्धभाग (१२३७६८$\frac{१८}{१९}$ ÷ २)= ६१८८४$\frac{९}{१९}$ योजन हुआ। इसमें से चक्षुस्पर्श अध्वान घटा देने पर—(६१८८४$\frac{९}{१९}$—४७२६३$\frac{७}{२०}$)= १४६२१ योजन और कुछ अधिक अवशेष रहता है, वह कुछ अधिक कितना है ? चाप का अवशेष भाग $\frac{९}{१९}$ योजन और अध्वान का अवशेष भाग $\frac{७}{२०}$ योजन है। $\frac{९}{१९}$—$\frac{७}{२०}$=$\frac{४७}{३८०}$ अर्थात् १४६२१$\frac{४७}{३८०}$ यो० शेष रहता है। प्रथम वीथी में भ्रमण करता हुआ सूर्य जब निषध कुलाचल के उत्तर तट से १४६२१$\frac{४७}{३८०}$ योजन ऊपर आता है तब अयोध्या नगरी के मध्य में स्थित महापुरुषों (चक्रवर्ती) के द्वारा देखा जाता है। इसको निषधाचल की पार्श्व भुजा (२०१९६) में से घटा देने पर (२०१९६— १४६२१$\frac{४७}{३८०}$) जो अवशेष रहता है, वह निषधाचल के ऊपर जाते हुए ५५७५ योजन होता है, अतः निषधाचल के ऊपर ५५७५ योजन जाकर सूर्य अस्त होता है। अर्थात् प्रथम परिधि में भ्रमण करता हुआ सूर्य, जब निषधाचल पर्वत के दक्षिण तट पर कुछ कम ५५७५ योजन जाता है तब अस्त हो जाता है। यथा—

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिये]

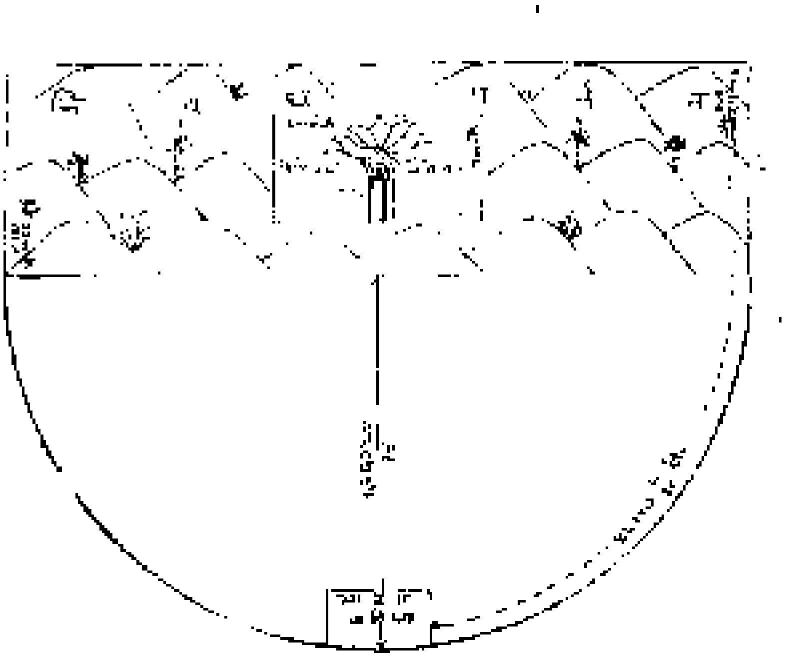

इदानीं प्रकृतचापानयनार्थं तदुक्तान् बाणानाह —

जंबूचारधरूणो हरिवस्ससरो य णिसहबाणो य ।
इह बाणवट्टं पुण अब्भंतरवीहिवित्थारो ॥ ३९२ ॥

जम्बूचारधरोनः हरिवर्षशरः च निषधबाणश्च ।
इह बाणवृत्तं पुनः अभ्यन्तरवीथीविस्तारः ॥ ३९२ ॥

जंबूचार । भरतधरां १६ गुण २ गुणियं ३२ भावविहीणं ३१ कज्जुत्तरभजियं $\frac{31}{?}$ इति शलाकामानीय एतावच्छलाकानां १९० एतावति क्षेत्रे १०००००० एतावद्धरिवर्षशलाकानां ३१ निषधशलाकानां च ६३ कियत्क्षेत्रमिति सम्पात्य गुणिते हरिवर्षबाणः [illegible] निषधबाणः [illegible] एतौ हरिवर्षनिषधबाणौ समानच्छेदीकृते [illegible] जम्बूचारधरा १८० न्यूनौ चेत् इह चक्षुःस्पर्शनमयने बाणौ स्यातां [illegible] । [illegible] तयोर्वृत्तविष्कम्भः पुनः जम्बूद्वीपे १ ल० द्वीपचारक्षेत्रं १८० द्विगुणीकृत्य ३६० अपनीते अभ्यन्तरवीथीविस्तारः स्यात् ९९६४० अमुं विष्कम्भं समच्छेदीकृत्य [illegible] अत्र 'इसु [illegible] हीणं विक्खंभं [illegible] चउगुणिदिसुणा [illegible] हवे दु जीवकदी [illegible] बाणकदि [illegible] छहिगुणिदे [illegible] तत्थ जुदे धणुकदी होदी'[1] [illegible] तन्मूलं [illegible] स्वहारेण भक्तं चेत् ८३३७७ [illegible] शेषं हरिवर्षचापं स्यात् । निषधस्य तावत् समच्छेदीकृते तस्मिन् ९९६४० क्षेत्र विष्कम्भे [illegible] 'इसु [illegible] हीणं विक्खंभं [illegible] चउगुणिदिसुणा [illegible] हवे दु जीवकदी [illegible] बाणकदि

1 गाथा ७६० ।

३२२१०$\frac{४४}{३६१}$१४०० छहिगुणिदे ९३५५१$\frac{४४}{३६१}$७८४०० तस्स मूले धणुकदी होदि'[1] ५५३००$\frac{४४}{३६१}$४००० तन्मूलं २३५$\frac{४}{१६}$१० एतस्मिन् व्यवहारेण १६ भक्ते १२३७६८ शेषे $\frac{१}{१६}$ निषधगिरिचापं स्यात् ॥ ३६२ ॥

प्रयोजन भूत चाप (धनुष) का प्रमाण प्राप्त करने के लिये, उसके बाण को प्राप्त करने का विधान कहते हैं :—

गाथार्थ :— जम्बूद्वीप के चार क्षेत्र से रहित जो हरिवर्ष पर्वत के बाण और निषधपर्वत के बाण हैं, वे यहाँ चक्षु स्पर्श का अध्वान क्षेत्र लाने में बाण होते हैं। इनका जो वृत्त विस्तार है, वह प्रथम वीथी का विस्तार होता है ॥ ३९२ ॥

विशेषार्थ :— धनुषाकार क्षेत्र में जैसे धनुष की पीठ होती है, वैसा जो होता है, उसे धनुष या चाप कहते हैं। धनुष की चिल्ला अर्थात् डोरी का नाम जीवा है। धनुष के मध्य से जीवा के मध्य का भाग बाण कहलाता है। यहाँ जम्बूद्वीप की वेदी तथा हरिवर्षक्षेत्र और निषधाचल के बीच का क्षेत्र धनुषाकार है, अतः हरिक्षेत्र व निषध पर्वत से लेकर जम्बूद्वीप की वेदी पर्यन्त के अन्तराल क्षेत्र को बाण कहते हैं, उस बाण का प्रमाण लाते हैं :—

१ भरतक्षेत्र की शलाका	१	५ हरिक्षेत्र की शलाका	१६	९ रम्यकक्षेत्र की शलाका	१६
२ हिमवान्पर्वत की "	२	६ निषधाचल "	३२	१० रुक्मी प० " "	८
३ हैमवतक्षेत्र " "	४	७ विदेहक्षेत्र " "	६४	११ हैरण्यवत क्षे० " "	४
४ महाहिमवन प० " "	८	८ नीलपर्वत " "	३२	१२ शिखरी प० " "	२
				१३ ऐरावत " "	१

इस प्रकार कुल शलाकाओं का योग १९० है। इसमें भरतक्षेत्र से हरिवर्ष क्षेत्र पर्यन्त की शलाकाओं का प्रमाण ३१ है इन्हीं ३१ शलाकाओं का प्रमाण प्राप्त करने के लिये "अन्तधणं गुणगुणियं, आदि-विहीणं रूऊणुत्तर भजियं" इस सूत्रानुसार यहाँ (अन्तधणं) अन्तधन हरिक्षेत्र की सोलह शलाकाएँ हैं, तथा प्रत्येक शलाकाएँ भरतक्षेत्र से आगे दूनी दूनी होती गई हैं, अतः गुणकार दो है, इसका गुणा करने से (१६ × २) = ३२ हुए। इसमें से आदिधन (भरतक्षेत्र की १ शलाका) घटा देने पर (३२ — १) = ३१ अवशेष रहे। इन्हें (रूऊणुत्तर भजियं) एक कम गुणाकार से भाजित करने पर ३१ ÷ (२ — १) = ३१ शलाकाएँ ही प्राप्त हुईं। इसी प्रकार निषधाचल की शलाकाएँ ६३ होंगी। जम्बूद्वीप का विस्तार १ लाख योजन का एवं इसकी कुल शलाकाएँ १९० हैं, अतः जबकि १९० शलाकाओं का क्षेत्र १००००० योजन है, तब हरिवर्ष क्षेत्र की

१ गाथा ७६०।

३१ और निषधाचल की ६३ शलाकाओं का कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर हरिवर्ष क्षेत्र का बाण ३१००००/१९ और निषधाचल का बाण ६३००००/१९ योजन प्राप्त होता है। अर्थात् वेदी से हरिवर्ष और निषध के बीच इतना इतना अन्तराल है। यहाँ चक्षु अध्वान क्षेत्र लाने के लिये कहते हैं :—जम्बूद्वीप का चार क्षेत्र १८० योजन प्रमाण है, इसको १९ से समानछेद करने पर (१८०/१ × १९/१९) = ३४२०/१९ योजन होता है। इसे पूर्वकथित हरिवर्ष एवं निषधाचल के बाण के प्रमाण में से घटा देने पर (३१००००/१९ − ३४२०/१९) = ३०६५८०/१९ हरिवर्ष क्षेत्र का बाण तथा (६३००००/१९ — ३४२०/१९) = ६२६५८०/१९ निषधाचल के बाण का प्रमाण प्राप्त हुआ। यह वृत्तविष्कम्भ अर्थात् गोलाई का क्षेत्र है। इसकी चौड़ाई का प्रमाण कहते हैं :—यथा जम्बूद्वीप के वृत्तविष्कम्भ १००००० योजन में से इसी द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्र के दोनों पार्श्व भागों का प्रमाण घटा देने पर (१००००० — (१८० × २)) = ९९६४० योजन अभ्यन्तर वीथी का विस्तार प्राप्त हो जाता है। इस अभ्यन्तर वीथी के प्रमाण को १९ से समच्छेद करने पर (९९६४०/१ × १९/१९) = १८९३१६०/१९ योजन हुआ।

अब यहाँ हरिवर्ष क्षेत्र के चाप का प्रमाण लाने के लिए कहते हैं :—

"इसुहीणं विक्खंभं, चउगुणिदिसुणा हदे दु जीवकदी। बाणकदिं छहिगुणिदे, तत्थ जुदे धणुकदी होदि" इस ७६० गाथानुसार हरिवर्ष क्षेत्र के बाण के प्रमाण (३०६५८०/१९) को अभ्यन्तर वीथी के प्रमाण (१८९३१६०/१९) में से घटाने पर जो अवशेष रहे (१५८६५८०/१९) उसको चौगुणे बाण के प्रमाण (३०६५८०×४/१९) से गुणित करने पर जीवा की कृति होती है। यथा :—१८९३१६०/१९ — ३०६५८०/१९ = १५८६५८०/१९ अवशेष। चौगुणा बाण का प्रमाण (३०६५८०/१९ × ४/१) = १२२६३२०/१९ है। १५८६५८०/१९ × १२२६३२०/१९ = १९४५६५४७८५६००/३६१ योजन जीवा की कृति अर्थात् जीवा के वर्ग का प्रमाण है। इस जीवा की कृति के वर्गमूल का जो प्रमाण है—वही जीवा का प्रमाण है। अर्थात् १३९४८६७/१९ = ७३४१४ १/१९ योजन की जीवा है।

धनुष (चाप) की कृति :—हरिवर्ष क्षेत्र के बाण का प्रमाण ३०६५८०/१९ योजन है। इसकी कृति (३०६५८०/१९ × ३०६५८०/१९) = ९३९९१२९६४००/३६१ योजन हुई। इसको छह से गुणित कर जीवा की कृति में जोड़ने से धनुष की कृति होती है, यथा—९३९९१२९६४००/३६१ × ६/१ = ५६३९४७७७८४००/३६१ + १९४५६५४७८५६००/३६१ = २५०९६०२५६४०००/३६१ योजन धनुष की कृति का प्रमाण है। इसका वर्गमूल = १५८४१७२/१९ योजन हुआ। इसमें अपने ही भागहार (१९) का भाग देने पर ८३३७७ ९/१९ योजन हरिवर्ष क्षेत्र के चाप का प्रमाण होता है।

निषध पर्वत के चाप का प्रमाण :—

अभ्यन्तर वीथी का प्रमाण १८९३१६०/१९ — ६२६५८०/१९ निषधाचल के बाण का प्रमाण =

१२१५६०/१९ × ४/१ = २५०१३२०/१९ से अवशेष भाग को गुणा करने से—(१२१५६०/१९ × २५०१३२०/१९) = ३१७४४५४४६८५१००/३६१ योजन जीवा की कृति अर्थात् जीवा के वर्ग का प्रमाण है। इस निषधाचल के जीवा की कृति के वर्गमूल का जो प्रमाण है, वही जीवा का प्रमाण है। निषधाचल की जीवा का प्रमाण १७८१६९७/१९ = ९३७७३ १०/१९ योजन है।

निषधाचल के चाप की कृति :—निषधाचल के बाण का प्रमाण १२१५६०/१९ योजन है। इसकी कृति (१२१५६०/१९ × १२१५६०/१९) = ३९२१०२४९१६००/३६१ योजन हुई। इसको ६ से गुणित कर जीवा की कृति में जोड़ने से धनुष की कृति होती है। यथा :—३९२१०२४९१६००/३६१ × ६/१ = २३५५१५४९५८४००/३६१ इसमें जीवा की कृति जोड़ने पर (२३५५१५४९५८४००/३६१ + ३१७४४५४४६८५१००/३६१) = ५५३००१४७६४०००/३६१ हुआ, इसका वर्गमूल २३५१६१०/१९ है। इसको अपने ही भागहार (१९) से भाग देने पर १२३७६८ १८/१९ योजन निषधाचल के चाप का प्रमाण होता है।

अथैवमानीतयोश्चापयोः किं कर्तव्यमित्यत्राह—

हरिगिरिधणुसेसद्धं पासभुजो सत्तसगतितेसीदी।
हरिवस्से णिसहधणू अडछस्सगतीसबारं च ॥ ३९३ ॥

हरिगिरिधनुः शेषार्धं पार्श्वभुजः सप्तसप्तत्रित्र्यशीतिः।
हरिवर्षे निषधधनुः अष्टषट्सप्तत्रिंशद्‌द्वादश च ॥ ३९३ ॥

हरि। हरिक्षेत्रधनुः ८३३७७ ३/१९ निषधगिरिधनुषि १२३७६८ १८/१९ शोधिते ४०३९१ १५/१९ शे० सति तत्रांशावेक १ मपनीयार्थी १/२ कृत्य २०१९५ शेषं चार्धीकृत्य १४/१९×२ अस्मिन्नपनीतार्धं १/२ समच्छेदीकृत्य १९/३८ अन्योन्यं संयोज्य ३३/३८ तदप्यपवर्त्य १/१ इदं किञ्चिन्न्यूनं प्रगणयित्वा एकयोजनं कृत्वा हरिगिरिधनुश्शेषार्धे २०१९५ संयोजिते २०१९६ सति निषधस्य पार्श्वभुजो भवति। इदानीं हरिगिरिधनुषोः सिद्धाङ्कमुच्चारयति—सप्तसप्त त्र्यशीतियोजनानि ८३३७७ हरिवर्षक्षेत्रे धनुः निषधपर्वते धनुः अष्टषट्सप्तत्रिंशद्‌द्वादश च योजनानि १२३७६८ ॥ ३९३ ॥

इस प्रकार प्राप्त किये हुए हरिक्षेत्र और निषधाचल के चाप का क्या करना है ? उसे कहते हैं :—

---

१ अत्र (ब०)।

गाथार्थ :—निषधाचल के चाप (धनुष) का प्रमाण १२३७६८$\frac{१८}{१९}$ योजन है, इसमें से हरिक्षेत्र के चाप (८३३७७$\frac{१}{१९}$ योजन) को घटा कर आधा करने पर जो अवशेष रहता है वह निषध पर्वत की पार्श्व भुजा का प्रमाण होता है ॥ ३९३ ॥

विशेषार्थ :—दक्षिण तट से उत्तर तट पर्यन्त चाप का जो प्रमाण है, उसे पार्श्वभुजा कहते हैं। निषधाचल के चाप का प्रमाण—हरिवर्ष क्षेत्र के चाप का प्रमाण ÷ २ = निषधाचल की पार्श्व भुजा का प्रमाण होता है। निषधाचल के चाप का प्रमाण १२३७६८$\frac{१८}{१९}$ योजन और हरिक्षेत्र के चाप का प्रमाण ८३३७७$\frac{१}{१९}$ योजन है। १२३७६८$\frac{१८}{१९}$—८३३७७$\frac{१}{१९}$ = ४०३९१$\frac{१७}{१९}$ योजन अवशेष रहे। इनमें से एक अङ्क घटा कर शेष को आधा करने पर (४०३९१—१) = ४०३९०$\frac{१७}{१९}$ रहा। इसे आधा करने पर ४०३९० ÷ २ = २०१९५ हुए। जो १ घटा लिया था उसका आधा और $\frac{१७}{१९}$ का आधा इन दोनों को जोड़कर दो से अपवर्तन कर देने पर ($\frac{१}{२}$ + $\frac{१७}{१९ \times २}$ = $\frac{३६}{३८}$ या) = $\frac{१८}{१९}$ प्राप्त हुआ। इसे किञ्चित् न्यून न मान कर १ योजन ही मान कर क्षेत्र और पर्वत के चाप को घटा कर अवशेष के अर्धभाग २०१९५ में जोड़ देने से (२०१९५ + १) = २०१९६ योजन निषधपर्वत की पार्श्व भुजा होती है।

अब हरिक्षेत्र और निषधाचल के धनुष (चाप) के सिद्ध हुए अङ्कों को कहते हैं :—हरिवर्ष क्षेत्र के धनुष का प्रमाण ८३३७७ योजन एवं निषधपर्वत के चाप का प्रमाण १२३७६८ योजन प्रमाण है।

अथोक्तयोर्धनुषोः शेषाङ्कं पार्श्वभुजाङ्कं चोच्चारयति—

माहवचंदुद्धरिया णवयकला णयपदप्पमाणगुणा ।
पासभुजो चोद्दसकदि वीससहस्सं च देसूणा ।। ३९४ ।।

माधवचन्द्रोद्धृता नवककला: नयपदप्रमाणगुणाः ।
पार्श्वभुजः चतुर्दशकृतिः विंशसहस्रं च देशोनानि ।। ३९४ ।।

माहव । माधवचन्द्रेण १९ उद्धृता नवकला $\frac{१८}{१९}$ एताः हरिक्षेत्रस्य चापशेषाः एता एव $\frac{१८}{१९}$ नयस्थानप्रमाण २ गुणिताः $\frac{३६}{१९}$ निषधचापस्यांशाः निषधस्य पार्श्वभुजः पुनः चतुर्दशकृतिविंशति सहस्रयोजनानि २०१९६ देशोनानि ।। ३९४ ।।

उपर्युक्त दोनों धनुषों के शेषांक और पार्श्वभुजा के अंक कहते हैं—

गाथार्थ :—(माधव) ९, (चन्द्र) १ अर्थात् १९ से उद्धृत (नवकला) ९ भाग अर्थात् $\frac{९}{१९}$ योजन हरिक्षेत्र चाप के शेषांक हैं। (नयपद) ९ से प्रमाण २ का गुणा अर्थात् $\frac{१८}{१९}$ योजन निषधाचल के शेषांक हैं तथा कुछ कम चौदह की कृति (१९६) से अधिक बीस हजार योजन अर्थात् कुछ कम २०१९६ योजन निषधाचल की पार्श्वभुजा का प्रमाण है ॥ ३९४ ॥

विशेषार्थ :—माधव अर्थात् नारायण ९ होते हैं और दृश्यमान चन्द्र एक है, अतः १९ हुए। इनसे प्राप्त हुई नवककला अर्थात् एक योजन के १९ भागों में से ९ भाग, यह $\frac{९}{१९}$ योजन हरिक्षेत्र के चाप का शेषांक है (हरिक्षेत्र के चाप का कुल प्रमाण ८३३७७$\frac{९}{१९}$ योजन हुआ) इन $\frac{९}{१९}$ में (नयपद) नय ९ हैं अतः ९ के स्थान को प्रमाण अर्थात् २ (प्रमाण दो प्रकार का होता है।) से गुणा करने पर ($\frac{९}{१९}\times\frac{२}{१}$)$=\frac{१८}{१९}$ योजन निषधाचल के चाप का शेषांक है। (निषधाचल के चाप का कुल प्रमाण १२३७६८$\frac{१८}{१९}$ योजन हुआ) तथा निषधाचल की पार्श्वभुजा का प्रमाण कुछ कम चौदह की कृति (१९६) से सहित बीस हजार अर्थात् कुछ कम २०१९६ योजन है।

अथायनविभागमकृत्वा सामान्येन चारक्षेत्रे उदयप्रमाणप्रतिपादनार्थमिदमाह—

दिणगदिमाणं उदयो ते णिसहे णीलगे य तेसट्ठी ।
हरिरम्मगेसु दो दो सूरे णवदससयं लवणे ॥ ३९५ ॥

दिनगतिमानं उदयः ते निषधे नीलके च त्रिषष्टिः ।
हरिरम्यकयोः द्वौ द्वौ सूर्ये नवदशशतं लवणे ॥ ३९५ ॥

दिणगदि। दिनगतिक्षेत्रमिदं $\frac{१७०}{६१}$ एतावति क्षेत्रे यद्येकः सूर्यस्योदयो भवेत् तदा एतावति ५१० क्षेत्रे कियन्त उदया इति सम्पात्य भक्ते लब्धोदयाः १८३ पर्यन्ते शेषरविबिम्बावष्टब्धे क्षेत्रे $\frac{४८}{६१}$ एक उदयः मिलित्वा चारक्षेत्रे चतुरशीत्युत्तरशतमुदयाः। कुतः, प्रतिवीथ्येकैकोदयसम्भवात्। ते दिनगत्युदया निषधे ६३ नीले च ६३ प्रत्येकं त्रिषष्टिः हरिवर्षे २ रम्यकवर्षयोः २ द्वौ द्वौ। लवण-समुद्रे एकान्नविंशं शतं ११९ ॥ ३९५ ॥

अयन में विभाग न करते हुए सामान्य से चारक्षेत्र में उदय प्रमाण का प्रतिपादन करने के लिए यह गाथा सूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—सूर्य के दिनगतिमान अर्थात् उदय स्थान निषध और नील पर्वत पर ६३ हैं, हरि और रम्यक क्षेत्रों में दो दो हैं, तथा लवण समुद्र में ११९ हैं ॥ ३९५ ॥

विशेषार्थ :—सूर्य का सम्पूर्ण गमन क्षेत्र ५१० योजन (२०४०००० मील) है। इसमें सूर्य के प्रतिदिन के गमन क्षेत्र का प्रमाण २$\frac{४८}{६१}$ या $\frac{१७०}{६१}$ योजन (११,१४७$\frac{३३}{६१}$ मील) है, अतः $\frac{१७०}{६१}$ योजन गतिमान क्षेत्र में यदि सूर्य का एक उदय है, तो ५१० योजन क्षेत्र में कितने उदय होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर "$\frac{५१०×६१}{१७०}$" = १८३ उदय स्थान प्राप्त हुए तथा चारक्षेत्र के अन्त तक शेष क्षेत्र में सूर्य बिम्ब के $\frac{४८}{६१}$ योजन द्वारा [illegible] उदय स्थान है; इसे १८३ में मिलाकर सम्पूर्ण चारक्षेत्र में कुल १८४ उदय स्थान प्राप्त हुए। एक चारक्षेत्र में सूर्य की वीथियाँ भी १८४ ही हैं, अतः यह सिद्ध हुआ कि एक वीथी में एक ही उदय स्थान होता है अतः निषधपर्वत पर ६३ उदय स्थान हैं। नील पर्वत पर भी ६३ हैं। हरिक्षेत्र और रम्यक् क्षेत्रों में दो दो हैं। तथा लवणसमुद्र में ११९ उदय स्थान हैं।

समस्त चारक्षेत्र (५१० योजन) में सूर्य का उदय १८४ बार होता है। भरतक्षेत्र की अपेक्षा निषधाचल पर ६३, हरिवर्ष क्षेत्र में दो और लवण समुद्र में ११९ उदय स्थान होते हैं। (६३+२+११९=१८४ उदय स्थान)

अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी से ६३ वीं वीथी तक स्थित रहने वाला सूर्य निषधाचल के ऊपर उदय होता है। जो भरतक्षेत्र के निवासियों द्वारा दृश्यमान है। ६४ वीं और ६५ वीं वीथी में रहने वाला सूर्य हरिक्षेत्र में उदय होता है, तथा ६६ वीं वीथी से अन्तिम वीथी पर्यन्त रहने वाला सूर्य लवण समुद्र के ऊपर उदित होता है। इसी प्रकार ऐरावत क्षेत्र की अपेक्षा ६३ उदय स्थान नील पर्वत पर, दो (२) रम्यक् क्षेत्र में और ११९ उदय स्थान लवण समुद्र पर हैं।

अथ दक्षिणायने चारक्षेत्रे द्वीपवेदिकोदधिविभागेनोदयप्रमाणप्ररूपणार्थं त्रैराशिकोत्पत्तिमाह—

> दीउवहिचारखित्ते वेदीए दिणगदीहिदे उदया।
> दीवे चउ चंदस्स य लवणसमुद्दम्हि दस उदया ॥३९६॥

> द्वीपोदधिचारक्षेत्रे वेद्यां दिनगतिहृते उदयाः।
> द्वीपे चतुः चन्द्रस्य च लवणसमुद्रे दश उदयाः ॥ ३९६ ॥

दीउवहि। एतावति दिनगतिक्षेत्रे $\frac{१७०}{६१}$ यद्येक उदयो १ लभ्यते तदा एतावति वेदिका ४ रहितद्वीपचारक्षेत्रे १७६ कियन्त उदया इति सम्पात्य भक्ते लब्धोदयाः ६३ एषु प्रथमपथोदयस्य प्राक्तनायनसम्बन्धित्वेनाग्रहणात् द्वाषष्टिरेवोदयाः ६२ शेष $\frac{२६}{१७०}$ अत्र त्रिषष्टिदिनगतिशलाका, द्वीपचरमान्तरपर्यन्ते समांशाः अवशिष्टा उदयांशाः षड्विंशतिः सप्ततिशतभागाः $\frac{२६}{१७०}$ एकस्योदयस्य

१ यद्येतावत् क्षेत्रे $\frac{170}{61}$ भागच्छति तदा एतावदुदयांशानां $\frac{26}{170}$ कियत्क्षेत्रमित्यनेन त्रैराशिकेन फलेच्छयोर्गुणकारात्सञ्जातक्षेत्रयोजनांशाः षड्विंशतिरेकषष्टिभागाः $\frac{26}{61}$ एते द्वीपसम्बन्धिनः पौरस्त्यपथगतवेदिकायां पुनरेतावति क्षेत्रे $\frac{170}{61}$ यद्येक उदयो १ भवेत्तदा एतावति ४ वेदिकाक्षेत्रे कियन्त उदयाः स्युः इति सम्पात्य हारस्य हारेण $\frac{170}{61}$ एकषष्ट्या गुणयित्वा $\frac{244}{170}$ अस्मिन्सप्ततिशतेन १७० हारेण भक्ते लब्ध उदयः एकः, शेषोदयांशाः चतुःसप्ततिसप्ततिशतभागाः। एतेषु भागेषु $\frac{74}{170}$ पूर्वोक्तन्यायेन क्षेत्रीकृतेषु चतुःसप्ततिरेकषष्टिभागा $\frac{74}{61}$ योजनस्य। एतेषु द्वाविंशतिमेकषष्टिभागान् $\frac{22}{61}$ गृहीत्वा द्वीपचरमपथांशेषु प्रागानीतेषु $\frac{26}{61}$ मेलयेत्। मिलितेषु तत्पथव्यासः अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागप्रमाणः सम्पूर्णो भवति $\frac{48}{61}$ एवं कृते अभ्यन्तरपथादारभ्य चतुःषष्टितमपथव्यासः द्वीपगतैः षड्विंशत्या एकषष्टिभागैः $\frac{26}{61}$ वेदिकागतैर्द्वाविंशत्या एकषष्टिभागैश्च $\frac{22}{61}$ सिद्धो भवति। द्वीपवेदिकां सन्धौ सूर्यस्य चतुःषष्टितमी वीथी भवतीति तात्पर्यं वेदितव्यम्। अतः पुरस्तात् वेदिकायां योजनद्वय २ मन्तरमतिक्रम्य सूर्यस्य एकः पन्थाः $\frac{48}{61}$ ततः पुरस्तात् द्वापञ्चाशदेकषष्टिभागाः $\frac{52}{61}$ अवशिष्टा अन्तरे देयाः। एवं द्वीपवेदिकासन्धिपथव्यासगतद्वाविंशत्येकषष्टिभागेभ्यः $\frac{22}{61}$ आरभ्य चतुर्योजनप्रमाणं वेदिकाक्षेत्रम् समाप्तम्॥ अथ लवणसमुद्रे एतावति क्षेत्रे $\frac{170}{61}$ यद्येक उदयस्तदा बाह्यपथवर्जितसमुद्रचारक्षेत्रे ३३० एतावति कियन्त उदया इति सम्पात्यापवर्तिते लब्धोदया अष्टादशशतं ११८ शेषोदयांशाः सप्ततिशतभागाः $\frac{70}{170}$ एतेषु पूर्ववत् क्षेत्रीकृतेषु योजनांशाः सप्ततिरेकषष्टिभागाः $\frac{70}{61}$ एतान् वेदिकासम्बन्धिपूर्वानीतेषु द्विपञ्चाशदेकषष्टिभागेषु $\frac{52}{61}$ प्रक्षेप्य एकषष्ट्या विभक्ते लब्धं योजनद्वयं सम्पूर्णमन्तरप्रमाणं स्यात्। अतः परं रविबिम्बसहितान्तरप्रमाणदिनगतिशलाकाः चरमान्तरपर्यन्ताः अष्टादशोत्तरशतप्रमिताः ११८ सुगमाः तत्रोदयाश्च तावन्त एव ११८ ततः पुरस्तात् बाह्यपथव्यासे एक उदयः इति सर्वे मिलित्वा लवणसमुद्रे एकान्नविंशं शतमुदयाः ११९ एवं दक्षिणायने समस्तोदयाः त्र्यशीत्युत्तरशतं १८३। अथोत्तरायणे लवणसमुद्रे रविबिम्बाधिकचारक्षेत्रमिदं ३३० $\frac{48}{61}$ समच्छेदीकृत्य युक्तं एवं $\frac{20178}{61}$ एतावत्क्षेत्रस्य $\frac{170}{61}$ यद्येका १ दिनगतिशलाका तदा एतावत्क्षेत्रस्य $\frac{20178}{61}$ कियन्त्यो दिनगतिशलाकाः इति सम्पात्य भक्ते ११८ शेषे $\frac{118}{170}$ अत्र रूपोनदिनगतिशलाकामात्रोदयाः ११७। कुतः, बाह्यपथोदयस्य दक्षिणायनसम्बन्धित्वेनाग्रहणात्। शेषांशेषु $\frac{118}{170}$ क्षेत्रीकृतेषु $\frac{118}{61}$ षट्चत्वारिंशदेकषष्टिभागान् $\frac{46}{61}$ पौरस्त्यपथव्यासे दद्यात्। तत्र एक उदयः एवं समस्तलवणसमुद्रे उत्तरायणे उदयाः अष्टादशोत्तरं शतं अवशिष्टाः सप्ततिरेकषष्टिभागाः $\frac{72}{61}$ पौरस्त्ये अन्तरे देयाः इति समुद्रचारक्षेत्रं समाप्तम्। वेदिकायां प्रागानीत एव एक उदयः चतुः सप्ततिरेकषष्टिभागाः एतेषु $\frac{74}{61}$ भागेषु द्वापञ्चाशदेकषष्टिभागाः $\frac{52}{61}$ प्रकृतान्तरे देयाः एवं समुद्रवेदिकायोर्योजनद्वय २ प्रमितं अन्तरं सम्पूर्णं भवति। अतः एकस्यां दिनगतावेक उदयः अवशिष्टा द्वाविंशतिरेकषष्टिभागाः $\frac{22}{61}$ अग्रेतन पथव्यासे देयाः एवं चतुर्योजनप्रमितं वेदिकाक्षेत्रम् समाप्तम्। अथ वेदिकावर्जितद्वीपचारक्षेत्रे १७९ अभ्यन्तरपथव्यास $\frac{48}{61}$ न्यूने $\frac{10871}{61}$ एतावत्क्षेत्रस्य $\frac{170}{61}$ यद्येका दिनगतशलाका १ तदा

एतावत्क्षेत्रस्य [illegible] कियन्त्यो दिनगतिशलाका इति सम्पात्य भक्ते ६१ शेषाः [illegible] लब्धदिनगति-शलाका। शेषांशेषु पूर्ववत्क्षेत्रीकृतेषु [illegible] षड्विंशतिरेकषष्टिभागाः द्वीपवेदिकासन्निधपथव्यासे देयाः, एवं कृते तत्पथव्यासः सम्पूर्णो भवति। शेषांशेषु एकषष्ट्या भक्तेषु लब्धं योजनद्वयं पुरस्तादन्तरं भवति। ततः परं द्विषष्टिप्रमिता दिनगतिशलाकाः उदयाश्च तावन्त एव। अभ्यन्तरपथे एक उदयः। एवं वेदिकावर्जिते द्वीपचारे संख्युदयेन सह चतुःषष्ट्युदयाः। एवं मिलित्वा उत्तरायणे उदयाः त्र्यशीत्युत्तरं शतं १८३ सूर्यस्य ज्ञातव्यं चन्द्रस्यायनविभागमकृत्वा सामान्येन द्वीपचारक्षेत्रे १८० पञ्चोदयाः समुद्रचारक्षेत्रे ३३० $\frac{४८}{६१}$ दशोदयाः समस्तं मिलित्वा पञ्चदशोदयाः १५। अथ दक्षिणायने पथव्यासविष्कम्भहीणे इत्यादिना आनीते एतावति चन्द्रस्य दिनगतिक्षेत्रे [illegible] यद्येक १ उदयस्तदा एतावति द्वीपचारक्षेत्रे १८० कियन्त उदया इति सम्पात्य भक्ते लब्धोदयाश्चत्वारः ४ शेषे [illegible] एतस्मिन्नेकोदयस्य एतावति क्षेत्रे सति [illegible] एतावदुदयांशस्य [illegible] कियत्क्षेत्रमिति सम्पात्य तिर्यगपवर्त्य [illegible] अस्मिन् चन्द्रपथव्यासप्रमाणं $\frac{५६}{६१}$ सप्तभिः समच्छेदीकृतं [illegible] गृहीत्वा द्वीपचरमाभ्यन्तरस्य पुरस्तात् दत्ते शेषं तत्रैक उदयः इति पञ्चसूदयेषु अन्त्यान्तरपथोदयस्य उत्तरायण-सम्बन्धित्वेनाग्रहणात् द्वीपे चत्वार उदयाः। शेषमिदं [illegible] अस्मिन्प्रकृतहारेण भक्ते ३३ शेष [illegible] एवं इदं पुरस्तादन्तरे देयं। अथ समुद्रे चारक्षेत्रमिदं ३३० $\frac{४८}{६१}$ समच्छेदीकृत्य मिलिते एवं [illegible] एतावति क्षेत्रे [illegible] यद्येक उदयस्तदा एतावति क्षेत्रे [illegible] कियन्त उदयाः स्युरिति सम्पात्य एकपञ्चाशापवर्त्य तैः सप्तभिर्गुणयित्वा [illegible] भक्ते लब्धोदयाः नव ९ शेषमिदं [illegible] पूर्ववत् क्षेत्रीकृत्य [illegible] अस्मात् चन्द्रबिम्बप्रमाणं $\frac{५६}{६१}$ सप्तभिः समच्छेदीकृत्य [illegible] गृहीत्वा बाह्यपथे देयं। एवं सति लवणसमुद्रे चन्द्रस्य दशोदयाः शेषं [illegible] स्वहारेण भक्त्वा यो० २ शेष [illegible] इदं प्राक्तने पञ्चमेऽन्तरे द्वीपगतांशे यो० ३३ शेषे [illegible] देयं। एवमुभयांशमेलनात् यो० ३५ [illegible] पञ्चममन्तरं सम्पूर्णं भवति। एवं चन्द्रस्य दक्षिणायने द्वीपोदध्योर्मिलित्वा चतुर्दशोदयाः। अथोत्तरायणे समुद्र-चारक्षेत्रे ३३० $\frac{४८}{६१}$ प्राक्प्रक्रियया आनीता उदयाः नव ९, शेषोदयांशाः [illegible] पूर्ववत् क्षेत्रीकृताः [illegible] अस्माच्चन्द्रबिम्बप्रमाणं $\frac{५६}{६१}$ सप्तभिः समच्छेदीकृतं [illegible] गृहीत्वा बाह्यपथान्तरादारभ्य नव-मान्तरस्य पौरस्त्ये पथव्यासे देयं तस्मिन्नेक उदयः इति समुद्रे दशसूदयेषु बाह्यपथोदयस्य दक्षिणायन-सम्बन्धित्वेनाग्रहणान्नवैवोदयाः। शेषं भक्त्वा यो० २ [illegible] इदं दशमे अन्तरे देयं। एवं कृते समुद्रचार-क्षेत्रं समाप्तं। अथ द्वीपचारक्षेत्रे उदयाः ४ शेषं [illegible] पूर्ववत् क्षेत्रीकृत्य [illegible] अस्मात् यो० ३३ शेषे [illegible] एतत्समच्छेदीकृत्य युक्तं [illegible] गृहीत्वा दशमे अन्तरे देयं। इत्थं दशममन्तरं परिपूर्णं भवति। अवशिष्टं [illegible] उपर्यधश्च सप्तभिरपवर्त्य $\frac{५६}{६१}$ इदमभ्यन्तरपथव्यासे देयं अस्मिन्नेक उदयः एवं द्वीपे चन्द्रस्य उत्तरायणे पञ्चोदयाः। अत्र सूर्यचन्द्रमसोरुत्तरायणे उदयविभागः सूत्रकारैरनुक्तोऽपि दक्षिणायनोदयमार्गेणास्माभिरभ्यूह्य कथितः ॥ ३६६ ॥

दक्षिणायन में द्वीप समुद्र सम्बन्धी चारक्षेत्र और वेदिका के विभाग करके उदयप्रमाण का प्ररूपण करने के लिए त्रैराशिक को उत्पत्ति कहते हैं—

गाथार्थ :—द्वीपसमुद्रसम्बन्धी चारक्षेत्र के प्रमाण में और वेदीके प्रमाण में दिनगति मान के प्रमाण का भाग देने पर सूर्य के उदय स्थानों का प्रमाण प्राप्त होता है। चन्द्रमा के द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्र के उदय स्थान ४ और लवण समुद्र के १० अर्थात् कुल १४ (उदय स्थान) हैं ॥ ३९६ ॥

विशेषार्थ :— सूर्य के प्रथम वीथी में स्थित होने से दक्षिणायन का और अन्तिम वीथी में स्थित होने से उत्तरायण का प्रारम्भ होता है। यहाँ दक्षिणायन सूर्य के उदय स्थानों का प्रमाण दर्शाया जाता है। चारक्षेत्र के व्यास में तथा वीथियों में सूर्य के जितने जितने उदय स्थान हैं, उन्हें कहते हैं। जम्बूद्वीप में सूर्य के चारक्षेत्र का प्रमाण १८० योजन है। जम्बूद्वीप की वेदी का व्यास ४ योजन है, अतः १८०—४ = १७६ योजन जम्बूद्वीप के चार क्षेत्र का प्रमाण रहा। चार योजन विस्तार वाली वेदिका के ऊपर भी सूर्य का चारक्षेत्र है। लवण समुद्र के चारक्षेत्र का प्रमाण ३३०$\frac{४८}{६१}$ योजन है। सूर्य के प्रतिदिन का गमनक्षेत्र २$\frac{४८}{६१}$ = $\frac{१७०}{६१}$ योजन है। उपर्युक्त चारक्षेत्र के प्रमाणों में दिनगति के प्रमाण का भाग देने से उदय स्थानों की प्राप्ति होती है जैसे—जबकि $\frac{१७०}{६१}$ योजन दिनगति में एक उदय स्थान प्राप्त होता है, तब वेदिका के प्रमाण से रहित जम्बूद्वीप के चारक्षेत्र में कितने उदय स्थान प्राप्त होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{१७६ \times ६१}{१७०}$ = $\frac{१०७३६}{१७०}$ = ६३ उदय स्थान प्राप्त हुए और $\frac{२६}{१७०}$ अंश शेष रहे। इनमें से प्रथम वीथी का प्रथम उदय स्थान उत्तरायण सम्बन्धी है, अतः ६३—१ = ६२$\frac{२६}{१७०}$ उदय स्थान हुए। प्रथम वीथी से द्वीप के सम्बन्धी अन्तिम सूर्य से सूर्य के अन्तराल क्षेत्र पर्यन्त ६३ उदय स्थान समाप्त हो जाते हैं। अवशिष्ट उदय अंश $\frac{२६}{१७०}$ हैं, अतः जबकि १ उदय स्थान का $\frac{१७०}{६१}$ योजन क्षेत्र है, तब $\frac{२६}{१७०}$ उदय अंशों का कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{१७० \times २६}{६१ \times १७०}$ = $\frac{२६}{६१}$ योजन क्षेत्र प्राप्त हुआ। ये द्वीप सम्बन्धी उदय अंश सूर्य बिम्ब द्वारा रोके हुए अगले क्षेत्र में देना चाहिये। जबकि $\frac{१७०}{६१}$ योजन क्षेत्र में एक उदय स्थान प्राप्त होता है, तब वेदिका के चार योजनों में कितने उदय स्थान प्राप्त होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{६१ \times ४}{१७०}$ = $\frac{२४४}{१७०}$ अर्थात् एक उदय स्थान प्राप्त हुआ और $\frac{७४}{१७०}$ उदय अंश शेष बचे। पूर्वोक्त न्यायानुसार—जबकि १ उदय स्थान का $\frac{१७०}{६१}$ योजन क्षेत्र है, तब $\frac{७४}{१७०}$ उदय अंशों का कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार $\frac{१७० \times ७४}{६१ \times १७०}$ = $\frac{७४}{६१}$ योजन क्षेत्र प्राप्त हुआ। इस $\frac{७४}{६१}$ योजन क्षेत्र में से $\frac{२२}{६१}$ योजन क्षेत्र लेकर उपर्युक्त $\frac{२६}{६१}$ योजन क्षेत्र में मिला देने पर ($\frac{२६}{६१}$ + $\frac{२२}{६१}$) = $\frac{४८}{६१}$ योजन क्षेत्र हुआ। अर्थात् सूर्य बिम्ब के द्वारा रुद्ध क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त हुआ। इस प्रकार अभ्यन्तर वीथी की ६४ वीं वीथी में स्थित सूर्य बिम्ब का व्यास $\frac{२६}{६१}$ योजन क्षेत्र तो द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्र में से अवशेष बचा था और $\frac{२२}{६१}$ योजन क्षेत्र वेदिका सम्बन्धी चारक्षेत्र के अवशेष अंश में से ग्रहण कर $\frac{४८}{६१}$ योजन सिद्ध हुआ। इससे यह ज्ञात होता है कि

सूर्य की ६४ वीं वीथी द्वीप और वेदिका की सन्धि में है। इसके आगे दो योजन का अन्तराल है। इस अन्तराल के आगे $\frac{४८}{६१}$ योजन क्षेत्र सूर्य के द्वारा रुद्ध है। अर्थात् अन्तराल के बाद सूर्य का एक मार्ग $\frac{४८}{६१}$ योजन का है। इसके आगे अवशेष रहे $\frac{६१}{६१}$ में से $\frac{५२}{६१}$ भाग को आगे के दो योजन अन्तराल में दे देना चाहिये। इस प्रकार द्वीप और वेदिका की सन्धि में जो सूर्य है, उसके व्यास को प्राप्त जो $\frac{१३}{६१}$ योजन प्रमाण क्षेत्र है, उसमे लगाकर वेदिका का चार योजन प्रमाण क्षेत्र समाप्त हुआ।

लवण समुद्र में जबकि $\frac{१७०}{६१}$ योजन क्षेत्र में १ उदय स्थान है, तब बिम्ब रहित लवण समुद्र के चार क्षेत्र ३३० योजन में कितने उदय स्थान होंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{६१ \times ३३०}{१७० \times १} = \frac{२०१३०}{१७०} = ११८\frac{७०}{१७०}$ अर्थात् लवण समुद्र में ११८ उदय स्थान प्राप्त हुए और $\frac{७०}{१७०}$ योजन उदय अंश शेष रहे। जबकि १ उदय स्थान का $\frac{१७०}{६१}$ योजन क्षेत्र है, तब $\frac{७०}{१७०}$ उदय अंशों का कितना क्षेत्र प्राप्त होगा? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{१७० \times ७०}{६१ \times १७०} = \frac{७०}{६१}$ योजन क्षेत्र प्राप्त हुआ। इस $\frac{७०}{६१}$ योजन क्षेत्र को वेदिका सम्बन्धी अन्तराल में ऊपर दिया हुआ $\frac{६१}{६१}$ का अवशिष्ट $\frac{५२}{६१}$ योजन क्षेत्र मिला देने पर $\frac{७०}{६१} + \frac{५२}{६१} = \frac{१२२}{६१}$ अर्थात् २ योजन प्रमाण अन्तराल सम्पूर्ण हो जाता है। इस अन्तराल से आगे अन्तिम अन्तराल पर्यन्त क्षेत्र में रविबिम्ब सहित अन्तर प्रमाण रूप दिन गति शलाकाएं ११८ हैं, जिनका विवरण सुगम है। यहाँ उदय स्थान भी ११८ हैं, इससे आगे बाह्य वीथी में स्थित सूर्य बिम्ब के व्यास में एक उदय स्थान होता है। इस प्रकार लवण समुद्र में सब मिलाकर ११८ + १ = ११९ उदय स्थान हैं। इस प्रकार दक्षिणायन में सूर्य के कुल ६२ + २ + ११९ = १८३ उदय स्थान होते हैं।

विशेष ज्ञातव्य :—पथ व्यास—वीथी में स्थित सूर्यबिम्ब के क्षेत्र प्रमाण का नाम पथ व्यास है, जिसका प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ योजन है। अन्तर—चार क्षेत्र में एक वीथी से दूसरी वीथी के बीच के क्षेत्र का नाम अन्तर है, जिसका प्रमाण दो योजन है। १८० — ४ (यो० की वेदिका) = १७६ योजन वेदिका रहित द्वीप सम्बन्धी चार क्षेत्र में सर्व प्रथम अभ्यन्तर पथव्यास है, इसके आगे २ योजन का प्रथम अन्तराल है। इसके आगे पुनः $\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण पथव्यास, पुनः अन्तराल इस प्रकार क्रम से बढ़ते हुए जम्बूद्वीप के ६३ वें पथव्यास के बाद ६३ वाँ अन्तराल प्राप्त होता है, और उसके आगे $\frac{३५}{६१}$ योजन क्षेत्र शेष बच जाता है। इसमें ४ योजन प्रमाण वाली वेदिका सम्बन्धी चार क्षेत्र में से $\frac{१३}{६१}$ योजन निकाल कर जोड़ देने से ($\frac{३५}{६१} + \frac{१३}{६१}$) = $\frac{४८}{६१}$ योजन प्रमाण वाला ६४ वाँ पथव्यास प्राप्त हो जाता है। ६४ वीं वीथी द्वीप और वेदिका की संधि में है। ६४ वें पथ व्यास के आगे ६४ वाँ अन्तराल और इसके आगे ६५ वाँ पथ व्यास है। इसके आगे वेदिका सम्बन्धी चार क्षेत्र के प्रमाण में से $\frac{५२}{६१}$ योजन क्षेत्र अवशिष्ट रह जाता है।

लवण समुद्र सम्बन्धी पथ व्यास (सूर्य बिम्ब) के प्रमाण से रहित चारक्षेत्र के ३३० योजन

में से $\frac{70}{61}$ योजन निकाल कर, वेदिका सम्बन्धी चारक्षेत्र के अवशिष्ट रहे $\frac{52}{61}$ योजन में जोड़ देने पर ($\frac{70}{61}+\frac{52}{61}=\frac{122}{61}$)=२ योजन प्रमाण वाला ६५ वाँ अन्तराल प्राप्त हो जाता है। इसके आगे पथ व्यास फिर अन्तराल, पथव्यास, अन्तराल इस प्रकार क्रम से बढ़ते हुए समुद्र सम्बन्धी चार क्षेत्र में १८४ वाँ पथ व्यास प्राप्त होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण पथ व्यास अर्थात् वीथियाँ १८४ हैं। एक एक वीथी में सूर्य के दिखाई देने का नाम उदय है; अतः १८४ वीथियों में १८४ ही उदय हैं।

उत्तरायण की व्यवस्था का प्रतिपादन करते हैं :—

लवण समुद्र में रविबिम्ब के प्रमाण सहित चारक्षेत्र का प्रमाण ३३०$\frac{48}{61}$ योजन है। इसका समच्छेद करने पर $\frac{20178}{61}$ योजन हुआ। जबकि $\frac{170}{61}$ योजन क्षेत्र की एक दिनगतिशलाका होती है; तब $\frac{20178}{61}$ योजन क्षेत्र की कितनी दिनगति शलाकाएँ होंगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{1 \times 61 \times 20178}{170 \times 61}=\frac{20178}{170}=118\frac{118}{170}$ दिनगतिशलाकाएँ हुई। दिनगति शलाकाओं का प्रमाण ११८ प्राप्त हुआ, इनमें एक कम दिनगति शलाकाओं का प्रमाण ही उदय स्थानों का प्रमाण है। ११८—१=११७ उदय स्थान हैं। बाह्य वीथी का उदय दक्षिणायन सम्बन्धी है, इसलिये एक घटा दिया गया है। अवशेष $\frac{118}{170}$ योजन की क्रिया पूर्ववत् है। अर्थात् जबकि एक उदय स्थान का $\frac{170}{61}$ योजन क्षेत्र है, तब $\frac{118}{170}$ उदय अंशों का कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{170 \times 118}{61 \times 170}=\frac{118}{61}$ योजन क्षेत्र प्राप्त हुआ। इसमें से $\frac{48}{61}$ योजन निकाल कर अगले पथ व्यास में देने से एक उदय स्थान हो जाता है। उत्तरायण में लवणसमुद्र के समस्त उदय स्थान ११७ में यह एक और मिला देने पर लवण समुद्र के उदय स्थान कुल ११८ प्राप्त हो जाते हैं। अवशिष्ट रहे ($\frac{118}{61}-\frac{48}{61}$)=$\frac{70}{61}$ योजन क्षेत्र को अगले अन्तर के प्रमाण में दे देने पर समुद्र सम्बन्धी चार क्षेत्र समाप्त हो जाता है, तथा वेदिका के चार योजन क्षेत्र का भी पूर्वोक्त प्रकार त्रैराशिक करने पर एक उदय स्थान प्राप्त होता है और $\frac{74}{61}$ योजन शेष रहते हैं। इस $\frac{74}{61}$ योजन में से $\frac{52}{61}$ योजन निकाल कर उपर्युक्त $\frac{70}{61}$ योजनों में मिला देने पर ($\frac{70}{61}+\frac{52}{61}$)=$\frac{122}{61}$ अर्थात् दो योजन प्रमाण वाला अन्तर सम्पूर्ण हो जाता है। इस अन्तर के आगे एक दिनगति क्षेत्र में एक उदय होता है। तथा अवशेष रहे जो $\frac{22}{61}$ योजन उन्हें अगले पथ व्यास में देना चाहिये। इस प्रकार चार योजन प्रमाण वेदिकाक्षेत्र भी समाप्त हुआ।

वेदिका के (४ योजन) प्रमाण से रहित द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्र का प्रमाण १७६ योजन है, इसमें से अभ्यन्तर पथ व्यास $\frac{48}{61}$ योजन घटा देने पर ($\frac{176}{1}-\frac{48}{61}=\frac{10736-48}{61}$)=$\frac{10688}{61}$ भाग शेष रहा। जबकि $\frac{170}{61}$ योजन क्षेत्र की एक दिनगति शलाका होती है, तब $\frac{10688}{61}$ योजन क्षेत्र

की कितनी शलाकाएँ होंगी। इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ([illegible]) [illegible] प्राप्त हुए। इनमें ६२ दिनगति शलाकाएँ हैं, अतः ६१ ही उदय स्थान हैं। अवशेष [illegible] उदय अंशों का पूर्ववत् क्षेत्र निकालने पर $\frac{170}{61}$ योजन क्षेत्र प्राप्त होगा। इसमें से $\frac{48}{61}$ योजन क्षेत्र निकाल कर द्वीप और वेदिका की संधि में जो पथ व्यास है, उसे देकर उस पथ व्यास को पूर्ण करना। ($\frac{170}{61}$—$\frac{48}{61}$)= $\frac{122}{61}$ अर्थात् २ योजन अवशेष रहे, इन्हें सन्धि पथ व्यास के आगे अन्तराल में देना। बासठ (६२) दिनगति शलाका के ६२ उदय हैं, और आगे अभ्यन्तर पथ व्यास में एक एक उदय है, इस प्रकार वेदिका रहित द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्र में सन्धि उदय सहित ६४ उदय हैं।

विशेष :—लवण समुद्र सम्बन्धी चारक्षेत्र में प्रथम पथव्यास है, उसके आगे अन्तराल है, उसके आगे पुनः पथ व्यास, पुनः अन्तराल इसी क्रम से जाते हुए ११८ वें अन्तराल के आगे ११९ वाँ पथ व्यास है, और $\frac{26}{61}$ योजन क्षेत्र अवशेष रहता है वेदिका सम्बन्धी चार क्षेत्र में से $\frac{96}{61}$ योजन क्षेत्र लेकर इसमें मिला देने पर ($\frac{26}{61}+\frac{96}{61}$) समुद्र और वेदिका की सन्धि में ११९ वाँ अन्तराल प्राप्त हो जाता है। इसके आगे १२० वाँ पथ व्यास और उसके भी आगे १२० वाँ अन्तराल है, तथा इसके आगे $\frac{35}{61}$ योजन क्षेत्र अवशेष रहता है। द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्र में से $\frac{13}{61}$ योजन क्षेत्र ग्रहण कर $\frac{35}{61}$ योजन में मिला देने पर ($\frac{35}{61}+\frac{13}{61}=\frac{48}{61}$) १२१ वाँ पथ व्यास प्राप्त हो जाता है। इसके आगे १२१ वाँ अन्तराल है। इसी प्रकार क्रम से जाते हुए अन्त में १८३वें अन्तराल के आगे १८४वाँ पथ व्यास है। इन १८४ पथव्यास प्रमाण १८४ उदय स्थानों में से एक उदय स्थान जो कि बाह्य वीथी का है, जिसे दक्षिणायन में गिना गया है, उसे घटा कर उत्तरायण में सूर्य के उदय स्थान १८३ हैं। (६२ + २ + ११९ = १८३ उदय स्थान हैं)

चन्द्रमा के भी अयन भेद किये बिना द्वीप सम्बन्धी १८० योजन प्रमाण वाले चारक्षेत्र में ५ उदय स्थान एवं समुद्र सम्बन्धी ३३०$\frac{48}{61}$ योजन प्रमाण वाले चारक्षेत्र में १० उदय स्थान होते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर चन्द्रमा के उदय स्थान १५ होते हैं।

दक्षिणायन में चन्द्रमा के उदय स्थानों का कथन :—

"पथ व्यास पिंड हीणे" इत्यादि गाथा ३७७ के अनुसार चन्द्रमा के दिनगति क्षेत्र का प्रमाण $\frac{15551}{427}$ योजन है। जबकि $\frac{15551}{427}$ योजन क्षेत्र का एक उदय स्थान होता है तब द्वीप सम्बन्धी १८० योजन प्रमाण वाले चार क्षेत्र में कितने उदय स्थान होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{427 \times 1 \times 180}{15551 \times 1}$) = $\frac{76860}{15551}$ = ४$\frac{14656}{15551}$ अर्थात् ४ उदय स्थान प्राप्त हुए और $\frac{14656}{15551}$ उदय अंश शेष रहे। यथा—जबकि १ उदय स्थान का $\frac{15551}{427}$ योजन क्षेत्र होता है, तब $\frac{14656}{15551}$ उदय अंशों का

कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर (१५५५१/४२७ × १४६५६/१५५५१) = १४६५६/४२७ योजन क्षेत्र हुआ।

चन्द्रमा के पथ व्यास का प्रमाण ५६/६१ योजन है, इसका ७ से समच्छेद करने पर ३९२/४२७ योजन क्षेत्र होता है। अवशेष रहे १४६५६/४२७ योजनों में से ३९२/४२७ योजन क्षेत्र ग्रहण कर अगले पथ व्यास में देने से एक उदय स्थान बन जाता है, अतः (४ + १) जम्बूद्वीप में ५ उदय स्थान हैं। इन पाँच (५) उदय स्थानों में से यहाँ ४ उदय स्थान ही ग्राह्य हैं, क्योंकि अभ्यन्तर पथ का उदय उत्तरायण सम्बन्धी है, अतः यहाँ वह अग्राह्य है। द्वीप सम्बन्धी ४ उदय स्थान बन जाने के बाद शेष बचे १४२६४/४२७ क्षेत्र को स्व के भागहार से भाग देने पर ३३ १७३/४२७ प्राप्त होता है, इसे अगले अन्तराल में देना चाहिये।

समुद्र सम्बन्धी चार क्षेत्र का प्रमाण ३३० ४८/६१ योजन है। इसका समच्छेद करने पर २०१७८/६१ योजन होता है। जबकि १५५५१/४२७ योजन का एक उदय स्थान होता है, तब २०१७८/६१ योजन क्षेत्र के कितने उदय स्थान होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक निकालने पर (४२७ × २०१७८)/(१५५५१ × ६१) = १४१२४६/१५५५१ = ९ १२८७/१५५५१ अर्थात् ९ उदय स्थान प्राप्त हुए और १२८७/१५५५१ उदय अंश शेष रहे, इनका पूर्ववत् क्षेत्र निकालने पर १२८७/४२७ योजन क्षेत्र प्राप्त होता है।

चन्द्र बिम्ब का प्रमाण ५६/६१ योजन है, इसे ७ से समच्छेद करने पर ३९२/४२७ योजन क्षेत्र प्राप्त हुआ। उपर्युक्त १२८७/४२७ योजनों में से ३९२/४२७ योजन निकाल कर बाह्य पथ में देने से (३९२/४२७ अर्थात् ५६/६१ का) एक उदय स्थान बन जाता है, इसे पूर्वोक्त ९ स्थानों में मिलाने से लवण समुद्र में चन्द्रमा के १० उदय स्थान हुए और ८९५/४२७ योजन क्षेत्र शेष रहा। इसे स्व के भागहार से भाग देने पर २ ४१/४२७ हुए, इन्हें द्वीप के शेषांश क्षेत्र ३३ १७३/४२७ योजनों में जोड़ देने से (३३ १७३/४२७ + २ ४१/४२७) = ३५ २१४/४२७ योजन का पाँचवाँ अन्तराल सम्पूर्ण हुआ। इस प्रकार चन्द्रमा के दक्षिणायन में द्वीप समुद्र के मिलाकर १४ उदय स्थान होते हैं।

विशेष :—चन्द्रमा के चारक्षेत्र का प्रमाण ५१० ४८/६१ योजन है। इतने क्षेत्र में चन्द्रमा की १५ वीथियाँ हैं। इन वीथियों में चन्द्रमा का दृश्यमान होना ही उनका उदय कहलाता है। वीथियों में चन्द्र बिम्ब के द्वारा रुद्ध ५६/६१ योजन क्षेत्र का नाम पथव्यास है। वीथियों के बीच बीच में ३५ २१४/४२७ योजनों का अन्तराल है, इसी का नाम अन्तर है। पथव्यास और अन्तर के प्रमाण को मिलाने पर (३५ २१४/४२७ + ५६/६१) = १५५५१/४२७ = ३६ १७९/४२७ योजन दिनगति क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त होता है। द्वीप सम्बन्धी १८० योजन क्षेत्र में सर्वप्रथम अभ्यन्तर वीथी है, वही पथव्यास प्रमाण क्षेत्र है। इसके

आगे प्रथम अन्तर है, उसके आगे दूसरा पथव्यास है, इसी प्रकार क्रम से जाते हुये चौथे अन्तर के बाद पाँचवाँ पथ व्यास है, इसके आगे द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्र का ३३ [illegible] योजन क्षेत्र अवशेष रह जाता है। लवण समुद्र के चारक्षेत्र का प्रमाण ३३० [illegible] योजन है, इसमें से २ [illegible] योजनों को पूर्वोक्त ३३ [illegible] में जोड़ देने पर (३३ [illegible] + २ [illegible]) = ३५ [illegible] योजन द्वीप और समुद्र की सन्धि में पाँचवाँ अन्तराल प्राप्त होता है। उसके आगे छठा पथव्यास है इसके आगे ६ वाँ अन्तराल है। इस प्रकार क्रम से जाते हुए अन्त में १४ वें अन्तराल के आगे १५ वाँ बाह्य पथ व्यास है। इन पन्द्रह पथव्यासों में ही १५ उदय स्थान हैं, जिसमें द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्र में पहिला अभ्यन्तर वीथी का उदय स्थान उत्तरायण सम्बन्धी है, अतः दक्षिणायन में चन्द्रमा के १४ उदय स्थान हैं।

उत्तरायण में चन्द्रमा के उदय स्थान :—

लवण समुद्र सम्बन्धी चार क्षेत्र का प्रमाण ३३० [illegible] योजन है। पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार उदय-स्थान निकालने पर ९ प्राप्त होते हैं और [illegible] उदय अंश शेष रहते हैं। इनका पूर्ववत् क्षेत्र बनाने पर [illegible] योजन क्षेत्र प्राप्त होता है। चन्द्र बिम्ब का प्रमाण [illegible] योजन है, इसे ७ से समच्छेद करने पर [illegible] योजन प्राप्त होते हैं। [illegible] योजन में से [illegible] योजन क्षेत्र निकालकर बाह्य पथ से लगाकर नवमें अन्तराल के आगे जो पथ व्यास है, उसमें दे देने पर एक उदय स्थान होता है। इस प्रकार समुद्र में १० उदय स्थान हैं। इनमें बाह्य पथ का उदय दक्षिणायन सम्बन्धी ही है, अतः अग्राह्य है। कुल ९ उदय स्थान रहे। समुद्र सम्बन्धी चारक्षेत्र में अवशेष रहा २ [illegible] योजन क्षेत्र उसे दसवें अन्तराल में देना। इस प्रकार समुद्र का चारक्षेत्र समाप्त हुआ।

द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्र में पूर्वोक्त प्रकार से उदय स्थान ४ और अवशेष उदय अंश [illegible] हैं, इन्हें पूर्ववत् क्षेत्र रूप करने पर [illegible] योजन क्षेत्र प्राप्त होते हैं। इसमें से [illegible] योजन निकाल कर १० वें अन्तर में देना। इस प्रकार १० वाँ अन्तर समाप्त हुआ। अवशिष्ट रहे [illegible] योजन को ऊपर नीचे सात (७) से अपवर्तन करने पर [illegible] योजन हुआ। इसे अभ्यन्तर पथ व्यास में देने से एक उदय स्थान बना। इस प्रकार द्वीप में चन्द्रमा के उत्तरायण सम्बन्धी ५ उदय स्थान हुए।

विशेष :—लवण समुद्र के चारक्षेत्र में प्रथम बाह्य पथव्यास है, उसके अभ्यन्तरवर्ती आगे आगे प्रथम अन्तर, द्वितीय पथ व्यास, द्वितीय अन्तर इस प्रकार क्रम से जाते हुए ९ वें अन्तर के आगे १० वाँ पथ व्यास है, और उसके आगे २ [illegible] योजन क्षेत्र अवशेष रहता है, अतः द्वीप सम्बन्धी चार-क्षेत्र के अवशिष्ट ३३ [illegible] योजनों में उपर्युक्त २ [illegible] योजन मिलाकर ३५ [illegible] योजन १० वें अन्तराल को देने से १० वाँ अन्तराल सम्पूर्ण हो जाता है। इसके आगे ११ वाँ पथ व्यास, ११ वाँ

अन्तराल इस प्रकार क्रम से जाते हुए १४ वें अन्तराल के आगे १५ वाँ अभ्यन्तर पथ व्यास है। इस प्रकार इन पन्द्रह पथ व्यासों में १५ उदय स्थान हैं। उनमें समुद्र सम्बन्धी प्रथम व्यास में जो उदय स्थान है वह दक्षिणायन सम्बन्धी ही है, अतः ग्राह्य नहीं है। इस प्रकार चन्द्रमा के उत्तरायण संबंधी समुद्र चारक्षेत्र में ९ और द्वीप चारक्षेत्र में ५ अर्थात् कुल १४ उदय स्थान हैं।

यहाँ सूर्य और चन्द्रमा के उत्तरायण सम्बन्धी उदय विभाग मूल सूत्र कर्ता ने नहीं कहे। तथापि संस्कृत टीकाकार ने दक्षिणायन के उदय मार्गानुसार ही विचार कर कथन किया है।

इदानीं दक्षिणोत्तरोर्ध्वाधरेषु सूर्यातापस्य क्षेत्रविभागमाह—

मंदरगिरिमज्झादो जावय लवणुवहिछट्ठभागो दु।
हेट्ठा अट्ठरसमया उवरिं सयजोयणा ताओ ॥ ३९७ ॥

मन्दरगिरिमध्यात् यावत् लवणोदधिषष्ठभागस्तु।
अधस्तनो अष्टादशशतानि उपरि शतयोजनानि तापः ॥ ३६७ ॥

मंदर। अभ्यन्तरवीथी स्थितस्य सूर्यस्य जम्बूद्वीपार्द्धं ५०००० द्वीपचारक्षेत्र १८० मपनीतं षेदिदं ४९८२० मन्दरमध्यादारभ्य अभ्यन्तरवीथीपर्यन्तं उत्तरतापं विदुः। लवणोदधि २००००० षड्भिर्भक्त्वा ३३३३३ शेष $\frac{1}{3}$ अत्र द्वीपचारक्षेत्रे १८० मेलने ३३५१३ शे $\frac{1}{3}$ अभ्यन्तरवीथ्याः आरभ्य लवणसमुद्रषष्ठभागपर्यन्तं दक्षिणतापं विदुः। सूर्यबिम्बादधस्तादष्टादशशतानि १८०० योजनानि अधस्तापं विदुः। तद्बिम्बस्योपरि शतयोजनानि ऊर्ध्वतापं विदुः ॥ ३६७ ॥

दक्षिण, उत्तर, ऊर्ध्व और अधः स्थानों में सूर्य के आताप क्षेत्र के विभाग का निरूपण करते हैं:—

गाथार्थ :—सूर्य का ताप सुदर्शन मेरु के मध्य भाग से लेकर लवण समुद्र के छठवें भाग पर्यन्त फैलता है, तथा नीचे अठारह सौ (१८००) योजन और ऊपर सौ (१००) योजन पर्यन्त फैलता है ॥ ३६७ ॥

विशेषार्थ :—अभ्यन्तर वीथी में स्थित सूर्य की अपेक्षा कथन—जम्बूद्वीप के व्यास का अर्ध भाग ५० हजार योजन है। इसमें से द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्र का प्रमाण १८० योजन घटा देने पर (५००००—१८०)=४९८२० योजन अवशेष रहा, अतः मेरु पर्वत के मध्य से लगाकर अभ्यन्तर वीथी पर्यन्त उत्तर दिशा में सूर्य का आताप ४९८२० योजन (१९९२८०००० मील) दूर तक फैलता है।

लवण समुद्र का व्यास २००००० योजन है। इसका छठवाँ भाग ($\frac{200000}{6}$) ३३३३३$\frac{1}{3}$ योजन होता है। इसमें द्वीप सम्बन्धी चारक्षेत्र का प्रमाण १८० योजन मिलाने पर (३३३३३$\frac{1}{3}$+१८०)=३३५१३$\frac{1}{3}$ योजन हुआ, अतः सूर्य का आताप अभ्यन्तर वीथी से प्रारम्भ कर लवण समुद्र के छठवें भाग पर्यन्त ३३५१३$\frac{1}{3}$ योजन अर्थात् १४२०५३३३३$\frac{1}{3}$ मील दूर तक दक्षिण दिशा में फैलता है। इसी प्रकार अन्य वीथियों में लगा लेना चाहिये। सूर्य बिम्ब से चित्रा पृथ्वी ८०० योजन नीचे है, और १००० योजन चित्रा पृथ्वी की जड़ है। कुल योग (१०००+८००)=१८०० योजन हुआ, अतः सूर्य का आताप नीचे की ओर १८०० योजन (७२०००० मील) तक फैलता है।

सूर्य बिम्ब से ऊपर १०० योजन पर्यन्त ज्योतिर्लोक है, अतः सूर्य का आताप ऊपर की ओर १०० योजन (४००००० मील) दूर तक फैलता है।

अथेदानीं चन्द्रादित्यग्रहाणां नक्षत्रभुक्तिं प्रतिपादयितुकामस्तावदेकैकनक्षत्रसम्बन्धिसीमागगनखण्डमाह :—

अभिजिस्स गगणखंडा छस्सयतीसं च अवरमज्झवरे ।
छप्पण्णरसे छक्के इगिदुतिगुणपणजुदसहस्सा ॥ ३९८ ॥

अभिजितः गगनखण्डानि षट्शतत्रिंशत् च अवरमध्यवराणि ।
षट्पञ्चदशे षट्के एकद्वित्रिगुणपञ्चयुतसहस्राणि ॥ ३९८ ॥

अभिजिस्स । अभिजितः गगनखण्डानि षट्शतत्रिंशत् ६३० जघन्यमध्यमोत्कृष्टनक्षत्रे यथाक्रमं च ६ द् पञ्चदश १५ षट् ६ प्रमाणे यथासंख्यं एकद्वित्रिगुणितपञ्चयुतसहस्रं गगनखण्डानि ज० १००५ म० २०१० उ० ३०१५ ॥ ३९८ ॥

अब चन्द्रमा, सूर्य और ग्रह इनके नक्षत्र भुक्ति के प्रतिपादन की इच्छा रखने वाले आचार्य सर्व प्रथम एक एक नक्षत्र सम्बन्धी मर्यादा रूप गगन खण्डों का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—अभिजित् नक्षत्र के छह सौ तीस गगन खण्ड हैं, तथा जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट नक्षत्रों की संख्या क्रम से छह, (१५) पन्द्रह और छह है, इनके गगन खण्ड भी क्रमशः एक हजार पाँच, दो हजार दश और तीन हजार पन्द्रह हैं ॥ ३९८ ॥

विशेषार्थ :—परिधि रूप आकाश के कुल १०९८०० गगन खण्ड हैं, इनमें एक चन्द्रमा सम्बन्धी अभिजित् नक्षत्र के कुल ६३० गगन खण्ड हैं। अर्थात् अभिजित् नक्षत्र की सीमा रूप परिधि

का प्रमाण ६३० गगन खण्ड स्वरूप है। इसी प्रकार जघन्य संज्ञा वाले ६ (छह) नक्षत्रों में से प्रत्येक के १००५, १००५ गगन खण्ड हैं। मध्यम संज्ञा वाले पन्द्रह (१५) नक्षत्रों में प्रत्येक के २०१०, २०१० गगन खण्ड और उत्कृष्ट संज्ञा वाले छह (६) नक्षत्रों में प्रत्येक के ३०१५, ३०१५ गगन खण्ड होते हैं।

अथ तानि जघन्यमध्यमोत्कृष्टनक्षत्राणि गाथाद्वयेनाह—

सदभिस भरणी अद्दा सादि असिलेस्स जेट्ठमवर वरा।
रोहिणि विसा पुणव्वसु तिउत्तरा मज्झिमा सेसा ।। ३९९ ।।

शतभिषा भरणी आर्द्रा स्वातिः आश्लेषा ज्येष्ठा अवराणि वराणि।
रोहिणी विशाखा पुनर्वसुः त्र्युत्तराः मध्यमा शेषाः ।। ३९९ ।।

सदभिस। शतभिषक् शतविशाखेत्यर्थः भरणी आर्द्रा स्वातिः आश्लेषा ज्येष्ठा इत्यवरनक्षत्राणि ६। वराणि ३ रोहिणी विशाखा पुनर्वसु। त्रिउत्तरा ३ उत्तराफाल्गुनी उत्तराषाढा उत्तरभाद्रपदेत्यर्थः, शेषा १५ तारा मध्यमाः ।। ३९९ ।।

दो गाथाओं द्वारा जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट नक्षत्रों का प्रतिपादन करते हैं :—

गाथार्थ :— शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, आश्लेषा और ज्येष्ठा ये ६ जघन्य नक्षत्र हैं। रोहिणी, विशाखा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद ये ६ नक्षत्र उत्कृष्ट हैं। तथा शेष १५ नक्षत्र मध्यम हैं ।। ३९९ ।।

विशेषार्थ :— शतभिषक्, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, आश्लेषा और ज्येष्ठा ये छह जघन्य नक्षत्र हैं। रोहिणी, विशाखा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपद ये ६ नक्षत्र उत्कृष्ट हैं। शेष १५ मध्यम हैं।

अथ ताः शेषाः का इत्याह—

अस्सिणिकित्तियमियसिर पुस्समहाहत्थ चित्त अणुराहा।
पुव्वतिय मूल सवणासघणिट्ठा रेवदी य मज्झिमया ।। ४०० ।।

अश्विनी कृत्तिका मृगशीर्षा पुष्यः मघा हस्तः चित्रा अनुराधा।
पूर्वत्रिका मूलं श्रवणं सधनिष्ठा रेवती च मध्यमाः ।। ४०० ।।

अस्सिणि। अश्विनी कृत्तिका मृगशीर्षा पुष्यः मघा हस्तः चित्रा अनुराधा पूर्वत्रिका

पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढ़ा पूर्वाभाद्रपदेत्यर्थः । मूलं श्रवणं धनिष्ठा रेवतीति मध्यमास्तारा: ॥ ४०० ॥

वे शेष कौनसे हैं ? उन्हें कहते हैं—

गाथार्थ :—अश्विनी, कृत्तिका, मृगशीर्षा, पुष्य, मघा, हस्त, चित्रा, अनुराधा, पूर्वत्रिक—पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद; मूल, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती ये पन्द्रह मध्यम नक्षत्र हैं ॥ ४०० ॥

विशेषार्थ :—गाथार्थ की भाँति ही है ।

अथोक्तानि गगनखण्डानि पिण्डीकृत्य चन्द्रादित्यनक्षत्राणां परिधिभ्रमणकालमाह—

दोचंदाणं मिलिदे अडसयं णवसहस्समिगिलक्खं ।
सगसगमुहुत्तगदिणभखंडहिदे परिधिगमुहुत्ता ॥ ४०१ ॥

द्विचन्द्रयोः मिलिते अष्टशतं नवसहस्रं एकलक्षं ।
स्वस्वकमुहूर्तगतिनभःखण्डहृते परिधिमुहूर्ताः ॥ ४०१ ॥

दोचंदाणं । जघन्यमध्यमोत्कृष्टनक्षत्रखण्डानि अ १००५ म २०१० उ ३०१५ तत्तन्नक्षत्रप्रमाणेन ६ । १५ । ६ गुणयित्वा ६०३० । ३०१५० । १८०९० एतानि खण्डानि अभिजित्खण्ड ६३० सहितानि सर्वाणि मेलयित्वा ५४९०० चन्द्रद्वयार्थं द्विगुणीकृत्य मिलितानि नवशत नवसहस्रैकलक्ष १०९८०० प्रमाणानि भवन्ति । एतेषु स्वकीय स्वकीयमुहूर्तगतिप्रमाणनभः खण्डैः हृतेषु सत्सु कथं हरणमिति चेदुच्यते । एतावतां खण्डानां गतौ १७६८ एकस्मिन्मुहूर्ते इयतां खण्डानां गतौ १०९८०० कियन्तो मुहूर्ता इति सम्पात्य भक्ते चन्द्रस्य परिधिभ्रमणकालः मु ६२ शेषं $\frac{१८४}{१७६८}$ अष्टभिरपवर्तिते $\frac{२३}{२२१}$ तन्मुहूर्तांशाः । एवमादित्यनक्षत्राणामानेतव्यं प्र १८३० फ १ इ १०९८०० लब्धं मु ६० प्रथमादित्यस्य परिधिभ्रमणकालः । प्र १८३५, फ=मु १, इ १०९८०० लब्धं मु ५९ शे० $\frac{१५३५}{१८३५}$ पञ्चभिरपवर्तिते $\frac{३०७}{३६७}$ मुहूर्ताः । अयं नक्षत्रस्य परिधिभ्रमणकालः एवं सति परिधिगतमुहूर्ता भवन्ति ॥ ४०१ ॥

पूर्वोक्त कहे हुए गगन खण्डों को एकत्रित करके चन्द्र सूर्य और नक्षत्रों की परिधि में भ्रमण काल का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—दो चन्द्रमा के मिले हुए गगन खण्डों का प्रमाण एक लाख नव हजार आठ सौ (१०९८००) है। चन्द्र सूर्य और नक्षत्र एक मुहूर्त में अपने अपने जितने गगन खण्डों में भ्रमण करते हैं, उन उन गगन खण्डों का १०९८०० में भाग देने पर परिधि में भ्रमण का काल प्राप्त होता है ॥ ४०१ ॥

विशेषार्थ :—६ जघन्य नक्षत्रों में प्रत्येक के १००५ गगन खण्ड हैं। मध्यम नक्षत्र १५ हैं, इनमें प्रत्येक के गगन खण्डों का प्रमाण २०१० है, तथा उत्कृष्ट नक्षत्र ६ हैं, इनमें प्रत्येक के गगन खण्डों का प्रमाण ३०१५ है। इनमें अपनी अपनी संख्या का गुणा करने पर निम्नलिखित प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—१००५ × ६ = ६०३० जघन्य नक्षत्रों के गगन खण्ड हुए। २०१० × १५ = ३०१५० ये मध्यम गगन खण्ड हैं, तथा ३०१५ × ६ = १८०९० ये उत्कृष्ट गगन खण्ड हैं। इनमें अभिजित् नक्षत्र के ६३० गगन खण्ड मिलाने पर (६०३० + ३०१५० + १८०९० + ६३०) = ५४९०० हुए। ये एक चन्द्रमा सम्बन्धी हैं और परिधि में चन्द्रमा दो हैं, अतः इस प्रमाण को दुगुना करने पर गगन खण्डों का कुल प्रमाण (५४९०० × २) = १०९८०० प्राप्त होता है। इन गगन खण्डों में अपने अपने एक मुहूर्त गमन प्रमाण गगन खण्डों का भाग देने से परिधि भ्रमण का काल प्राप्त हो जाता है। वह कैसे आता है ? उसे कहते हैं :—जबकि चन्द्रमा को १७६८ गगन खण्डों के भ्रमण में एक मुहूर्त लगता है, तब १०९८०० गगन खण्डों के भ्रमण में कितना काल लगेगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{१०९८००}{१७६८} = ६२\frac{१८४}{१७६८} = ६२\frac{२३}{२२१}$ मुहूर्त काल प्राप्त हुआ। इसी प्रकार सूर्य को १८३० गगन खण्डों के भ्रमण में एक मुहूर्त लगता है, तब १०९८०० गगन खण्डों के भ्रमण में कितना काल लगेगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{१०९८००}{१८३०} = ६०$ मुहूर्त सूर्य का परिधि में भ्रमण करने का काल प्राप्त होता है।

जबकि नक्षत्रों को १८३५ गगन खण्डों के भ्रमण में एक मुहूर्त लगता है, तब १०९८०० गगन खण्डों के भ्रमण में कितना काल लगेगा ? इस प्रकार $\frac{१०९८००}{१८३५} = ५९\frac{१५३५}{१८३५} = ५९\frac{३०७}{३६७}$ मुहूर्त नक्षत्रों का परिधि में भ्रमण करने का काल है। इस प्रकार चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रों का परिधि भ्रमण काल प्राप्त होता है।

अथ ताः स्वकीयस्वकीयमुहूर्तगतयः का इत्यत्राह—

अट्ठट्ठी सत्तरसयमिंदू छावट्ठि पंचअहियकमं ।
गच्छन्ति सूररिक्खा णभखंडाणिगिमुहुत्तेण ॥ ४०२ ॥

अष्टषष्टिः सप्तदशशतं इन्दुः षट्षष्टिः पञ्चाधिकक्रमाणि ।
गच्छन्ति सूर्यऋक्षाणि नभःखण्डानि एकमुहूर्तेन ॥ ४०२ ॥

सदुट्ठी । सप्तषष्टि: सप्तदशशतगगनखण्डानि इन्दुः १७६८ तान्येव द्विषष्ट्या ६२ अधिकान्या-दित्यः १८३० तान्येव पुनः पञ्चाधिकानि नभःखण्डानि नक्षत्राणि गच्छन्ति १८३५ एकमुहूर्तेन ॥ ४०२ ॥

एक मुहूर्त में गमन करने के अपने अपने गमन खण्डों का प्रमाण कहते हैं—

गाथार्थ :—एक मुहूर्त में चन्द्रमा १७६८ गगनखण्डों में भ्रमण करता है, सूर्य १८३० और नक्षत्र १८३५ गगनखण्डों में गमन करता है ॥ ४०२ ॥

विशेषार्थ :—चन्द्रमा एक मुहूर्त में १७६८ गगनखण्डों में भ्रमण करता है। सूर्य ६२ अधिक अर्थात् १८३० गगनखण्डों में और नक्षत्र ५ अधिक अर्थात् १८३५ गगनखण्डों में एक मुहूर्त में भ्रमण करते हैं।

अथ चन्द्रादितारान्तानां गमनविशेषस्वरूपमाह—

> **चंदो मंदो गमणे सूरो सिग्घो तदो गहा तत्तो ।**
> **तत्तो रिक्खा सिग्घा सिग्घयरा तारया तत्तो ॥ ४०३ ॥**

> चन्द्रो मन्दो गमने सूरः शीघ्रः ततो ग्रहाः ततः।
> ततः ऋक्षाणि शीघ्राणि शीघ्रतराः तारकाः ततः ॥ ४०३ ॥

चंदो मंदो । चन्द्रो मन्दो गमने ततः सूर्यः शीघ्रः ततो ग्रहाः शीघ्राः ततो नक्षत्राणि शीघ्राणि ततः शीघ्रतरास्तारकाः ॥ ४०३ ॥

चन्द्रमा से तारा पर्यन्त ज्योतिषी देवों के गमन विशेष का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—चन्द्रमा का सबसे मन्द गमन है। सूर्य चन्द्रमा से शीघ्रगामी है, ग्रह सूर्य से शीघ्रगामी है, नक्षत्र ग्रह से शीघ्रगामी है और तारागण अतिशीघ्रगामी हैं ॥ ४०३ ॥

विशेषार्थ :—चन्द्रमा सबसे मन्द गति वाला है। इससे शीघ्रगति सूर्य की, उससे शीघ्र ग्रहों की, उससे शीघ्र नक्षत्रों की और उससे भी अधिक शीघ्रगति ताराओं की है।

विशेष :—चन्द्रमा अभ्यन्तर वीथी में एक मिनिट में ४२२७९७ [illegible] मील चलता है। इसी अभ्यन्तर वीथी में सूर्य १ मिनिट में ४३७६२३ [illegible] मील चलता है अर्थात् चन्द्रमा की अपेक्षा सूर्य ने १ मिनिट में १४८२६ [illegible] मील अधिक गमन किया। उसी अभ्यन्तर वीथी में नक्षत्र १ मिनिट में ४३८८१९ [illegible] मील चलता है अर्थात् सूर्य की अपेक्षा नक्षत्र ने १ मिनिट में ११९६ [illegible] मील अधिक गमन किया।

अथ साम्प्रतं चन्द्रादित्ययोर्नक्षत्रभुक्तिमाह—

इंदुरवीदो रिक्खा सत्तट्ठी पंच गगणखंडहिया ।
अहियहिदरिक्खखंडा रिक्खे इंदुरविअत्थणमुहुत्ता ॥ ४०४ ॥

इन्दुरवितः ऋक्षाणि सप्तषष्टिः पञ्च गगनखण्डाधिकानि ।
अधिकहितऋक्षखण्डानि ऋक्षे इन्दुरविअस्तमनमुहूर्ताः ॥ ४०४ ॥

इंदुरवी । इन्दुरविगगनखण्डेभ्यः यथाक्रमं १७६८ रवि १८३० ऋक्षाणि सप्तषष्टिगगनखण्डैः ६७ पञ्चगगनखण्डैः ५ अधिकानि १८३५ एकस्यां वेलायां गमनं प्रारभ्य चन्द्रो नक्षत्राणि च एकस्मिन्मुहूर्ते स्वस्वगगनखण्डसमाप्तिकरणे चन्द्रो नक्षत्रात्सप्तषष्टिखण्डानि पृष्ठभागे अपसरति । एतदपसरणं श्रुत्वा एतावदधिकखण्डा ६७ पसरणे यद्येको मुहूर्तस्तदा एतावत् अभिजित्खण्डा ६३० पसरणे कियन्तो मुहूर्ताः स्युरिति सम्पाततिविना अधिकेन ६७ अभिजिदादिजघन्यमध्यमोत्कृष्टनक्षत्रखण्डेषु अभिजितः ६३० ज० १००५ म० २०१० उ० ३०१५ हृतेषु तत्तन्नक्षत्रे इन्दोः आसन्नमुहूर्ताः स्युः अभिजितो मु ९ भा $\frac{२७}{६७}$ ज १५ म ३० उ ४५ जघन्यनक्षत्रे त्रिंशन्मुहूर्तानामेकस्मिन् दिने इयतां १५ मुहूर्तानां किमिति सम्पात्य पञ्चदशभिरपवर्तिते लब्धदिन $\frac{१}{२}$ म दिन १ उ=न=मु=४५ एतद्दिनं कृत्वा पञ्चदशभिरपवर्तिते एवं $\frac{३}{२}$ । एवमेवादित्यस्य नक्षत्राणां भुक्तिकालो ज्ञातव्यः । अभिजितः = दि ४, मु ६ । ज = दि ६, मु २१ । म = दि १३, मु १२ । उ = दि २०, मु ३ ॥ ४०४ ॥

अब चन्द्रमा और सूर्य की नक्षत्र भुक्ति को कहते हैं :—

गाथार्थ :—चन्द्रमा और सूर्य के गगनखण्डों से नक्षत्र के गगनखण्ड क्रम से ६७ और ५ अधिक हैं। इन अधिक गगनखण्डों का अपने अपने नक्षत्रखण्डों में भाग देने पर नक्षत्र और चन्द्र तथा नक्षत्र और सूर्य के आसन्न मुहूर्तों का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ॥ ४०४ ॥

विशेषार्थ :—१ मुहूर्त के गमन की अपेक्षा चन्द्रमा के गगनखण्ड १७६८, सूर्य के १८३० और नक्षत्र के १८३५ हैं। जो चन्द्रमा के गगनखण्डों से (१८३५—१७६८)=६७ और सूर्य के गगनखण्डों से (१८३५—१८३०)=५ अधिक हैं। एक ही साथ चन्द्रमा और नक्षत्र ने गमन करना प्रारम्भ किया और एक ही मुहूर्त में दोनों ने अपने अपने गगनखण्डों को समाप्त कर दिया। अर्थात् १ मुहूर्त में चन्द्र ने १७६८ गगनखण्डों का भ्रमण किया, जबकि नक्षत्र ने १८३५ का किया, अतः नक्षत्र से चन्द्रमा ६७ गगनखण्ड पीछे रहा। चन्द्रमा अभिजित् नक्षत्र के ऊपर है और अभिजित् नक्षत्र के ६३० गगनखण्ड हैं। जबकि ६७ गगनखण्ड छोड़ने में चन्द्रमा को १ मुहूर्त लगा, तब ६३० गगनखण्डों को छोड़ने में कितने मुहूर्त लगेंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{६३०}{६७}$=९$\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त प्राप्त होते हैं। यही

अभिजित् और चन्द्रमा के आसन्न मुहूर्तों का प्रमाण है। अर्थात् $९\frac{२७}{६७}$ मुहूर्त तक चन्द्रमा अभिजित् नक्षत्र के निकट रहा। (इसे ही नक्षत्रभुक्ति कहते हैं, अथवा इन दोनों की निकटता को चन्द्रमा द्वारा अभिजित् नक्षत्र का भोग कहते हैं। अथवा इसी को चन्द्रमा और अभिजित् नक्षत्र का योग कहते हैं।) इसी प्रकार जघन्य, मध्यम एवं उत्कृष्ट नक्षत्रों के आसन्नमुहूर्त निकालने पर निम्नलिखित प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—जघन्य नक्षत्रों के गगनखण्ड १००५ हैं, अतः $\frac{१००५}{६७}$=१५ मुहूर्त अर्थात् ६ जघन्य नक्षत्रों के साथ चन्द्रमा की १५ मुहूर्त निकटता रहती है। इसी प्रकार मध्यम नक्षत्रों के गगनखण्ड २०१० और उत्कृष्ट के ३०१५ गगनखण्ड हैं, अतः $\frac{२०१०}{६७}$=३० मुहूर्त। $\frac{३०१५}{६७}$=४५ मुहूर्त। अर्थात् चन्द्रमा की मध्यम नक्षत्रों के साथ ३० मुहूर्त और उत्कृष्ट नक्षत्रों के साथ ४५ मुहूर्तों की निकटता रहती है। ३० मुहूर्त का एक दिन होता है, अतः उपर्युक्त दिनों के मुहूर्त बनाने पर क्रम से $\frac{१५}{३०}=\frac{१}{२}$ अर्थात् आधा दिन। $\frac{३०}{३०}$=१ दिन और $\frac{४५}{३०}=१\frac{१}{२}$ अर्थात् डेढ़ दिन प्राप्त हुए, यही चन्द्रमा के द्वारा जघन्यादि नक्षत्रों के भुक्तिदिन (काल) हैं।

सूर्य, नक्षत्र से ५ गगनखण्ड पीछे रहता है, अतः चन्द्रमा के सदृश सूर्य का भी भुक्तिकाल निकालने पर क्रम से निम्नलिखित प्रमाण प्राप्त होता है, यथा :—$\frac{६३०}{५\times३०}=\frac{२१}{५}$ या $४\frac{१}{५}$ दिन या ४ दिन ६ मुहूर्त अभिजित् नक्षत्र का भुक्तिकाल। $\frac{१००५}{५\times३०}=\frac{२०१}{३०}=६\frac{२१}{३०}$ दिन या ६ दिन २१ मुहूर्त जघन्य नक्षत्रों का भुक्तिकाल है। $\frac{२०१०}{५\times३०}=\frac{२०१}{१५}=१३\frac{६}{१५}$ दिन या ११ दिन १२ मुहूर्त मध्यमनक्षत्रों का सूर्य द्वारा भुक्तिकाल है। इसीप्रकार $\frac{३०१५}{५\times३०}=\frac{६०३}{३०}=२०\frac{३}{३०}$ दिन या २० दिन ३ मुहूर्त उत्कृष्ट नक्षत्रों का सूर्यद्वारा भुक्तिकाल है।

अथ राहोर्गगनखण्डाभिधानद्वारेण तस्य नक्षत्रभुक्तिमाह—

रविखंडादो बारसभागूणं वच्चदे जदो राहू।
तम्हा तत्तो रिक्खा बारहिदिगिसट्ठिखंडहिया ॥ ४०५ ॥

रविखण्डतः द्वादशभागोनं व्रजति यतो राहुः।
तस्मात्ततः ऋक्षाणि द्वादशहृतैकषष्टिखण्डाधिकानि ॥ ४०५ ॥

रविखंडादो। रवेर्गगनखण्डेभ्यः १८३० द्वादशभागो $\frac{१}{१२}$ नैतावत्खण्डानि १८२९ $\frac{११}{१२}$ एकस्मिन्मुहूर्ते व्रजति राहुर्यतः तस्मात् ततो राहुगगनखण्डेभ्यः १८२९ $\frac{११}{१२}$ ऋक्षखण्डानि १८३५ द्वादशहृतैकषष्टिखण्डाधिकानि $\frac{६१}{१२}$। एतावदधिकं कथं ? राहुगगनखण्डानि १८२९ $\frac{११}{१२}$ नक्षत्रगगनखण्डेषु १८३५ अपनीय, शेषं ६ तच्छेदेन $\frac{१२}{१२}$ समच्छेदीकृत्य $\frac{७२}{१२}$ अत्र तच्छेदे $\frac{११}{१२}$ अपनीते सति अधिकखण्डप्रमाणं भवति। $\frac{६१}{१२}$ एतदधिकं धृत्वा 'अहियहिदरविखखण्डेत्ति' न्यायेन राहोरेतावत्

खण्डानां $\frac{३११}{६२}$ अपसरणे एकस्मिन्मुहूर्ते १ एतावतामभिजित्खण्डानां ६३० किमिति सम्पात्य $\frac{६३०}{\frac{३११}{६२}}$ हारस्य हारं ६२ राशेर्गुणकारं कृत्वा $\frac{६३० \times ६२}{३११}$ तानेव मुहूर्तान् त्रिंशता भागेन दिनानि कृत्वा $\frac{६३०}{३११} \times \frac{६२}{३०}$ पश्चात् द्वाषष्टिं त्रिंशता समं षड्भिरपवर्त्य $\frac{६३०}{३११} \times \frac{३१}{१५}$ अथ पुनः त्रिंशदुत्तरषट्शतानि पञ्चभिः समं पञ्चभिरपवर्त्य $\frac{१२६ \times ३१}{३११ \times ३}$ इदं स्वगुणकारेण २ गुणयित्वा $\frac{१३०२}{३११}$ भक्ते लब्धदिनानि ४ भागे $\frac{५८}{३११}$ इदं राहोरभिजित्भुक्तिः। एवमेव जघन्यमध्यमोत्कृष्टनक्षत्रेषु राहोर्भुक्तिरानेतव्या। ज दि ६ भागे $\frac{२११}{३११}$ म दि १३ भा $\frac{१११}{३११}$ उ दि २० भाग $\frac{११}{३११}$ ॥ ४०५ ॥

राहु के गगनखण्ड कहकर उसके द्वारा नक्षत्रों का भुक्तिकाल कहते हैं :—

गाथार्थ :—सूर्य के गगनखण्डों से $\frac{१}{६२}$ भागहीन (१८२९$\frac{६१}{६२}$) गगनखण्डों पर राहु गमन करता है। इसी कारण राहु के गगनखण्डों से नक्षत्रों के गगनखण्ड $\frac{३११}{६२}$ भाग अधिक हैं ॥ ४०५ ॥

विशेषार्थ :—सूर्य के गगनखण्ड १८३० हैं। इनमें $\frac{१}{६२}$ भाग हीन अर्थात् (१८३०—$\frac{१}{६२}$=) १८२९$\frac{६१}{६२}$ गगनखण्डों पर राहु एक मुहूर्त में गमन करता है, इसी कारण राहु १८२९$\frac{६१}{६२}$ गगनखण्डों से नक्षत्रों के १८३५ गगनखण्ड $\frac{३११}{६२}$ भाग से अधिक हैं। $\frac{३११}{६२}$ भाग अधिक कैसे हैं? राहु के १८२९$\frac{६१}{६२}$ गगनखण्डों को नक्षत्र के १८३५ गगनखण्डों में से कम करने पर $\frac{६१}{६२}$ भाग कम ६ गगनखण्ड शेष बचे। ६ गगनखण्डों में से $\frac{६१}{६२}$ भाग कम करने पर—$\frac{६}{१}$ — $\frac{६१}{६२}$=$\frac{३११}{६२}$ अधिक गगनखण्डों का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। 'अहियहिदरिक्खखण्डेति' (गा० ४०४) न्यायानुसार जबकि $\frac{३११}{६२}$ भाग छोड़ने में राहु को १ मुहूर्त लगता है, तब अभिजित् नक्षत्र के ६३० गगनखण्ड छोड़ने में कितने मुहूर्त लगेंगे? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{१ \times ६३० \times ६२}{३११}$=$\frac{३९०६०}{३११}$ मुहूर्त प्राप्त हुए। इन मुहूर्तों के दिन बनाने के लिए इनमें तीस (३०) का भाग देने पर $\frac{३९०६०}{३११ \times ३०}$=$\frac{१३०२}{३११}$ अर्थात् ४$\frac{५८}{३११}$ दिन प्राप्त हुए। अथवा—$\frac{६३०}{३११} \times \frac{६२}{३०}$ में ६२ और ३० को २ से अपवर्तन करने पर $\frac{६३०}{३११} \times \frac{३१}{१५}$ हुए। पुनः ६३० और ५ को पाँच से अपवर्तन करने पर $\frac{१३०२}{३११}$ अर्थात् ४$\frac{५८}{३११}$ दिन प्राप्त हुए। अर्थात् राहु ४$\frac{५८}{३११}$ दिनों तक अभिजित् नक्षत्र का भोग करता है। इसी प्रकार जघन्यादि नक्षत्रों की भुक्त घड़ी निम्न प्रकार है :—

$\frac{१ \times ६२ \times १००५}{३११ \times ३०}$=$\frac{२०७७}{३११}$ अर्थात् ६$\frac{२११}{३११}$ दिनों तक राहु जघन्य नक्षत्रों को, $\frac{१ \times ६२ \times २०१०}{३११ \times ३०}$=$\frac{४१५४}{३११}$ अर्थात् १३$\frac{१११}{३११}$ दिनों तक मध्यम नक्षत्रों को और $\frac{१ \times ६२ \times ३०१५}{३११ \times ३०}$=$\frac{६२३१}{३११}$ अर्थात् २०$\frac{११}{३११}$ दिनों तक उत्कृष्ट नक्षत्रों को भोगता है।

अथ प्रकारान्तरेण राहोर्नक्षत्रमाह—

णक्खत्तसूरजोगजमुहुत्तरासिं दुवेहिं संगुणिय ।
एक्कट्ठिहिदे दिवसा हवंति णक्खत्तराहुजोगस्स ॥ ४०६ ॥

नक्षत्रसूरयोगजमुहूर्तराशिं द्वाभ्यां संगुण्य ।
एकषष्टिहृते दिवसा भवन्ति नक्षत्रराहुयोगस्य ॥ ४०६ ॥

णक्खत्त । अभिजिदादिनक्षत्रसूर्ययोगजनितराशिं दि ४ मु ६ त्रिंशद्गुणनेन मुहूर्तं कृत्वा १२६ तं राशिं द्वाभ्यां संगुण्य २५२ । एकषष्ट्या हृते सति दि ४ भा $\frac{8}{61}$ दिवसा भवन्ति नक्षत्रराहुयोगस्य । एवमितरनक्षत्राणां कर्तव्यम् ॥ ४०६ ॥

अन्य प्रकार से राहु की नक्षत्रभुक्ति कहते हैं—

गाथार्थ :—नक्षत्र और सूर्य का जितने मुहूर्तों तक योग रहता है अर्थात् सूर्य जितने मुहूर्त तक नक्षत्र को भोगता है उन मुहूर्तों के प्रमाण में २ का गुणा कर ६१ का भाग देने से नक्षत्र और राहु के योग के दिनों का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ४०६ ॥

विशेषार्थ :—सूर्य द्वारा अभिजित् नक्षत्र का भुक्तिकाल ४ दिन ६ मुहूर्त है । ४ में ३० का गुणा कर ६ जोड़ने से भुक्तिकाल १२६ मुहूर्त प्रमाण हुआ । १२६ को दो से गुणा कर ६१ का भाग देने पर (१२६ × २ = २५२ ÷ ६१) = ४$\frac{8}{61}$ दिन राहु द्वारा अभिजित् नक्षत्र का भुक्तिकाल प्राप्त होता है ।

अथैकस्मिन्नयने नक्षत्रभुक्तिसहितरहितदिनानि निगदति—

अभिजादि तिसीदिसयं उत्तरअयणस्स होंति दिवसाणि ।
अधिकदिणाणं तिण्णि य गद दिवसा होंति इगि अयणे ॥४०७ ॥

अभिजिदादि त्र्यशीतिशतं उत्तरायणस्य भवन्ति दिवसानि ।
अधिकदिनानां त्रीणि च गतदिवसानि भवन्ति एकस्मिन् अयने ॥ ४०७ ॥

अभिजिदादि । अभिजिदादीनां पुष्यान्तानां जघन्यमध्यमोत्कृष्टनक्षत्राणां त्र्यशीत्युत्तरशतं १८३ मुत्तरायणस्य भवन्ति दिवसानि एभ्योऽतिरिक्तान्यधिकदिनानि ननु । त्रीणि ३ च गतदिवसानि भवन्ति एकस्मिन्नयने ॥ ४०७ ॥

एक अयन में नक्षत्र-भुक्ति सहित और रहित दिनों का प्रमाण कहते हैं—

गाथार्थ :—अभिजित् आदि नक्षत्रों के उत्तरायण में एक सौ तैरासी दिन होते हैं। इनसे अतिरिक्त अन्य अधिक दिन कितने होते हैं ? एक अयन में तीन गतदिवस होते हैं ॥ ४०७ ॥

विशेषार्थ :—सूर्य के उत्तरायण में सर्व प्रथम अभिजित् नक्षत्र की भुक्ति होती है। इसका काल $\frac{२१}{५}$ दिन है। इसके आगे क्रम से श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र की भुक्ति होती है। इनमें से शतभिषा, भरणी और आर्द्रा ये तीन जघन्य नक्षत्र हैं। इनमें प्रत्येक का भुक्तिकाल $\frac{२०१}{३०}$ दिन है। अर्थात् तीन नक्षत्रों का $(\frac{२०१}{३०} \times \frac{३}{१}) = \frac{६०३}{३०}$ दिन है। श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वाभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, कृत्तिका और मृगशीर्षा ये सात मध्यम नक्षत्र हैं। इनमें प्रत्येक का भुक्तिकाल $\frac{६७}{५}$ दिन है, अतः ७ नक्षत्रों का $\frac{६७}{५} \times \frac{७}{१} = \frac{४६९}{५}$ दिन हुआ। तथा उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, पुनर्वसु ये तीन उत्कृष्ट नक्षत्र हैं। इनमें प्रत्येक का भुक्तिकाल $\frac{६०३}{३०}$ दिन है, अतः ३ नक्षत्रों का $\frac{६०३}{३०} \times \frac{३}{१} = \frac{१८०९}{३०}$ दिन हुआ। इसके बाद पुष्य नक्षत्र का भुक्तिकाल $\frac{६७}{५}$ दिन है, किन्तु उत्तरायण में पुष्यनक्षत्र का भुक्तिकाल मात्र $\frac{२३}{५}$ दिन ही है, अतः $\frac{२१}{५} + \frac{६०३}{३०} + \frac{४६९}{५} + \frac{१८०९}{३०} + \frac{२३}{५} = \frac{५४९०}{३०} = १८३$ दिन, अर्थात् अभिजित् आदि जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट नक्षत्रों के उत्तरायण में १८३ दिन होते हैं। इनसे अतिरिक्त अधिक दिन कितने होते हैं ? एक अयन में तीन गतदिवस होते हैं।

अथाधिकदिनानामुत्पत्तिमाह—

एक्कपहलंघणं पडि जदि दिवसिगिसट्ठिभागमुवलद्धं ।
किं तेसीदिसदस्सिदि गुणिदे ते होंति अहियदिणा ॥ ४०८ ॥

एकपथलङ्घनं प्रति यदि दिवसैकषष्टिभागमुपलब्धं ।
किं त्र्यशीतिशतस्येति गुणिते ते भवन्ति अधिकदिनानि ॥४०८॥

एक्कपह । एकपथलङ्घनं प्रति यदि दिवसैकषष्टि ६१ भाग उपलभ्यते तदा त्र्यशीतिशत १८३ दिवसानां किमिति सम्पात्यैकषष्ट्या तियंगपवर्त्य गुणिते अधिकदिनानि ३ भवन्ति । एकस्मिन्नयने कथं त्र्यशीतिशतदिनानीति चेत्, आदित्यस्य नक्षत्रात् पञ्चपञ्चाशदपसरणे एकस्मिन्मुहूर्ते सति अभिजित्खण्डा ६३० पसरणे कियन्तो मुहूर्ता इत्यागतान्मुहूर्तान् $\frac{६३०}{५}$ पुनस्त्रैराशिकेन दिनानि कृत्वा $\frac{६३०}{५ \times ३०}$ अत्र उपरि त्रिंशतापवर्त्य लब्धमिदं $\frac{२१}{५}$ अभिजिति संस्थाप्यं । एवं जघन्यमध्यमोत्कृष्टनक्षत्राणां श्रवणादिपुनर्वस्वन्तानां त्रैराशिकविधिना मुहूर्तान् दिनानि च कृत्वा यथासंख्यं पञ्चदशभिः १५ त्रिंशता ३० पञ्चदशभि १५ अपवर्त्य लब्धं तत्र तत्र नक्षत्रे स्थापयेत् ॥ ४०८ ॥

अधिक दिनों की उत्पत्ति कहते हैं—

गाथार्थ :—एक पथ (वीथी) उल्लङ्घन के प्रति यदि एक दिन का इकसठवाँ ($\frac{१}{६१}$) भाग उपलब्ध होता है, तो एकसौतेरासी पथों (वीथियों) के उल्लङ्घन में क्या प्राप्त होगा ? इस प्रकार $\frac{१}{६१}$ भाग को १८३ से गुणित करने पर अधिक दिनों की प्राप्ति होती है ॥ ४०८ ॥

विशेषार्थ :—सूर्य द्वारा एक पथ उल्लङ्घन करने में यदि $\frac{१}{६१}$ दिन की प्राप्ति होती है, तब १८३ वीथियाँ उल्लङ्घन करने के प्रति कितने दिनों की उपलब्धि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{१}{६१} \times \frac{१८३}{१}$) = ३ दिन अर्थात् ३ दिन अधिक प्राप्त होते हैं।

एक अयन में १८३ दिन ही कैसे होते हैं ? इस प्रकार पूछने पर कहते हैं :—सूर्य के एक मुहूर्त के गमन योग्य गगनखण्ड १८३० और नक्षत्रों के १८३५ हैं। जबकि सूर्य को नक्षत्र के ५ गगनखण्ड छोड़ने में एक मुहूर्त लगता है, अर्थात् ५ गगनखण्डों के प्रति यदि एक मुहूर्त है, तो अभिजित् नक्षत्र के ६३० गगनखण्डों के प्रति क्या होगा ? अर्थात् कितने मुहूर्त होंगे ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{६३०}{५}$ मुहूर्त होते हैं, इनको ३० का भाग देकर ऊपर नीचे ३० से अपवर्तित करने पर ($\frac{६३०}{५ \times ३०}$) $\frac{२१}{५}$ दिन अभिजित् नक्षत्र का भुक्तिकाल प्राप्त होता है। इसी प्रकार शतभिषादि तीन जघन्य नक्षत्रों का भुक्तिकाल $\frac{१००५}{५ \times ३०}$ है, इन्हें १५ से अपवर्तित करने पर $\frac{६७}{१०}$ दिन प्राप्त हुए। श्रवणादि सात मध्यम नक्षत्रों में से प्रत्येक का भुक्तिकाल $\frac{२०१०}{५ \times ३०}$ है, इन्हें ३० से अपवर्तित करने पर $\frac{६७}{५}$ दिन प्राप्त हुये। इसी प्रकार उत्तराभाद्रपदादि तीन उत्कृष्ट नक्षत्रों में से प्रत्येक का भुक्तिकाल $\frac{३०१५}{५ \times ३०}$ है, इन्हें १५ से अपवर्तित करने पर $\frac{२०१}{१०}$ दिन प्राप्त होते हैं।

अथ पुष्ये तु विशेषप्रतिपादनार्थमाह—

> **सतिपंचमचउदिवसे पुस्से गमियुत्तरायणसमत्ती ।**
> **सेसेदक्खिणआदीसावणपडि वदि रविस्स पढमपहे ॥ ४०९ ॥**
>
> सत्रिपञ्चमचतुर्दिवसान् पुष्ये गत्वा उत्तरायणसमाप्तिः ।
> शेषात् दक्षिणादिः श्रावणप्रतिपदि रवेः प्रथमपथे ॥ ४०९ ॥

सतिपंचम । सत्रिपञ्चम $\frac{३}{५}$ चतुर्दिवसान् ४ पुष्ये गत्वा उत्तरायणसमाप्तिरिति कृत्वा प्राक्पुष्य-नक्षत्रे विनाभ्यानीय $\frac{२१}{५}$ तेभ्य समच्छेदीकृतसत्रिपञ्चमचतुर्दिवसान् $\frac{२३}{५}$ अपनीय उत्तरायणसमाप्तौ दत्वा शेषेभ्यः $\frac{४४}{५}$ कोष्ठपूरणार्थं तावदेव $\frac{२३}{५}$ पनीय दक्षिणायनप्रथमकोष्ठे दत्ते सति इत्येव श्रावणमासे प्रतिपदि रवेः प्रथमपथे दक्षिणायनस्यादिः अवशिष्टशेषान् $\frac{२१}{५}$ द्वितीयकोष्ठे दद्यात् ।

एवमश्लेषाद्युत्तराषाढान्तानामादित्यभुक्तिमानीय तत्र तत्र नक्षत्रे संस्थापयेत्। एवमभिजितश्चन्द्रस्य भुक्तिमानीय ६३/६७ तत्रैव जघन्यमध्यमोत्कृष्टनक्षत्राणां मध्ये श्रवणादिपुनर्वस्वन्तानां भुक्तिं सप्तषष्टि सवर्ण सप्तषष्ट्यापवर्त्यं त्रिराशिं जघन्योत्कृष्टानां पञ्चदशभिरपवर्त्यं मध्यमानां तु त्रिंशतापवर्त्यं लब्धं तत्र तत्र नक्षत्रे स्थापयेत्। पुष्यस्य तु आदित्यस्यैतावद्भुक्तौ ६७/५ चन्द्रस्य यद्येकं दिनं तदा पुष्ये आदित्यस्यैतावद्भुक्तौ २३/५ चन्द्रस्य कियद्भुक्तिरिति सम्पात्यापवर्त्यं आगतां भुक्तिं २३/६७ पुष्ये स्थापयेत्। एवं दक्षिणायने कर्तव्यम्। एवं राहोरभिजिदादिपुनर्वस्वन्तानां भुक्तिमानीय तत्र तत्र नक्षत्रे स्थापयेत्। पुष्ये तु राहुभुक्तिं आदित्यस्यैतावद्भुक्तौ ६७/५ राहोर्यद्येतावन्ति दिनानि ६७/४ तदा पुष्ये आदित्यस्यैतावद्भुक्तौ २३/५ राहोः कियद्भुक्तिरिति सम्पात्यापवर्त्यानीय २३/४ उत्तरायणसमाप्तौ पुष्ये स्थापयेत्। प्राग्वद्दक्षिणायने कर्तव्यम्। एवमानीतेषु चन्द्रस्य नक्षत्रभुक्तिदिनेषु सर्वेषु समच्छेदीकृत्य मिलितेषु पर्वदिनानि १३ भा ४४/६७ भवन्ति उभयायनमेलने वर्षदिनानि २७ भा २१/६७ भवन्ति। एवमादित्यस्यायनदिनानि १८३ वर्षदिनानि च ३६६ आनेतव्यानि। एवं राहोरप्यायनदिनानि १८० वर्षदिनानि च ३६० आनेतव्यानि ॥ ४०६ ॥

पुष्यनक्षत्र में जो विशेषता है, उसके प्रतिपादन हेतु कहते हैं—

गाथार्थ :—पुष्यनक्षत्र में पाँच भागों में से तीन भाग सहित चार (४ ३/५) दिन जाकर उत्तरायण की परिसमाप्ति होती है। श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन अभ्यन्तर वीथी में पुष्यनक्षत्र का शेष २१/५ भाग दक्षिणायन का आदि है अर्थात् दक्षिणायन का प्रारम्भ होता है ॥ ४०६ ॥

विशेषार्थ :—पुष्य नक्षत्र मध्यम है अतः इसके गगनखण्डों का प्रमाण २०१० है। ५ गगनखण्डों के प्रति सूर्य को १ मुहूर्त लगता है, तब २०१० गगनखण्डों के प्रति क्या लगेगा ? इस प्रकार पूर्ववत् सम्पूर्ण क्रिया करने से (२०१०/५×३०) ६७/५ दिन सूर्य द्वारा पुष्य नक्षत्र का भुक्तिकाल प्राप्त होता है। इसमें पाँच भागों में से तीन भाग सहित चार दिन अर्थात् २३/५ घटा कर उत्तरायण की परिसमाप्ति में देकर शेष (६७/५ — २३/५) = ४४/५ में से पुनः २३/५ लेकर दक्षिणायन की आदि स्वरूप दक्षिणायन के प्रथम कोष्ठ में देना चाहिये। यही श्रावणकृष्णा के दिन अभ्यन्तर (प्रथम) वीथी में दक्षिणायन की आदि है। अवशेष बचे २१/५ को द्वितीय कोष्ठ में देना चाहिये। इस प्रकार दक्षिणायन के प्रारम्भ में प्रथम पुष्य नक्षत्र का भोग समाप्त हो जाने के बाद क्रम से आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा इन नक्षत्रों को भोगता है। इनमें से आश्लेषा, स्वाति और ज्येष्ठा ये तीन नक्षत्र जघन्य हैं। इनमें प्रत्येक के गगनखण्ड १००५ हैं, अतः प्रत्येक का भुक्तिकाल ६७/१० दिन और तीनों का (६७/१० × ३/१) = २०१/१० दिन है। मघा, पूर्वाफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल और पूर्वाषाढ़ा ये सात मध्यम नक्षत्र हैं,

इनमें प्रत्येक के गगनखण्ड २०१० और प्रत्येक का भुक्तिकाल $\frac{६७}{५}$ दिन है, तथा सातों का ($\frac{६७}{५} \times \frac{७}{१}$) = $\frac{४६९}{५}$ दिन है। उत्तराफाल्गुनी, विशाखा और उत्तराषाढ़ा ये तीन उत्कृष्ट नक्षत्र हैं। इनमें प्रत्येक के गगनखण्ड ३०१५ और प्रत्येक का भुक्तिकाल $\frac{२०१}{१०}$ दिन है, तथा तीनों का भुक्तिकाल ($\frac{२०१}{१०} \times \frac{३}{१}$) = $\frac{६०३}{१०}$ दिन है। इन सर्व भुक्तिकालों को जोड़ने से दक्षिणायन में १८३ दिन होते हैं। यथा— $\frac{४४}{५} + \frac{२०१}{१०} + \frac{४६९}{५} + \frac{६०३}{१०} = \frac{१८३०}{१०}$ दिन अर्थात् पुष्यनक्षत्र एवं आश्लेषा से उत्तराषाढ़ा पर्यन्त दक्षिणायन में सूर्य के कुल १८३ दिन होते हैं।

उत्तरायण में चन्द्र द्वारा नक्षत्रभुक्ति के दिनों का प्रमाण :—

चन्द्रमा के उत्तरायण में सर्व प्रथम अभिजित् नक्षत्र की भुक्ति होती है। इसका भुक्तिकाल $\frac{२१}{६७}$ दिन है। इसके बाद चन्द्र श्रवण से पुनर्वसु नक्षत्रों पर्यन्त क्रम से भोगता है। इनमें शतभिषा, भरणी और आर्द्रा ये तीन जघन्य नक्षत्र हैं। इनमें प्रत्येक का भुक्तिकाल ($\frac{१००५}{६७ \times ३०}$) = $\frac{१}{२}$ दिन है, अतः तीन नक्षत्रों का ($\frac{१}{२} \times ३$) = १$\frac{१}{२}$ दिन हुआ। श्रवण, धनिष्ठा, पूर्वभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, कृत्तिका, और मृगशीर्षा ये ७ मध्यम नक्षत्र हैं, इनमें प्रत्येक का भुक्तिकाल ($\frac{२०१०}{६७ \times ३०}$) = १ दिन है, अतः ७ नक्षत्रों के ७ दिन हुए। इसी प्रकार उत्तराभाद्रपद, रोहणी और पुनर्वसु ये तीन उत्कृष्ट नक्षत्र हैं, इनमें प्रत्येक का भुक्तिकाल ($\frac{३०१५}{६७ \times ३०}$) = १$\frac{१}{२}$ दिन है, अतः तीन नक्षत्रों के ($\frac{३}{२} \times \frac{३}{१}$) = ४$\frac{१}{२}$ दिन हुए। इसके बाद पुष्य नक्षत्र को चन्द्रमा एक दिन में $\frac{४४}{६७}$ भाग पर्यन्त भोगता है। क्योंकि—पुष्य नक्षत्र को सूर्य जबकि $\frac{६७}{५}$ दिन में भोगता है, तब चन्द्रमा उसे १ दिन में भोगता है तब यदि सूर्य $\frac{४४}{५}$ दिन में भोगता है, तो चन्द्र कितने दिनों में भोगेगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{५}{६७} \times \frac{४४}{५}$) = $\frac{४४}{६७}$ दिन पुष्य नक्षत्र का भुक्तकाल प्राप्त होता है और इन सबका योग ($\frac{२१}{६७} + \frac{४४}{६७} + १\frac{१}{२} + ७ + ४\frac{१}{२}$) = १३$\frac{६५}{६७}$ दिन होता है। इस प्रकार उत्तरायण चन्द्र का नक्षत्रों का भुक्तिकाल १३$\frac{६५}{६७}$ दिन है।

दक्षिणायन चन्द्र का नक्षत्र भुक्तिकाल :—

दक्षिणायन में चन्द्रमा सर्व प्रथम पुष्य नक्षत्र को भोगता है। पुष्य नक्षत्र का $\frac{४४}{६७}$ भाग उत्तरायण में भोगा जा चुका है, अतः अवशेष बचा $\frac{२३}{६७}$ भाग ही यहाँ भुक्ति काल है। यह $\frac{२३}{६७}$ भाग लेकर दक्षिणायन की आदि स्वरूप दक्षिणायन के प्रथम कोष्ठ में देना चाहिये। इस प्रकार पुष्य नक्षत्र का भोग समाप्त हो जाने के बाद चन्द्र क्रम पूर्वक आश्लेषा से उत्तराषाढ़ा पर्यन्त नक्षत्रों को भोगता है, इनमें तीन जघन्य नक्षत्रों का भुक्तिकाल ($\frac{१००५ \times ३}{६७ \times ३०}$) = १$\frac{१}{२}$, दिन सात मध्यम नक्षत्रों का भुक्तिकाल $\frac{२०१० \times ७}{६७ \times ३०}$ = ७ दिन और ३ उत्कृष्ट नक्षत्रों का भुक्तिकाल $\frac{३०१५ \times ३}{६७ \times ३०}$ = ४$\frac{१}{२}$ दिन है। इस प्रकार $\frac{२३}{६७}$ + १$\frac{१}{२}$ + ७ + ४$\frac{१}{२}$ = १३$\frac{२३}{६७}$ दिन दक्षिणायन में चन्द्रमा द्वारा नक्षत्रों का भुक्तिकाल है।

उत्तरायण राहु का, नक्षत्र भुक्तिकाल :—

उत्तरायण में राहु सर्व प्रथम अभिजित् नक्षत्र को भोगता है। इसका भुक्तिकाल $\frac{२५२}{६७}$ दिन है। इसके आगे श्रवण से पुनर्वसु पर्यन्त नक्षत्रों की भुक्ति क्रम से होती है। इनमें से उपर्युक्त तीन जघन्य नक्षत्रों का भुक्तिकाल ($\frac{४०२ \times ३}{६७}$) = $\frac{१२०६}{६७}$ दिन, सात मध्यम नक्षत्रों का भुक्तिकाल ($\frac{८०४ \times ७}{६७}$) = $\frac{५६२८}{६७}$ दिन, और तीन उत्कृष्ट नक्षत्रों का भुक्तिकाल ($\frac{१२०६ \times ३}{६७}$) = $\frac{३६१८}{६७}$ दिन है। पुष्य नक्षत्र का भुक्तिकाल—जबकि पुष्य नक्षत्र पर सूर्य का $\frac{६८}{५}$ दिन का भोग होता है, तब राहु उसे $\frac{८०४}{६७}$ दिन भोगता है, तो जब सूर्य $\frac{२३}{५}$ दिन भोगता है, तब राहु कितने दिन भोगेगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{८०४ \times ५ \times २३}{६७ \times ६७ \times ५}$) = $\frac{२७१}{६७}$ दिन में उत्तरायण की समाप्ति हो जाती है। अर्थात् उत्तरायण राहु पुष्य नक्षत्र को $\frac{२७१}{६७}$ दिन भोगता है, अतः— $\frac{२५२}{६७} + \frac{१२०६}{६७} + \frac{५६२८}{६७} + \frac{३६१८}{६७} + \frac{२७१}{६७} = \frac{१२०६०}{६७}$ अर्थात् १८० दिन उत्तरायण राहु द्वारा नक्षत्रों का भुक्तिकाल है।

दक्षिणायन राहु का भुक्तिकाल :—

दक्षिणायन में सर्व प्रथम पुष्य के भुक्तिकाल में अवशेष रहे $\frac{५३६}{६७}$ भाग प्रमाण काल पर्यन्त तो पुष्य की भुक्ति होती है। इसके आगे आश्लेषा से उत्तराषाढ़ा पर्यन्त नक्षत्रों की भुक्ति क्रम से होती है। इनमें तीन जघन्य नक्षत्रों का भुक्तिकाल ($\frac{४०२ \times ३}{६७}$) = $\frac{१२०६}{६७}$ दिन, सात मध्यम नक्षत्रों का भुक्तिकाल ($\frac{८०४ \times ७}{६७}$) = $\frac{५६२८}{६७}$ दिन और तीन उत्कृष्ट नक्षत्रों का भुक्तिकाल ($\frac{१२०६ \times ३}{६७}$) = $\frac{३६१८}{६७}$ दिन है। इनका कुल योग $\frac{५३६}{६७} + \frac{१२०६}{६७} + \frac{५६२८}{६७} + \frac{३६१८}{६७} = \frac{१२०६०}{६७}$ दिन अर्थात् १८० दिन है। इस प्रकार दक्षिणायन राहु के, नक्षत्रों की भुक्ति का काल १८० दिन है।

चन्द्रमा एक अयन में १३$\frac{४४}{६७}$ दिन नक्षत्रों का भोग करता है, अतः चन्द्रमा का एक वर्ष का भुक्तिकाल (१३$\frac{४४}{६७}$ × २) = २७$\frac{२१}{६७}$ दिन पर्यन्त है। सूर्य का एक अयन का भुक्तिकाल १८३ दिन है, अतः दोनों अयनों के मिलाकर एक वर्ष का भुक्तिकाल (१८३ × २) = ३६६ दिन है। इसी प्रकार राहु का एक अयन का भुक्तिकाल १८० दिन है, अतः दोनों अयनों के मिला कर एक वर्ष का भुक्तिकाल (१८० × २) = ३६० दिन है। राहु, रवि और शशि के एक अयन के भुक्तिकालों का सङ्कलन :—

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

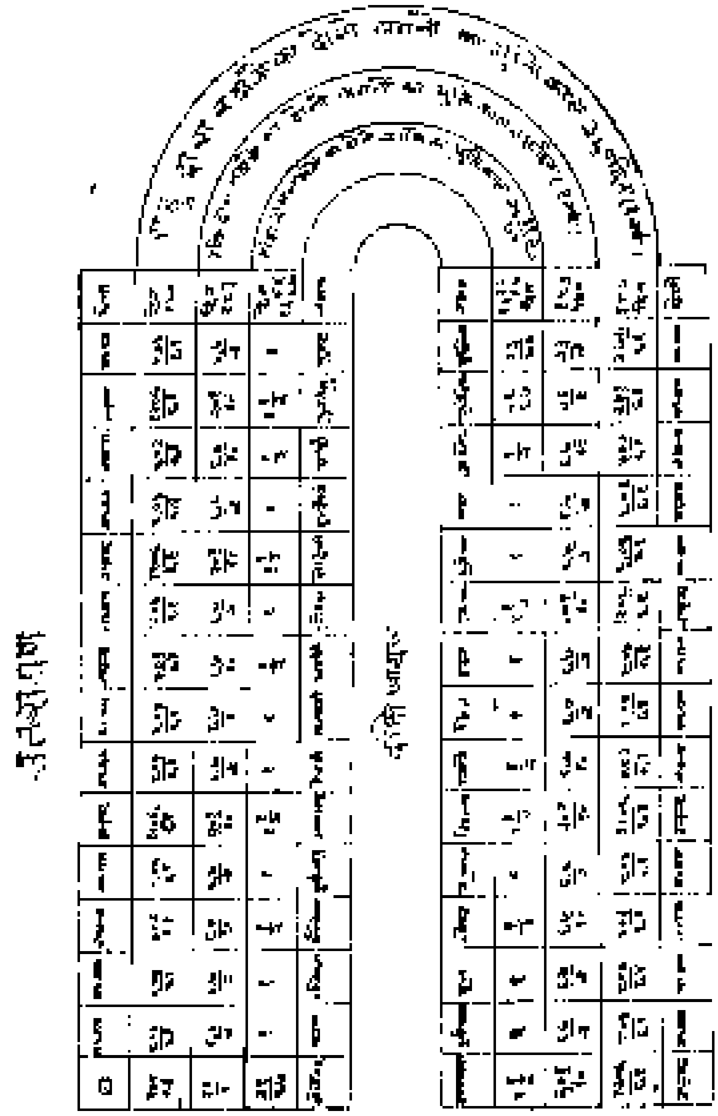

अथाधिकमासप्रकारप्रतिपादनार्थमाह—

इगिमासे दिणवड्ढी वस्से बारह दुवस्सगे सदले ।
अहिओ मासो पंचयवासप्पजुगे दुमासहिया ॥ ४१० ॥

एकस्मिन् मासे दिनवृद्धिः वर्षे द्वादश द्विवर्षके सदले ।
अधिको मासः पञ्चवर्षात्मकयुगे द्विमासौ अधिकौ ॥ ४१० ॥

इगिमासे । एकस्मिन्मासे दिनैकवृद्धिः एकस्मिन् वर्षे द्वादशदिनवृद्धिः दलसहिते द्विवर्षे एकमासोऽधिकः पञ्चवर्षात्मके युगे द्वौ मासौ अधिकौ एक १ वर्षस्य द्वादश १२ दिनवृद्धौ सत्यां सदलद्विवर्षस्य $\frac{5}{2}$ कियन्ति दिनानि वर्द्धन्ते इति सम्पात्यापवर्तिते लब्धदिनानि ३०। एवं युगेऽपि द्रष्टव्यम् ॥ ४१० ॥

अधिक मास का प्रतिपादन करने के लिये सूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—एक माह में एक दिन (३० मुहूर्त) की वृद्धि होती है, अतः बारह मास में १२ दिन की, अढ़ाई वर्ष में १ मास की और पांच वर्षों का समुदाय है स्वरूप जिसका ऐसे एक युग में दो माह की वृद्धि होती है ॥ ४१० ॥

विशेषार्थ :—सूर्य गमन की १८४ गलियाँ हैं। एक गली से दूसरी गली दो दो योजन (८००० मील) की दूरी पर हैं। एक गली से दूसरी गली में प्रवेश करता हुआ सूर्य उस मध्य के दो योजन अन्तराल को पार करता हुआ जाता है। इन पूरे अन्तरालों को पार करने का काल १२ दिन है, क्योंकि उसका एक दिन में एक अन्तराल पार करने का काल एक मुहूर्त (४८ मिनिट) है, अतः एक दिन में एक मुहूर्त की, तीस दिन (एक मास) में ३० मुहूर्त अर्थात् एक दिन की, बारह मास में १२ दिन की, अढ़ाई वर्ष में ३० दिन (एक मास) की और ५ वर्ष स्वरूप एक युग में दो मास की वृद्धि होती है।

प्रकारान्तरे :—एक वर्ष में १२ माह और एक माह में ३० दिन होते हैं। प्रत्येक ६१ वें दिन एक तिथि घटती है अतः एक वर्ष के ३५४ दिन होने चाहिए किन्तु सूर्य के (१८३×२) ३६६ दिन होते हैं अतः एक वर्ष में १२ दिन की, दो वर्ष में २४ दिन की, अढ़ाई वर्ष में ३० दिन की (अढ़ाई वर्ष में १३ मास का वर्ष होता है) और पांच वर्ष में दो मास की वृद्धि होती है।

प्राक्तनगाथार्थमेव गाथाष्टकेन विवृणोति—

आसाढपुण्णमीए जुगणिप्पत्ती दु सावणे किण्हे ।
अभिजिम्हि चंदजोगे पाडिवदिवसम्हि पारंभो ॥४११॥

आषाढपूर्णिमायां युगनिष्पत्तिः तु श्रावणे कृष्णे ।
अभिजिति चन्द्रयोगे प्रतिपद्दिवसे प्रारम्भः ॥ ४११ ॥

आसाढपुण्ण । आषाढमासि पूर्णिमापराह्णे उत्तरायणसमाप्तौ पञ्चवर्षात्मकयुग-निष्पत्तिः तु पुनः श्रावणमासकृष्णपक्षे अभिजिति चन्द्रयोगे प्रतिपद्दिवसे दक्षिणायनप्रारम्भः स्यात् ॥ ४११ ॥

पूर्वोक्त गाथार्थ का ही आठ गाथाओं द्वारा वर्णन करते हैं—

गाथार्थ :—आषाढ़ मास की पूर्णिमा के दिन पांच वर्ष स्वरूप युग की समाप्ति होती है,

श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन चन्द्र का अभिजित् नक्षत्र के साथ योग होने पर युग का प्रारम्भ होता है ।। ४११ ।।

विशेषार्थ :— आषाढ़ मास की पूर्णिमा के अपराह्न में उत्तरायण की समाप्ति पर पञ्चवर्षात्मक युग की सम्पूर्णता होती है तथा श्रावण कृष्णा प्रतिपदा के दिन चन्द्रमा का अभिजित् नक्षत्र के साथ योग होने पर दक्षिणायन के प्रारम्भ के साथ पञ्चवर्षात्मक युग का प्रारम्भ होता है।

अथ कस्यां वीथ्यां कस्यायनस्य प्रारम्भ इति चेत्—

पढमंतिमवीहीदो दक्खिणउत्तरदिगयणपारंभो ।
आउट्टी एगादी दुगुत्तरा दक्खिणाउट्टी ।। ४१२ ।।

प्रथमान्तिमवीथीतः दक्षिणोत्तरदिगयनप्रारम्भः ।
आवृत्तिः एकादि द्विकोत्तरा दक्षिणावृत्तिः ।। ४१२ ।।

पढमंतिम । प्रथमान्तिमवीथीतो यथासंख्यं दक्षिणोत्तरा दिक् अयनप्रारम्भः स एव दक्षिणायनस्योत्तरायणस्य च प्रथमा आवृत्तिः स्यात् । तत्र एकादिद्व्युत्तरा दक्षिणावृत्तिः स्यात् ।। ४१२ ।।

किस वीथी में किस अयन का प्रारम्भ होता है ? उसे कहते हैं—

गाथार्थ :— प्रथम और अन्तिम वीथी से ही क्रमानुसार दक्षिण दिशा और उत्तर दिशा के अयन का प्रारम्भ होता है। इसे ही दक्षिणायन उत्तरायण की प्रथम आवृत्ति कहते हैं। दक्षिणावृत्ति एक को आदि लेकर दो दो की वृद्धि प्रमाण (१, ३, ५, ७ आदि) होती है ।। ४१२ ।।

विशेषार्थ :— सूर्यभ्रमण की १८४ गलियाँ हैं। इनमें से जब सूर्य प्रथम वीथी में स्थित होता है तब दक्षिणायन का और जब अन्तिम वीथी में स्थित होता है, तब उत्तरायण का प्रारम्भ होता है। इसीको दक्षिणायन उत्तरायण की प्रथम आवृत्ति कहते हैं। दक्षिण आवृत्ति एक को आदि लेकर दो से अधिक (१, ३, ५, ७) होती जाती है।

उत्तरायणावृत्तिः कथमिति चेत्—

उत्तरगा य दुगादी दुचया उभयत्थ पंचयं गच्छो ।
बिदिआउट्टी दु हवे तेरसि किण्हेसु मियसीसे ।। ४१३ ।।

उत्तरगा च द्व्यादिः द्विचया उभयत्र पञ्चकं गच्छः ।
द्वितीयावृत्तिः तु भवेत् त्रयोदश्यां कृष्णेषु मृगशीर्षायाम् ।। ४१३ ।।

उत्तरगा । उत्तरगावृत्तिः द्वयादिः द्विचया स्यात् उभयत्र पञ्चकं गच्छः द्वितीयावृत्तिस्तु भवेत् । कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मृगशीर्षायां ॥ ४१३ ॥

उत्तरायण की आवृत्ति कैसी है ? उसे कहते हैं—

गाथार्थ :—उत्तरावृत्ति भी दो को आदि लेकर दो से अधिक होती जाती है। दोनों अयनों में गच्छ का प्रमाण पाँच पाँच ही है। श्रावण कृष्णा त्रयोदशी को मृगशीर्षा नक्षत्र में द्वितीय आवृत्ति होती है ॥ ४१३ ॥

विशेषार्थ :—पूर्व अयन की समाप्ति और नवीन अयन के प्रारम्भ को आवृत्ति कहते हैं। ये आवृत्तियाँ पञ्चवर्षात्मक एक युग में दस बार होती हैं। इनमें १, ३, ५, ७ और ९ वीं आवृत्ति तो दक्षिणायन सम्बन्धी है तथा २, ४, ६, ८ और १० वीं आवृत्ति उत्तरायण सम्बन्धी है।

उत्तरायण की समाप्ति के बाद जब दक्षिणायन सम्बन्धी आवृत्ति प्रारम्भ होती है तब श्रावण मास से ही होती है। प्रथम आवृत्ति श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से हुई थी। दूसरी आवृत्ति श्रावण कृष्णा त्रयोदशी को मृगशीर्षा नक्षत्र में कही गई है।

तृतीयाद्यावृत्तिः कदेति चेत्—

सुक्कदसमीविसाहे तदिया सत्तमिगकिण्हरेवदिए ।
तुरिया दु पंचमी पुण सुक्कचउत्थीए पुव्वफग्गुणिये ॥४१४॥

शुक्लदशमीविशाखे तृतीया सप्तमीकृष्णरेवत्याम् ।
तुरीया तु पञ्चमी पुनः शुक्लचतुर्थ्यां पूर्वफाल्गुन्याम् ॥ ४१४ ॥

सुक्कदसमी । शुक्लपक्षे दशम्यां विशाखायां तृतीयावृत्तिः स्यात् । कृष्णपक्षे सप्तम्यां रेवत्यां तुर्यावृत्तिस्तु स्यात् । शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तिथौ पूर्वफाल्गुन्यां नक्षत्रे पुनः पञ्चमी आवृत्तिः स्यात् ॥ ४१४ ॥

तीसरी आदि आवृत्तियाँ कब होती हैं ? ऐसा पूछने पर कहते हैं—

गाथार्थ :—इसी मास के शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि में विशाखानक्षत्र का योग होने पर तीसरी आवृत्ति होती है तथा श्रावण कृष्णा सप्तमी को रेवती नक्षत्र का योग होने पर चौथी और श्रावण शुक्ला चतुर्थी को पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में पाँचवी आवृत्ति होती है ॥ ४१४ ॥

विशेषार्थ :—गाथार्थ की भाँति ही है।

एतावता किं स्यादिति चेत्—

दक्खिणअयणे पंचसु सावणमासेसु पंचवरिसेसु ।
एदाओ भणिदाओ पंचणियट्टीउ सूरस्स ॥ ४१५ ॥

दक्षिणायने पञ्चसु श्रावणमासेषु पञ्चवर्षेषु ।
एताः भणिताः पञ्चनिवृत्तयः सूर्यस्य ॥ ४१५ ॥

दक्खिणअयणे । दक्षिणायने पञ्चसु श्रावणमासेषु पञ्चवर्षेषु एताः पञ्चनिवृत्तयः सूर्यस्य भणिताः ॥ ४१५ ॥

इनसे क्या होता है ? उसे कहते हैं—

गाथार्थ :—[इस प्रकार] पाँच वर्षों के भीतर पाँच श्रावण मासों में दक्षिणायन सम्बन्धी सूर्य की पाँच आवृत्तियाँ कही गई हैं ॥ ४१५ ॥

विशेषार्थ :—पाँच वर्षों तक प्रत्येक श्रावणमास में दक्षिणायन सम्बन्धी एक आवृत्ति होती है इस प्रकार पाँच वर्षों में पाँच आवृत्तियाँ होती हैं ।

उत्तरावृत्तिः कथमिति चेत्—

माघे सत्तमि किण्हे हत्थे विणिवित्तिमेदि दक्खिणदो ।
विदिया सदभिससुक्के चोत्थीए होदि तदिया दु ॥ ४१६ ॥

पडवदि किण्हे पुस्से चोत्थी मूले य किण्हतेरसिए ।
कित्तियरिक्खे सुक्के दसमीए पंचमी होदि ॥ ४१७ ॥

माघे सप्तम्यां कृष्णे हस्ते विनिवृत्तिं एति दक्षिणतः ।
द्वितीया शतभिषि शुक्ले चतुर्थ्यां भवति तृतीया तु ॥ ४१६ ॥

प्रतिपदि कृष्णे पुष्ये चतुर्थी मूले च कृष्णत्रयोदश्याम् ।
कृत्तिकाऋक्षे शुक्ले दशम्यां पञ्चमी भवति ॥ ४१७ ॥

माघे सत्तमि । माघमासे सप्तम्यां तिथौ कृष्णपक्षे हस्तनक्षत्रे विनिवृत्तिमेति दक्षिणायनतः द्वितीयावृत्तिः शतभिषग्नक्षत्रे शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तिथौ भवति तृतीया त्वावृत्तिः ॥ ४१६ ॥

पडवदि । कृष्णपक्षे प्रतिपदि तिथौ पुष्यनक्षत्रे स्यात्, चतुर्थ्यावृत्तिः कृष्णत्रयोदश्यां मूलनक्षत्रे स्यात्, शुक्लपक्षे दशम्यां कृत्तिकानक्षत्रे पञ्चमी आवृत्तिर्भवति ॥ ४१७ ॥

उत्तरायण में आवृत्तियाँ कैसे होती हैं ? उन्हें कहते हैं—

गाथार्थ :—माघ कृष्णा सप्तमी को हस्तनक्षत्र के योग में सूर्य दक्षिणायन को छोड़ कर उत्तरायण में आता है, यह प्रथम आवृत्ति है। माघ शुक्ला चतुर्थी को शतभिषा नक्षत्र के योग में दूसरी आवृत्ति होती है, तथा तीसरी आवृत्ति माघ कृष्णा प्रतिपदा को पुष्य नक्षत्र के रहने पर होती है। चौथी आवृत्ति माघकृष्णात्रयोदशी को मूल नक्षत्र में, और पाँचवीं आवृत्ति माघ शुक्ला दशमी को कृत्तिका नक्षत्र के योग में होती है ॥ ४१६, ४१७ ॥

विशेषार्थ :—

दक्षिणायन — सूर्य					उत्तरायण — सूर्य				
आवृत्ति क्रम	वर्ष	मास	तिथि	नक्षत्र	आवृत्ति क्रम	वर्ष	मास	तिथि	नक्षत्र
१ ली आवृत्ति	प्रथम वर्ष	श्रावण कृष्णा	प्रतिपदा	अभिजित्	२ री	प्रथम	माघ कृष्णा	सप्तमी	हस्त
३ री "	द्वितीय	श्रा० कृ०	त्रयोदशी	मृग०	४ थी	द्वितीय	मा० शु०	चतुर्थी	शतभिषा
५ वीं "	तृतीय	श्रा० शु०	दशमी	विशाखा	६ वीं	तृतीय	मा० कृ०	प्रतिपदा	पुष्य
७ वीं "	चतुर्थ	श्रा० कृ०	सप्तमी	रेवती	८ वीं	चतुर्थ	मा० कृ०	त्रयोदशी	मूल
९ वीं "	पञ्चम	श्रा० शु०	चतुर्थी	पूर्वा-फाल्गुनी	१० वीं	पञ्चम	मा० शु०	दशमी	कृत्तिका

उपर्युक्त पाँच वर्षों में युग समाप्त हो जाता है, तथा छठवें वर्ष से पूर्वोक्त ही व्यवस्था पुनः प्रारम्भ हो जाती है। हमेशा दक्षिणायन का प्रारम्भ प्रथम वीथी से और उत्तरायण का प्रारम्भ अन्तिम वीथी से होता है।

उक्तार्थं सङ्कलयति—

ताओ उत्तरअयणे पंचसु वासेसु माघमासेसु।
आउट्टीओ भणिदा सूरस्सिह पुव्वसूरीहिं ॥ ४१८ ॥

ताः उत्तरायणे पञ्चसु वर्षेषु माघमासेषु।
आवृत्तयः भणिताः सूर्यस्येह पूर्वसूरिभिः ॥ ४१८ ॥

माघो वत्तर। ता एता आवृत्तयः उत्तरायणे पञ्चसु वर्षेषु माघमासेषु पूर्वसूरिभिरिह सूर्यस्य भणिताः। उक्तगाथानां रचनोद्धारविधानमुच्यते। पञ्चवर्षात्मकयुगप्रारम्भस्य दक्षिणायनस्य पञ्चसु श्रावणमासेषु उक्ताः एकत्रिंशत्तिथीस्तत्र तत्र संस्थाप्य प्रथमश्रावणे कृष्ण १५ शु १५ कृ १ द्वि = श्रा = कृष्ण = ३ शु १५ कृ १३ तृ = श्रा = शु ६ कृ १५ शु १० । च = श्रा = कृ = ६ शु १५ कृ ७ । पं० = श्रा = शु = १२ कृ = १५ शु = ४ उत्तरायणस्य पञ्चसु माघमासेषु एकत्रिंशत्तिथीः उक्तक्रमेण तत्र तत्र संस्थाप्य प्रथममाघमासे कृ = ६ शु १५ कृ ७ द्वि = मा = शु = १२ कृ = १५ शु = ४ । तृ = मा = कृ १५ शु = १५ कृ १ । च = मा = कृ ३ शु = १५ कृ = १३ । पं० = मा = शु = ६ कृ = १५ शु = १० दक्षिणायने मध्ये भाद्रपदादिमासेषु उत्तरायणे मध्यगतफाल्गुनादिमासेषु चाद्यावेकहीनक्रमेण १४ । १३ । १२ । ११ अन्ते एकोत्तरक्रमेण २ । ३ । ४ । ५ एकत्रिंशत्तिथिषु स्थापितासु तस्मिन्मासे तत्र तत्रायने चाधिकदिनान्यागच्छन्ति। एवं क्रमेण पञ्चवर्षात्मके युगे द्वावधिकमासौ भवतः ॥ ४१८ ॥

उपर्युक्त गाथाओं में कहे हुए अर्थों का सङ्कलन (जोड़) करते हैं—

गाथार्थ :—जो आवृत्तियाँ उत्तरायण में पाँच वर्षों के पाँच माघ मासों में होती हैं वे पूर्वाचार्यों के द्वारा सूर्य की कही गई हैं ॥ ४१८ ॥

विशेषार्थ :—वे सब आवृत्तियाँ उत्तरायण में पाँच वर्षों के माघ मासों में पूर्व आचार्यों के द्वारा सूर्य की कही गई हैं उन्हीं गाथाओं की रचना के उद्धार का विधान कहते हैं—

पाँच वर्षों के समुदाय को युग कहते हैं। प्रथम युग के प्रारम्भ से युग की समाप्ति पर्यन्त तिथि आदि की जिस प्रकार की रचना है, वैसी ही रचना दूसरे तीसरे आदि युगों में भी है। प्रत्येक युग में दक्षिणायन का प्रारम्भ पाँचों श्रावण मासों में, और उत्तरायण का प्रारम्भ पाँचों माघ मासों में ही होता है, तथा दक्षिणायन के बीच में भाद्र, आसोज, कार्तिक आदि मास आते हैं, और उत्तरायण के बीच में फाल्गुन, चैत्र आदि मास आते हैं। इन प्रत्येक मासों की ३१, ३१ तिथियाँ स्थापित करना चाहिये, क्योंकि वैसे तो एक मास में ३० ही दिन होते हैं, किन्तु "इगिमासे दिणवड्ढी" गाथा सूत्र ४१० के अनुसार एक दिन में एक मुहूर्त की वृद्धि होती है, अतः एक माह में एक दिन की वृद्धि हो जाती है। इसलिये प्रत्येक माह में ३१ दिन की स्थापना की गई है। एक मास में एक दिन की वृद्धि होने से बारह मासों में १२ दिनों की और पाँच वर्षों में ६० दिन अर्थात् दो माह की वृद्धि होती है। इसका चित्रण निम्न प्रकार है—

[कृपया चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

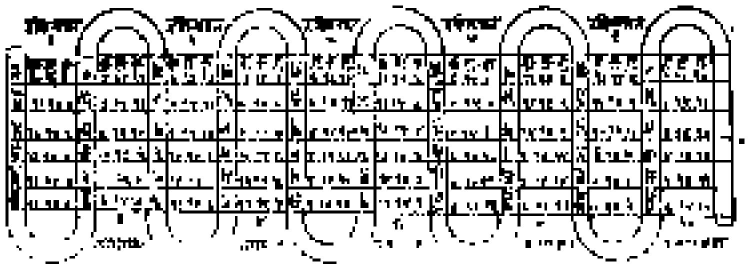

अथ दक्षिणोत्तरायणप्रारम्भेषु नक्षत्रानयनप्रकारमाह—

रूऊणाउगुणं इगिसीदसदं तु सहिद इगिवीसं ।
तिघणहिदं अवसेसा अस्सिणिपहुदीणि रिक्खाणि ॥ ४१९ ॥

रूपोनावृत्तिगुणं एकाशीतिशतं तु सहितं एकविंशत्या ।
त्रिघनहृते अवशेषाणि अश्विनीप्रभृतीनि ऋक्षाणि ॥ ४१९ ॥

रूऊणा। रूप १ न्यूना० वृत्त्या गुणितं यदेकाशीत्युत्तरशतं १८१ एकस्मिन्नेकहीने शून्यमवशिष्यत इति तेन गुणितः सन्निति शून्यमेव भवति ० । एकविंशत्या सहितं २१ एतस्मिन् त्रिघनेन २७ हृते सति अवशेषं अश्विनीप्रभृतितः गुण्यमानं दक्षिणायनप्रारम्भे श्रावणमासे नक्षत्रं भवति। एवं दक्षिणायने इतरचतुर्षु श्रावणेषु उत्तरायणे पञ्चसु माघेषु तत्र तत्र नक्षत्राण्यानेतव्यानि ॥ ४१९ ॥

दक्षिणायन तथा उत्तरायण के प्रारम्भ में नक्षत्र प्राप्त करने का विधान :—

गाथार्थ :—एक सौ इक्यासी को एक कम विवक्षित आवृत्ति से गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें इक्कीस मिला कर तीन के घन (२७) का भाग देने पर जो शेष रहे, अश्विनी को आदि लेकर उतने ही नम्बर का नक्षत्र होता है ॥ ४१९ ॥

विशेषार्थ :—जैसे—मान लीजिए प्रथम आवृत्ति विवक्षित है, तो एक में से एक घटाने पर शून्य शेष रहा। इसको १८१ से गुणित करने पर शून्य ही प्राप्त होगा। इस शून्य गुणनफल में २१ मिलाने पर योगफल २१ प्राप्त हुआ। इसमें तीन के घन (३×३×३)=२७ का भाग देने पर वह जाता नहीं है, तब २१ ही शेष रहे। यथा—(१—१=०×१८१=०+२१=२१÷२७=२१ शेष)

इस प्रकार प्रथम आवृत्ति में अश्विनी से लेकर २१ वाँ नक्षत्र उत्तराषाढ़ा समझना चाहिए, किन्तु यहाँ उत्तराषाढ़ा के स्थान पर अभिजित् नक्षत्र ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यद्यपि नक्षत्र अट्ठाईस हैं, तथापि जहाँ नक्षत्रों की गणना आदि करते हैं, वहाँ २७ का ही ग्रहण किया जाता है, अभिजित् का नहीं क्योंकि अभिजित् का साधन सूक्ष्म है। यहाँ प्रथम आवृत्ति में स्थूल रूप से

उत्तराषाढ़ा प्राप्त होता है, किन्तु सूक्ष्मता से अभिजित् नक्षत्र ही बतलाया गया है। आगे कहीं इसका ग्रहण नहीं करना। इस प्रकार दक्षिणायन के प्रारम्भ में प्रथम श्रावण मास में नक्षत्र प्राप्त करने का विधान किया।

द्वितीय उदाहरण :—दूसरी आवृत्ति विवक्षित है। इसमें से एक घटा देने पर एक शेष रहा। इसको १८१ से गुणा करने पर १८१ ही रहे। इस १८१ गुणन फल में २१ जोड़ने से २०२ हुए। इनको तीन के घन स्वरूप २७ से भाजित करने पर अवशेष तेरह (१३) रहते हैं। यथा :—(२—१)= १×१८१=१८१+२१=२०२÷२७=१३ अवशेष रहे। इस प्रकार द्वितीय आवृत्ति में अश्विनी से लेकर १३ वाँ हस्त नक्षत्र है, अतः उत्तरायण के प्रारम्भ में प्रथम माघ मास में हस्त नक्षत्र प्राप्त होता है। इसी प्रकार ३ री, ५ वीं, ७ वीं और ९ वीं आवृत्तियों में दक्षिणायन के प्रारम्भक श्रावण मास में और ४ थी, ६ वीं, ८ वीं एवं १० वीं आवृत्तियों में उत्तरायण के प्रारम्भक माघ मास में नक्षत्रों का साधन करना चाहिए।

अथ दक्षिणोत्तरायणानां पर्वतिथ्यानयनसूत्रमाह—

वेगाउट्टिगुणं तेसीदिसदं सहिद तिगुणगुणरूवे ।
पण्णरभजिदे पव्वा सेसा तिहिमाणमयणस्स ॥ ४२० ॥

व्येकावृत्तिगुणं त्र्यशीतिशतं सहितं त्रिगुणगुणरूपेण ।
पञ्चदशभक्ते पर्वाणि शेषं तिथिमानं अयनस्य ॥ ४२० ॥

वेगाउट्टी। विगतैकावृत्त्या गुणितं त्र्यशीतिशतं त्रिगुणगुणकारेण प्रथमे शून्येन द्वितीयादौ त्रिगुणितविगतैकावृत्त्या सहितमित्यर्थः रूपेण च सहितं यस्मिन् पञ्चदशभिर्भक्ते सति लब्धं पर्वाणि। अत्र भागाभावात्पर्वाभावः अवशेषं १=तिथिप्रमाणं दक्षिणोत्तरायणस्य ॥ ४२० ॥

दक्षिणायण उत्तरायण के पर्व और तिथि प्राप्त करने के लिए सूत्र कहते हैं।—

गाथार्थ :—एक सौ तेरासी को एक कम विवक्षित आवृत्तियों से गुणित कर पश्चात् उसमें तिगुणा गुणकार और एक अङ्क मिलाकर पन्द्रह का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो वह वर्तमान अयन के पर्व तथा जो अवशेष रहे वह तिथियों का प्रमाण होता है ॥ ४२० ॥

विशेषार्थ :—जैसे यदि प्रथम आवृत्ति की विवक्षा है, तो एक में से एक घटाने पर शून्य शेष रहता है। (१—१=०) इससे १८३ को गुणित करने पर शून्य ही प्राप्त होगा— (१८३×०=०)। इसमें तिगुणा गुणकार (०×३=०) जोड़ने से भी शून्य ही प्राप्त होगा। इसमें एक अङ्क मिलाने पर (०+१)=१ प्राप्त हुआ इसमें १५ का भाग जाता नहीं, इसलिए पर्व का अभाव रहा। अवशेष एक ही है, अतः कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा की प्राप्ति हुई। पक्ष के पूर्ण होने पर जो

पूर्णिमा और अमावस्या होती है, उसका नाम पर्व है। यह प्रथम आवृत्ति दक्षिणायन के प्रारम्भक प्रथम श्रावण मास में कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा के समय होती है। यहाँ युग का प्रारम्भ ही है, अतः पर्व का अभाव है।

द्वितीय उदाहरण :—यदि द्वितीय आवृत्ति की विवक्षा है तो दो में से एक घटाने पर (२—१)=१ शेष रहता है। उसको १८३ से गुणित करने पर (१×१८३)=१८३ ही प्राप्त होते हैं। गुणाकार १ था, इसका तिगुणा ३ मिलाने पर (१८३+३)=१८६ हुए। उसमें एक और जोड़कर १५ का भाग देने पर $\frac{१८६+१}{१५}$=१२ लब्ध और ७ अवशेष की प्राप्ति हुई। अर्थात् द्वितीय आवृत्ति में १२ पर्व और सप्तमी तिथि प्राप्त होती है। यह द्वितीय आवृत्ति उत्तरायण का प्रारम्भ हो जाने पर प्रथम माघ मास में कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि के समय होती है, तब तक युग के प्रारम्भ से १२ पर्व व्यतीत हो जाते हैं।

तृतीय उदाहरण :—यहाँ तृतीय आवृत्ति की विवक्षा है, अतः ३—१ = २। १८३ × २= ३६६ + (२×३)=३७२। $\frac{३७२+१}{१५}$=२४ लब्ध और १३ शेष।

इस प्रकार यह तृतीय आवृत्ति दक्षिणायन के प्रारम्भक द्वितीय श्रावण मास में कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि के समय होती है, तब तक युग के प्रारम्भ से २४ पर्व व्यतीत हो जाते हैं। इसी क्रम से अन्य आवृत्तियों में भी पर्व और तिथि की साधना कर लेना चाहिए।

अथ समानदिनरात्रिलक्षणे विषुपे पर्वतिथिनक्षत्राणि गाथाषट्केन दशस्वयनेष्वाह—

छम्मासद्धगयाणं जोइसयाणं समाणदिणरत्ती।
तं इसुपं पढमं छसु पव्वसु तीदेसु तदियरोहिणिए ॥ ४२१ ॥

षण्मासार्धंगतानां ज्योतिष्काणां समानदिनरात्री।
तत् विषुपं प्रथमं षट्सु पर्वसु अतीतेषु तृतीयारोहिण्याम् ॥४२१॥

छम्मासद्ध। अयनलक्षणषण्मासार्धंगतानां ज्योतिष्काणां समानदिनरात्री भवतः। तदेव विषुपमित्युच्यते। तत्र प्रथमं विषुपं षट्सु पर्वस्वतीतेषु तृतीयायां तिथौ रोहिणीनक्षत्रे भवति ॥ ४२१ ॥

समान दिन रात्रि है लक्षण जिसका ऐसे विषुप में पर्व, तिथि और नक्षत्रों को छह गाथाओं द्वारा युग के दश अयनों में कहते हैं :—

गाथार्थ :—ज्योतिषी देवों के छह मास (एक अयन) के अर्ध भाग को प्राप्त होने पर जिस काल में दिन और रात्रि का प्रमाण बराबर होता है, उस काल को विषुप कहते हैं। यह प्रथम विषुप ६ पर्वों के बीत जाने पर तृतीया तिथि में रोहिणी नक्षत्र के समय होता है ॥ ४२१ ॥

विशेषार्थ :—एक अयन छह मास का होता है, और प्रत्येक अयन का अर्धभाग व्यतीत होने पर दिन और रात्रि का प्रमाण बराबर होता है। यह दिन रात्रि के प्रमाण का बराबर होना ही विषुप है। अर्थात् विषुप का लक्षण है। पाँच विषुप दक्षिणायन के अर्धकाल में और पाँच विषुप उत्तरायण के अर्धकाल में इस प्रकार एक युग में कुल दश विषुप होते हैं। युग के प्रारम्भ में दक्षिणायन सम्बन्धी प्रथम विषुप आरम्भ के ६ पर्व (३ माह) व्यतीत हो जाने पर तृतीया तिथि में चन्द्रमा द्वारा रोहिणी नक्षत्र के भुक्तिकाल में होता है।

बिगुण णव पव्वऽतीदे णवमीए बिदियगं धणिट्ठाए।
इगितीसगदे तदियं सादीये पण्णरसमम्हि ॥ ४२२ ॥
तेदालगदे तुरियं छट्ठिपुणव्वसुगयं तु पंचमयं।
पणवण्णपव्वतीदे बारसिए उत्तराभद्दे ॥ ४२३ ॥
अडसट्ठिगदे तदिए मित्ते छट्ठं असीदिपव्वगदे।
णवमिमघाए सत्तममिह तेणउदिगदे दु अट्ठमयं ॥४२४॥
अस्सिणि पुण्णो पव्वे णवमं पुण पंचजुदसए पव्वे।
तीते छट्ठितिहीए णक्खत्ते उत्तरासाढे ॥ ४२५ ॥
चरिमं दसमं विसुपं सत्तरसुत्तरसयसु पव्वेसु।
तीदेसु बारसीए जादि उत्तरगफग्गुणिए ॥ ४२६ ॥

द्विगुणनवपर्वातीतेषु नवम्यां द्वितीयकं धनिष्ठायाम्।
एकत्रिंशद्गते तृतीयं स्वातौ पञ्चदश्याम् ॥ ४२२ ॥
त्रिचत्वारिंशद्गतेषु तुरीयं षष्ठीपुनर्वसुगतं तु पञ्चमम्।
पञ्चपञ्चाशत्पर्वातीतेषु द्वादश्यां उत्तराभाद्रे ॥ ४२३ ॥
अष्टषष्टिगतेषु तृतीयायां मैत्रे षष्ठं अशीतिपर्वगतेषु।
नवमीमघायां सप्तमं इह त्रिनवतिगतेषु तु अष्टमम् ॥ ४२४ ॥
अश्विनी पूर्णे पर्वणि नवमं पुनः पञ्चयुतशतेषु पर्वसु।
अतीतेषु षष्ठीतिथौ नक्षत्रे उत्तराषाढे ॥ ४२५ ॥
चरमं दशमं विषुपं सप्तदशोत्तरशतेषु पर्वसु।
अतीतेषु द्वादश्यां जायते उत्तराफाल्गुन्याम् ॥ ४२६ ॥

बिगुण। द्विगुणनव १८ पर्वस्वतीतेषु नवम्यां द्वितीयं विषुपं धनिष्ठायां स्यात्, एकत्रिंशत्पर्व-स्वतीतेषु तृतीयं विषुपं स्वातिनक्षत्रे पञ्चदशतिथौ स्यात्। कृष्णपक्षस्थावसानामावास्याया-मेवेत्यर्थः ॥ ४२२ ॥

तेदालणदे। त्रिचत्वारिंशत् ४३ पर्वस्वतीतेषु तुर्यं विषुपं षष्ठ्यां तिथौ पुनर्वसुनक्षत्रगतं स्यात्। पंचमं विषुपं पञ्चोत्तरपञ्चाशत् ५५ पर्वस्वतीतेषु द्वादश्यामुत्तराभाद्र पदे नक्षत्रे स्यात् ॥ ४२३ ॥

अडसट्ठि। अष्टषष्टि ६८ पर्वसु गतेषु तृतीयायां तिथौ मैत्रे अनुराधायां षष्ठं विषुपं स्यात्। अशीति ८० पर्वसु गतेषु नवम्यां तिथौ मघानक्षत्रे सप्तमं विषुपं स्यात्। इह त्रिनवति ९३ पर्वसु गतेषु अष्टमम् विषुपम् ॥ ४२४ ॥

अस्सिणि। अश्विनीनक्षत्रे अमावास्यायां पर्वणि स्यात् नवमं विषुपं पुनः पञ्चयुतशतपर्वस्वतीतेषु षष्ठ्यां तिथौ उत्तराषाढे नक्षत्रे स्यात् ॥ ४२५ ॥

चरिमं दशमं। चरमं दशमं विषुपं सप्तदशोत्तर १७ पर्वस्वतीतेषु द्वादश्यां तिथौ उत्तरफाल्गुन्यां नक्षत्रे जायते ॥ ४२६ ॥

गाथार्थ :— अठारह पर्वों के बीतने पर नवमी तिथि को धनिष्ठा नक्षत्र में द्वितीय विषुप होता है। इकतीस पर्वों के बीत जाने पर पञ्चदशी [अमावस्या] तिथि को स्वाति नक्षत्र में तृतीय, तेतालीस पर्वों के बीतने पर षष्ठी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र में चतुर्थ, पचपन पर्वों के बीतने पर द्वादशी के दिन उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में पञ्चम, अड़सठ पर्वों के बीतने पर तृतीया तिथि को मैत्र (अनुराधा) नक्षत्र में षष्ठ, अस्सी पर्वों के बीतने पर नवमी तिथि को मघा नक्षत्र में सप्तम, तेरानवे पर्वों के बीत जाने पर पूर्ण पर्व (अमावस्या) को अश्विनी नक्षत्र में अष्टम, एक सौ पाँच पर्वों के बीत जाने पर षष्ठी तिथि को उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में ९ वाँ और एक सौ सत्तरह पर्वों के बीत जाने पर द्वादशी तिथि को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में दसवाँ विषुप होता है ॥ ४२२-४२६ ॥

विशेषार्थ :— उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के प्रथम समय से लेकर अन्तिम समय तक पञ्चवर्षात्मक युगों में सूर्यों के दक्षिण व उत्तर अयन होते रहते हैं, तथा प्रत्येक अयन का अर्धभाग व्यतीत होने पर विषुप होता है। ये विषुप कितने, कब और कौन कौन मास एवं नक्षत्रों में होते हैं। उसका विशेष विवरण :—

[कृपया चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिए]

पर्व संख्या	विषुप संख्या	गतपर्व संख्या	मास	पक्ष	तिथि	नक्षत्र
प्रथम पर्व	१ ला	६ पर्वोंके व्यतीत होनेपर	कार्तिक	कृष्ण पक्ष	तृतीया	रोहणी के योग में
	२ रा	१८ " " " "	वैशाख	" "	नवमी	धनिष्ठा " " "
द्वितीय "	३ रा	३१ " " " "	कार्तिक	" "	अमावस्या	स्वाति " " "
	४ था	४३ " " " "	वैशाख	शुक्ल "	षष्ठी	पुनर्वसु " " "
तृतीय "	५ वाँ	५५ " " " "	कार्तिक	" "	द्वादशी	उत्तराभाद्रपदके यो में
	६ वाँ	६८ " " " "	वैशाख	कृष्ण "	तृतीया	अनुराधा " " "
चतुर्थ "	७ वाँ	८० " " " "	कार्तिक	" "	नवमी	मघा " " "
	८ वाँ	९३ " " " "	वैशाख	" "	अमावस्या	अश्विनी " " "
पञ्चम "	९ वाँ	१०५ " " " "	कार्तिक	शुक्ल "	षष्ठी	उत्तराषाढ़ाके योगमें
	१० वाँ	११७ " " " "	वैशाख	" "	द्वादशी	उत्तराफाल्गुनी " "

अथ विषुपे पर्वतिथ्यानयनसूत्रमाह—

विगुणे सगिट्ठविसुपे रूऊणे छग्गुणे हवे पव्वं ।
तप्पव्वदलं तु तिथी पवट्टमाणस्स विसुवस्स ॥ ४२७ ॥

द्विगुणे स्वकेष्टविषुपे रूपोने षड्गुणे भवेत् पर्व ।
तत्पर्वदलं तु तिथिः प्रवर्तमानस्य विषुपस्य ॥ ४२७ ॥

विगुणे । द्विगुणे स्वकीयेष्टविषुपे रूपोने षड्भिर्गुणिते सति पर्वसंख्या भवेत् । तत्पर्वार्धप्रमाणं तु प्रवर्तमानस्य विषुपस्य तिथिः स्यात् । तस्मिन्पर्वार्धे पञ्चदशभ्यः अधिके सति तैर्भक्त्वा लब्धं पर्वणि मेलयेत् । अवशिष्टं तिथिप्रमाणं स्यात् ॥ ४२७ ॥

विषुप में पर्व और तिथि प्राप्त करने के लिए सूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—दुगुणे विषुप में से एक अङ्क कम करके शेष को छह से गुणित करने पर पर्व का प्रमाण प्राप्त होता है, तथा पर्व के प्रमाण को आधा करने से वर्तमान विषुप की तिथि संख्या प्राप्त होती है। [यदि वह पर्व का आधा भाग १५ से अधिक हो तो उसमें १५ का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे पर्व संख्या में जोड़ कर शेष को तिथि का प्रमाण समझना चाहिये] ॥ ४२७ ॥

विशेषार्थ :— जो विषुप इष्ट हो उसे दूना कर एक अङ्क कम करना, अवशेष में छह का गुणा करने पर पर्व संख्या प्राप्त होती है, तथा उसका आधा तिथिसंख्या का प्रमाण है। जैसे :— प्रथम विषुप इष्ट है। इसे दूना कर एक अङ्क कम करने पर (१×२=२−१)=१ अङ्क प्राप्त हुआ। इसमें ६ का गुणा करने पर (१×६) ६ ही आए और इसे आधा करने पर तीन प्राप्त हुए। यही प्रथम विषुप के बीते हुए पर्वों की संख्या है, और प्रथम विषुप तृतीया को होता है।

द्वितीय :—५ वाँ विषुप इष्ट है। ५×२=१०−१=९×६=५४÷२=२७÷१५=१ लब्ध और १२ अवशेष। ५४+१=५५ पाँचवें विषुप के बीते हुये पर्वों की संख्या और द्वादशी तिथि का प्रमाण प्राप्त हो गया। अन्यत्र भी इसी प्रकार जानना।

अथावृत्तिविषुपयोस्तिथिसंख्यामाह—

वेगपदं छग्गुणं इगितिजुदं आउट्टिदृसुपतिहिसंखा।
विसमतिहीए किण्हो समतिथिमाणो हवे सुक्को ॥ ४२८ ॥

व्येकपदं षड्गुणं एकत्रियुतं आवृत्तिविषुपतिथिसंख्या।
विषमतिथौ कृष्णः समतिथिमानो भवेत् शुक्लः॥ ४२८ ॥

वेगपद। एकहीनमावृत्तिपदं षड्भिर्गुणयित्वा उभयत्र संस्थाप्य तत्रैकस्मिन्नेकयुते सति अपरस्मिन् त्रियुते सति यथासंख्यमावृत्तिविषुपयोस्तिथिसंख्या स्यात्। तयोर्मध्ये विषमतिथौ सत्यां कृष्णपक्षः स्यात्। समतिथिप्रमाणे शुक्लपक्षो भवेत् ॥ ४२८ ॥

आवृत्ति और विषुप में तिथि संख्या लाने का विधान—

गाथार्थ :—एक कम आवृत्ति के पद को छह से गुणित करके उसमें एक अङ्क मिलाने पर आवृत्ति की तिथि संख्या और उसी लब्ध में तीन मिलाने से विषुप की तिथि संख्या का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। इनमें तिथि संख्या के विषम होने पर कृष्ण पक्ष और सम होने पर शुक्ल पक्ष होता है ॥ ४२८ ॥

विशेषार्थ :—जो विवक्षित आवृत्ति हो उसमें एक घटा कर लब्ध को छह से गुणा करके दो जगह स्थापन कर एक स्थान पर एक का अङ्क और दूसरे स्थान पर ३ जोड़ देने से क्रमशः आवृत्ति की तिथि संख्या और विषुप की तिथि संख्या प्राप्त हो जाती है। यदि तिथि संख्या विषम है तो कृष्ण पक्ष और सम है तो शुक्ल पक्ष समझना चाहिए। जैसे :— प्रथम आवृत्ति विवक्षित है, अतः १−१=०×६=०+१=१ तिथि अर्थात् प्रथम आवृत्ति की प्रतिपदा तिथि है। यह तिथि संख्या विषम होने से कृष्ण पक्ष है। अर्थात् प्रथम आवृत्ति कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि को हुई है। १−१=०×६=०+३=३ तिथि संख्या। यह तिथि संख्या विषम होने से कृष्ण पक्ष है। अर्थात् प्रथम विषुप कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि को होगा।

द्वितीय उदाहरण :—१० वीं आवृत्ति विवक्षित है, अतः (१०—१) × ६ + १ = ५५ ÷ १५ (५५ राशि १५ से अधिक है, अतः १५ का भाग दिया) = ३ लब्ध आया १० शेष रहे यही अवशेष १० दशवीं आवृत्ति की दशमी तिथि है। तिथि संख्या सम है, अतः १० वीं आवृत्ति शुक्ल पक्ष की दशवीं तिथि को होगी। इसी प्रकार—(१०—१) × ६ + ३ = ५७ ÷ १५ = (३) १२ अवशेष रहे और सम संख्या है, अतः १० वाँ विषुप शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि को होगा। इसी प्रकार अन्य आवृत्ति एवं विषुपों में तिथि एवं पक्ष का साधन कर लेना चाहिए।

विषुपे नक्षत्राणां सर्वतिथीनां चानयनप्रकारमाह—

> आउट्टिलद्धरिक्खं दहजुद छट्ठट्ठदमगेगूणं ।
> इसुपे रिक्खा पण्णरगुणपव्वाजुदतिही दिवसा ॥ ४२६ ॥

> आवृत्तिलब्धऋक्षं दशयुतं षष्ठाष्टदशमके एकोनं ।
> विषुपे ऋक्षाणि पञ्चदशगुणपर्वयुततिथयः दिवसानि ॥४२६॥

आवट्टि । आवृत्तौ लब्धनक्षत्रं दशयुतं कृत्वा तत्र षष्ठाष्टदशमावृत्तौ एकेनोनं चेत् विषुपे नक्षत्रं स्यात् । पञ्चदशभिर्गुणितानि आवृत्तिविषुपयोः पर्वाणि तत्तत्तिथियुतानि चेत् यथासंख्यमावृत्तिविषुपयोः समस्तदिनानि भवन्ति ॥ ४२६ ॥

विषुप में नक्षत्रों की संख्या और सम्पूर्ण दिन प्राप्त करने का विधान :—

गाथार्थ :—आवृत्ति में जो नक्षत्र प्राप्त हो उसमें दश मिला कर छठवीं, आठवीं और दशवीं आवृत्ति में एक अङ्क कम कर देने पर विषुप का नक्षत्र प्राप्त होता है, तथा आवृत्ति एवं विषुप के पर्वों के प्रमाण को पन्द्रह से गुणित कर लब्ध में अपनी अपनी तिथि का प्रमाण मिला देने पर क्रमशः आवृत्ति और विषुपों के समस्त दिनों का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ॥ ४२६ ॥

विशेषार्थ :—जिस आवृत्ति का जो नक्षत्र प्राप्त हो उसमें दश मिलाने से उसी नम्बर के विषुप का नक्षत्र प्राप्त होता है, तथा छठवीं, आठवीं और दशवीं आवृत्तियों में जो जो नक्षत्र प्राप्त हैं, उनमें एक अंक कम अर्थात् ९ मिलाने से ६ वें, ८ वें और १० वें विषुपों के नक्षत्र क्रमशः प्राप्त होते हैं। आवृत्ति के पर्वों में १५ का गुणा कर उसी आवृत्ति की तिथि संख्या जोड़ने से युग के प्रारम्भ से विवक्षित आवृत्ति तक के समस्त दिनों की संख्या प्राप्त होती है। इसी प्रकार विषुप के पर्वों को १५ से गुणित कर तिथि संख्या जोड़ने से विषुप के समस्त दिनों का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

उदाहरण १ :—प्रथम आवृत्ति का २० वाँ अभिजित् नक्षत्र है। इसमें १० मिलाने से २० + १० = ३० अर्थात् प्रथम विषुप का २ रा रोहणी नक्षत्र प्राप्त हुआ। इसी प्रकार २ री आवृत्ति

का नक्षत्र हस्त ११ वाँ है+१०=२१ हुए, अतः दूसरे विषुप का धनिष्ठा नक्षत्र प्राप्त होता है।

उदाहरण २ :—६ वीं आवृत्ति का पुष्य नक्षत्र ६ वाँ+(१०—१)=१५ वाँ अनुराधा नक्षत्र ६ वें विषुप का नक्षत्र है। इसी प्रकार १० वीं आवृत्ति का कृतिका नक्षत्र १ ला+(१०—१)=१० वाँ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र १० वें विषुप का प्राप्त हुआ।

उदाहरण ३ :—२ री आवृत्ति की पर्व संख्या २४×१५=३६०+१३ तिथि=३७३ दिन हुए। अर्थात् युग के प्रारम्भ से ३७३ वें दिन दूसरी आवृत्ति हुई।

उदाहरण ४ :—सातवें विषुप की पर्व संख्या ८०×१५=१२००+६ तिथि=१२०६ दिन हुए। अर्थात् युग के प्रारम्भ में १२०६ दिन बाद सातवाँ विषुप हुआ है।

विषुपे नक्षत्रानयनं प्रकारान्तरेण गाथाद्वयेनाह—

आउट्टिरिक्खमस्सिणिपहुदीदो गणिय तत्थ अट्ठजुदे।
इसुपेसु होंति रिक्खा इह गणणा किन्तियादीदो ॥ ४३० ॥
आवृत्तिऋक्षं अश्विनीप्रभृतितः गणयित्वा तत्र अष्टयुते।
विषुपेषु भवन्ति ऋक्षाणि इह गणना कृत्तिकादितः ॥ ४३० ॥

आउट्टि। आवृत्तिनक्षत्रमश्विनीप्रभृतितः गणयित्वा तत्र अष्टयुते सति विषुपेषु नक्षत्राणि भवन्ति। इह लब्धे गणनां कृत्तिकादितः कुर्यात् अष्टयुतराशिरधिकश्चेत् ॥ ४३० ॥

विषुप में नक्षत्र प्राप्ति प्रकारान्तर से दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—आवृत्ति के नक्षत्र को अश्विनी नक्षत्र से गिनकर उसमें ८ जोड़ देने पर जो लब्ध प्राप्त हो, उसे कृतिका से गिनना। वही विषुप का नक्षत्र होगा ॥ ४३० ॥

विशेषार्थ :—विवक्षित आवृत्ति के नक्षत्र को अश्विनी नक्षत्र से गिने, जो संख्या प्राप्त हो उसमें ८ मिला कर कृतिका नक्षत्र से गिनने पर विषुप का उसी नम्बर का नक्षत्र प्राप्त होता है। जैसे :—विवक्षित आवृत्ति तीसरी है। इसका मृगशीर्षा नक्षत्र है, जो अश्विनी से गिनने पर ५ वाँ है+८=१३ हुए। कृतिका नक्षत्र से १३ वाँ नक्षत्र स्वाति है, अतः तीसरे विषुप का स्वाति नक्षत्र प्राप्त हो गया। यदि आवृत्ति नक्षत्र के प्रमाण में ८ मिलाने पर लब्धराशि नक्षत्रप्रमाण (२८) से अधिक हो जावे तो क्या करना? उसे आगे गाथा में कहते हैं।

अहियंकादट्ठवीसं छंडेज्जो बिदियपंचमट्ठाणे।
एक्कं णिक्खिव छट्ठे दसमे विय एक्कमवणिज्जो ॥४३१॥
अधिकाङ्कादष्टविंशं त्याज्यः द्वितीयपञ्चमस्थाने।
एकं निक्षिप षष्ठे दशमेपि च एकमपनेयम् ॥ ४३१ ॥

गृहीतं । अधिकाङ्कादष्टाविंशतिस्त्याज्या । द्वितीयपञ्चमावृत्तिस्थाने एकं निक्षिप षष्ठे दशमेऽपि चावृत्तिस्थाने एकमपनेयं ॥ ४३१ ॥

गाथार्थ :— गुणनफल के अधिक अङ्कों में से २८ घटा कर, दूसरी और पाँचवीं आवृत्ति के गुणनफल में एक एक जोड़ कर, तथा छठवीं और दशवीं आवृत्ति के गुणनफल में से एक एक घटाकर विषुपों के नक्षत्रों को प्राप्त करना चाहिये ॥ ४३१ ॥

विशेषार्थ :— विवक्षित आवृत्ति के नक्षत्र को अश्विनी से गिनने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें ८ मिलाने पर यदि योगफल २८ से अधिक प्राप्त होता है, तो उसमें से २८ घटा कर शेषांकों को कृत्तिका नक्षत्र से गिनना चाहिए। जो नक्षत्र प्राप्त हो, वही विषुप का नक्षत्र होगा। जैसे :— विवक्षित आवृत्ति चौथी है। इसका नक्षत्र शतभिषा है, जो अश्विनी से गिनने पर २५ वाँ है. + ८ = ३३ − २८ = ५। कृत्तिका नक्षत्र से पाँचवाँ नक्षत्र पुनर्वसु है, अतः यही चतुर्थ विषुप का नक्षत्र है। अन्यत्र भी ऐसा ही जानना।

दूसरी और पाँचवीं आवृत्ति के नक्षत्रों को अश्विनी से गिनने पर जो जो लब्ध प्राप्त हो उसमें ८ जोड़कर, एक एक अङ्क और जोड़ कर कृत्तिका नक्षत्र से गिनना। जो नक्षत्र प्राप्त हों वही दूसरे और पाँचवें विषुप के नक्षत्र होंगे। जैसे —दूसरी आवृत्ति में हस्त नक्षत्र है, जो अश्विनी से १३ वाँ है + ८ = २१ + १ = २२ हुए। कृत्तिका नक्षत्र से २२ वाँ नक्षत्र धनिष्ठा है, और यही दूसरे विषुप का नक्षत्र है। इसी प्रकार ५ वें स्थान में जानना चाहिये। छठवीं और दशवीं आवृत्ति के नक्षत्रों को अश्विनी से गिनने पर जो जो लब्ध प्राप्त हो उसमें ८ जोड़कर लब्ध में से एक एक अङ्क घटा देने पर जो जो अवशेष रहे, उसे कृत्तिका नक्षत्र से गिनने पर जो जो नक्षत्र प्राप्त हों वही छठवें और दशवें विषुप के नक्षत्र हैं। जैसे :— छठवीं आवृत्ति में पुष्य नक्षत्र है, जो अश्विनी से ८ वाँ है, + ८ = १६ − १ = १५ हुए। कृत्तिका नक्षत्र से १५ वाँ नक्षत्र अनुराधा है, और यही छठवें विषुप का नक्षत्र है। इसी प्रकार १० वें स्थान में जानना चाहिए। यथा—

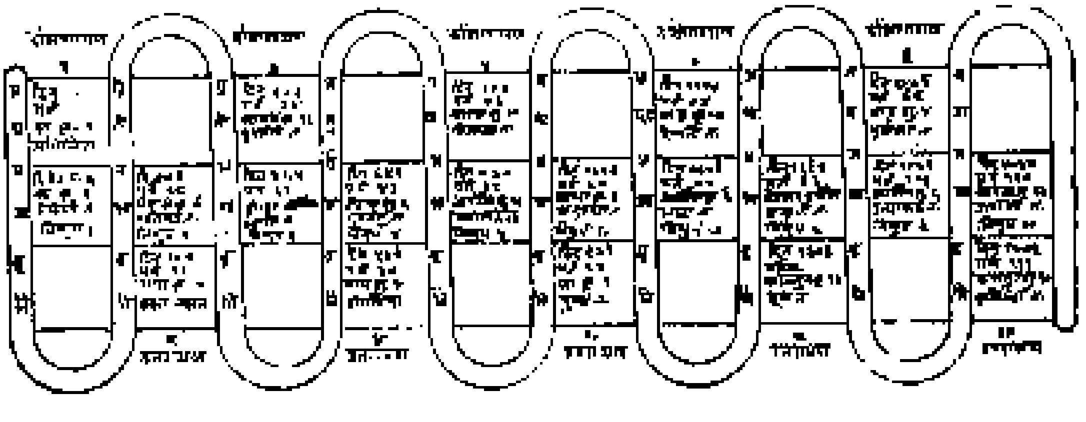

गाथाद्वयेन नक्षत्रसंज्ञामाह—

किचियरोहिणिमियसिर अद्दपुणव्वस्सुसपुस्सअसिलेस्सा ।
मह पुव्वुत्तर हत्था चित्ता सादी विसाह अणुराहा ॥ ४३२ ॥
जेट्ठा मूल पुव्वुत्तर आसाढा अभिजिसवणसधणिट्ठा ।
तो सदभिसपुव्वुत्तरभद्दपदा रेवदस्सिणी भरणी ॥ ४३३ ॥

कृत्तिका रोहिणी मृगशीर्षा आर्द्रा पुनर्वसुः सपुष्यः आश्लेषा ।
मघा पूर्वा उत्तरा हस्तः चित्रा स्वातिः विशाखा अनुराधा ॥ ४३२ ॥
ज्येष्ठा मूलं पूर्वोत्तरौ आषाढौ अभिजित् श्रवणः सधनिष्ठा ।
ततः शतभिषा पूर्वोत्तरभाद्रपदा रेवती अश्विनी भरणी ॥ ४३३ ॥

कित्तिय । कृत्तिका रोहिणी मृगशीर्षा आर्द्रा पुनर्वसु पुष्यः आश्लेषा मघा पूर्वाः उत्तराः हस्तः चित्रा स्वातिः विशाखा अनुराधा ॥ ४३२ ॥

जेट्ठा मूल । ज्येष्ठा मूलं पूर्वाषाढः उत्तराषाढः अभिजित् श्रवणः धनिष्ठा ततः शतभिषक् पूर्वाभाद्रपदा उत्तराभाद्रपदा रेवती अश्विनी भरणिः ॥ ४३३ ॥

दो गाथाओं में नक्षत्रों के नाम कहते हैं—

गाथार्थ :—१ कृत्तिका, २ रोहिणी, ३ मृगशीर्षा, ४ आर्द्रा, ५ पुनर्वसु, ६ पुष्य, ७ आश्लेषा, ८ मघा, ९ पूर्वाफाल्गुनी, १० उत्तराफाल्गुनी, ११ हस्त, १२ चित्रा, १३ स्वाति, १४ विशाखा, १५ अनुराधा, १६ ज्येष्ठा, १७ मूल, १८ पूर्वाषाढा, १९ उत्तराषाढा, २० अभिजित्, २१ श्रवण, २२ धनिष्ठा, २३ शतभिषा, २४ पूर्वाभाद्रपद, २५ उत्तराभाद्रपद, २६ रेवती, २७ अश्विनी, २८ भरणी ॥ ४३२-४३३ ॥

नक्षत्राणामधिदेवता गाथाद्वयेनाह—

अग्गि पयावदि सोमो रुद्दो दिति देवमंति सप्पो य ।
पिदुभगअरियमदिणयरत्तोट्ठुणिलिंदग्गिमित्तिंदा ॥ ४३४ ॥
तो णेरिदि जल विस्सो बम्हा विण्हू वसू य वरुणअजा ।
अहिवड्ढि पूसण अस्सा जमो वि अहिदेवदा कमसो ॥ ४३५ ॥

अग्निः प्रजापतिः सोमः रुद्रः अदितिः देवमंत्री सर्पश्च ।
पिता भगः अर्यमा दिनकरः त्वष्टा अनिलेन्द्राग्निमित्रेन्द्राः ॥ ४३४ ॥
ततः नैरृतिः जलः विश्वः ब्रह्मा विष्णुः वसुश्च वरुणः अजः ।
अभिवृद्धिः पूषा अश्वः यमोऽपि अधिदेवताः क्रमशः ॥ ४३५ ॥

अग्नि । अग्निः प्रजापतिः सोमो रुद्रोऽदितिः देवमंत्री सर्पश्च पिता भगः । अर्यमा दिनकरः त्वष्टा अनिल इन्द्राग्निः मित्रः इन्द्रः (१६) ॥ ४३४ ॥

अहिवड्ढि । ततो नैऋतिः जलो विश्वो ब्रह्मा विष्णुः वसुश्च वरुणः अजः अभिवृद्धिः पूषा अश्वः यमोऽप्येते (१२) कृत्तिकादीनां अधिदेवताः क्रमशः ॥ ४३५ ॥

दो गाथाओं में नक्षत्रों के अधिदेवता (स्वामी) कहते हैं—

गाथार्थ :—१ अग्नि, २ प्रजापति, ३ सोम, ४ रुद्र, ५ अदिति, ६ देवमंत्री, ७ सर्प, ८ पिता, ९ भग, १० अर्यमा, ११ दिनकर, १२ त्वष्टा, १३ अनिल, १४ इन्द्राग्नि, १५ मित्र, १६ इन्द्र, १७ नैऋति, १८ जल, १९ विश्व, २० ब्रह्मा, २१ विष्णु, २२ वसु, २३ वरुण, २४ अज, २५ अभिवृद्धि, २६ पूषा, २७ अश्व और २८ यम, ये कृत्तिका आदि नक्षत्रों के क्रमानुसार अधिदेवता हैं । अर्थात् जो नक्षत्र रूप ताराओं के स्वामी हैं उनके नाम हैं ॥ ४३४, ४३५ ॥

विशेषार्थ :—

क्रमांक	नक्षत्र	स्वामी	क्रमांक	नक्षत्र	स्वामी	क्रमांक	नक्षत्र	स्वामी	क्रमांक	नक्षत्र	स्वामी
१	कृत्तिका	अग्नि	८	मघा	पिता	१५	अनुराधा	मित्र	२२	धनिष्ठा	वसु
२	रोहणी	प्रजापति	९	पूर्वा-फाल्गुनी	भग	१६	ज्येष्ठा	इन्द्र	२३	शतभिषा	वरुण
३	मृगशीर्षा	सोम (चन्द्र)	१०	उत्तरा-फाल्गुनी	अर्यमा	१७	मूल	नैऋति	२४	पूर्वाभाद्र०	अज
४	आर्द्रा	रुद्र	११	हस्त	दिनकर	१८	पूर्वाषाढ़ा	जल	२५	उत्तराभाद्र.	अभिवृद्धि
५	पुनर्वसु	आदिति-(सूर्य)	१२	चित्रा	त्वष्टा	१९	उत्तराषाढ़ा	विश्व	२६	रेवती	पूषा
६	पुष्य	देवमन्त्री	१३	स्वाति	अनिल	२०	अभिजित्	ब्रह्मा	२७	अश्वनी	अश्व
७	आश्लेषा	सर्प	१४	विशाखा	इन्द्राग्नि	२१	श्रवण	विष्णु	२८	भरणी	यम

नक्षत्राणां स्थितिविशेषविधानमाह—

कित्तियपडंतिसमये अट्ठम मघारिक्खमेदि मज्झण्हं ।
अणुराहारिक्खुदओ एवं सेसे वि भासिज्जो ॥ ४३६ ॥

कृत्तिकापतनसमये अष्टमं मघानक्षत्रं एति मध्याह्नम् ।
अनुराधानक्षत्रोदयः एवं शेषेषु अपि भाषणीयम् ॥ ४३६ ॥

कित्तिय । कृत्तिकापतनसमयेऽस्तसमये इत्यर्थः । तस्याष्टमं मघानक्षत्रं मध्याह्नमेति तस्या

मघाया: सकाशात् अष्टममनुराधानक्षत्रमुदयमेति । एवं शेषेषु रोहिण्यादिषु अस्तमितनक्षत्रादष्टमनक्षत्रं मध्याह्नमेति । तस्मादष्टमं नक्षत्रमुदयमेतीति भावनीयम् ॥ ४३६ ॥

नक्षत्रों की स्थितिविशेष का विधान कहते हैं—

गाथार्थ :—कृत्तिका नक्षत्र के पतन अर्थात् अस्त होने के समयमें उसका आठवाँ मघा नक्षत्र मध्याह्न काल को प्राप्त होता है तथा मघा से आठवाँ अनुराधा नक्षत्र उदय को प्राप्त होता है । इसी क्रम की योजना शेष नक्षत्रों के विषय में भी करनी चाहिए ॥ ४३६ ॥

विशेषार्थ :—कृत्तिका नक्षत्र के पतन अर्थात् अस्त होने के समय में कृत्तिका से आठवाँ मघा नक्षत्र मध्याह्न को और मघा से आठवाँ अनुराधा उदय को प्राप्त होता है । इसी प्रकार शेष रोहणी आदि में अस्त नक्षत्र से आठवाँ मध्याह्न में और इससे आठवाँ उदय को प्राप्त होता है, ऐसा कहना चाहिये । जैसे—

जब	रोहणी	का अस्त	तब	पूर्वाफाल्गुनी का मध्याह्न	और	ज्येष्ठा	का उदय	होता है ।		
"	मृगशिरा	"	"	" उत्तराफाल्गुनी "	"	" मूल	"	"	"	"
"	आर्द्रा	"	"	" हस्त	"	" " पूर्वाषाढ़ा	"	"	"	"
"	पुनर्वसु	"	"	" चित्रा	"	" " उत्तराषाढ़ा	"	होता है । इत्यादि		

चन्द्रस्य पञ्चदशमार्गेषु अस्मिन्नस्मिन्मार्गे एतान्येतानि नक्षत्राणि तिष्ठन्तीति गाथात्रयेणाह—

> अभिजिणव सादिपुव्वुत्तरो य चंदस्स पढममग्गम्हि ।
> तदिए मघापुणव्वसु सत्तमिए रोहिणी चित्ता ॥ ४३७ ॥
> अभिजिन्नव स्वातिः पूर्वोत्तरा च चन्द्रस्य प्रथममार्गे ।
> तृतीये मघापुनर्वसू सप्तमे रोहिणी चित्रा ॥ ४३७ ॥

अभिजिण । अभिजिदादि नवस्वातिः पूर्वा उत्तर १२ च चन्द्रस्य प्रथममार्गोपरितनप्रदेशे चरन्ति । तृतीये मार्गे मघापुनर्वसू चरतः । सप्तमे मार्गे रोहिणी चित्रा च चरतः ॥ ४३७ ॥

चन्द्रमा के पन्द्रह मार्गों में से किस किस मार्ग में कौन कौन नक्षत्र स्थित हैं उन्हें तीन गाथाओं में कहते हैं :—

गाथार्थ :—अभिजित् आदि ९, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी ये बारह नक्षत्र चन्द्रमा के प्रथम मार्ग में सञ्चार करते हैं । मघा और पुनर्वसु तृतीय मार्ग में तथा रोहिणी और चित्रा सातवीं वीथी में सञ्चार करते हैं ॥ ४३७ ॥

विशेषार्थ :— अभिजित् आदि नव, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र चन्द्रमा की प्रथम वीथी के ऊपर जो परिधि है उसमें, मघा और पुनर्वसु तीसरी वीथी में तथा रोहिणी और चित्रा सातवीं वीथी में सञ्चार करते हैं ।

छट्ठट्ठमदसमेयारसमे किचिय विसाह अणुराहा।
जेट्ठा कमेण सेसा पण्णारसमम्हि अट्ठेव ॥ ४३८ ॥

हत्थं मूलतियं चिय मियसिरदुगपुस्सदोण्णि अट्ठेव।
अट्ठपहे णक्खत्ता चिट्ठंति हु बारसादीया ॥ ४३९ ॥

षष्ठाष्टमदशमैकादशे कृत्तिका विशाखा अनुराधा।
ज्येष्ठा क्रमेण शेषाणि पञ्चदशे अष्टैव ॥ ४३८ ॥
हस्त: मूलत्रय अपि मृगशीर्षद्विकं पुष्यद्वयं अष्टैव।
अष्टपथे नक्षत्राणि तिष्ठन्ति हि द्वादशादीनि ॥ ४३९ ॥

छट्ठट्ठमदसमे। षष्ठाष्टमदश मैकादशे मार्गे कृत्तिका, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा क्रमेण चरन्ति। शेषाण्यष्टैव नक्षत्राणि पञ्चदशे मार्गे चरन्ति ॥ ४३८ ॥

हत्थं मूल। हस्त: मूलत्रयं मूलपूर्वाषाढोत्तराषाढमित्यर्थ:। मृगशीर्षद्विकं मृगशीर्षार्द्रेत्यर्थ:। पुष्यद्वयं पुष्याश्लेषेत्यर्थ:। इत्यष्टैव एतानि नक्षत्राणि प्रथमादिपथेषु द्वादशादीनि अष्टसु पथेषु तिष्ठन्ति ॥ ४३९ ॥

गाथार्थ :—छठे, आठवें दसवें और ग्यारहवें मार्ग में क्रमश: कृत्तिका, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र भ्रमण करते हैं। शेष हस्त, मूलत्रय (मूल, पूर्वाषाढा उत्तराषाढ़ा) मृगशीर्ष द्विय (मृगशीर्ष, आर्द्रा) और पुष्यद्वय (पुष्य और आश्लेषा) ये आठ नक्षत्र चन्द्रमा की अन्तिम १५ वीं वीथी में सञ्चार करते हैं। इस प्रकार बारह आदि नक्षत्रों को आदि करके चन्द्रमा की पन्द्रह वीथियों में से आठ वीथियों के ऊपर सम्पूर्ण नक्षत्र स्थित हैं ॥ ४३८, ४३९ ॥

विशेषार्थ :—चन्द्रमा की १५ गलियाँ हैं। उनके मध्य में २८ नक्षत्रों की ८ ही गलियाँ हैं। उनमें निम्नलिखित नक्षत्र सञ्चार करते हैं।

(१) चन्द्र की प्रथम वीथी में—अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, स्वाति, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी ये १२ नक्षत्र, (२) तृतीय वीथी में पुनर्वसु और मघा, (३) छठवीं वीथी में कृत्तिका, (४) सातवीं में रोहणी तथा चित्रा, (५) आठवीं में विशाखा, (६) दसवीं में अनुराधा, (७) ग्यारहवीं में ज्येष्ठा और (८) १५ वीं (अन्तिम) वीथी में हस्त, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, मृगशीर्षा, आर्द्रा, पुष्य तथा आश्लेषा ये आठ नक्षत्र सञ्चार करते हैं। यथा :—

[कृपया चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

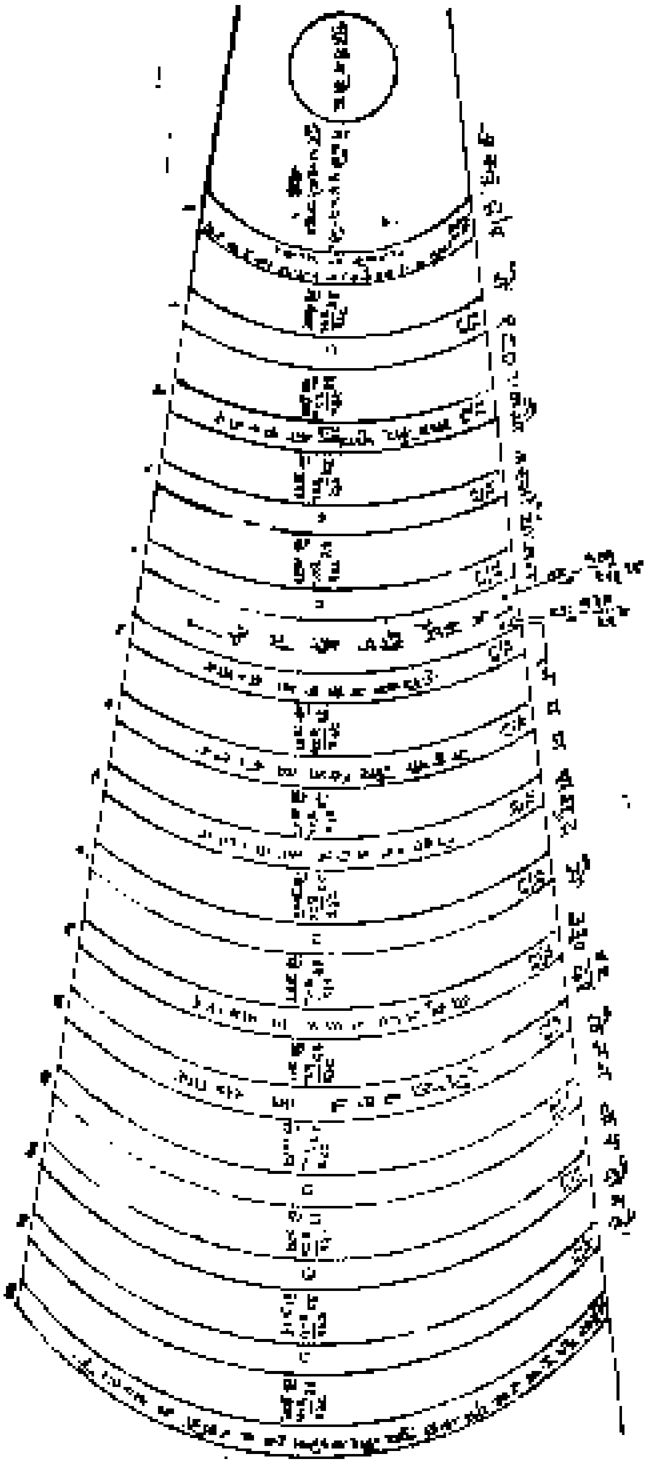

सभी नक्षत्र अपनी अपनी वीथियों में ही भ्रमण करते हैं। चन्द्र सूर्य के सदृश अन्य अन्य वीथियों में भ्रमण नहीं करते।

नक्षत्राणां तारासंख्यां गाथाद्वयेनाह—

कित्तिय पहुदिसु तारा छप्पण तियएक्क छत्ति छक्क चऊ।
दोद्दो पंचेक्केक्कं चउ छत्तियणवचउक्क चऊ ॥ ४४० ॥
तिय तिय पंचेक्कारहियसयं दो दो कमेण बत्तीसा।
पंच य तिण्णि य तारा अट्ठावीसाण रिक्खाणं ॥ ४४१ ॥

कृतिकाप्रभृतिषु तारा: षट् पंच तिस्रः एकाषट् त्रिषट्कचतु: ।
द्वे द्वे पंच एकैका चतुःषट् त्रिकनवचतुष्का: चतस्रः ।। ४४० ।।

तिस्रः तिस्रः पञ्चैकादशाधिकशतं द्वे द्वे क्रमेण द्वात्रिंशत् ।
पञ्च च तिस्रः च तारा अष्टाविंशानां ऋक्षाणाम् ।। ४४१ ।।

किसिय । कृत्तिकाप्रभृतिषु तारा: षट् पञ्च तिस्र एका षट् तिस्रः षट्का: चतस्रः द्वे द्वे पञ्च एकैका चतस्रः षट् तिस्रः नव चतुष्काश्चतस्रः ॥ ४४० ॥

तिय तिय । तिस्रस्तिस्रः पञ्चैकादशाधिकशतं द्वे द्वे द्वात्रिंशत् पञ्च तिस्रः इत्येतास्तारा: क्रमेण-ष्टाविंशतिनक्षत्राणां भवन्ति ॥ ४४१ ॥

दो गाथाओं द्वारा प्रत्येक नक्षत्र के ताराओं की संख्या कहते हैं :—

गाथार्थ :—कृतिका आदि २८ नक्षत्रों के ताराओं की संख्या क्रमशः छह, पांच, तीन, एक, छह, तीन, छह, चार, दो, दो, पांच, एक, एक, चार, छह, तीन, नौ, चार, चार, तीन, तीन, पांच, एक सौ ग्यारह, दो, दो, बत्तीस, पांच और तीन है ।। ४४०, ४४१ ।।

तासां ताराणामाकारविशेषं गाथात्रयेणाह—

बीयणसयडुद्धीए मियसिरदीवे य तोरणे छत्ते ।
वेम्मियगोमुत्ते विय सरजुगहत्थुप्पले दीवे ।। ४४२ ।।

अधियरणे वरहारे वीणासिंगे य विच्छिए सरिसा ।
दुक्कयवावीहरिगजकुंभे मुरवे पतंतपक्खीए ।। ४४३ ।।

सेणागयपुव्वावरगत्ते णावा हयस्स सिरसरिसा ।
चुल्लीपासाणणिभा किचियआदीणि रिक्खाणि ।। ४४४ ।।

बीजनशकटोद्धिका मृगशिरदीपे च तोरणे छत्रे ।
वल्मीकगोमूत्रे अपि शरयुगहस्तोत्पले दीपे ।। ४४२ ।।
अधिकरणे वरहारे वीणाशृङ्गे च वृश्चिकेन सदृशा: ।
दुष्कृतवापीहरिगजकुम्भेन मुरजेन पतत्पक्षिणा ।। ४४३ ।।
सेनागजपूर्वापरगात्रे नावा हयस्य शिरसा सदृशा: ।
चुल्लीपाषाणनिभा: कृत्तिकादीनि ऋक्षाणि ।। ४४४ ।।

बीयण । बीजननिभा शकटोद्धिकानिभा मृगशिरोनिभा दीपनिभा तोरणनिभा छत्रनिभा वल्मीकनिभा गोमूत्रनिभा शरयुगनिभे हस्तनिभा उत्पलनिभा दीपनिभा ।। ४४२ ॥

अधियरणे । अधिकरणनिभा वरहारनिभा वीणाशृङ्गनिभा वृश्चिकसदृशा दुःकृतवापीनिभा हरिकुम्भनिभा गजकुम्भनिभा मुरजनिभा पतत्पक्षिनिभा ॥ ४४३ ॥

सेनागज । सेनानिभा गजपूर्वगात्रनिभा गजापरगात्रनिभा नावानिभा हयस्य शिरःसदृशा चुल्लीपाषाणनिभास्तारा: कृत्तिकादीनि नक्षत्राणि भवन्ति ॥ ४४४ ॥

उन ताराओं के आकार विशेष को तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :— कृत्तिका आदि नक्षत्रों की उपर्युक्त तारायें क्रमसे बीजना सदृश, गाड़ी की उद्धिका सदृश, मृग के शिर सदृश, दीपक, तोरण, छत्र वल्मीक (बाँबी) गोमूत्र, शर (बाण), युग, हाथ, उत्पल (नील कमल), दीप, अधिकरण, वरहार, वीणाशृङ्ग, वृश्चिक (बिच्छू) दुष्कृतवापी, सिंह कुम्भ, गज कुम्भ, मुरज (मृदङ्ग), गिरते हुए पक्षी, सेना, हाथी के पूर्व शरीर, हाथी के उत्तर शरीर, नाव, अश्व के शिर और चूल्हे के पत्थर सदृश आकार वाली होती है ॥ ४४२, ४४३, ४४४ ॥

विशेषार्थ :—कृत्तिका आदि २८ नक्षत्रों के ताराओं की संख्या और उन ताराओं के आकार का निरूपण (२ + ३) पाँच गाथाओं द्वारा किया गया है । इन पाँचों गाथाओं का विशेषार्थ निम्न प्रकार है :—

क्रमांक	नक्षत्र	ताराओं की संख्या	ताराओं के आकार	क्रमांक	नक्षत्र	ताराओं की संख्या	ताराओं के आकार
१	कृत्तिका	६ तारा	बीजना सदृश	१५	अनुराधा	६	वर (उत्कृष्ट) हार सदृश
२	रोहणी	५ "	गाड़ी की उद्धिका	१६	ज्येष्ठा	३	वीणाशृङ्ग सदृश
३	मृगशीर्ष	३ "	मृग के शिर सदृश	१७	मूल	९	वृश्चिक
४	आर्द्रा	१ "	दीपक सदृश	१८	पूर्वाषाढा	४	दुष्कृत वापी सदृश
५	पुनर्वसु	६ "	तोरण	१९	उत्तराषाढा	४	सिंह कुम्भ "
६	पुष्य	३ "	छत्र	२०	अभिजित्	३	गज कुम्भ "
७	आश्लेषा	६ "	वल्मीक (बाँबी)	२१	श्रवण	३	मुरज(मृदङ्ग) "
८	मघा	४ "	गोमूत्र सदृश	२२	धनिष्ठा	५	गिरते हुए पक्षी "
९	पूर्वा फाल्गुनी	२ "	शर (बाण) "	२३	शतभिषा	१११	सैन्य (सेना)
१०	उत्तरा "	२ "	युग "	२४	पूर्वभाद्र०	२	हाथी के पूर्व शरीर सदृश
११	हस्त	५ "	हाथ "	२५	उत्तराभाद्र०	२	" " उत्तर " "
१२	चित्रा	१ "	उत्पल (नील कमल	२६	रेवती	३२	नाव "
१३	स्वाति	१ "	दीप सदृश	२७	अश्विनी	५	अश्व के शिर सदृश
१४	विशाखा	४ "	अधिकरण सदृश	२८	भरणी	३	चूल्हे के पत्थर "

कृत्तिकादीनां परिवारतारा आह -

एक्कारसयसहस्सं सगसगतारापमाणसंगुणिदं ।
परिवारतारसंखा किंत्तियपहुदीण ॥ ४४५ ॥

एकादशशतसहस्रं स्वकस्वकतारप्रमाणसंगुणितम् ।
परिवारतारासंख्या कृत्तिकानक्षत्रप्रभृतीनाम् ॥ ४४५ ॥

एक्कारसय । एकादशोत्तरशताधिकसहस्रं १११९ स्वकीयस्वकीयताराप्रमाणसंगुणितं चेत् कृत्तिकानक्षत्रप्रभृतीनां परिवारतारासंख्याप्रमाणं स्यात् ॥ ४४५ ॥

कृत्तिका आदि नक्षत्रों की परिवार ताराएँ कहते हैं :—

गाथार्थ :—एक हजार एक सौ ग्यारह को अपने अपने ताराओं के प्रमाण से गुणित करने पर कृत्तिका आदि नक्षत्रों के परिवार ताराओं का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ४४५ ॥

विशेषार्थ :—१११९ को अपने अपने ताराओं के प्रमाण से गुणा करने पर परिवार ताराओं का प्रमाण प्राप्त होता है । जैसे :—

नक्षत्र	परिवार ताराओं की संख्या	नक्षत्र	परिवार ताराओं की संख्या	नक्षत्र	परिवार ताराओं की संख्या	नक्षत्र	परिवार ताराओं की संख्या
कृ०	११११ × ६ = ६६६६	मघा	११११ × ४ = ४४४४	अनु०	११११ × ६ = ६६६६	धनि०	११११ × ५ = ५५५५
रो०	११११ × ५ = ५५५५	पूर्वा-फा०	११११ × २ = २२२२	ज्येष्ठा	११११ × ३ = ३३३३	शत०	११११×१११ = १२३३२१
मृग०	११११ × ३ = ३३३३	उ फा.	११११ × २ = २२२२	मूल	११११ × ९ = ९९९९	पू. भा.	११११ × २ = २२२२
आर्द्रा	११११ × १ = ११११	हस्त	११११ × ५ = ५५५५	पू.षा.	११११ × ४ = ४४४४	उ.भा.	११११ × २ = २२२२
पुन०	११११ × ६ = ६६६६	चित्रा	११११ × १ = ११११	उ.षा	११११ × ४ = ४४४४	रेवती	११११ × ३२ = ३५५५२
पुष्य	११११ × ३ = ३३३३	स्वाति	११११ × १ = ११११	अभि.	११११ × ३ = ३३३३	अश्वि.	११११ × ५ = ५५५५
आ०	११११ × ६ = ६६६६	विशा.	११११ × ४ = ४४४४	श्रव०	११११ × ३ = ३३३३	भरणी	११११ × ३ = ३३३३

पञ्चप्रकाराणां ज्योतिष्कदेवानामायुः प्रमाणमाह—

इंदिणसुक्कगुरिदरे लक्खसहस्सा सयं च सहपल्लं ।
पल्लं दलं तु तारे वरावरं पादपादद्धं ॥ ४४६ ॥

इन्द्विनशुक्रगुर्वितरेषु लक्षं सहस्रं शतं च सद्व्यल्यं ।
पल्यं एकं तु तारासु वरमवरं पादपादार्धम् ॥ ४४६ ॥

इंदिण। इन्दौ इने शुक्रे गुरौ इतरस्मिन्बुधमङ्गलशन्यादौ यथासंख्यं लक्षवर्षसहितपल्यं सहस्रवर्षसहितपल्यं शतवर्षसहितपल्यं एकपल्यं अर्द्धपल्यं तारकाणां नक्षत्राणां च वरावरमायुः पादपादार्धं पल्यचतुर्भागः पल्याष्टमभाग इत्यर्थः ॥ ४४६ ॥

पाँच प्रकार के ज्योतिषीदेवों की आयु का प्रमाण कहते है :—

गाथार्थ :—चन्द्र, सूर्य, शुक्र, गुरु एवं अन्य ग्रहों की आयु क्रम से एक लाख वर्ष सहित एक पल्य, हजार वर्ष सहित एक पल्य, सौ वर्ष सहित एक पल्य, एक पल्य और आधा आधा पल्य है, ताराओं (और नक्षत्रों) की उत्कृष्टायु पाव पल्य और जघन्यायु पल्य के आठवें भाग प्रमाण है ॥ ४४६ ॥

विशेषार्थ :—चन्द्रमा की उत्कृष्टायु एक पल्य और एक लाख वर्ष, सूर्य की एक पल्य और एक हजार वर्ष, शुक्र की एक पल्य और १०० वर्ष, गुरु की एक पल्य, बुध, मङ्गल और शनिश्चरादि की उत्कृष्टायु आधा आधा पल्य है। ताराओं एवं नक्षत्रों की उत्कृष्टायु पाव ($\frac{1}{4}$) पल्य और जघन्यायु $\frac{1}{8}$ पल्य प्रमाण है। सूर्यादिकों की जघन्यायु $\frac{1}{4}$ पल्य (जम्बूद्वीप प० पृ० २३३ प० १) है।

चन्द्रादित्ययोर्देवीर्गाथाद्वयेनाह—

चन्दाभा य सुसीमा पहंकरा अच्चिमालिणी चंदे ।
सूरे दुदि सूरपहा पहंकरा अच्चिमालिणी देवी ॥ ४४७ ॥

चन्द्राभा च सुसीमा प्रभङ्करा अचिमालिनी चन्द्रे ।
सूर्ये द्युतिः सूर्यप्रभा प्रभङ्करा अचिमालिनी देव्यः ॥४४७॥

चन्दाभा। चन्द्राभा च सुसीमा प्रभङ्करा अचिमालिनीति चतस्रश्चन्द्रपट्टदेव्यः। सूर्ये पुनः द्युतिः सूर्यप्रभा प्रभङ्करा अचिमालिनीति पट्टदेव्यः ॥ ४४७ ॥

दो गाथाओं द्वारा चन्द्रसूर्य की देवाङ्गनाओं का उल्लेख करते हैं—

गाथार्थ :—चन्द्राभा, सुसीमा, प्रभङ्करा और अचिमालिनी ये चारों, चन्द्र की पट्टदेवियाँ हैं। द्युति, सूर्यप्रभा, प्रभङ्करा और अचिमालिनी ये चारों, सूर्य की पट्टदेवियाँ हैं ॥ ४४७ ॥

विशेषार्थ :—सरल है।

जेट्ठा तासो पुह पुह परिवारचदुस्सहस्सदेवीणं ।
परिवारदेविसरिसं पत्तेयमिमा विउव्वंति ॥ ४४८ ॥

ज्येष्ठाः ताः पृथक् पृथक् परिवारचतुःसहस्रदेवीनाम् ।
परिवारदेवीसहस्रं प्रत्येकमिमाः विकुर्वन्ति ॥ ४४८ ॥

जेट्ठा ताओ । पृथक् पृथक् परिवारचतुःसहस्रदेवीनां ता देव्यो ज्येष्ठा इमाः । परिवारदेवीसहस्र-संख्यां प्रत्येकं विकुर्वन्ति ॥ ४४८ ॥

गाथार्थ :—उन ज्येष्ठ (पट्ट) देवांगनाओं की पृथक् पृथक् चार चार हजार परिवारदेवियाँ होती हैं। ये प्रमुख देवियाँ अपनी अपनी परिवारदेवियों के प्रमाण (४०००) ही विक्रिया करती हैं ॥ ४४८ ॥

विशेषार्थ :—चन्द्र सूर्य की उन प्रमुख देवांगनाओं के पास चार चार हजार परिवारदेवियाँ हैं और ये मुख्य देवियाँ चार चार हजार ही विक्रिया करती हैं।

ज्योतिष्कदेवीनामायुःप्रमाणमाह—

जोइसदेवीणाऊ सगसगदेवाणमद्धयं होदि ।
सव्वणिगिट्ठसुराणं बत्तीसा होंति देवीओ ॥ ४४९ ॥

ज्योतिष्कदेवीनामायुः स्वकस्वकदेवानामर्धं भवति ।
सर्वनिकृष्टसुराणां द्वात्रिंशत् भवन्ति देव्यः ॥ ४४९ ॥

जोइस । ज्योतिष्कदेवीनामायुः स्वकीयस्वकीयदेवानामर्द्धं भवति । अत्र सर्वनिकृष्टसुराणां द्वात्रिंशद्देव्यो भवन्ति । मध्ये यथायोग्यं देवीसंख्या अवगन्तव्याः ॥ ४४९ ॥

ज्योतिष्क देवाङ्गनाओं की आयु का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—ज्योतिष्क देवियों की आयु अपने अपने देवों की आयु के अर्ध भाग प्रमाण होती है। सर्व निकृष्ट देवों के बत्तीस ही देवियाँ होती हैं ॥ ४४९ ॥

विशेषार्थ :—ज्योतिष्क देवांगनाओं की आयु अपने अपने (भर्तार) देवों की आयु के अर्धभाग प्रमाण होती है। सर्व निकृष्ट अर्थात् हीन पुण्य वाले देवों के बत्तीस ही देवियाँ होती हैं। मध्य में देवांगनाओं की संख्या यथा योग्य जानना चाहिए।

अथ भवनत्रये उत्पद्यमानजीवानाह—

उम्मग्गचारि सणिदाणणलादिमुदा अकामणिज्जरिणो ।
कुदवा सबलचरित्ता भवणतियं जंति ते जीवा ॥ ४५० ॥

उन्मार्गचारिणः सनिदानाः अनलादिमृता अकामनिर्जरिणः ।
कुतपसः शबलचारित्रा भवनत्रये यान्ति ते जीवाः ॥ ४५० ॥

उम्मग्गचारि । उन्मार्गचारिणः सनिदाना अनलादिमृता अकामनिर्जरिणः कुतपसः शबल-चारित्रा ये ते जीवा भवनत्रये यान्ति ॥ ४५० ॥

भवनत्रयमें जन्म लेने वाले जीवों को कहते हैं :—

गाथार्थ:—उन्मार्ग का आचरण करने वाले, निदान सहित तप आदि करने वाले, जल, अग्नि आदि से मरने वाले, अकाम निर्जरा करने वाले, खोटा तपश्चरण और सदोष चारित्र पालन करने वाले जीव भवनत्रय में जन्म लेते हैं ॥ ४५० ॥

विशेषार्थ:—जिनमत से विपरीत धर्म का आचरण, निदान पूर्वक तप, अग्निजल आदि से मरण, अकामनिर्जरा, पञ्चाग्नि आदि तप और सदोष चारित्र को धारण करने वाले जीव भवनत्रय में जन्म लेते हैं।

इति श्री नेमिचन्द्राचार्यविरचिते त्रिलोकसारे ज्योतिर्लोकाधिकारः ॥ ४ ॥

इति श्री नेमिचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार में चौथा
ज्योतिर्लोकाधिकार समाप्त हुआ।

५

वैमानिकलोकाधिकारः

अथानुक्रमेणावतीर्णं वैमानिकलोकं व्यावर्णयितुकामस्तावद्विमानसंख्याप्रतिपादनार्थं तेष्ववस्थितानामविनश्वराणां जिनेश्वरगृहाणां प्रमाणपूर्वकं प्रणाममाह—

चुलसीदिलक्खसत्ताणउदिसहस्से तहेव तेवीसे ।
सव्वे विमानसमगे जिणिंदगेहे णमंसामि ।। ४५१ ।।

चतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्रान् तथैव त्रयोविंशान् ।
सर्वान् विमानसमानजिनेन्द्रगेहान् नमस्यामि ।। ४५१ ।।

चुलसीदि । चतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्रान् तथा त्रयोविंशतिसहितान् सर्वान् विमानसमान-जिनेन्द्रगेहान्नमस्यामि ।। ४५१ ।।

अब अनुक्रम प्राप्त वैमानिकलोक का वर्णन करने की इच्छा रखने वाले आचार्य सर्व प्रथम विमानों की संख्या का प्रतिपादन करने के लिए उन विमानों में अवस्थित अविनश्वर जिन मन्दिरों का प्रमाण पूर्वक प्रणाम कहते हैं :—

गाथार्थ :—चौरासी लाख सत्यानवे हजार तेईस सर्व विमानों की संख्या प्रमाण जिन मन्दिरों को (मैं नेमिचन्द्राचार्य) नमस्कार करता हूँ ।। ४५१ ।।

विशेषार्थ :—ऊर्ध्वलोक में सम्पूर्ण विमानों की संख्या ८४९७०२३ है । प्रत्येक विमान में एक एक जिन मन्दिर है, अतः ऊर्ध्वलोकके सम्पूर्ण जिन मन्दिरों का प्रमाण भी ८४९७०२३ है । उन सब विमानप्रमाणसदृश जिनमन्दिरों को नमस्कार करता हूँ ।

तानि विमानानि कल्पकल्पातीतत्वेन विकल्प्य तावत्कल्पानां नामानि गाथाद्वयेनाह :—

सोहम्मीसाणसणक्कुमारमाहिंदगा हु कप्पा हु ।
बम्हब्बम्हुत्तरगो लांतवकापिट्ठगो छट्ठो ।। ४५२ ।।

सुक्कमहासुक्कगदो सदरसहस्सारगो हु तत्तो दु ।
आणदपाणदआरणअच्चुदगा होंति कप्पा हु ।। ४५३ ।।

सौधर्मैशानसनत्कुमारमाहेन्द्रका हि कल्पा हि ।
ब्रह्मब्रह्मोत्तरको लान्तवकापिष्टकौ षष्ठः ।। ४५२ ।।

शुक्रमहाशुक्रगतः शतारसहस्रारगो हि ततस्तु ।
आनतप्राणतारणाच्युतगा भवन्ति कल्पा हि ॥ ४५३ ॥

सोहम्मी । सौधर्मैशानसनत्कुमारमाहेन्द्रकाश्चत्वारः कल्पाः ब्रह्मब्रह्मोत्तरकौ द्वौ मिलित्वा एकेन्द्रापेक्षया एक कल्पः लान्तवकापिष्ठावपि तथा षष्ठकल्पः ॥ ४५२ ॥

सुक्कमहा । शुक्रमहाशुक्रावपि तथा एकः कल्पः शतारसहस्रारकावपि तथैकः कल्पः । ततस्तु आनतप्राणतारणाच्युता इति चत्वारः कल्पा भवन्ति ॥ ४५३ ॥

उन विमानों के कल्प और कल्पातीत स्वरूप दो भेद करके सर्व प्रथम कल्पों के नाम दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—सौधर्मैशान, सानत्कुमार माहेन्द्र (ये चार), ब्रह्मब्रह्मोत्तर (पाँचवाँ), लान्तव कापिष्ठ (छठा), शुक्र महाशुक्र (सातवाँ), शतार सहस्रार (आठवाँ), आनत प्राणत, आरण और अच्युत (के एक एक) कल्प होते हैं ॥ ४५२, ४५३ ॥

विशेषार्थ :— सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार और माहेन्द्र इनके एक एक इन्द्र हैं, अतः ये चार कल्प हुए। ब्रह्मब्रह्मोत्तर दोनों का मिलकर एक इन्द्र है अतः यह एक ही (पाँचवाँ) कल्प हुआ। इसी प्रकार लान्तव कापिष्ठ छठा, शुक्रमहाशुक्र सातवाँ और शतार सहस्रार आठवाँ कल्प है, क्योंकि इन दो दो का मिलकर एक एक ही इन्द्र होता है। आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये चार कल्प हैं, क्योंकि इनके एक एक इन्द्र होते हैं।

इदानीमिन्द्रापेक्षया कल्पसंख्यामाह—

मज्झिमचउजुगलाणं पुव्वावरजुम्मगेसु सेसेसु ।
सव्वत्थ होंति इंदा इदि बारस होंति कप्पा हु ॥ ४५४ ॥

मध्यमचतुर्युगलानां पूर्वापरयुग्मयोः शेषेषु ।
सर्वत्र भवन्ति इन्द्रा इति द्वादश भवन्ति कल्पा हि ॥ ४५४ ॥

मज्झिम । मध्यमचतुर्युगलानां पूर्वयुग्मयोर्ब्रह्मलान्तवयोरेकैकेन्द्रौ । अपरयुग्मयोः महाशुक्र-सहस्रारयोरेकैकेन्द्रौ । शेषेष्वष्टसु कल्पेषु सर्वत्रेन्द्रा भवन्ति । इतीन्द्रापेक्षया कल्पा द्वादश भवन्ति ॥ ४५४ ॥

अब इन्द्र-अपेक्षा कल्पसंख्या कहते हैं :—

गाथार्थ :—मध्य के चार युगलों में से पूर्व और अपर के दो दो युगलों में एक एक इन्द्र होते हैं। शेष चार युगलों के आठ इन्द्र होते हैं। इस प्रकार बारह इन्द्रों की अपेक्षा बारह कल्प होते हैं ॥ ४५४ ॥

विशेषार्थ :—सोलह स्वर्गों के कुल आठ युगल हैं। जिसमें मध्य के चार युगलों में से पूर्व युगल ब्रह्म, लान्तव और अपर युगल महाशुक्र और सहस्रार अर्थात् ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, लान्तव कापिष्ठ, शुक्र महाशुक्र और शतार सहस्रार इन चार युगलों अर्थात् आठ स्वर्गों के चार ही इन्द्र हैं, अतः ये चार कल्प हैं। शेष ऊपर नीचे के दो दो युगलों अर्थात् आठ स्वर्गों के आठ इन्द्र हैं, अतः आठ कल्प ये हुए। इस प्रकार सोलह स्वर्गों के बारह इन्द्रों की अपेक्षा बारह कल्प हैं। यथा :—

स्वर्ग नाम	इन्द्र	इन्द्र संख्या	पटल	इन्द्र संख्या	इन्द्र	स्वर्ग नाम
अच्युत	इन्द्र	१	६	१	इन्द्र	आरण
प्राणत	इन्द्र	१	.	१	इन्द्र	आनत
सहस्रार	इन्द्र	१	१	.	.	शतार
महाशुक्र	इन्द्र	१	१	.	.	शुक्र
कापिष्ठ	.	.	२	१	इन्द्र	लान्तव
ब्रह्मोत्तर	.	.	४	१	इन्द्र	ब्रह्म
माहेन्द्र	इन्द्र	१	७	१	इन्द्र	सानत्कुमार
ऐशान	इन्द्र	१	३१	१	इन्द्र	सौधर्म

अथ कल्पातीतविमाननामान्याह—

हिट्ठिममज्झिमउवरिमतिचिय गेवेज्ज णव अणुदिसगा।
पंचाणुत्तरगा विय कप्पादीदा हु अहमिंदा ॥ ४५५ ॥

अधस्तनमध्यमोपरिमत्रित्रिकाणि ग्रैवेयाणि नव अनुदिशानि।
पञ्चानुत्तरकाणि अपि च कल्पातीता हि अहमिन्द्राः ॥ ४५५ ॥

हिट्ठिम। अधस्तनमध्यमोपरिमत्रित्रिकाणि ग्रैवेयकाणि नवानुदिशानि पञ्चानुत्तराणि च कल्पातीतविमानानि तेषु स्थिताः अहमिन्द्राः भवन्ति ॥ ४५५ ॥

अब कल्पातीत विमानों के नाम कहते हैं—

गाथार्थ :—अधस्तन, मध्यम और उपरिम तीन तीन ग्रैवेयक अर्थात् नवग्रैवेयक हैं। उनके ऊपर नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमान हैं। ये सब कल्पातीत विमान हैं, इनमें अहमिन्द्र रहते हैं ॥ ४५५ ॥

विशेषार्थ :—अधोग्रैवेयक, मध्यमग्रैवेयक और उपरिमग्रैवेयक के भेद से मुख्य में ग्रैवेयक तीन प्रकार हैं। इनमें से प्रत्येक के ऊर्ध्व मध्य और अधः के नाम से तीन तीन भेद हैं इस प्रकार नवग्रैवेयक हैं। इनके ऊपर नव अनुदिश और उनके ऊपर पाँच अनुत्तर विमान हैं। यही सब कल्पातीत विमान हैं, इनमें अहमिन्द्र रहते हैं। इन विमानों में सभी अहमिन्द्र हैं, इन्द्र की कल्पना का अभाव है इसीलिए इन विमानों की कल्पातीत संज्ञा है। यथा :—

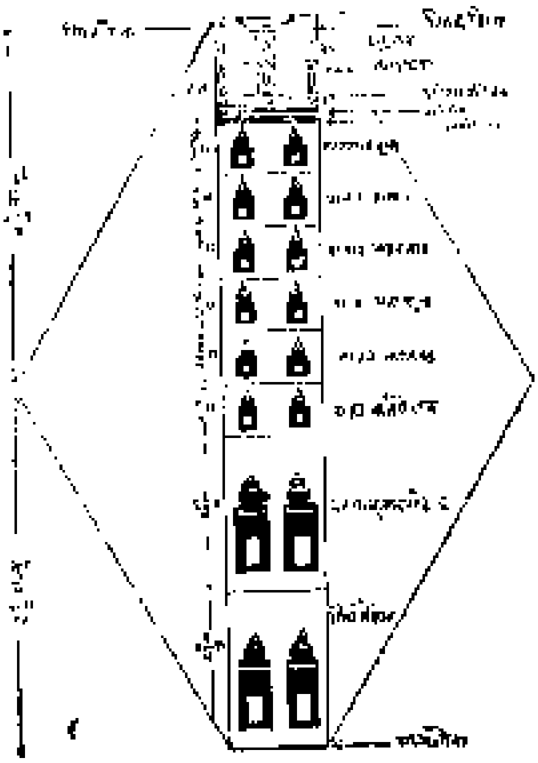

नवानुदिशविमानानां पञ्चानुत्तरविमानानां च नामानि गाथाद्वयेनाह—

> अच्चीय अच्चिमालिणि वइरे वइरोयणा अणुदिसगा ।
> सोमो य सोमरूवे अंके फलिके य आइच्चे ॥ ४५६ ॥
>
> अर्चिः अर्चिमालिनी वैरो वैरोचनानि अनुदिशकानि ।
> सोमश्च सोमरूपः अङ्कः स्फटिकः च आदित्यं ॥ ४५६ ॥

अच्चीय । अर्चिरर्चिमालिनी वैरा वैरोचनाख्यानि चत्वारि श्रेणीबद्धानि दिग्गतानि । सोमसोमरूपाङ्कस्फटिकाख्यानि चत्वारि विदिग्गतानि प्रकीर्णकानि । आदित्यं मध्येन्द्रकं एतानि नवानुदिशाख्यानि ॥ ४५६ ॥

दो गाथाओं द्वारा नव अनुदिश और पाँच अनुत्तरों के नाम कहते हैं :—

गाथार्थ :—अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन, सोम, सोमप्रभ, अङ्क, स्फटिक और आदित्य ये नव अनुदिश विमान हैं ॥ ४५६ ॥

विशेषार्थ :—अर्चि, अर्चिमालिनी, वैर और वैरोचन ये चार श्रेणीबद्ध विमान क्रम से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में स्थित हैं। सोम, सोमप्रभ अङ्क और स्फटिक ये चार श्रेणीबद्ध विमान क्रम से चार विदिशाओं में स्थित हैं। इन सबके मध्य में आदित्य नामक इन्द्रक विमान स्थित है। इस प्रकार ये नव अनुदिश विमान हैं।

विजयो दु वैजयंतो जयंत अवराजिदो य पुव्वाई ।
सव्वट्ठसिद्धिणामा मज्झम्मि अणुत्तरा पंच ।। ४५७ ।।

विजयस्तु वैजयन्तः जयन्तः अपराजितश्च पूर्वादयः ।
सर्वार्थसिद्धिनामा मध्ये अनुत्तराः पञ्च ।। ४५७ ।।

विजयो दु । विजयो वैजयन्तो जयन्त अपराजितश्च पूर्वादिदिग्गतविमानाख्याः मध्ये सर्वार्थसिद्धिनामेन्द्रकं । एते पञ्च अनुत्तरविमानाः ॥ ४५७ ॥

गाथार्थ :—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित ये चार श्रेणीबद्ध विमान क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में (एक, एक) हैं। इनके मध्य में सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमान है। इस प्रकार पाँच अनुत्तर विमान हैं ।। ४५७ ।।

विशेषार्थ :—सुगम है।

अथोक्तकल्पकल्पातीतविमानानामवस्थानमाह—

मेरुतलादु दिवड्ढं दिवड्ढदलछक्कएक्करज्जुम्हि ।
कप्पाणमट्ठजुगला गेवेज्जादी य होंति कमे ।। ४५८ ।।

मेरुतलात् द्व्यर्धं द्व्यर्धदलषट्कैकरज्जौ ।
कल्पानां अष्टयुगलानि ग्रैवेयादयश्च भवन्ति क्रमेण ।। ४५८ ।।

मेरुतला । मेरुतलात् द्वितीयार्धरज्जौ द्वितीयार्धरज्जौ दलषट्करज्जौ च कल्पानामष्टयुगलानि क्रमेण भवन्ति । एकस्यां रज्जौ नवग्रैवेयकादीनि क्रमेण भवन्ति ॥ ४५८ ॥

उक्त कल्प और कल्पातीत विमानों का अवस्थान कहते हैं—

गाथार्थ :—मेरु तल से डेढ़ राजू, डेढ़ राजू और छह अर्ध राजुओं में क्रम से कल्प स्वर्गों के आठ युगल हैं। इनके ऊपर एक राजू में कल्पातीत नवग्रैवेयक आदि विमान हैं ।। ४५८ ।।

विशेषार्थ :—मेरुतल से डेढ़ राजू में सौधर्म ऐशान, इसके ऊपर डेढ़ राजू में सानत्कुमार-माहेन्द्र इसके ऊपर ऊपर अर्ध अर्ध राजू के प्रमाण में क्रम से अन्य छह युगल अवस्थित हैं। इस प्रकार छह राजू में सोलह स्वर्ग स्थित हैं। सोलह स्वर्गों के ऊपर एक राजू में नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों का अवस्थान है।

साम्प्रतं सौधर्मादिषु विमानसंख्यां गाथात्रयेण कथयति—

बत्तीसट्ठावीसं बारस अट्ठेव होंति लक्खाणि ।
सोहम्मादिचउक्के लक्खचउक्कं तु बम्हदुगे ॥ ४५९ ॥
तत्तो जुम्माण तिए पण्णासं ताल छस्सहस्साणं ।
सत्तसयाणि य आणदकप्पचउक्केसु पिंडेण ॥ ४६० ॥
एक्कारसत्तसमहियसयमेक्काणउदी णव य पञ्चेव ।
गेवेज्जाणं तितिसु अणुदिस्साणुत्तरे होंति ॥ ४६१ ॥

द्वात्रिंशदष्टाविंशतिः द्वादश अष्टैव भवन्ति लक्षाणि ।
सौधर्मादिचतुष्के लक्षचतुष्कं तु ब्रह्मद्विके ॥ ४५९ ॥
ततो युग्मानां त्रये पञ्चाशत् चत्वारिंशत् षट्सहस्राणां ।
सप्तशतानि च आनतकल्पचतुष्केषु पिण्डेन ॥ ४६० ॥
एकादशसप्तसमधिकशतं एकनवतिः नव च पञ्चैव ।
ग्रैवेयाणां त्रित्रिषु अनुदिशानुत्तरे भवन्ति ॥ ४६१ ॥

बत्तीसट्ठा । द्वात्रिंशल्लक्षाण्यष्टाविंशतिलक्षद्वादशलक्षाष्टलक्षाण्येव यथासंख्यं सौधर्मादिचतुष्के विमानानि भवन्ति । ब्रह्मब्रह्मोत्तरे मिलित्वा लक्षचतुष्कप्रमितानि विमानानि भवन्ति ॥ ४५९ ॥

तत्तो जुम्मा । ततो लान्तवादियुग्मत्रये यथासंख्यं पञ्चाशत्सहस्राणि चत्वारिंशत्सहस्राणि षट्सहस्राणि विमानानि आनतादिकल्पचतुष्के पिण्डेन सप्तशतानि विमानानि भवन्ति ॥ ४६० ॥

एक्कारसत्त । एकादशसमधिकशतं सप्तसमधिकशतं एकनवतिः नव च पञ्चैव यथासंख्यं अधस्तनादिग्रैवेयकाणां त्रित्रिषु अनुदिशायामनुत्तरे च विमानानि भवन्ति ॥ ४६१ ॥

तीन गाथाओं द्वारा सौधर्मादिकों के विमानों की संख्या कहते हैं—

गाथार्थ:—बत्तीस लाख, अट्ठाईस लाख, बारह लाख और आठ लाख क्रम से सौधर्मादिक चार कल्पों के विमानों का प्रमाण है, तथा ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर इन दोनों के (मिलाकर) विमानों का प्रमाण चार लाख है इसके बाद के तीन युगलों में क्रम से पचास हजार, चालीस हजार और छह हजार हैं, तथा आनतादि चार कल्पों के विमानों का प्रमाण सम्मिलित रूप से सात सौ है। एक सौ ग्यारह, एक सौ सात, इक्यानवे, नव और पाँच ये क्रम से तीन तीन ग्रैवेयकों, अनुदिश और अनुत्तर विमानों का प्रमाण है ॥ ४५९, ४६०, ४६१ ॥

(**तीनों गाथाओं का**) **विशेषार्थ**:—स्वर्गों के सम्पूर्ण विमानों की संख्या—

[चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्रमांक	स्वर्गों के नाम	विमानों की संख्या	क्रमांक	स्वर्गों के नाम	विमानों की संख्या
१	सौधर्म	३२ लाख (३२०००००)	११	शतार	३०१९ } (६ हजार)
२	ऐशान	२८ लाख (२८०००००)	१२	सहस्रार	२९८१ }
३	सानत्कुमार	१२ लाख (१२०००००)	१३	आनत प्राणत	४४० या ४०० } (७००)
४	माहेन्द्र	८ लाख (८०००००)	१४	आरण अच्युत	२६० या ३०० }
५	ब्रह्म	२०००९६ } (४ लाख)	१५	३ अधस्तन ग्रैवेयक	१११
६	ब्रह्मोत्तर	१९९९०४ }	१६	३ मध्यम "	१०७
७	लान्तव	२५०४२ } (५० हजार)	१७	३ उपरिम "	९१
८	कापिष्ठ	२४९५८ }	१८	अनुदिश	९
९	शुक्र	२००२० } (४० हजार)	१९	अनुत्तर	५
१०	महाशुक्र	१९९८० }		योगफल—	८४९७०२३ है।

इदानीं प्रथमादिस्वर्गेषु प्रतरसंख्याप्रतिपादनार्थमिन्द्रकाणां प्रमाणं निरूपयति—

इगितीससत्त चत्तारि दोण्णि एक्केक्क छक्क चदुकप्पे ।
तित्तिय एक्केक्किंदियणामा उडुआदितेवट्ठी ॥ ४६२ ॥

एकत्रिंशत्सप्त चत्वारि द्वे एकमेकं षट्कं चतुः कल्पे ।
त्रीणि त्रीणि एकमेकं इन्द्रकनामानि ऋत्वादित्रिषष्टिः ॥ ४६२ ॥

इगितीस । सौधर्मयुग्मे एकत्रिंशदिन्द्रकाणि सनत्कुमारयुग्मे सप्तेन्द्रकाणि ब्रह्मयुग्मे चत्वारीन्द्रकाणि लान्तवयुग्मे द्वीन्द्रके शुक्रयुग्मे एकमिन्द्रकं शतारयुग्मे एकमिन्द्रकं आनतादिचतुर्षु कल्पेषु षडिन्द्रकाणि । अधस्तनादिषु ग्रैवेयकेषु प्रत्येकं त्रीणि त्रीणीन्द्रकाणि नवानुदिशायामेकमिन्द्रकं पञ्चानुत्तरे चैकमिन्द्रकं । एतेषां तु विमानानामिन्द्रकाणां नामानि च त्रिषष्टिर्भवन्ति ॥ ४६२ ॥

प्रथमादि स्वर्गों में प्रतरसंख्या प्रतिपादन करने के लिए इन्द्रक विमानों के प्रमाण का निरूपण करते हैं—

गाथार्थ :— इकतीस, सात, चार, दो, एक, एक, चार कल्पों में छह, तीन, तीन, तीन,

एक और एक ये क्रम से इन्द्रक विमान हैं। इनके ऋतु विमानादि त्रेसठ नाम हैं ॥ ४६२ ॥

विशेषार्थ :—सौधर्म युगल में ३१ इन्द्रक, सानत्कुमार युगल में सात, ब्रह्म युगल में ४, लान्तव युगल में २, शुक्र युगल में एक, शतार युगल में एक, आनतादि चार कल्पों में ६ इन्द्रक, तीन अधस्तन ग्रैवेयकों में ३ इन्द्रक, तीन मध्यम ग्रैवेयकों में ३ इन्द्रक तीन उपरिम ग्रैवेयकों में ३ इन्द्रक, ९ अनुदिशों में एक और पांच अनुत्तरों में एक इन्द्रक विमान है। ये इन्द्रक विमान ६३ हैं, और इनके त्रेसठ ही नाम हैं। एक एक प्रस्तर में एक एक ही इन्द्रक विमान होता है।

एतेषामिन्द्रकाणामूर्ध्वान्तरं तन्नामावतारं चाह—

एक्केक्कइंदयस्स य विच्चालमसंखजोयणपमाणं ।
एदाणं णामाणं वोच्छामो आणुपुव्वीओ ॥ ४६३ ॥

एकैकमिन्द्रकस्य च विचालं असंख्यातयोजनप्रमाणं ।
एतेषां नामानि वक्ष्यामः आनुपूर्व्या ॥ ४६३ ॥

एक्केक्क । एकैकमिन्द्रकस्यान्तरालमसंख्यातयोजनं स्यात् । एतेषामिन्द्रकाणां नामानि आनुपूर्व्या वक्ष्यामः ॥ ४६३ ॥

इन इन्द्रकविमानों का ऊर्ध्व अन्तर और इनके नाम का अवतार कहते हैं—

गाथार्थ :— एक एक इन्द्रक के बीच का अन्तराल असंख्यात योजन प्रमाण है। इनके नामों को आनुपूर्वी क्रम से कहेंगे ॥ ४६३ ॥

विशेषार्थ :—सुगम है।

उक्तेन्द्रकाणां नामानि गाथाषट्केनाह—

उडुविमलचंदवग्गू वीरहणं णंदणं च णलिणं च ।
कंचण रोहिद चंचं मरुदं रिद्धिसय वेलुरियं ॥ ४६४ ॥

रुचग रुचिरंक फलिहं तवणीयं मेघअब्भ हारिद्दं ।
पउमं लोहिद् वज्जं णंदावत्तं पहंकरयं ॥ ४६५ ॥

विट्ठक गजमित्तपहा अंजण वणमाल णाग गरुडं च ।
लंगल बलभद्दं च य चक्कं चरिमं च अडतीसो ॥ ४६६ ॥

ऋतुविमलचन्द्रवल्गुवीरारुणनन्दनं च नलिनं च ।
काञ्चनं रोहितं चञ्चत् मरुत् ऋद्धीशं वैडूर्यम् ॥ ४६४ ॥

रुचकं रुचिरं अङ्कं स्फटिकं तपनीयं मेघं अभ्रं हारिद्रं ।
पद्मं लोहितं वज्रं नन्द्यावर्तं प्रभङ्करं ॥ ४६५ ॥

पृष्ठकं गजं मित्रं प्रभं अञ्जनं वनमालं नागं गरुडं च।
लाङ्गलं बलभद्रं च चक्रं चरमं च अष्टात्रिंशत् ॥ ४६६ ॥

उडुविमल। ऋतु विमलं चन्द्रं वल्गु वीरं अरुणं नन्दनं च नलिनं च काञ्चनं रोहितं चञ्चत् मरुद् ऋद्धीशं वैडूर्यं ॥ ४६४ ॥

रुचग। रुचकं रुचिरं अङ्कं स्फटिकं तपनीयं मेघं अभ्रं हारिद्रं पद्मं लोहितं वज्रं नन्द्यावर्तं प्रभङ्करं (३१) ॥ ४६५ ॥

पिट्ठक। पृष्ठकं गजं मित्रं प्रभं अञ्जनं वनमालं नागं गरुडं च लाङ्गलं बलभद्रं च चरमेन्द्रकं चक्रं इति (७) सौधर्मादिचतुष्के पिण्डेनाष्टात्रिंशदिन्द्रकनामानि ॥ ४६६ ॥

उक्त इन्द्रक विमानों के नाम छह गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—ऋतु, विमल, चन्द्र, वल्गु, वीर, अरुण, नन्दन, नलिन, काञ्चन, रोहित, चञ्च, मरुत्, ऋद्धीश, वैडूर्य, रुचक, रुचिर, अङ्क, स्फटिक, तपनीय, मेघ, अभ्र, हारिद्र, पद्म, लोहित, वज्र, नन्द्यावर्त, प्रभङ्कर, पृष्ठक, गज, मित्र, प्रभा, अञ्जन, वनमाल, नाग, गरुण, लाङ्गल, बलभद्र और अन्तिम चक्र नामा इन्द्रक हैं। इस प्रकार अड़तीस इन्द्रक हैं ॥ ४६४, ४६५, ४६६ ॥

विशेषार्थ :—१ ऋतु, २ चन्द्र, ३ विमल, ४ वल्गु, ५ वीर, ६ अरुण, ७ नन्दन, ८ नलिन, ९ काञ्चन, १० रोहित, ११ चञ्च, १२ मरुत्, १३ ऋद्धीश, १४ वैडूर्य, १५ रुचक, १६ रुचिर, १७ अंक, १८ स्फटिक, १९ तपनीय, २० मेघ, २१ अभ्र, २२ हारिद्र, २३ पद्म, २४ लोहित, २५ वज्र, २६ नन्द्यावर्त, २७ प्रभाकर, २८ पृष्ठक, २९ गज, ३० मित्र और ३१ प्रभा ये ३१ इन्द्रक विमान सौधर्मेशान नामक प्रथम युगल में अवस्थित हैं। १ अञ्जन, २ वनमाल, ३ नाग, ४ गरुड़, ५ लाङ्गल, ६ बलभद्र ७ और चक्र इन सात इन्द्रक विमानों का अवस्थान सानत्कुमार-माहेन्द्र नामक दूसरे युगल में है। इस प्रकार चार स्वर्गों के (३१+७) ३८ इन्द्रक विमान हैं।

रिट्ठसुरसमिदिबह्मं बह्मुत्तरबह्महिदयलांतवयं।
सुक्कं खलु सुक्कदुगे सदरविमाणं तु सदरदुगे ॥ ४६७ ॥

अरिष्टसुरसमिति ब्रह्म ब्रह्मोत्तरब्रह्महृदयलान्तवकं।
शुक्रं खलु शुक्रद्विके शतारविमानं तु शतारयुगे ॥ ४६७ ॥

रिट्ठसुरस। अरिष्टसुरसमिति ब्रह्मब्रह्मोत्तरनामानीन्द्रकाणि ब्रह्मयुगे ब्रह्महृदयं लान्तवकमिति द्वयं लान्तवयुगे शुक्रयुगे खलु शुक्रेन्द्रकं शतारद्विके शतारविमानेन्द्रकम् ॥ ४६७ ॥

गाथार्थ :—अरिष्ट, सुरस, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर ये तीसरे युगल के, ब्रह्महृदय और लान्तव ये चौथे युगल के, शुक्रद्विक का शुक्र और शतार युगलका शतार नामक इन्द्रक विमान है ॥ ४६७ ॥

विशेषार्थ :—तीसरे ब्रह्मयुगल में अरिष्ट, सुरस, ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर ये चार, चौथे लान्तव युगल में ब्रह्महृदय और लान्तव ये दो, पाँचवें शुक्रयुगल में एक शुक्र तथा छठे शतार युगल में एक शतार इन्द्रक अवस्थित है।

आणद पाणदपुप्फय सातक तह आरणच्चुदवसाणे ।
तो गेवेज सुदंसिण अमोह तह सुप्पबुद्धं च ॥ ४६८ ॥
जसहर सुभद्दणामा सुविसालं सुमणसं च सोमणसं ।
पीदिंकरमाइच्चं चरिमे सव्वत्थसिद्धी दु ॥ ४६९ ॥

आनतप्राणतपुष्पक शातकं तथा आरणाच्युतावसाने ।
ततः ग्रैवेयके सुदर्शनं अमोघं तथा सुप्रबुद्धं च ॥ ४६८ ॥
यशोधरं सुभद्रनाम सुविशालं सुमनसं च सौमनसं ।
प्रीतिकरं आदित्यं चरमे सर्वार्थसिद्धिस्तु ॥ ४६९ ॥

आणद । आनतं प्राणतपुष्पकं शातकं तथा आरणाच्युतमित्येन्द्रकनामानि आनता-च्च्युतावसाने स्युः । ततो ग्रैवेयकेषु सुदर्शनं अमोघं तथा सुप्रबुद्धं च ॥ ४६८ ॥

जसहर । यशोधरं सुभद्रनाम सुविशालं सुमनसं च सौमनसं प्रीतिकरं नवानुदिशायामादि-त्येन्द्रकं चरमे सर्वार्थसिद्धीन्द्रकं ॥ ४६९ ॥

गाथार्थ :—आनत, प्राणत, पुष्पक, शातक, आरण और अच्युत ये छह आनतादि में, तथा इनके बाद ग्रैवेयक में सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, सुविशाल, सुमनस, सौमनस और प्रीतिङ्कर ये नव इन्द्रक हैं। आदित्य इन्द्रक एवं अन्त में एक सर्वार्थसिद्धि नामका इन्द्रक है ॥ ४६८, ४६९ ॥

विशेषार्थ:—आनतादि चार कल्पों में आनत, प्राणत, पुष्पक, शातक, आरण और अच्युत ये छह इन्द्रक विमान हैं, तथा नौ ग्रैवेयक में क्रम से सुदर्शन अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, सुभद्र, सुविशाल, सुमनस, सौमनस और प्रीतिङ्कर ये नव इन्द्रक हैं। नौ अनुदिशों में एक आदित्य इन्द्रक और पाँच अनुत्तरों में एक सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमानों का अवस्थान है।

मेरुतलाद् दिवड्ढमित्यादिगाथोक्तार्थे सर्वत्र विमानानि तिष्ठन्ति किमिति प्रश्ने परिहारमाह—

णाभिगिरिचूलिगुवरिं वालग्गंतर ट्ठियो हु उडु इंदो ।
सिद्धीदो धो बारह जोयणमाणम्हि सव्वट्ठं ॥ ४७० ॥

नाभिगिरिचूलिकोपरि बालाग्रान्तरे स्थितः हि ऋत्विन्द्रकः ।
सिद्धितः अधः द्वादशयोजनमाने सर्वार्थः ॥ ४७० ॥

णाभिगिरि । नाभिगिरिचूलिकोपरि बालाग्रान्तरे स्थितः खलु ऋत्विन्द्रकः सिद्धक्षेत्राधस्तो द्वादशयोजनप्रमाणेन सर्वार्थसिद्धिस्तिष्ठति ॥ ४७० ॥

'मेरुतलादुवरि' इत्यादि गाथा (४५८) में कहे हुए अर्थानुसार क्या सर्वत्र विमानों का अवस्थान है ? इस प्रश्न के परिहार में कहते हैं :—

गाथार्थ :—नाभिगिरि की चूलिका के ऊपर बाल का अग्र भाग प्रमाण अन्तर छोड़कर ऋतु विमान स्थित है, तथा सिद्धक्षेत्र से बारह योजन प्रमाण नीचे सर्वार्थसिद्धि नाम का इन्द्रक विमान अवस्थित है ॥ ४७० ॥

विशेषार्थ :—सुदर्शन मेरु की चूलिका के ऊपर बाल का अग्र भाग प्रमाण अन्तर छोड़ कर प्रथम ऋतु विमान अवस्थित है, और सिद्धक्षेत्र से बारह योजन नीचे अन्तिम सर्वार्थसिद्धि नामका इन्द्रक विमान स्थित है । अर्थात् सुदर्शन मेरु की चूलिका के एक बालाग्र ऊपर से सिद्धक्षेत्र से १२ योजन नीचे तक का जो क्षेत्र है, उसमें ऊर्ध्वलोक की अवस्थिति है ।

कल्पानामितरेषां च विक्रियादीनां सीमानमाह—

सगसगचरिमिंदयधयदंडं कप्पावणीणमंतं खु ।
कप्पादीदवणिस्स य अंतं लोयंतयं होदि ॥ ४७१ ॥

स्वकस्वकचरमेन्द्रकध्वजदण्डः कल्पावनीनां अन्तः खलु ।
कल्पातीतावनेश्च अन्तः लोकान्तकः भवति ॥ ४७१ ॥

सगसग । स्वकीय स्वकीयचरमेन्द्रकध्वजदण्डः कल्पावनीनामन्तः खलु स्यात् । कल्पातीतावनेरन्तो लोकस्यान्तो भवति ॥ ४७१ ॥

कल्प और कल्पातीतों की (विक्रिया आदि की) सीमा कहते हैं:—

गाथार्थ :—अपने अपने अन्तिम इन्द्रक का ध्वजादण्ड ही [अपनी अपनी] कल्प अवनी का अन्त है, और जहाँ कल्पातीत अवनी का अन्त होता है, वहीं लोक का अन्त है ॥ ४७१ ॥

विशेषार्थ :—अपने अपने अन्तिम इन्द्रक का ध्वजादण्ड ही अपनी अपनी कल्प अवनी का अन्त है । जैसे :—प्रभा नामक अन्तिम इन्द्रक के ध्वजा दण्ड पर सौधर्म युगल का, चक्र नामक अन्तिम इन्द्रक के ध्वजादण्ड पर सानत्कुमार युगल का अन्त है । इसी प्रकार आनतादि कल्पों के अच्युत नामक अन्तिम इन्द्रक के ध्वजा दण्ड पर सम्पूर्ण कल्प अवनी का अन्त है, तथा कल्पातीत अवनी का जहाँ अन्त है वहीं लोकका अन्त है ।

अथेन्द्रकाणां विस्तारमाह—

माणुसखित्तपमाणं उडु सव्वट्ठं तु जंबुदीवसमं ।
उभयविसेसे रूऊणिंदयभजिदे दु हाणिचयं ॥ ४७२ ॥

मानुषक्षेत्रप्रमाणं ऋतु सर्वार्थं तु जम्बुद्वीपसमं ।
उभयविशेषे रूपोनेन्द्रकभक्ते तु हानिचयम् ॥ ४७२ ॥

माणुसखित्त । मानुषक्षेत्रप्रमाणं ४५००००० ऋत्विन्द्रकं सर्वार्थसिद्धीन्द्रकं तु जम्बुद्वीपसमं १ लक्ष उभयोर्विशेषे शोधिते ४४ लक्षरूपन्यूनेन्द्रकं ६२ भक्ते ७०९६७ दो $\frac{२३}{३१}$ इदमिन्द्रकं प्रति हानिचयं स्यात् अस्य विवरणं पञ्चोत्तरचत्वारिंशल्लक्षेभ्यः अस्मिन् ७०९६७ दो $\frac{२३}{३१}$ अपनीते ४४२९०३२ $\frac{८}{३१}$ द्वितीयेन्द्रकप्रमाणं स्यात् । एवं यावदेकलक्षमवतिष्ठते तावदपनीते तत्तदुत्तरोत्तरेन्द्रकप्रमाणं स्यात् ॥ ४७२ ॥

इन्द्रक विमानों का विस्तार कहते हैं—

गाथार्थ :—प्रथम ऋतु इन्द्रक विमान का विस्तार मनुष्य क्षेत्र (ढाई द्वीप) के बराबर और अन्तिम सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक विमान का विस्तार जम्बूद्वीप के बराबर है। उन दोनों के प्रमाण को परस्पर घटाकर शेष में, एक कम इन्द्रक प्रमाण का भाग देने पर हानि (वृद्धि) चय का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ४७२ ॥

विशेषार्थ :—मानुष क्षेत्र का प्रमाण ४५००००० योजन [१८०००००००० मील] है अतः इतने ही विस्तार वाला ऋतु नामक प्रथम इन्द्रक विमान है, तथा जम्बूद्वीप का प्रमाण १००००० योजन [४००००००० मील] है, और इतना ही प्रमाण सर्वार्थसिद्धि नामक अन्तिम इन्द्रक विमान का है। इन दोनों को परस्पर घटाने पर ४४००००० योजन शेष रहे। इनमें एक कम इन्द्रक के प्रमाण (६३—१) का भाग देने पर प्रत्येक इन्द्रक के हानिचय का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—
$\frac{४५००००० - १०००००}{६३ - १}$ = ७०९६७ $\frac{२३}{३१}$ योजन हानि चय का प्रमाण है। इसे ४५००००० योजनों में से घटाने पर ४४२९०३२ $\frac{८}{३१}$ योजन दूसरे इन्द्रक का प्रमाण है। इसमें से पुनः हानिचय का प्रमाण घटा देने पर तीसरे इन्द्रक का प्रमाण प्राप्त होगा। इस प्रकार जब तक एक लाख योजन अवशेष न रहे, तब तक घटाते जाना चाहिए। यथा—

[कृपया चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्रमांक	इन्द्रकों के नाम	विमानों का विस्तार	क्रमांक	इन्द्रकों के नाम	इन्द्रक विमानों का विस्तार	क्रमांक	इन्द्रकों के नाम	इन्द्रक विमानों का विस्तार
१	ऋतु	४५००००० योο	२२	हारिद्र	३००९६७७ $\frac{१३}{३१}$ योο	४३	ब्रह्महृदय	१५१९३५४ $\frac{२६}{३१}$ योο
२	चन्द्र	४४२९०३२ $\frac{८}{३१}$ "	२३	पद्म	२९३८७०९ $\frac{२१}{३१}$ "	४४	लान्तव	१४४८३८७ $\frac{३}{३१}$ "
३	विमल	४३५८०६४ $\frac{१६}{३१}$ "	२४	लोहित	२८६७७४१ $\frac{२९}{३१}$ "	४५	शुक्र	१३७७४१९ $\frac{११}{३१}$ "
४	वल्गु	४२८७०९६ $\frac{२४}{३१}$ "	२५	वज्र	२७९६७७४ $\frac{६}{३१}$ "	४६	शतार	१३०६४५१ $\frac{१९}{३१}$ "
५	वीर	४२१६१२९ $\frac{१}{३१}$ "	२६	नन्द्या०	२७२५८०६ $\frac{१४}{३१}$ "	४७	आनत	१२३५४८३ $\frac{२७}{३१}$ "
६	अरुण	४१४५१६१ $\frac{९}{३१}$ "	२७	प्रभाकर	२६५४८३८ $\frac{२२}{३१}$ "	४८	प्राणत	११६४५१६ $\frac{४}{३१}$ "
७	नन्दन	४०७४१९३ $\frac{१७}{३१}$ "	२८	पृष्ठक	२५८३८७० $\frac{३०}{३१}$ "	४९	पुष्पक	१०९३५४८ $\frac{१२}{३१}$ "
८	नलिन	४००३२२५ $\frac{२५}{३१}$ "	२९	गज	२५१२९०३ $\frac{७}{३१}$ "	५०	शातक	१०२२५८० $\frac{२०}{३१}$ "
९	काञ्चन	३९३२२५८ $\frac{२}{३१}$ "	३०	मित्र	२४४१९३५ $\frac{१५}{३१}$ "	५१	आरण	९५१६१२ $\frac{२८}{३१}$ "
१०	रोहित	३८६१२९० $\frac{१०}{३१}$ "	३१	प्रभा	२३७०९६७ $\frac{२३}{३१}$ "	५२	अच्युत	८८०६४५ $\frac{५}{३१}$ "
११	चञ्च	३७९०३२२ $\frac{१८}{३१}$ "	३२	अञ्जन	२३००००० "	५३	सुदर्शन	८०९६७७ $\frac{१३}{३१}$ "
१२	मरुत्	३७१९३५४ $\frac{२६}{३१}$ "	३३	वनमाल	२२२९०३२ $\frac{८}{३१}$ "	५४	अमोघ	७३८७०९ $\frac{२१}{३१}$ "
१३	ऋद्धीश	३६४८३८७ $\frac{३}{३१}$ "	३४	नाग	२१५८०६४ $\frac{१६}{३१}$ "	५५	सुप्रबुद्ध	६६७७४१ $\frac{२९}{३१}$ "
१४	वैडूर्य	३५७७४१९ $\frac{११}{३१}$ "	३५	गरुड	२०८७०९६ $\frac{२४}{३१}$ "	५६	यशोधर	५९६७७४ $\frac{६}{३१}$ "
१५	रुचक	३५०६४५१ $\frac{१९}{३१}$ "	३६	लाङ्गल	२०१६१२९ $\frac{१}{३१}$ "	५७	सुभद्र	५२५८०६ $\frac{१४}{३१}$ "
१६	रुचिर	३४३५४८३ $\frac{२७}{३१}$ "	३७	बलभद्र	१९४५१६१ $\frac{९}{३१}$ "	५८	सुविशाल	४५४८३८ $\frac{२२}{३१}$ "
१७	अंक	३३६४५१६ $\frac{४}{३१}$ "	३८	चक्र	१८७४१९३ $\frac{१७}{३१}$ "	५९	सुमनस्	३८३८७० $\frac{३०}{३१}$ "
१८	स्फटिक	३२९३५४८ $\frac{१२}{३१}$ "	३९	अरिष्ट	१८०३२२५ $\frac{२५}{३१}$ "	६०	सौमनस्	३१२९०३ $\frac{७}{३१}$ "
१९	तपनीय	३२२२५८० $\frac{२०}{३१}$ "	४०	सुरस	१७३२२५८ $\frac{२}{३१}$ "	६१	प्रीतिंकर	२४१९३५ $\frac{१५}{३१}$ "
२०	मेघ	३१५१६१२ $\frac{२८}{३१}$ "	४१	ब्रह्म	१६६१२९० $\frac{१०}{३१}$ "	६२	आदित्य	१७०९६७ $\frac{२३}{३१}$ "
२१	अभ्र	३०८०६४५ $\frac{५}{३१}$ "	४२	ब्रह्मोत्तर	१५९०३२२ $\frac{१८}{३१}$ "	६३	सर्वार्थ-सिद्धि	१००००० योजन

अतः श्रेणीबद्धानामवस्थितस्वरूपं निरूपयति—

बासट्ठी सेढिगया पढमिंदे चउदिसासु पत्तेयं ।
पडिदिसमेक्केक्कोणं अणुद्दिसाणुत्तरेक्कोत्ति ॥ ४७३ ॥
द्वाषष्टिः श्रेणिगतानि प्रथमेन्द्रे चतुर्दिशासु प्रत्येकं ।
प्रतिदिशमेकैकोनं अनुदिशानुत्तरे एकमिति ॥ ४७३ ॥

बासट्ठी। प्रथमेन्द्रके चतुर्दिक्षु प्रत्येकं श्रेणीबद्धविमानानि द्वाषष्टिर्भवन्ति । इत उपरि द्वितीयपटलादौ प्रतिदिशमेकैकोन चेत् उपर्युपरीष्टश्रेणीबद्धप्रमाणानि । यावदनुदिशायामनुत्तरे चैकमेवावशिष्यते । अत्र दक्षिणोत्तरेन्द्रविभागेन संकलितधनानयनविधानमुच्यते । सौधर्मस्यैकदिक्-श्रेणीबद्धानि ६२ दिक्त्रये त्रिभिर्गुणितानि १८६ प्रथमादिः उत्तरं ३ गच्छ ३१ अत्र हीनसंकलित-माश्रित्य धनमानीयते । पद ३१ मेगेण विहीणं ३० दुभाजिदं १५ उत्तरेण ३ संगुणिदं ४५ इदं ऋणं पभवजुदं १८६ अस्मिन् प्रभवे ऋणं ४५ अपनयेत् १४१ पद ३१ गुणिदं ४३७१ इदं सौधर्म-श्रेणीबद्धप्रमाणं स्यात् । अत्रेन्द्रक ३१ प्रक्षेपे कृते एवं ४४०२ । एवमीशाने आदि ६२ उत्तर १ गच्छं ३१ ज्ञात्वा संकलितधनमानेतव्यम् १४८७ ईशाने दिक्न्द्रकप्रक्षेपो न कर्तव्यः उत्तरेन्द्राणामिन्द्रका-भावात् । सौधर्मस्यैकदिक्श्रेणीबद्धेषु ६२ स्वगच्छे ३१ अपनीते शेषं ३१ सनत्कुमारमाहेन्द्रयोरेक-दिक्श्रेणीबद्धप्रमाणं स्यात् । अत्रैव ३१ स्वस्वगच्छे ७ अपनीते शेषमुपरितनैकदिक्श्रेणीबद्ध-प्रमाणं स्यात् सौ-ऐ, ६२ । स-मा, ३१ । ब्र-ब्र, २४ । लां-का, २० । शुक्र-महा, १८ । श-स, १७ । आ-४, १६ । अधोग्रैवेयक, १० । म-ग्रै, ७ । उप० ग्रै, ४ । नव, १ । एतस्मिन्नेव श्रेणीबद्धप्रमाणे दक्षिणेन्द्रापेक्षया त्रिभिर्गुणिते आदिः उत्तरेन्द्रापेक्षया एकेन गुणित आदिः । सा-९३ । मा-३१ । ब्र-ब्र, ९६ । लां-का, ८० । शुक्र-महा, ७२ । श-स, ६८ । आ-४, ६४ । अधोग्रैवेयक, ४० । म-ग्रै, २८ । उप० ग्रै, १६ । नवानुदिशायां ४ । उत्तरा: सा-३ । मा-१ । उपरि सर्वत्र चतस्र: ४ । उत्तराः गच्छास्तु स्वस्वपटलप्रमाणं स्यात् सनत्कुमारादौ ७ । ४ । २ । १ । १ । ६ । ३ । ३ । ३ । १ इत्यमादयुत्तर-गच्छं ज्ञात्वा तत्तद्धनं उपर्युपरि दक्षिणोत्तरेन्द्राणामेवमानेतव्यं ॥ ४७३ ॥

यहाँ से आगे श्रेणीबद्ध विमानों के अवस्थान का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—प्रथम इन्द्रक विमान की चारों दिशाओं में बासठ बासठ श्रेणीबद्ध विमान हैं। इसके ऊपर द्वितीयादि पटलों की प्रत्येक दिशा में एक एक कम होते हुए अनुदिश और अनुत्तर की प्रत्येक दिशा में एक एक ही श्रेणीबद्ध है ॥ ४७३ ॥

विशेषार्थ :—प्रथम कल्प युगल में ३१ इन्द्रक विमान हैं। इनमें से प्रथम ऋतु इन्द्रक विमान की चारों दिशाओं में से प्रत्येक दिशा में ६२-६२ श्रेणीबद्ध विमान अवस्थित हैं। इसके आगे दूसरे, तीसरे व चौथे आदि इन्द्रकों में व उत्तरोत्तर एक एक कम (६१, ६०, ५९ आदि) होते हुए अनुदिश और अनुत्तर इन्द्रक विमानों की चारों दिशाओं में मात्र एक एक ही श्रेणीबद्ध विमान अवशेष रहे हैं।

यहाँ दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र के विभाग से सङ्कलित धन प्राप्त करने का विधान कहते हैं :— सौधर्म कल्प में एक दिशागत श्रेणीबद्ध विमानों का प्रमाण ६२ है। चूंकि पूर्व, पश्चिम और दक्षिण ये तीनों दिशाएं इसी कल्प के आधीन हैं, अत: इन तीनों दिशाओं के श्रेणीबद्ध विमानों का प्रमाण प्राप्त करने के लिए ६२ को ३ से गुणित करना चाहिए। इसका गुणनफल (६२ × ३) १८६ प्राप्त हुआ। यह १८६ ही मुख अर्थात् प्रभव का प्रमाण है, तथा यही आदि धन है। उत्तर धन ३ है। इसी को हानि चय भी कहते हैं, क्योंकि सौधर्म सम्बन्धी तीन दिशाओं के तीन श्रेणीबद्ध प्रत्येक पटल में घटते गये हैं। पटल ३१ हैं अत: गच्छ ३१ है। अब यहाँ हीन सङ्कलन का आश्रय कर धन निकालते हैं 'पदमेगेण विहीणं' इत्यादि गाथा सूत्र १६४ के अनुसार पद (गच्छ) में से एक घटा कर आधा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसको उत्तर धन (३) से गुणित कर लब्ध को आदि धन (१८६) में से घटा कर अवशेष को पद (३१) से गुणित करने पर सौधर्म संबंधी श्रेणीबद्ध विमानों का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा:— $\frac{३१-१}{२} \times ३ = ४५$; (१८६—४५) × ३१ = ४३७१ सौधर्म के श्रेणीबद्ध विमानों का प्रमाण है। इसमें सौधर्म कल्प के ३१ इन्द्रक मिला देने पर (४३७१ + ३१) = ४४०२ प्रमाण प्राप्त होता है।

उपर्युक्त ३१ इन्द्रक विमानों की केवल उत्तरदिशागत श्रेणीबद्ध विमान ही इस कल्प के अन्तर्गत हैं अतएव ऐशान कल्प का आदि धन ६२, उत्तर धन १ और गच्छ ३१ है। उपर्युक्त नियमानुसार यहाँ (ऐशान कल्प में) $\frac{३१-१}{२} \times १ = १५$; (६२ — १५) × ३१ = १४५७ श्रेणी बद्ध विमानों का प्रमाण प्राप्त होता है। यहाँ इन्द्रक विमानों का प्रमाण नहीं मिलाना, क्योंकि उत्तरेन्द्र के इन्द्रक विमानों का अभाव है। अर्थात् सर्व (३१) इन्द्रक विमान सौधर्म के आधीन हैं ऐशान के नहीं।

सौधर्म कल्प के एक दिशा सम्बंधी श्रेणीबद्धों का प्रमाण ६२ है, इनमें से स्व गच्छ (३१) घटाने पर (६२—३१) = ३१ अवशेष रहे। यही सानत्कुमारमाहेन्द्र में प्रथम पटल में एक दिशा सम्बंधी श्रेणीबद्धों का प्रमाण है। इसी प्रकार पूर्व पूर्व युगल के प्रथम पटल के एक दिशा सम्बंधी श्रेणीबद्धों के प्रमाण में से अपने अपने पटल प्रमाण गच्छ घटाने पर उत्तरोत्तर युगलों के प्रथम पटल के एक दिशा सम्बंधी श्रेणी बद्धों का प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे :— सौधर्मैशान में ६२, सानत्कुमार माहेन्द्र में (६२—३१) = ३१, ब्रह्मब्रह्मोत्तर में (३१—७) = २४, लान्तव कापिष्ठ में (२४ — ४) = २०, शुक्र महाशुक्र में (२० — २) = १८ शतार सहस्रार में (१८ — १) = १७, आनतादि चार कल्पों में (१७ — १) = १६, अधोग्रैवेयक में (१६ — ६) = १०, मध्यग्रैवेयक में (१० — ३) = ७, उपरिमग्रैवेयक में (७ — ३) = ४ और नव अनुदिशों में (४ — ३) = १ श्रेणीबद्ध विमान एक दिशा सम्बन्धी है। इन श्रेणीबद्ध विमानों के प्रमाण को दक्षिणेन्द्र अपेक्षा तीन से और उत्तरेन्द्र अपेक्षा एक से गुणा करने पर, तथा जहाँ दक्षिणेन्द्र उत्तरेन्द्र की कल्पना नहीं है, वहाँ चार से गुणा

करने पर आदि धन का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—सा० के (३१ × ३) = ९३, मा० के (३१ × १) = ३१, ब्रह्मब्रह्मोत्तर कल्प में ९६, लां–कापिष्ठ कल्प में ८०, शुक्रमहाशुक्र कल्पमें ७२, श–सहस्रार कल्प में ६८, आनतादि चार में ६४, अधोग्रैवेयक में ४०, मध्यग्रैवेयक में २८, उपरिम ग्रैवेयक में १६ और नव अनुदिश विमानों में ४ आदि धनों का प्रमाण है। ऋणरूप चय अर्थात् उत्तर धन सानत्कुमार में ३ माहेन्द्र में १ है, इसके ऊपर सर्वत्र ४ है। गच्छ का प्रमाण अपने अपने पटल प्रमाण होता है। यथा—सानत्कुमार आदि में क्रम से ७. ४, २. १, १, ६, ३, ३, ३ और १ है। इस प्रकार आदि धन, उत्तर धन और गच्छ का ज्ञान हो जाने पर दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र के श्रेणी बद्धों का सर्व सङ्कलित धन प्राप्त करना चाहिए। यथा—

$\frac{७-१}{२}$ × ३ = ९; (९३ – ९) × ७ = ५८८ सानत्कुमार कल्प के श्रेणीबद्धों का प्रमाण है।
$\frac{७-१}{२}$ × १ = ३; (३१ — ३) × ७ = १९६ माहेन्द्र " " " " " "
$\frac{४-१}{२}$ × ४ = ६; (९६ — ६) × ४ = ३६० ब्रह्मब्रह्मोत्तर कल्प के श्रेणीबद्धों का प्रमाण है।
$\frac{२-१}{२}$ × ४ = २; (८० — २) × २ = १५६ लान्तव कापिष्ठ " " " " " "
$\frac{१-१}{२}$ × ४ = ०; (७२ — ०) × १ = ७२ शुक्रमहाशुक्र " " " " " "
$\frac{१-१}{२}$ × ४ = ०; (६८ — ०) × १ = ६८ शतार सह० " " " " " "
$\frac{६-१}{२}$ × ४ = १०; (६४ — १०) × ६ = ३२४ आनतादि ४ " " " " " "
$\frac{३-१}{२}$ × ४ = ४; (४० — ४) × ३ = १०८ अधोग्रैवेयक " " " " " "
$\frac{३-१}{२}$ × ४ = ४; (२८ — ४) × ३ = ७२ मध्य " " " " " " "
$\frac{३-१}{२}$ × ४ = ४; (१६ — ४) × ३ = ३६ उपरिम " " " " " " "
$\frac{१-१}{२}$ × ४ = ०; (४ — ०) × १ = ४ अनुदिशों " " " " " "

अथ तत्र प्रथमेन्द्रकस्य श्रेणीबद्धानामवस्थितोद्देशकमुपदिशति—

उडुसेढीबद्धदलं सयंभुरमणुवहिपणिधिभागम्हि।
आइल्लतिण्णि दीवे तिण्णि समुद्दे य सेसा हु ॥ ४७४ ॥

ऋतुश्रेणीबद्धदलं स्वयम्भुरमणोदधिप्रणिधिभागे।
आदिमत्रिषु द्वीपेषु त्रिषु समुद्रेषु च शेषं हि ॥ ४७४ ॥

उडुसेढी। ऋत्विन्द्रकश्रेणीबद्धार्धं ३१ स्वयम्भूरमणोदधिप्रणिधिभागे तिष्ठति। शेषार्धं तु ३१ स्वयम्भूरमणसमुद्रादर्वाचीनेषु स्वयम्भूरमणादिषु त्रिषु द्वीपेषु त्रिषु समुद्रेषु च १६। ८। ४। २। १। १ तिष्ठन्ति ॥ ४७४ ॥

प्रथम श्रेणीबद्ध विमानों के अवस्थान का वर्णन—

गाथार्थ:—ऋतु इन्द्रक विमान की एक दिशा में ६२ श्रेणी बद्ध हैं। इनके आधे (३१)

श्रेणी बद्ध विमान तो स्वयम्भूरमण समुद्र के निकटवर्ती उपरिम भाग में हैं और शेष (३१) स्वयम्भूरमण समुद्र से अर्वाचीन तीन द्वीप और तीन समुद्रों के ऊपर स्थित हैं ॥ ४७४ ॥

विशेषार्थ :— प्रथम पटल में प्रथम ऋतु इन्द्रक विमान की एक दिशा में ६२ श्रेणीबद्ध विमान हैं। इनमें आधे अर्थात् ३१ श्रेणीबद्ध विमान तो स्वयम्भूरमण समुद्र के ऊपर स्थित हैं। शेष ३१ में से १५ श्रेणीबद्ध स्वयम्भूरमण द्वीप के ऊपर ८ श्रेणीबद्ध अहीन्द्रवर समुद्र के ऊपर, ४ श्रेणीबद्ध अहीन्द्रवर द्वीप के ऊपर, २ श्रेणीबद्ध देववर समुद्र के ऊपर, १ श्रेणी बद्ध देववर द्वीप के ऊपर और शेष १ श्रेणीबद्ध विमान यक्षवर समुद्र के ऊपर अवस्थित है।

अथ प्रकीर्णकानां स्वरूप प्रमाणं चाह—

सेढीणं विच्चाले पुप्फपइण्णग इव ट्ठियविमाणा ।
होंति पइण्णइणामा सेढींदयहीणरासिसमा ॥ ४७५ ॥

श्रेणीनां विचाले पुष्पप्रकीर्णकानि इव स्थितविमानानि ।
भवन्ति प्रकीर्णकनामानि श्रेणीन्द्रकहीनराशिसमानि ॥ ४७५ ॥

सेढीणं । श्रेणीबद्धानां विच्चाले अन्तराले पुष्पाणि प्रकीर्णकानि इव स्थितानि विमानानि प्रकीर्णकनामानि भवन्ति । तानि श्रेणीन्द्रकहीनराशिसमानानि । तत्कथं ? द्वात्रिंशदष्टाविंशतिरित्याद्युक्त-सौधर्मादिराशिभ्यः श्रेणीन्द्रकेष्वपनीतेषु यो राशिरवशिष्यते तत्समानानि ॥ ४७५ ॥

प्रकीर्णक विमानों का स्वरूप और प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—श्रेणीबद्ध विमानों के बीच बीच में अर्थात् अन्तराल में बिखरे हुए पुष्पों के सदृश जो विमान स्थित हैं उन्हें प्रकीर्णक कहते हैं। इनका प्रमाण इन्द्रक और श्रेणीबद्ध विमानों की राशि से हीन स्व राशि समान है ॥ ४७५ ॥

विशेषार्थ :—श्रेणीबद्ध विमानों के अन्तराल में पंक्ति हीन, बिखरे हुए पुष्पों के सदृश यत्र तत्र स्थित विमानों को प्रकीर्णक विमान कहते हैं। प्रत्येक स्वर्ग की जो संख्या है, उसमें से अपने अपने पटलों के इन्द्रक और श्रेणीबद्ध विमानों की संख्या कम करने पर जो अवशेष रहे वही प्रकीर्णक का प्रमाण होता है। यथा—

सौधर्म कल्प में — ३२००००० − (४३७१ + ३१) = ३१९५५९८ प्रकीर्णक हैं।
ऐशान „ „ — २८००००० — (१४५७ + ०) = २७९८५४३ „ „
सानत्कुमार कल्प में — १२००००० — (५८८ + ७) = ११९९४०५ „ „
माहेन्द्र „ „ — ८००००० — (१९६ + ०) = ७९९८०४ „ „
ब्रह्मब्रह्मोत्तर कल्प में — ४००००० — (३६० + ४) = ३९९६३६ „ „

लान्तव कापिष्ठ कल्प में—५०००० —(१५६+२) =४९८४२ प्रकीर्णक विमान हैं।
शुक्रमहाशुक्र „ „—४०००० —(७२+१) =३९९२७ „ „ „
शतार-सहस्रार „ „—६००० —(६८+१) =५९३१ „ „ „
आनतादि ४ कल्पों में— ७०० —(३२४+६) =३७० „ „ „
अधोग्रैवेयक में :—१११—(१०८+३)=० प्रकीर्णक विमान हैं।
मध्य „ „ :—१०७—(७२+३)=३२ „ „ „।
उपरिम „ „ :—९१ —(३६+३)=५२ „ „ „।
अनुदिशों में :— ९ —(४+१) =४ „ „ „।
अनुत्तर स्वर्ग में प्रकीर्णक विमानों का अभाव है।

श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानों का चित्रण :—

प्रथम स्वर्ग के प्रथम ऋतु इन्द्रक की चारों दिशाओं में ६२, ६२ श्रेणीबद्ध, शेष प्रकीर्णक—

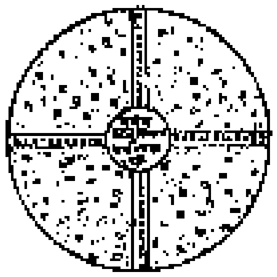

प्रथम स्वर्ग के ३१ वें प्रभा नामक इन्द्रक की चारों दिशाओं में ३२, ३२ श्रेणीबद्ध, शेष प्रकीर्णक—

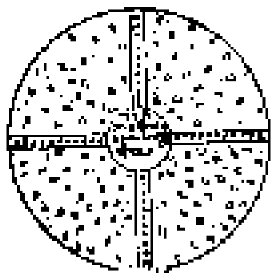

अथ दक्षिणोत्तरेन्द्रयोरिन्द्रकश्रेणीबद्धप्रकीर्णकविभागं प्रदर्शयति—

उत्तरसेढीबद्धा वायव्वीसाणकोणगपइण्णा।
उत्तरइंदणिबद्धा सेसा दक्खिणदिसिंदपडिबद्धा ॥ ४७६ ॥

उत्तरश्रेणीबद्धा वायव्येशानकोणगप्रकीर्णानि।
उत्तरेन्द्रनिबद्धानि शेषाणि दक्षिणदिगीन्द्रप्रतिबद्धानि ॥ ४७६ ॥

उत्तरसेढी। उत्तरश्रेणीबद्धा वायव्येशानकोणगतप्रकीर्णकानि च उत्तरेन्द्रनिबद्धानि। शेषाणि सर्वविमानानि दक्षिणदिगिन्द्रप्रतिबद्धानि ॥ ४७६ ॥

दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र के इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानों का विभाग कहते हैं।—

गाथार्थ :—उत्तर दिशा सम्बंधी श्रेणीबद्ध विमान और वायव्य एवं ईशान कोण में स्थित प्रकीर्णक, ये उत्तरेन्द्र सम्बन्धी हैं, तथा शेष बचे हुए विमान दक्षिणेन्द्र सम्बंधी हैं ॥ ४७६ ॥

विशेषार्थ :—उत्तर दिशा सम्बंधी श्रेणीबद्ध और वायव्य तथा ईशान कोण के प्रकीर्णक विमान उत्तरेन्द्र से सम्बन्धित हैं। अर्थात् इनमें ईशान इन्द्र की आज्ञा का प्रवर्तन होता है। शेष ३१ इन्द्रक, पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिम दिशा सम्बंधी ४३७१ श्रेणीबद्ध तथा नैऋत्य और आग्नेय कोण के प्रकीर्णक विमान दक्षिणेन्द्र सम्बंधी हैं। अर्थात् इनमें सौधर्म इन्द्र की आज्ञा का प्रवर्तन होता है। इसी प्रकार अन्य अन्य युगलों में भी जानना चाहिए।

इदानीमिन्द्रकादीनां व्यासं निरूपयति—

इंदयसेढीबद्धप्पइण्णयाणं कमेण वित्थारा ।
संखेज्जमसंखेज्जं उभयं च य जोयणाणं तु ॥ ४७७ ॥

इन्द्रकश्रेणीबद्धप्रकीर्णकानां क्रमेण विस्तारा: ।
संख्येयं असंख्येयं उभयं च योजनानां तु ॥ ४७७ ॥

इंदयसे। इन्द्रकश्रेणीबद्धप्रकीर्णकानां क्रमेण विस्तारा: संख्येययोजनानि असंख्येययोजनानि संख्येयासंख्येययोजनानि भवेयु: ॥ ४७७ ॥

इन्द्रकादिक विमानों के व्यास की प्ररूपणा करते हैं :—

गाथार्थ :—इन्द्रक, श्रेणीबद्ध और प्रकीर्णक विमानों का विस्तार क्रमश: संख्यात योजन, असंख्यात योजन और संख्यातासंख्यात योजन है ॥ ४७७ ॥

विशेषार्थ :—इन्द्रक विमान संख्यात योजन विस्तार वाले ही होते हैं, श्रेणीबद्ध विमान असंख्यात योजन विस्तार वाले ही हैं, तथा प्रकीर्णक विमानों में से कुछ प्रकीर्णक संख्यात योजन व्यास वाले और कुछ असंख्यात योजन विस्तार वाले होते हैं।

अथ सौधर्मादिषु संख्यातासंख्यातविस्तारविमानसंख्यां गाथाद्वयेनाह—

कप्पेसु रासिपंचमभागं संखेज्जवित्थडा होंति ।
तत्तो तिण्णट्ठारस सत्तरसेक्केक्कयं कमसो ॥ ४७८ ॥

कल्पेषु राशिपञ्चमभागं संख्येयविस्तारा भवन्ति ।
तत: त्रीण्यष्टादश सप्तदशैकमेकं क्रमश: ॥ ४७८ ॥

कप्पेसु। कल्पेषु बत्तीसट्ठावीसमित्यादि उक्तराशीनां ३२ ल० पञ्चमभागप्रमाणं ६४०००० संख्यातयोजनविस्तारविमानानि भवन्ति। तत: कल्पेभ्य: परतो नवग्रैवेयकादिषु त्रीणि ३ अष्टादश १८ सप्तदश १७ एक १ मेकं १ च क्रमश: संख्यातयोजनविस्तृतानि भवन्ति ॥ ४७८ ॥

सौधर्मादिकों में संख्यात और असंख्यात योजन विस्तार वाले विमानों का प्रमाण दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—कल्पवासियों में अपनी अपनी राशि के पाँचवें भाग प्रमाण विमान संख्यात योजन विस्तार वाले हैं, तथा अधोग्रैवेयक में तीन, मध्यम ग्रैवेयक में १८, उपरिम ग्रैवेयक में १७, अनुदिशों में एक और अनुत्तरों में एक विमान संख्यात योजन विस्तार वाले हैं ।। ४७८ ।।

विशेषार्थ :—कल्पवासियों में अपनी अपनी बत्तीस लाख, अट्ठाईस लाख इत्यादि राशि के पाँचवें भाग प्रमाण संख्यात योजन विस्तार वाले विमान होते हैं। जैसे ३२ लाख का पाँचवां भाग ($\frac{३२०००००}{५}$)=६४०००० है, अर्थात् सौधर्म कल्प में संख्यात योजन विस्तार वाले विमानों का प्रमाण ६४०००० है, इत्यादि। अधोग्रैवेयक में ३, मध्यम में १८, उपरिम ग्रैवेयक में १७, अनुदिशों में एक और अनुत्तरों में एक विमान संख्यातयोजन विस्तार वाले हैं।

सगसगसंखेज्जूणा सगसगरासी असंखवासगया ।
अहवा पंचमभागं चउगुणिदं होंति कप्पेसु ।। ४७९ ।।
स्वकस्वकसंख्येयोनाः स्वकस्वकराशयः असंख्यव्यासगताः ।
अथवा पञ्चमभागं चतुर्गुणिते भवन्ति कल्पेषु ।। ४७९ ।।

सगसग । स्वकीयस्वकीयसंख्यातयोजनविमानसंख्यो ६४०००० नाः स्वकीयबत्तीसादिराशयः २५६०००० । असंख्यातयोजनव्यासविमानानि । अथवा राशेः ३२ लक्ष=पञ्चमभागसंख्या ६४०००० चतुर्भिर्गुणिताः २५६०००० कल्पेष्वसंख्यातयोजनव्यासविमानसंख्या भवन्ति ।। ४७९ ।।

गाथार्थ :—कल्पवासियों में अपने अपने संख्यात योजन विस्तार वाले विमानों के प्रमाण से रहित अपनी अपनी राशि गत विमानों का प्रमाण ही असंख्यात योजन विस्तार वाला है। अथवा अपनी अपनी राशि के ५ वें भाग प्रमाण राशि असंख्यात योजन विस्तार वाली है ।। ४७९ ।।

विशेषार्थ :—अपने अपने कल्प की ३२ लाख आदि राशि में से संख्यात योजन विस्तार वाले विमानों का प्रमाण घटा देने पर जो अवशेष रहे वह असंख्यात योजन विस्तार वाले विमानों का प्रमाण होगा। जैसे :—सौधर्मकल्प की कुल राशि ३२०००००—६४०००० संख्यात योजन वाले=२५६०००० विमान असंख्यात योजन प्रमाण वाले हैं। अथवा ३२ लाख के ५ वें भाग में चार का गुणा करने से भी असंख्यात योजन प्रमाण वाले विमानों का प्रमाण प्राप्त होता है। जैसे :— $\frac{३२००००० \times ४}{५}$ = २५६०००० सौधर्म कल्प में असंख्यात योजन विस्तार वाले विमानों का प्रमाण है। इसी प्रकार द्वितीयादि कल्पों में जानना चाहिए।

अथ तेषां विमानानां बाहुल्यमाह—

छज्जुगल सेसकप्पे तिचिसु सेसे विमाणतलबहलं ।
इगिवीसेयारसयं णवणउदिहिणक्कमा होंति ॥ ४८० ॥

षड्युगलेषु शेषकल्पेषु त्रित्रिषु शेषे विमानतलबाहल्यं ।
एकविंशत्येकादशशतं नवनवतिहीनक्रमा भवन्ति ॥ ४८० ॥

छज्जुगल । सौधर्मादिषु षट्सु युगलेषु आनतादिषु कल्पेषु अधोग्रैवेयकादिषु त्रित्रिष्वनुत्तर-योश्च मिलित्वैकादशसु स्थानेषु विमानतलबाहुल्यं यथासंख्यं आद्यावेकविंशत्यधिकैकादशशतं ११२१ उपरि सर्वत्र नवनवति हीनक्रमा भवन्ति ॥ ४८० ॥

उन विमानों का बाहुल्य कहते हैं—

गाथार्थ :—पूर्व के छह युगलों में, शेषकल्पवासियों में, तीन तीन अधो आदि ग्रैवेयकों में, शेष अनुदिश और अनुत्तरों में विमानतल का बाहुल्य-आदि एक हजार एक सौ इक्कीस योजन है, इसके ऊपर क्रमशः ९९; ९९ योजन हीन होता गया है ॥ ४८० ॥

विशेषार्थ :—सौधर्मादि छह युगलों के ६ स्थान, अवशेष आनतादि कल्पों के एक एक स्थान, अधो-मध्य आदि तीन ग्रैवेयकों के तीन स्थान, अनुदिशों का एक और अनुत्तरों का एक इस प्रकार सब मिलाकर ११ स्थानों में विमान तलों का बाहुल्य यथाक्रम प्रथम स्थान का ११२१ योजन है और इसके आगे आगे सर्वत्र ९९, ९९ योजन हीन होता गया है।

संख्यातादि विमानों का प्रमाण एवं बाहुल्य का प्रमाण :—

[चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिए]

स्थान संख्या	क्रमांक	स्वर्ग पटल	इन्द्रक + संख्यात० वाले प्रकीर्णक = संख्यात योजन वाले विमानों का कुल प्रमाण	श्रेणीबद्ध + असंख्यात० वाले प्रकीर्णक = असंख्यात यो० वाले विमानों का कुल प्रमाण	विमानतल का बाहुल्य (मोटाई)
१	१	सौधर्म	३१+६३९९६९=६४००००	४३७१+२५५५६२९=२५६००००	११२१ योजन
	२	ऐशान	५६०००० प्रकीर्णक	(१४५७+२२३८५४३)=२२४००००	११२१ "
२	३	सानत्कुमार	७+२३९९९३=२४००००	(५८८+९५९४१२)=९६००००	१०२२ "
	४	माहेन्द्र	१६०००० प्रकीर्णक	(१९६+६३९८०४)=६४००००	१०२२ "
३	५	ब्र० ब्रह्मो०	४+७९९९६=८००००	(३६०+३१९६४०)=३२००००	९२३ "
४	६	लां० कापि०	२+९९९८=१००००	(१५६+३९८४४)=४००००	८२४ "
५	७	शुक्र-महा०	१+७९९९=८०००	(७२+३१९२८)=३२०००	७२५ "
६	८	शतार-सह०	१+११९९=१२००	(६८+४७३२)=४८००	६२६ "
७	९	आनतादि ४	६+१३४=१४०	(३२४+२३६)=५६०	५२७ "
८	१०	अधोग्रैवे०	३+०=३	(१०८+०)=१०८	४२८ "
९	११	मध्य "	३+१५=१८	(७२+१७)=८९	३२९ "
१०	१२	उपरि "	३+१४=१७	(३६+३८)=७४	२३० "
११	१३	अनुदिश	१+०=१	(४+४)=८	१३१ "
	१४	अनुत्तर	१+०=१	(४+०)=४	१३१ "

अथ तेषां विमानानां वर्णक्रमं व्याचष्टे—

दोहो चउचउकप्पे पंचयवण्णा हु किण्णवज्जा हु।
णीलूणा रत्तूणा विमाणवण्णा तदो सुक्का ॥ ४८१ ॥

द्वयोः द्वयोः चतुश्चतुःकल्पेषु पञ्चकवर्णा हि कृष्णवर्जाः हि।
नीलोनाः रक्तोनाः विमानवर्णाः ततः शुक्लाः ॥ ४८१ ॥

दोहो । सौधर्मादिषु द्वयोर्द्वयोः कल्पयोः ब्रह्मादिषु चतुर्षु चतुर्षु कल्पेषु मिलित्वा चतुर्षु स्थानेषु यथासंख्यं पञ्चवर्णाः खलु कृष्णावर्जचतुर्वर्णाः नीलोनत्रिवर्णाः रक्तोनद्विवर्णाः तत आनतादिषु सर्वेषु शुक्लैकवर्णविमानानि[1] स्युः ॥ ४८१ ॥

विमानों के वर्ण क्रम का वर्णन करते हैं :—

गाथार्थ :—दो कल्पों में पाँच वर्ण वाले, दो कल्पों में कृष्ण के बिना चार वर्ण वाले, ब्रह्मादि चार में (कृष्ण) नील के बिना तीन वर्ण वाले, शुक्रादि चार में रक्त बिना भी दो वर्ण वाले और आनतादि से लेकर ऊपर के सभी विमान मात्र शुक्ल वर्ण वाले होते हैं ॥ ४८१ ॥

विशेषार्थ :—सौधर्मेशान कल्पों के विमान पाँच वर्ण वाले हैं। सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों के विमान कृष्ण के बिना शेष चार वर्ण वाले हैं। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ठ कल्पों के विमान कृष्ण और नील बिना तीन वर्ण वाले हैं। शुक्र-महाशुक्र, शतार और सहस्रार कल्पों के विमान कृष्ण, नील और रक्त वर्ण से रहित मात्र दो वर्ण वाले हैं, और आनतादि से लेकर अनुत्तर पर्यन्त के सभी विमान मात्र शुक्ल वर्ण के होते हैं।

इदानीं विमानाधारस्थानं निरूपयति—

> **दुसु दुसु अट्ठसु कप्पे जलवादुभये पइट्ठियविमाणा ।**
> **सेसविमाणा सव्वे आगासपइट्ठिया होंति ॥ ४८२ ॥**
>
> द्वयोः द्वयोः अष्टसु कल्पेषु जलवातोभये प्रतिष्ठितविमानाः ।
> शेषविमानाः सर्वे आकाशप्रतिष्ठिता भवन्ति ॥ ४८२ ॥

दुसु दुसु । द्वयोर्द्वयोः कल्पयोर्ब्रह्मादिष्वष्टसु कल्पेषु मिलित्वा त्रिस्थानेषु यथासंख्यं जल-प्रतिष्ठितविमानाः वात[2] प्रतिष्ठितविमानाः उभयप्रतिष्ठितविमानाः शेषविमानाः सर्वे आकाशप्रतिष्ठिता भवन्ति ॥ ४८२ ॥

विमानों के आधार-स्थान का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—दो कल्पों के विमान जलाधार, सानत्कुमारादि दो कल्पों के वायु आधार, ब्रह्मादि आठ स्वर्गों के उभय (जलवायु) आधार और आनतादि से अनुत्तर पर्यन्त के सभी विमान शुद्ध आकाश के आधार हैं ॥ ४८२ ॥

विशेषार्थ :—सौधर्मेशान कल्प के विमान जल के ऊपर अवस्थित हैं। सानत्कुमार माहेन्द्र

---

१ विमानाः स्युः (ब०, प०)।

२ वायु (ब०, प०)।

कल्पों के विमान वायु के ऊपर स्थित हैं, तथा ब्रह्म स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग तक के आठ कल्पों के विमान जल, वायु (उभयाधार) के ऊपर अवस्थित हैं और आनतादि से सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त के सभी विमान शुद्ध आकाश में स्थित हैं।

अधुनेन्द्रस्थितं विमानं कथयति—

छज्जुगलसेसकप्पे अट्ठारसमम्हि सेढिबद्धम्हि ।
दोहीणकमं दक्खिणउत्तरभागम्हि देविंदा ॥ ४८३ ॥

षड्युगलशेषकल्पेषु अष्टादशमे श्रेणीबद्धे ।
द्विहीनक्रमं दक्षिणोत्तरभागे देवेन्द्राः ॥ ४८३ ॥

छज्जुगल। षट्सु युगलेषु शेषकल्पे च यथासंख्यं प्रथमयुगले स्वस्वचरमेन्द्रकसम्बन्धे अष्टादशे श्रेणीबद्धे द्वितीयादौ च द्विहीनक्रमेण श्रेणीबद्धे १८। १६। १४। १२। १०। ८। ६ दक्षिणभागे दक्षिणेन्द्राः उत्तरभागे उत्तरेन्द्रास्तिष्ठन्ति ॥ ४८३ ॥

अब इन्द्र स्थित विमानों का कथन करते हैं :—

गाथार्थ :—छह युगलों और अवशेष कल्पों में क्रम से अठारहवें श्रेणीबद्ध में तथा इससे आगे दो, दो हीन संख्या वाले श्रेणीबद्धों में, दक्षिण भाग में दक्षिणेन्द्र और उत्तर भाग में उत्तरेन्द्र रहते हैं ॥ ४८३ ॥

विशेषार्थ :—प्रथम युगल के ३१ वें प्रभ नामक इन्द्रक से दक्षिण श्रेणी में स्थित जो १८ वां श्रेणीबद्ध विमान है, उसमें सौधर्म इन्द्र रहता है, तथा प्रभा नामक इन्द्रक की उत्तर दिशा के अठारहवें श्रेणीबद्ध विमान में ईशान इन्द्र रहता है। इसके ऊपर चक्र नामक इन्द्रक के दक्षिण में स्थित १६ वें श्रेणीबद्ध में सानत्कुमार और इसी इन्द्रक की उत्तर दिशा के १६ वें श्रेणीबद्ध में माहेन्द्र इन्द्र निवास करता है। इसके ऊपर ब्रह्मोत्तर नामक इन्द्रक की दक्षिण दिशा के १४ वें श्रेणीबद्ध में ब्रह्मोत्तर इन्द्र स्थित है। इसके ऊपर लान्तव नामक इन्द्रक की दक्षिण दिशा के १२ वें श्रेणीबद्ध विमान में लान्तव देव स्थित है। इसके ऊपर महाशुक्र नामक इन्द्रक की उत्तर दिशा में १० वें श्रेणीबद्ध विमान में महाशुक्र इन्द्र रहता है। सहस्रार नामक इन्द्रक की उत्तर दिशा के ८ वें श्रेणीबद्ध विमान में सहस्रार इन्द्र रहता है। इसके ऊपर क्रम से आनत नामक इन्द्रक की दक्षिण दिशा के ६ वें श्रेणीबद्ध विमान में आनत इन्द्र और उत्तर दिशा के ६ वें श्रेणीबद्ध विमान में प्राणत इन्द्र रहता है। आरण नामक इन्द्रक की दक्षिण दिशा के ६ वें श्रेणीबद्ध विमान में आरण इन्द्र तथा उत्तर दिशा के ६ वें श्रेणीबद्ध विमान में अच्युत इन्द्र रहता है।

अथ तेषां विमाननामानि गाथाद्वयेन कथयति—

इंदट्ठियं विमाणं सगसगकप्पं तु तस्स चउपासे ।
वेलुरियरजतसोकं मिसक्कसारं तु पुव्वादी ॥ ४८४ ॥

इन्द्रस्थितं विमानं स्वकस्वककल्पं तु तस्य चतुः पार्श्वे ।
वैडूर्यरजताशोकं मृषत्कसारं तु पूर्वादिषु ॥ ४८४ ॥

इंदट्ठियं । इन्द्रस्थितं विमानं स्वकीयस्वकीयकल्पाख्यकं तु पुनः तस्य चतुः पार्श्वे वैडूर्य-रजताशोकमृषत्कसाराख्यविमानानि पूर्वादिदिक्षु तिष्ठन्ति । अयं विधिः सर्वेषां दक्षिणे-न्द्राणां ॥ ४८४ ॥

दो गाथाओं द्वारा उन विमानों के नाम कहते हैं :—

गाथार्थ :—अपने अपने कल्प का नाम ही इन्द्र स्थित विमान का नाम है। इस विमान के चारों पार्श्व भागों की पूर्वादि दिशाओं में क्रम से वैडूर्य, रजत, अशोक और मृषत्कसार नामक विमान स्थित हैं ॥ ४८४ ॥

विशेषार्थ :—जो जो नाम कल्पों के हैं वही वही नाम इन्द्र स्थित विमानों के हैं। जैसे—सौधर्मेन्द्र के विमान का नाम सौधर्म, ईशानेन्द्र के विमान का नाम ऐशान है। इत्यादि, इन्द्र स्थित विमान के चारों पार्श्वभागों में पूर्व दक्षिण आदि दिशाओं के क्रम से वैडूर्य, रजत, अशोक और मृषत्कसार नामक विमान स्थित है। यह विधान सर्व दक्षिणेन्द्रों का है।

रुचकं मंदरसोकं सत्तच्छदणामयं विमाणं तु ।
सव्वुत्तरइंदाणं विमाणपासेसु होंति कमे ॥ ४८५ ॥

रुचकं मन्दराशोकं सप्तच्छदनामकं विमानं तु ।
सर्वोत्तरेन्द्राणां विमानपार्श्वेषु भवन्ति क्रमेण ॥ ४८५ ॥

रुचकं । रुचकमन्दराशोकसप्तच्छदनामानि विमानानि सर्वोत्तरेन्द्राणां स्वस्वविमानचतुःपार्श्वे क्रमेण भवन्ति ॥ ४८५ ॥

गाथार्थ :—सर्व उत्तरेन्द्रों के विमानों के चारों पार्श्वभागों में क्रमशः रुचक, मन्दर, अशोक और सप्तच्छद नामक विमान स्थित हैं ॥ ४८५ ॥

विशेषार्थ :—सुगम है।

अथ सौधर्मादिदेवानां मुकुटचिह्नानि गाथाद्वयेनाह—

सोहम्मादीबारस आणदआरणगजुगलएवि कमा ।
देवाण मउल चिह्नं वराहमयमहिसमच्छादि ॥ ४८६ ॥
कुम्मो दद्दुरतुरगा तो कुंजर चंद सप्प खग्गी य ।
छगलो वसहोतत्तो चोद्दसमो होदि कप्पतरू ॥ ४८७ ॥

सौधर्मादिद्वादशसु आनतारणकयुगेपि क्रमात् ।
देवानां मौलिचिह्नं वराहमृगमहिषमत्स्या अपि ॥ ४८६ ॥
कूर्मो दर्दु रस्तुरगस्ततः कुञ्जरः चन्द्रः सर्पः खड्गी च ।
छगलो वृषभः ततः चतुर्दशो भवति कल्पतरुः ॥ ४८७ ॥

सोहम्मादी । सौधर्मादिषु द्वादशकल्पेषु आनतयुगले आरणयुगले च क्रमात् देवानां मौलिचिह्नानि वराहमृगमहिषमत्स्या अपि ॥ ४८६ ॥

कुम्मो । छायामात्रमेवार्थः ॥ ४८७ ॥

दो गाथाओं द्वारा सौधर्मादिदेवों के मुकुट चिह्न कहते हैं :—

गाथार्थ :—सौधर्मादि बारह स्वर्गों में, आनत युगल एवं आरण युगल में देवों के मुकुटों के चिह्न क्रम से वराह, मृग, महिष, मत्स्य, कछुआ, मेंढक, घोड़ा, हाथी, चन्द्रमा, सर्प, खड्गी, छगल, वृषभ और चौदहवाँ कल्पवृक्ष है ॥ ४८६, ४८७ ॥

विशेषार्थ :—सौधर्मादि बारह कल्पों के १२ स्थान, आनत युगल के १३ वें और आरण युगल के १४ वें स्थान के इन्द्रों के मुकुटों के चिह्न क्रम से वराह, (सूकर) मृग, भैंसा, मत्स्य, कछुआ, मेंढक, घोड़ा, हाथी, चन्द्रमा, सर्प, खड्गी, छगल (बकरी), बैल और कल्पवृक्ष है।

साम्प्रतमिन्द्राणां नगरस्थानं विस्तारं च गाथाद्वयेनाह :—

सोहम्मादिचउक्के जुम्मचउक्के य सेसकप्पे य ।
सगदेविजुदिंदाणं णयराणि हवंति णवयपदे ॥ ४८८ ॥

सौधर्मादिचतुष्के युग्मचतुष्के च शेषकल्पे च ।
स्वकदेवीयुतेन्द्राणां नगराणि भवन्ति नवकपदे ॥ ४८८ ॥

सोहम्मादि । सौधर्मादिचतुष्के ब्रह्मादियुग्मचतुष्के आनतादिशेषकल्पे च आनतादीनां नगरेषु प्रत्येकं विंशतिसहस्रयोजनव्याससाधारणात्कल्पचतुष्टयमेकं स्थलं कृतं इति नवसु स्थानेषु स्वस्वदेवीयुतेन्द्राणां नगराणि भवन्ति ॥ ४८८ ॥

दो गाथाओं द्वारा इन्द्रों के नगर स्थान और विस्तार का वर्णन करते हैं :—

गाथार्थ :—सौधर्मादि चार कल्पों के चार, ब्रह्मादि चार युगलों के चार और आनतादि अवशेष कल्पों का एक, इस प्रकार इन नौ स्थानों में अपनी अपनी देवाङ्गनाओं से युक्त इन्द्रों के नगर हैं ॥ ४८८ ॥

विशेषार्थ :—सौधर्मादि चार कल्पों के चार स्थान, ब्रह्मादि चार युगलों के चार स्थान और आनतादि कल्पों के नगरों में प्रत्येक नगर बीस हजार योजन व्यास की समानता वाला है, अतः इनका एक स्थान, इस प्रकार कुल नौ स्थानों में अपनी अपनी देवाङ्गनाओं से युक्त देवों के नगर हैं।

चुलसीदीय असीदी बिहत्तरी सत्तरीय जोयणगा ।
आवय वीससहस्सं समचउरस्साणि रम्माणि ॥ ४८९ ॥

चतुरशीतिः अशीतिः द्वासप्ततिः सप्ततिश्च योजनानि ।
यावद्विंशसहस्रं समचतुरस्राणि रम्याणि ॥ ४८९ ॥

चुलसी । चतुरशीतिसहस्राणि अशीतिसहस्राणि द्वासप्ततिसहस्राणि सप्ततिसहस्राणि योजनानि यावद्विंशतिसहस्रं तावद्दशसहस्रोनं कर्त्तव्यं एतद्व्यासयुक्तानि नगराणि समचतुरस्राणि रम्याणि ॥ ४८९ ॥

गाथार्थ :—चौरासी, अस्सी, बहत्तर और सत्तर हजार योजन तथा इसके आगे जब तक बीस हजार योजन न रह जावें तब तक दश दश हजार योजन कम नगरों के व्यास का प्रमाण है । ये सभी नगर समचतुरस्र और रमणीक हैं ॥ ४८९ ॥

विशेषार्थ :—सौधर्म कल्प में ८४ हजार योजन व्यास वाले, ऐशान कल्प में ८० हजार; सानत्कुमार में ७२ हजार, माहेन्द्र में ७० हजार, ब्रह्मयुगल में ६० हजार, लान्तव युगल में ५० हजार, शुक्र युगल में ४० हजार, शतार युगल में ३० हजार तथा आनतादि चार कल्पों में प्रत्येक २०, ४० हजार योजन प्रमाण व्यास वाले नगर हैं । इन नगरों की लम्बाई चौड़ाई का प्रमाण समान है अतः समचतुरस्र तथा रमणीक हैं ।

अथ उक्तनगरप्राकारोत्सेधस्वरूपमाह—

छज्जुगलसेसकप्पे तप्पायारुदय जोयणं तिसदं ।
पण्णासूणं पंचम तीसूणं उवरि वीसूणं ॥ ४९० ॥

षट्युगलशेषकल्पे तत्प्राकारोदयः योजनं त्रिशतं ।
पञ्चाशदूनं पञ्चमे त्रिंशदूनं उपरि विंशोनम् ॥ ४९० ॥

छज्जुगल । षट्युगलेषु शेषकल्पे चेति सप्तस्थाने तत्तन्नगरप्राकारोदयः आदौ योजनानां त्रिशतं उपरि पञ्चाशदूनं पञ्चमस्थाने त्रिंशदूनं तत उपरि विंशत्यूनं ज्ञातव्यं ॥ ४९० ॥

उक्त नगरों के प्राकारों की ऊँचाई का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—छह युगलों के छह स्थान और शेष कल्पों का एक स्थान इन सात स्थानों में प्रासादों की ऊँचाई का प्रमाण क्रम से ३०० योजन, तीन स्थानों में ५० योजन कम, पाँचवें स्थान में ३० योजन और शेष में २० योजन कम है ॥ ४९० ॥

विशेषार्थ :—छह युगल स्वर्गों के छह स्थान और शेष चार कल्पों का एक स्थान, इस प्रकार इन सात स्थानों में उनके नगरों के प्रासादों की ऊँचाई—सौधर्म युगल की ३०० योजन, सानत्कुमार

युगल की २५० योजन, ब्रह्म युगल की २०० योजन, लान्तव युगल की १५० योजन, शुक्र युगल की १२० योजन, शतार युगल की १०० योजन और आनतादि चार कल्पों के सातवें स्थान में स्थित नगरों के प्राकारों (कोटों) की ऊँचाई ८० योजन प्रमाण है।

अथ तत्प्राकारगाधविस्तारावाह—

गाढो वित्थारो वि य पण्णासं दलकमं तु पंचमगे।
चत्तारि तियं छट्ठे चरिमे दुगमद्धसंजुत्तं ॥ ४९१ ॥

गाधो विस्तारः अपि पञ्चाशत् दलक्रमस्तु पञ्चमके।
चत्वारि त्रीणि षष्ठे चरमे द्विकमर्धसंयुक्तम् ॥ ४९१ ॥

गाढो वि। तत्प्राकारगाधो भूगतोदय इत्यर्थः। तद्विस्तारोऽपि चाद्यौ पञ्चाशद्योजनानि उपर्युपरि अर्धार्धक्रमः। तु पुनः पञ्चमस्थाने चत्वारि योजनानि षष्ठस्थाने त्रीणियोजनानि चरमस्थाने अर्धयोजनसंयुतं योजनद्वयं ज्ञातव्यं ॥ ४९१ ॥

उन प्राकारों के गाध (नींव) और विस्तार का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—[उपर्युक्त सात स्थानों में स्थित प्राकारों के] अवगाढ (नींव) और उसका विस्तार इन दोनों का प्रमाण ५० योजन और तीन स्थानों का क्रम से उसका आधा आधा है। पाँचवें स्थान का ४ योजन, छठे का तीन योजन और सातवें स्थान का २½ योजन है ॥ ४९१ ॥

विशेषार्थ :—ऊपर कहे हुए सातों स्थानों में स्थित प्राकारों के जमीन की गहराई और प्राकारों का विस्तार अर्थात् चौड़ाई इन दोनों का प्रमाण प्रथम युगल में ५० योजन, दूसरे में २५ योजन, तीसरे में २५/२ योजन अर्थात् १२½ योजन और चौथे में ६¼ योजन है। पाँचवें स्थान में ४ योजन, छठे स्थान में ३ योजन और सातवें स्थान में २½ योजन प्रमाण है।

अथ तत्प्राकाराणां गोपुरस्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

पडिदिस गोउरसंखा तेसिं उदओवि चउतिदोण्णिसया।
तत्तो दुगुणासीदी वीसविहीणं तदो होदि ॥ ४९२ ॥

प्रतिदिशं गोपुरसंख्या तेषां उदयोऽपि चतुस्त्रिद्विशतानि।
ततः द्विगुणाशीतिः विंशतिविहीनः ततः भवति ॥ ४९२ ॥

पडिदिस गो। प्रतिदिशं तत्प्राकाराणां गोपुरसंख्या तेषामुदयोऽपि पूर्ववत् सप्तसु स्थानेषु यथासंख्यं चतुः शतयोजनानि त्रिशतयोजनानि द्विशतयोजनानि ततः परं द्विगुणाशीतियोजनानि ततः परं विंशत्या हीनक्रमो भवति ॥ ४९२ ॥

उन प्राकारों के गोपुरों का स्वरूप दो गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—उन सातों स्थानों के प्राकारों की प्रत्येक दिशा में जितनी गोपुरद्वारों की संख्या

है, उतनी ही उनकी ऊँचाई है। वह क्रम से चार सौ, तीन सौ, दो सौ, एक सौ साठ और इसके बाद बीस बीस योजन हीन है ॥ ४९२ ॥

विशेषार्थ :—सातों स्थानों के प्राकारों की चारों दिशाओं में गोपुरों की संख्या का जितना जितना प्रमाण है, उतने उतने योजन ही उन गोपुरों की ऊँचाई है। यथा—प्रथम स्थान के प्राकार की चारों दिशाओं में चार, चार सौ योजन ऊँचाई वाले ४००, ४०० ही गोपुर द्वार हैं। दूसरे स्थान में ३०० योजन ऊँचाई वाले ३०० गोपुरद्वार, तीसरे स्थान में २०० योजन ऊँचे २०० गोपुरद्वार, चौथे स्थान में १६० योजन ऊँचे १६० गोपुर द्वार, पाँचवें स्थान में १४०, छठवें स्थान में १२० और सातवें स्थान में १०० योजन ऊँचाई वाले तथा तत् तत् ही प्रमाण को लिए हुए गोपुरद्वार हैं।

गोउरवासो कमसो सयजोयणगाणि तिसु य दसहीणं।
वीसूणं पंचमगे तत्तो सव्वत्थ दसहीणं ॥ ४९३ ॥

गोपुरव्यास: क्रमशः शतयोजनानि त्रिषु च दशहीनं।
विंशोनं पञ्चमके ततः सर्वत्र दशहीनम् ॥ ४९३ ॥

गोउर। गोपुरव्यासः क्रमशः आदौ शतयोजनानि ततः उपरि त्रिषु स्थानेषु दशहीनं योजनानि पञ्चमस्थाने विंशत्यूनयोजनानि। ततः परं सर्वत्र दशहीनयोजनानि ॥ ४९३ ॥

गाथार्थ :—गोपुरद्वारों का व्यास क्रम से १०० योजन, तीन में दश दश योजन हीन, पाँचवें में बीस योजन हीन तथा इसके आगे सर्वत्र दश दश योजन हीन है ॥ ४९३ ॥

विशेषार्थ :—प्रथम स्थान के गोपुर द्वारों का व्यास (चौड़ाई) १०० योजन, दूसरे का ९० योजन, तीसरे का ८० योजन, चौथे का ७० योजन, पाँचवें का ५० योजन, छठवें का ४० योजन और सातवें स्थान के गोपुर द्वारों का व्यास ३० योजन प्रमाण है।

पूर्वोक्त नगरों का विस्तार, उनके प्राकारों का उत्सेध, बाहुल्य आदि एवं गोपुरद्वारों का प्रमाण, उनकी ऊँचाई और व्यास का सचित्र वर्णन निम्न प्रकार है—

[कृपया चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिए]

	नगरों का विस्तार			प्राकारों (कोट) का विवरण									गोपुर द्वारों का प्रमाणादि				
					ऊंचाई		बाहुल्य		गाध (नींव) की गहराई		प्रत्येक दिशा का प्रमाण		उत्सेध		व्यास	
क्रमांक	नव स्थान	नगरों का विस्तार	क्रमांक	सात स्थान	योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में			योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में
१	सौधर्म	८४००० योजन	१	सौधर्मेशान	३०० यो.	२४००	५०	४००	५०	४००	४००		४००	३२००	१००	८००
२	ईशान	८०००० "														
३	सानत्कु०	७२००० "	२	सा०, मा०	२५० "	२०००	२५	२००	२५	२००	३००		३००	२४००	९०	७२०
४	माहेन्द्र	७०००० "														
५	ब्रह्म-ब्र०	६०००० "	३	ब्रह्म-ब्रह्मो०	२०० "	१६००	१२½	१००	१२½	१००	२००		२००	१६००	८०	६४०
६	लां०-का०	५०००० "														
			४	लां०, का०	१५० "	१२००	६¼	५०	६¼	५०	१६०		१६०	१२८०	७०	५६०
७	शुक्र-म०	४०००० "														
८	शतार-सह०	३०००० "	५	शुक्र-म०	१२० "	९६०	४	३२	४	३२	१४०		१४०	११२०	५०	४००
९	आनतादि ४	२०००० "	६	शतार-सह०	१०० "	८००	३	२४	३	२४	१२०		१२०	९६०	४०	३२०
			७	आनतादि ४	८० "	६४०	२½	२०	२½	२०	१००		१००	८००	३०	२४०

अथ प्रागुक्तनवस्थानाश्रयेण सामानिकतनुरक्षानीकदेवानां प्रमाणं गाथाद्वयेनाह—

णयरपदे तस्संखा समाणिया चउगुणा य तणुरक्खा ।
वसहतुरंगरथेभपदातीगंधव्वणच्चणी चेदि ॥ ४९४ ॥

सत्तेव य आणीया पत्तेयं सत्तसत्तकक्खजुदा ।
पढमं सममाणसमं तद्दुगुणं चरिमकक्खोत्ति ॥ ४९५ ॥

नगरपदे तत्संख्या सामानिकाः चतुर्गुणाश्च तनुरक्षाः ।
वृषभतुरङ्गरथेभपदातिगन्धर्वनर्तकी चेति ॥ ४९४ ॥
सप्तैव च आनीकानि प्रत्येकं सप्तसप्तकक्षयुतानि ।
प्रथमः स्वसमानसमः तद्द्विगुणं चरमकक्षान्तम् ॥ ४९५ ॥

णयरपदे । सोहम्मादिचउक्के इति गाथोक्तेषु नगराणां नवसु स्थानेषु चुलसीदियेति गाथोक्तसप्तम्नगरविस्तारसंख्यैव सामानिकसंख्येति ज्ञातव्यं सैव चतुर्गुणिता तनुरक्षकसंख्या वृषभतुरंगरथेभपदातिगन्धर्वनर्तकी चेति ॥ ४९४ ॥

सत्तेव य । सप्तैवानीकानि तानि प्रत्येकं सप्तसप्तकक्षयुतानि । तत्र प्रथमकक्षः स्वस्य स्वस्य सामानिकसमः तत उपरि तस्माद् द्विगुणं चरमकक्षपर्यन्तम् ॥ ४९५ ॥

पूर्वोक्त नव स्थानों के आश्रय से सामानिक, तनुरक्षक और अनीक देवों का प्रमाण दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—नगर व्यास के सदृश नौ स्थानों में सामानिक देवों का प्रमाण है। अर्थात् नगर व्यास के प्रमाण बराबर ही है। तनुरक्षकों का प्रमाण सामानिक देवों के प्रमाण से चौगुणा है। तथा (१) वृषभ, (२) घोड़ा, (३) रथ, (४) हाथी, (५) पयादे, (६) गन्धर्व और (७) नर्तकी इस प्रकार अनीक सेना सात ही प्रकार की है। प्रत्येक सेना सात सात कक्षाओं से संयुक्त है। प्रथम कक्ष का प्रमाण अपने अपने सामानिक देवों के प्रमाण स्वरूप है, इसके आगे चरम कक्ष पर्यन्त, प्रत्येक कक्ष का प्रमाण दूना दूना होता गया है ॥ ४९४, ४९५ ॥

विशेषार्थ :—"सोहम्मादि चउक्के" इत्यादि गाथा सूत्र ४८८ के अनुसार तथा "चुलसीदीय-असीदी" गाथा ४८९ के अनुसार जो नव स्थान एवं उनके व्यास का प्रमाण कहा है, उन्हीं नव स्थानों में सामानिक देवों का प्रमाण नगर व्यास के बराबर ही जानना चाहिये। प्रत्येक स्थान के तनु रक्षकों का प्रमाण अपने अपने सामानिक देवों के प्रमाण से चौगुणा है, तथा वृषभ, घोड़ा, रथ, हाथी, पदाति, गन्धर्व और नर्तकी ये सात अनीक सेनाएं हैं, जो प्रत्येक सात सात कक्षाओं से संयुक्त हैं। प्रथम कक्ष का प्रमाण अपने अपने सामानिक देवों के प्रमाण सदृश ही है। आगे चरम कक्ष पर्यन्त दूना दूना होता गया है। (इसी का विशेष वर्णन गाथा ४९८ के विशेषार्थ में द्रष्टव्य है)

अथ दक्षिणोत्तरेन्द्राणामानीकनायकान् गाथाद्वयेनाह—

दामेट्ठी हरिदामा मादलि अइरावदा महत्तरया ।
वाउअरिट्ठजसा णीलंजणया दक्खिणिंदाणं ॥ ४९६ ॥

दामयष्टिः हरिदामा मातलिः ऐरावतो महत्तरः ।
वायुः अरिष्टयशाः नीलाञ्जना दक्षिणेन्द्राणाम् ॥ ४९६ ॥

दामेट्ठी । दामयष्टिर्हरिदामा मातलिरैरावतो महत्तरश्च वायुररिष्टयशा इत्येते पुरुषाः नीलाञ्जनेति स्त्री एते दक्षिणेन्द्राणां सेनामुख्याः ॥ ४९६ ॥

दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र के अनीक नायकों को दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—दक्षिणेन्द्र (सौधर्म) की सेना के प्रधानों का नाम क्रम से दामयष्टि हरिदामा, मातलि, ऐरावत, वायु, अरिष्टयशा और नीलाञ्जना है ॥ ४९६ ॥

विशेषार्थ :—दक्षिणेन्द्र की वृषभ सेना के प्रधान का नाम दामयष्टि, तुरङ्ग सेना का हरिदामा, रथ का मातलि, गज सेना का ऐरावत, पयादों का वायु, गन्धर्व सेना का अरिष्टयशा और नर्तकी सेना के प्रधान का नाम नीलाञ्जना है। इनमें क्रम से छह पुरुषवेदी और सातवीं नीलाञ्जना स्त्री वेदी है।

महदामेट्ठि मिदगदी रहमंथण पुप्फयंत इदि कमसो ।
सलहुपरक्कमगीदरदि महासुसेणा य उत्तरिंदाणं ॥ ४९७ ॥

महदामयष्टिः अमितगतिः रथमन्थनः पुष्पदन्त इति क्रमशः ।
सलघु पराक्रमो गीतरतिः महासुसेना चोत्तरेन्द्राणाम् ॥ ४९७ ॥

महदामे । महादामयष्टिरमितगतिः रथमंथनः पुष्पदन्त इति क्रमशः सलघुपराक्रमो गीतरतिरित्येते पुरुषाः महासेनेति स्त्री एते उत्तरेन्द्राणां सेनामुख्याः ॥ ४९७ ॥

गाथार्थ :—उत्तरेन्द्र की सेना के प्रधानों का नाम क्रमशः महादामयष्टि, अमितगति, रथमन्थन, पुष्पदन्त, सलघुपराक्रम, गीतरति और महासुसेना है ॥ ४९७ ॥

विशेषार्थ :—उत्तरेन्द्र (ईशान) की वृषभ सेना के प्रधान का नाम महादामयष्टि तुरङ्ग सेना का अमितगति, रथ का रथ मन्थन, गजसेना का पुष्पदन्त, पयादों का सलघुपराक्रम, गन्धर्व सेना का गीतरति और नर्तकी सेना का महासेना है। इनमें क्रम से छह पुरुष वेदी हैं और सातवीं महासेना स्त्री वेदी है।

अथ परिषत्त्रयसंख्यामाह—

बारस चोद्दस सोलस सहस्स अब्भंतरादिपरिसाओ ।
तत्थ सहस्सदुउण्णा दुसहस्सादो हु अद्धद्धं ॥ ४९८ ॥

द्वादश चतुर्दशषोडशसहस्राणि अभ्यन्तरादिपारिषदाः ।
तत्र सहस्रद्यूना द्विसहस्रात् हि अर्धार्धम् ।। ४९८ ।।

बारस । प्रागुक्तनवसु स्थानेषु आद्यो अभ्यन्तरादिपारिषदानां संख्या यथासंख्यं द्वादशसहस्राणि चतुर्दशसहस्राणि षोडशसहस्राणि तत उपरि तत्र पृथक् पृथक् सहस्रद्विकोनसंख्या स्यात् । द्विसहस्रादुपरि अर्द्धार्द्धक्रमो ज्ञातव्यः ।। ४९८ ।।

तीनों परिषदों की संख्या कहते हैं—

भावार्थ :—[पूर्वोक्त नौ स्थानों में से प्रथम स्थान की] अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य परिषद् की संख्या क्रम से बारह हजार, चौदह हजार और सोलह हजार है । इसके आगे के स्थानों में दो हजार पर्यन्त क्रमशः दो दो हजार हीन है तथा इसके आगे अर्ध अर्ध प्रमाण है ।। ४९८ ।।

विशेषार्थ :—प्रत्येक की संख्या का प्रमाण इस प्रकार है—

[कृपया चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिए]

नव स्थानों में—सामानिक—तनुरक्षक—सातों अनीक—एवं तीनों परिषदों—का प्रमाण

क्रमांक	नव स्थान	सामानिक देवों का प्रमाण	तनुरक्षक देवों का प्रमाण	अनीक सेनाओं का प्रमाण			परिषदों का प्रमाण		
				प्रथम कक्ष	एक अनीक की सम्पूर्ण संख्या [प्रथम कक्ष की संख्या से १२७ गुणी है।]	सातों अनीकों की सम्पूर्ण संख्या	अभ्यन्तर परिषद्	मध्य परि०	बाह्य परि०
१	सौधर्म	८४०००	३३६००० [तीन ला. ३६ह.]	८४०००	१०६६८०००	७४६७६०००	१२०००	१४०००	१६०००
२	ईशान	८००००	३२०००० [३ ला० २० ह०]	८००००	१०१६००००	७११२००००	१००००	१२०००	१४०००
३	सानत्कुमार	७२०००	२८८००० [२ ला० ८८ ह०]	७२०००	९१४४०००	६४००८०००	८०००	१००००	१२०००
४	माहेन्द्र	७००००	२८०००० [२ ला० ८० ह०]	७००००	८८९००००	६२२३००००	६०००	८०००	१००००
५	ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	६००००	२४०००० [२ ला० ४० ह०]	६००००	७६२००००	५३३४००००	४०००	६०००	८०००
६	लांतव-कापि०	५००००	२००००० [दो लाख]	५००००	६३५००००	४४४५००००	२०००	४०००	६०००
७	शुक्र-महा०	४००००	१६०००० [१ ला० ६० ह०]	४००००	५०८००००	३५५६००००	१०००	२०००	४०००
८	शतार-सह०	३००००	१२०००० [१ ला० २० ह०]	३००००	३८१००००	२६६७००००	५००	१०००	२०००
९	आनतादि ४	२००००	८०००० [८० हजार]	२००००	२५४००००	१७७८००००	२५०	५००	१०००

नोट :—तिलोयपण्णत्ति ८/२३१ के अनुसार आरण अच्युत की अभ्यन्तर परिषद का प्रमाण १२५ है।

साम्प्रतमितरप्राकारसंख्यां तदन्तरं प्रमाणं चाह—

णयराणं बिदियादीपायारा पंचमोत्ति तेरसयं ।
तेसट्ठि अट्ठकदी चुलसीदी लक्खाणि गंतूणं ॥ ४९९ ॥

नगराणां द्वितीयादिप्राकाराः पञ्चमान्तं त्रयोदश ।
त्रिषष्टिः अष्टकृतिः चतुरशीतिः लक्षाणि गत्वा ॥ ४९९ ॥

णयराणं । नगराणां द्वितीयादिप्राकाराः पञ्चमपर्यन्तं यथासंख्यं त्रयोदशलक्षाणि त्रिषष्टि-लक्षाणि अष्टकृतिलक्षाणि चतुरशीतिलक्षाणि योजनानि गत्वा गत्वा तिष्ठन्ति ॥ ४९९ ॥

अब और (इतर) प्राकारों की संख्या और उनके अन्तराल का प्रमाण कहते हैं—

गाथार्थ :—नगर के द्वितीय को आदि लेकर पञ्चम कोट पर्यन्त क्रम से तेरह लाख योजन, त्रेसठ लाख योजन, आठ की कृति [६४ लाख योजन] और चौरासी लाख योजन दूर जा जा कर प्राप्त होते हैं ॥ ४९९ ॥

विशेषार्थ :—इन्द्र के नगर के बाहर चारों ओर पाँच कोट हैं। पहिले कोट से दूसरा कोट १३ लाख योजन [१०४०००००० मी०] दूर जाकर है। दूसरे से तीसरा कोट ६३ लाख योजन [५०४०००००० मील] दूर, तीसरे से चौथा आठ की कृति अर्थात् ६४ लाख योजन [५१२०००००० मील] दूर तथा चौथे से पाँचवाँ कोट ८४ लाख योजन के अन्तराल पर है।

अथ तत्तदन्तरालस्थदेवान् गाथाद्वयेनाह—

सेणावदितणुरक्खा पढमे बिदियंतरे दु परिसतयं ।
सामाणियदेवा पुण तदिए णिवसंति तुरिए दु ॥ ५०० ॥
आरोहियाभियोग्गगकिब्भिसियादी य जोग्गपासादे ।
गमिय तदो लक्खदलं णंदणमिदि तव्विसेसणामाणि ॥५०१॥

सेनापतितनुरक्षाः प्रथमे द्वितीयान्तरे तु पारिषदत्रयम् ।
सामानिकदेवाः पुनः तृतीये निवसन्ति तुरीये तु ॥ ५०० ॥
आरोहिकाभियोग्यककिल्विषिकादयश्च योग्यप्रासादे ।
गत्वा ततः लक्षदलं नन्दनमिति तद्विशेषनामानि ॥ ५०१ ॥

सेणा । सेनापतयस्तनुरक्षाश्च प्रथमेऽन्तराले तिष्ठन्ति । द्वितीयान्तरे तु पारिषदत्रयमस्ति । तृतीयान्तरे तु पुनः सामानिकदेवा वसन्ति । तुर्येऽन्तरे तु ॥ ५०० ॥

आरोहिया । आरोहिकाभियोग्यकिल्विषिकादयश्च स्वस्वयोग्यप्रासादे तिष्ठन्ति । ततः परं लक्षदलयोजनानि गत्वा नन्दनवनमस्तीति हेतोस्तद्विशेषनामानि कथयति ॥ ५०१ ॥

इन कोटों के अन्तराल में स्थित देवों के भेद दो गाथाओं में कहते हैं :—

गाथार्थ :—सेनापति और तनुरक्षक देव प्रथम अन्तराल में, तीनों परिषद देव दूसरे अन्तराल में, तीसरे अन्तराल में सामानिक देव तथा चौथे अन्तराल में आरोहक, आभियोग्य और किल्विषिकादि देव अपने अपने योग्य प्रासादों में रहते हैं। पाँचवें अन्तराल से अर्धलाख (५० हजार) योजन आगे जाकर नन्दन वन है इनके विशेष नाम आगे कहेंगे ॥ ५००, ५०१ ॥

विशेषार्थ :—कोटों (प्राकारों) के प्रथम अन्तराल में सेनापति और तनुरक्षक देव रहते हैं। द्वितीय अन्तराल में तीनों पारिषद, तृतीय अन्तराल में सामानिक देव तथा चतुर्थ अन्तराल में वृषभ, तुरङ्गादि पर सवारी करने वाले आरोहक आभियोग्य एवं किल्विषिकादि देव अपने अपने योग्य भवनों में रहते हैं। पाँचवें कोट से ५० हजार योजन आगे जाकर नन्दन वन है, ये वन आनन्द देने वाले हैं, इसलिए इन्हें नन्दन वन कहते हैं। इनके विशेष नाम आगे कहेंगे।

कथमिति चेद्—

> **सुरपुरबहिं असोयं सत्तच्छदचंपचूदवणखण्डा ।**
> **पउमद्दहसममाणा पत्तेयं चेत्तरुक्खजुदा ॥ ५०२ ॥**
>
> सुरपुरबहिः अशोकं सप्तच्छदचम्पचूतवनखण्डाः ।
> पद्मह्रदसमानाः प्रत्येकं चैत्यवृक्षयुताः ॥ ५०२ ॥

सुरपुर । सुरपुराद् बहिः [1]पूर्वादिदिक्षु अशोकवनखण्डाः सप्तच्छदवनखण्डाः चम्पकवनखण्डाः चूतवनखण्डाः पद्मह्रदसमप्रमाणाः सहस्रयोजनायामास्तदर्धव्यासा इत्यर्थः । प्रत्येकमेकैकचैत्यवृक्षयुताः ॥ ५०२ ॥

वनों के विशेष नाम एवं प्रमाण :—

गाथार्थ :—देवों के नगर से बाहर पद्मसरोवर के प्रमाण को धारण करने वाले तथा एक एक चैत्यवृक्ष से संयुक्त अशोक वनखण्ड, सप्तच्छदवनखण्ड, चम्पकवनखण्ड और आम्रवनखण्ड हैं ॥ ५०२ ॥

विशेषार्थ :—देवों के नगरों से बाहर पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रम से अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्रवनखण्ड हैं। प्रत्येक का प्रमाण पद्मद्रह नाम सरोवर के सदृश अर्थात् एक हजार योजन लम्बे और पाँच सौ योजन चौड़े हैं। तथा प्रत्येक वन खण्ड एक एक चैत्यवृक्ष से संयुक्त है।

---

१ पूर्वोक्तादिषु (ब०, प०) ।

अथ तद्वनमध्यस्थचैत्यवृक्षस्वरूपं निरूपयन् तच्चैत्यनमस्कारमाह—

चउचेत्तदुमा जंबूमाणा कप्पेसु ताण चउपासे ।
पल्लंकगजिणपडिमा पत्तेयं ताणि वंदामि ॥ ५०३ ॥

चतुश्चैत्यद्रुमाः जम्बूमानाः कल्पेषु तेषां चतुः पार्श्वेषु ।
पल्यङ्कगजिनप्रतिमाः प्रत्येकं तानि वन्दामि ॥ ५०३ ॥

चउचेत्त । चत्वारश्चैत्यद्रुमा जम्बूवृक्षप्रमाणाः सौधर्मादिषु कल्पेषु तेषां चतुर्षु पार्श्वेषु पल्यङ्कजिनप्रतिमाः प्रत्येकं ताः वन्दे ॥ ५०३ ॥

वन के बीच में स्थित चैत्यवृक्षों के स्वरूप का निरूपण करते हुए उन चैत्यवृक्षों को नमस्कार करते हैं—

गाथार्थ :—सौधर्मादि कल्पों में चारों वन सम्बन्धी चार चैत्यवृक्ष, जम्बूवृक्षप्रमाण वाले हैं। प्रत्येक चैत्यवृक्ष के चारों पार्श्वभागों में पल्यङ्कासन एक एक जिनप्रतिमा है, उन्हें मैं (नेमिचन्द्राचार्य) नमस्कार करता हूँ ॥ ५०३ ॥

विशेषार्थ :—सौधर्मादि कल्पों में अशोकादि चारों वनखण्डों में जो चार चैत्यवृक्ष हैं, उनका प्रमाण जम्बूवृक्ष के प्रमाण सदृश। उन चारों वृक्षों में से प्रत्येक वृक्ष के चारों पार्श्व भागों में पल्यङ्कासन स्थित एक एक जिनप्रतिमा है, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ।

इदानीं लोकपालानां नगरस्वरूपमाह—

तत्तो बहुजोयणयं गंतूण दिसासु लोगवालाणं ।
णयराणि अजुदसंगुणपणघणवित्थारजुत्ताणि ॥ ५०४ ॥

ततो बहुयोजनकं गत्वा दिशासु लोकपालानाम् ।
नगराणि अयुतसंगुणपञ्चघनविस्तारयुक्तानि ॥ ५०४ ॥

तत्तो बहु । ततो बहुयोजनानि गत्वा दिशासु लोकपालानां नगराणि अयुत १०००० संगुणित-पञ्चघनविस्तारयुक्तानि १२५०००० ॥ ५०४ ॥

अब लोकपालों के नगर का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—उन वन खण्डों से बहुत योजन दूर जाकर पूर्वादि दिशाओं में लोकपाल देवों के नगर हैं। जो अयुत (१००००, दश हजार) से गुणित पञ्चघन (१२५) प्रमाण विस्तार से संयुक्त हैं ॥ ५०४ ॥

विशेषार्थ :—उन वन खण्डों से बहुत योजन आगे जाकर पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर इन चारों दिशाओं में लोकपाल देवों के नगर हैं। जिनका विस्तार अयुत अर्थात् १०००० से गुणित पञ्च घन (१२५) अर्थात् (१००००×१२५=१२५००००) साढ़े बारह लाख योजन है।

तत्रैव गणिकामहत्तरीणां पुराण्याह—

गणिकामहत्तरीणं पुराणि तत्थेव अग्गिपहुदीसु ।
विदिसासु लक्खजोयणवित्थारायामसहियाणि ॥ ५०५ ॥

गणिकामहत्तरीणां पुराणि तत्रैव अग्निप्रभृतिषु ।
विदिशासु लक्षयोजनविस्तारायामसहितानि ॥ ५०५ ॥

गणिका। गणिकामहत्तरीणां पुराणि तत्रैव स्थाने अग्निप्रभृतिषु विदिक्षु लक्षयोजनविस्तारायामसहितानि सन्ति ॥ ५०५ ॥

वहीं गणिका महत्तरियों के नगर हैं, ऐसा कहते हैं—

गाथार्थ :—वहीं आग्नेय आदि विदिशाओं में गणिका महत्तरियों के एक लाख योजन लम्बे चौड़े नगर हैं ॥ ५०५ ॥

विशेषार्थ :—जहाँ लोकपाल देवों के नगर हैं, वहीं आग्नेय आदि विदिशाओं में प्रधान गणिका देवाङ्गनाओं के नगर हैं। जो एक एक लाख योजन लम्बे चौड़े हैं। अर्थात् समचतुष्कोण हैं। यथा :—

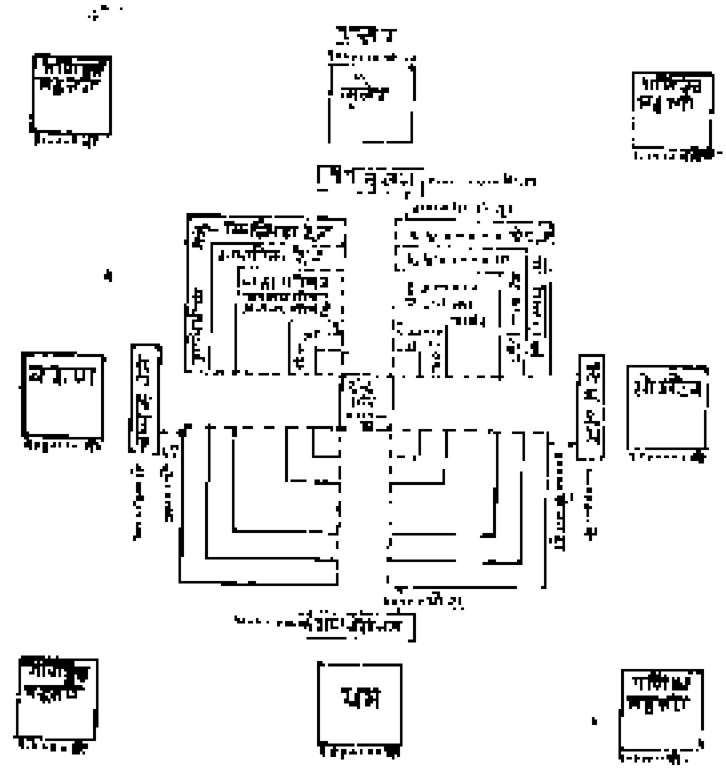

तासां नामान्याह—

ताओ चउरो सग्गे कामा कामिणि य पउमगंधा य ।
तो होदि अलंबूसा सव्विंदपुराणमेस कमो ॥ ५०६ ॥

ता: चतस्रः स्वर्गे कामा कामिनी च पद्मगन्धा च ।
ततो भवति अलम्बूषा सर्वेन्द्रपुराणामेव क्रमः ॥ ५०६ ॥

ताओ चउ । सौधर्मादिस्वर्गे कामा कामिनी च पद्मगन्धा च ततोऽलम्बूषेति ताश्चतस्रो भवन्ति । सर्वेन्द्रपुराणामेव एष क्रमो ज्ञातव्यः ॥ ५०६ ॥

गणिका महत्तरियों के नाम—

गाथार्थ :—सौधर्मादि चार स्वर्गों की गणिकामहत्तरियों के नाम क्रमशः कामा, कामिनी, पद्मगन्धा और अलम्बूषा हैं । सर्व इन्द्रों के नगरों का ऐसा ही क्रम जानना चाहिए ॥ ५०६ ॥

विशेषार्थ :—सुगम है ।

अथ सौधर्मादिषु गृहोत्सेधं प्रतिपादयति—

छज्जुगलसेसकप्पे तितिसु य अणुदिसे अणुत्तरगे ।
गेहुदओ छप्पणसय पण्णास रिणं दलं चरिमे ॥ ५०७ ॥

षट्युगलशेषकल्पेषु त्रित्रिषु च अनुदिशि अनुत्तरके ।
गेहोदयः षट्पञ्चशतं पञ्चाशदृणं दलं चरमे ॥ ५०७ ॥

छज्जुगल । षट्सु युगलेषु शेषकल्पे च त्रित्रिषु ग्रैवेयकेषु अनुदिशायां अनुत्तरे चेति द्वादशस्थानेषु गेहोदयः षट्शतयोजनानि पञ्चशतयोजनानि तत उपरि पञ्चाशदृणं कर्त्तव्यं । चरमे स्थाने उपात्यार्द्धं ज्ञातव्यम् ॥ ५०७ ॥

सौधर्मादि बारह स्थानों में गृहों की ऊँचाई का प्रतिपादन करते हैं—

गाथार्थ :—छह युगल और शेष कल्पों में तथा तीन तीन ग्रैवेयक, अनुदिश और अनुत्तरों के गृहों का उत्सेध क्रम से छह सौ, पाँच सौ, तथा सौ पर्यन्त ५०-५० योजन हीन और इसके आगे अन्त तक अर्ध अर्ध प्रमाण होता हुआ है ॥ ५०७ ॥

विशेषार्थ :—छह युगलों के ६ तथा आनतादि चार कल्पों का एक, तीन ग्रैवेयकों के तीन तथा अनुदिश और अनुत्तरों का एक, एक इस प्रकार कुल बारह स्थानों के गृहों का उत्सेध क्रम से ६०० योजन, ५००, ४५०, ४००, ३५०, ३००, २५०, २००, १५०, १००, ५० और २५ योजन प्रमाण है ।

अथ देवीनां गेहोत्सेधेन सर्वगृहाणां विस्तारायामौ कथयति—

समपदे देवीणं गिहोदयं पणसयं तु पणरिणं ।
सव्वगिहदिग्घवासं उदयस्स य पंचमं दसमं ॥ ५०८ ॥

समपदे देवीनां गेहोदयः पञ्चशतं तु पञ्चाशदृणं ।
सर्वगृहदैर्घ्यव्यासौ उदयस्य च पञ्चमो दशमः ॥ ५०८ ॥

सप्तपदे । षड्युगलेष्वानुक्ते सप्तपदे देवीनां गृहोदयः क्रमशः पञ्चशतयोजनानि उत्तरत्र पञ्चाशत्पञ्चाशद्धीनं कर्तव्यं । सर्वेषां देवानां देवीनां च गृहदैर्घ्यव्यासौ यथासंख्यं उदयस्य पञ्चमभागो दशमभागश्च ॥ ५०८ ॥

देवाङ्गनाओं के गृहों का उत्सेध कह कर सर्वगृहों का विस्तार और आयाम कहते हैं—

गाथार्थ :—सात स्थानों में देवाङ्गनाओं के गृहों का उत्सेध क्रमशः पाँच सौ योजन तथा पचास पचास योजन हीन है। सम्पूर्ण गृहों की दीर्घता (लम्बाई) उत्सेध के पाँचवें भाग प्रमाण और व्यास (चौड़ाई) दशवें भाग प्रमाण है ॥ ५०८ ॥

विशेषार्थ:—छह युगलों के छह स्थान और आनतादि चार कल्पों का एक स्थान इस प्रकार सात स्थानों में देवाङ्गनाओं के गृहों का उत्सेध क्रमशः ५००, ४५०, ४००, ३५०, ३००, २५० और २०० योजन प्रमाण है। सम्पूर्ण देवों और देवाङ्गनाओं के गृहों की लम्बाई उत्सेध का पाँचवाँ भाग और चौड़ाई दशवाँ भाग है। यथा—

क्रमांक	स्थान	देवों के गृह						देवाङ्गनाओं के गृह					
		उत्सेध		लम्बाई		चौड़ाई		उत्सेध		लम्बाई		चौड़ाई	
		योजनों में	मीलों में	यो० में	मी० में	यो० में	मीलों में	यो० में	मीलों में	यो० में	मीलों में	यो० में	मीलों में
१	सौधर्मेशान	६००	४८००	१२०	९६०	६०	४८०	५००	४०००	१००	८००	५०	४००
२	सानत्कु०-माहेन्द्र	५००	४०००	१००	८००	५०	४००	४५०	३६००	९०	७२०	४५	३६०
३	ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	४५०	३६००	९०	७२०	४५	३६०	४००	३२००	८०	६४०	४०	३२०
४	लान्तव-कापिष्ट	४००	३२००	८०	६४०	४०	३२०	३५०	२८००	७०	५६०	३५	२८०
५	शुक्र-महाशुक्र	३५०	२८००	७०	५६०	३५	२८०	३००	२४००	६०	४८०	३०	२४०
६	शतार-सहस्रार	३००	२४००	६०	४८०	३०	२४०	२५०	२०००	५०	४००	२५	२००
७	आनतादि चार	२५०	२०००	५०	४००	२५	२००	२००	१६००	४०	३२०	२०	१६०
८	अधो ग्रैवेयक	२००	१६००	४०	३२०	२०	१६०						
९	मध्य "	१५०	१२००	३०	२४०	१५	१२०						
१०	उपरिम "	१००	८००	२०	१६०	१०	८०						
११	अनुदिश	५०	४००	१०	८०	५	४०						
१२	अनुत्तर	२५	२००	५	४०	२½	२०						

कल्पेष्वग्रदेवीनां तत्परिवारदेवीनां च प्रमाणमाह—

सत्तपदे अट्ठट्ठमहादेवीयो पुधादि मेक्किस्से ।
सममं सोलसहस्सा देवीओ उवरि अद्धद्धा ।। ५०९ ।।

सप्तपदेषु अष्टाष्टमहादेव्यः पृथक् आदिमे एकस्य ।
स्वसमं षोडशसहस्रा देव्यः उपरि अर्धार्धाः ।। ५०९ ।।

सत्तपदे । सप्तसु पदेष्वष्टाष्टमहादेव्यः । पृथक् प्रत्येकमादिमे प्रथमयुगले एकैकस्या देव्याः स्वेन समं षोडशसहस्रपरिवारदेव्यः उपर्यर्धार्धप्रमिताः ।। ५०९ ।।

कल्पवासी देवों की अग्र एवं परिवार देवांगनाओं का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—सातों स्थानों में आठ आठ महादेवाङ्गनाएँ हैं। प्रथम स्थान में एक-एक महादेवांगना के आप सहित सोलह सोलह हजार परिवार देवांगनाएँ हैं। उपरिम स्थानों में परिवार देवांगनाओं का प्रमाण अर्ध अर्ध होता गया है ।। ५०९ ।।

विशेषार्थ :—सातों स्थानों में आठ आठ महादेवांगनाएँ हैं। प्रथम स्थान में एक एक महादेवी के आप सहित सोलह सोलह हजार परिवार देवियाँ हैं। तथा द्वितीयादि स्थानों में परिवार देवांगनाओं का प्रमाण अर्ध अर्ध होता गया है।

अथ तासामग्रदेवीनां नामानि गाथाद्वयेनाह—

सचिपउम सिवसियामा कालिंदीसुलसअज्जुकाणामा ।
भाणुत्ति जेट्ठदेवी सव्वेसिं दक्खिणिंदाणं ।। ५१० ।।
सिरिमदि रामसुसीमा पभावदि जयसेण णामय सुसेणा ।
वसुमित्त वसुंधर वरदेवीओ उत्तरिंदाणं ।। ५११ ।।

शचिः पद्मा शिवा श्यामा कालिन्दी सुलसा अज्जुकानामा ।
भानुरिति ज्येष्ठादेव्यः सर्वेषां दक्षिणेन्द्राणाम् ।। ५१० ।।
श्रीमती रामा सुसीमा प्रभावती जयसेना नामा सुषेणा ।
वसुमित्रा वसुंधरा वरदेव्यः उत्तरेन्द्राणाम् ।। ५११ ।।

सचिपउम । शची: पद्मा शिवा श्यामा कालिन्दी सुलसा अज्जुका नामा भानुरित्येता ज्येष्ठदेव्यः सर्वेषां दक्षिणेन्द्राणां ।। ५१० ।।

सिरिमदि । श्रीमती रामा सुसीमा प्रभावती जयसेनाख्या सुषेणा । वसुमित्रा वसुन्धरेति वरदेव्यः उत्तरेन्द्राणाम् ।। ५११ ।।

दो गाथाओं द्वारा अग्र देवांगनाओं के नाम कहते हैं—

गाथार्थ :—सर्व दक्षिणेन्द्रों के १ शची, २ पद्मा, ३ शिवा, ४ श्यामा, ५ कालिन्दी, ६ सुलसा, ७ अज्जुका और ८ भानु नाम की ज्येष्ठ (अग्र) देवांगनाएँ हैं ॥ ५१० ॥

गाथार्थ :—सर्व उत्तरेन्द्रों के १ श्रीमती, २ रामा, ३ सुसीमा, ४ प्रभावती, ५ जयसेना, ६ सुषेणा, ७ वसुमित्रा और ८ वसुन्धरा नाम की आठ पट्ट देवांगनाएँ हैं ॥ ५११ ॥

विशेषार्थ :—सर्व दक्षिणेन्द्रों और सर्व उत्तरेन्द्रों की आठ आठ पट्ट देवांगनाओं के नाम उपर्युक्त ही हैं।

अथ तत्राग्रमहादेवीनां विक्रियाप्रमाणं निरूपयति—

अट्ठण्हं देवीणं पुधपुध सोलससहस्सविक्किरिया।
मूलसरीरेण समं सेसे दुगुणा मुणेदव्वा ॥ ५१२ ॥

अष्टानां देवीनां पृथक् पृथक् षोडशसहस्रविक्रियाः।
मूलशरीरेण समं शेषे द्विगुणा मन्तव्याः ॥ ५१२ ॥

अट्ठण्ह। सप्तसु स्थानेषु आद्यानामष्टानां देवीनां पृथक् पृथक् मूलशरीरेण समं षोडशसहस्रविक्रिया देव्यः। [1]शेषे द्विगुणद्विगुणा देव्यो ज्ञातव्याः ॥ ५१२ ॥

उन अग्रदेवांगनाओं की विक्रिया के प्रमाण का निरूपण करते हैं—

गाथार्थ :—प्रथम स्थान में पृथक् पृथक् आठों अग्रदेवियों के अपने मूलशरीर सहित सोलह सोलह हजार विक्रियाशरीर होते हैं, शेष स्थानों में दूना दूना प्रमाण जानना चाहिए ॥ ५१२ ॥

विशेषार्थ :—सातों स्थानों में से प्रथम स्थान में भिन्न भिन्न आठों महादेवांगनाओं के मूल शरीर सहित सोलह सोलह हजार विक्रिया शरीर होते हैं। शेष द्वितीयादि स्थानों में यह प्रमाण अर्थात् वैक्रियिक देवियों का प्रमाण दूना दूना जानना चाहिए।

अग्र देवांगनाओं, परिवार देवांगनाओं एवं वैक्रियिक देवांगनाओं का प्रमाण—

[चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिए]

---

१ शेषे तु द्विगुणा देव्यः ज्ञातव्याः (ब०, प०)।

क्रमांक	स्थान	अग्रदेवियों का प्रमाण	परिवार देवांगनाएँ		वैक्रियिक शरीर	
			एक महा-देवी की	आठों महा-देवांगनाओं की	एक महा देवी की	आठों महा दे० की
१	सौधर्मेशान	८,८	१६०००	१२८०००	मूल शरीर युक्त १६०००	१२८०००
२	सा०–मा०	८,८	८०००	६४०००	" " " ३२०००	२५६०००
३	ब्रह्म०-ब्रह्मो०	८	४०००	३२०००	" " " ६४०००	५१२०००
४	लां०-का०	८	२०००	१६०००	" " " १२८०००	१०२४०००
५	शुक्र-महा०	८	१०००	८०००	" " " २५६०००	२०४८०००
६	शतार-सह०	८	५००	४०००	" " " ५१२०००	४०९६०००
७	आनतादि ४	८	२५०	२०००	" " " १०२४०००	८१९२०००

एवैव परिवारदेवीषु वल्लभिकाप्रमाणं निरूपयति—

सत्तपदे वल्लभिया बत्तीसट्ठ व दो सहस्साइं ।
पञ्चसयं अद्धद्धं तेसट्ठी होंति सत्तमगे ॥ ५१३ ॥

सप्तपदेषु वल्लभिका द्वात्रिंशदष्टैव द्वौ सहस्राणि ।
पञ्चशतानि अर्धार्धं त्रिषष्टिः भवन्ति सप्तमके ॥ ५१३ ॥

सत्तपदे । सप्तसु पदेषु वल्लभिका द्वात्रिंशत्सहस्राणि अष्टसहस्राणि द्विसहस्राणि पञ्चशतानि अर्धार्धानि सप्तमे स्थाने त्रिषष्टिवल्लभिका भवन्ति ॥ ५१३ ॥

परिवारदेवांगनाओं में वल्लभा देवांगनाओं के प्रमाण का निरूपण—

गाथार्थ:—सातों पदों (स्थानों) में वल्लभादेवियों का प्रमाण क्रमशः बत्तीस हजार, आठ-हजार, दो हजार और पाँच सौ है। इससे आगे अर्ध अर्ध प्रमाण है। अन्तिम सातवें स्थान में मात्र ६३. ६३ ही वल्लभा देवांगनाएँ हैं ॥ ५१३ ॥

विशेषार्थ:—परिवार देवांगनाओं में से जो जो देवांगनाएँ इन्द्र को अतिप्रिय होती हैं उन्हें वल्लभा कहते हैं। सातों स्थानों में इनका प्रमाण क्रमशः ३२०००, ८०००, २०००, ५००, २५०, १२५ और ६३ है।

तासां वल्लभिकानां प्रासादोत्सेधं तत्प्रासादावस्थानदिशं चाह—

देवीपासादुदया वल्लभियाणं तु वीसअहियं खु ।
इंदत्थंभगिहादो वल्लभियावासया पुव्वे ॥ ५१४ ॥

देवीप्रासादोदयात् वल्लभिकानां तु विंशाधिकः खलु ।
इन्द्रस्तम्भगृहात् वल्लभिकावासकाः पूर्वस्याम् ॥ ५१४ ॥

देवीपासा । देवीनां प्रासादोदयाद्वल्लभिकानां प्रासादोदयस्तु विंशतियोजनाधिकः खलु । इन्द्र-प्रासादात्पूर्वस्यां दिशि वल्लभिकाप्रासादास्तिष्ठन्ति ॥ ५१४ ॥

इन वल्लभादेवियों के प्रासादों का उत्सेध एवं प्रासादों के अवस्थान की दिशा बताते हैं—

गाथार्थ :—देवियों के प्रासादों की ऊँचाई से वल्लभादेवांगनाओं के प्रासादों की ऊँचाई बीस योजन अधिक है। इन्द्र के प्रासाद से पूर्व दिशा में वल्लभाओं के प्रासादों की अवस्थिति है॥ ५१४ ॥

विशेषार्थ :—देवियों के प्रासादों की ऊँचाई से वल्लभादेवांगनाओं के प्रासादों की ऊँचाई बीस योजन अधिक है। अर्थात् क्रम से ५२०, ४७०, ४२०, ३७०, ३२०, २७० और २२० योजन प्रमाण है। इनके प्रासादों का अवस्थान इन्द्र के प्रासाद की पूर्व दिशा में है।

इन्द्रस्यास्थानमण्डपस्वरूपमाह—

अमरावदिपुरमज्झे थंभगिहीसाणदो सुधम्मक्खं ।
अत्थाणमण्डवं सयतद्दलदीहदु तदुभयदल उदयं ॥ ५१५ ॥

अमरावतीपुरमध्ये स्तम्भगृहैशानतः सुधर्माख्यम् ।
आस्थानमण्डपं शततद्दलदीर्घद्विः तदुभयदलः उदयः ॥५१५॥

अमरावदि । अमरावतीपुरमध्ये इन्द्रस्यावासगृहस्यैशानतः सुधर्माख्यमास्थानमण्डपं अस्ति । तस्य दैर्घ्यव्यासौ शतयोजनतद्दलौ तयोर्मिलितोभययोर्दल उत्सेधः स्यात् ॥ ५१५ ॥

इन्द्र के आस्थानमण्डप का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—अमरावती नगर के मध्य में इन्द्र के निवास स्थान से ईशान दिशा में सुधर्मा नामक आस्थान मण्डप (सभास्थान) है। उसकी लम्बाई सौ योजन, चौड़ाई लम्बाई के अर्धभाग और ऊँचाई, लम्बाई + चौड़ाई दोनों के योग के अर्धभाग प्रमाण है॥ ५१५ ॥

विशेषार्थ :—इन्द्र अमरावती नामक नगर में रहता है। अमरावती के ठीक मध्य में उसके निवास करने का प्रासाद है। प्रासाद की ईशान दिशा में सुधर्मा नामक आस्थान मण्डप है; जिसकी

लम्बाई १०० योजन (८०० मील) चौड़ाई ५० योजन (४०० मील) और ऊँचाई ($\frac{१००+५०}{२}$) ७५ योजन (६०० मील) प्रमाण है।

अथ आस्थानमण्डपद्वारं तदन्तस्थपदार्थान् गाथात्रयेणाह—

पुव्वुत्तरदक्खिणदिस तद्दारा अट्ठवास सोलुदया ।
मज्झे हरिसिंहासणमट्ठदेवीणासणं पुरदो ॥ ५१६ ॥

पूर्वोत्तरदक्षिणदिशि तद्द्वाराणि अष्टव्यासः षोडशोदयाः ।
मध्ये हरिसिंहासनं अष्टदेवीनामासनानि पुरतः ॥ ५१६ ॥

पुव्वुत्तर। तस्यास्थानमण्डपस्य पूर्वोत्तरदक्षिणदिशि द्वाराणि सन्ति। तेषां व्यासः अष्ट-योजनानि उत्सेधस्तु षोडशयोजनानि तन्मध्ये स्थाने हरिसिंहासनं। तत्सिंहासनात्पुरतः अष्टपट्टदेवी-नामासनानि स्युः ॥ ५१६ ॥

अब आस्थान मण्डप के द्वार तथा मण्डप में स्थित पदार्थों का वर्णन तीन गाथाओं द्वारा करते हैं—

गाथार्थ :—आस्थान मण्डप के पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशा में एक एक द्वार अर्थात् कुल तीन द्वार हैं। जिनमें प्रत्येक की चौड़ाई ८ योजन और उदय (ऊँचाई) सोलह योजन है। मण्डप के मध्य में इन्द्र का सिंहासन है, और इस सिंहासन के आगे आठ पट्ट देवाङ्गनाओं के आसन हैं ॥ ५१६ ॥

विशेषार्थ :—उस आस्थान मण्डप की पूर्व, उत्तर और पश्चिम दिशा में ८ योजन (६४ मील) चौड़ा और १६ योजन (१२८ मील) ऊँचाई के प्रमाण को लिये हुए एक एक दरवाजा है। मण्डप के मध्य भाग में इन्द्र का सिंहासन है, तथा इस सिंहासन के आगे अष्ट अग्र देवाङ्गनाओं के सिंहासन हैं।

तब्बाहिं पुव्वादिसु सलोयवालाण परिसतिदयस्स ।
अग्गिजमणेरिदीए तेत्तीसाणं तु णेरिदिए ॥ ५१७ ॥

तद्बहिः पूर्वादिषु स्वलोकपालानां परिषत्त्रितयस्य ।
अग्नियमनैऋत्यां त्रयस्त्रिंशतां तु नैऋत्याम् ॥ ५१७ ॥

तब्बाहिं। तासां देवीनामासनाद्बहिः पूर्वादिषु दिक्षु लोकपालानां सोमयमवरुणकुबेराणां आसनानि सन्ति परिषत्त्रयस्यासनानि १२००० । १४००० । १६००० । इत्यासनानि आग्नेययमनैऋत्यां दिशि सन्ति त्रायस्त्रिंशद्देवानामासनान्यपि ३३ नैऋत्यां दिश्येव सन्ति ॥ ५१७ ॥

गाथार्थ :—पट्टदेवियों के आसनों से बाहर पूर्वादि दिशाओं में लोकपालों के आग्नेय, दक्षिण

और नैऋत्य में तीनों पारिषद् देवों के तथा नैऋत्य दिशा में तेंतीस आसन त्रायस्त्रिंश देवों के हैं ।। ५१७ ।।

विशेषार्थ :— अष्ट पट्ट देवांगनाओं के आसनों से बाहर पूर्व दिशा में सोम दक्षिण में यम, पश्चिम में वरुण और उत्तर में कुबेर नामक चारों लोकपालों के चार आसन हैं। इन्द्र के सिंहासन की आग्नेय दिशा में आभ्यन्तर परिषद के १२००० देवों के, दक्षिण दिशा में मध्य परिषद के १४००० देवों के तथा नैऋत्य दिशा में बाह्य परिषद के १६००० देवों के आसन हैं। त्रायस्त्रिंश देवों के तैंतीस आसन मात्र नैऋत्य दिशा में ही हैं।

सेणावईणमवरे समाणियाणं तु पवणईसाणे ।
तणुरक्खाणं भद्दासणाणि चउदिसगयाण बहिं ।। ५१८ ।।

सेनापतीनामपरस्यां सामानिकानां तु पवनेशाने ।
तनुरक्षाणां भद्रासनानि चतुर्दिशागतानि बहिः ।। ५१८ ।।

सेणावईण । सेनापतीनां ७ आसनान्यपरस्यां दिशि सन्ति । सामानिकानामासनानि वायव्यां दिशि ४२००० सन्ति । ऐशान्यां दिशि ४२००० सन्ति । एतस्माद्बहिः तनुरक्षकाणां भद्रासनानि चतुर्दिग्गतानि सन्ति ८४००० । ८४००० । ८४००० । ८४००० ।। ५१८ ।।

गाथार्थ :— सेनानायकों के सात आसन पश्चिम दिशा में हैं। सामानिक देवों के वायव्य और ईशान कोण में तथा इनसे बाहर अंगरक्षक देवों के भद्रासन चारों दिशाओं में हैं ।। ५१८ ।।

विशेषार्थ :— इन्द्रासन की पश्चिम दिशा में सातों सेनानायकों के सात आसन हैं। सौधर्मेन्द्र के सामानिक देवों के कुल आसन ८४००० हैं; उनमें से ४२००० आसन वायव्य दिशा में और ४२००० देवों के आसन ईशान दिशा में हैं। इनके आसनों से बाहर तनुरक्षक देवों के ८४००० आसन पूर्व दिशा में, ८४००० दक्षिण में, ८४००० पश्चिम में और ८४००० आसन उत्तरदिशा में हैं।

आस्थान-मण्डप में स्थित इन्द्रासन एवं उसकी आठों दिशाओं में लोकपालादि देवों के आसनों का चित्रण निम्नाङ्कित है :—

[चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

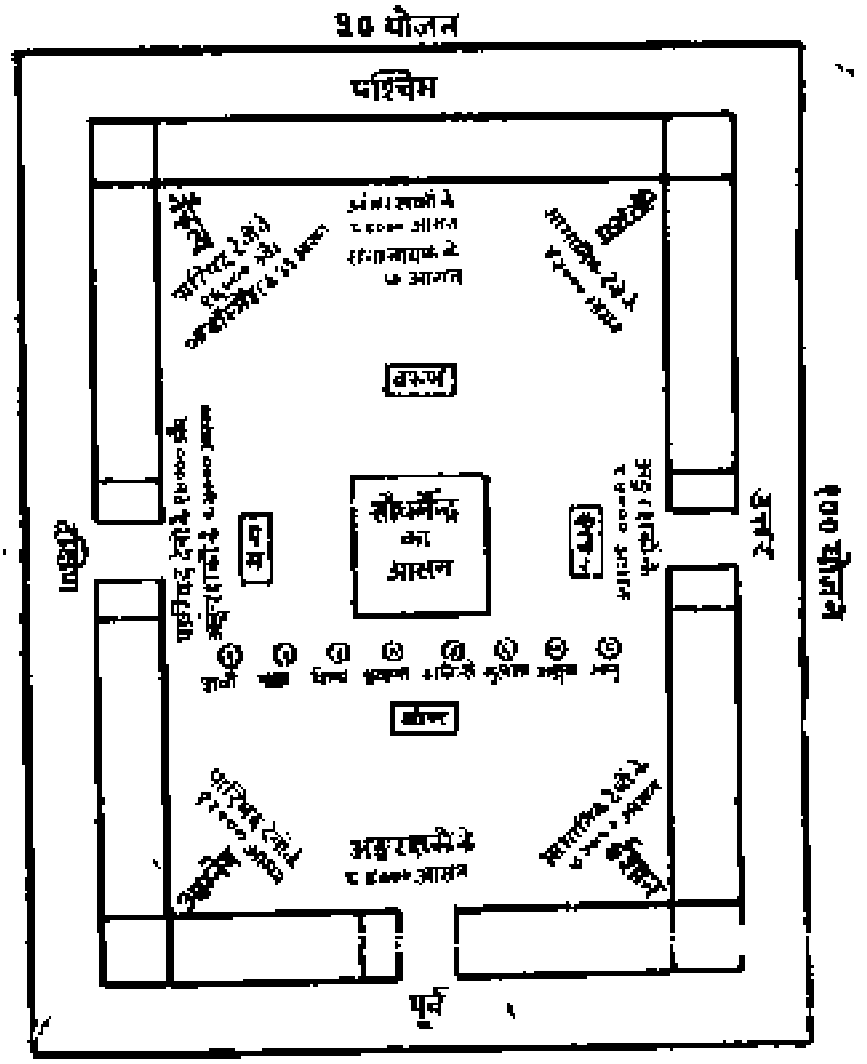

इन्द्रासन की आठों दिशाओं में लोकपालादि देवों के आसनों का प्रमाण :—

क्रमांक	देवों के नाम	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर	ईशान
१	लोकपाल	सोम का एक आसन	.	यम का एक	.	वरुण का एक	.	कुबेर का एक	.
२	पारिषद	.	१२००० आभ्य. परि.	१४००० मध्य. प.	१६००० बाह्य प.	.	.	.	.
३	त्रायस्त्रिंश	.	.	.	३३ आसन	.	.	.	.
४	सेनानायक	.	.	.	.	७ आसन	.	.	.
५	सामानिक	.	.	.	.	.	४२०००	.	४२०००
६	तनुरक्षक	८४०००	.	८४०००	.	८४०००	.	८४०००	.

तन्मण्डपाग्रस्थमानस्तम्भस्वरूपमाह—

तस्सग्गे इगिवासो छत्तीसुदओ सपीढ वज्जमओ ।
माणत्थंभो गोरुद[1] विच्छारय बारकोडिजुदो ॥ ५१९ ॥

तस्याग्रे एकव्यासः षट्त्रिंशदुदयः सपीठः वज्रमयः ।
मानस्तम्भः क्रोशविस्तारः द्वादशकोटियुतः ॥ ५१९ ॥

तस्सग्गे । तन्मण्डपस्याग्रे एकयोजनव्यासः षट्त्रिंशद्योजनोदयः पीठसहितो वज्रमयः क्रोशविस्तारो द्वादशधारायुक्तो मानस्तम्भोऽस्ति ॥ ५१९ ॥

उस आस्थानमण्डप के अग्रस्थित मानस्तम्भ का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—उस आस्थान मण्डप के आगे एक योजन विस्तीर्ण, ३६ योजन ऊँचा पाद पीठ से सहित, और एक कोश विस्तार वाली बारह धाराओं से संयुक्त वज्रमय मानस्तम्भ है ॥ ५१९ ॥

विशेषार्थ :—उस सभा मण्डप के आगे एक योजन (८ मील) विस्तीर्ण, (चौड़ा) ३६ योजन (२८८ मील) ऊँचा, पादपीठ से युक्त वज्रमय मानस्तम्भ है। इसका आकार गोल और व्यास एक योजन अर्थात् ४ कोश है। इसमें एक एक कोश विस्तार वाली बारह धाराएँ हैं।

अथ तन्मानस्तम्भस्थकरण्डकस्वरूपं गाथात्रयेणाह—

चिट्ठंति तत्थ गोरुदचउत्थविच्छार कोसदीहजुदा ।
तित्थयराभरणचिदा करण्डया रयणसिक्कधिया ॥ ५२० ॥

तिष्ठंति तत्र क्रोशचतुर्थविस्ताराः क्रोशदैर्घ्ययुताः ।
तीर्थंकराभरणचिताः करण्डका रत्नशिक्यधृताः ॥ ५२० ॥

चिट्ठंति । तत्र मानस्तम्भे क्रोशचतुर्थांशविस्ताराः क्रोशदैर्घ्ययुताः तीर्थंकराभरणचिता रत्नशिक्यधृताः करण्डकास्तिष्ठन्ति ॥ ५२० ॥

उस मानस्तम्भ पर स्थित करण्डों का स्वरूप तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—उस मानस्तम्भ पर एक कोस लम्बे और पाव कोस विस्तृत रत्नमयी सीकों के ऊपर तीर्थङ्करों के पहिनने योग्य अनेक प्रकार के आभरणों से भरे हुए करण्ड (पिटारे) स्थित हैं ॥ ५२० ॥

विशेषार्थ :—गाथार्थ की भाँति ही है।

---

1 कोस (ब० टि०) ।

तुरियजुदविजुदछज्जोयणाणि उवरिं अधोवि ण करण्डा ।
सोहम्मदुगे भरहेरावदतित्थयरपडिबद्धा ॥ ५२१ ॥
साणक्कुमारजुगले पुव्ववरविदेहतित्थयरभूसा ।
ठविदच्चिदा सुरेहिं कोडीपरिणाह बारंसो ॥ ५२२ ॥

तुरीययुतवियुतषड्योजनानां उपरि अधोऽपि न करण्डाः ।
सौधर्मद्विके भरतैरावततीर्थंकरप्रतिबद्धाः ॥ ५२१ ॥
सानत्कुमारयुगले पूर्वापरविदेहतीर्थंकरभूषाः ।
स्थापयित्वाचिताः सुरैः कोटिपरिणाहः द्वादशांशः ॥ ५२२ ॥

तुरिय । तन्मानस्तम्भस्योपरि योजनचतुर्थांशयुक्त $\frac{1}{4}$ षड्योजनेषु $\frac{25}{4}$ तस्याधश्च योजनचतुर्थांश $\frac{1}{4}$ वियुक्तषड्योजनेषु $\frac{23}{4}$ करण्डा न सन्ति । सौधर्मद्विके तौ मानस्तम्भौ भरतैरावततीर्थङ्करप्रतिबद्धौ स्यातास् ॥ ५२१ ॥

साणक्कुमार । सानत्कुमारयुगले मानस्तम्भयोः पूर्वापरविदेहतीर्थंकरभूषाः स्थापयित्वा सुरैरचिता तन्मानस्तम्भधारान्तरं परिधेर्द्वादशांशो भवति ॥ ५२२ ॥

गाथार्थ :—मानस्तम्भों के चतुर्थ भाग से युक्त और वियुक्त छह योजन अर्थात् पौने छह योजन नीचे और सवा छह योजन ऊपर करण्ड नहीं हैं । सौधर्मेशान कल्पों में स्थित मानस्तम्भ के ऊपर स्थापित करण्ड भरतैरावत के तीर्थंकरों के निमित्त हैं । तथा सानत्कुमारमाहेन्द्र कल्पों में स्थित मानस्तम्भों पर देवों द्वारा स्थापित एवं पूजित करण्डों में पूर्व और अपर विदेह क्षेत्रों के तीर्थङ्करों के आभूषण हैं । उन मानस्तम्भों की धाराओं का अन्तर परिधि के बारहवें भाग (एक कोश) प्रमाण है ॥ ५२१, ५२२ ॥

विशेषार्थ :—मानस्तम्भों की ऊँचाई ३६ योजन है । $\frac{1}{4}$ भाग से सहित ६ योजन अर्थात् ($\frac{25}{4}$ योजन) $6\frac{1}{4}$ योजन के उपरिम भाग में और $\frac{1}{4}$ भाग रहित ६ योजन ($6-\frac{1}{4}$) $=\frac{23}{4}$ अर्थात् पौने छह योजन नीचे के भाग में करण्ड नहीं हैं । सौधर्म कल्प में स्थित मानस्तम्भ पर स्थापित करण्डों के आभरण भरतक्षेत्र सम्बन्धी तीर्थङ्करों के लिये हैं । ऐशान कल्प में स्थित मानस्तम्भ पर स्थापित करण्डों के आभरण ऐरावत क्षेत्र के तीर्थङ्करों के लिए हैं । इसी प्रकार सानत्कुमार कल्प में स्थित मानस्तम्भ के करण्डों के आभरण पूर्व विदेह क्षेत्र सम्बन्धी तीर्थङ्करों के लिये और माहेन्द्र कल्प में स्थित मानस्तम्भ पर स्थापित करण्डों के आभरण पश्चिम विदेह क्षेत्र सम्बन्धी तीर्थङ्करों के लिए हैं । ये सभी करण्ड देवों द्वारा स्थापित और पूजित हैं । इन मानस्तम्भों की धाराओं का अन्तर मानस्तम्भ की परिधि ($3\times4=12$ कोश) का बारहवाँ भाग अर्थात् एक कोश का है ।

[कृपया चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

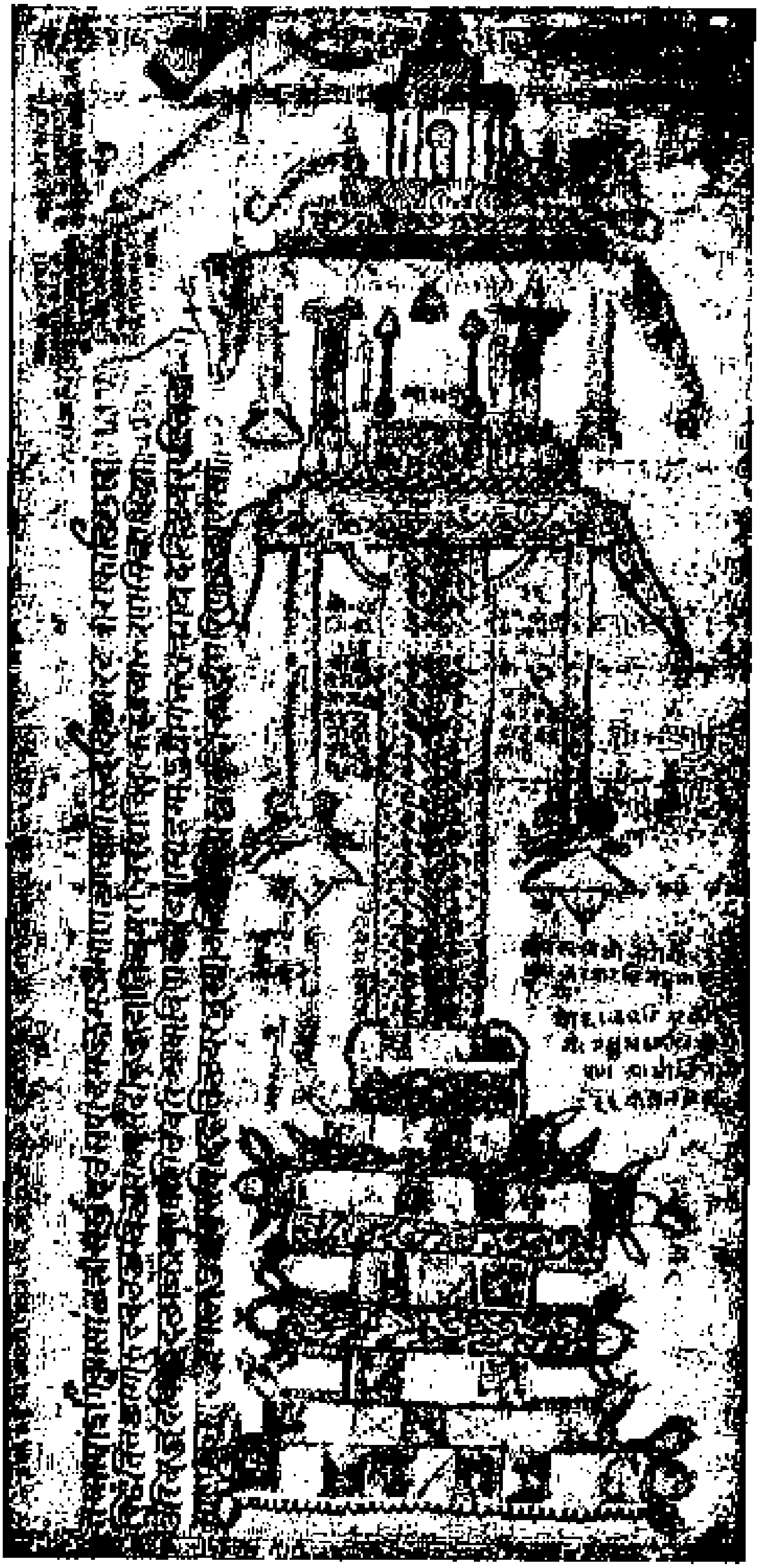

अथ इन्द्रोत्पत्तिगृहस्वरूपमाह—

पासे उववादगिहं हरिस्स अडवास दीहरुदयजुदं ।
दुगरयणसयण मज्झं वरजिणगेहं बहुकूडं ॥ ५२३ ॥

पार्श्वे उपपादगृहं हरेः अष्टव्यासदैर्घ्योदययुतम् ।
द्विकरत्नशयनं मध्यं वरजिनगेहं बहुकूटम् ॥ ५२३ ॥

पासे । तन्मानस्तम्भस्य पार्श्वे अष्टयोजनव्यासदैर्घ्योदययुतं मध्ये द्विरत्नशयनयुतं हरेरुपपादगृहमस्ति । एतस्य पार्श्वे बहुकूटं वरजिनगेहमस्ति ॥ ५२३ ॥

इन्द्र के उत्पत्तिगृह का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—उस मानस्तम्भ के पास इन्द्र का उपपाद गृह है। जो आठ योजन लम्बा, चौड़ा और ऊंचा है। उसके मध्य में रत्नों की दो शय्या हैं। तथा उपपाद गृह के पास ही बहुत कूटों से युक्त उत्कृष्ट जिन मन्दिर है ॥ ५२३ ॥

विशेषार्थ :—मानस्तम्भ के पार्श्व भाग में ८ योजन लम्बा, ८ योजन चौड़ा और ८ ही योजन ऊंचा उपपाद गृह है, जिसके मध्य भाग में रत्नमयी दो शय्या हैं। तथा जिसके पास ही बहुत कूटों (शिखरों) से सहित उत्कृष्ट जिन मन्दिर है।

साम्प्रतं कल्पस्त्रीणामुत्पत्तिस्थानं गाथाद्वयेनाह—

दक्खिणउत्तरदेवी सोहम्मीसाण एव जायंते ।
तहिं सुद्धदेविसहिया छच्चउलक्खं विमाणाणं ॥५२४॥
तद्देवीओ पच्छा उवरिमदेवा णयंति सगठाणं ।
सेसविमाणा छच्चदुवीसलक्ख देवदेविसम्मिस्सा ॥५२५॥

दक्षिणोत्तरदेव्यः सौधर्मैशान एव जायन्ते ।
तत्र शुद्धदेवीसहिता षट्चतुर्लक्षं विमानानाम् ॥ ५२४ ॥
तद्देवीः पश्चादुपरिमदेवाः नयन्ति स्वकस्थानं ।
शेषविमानाः षट्चतुर्विंशलक्षाः देवदेविसम्मिश्राः ॥ ५२५ ॥

दक्खिण । दक्षिणोत्तरकल्पस्थदेवानां देव्यः सौधर्मैशान एव जायन्ते । तत्र सौधर्मद्वये शुद्धदेवीसहिताः षट्लक्षचतुर्लक्षविमानाः सन्ति ॥ ५२४ ॥

तद्देवीओ । ताश्च देवीः पश्चादुपरिमदेवाः नयन्ति स्वकीयस्वकीयस्थानं शेषविमानाः षड्विंशतिलक्षाः चतुर्विंशतिलक्षाः देवदेवीसम्मिश्रा भवन्ति ॥ ५२५ ॥

अब दो गाथाओं द्वारा कल्पवासी देवांगनाओं के उत्पत्ति स्थान कहते हैं—

गाथार्थ :—दक्षिण उत्तर कल्पों की देवांगनाएं क्रम से सौधर्मैशान में ही उत्पन्न होती हैं। वहाँ शुद्ध (मात्र) देवांगनाओं की उत्पत्ति से युक्त छह लाख और चार लाख विमान हैं। उन देवियों को उत्पत्ति के पश्चात् उपरिम कल्पों के देव अपने अपने स्थान पर ले जाते हैं। सौधर्मैशान कल्पों में शेष छब्बीस लाख और चौबीस लाख विमान देव देवियों की उत्पत्ति से संमिश्र हैं ॥ ५२४, ५२५ ॥

विशेषार्थ :—आरण स्वर्ग पर्यन्त दक्षिण कल्पों की समस्त देवांगनाएं सौधर्म कल्प में और अच्युत स्वर्ग पर्यन्त उत्तर कल्पों की समस्त देवांगनाएं ऐशान कल्प में ही उत्पन्न होती हैं। उत्पत्ति के बाद उपरिम कल्पों के देव अपनी अपनी नियोगिनी देवांगनाओं को अपने अपने स्थानों पर ले जाते हैं। सौधर्म कल्प में ६००००० (छह लाख) विमान और ईशान कल्प में ४००००० विमान शुद्ध हैं। अर्थात् इनमें मात्र देवाङ्गनाओं की ही उत्पत्ति होती है, और इन्हीं कल्पों में क्रम से २६००००० (२६ लाख) और २४००००० (२४ लाख) विमान देव देवियों से संमिश्र हैं। अर्थात् उनमें देव और देवांगना-दोनों की उत्पत्ति होती है।

इदानीं कल्पवासिनां प्रवीचारं विचारयति—

> दुसु दुसु तिचउक्केसु य काये फासे य रूव सद्दे य।
> चित्तेवि य पडिचारा अप्पडिचारा हु अहमिंदा ॥ ५२६ ॥

> द्वयोर्द्वयोः त्रिचतुष्केषु च काये स्पर्शे च रूपे शब्दे च।
> चित्तेऽपि च प्रवीचारा अप्रवीचाराः हि अहमिन्द्राः ॥ ५२६ ॥

दुसु दुसु। सौधर्मादिद्वयो २ र्द्वयो २ स्त्रिचतुष्केषु च १२ देवदेवीनां यथासंख्यं काये स्पर्शे रूपे शब्दे चित्तेऽपि च प्रवीचाराः। तत उपरि अहमिन्द्रा अप्रवीचारा एव। ५२६ ॥

अब कल्पवासी देवों के प्रवीचार का विचार करते हैं—

गाथार्थ :—सौधर्मादि दो, दो और तीन चतुष्क अर्थात् चार, चार और चार स्वर्गों में क्रम से काय, स्पर्श, रूप, शब्द और चित्त में प्रविचार है। अहमिन्द्र अप्रवीचारी होते हैं ॥ ५२६ ॥

विशेषार्थ :—काम सेवन को प्रवीचार कहते हैं। सौधर्मैशान कल्पों के देव अपनी देवांगनाओं के साथ मनुष्यों के सदृश काम सेवन करके अपनी इच्छा शान्त करते हैं। सानत्कुमार-माहेन्द्र कल्पों के देव देवांगनाओं के स्पर्श मात्र से अपनी पीड़ा शान्त करते हैं। ब्रह्म ब्रह्मोत्तर और लान्तव-कापिष्ठ कल्पों के देव देवांगनाओं के रूपावलोकन मात्र से अपनी पीड़ा शान्त करते हैं। शुक्र-महाशुक्र और शतार सहस्रार कल्पों के देव देवांगनाओं के गीतादि शब्दों को सुनकर ही काम पीड़ा से रहित होते हैं। तथा आनतादि चार कल्पों के देव मन में देवांगना का विचार करते ही काम वेदना से रहित

हो जाते हैं। इसके आगे नव ग्रैवेयकों से सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त के सभी देव अहमिन्द्र हैं। इन अहमिन्द्रों में काम पीड़ा उत्पन्न ही नहीं होती अतः ये प्रवीचार से रहित हैं।

अनन्तरं वैमानिकदेवानां विक्रियाशक्तिज्ञानविषयं च गाथाद्वयेनाह—

> दुसु दुसु तिचउक्केसु य णवचोद्दसगे विगुव्वणासत्ती ।
> पढमखिदीदो सत्तमखिदिपेरंतो त्ति अवही य ।। ५२७ ।।

> द्वयोर्द्वयोः त्रिचतुष्केषु च नवचतुर्दशसु विकुर्वणाशक्तिः ।
> प्रथमक्षितितः सप्तमक्षितिपर्यन्तं इति अवधिश्च ।। ५२७ ।।

दुसु दुसु। द्वयो २ र्द्वयो २ स्त्रिचतुष्केषु च १२ ग्रैवेयकेषु नवसु अनुदिशादिषु चतुर्दशविमानेषु सप्तस्थानेषु विकुर्वणाशक्तिर्यथासंख्यं प्रथमपृथिवीतः आरभ्य सप्तमक्षितिपर्यन्तं ज्ञातव्या। अवधिज्ञानं च तथा ज्ञातव्यम्। उपरि तद्ज्ञानं[1] कथमितिचेद् ? सौधर्मादिदेवाः स्वकीयस्वकीयकल्पविमानध्वजदण्डादुपरि न पश्यन्ति। नवानुत्तरविमानवासिदेवा आत्मीयात्मीयविमानशिखरादधो यावद्वाह्य-वातवलयं तावत्त्रिकिञ्चिन्न्यूनचतुर्दशरज्ज्वायतामेकरज्जुविस्तारां सर्वलोकनालिं पश्यन्ति ।। ५२७ ।।

वैमानिक देवों की विक्रिया शक्ति और ज्ञान का विषय दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—सौधर्मादि दो, दो, तीन चतुष्क अर्थात् चार, चार और चार, नव और चौदह (नव अनुदिश, ५ अनुत्तर) स्वर्गों के देवों की विक्रिया करने की एवं अवधिज्ञान से जानने की शक्ति क्रम से नरक की प्रथम पृथ्वी से सातवीं पृथ्वी पर्यन्त है ।। ५२७ ।।

विशेषार्थ :—दो, दो, तीन चतुष्क अर्थात् १२, नवग्रैवेयक और नव अनुदिशादि १४ विमानों में रहने वाले देव नीचे सात स्थानों में अर्थात् प्रथम पृथ्वी से सप्तम पृथ्वी पर्यंत यथासंख्य विक्रिया शक्ति से सहित हैं। अवधिज्ञान का क्षेत्र भी इतना ही जानना चाहिये। अवधिज्ञान का क्षेत्र ऊपर कितना है ? ऐसा पूछने पर कहते हैं कि प्रत्येक कल्प के देव अपने अपने विमान के ध्वजादण्ड से ऊपर के क्षेत्र की बात नहीं जान सकते। यथा—प्रथम दो कल्पों के देव घर्मा पृथ्वी तक, आगे के दो कल्पों के दूसरी वंशा पृथ्वी तक, आगे ब्रह्मादि चार स्वर्गों के तीसरी मेघा पृथ्वी तक, आगे शुक्रादि चार स्वर्गों के चौथी अञ्जना पृथ्वी तक, आगे आनतादि चार स्वर्गों के देव पांचवीं अरिष्टा पृथ्वी तक, आगे नव ग्रैवेयक स्वर्गों के देव छठवीं मघवी पृथ्वी तक और आगे नव अनुदिश एवं पांच अनुत्तर अर्थात् चौदह विमानों के देव सातवीं माघवी पृथ्वी पर्यन्त विक्रिया करने की शक्ति से संयुक्त हैं।

---

१ उपरि ज्ञानं (ब०)।

सौधर्म स्वर्ग से आनतादि सोलह स्वर्गों के देवों का अवधिक्षेत्र अपने अपने विमान के ध्वजा दण्ड से नीचे उपर्युक्त विक्रिया शक्ति से युक्त नरक पृथ्वी पर्यन्त है। नवग्रैवेयक विमानवासी देव अपने विमान के ध्वजा दण्ड से नीचे छठवीं पृथ्वी पर्यन्त तक ही जानते हैं, तथा नवअनुदिश विमान वासी देव अपने अपने विमान के शिखर से नीचे जहाँ तक नीचे का बाह्य (तनु) वातवलय है वहाँ तक अर्थात् कुछ कम चोदह राजू लम्बी और एक राजू चौड़ी ऐसी सर्व लोक नाड़ी को देखते हैं।

सव्वं च लोयणालिं पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा।
सगखेत्ते य सकम्मे रूवगदमणंतभागो य ॥ ५२८ ॥

सर्वां च लोकनालिं पश्यन्ति अनुत्तरेषु ये देवाः।
स्वकक्षेत्रे च स्वकर्मे रूपगतमनन्तभागं च ॥ ५२८ ॥

सव्वं च। पञ्चानुत्तरेषु ये देवास्ते सर्वां च लोकनालिं पश्यन्ति। अवधेर्भेदप्रकार उच्यते। स्वक्षेत्रे एकप्रदेशोऽपनेतव्यः। स्वकर्मणि एको ध्रुवभागहारो ९ दातव्यः यावत्प्रदेशसमाप्तिः। अनेनावधिविषयद्रव्यभेदः सूचितः। एतदर्थं विशदं करोति। कल्पसुराणां स्वस्वावधिक्षेत्रं विगतविस्रसोपचयमवधिज्ञानावरणद्रव्यं च संस्थाप्य $\frac{\equiv}{३४३}\times\frac{३}{३}$, $\frac{स ७}{७\times४}\times\frac{१२}{१}$ एकप्रदेशमपनीय एकवारं ध्रुवभागहारेण ९ भजेत् यावत् स्वस्वावधिविज्ञानविषयक्षेत्रप्रदेशप्रमाणं तावत् ध्रुवभागहारेण द्रव्ये भक्ते सति तत्तत्चरमखण्डं तत्तत्अवधिज्ञानविषयद्रव्यप्रमाणं भवति ॥ ५२८ ॥

गाथार्थ :—पाँच अनुत्तर विमानवासी देव सम्पूर्ण लोकनाड़ी को देखते हैं। अपने कर्म परमाणुओं में अनन्तवें भाग का भाग देते जाना और प्रत्येक बार अपने (अवधि) क्षेत्र में से एक प्रदेश घटाते (हीन करते) जाना चाहिए॥ ५२८॥

विशेषार्थ :—पाँच अनुत्तर विमानों में जो देव हैं, वे सम्पूर्ण लोकनाड़ी को देखते हैं। अब अवधिज्ञान के जानने का विधान कहते हैं—

अपने (अवधि) क्षेत्र में से जब एक प्रदेश घटाना तब अपने (अवधिज्ञानावरण) कर्म परमाणुओं में एक बार ध्रुवहार का भाग देना, जो लब्ध प्राप्त हो उसमें पुनः ध्रुवहार का भाग देना और क्षेत्र में से एक प्रदेश घटा देना। इस प्रकार एक एक प्रदेश घटाते हुए जब तक सर्व प्रदेश समाप्त न हो जाँय तब तक भाग देते जाना चाहिए। इस कथन से अवधिज्ञान के विषयभूत द्रव्य का भेद कहा। पुनः इसी अर्थ को विशद करते हैं :—

वैमानिक देवों का अपना अपना जितना जितना अवधिज्ञान का विषयभूत क्षेत्र कहा है, उसके जितने जितने प्रदेश हैं उन्हें एकत्रित कर स्थापित करना, और विस्रसोपचय रहित सत्ता में स्थित अपने अपने अवधिज्ञानावरण कर्म के [कार्मण वर्गणारूप परिणत कर्म] परमाणुओं को एक ओर

स्थापित कर इस अवधिज्ञानावरण के द्रव्य को सिद्ध राशि के अनन्तवें भाग प्रमाण ध्रुवहार का एक बार भाग देना और क्षेत्र के प्रदेश पुञ्ज में से एक प्रदेश कम कर (घटा) देना। भाग देने पर प्राप्त हुई लब्ध राशि में दूसरी बार उसी ध्रुवहार का भाग देना और प्रदेश पुञ्ज में से एक प्रदेश पुनः घटा देना। पुनः लब्ध राशि में ध्रुवहार का भाग देना और प्रदेश पुञ्ज में से एक प्रदेश और घटा देना। इस प्रकार अवधिज्ञान के विषय भूत क्षेत्र के जितने प्रदेश हैं उतनी बार अवधिज्ञानावरण कर्म के परमाणु पुञ्ज के भजन फल रूप लब्ध राशि में भाग देने के बाद अन्त में जो लब्ध राशि प्राप्त हो उतने परमाणु पुञ्ज स्वरूप पुद्गल स्कन्ध को वैमानिक देव अपने अवधि नेत्र से जानते हैं। इस प्रकार अवधिज्ञान के विषयभूत द्रव्य के भेद सूचित किए गए हैं। अब इसी विषय का विशद रूप से कथन किया जाता है। वैमानिक (कल्पवासी) देवों के अपने अपने अवधिज्ञान का जितना जितना क्षेत्र है, और उस क्षेत्र की जितनी जितनी प्रदेश संख्या है उनको एक ओर स्थापित करना और विस्रसोपचय रहित अपना अपना अवधिज्ञानावरण कर्म का द्रव्य (परमाणु समूह) दूसरी ओर स्थापित करना चाहिए। सौधर्म स्वर्ग में अवधिज्ञान का क्षेत्र डेढ़ राजु है, जिसका प्रतीक चिह्न $\frac{\equiv}{३४३}\times\frac{३}{२}$ है। ३४३ घन राजू प्रमाण घन लोक का प्रतीक '≡' है क्योंकि जगत् श्रेणी का प्रतीक (—) है, और लोक जगत् श्रेणी का घन है, अतः लोक का प्रतीक (≡) है। लोक को ३४३ से भाजित करने पर $(\frac{\equiv}{३४३})=१$ घन राजू और इसी को $\frac{३}{२}$ से गुणित करने पर $(\frac{\equiv}{३४३}\times\frac{३}{२})=१\frac{१}{२}$ घन राजू प्राप्त होता है, जो सौधर्म देवों का अवधि क्षेत्र है।

सातों कर्मों के समय प्रबद्ध का प्रतीक चिह्न (स ७) है। इस द्रव्य (समय प्रबद्ध) को ७ से भाजित करने पर अवधिज्ञानावरण का द्रव्य ($\frac{\text{स}\,७}{७}$) प्राप्त हो जाता है। इसमें सर्वघाती स्पर्धक अल्प हैं, अतः उनको गौण कर ($\frac{\text{स}\,७}{७}$) को देशघातिया स्पर्धकों का द्रव्य स्वीकृत कर लिया जाता है। मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इन चार ज्ञानावरण कर्मों में देश घाती स्पर्धक होते हैं। अतः ($\frac{\text{स}\,७}{७}$) को ४ का भाग देने पर ($\frac{\text{स}\,७}{७\times४}$) एक समय प्रबद्ध में अवधिज्ञानावरण कर्म का द्रव्य प्राप्त हो जाता है। अवधिज्ञानावरण के एक समय प्रबद्ध को डेढ़गुण हानि (१२ क्योंकि एक गुणहानि का प्रतीक चिह्न ८ है, तथा $८\times\frac{३}{२}=१२$ होते हैं) से गुणित करने पर अवधिज्ञानावरण का सत्त्व ($\frac{\text{स}\,७\times१२}{७\times४}$) प्राप्त होता है। ध्रुवभागहार का प्रतीक चिह्न (९) है, अतः अवधिज्ञानावरण के सत्त्व द्रव्य ($\frac{\text{स}\,७\times१२}{७\times४}$) को एक बार ध्रुव भागहार का भाग देने पर ($\frac{\text{स}\times७\times१२}{७\times४\times९}$) प्राप्त होता है। अवधिज्ञान के क्षेत्र प्रदेशों ($\frac{\equiv}{३४३}\times\frac{३}{२}$) में से एक कम करने पर $\left(\frac{\equiv}{३४३\times२}\times३\right)$ प्राप्त होता है। यहाँ पर घटाने का चिह्न (॰) ऐसा है।

इस प्रकार अवधिज्ञानावरण कर्म के सत्त्व द्रव्य में प्रत्येक बार ध्रुव भागहार का भाग देने पर अवधिज्ञान क्षेत्र में से एक एक प्रदेश कम करने पर जब अवधिज्ञान क्षेत्र के प्रदेश समाप्त हो जाएँ

उस समय ध्रुव भागहारों के द्वारा भाजित जो अवधिज्ञानावरण का द्रव्य शेष रह जाता है वह पुद्गल स्कन्ध अवधिज्ञान के विषय भूत द्रव्य का प्रमाण है। उससे सूक्ष्म स्कन्ध को सौधर्म का देव अवधिज्ञान से नहीं जान सकता है, किन्तु उससे स्थूल स्कन्ध को जानने में कोई बाधा नहीं है। काल की अपेक्षा—सौधर्म युगल के देवों के अवधिज्ञान का विषयभूत काल असंख्यात करोड़ वर्ष है, और शेष देवों के अवधिज्ञान के विषय भूत काल यथा योग्य पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। जैसे—अङ्कसंदृष्टि—मान लो अवधिक्षेत्र के १० प्रदेश हैं, और अवधिज्ञानावरण कर्म स्कन्ध के १००००००००००० परमाणु हैं। तथा ध्रुवभागहार ५ है अतः—

क्षेत्र	अवधिज्ञानावरण का द्रव्य
१० प्रदेश	१०००००००००००
१० — १ = ९	१००००००००००० × १/५ = २००००००००००
९ — १ = ८	२०००००००००० × १/५ = ४०००००००००
८ — १ = ७	४००००००००० × १/५ = ८००००००००
७ — १ = ६	८०००००००० × १/५ = १६०००००००
६ — १ = ५	१६००००००० × १/५ = ३२००००००
५ — १ = ४	३२०००००० × १/५ = ६४०००००
४ — १ = ३	६४००००० × १/५ = १२८००००
३ — १ = २	१२८०००० × १/५ = २५६०००
२ — १ = १	२५६००० × १/५ = ५१२००
१ — १ = ०	५१२०० × १/५ = १०२४० पुद्गल स्कन्ध को

वैमानिक देव अपने अवधि नेत्र से जानते हैं।

अथ वैमानिकदेवानां जननमरणान्तरं निरूपयति—

> दुसुदुसु तिचउक्केसु य सेसे जणणंतरं तु चवणे य।
> सत्तदिण पक्ख मासं दुगचदुछम्मासगं होदि ॥ ५२९ ॥
>
> द्वयोर्द्वयोः त्रिचतुष्केषु च शेषे जननान्तरं तु च्यवने च।
> सप्तदिनानि पक्षं मासं द्विकचतुःषण्मासकं भवति ॥ ५२९ ॥

दुसु दुसु। द्वयोर्द्वयोस्त्रिचतुष्केषु शेषे चेति षट्सु स्थानेषु जननरहितान्तरकालो मरणरहितान्तरकालश्च यथासंख्यं सप्तदिनानि पक्षं मासं द्विमासं चतुर्मासं षण्मासं च भवति ॥ ५२९ ॥

अथ वैमानिक देवों के जन्ममरण के अन्तर का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—सौधर्मादि दो, दो, तीन चतुष्कों (चार, चार, चार) और शेष विमानों में जन्म एवं मरण का अन्तर क्रम से सात दिन, एक पक्ष, एक माह, दो माह, चार माह और छह माह का होता है ॥ ५२९ ॥

विशेषार्थ :—उत्कृष्टता से जितने काल तक किसी भी जीव का जन्म न हो उसे जन्मान्तर और मरण किसी का न हो उसे मरणान्तर कहते हैं, सौधर्मैशान इन दो कल्पों में यदि कोई भी जीव जन्म न ले तो सात दिन पर्यन्त न ले, इसके बाद अवश्य ही कोई न कोई जीव जन्म लेगा। इसी प्रकार वहाँ मरण का अन्तराल भी सात दिन ही है। सानत्कुमार आदि दो कल्पों में एक पक्ष, ब्रह्मादि चार स्वर्गों में एक माह, शुक्र आदि चार स्वर्गों में दो माह, आनतादि चार स्वर्गों में चार माह और ग्रैवेयकादि उपरिम विमानों में जन्मान्तर और मरणान्तर छह माह का है।

उपर्युक्त उत्कृष्ट अन्तर त्रिलो० [illegible] गाथा [illegible] के अनुसार है किन्तु ८।५४४–५४८ के अनुसार सौधर्म में छह मुहूर्त, ईशान में ४ मुहूर्त, सानत्कुमार में $६\frac{२}{३}$ दिन, माहेन्द्र कल्प में $१२\frac{१}{२}$ दिन, ब्रह्मकल्प में ४० दिन, महाशुक्र में ८० दिन, सहस्रार कल्प में १०० दिन, आनतादि चार कल्पों में संख्यात सौ वर्ष, नौ ग्रैवेयकों में संख्यात हजार वर्ष, अनुदिश और अनुत्तरों में पल्य के असंख्यातवें भाग जन्म मरण का उत्कृष्ट अन्तर है।

अथेन्द्रादीनामुत्कृष्टान्तरमाह—

वरविरहं छम्मासं इंदमहादेविलोयपालाणं।
चउ तेत्तीससुराणं तणुरक्खसमाणपरिसाणं ॥ ५३० ॥

वरविरहं षण्मासं इन्द्रमहादेविलोकपालानाम्।
चतुः त्रयस्त्रिंशसुराणां तनुरक्षसमानपारिषदानाम् ॥५३०॥

वरविरहं। इन्द्राणां तन्महादेवीनां लोकपालानां चोत्कृष्टेन विरहकालं षण्मासं जानीहि। त्रयस्त्रिंशत्सुराणां तनुरक्षाणां सामानिकानां पारिषदानां च चतुर्मासं विरहकालं जानीहि ॥ ५३० ॥

इन्द्रादिकों का उत्कृष्ट अन्तर—

गाथार्थ :—इन्द्र, इन्द्र की महादेवी और लोकपालों का उत्कृष्ट विरहकाल छह माह का, तथा त्रायस्त्रिंश, सामानिक, तनुरक्षक और पारिषद देवों के जन्म मरण का उत्कृष्ट अन्तर चार माह का है ॥ ५३० ॥

विशेषार्थ :—इन्द्र, इन्द्र की महादेवी और लोकपाल का मरण होने के बाद कोई अन्य जीव उस स्थान पर जन्म न ले तो अधिक से अधिक ६ माह तक नहीं लेगा। इसी प्रकार त्रायस्त्रिंश, सामानिक, तनुरक्षक और पारिषद देवों का उत्कृष्ट विरह-काल चार माह है।

अथ देवविशेषाणां भवस्थानं प्रतिपादयति—

ईसाणलांतवच्चुदकप्पोत्ति कमेण होंति कंदप्पा ।
किब्भिसिय आभिजोगा सगकप्पजहण्णठिदिसहिया ॥५३१॥

ईशानलान्तवाच्युतकल्पान्तं क्रमेण भवन्ति कन्दर्पाः ।
किल्विषिका आभियोग्याः स्वककल्पजघन्यस्थितिसहिताः ॥५३१॥

ईसाण। अत्र विटलक्षणकान्दर्पपरिणामयुक्ताः स्वयोग्यशुभकर्मवशात् ईशानकल्पपर्यन्तं कन्दर्पदेवा भूत्वा उत्पद्यन्ते न तत उपरि। अत्र गीतादिजीविलक्षणकैल्विषिकपरिणामयुक्ताः स्वयोग्यशुभकर्मवशात् लान्तवकल्पपर्यन्तं तत्रापि किल्विषिका एवोत्पद्यन्ते न तत उपरि। अत्र सावद्यक्रियासु स्वहस्तव्यापारलक्षणाभियोग्यभावनायुक्ताः स्वयोग्यशुभकर्मवशात् अच्युतकल्पपर्यन्तं तत्राप्याभियोग्यदेवा भूत्वा उत्पद्यन्ते न तत उपरि। एते सर्वे स्वकीयकल्पजघन्यस्थिति सहिताः सन्तः ॥ ५३१ ॥

देव विशेषों के भव स्थानों का प्रतिपादन करते हैं :—

गाथार्थ :—ईशान, लान्तव और अच्युत कल्प पर्यन्त क्रम से अपने अपने कल्प सम्बन्धी जघन्य आयु सहित कन्दर्प, किल्विषिक और आभियोग्य जाति के देव उत्पन्न होते हैं ॥ ५३१ ॥

विशेषार्थ :—यहाँ मनुष्य पर्याय में जो जीव स्त्रीगमन आदि विटलक्षण को धारण करते हुए कान्दर्प परिणामों से संयुक्त होते हैं, वे अपने योग्य शुभ कर्म के वश से कन्दर्प देव होकर ईशान कल्प पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, इससे ऊपर नहीं। ये देव ईशान कल्प की जघन्य आयु से सहित होते हैं। मनुष्य पर्याय में जो जीव गीतादि से जीविका चलाना है लक्षण जिसका ऐसे कैल्विषिक परिणामों से युक्त नट आदि अपने योग्य शुभ कर्म के वश से किल्विष देव होकर लान्तव कल्प पर्यन्त ही उत्पन्न होते हैं, इससे ऊपर नहीं। ये भी अपने उत्पत्ति क्षेत्र की जघन्यायु से सहित होते हैं। इसी प्रकार मनुष्य पर्याय में जो जीव पाप युक्त क्रियाओं में स्वहस्त व्यापार है लक्षण जिसका ऐसी आभियोग्य भावना से युक्त अर्थात् नाई, धोबी एवं दास आदि के करने योग्य कार्यों का स्व हस्त से करते हुए उन्हीं परिणामों से युक्त हैं, वे जीव अपने योग्य शुभकर्म के वश से आभियोग्य देव होकर अच्युत कल्प पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, इससे ऊपर नहीं। इनकी भी अपने उत्पत्तिक्षेत्र की जघन्यायु ही होती है।

अथ प्रथमादिषु स्थितिविशेषमाह—

सोहम्म वरं पल्लं वरमुवहिवि सत्त दस य चोद्दसयं ।
बावीसोत्ति दुवड्ढी एक्केक्कं जाव तेत्तीसं ॥ ५३२ ॥

सौधर्मे वरं पल्यं अवरं उदधिद्विकं सप्त दश च चतुर्दशकं।
द्वाविंशतिरिति द्विवृद्धिः एकैकं यावत्त्रयस्त्रिंशत् ॥ ५३२ ॥

सोहम्म। सौधर्मयुगले जघन्यमायुः पल्यमुत्कृष्टं तु प्रत्येक सागरोपमद्वयं। इत उपरि सर्वोत्कृष्टमेव कथयति-सनत्कुमारयुगले प्रत्येकं सप्त सागरोपमाणि ब्रह्मयुगले प्रत्येकं दशसागरोपमाणि लान्तवयुगले प्रत्येकं चतुर्दशसागरोपमाणि इत उपरि युगलयुगलं प्रति प्रत्येकं द्वाविंशतिसागरोपम-पर्यंन्तं द्विसागरोपमवृद्धिर्ज्ञातव्या। इत अच्युतादुपरि यावत्त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमं तावदेकैकवृद्धि-र्ज्ञातव्या ॥ ५३२ ॥

प्रथमादि युगलों में स्थिति विशेष कहते हैं :—

गाथार्थ :—सौधर्म युगल की जघन्यायु एक पल्य और उत्कृष्टायु दो सागर की है। इसके आगे क्रम से सात सागर, दश सागर, चौदह सागर प्रमाण है। चौदह सागर से बावीस सागर पर्यन्त दो दो सागर की वृद्धि को लिये हुए तथा उसके ऊपर तेंतीस सागर पर्यन्त एक एक सागर की वृद्धि को लिए हुए उत्कृष्ट आयु का प्रमाण है ॥ ५३२ ॥

विशेषार्थ :—सौधर्म युगल में जघन्यायु एक पल्य और उत्कृष्टायु प्रत्येक की दो सागर है। इससे ऊपर सर्वोत्कृष्ट आयु ही कहते हैं—सानत्कुमार युगल में प्रत्येक की सात सागरोपम, ब्रह्म युगल में प्रत्येक की दश सागरोपम, लान्तव युगल में प्रत्येक की चौदह सागरोपम प्रमाण है। इससे ऊपर बावीस सागरोपम पर्यन्त दो दो सागर की वृद्धि है। यथा—शुक्र युगल में सोलह सागरोपम, शतार युगल में अठारह सागरोपम, आनत युगल में बीस और आरण युगल में बावीस सागरोपम प्रमाण है। इससे ऊपर तेतीस सागरोपम पर्यन्त एक एक सागर की वृद्धि को लेकर है। यथा—प्रथमादि नव ग्रैवेयकों में क्रम से २३, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ सागरोपम प्रमाण है। नव अनुदिशों में ३२ सागरोपम और पांच अनुत्तरों में उत्कृष्टायु तेतीस सागरोपम प्रमाण है।

अथ घातायुष्कसम्यग्दृष्टेः पटलं प्रति चोत्कृष्टायुष्यमाह—

सम्मे घादेऊणं सायरदलमहियमा सहस्सारा।
जलहिदलमुडुवराऊ पडलं पडि जाण हाणिचयं ॥५३३॥

सम्यग्घातायुषि सागरदलमधिकमा सहस्रारात्।
जलधिदलं ऋतुवरायुः पटलं प्रति जानीहि हानिचयम् ॥५३३॥

सम्मे घा। सम्यग्दृष्टौ घातायुषि सति तस्य स्वकीयकल्पोत्कृष्टायुषः सकाशादन्तर्मुहूर्तोनं सागरदलमधिकं भवति। सा ½। एवं सहस्रारपर्यंन्तं ज्ञातव्यं। तत उपरि घातायुष्कस्योत्पत्तिर्नास्ति। सौधर्मयुगलस्य प्रथमपटले ऋत्विन्द्रके अर्धसागरोपमं उत्कृष्टायुः इति प्रथमचरमपटलयोरायु-र्दृष्ट्वा पटलं प्रति हानिचयं जानीहि। तत्कथं। घातयुष्के तावत् सौधर्मादियुगले सार्धो

१।५।१५।२१।२९।३३।३७।२० / २।२।२।२।२।२।२।० अन्ते ५।१५।२१।२९।३३।३७।२०।२२ / २।२।२।२।२।२।०।० मुखे २।१०।३।४।२।२।३।२ / १।२।१।१।१।१।२।० रूऊणद्धा ३० सनत्कुमारादियुगले प्राक्तनकल्पचरमपटलस्यैवादित्वात्तत्र तत्र रूपन्यूने सत्ताविशेष ७।४।२।१।१।३।३ हिदम्मि हाणिचयमिति कृते सौधर्मयुगले हानिचयमेतत् । ३/३० अर्द्धसागरोपमस्योपरि समानच्छेदेन मेलयेत् १८/३० एतद्विमलेन्द्रकस्योत्कृष्टायुः स्यात् । एवमुपरि सर्वत्र पटलं प्रत्यानेतव्यं । सनत्कुमारद्विके हानिचयं १०/७ ब्रह्मयुग्मे ३/४ लान्तवयुगे २ शुक्रयुगले २ शतारद्वन्द्वे २ आनतद्वये १/३ आरणद्वये १/३ । एवं हानिचयं ज्ञात्वा तत्तत्पटलं प्रति आयुरानेतव्यम् । अघातायुष्के तु आदि १/२ अन्त २ विसेसे ३/२ रूऊणद्धा ३० हिदम्मि हाणिचयं १/२० त्रिभिरपवर्तितं एवं १/२० एतद्धानिचयं अर्द्धसागरोपमस्योपरि स्वचरमपटलपर्यन्तं मेलयेत् ३१/२० । एवं सनत्कुमारादारभ्याच्युतपर्यन्तं तत्तत्पटलायुर्हानिचयं ज्ञातव्यम् ॥ ५३३ ॥

घातायुष्क सम्यग्दृष्टि के प्रत्येक पटल की उत्कृष्टायु कहते हैं :—

गाथार्थ :—[सौधर्म युगल में] घातायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव की आयु आधा सागर अधिक है। इस प्रकार सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त जानना, (क्योंकि सहस्रार स्वर्ग से ऊपर घातायुष्क की उत्पत्ति नहीं होती,) ऋतु पटल की उत्कृष्टायु आधा सागर है, इसी से (प्रथम और चरम पटल की आयु रखकर) प्रत्येक पटल का हानि चय जानना चाहिये ॥ ५३३ ॥

विशेषार्थ :—आयु का घात दो प्रकार का है—१ अपवर्तन घात, २ कदली घात। अपवर्तन घात बद्ध्यमान आयु का और कदलीघात भुज्यमान आयु का होता है। देवों का कदलीघात नहीं होता किन्तु बद्ध्यमान का अपवर्तन घात होता है। जैसे—मनुष्य पर्याय में संयमादि अवस्था में ऊपर के स्वर्ग विमानों का उत्कृष्ट आयु बंध किया, पश्चात् संयमादि से च्युत होकर बद्ध्यमान आयु का घात कर दिया, इसे अपवर्तन घात और उस जीव को घातायुष्क कहते हैं। जो सम्यग्दृष्टि घातायुष्क जीव हैं, उनकी अपने अपने स्वर्ग पटल की उत्कृष्टायु से अन्तर्मुहूर्त कम अर्ध सागरोपम आयु अधिक होती है। जैसे—सौधर्म युगल में सम्यग्दृष्टि की उत्कृष्ट आयु दो सागर की है किन्तु घातायुष्क की अन्तर्मुहूर्त कम २½ सागरोपम प्रमाण होती है। इसी प्रकार सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त जानना चाहिए। इससे ऊपर घातायुष्क जीवों की उत्पत्ति का अभाव है। सौधर्म युगल के प्रथम पटल में ऋतु नामक इन्द्रक की उत्कृष्टायु अर्धसागरोपम प्रमाण है। इस प्रकार प्रथम और चरम पटल की आयु रख कर प्रत्येक पटल का हानि चय जानना चाहिए।

आदी अन्त विसेसे……… गाथा २०० के अनुसार प्रत्येक युगल की अन्तिम पटल की उत्कृष्ट आयु में से आदि (प्रथम) पटल या युगल की उत्कृष्ट आयु घटा देने पर जो अवशेष रहे, उसमें एक कम गच्छ का भाग देने पर हानि चय प्राप्त होता है। यथा—

क्रमांक	स्वर्ग युगल	अन्तिम आयु प्रमाण	—	आदि आयु प्रमाण	=	अवशेष आयु प्रमाण	÷	एक कम गच्छ	= हानिचय
१	सौधर्मैशान	५/२	—	१/२ (ऋतु पटल)	=	४/२	÷	३०	= १/१५ सागर
२	सा० माहे०	१५/२	—	५/२	=	१०/२	÷	७	= १०/१४ या ५/७ "
३	ब्रह्म-ब्रह्मो०	२१/२	—	१५/२	=	६/२	÷	४	= ३/४ सागर
४	लां-का०	२९/२	—	२१/२	=	८/२	÷	२	= ४/२ या २ "
५	शुक्र-महा०	३३/२	—	२९/२	=	४/२	÷	१	= २/१ "
६	शतार-सह०	३७/२	—	३३/२	=	४/२	÷	१	= २/१ "
७	आनत-प्रा०	४०/२	—	३७/२	=	३/२	÷	३	= ३/६ या १/२ "
८	आरण-अच्युत	४४/२	—	४०/२	=	४/२	÷	३	= २/३ "

प्रथम ऋतु पटल की उत्कृष्टायु का प्रमाण १/२ सागर है, इसमें हानिचय का प्रमाण १/१५ सागर मिला देने पर (१/२ + १/१५ = (१५ + २)/३०) = १७/३० सागर दूसरे विमल पटल की आयु प्राप्त हुई। इसमें पुनः हानि चय मिला देने पर (१७/३० + १/१५) = १९/३० सागर उत्कृष्टायु तृतीय चन्द्र पटल की हुई। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए।

अघातायुष्कों की उत्कृष्टायु भी इसी प्रकार प्राप्त करना चाहिए। यथा—

क्रमांक	स्वर्ग युगल	अन्तिम उ० आयु	—	आदि उ० आयु	= अवशेषायु	÷	एक कम गच्छ	= हानिचय
१	सौधर्मैशान	२ सागर	—	१/२ सा० (ऋतु प०)	= ३/२	÷	३०	= ३/६० या १/२०
२	सा०-मा०	७ "	—	२ "	= ५	÷	७	= ५/७ सागर
३	ब्रह्म-ब्रह्मो०	१० "	—	७ "	= ३	÷	४	= ३/४ "
४	लां०-का०	१४ "	—	१० "	= ४	÷	२	= २ "
५	शुक्र-महा०	१६ "	—	१४ "	= २	÷	१	= २ "
६	श०-सह०	१८ "	—	१६ "	= २	÷	१	= २ "
७	आ०-प्रा०	२० "	—	१८ "	= २	÷	३	= २/३ "
८	आ०-अ०	२२ "	—	२० "	= २	÷	३	= २/३ "

प्रथम ऋतु पटल की १/२ सागर उत्कृष्टायु में १/२० सागर हानिचय का प्रमाण मिला देने पर (१/२ + १/२०) = ११/२० सागर द्वितीय विमल पटल की उत्कृष्टायु प्राप्त हुई। इसमें पुनः हानि चय मिलाने पर (११/२० + १/२०) = १२/२० = ३/५ सागर तृतीय चन्द्र पटल की उत्कृष्टायु हुई। इसी प्रकार आगे भी जानना।

प्रत्येक स्वर्गों के प्रत्येक पटलों की आदि आयु प्रमाण में हानिचय मिलाकर घातायुष्क और अघातायुष्क दोनों की उत्कृष्टायु का—

एकत्रित विवरण :—

क्रमांक	पटल नाम	घातायुष्क	अघातायुष्क	क्रमांक	पटल नाम	घातायुष्क	अघातायुष्क	क्रमांक	पटल नाम	घातायुष्क	अघातायुष्क
१	ऋतु	$\frac{१}{२}$ सा० + $\frac{१}{१५}$ =	$\frac{१}{२}$ सा० + $\frac{१}{२०}$ =	२१	अभ्र	१$\frac{२५}{३०}$	१$\frac{१०}{२०}$	३	ब्रह्म	९$\frac{३}{४}$ सा	९$\frac{१}{४}$ सागर
२	विमल	$\frac{१७}{३०}$ "	$\frac{११}{२०}$ सा०	२२	हरित	१$\frac{२७}{३०}$	१$\frac{११}{२०}$	४	ब्रह्मोत्तर	१०$\frac{१}{२}$ सा. + २ =	१० सा. + २ =
३	चन्द्र	$\frac{१९}{३०}$ "	$\frac{१२}{२०}$ "	२३	पद्म	१$\frac{२९}{३०}$	१$\frac{१२}{२०}$	१	ब्रह्महृदय	१२$\frac{१}{२}$ सा	१२ सा.
४	वल्गु	$\frac{२१}{३०}$ "	$\frac{१३}{२०}$ "	२४	लोहित	२$\frac{१}{३०}$	१$\frac{१३}{२०}$	२	लान्तव	१४$\frac{१}{२}$ " + २ =	१४ " + २ =
५	वीर	$\frac{२३}{३०}$ "	$\frac{१४}{२०}$ "	२५	वज्र	२$\frac{३}{३०}$	१$\frac{१४}{२०}$	१	शुक्र	१६$\frac{१}{२}$ " + २ =	१६ + २ =
६	अरुण	$\frac{२५}{३०}$ "	$\frac{१५}{२०}$ "	२६	नन्द्या०	२$\frac{५}{३०}$	१$\frac{१५}{२०}$	१	शतार	१८$\frac{१}{२}$ " + $\frac{१}{२}$ =	१८ + $\frac{२}{३}$ =
७	नन्दन	$\frac{२७}{३०}$ "	$\frac{१६}{२०}$ "	२७	प्रभङ्कर	२$\frac{७}{३०}$	१$\frac{१६}{२०}$	१	आनत	१९ सा.	१८ $\frac{२}{३}$ सा.
८	नलिन	$\frac{२९}{३०}$ "	$\frac{१७}{२०}$ "	२८	पृष्टक	२$\frac{९}{३०}$	१$\frac{१७}{२०}$	२	प्राणत	१९$\frac{१}{३}$ "	१९$\frac{१}{३}$ "
९	काञ्चन	१$\frac{१}{३०}$ "	$\frac{१८}{२०}$ "	२९	गज	२$\frac{११}{३०}$	१$\frac{१८}{२०}$	३	पुष्पक	२० " + $\frac{२}{३}$ =	२०सा० + $\frac{२}{३}$ =
१०	रोहित	१$\frac{३}{३०}$ "	$\frac{१९}{२०}$ "	३०	मित्र	२$\frac{१३}{३०}$	१$\frac{१९}{२०}$	१	सातक	२०$\frac{२}{३}$ "	२०$\frac{२}{३}$ सा०
११	चञ्चत्	१$\frac{५}{३०}$ "	१ सागर	३१	प्रभ	२$\frac{१५}{३०}$ या २$\frac{१}{२}$ सा० + $\frac{५}{७}$ =	२ सागर + $\frac{५}{७}$ "	२	आरण	२१$\frac{१}{३}$ "	२१$\frac{१}{३}$ "
								३	अच्युत	२२ सा.	२२ सागर
१२	मरुत्	१$\frac{७}{३०}$ "	१$\frac{१}{२०}$ "	१	अञ्जन	३$\frac{३}{१४}$	२$\frac{५}{७}$				
१३	ऋद्धीश	१$\frac{९}{३०}$ "	१$\frac{२}{२०}$ "	२	वनमाल	३$\frac{१३}{१४}$	३$\frac{३}{७}$				
१४	वैडूर्य	१$\frac{११}{३०}$ "	१$\frac{३}{२०}$ "	३	नाग	४$\frac{९}{१४}$	४$\frac{१}{७}$				
१५	रुचक	१$\frac{१३}{३०}$ "	१$\frac{४}{२०}$ "	४	गरुड़	५$\frac{५}{१४}$	४$\frac{६}{७}$				
१६	रुचिर	१$\frac{१५}{३०}$ "	१$\frac{५}{२०}$ "	५	लाङ्गल	६$\frac{१}{१४}$	५$\frac{४}{७}$				
१७	अङ्क	१$\frac{१७}{३०}$ "	१$\frac{६}{२०}$ "	६	बलभद्र	६$\frac{११}{१४}$	६$\frac{२}{७}$				
१८	स्फटिक	१$\frac{१९}{३०}$ "	१$\frac{७}{२०}$ "	७	चक्र	७$\frac{१}{२}$ सा + $\frac{३}{४}$ =	७ सा० + $\frac{३}{४}$ =				
१९	तपनीय	१$\frac{२१}{३०}$ "	१$\frac{८}{२०}$ "	१	अरिष्ट	८$\frac{१}{४}$	७$\frac{३}{४}$				
२०	मेघ	१$\frac{२३}{३०}$ "	१$\frac{९}{२०}$ "	२	सुरस	९ सा०	८$\frac{१}{२}$				

अथ लोकान्तिकानामवस्थानमाह—

णिवसंति बम्हलोयस्संते लोयंतिया सुरा अट्ठ ।
ईसाणादिसु अट्ठसु वट्टेसु पइण्णएसु कमा ॥ ५३४ ॥

निवसन्ति ब्रह्मलोकस्यान्ते लौकान्तिकाः सुरा अष्ट ।
ईशानादिषु अष्टसु वृत्तेषु प्रकीर्णकेषु क्रमात् ॥ ५३४ ॥

णिवसंति । ब्रह्मलोकस्यान्ते अष्टकुलाः लौकान्तिकाः सुरा ईशानादिष्वष्टदिक्षुवृत्तेषु प्रकीर्णकेषु यथाक्रमं निवसन्ति ॥ ५३४ ॥

लौकान्तिक देवों के अवस्थान का स्थान कहते हैं—

गाथार्थ :—ब्रह्मलोक के अन्त में ऐशानादि आठ दिशाओं में गोलाकार प्रकीर्णक विमानों में क्रमशः आठ लौकान्तिक देव निवास करते हैं ॥ ५३४ ॥

विशेषार्थ :– सुगम है ।

अथ तदष्टकुलसंज्ञां संख्यां च गाथाद्वयेनाह—

सारस्सद आइच्चा सत्तसया सगजुदा य वह्निअरुणा ।
सगसगसहस्समुवरिं दुसु दुसु दोदुगसहस्सवड्ढिकमा ॥ ५३५ ॥
तो गद्दतोयतुसिदा अव्वाबाहा अरिट्ठसण्णा य ।
सेढीबद्धे रिट्ठा विमाणणामं च तच्चेव ॥ ५३६ ॥

सारस्वता आदित्या सप्तशतानि सप्तयुतानि च वह्न्यरुणाः ।
सप्तसप्तसहस्रमुपरि द्वयोर्द्वयोः द्विद्विसहस्रवृद्धिक्रमः ॥ ५३५ ॥
ततो गर्दतोयतुषिता अव्याबाधा अरिष्टसंज्ञाश्च ।
श्रेणीबद्धे अरिष्टा विमाननामं च तदेव ॥ ५३६ ॥

सारस्सद आ । सारस्वता आदित्याश्च प्रत्येकं सप्तयुक्तसप्तशतानि ७०७ । ७०७ वह्नयः अरुणाश्च प्रत्येकं सप्ताधिकसप्त सहस्राणि । ७००७ । ७००७ । अत उपरि द्वयोर्द्वयोः स्थानयोर्द्वयधिक-द्विकसहस्र २००२ वृद्धिक्रमो ज्ञातव्यः ॥ ५३५ ॥

तो गद्दो । ततो गर्दतोयास्तुषिताश्च ९००९ । ९००९ ततो अव्याबाधारिष्टसंज्ञाश्च ११०११ । ११०११ एतेषां मध्ये श्रेणिबद्धेऽरिष्टास्तिष्ठन्ति । शेषा वृत्तेषु प्रकीर्णकेष्वेव तेषां नामान्येव तद्विमाननामानि ॥ ५३६ ॥

इन आठ कुलों की संज्ञा और संख्या दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—सारस्वत और आदित्य ये प्रत्येक सात सौ सात हैं । वह्नि और अरुण ये प्रत्येक

सात हजार सात हैं। इनसे ऊपर दो स्थानों में क्रम से दो हजार दो की वृद्धि को लिए हुए हैं। इसके बाद गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट नामके लौकान्तिक देव हैं। इनमें से अरिष्ट नाम के लौकान्तिक देव श्रेणीबद्ध विमानों में तथा शेष प्रकीर्णकों में रहते हैं॥ ५३५, ५३६ ॥

विशेषार्थ:—सारस्वत नाम के लौकान्तिक देवों का प्रमाण ७०७ है। आदित्य लौकान्तिक ७०७, वह्नि ७००७, अरुण ७००७, गर्दतोय ९००९, तुषित ९००९, अव्याबाध ११०११ और अरिष्ट नामक लौकान्तिक देवों का प्रमाण भी ११०११ है। आठ कुलों के सम्पूर्ण लौकान्तिक देवों का प्रमाण ५५४६८ अर्थात् पचपन हजार चार सौ अड़सठ है। इनमें से ११०११ अरिष्ट देव श्रेणीबद्ध विमानों में और शेष ४४४५७ लौकान्तिक देव गोल आकार वाले प्रकीर्णक विमानों में निवास करते हैं। इनके विमान क्रम से ऐशानादि आठ दिशाओं में अवस्थित हैं।

अथ सारस्वतादीनां द्वयोर्द्वयोरन्तरालस्थकुलनामानि तद्देवसंख्यां गाथाद्वयेनाह—

> सारस्सदआइच्चप्पहुदीणं अंतरालए दोदो ।
> जाणग्गिसूरचंदयसच्चाभा सेयखेमकरा ॥ ५३७ ॥
> वसहिट्ठकामधरणिम्माणरजा दिगंत अप्पसव्वादी ।
> रक्खिदमरुवसुअस्सविसापढमरुणसम पुव्वचयमुवरिं ॥५३८॥

> सारस्वतादित्यप्रभृतीनां अन्तरालके द्वे द्वे ।
> जानीहि अग्निसूर्यचन्द्रकसत्याभाः श्रेयः क्षेमकराः ॥ ५३७ ॥
> वृषभेष्टकामधरनिर्माणरजोदिगन्तात्मसर्वादिः ।
> रक्षितमरुद्वस्वश्वविश्वाः प्रथमा अरुणसमाः पूर्वचयमुपरि ॥५३८॥

सारस्सद । सारस्वतादित्यप्रभृतीनामष्टस्वन्तरालेषु द्वे द्वे कुले जानीहि । तत्कुलस्थाः के ? अग्न्याभाः सूर्याभाः चन्द्राभाः सत्याभाः श्रेयस्कराः क्षेमङ्कराः ॥ ५३७ ॥

वसहिट्ठ । वृषभेष्टाः कामधरा निर्माणरजसः दिगन्तरक्षिताः आत्मरक्षिताः सर्वरक्षिताः मरुतः वसवः अश्वाः विश्वाः एते स्वस्वकुलनामाङ्किताः । तत्र प्रथमाग्न्याभकुलस्था अरुणसमाः ७००७ अस्य प्रमाणस्योपरि पूर्वचये द्व्यधिकद्विसहस्रे २००२ मिलिते सूर्याभादीनां संख्या भवति ॥ ५३८ ॥

अब सारस्वतादि दो दो कुलों के अन्तराल में स्थित कुलों के नाम और उन देवों की संख्या दो गाथाओं द्वारा कहते हैं:—

गाथार्थ:—सारस्वतादित्य आदि आठ कुलों के अन्तरालों में दो दो कुल जानो। वे कुल १ अग्न्याभ, २ सूर्याभ, ३ चन्द्राभ, ४ सत्याभ, ५ श्रेयस्कर, ६ क्षेमङ्कर, ७ वृषभेष्ट, ८ कामधर, ९ निर्माण रजस्, १० दिगन्तरक्षित, ११ आत्मरक्षित, १२ सर्वरक्षित, १३ मरुत्, १४ वसु,

१५ अश्व और १६ विश्व हैं। इनमें प्रथम अग्न्याभ का प्रमाण अरुण के सदृश है, तथा इसके आगे वृद्धि चय का प्रमाण उपर्युक्त प्रमाण सदृश ही है ॥ ५३७, ५३८ ॥

विशेषार्थ :— सारस्वत और आदित्य के बीच में अग्न्याभादि दो कुल हैं। आदित्य और वह्नि के बीच चन्द्राभादि दो, वह्नि और अरुण के बीच श्रेयस्कर आदि दो, अरुण और गर्दतोय के बीच वृषभेष्टादि दो, गर्दतोय और तुषित के बीच निर्वाणरजस् आदि दो, तुषित और अव्याबाध के बीच आत्मरक्षितादि दो, अव्याबाध और अरिष्ट के अन्तराल में मरुत् आदि दो तथा अरिष्ट और सारस्वत के अन्तराल में अश्व आदि दो कुल हैं। इस प्रकार कुल १६ कुल हैं। कुलों के सदृश ही इन देवों के भी नाम हैं।

प्रथम अग्न्याभ देवों का प्रमाण अरुण के सदृश अर्थात् ७००७ है। इसके ऊपर वृद्धि चय पूर्वोक्त प्रमाण अर्थात् २००२ है। यथा—अग्न्याभ देवों का प्रमाण ७००७ है, सूर्याभ ९००९, चन्द्राभ ११०११, सत्याभ १३०१३, श्रेयस्कर १५०१५, क्षेमङ्कर १७०१७, वृषभेष्ट १९०१९, कामधर २१०२१, निर्वाण-रजस् २३०२३, दिगन्तरक्षित २५०२५, आत्मरक्षित २७०२७, सर्वरक्षित २९०२९, मरुत् ३१०३१, वसु ३३०३३, अश्व ३५०३५ और विश्व देवों का प्रमाण ३७०३७ है। आठ अन्तरालों में रहने वाले इन सोलह कुलों का कुल प्रमाण ३५२३५२ (तीन लाख बावन हजार तीन सौ बावन) है। इसमें उपर्युक्त आठ कुलों का ५५५६८ प्रमाण मिला देने पर आठ दिशाओं के आठ कुलों एवं आठ अन्तरालों के सोलह कुलों के लौकान्तिक देवों का कुल प्रमाण (३५२३५२+५५५६८)=४०७९२० होता है। यथा :—

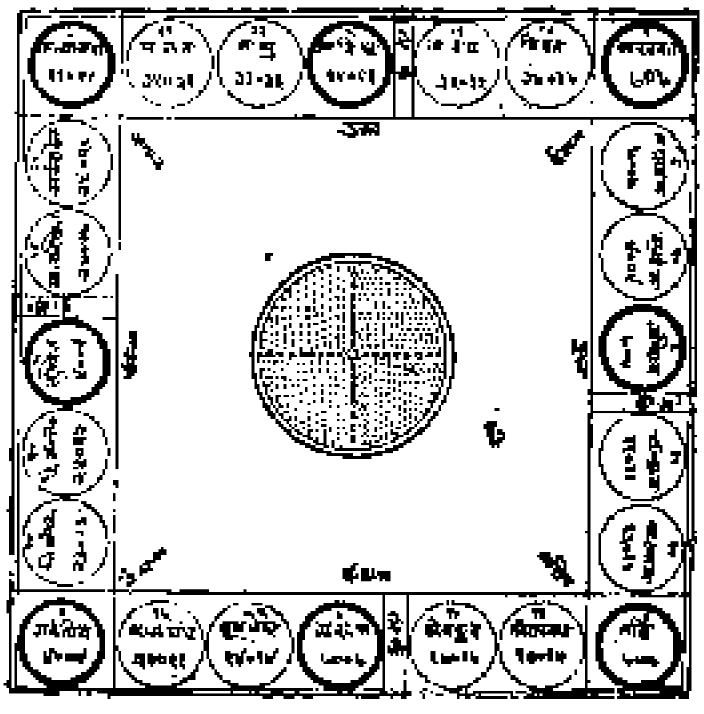

अथ उक्तानां लौकान्तिकानां विशेषस्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

ते हीणाहियरहिया विसयविरत्ता य देवरिसिणामा ।
अणुपिक्खदत्तचित्ता सेससुराणच्चणिज्जा हु ॥ ५३९ ॥
चोद्दसपुव्वधरा पडिवोहपरा तित्थयरविणिक्कमणे ।
एदेसिमट्ठजलहिट्ठिदी अरिट्ठस्स णव चेव ॥ ५४० ॥

ते हीनाधिकरहिता विषयविरक्ताश्च देवर्षिनामानः ।
अनुप्रेक्षादत्तचित्ताः शेषसुराणामर्चनीया हि ॥ ५३९ ॥
चतुर्दशपूर्वधराः प्रतिबोधपराः तीर्थकरविनिः क्रमणे ।
एतेषामष्टजलधिः स्थितिः अरिष्टस्य नव चैव ॥ ५४० ॥

ते हीरा। ते हीनाधिकरहिता विषयविरक्ताश्च देवर्षिनामानः अनुप्रेक्षादत्तचित्ताः शेषसुराणामर्चनीयाः खलु ॥ ५३९ ॥

चोद्दस। चतुर्दशपूर्वधरास्तीर्थकरविनिःक्रमणे प्रतिबोधनपराः एतेषां प्रत्येकमष्टसागरोपमाण्यायुः अरिष्टस्य तु नवसागरोपमाः ॥ ५४० ॥

उक्त लौकान्तिक देवों का विशेष स्वरूप दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :— ये लौकान्तिक देव हीनाधिक (ऋद्धि आदि) से रहित, विषयों से विरक्त, देवऋषिनाम वाले, अनुप्रेक्षाओं में दत्तचित्त, अवशेष इन्द्रादि देवों से पूज्य चौदह पूर्वधारी और निःक्रमण कल्याण के समय तीर्थंकरों को प्रतिबोध देने में तत्पर रहते हैं। इनमें अरिष्ट लौकान्तिक देवों की आयु नौसागर और अन्य लौकान्तिकों की आठ सागर प्रमाण होती है ॥ ५३९, ५४० ॥

विशेषार्थ :—लौकान्तिक देव आपस में समान अर्थात् ऋद्धि आदि की हीनाधिकता से रहित एवं विषयों से विरक्त रहते हैं। देवताओं के बीच ये ऋषियों के सदृश हैं, अतः इन्हें देवर्षि (देवऋषि) कहते हैं। ये निरन्तर अनित्यादि बारह भावनाओं के चिन्तन में दत्तचित्त रहते हैं। ये इन्द्र को आदि लेकर समस्त देवों से पूजित हैं। चौदहपूर्व के पाठी हैं। दीक्षाकल्याणक के पूर्व तीर्थङ्करों के वैराग्य की अनुमोदना करते हुए उन्हें प्रतिबोध करने में तत्पर रहते हैं। इनकी आयु आठ सागर प्रमाण होती है। इनमें केवल अरिष्टकुल के लौकान्तिकों की आयु ९ सागर की होती है।

अथ घातायुष्कसम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टयोरायुर्विशेषमाह—

उवहिदलं पल्लद्धं भवणे वितरदुगे कमेणहियं ।
सम्मे मिच्छे घादे पल्लासंखं तु सव्वत्थ ॥ ५४१ ॥

उदधिदलं पल्यार्धं भवने व्यन्तरद्विके क्रमेणाधिकं।
समीचि मिथ्ये घाते पल्यासंख्यं तु सर्वत्र ॥ ५४१ ॥

उवहिदलं। घातायुष्के सम्यग्दृष्टौ भवने व्यन्तरज्योतिष्कयोश्च यथाक्रमम् तत्र तत्रोत्कृष्टायुषः सकाशादर्द्धसागरोपमं पल्यार्द्धं चाधिकं ज्ञातव्यम्। घातायुष्के मिथ्यादृष्टौ तु पल्यासंख्यातभागं तथाधिकं ज्ञेयं। एवं सर्वत्र कल्पेष्वपि ॥ ५४१ ॥

घातायुष्क सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि की आयु विशेष कहते हैं—

गाथार्थ:—जिसने सम्यक्त्व अवस्था में बद्ध देवायु का घात किया है वह जीव यदि भवनवासियों में उत्पन्न होता है तो उसकी उत्कृष्टायु अर्ध सागर अधिक होगी, यदि वह व्यन्तर या ज्योतिषियों में उत्पन्न होता है तो अर्ध पल्य अधिक होगी। जिसने मिथ्यात्व अवस्था में बद्ध देवायु का घात किया है वह पल्य का असंख्यातवाँ भाग अधिक आयु वाला देव होगा। इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिए ॥ ५४१ ॥

विशेषार्थ:—जिस मनुष्य ने संयम अवस्था में देवायु बंध किया है, पश्चात् संयम से च्युत होकर सम्यग्दृष्टि अवस्था में देवायु का घात करता है, पश्चात् मिथ्यात्व अवस्था में मरण कर यदि भवनवासी देवों में उत्पन्न होता है तो उसकी आयु भवनवासियों की एक सागर उत्कृष्टायु से आधा सागर अधिक अर्थात् डेढ़ सागर होगी, यदि व्यन्तर या ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होता है तो एक पल्य की उत्कृष्टायु से आधा पल्य अधिक होगी ऐसा जानना चाहिए।

जिसने सम्यक्त्व अवस्था में देवायु का बंध किया है पश्चात् मिथ्यादृष्टि होकर देवायु का घात करता है उसकी देवायु सर्वत्र पल्य का असंख्यातवाँ भाग अधिक होगी। इसी प्रकार सर्वत्र कल्पवासियों में अर्थात् बारहवें स्वर्ग तक जानना चाहिए।

अथ कल्पस्त्रीणां स्थितिप्रमाणं कथयति—

साहियपल्लं अवरं कप्पदुगित्थीण पणग पढमवरं।
एक्कारसे चउक्के कप्पे दोसत्तपरिवड्ढी ॥ ५४२ ॥
साधिकपल्यं प्रवरं कल्पद्विके स्त्रीणां पञ्चकं प्रथमवरं।
एकादशे चतुष्के कल्पे द्विसप्तपरिवृद्धिः ॥ ५४२ ॥

साहिय। सौधर्मकल्पद्विकस्त्रीणामवरमायुः साधिकपल्यं प्रथमे सौधर्मे वरमायुः पञ्चपल्यं। अथ ईशानाद्येकादशकल्पेषु आनतादिचतुः कल्पे च यथासंख्यं सौधर्मोक्तपञ्चपल्यात् द्विवृद्धिः सप्तपरिवृद्धिश्च ज्ञातव्या ॥ ५४२ ॥

कल्पवासी देवाङ्गनाओं की आयु का प्रमाण कहते हैं:—

गाथार्थ:—सौधर्मेशान में देवांगनाओं की जघन्यायु कुछ अधिक एक पल्य है। तथा उत्कृष्टायु

सौधर्म कल्प में तो पांच पल्य की है, इसके आगे क्रम से ग्यारह स्थानों में दो दो की और शेष चार स्थानों में सात सात पल्य की वृद्धि पूर्वक है ॥ ५४२ ॥

विशेषार्थ :— सौधर्मादि दो कल्पों में देवांगनाओं की जघन्यायु कुछ अधिक एक पल्य है। इसके आगे द्वितीयादि स्वर्गों की उत्कृष्टायु तृतीयादि स्वर्गों की जघन्यायु होती है। सौधर्म कल्प में देवांगनाओं की उत्कृष्टायु पाँच पल्य है। इससे ऐशानादि ग्यारह स्थानों में दो दो की वृद्धि को लिए हुए तथा आनतादि चार स्थानों में सात सात पल्य की वृद्धि को लिए हुए है। यथा—

कल्प-सौधर्म	ऐशान	सा०	मा०	ब्रह्म	ब्रह्मो.	लां०	का०	शु०	म०	श०	स०	आ०	प्रा०	आ.	अ०
जघन्यायु- कुछ अधिक एक पल्य	कुछ अधिक १ पल्य	७	९	११	१३	१५	१७	१९	२१	२३	२५	२७	३४	४१	४८
उत्कृष्टायु—५	७	९	११	१३	१५	१७	१९	२१	२३	२५	२७	३४	४१	४८	५५

इदानीं देवानां शरीरोत्सेधमाह—

दुसु दुसु चदु दुसु दुसु चउ तिचिसु सेसेसु देहउस्सेहो ।
रयणीण सत्त छप्पणचत्तारि दलेण हीणकमा ॥ ५४३ ॥

द्वयोर्द्वयोः चतुर्षु द्वयोर्द्वयोः चतुर्षु त्रिस्त्रिषु शेषेषु देहोत्सेधः ।
रत्नीनां सप्त षट् पञ्चचत्वारः दलेन हीनक्रमः ॥ ५४३ ॥

दुसु दुसु । द्वयोर्द्वयोश्चतुर्षु द्वयोर्द्वयोश्चतुर्षु त्रिस्त्रिषु शेषेष्विति षट्सु स्थानेषु देहोत्सेधो यथासंख्यं सप्त ७ षट् ६ पञ्च ५ चत्वारो ४ रत्नयः तत उपरि अर्द्धहस्तहीनक्रमो ज्ञातव्यः ॥ ५४३ ॥

देवों के शरीर का उत्सेध कहते हैं :—

गाथार्थ :— सौधर्मादि दो, दो, चार, दो, दो, चार, तीन और शेष अनुदिश आदि स्वर्गों में देवों के शरीर का उत्सेध क्रम से सात, छह, पाँच, चार हाथ और उसके ऊपर अर्ध अर्ध हाथ हीन प्रमाण को लिए हुए है ॥ ५४३ ॥

विशेषार्थ :— देवों के शरीर की ऊँचाई सौधर्मैशान में ७ हस्त प्रमाण-सानत्कुमारादि दो में ६ हस्त, ब्रह्मादि चार में ५ हस्त, शुक्रादि दो में ४ हस्त, शतार आदि दो में ३½ हस्त, आनतादि चार में ३ हस्त, अधोग्रैवेयक में २½ हस्त, मध्यग्रैवेयक में २ हस्त, उपरिम ग्रैवेयक में १½ हस्त और अनुदिश एवं अनुत्तरविमानों में एक हस्त प्रमाण है।

अथ तेषामुच्छ्वासाहारकालौ निरूपयति—

पक्खं वस्ससहस्सं सगसगसायरसलाहि संगुणियं ।
उस्सासाहाराणं कमेण माणं विमाणेसु ॥ ५४४ ॥

पक्षो वर्षसहस्रं स्वकस्वकसागरशलाभिः संगुणितं ।
उच्छ्वासाहाराणां क्रमेण मानं विमानेषु ॥ ५४४ ॥

पक्खं वास। पक्षो १५ वर्षसहस्रं १००० सोहम्मवरं पल्लं वरमुवहि विसलेत्याद्युक्तस्वकीयसागर-शलाकाभिः संगुणितं दिन ३० वर्ष २००० उच्छ्वासाहाराणां प्रमाणं विमानेषु क्रमेण ज्ञातव्यम् ॥ ५४४ ॥

अब उन देवों के उच्छ्वास और आहार का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :— अपनी अपनी आयु प्रमाण सागर शलाकाओं से संगुणित पक्ष एवं हजार वर्ष अपने अपने विमानों में क्रम से उच्छ्वास और आहार का प्रमाण होता है ॥ ५४४ ॥

विशेषार्थ :—'सोहम्म वरं पल्लं' गाथा ५३२ में देवों की जितने जितने सागर की उत्कृष्टायु का प्रमाण कहा है, उन सागर शलाकाओं में पक्ष अर्थात् १५ दिन का और वर्ष सहस्र—हजार वर्ष (१०००) का गुणा करने पर अपने अपने विमानों में उच्छ्वास और आहार का प्रमाण होता है।

स्वर्गों की उत्कृष्टायु श्वासोच्छ्वास और आहार का प्रमाण निम्नाङ्कित है :—

क्रमांक	नाम	उत्कृष्टायु	श्वासोच्छ्वास	आहारेच्छा
१	सौधर्मैशान	२ सागर	२ पक्ष बाद	२००० वर्ष बाद
२	सानत्कुमार-मा०	७ „	७ „ „	७००० „ „
३	ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	१० „	१० „ „	१०००० „ „
४	लान्तव-कापिष्ठ	१४ „	१४ „ „	१४००० „ „
५	शुक्र-महाशुक्र	१६ „	१६ „ „	१६००० „ „
६	सतार-सहस्रार	१८ „	१८ „ „	१८००० „ „
७	आनत-प्राणत	२० „	२० „ „	२०००० „ „
८	आरण-अच्युत	२२ „	२२ „ „	२२००० „ „

क्रमांक	नाम	उत्कृष्टायु	श्वासोच्छ्वास	आहारेच्छा
९	सुदर्शन	२३ सागर	२३ पक्ष बाद	२३००० वर्ष बाद
१०	अमोघ	२४ "	२४ " "	२४००० " "
११	सुप्रबुद्ध	२५ "	२५ " "	२५००० " "
१२	यशोधर	२६ "	२६ " "	२६००० " "
१३	सुभद्र	२७ "	२७ " "	२७००० " "
१४	सुविशाल	२८ "	२८ " "	२८००० " "
१५	सुमनस	२९ "	२९ " "	२९००० " "
१६	सौमनस	३० "	३० " "	३०००० " "
१७	प्रीतिकर	३१ "	३१ " "	३१००० " "
१८	आदित्य	३२ "	३२ " "	३२००० " "
१९	अर्चि	३२ "	" " "	" " "
२०	अर्चिमाली	३२ "	" " "	" " "
२१	वैरोचन	३२ "	" " "	" " "
२२	प्रभास	३२ "	" " "	" " "
२३	अर्चिप्रभ	३२ "	" " "	" " "
२४	अर्चिमध्य	३२ "	" " "	" " "
२५	अर्चिरावर्त	३२ "	" " "	" " "
२६	अर्चिविशिष्ट	३२ "	" " "	" " "
२७	विजय	३३ "	३३ पक्ष बाद	३३००० " "
२८	वैजयन्त	३३ "	" " "	" " "
२९	जयन्त	" "	" " "	" " "
३०	अपराजित	" "	" " "	" " "
३१	सर्वार्थसिद्धि	" "	" " "	" " "

अथ गुणस्थानमाश्रित्य देवगतावुत्पद्यमानानां स्वरूपं गाथात्रयेणाह—

णरतिरिय देसअयदा उक्कस्सेणच्चुदोत्ति णिग्गंथा।
ण य अयद देसमिच्छा गेवेज्जंतोत्ति गच्छंति ॥ ५४५ ॥

नरतिर्यञ्चः देशायता उत्कृष्टेनाच्युतान्तं निर्ग्रन्थाः।
न च अयता देशमिथ्या ग्रैवेयान्तं इति गच्छन्ति ॥ ५४५ ॥

णरतिरिय। असंयता देशसंयता वा नरास्तिर्यञ्चश्चोत्कृष्टेनाच्युतपर्यन्तं गच्छन्ति। द्रव्यनिर्ग्रन्था नरा भावेनासंयता देशसंयताः मिथ्यादृष्टयो वा उपरिमग्रैवेयकपर्यन्तं गच्छन्ति ॥ ५४५ ॥

गुणस्थानों का आश्रय कर देवों में उत्पद्यमान जीवों का स्वरूप तीन गाथाओं द्वारा करते हैं:—

गाथार्थ :—[असंयत और] देशसंयत मनुष्य तिर्यञ्च अधिक से अधिक अच्युत कल्प तक, तथा निर्ग्रन्थ देश संयत, असंयत एवं मिथ्यादृष्टि मुनि अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त जाते हैं ॥ ५४५ ॥

विशेषार्थ :—असंयतसम्यग्दृष्टि और देशसंयमी मनुष्य एवं तिर्यञ्च उत्कृष्टता से अच्युत कल्प अर्थात् १६ स्वर्ग पर्यन्त ही उत्पन्न होते हैं, इससे ऊपर नहीं। जो द्रव्य से निर्ग्रन्थ और भाव से मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि एवं देशसंयमी है, वे अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, इससे ऊपर नहीं।

सव्वट्ठोत्ति सुदिट्ठी महव्वई भोगभूमिजा सम्मा।
सोहम्मदुगं मिच्छा भवणतियं तावसा य वरं ॥ ५४६ ॥

सर्वार्थान्तं सुदृष्टिः महाव्रती भोगभूमिजा सम्यञ्चः।
सौधर्मद्विकं मिथ्या भवनत्रयं तापसाः च वरं ॥ ५४६ ॥

सव्वट्ठो। सर्वार्थसिद्धिपर्यन्तं सद्दृष्टिर्द्रव्यभावरूपेण महाव्रती गच्छति। भोगभूमिजाः सम्यग्दृष्टयः सौधर्मद्विकं गच्छन्ति न तत उपरि। भोगभूमिजा मिथ्यादृष्टयो भवनत्रयं यान्ति न तत उपरि। पञ्चाग्न्यादिसाधकास्तापसा उत्कृष्टेन भवनत्रयं यान्ति न तत उपरि ॥ ५४६ ॥

गाथार्थ :—सम्यग्दृष्टि महाव्रती सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त, सम्यग्दृष्टि भोगभूमिज मनुष्य, तिर्यञ्च सौधर्मैशान पर्यन्त और मिथ्यादृष्टि भोगभूमिज मनुष्य, तिर्यञ्च एवं तापसी साधु उत्कृष्टता से भवनत्रय पर्यन्त ही उत्पन्न होते हैं ॥ ५४६ ॥

चरया य परिव्वाजा बह्मोत्तरपदोत्ति आजीवा।
अणुदिसअणुत्तरादो चुदा ण केसवपदं जांति ॥ ५४७ ॥

चरकाश्च परिव्राजा ब्रह्मोत्तरपर्यन्तं आजीवाः।
अनुदिशानुत्तरतः च्युता न केशवपदं यान्ति ॥ ५४७ ॥

चरया य। नग्नाण्ड[1] लक्षणाश्चरका एकदण्डित्रिदण्डिलक्षणाः परिव्राजका ब्रह्मकल्पपर्यन्तं यान्ति गच्छन्ति न तत उपरि। काञ्जिकादिभोजिनः आजीवा अच्युतकल्पपर्यन्तं यान्ति न तत उपरि। साम्प्रतं देवगतेश्च्युतानामुत्पत्तिस्वरूपमाह-अनुदिशानुत्तरविमानेभ्यश्च्युताः केशवपदं वासुदेव-प्रतिवासुदेव पदं न यान्ति ॥ ५४७ ॥

गाथार्थ :— चरक और परिव्राजक सन्यासी ब्रह्मकल्प पर्यन्त और आजीवक साधु अच्युतकल्प पर्यन्त उत्पन्न होते हैं। अनुदिश और अनुत्तर विमानों से चय होकर मनुष्य गति में आने वाले जीव नारायण और प्रतिनारायण पद को प्राप्त नहीं होते ॥ ५४७ ॥

विशेषार्थ :— नग्नाण्ड है लक्षण जिनका ऐसे चरक एवं एक दण्डि, त्रिदण्डि है लक्षण जिनका ऐसे परिव्राजक सन्यासी ब्रह्म कल्प पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, इससे ऊपर नहीं। कांजी आदि का भोजन करने वाले नग्न आजीवक अच्युत कल्प पर्यन्त उत्पन्न होते हैं, इससे ऊपर नहीं।

अब देवगति से च्युत होने वाले जीवों की उत्पत्ति का स्वरूप कहते हैं :—

जो जीव अनुदिश और अनुत्तर विमानों से च्युत होकर आते हैं, वे नारायण और प्रति-नारायण पद को प्राप्त नहीं होते। क्योंकि वे सम्यक्त्व से च्युत नहीं होते हैं। किन्तु नारायण और प्रतिनारायण सम्यक्त्व से च्युत होकर नियम से नरक जाते हैं।

अथानन्तरच्युत्वा निर्वाणं गच्छतां नामान्याह—

सोहम्मो वरदेवी सलोगवाला य दक्खिणमरिंदा।
लोयंतिय सव्वट्ठा तदो चुदा णिव्वुदिं जांति ॥ ५४८ ॥

सौधर्मो वरदेवी सलोकपालाश्च दक्षिणामरेन्द्राः।
लौकान्तिकाः सर्वार्थाः ततश्च्युता निर्वृतिं यान्ति ॥ ५४८ ॥

सोहम्मो। सौधर्मेन्द्रस्तस्य पट्टदेवी शची तस्य सोमादिलोकपाला दक्षिणामरेन्द्राः सर्वे, लौकान्तिकाः सर्वे, सर्वार्थसिद्धिजाः सर्वे, ततो देवगतेश्च्युता नियमेन निर्वृतिं यान्ति ॥ ५४८ ॥

जो जीव देवगति से चय कर निर्वाण ही जाते हैं, उनके नाम कहते हैं—

गाथार्थ :— सौधर्मेन्द्र, उसी की प्रधान (पट्ट) देवाङ्गना (शची), उसी के लोकपाल दक्षिणेन्द्र लौकान्तिक देव और सर्वार्थ सिद्धि से चय होने वाले देव नियम से निर्वाण प्राप्त करते हैं ॥ ५४८ ॥

---

1 नग्नाट (ब०, प०)।

विशेषार्थ :—सौधर्म इन्द्र, उसी की शची नाम की पट्ट देवांगना उसी के सोमादि चार लोकपाल, सानत्कुमारादि दक्षिणेन्द्र, सर्व लौकान्तिक देव और सर्व ही सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न होने वाले देव अपने अपने स्थान से च्युत हो मनुष्य पर्याय प्राप्त कर, उत्कृष्ट (निरतिचार) संयम के धारी होते हुए नियम से उसी पर्याय में मोक्ष प्राप्त करते हैं।

अथ त्रिषष्टिशलाकापुरुषाणां पदवीमप्राप्नुवतां नामान्याह—

णरतिरियगदीहिंतो भवणतियादो य णिग्गया जीवा ।
ण लहंते ते पदविं तेवट्ठिसलागपुरिसाणं ॥ ५४९ ॥

नरतिर्यग्गतिभ्यां भवनत्रयाच्च निर्गता जीवाः ।
न लभन्ते ते पदवीं त्रिषष्टिशलाकापुरुषाणाम् ॥ ५४९ ॥

णरतिरिय । नरतिर्यग्गतिभ्यां भवनत्रयाच्च निर्गता जीवास्ते त्रिषष्टिशलाकापुरुषाणां पदवीं न लभन्ते ॥ ५४९ ॥

जो त्रेसठशलाका पुरुषों के पद को प्राप्त नहीं करते, उनके नाम कहते हैं—

गाथार्थ :—जो जीव मनुष्यगति, तिर्यञ्चगति और भवनत्रिक से निकल कर आते हैं, वे नियम से त्रेसठशलाका पुरुषों की पदवी को प्राप्त नहीं करते हैं।

चतुर्थादि नरकों से निकले हुए जीव भी त्रेसठशलाका पुरुषों की पदवी को प्राप्त नहीं होते ॥ ५४९ ॥

अथ देवानामुत्पत्तिस्वरूपमाह—

सुहसयणग्गे देवा जायंते दिणयरोव्व पुव्वणगे ।
अंतोमुहुत्त पुण्णा सुगंधिसुहफाससुचिदेहा ॥ ५५० ॥

सुखशयनाग्रे देवा जायंते दिनकर इव पूर्वनगे ।
अन्तर्मुहूर्ते पूर्णाः सुगंधिसुखस्पर्शशुचिदेहाः ॥ ५५० ॥

सुहसयण । पूर्वाचले दिनकर इवान्तर्मुहूर्ते षट्पर्याप्त्या पूर्णाः सुगन्धिसुखस्पर्शशुचिदेहास्ते देवास्सुखशयनाग्रे जायन्ते ॥ ५५० ॥

देवों की उत्पत्ति का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—जिस प्रकार पूर्वाचल पर सूर्य का उदय होता है, उसी प्रकार देव सुख रूप शय्या पर जन्म लेकर अन्तर्मुहूर्त में छह पर्याप्तियों को पूर्णकर, सुगन्धित सुख रूप स्पर्श से युक्त एवं पवित्र, शरीर को धारण कर लेते हैं ॥ ५५० ॥

अथ तत्रोत्पन्नानां तदनन्तरं कृत्यविशेषं गाथात्रयेणाह—

आणंदतूरजयथुदिरवेण जम्मं विबुज्झ सं पत्तं ।
दट्ठूण सपरिवारं गयजम्मं [1]ओहिणा णच्चा ॥ ५५१ ॥
धम्मं पसंसिदूण ण्हादूण दहे भिसेयलंकारं ।
लद्धा जिणाभिसेयं पूजं कुव्वंति सद्दिट्ठी ॥ ५५२ ॥
सुरबोहियावि मिच्छा पच्छा जिणपूजणं पकुव्वंति ।
सुहसायरमज्झगया देवा ण विदंति गयकालं ॥ ५५३ ॥

आनन्दतूर्यजयस्तुतिरवेण जन्म विबुध्य स्वं प्राप्तं ।
दृष्ट्वा सपरिवारं गतजन्म अवधिना ज्ञात्वा ॥ ५५१ ॥
धर्मं प्रशंस्य स्नात्वा ह्रदे अभिषेकालङ्कारं ।
लब्ध्वा जिनाभिषेकं पूजां कुर्वन्ति सद्दृष्टयः ॥ ५५२ ॥
सुरबोधिता अपि मिथ्या पश्चाज्जिनपूजनं प्रकुर्वन्ति ।
सुखसागरमध्यगता देवा न विदन्ति गतकालं ॥ ५५३ ॥

आणंद। आनन्दतूर्यरवेण जयस्तुतिरवेण चेदं देवजन्मेति विबुध्य स्वं प्राप्तं स्वपरिवारं च दृष्ट्वा अवधिज्ञानेन गतजन्म च ज्ञात्वा ॥ ५५१ ॥

धम्मं पसंसि। धर्मं प्रशस्य ह्रदे स्नात्वा पट्टाभिषेकमलङ्कारं च लब्ध्वा सद्दृष्टयः स्वयमेव जिनाभिषेकं पूजां च कुर्वन्ति ॥ ५५२ ॥

सुरबोहिया। मिथ्यादृष्टयोऽपि सुरप्रतिबोधिताः पश्चाज्जिनपूजां प्रकुर्वन्ति ते सर्वे देवाः सुखसागरमध्यगताः सन्तो गतकालं न विदन्ति ॥ ५५३ ॥

वहाँ देवों के उत्पन्न होने के तदनन्तर जो कार्य विशेष होते हैं, उन्हें तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :— इनके जन्म को जानकर अन्य देव आनन्द रूप बाजों के, 'जय जय' के, एवं अनेक स्तुतियों के शब्द करते हैं उन शब्दों को सुन कर, प्राप्त हुए वैभव और अपने परिवार को देख कर तथा अवधिज्ञान से पूर्वजन्म को ज्ञात कर धर्म की प्रशंसा करते हुए सर्व प्रथम सरोवर में स्नान करते हैं, फिर अभिषेक और अलङ्कारों को प्राप्त होकर सम्यग्दृष्टि जीव तो स्वयं जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक पूजन करते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि देव अन्य देवों द्वारा सम्बोधित किए जाने के पश्चात् जिन पूजन करते हैं। सुखसागर के मध्य डूबे हुए ये सभी देव अपने व्यतीत होते हुए काल को नहीं जानते ॥ ५५१, ५५२, ५५३ ॥

---

१ 'ओहिणा णेयो' इति पाठान्तर सूचना 'ब' प्रतौ।

विशेषार्थ:—आनन्द स्वरूप वादित्रों के, 'जय' के और स्तुतियों के शब्दों से अपने देव जन्म को जान कर, प्राप्त हुए वैभव एवं अपने परिवार को देख कर, वे देव अवधिज्ञान से अपने पूर्व भव को जान कर, धर्म की प्रशंसा करते हैं, तथा सरोवर में स्नान करने के बाद पट्ट स्वरूप अभिषेक एवं अलङ्कारों को प्राप्त कर सम्यग्दृष्टि देव स्वयं जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक पूजन करते हैं तथा मिथ्यादृष्टि देव अन्य देवों के द्वारा सम्बोधे जाने के उपरान्त जिन पूजन करते हैं। ये (सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि) सभी देव सुखसागर में निमग्न होने के कारण अपने अतीत काल को नहीं जानते।

अथ तेषां देवानां सत्कृत्यमाह—

महपूजासु जिणाणं कल्लाणेसु य पजांति कप्पसुरा।
अहमिंदा तत्थ ठिया णमंति मणिमउलिघडिदकरा ।।५५४।।

महापूजासु जिनानां कल्याणेषु च प्रयान्ति कल्पसुराः।
अहमिन्द्राः तत्र स्थिता नमन्ति मणिमौलिघटितकराः ।।५५४।।

मह। जिनानां महापूजासु तेषां पञ्चमहाकल्याणेषु च कल्पजाः सुराः प्रयान्ति। अहमिन्द्रास्तु तत्र स्थिता एव मणिमौलिघटितकराः संतो नमन्ति ।। ५५४ ।।

इन देवों के समीचीन कार्यों को कहते हैं :—

गाथार्थ :—कल्पवासी देव जिनेन्द्रों की महापूजा और उनके पञ्चकल्याणकों में जाते हैं, किन्तु अहमिन्द्र देव वहीं स्थित रह कर मणिमय मुकुटों से अपने हाथों को लगा कर नमस्कार करते हैं ।। ५५४ ।।

विशेषार्थ :—कल्पवासी देव तीर्थंङ्करों की महापूजा और उनके पञ्चकल्याण महोत्सवों में जाते हैं, किन्तु अहमिन्द्र देव (तो) अपने ही स्थान पर स्थित रह कर मणिमय मुकुटों पर अपने हाथ रख कर नमस्कार करते हैं।

अथ सुरादिसम्पत् केषां भवतीत्युक्तं आह—

विविहतवरयणभूसा णाणसुची सीलवत्थसोम्मंगा।
जे तेसिमेव वस्सा सुरलच्छी सिद्धिलच्छी य ।। ५५५ ।।

विविधतपोरत्नभूषाः ज्ञानशुचयः शीलवस्त्रसौम्याङ्गाः।
ये तेषामेव वश्या सुरलक्ष्मीः सिद्धिलक्ष्मीश्च ।। ५५५ ।।

विविह। ये विविधतपोरत्नभूषाः ज्ञानशुचयः शीलवस्त्रसौम्याङ्गास्तेषामेव सुरलक्ष्मीः सिद्धिलक्ष्मीश्च वश्या भवति ।। ५५५ ।।

देवादिक सम्पत्ति किन जीवों को प्राप्त होती है, उसे कहते हैं—

गाथार्थ :—मोक्ष लक्ष्मी एवं सुरलक्ष्मी उन्हीं जीवों के वश में होती है, जिनके अङ्ग निरन्तर नाना प्रकार के तपों से विभूषित, ज्ञान से पवित्र और शील रूपी वस्त्र के संयोग से सौम्य रहते हैं। ५५५ ॥

विशेषार्थ :—जो नाना प्रकार के तप रत्नों से विभूषित, ज्ञान से पवित्र और शील रूपी वस्त्र के सम्पर्क से सौम्य शरीर वाले हैं, वे ही जीव सुरलक्ष्मी एवं मोक्षलक्ष्मी को वश में करते हैं।

इदानीमष्टमभूमिस्वरूपमाह—

तिहुवणमुद्धारूढा ईसिपभारा धरट्ठमी रुंदा ।
दिग्घा इगिसगरज्जू अडजोयणपमिदबाहल्ला ।। ५५६ ।।

त्रिभुवनमूर्धारूढा ईषत् प्राग्भारा धराष्टमी रुन्द्रा ।
दीर्घा एकसप्तरज्जू अष्टयोजनप्रमितबाहुल्या ॥ ५५६ ॥

तिहुवण । त्रिभुवनमूर्धारूढा ईषत् प्राग्भारसंज्ञा अष्टमी धरा तस्या रुन्द्रं दैर्घ्यं च एकसप्तरज्जू भवतः । तस्यां बाहुल्यमष्टयोजनप्रमितम् ॥ ५५६ ॥

अब अष्टम भूमि का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—तीन लोक के मस्तक पर आरूढ ईषत्प्राग्भार नाम वाली आठवीं पृथ्वी है, इसकी चौड़ाई और लम्बाई क्रम से एक एवं सात राजू तथा बाहुल्य आठ योजन प्रमाण है ॥ ५५६ ॥

विशेषार्थ :—सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक विमान के ध्वजादण्ड से बारह योजन ऊपर जाकर अर्थात् तीन लोक के मस्तक पर आरूढ ईषत्प्राग्भार संज्ञावाली अष्टम पृथ्वी है। इसकी चौड़ाई एक राजू, लम्बाई (उत्तर-दक्षिण) सात राजू एवं मोटाई आठ योजन प्रमाण है।

अथ तन्मध्यस्थसिद्धक्षेत्रस्वरूपं गाथा द्वयेनाह—

तम्मज्झे रूप्पमयं छत्तायारं मणुस्समहिवासं ।
सिद्धक्खेत्तं मज्झट्ठवेहं कमहीण वेहुलियं ।। ५५७ ।।
उत्ताणट्ठियमंते पत्तं व तणु तदुवरि तणुवादे ।
अट्ठगुणड्ढा सिद्धा चिट्ठंति अणंतसुहतित्ता ।। ५५८ ।।

तन्मध्ये रूप्यमयं छत्राकारं मनुष्यमहीव्यासं ।
सिद्धक्षेत्रं मध्येऽष्टवेधं क्रमहीनं बाहुल्यम् ॥ ५५७ ॥

उत्तानस्थितमन्ते पात्रमिव तनु तदुपरि तनुवाते ।
अष्टगुणाढ्याः सिद्धाः तिष्ठन्ति अनन्तसुखतृप्ताः ॥ ५५८ ॥

तन्मज्झे। तन्मध्ये रूप्यमयं छत्राकारं मनुष्यक्षेत्रव्यासं सिद्धक्षेत्रमस्ति। तद्बाहल्यं मध्ये अष्टयोजनवेधं अन्यत्र सर्वत्र क्रमहीनं ज्ञातव्यम् ॥ ५५७ ॥

उत्ताण। अन्ते तनुरूपमुत्तानस्थितपात्रमिव धवलछत्रमिवेत्यर्थः तस्य सिद्धिक्षेत्रस्योपरिमतनुवाते अष्टगुणाढ्या अनन्तसुखतृप्ताः सिद्धाः तिष्ठन्ति ॥ ५५८ ॥

अष्टम पृथ्वी के मध्य में स्थित सिद्ध क्षेत्र का स्वरूप दो गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—इस आठवीं पृथ्वी के ठीक मध्य में रजतमय छत्राकार और मनुष्य क्षेत्र के व्यास प्रमाण सिद्ध क्षेत्र है। जिसकी मध्य की मोटाई आठ योजन है, और अन्यत्र क्रम क्रम से हीन होती हुई अन्त में ऊँचे (सीधे) रखे हुए कटोरे के सदृश थोड़ी (मोटाई) रह गई है। इस सिद्ध क्षेत्र के ऊपरवर्ती तनुवातवलय में सम्यक्त्वादि आठ गुणों से युक्त और अनन्त सुख से तृप्त सिद्ध परमेष्ठी स्थित हैं ॥ ५५७, ५५८ ॥

विशेषार्थ :—जिस प्रकार पृथ्वी पर शिला होती है, उसी प्रकार आठवीं पृथ्वी के ठीक मध्य भाग में चाँदी सदृश (श्वेत) वर्ण वाली छत्राकार शिला है। इसी को सिद्ध क्षेत्र कहते हैं। इस सिद्ध क्षेत्र का व्यास मनुष्यक्षेत्र सदृश अर्थात् ४५००००० योजन (१८०००००००० मील) प्रमाण है। उसका बाहुल्य मध्य में अष्ट योजन (३२००० मील) है, अन्यत्र सर्वत्र क्रम क्रम हीन होता हुआ अन्त में बिल्कुल कम (एक प्रदेश प्रमाण) रह गया है। यह सीधे रखे हुए कटोरे या धवल छत्र के आकार वाला है। इस सिद्ध क्षेत्र के उपरिम तनुवातवलय में सम्यक्त्वादि आठ गुणों से युक्त एवं अनन्त सुख से तृप्त सिद्ध भगवान स्थित हैं। वह सिद्ध लोक है।

अथ अनन्तसुखतृप्तत्वे दृष्टान्तान्तरं गाथाद्वयेनाह—

एयं सत्थं सव्वं सत्थं वा सम्ममेत्थ जाणंता।
तिव्वं तुस्संति णरा किण्ण समत्थत्थतच्चण्हा ॥५५९॥

एकं शास्त्रं सर्वं शास्त्रं वा सम्यगत्र जानन्तः।
तीव्रं तुष्यन्ति नराः किं न समस्तार्थतत्त्वज्ञाः ॥ ५५९ ॥

एयं। एकं शास्त्रं सर्वं शास्त्रं वा सम्यगत्र जानन्तो नरास्तीव्रं तुष्यन्ति समस्तार्थतत्त्वज्ञास्तु सिद्धाः किं न तुष्यन्ति ? अपि तु तुष्यन्त्येव ॥ ५५९ ॥

अब दो गाथाओं द्वारा अनन्त सुख की तृप्तता के दृष्टांत कहते हैं—

गाथार्थ :—जब एक शास्त्र या सर्व शास्त्रों को भली प्रकार जान लेने वाले मनुष्य तीव्र संतोष को प्राप्त होते हैं, तब समस्त अर्थ एवं तत्त्वों को जानने वाले सिद्ध प्रभु क्या तृप्ति को प्राप्त नहीं होंगे ? अपितु होंगे ही होंगे ॥ ५५९ ॥

विशेषार्थ :—जबकि एक या सर्व शास्त्रों को (सम्यक्) भली प्रकार से जान लेने वाले

मनुष्य अत्यन्त संतोष को प्राप्त होते हैं, तब साक्षात् समस्त अर्थ एवं तत्त्वों को एक साथ और निरन्तर जानने वाले सिद्ध परमेष्ठी क्या संतोष को प्राप्त नहीं होंगे ? अवश्य ही होंगे।

चक्किकुरुफणिसुरेंदेसहमिंदे जं सुहं तिकालभवं ।
तत्तो अणंतगुणिदं सिद्धाणं खणसुहं होदि ॥ ५६० ॥

चक्रिकुरुफणिसुरेन्द्रेषु अहमिन्द्रे यत्सुखं त्रिकालभवं ।
तत अनंतगुणितं सिद्धानां क्षणसुखं भवति ॥ ५६० ॥

चक्कि । चक्रिषु कुरुषु फणीन्द्रेषु सुरेन्द्रेष्वहमिन्द्रेषु च पूर्वपूर्वस्मादुत्तरोत्तरेषामनन्तगुणितं यत्सुखं त्रिकालभवं ततः सर्वेभ्यः सिद्धानां क्षणोत्थं सुखमनन्तगुणितं भवति ॥ ५६० ॥

गाथार्थ:—चक्रवर्ती, भोगभूमि, धरणेन्द्र, देवेन्द्र और अहमिन्द्रों का सुख क्रमशः एक दूसरे से अनंत गुणा अनन्त गुणा है। इन सबके त्रिकालवर्ती सुखों से सिद्धों का एक क्षण का भी सुख अनंतगुणा है ॥ ५६० ॥

विशेषार्थ:—संसार में चक्रवर्ती के सुख से भोगभूमि स्थित जीवों का सुख अनन्तगुणा है। इनसे धरणेंद्र का सुख अनंत गुणा है। धरणेन्द्र से देवेन्द्र का सुख अनन्तगुणा है, और देवेन्द्र से अहमिन्द्रों का सुख अनंतगुणा है। इन सब के त्रिकालवर्ती सुख से भी सिद्धों का एक क्षण का सुख अनन्तगुणा है। अर्थात् उनके सुख की तुलना नहीं है।

उपर्युक्त उपदेश मात्र कथन स्वरूप है, कारण कि सिद्ध परमेष्ठी का सुख अतीन्द्रिय, स्वाधीन और निराकुल (अव्याबाध) है, तथा संसारी जीवों का सुख इन्द्रियजनित, पराधीन और आकुलतामय है, अतः तीनों लोकों में कोई भी उपमा ऐसी नहीं है जिसके सदृश सिद्ध जीवों का सुख कहा जा सके। उनका सुख वचनागोचर है। जिस प्रकार पित्त विकार से युक्त जिह्वा मधुर स्वाद लेने में असमर्थ होती है उसी प्रकार विकारी छद्मस्थ आत्माएँ सिद्ध भगवन्त के सुख का रसास्वादन लेने और कहने में असमर्थ हैं।

इति श्रीनेमिचन्द्राचार्यविरचिते त्रिलोकसारे वैमानिकलोकाधिकारः ॥ ५ ॥

इसप्रकार श्री नेमिचन्द्राचार्य विरचित त्रिलोकसार में वैमानिकलोकाधिकार समाप्त हुआ ॥

नरतिर्यग्लोकाधिकारः

इतः परं प्राप्तावसरं नरतिर्यग्लोकं निरूपयितुमनास्तावल्लोकद्वयस्थितजिनभवनस्तुतिपूर्वकं तत्संख्यामाह—

णमह णरलोयजिणघर चत्तारि सयाणि दोविहीणाणि ।
बावण्णं चउ चउरो णंदीसर कुंडले रुचगे ॥ ५६१ ॥

नमत नरलोकजिनगृहाणि चत्वारि शतानि द्विविहीनानि ।
द्वापञ्चाशत् चत्वारि चत्वारि नन्दीश्वरे कुण्डले रुचके ॥ ५६१ ॥

णमह । नरलोके चतुःशतानि द्विविहीनानि ३९८ जिनगृहाणि नन्दीश्वरद्वीपे कुण्डलद्वीपे रुचकद्वीपे च तिर्यग्लोकसम्बन्धीनि यथासंख्यं द्वापञ्चाशज्जिनगृहाणि ५२ चत्वारि जिनगृहाणि ४ चत्वारि जिनगृहाणि ४ नमत ॥ ५६१ ॥

इससे आगे, प्राप्त किया है अवसर जिन्होंने ऐसे नरतिर्यग्लोकके निरूपण की अभिलाषासे संयुक्त आचार्य देव सर्व प्रथम दोनों लोकों में स्थित जिन मन्दिरों को स्तुति पूर्वक संख्या कहते हैं :—

गाथार्थ :—मनुष्य लोक सम्बन्धी दो कम चार सौ (३९८) जिन मन्दिरों को तथा तिर्यग्लोक सम्बन्धी नन्दीश्वर द्वीप, कुण्डलगिरि और रुचकगिरिमें क्रम से स्थित बावन, चार और चार जिन मन्दिरों को नमस्कार करो ॥ ५६१ ॥

विशेषार्थ :-मनुष्य लोक अर्थात् अढ़ाई द्वीप में ३९८ अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं। तथा नन्दीश्वर द्वीप में ५२, कुण्डलगिरि पर ४ और रुचक गिरि पर चार इस प्रकार तिर्यग्लोकमें ६० अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं। इन सर्व (३९८+६०=४५८) जिनमन्दिरों को नमस्कार करो।

इन अकृत्रिम जिन चैत्यालयोंका विवरण निम्न प्रकार है :—

(कृपया चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए)

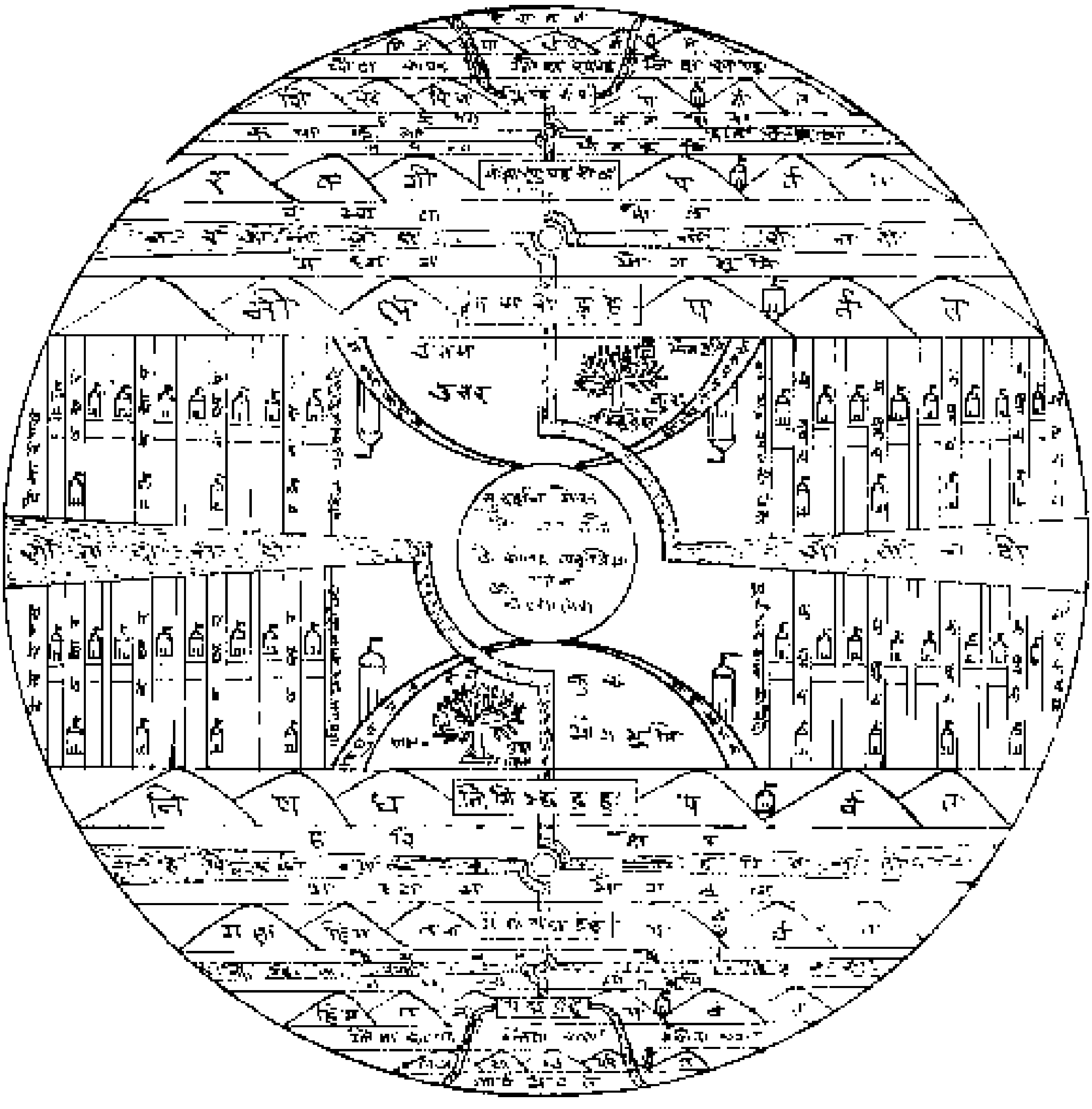

नोट—इस जम्बूद्वीपके उपर्युक्त चित्रणमें सुदर्शनमेरु के—
चार वनों में स्थित १६ अकृत्रिम जिनमंदिर
३४ विजयार्धों में „ ३४ „ „ „
१६ वक्षार पर्वतों पर „ १६ „ „ „
४ गजदंतों पर्वतों पर „ ४ „ „ „
६ कुलाचलों „ „ „ ६ „ „ „
जंबू शाल्मलि २ वृक्षों „ २ „ „ „ हैं

७८ एक मेरु सम्बन्धी अकृत्रिम जिनमन्दिर हैं।

७८ × ५ = ३९० अकृत्रिम चैत्यालय ५ मेरु संबंधी हुए अतः—

पंच मेरु सम्बन्धी ३९० अकृत्रिम चैत्यालय हैं
चार इष्वाकार के ४ „ चैत्या० गाथा ५६२
मानुषोत्तर „ ४ „ „ „ ९४०
नन्दीश्वर „ ५२ „ „ „ ९७३
रुचकगिरि „ ४ „ „ „ ९४७
कुण्डलगिरि „ ४ „ „ „ ९४४

४५८ नरतिर्यग्लोकके सम्पूर्ण अकृ० चैत्यालय।

अथ नरलोकजिनगृहाणि कुत्र कुत्र तिष्ठन्ति इत्युक्ते आह—

मंदरकुलवक्खारिसुमणुसुत्तररुप्पजंबुसामलिसु ।
सीदी तीसं तु सयं चउ चउ सत्तरिसयं दुपणं ॥ ५६२ ॥

मन्दरकुलवक्षारेषु मानुषोत्तररूप्यजम्बूशाल्मलिषु ।
अशीतिः त्रिंशत् तु शतं चत्वारि चत्वारि सप्ततिशतं द्विपञ्च ॥ ५६२ ॥

मंदर । मन्दरेषु ५ कुलपर्वतेषु ३० वक्षारेषु १०० इष्वाकारेषु ४ मानुषोत्तरे १ विजयार्धेषु १७० जम्बूवृक्षेषु ५ शाल्मलीवृक्षेषु ५ यथासंख्यं जिनगृहाण्यशीतिः ८० त्रिंशत् ३० शतं १०० चत्वारि ४ चत्वारि ४ सप्तत्युत्तरशतं १७० द्विवारपञ्च ५-५ भवन्ति ॥ ५६२ ॥

नरलोकके चैत्यालय कहाँ कहाँ स्थित हैं ? उन्हें कहते हैं :—

गाथार्थ :—सुमेरु, कुलाचल, वक्षारगिरि, इष्वाकार, मानुषोत्तर, रूप्यगिरि (विजयार्ध) जम्बूवृक्ष और शाल्मलि वृक्षों पर क्रम से अस्सी, तीस, सौ, चार, चार, एक सौ सत्तर, पाँच और पाँच जिनमन्दिर हैं ॥ ५६२ ॥

विशेषार्थ :—पाँच सुमेरु पर्वतों पर ८० जिनमन्दिर हैं, तीस कुलाचलों पर ३०, गजदन्त सहित सौ वक्षारगिरि पर १००, चार इष्वाकार पर ४, मानुषोत्तर पर ४ एक सौ सत्तर विजयार्धों पर १७०, पाँच जम्बूवृक्षों पर ५, और पाँच शाल्मलि वृक्षों पर ५ जिनमन्दिर स्थित हैं । इस प्रकार नरलोक में कुल (८०+३०+१००+४+४+१७०+५+५=) ३९८ जिनमन्दिर हैं ।

अथ अग्रे वक्ष्यमाणानामर्थानां मन्दराश्रयत्वात्तानेव प्रथमं प्रतिपादयति—

जंबूदीवे एक्को इसुकयपुव्वावरचावदीवदुगे ।
दो दो मन्दरसेला बहुमज्झगविजयबहुमज्झे ॥ ५६३ ॥

जम्बूद्वीपे एकः इषुकृतपूर्वापरचापद्वीपद्विके ।
द्वौ द्वौ मन्दरशैलौ बहुमध्यगविजयबहुमध्ये ॥ ५६३ ॥

जंबू । जम्बूद्वीपे एको मन्दरः इष्वाकारपर्वतकृतपूर्वापरचापद्वीपद्विके द्वौ द्वौ मन्दरशैलौ । तत्रापि ते मन्दराः क्व तिष्ठन्ति ? भरतादिदेशानामतिशयेन मध्यस्थितो विजयः देश इत्यर्थः । तस्यात्यन्तमध्यप्रदेशे तिष्ठन्ति ॥ ५६३ ॥

अब आगे कहा जाने वाला सर्व अर्थ मेरु के आश्रय है, अतः सर्वप्रथम मेरुगिरि का प्रतिपादन करते हैं :—

गाथार्थ :—जम्बूद्वीप में एक मेरुगिरि है । दो द्वीपों में इष्वाकार पर्वतों के द्वारा किए हुए पूर्व पश्चिम में दो दो धनुषाकार क्षेत्रों में दो दो मेरुपर्वत हैं, इन मेरु पर्वतों का अवस्थान उन धनुषाकार क्षेत्रों के ठीक मध्य में स्थित विदेहों के ठीक मध्य में है ॥ ५६३ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप में एक मेरु गिरि है। तथा धातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीपों में इष्वाकार पर्वतों के द्वारा पूर्व पश्चिम दिशाओं में किए हुए दो दो धनुषाकार क्षेत्र हैं। अर्थात् धातकी खण्ड में दो इष्वाकार पर्वतों ने धनुषाकार दो क्षेत्र बनाये हैं, और पुष्करार्ध द्वीप में भी दो इष्वाकार पर्वतों ने धनुषाकार दो क्षेत्र बनाए हैं। इन्हीं चार क्षेत्रों में चार सुमेरुगिरि स्थित हैं। उन क्षेत्रों में भी ये मन्दर गिरि कहाँ अवस्थित हैं ? इष्वाकार पर्वतों के द्वारा बनाए हुए जो भरतैरावतादि क्षेत्र हैं, उनके ठीक मध्य भाग में विदेह क्षेत्रों की अवस्थिति है विदेह क्षेत्रों के अत्यन्त मध्य में ये चारों सुमेरु पर्वत स्थित हैं। इनका चित्रण निम्न प्रकार से है :—

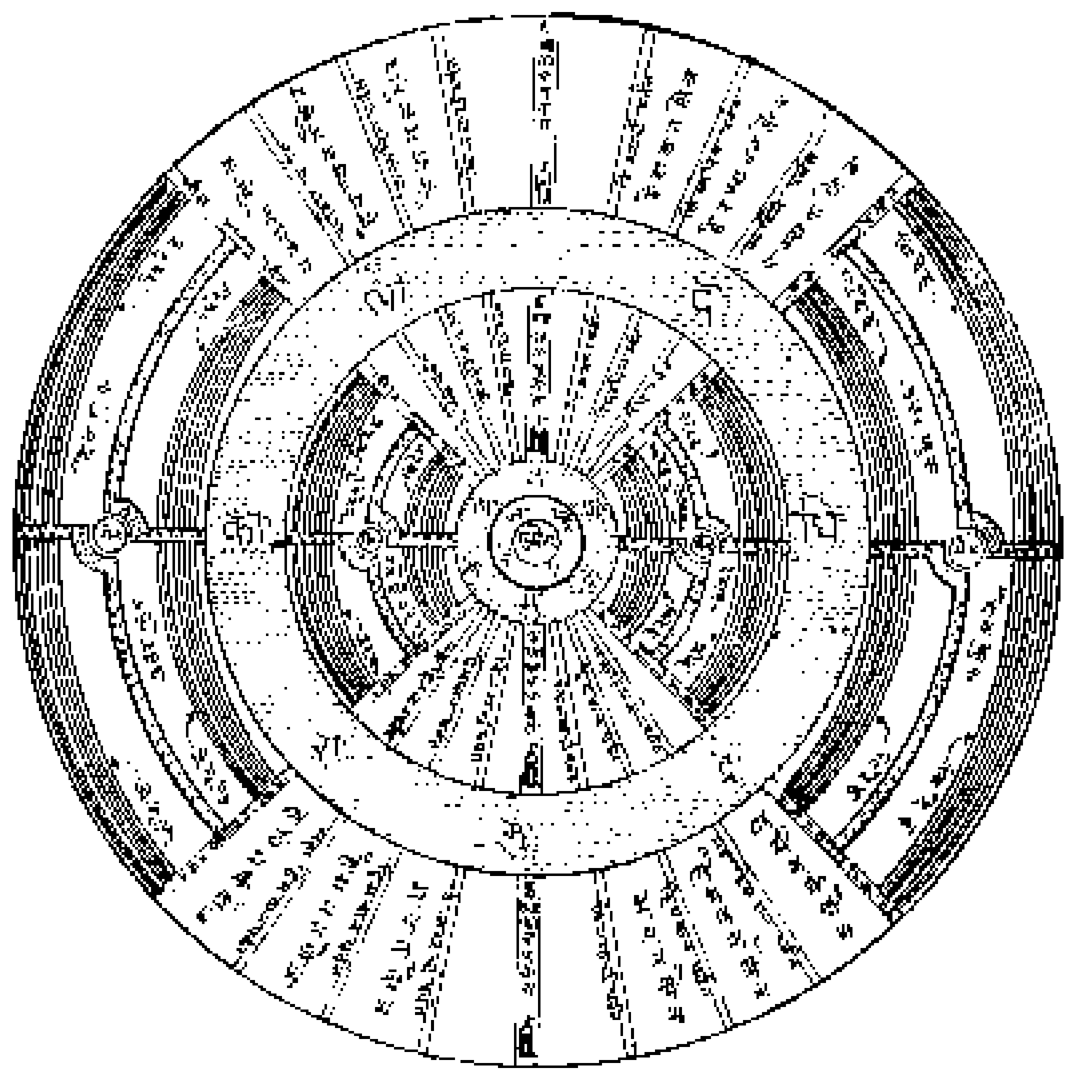

अथ तेषां मन्दराणामुभयपार्श्वस्थितक्षेत्राणां नामानि कथयति—

दक्खिणदिसासु भरहो हेमवदो हरिविदेहरम्मो य।
हइरण्णवदेरावदवस्सा कुलपव्वयंतरिया ॥ ५६४ ॥

दक्षिणदिशासु भरतो हैमवतः हरिविदेहरम्यश्च।
हैरण्यवदैरावतवर्षाः कुलपर्वतान्तरिताः ॥ ५६४ ॥

वक्खिण । तेषां मन्दराणां दक्षिणदिशाया आरभ्य भरतः हैमवतः हरिः विदेहः रम्यकः हैरण्यवतः ऐरावत इत्येते वर्षा हिमवदादिकुलपर्वतान्तरिताः ॥ ५६४ ॥

उन सुमेरु पर्वतों के दोनों पार्श्व भागों में स्थित क्षेत्रों के नाम कहते हैं :—

गाथार्थ :—उन मन्दर मेरुओं की दक्षिण दिशा से लगाकर क्रमशः (१) भरत (२) हैमवत (३) हरि (४) विदेह (५) रम्यक (६) हैरण्यवत और (७) ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं, जो कुल पर्वतों से अन्तरित हैं । अर्थात् जिनके बीच में कुल पर्वतों के होने से अन्तर प्राप्त है ॥ ५६४ ॥

विशेषार्थ :—उन सुमेरु पर्वतों की दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः भरतादि सात क्षेत्र हैं । जिनमें बीच बीच में कुल पर्वतों के कारण अन्तर है । अर्थात् इन क्षेत्रों के अन्तराल में कुल पर्वत हैं। यथा :—भरत और हैमवत के बीच में हिमवान् पर्वत है । हैमवत और हरि के बीचमें महाहिमवान्, हरि और विदेह के बीच निषध, विदेह और रम्यक के बीच में नील, रम्यक और हैरण्यवत के बीच में रुक्मी, तथा हैरण्यवत और ऐरावत के बीच में शिखरिन् पर्वत हैं।

अथ तेषां पर्वतानां नामादिकं गाथाद्वयेनाह—

> **हिमवं महादिहिमवं णिसहो णीलो य रुम्मि सिहरी य ।**
> **मूलोवरि समवासा मणिपासा जलणिहिं पुट्ठा ॥ ५६५ ॥**
>
> हिमवान् महादिहिमवान् निषधः नीलश्च रुक्मी शिखरी च ।
> मूलोपरि समव्यासा मणिपार्श्वा जलनिधि स्पृष्टाः ॥ ५६५ ॥

हिमवं । हिमवान् महाहिमवान् निषधो नीलश्च रुक्मी शिखरी च, एते सर्वे मूलोपरि समानव्यासाः मणिमयपार्श्वा जलनिधि स्पृष्टाः ॥ ५६५ ॥

दो गाथाओं द्वारा उन कुलाचलों के नामादि कहते हैं :—

गाथार्थ :—हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरिन् ये छह कुल पर्वत मूल में व ऊपर समान व्यास-विस्तार से युक्त हैं। मणियों से खचित इनके दोनों पार्श्वभाग समुद्रों का स्पर्श करने वाले हैं ॥ ५६५ ॥

विशेषार्थ :—(१) हिमवान् (२) महाहिमवान् (३) निषध (४) नील (५) रुक्मी और (६) शिखरिन् ये छह कुलाचल पर्वत हैं। दीवाल सदृश इन कुलाचलों का व्यास-चौड़ाई नीचे से ऊपर तक समान है । इन कुलाचलों के दोनों पार्श्वभाग मणिमय हैं और समुद्रों को स्पर्श करने वाले हैं। जम्बूद्वीप में कुलाचलों के दोनों पार्श्वभाग लवणसमुद्र को स्पर्श करते हैं। धातकी खण्ड में लवणोदधि और कालोदधि को स्पर्श करते हैं किन्तु पुष्करार्धद्वीप में कालोदधि और मानुषोत्तर पर्वत को स्पर्श करते हैं।

हेमज्जुणतवणीया कमसो वेलुरियरजदहेममया ।
इगिदुगचउचउदुगइगिसयतुंगा होंति हु कमेण ॥ ५६६ ॥

हेमार्जुनतपनीयाः क्रमशः वैडूर्यरजतहेममयाः ।
एकद्विकचतुश्चतुर्द्विकैकशततुङ्गा भवन्ति हि क्रमेण ॥ ५६६ ॥

हेम । हेमवर्णः अर्जुनवर्णः श्वेत इत्यर्थः । तपनीयवर्णः कुक्कटचूडच्छविरित्यर्थः, वैडूर्यवर्णः मयूरकण्ठच्छविरित्यर्थः, रजतवर्णः हेममयः एते क्रमशः तेषां पर्वतानां वर्णाः एकशतः द्विशतः चतुःशतः चतुःशतः द्विशतः एकशतः क्रमेण तेषामुत्सेधा भवन्ति ॥ ५६६ ॥

गाथार्थ :—इन कुलाचलों का वर्ण क्रमशः हेम (स्वर्ण) अर्जुन (चाँदी सदृश श्वेत) तपनीय (तपाये हुए स्वर्ण सदृश) वैडूर्य मणि (नीला) रजत (श्वेत) और हेम (स्वर्ण) सदृश है। इनकी ऊँचाई का प्रमाण भी क्रमशः एक सौ, दो सौ, चार सौ, चार सौ, दो सौ और एक सौ योजन है ॥ ५६६ ॥

विशेषार्थ :—हिमवान् पर्वत का वर्ण स्वर्ण सदृश और ऊँचाई १०० योजन (४००००० मील) है। महाहिमवान् का अर्जुन अर्थात् श्वेत वर्ण तथा ऊँचाई २०० योजन (८००००० मील) है। निषध पर्वत का वर्ण तपनीय तपाये हुए स्वर्ण समान तथा ऊँचाई ४०० योजन (१६००००० मील) है। नील पर्वत का वर्ण वैडूर्य (पन्ना) अर्थात् मयूर कण्ठ सदृश नीला है, इसकी ऊँचाई ४०० योजन है। रुक्मी पर्वत का वर्ण रजत अर्थात् श्वेत तथा ऊँचाई २०० यो० है। इसी प्रकार शिखरिन् पर्वत का वर्ण स्वर्ण सदृश एवं ऊँचाई १०० योजन है।

इदानीं हिमवदादिकुलपर्वतानामुपरिस्थितह्रदानां नामान्याह :—

पउममहापउमा तिगिंछा केसरि महादिपुंडरिया ।
पुंडरिया य दहाओ उवरिं अणुपव्वदायामा ॥ ५६७ ॥

पद्मो महापद्मः तिगिञ्छः केसरिः महादिपुण्डरीकः ।
पुण्डरीकश्च ह्रदा उपरि अनुपर्वतायामाः ॥ ५६७ ॥

पउम । पद्मो महापद्मस्तिगिञ्छः केसरी महापुण्डरीकः पुण्डरीक इत्येते ह्रदास्तेषामुपरि पर्वतानुवर्त्यायामास्तिष्ठन्ति ॥ ५६७ ॥

हिमवत् आदि कुलाचलों पर स्थित सरोवरों के नाम कहते हैं :—

गाथार्थ :—हिमवत् आदि पर्वतों पर क्रमशः पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये छह सरोवर पर्वतों के सदृश हीनाधिक आयामवाले हैं ॥ ५६७ ॥

अथ तेषां ह्रदानां व्यासादिकं प्रतिपादयन् तत्रस्थाम्बुजानां स्वरूपं निरूपयति—

वासायामोगाढं पणदसदसमहदपव्वदुदयं खु ।
कमलस्सुदओ वासो दोविय गाहस्स दसभागो ॥ ५६८ ॥

व्यासायामागाधाः पञ्चदशदशमहतपर्वतोदयाः खलु ।
कमलस्योदयः व्यासः द्वावपि गाधस्य दशभागो ॥ ५६८ ॥

वासा । तेषां ह्रदानां व्यासायामागाधा यथासंख्यं पञ्चगुणितदशगुणितदशमभाग[1]हृततत्पर्वतोदयाः १०० । २०० । ४०० । ४०० । २०० । १०० खलु । व्या० ५०० = आ० १००० ग० १० तत्रस्थकमलस्योदयव्यासौ तु द्वावपि तत्तद्ध्रदानां गाधदशमभागौ ज्ञातव्यौ ॥ ५६८ ॥

उन सरोवरों के व्यासादिक का प्रतिपादन करते हुए वहां स्थित कमलों का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—पर्वतों के (अपने अपने) उदय (ऊँचाई) को पांच से गुणित करने पर द्रहों का व्यास, दस से गुणित करने पर द्रहों का आयाम और दस से भाजित करने पर द्रहों की गहराई प्राप्त होती है। द्रहों में रहने वाले कमलों का व्यास एवं उदय ये दोनों भी द्रहों की गहराई के दसवें भाग प्रमाण हैं ॥ ५६८ ॥

विशेषार्थ :—उन सरोवरों का व्यास, आयाम और गहराई का प्रमाण अपने २ पर्वतों की ऊँचाई के प्रमाण को क्रमशः ५ और १० से गुणित करने पर तथा १० से भाजित करने पर प्राप्त होता है, तथा सरोवरों में स्थित कमलों का व्यास और उदय भी सरोवरों की गहराई के दसवें भाग प्रमाण है यथा :—हिमवान् पर्वत की ऊंचाई १०० यो० है, अतः उस पर स्थित पद्मद्रह की लम्बाई (१०० × १०) = १००० योजन, चौड़ाई (१०० × ५) = ५०० यो० और गहराई (१०० ÷ १०) = १० योजन प्रमाण है। इस पद्मद्रहमें रहने वाले कमल की ऊँचाई एवं चौड़ाई दोनों (१० ÷ १०) = एक एक योजन प्रमाण है। (२) महाहिमवान् पर्वत की ऊँचाई २०० योजन है, अतः उस पर स्थित महापद्म सरोवर की लम्बाई (२०० × १०) = २००० योजन, चौड़ाई (२०० × ५) = १००० योजन और गहराई (२०० ÷ १०) = २० योजन प्रमाण है। इस द्रह में रहने वाले कमल की ऊँचाई और व्यास दोनों (२० ÷ १०) = २, २ योजन प्रमाण है। निषध पर्वत की ऊँचाई ४०० यो० है, अतः उस पर रहने वाले तिगिञ्छ द्रह की लम्बाई (४०० × १०) = ४००० योजन, चौड़ाई (४०० × ५) = २००० यो० और गहराई (४०० ÷ १०) = ४० योजन प्रमाण है। इसमें स्थित कमल की ऊँचाई और व्यास दोनों (४० ÷ १०) = ४, ४ योजन प्रमाण है।

कुलाचलों का उदय एवं सरोवरों के व्यास आदि का प्रमाण :—

[कृपया चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिए]

---

1 भागरूपहृत (ब०, प०) ।

क्रमांक	कुलाचल	ऊँचाई		सरोवर	लम्बाई		चौड़ाई		गहराई	
		यो०	मीलों में		यो०में	मीलों में	योजनों में	मीलों में	योजनों में	मीलों में
१	हिम०	१००	४०००००	पद्म	१०००	४००००००	५००	२००००००	१०	४००००
२	महा०	२००	८०००००	महापद्म	२०००	८००००००	१०००	४००००००	२०	८००००
३	निषध	४००	१६०००००	तिगिञ्छ	४०००	१६००००००	२०००	८००००००	४०	१६००००
४	नील	४००	१६०००००	केशरी	४०००	१६००००००	२०००	८००००००	४०	१६००००
५	रुक्मी	२००	८०००००	महा-पुण्डरीक	२०००	८००००००	१०००	४००००००	२०	८००००
६	शिखरिन्	१००	४०००००	पुण्डरीक	१०००	४००००००	५००	२००००००	१०	४००००

अथ तेषां कमलानां विशेषस्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

णियगंधवासियदिसं वेलुरियविणिम्मिउच्चणालजुदं ।
एक्कारसहस्सदलं णववियसियमत्थि दहमज्झे ॥ ५६९ ॥

निजगन्धवासितदिशं वैडूर्यविनिर्मितोच्चनालयुतम् ।
एकादशसहस्रदलं नवविकसितमस्ति ह्रदमध्ये ॥ ५६९ ॥

णिय । निजगन्धवासितदिशं वैडूर्यविनिर्मितोच्चनालयुतं एकादशोत्तरसहस्रदलं नवविकसितं पृथ्वीसारकपं कमलं तेषां ह्रदानां मध्ये अस्ति ॥ ५६९ ॥

दो गाथाओं द्वारा उन कमलों के विशेष स्वरूप को कहते हैं :—

गाथार्थ :—अपनी सुगन्ध से सुवासित की हैं दिशाएं जिसने, तथा जो वैडूर्यमणि से निर्मित ऊँची नाल से संयुक्त है ऐसा एक हजार ग्यारह पत्रों से युक्त नवविकसित कमल के सदृश पृथ्वीकायिक कमल सरोवर के मध्य में है ॥ ५६९ ॥

विशेषार्थ :—प्रथम पद्म सरोवर के मध्य में जो कमल है, वह पृथ्वी स्वरूप है, उसकी नाल ऊँची और वैडूर्यमणि से बनी हुई है। उसके पत्रों की संख्या १०११ है और उसका आकार नवविकसित कमल सदृश है।

कमलदलजलविणिग्गयतुरियुदयं वास कण्णियं तत्थ ।
सिरिरयणगिहं दिग्घति कोसं तस्सद्धमुभयजोगदलं ॥ ५७१ ॥

कमलदलजलविनिर्गततुर्योदयः व्यासः कर्णिकायाः तत्र ।
श्रीरत्नगृहं दैर्घ्यत्रिकं क्रोशः तस्यार्धमुभययोगदलं ॥ ५७१ ॥

कमल । कमलोत्सेधार्धमेव नालस्य जलविनिर्गतिः कमलचतुर्थांश एव उदयव्यासो कर्णिकायाः । तत्र श्रीदेवतायाः रत्नमयं गृहमस्ति तस्य दैर्घ्यत्रिकं दैर्घ्यव्यासोदयाः यथासंख्यं क्रोशप्रमाणं तस्यार्धं तयोरुभययोर्योगार्धं च स्यात् ॥ ५७१ ॥

गाथार्थ :—कमल का अर्ध उत्सेध जल के बाहर निकला हुआ है। कमल की कर्णिका की ऊँचाई और चौड़ाई कमल के उदय और व्यास का चतुर्थांश है। उस कर्णिका पर श्री देवी का रत्नमय गृह है, उसकी दीर्घता, व्यास और उदय ये तीनों क्रमशः एक कोश, अर्ध कोश और दोनों के योग का अर्धभाग अर्थात् (१ + ½ = ³⁄₂ ÷ २) = पौन कोश प्रमाण है ॥ ५७१ ॥

विशेषार्थ :—कमल के उत्सेध का अर्ध प्रमाण अर्थात् ½ योजन नाल जल से ऊपर निकली हुई है। कर्णिका का उदय और व्यास कमल के उदय और व्यास का चतुर्थांश है। अर्थात् कमल का उदय और व्यास एक एक योजन प्रमाण है, अतः कर्णिका का उदय और व्यास (१ ÷ ४) = ¼ = एक एक कोश प्रमाण है। इसी कर्णिका पर श्री देवी का रत्नमय गृह है, जिसकी लम्बाई एक कोश, चौड़ाई ½ कोश और ऊंचाई ¾ (पौन) कोश प्रमाण है।

नोट :—गाथा ५६९ की उत्थानिका में दो गाथाओं द्वारा कमलों के विशेषादि के कहने की प्रतिज्ञा की गई है, अतः गाथा ५६९ और ५७१ ये दो गाथाएं एक साथ दी गई हैं। यद्यपि पूर्व प्रकाशित पुस्तकों में दूसरी गाथा अर्थात् गाथा नं० ५७१, प्रक्षेप गाथा ५७० के बाद दी गई है। किन्तु प्रक्षेप गाथा ५७० का सम्बन्ध गाथा ५६९ से न होकर ५७१ से है, इसीलिए प्रक्षेप गाथा ५७० गाथा ५७१ के बाद दी जा रही है।

अथ एतदनुगुणं प्रक्षेपगाथामाह—

दहमज्झे अरविंदयणालं बादालकोसमुव्विद्धं ।
इगिकोसं बाहल्लं तस्स मुणालं तिं रजदमयं ॥ ५७० ॥

ह्रदमध्ये अरविन्दकनालं द्वाचत्वारिंशत्कोशोत्सेधम् ।
एककोशं बाहल्यं तस्य मृणालं त्रिः रजतमयम् ॥ ५७० ॥

ह्रद । ह्रदमध्येऽरविन्दस्य नालं द्वाचत्वारिंशत्क्रोशोत्सेधं एकक्रोशबाहल्यं तस्य मृणालं तु त्रिक्रोशबाहल्यं रजतमयं स्यात् ॥ ५७० ॥

कमल का विस्तार बताने वाली प्रक्षेप गाथा—

गाथार्थ :—पद्मद्रह के मध्य में कमलनाल की ऊँचाई ४२ कोस और मोटाई एक कोस प्रमाण है। उसका मृणाल तीन कोस मोटा और रजतवर्ण का है ॥ ५७० ॥

विशेष :—पद्मद्रहकी गहराई १० योजन है। गाथा ५७० में कहा गया है कि कमलनाल जल से अर्ध योजन प्रमाण ऊपर है, इसी से यह सिद्ध होता है कि कमल नाल की कुल ऊँचाई १०½ योजन है, तभी तो वह सरोवर की १० योजन की गहराई को पार करती हुई आधा योजन जल से ऊपर है। यही बात प्रक्षेप गाथा (५७०) कह रही है। इस गाथा में नाल की ऊँचाई ४२ कोस कही गई है जिसके १०½ योजन होते हैं।

कमल, कमल नाल एवं कमल कर्णिका का उत्सेधादि :—

क्रमांक	सरोवरों के कमल	कमलों का उत्सेध	कमलों का व्यास	नाल जलमग्न	नाल जल के ऊपर	कर्णिका का उत्सेध	कर्णिका का व्यास	मृणाल का बाहुल्य
१	पद्म द्रह का कमल	१ योजन	१ यो०	१० यो०	½ यो०	१ कोश	१ कोश	३ कोश
२	महा पद्म द्रह का ”	२ ”	२ ”	२० ”	१ ”	२ ”	२ ”	६ कोश
३	तिगिञ्छ ” ” ”	४ ”	४ ”	४० ”	२ ”	४ ”	४ ”	१२ ”
४	केसरी ” ” ”	४ ”	४ ”	४० ”	२ ”	४ ”	१ ”	१२ ”
५	महापुण्डरीक ” ” ”	२ ”	२ ”	२० ”	१ ”	२ को	२ ”	६ ”
६	पुण्डरीक ” ” ”	१ ”	१ ”	१० ”	½ ”	१ ”	१ ”	३ ”

अथ तन्निवासिनीनां देवीनां नामानि तासां स्थितिपूर्वकं तत्परिवारं चाह—

सिरिहिरिधिदिकित्ती य बुद्धीलच्छी य पल्लठिदिगाओ ।
लक्खं चत्तसहस्सं सयदहपण पउमपरिवारा ॥ ५७२ ॥

श्री ह्री धृतिः कीर्तिः अपि च बुद्धिः लक्ष्मीः च पल्यस्थितिकाः ।
लक्षं चत्वारिंशत्सहस्रं शतदशपञ्च पद्मपरिवारः ॥ ५७२ ॥

सिरि । श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्याख्या देव्यः पल्यस्थितिकाः एकं लक्षं चत्वारिंशत्सहस्राणि शतं दश पञ्च प्रमाणानि कमलस्य परिवारपद्मानि १४०११५ ॥ ५७२ ॥

कमलों पर निवास करने वाली देवियों के नाम, आयु और उनके परिवार के सम्बन्ध में कहते हैं :—

गाथार्थ :—श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये छहों देवाङ्गनाएँ एक एक पल्य की आयु वाली हैं। ये देवांगनाएँ पद्मादि द्रह सम्बन्धी कमलों पर निवास करती हैं। उन्हीं पद्मादि द्रहों में एक एक कमल के १, ४०, ११५ परिवार कमल हैं।

अथ परिवारकमलस्थितं श्रीदेवीनां परिवारं गाथाचतुष्टयेनाह—

आइच्चचंदजदुपहुदीओ तिप्परीसमग्गिजमणिरुदी ।
बत्तीसताल अडदाल सहस्सा कमलममरसमं ॥ ५७३ ॥

आदित्यचन्द्रजतुप्रभृतयः त्रिपारिषदाः अग्नियमनैऋ त्यां ।
द्वात्रिंशत् चत्वारिंशत् अष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि कमलानि अमरसमानि ॥५७३॥

आइच्च । आदित्यचन्द्रजतुप्रभृतयस्त्रयः पारिषद्देवाः क्रमेणाग्नियमनैऋ त्यां दिशि तिष्ठन्ति तेषां संख्या द्वात्रिंशत्सहस्राणि चत्वारिंशत्सहस्राणि अष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि भवन्ति कमलानि चामरसमानि ॥ ५७३ ॥

उन परिवार कमलों में स्थित श्री देवी के परिवार का प्रमाण चार गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—आदित्य, चन्द्र और जतु हैं आदि में जिनके ऐसे तीन प्रकार के पारिषद देव (मूल कमल की) आग्नेय, दक्षिण और नैऋत्य दिशा में रहते हैं। इनका प्रमाण क्रमशः बत्तीस हजार, चालीस हजार और अड़तालीस हजार है। इनके कमल देवाङ्गना के कमल सदृश ही हैं। ॥ ५७३ ॥

विशेषार्थ :—आदित्य नामक देव है प्रमुख जिसमें ऐसे आभ्यन्तर परिषद के ३२००० देवों के ३२००० भवन श्री देवी के कमल की आग्नेय दिशा में हैं। ये एक एक भवन एक एक कमल पर बने हुए हैं। इसी प्रकार चन्द्र नामक देव है प्रमुख जिसमें ऐसे मध्य परिषद् के ४०००० देवों के ४०००० कमलों पर ४०००० ही भवन श्री देवी के कमल की दक्षिण दिशा में स्थित हैं, तथा जतु नामक देव है प्रमुख जिसमें ऐसे बाह्य परिषद के ४८००० देवों के ४८००० कमलों पर ४८००० ही भवन हैं जो पद्म द्रह की श्री देवी के कमल की नैऋत्य दिशा में स्थित हैं। इन सभी देवों के भवन जिन कमलों पर स्थित हैं वे कमल श्री देवी के कमल सदृश ही हैं।

आणीयगेहकमला पच्छिमदिसि सग गयस्सरहवसहा ।
गंधव्वणच्चपत्ती पत्तेयं दुगुणसत्तकक्खजुदा ॥ ५७४ ॥

आनीकगेहकमलानि पश्चिमदिशि सप्त गजाश्वरथवृषभाः ।
गन्धर्वनृत्यपत्तयः प्रत्येकं द्विगुणसप्तकक्षायुताः ॥ ५७४ ॥

आनीय । आनीकदेवानां गेहकमलानि सप्त पश्चिमायां दिशि संति ते आनीकाः गजाश्वरथवृषभगन्धर्वनृत्यपदातय इति सप्तापि प्रत्येकं वक्ष्यमाणस्वसामानिकसम ४००० प्रथमानीकाद् द्विगुणगुणसप्तकक्षयुताः ॥ ५७४ ॥

गाथार्थ :—हाथी, घोड़ा, रथ, बैल, गन्धर्व, नृत्यकी और पयादे इन सात अनीकों के अपने अपने भवनों सहित सात कमल श्री देवी के कमल की पश्चिम दिशा में स्थित हैं। प्रत्येक अनीक सात सात कक्षाओं से युक्त है। [प्रथम कक्ष के प्रमाण से] द्वितीयादि कक्षों के देवों का प्रमाण दूना दूना है ॥ ५७४ ॥

विशेषार्थ :—हाथी, घोड़ा, रथ, बैल, गन्धर्व, नृत्यकी और पयादा ये सात प्रकार के अनीक हैं। इन सात अनीकों के सात भवन सात कमलों पर हैं, और वे कमल श्री देवी के कमल की पश्चिम दिशा में स्थित हैं। प्रत्येक अनीक सात सात कक्षाओं से युक्त है। आगे कही जाने वाली सामानिक देवों की ४००० संख्या प्रमाण ही प्रथम अनीक की प्रथम कक्षा का प्रमाण है, इसके आगे यह प्रमाण दूना दूना होता गया है।

जिसका प्रमाण निम्न प्रकार है—

श्री देवी की ७ अनीकों का सम्पूर्ण प्रमाण

गजानीक	अश्वानीक	रथाऽनीक	वृषभानीक	गन्धर्वानीक	नृत्यानीक	पदाति
४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००	४०००
८०००	८०००	८०००	८०००	८०००	८०००	८०००
१६०००	१६०००	१६०००	१६०००	१६०००	१६०००	१६०००
३२०००	३२०००	३२०००	३२०००	३२०००	३२०००	३२०००
६४०००	६४०००	६४०००	६४०००	६४०००	६४०००	६४०००
१२८०००	१२८०००	१२८०००	१२८०००	१२८०००	१२८०००	१२८०००
२५६०००	२५६०००	२५६०००	२५६०००	२५६०००	२५६०००	२५६०००
५०८०००	५०८०००	५०८०००	५०८०००	५०८०००	५०८०००	५०८०००
योग—						=३५५६०००

उत्तरदिसि कोणदुगे सामाणियकमल चदुसहस्समदो ।
अब्भंतरे दिसं पडि पुह तेत्तियमंगरक्खपासादं ॥ ५७५ ॥
अब्भंतरदिसि विदिसे पडिहारमहत्तरट्ठसयकमलं ।
मणिदलजलसमणालं परिवारं पउममाणद्धं ॥ ५७६ ॥

उत्तरदिशि कोणद्विके सामानिककमलानि चतुः सहस्रमतः ।
अभ्यन्तरे दिशं प्रति पृथक् तावन्मात्राङ्गरक्षप्रासादाः ॥ ५७५ ॥
अभ्यन्तरदिशि विदिशि प्रतिहारमहत्तराणामष्टशतकमलानि ।
मणिदलजलसमनालं परिवारं पद्ममानार्धम् ॥ ५७६ ॥

उत्तर । उत्तरदिग्भागस्थितवायव्यैशानकोणद्वये सामानिकदेवानां कमलानि चतुःसहस्राणि सन्ति अतोऽभ्यन्तरे प्रतिदिशं पृथक् पृथक् तावन्मात्रा ४००० अङ्गरक्षप्रासादाः स्युः ॥ ५७५ ॥

अब्भंतर । तेभ्यः अभ्यन्तरदिशि १४ विदिशि च १३ प्रत्येकमेवं सति प्रतिहारमहत्तराणामष्टोत्तरशतकमलानि मणिमयदलानि जलोत्सेधसमनालानि सन्ति परिवारपद्मविशेषस्वरूपं सर्वं मुख्यपद्मप्रमाणार्धं स्यात् ॥ ५७६ ॥

गाथार्थ :—उत्तर दिशा के दोनों कोनों में अर्थात् ऐशान और वायव्य में सामानिक देवों के चार हजार कमल हैं, इन कमलों के भीतरी भाग में (मूल कमल की ओर) चारों दिशाओं में चार चार हजार ही तनुरक्षकों के कमल हैं। अर्थात् उन पार्थिव कमलों पर भवन बने हुए हैं। उन अङ्गरक्षकों के कमलों के अभ्यन्तर भाग में (मूल कमल की ओर) चारों दिशाओं एवं चारों विदिशाओं में प्रतीहार महत्तरों के एक सौ आठ कमल हैं। ये सब परिवार कमल मणियों से रचित हैं। इन सबके व्यासादि का प्रमाण पद्म (मूल) कमल के प्रमाण से अर्ध अर्ध है। परिवार कमलों के नाल की ऊँचाई जल की गहराई के सदृश ही है ॥ ५७५, ५७६ ॥

विशेषार्थ :—उत्तर दिशा के दोनों कोण अर्थात् मूल कमल की ऐशान और वायव्य दिशा में सामानिक देवों के कुल ४००० कमल हैं। इनसे अभ्यन्तर अर्थात् मूल कमल की ओर पृथक् पृथक् चारों दिशाओं में चार चार हजार अङ्गरक्षकों के कमल हैं। इनके भी अभ्यन्तर भाग में अर्थात् मूल कमल की ओर चारों दिशाओं में १४, १४ और विदिशाओं में १३, १३ इस प्रकार प्रतिहार महत्तरों के कुल १०८ कमल हैं। सभी परिवार कमल मणिमय हैं और इन प्रत्येक कमलों पर परिवार देवों के एक एक ही मणिमय भवन बने हुए हैं। इन परिवार कमलों का सम्पूर्ण (विशेष) स्वरूप अर्थात् व्यासादिक का प्रमाण प्रधान पद्म के प्रमाण से आधा आधा है। इनके नाल की ऊँचाई सरोवर की गहराई के प्रमाण ही है। अर्थात् नाल जल के बराबर ऊँची है, जल से ऊपर नहीं है।

इस प्रकार श्री देवी का अवस्थान और उनके परिवार कमलों की कुल संख्या का प्रमाण एवं चित्रण निम्न प्रकार है —

श्री देवी के सम्पूर्ण परिवार कमलों का प्रमाण निम्न प्रकार है—अङ्गरक्षक १६०००+सामानिक ४०००+अभ्यन्तर पारिषद् ३२०००+मध्यम पारिषद् ४००००+बाह्य पारिषद् ४८०००+प्रातिहार १०८ और+७ अनीक=१४०११५ परिवार कमल हैं यदि इनमें सातों कक्षाओं का प्रमाण जोड़ दिया जावे तो कुल परिवार समूह का प्रमाण (३५५६००० + १४०११५) = ३६९६११५ प्राप्त होता है।

हिमवान् से लेकर निषध पर्वत पर्यन्त कमलों का विष्कम्भ और उत्सेध आदि दूने दूने प्रमाण वाला है। परिवार कमलों का प्रमाण भी दूना दूना है।

देवकुमारियों के भवनों का व्यास आदि एवं परिवार कमलों का प्रमाण।—

क्रमांक	देव कुमारियाँ	भवनों की			ईशान-वायव्य कोण में सामानिक देव	चतुर्दिश तनु रक्षक	तीनों पारिषद देव			पश्चिम में अनीक देव	आठों दिशाओं में प्रतिहार	कुल योग
		लम्बाई	चौड़ाई	ऊँचाई			आग्नेय में अभ्यन्तर पारिषद	दक्षिण में मध्य पारिषद	नैऋत्य में बाह्य पारिषद			
१	श्री	१ को	½ को	¾ को.	४०००	१६०००	३२०००	४००००	४८०००	७	१०८	१४०११५
२	ह्री	२ को.	१ कोश	१½ कोश	८०००	३२०००	६४०००	८००००	९६०००	१४	२१६	२८०२३०
३	धृति	४ को.	२ को	३ को.	१६०००	६४०००	१२८०००	१६००००	१९२०००	२८	४३२	५६०४६०
४	कीर्ति	४	२	३	१६०००	६४०००	१२८०००	१६००००	१९२०००	२८	४३२	५६०४६०
५	बुद्धि	२	१	१½	८०००	३२०००	६४०००	८००००	९६०००	१४	२१६	२८०२३०
६	लक्ष्मी	१	½	¾	४०००	१६०००	३२०००	४००००	४८०००	७	१०८	१४०११५

यह उपर्युक्त प्रमाण मात्र महाकमलों का है। प्रकीर्णक आदि क्षुद्र कमलों का प्रमाण अत्यधिक है। उन कमल पुष्पों पर जितने भवन कहे गये हैं, उतने ही वहाँ नानाप्रकार के रत्नों से निर्मित जिन मन्दिर भी हैं। ति० प० ४। १६९२

सिरिगिहदलमिदरगिहं सोहम्मिंदस्स सिरिहिरिधिदीओ ।
किची बुद्धी लच्छी ईसाणहिवस्स देवीओ ॥ ५७७ ॥

श्रीगृहदलमितरगृहं सौधर्मेन्द्रस्य श्रीह्रीधृतयः ।
कीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः ईशानाधिपस्य देव्यः ॥ ५७७ ॥

सिरि। श्रीगृहव्यासादिप्रमाणार्धं इतरगृहव्यासादिप्रमाणं स्यात्। श्रीह्रीधृतयः सौधर्मेन्द्रस्य देव्यः कीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः ईशानाधिपस्य देव्यः स्युः ॥ ५७७ ॥

गाथार्थ :—श्री देवी के गृह का जितना व्यासादि है, परिवारदेवों के गृहों के व्यास आदि का प्रमाण उससे आधा आधा है। श्री, ह्री और धृति ये तीन सौधर्मेन्द्र की देवकुमारियाँ हैं तथा कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये तीन ईशानेन्द्र की देवकुमारियाँ हैं ॥ ५७७ ॥

अथ तेषु सरोवरेषु समुत्पन्नमहानदीनां संज्ञा गाथाद्वयेनाह—

सरजा गंगासिंधू रोहि तहा रोहिदास णाम णदी ।
हरि हरिकंता सीदा सीदोदा णारि णरकंता ॥ ५७८ ॥

सरिदा सुवण्णरूप्पयकूला रत्ता तहेव रत्तोदा ।
पुव्वावरेण कमसो णाभिगिरिपदक्खणेण गया ॥५७९॥

सरोजाः गङ्गासिन्धू रोहित्तथा रोहितास्या नाम नदी ।
हरित् हरिकान्ता सीता सीतोदा नारी नरकान्ता ॥ ५७८ ॥
सरितः सुवर्णरूप्यकूला रक्ता तथैव रक्तोदा ।
पूर्वापरेण क्रमशो नाभिगिरिप्रदक्षिणेन गताः ॥५७९॥

सरजा। सरसि जाताः गङ्गासिन्धू रोहित्तथा रोहितास्या नाम नदी हरिद्धरिकान्ता सीता सीतोदा नारी नरकान्ता ॥ ५७८ ॥

सरिदा। सुवर्णकूला रूप्यकूला रक्ता तथैव रक्तोदा। एताः सरितः क्रमशः पूर्वोक्ताः पूर्वमुखेनापरोक्ताः अपरमुखेन नाभिगिरिप्रदक्षिणेन गताः ॥ ५७९ ॥

अब उन सरोवरों से उत्पन्न हुई महानदियों के नाम दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—गङ्गा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा ये चौदह महानदियाँ पद्मादि सरोवरों से निकली

हैं। नाभिगिरि[1] की प्रदक्षिणा देती हुई [प्रत्येक युगल की] पूर्व कही हुई नदियाँ पूर्वाभिमुख और पीछे कही हुई पश्चिमाभिमुख, बहती हुई लवण समुद्र को प्राप्त होती हैं ॥ ५७८, ५७९ ॥

विशेषार्थ :—पद्मादि सरोवरों से उत्पन्न गङ्गा, रोहित्, हरित्, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता ये नदियाँ अपने अपने क्षेत्रों में स्थित पर्वतों की प्रदक्षिणा स्वरूप बहती हुई पूर्व समुद्र को जाती हैं, तथा सिन्धु, रोहितास्या, हरिकान्ता, सीतोदा, नरकान्ता, रूप्यकूला और रक्तोदा ये नदियाँ भी अपने अपने क्षेत्रों में स्थित पर्वतों की प्रदक्षिणा सदृश बहती हुई पश्चिम समुद्र को जाती हैं।

अथ तासां नदीनां उभयतटस्वरूपं कथयति—

पुण्णागणागपूगीकंकेल्लितमालकेलितंबूली ।
लवलीलवंगमल्लीपहुदी सयलणदितडेसु ॥५८०॥

पुन्नागनागपूगीकङ्केल्लितमालकदलीताम्बूली ।
लवलीलवङ्गमल्लीप्रभृतयः सकलनदीद्वितटेषु ॥ ५८० ॥

पुण्णाग । पुन्नागः नागकेसरः पूगी कङ्केल्लिः तमालः कदली ताम्बूली लवली लवङ्गः मल्ली-प्रभृतयो वृक्षाः सकलनदीद्वितटेषु सन्ति ॥ ५८० ॥

उन नदियों के दोनों तटों का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—सभी नदियों के दोनों तटों पर पुन्नाग, नागकेसर, पूगी (सुपारी), कङ्केलि, तमाल, (ताड), कदली, ताम्बूली, लवली (हरफररेवड़ी), लवङ्ग और मल्लि आदि के अनेक वृक्ष हैं ॥ ५८० ॥

अथ कस्मिन् कस्मिन् सरस्येता नद्यः उत्पन्ना इति कथयति—

गंगादु रोहिदस्सा पउमे रत्तदु सुवण्णमंतदहे ।
सेसे दो दो जोयणदलमंतरिदूण णाभिगिरिं ॥ ५८१ ॥

गङ्गाद्वे रोहितास्या पद्मे रक्ताद्वे सुवर्णा अन्तह्रदे ।
शेषेषु द्वे द्वे योजनदलमन्तरित्वा नाभिगिरिम् ॥ ५८१ ॥

गंगा । गङ्गा सिन्धुः रोहितास्या च पद्मह्रदे उत्पन्नाः, रक्ता रक्तोदा सुवर्णकूला चान्तह्रदे पुण्डरीकाख्ये उत्पन्नाः । शेषेषु सरस्सु द्वे द्वे नद्यौ उत्पन्ने, तत्र गङ्गा सिन्धू रक्ता रक्तोदेति चतुर्नदीः परित्यज्य शेषा नद्यो नाभिगिरिं योजनार्धमन्तरित्वा गताः तत्र गंगासिन्धुरक्तारक्तोदानां नाभिगिरेरभावादेवार्धाविता: ॥ ५८१ ॥

ये नदियाँ किस किस सरोवर से निकली हैं ? उसे कहते हैं :—

[1] देखिये गाथा ५४१ का विशेषार्थ ।

गाथार्थ :—गंगादि दो और रोहितास्या ये तीन नदियाँ पद्म द्रह से, सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तोदा ये तीन नदियाँ अन्तिम पुण्डरीक ह्रद से, तथा शेष द्रहों से दो दो नदियाँ उत्पन्न हुई हैं। नदियों का बहाव नाभिगिरि को आधा योजन छोड़ कर है ॥ ५८१ ॥

विशेषार्थ :—पद्म ह्रद से गंगा, सिन्धु और रोहितास्या ये तीन, महापद्म ह्रद से रोहित और हरिकान्ता, तिगिञ्छ ह्रद से हरित् और सीतोदा, केसरीह्रद से सीता और नरकान्ता, महापुण्डरीक से नारी और रूप्यकूला तथा अन्तिम पुण्डरीक ह्रद से सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तोदा ये तीन नदियाँ निकली हैं। गङ्गा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन चार नदियों को छोड़ कर शेष नदियाँ नाभिगिरि को आधा योजन छोड़ कर जाती हैं।

भरतैरावत क्षेत्रों में नाभिगिरि का अभाव है, अतः गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन चार नदियों को छोड़ कर शेष नदियाँ नाभिगिरि को आधा योजन दूर से छोड़कर प्रदक्षिणा रूप जाती हैं। यथा—

हैमवत क्षेत्र में विजटावान् और हरिक्षेत्र में पद्मवान् पर्वत हैं, जो नाभिगिरि नाम से प्रसिद्ध हैं, अतः रोहित्, रोहितास्या और हरित् हरिकान्ता ये दो दो महानदियाँ इन दोनों नाभि पर्वतों से आधा योजन इधर रहकर प्रदक्षिणा रूप से जाती हैं। विदेह क्षेत्र में सुमेरु (नाभिगिरि) है ही। रम्यक क्षेत्र में जो गंधवान् और हैरण्यवत क्षेत्र में विजयार्ध नाम के पर्वत हैं, वे भी नाभिगिरि नाम से प्रसिद्ध हैं, अतः सीता सीतोदा सुमेरु से, नारी-नरकान्ता गन्धवान् से और सुवर्णकूला-रूप्यकूला विजयार्ध (नाभिगिरि) से आधा योजन इधर रह कर अर्ध प्रदक्षिणा रूप से जाती हैं।

अथ तत्र गंगाया उत्पत्ति तद्गमनप्रकारं च गाथात्रयेणाह—

वज्जमुहदो जणित्ता गंगा पंचसयमेत्थ पुव्वमुहं ।
गत्ता गंगाकूडं अविपत्त जोयणद्धेण ॥ ५८२ ॥
दक्खिणमुहं वलित्ता जोयणतेवीससहियपंचसयं ।
साहियकोसद्धजुदं गत्ता सा विविहमणिरूवा ॥५८३॥
कोसदुगदीहबहला वसहायारा य जिब्भियारुंदा ।
छज्जोयणं सकोसं तिस्से गंतूण पडिदा सा ॥ ५८४ ॥

वज्रमुखतः जनित्वा गंगा पञ्चशतमत्र पूर्वमुखं ।
गत्वा गंगाकूटं अप्राप्य योजनार्धेन ॥ ५८२ ॥
दक्षिणमुखं वलित्वा योजनत्रयोविंशतिसहितपञ्चशतम् ।
साधिकक्रोशार्धयुतं गत्वा या विविधमणिरूपा ॥ ५८३ ॥
क्रोशद्वयदीर्घबाहुल्या वृषभाकारा च जिह्विकारुन्द्रा ।
षड्योजनं सक्रोशं तस्यां गत्वा पतिता सा ॥ ५८४ ॥

वज्ज । पद्मसरोवरस्यवज्रद्वाराज्निर्गता गङ्गा पञ्चशतयोजनान्यत्र हिमवति पूर्वमुखं गत्वा योजनार्द्धेन गंगाकूटमप्राप्य ॥ ५८२ ॥

दक्खिण। तस्माद्दक्षिणमुखं चलित्वा व्यावृत्य त्रयोविंशतिसहितपञ्चशतयोजनानि साधिक-क्रोशार्धयुतानि गत्वा। अस्य वासना—भरतप्रमाणं यो ५२६ $\frac{६}{१९}$ द्विगुणीकृत्य १०५२ $\frac{१२}{१९}$ तत्र नदीव्यासं यो ६ को १ अपनीय १०४६ अर्धयित्वा ५२३ शेषयोजनं $\frac{१२}{१९}$ चतुर्भिः क्रोशं कृत्वा $\frac{४८}{१९}$ भक्त्वा २ $\frac{१०}{१९}$ आगते लब्धे को २ एकं क्रोशं नदीव्यासाय दद्यात्। अवशिष्टं शेषं $\frac{२९}{१९}$ लब्धैकक्रोशं चार्धयेत्। $\frac{२९}{३८}$। $\frac{१}{२}$। एवं सति पोञ्चसतेवीसेत्याद्युक्तमङ्कं व्यक्तं भवति। या जिह्विका प्रणालिका विविधमणिरूपा ॥५८३॥

कोस। क्रोशद्वयदीर्घबाहल्या वृषभाकारा क्रोशसहितषड्योजनदन्द्रा तस्यां प्रणालिकायां गत्वा सा गंगा नदी पतिता ॥ ५८४ ॥

गंगा नदी की उत्पत्ति और उसके गमन का प्रकार तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ:—गङ्गा नदी वज्रमय मुख से (उत्पन्न) निकलकर पाँच सौ योजन पूर्व की ओर जाती हुई गङ्गाकूट को न पाकर अर्धयोजन पूर्व से दक्षिण की ओर मुड़ कर साधिक अर्ध कोश अधिक पाँच सौ तेईस योजन आगे जाकर नाना प्रकार के मणियों से रचित, दो कोस लम्बी, दो कोस मोटी और सवा छह योजन चौड़ी वृषभाकार जिह्विका (नाली) में जाकर (हिमवान् पर्वत से) नीचे गिरती है॥ ५८२—५८४ ॥

विशेषार्थ :—गङ्गा नदी पद्मद्रह की पूर्व दिशा में स्थित वज्रद्वार से निकलकर इसी पर्वत के ऊपर ५०० योजन पूर्व दिशा की ओर जाकर इसी हिमवान् पर्वत पर स्थित गंगाकूट को न पाकर अर्ध योजन पहिले ही अर्थात् अर्ध योजन गंगाकूट को छोड़कर दक्षिण की ओर मुड़कर दक्षिण दिशा में ही (इसी हिमवान् पर्वत पर) साधिक अर्धकोश से अधिक पाँच सौ तेईस (५२३) योजन आगे जाती है। इसकी वासना कहते हैं:—भरत क्षेत्र का प्रमाण ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन है, इसको दूना करने से (५२६ $\frac{६}{१९}$ × २)=१०५२ $\frac{१२}{१९}$ योजन हिमवान् पर्वतका विस्तार प्राप्त हुआ। इस पर्वत के ठीक बीच में पद्मद्रह है और गंगा भी पर्वतके ठीक मध्यसे जाती है अतएव पर्वतके विस्तारमें से नदीका व्यास (६ $\frac{१}{४}$ यो०) घटा कर आधा करने पर $\left(\frac{१०५२\frac{१२}{१९} - ६\frac{१}{४}}{२}\right)$=५२३ योजन हुए। अवशिष्ट $\frac{१२}{१९}$ योजन के कोश बनाने के लिये ४ से गुणा करने पर ($\frac{१२}{१९}$ × $\frac{४}{१}$)=$\frac{४८}{१९}$ अर्थात् २ $\frac{१०}{१९}$ कोश प्राप्त हुए। इसमें से एक कोश नदी के व्यास में दे देने पर १ $\frac{१०}{१९}$ अर्थात् $\frac{२९}{१९}$ अवशेष रहे इन्हें आधा करने पर ($\frac{२९}{१९ \times २}$)=$\frac{२९}{३८}$ अर्थात् ५२३ $\frac{२९}{३८}$ योजन (गंगा नदी) दक्षिण दिशा में जाती है। जहाँ गंगा नदी मुड़ी है वहाँ हिमवान् पर्वत के व्यास में से नदी का व्यास घटा कर अवशिष्ट का आधा करने पर आधा भाग उत्तर में और आधा दक्षिण में रहा, अतः दक्षिण के उस अर्ध भाग (५२३ $\frac{२९}{३८}$ योजन) को पार करने के बाद ही गंगा को हिमवान् का तट प्राप्त हो गया। हिमवान् के इसी तट पर नाना मणियों के परिणाम रूप जिह्विका

नाम की प्रणालिका (नाली) है, जो दो कोस लम्बी, दो कोस मोटी और ६¼ योजन चौड़ी है। यह वृषभाकार (गोमुखाकार) है। गंगा नदी इसी नाली में जाकर हिमवन् पर्वत से नीचे गिरती है।

अथ प्रणालिकायाः वृषभाकारत्वमन्वर्थयति—

केसरिमुहसुदिजिब्भादिट्ठी भूसीसपहुदिणो सरिसा।
तेणिह पणालिया सा वसहायारेत्ति णिद्दिट्ठा॥ ५८५॥

केशरिमुखश्रुतिजिह्वादृष्टयः भूशीर्षप्रभृतयः गोसदृशाः।
तेनेह प्रणालिका सा वृषभाकारा इति निर्दिष्टा॥ ५८५॥

केसरि। मुखश्रुतिजिह्वादृष्टयः केसरिसदृशाः भ्रूशीर्षप्रभृतयः गोसदृशास्तेन कारणेनेह सा प्रणालिका वृषभाकारेति निर्दिष्टा॥ ५८५॥

प्रणाली के वृषभाकारत्व को सार्थक करते हैं :—

गाथार्थ :—उस प्रणालिका अर्थात् कूट का मुख, कान, जिह्वा और नेत्रों का आकार तो सिंह के सदृश है किन्तु भौंह और मस्तक का आकार गौ के सदृश है; इसी कारण उस नाली को (मुख्य रूप से) वृषभाकार कहा गया है॥ ५८५॥

अथ पतितायास्तस्याः पतनस्वरूपं गाथापञ्चकेनाह—

भरहे पणकदिमचलं मुच्चा कहलोवमा दहव्वासा।
गिरिमूले दहगाहं कुंडं वित्थारसट्ठिजुदं॥ ५८६॥
मज्झे दीओ जलदो जोयणदलमुग्गओ दुघणवासो।
तम्मज्झे वज्जमओ गिरी दसुस्सेहओ तस्स॥ ५८७॥
भूमज्झग्गे वासो चदुदुगि सिरिगेहमुवरि तव्वासो।
चारणं तिदुगेक्कं सहस्समुदओ दु दुसहस्सं॥ ५८८॥
पणसयदलं तदंतो तद्दारं ताल वास दुगुणुदयं।
सव्वत्थ भणू गेयं दोण्णि कवाला य वज्जमया॥ ५८९॥
सिरिगिहसीसट्ठियंबुजकण्णियसिंहासणं जडामउलं।
जिणमभिसेत्तुमणा वा ओदिण्णा मत्थए गंगा॥ ५९०॥

भरते पञ्चकृतिमचलं मुक्त्वा काहलोपमा दशव्यासा।
गिरिमूले दशगाधं कुण्डं विस्तारषष्टियुतम्॥ ५८६॥
मध्ये द्वीपः जलतः योजनदलमुद्गतः द्विघनव्यासः।
तन्मध्ये वज्रमयः गिरिः दशोत्सेधः तस्य॥ ५८७॥

भूमध्याग्रो व्यासः चतुः द्विकं एकं श्रीगेहमुपरि तद्व्यासः ।
चापानां त्रिद्विकैकं सहस्रमुदयस्तु द्विसहस्रम् ॥ ५८८ ॥
पञ्चशतदलं तदन्तरं तद्द्वारं चत्वारिंशत् व्यासं द्विगुणोदयं ।
सर्वत्र धनुः ज्ञेयं द्वौ कपाटौ च वज्रमयौ ॥ ५८९ ॥
श्रीगृहशीर्षस्थिताम्बुजकर्णिकासिंहासनं जटामुकुटं ।
जिनमभिषेक्तुमना इव अवतीर्णा मस्तके गंगा ॥ ५९० ॥

भरहे । भरते पञ्चकृति २५ योजनमचलं मुक्त्वा काहलोपमा दशयोजनव्यासा सती गिरिमूले दशयोजनावगाधषष्टियोजनविस्तारवृत्तं कुण्डमस्ति ॥ ५८६ ॥

मज्झे । तन्मध्ये जलादुपरि योजनार्धमुद्गतः द्विघन ८ व्यासः द्वीपोस्ति । तन्मध्ये वज्रमयो दशयोजनोत्सेधो गिरिरस्ति तस्य ॥ ५८७ ॥

भूम । भूव्यासो मध्यव्यासो अग्रव्यासश्च यथासंख्यं योजनानि चत्वारि द्वि एकं स्युः । तस्य गिरेरुपरि श्रीगृहमस्ति । तद्भूमध्याग्रव्यासश्चापानां त्रिसहस्रं द्विसहस्रमेकसहस्रं उदयस्तु द्विसहस्रं स्यात् ॥ ५८८ ॥

पण । श्रीगृहाभ्यन्तरविस्तारः पञ्चशततद्दलयोर्मिलितप्रमाणं स्यात् । तस्य श्रीगृहस्यद्वारं चत्वारिंशद्व्यासं ४० तद्द्विगुणो ८० दयं स्यात् । सर्वत्र श्रीगृहमानं धनुः प्रमितं ज्ञेयं, तस्य द्वौ कपाटौ वज्रमयौ ॥ ५८९ ॥

सिरि । श्रीगृहशीर्षस्थिताम्बुजकर्णिकासिंहासनं जटामुकुटं जिनमभिषेक्तुमना इव जिनमस्तके गङ्गावतीर्णा ॥ ५९० ॥

अब गिरी हुई नदी और उसके गिरने का स्वरूप पाँच गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—भरत क्षेत्र में पञ्चकृति-(पच्चीस योजन) हिमवान् पर्वत को छोड़ कर काहला (एक प्रकार का बाजा) के आकार को धारण करने वाली तथा दश योजन है विस्तार जिसका ऐसी गंगा हिमवान् पर्वत के मूल में दश योजन गहरे और साठ योजन चौड़े गोल कुण्ड में गिरती है । उस कुण्ड के मध्य में जल से ऊपर अर्ध योजन ऊँचा द्विघन—आठ योजन चौड़ा गोल द्वीप (टापू) है । उस द्वीप के मध्य में वज्रमयी—दश योजन ऊँचा पर्वत है । उस पर्वत का व्यास अर्थात् नीचे, मध्य में एवं ऊपर क्रमशः चार, दो और एक योजन है । उस पर्वत के ऊपर श्री देवी का गृह है । वह गृह [भू, मध्य और अग्र क्रमशः] तीन हजार, दो हजार और एक हजार धनुष व्यास वाला है । तथा उसकी ऊँचाई दो हजार धनुष है । उस श्री देवीके गृहका अभ्यन्तर व्यास पाँच सौ और उसके आधे भाग को मिलाकर अर्थात् (५०० + २५०) = साढ़े सात सौ धनुष प्रमाण है । तथा उस गृह के द्वार का व्यास चालीस धनुष और ऊँचाई अस्सी धनुष है जिसके दोनों किवाड़ वज्रमयी है । इस प्रकार श्रीगृह का प्रमाण सर्वत्र धनुष प्रमित है । श्रीगृह के अग्र भाग पर कमल कर्णिका में सिंहासन पर स्थित

जटा ही है मुकुट जिनका ऐसे जिन बिम्ब पर मानों अभिषेक करने का ही है मन जिसका ऐसी गंगा मस्तक पर गिरती है ॥ ५८६ से ५९० ॥

विशेषार्थ:—भरतक्षेत्रमें हिमवान् पर्वतको २५ योजन छोड़कर काहलाकी उपमाको धारण करती हुई दश योजन व्यास वाली गंगा नदी, गोल कुण्ड में स्थित जिन मस्तक पर गिरती है। हिमवान् पर्वत के मूल में जो १० योजन गहरा ६० योजन चौड़ा गोल कुण्ड है, उसके मध्य में जल से ऊपर अर्ध योजन ऊँचा और ८ योजन चौड़ा गोल टापू (द्वीप) है। उस द्वीप के मध्य में वज्रमयी १० योजन ऊँचा पर्वत है। उस पर्वत का व्यास नीचे चार योजन, मध्य में दो योजन और ऊपर एक योजन प्रमाण है, उस पर्वत के ऊपर श्री देवी का गृह अर्थात् गंगा कूट है, जिसका व्यास नीचे ३००० धनुष, मध्य में २००० धनुष और ऊपर १००० धनुष है। इसकी ऊँचाई का प्रमाण २००० धनुष है, तथा इस गृह (गंगाकूट) का अभ्यन्तर व्यास पाँच सौ और उसके अर्ध भाग को मिलाकर अर्थात् (५०० + २५०)= ७५० धनुष है। इस श्री गृह के द्वार का व्यास ४० धनुष और उदय ८० धनुष है जिसके दोनों किवाड़ वज्रमयी हैं। श्री गृह का प्रमाण सर्वत्र धनुष प्रमित जानना चाहिए। इस श्री गृह अर्थात् गंगाकूट के अग्रभाग पर स्थित कमलकर्णिका में जो सिंहासन है उस पर है अवस्थिति जिनकी तथा जटा ही है मुकुट जिनका ऐसे जिनेन्द्र प्रभु के अभिषेक करने की इच्छा रखने वाली गंगा नदी उनके मस्तक पर गिरती है।

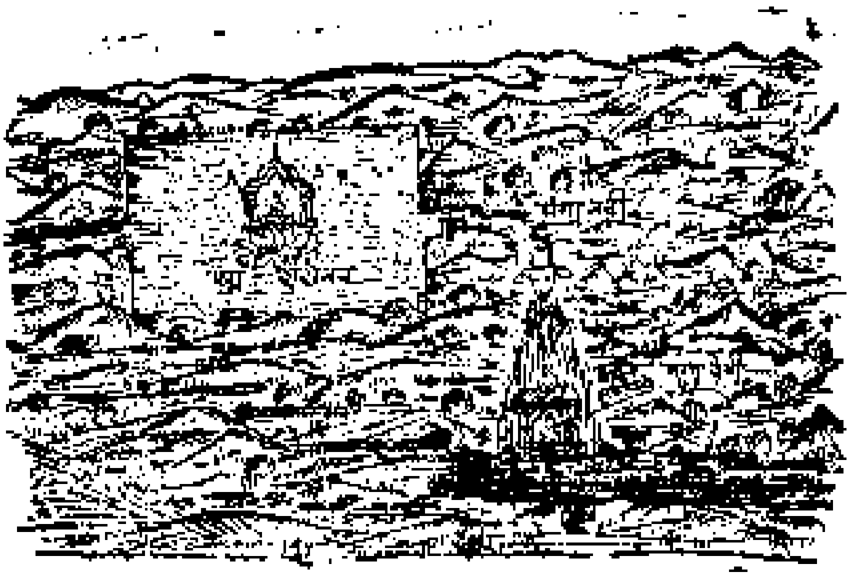

कुण्ड, द्वीप, पर्वत एवं श्री आदि देवियों के गृहों का प्रमाण—

क्रमांक	पर्वतों के नाम	पर्वतों के मूल में स्थित कुण्डों की योजनों में		कुण्डों के मध्य द्वीपों की योजनों में		द्वीपों के मध्य स्थित पर्वतों की योजनों में				पर्वतों के ऊपर स्थित श्री आदि देवियों के गृहों की धनुषों में					गृह द्वारों की धनुषों में	
		गहराई	चौड़ाई	ऊंचाई	चौड़ाई	ऊंचाई	व्यास नीचे	व्यास मध्य	व्यास ऊपर	ऊंचाई	व्यास नीचे	व्यास मध्य	व्यास ऊपर	व्यास अभ्यन्तर	ऊंचाई	व्यास
१	हिम०	१०	६०	½	८	१०	४	२	१	२०००	३०००	२०००	१०००	७५०	८०	४०
२	महा हि०	२०	१२०	१	१६	२०	८	४	२	४०००	६०००	४०००	२०००	१५००	१६०	८०
३	निषध	४०	२४०	२	३२	४०	१६	८	४	८०००	१२०००	८०००	४०००	३०००	३२०	१६०
४	नील	४०	२४०	२	३२	४०	१६	८	४	८०००	१२०००	८०००	४०००	३०००	३२०	१६०
५	रुक्मी	२०	१२०	१	१६	२०	८	४	२	४०००	६०००	४०००	२०००	१५००	१६०	८०
६	शिखरिन्	१०	६०	½	८	१०	४	२	१	२०००	३०००	२०००	१०००	७५०	८०	४०

अथ कुण्डात् निर्गत्य गच्छन्त्या गंगायाः स्वरूपं तत्स्थानस्वरूपं च गाथाषट्केनाह—

कुंडादो दक्खिणदो गत्ता खंडप्पवादणामगुहं ।
अडजोयणवित्थिण्णा विणिग्गया कुदवहिट्ठादो ॥५९१॥

कुण्डात् दक्षिणतः गत्वा खण्डप्रपातनामगुहाम् ।
अष्टयोजनविस्तीर्णा विनिर्गता कुतपाधस्तात् ॥ ५९१ ॥

कुंडादो । कुण्डान्निर्गत्य दक्षिणाभिमुखं गत्वा विजयार्धस्य खण्डप्रपातनामगुहां कुतपाधस्ता-त्प्रविश्याष्टयोजनविस्तीर्णा सती पुनः कुतपाधस्तादेव विनिर्गता ॥ ५९१ ॥

कुण्ड से निकल कर जाती हुई गंगा का स्वरूप एवं उसके स्थान का स्वरूप छह गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—गङ्गा नदी कुण्ड से निकलकर दक्षिण की ओर बहती हुई विजयार्धपर्वत की खण्डप्रपात नाम गुफा की कुतप (देहली) के नीचे से निकल कर आठ योजन चौड़ी होती हुई गुफा के उत्तर द्वार की देहली (कुतप) के नीचे होकर जाती है ॥ ५९१ ॥

दारगुहुच्छयवासा अड बारस पव्वदं व दीहत्तं ।
वज्जकवासकवाडदु वेयड्ढगुहा दुगुभयंते ॥ ५९२ ॥

द्वारगुहोच्छ्रयव्यासौ अष्ट द्वादश पर्वत इव दीर्घत्वं ।
वज्रषट्व्यासकपाटद्वयं विजयार्धगुहा द्विकोभयान्ते ॥ ५९२ ॥

दार । द्वारगुहयोः प्रत्येकमुच्छ्रयव्यासावष्ट ८ द्वादश १२ योजनौ पर्वतविस्तारवद्गुह ५० योर्दीर्घत्वं विजयार्धगुहाद्वयोभयान्ते वज्रमयषड्योजनव्यासकवाटद्वयमस्ति ॥ ५९२ ॥

गाथार्थ :—गुफा और गुफा के द्वार की ऊँचाई आठ आठ योजन तथा दोनों का व्यास (चौड़ाई) बारह बारह योजन है। विजयार्ध पर्वत की चौड़ाई सदृश (५० योजन) ही खण्ड प्रपात गुफा की लम्बाई है। अर्थात् खण्ड प्रपात गुफा ५० योजन लम्बी है, तथा इसी गुफा के दोनों अन्तिम द्वारों के दोनों कपाट छह-छह योजन चौड़े और वज्रमयी हैं ॥ ५९२ ॥

विशेषार्थ :—विजयार्ध पर्वत की खण्ड प्रपात गुफा की ऊँचाई ८ योजन चौड़ाई १२ योजन और लम्बाई विजयार्ध की चौड़ाई सदृश अर्थात् ५० योजन है। इसी प्रकार गुफा द्वार की ऊँचाई ८ योजन और चौड़ाई बारह (१२) योजन प्रमाण है। विजयार्ध की इस गुफा के दोनों अन्तिम द्वारों पर प्रत्येक कपाट ६ योजन चौड़े और वज्रमयी हैं।

एक कपाट की चौड़ाई ६ योजन है, अतः दोनों कपाट १२ योजन चौड़े हुए। गुफा का द्वार भी १२ योजन ही चौड़ा है, इस प्रकार कपाटों की ऊँचाई ८ योजन और चौड़ाई १२ योजन है। जब कपाटों की चौड़ाई १२ योजन है तब उसकी देहली की लम्बाई भी बारह योजन होगी। अतः उसके नीचे से ८ योजन चौड़ी गङ्गा का निकल जाना स्वाभाविक ही है।

उम्मग्गणिमग्गणदी गुहमज्झगकुंडजा दु पुव्ववरे ।
जोयणदुगदीहाओ पुसंति उभयंतदो गंगं ॥ ५९३ ॥

उन्मग्ननिमग्ननद्यौ गुहामध्यगकुण्डजे तु पूर्वापरस्याम् ।
योजनद्वयदैर्घ्ये स्पृशतः उभयान्ततः गंगाम् ॥ ५९३ ॥

उम्मग । उन्मग्ननिमग्ननद्यौ पूर्वापरदिशि गुहामध्यगतकुण्डादुत्पद्योभयान्ततः योजनद्वयदैर्घ्ये सत्यौ गङ्गां स्पृशतः ॥ ५९३ ॥

गाथार्थ :—विजयार्ध पर्वत की गुफा के ठीक मध्य में पूर्व पश्चिम दोनों तटों से निकल कर दो दो योजन चौड़ी होती हुई उन्मग्ना और निमग्ना दोनों नदियां दोनों ओर से गंगा को स्पर्श करती हैं ॥ ५९३ ॥

विशेषार्थ :—विजयार्ध की खण्ड प्रपात गुफा ५० योजन लम्बी है। २५ योजन पर अर्थात् ठीक मध्य भाग में पूर्व पश्चिम दोनों दीवालों के निकट दो कुण्ड बने हुए हैं, इन दोनों कुण्डों से क्रमशः निकलने वाली उन्मग्ना और निमग्ना नाम की दो दो योजन चौड़ी दो नदियाँ दोनों ओर से गंगा को स्पर्श करती हैं। अर्थात् गंगा में मिल जाती हैं।

णियजलपवाहपडिदं दव्वं गुरुगंपि णेदि उवरि तडं ।
जम्हा तम्हा भण्णदि उम्मग्गा वाहिणी एसा ।। ५९४ ।।
णियजलभरउवरि गदं दव्वं लहुगंपि णेदि हिट्ठम्मि ।
जेण्णं तेण्णं भण्णदि एसा सरिया णिमग्गंति ।। ५९५ ।।
तत्तो दक्खिणभरहस्सद्धं गंतूण पुव्वदिसवदणा ।
मागहदारंतरदो लवणसमुद्दं पविट्ठा सा ।। ५९६ ।।

निजजलप्रवाहपतितं द्रव्यं गुरुकमपि नयति उपरि तटम् ।
यस्मात् तस्मात् भण्यते उन्मग्ना वाहिनो एषा ।। ५९४ ।।
निजजलभरोपरि गतं द्रव्यं लघुकमपि नयति अधस्तनं ।
येन तेन भण्यते एषा सरित् निमग्ना इति ।। ५९५ ।।
ततो दक्षिणभरतस्यार्धं गत्वा पूर्वदिशावदना ।
मागधद्वारान्तरतः लवणसमुद्रं प्रविष्टा सा ।। ५९६ ।।

णिय । निजजलप्रवाहपतितं गुरुकमपि द्रव्यं यस्मादुपरि तटं नयति तस्मादेषा उन्मग्नावाहिनीति भण्यते ।। ५९४ ।।

णिय । निजजलभारोपरिगतं लघुकमपि द्रव्यमधस्तान्नयति येन तेनैषा सरिन्निमग्नेति भण्यते ।। ५९५ ।।

तत्तो । ततो गुहाया निर्गत्य दक्षिणभरतस्यार्धं ११९ भा $\frac{३}{३८}$ गत्वा, एतावत्कथं ? भरतप्रमाणे ५२६$\frac{६}{१९}$ विजयार्धव्यासं ५० त्यक्त्वा ४७६$\frac{६}{१९}$ अर्धिते २३८$\frac{३}{१९}$ एकभरतस्य प्रमाणं । एकस्मिन् पुनरर्धिते ११९$\frac{३}{३८}$ दक्षिणभरतार्धं स्यात् । पूर्वदिग्वदना मागधद्वारान्तरतः सा गंगा लवणसमुद्रं प्रविष्टा ।। ५९६ ।।

गाथार्थ :—क्योंकि यह नदी अपने जलप्रवाह में गिरे हुए भारी से भारी द्रव्य को भी ऊपर तट पर ले आती है, इसलिए यह नदी उन्मग्ना कही जाती है ।। ५९४ ।।

गाथार्थ :—क्योंकि यह अपने जल प्रवाह के ऊपर आई हुई हलकी से हलकी वस्तु को भी नीचे ले जाती है, इसलिए यह नदी 'निमग्ना' कही जाती है ।। ५९५ ।।

गाथार्थ :—[विजयार्ध की गुफा से निकल कर] गंगा नदी दक्षिण भरत के अर्ध भाग पर्यन्त सीधी आकर पूर्व दिशा के सम्मुख मुड़ती हुई अन्ततः मागध द्वार से लवण समुद्र में प्रवेश करती है ॥ ५९६ ॥

विशेषार्थ:—खण्ड प्रपात गुफा से निकल कर गंगा नदी दक्षिण भरत क्षेत्र के अर्ध भाग अर्थात् ११९$\frac{३}{१९}$ योजन पर्यन्त सीधी आती है। इतने क्षेत्र प्रमाण कैसे आती है ? भरतक्षेत्र का प्रमाण ५२६$\frac{६}{१९}$ योजन प्रमाण है, इसमें से ५० योजन विजयार्ध का व्यास घटा देने पर (५२६$\frac{६}{१९}$—५०)= ४७६$\frac{६}{१९}$ योजन शेष रहे। इसे आधा करने पर (४७६$\frac{६}{१९}$÷२)=२३८$\frac{३}{१९}$ योजन दक्षिण भरत क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त हुआ, गंगा नदी गुफा से निकल कर दक्षिण भरत के अर्धभाग पर्यंत आई है, अतः दक्षिण भरत के प्रमाण को आधा करने पर (२३८$\frac{३}{१९}$÷२)=११९$\frac{३}{१९}$ योजन प्राप्त हुआ। अर्थात् दक्षिण भरत में ११९$\frac{३}{१९}$ योजन आकर गंगा नदी पूर्व में मुड़ कर ढाई म्लेच्छ खण्डों में से १४००० प्रमाण परिवार नदियों को लेकर मागध द्वार के भीतर जाकर लवणसमुद्र में प्रवेश करती है। आर्य-खण्डमें प्रलय पड़ता है इसलिए इसमें कोई अकृत्रिम रचना नहीं है।

इदानीं सिन्धुनदीस्वरूपं निरूपयति—

गंगसमा सिंधुणदी अवरमुहा सिंधुकूडविणिविषा ।
तिमिसगुहादवरंबुहिमिया पभासक्खदारादो ॥ ५९७ ॥

गंगासमा सिन्धुनदी अपरमुखा सिन्धुकूटविनिवृत्ता ।
तिमिस्रागुहादपराम्बुधिमिता प्रभासाख्यद्वारतः ॥ ५९७ ॥

गंग । गंगाया या वर्णनोक्ता तत्समा सिन्धुनदी । अयं विशेषः । इयं त्वपरदिगभिमुखा सिन्धु-कूटाद्विनिवृत्य तमिस्रगुहां प्रविश्य ततोऽपिनिर्गत्य प्रभासाख्यद्वारतोऽपराम्बुधिमिता[1] । शेषं सर्वं गंगावद्वक्तव्यम् ॥ ५९७ ॥

अब सिन्धु नदी के स्वरूप का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—गंगा के सदृश ही सिन्धु नदी का वर्णन है। विशेष इतना है कि सिन्धु नदी पद्मद्रह के पश्चिम द्वार से निकलकर सिन्धुकूट को नहीं प्राप्त होती हुई, विजयार्ध की तिमिस्र गुफा में प्रवेश कर तथा उससे निकल कर प्रभास नाम द्वार से पश्चिम समुद्र को प्राप्त होती है ॥ ५९७ ॥

विशेषार्थ : —सिन्धु नदी का सम्पूर्ण वर्णन गंगा नदी के वर्णन के सदृश ही है विशेष इतना है कि सिन्धु नदी पद्मद्रह के पश्चिम द्वार से निकलकर ५०० योजन प्रमाण आगे जाकर सिन्धुकूट को प्राप्त न करती हुई अर्थात् उससे आधा योजन पहिले ही दक्षिण की ओर मुड़कर गंगा के सदृश ही आगे

---

१ मिलिता (ब०) ।

बढ़ती हुई जिह्विका (नाली) से सिन्धुकूट पर गिरती है। वहाँ से विजयार्ध की तिमिस्र गुफा के उत्तर द्वार से प्रवेश करती हुई दक्षिण द्वार से निकलकर दक्षिण भरत के अर्धभाग को प्राप्त होती हुई शेष ढाई म्लेच्छ खण्डों की १४००० परिवार नदियों के साथ जम्बूद्वीप के कोट के प्रभास द्वार से पश्चिम समुद्र में प्रवेश करती है।

अथ शेषनदीनां स्वरूपमाह—

सेसा रूप्पंता दहवित्थारूणचलद्दलमुवरिं ।
गंतूण दक्खिणुत्तरमणुपुट्ठा पुव्ववरजलहिं ॥ ५९८ ॥

शेषा रूप्यन्ता ह्रदविस्तारोनाचलदलमुपरि ।
गत्वा दक्षिणोत्तरमनुस्पृष्टाः पूर्वापरजलधिम् ॥ ५९८ ॥

सेसा। शेषा रोहिदाद्या रूप्यकूलान्ता नद्यः स्वकीयस्वकीयह्रदविस्तारं ५०० । १००० । २००० । २००० । १००० । ५०० द्वि २ अष्ट ८ द्वात्रिंशत् ३२ द्वात्रिंशत् ३२ अष्ट ८ द्विकाभिः २ हिमवदादि-शलाकाभिर्भरतक्षेत्रप्रमाणे ५२६ $\frac{६}{१९}$ गुणिते सति हिमवदादिपर्वतानां विस्तारः स्यात्। हिम १०५२ $\frac{१२}{१९}$ महा ४२१० $\frac{१०}{१९}$ निष १६८४२ $\frac{२}{१९}$ नील १६८४२ $\frac{२}{१९}$ रुक्मि ४२१० $\frac{१०}{१९}$ शिख १०५२ $\frac{१२}{१९}$ एतस्मिन्नचलवृन्दे न्यूनयित्वा ५५२ $\frac{१२}{१९}$ । ३२१० $\frac{१०}{१९}$ । १४८४२ $\frac{२}{१९}$ । १४८४२ $\frac{२}{१९}$ । ३२१० $\frac{१०}{१९}$ । ५५२ $\frac{१२}{१९}$ अर्धीकृतप्रमाणं हिम २७६ $\frac{६}{१९}$ महा १६०५ $\frac{५}{१९}$ निष ७४२१ $\frac{१}{१९}$ नील ७४२१ $\frac{१}{१९}$ रुक्मि १६०५ $\frac{५}{१९}$ शिखरि २७६ $\frac{६}{१९}$ तत्त-त्पर्वतस्योपरि दक्षिणोत्तराभिमुखं गत्वा अनु पश्चात् पूर्वापरजलधिं स्पृष्टाः ॥ ५९८ ॥

अब अवशेष नदियों का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—अवशेष रही रोहित से रूप्यकूला पर्यन्त सभी नदियाँ अपने अपने द्रहों के विस्तार से रहित जो पर्वत का विस्तार है उसके अर्धभाग प्रमाण पर्वत के ऊपर जाकर दक्षिणोत्तर के नाभिगिरि को प्राप्त न होती हुई पूर्व और पश्चिम समुद्र में प्रवेश करती हैं ॥ ५९८ ॥

विशेषार्थ :—अवशेष रही रोहित से रूप्यकूला पर्यन्त नदियों के अपने अपने द्रहों का विस्तार क्रमशः ५००, १०००, २०००, २०००, १००० और ५०० योजन है तथा हिमवन् आदि छह पर्वतों की शलाकाएं भी क्रम से २, ८, ३२, ३२, ८ और २ हैं, इन शलाकाओं से भरतक्षेत्र के विस्तार प्रमाण को गुणित करने पर क्रमशः हिमवान् आदि पर्वतों के विस्तार का प्रमाण प्राप्त होता है। इन पर्वतों के विस्तार में से क्रमशः द्रहों का विस्तार घटा कर अवशेष प्रमाण को आधा करने पर पर्वत के ऊपर नदियों के बहाव का क्षेत्र प्राप्त होता है। यथा—रोहितास्या नदी पद्मद्रह के उत्तर द्वार से निकलकर (५२६ $\frac{६}{१९}$ × २ = १०५२ $\frac{१२}{१९}$ − ५०० = ५५२ $\frac{१२}{१९}$ ÷ २) = २७६ $\frac{६}{१९}$ योजन हिमवान् पर्वत के ऊपर (उसके तट पर्यन्त) उत्तर की ओर जाकर हैमवत क्षेत्र के कुण्ड में गिरती है। वहाँ से निकलकर हैमवत क्षेत्र के मध्य स्थित श्रद्धावान् नाभिगिरि को आधा योजन छोड़ पश्चिमाभि मुख होती है।

पश्चात् उत्तराभिमुख होती हुई २८००० परिवार नदियों को साथ लेकर पुनः पश्चिमाभि मुख होती हुई जम्बू द्वीप के कोट के द्वार से निकलकर लवण समुद्र में प्रवेश करती है।

रोहित नदी महाहिमवान् पर्वत के महापद्म द्रह के दक्षिण द्वार से निकल कर सीधी महा-हिमवन् के तट पर्यन्त (५२६ ६/१९ × ८ = ४२१० १०/१९ — १००० = ३२१० १०/१९ ÷ २) = १६०५ ५/१९ योजन आगे जाकर हैमवत क्षेत्र स्थित कुण्ड में गिरती है। वहाँ से निकलकर हैमवत क्षेत्र के मध्य में स्थित श्रद्धावान नाभिगिरि को आधा योजन छोड़ पूर्वाभिमुख होती है। पश्चात् दक्षिणाभि मुख होती हुई २८००० परिनदियों से संयुक्त हो पुनः पूर्वाभिमुख होती हुई जम्बूद्वीप के बिल द्वार से लवण समुद्र में प्रवेश करती है।

हरिकान्ता नदी महापद्म द्रह के उत्तर द्वार से निकल कर सीधी महाहिमवन् के तट पर्यन्त पूर्वोक्त प्रमाण १६०५ ५/१९ योजन आगे जाकर हरिक्षेत्र स्थित कुण्ड में गिरती है। वहाँ से निकल कर हरिक्षेत्र के मध्य स्थित विजटा (विजय) वान् नाभिगिरि को आधा योजन छोड़ प्रदक्षिणा रूप पश्चिमाभिमुख होती है। पश्चात् उत्तराभिमुख होती हुई ५६००० परिवार नदियों से संयुक्त हो, पुनः पश्चिमाभिमुख होती हुई जम्बूद्वीप के बिल में प्रवेश कर लवण समुद्र में प्रवेश करती है।

हरित् नदी निषधपर्वत के तिगिन्छ द्रह के दक्षिण द्वार से निकल कर निषध के तट पर्यंत (५२६ ६/१९ × ३२ = १६८४२ २/१९ — २००० = १४८४२ २/१९ ÷ २) = ७४२१ १/१९ योजन आगे जाकर हरिक्षेत्र के हरित् कुण्ड में गिरती है। वहाँ से निकल कर हरिक्षेत्र में स्थित विजयवान् नाभिगिरि के प्रदक्षिण रूप से पूर्व की ओर जाती है। पश्चात् दक्षिणाभिमुख होती हुई ५६००० परिवार नदियों से युक्त पुनः पश्चिम की ओर जाकर जम्बूद्वीप की जगती के बिल में प्रवेश करती हुई, लवण समुद्र में प्रवेश करती है।

सीतोदा नदी तिगिन्छ ह्रद के उत्तर द्वार से निकलकर निषध के तट पर्यन्त पूर्वोक्त प्रमाण ७४२१ १/१९ योजन आगे जाकर और विदेहक्षेत्र स्थित प्रति सीतोद नामक कुण्ड में गिर कर उसके उत्तर तोरण द्वार से निकलती हुई उत्तर मार्ग से मेरु पर्यन्त जाकर उसे आधा योजन छोड़ती हुई पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। पश्चात् उत्तराभिमुख होती हुई भद्रशाल वन में प्रवेश करती है। पुनः पश्चिमाभिमुख होती हुई देवकुरु क्षेत्र में उत्पन्न ८४००० + १६८००० (६ विभङ्गा की सहायक) तथा अपर विदेह क्षेत्र सम्बन्धी ४४८०३८ अर्थात् कुल (८४००० + १६८००० + ४४८०३८) ७०००३८ परिवार नदियों से संयुक्त होती हुई जम्बूद्वीप की जगती के बिल द्वार से जाकर लवण समुद्र में प्रवेश करती है।

सीता नदी नील पर्वत के केसरी ह्रद के दक्षिण द्वार से निकलकर नील पर्वत के तट पर्यन्त पूर्वोक्त प्रमाण ७४२१ १/१९ योजन आगे जाकर विदेह क्षेत्र स्थित सीता कुण्ड में गिरती है। वहाँ से निकल कर दक्षिणाभिमुख होती हुई मेरु पर्वत तक आती है, तथा मेरु पर्वत को आधा योजन दूर

छोड़कर पूर्वाभिमुख होती है। पश्चात् दक्षिणाभिमुख होती हुई माल्यवन्त पर्वत की दक्षिणमुख वाली गुफा में प्रवेश करती है। पश्चात् उस गुफा से निकल कर पूर्व विदेह के ठीक बीच में से पूर्व की ओर जाकर उत्तर कुरु की ८४००० + १६८००० (६ विभङ्गा की) + ४४८०३८ (पूर्वविदेह की) = ७०००३८ नदियों को अपने परिवार सदृश ग्रहण करती हुई जम्बूद्वीप की जगती के बिल द्वार में से लवण समुद्र में प्रवेश करती है।

नरकान्ता नदी नील पर्वत पर स्थित केसरी द्रह के उत्तर द्वार से निकलकर नील पर्वत के तट पर्यन्त पूर्वोक्त प्रमाण ७४२१ $\frac{१}{१९}$ योजन आगे जाकर रम्यक क्षेत्र स्थित नरकान्त कुण्ड के मध्य गिरती हुई उत्तर की ओर से निकलती है। पश्चात् पद्मवान् नाभिपर्वत को प्रदक्षिण रूप करके रम्यक क्षेत्र के मध्य से जाती हुई, पश्चिमाभिमुख होकर ५६००० परिवार नदियों के साथ लवण समुद्र में प्रवेश करती है।

नारी नदी रुक्मी पर्वत पर स्थित पुण्डरीक द्रह के दक्षिण द्वार से निकल कर रुक्मी पर्वत के तट पर्यन्त १६०५ $\frac{५}{१९}$ योजन आगे जाकर नारी कुण्ड में गिरती है, पश्चात् कुण्ड के दक्षिण तोरण द्वार से निकलकर दक्षिण मुख होती हुई पद्मवान् नामक विजयार्ध पर्वत तक आती है, तथा उसे आधा योजन दूर छोड़कर रम्यक भोगभूमि के बहुमध्य भाग में से पूर्व की ओर जाती हुई ५६००० परिवार नदियों के साथ जम्बूद्वीप के बिल द्वार में से लवण समुद्र में प्रवेश करती है।

रूप्यकूला नदी रुक्मी पर्वत के पुण्डरीक द्रह के उत्तरद्वार से निकल कर उत्तर की ओर गमन करती हुई रुक्मी पर्वत के तट पर्यन्त १६०५ $\frac{५}{१९}$ योजन आगे जाकर हैरण्यवत क्षेत्र में रूप्यकूल नामक कुण्ड में पड़ती है, तत्पश्चात् कुण्ड के उत्तर द्वार से निकल कर उत्तर की ओर ही गमन करती हुई गन्धवान् (विजयार्ध) नाभिगिरि को अर्धयोजन छोड़ती हुई प्रदक्षिणा रूप से पश्चिम की ओर जाती है। तथा २८००० हजार परिवार नदियों से संयुक्त होकर द्वीप की जगती के बिल में से जाती हुई लवण समुद्र में प्रवेश करती है।

सुवर्णकूला नदी शिखरी शैल पर स्थित महा पुण्डरीक द्रह के दक्षिण द्वार से निकल कर शिखरी पर्वत के तट पर्यन्त २७६ $\frac{६}{१९}$ योजन आगे जाकर सुवर्णकूल कुण्डमें गिरती है। तत्पश्चात् कुण्ड के दक्षिण द्वार से निकल कर दक्षिणाभिमुख हो गन्धवान् नाभिगिरि की प्रदक्षिणा करती हुई, उसके आधा योजन पूर्व से ही हैरण्यवत क्षेत्र के अभ्यन्तर भाग में से पूर्वदिशा की ओर जाकर २८००० परिवार नदियों सहित जम्बूद्वीप सम्बन्धी जगती के बिल में से लवण समुद्र में प्रवेश करती है।

रक्ता नदी शिखरी शैल के अग्रभाग में स्थित महा पुण्डरीक द्रह के पूर्व द्वार से निकल कर शिखरी पर्वत पर पूर्वाभिमुख ५०० योजन जाकर रक्ता कूट को आधा योजन दूर से छोड़ती हुई दक्षिण की ओर मुड़ जाती है। दक्षिण दिशा में भी उसी शिखरी पर्वत पर साधिक अर्ध कोस अधिक ५०० योजन आगे जाकर रक्ता कुण्ड में गिरती है। तत्पश्चात् कुण्ड के दक्षिण तोरण द्वार से निकलकर

विजयार्ध की गुफा के भीतर से होती हुई दक्षिण ऐरावत क्षेत्र के अर्ध प्रमाण भाग तक दक्षिणाभिमुख ही आती है। पश्चात् पूर्व की ओर मुड़कर १४००० परिवार नदियों के साथ जम्बूद्वीप के कोट स्थित द्वार से लवण समुद्र में प्रवेश करती है।

रक्तोदा नदी उसी शिखरी पर्वत पर स्थित महा पुण्डरीक द्रह के पश्चिम तोरण द्वार से निकल कर सिन्धु नदी के सदृश पर्वत पर ही पश्चिमाभिमुख जाती हुई रक्तोदाकूट को अर्धयोजन दूर से छोड़कर उत्तर की ओर मुड़ जाती है, तथा उसी दिशा में बहती हुई रक्तोदा कुण्ड में गिरती है। तत्पश्चात् कुण्ड के उत्तर द्वार से निकलकर गुफा के भीतर से होती हुई उत्तर ऐरावत क्षेत्र के अर्ध भाग तक उत्तराभिमुख ही आती है। पश्चात् पश्चिम की ओर मुड़कर १४००० परिवार नदियों के साथ जम्बूद्वीप की जगती के बिल से लवण समुद्र में प्रवेश करती है।

अथ रक्तारक्तोदादीनां प्रणालिकादिप्रमाणमाह—

गंगादुगं व रत्तारत्तोदा जिब्भियादिया सव्वे।
सेसाणं पि य णेया तेवि विदेहोत्ति दुगुणकमा ॥५९९॥

गंगाद्विकं व रक्तारक्तोदा जिह्विकादिका सर्वे।
शेषाणामपि च ज्ञेयाः तेपि विदेहान्तं द्विगुणक्रमाः ॥ ५९९ ॥

गंगा। गंगाद्विकमिव रक्तारक्तोदयोर्जिह्विकादिप्रमाणविशेषाः सर्वशेषनदीनामपि चैते प्रणालिकादयः सर्वेऽपि विदेहपर्यन्तं द्विगुणक्रमा ज्ञेयाः ॥ ५९९ ॥

रक्ता रक्तोदा आदि नदियों की प्रणालिका आदि का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—गंगाद्विक अर्थात् गंगा सिन्धु के सदृश रक्ता रक्तोदा की जिह्विका आदि का प्रमाण है, तथा अवशेष समस्त नदियों की प्रणालिकादि का प्रमाण विदेह पर्यन्त दूना दूना जानना चाहिए ॥ ५९९ ॥

विशेषार्थ :—गंगा और सिन्धु की जिह्विका आदि का जो प्रमाण है वही प्रमाण रक्ता रक्तोदा नदियों का है। मात्र नाम (संज्ञा) परिवर्तन है। जैसे :—पद्मद्रह के स्थान पर महा पुण्डरीक द्रह। हिमवन् नग के स्थान पर शिखरी नग इत्यादि। शेष सभी नदियों की जिह्विका आदि का सभी प्रमाण विदेह पर्यन्त दूना दूना ही जानना चाहिए।

अथ तासां नदीनां विस्तारमाह—

गंगदु रत्तदु वासा सपादछण्णिग्गमे विदेहोत्ति।
दुगुणा दसगुणमंते गाढो वित्थार पण्णंसो ॥ ६०० ॥

गंगाद्वयोः रक्ताद्वयोः व्यासाः सपादषट् निर्गमे विदेहान्तम्।
द्विगुणा दशगुणा अन्ते गाधः विस्तारः पञ्चाशदंशः ॥ ६०० ॥

गंगदु । गंगादिकरक्तादिकयोर्द्वनिर्गमव्यासाः सपादषड्योजनानि ६¼ अन्यासां नदीनां निर्गमव्यासाः विदेहपर्यन्तं द्विगुणक्रमाः स्युः । सर्वासां नदीनामन्ते समुद्रप्रवेशे व्यासा दशगुणाः सर्वासां गाधस्तत्तद्विस्तारपञ्चाशदंशः स्यात् ॥ ६०० ॥

उन नदियों का विस्तार कहते हैं :—

गाथार्थ :—गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इनके निर्गम स्थान का व्यास ६¼ योजन है । विदेह पर्यन्त यही प्रमाण दूना दूना होता गया है । सर्व ही नदियों का अन्तिम अर्थात् समुद्र में प्रवेश का व्यास अपने अपने निर्गम व्यास से दश गुणा है, तथा सभी की गहराई का प्रमाण अपने अपने विस्तार का पचासवाँ भाग है ॥ ६०० ॥

विशेषार्थ :—गंगा, सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा नदियों का व्यास द्रहों से निकलते समय ६¼ योजन होता है । अर्थात् निकलते समय इनकी चौड़ाई ६¼ योजन होती है । विदेह पर्यन्त दो दो नदियों का यही व्यास दूना दूना होता गया है । समुद्र में प्रवेश करते समय सभी नदियों के व्यास का प्रमाण अपने अपने निर्गम व्यास प्रमाण से १० गुणा होता है । जैसे—गंगा आदि उपर्युक्त चारों नदियों की चौड़ाई समुद्र में गिरते समय (६¼ × १०)=६२½ योजन है । समस्त नदियों की गहराई का प्रमाण अपने अपने विस्तारका पचासवाँ भाग है । जैसे गंगा की गहराई (२५ योजन ÷ ५०)=½ योजन है । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

अथ तासां नदीनां तोरणस्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

णदिणिग्गमे पवेसे कुंडे अण्णत्थ चावि तोरणयं ।
जिणबिंबजुदं उवरिं तु दिक्कण्णावाससंजुत्तं ॥ ६०१ ॥

नदीनिर्गमे प्रवेशे कुण्डे अन्यत्र चापि तोरणकम् ।
जिनबिम्बयुतं उपरि तु दिक्कन्यावाससंयुक्तम् ॥ ६०१ ॥

णदि । नदीनिर्गमे प्रवेशे कुण्डे अन्यत्रापि च उपरि जिनबिम्बयुतं दिक्कन्यावाससंयुक्तम् तोरणमस्ति ॥ ६०१ ॥

उन नदियों के तोरण का स्वरूप दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—नदी, समुद्र एवं कुण्ड के निर्गम स्थानों पर, प्रवेश स्थानों पर एवं अन्यत्र भी जिन बिम्ब हैं ऊपर जिनके ऐसे दिक्कन्याओं के आवासों से संयुक्त तोरण द्वार हैं ॥ ६०१ ॥

विशेषार्थ :—नदी के निर्गम स्थान अर्थात् द्रहों और कुण्डों के द्वार पर, तथा जम्बूद्वीप के कोट के जिन द्वारों से होकर नदी समुद्र में जाती है उन द्वारों पर तथा अन्यत्र भी गुफा आदि के द्वारों पर जिन बिम्ब हैं ऊपर जिनके ऐसे दिक्कुमारियों के आवासों से युक्त तोरणद्वार हैं ।

तत्तोरणवित्थारो सगसगणदिवाससरिसगो उदओ ।
वासादु दिवड्ढगुणो सव्वत्थ दलं हवे गाढो ॥ ६०२ ॥
तत्तोरणविस्तारः स्वकस्वकनदीव्याससदृशकः उदयः ।
व्यासात् द्व्यर्धगुण्यः सर्वत्र दलं भवेत् गाधः ॥ ६०२ ॥

तत्तोरण । तत्तोरणानां विस्तारः स्वकीयनदीव्यास ६¼ सदृशः, उदयस्तु व्यासात् द्वितीयार्धं $\frac{३}{२}$ गुण्यः ९$\frac{३}{८}$ । सर्वत्र तोरणानां गाधः अर्धयोजनप्रमितं भवेत् ॥ ६०२ ॥

गाथार्थ :— उन तोरणों का विस्तार अपने अपने (निर्गम) नदी व्यास के सदृश है तथा ऊँचाई व्यास की डेढ़गुणी है। तोरणद्वारों की गहराई अर्थात् नींव सब जगह मात्र अर्ध योजन प्रमाण है ॥ ६०२ ॥

विशेषार्थ :— अपने अपने नदी निर्गम व्यास सदृश तोरणों की चौड़ाई है। चौड़ाई से डेढ़ गुणी ऊँचाई है। जैसे—गंगा नदी का निर्गम व्यास ६¼ योजन है, अतः पद्मद्रह के तोरण द्वार की चौड़ाई भी ६¼ योजन है, और ऊँचाई ($\frac{२५}{४}$ × $\frac{३}{२}$) = $\frac{७५}{८}$ अर्थात् ९$\frac{३}{८}$ योजन है। तोरण द्वारों की नींव का प्रमाण सर्वत्र ½ योजन है।

नदी के निर्गम, प्रवेश, प्रणालिका एवं तोरण द्वारों का योजनों में प्रमाण :—

क्रमांक	नदियों के नाम	प्रणालिका की			नदियों का		तोरण—द्वारों—की		
		मोटाई	लम्बाई	चौड़ाई	निर्गम व्यास	प्रवेश व्यास	गहराई (नींव)	ऊँचाई	चौड़ाई
१	गंगा-सिन्धु	½	½	६¼	६¼	६२½	½	$\frac{७५}{८}$=९$\frac{३}{८}$	६¼
२	रोहित-रोहितास्या	१	१	१२½	१२½	१२५	१	$\frac{७५}{४}$=१८¾	१२½
३	हरित्-हरिकान्ता	२	२	२५	२५	२५०	२	$\frac{७५}{२}$=३७½	२५
४	सीता-सीतोदा	४	४	५०	५०	५००	४	७५ योजन	५०
५	नारी-नरकान्ता	२	२	२५	२५	२५०	२	$\frac{७५}{२}$=३७½	२५
६	सुवर्ण०-रूप्यकूला	१	१	१२½	१२½	१२५	१	$\frac{७५}{४}$=१८¾	१२½
७	रक्ता-रक्तोदा	½	½	६¼	६¼	६२½	½	$\frac{७५}{८}$=९$\frac{३}{८}$	६¼

अथ पूर्वोक्तवर्षवर्षधरपर्वतानां विस्तारानयने करणसूत्रमाह—

विजयकुलद्दी दुगुणा उभयंतादो विदेहवस्सोत्ति ।
गुणपिंडदीवसगगुणगारो हु पमाणफलइच्छा ॥ ६०३ ॥

विजयकुलाद्रयः द्विगुणाः उभयांततः विदेहवर्षान्तं ।
गुणपिण्डद्वीपस्वकगुणकारो हि प्रमाणफलेच्छाः ॥ ६०३ ॥

विजय । विजया देशा इत्यर्थः कुलाद्रयश्च उभयांततः विदेहपर्यन्तं द्विगुणद्विगुणा भवन्ति, गुणकारपिण्ड १९० द्वीप १००००० स्वकीयस्वकीयगुणकाराः भर० १ हिम० २ हैम० ४ यथासंख्यं प्रमाणफलेच्छाः खलु । अनेन त्रैराशिकेन तत्र क्षेत्रपर्वतानां विस्तारः आनेतव्यः ॥ ६०३ ॥

अथ पूर्वोक्त वर्ष (क्षेत्र) एवं वर्षधरों (पर्वतों) का व्यास लाने के लिए करणसूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—विजय-क्षेत्र और कुलाचल ये दोनों दक्षिण दिशा से विदेह पर्यन्त और उत्तर दिशा से भी विदेह पर्यन्त दूने दूने विस्तार वाले हैं। इनके विस्तार का प्रमाण प्राप्त करने के लिए यहाँ गुणकारपिण्ड, द्वीप और अपनी अपनी गुणकार शलाकाएँ ही क्रमशः प्रमाण, फल और इच्छा राशि स्वरूप हैं ॥ ६०३ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप के भीतर दक्षिण की ओर भरतक्षेत्र है, और उत्तर की ओर ऐरावत क्षेत्र है। भरत क्षेत्र से कुलाद्रि का विस्तार दूना, कुलाचल से क्षेत्र का, फिर क्षेत्र से कुलाचल का इस प्रकार विदेह पर्यन्त दूना दूना है। इसी प्रकार ऐरावत क्षेत्र से विदेह पर्यन्त क्षेत्र से कुलाचल और कुलाचल से क्षेत्र का विस्तार दूना दूना है। इनके विस्तार का प्रमाण त्रैराशिक विधि से प्राप्त करने के लिए यहाँ गुणकार पिण्ड प्रमाण राशि है, द्वीप का १००००० योजन विस्तार फल राशि है और अपनी अपनी गुणकार शलाकाएँ इच्छा राशि हैं।

गुणकार पिण्ड :—जम्बूद्वीप का विस्तार १००००० योजन का है, इसके निम्न प्रकार १९० विभाग हुए हैं—१ भरत + २ हिमवान् + ४ हैमवत + ८ महाहिम० + १६ हरिवर्ष + ३२ निषध + ६४ विदेह + ३२ नील + १६ रम्यक + ८ रुक्मी + ४ हैरण्यवत + २ शिखरी और + १ ऐरावत = १९० यही गुणकार पिण्ड है। उपर्युक्त प्रमाण, फल और इच्छा राशि का त्रैराशिक करने पर विवक्षित क्षेत्र या कुलाचल के विस्तार का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा :—जबकि १९० गुणकार राशि का विस्तार १००००० योजन है तब (विवक्षित) ८ गुणकार शलाका का कितना विस्तार होगा ? इस प्रकार ८ शलाका है जिसकी उस महाहिमवान् पर्वत का विस्तार ($\frac{१००००० \times ८}{१९०}$) = $\frac{८००००}{१९}$ अर्थात् ४२१० $\frac{१०}{१९}$ योजन प्रमाण हुआ। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिए।

एवमुक्तत्रैराशिकानीतभरतक्षेत्रे व्यासमुच्चारयति—

भरहस्स य विक्खंभो जंबूदीवस्स णउदिसदभागो ।
पंचसया छव्वीसा छच्च कला ऊणवीसस्स ॥ ६०४ ॥

भरतस्य च विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः ।
पञ्चशतानि षड्विंशानि षट् च कला एकोनविंशतेः ॥६०४॥

भरह । भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य १ ल० नवतिशतभागः १९० सः क इतिचेत्, पञ्चशतयोजनानि षड्विंशत्यधिकानि एकोनविंशतेः षट्कलाभ्यधिकानि भरतविष्कम्भः स्यात् ५२६ $\frac{६}{१९}$ ॥ ६०४ ॥

इस प्रकार उक्त त्रैराशिक द्वारा लाए हुए भरतक्षेत्र के व्यास का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—भरत क्षेत्र का विष्कम्भ ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन है, जो जम्बूद्वीप के विस्तार का एक सौ नव्वेवाँ भाग मात्र है ॥ ६०४ ॥

विशेषार्थ :—भरतक्षेत्र का विष्कम्भ जम्बूद्वीप के १००००० योजन विस्तार का १९० वाँ भाग है। वह कैसे ? यदि ऐसा प्रश्न है तो—जम्बूद्वीप के १००००० विस्तार में १९० का भाग देने पर ५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन भरत क्षेत्र का विस्तार प्राप्त होता है। इसी प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{१००००० \times २}{१९०}$) = $\frac{२००००}{१९}$ = १०५२ $\frac{१२}{१९}$ योजन हिमवान् पर्वत का विष्कंभ प्राप्त होता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिए।

समस्त क्षेत्र एवं कुलाचलों के विस्तार का प्रमाण :—

क्रमांक	नाम	क्षेत्रों का विस्तार		क्रमांक	नाम	कुलाचलों का विस्तार	
		योजनों में	मीलों में			योजनों में	मीलों में
१	भरत	५२६ $\frac{६}{१९}$	२१०५२६३ $\frac{३}{१९}$	१	हिमवन्	१०५२ $\frac{१२}{१९}$	४२१०५२६ $\frac{६}{१९}$
२	हैमवत	२१०५ $\frac{५}{१९}$	८४२१०५२ $\frac{१२}{१९}$	२	महा हिमवन्	४२१० $\frac{१०}{१९}$	१६८४२१०५ $\frac{५}{१९}$
३	हरि	८४२१ $\frac{१}{१९}$	३३६८४२१० $\frac{१०}{१९}$	३	निषध	१६८४२ $\frac{२}{१९}$	६७३६८४२१ $\frac{१}{१९}$
४	विदेह	३३६८४ $\frac{४}{१९}$	१३४७३६८४२ $\frac{२}{१९}$	४	नील	१६८४२ $\frac{२}{१९}$	६७३६८४२१ $\frac{१}{१९}$
५	रम्यक	८४२१ $\frac{१}{१९}$	३३६८४२१० $\frac{१०}{१९}$	५	रुक्मी	४२१० $\frac{१०}{१९}$	१६८४२१०५ $\frac{५}{१९}$
६	हैरण्यवत	२१०५ $\frac{५}{१९}$	८४२१०५२ $\frac{१२}{१९}$	६	शिखरी	१०५२ $\frac{१२}{१९}$	४२१०५२६ $\frac{६}{१९}$
७	ऐरावत	५२६ $\frac{६}{१९}$	२१०५२६३ $\frac{३}{१९}$				

तथा त्रैराशिकेन सिद्धं विदेहविष्कम्भाङ्कं प्रतिपादयन् अत्रैवोपरि वक्ष्यमाणविदेहक्षेत्रादीनामानयनविधानमाह—

> चुलसीदि छत्तेत्तीसा चत्तारि कला विदेहविक्खंभो ।
> णदिहीणदलं विजया वक्खारविभंगवणदीहा ॥ ६०५ ॥
>
> चतुरशीति षट्त्रयस्त्रिंशत् चतस्रः कला विदेहविष्कम्भः ।
> नदीहीनदलं विजयवक्षारविभङ्गवनदीर्घं ॥ ६०५ ॥

चुल । चतुरशीतिषट् त्रयस्त्रिंशद्योजनानि एकान्नविंशतेश्चतस्रः कलाश्च ३३६८४$\frac{४}{१९}$ विदेहविष्कम्भः स्यात् । अत्र नदीप्रमाणं निर्गमे ५० समुद्रप्रवेशं ५०० मध्ये यथासम्भवं हीनयित्वा ३३१८४$\frac{४}{१९}$ अर्धीकृते १६५९२$\frac{२}{१९}$ तद्देशवक्षारपर्वतविभंगनदीवनानां दैर्घ्यंप्रमाणं स्यात् ॥ ६०५ ॥

इस प्रकार त्रैराशिक द्वारा प्राप्त हुए विदेह के विस्तार के अङ्कों (संख्या) का प्रतिपादन् करते हुए यहाँ से ऊपर कहे जाने वाले विदेह क्षेत्रादिकों का प्रमाण लाने के लिए विधान कहते हैं :—

गाथार्थ :—तेतीस हजार छह सौ चौरासी और एक योजन के उन्नीस भागों में से चार भाग (३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन) प्रमाण विदेह क्षेत्र का विष्कम्भ (चौड़ाई) है। इसमें से सीता सीतोदा नदियों का विष्कम्भ घटा कर अवशेष का आधा करने पर जो प्रमाण प्राप्त हो वही विदेह नगर (३२), वक्षारगिरि (१६), विभंगा नदी (१२) और देवारण्यादि वनों की लम्बाई का प्रमाण है ॥ ६०५ ॥

विशेषार्थ :—विदेह क्षेत्र की उत्तर दक्षिण चौड़ाई (विष्कम्भ) ३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजन है। इस क्षेत्र में से बहने वाली दो प्रमुख (सीता और सीतोदा) नदियों के द्रह से निर्गम स्थान की चौड़ाई ५० योजन और समुद्र प्रवेश की चौड़ाई ५०० योजन (२००००० बीस लाख मील) है। विदेह विष्कम्भ ३३६८४$\frac{४}{१९}$ योजनों में से नदी विष्कम्भ ५०० योजन घटा देने पर (३३६८४$\frac{४}{१९}$—५००)= ३३१८४$\frac{४}{१९}$ योजन शेष रहे इस अवशेष का जो अर्धभाग ($\frac{३३१८४\frac{४}{१९}}{२}$) = १६५९२$\frac{२}{१९}$ योजन प्रमाण है, वही ३२ विदेह नगर, १६ वक्षारगिरि, १२ विभंगा नदी और देवारण्यादि वनों की दीर्घता अर्थात् लम्बाई का प्रमाण है। अर्थात् उपर्युक्त क्षेत्रादिक में से प्रत्येक की लम्बाई का प्रमाण १६५९२$\frac{२}{१९}$ योजन है।

साम्प्रतं विदेहमध्यस्थितमन्दरगिरेः स्वरूपमाचष्टे—

> मेरू विदेहमज्झे णवणउदिदहेक्कजोयणसहस्सा ।
> उदयं भूमुहवासं उवरुवरिगवणचउक्कजुदो ॥ ६०६ ॥
>
> मेरुः विदेहमध्ये नवनवतिदशैकयोजनसहस्राणि ।
> उदयः भूमुखव्यासः उपर्युपरिगवनचतुष्कयुतः ॥ ६०६ ॥

मेरुः। विदेहस्य मध्यप्रदेशे मेरुरस्ति, तस्योदयभूमुखव्यासा यथासंख्यं नवनवतिसहस्र ९९००० दशसहस्र १०००० एकसहस्र १००० योजनानि स्युः। स च पुनरुपर्युपरि कटनीगतवनचतुष्कयुतः ॥ ६०६ ॥

अब विदेह क्षेत्र के मध्य में स्थित मन्दर मेरु का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—विदेह क्षेत्र के मध्यप्रदेश में सुदर्शन मेरु स्थित है, जिसका उदय, भू व्यास और मुखव्यास क्रमशः ९९०००, १०००० और १००० योजन है। यह मन्दर मेरु ऊपर ऊपर चार वनों से संयुक्त है ॥ ६०६ ॥

विशेषार्थ :—विदेह क्षेत्र के मध्यस्थित सुदर्शन मेरु ९९००० योजन ऊँचा है; मूल में उसकी चौड़ाई दस हजार योजन और ऊपर एक हजार योजन है तथा वह ऊपर ऊपर कटनी में चार वनों से संयुक्त है।

इदानीं वनचतुष्कस्य संज्ञाः तदन्तरालं च प्रतिपादयति—

भुवि भद्दसालं साणुग णंदणसोमणसपांडुकं च वणं ।
इगिपणघणबाहत्तरिहदपंचसयाणि गंतूणं ॥ ६०७ ॥

भुवि भद्रशालं सानुगं नन्दनसौमनसपाण्डुकं च वनम् ।
एक पञ्चघनद्वासप्ततिहतपञ्चशतानि गत्वा ॥ ६०७ ॥

भूभद्द। भूगतं वनं भद्रशालाख्यं सानुत्रयगतानि यथासंख्यं नन्दनसौमनसपाण्डुकाख्यवनानि, तानि एक १ पञ्चघन १२५ द्वासप्तति ७२ हत पञ्चशतयोजनानि ५०० । ६२५०० । ३६००० गत्वा गत्वा तिष्ठन्ति ॥ ६०७ ॥

चारों वनों के नाम और उनके अन्तराल का प्रतिपादन करते हैं :—

गाथार्थ :—मेरु की मूल पृथ्वी पर भद्रशाल वन है, तथा इसके सानु प्रदेश अर्थात् कटनी पर नन्दन वन, सौमनस वन और पाण्डुक वन हैं। इनकी अवस्थिति एक से गुणित पाँच सौ, पाँच के घन (१२५) से गुणित पाँच सौ और बहत्तर से गुणित पाँच सो योजन प्रमाण आगे जाकर है ॥ ६०७ ॥

विशेषार्थ :—सुमेरु पर्वत के मूल में (भूमि गत) भद्रशाल नाम का वन है। यह वन मन्दर महाचलेन्द्र के चारों ओर है। इस वन से ५०० × १ अर्थात् ५०० योजन आगे जाकर कटनी पर दूसरा नन्दन नाम का वन है। इससे ५०० × (५ × ५ × ५ = १२५) अर्थात् ६२५०० योजन ऊपर जाकर सौमनस नाम का वन है। इस वन से ५०० × ७२ अर्थात् ३६००० योजन ऊपर जाकर सुमेरु के शीर्ष पर चौथा पाण्डुक नामक वन है। ये तीनों वन भी मन्दर गिरीन्द्र के चारों ओर हैं। मन्दर मेरु की कुल

ऊंचाई ९९००० योजन है। चारों महावनों के तीन अन्तरालों का एकत्रित (५००+६२५००+३६०००) प्रमाण सुदर्शन मेरु की ऊंचाई ९९००० योजन प्रमाण है। यथा :—

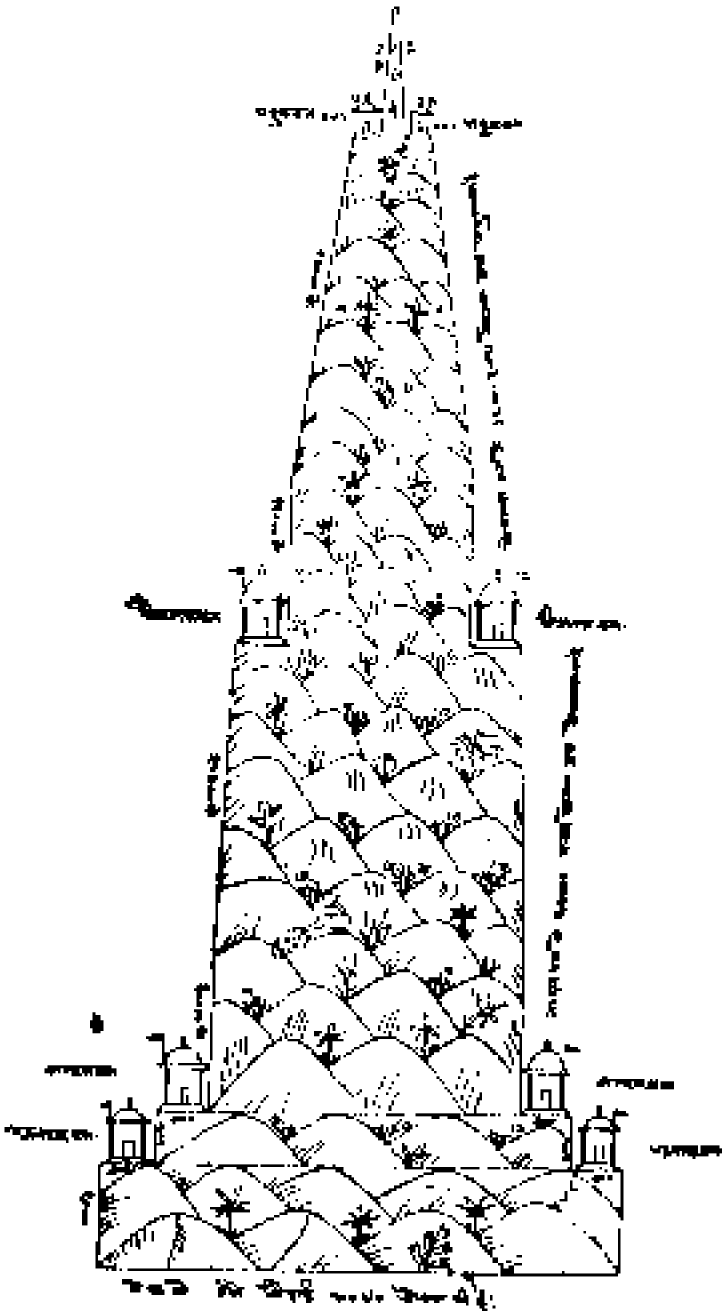

सुमेरु पर्वत

अथ तद्वनस्थवृक्षानाह—

मंदारचूदचंपयचंदणघणसारमोचचोचेहिं ।
तंबूलिपूगजादीपहुदीसुरतरुहि कयसोहं ॥ ६०८ ॥

मन्दारचूतचम्पकचन्दनघनसारमोचचोचैः ।
ताम्बूलीपूगजातिप्रभृतिसुरतरुभिः कृतशोभानि ॥ ६०९ ॥

मंदार। मन्दारचूतचम्पकचन्दनघनसारमोचचोचैः ताम्बूलीपूगजातिप्रभृतिभिः सुरतरुभिश्च कृतशोभानि तानि वनानि ॥ ६०८ ॥

उन वनों में स्थित वृक्षों को कहते हैं :—

गाथार्थ:—कल्पवृक्षों की शोभा प्राप्त करने वाले उन चारों वनों में मन्दार, आम्र, चम्पक, चन्दन, घनसार, केला, श्रीफल, ताम्बूली, सुपारी और जायपत्री आदि के अनेक वृक्ष हैं ॥ ६०८ ॥

साम्प्रतमितरमन्दराणां व्यवधाननिरूपणव्याजेनोत्सेधं कथयति—

पणसय पणसयसहियं पणवण्णसहस्सयं सहस्साणं ।
अट्ठावीसिदराणं सहस्सगाढं तु मेरूणं ॥ ६०९ ॥

पञ्चशतं पञ्चशतसहितं पञ्चपञ्चाशत्सहस्रकं सहस्राणां ।
अष्टाविंशतिरितरेषां सहस्रगाधस्तु मेरूणाम् ॥ ६०९ ॥

पणसय । पञ्चशतयोजनानि ५०० पञ्चशतसहितं पञ्चपञ्चाशत्सहस्रयोजनानि ५५५०० अष्टाविंशतिसहस्रयोजनानि २८००० इतरेषां मेरूणां वनाद्वनान्तराणि पञ्चानां मेरूणां सहस्रयोजनावगाधो १००० ज्ञातव्यः ॥ ६०९ ॥

अब अन्य मेरु पर्वतों पर स्थित वनों के अन्तराल निरूपण के बहाने से उन मन्दर मेरुओं की ऊँचाई का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—अन्य चार मेरु पर्वतों पर भी मेरु के मूल अर्थात् पृथ्वी पर भद्रशाल वन है, इसके ऊपर क्रम से पाँच सौ योजन, पचपन हजार पाँच सौ और अट्ठाईस हजार योजन जा जाकर अन्य वनों की अवस्थिति है। इन्हीं अन्तरालों के योग का प्रमाण मेरु पर्वतों की ऊँचाई का प्रमाण है। पाँचों मेरु पर्वतों का गाध—नींव का प्रमाण एक हजार योजन है ॥ ६०९ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप सम्बन्धी विदेह स्थित मेरु के अतिरिक्त दो मेरु धातकी खण्ड में और दो मेरु अर्धपुष्कर द्वीप में स्थित हैं। चारों मेरु पर्वतों के मूल में भद्रशाल वन है; इस वन से ५०० योजन ऊपर नन्दनवन, ५५५०० योजन ऊपर जाकर सौमनसवन और २८००० योजन ऊपर जाकर पाण्डुक वन की अवस्थिति है। इन चारों वनों के अन्तराल का योग (५००+५५५००+२८०००=) ८४००० योजन है। यही ८४००० योजन प्रत्येक मेरु पर्वत की ऊँचाई का प्रमाण है। पाँचों मेरु पर्वतों का गाध अर्थात् नींव १००० योजन ही है।

अथ तेषां वनानां विस्तारं निरूपयति—

बावीसं च सहस्सा पणपणछक्कोणपणसयं वासं ।
पढमवणं वज्जित्ता सव्वणगाणं वणाणि सरिसाणि ॥ ६१० ॥

द्वाविंशतिः च सहस्रं पञ्चपञ्चषट्कोनपञ्चशतं व्यासं ।
प्रथमवनं वर्जयित्वा सर्वनगानां वनानि सदृशानि ॥ ६१० ॥

बावीसं । सुदर्शनमेरोर्भद्रशालवनं पूर्वापरेण प्रत्येकं द्वाविंशतिसहस्रयोजनव्यासं, नन्दनं पञ्चशतयोजनव्यासं, सौमनसं पञ्चशतयोजनव्यासं, पाण्डुकं चतुर्नवत्यग्रशतयोजनव्यासं ४९४ । सुदर्शनस्य प्रथमवनं वर्जयित्वा सर्वमेरूणां नन्दनादि वनानि सदृशप्रमाणानि ॥ ६१० ॥

उन वनों के विस्तार का वर्णन करते हैं :—

गाथार्थ :—सुदर्शन मेरु के भद्रशाल वन की (पूर्व पश्चिम दिशा की) चौड़ाई २२००० योजन, नन्दन वन की ५०० योजन, सौमनस वन की ५०० योजन और पाण्डुक वन की ४९४ योजन है। सुदर्शन मेरु के भद्रशाल वन को छोड़कर सभी मेरु पर्वतों के नन्दनादि तीनों वनों की चौड़ाई का प्रमाण सदृश ही है ।। ६१० ।।

विशेषार्थ :—सुदर्शन मेरु के भद्रशाल वन की चौड़ाई पूर्व दिशा में २२००० योजन, पश्चिम दिशा में २२००० योजन (दक्षिण में २५० और उत्तर में भी २५० योजन) है। पाँचों मेरु पर्वतों के नन्दन वनों की चारों दिशा की चौड़ाई का प्रमाण ५०० योजन है। पाँचों सौमनस वनों की चारों दिशा की चौड़ाई का प्रमाण भी ५०० योजन ही है, तथा पाँचों पाण्डुक वनों की चारों दिशा की चौड़ाई का प्रमाण ४९४ योजन है। तात्पर्य यह हुआ कि सुदर्शन मेरु के भद्रशाल वन को छोड़ कर पाँचों मेरु पर्वतों के नन्दनादि वनों का प्रमाण सदृश ही है।

अथ तद्वनचतुष्टयस्थितचैत्यालयसंख्यामाह—

एक्केक्कवणे पडिदिसमेक्केक्कजिणालया सुसोहंति ।
पडिमेरुमुवरि तेसिं वण्णणमणुवण्णइस्सामि ।। ६११ ।।

एकैकवने प्रतिदिशमेकैकजिनालयाः सुशोभन्ते ।
प्रतिमेरुमुपरि तेषां वर्णनमनुवर्णयिष्यामि ॥ ६११ ॥

एक्के । प्रतिमेरु एकैकस्मिन् वने प्रतिदिशमेकैकजिनालयाः सुशोभन्ते । उपरि तेषां चैत्यालयानां वर्णनमनु पश्चान्नन्दीश्वरद्वीपवर्णनावसरे वर्णयिष्यामि ॥ ६११ ॥

उन चारों वनों में स्थित चैत्यालयों की संख्या कहते हैं :—

गाथार्थ :—प्रत्येक मेरु पर्वत के ऊपर प्रत्येक वन की प्रत्येक दिशा में एक एक जिनालय शोभायमान हैं, जिनका वर्णन मैं (श्री नेमिचन्द्राचार्य) आगे करूंगा ।। ६११ ।।

विशेषार्थ :—प्रत्येक मेरु पर्वत पर भद्रशाल आदि चार चार वन हैं और प्रत्येक वन की चारों दिशाओं में एक एक जिन चैत्यालय है। इस प्रकार पञ्च मेरु सम्बन्धी २० वनों के ८० जिन चैत्यालय शोभायमान हैं; जिनका वर्णन अन्य चैत्यालयों के वर्णन के बाद नन्दीश्वर द्वीप के वर्णन के अवसर पर ग्रन्थकर्त्ता करेंगे।

सुदर्शनस्य दक्षिणोत्तरभद्रशालवनप्रमाणमाह—

पढमवणदसीदंसो दक्खिणउत्तरगभद्दसालवणं ।
बिसदं पण्णासहियं खुल्लयमंदरणगेवि तहा ।। ६१२ ।।

प्रथमवनाष्टाशीत्यंशः दक्षिणोत्तरगभद्रशालवनम् ।
द्विशतं पञ्चाशदधिकं क्षुल्लकमन्दरनगेऽपि तथा ।। ६१२ ।।

पढम । सुदर्शनमेरोः पूर्वापरभद्रशालवनस्य २२००० अष्टाशीति ८८ भागो दक्षिणोत्तरगतभद्रशालवनप्रमाणं स्यात् । पञ्चाशत्सहितं द्विशतं २५० तल्लब्धं स्यात् । क्षुल्लकमन्दरनगेष्वपि तथा वक्ष्यमाणपूर्वापरभद्रशालस्याष्टाशीत्यंश एव तथा दक्षिणोत्तरभद्रशालवनप्रमाणं स्यात् ।। ६१२ ।।

सुदर्शन मेरु के दक्षिणोत्तर भद्रशाल वन का प्रमाण कहते हैं—

गाथार्थ :—प्रथम वन की पूर्व पश्चिम चौड़ाई का ८८ वाँ भाग अर्थात् ($\frac{22000}{88}$) २५० योजन दक्षिणोत्तर भद्रशाल की चौड़ाई का प्रमाण है। शेष चार छोटे मन्दर मेरु पर्वतों के दक्षिणोत्तर भद्रशाल की चौड़ाई का प्रमाण भी पूर्व पश्चिम चौड़ाई का ८८ वाँ भाग ही है ।। ६१२ ।।

अथ वनोभयपार्श्वगतवेदीस्वरूपमाह—

वेदी वणुभयपासे इगिदलचरणुदयवित्थरोगाढो ।
हेमी सघंटघंटाजालसुतोरणग बहुदारा ।। ६१३ ।।

वेदी वनोभयपार्श्वे एकदलचरणोदयविस्तारावगाधाः ।
हैमी सघण्टघण्टाजालसुतोरणका बहुद्वारा ।। ६१३ ।।

वेदी । भद्रशालादिवनोभयपार्श्वे हेममयी महाघण्टा क्षुल्लकघण्टाजालालङ्कृतसुतोरणयुतबहुद्वारा वेद्यस्ति । तस्या उदयविस्तारावगाधा यथासंख्यं एकयोजनार्धयोजनयोजनचतुर्थांशाः स्युः ।। ६१३ ।।

अब वनों के दोनों पार्श्व भागों में स्थित वेदी का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—वनों के दोनों पार्श्व भागों में वेदियाँ हैं, जिनका उदय, विस्तार और गाध क्रम से एक, अर्ध और पाव योजन प्रमाण है । वे वेदियाँ स्वर्णमय और बहुत द्वार वाली हैं, तथा महा घण्टा और छोटी घण्टिकाओं सहित एवं उत्तम तोरणों से सुशोभित हैं ।। ६१३ ।।

विशेषार्थ :—भद्रशालादि वनों के बाह्य अभ्यन्तर दोनों पार्श्व भागों में स्वर्णमय वेदियाँ हैं; जिनकी ऊँचाई एक योजन, चौड़ाई अर्ध ($\frac{1}{2}$) योजन और गाध अर्थात् नींव पाव ($\frac{1}{4}$) योजन प्रमाण है । ये वेदियाँ महाघण्टा और छोटे घण्टाजालों से अलंकृत, उत्तम तोरणों से सहित और बहुत द्वार वाली हैं ।

अथ मेरोश्चित्रातलव्यासानयने नन्दनसौमनससमरुन्द्रादिक्षेत्रव्यासोदयानयने च हानिचयानयनार्थं गाथाद्वयमाह। तत्र प्रथममिदं त्रैराशिकं ज्ञेयम्—

तद्यथा—मेरोर्मुखं १००० तद्भूमौ १०००० विशोधयित्वा ९००० एतावतो मेरूदयस्य ९९००० एतावति हानिचये ९००० एकयोजनस्य कियद्धानि चयमिति सम्पात्य नवभिरपवर्तिते एवं $\frac{१}{११}$ एतद्धानि-चयं धृत्वा पश्चात् अपरत्रैराशिकविधानमुच्यते—

इदि जोयण एगारसभागो जदि वड्ढदे पहायदि वा।
तलणंदणसोमणसे किमिदि चयं हाणिमाणिज्जो ॥ ६१४ ॥

इति योजनस्य एकादशभागः यदि वर्धते प्रहीयते वा।
तलनन्दनसौमनसे किमिति चयं हानिरानेतव्यम् ॥ ६१४ ॥

इदि। एक योजनोदयस्य १ एकयोजनैकादशभागो $\frac{१}{११}$ यदि वर्धते प्रहीयते वा तदा मेरुतल-नन्दनसौमनसानामुदयस्य १००० । ५०० । ५१५०० कियद्वर्धते प्रहीयते चेति सम्पात्य हानिचयमानेतव्यं। तलव्यासे वृद्धिः ९०$\frac{१०}{११}$ नन्दने हानिः ४५$\frac{५}{११}$ सौमनसे हानिः ४६८१$\frac{९}{११}$ ॥ ६१४ ॥

अब चित्रा पृथ्वी के तल में स्थित मेरु का व्यास लाने के लिए नन्दन, सौमनस आदि से रुद्ध क्षेत्र का व्यास एवं इनके पास मेरु की ऊंचाई आदि का प्रमाण प्राप्त करने के लिए तथा हानिचय का प्रमाण प्राप्त करने के लिए दो गाथाएँ कहते हैं। यहाँ सर्व प्रथम ऐसा त्रैराशिक जानना कि—

तद्यथा :—मेरु की भूमि १०००० योजन और मुख १००० योजन प्रमाण है। भूमि में से मुख घटा देने पर (१०००० — १०००) = ९००० योजन अवशेष रहे। मेरु पर्वत की ऊंचाई का प्रमाण ९९००० योजन है, अतः जब कि ९९००० योजन पर ९००० योजन की हानि होती है, तब १ योजन पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{९००० \times १}{९९०००}$) = $\frac{१}{११}$ योजन हानिचय का प्रमाण प्राप्त हुआ। इस $\frac{१}{११}$ यो० हानिचय को रख कर अन्य त्रैराशिक विधान कहते हैं।

गाथार्थ :—(जबकि) एक योजन की ऊंचाई पर $\frac{१}{११}$ योजन घटता या बढ़ता है, तब तल भाग, नन्दन वन और सौमनस वन की ऊँचाई पर कितनी हानि अथवा वृद्धि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक द्वारा हानि वृद्धि प्राप्त करना चाहिये ॥ ६१४ ॥

विशेषार्थ:—जो ऊपर से नीचे की ओर घटता है उसका नाम हानि है, और जो नीचे से ऊपर की ओर वृद्धिगत होता है उसका नाम वृद्धि है। जबकि एक योजन पर $\frac{१}{११}$ योजन वृद्धि या हानि होती है, तब मेरु के तल की ऊँचाई १००० योजन, नन्दन वन की ऊँचाई ५०० योजन [नन्दन वन पर सर्व ओर ५०० योजन चौड़ी कटनी है। चौड़ाई में एक साथ एक हजार (दोनों ओर के पाँच, पाँच सौ) योजन हानि हो जाने के कारण ग्यारह हजार योजन तक हानि नहीं होती] और समरुन्द्र

(समान चौड़ाई) से ऊपर सौमनस वन की ५१५०० योजनों पर कितनी वृद्धि एवं हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर मेरुतल व्यास की वृद्धि का प्रमाण ($\frac{१०००}{११}$) = ९०$\frac{१०}{११}$ योजन, नन्दन वन तक हानि का प्रमाण ($\frac{५००}{११}$) = ४५$\frac{५}{११}$ योजन और सौमनस वन तक हानि का प्रमाण ($\frac{५१५००}{११}$) = ४६८१$\frac{९}{११}$ योजन प्राप्त होता है। पुनः समरुन्द्र स्थान से २५००० योजन पाण्डुक वन तक $\frac{२५०००}{११}$ = २२७२$\frac{८}{११}$ योजनों की हानि होती है।

विशेष :—नन्दन वन से ६२५०० योजन ऊपर जाकर सौमनस वन है, किन्तु उपर्युक्त गाथा टीका में सौमनस वन तक हानि के लिए ऊँचाई का प्रमाण ५१५०० योजन कहा है इसका कारण यह है कि यह मेरु पर्वत क्रम से हानि रूप होता हुआ पृथ्वी से ५०० योजन ऊपर जाकर उस स्थान पर एक साथ ५०० योजन संकुचित हो जाता है, इसीलिए दोनों ओर चौड़ाई में १००० योजन की हानि हो जाती है अतः उस हानि को पूरा करने के लिए सब ओर ११००० योजन तक समान चौड़ाई है। वहाँ से पुनः क्रम से हानि रूप होकर ५१५०० योजन प्रमाण ऊपर जाने पर वह पर्वत पुनः युगपत् सर्व ओर ५०० योजन संकुचित होता है। यहाँ ११००० योजन समरुन्द्र प्रमाण रहने के बाद २५००० योजन ऊपर तक क्रम से हानि रूप गया है इसीलिए पाण्डुक वन तक हानि का प्रमाण निकालने के लिए २५००० योजनों का ग्रहण किया गया है। (ति० प० भा० १ पृ० ३७६)

सगसगहाणिविहीणे भूवासे चयजुदे मुहव्वासे ।
गिरिवणबाहिरब्भंतरतलवित्थारप्पमा होदि ॥ ६१५ ॥

स्वकस्वकहानिविहीने भूव्यासे चययुते मुखव्यासे ।
गिरिवनबाह्याभ्यन्तरतलविस्तारप्रमा भवति ॥ ६१५ ॥

सग। मेरोस्तत्तत्स्थानगतभूव्यासे स्वकीयस्वकीयहानौ विहीनायां सत्यां तत्तन्मुखव्यासे च तत्तच्चये युते सति गिरेस्तलादिविस्तारप्रमाणं भवति, वनस्य बाह्याभ्यन्तरविस्तारप्रमाणं च भवति। प्रागानीतमेरुतलहानिचये ९०$\frac{१०}{११}$ मेरोर्भूव्यासे १०००० मिलिते सति १००९०$\frac{१०}{११}$ चित्रातले व्यासो भवति। तत्र तस्यां हानौ ९०$\frac{१०}{११}$ अपनीतायां १०००० मेरोर्भूव्यासः। एतावदपसरणे $\frac{१}{११}$ एकयोजनोदयश्चेदेतावति ९०$\frac{१०}{११}$ अपसरणे कियानुदय इति सम्पात्य समच्छेदेन $\frac{९९०}{११}$ अंशं $\frac{१०}{११}$ अंशिनि $\frac{९९०}{११}$ मेलयित्वा $\frac{१०००}{११}$ × ११ अपवर्तिते १००० मेरोर्भूव्यासपर्यन्तमुत्सेधः स्यात्। नन्दनस्य हानिचय ४५$\frac{५}{११}$ भूव्यासे १०००० अपनीते ९९५४$\frac{६}{११}$ नन्दनबाह्यव्यासः स्यात्। तद्धानिचयांश $\frac{५}{११}$ अंशिनोः ४५ समच्छेदेन सम्मेल्य $\frac{५००}{११}$ एतावदपसरणे $\frac{१}{११}$ एकयोजनोदयश्चेदेतावदपसरणे $\frac{५००}{११}$ किमिति सम्पात्यापवर्तिते ५०० भद्रसालान्नन्दनपर्यन्तमुत्सेधः स्यात्। नन्दनबाह्यव्यासे ९९५४$\frac{६}{११}$ नन्दनव्यासं ५०० उभयपार्श्वयो द्विगुणीकृत्य १००० अपनीते ८९५४$\frac{६}{११}$ समरुन्द्ररूपनन्दनाभ्यन्तरव्यासः स्यात् ॥ ६१५ ॥

गाथार्थ :—मेरु के अपने अपने भूव्यास में से हानि का प्रमाण घटा देने पर तथा अपने अपने

मुखव्यास में चय (वृद्धि) का प्रमाण जोड़ देने पर मेरु पर्वत के तल विस्तार का प्रमाण एवं वनों के बाह्य अभ्यन्तर विस्तार का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ६१५ ॥

विशेषार्थ :—मेरु पर्वत की तत्तत् कटनी गत भू व्यास अर्थात् नीचे की चौड़ाई के प्रमाण में अपनी अपनी हानि का प्रमाण घटा देने पर एवं तत्तत् कटनी के मुख व्यास अर्थात् ऊपर की चौड़ाई के प्रमाण में अपने अपने चय (वृद्धि) का प्रमाण जोड़ देने पर गिरि का तल विस्तार और वनों के बाह्य अभ्यन्तर विस्तार का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—

पूर्व गाथा में मेरुतल की वृद्धि का प्रमाण ९० $\frac{१०}{११}$ योजन प्राप्त हुआ था, इसको मेरु के भू व्यास अर्थात् पृथ्वी पर मेरु की चौड़ाई १०००० योजन में जोड़ देने पर (१०००० + ९० $\frac{१०}{११}$) = १००९० $\frac{१०}{११}$ योजन चित्रा पृथ्वी के अन्तिम भाग में मेरु गिरि के तल भाग के व्यास (चौड़ाई) का प्रमाण प्राप्त होता है, तथा $\frac{१}{११}$ योजन घटने पर १ योजन ऊँचाई प्राप्त होता है, तब ९० $\frac{१०}{११}$ योजन घटने पर कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ९० $\frac{१०}{११}$ अर्थात् $\frac{१०००}{११} \times \frac{११}{१}$ = १००० योजन मेरु तल अर्थात् चित्रा पृथ्वी के अन्तिम भाग से पृथ्वी पर्यन्त मेरु की ऊँचाई का प्रमाण प्राप्त होता है।

नन्दन वन पृथ्वी तल से ५०० योजन की ऊँचाई पर स्थित है। पूर्व गाथा में इसको हानि का प्रमाण ४५ $\frac{५}{११}$ योजन प्राप्त हुआ था, इसे भूमि विस्तार १०००० योजन में से घटा देने पर (१०००० — ४५ $\frac{५}{११}$) = ९९५४ $\frac{६}{११}$ योजन नन्दन वन के बाह्य व्यास का प्रमाण प्राप्त हुआ। नन्दन वन के एक पार्श्व भाग की चौड़ाई ५०० योजन है, अतः दोनों पार्श्व भागों की (५०० × २) = १००० योजन चौड़ाई का प्रमाण नन्दन वन के बाह्य व्यास (९९५४ $\frac{६}{११}$) में से घटा देने पर (९९५४ $\frac{६}{११}$ — १०००) ८९५४ $\frac{६}{११}$ योजन समवृन्द स्वरूप नन्दनवन के अभ्यन्तर व्यास का प्रमाण प्राप्त होता है अर्थात् नन्दन वन के अभ्यन्तर व्यास का प्रमाण ८९५४ $\frac{६}{११}$ योजन है।

अथ समरुन्द्रोत्सेधानयनप्रकारमाह—

एयारंसोसरणे एगुदओ दससयसु किं लद्धं ।
णंदणसोमणसुवरिं सुदंसणे सरिसरुंदुदओ ॥ ६१६ ॥

एकादशांशापसरणे एकोदयः दशशतेषु किं लब्धं ।
नन्दनसौमनसोपरि सुदर्शने सदृशरुन्द्रोदयः ॥ ६१६ ॥

एयार । एकादशांश $\frac{१}{११}$ पसरणे एकयोजनोदयश्चेद्दशशता १००० पसरणे किं लब्धमिति सम्पातिते ११००० सुदर्शनोपरिमनन्दनसौमनसयोः प्रत्येकं समरुन्द्रोदयः स्यात् । सौमनसहानिचये ४६८१ $\frac{९}{११}$ नन्दनाभ्यन्तरव्यासे ८९५४ $\frac{६}{११}$ अपनीते ४२७२ $\frac{८}{११}$ सौमनसे बाह्यव्यासः स्यात् । सौमनसहानिचयांशांशिनोः ४६८१ $\frac{९}{११}$ मेलनं कृत्वा $\frac{५१५००}{११}$ एयारंसेत्यादिविधिना सम्पाद्यापवर्तिते ५१५०० सौमनसपर्यन्तमुत्सेधः स्यात् । सौमनसबाह्यव्यासे ४२७२ $\frac{८}{११}$ सौमनसव्यासं ५०० पार्श्वद्वयार्थं द्विगुणीकृत्य १०००

अपनीते ३२७२$\frac{८}{११}$ सौमनसाभ्यन्तरव्यासः स्यात् । अत्रोत्सेधः प्रागानीतसमवृन्द्रोदय एव स्यात् । एतावदुदयस्य १ एतावद्धानौ सत्यां $\frac{१}{११}$ एतावदुदयस्य २५००० किमिति सम्पातिते २२७२$\frac{८}{११}$ पाण्डुके हानिः स्यात् । एतां २२७२$\frac{८}{११}$ सौमनसाभ्यन्तरव्यासे ३२७२$\frac{८}{११}$ अपनयेच्चेत् १००० पाण्डुकबाह्यव्यासः स्यात् । पाण्डुकहानिभक्तां २२७२$\frac{८}{११}$ सांशिनो मेलयित्वा $\frac{२५०००}{११}$ प्राग्वदेभावत्सेधाविधिना सम्पात्या-पवर्तिते २५००० पाण्डुकपर्यन्तोत्सेधः स्यात् ॥ ६१६ ॥

आगे समवृन्द की ऊँचाई प्राप्त करने का विधान कहते हैं :—

गाथार्थ :—जबकि $\frac{१}{११}$ योजन हानि पर एक योजन की ऊँचाई प्राप्त होती है, तब १००० योजन हानि पर कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{११ \times १०००}{१}$) = ११००० योजन ऊँचाई का प्रमाण प्राप्त हुआ । यही सुदर्शन मेरु के ऊपर नन्दन और सौमनस वनों के समवृन्द की ऊँचाई का प्रमाण है ॥ ६१६ ॥

विशेषार्थ :—जबकि $\frac{१}{११}$ योजन की हानि पर १ योजन की ऊँचाई है, तब १००० योजन की हानि पर कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ११००० योजन की ऊँचाई प्राप्त हुई । यही सुदर्शन मेरु के नन्दन और सौमनस वनों के बीच समवृन्द ऊँचाई का प्रमाण है । अर्थात् सुदर्शन मेरु के तल भाग से नन्दन वन पर्यन्त क्रम से घटती हुई चौड़ाई है । इसके बाद दोनों पार्श्व भागों में एक साथ १००० योजन घट जाने से कटनी का आकार बन गया है । इसी कटनी पर नन्दन वन है । इस वन के मध्य से मेरु की चौड़ाई ११००० योजन ऊपर तक समान रूप से गई है । चौड़ाई में कुछ भी हानि नहीं हुई । सौमनस वन पर्यन्त सौमनस की हानि का प्रमाण ४६८१$\frac{९}{११}$ योजन प्रमाण है, तथा नन्दन वन पर मेरु का अभ्यन्तर व्यास ८९५४$\frac{६}{११}$ योजन था अतः इसमें से सौमनस का हानि प्रमाण घटा देने पर (८९५४$\frac{६}{११}$ — ४६८१$\frac{९}{११}$) = ४२७२$\frac{८}{११}$ योजन सौमनस पर (सौमनस-वन सहित) मेरु व्यास रूप सौमनस का बाह्य व्यास प्राप्त हुआ ।

सौमनस की हानि ४६८१$\frac{९}{११}$ के अंश अंशी मिला लेने पर अर्थात् भिन्न तोड़ लेने पर $\frac{५१५००}{११}$ योजन होता है । $\frac{१}{११}$ योजन हानि पर १ योजन की ऊँचाई प्राप्त होती है, तो $\frac{५१५००}{११}$ योजन की हानि पर कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{११ \times ५१५००}{११}$) = ५१५०० योजन कम हानि का प्रमाण प्राप्त हुआ । अर्थात् ११००० योजन समवृन्द प्रमाण के बाद मेरु की चौड़ाई में हानि होना प्रारम्भ हुई, जो क्रम क्रम से ५१५०० योजन तक होती गई है । इसके बाद सुमेरु पर्वत चौड़ाई में युगपत् ५०० योजन अर्थात् दोनों पार्श्व भागों में १००० योजन कम हो जाता है, इसी से कटनी बनती है और उसी कटनी पर सौमनस वन की अवस्थिति है । पूर्वोक्त ४२७२$\frac{८}{११}$ योजन सौमनस के बाह्य व्यास में से दोनों पार्श्वों पर कम हुए १००० योजनों को घटा देने पर (४२७२$\frac{८}{११}$ — १०००) = ३२७२$\frac{८}{११}$ योजन सौमनस का अभ्यन्तर व्यास प्राप्त होता है । यहाँ पर भी पूर्वोक्त प्रमाण सौमनस से प्रारम्भ कर मेरु की ११००० योजन की ऊँचाई तक मेरु की चौड़ाई समान (समवृन्द) है । अर्थात्

कहीं घटी नहीं है। इसके बाद अर्थात् समरुन्द्र के ऊपरी भाग से २५००० योजन की ऊँचाई तक क्रमिक हानि हुई है। यथा—जबकि १ योजन की ऊँचाई पर $\frac{१}{११}$ योजन की हानि होती है, तब २५००० योजन की ऊँचाई तक कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{१ \times २५०००}{११ \times १}$)= २२७२$\frac{८}{११}$ योजन पाण्डुक वन की हानि प्राप्त हुई। इस हानि को सौमनस के अभ्यन्तर मेरु व्यास ३२७२$\frac{८}{११}$ योजनों में से घटा देने पर (३२७२$\frac{८}{११}$ — २२७२$\frac{८}{११}$)= १००० योजन (पाण्डुक वन सहित) मेरु व्यास रूप पाण्डुक वन के बाह्य व्यास का प्रमाण प्राप्त होता है।

पाण्डुक वन की हानि २२७२$\frac{८}{११}$ के अंश अंशी मिला लेने पर अर्थात् भिन्न तोड़ लेने पर $\frac{२५०००}{११}$ योजन होते हैं। $\frac{१}{११}$ योजन की हानि पर १ योजन की ऊँचाई है, तो $\frac{२५०००}{११}$ योजन हानि पर कितनी ऊँचाई होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{११ \times २५०००}{११}$)= २५००० योजन की ऊँचाई प्राप्त हुई। अर्थात् सौमनस के समरुन्द्र व्यास ११००० योजन के ऊपर से प्रत्येक एक योजन पर $\frac{१}{११}$ योजन की हानि होना प्रारम्भ हुई जो मेरु की २५००० योजन की ऊँचाई तक होती गई है। अर्थात् सौमनस के समरुन्द्र व्यास से पाण्डुक वन तक सुमेरु की ऊँचाई २५००० योजन है। अतः मेरु की चौड़ाई में वहीं तक क्रमिक हानि हुई है। इसके बाद सुमेरु पुनः चौड़ाई में ४९४ योजन युगपत् संकुचित हो जाता है, जिससे कटनी बनती है, और इसी अन्तिम कटनी पर अन्तिम पाण्डुक वन की अवस्थिति है।

इस प्रकार सम्पूर्ण पर्वतों की प्रभुता को प्राप्त होने वाले अनादि निधन मन्दर महाचलेन्द्र (मेरु) की पूर्ण ऊँचाई (चित्रा पृथ्वी के तल भाग में चौड़ाई में क्रमिक हानि होते हुए पृथ्वी तल तक की ऊँचाई १००० + ५०० योजन ऊपर नन्दन वन + ११००० समरुन्द्र की ऊँचाई + ५१५०० योजन तक चौड़ाई में क्रमिक हानि + ११००० योजन समरुन्द्र की ऊँचाई + २५००० योजन तक चौड़ाई में क्रमिक हानि) १,००,००० (एक लाख) योजन है।

अथ क्षुल्लकमन्दरस्य हानिचयानयनसूत्रमाह—

भूमीदो दसभागो हायदि खुल्लेसु णंदणादुवरि।
सयवग्गं समरुंदो सोमणसुवरिंपि एमेव ॥ ६१७ ॥

भूमितः दशमभागः हीयते क्षुल्लकेषु नन्दनादुपरि।
शतवर्गः समरुन्द्रः सौमनसोपरि अपि एवमेव ॥ ६१७ ॥

भूमिदो। भूमितो दशमांश $\frac{१}{१०}$ हानौ यद्येकं योजनं स्यात्तदा सहस्रयोजनहानौ कियानुदय इति सम्पातिते शतवर्गरूपो लब्धोदयः १०००० क्षुल्लकमन्दरेषु ४ नन्दनवनादुपरितनसमरुन्द्रोदयः स्यात्। सौमनसोपरिमसमरुन्द्रोऽप्येवमेव स्यात्। मुखे १००० भूमौ ९४०० विशोधिते हानिः ८४०० क्षुल्लकमन्दरोदयस्य ८४००० एतावद्धानौ ८४०० एकयोजनोदयस्य किमिति सम्पात्य अपवर्तिते $\frac{१}{१०}$

एकयोजनहानिचयः स्यात् । एतद्गुणा एकयोजनोदयस्य एतावच्चये १/१० सहस्रयोजनोदयस्य किमिति सम्पात्यापवर्तिते चयः स्यात् १०० । एतत्क्षुल्लकमेरोरग्रे वक्ष्यमाणभूव्यासे ९४०० मेलयेच्चेत् चित्रातलव्यासः स्यात् ९५०० । एतस्मिन् तद्धानौ १०० अपनीतायां सत्यां ९४०० भूव्यासः स्यात् । एतावद्धानौ १/१० एकयोजनोदये एतावद्धानौ १०० किमिति सम्पातिते १००० तत्रत्योदयः स्यात् । एतावदुदयस्य १ एतावद्धानौ १/१० एतावदुदयस्य ५०० किमिति सम्पात्यापवर्त्य ५० तं भूव्यासे ९४०० अपनयेच्चेत् तदुपरितनव्यासः स्यात् ९३५० । एतावद्धानौ १/१० एकोदये १ एतावद्धानौ ५० किमिति सम्पातिते ५०० तत्रत्योदयः स्यात् । एतावदुदयस्य १ एतावद्धानौ १/१० एतावदुदयस्य १०००० किमिति सम्पात्यापवर्तिते[1] लब्धं १००० अधस्तनव्यासे ९३५० अपनयेत् । ८३५० एतन्नन्दनसमरुन्द्रव्यासः स्यात् । समरुन्द्रयोर्द्वयोरुत्सेधोऽनन्तरमेवानीतः स एतावदुदयस्य १ एतावद्धानौ १/१० एतावदुदयस्य ४५५०० किमिति सम्पात्यापवर्तितं ४५५० अधस्तनसमरुन्द्रव्यासे ८३५० अपनयेत् ३८०० समरुन्द्रोपरिमक्षेत्रव्यासः स्यात् । एतावद्धानौ १/१० एकोदये १ एतावद्धानौ ४५५० किमिति सम्पातिते ४५५०० तत्रत्योदयः स्यात् । एतावदुदयस्य १ एतावद्धानौ १/१० एतावदुदयस्य १०००० किमिति सम्पात्यापवर्तिते १००० अधस्तनव्यासे ३८०० अपनयेत् २८०० एतत्सौमनसरुन्द्रव्यासः स्यात् । उदयः प्रागानीतः । एतावदुदयस्य १ एतावद्धानौ १/१० एतावदुदयस्य १८००० किमिति सम्पात्यापवर्तितं १८०० अधस्तनव्यासे २८०० अपनयेत् १००० एतन्मेरोर्मुखव्यासः स्यात् । एतावद्धानौ १/१० एकोदये १ एतावद्धानौ १८०० किमिति सम्पातिते १८००० तत्रत्योदयः स्यात् । चूलिकोदयभूमुखव्यासाः सर्वे मेरूणामग्रे वक्ष्यन्ते ॥ ६१७ ॥

आगे चारों क्षुल्लक (छोटे) मेरु पर्वतों का हानिचय प्राप्त करने के लिए सूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—भूमि से १/१० योजन की हानि पर १ योजन की ऊँचाई प्राप्त होती है, तब १००० योजन की हानि पर कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर शतवर्ग अर्थात् १०००० योजन चारों क्षुल्लक मेरु पर्वतों की नन्दन वन से ऊपर समरुन्द्र व्यास की ऊंचाई का प्रमाण प्राप्त होता है। सौमनस वन के ऊपर भी समरुन्द्र व्यास की ऊँचाई का प्रमाण इतना ही है ॥ ६१७ ॥

विशेषार्थ :—भूमितः अर्थात् नीचे से १/१० योजन व्यास की हानि होने पर एक योजन ऊँचाई प्राप्त होती है, तो नन्दन वन के दोनों पार्श्व भागों में १००० योजन व्यास घटने पर कितने योजन ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर शतवर्ग अर्थात् १०००० योजन की ऊँचाई प्राप्त होती है । यही अर्थात् १०००० योजन ऊँचाई का प्रमाण नन्दन वन से ऊपर समरुन्द्र व्यास का तथा सौमनस वन से ऊपर समरुन्द्र व्यास का प्रमाण है। इन चारों क्षुल्लक मेरु पर्वतों के तल भाग की

[1] सम्पात्यापवर्तितं (प०) ।

चौड़ाई ६४०० योजन है, और शिखर का विस्तार १००० योजन है। यही क्रम से भूमि और मुख है। इन पर्वतों की सम्पूर्ण ऊँचाई ८४००० योजन है। ९४०० भूमि में से १००० मुख घटाने पर ८४०० योजन हानि का प्रमाण प्राप्त हुआ। जबकि ८४००० योजन की ऊँचाई पर ८४०० यो० की हानि होती है, तब १ योजन की ऊँचाई पर कितनी हानि होगी? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{८४००}{८४०००}$) = $\frac{१}{१०}$ योजन क्षय (हानि) या वृद्धि का प्रमाण सर्वत्र प्राप्त होता है। इसी को रखकर १ योजन की ऊँचाई पर $\frac{१}{१०}$ योजन की वृद्धि होती है, तब १००० योजन की ऊँचाई पर कितनी वृद्धि होगी? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर वृद्धि का प्रमाण ($\frac{१०००×१}{१×१०}$) = १०० योजन प्राप्त हुआ। इसे चारों क्षुल्लक मेरु पर्वतों के आगे कहे जाने वाले ९४०० योजन भूव्यास अर्थात् पृथ्वीतल पर मेरु पर्वतों की चौड़ाई में जोड़ देने पर (९४०० + १००) = ९५०० योजन चित्रा पृथ्वी के तल भाग पर चारों क्षुल्लक मेरु मन्दरों की चौड़ाई का प्रमाण प्राप्त होता है, तथा ९५०० योजनों में से इतनी हानि (१०० योजन) का प्रमाण घटा देने पर मेरु पर्वतों के भूव्यास का प्रमाण प्राप्त होता है, तथा $\frac{१}{१०}$ योजन की हानि पर एक योजन ऊँचाई प्राप्त होती है, तब १०० यो० की हानि पर कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{१००×१०}{१}$) १००० योजन चित्रा पृथ्वी स्थित मेरु तल से समभूमि पर्यन्त की ऊँचाई का प्रमाण प्राप्त होता है। जबकि १ योजन की ऊँचाई पर $\frac{१}{१०}$ योजन की हानि होती है, तब ५०० योजन की ऊँचाई पर कितनी हानि होगी? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{१×५००}{१०×१}$) = ५० योजन की हानि प्राप्त हुई; इसे भू व्यास में से घटा देने पर (९४०० — ५०) = ९३५० योजन नन्दनवन के बाह्य मेरु पर्वतों के व्यास (चौड़ाई) का प्रमाण प्राप्त होता है।

जबकि $\frac{१}{१०}$ योजन की हानि पर १ योजन की ऊँचाई है, तब ५० योजन की हानि पर कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर (५० × १०) = ५०० योजन भद्रशाल वन से नन्दन वन की ऊँचाई का प्रमाण प्राप्त होता है। जबकि १ योजन की ऊँचाई पर $\frac{१}{१०}$ योजन की हानि होती है, तब १०००० योजन की ऊँचाई पर कितनी हानि होगी? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर १००० योजन की हानि का प्रमाण प्राप्त हुआ। नन्दन वन के दोनों पार्श्व भागों पर (५०० + ५००) = १००० योजन की युगपत् हानि होती है, इसे नन्दन वन के बाह्य मेरु व्यास में से घटा देने पर (९३५० — १०००) = ८३५० योजन नन्दन वन के अभ्यन्तर मेरु व्यास का प्रमाण प्राप्त हुआ। यत: यह १००० योजन की चौड़ाई नन्दन वन पर एक साथ संकुचित हुई है, अत: नन्दन वन से १०००० योजन की ऊँचाई पर्यन्त मेरु पर्वत के समरुन्द्र अर्थात् समान चौड़ाई का प्रमाण ८३५० योजन ही है। यहाँ दोनों समरुन्द्रों के उत्सेध (ऊँचाई) की समानता लाई गई है। जबकि १ योजन की ऊँचाई पर $\frac{१}{१०}$ योजन घटता है, तब (नन्दन वन के पश्चात् समरुन्द्र ऊँचाई के बाद) ४५५०० योजन की ऊँचाई पर कितना घटेगा? ऐसा त्रैराशिक करने पर ($\frac{४५५००}{१०}$) = ४५५० योजन प्राप्त हुए, इन्हें अधस्तन समरुन्द्र व्यास ८३५० में से घटाने पर (८३५० — ४५५०) = ३८०० योजन समरुन्द्र के उपरिम क्षेत्र

व्यास अर्थात् सौमनस वन का बाह्य व्यास होता है। जबकि $\frac{१}{१०}$ योजन की हानि १ योजन ऊँचाई पर होती है, तब ४५५० योजन हानि कितनी ऊँचाई पर होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक से (४५५०×१०)= ४५५०० योजन ऊँचाई होती है। अर्थात् नन्दन वन के समरुन्द्र व्यास से ४५५०० योजन की ऊँचाई पर सौमनस वन है। जबकि १ योजन की ऊँचाई पर $\frac{१}{१०}$ योजन की हानि होती है, तब १०००० की ऊँचाई पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{१००००}{१०}$)=१००० योजन हुए। यही १००० योजन सौमनस वन के दोनों पार्श्व भागों में एक साथ घटता है। इसे सौमनस के बाह्य व्यास ३८०० में से घटा देने पर (३८०० — १०००)=२८०० योजन सौमनस का समरुन्द्र व्यास अर्थात् सौमनस का मेरु व्यास का प्रमाण प्राप्त होता है। इस २८०० योजन समान चौड़ाई की ऊँचाई का १०००० योजन पूर्व में प्राप्त कर ही चुके हैं। तात्पर्य यह हुआ कि १०००० योजन की ऊँचाई तक सौमनस वन की २८०० योजन की समान चौड़ाई है।

जबकि १ योजन की ऊँचाई पर $\frac{१}{१०}$ योजन की हानि होती है, तब १८००० योजन पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{१८०००}{१०}$)=१८०० योजन प्राप्त हुए। इन्हें सौमनस वन के अभ्यन्तर व्यास २८०० योजनों में से घटा देने पर (२८००—१८००)=१००० योजन मेरु का उपरिम-मुख व्यास का प्रमाण प्राप्त होता है। जबकि $\frac{१}{१०}$ योजन की हानि पर १ योजन की ऊँचाई है, तब १८०० योजन की हानि पर कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर (१८००×१०)=१८००० योजन सौमनस सम्बन्धी समरुन्द्र व्यास से ऊपर पाण्डुक वन की ऊँचाई प्राप्त होती है। अर्थात् सौमनस के समरुन्द्र व्यास की ऊँचाई से पाण्डुक वन १८००० योजन ऊपर है।

पाँचों मेरु पर्वतों के पाण्डुक वनों के मध्य में चूलिका है, जिसकी ऊँचाई, भूव्यास एवं मुख व्यास का वर्णन आगे किया जावेगा।

अथ मेरूणां वर्णविशेषं निरूपयति—

णाणारयणविचित्तो इगिसट्ठिसहस्सगेसु पढमादो।
तत्तो उवरिं मेरू सुवण्णवण्णण्णिदो होदि ॥ ६१८ ॥

नानारत्नविचित्रः एकषष्टिसहस्रकेषु प्रथमतः।
तत उपरि मेरुः सुवर्णवर्णान्वितः भवति ॥ ६१८ ॥

णाणा। मेरोः प्रथमत आरभ्य एकषष्टिसहस्रयोजन ६१००० पर्यन्तं नानारत्नविचित्रः तत उपरि मेरुः सुवर्णवर्णान्वितो भवति ॥ ६१८ ॥

मेरु पर्वतों के वर्णविशेष का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—मेरु प्रथमतः नीचे से प्रारम्भ कर ६१००० योजन पर्यन्त नाना प्रकार के रत्नों से खचित होने के कारण अनेक वर्ण का है; इससे ऊपर पूरा मेरु स्वर्ण सदृश वर्ण का है ॥ ६१८ ॥

अथ नन्दनादिषु स्थितभवननामादिकं गाथाद्वयेनाह—

माणीचारणगंधव्वचित्तणामाणि वट्टभवणाणि ।
णंदणचउदिसमुदओ पण्णासं तीस वित्थारो ॥ ६१९ ॥

मानीचारणगन्धर्वचित्रनामानि वृत्तभवनानि ।
नन्दनचतुर्दिक्षु उदयः पञ्चाशत् त्रिंशत् विस्तारः ॥ ६१९ ॥

माणी । मानीचारणगन्धर्वचित्रनामानि वृत्तभवनानि नन्दने चतुर्दिक्षु सन्ति । तेषामुदयः पञ्चाशद्योजनानि, विस्तारस्तु त्रिंशद्योजनानि ॥ ६१९ ॥

नन्दनादि वनों में स्थित भवनों के नामादिक दो गाथाओं में कहते हैं—

गाथार्थ :—मानी, चारण, गन्धर्व और चित्र नाम वाले गोलभवन नन्दनवन की पूर्वादि चारों दिशाओं में हैं। उनकी ऊँचाई पचास योजन और विस्तार (व्यास) तीस योजन प्रमाण है ॥ ६१९ ॥

विशेषार्थ :—नन्दन वन की पूर्व दिशा में मानी, दक्षिण में चारण, पश्चिम में गन्धर्व और उत्तर में चित्र नामके भवन हैं। उनका आकार गोल है तथा ऊँचाई ५० योजन और विस्तार ३० योजन प्रमाण है।

सोमणसदुगे वज्जं वज्जादिप्पह सुवण्ण तप्पहयं ।
लोहिदअंजणहारिद्दपांडुरा दलिददलमाणा ॥ ६२० ॥

सौमनसद्विके वज्रं वज्रादिप्रभं सुवर्णं तत्प्रभं ।
लोहिताञ्जनहारिद्रपाण्डुरा दलितदलमानाः ॥ ६२० ॥

सोमण । सौमनसपाण्डुकयोर्यथासंख्यं चत्वारि चत्वारि वृत्तभवनानि । तानि कानि ? वज्रवज्रप्रभसुवर्णसुवर्णप्रभनामानि लोहिताञ्जनहारिद्रपाण्डुरनामानि । नन्दनोक्तोदयव्यासार्धार्धप्रमाणानि ॥ ६२० ॥

गाथार्थ :—सौमनस और पाण्डुक वनों में भी यथाक्रम वज्र, वज्रप्रभ, सुवर्ण और सुवर्णप्रभ तथा लोहित, अञ्जन, हारिद्र और पाण्डुर ये गोल भवन हैं। नन्दन वन के भवनों के उदय और व्यास से सौमनस के भवनों का उदय और व्यास आधा है तथा पाण्डुक वन के भवनों का उदय और व्यास इनसे भी आधा है ॥ ६२० ॥

विशेषार्थ :—सौमनस वन की पूर्व दिशा में वज्र नामक भवन, दक्षिण में वज्रप्रभ, पश्चिम में सुवर्ण और उत्तर में सुवर्णप्रभ नामवाले गोल भवन हैं। नन्दन वन के भवनों से इन भवनों की

ऊँचाई और व्यास अर्धप्रमाण है। अर्थात् यहां के भवन २५ योजन ऊँचे और १५ योजन व्यास वाले हैं। इसी प्रकार पाण्डुक वन की पूर्वदिशा में लोहित, दक्षिण में अञ्जन, पश्चिम में हारिद्र और उत्तर में पाण्डुर नामक गोल भवन हैं। इनका उदय और व्यास सौमनस से अर्धप्रमाण अर्थात् १२½ योजन ऊँचे और ७½ योजन व्यास वाले हैं।

अथ तद्भवनाधिपान् तद्वनितांश्चाह—

तब्भवणवदी सोमो यमवरुणकुबेरलोयवालक्खा ।
पुव्वादी तेसिं पुह गिरिकण्णा साद्धकोडितियं ।। ६२१ ।।

तद्भवनपतयः सोमः यमवरुणकुबेराः लोकपालाख्याः ।
पूर्वादिषु तेषां पृथक् गिरिकन्यका सार्धकोटित्रयम् ।। ६२१ ।।

तब्भवण । तद्भवनाधिपतयः सोमयमवरुणकुबेराख्याः सौधर्मस्य लोकपालाः पूर्वादिदिक्षु तिष्ठन्ति । तेषां पृथक् पृथक् सार्धकोटित्रयगिरिकन्यका भवन्ति ॥ ६२१ ॥

उन भवनों के स्वामी तथा उनकी देवांगनाओं के बारे में कहते हैं—

गाथार्थ :—उन भवनों के स्वामी लोकपाल कहे जाने वाले सोम, यम, वरुण और कुबेर क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में हैं। प्रत्येक लोकपाल की साढ़े तीन करोड़ गिरिकन्यका अर्थात् व्यन्तर जाति की देवाङ्गनाएं हैं।। ६२१।।

अथ तेषामायुष्यादिकमाह—

सोमदु वरुणदुगाऊ सदलदु पल्लचयं च देसूणं ।
ते रत्तकिण्हकंचणसिदणेवत्थंकिया कमसो ।। ६२२ ।।

सोमद्वयोः वरुणद्विकायुः सदलद्वि पल्यत्रयं च देशोनम् ।
ते रक्तकृष्णकाञ्चनसितनेपथ्याङ्किताः क्रमशः ।। ६२२ ।।

सोम । सोमयमयोर्वरुणकुबेरयोश्चायुर्यथासंख्यं अर्धसहितद्विपल्यं देशोनपल्यत्रयं च स्यात् । सोमाद्यो रक्तकृष्णकाञ्चनसितवर्णालङ्काराङ्किताः क्रमशः ॥ ६२२ ॥

अब उनकी आयु आदि का वर्णन करते हैं—

गाथार्थ :—सोम और यम की तथा वरुण और कुबेर की आयु क्रमशः ढाई पल्य और कुछ कम तीन पल्य है। ये क्रमशः रक्त, कृष्ण, काञ्चन और श्वेत वर्ण के आभूषणों से अलंकृत हैं।।६२२।।

विशेषार्थ :—पूर्व दिशा के स्वामी लोकपाल की आयु २½ पल्य और अलङ्कार लाल वर्ण के हैं। दक्षिण दिशा के स्वामी यम नामक लोकपाल की आयु २½ पल्य और आभूषण कृष्ण (काला) वर्ण के हैं। पश्चिम दिशा के स्वामी वरुण लोकपाल की आयु कुछ कम तीन पल्य और अलङ्कार काञ्चन

(स्वर्ण) वर्ण के हैं तथा उत्तर दिशा के स्वामी कुबेर लोकपाल की आयु कुछ कम तीन पल्य और आभूषण सफेद रङ्ग के हैं।

अथ तेषां कल्पविमानसम्बन्धित्वमाह—

ते य सयंपहरिट्ठजलप्पहवग्गुप्पहा विमाणीसा ।
कप्पे सु लोगवाला पहुणो बहुसयविमाणाणं ।। ६२३ ।।

ते च स्वयम्प्रभारिष्टजलप्रभवल्गुप्रभा विमानेशाः ।
कल्पेषु लोकपाला प्रभवः बहुशतविमानानाम् ॥ ६२३ ॥

ते य । ते च सौधर्मस्य लोकपालाः कल्पेषु स्वयम्प्रभारिष्टजलप्रभवल्गुप्रभा विमानेशाः । पुनस्ते च बहुशत ६६६६६६ विमानानामधिपतयः ॥ ६२३ ॥

उनके कल्प विमान सम्बन्धित्व को कहते हैं :—

गाथार्थ :—कल्पों में ये चारों लोकपाल क्रमशः स्वयम्प्रभ, अरिष्ट, जलप्रभ और वल्गुप्रभ विमानों के स्वामी हैं, तथा अन्य भी सैंकड़ों विमानों के स्वामी हैं ।। ६२३ ॥

विशेषार्थ :—सौधर्मकल्प में सौधर्मेन्द्र के वे चारों लोकपाल क्रमशः स्वयंप्रभ, अरिष्ट, जलप्रभ और वल्गुप्रभ विमानों के स्वामी हैं। इतना ही नहीं स्वर्गों में ये ६६६६६६ विमानों के अधिपति हैं, और मेरु पर्वत पर भी इनके बहुत से भवन हैं।

अथ नन्दनवनस्थव्यन्तरं सपरिकरमाह—

बलभद्दणामकूडे णंदणगे मेरुपव्वदीसाणे ।
उदयमहियसयदलगो तण्णामो वेंतरो वसई ।।६२४।।

बलभद्रनामकूटे नन्दनगे मेरुपर्वतैशान्याम् ।
उदयमहीकशतदलकः तन्नामा व्यन्तरो वसति ॥ ६२४ ॥

बलभद्द । मेरुपर्वतैशान्यां दिशि नन्दनस्थे शतोदयशतभूव्यासे तदर्धाग्रे बलभद्रनामकूटे बलभद्रनामा व्यन्तरो वसति ॥ ६२४ ॥

नन्दन वन में रहने वाले व्यन्तर देव एवं उसके परिकर का कथन करते हैं—

गाथार्थ :—मेरु पर्वत की ऐशान दिशा स्थित नन्दन वन में सौ योजन ऊँचा तथा भूमि पर सौ योजन चौड़ा और ऊपर ५० योजन चौड़ा बलभद्र नामका कूट है जिसमें बलभद्र नामका व्यन्तर देव निवास करता है ।। ६२४ ॥

अथ नन्दनवनस्थवसतीनामुभयपार्श्वस्थकूटादीन् गाथात्रयेणाह—

णंदण मंदर णिसहा हिमवं रजदो य रुजगसागरगा ।
वज्जो कूडा कमसो णंदणवसईण पासदुगे ॥ ६२५ ॥
हेममया तुंगधरा पंचसयं तद्दलं मुहस्स पमा ।
सिहिरगिहे दिक्कण्णा वसंति तासिं च णाममिणं ॥६२६॥
मेहंकरमेहवदी सुमेहमेहादिमालिणी तत्तो ।
तोयंधरा विचित्ता पुप्फादिममालिणिंदिदया ॥ ६२७ ॥

नन्दनो मन्दरः निषधः हिमवान् रजतश्च रुचकसागरको ।
वज्रः कूटाः क्रमशः नन्दनवसतीनां पार्श्वद्विके ॥ ६२५ ॥
हेममयाः तुङ्गधराः पञ्चशतं तद्दलं मुखस्य प्रमा ।
शिखरगृहे दिक्कन्याः वसन्ति तासां च नामानीमानि ॥६२६॥
मेघङ्करा मेघवती सुमेघा मेघादिमालिनी ततः ।
तोयन्धरा विचित्रा पुष्पादिममाला अनिन्दितका ॥ ६२७ ॥

णंदण । नन्दनो मन्दरो निषधो हिमवान् रजतश्च रुचकः सागरो वज्राख्याः एते कूटाः क्रमशो नन्दनस्यवसतीनामुभयपार्श्वे तिष्ठन्ति ॥ ६२५ ॥

हेममया । ते कूटा हेममयाः तेषामुदयभूव्यासौ प्रत्येकं पञ्चशतयोजनानि ५०० तद्दलं २५० मुखव्यासप्रमाणं तेषां शिखरगृहेषु दिक्कन्या वसन्ति । तासां चेमानि नामान्यग्रे वक्ष्यमाणानि ॥ ६२६ ॥

मेहंकर । मेघङ्करा मेघवती सुमेघा मेघमालिनी ततस्तोयन्धरा विचित्रा पुष्पमाला अनिन्दिताख्याः स्युः ॥ ६२७ ॥

नन्दन वन में स्थित भवनों के दोनों पार्श्व भागों में जो कूटादिकों की अवस्थिति है उन्हें तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—१ नन्दन, २ मन्दर, ३ निषध, ४ हिमवान्, ५ रजत, ६ रुचक, ७ सागर और ८ वज्र ये आठ कूट क्रम से नन्दन वन में स्थित चार भवनों के दोनों पार्श्व भागों में स्थित हैं। ये आठों कूट स्वर्णमयी हैं, इनकी ऊँचाई पाँच सौ योजन, नीचे भूमि व्यास (चौड़ाई) पाँच सौ योजन तथा ऊपर मुख व्यास ढाई सौ योजन है। इन कूटों के शिखरों पर स्थित भवनों में दिक्कुमारियाँ रहती हैं, जिनके मेघङ्करा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, तोयन्धरा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिन्दिता नाम हैं ॥ ६२५, ६२६, ६२७ ॥

विशेषार्थ ।—नन्दन वन में स्थित मानी भवन के दोनों पार्श्व भागों में नन्दन कूट और मन्दर कूट हैं। चारण भवन के दोनों पार्श्व भागों में निषध और हिमवान् कूट हैं। गन्धर्व भवन के दोनों

पार्श्व भागों में रजत और कनक कूट हैं, तथा चित्र भवन के दोनों पार्श्व भागों में सागर और वज्र नामक कूट हैं। ये आठों कूट स्वर्णमयी हैं। इनकी ऊँचाई ५०० योजन, नीचे भूमि की चौड़ाई ५०० योजन, तथा ऊपर मुख व्यास २५० योजन है। इन कूटों के शिखरों पर दिक्कुमारियों के भवन हैं। जिनके नाम मेघङ्करा, मेघवती, सुमेधा, मेघमालिनी, तोयन्धरा, विचित्रा, पुष्पमाला और अनिन्दिता हैं। ये आठों क्रम से एक एक कूट पर स्थित भवनों में रहती हैं।

अथ नन्दनवापीस्वरूपं गाथात्रयेणाह—

अग्गिदिसादोचउचउउप्पलगुम्मायणलिणिउप्पलिया।
वावीओ उप्पलुज्जल भिंगा छट्ठी दु भिंगणिभा ॥ ६२८ ॥
कज्जल कज्जलपह सिरिभूदा सिरिकंदसिरिजुदा महिदा।
सिरिणिलयणलिणि णलिणादिमगुम्मिय कुमुदकुमुदपहा ॥६२९॥
मणितोरणरयणुब्भवसोवाणा हंसमोरजंतजुदा।
पण्णदलदीहवासो दसगाहा सोलवावीओ ॥ ६३० ॥

अग्निदिशः चतस्रः चतस्रः उत्पलगुल्मा च नलिनी उत्पलिका।
वाप्यः उत्पलोज्ज्वला भृङ्गा षष्ठी तु भृङ्गनिभा ॥ ६२८ ॥
कज्जला कज्जलप्रभा श्रीभूता श्रीकान्ता श्रीयुता महिता।
श्रीनिलया नलिनी नलिनादिमगुल्मी कुमुदा कुमुदप्रभा ॥६२९॥
मणितोरणरत्नोद्भवसोपानाः हंसमयूरयन्त्रयुताः।
पञ्चाशद्दलदीर्घव्यासाः दशगाधाः षोडशवाप्यः ॥ ६३० ॥

अग्गि। अग्निदिशः आरभ्य चतस्रश्चतस्रो वाप्यः सन्ति। तासां नामानि उत्पलगुल्मा नलिनी उत्पला उत्पलोज्ज्वला भृङ्गा षष्ठो तु भृङ्गनिभा ॥ ६२८ ॥

कज्जल। कज्जला कज्जलप्रभा श्रीभूता श्रीकान्ता श्रीमहिता श्रीनिलया नलिनी नलिनगुल्मी कुमुदा कुमुदप्रभेति नामानि ॥ ६२९ ॥

मणि। ताः षोडशवाप्यो मणितोरणरत्नोद्भवसोपानाः हंसमयूरयन्त्रयुताः पञ्चाशत्तद्दलदीर्घव्यासाः दशयोजनावगाधाः स्युः ॥ ६३० ॥

अब तीन गाथाओं द्वारा नन्दन वन स्थित वापियों का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—अग्नि दिशा से प्रारम्भ कर चारों विदिशाओं में क्रमशः चार चार बावड़ियाँ हैं। जिनके नाम १ उत्पलगुल्मा, २ नलिनी, ३ उत्पला, ४ उत्पलोज्ज्वला, ५ भृङ्गा, ६ भृङ्गनिभा, ७ कज्जला, ८ कज्जलप्रभा, ९ श्रीभूता, १० श्री कान्ता, ११ श्री महिता, १२ श्री निलया, १३ नलिनी, १४ नलिनी-गुल्मा, १५ कुमुदा और १६ कुमुदप्रभा हैं। ये सोलह वापियाँ मणिमय तोरणों, रत्नमय सीढ़ियों और

हंस मयूरादि यन्त्रों से संयुक्त हैं, तथा क्रमशः पचास योजन और उसके अर्ध योजन (२५ यो०) प्रमाण दीर्घता और व्यास तथा १० योजन गाध से युक्त हैं ॥ ६२८, ६२९, ६३० ॥

विशेषार्थ :—आग्नेय दिशा में उत्पल गुल्मा, नलिनी, उत्पला और उत्पलोज्ज्वला नाम वाली चार बावड़ी हैं। नैऋत्य दिशा में भृङ्गा, भृङ्गनिभा, कज्जला और कज्जलप्रभा है। वायव्य दिशा में श्रीभूता, श्रीकान्ता, श्रीमहिता और श्रीनिलया हैं, तथा ईशान दिशा में नलिनी, नलिनीगुल्मा, कुमुदा और कुमुदप्रभा नाम वाली ये चार बावड़ी हैं। ये १६ ही वापियां मणिमय तोरणों, रत्नमय सीढ़ियों और हंस, मयूर आदि यन्त्रों से संयुक्त हैं। ये प्रत्येक बावड़ी ५० योजन लम्बी, २५ योजन चौड़ी और १० योजन गहरी हैं।

अथ तन्मध्यप्रासादस्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

दक्खिणउत्तरवावीमज्झे सोहम्मजुगलपासादा ।
पणघणदलचरणुच्छयवासा दलगाढचउरस्सा ॥६३१॥

दक्षिणोत्तरवापीमध्ये सौधर्मयुगलप्रासादाः ।
पञ्चघनदलचरणोच्छ्रयव्यासाः दलगाढचतुरस्राः ॥६३१॥

दक्खिण । मेरोरपेक्षया दक्षिणोत्तरवापीमध्ये सौधर्मैशानयोः प्रासादाः पञ्चघन १२५ दल ६२½ पञ्चघनचतुर्थांशो ३१¼ उच्छ्रयव्यासाः अर्धयोजनगाधाः चतुरस्राः सन्ति ॥ ६३१ ॥

उन बावड़ियों के मध्यस्थित प्रासादों का स्वरूप दो गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—दक्षिण और उत्तर दिशा की वापियों के मध्य में क्रमशः सौधर्मैशान इन्द्रों के प्रासाद हैं। उनकी पञ्च के घन का अर्ध प्रमाण ऊंचाई, उसके चौथाई प्रमाण व्यास और अर्ध योजन प्रमाण गाढ (नींव) है। ये सभी प्रासाद चौकोर हैं ॥ ६३१ ॥

विशेषार्थ :—मेरु की अपेक्षा दक्षिणोत्तर बावड़ियों के मध्य में सौधर्मैशान इन्द्रों के भवन हैं। अर्थात् मेरु के दक्षिण की ओर आग्नेय और नैऋत्य दिशा स्थित बावड़ियों में सौधर्मेन्द्र के प्रासाद और उत्तर की ओर अर्थात् वायव्य और ऐशान दिशा स्थित बावड़ियों में ऐशान इन्द्र के प्रासाद हैं। ये प्रासाद पञ्चघन के अर्धप्रमाण अर्थात् ६२½ योजन ऊंचे ३१¼ योजन चौड़े और अर्ध योजन प्रमाण गहरी नींव से संयुक्त एवं चौकोर हैं।

सोचिदठाणासिदपरिवारेणिंदो ठिदो सपासादे ।
सव्वमिणं कहियव्वं सोमणसवणेवि सविसेसं ॥ ६३२ ॥

स्वोचितस्थानासितपरिवारेण इन्द्रः स्थितः स्वप्रासादे ।
सर्वमिदं कथितव्यं सौमनसवनेऽपि सविशेषं ॥ ६३२ ॥

सोचित। सुधर्मसभायामिव स्वोचितस्थानास्थितपरिवारेण सह स्वप्रासादे इन्द्रस्तिष्ठति सौमनसवनेऽपि सर्वमिदं सविशेषं कथितव्यम् ॥ ६३२ ॥

गाथार्थ:—अपने योग्य स्थानों पर स्थित अपने परिवार सहित इन्द्र अपने प्रासाद में ठहरता है। कूटादि का जैसा वर्णन यहां नन्दन वन में किया है वैसा ही सविशेष वर्णन सौमनस वन में करना चाहिए ॥ ६३२ ॥

विशेषार्थ:—इन्द्र जब नन्दनादि वनों में आता है तब स्वर्ग की सुधर्मा सभा के समान अपने अपने योग्य स्थानों में परिवार सहित अपने प्रासाद में ठहरता है। नन्दन वन स्थित भवनों के पार्श्व-भागों में कूटादिक का, आग्नेयादि दिशाओं में बावड़ियों का तथा बावड़ियों के मध्य स्थित प्रासाद आदि का जैसा वर्णन यहां किया है, वैसा ही सर्व वर्णन विशेषता सहित सौमनस वन में भी करना चाहिए।

अनन्तरं मेरुशिखरस्थितानां शिलातलानां नामस्थापने वर्णयति—

पांडुकपांडुकंबलरत्ता तह रत्तकंबलक्खा सिला।
ईसाणादो कंचणरुप्पयतवणीयरुहिरणिहा ॥ ६३३ ॥
पाण्डुकपाण्डुकम्बलरक्ता तथा रक्तकम्बलाख्याः शिलाः।
ईशानात् काञ्चनरूप्यतपनीयरुधिरनिभाः ॥ ६३३ ॥

पांडुक। ऐशानादारभ्य यथासंख्यं काञ्चनरूप्यतपनीयरुधिरनिभाः पाण्डुकाख्यपाण्डुकम्बला-ख्यरक्ताख्यरक्तकम्बलाख्याः शिलाः पाण्डुकवने सन्ति ॥ ६३३ ॥

अब मेरु के शिखर पर स्थित शिलाओं के नामों और स्थानों का वर्णन करते हैं—

गाथार्थ:—ऐशान दिशा से प्रारम्भ कर चारों विदिशाओं में क्रमशः स्वर्ण, चाँदी, तपाए हुए स्वर्ण और रुधिर (रक्त) वर्ण के सदृश पाण्डुक, पाण्डुकम्बला, रक्ता और रक्तकम्बला नाम की चार शिलाएँ हैं ॥ ६३३ ॥

अथ ताः शिलाः केषां सम्बन्धिन्यः कथं तासां विन्यास, इत्युक्ते आह—

भरहवरविदेहेरावदपुव्वविदेहजिणणिबद्धाओ।
पुव्ववरदक्खिणुत्तरदीहा अथिरथिरभूमिमुहा[1] ॥ ६३४ ॥
भरतापरविदेहैरावतपूर्वविदेहजिननिबद्धाः।
पूर्वापरदक्षिणोत्तरदीर्घा अस्थिरस्थिरभूमिमुखाः ॥ ६३४ ॥

---

1 अस्थिर इत्युक्ते भरतैरावतसम्मुखे। स्थिर इत्युक्ते पूर्वापरविदेहसम्मुखे इत्यर्थः (ब० प्रतौ टि०)

भरह । ताः शिला यथासंख्यं भरतापरविदेहैरावतपूर्वविदेहजिननिबद्धाः स्युः । पूर्वापरदक्षिणोत्तरदीर्घा अस्थिरस्थिरभूमिमुखा ॥ ६३४ ॥

वे शिलाएं किनसे सम्बन्धित हैं और उनका विन्यास कैसा है ? उसे कहते हैं—

गाथार्थ :—वे शिलाएँ क्रमशः भरतक्षेत्र, पश्चिमविदेहक्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र और पूर्वविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तीर्थङ्करों से सम्बन्धित हैं। उनकी लम्बाई (क्रम से) पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण तक है। उन शिलाओं की भूमि अस्थिर है और मुख स्थिर है ॥ ६३४ ॥

विशेषार्थ :—भरतक्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तीर्थङ्करों का जन्माभिषेक पाण्डुक शिला पर, पश्चिम विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकर देवों का पाण्डुकम्बला शिला पर, ऐरावत क्षेत्र सम्बन्धी तीर्थङ्करोंका रक्ता शिलापर और पूर्व विदेहमें जन्म लेने वाले तीर्थंङ्कर देवोंका जन्माभिषेक रक्तकम्बला शिला पर होता है। पाण्डुक शिला की लम्बाई पूर्व दिशा को ओर, पाण्डुकम्बला की पश्चिम को ओर, रक्ता की दक्षिण की ओर एवं रक्तकम्बला की लम्बाई उत्तर दिशा की ओर है। इन शिलाओं की भूमि अस्थिर और मुख स्थिर है।

नोट :—इन पाण्डुक आदि शिलाओं की लम्बाई १०० योजन और चौड़ाई ५० योजन है। यह चौड़ाई बहु मध्य भाग की है, अतः बहु मध्य भाग से चौड़ाई में दोनों ओर क्रमशः हानि होती गई है अतः अस्थिर है और लम्बाई सदृश है अतः स्थिर है। इस अपेक्षा मुख स्थिर और भूमि अस्थिर हो जाती है। अथवा शिलाओं के नीचे का भाग अस्थिर (खुरदरा) और ऊपर का भाग स्थिर (चिकना) है। यह अर्थ भी भूमि अस्थिर और मुख स्थिर का हो सकता है।

यह उपर्युक्त अर्थ मैंने अपनी समझ से लिखा है। इन शब्दों का यथार्थ भाव क्या है ? वह विद्वज्जनों द्वारा विचारणीय है।

अथ दृष्टान्तेन तेषां शिलातलानामाकृतिं प्रतिपादयन् दैर्घ्यमाचष्टे—

अद्धिंदुणिहा सव्वे सयपण्णासट्ठदीहवासुदया ।
आसणतियं तदुवरिं जिणसोहम्मदुगपडिबद्धं ॥६३५॥

अर्धेन्दुनिभाः सर्वाः शतपञ्चाशदष्टदीर्घव्यासोदयाः ।
आसनत्रयं तदुपरि जिनसौधर्मद्वयप्रतिबद्धं ॥ ६३५ ॥

अद्धि । ताः सर्वाः अर्धेन्दुनिभाः शतयोजनदीर्घाः पञ्चाशद्योजनव्यासा अष्टयोजनोदयाः स्युः । तासामुपरि जिनसौधर्मद्वयप्रतिबद्धमासनत्रयमस्ति ॥ ६३५ ॥

अब दृष्टान्त द्वारा उन शिलाओं की आकृति का प्रतिपादन करते हुए उनकी दीर्घता आदि कहते हैं—

गाथार्थ :—वे सब शिलाएं अर्धचन्द्राकार सदृश हैं। उनकी लम्बाई सौ योजन, बीच की चौड़ाई

पचास योजन और मोटाई ८ योजन प्रमाण है। उन शिलाओं के ऊपर तीर्थङ्कर, सौधर्मेन्द्र और ईशानेन्द्र सम्बन्धी तीन सिंहासन हैं ।। ६३५ ।।

अथ तदुपरिमासनत्रयस्वाम्यादिकमाह—

मज्झे सिंहासणयं जिणस्स दक्खिणगयं तु सोहम्मे ।
उत्तरमीसाणिंदे भद्दासणमिह तयं वट्टं ।। ६३६ ।।

मध्ये सिंहासनं जिनस्य दक्षिणगतं तु सौधर्मे ।
उत्तरमीशानेन्द्रे भद्रासनमिह त्रयं वृत्तम् ।। ६३६ ।।

मज्झे । तत्र मध्ये जिनेन्द्रस्य सिंहासनं सौधर्मस्य दक्षिणगतं भद्रासनं ईशानस्योत्तरगतं भद्रासनं इत्यासनत्रयं वृत्तम् ॥ ६३६ ॥

उन शिलाओं के ऊपर स्थित सिंहासन के स्वामी आदिक कहते हैं :—

गाथार्थ :—उन तीनों सिंहासनों में बीच का सिंहासन जिनेन्द्र देव सम्बन्धी है, दक्षिणगत सौधर्मेन्द्र का भद्रासन और उत्तरगत ईशानेन्द्र का भद्रासन है ये तीनों आसन गोलाकार हैं ।।६३६ ।।

विशेषार्थ :—पाण्डुक वन में मेरु शिखर पर स्थित उपर्युक्त चारों शिलाओं पर तीन तीन सिंहासन हैं। प्रत्येक शिला के मध्य का सिंहासन जिनेन्द्र देव सम्बन्धी है। जिनेन्द्र सिंहासन की दक्षिण दिशा में सौधर्मेन्द्र का भद्रासन तथा उत्तर दिशा में ईशानेन्द्र सम्बन्धी भद्रासन है। ये तीनों आसन गोल हैं।

अथ तदासनानामुदयादिकं मेरोश्चूलिकास्वरूपं चाह—

उदयं भूमुहवासं धणु पणपणसयतदद्धपुव्वमुहा ।
वेलुरिय चूलियस्स य जोयण चत्तं तु बारचऊ ।। ६३७ ।।

उदयं भूमुखव्यासं धनुः पञ्चपञ्चशतं तदर्धपूर्वमुखाः ।
वैडूर्यचूलिकायाश्च योजनं चत्वारिंशत् तु द्वादश चत्वारि ।। ६३७ ।।

उदयं । तदासनानामुदयभूमुखव्यासाः यथासंख्यं पञ्चशत ५०० पञ्चशत ५०० तदर्धं २५० धनुः प्रमिताः पूर्वमुखाश्च वैडूर्यमय्या मेरोश्चूलिकायाश्चोदयभूमुखव्यासा यथासंख्यं चत्वारिंशत् ४० द्वादश १२ चत्वारि ४ योजनानि स्युः ॥ ६३७ ॥

उन सिंहासनों का उदय आदि और मेरु पर्वत की चूलिका का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—उन आसनों का उदय, भूव्यास और मुख व्यास क्रम से पाँच सौ, पाँच सौ और पाँच सौ के अर्ध (२५०) धनुष प्रमाण है। उन आसनों का मुख पूर्व दिशा की ओर है। (पाण्डुक वन के मध्य मेरु की) वैडूर्यमयी चूलिका है जिसका उदय, भूव्यास और मुख व्यास क्रम से ४० योजन, बारह योजन और चार योजन प्रमाण है ।। ६३७ ।।

विशेषार्थः—प्रत्येक शिला स्थित तीनों आसनों की ऊंचाई ५०० धनुष नीचे की चौड़ाई ५०० धनुष और ऊपर की चौड़ाई २५० धनुष प्रमाण है। इन आसनों का मुख पूर्व दिशा की ओर है। पाण्डुक वन के मध्य में मेरु की वैडूर्य रत्नों से रचित चूलिका है जिसकी ऊंचाई ४० योजन, चूलिका की नीचे की चौड़ाई १२ योजन और ऊपर की चौड़ाई ४ योजन प्रमाण है।

पाण्डुक आदि चारों शिलाओं एवं सिंहासन आदि का चित्रण निम्न प्रकार है—

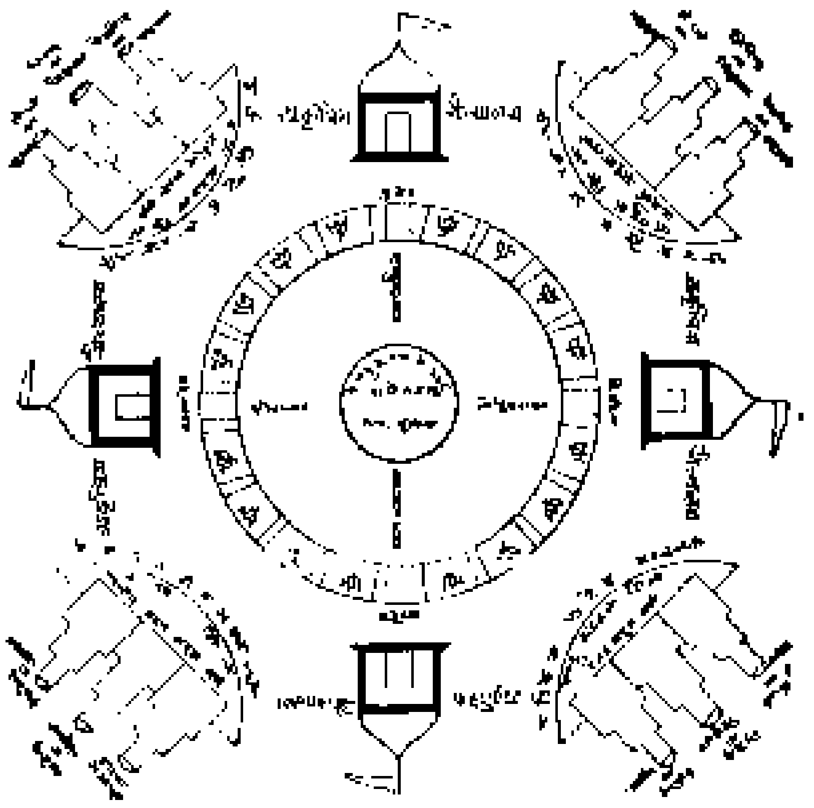

अथ उक्तानां सर्वेषां किञ्चिद्विशेषमाह—

पव्वदवावीकूडा सव्वाओ पंडुगादिय सिलाओ ।
वणवेदितोरणेहिं णाणामणिणिम्मिएहिं जुदा ॥ ६३८ ॥

पर्वतवापीकूटाः सर्वे पाण्डुकादिकाः शिलाः ।
वनवेदीतोरणैः नानामणिनिर्मितैः युताः ॥ ६३८ ॥

पव्वद । पर्वताः वाप्यः कूटाः पाण्डुकादिकाः शिलाश्च सर्वे नानामणिनिर्मितैर्वनवेदीभिस्तोरणैश्च युता। स्युः ॥ ६३८ ॥

ऊपर कहे हुए पर्वत कूट आदि सभी की कुछ विशेषता कहते हैं—

गाथार्थ :—पर्वत, वापी, कूट और पाण्डुकादि शिलाएं ये सभी नाना प्रकार की मणियों से निर्मित वनवेदियों एवं तोरणों से युक्त है ॥ ६३८ ॥

अथ जम्बूवृक्षस्थानादिकं सपरिकरं गाथैकादशकेनाह—

णीलसमीवे सीदापुव्वतडे मंदराचलीसाणे ।
उत्तरकुरुम्हि जंबूथली सपंचसयतलवासा ॥६३९॥

नीलसमीपे सीतापूर्वतटे मन्दराचलेशान्यां ।
उत्तरकुरौ जम्बूस्थली सपञ्चशततलव्यासा ॥ ६३९ ॥

णील । नीलगिरेः समीपे सीतानद्याः पूर्वतटे मन्दराचलस्यैशान्यां दिशि उत्तरकुरौ पञ्चशत-योजनतलव्यासा जम्बूवृक्षस्थल्यस्ति ॥ ६३९ ॥

जम्बूवृक्ष का स्थानादिक परिकर ग्यारह गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—नील कुलाचल के समीप, सीता नदी के पूर्व तट पर सुदर्शन मेरु की ईशान दिशा में उत्तरकुरुक्षेत्र में जम्बूवृक्ष की स्थली है जिसका तलव्यास पाँच सौ योजन है ॥६३९॥

अंते दलबाहल्ला मज्झे अट्ठुदय वट्ट हेममया ।
मज्झे थलिस्स पीढीमुदयतियं अट्ठबारचऊ ॥ ६४० ॥

अन्ते दलबाहल्या मध्ये अष्टोदया वृत्ता हेममया ।
मध्ये स्थल्याः पीठमुदयत्रयं अष्टद्वादशचतुः ॥ ६४० ॥

अंते । सा च पुनरन्ते दल ½ योजनबाहल्या मध्येऽष्टयोजनोदया वृत्ताकारा हेममयी स्यात् । तत्स्थलीमध्येऽष्टयोजनोदयं द्वादशयोजनभूव्यासं चतुर्योजनमुखव्यासं पीठमस्ति ॥ ६४० ॥

गाथार्थ :—वह स्थली अन्त में आधा योजन ऊँची, बीच में आठ योजन ऊँची, गोल आकार-वाली और स्वर्णमयी है। उसके बीच में आठ योजन ऊँचा, बारह योजन भूव्यास एवं चार योजन मुखव्यास वाला एक पीठ या पीठिका है।

तत्थलिउवरिमभागे बाहिं बाहिं पवेढिऊण ठिया ।
कंचणवलयसमाणा बारंबुजवेदिया णेया ॥ ६४१ ॥

तत्स्थल्युपरिमभागे बहिर्बहिः प्रवेष्ट्य स्थिताः ।
काञ्चनवलयसमानाः द्वादशाम्बुजवेदिकाः ज्ञेयाः ॥६४१॥

तत्थलि । तत्स्थल्युपरिमभागे बहिर्बहिः प्रवेष्ट्य काञ्चनवलयसमानाः अर्ध ½ योजनोत्सेधाः उत्सेधाष्टमव्यासाः नानारत्नसङ्कीर्णाः अम्बुजवेदिका द्वादश ज्ञेयाः ॥ ६४१ ॥

गाथार्थ :—उस स्थली के उपरिम भाग में बाहर बाहर एक दूसरे को वेष्टित करती हुई स्वर्ण वलय सदृश आधे योजन ऊँची और ऊँचाई के आठवें भाग प्रमाण अर्थात् $\frac{1}{16}$ योजन चौड़ी बारह अम्बुज वेदिकाएँ हैं ॥ ६४१ ॥

चदुगोउरजं वेदीबाहिरदो पढमबिदियगे सुण्णं ।
तदिए सुरुत्तमाणं अट्ठदिसे अट्ठसयरुक्खा ॥ ६४२ ॥

चतुर्गोपुरका वेदीबाह्यतः प्रथमद्वितीयके शून्यं ।
तृतीये सुरोत्तमानां अष्टदिशासु अष्टशतवृक्षाः ॥ ६४२ ॥

चढ । ता १२ वेद्यश्चतुर्गोपुरयुक्ताः बाह्यवेद्या आरभ्य प्रथमद्वितीयान्तराले शून्ये तृतीयेऽन्तराले सुरोत्तमानामष्टशतवृक्षाः १०८ अष्टसु दिशासु मिलित्वा भवन्ति ॥ ६४२ ॥

गाथार्थ :—वे १२ वेदियाँ चार चार गोपुरों (दरवाजों) से युक्त हैं। बाह्य वेदिका की ओर से प्रारम्भ करके प्रथम और द्वितीय अन्तराल में शून्य अर्थात् परिवार वृक्षादि कुछ नहीं है। तीसरे अन्तराल की आठों दिशाओं में उत्कृष्ट यक्षदेवों के १०८ वृक्ष हैं ॥ ६४२ ॥

तुरिए पुव्वदिसाए देवीणं चारि पंचमे दु वणं ।
वावी वट्टचउरस्सादी छट्ठे हवे गयणं ॥ ६४३ ॥

तुर्ये पूर्वदिशि देवीनां चत्वारः पञ्चमे तु वनं ।
वाप्यः वृत्तचतुरस्रादयः षष्ठे भवेत् गगनं ॥ ६४३ ॥

तुरिए । चतुर्थान्तराले पूर्वदिशि देवीनां चत्वारो वृक्षाः, पञ्चमे त्वन्तराले वनं तत्र वृत्तचतुरस्राद्या वाप्यश्च सन्ति । षष्ठेऽन्तराले शून्यं भवेत् ॥ ६४३ ॥

गाथार्थ :—चौथे अन्तराल में पूर्व दिशा में यक्षी देवाङ्गनाओं के चार जम्बू वृक्ष हैं। पाँचवें अन्तराल में वन है और उन वनों में चौकोर और गोल आकारवाली बावड़ियाँ हैं। छठे अन्तराल में किसी तरह की रचना नहीं है, वहाँ शून्य है ॥ ६४३ ॥

चउदिसमोलसहस्सं तणुरक्खे सत्तमम्हि अट्ठमगे ।
ईसाणुत्तरवादे चदुरसहस्सं समाणाणं ॥ ६४४ ॥

चतुर्दिक्षु षोडशसहस्रं तनुरक्षाणां सप्तमे अष्टमके ।
ऐशान्युत्तरवातासु चतुःसहस्रं समानानाम् ॥ ६४४ ॥

चउ । सप्तमान्तराले चतुर्दिक्षु मिलित्वा षोडशसहस्राणि १६००० अङ्गरक्षकाणां वृक्षाः अष्टमेऽन्तराले ऐशान्यामुत्तरस्यां वायव्यां च दिशि चतुः सहस्राणि सामानिकानां वृक्षाः ॥ ६४४ ॥

गाथार्थ :—सातवें अन्तराल की चारों दिशाओं में (प्रत्येक दिशा में चार चार हजार) सोलह हजार वृक्ष तनुरक्षकों के हैं तथा आठवें अन्तराल में ईशान, उत्तर और वायव्य दिशाओं में सामानिक देवों के चार हजार वृक्ष हैं ॥ ६४४ ॥

विशेषार्थ :—सातवें अन्तराल में चारों दिशाओं के मिलाकर कुल सोलह हजार वृक्ष उन्हीं उपर्युक्त यक्षों के अङ्गरक्षक देवों के वृक्ष हैं।

णवमतिए जलणजमे णेरिदि अब्भंतरतिपरिसाणं ।
बत्तीस ताल अडदालसहस्सा पायवा कमसो ॥ ६४५ ॥

नवमत्रये ज्वलनयाम्ययोः नैऋ त्यां अभ्यन्तरत्रिपरिषदां ।
द्वात्रिंशत् चत्वारिंशत् अष्टचत्वारिंशत् सहस्राणि पादपाः क्रमशः ॥६४५॥

णवम । नवमे दशमे एकादशे चान्तराले यथासंख्यं चाग्नेय्यां याम्यां नैऋ त्यां च दिशि अभ्यन्तरादिपरिषत्त्रयाणां द्वात्रिंशत्सहस्राणि चत्वारिंशत्सहस्राणि अष्टचत्वारिंशत् सहस्राणि च पादपाः क्रमशो भवन्ति ॥ ६४५ ॥

गाथार्थ :—नवमत्रये अर्थात् नौवें, दसवें और ग्यारहवें अन्तराल में आग्नेय, दक्षिण और नैऋत्य दिशाओं में अभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य पारिषद देवों के क्रमशः बत्तीस हजार, चालीस हजार और अड़तालीस हजार जम्बूवृक्ष हैं ॥ ६४५ ॥

विशेषार्थ :—नवम अन्तराल की आग्नेय दिशा में अभ्यन्तर पारिषद देवों के ३२००० वृक्ष, दसवें अन्तराल की दक्षिण दिशा में मध्यम पारिषद देवों के चालीस हजार वृक्ष और ग्यारहवें अन्तराल की वायव्य दिशा में बाह्य पारिषद देवों के ४८००० जम्बूवृक्ष हैं ।

सेणामहत्तराणं बारसमे पच्छिमम्हि सत्तेव ।
मुक्खजुदा परिवारा पउमादो पंचयज्भहिया ॥६४६ ॥

सेनामहत्तराणां द्वादशे पश्चिमायां सप्तैव ।
मुख्ययुताः परिवाराः पद्मेभ्यः पञ्चाभ्यधिकाः ॥ ६४६ ॥

सेणा । द्वादशेऽन्तराले पश्चिमायां दिशि सेनामहत्तराणां सप्तैव वृक्षाः मुख्यवृक्षयुताः सर्वे परिवारवृक्षाः पद्मसरसि स्थितपद्मेभ्यः पञ्चाभ्यधिकाः[1] स्युः । चतुर्थान्तरालस्थाः चत्वारो देवीवृक्षाः मुख्य एकवृक्षः इत्येतैरभ्यधिकत्वात् १४०१२० ॥ ६४६ ॥

गाथार्थ :—बारहवें अन्तराल की पश्चिम दिशा में सेना महत्तरों के सात वृक्ष हैं। एक मुख्य वृक्ष सहित सर्व परिवार वृक्षों का प्रमाण पद्म के परिवार पद्मों के प्रमाण से पाँच अधिक है ॥ ६४६ ॥

विशेषार्थ:—बारहवें अन्तराल में पश्चिम दिशा में सेना महत्तरों के सात ही जम्बू-वृक्ष हैं। इस प्रकार एक मुख्य जम्बू वृक्ष से युक्त सम्पूर्ण परिवार जम्बूवृक्षों का प्रमाण पद्मद्रह में स्थित श्रीदेवी के पद्म परिवारों के प्रमाण से पाँच अधिक है। यहाँ चौथे अन्तराल में चार अग्रदेवांगनाओं के चार और एक मुख्य जम्बू वृक्ष इस प्रकार पाँच अधिक हैं। इस प्रकार १ + १०८ + ४ + १६००० + ४००० +

---

१ पञ्चाधिकाः (ब०, प०) ।

३२००० + ४०००० + ६८००० + ७ = १४०१२० अर्थात् सम्पूर्ण जम्बूवृक्षों का प्रमाण एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस है।

दलगाढवासमरगय जोयणदुगतुंग सुथिरखंधो ।
पीठिय उवरिं जंबू वज्जदलट्ठवासदीह चउसाहा ।। ६४७ ।।
दलगाढव्यासमरकतः योजनद्विकतुङ्गः सुस्थिरस्कन्धः ।
पीठादुपरि जम्बू वज्रदलाष्टव्यासदीर्घाः चतुःशाखाः ।। ६४७ ।।

दल । अर्धयोजनगाधस्तद्व्यासो मरकतमयः पीठादुपरि योजनद्वयोत्तुङ्गः सुस्थिरस्कन्धो जम्बूवृक्षोऽस्ति । स्कन्धादुपरि वज्रमय्योऽर्धयोजनव्यासा अष्टयोजनदीर्घाश्चतस्रः शाखाः सन्ति ।। ६४७ ।।

गाथार्थ :—अर्ध योजन गहरी और एक कोश चौड़ी जड़ से युक्त तथा पीठ से दो योजन ऊँचे मरकत मणिमय, सुदृढ़ स्कन्ध से सहित जम्बूवृक्ष है। अपने स्कन्ध से ऊपर वज्रमय अर्ध योजन चौड़ी और आठ योजन लम्बी उसकी चार शाखाएँ हैं ।। ६४७ ।।

विशेषार्थ :—पीठ के बहुमध्य भाग में पाद पीठ सहित मुख्य जम्बूवृक्ष है जिसका मरकत मणिमय सुदृढ़ स्कन्ध पीठ से दो योजन ऊँचा, एक कोस चौड़ा और अर्ध योजन अवगाह (नींव) सहित है। स्कन्ध से ऊपर वज्रमय अर्ध योजन चौड़ी और आठ योजन लम्बी उसकी चार शाखाएँ हैं।

णाणारयणुवसाहा पवालसुमणा मुदिंगसरिसफला ।
पुढविमया दसतुंगा मज्झग्गे छच्चदुव्वासा ।। ६४८ ।।
नानारत्नोपशाखः प्रवालसुमनाः मृदङ्गसदृशफलः ।
पृथ्वीमयः दशतुङ्गः मध्याग्रे षट्चतुर्व्यासः ।। ६४८ ।।

णाणा । स च वृक्षो नानारत्नमयोपशाखः प्रवालवर्णसुमनाः मृदङ्गसदृशफलः पृथ्वीमयः दशयोजनतुङ्गो मध्याग्रे यथासंख्यं षट् ६ चतु ४ योजनव्यासः स्यात् ।। ६४८ ।।

गाथार्थ :—वह जम्बूवृक्ष नाना प्रकार की रत्नमयी उपशाखाओं से युक्त, प्रवाल (मूँगा) सदृश वर्ण वाले पुष्प और मृदङ्ग सदृश फल से संयुक्त पृथ्वीकायमय है (वनस्पति काय नहीं) उसकी सम्पूर्ण ऊँचाई दस योजन है। मध्य भाग की इसकी चौड़ाई ६ योजन और अग्र भाग की चौड़ाई चार योजन प्रमाण है ।। ६४८ ।।

उत्तरकुलगिरिसाहे जिणगेहो सेससाहतिदयम्हि ।
आदरअणादराणां जक्खकुलुत्थाणमावासा ।। ६४९ ।।
उत्तरकुरुगिरिशाखायां जिनगेहः शेषशाखात्रितये ।
आदरानादरयोः यक्षकुलोत्थयोरावासाः ।। ६४९ ।।

उत्तर । तस्य जम्बूवृक्षस्योत्तरकुलगिरिविभागस्थशाखायां जिनगेहोऽस्ति । शेषे शाखात्रये यक्षकुलोद्भवयोः आदरानादरयोरावासाः सन्ति ॥ ६४९ ॥

गाथार्थ :—उस जम्बूवृक्ष की जो शाखा उत्तर कुरुगत नील कुलाचल की ओर गई है, उस पर जिनमन्दिर है । अवशेष तीन शाखाओं पर यक्षकुलोत्पन्न आदर अनादर नामक देवों के आवास हैं ॥ ६४९ ॥

अथ परिवारवृक्षाणां प्रमाणं तेषां सस्वामिकत्वं चाह—

> जंबूतरुदलमाणा जंबूरुक्खस्स कहिदपरिवारा ।
> आदरअणादराणं परिवारावासभूदा ते ॥ ६५० ॥
> जम्बूतरुदलमाना जम्बूवृक्षस्य कथितपरिवाराः ।
> आदरानादरयोः परिवारावासभूतास्ते ॥ ६५० ॥

जंबू । जम्बूवृक्षपरिवारा जम्बूवृक्षप्रमाणार्धप्रमाणाः ते आदरानादरयोः परिवारावास-भूताः ॥ ६५० ॥

परिवारवृक्षों का प्रमाण और उनका स्वामित्व कहते हैं—

गाथार्थ :—जम्बूवृक्ष का जो प्रमाण कहा गया है, उसका अर्धप्रमाण परिवारजम्बूवृक्षों का कहा गया है । ये सभी परिवारजम्बू वृक्ष आदर अनादर देवों के परिवारों के आवास स्वरूप हैं ॥ ६५० ॥

विशेषार्थ :—परिवार जम्बूवृक्षों का प्रमाण मुख्य जम्बूवृक्ष के प्रमाण का आधा है तथा परिवार जम्बूवृक्षों की जो शाखाएं हैं उन पर आदर अनादर यक्ष परिवारों के आवास बने हुए हैं ।

अथ शाल्मलीवृक्षस्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

> सीतोदावरतीरे णिसहसमीवे सुरद्दिणेरिदिए ।
> देवकुरुम्हि मणोहरकूप्पयले सामली सपरिवारो ॥ ६५१ ॥
> सीतोदापरतीरे निषधसमीपे सुराद्रिनैर्ऋत्यां ।
> देवकुरौ मनोहरस्थलस्थले शाल्मली सपरिवारः ॥ ६५१ ॥

सीतोदा । सीतोदापरतीरे निषधसमीपे सुराद्रेः नैर्ऋत्यां दिशि देवकुरुक्षेत्रे मनोहरकूप्यस्थले सपरिवारः शाल्मलीवृक्षोऽस्ति । १४०१२० ॥ ६५१ ॥

दो गाथाओं में शाल्मली वृक्ष का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—सीतोदा नदी के पश्चिम तट पर, निषधकुलाचल के समीप, सुदर्शन मेरु की नैर्ऋत्य

दिशागत देवकुरुक्षेत्र में शाल्मली वृक्ष की मनोहारिणी रूप्यमयी स्थली है। वहाँ अपने १४०१२० परिवार शाल्मली वृक्षों सहित मुख्य शाल्मली वृक्ष है ॥ ६५१ ॥

जंबुसमवण्णणो सो दक्खिणसाहम्हि जिणगिहं सेसे ।
दिससाहतिए गरुडवइवेणुवेणादिधारिगिहं ॥ ६५२ ॥

जम्बूसमवर्णनः स दक्षिणशाखायां जिनगृहं शेषे ।
दिशाशाखात्रये गरुडपतिवेणुवेण्वादिधारिगृहम् ॥ ६५२ ॥

जंबू । असौ जम्बूसमवर्णनः तस्य दक्षिणशाखायां जिनगृहमस्ति । शेषे दिग्गतशाखात्रये गरुडपत्योर्वेणुवेणुधारिणोः गृहाणि संति ॥ ६५२ ॥

गाथार्थ :—शाल्मली वृक्ष का वर्णन भी जम्बूवृक्षसदृश ही है। शाल्मली की दक्षिण शाखा पर जिन भवन और शेष तीन शाखाओं पर गरुडकुमारों के स्वामी वेणु और वेणुधारी देवों के भवन हैं ॥ ६५२ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूवृक्ष और शाल्मली वृक्ष का वर्णन एक सा ही है। विशेषता इतनी ही है कि शाल्मली की दक्षिण शाखा पर जिनमन्दिर है और शेष तीन शाखाओं पर गरुडपति वेणु और वेणुधारी देवों के आवास हैं तथा शाल्मली वृक्ष के परिवारवृक्षों पर वेणु और वेणुधारी देवों के परिवारों के आवास हैं।

अथ भोगभूमिकर्मभूम्योर्विभागमाह—

कुरुओ हरिरम्मगभू हेमवदेरण्णवदखिदी कमसो ।
भोगधरा वरमज्झिमवराय कम्मावणी सेसा ॥ ६५३ ॥

कुरू हरिरम्यकभुवौ हैमवतैरण्यवतक्षिती क्रमशः ।
भोगधराः वरमध्यमावराः कर्मावनयः शेषाः ॥ ६५३ ॥

कुरुओ । देवकुरूत्तरकुरुक्षेत्रे द्वे उत्तमभोगभूमी हरिरम्यकक्षेत्रे द्वे मध्यमभोगभूमी, हैमवत-हैरण्यवतक्षेत्रे द्वे जघन्यभोगभूमी स्यातां । शेषाः सर्वाः कर्मभूमयः ॥ ६५३ ॥

गाथार्थ :—देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र में उत्तमभोग भूमि है, हरि और रम्यक क्षेत्र में मध्यम भोगभूमि है तथा हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र में जघन्य भोगभूमि है, इस प्रकार दो उत्तम भोगभूमियाँ दो मध्यम और दो जघन्य इस प्रकार कुल छह भोगभूमियाँ हैं। शेष बचे सभी क्षेत्रों में कर्मभूमियाँ हैं अर्थात् ५ भरत ५ ऐरावत और ५ विदेह–कुल १५ कर्मभूमियाँ हैं।

अथ यमकगिरेः स्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

णीलणिसहादु गत्ता सहस्समुभए तडे वरणईणं ।
दुगदुगसेला पुव्वो चित्तो अवरो विचित्तक्खो ॥६५४॥
जमगो मेघो वट्टा पंचसयंतरठिया तदुदयधरा ।
वदणं सहस्समद्धं गिरिणामसुरा वसंति गिरिकूडे ॥६५५॥

नीलनिषधतो गत्वा सहस्रमुभये तटे वरनद्योः ।
द्विकद्विकशैलौ पूर्वः चित्रः अपरः विचित्राख्यः ॥ ६५४ ॥
यमकः मेघः वृत्ताः पञ्चशतान्तरस्थिताः तदुदयधराः ।
वदनं सहस्रमर्धं गिरिनामसुराः वसन्ति गिरिकूटे ॥ ६५५ ॥

णील । नीलनिषधाभ्यां पुरस्तात् सहस्रयोजनं गत्वा वरनद्योः सीतासीतोदयोरुभयतटे द्वौ द्वौ शैलौ भवतः । तयोर्मध्ये पूर्वतटगतश्चित्रोऽपरतटगतो विचित्राख्यः ॥ ६५४ ॥

जमगो । यमको मेघश्च तथा ते चत्वारो वृत्ताः । तत्र चित्रविचित्रयोर्यमकमेघयोश्चान्तरं पञ्चशतयोजनानि, तेषां चतुर्णामुदयभूमुखव्यासा यथासंख्यं सहस्रं १००० सहस्रं १००० तदर्धं ५०० योजनानि । तेषु गिरिकूटेषु तद्गिरिनामसुरा वसन्ति ॥ ६५५ ॥

यमक गिरि का स्वरूप दो गाथाओं में कहते हैं—

गाथार्थ :—निषध और नील कुलाचलों से (मेरु की ओर) हजार योजन आगे जाकर उत्कृष्ट सीता और सीतोदा नदी के दोनों तटों पर दो दो पर्वत हैं। उनमें से सीता के पूर्व तट पर चित्र और पश्चिम तट पर विचित्र नाम के तथा सीतोदा के पूर्व तट पर यमक और पश्चिम तट पर मेघ नाम पर्वत हैं। ये चारों पर्वत गोल हैं और पाँच पाँच सौ योजन के अन्तराल से स्थित हैं। इन पर्वतों की ऊँचाई, भूव्यास और मुख व्यास क्रम से एक हजार, एक हजार और पाँच सौ योजन है। इन गिरिकूटों पर पर्वत सदृश नाम वाले ही देव रहते हैं ॥ ६५४, ६५५ ॥

विशेषार्थ :—नील और निषध कुलाचलों से मेरु पर्वत की ओर १००० योजन आगे जाकर उत्कृष्ट सीता और सीतोदा नदियों के दोनों तटों पर दो दो पर्वत हैं। इनमें से सीता नदी के पूर्व तट पर चित्र और पश्चिम तट पर विचित्र नामक पर्वत हैं। इन दोनों पर्वतों के बीच ५०० योजन का अन्तराल है। इसी अन्तराल में ५०० योजन विस्तार वाली सीता नदी है। सीतोदा नदी के पूर्व तट पर यमक और पश्चिम तट पर मेघ नाम के पर्वत हैं। इन दोनों में भी ५०० योजन का अन्तराल है और अन्तराल में ५०० योजन विस्तार वाली सीतोदा नदी है। ये चारों यमकगिरि गोल हैं। इन चारों की ऊँचाई १००० योजन, भूव्यास अर्थात् जमीन पर इनकी चौड़ाई १००० योजन और ऊपर की चौड़ाई ५०० योजन प्रमाण है। इन गिरि कूटों पर अपने अपने पर्वत के नाम वाले अर्थात् चित्र, विचित्र यमक और मेघ नाम के चार देव चारों कूटों पर क्रम से निवास करते हैं।

अथ मेरोः पूर्वापरदक्षिणोत्तरदिक्षु स्थितानां ह्रदानां प्रमाणमेकैकस्य ह्रदस्य तीरद्वयस्थितानां काञ्चनशैलानां संख्यां च तदुत्सेधेन सह गाथाचतुष्टयेनाह—

गमिय तदो पंचसयं पंचसरा पंचसयमिदंतरिया ।
कुरुभद्दसालमज्झे अणुणदिदीहा हु पउमदहसरिसा ॥६५६॥

गत्वा ततः पञ्चशतं पञ्च सरांसि पञ्चशतमितान्तरिताः ।
कुरुभद्रशालमध्ये अनुनदिदीर्घाणि हि पद्महृदसदृशानि ॥ ६५६ ॥

गमिय । यमकगिरिभ्यां पञ्चशतयोजनानि ५०० गत्वा कुरुक्षेत्रयोः पूर्वापरभद्रसालयोश्च मध्ये पंचशतयोजनान्तराणि पञ्च पञ्च सरांसि । अनुनदियथायोग्यदीर्घाणि आयामकमलादिना पद्महृदसदृशानि संति ॥ ६५६ ॥

मेरु पर्वत की पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इन चारों दिशाओं में स्थित द्रहों का प्रमाण तथा एक एक ह्रद के दोनों तटों पर स्थित काञ्चनशैलों की संख्या तथा उत्सेध चार गाथाओं द्वारा कहते हैं:—

गाथार्थ :—यमक गिरि से पाँच सौ योजन आगे जाकर कुरु और भद्रशाल क्षेत्रों में पाँच पाँच द्रह हैं। जिनमें प्रत्येक के बीच पाँच पाँच सौ योजन का अन्तराल है। ये द्रह नदी के अनुसार यथायोग्य दीर्घ हैं, तथा इनमें रहने वाले कमल आदि का आयाम पद्मद्रह के सदृश है ॥ ६५६ ॥

विशेषार्थ:—यमक गिरि पर्वतों से पाँच सौ योजन आगे जाकर सीता और सीतोदा नदी में देव कुरु, उत्तर कुरु, पूर्व भद्रशाल और पश्चिम भद्रशाल इन चार क्षेत्रों के मध्य पाँच पाँच अर्थात् २० द्रह हैं। ये द्रह नदी के अनुसार यथायोग्य दीर्घ हैं। अर्थात् ये द्रह सीता सीतोदा नदी के बीच बीच में हैं, अतः नदी की जहाँ जितनी चौड़ाई है, उतनी ही चौड़ाई का प्रमाण द्रहों का है। इन द्रहों की लम्बाई पद्म द्रह के सदृश १००० योजन प्रमाण है। जिस प्रकार पद्म द्रह में कमलादिक की रचना है उसी प्रकार इन द्रहों में भी है।

नोट :—उपर्युक्त गाथा में सीता, सीतोदा सम्बन्धी देवकुरु, उत्तर कुरु, पूर्व भद्रशाल और पश्चिम भद्रशाल में ५, ५ अर्थात् २० द्रह बतलाये गये हैं, किन्तु गाथा ६५७ में मात्र १० द्रहों के ही नाम गिनाये हैं, बीस के नहीं। अन्य आचार्यों (तिलोयपण्णत्ति एवं लोक विभाग आदि में) ने कुल दश ही द्रह माने हैं, २० नहीं माने।

णीलुत्तरकुरुचंदा एरावदमल्लवंतणिसहा य ।
देवकुरुसुरसुलसाविज्जू सीददुगदहणामा ॥ ६५७ ॥

नीलोत्तरकुरुचन्द्रा ऐरावतमाल्यवन्तौ निषधश्च ।
देवकुरुसुरसुलसविद्युतः सीताद्विकह्रदनामानि ॥ ६५७ ॥

णीलु । नीलोत्तरकुरुचन्द्रैरावतमाल्यवन्तः इत्येताः पञ्च निषधदेवकुरुसूरसुलसविद्युतः इत्येताः पञ्च सीतासीतोदयोः ह्रदनामानि ॥ ६५७ ॥

गाथार्थ :—नील, उत्तरकुरु, चन्द्र, ऐरावत और माल्यवन्त ये पाँच द्रह सीता नदी के हैं तथा निषध, देवकुरु, सूर, सुलस और विद्युत ये पाँच सीतोदा नदी के द्रहों के नाम हैं।

णइणिग्गमदारजुदा ते तप्परिवारवण्णणं चेसिं ।
पउमव्व कमलगेहे णागकुमारीउ णिवसंति ॥ ६५८ ॥
नदीनिर्गमद्वारयुतानि तानि तत्परिवारवर्णनं चैषां ।
पद्ममिव कमलगेहेषु नागकुमार्यो निवसन्ति ॥ ६५८ ॥

णइ । तानि सरांसि नदीप्रवेशनिर्गमद्वारयुतानि । एतेषां तत्परिवारवर्णनं च पद्मसर इव तत्रत्यकमलोपरिमगृहेषु सपरिवाराः नागकुमार्यो निवसन्ति ॥ ६५८ ॥

गाथार्थ :—ये सभी सरोवर नदी के प्रवेश एवं निर्गम द्वारों से सहित हैं तथा इन सरोवरों के परिवार आदि कमलों का वर्णन पद्मद्रह के सदृश ही है किन्तु सरोवर स्थित कमलों के गृहों में नागकुमारी देवियाँ निवास करती हैं ॥ ६५८ ॥

विशेषार्थ :—दोनों नदियों के प्रवाह के बीच में सरोवर हैं और इन सरोवरों की वेदिकाएँ हैं, जो नदी के प्रवेश और निर्गम द्वारों से युक्त हैं। इन सरोवरों के परिवार कमलों का वर्णन पद्मद्रह के परिवार कमलों के सदृश ही है। विशेषता केवल इतनी है कि इन कमलों पर स्थित गृहों में नाग-कुमारी देवियाँ सपरिवार निवास करती हैं।

दुतडे पण पण कंचणसेला सयसयतदद्धमुदयतियं ।
ते दहमुहा णगक्खा सुरा वसंतीह सुगवण्णा ॥ ६५९ ॥
द्वितटे पञ्च पञ्च काञ्चनशैलाः शतशततदर्धमुदयत्रयम् ।
ते ह्रदमुखा नगाख्याः सुराः वसन्ति इह शुकवर्णाः ॥ ६५९ ॥

दुतडे । तेषां सरसां द्वितटे पञ्च पञ्च काञ्चनशैलाः तेषामुदयभूमुखव्यासा यथासंख्यं शत १०० शत १०० पञ्चाशत् ५० योजनानि च शैला ह्रदसम्मुखाः । कथमेतत् । तदुपरिस्थनगरद्वाराणां ह्रदाभिमुखत्वात् । शुकवर्णास्तत्तन्नगाख्याः सुरास्तेषामुपरि वसन्ति ॥ ६५९ ॥

गाथार्थ :—उन सरोवरों के दोनों तटों पर पाँच पाँच काञ्चन पर्वत हैं जिनका उदय, भूव्यास और मुखव्यास क्रमशः सौ योजन, सौ योजन और पचास योजन प्रमाण है। ये सभी पर्वत ह्रदाभिमुख अर्थात् ह्रदों के सम्मुख हैं। इन पर्वतों के शिखरों पर पर्वत सदृश नाम एवं शुकसदृश कान्तिवाले देव निवास करते हैं ॥ ६५९ ॥

विशेषार्थ :—प्रत्येक द्रह के दोनों (पूर्व, पश्चिम) तटों पर पंक्ति रूप से पाँच पाँच काञ्चन पर्वत हैं जिनकी ऊँचाई १०० योजन, भू व्यास अर्थात् जमीन पर पर्वतों की चौड़ाई १०० योजन और मुख व्यास अर्थात् शिखर पर ५० योजन चौड़ाई है। ये सभी पर्वत अपने अपने द्रहों के सम्मुख हैं। प्रश्न—पर्वतों में सम्मुखपना कैसे सम्भव हो सकता है ? उत्तर :—काञ्चन शैलों के ऊपर जो देवों के नगर हैं, उनके द्वार सरोवरों की ओर होने से पर्वतों को ह्रदसम्मुख कहा गया है। इन पर्वतों पर स्वपर्वत नाम धारी शुक सदृश वर्ण-कान्ति के धारक देव निवास करते हैं।

अथ तत उपरि नदीगमनस्वरूपमाह—

दहदो गंतूणग्गे सहस्सदुगणउदिदोण्णि वे च कला ।
णदिदारजुदा वेदी दक्खिणउत्तरगभद्दसालस्स ।। ६६० ।।

ह्रदत: गत्वाग्रे सहस्रद्विकनवतिद्वि द्वे च कले ।
नदीद्वारयुता वेदी दक्षिणोत्तरगभद्रशालस्य ।।६६०।।

दहदो । ह्रदेभ्यः अग्रे सहस्रद्विकनवतिद्वियोजनानि २०९२ योजनैकोनविंशतिभागद्विकलाधिकानि च $\frac{2}{19}$ गत्वा नदीद्वारयुता दक्षिणोत्तरभद्रशालस्य वेदी तिष्ठति । अस्यानयनवासना । दक्षिणो २५० त्तरभद्रशाल २५० सहितमन्दर १०००० व्यासं १०५०० विदेहव्यासे ३३६८४$\frac{4}{19}$ स्फेटयित्वा २३१८४$\frac{4}{19}$ अर्धीकृत्य ११५९२$\frac{2}{19}$ । एतस्मिन् चित्रगिरिकुलगिर्योरन्तरं १००० चित्रनगव्यासं १००० चित्रनगद्रहान्तरं ५०० पञ्चह्रदायामं ५००० तेषामन्तरं च २००० एतत्सर्वमेकीकृत्य ९५०० अपनीते चरमह्रदभद्रशाल-वेदिकयोरन्तर २०९२$\frac{2}{19}$ मायाति ।। ६६० ।।

अब द्रहों से आगे नदी के गमन का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—द्रहों से आगे दो हजार बानवे योजन और दो कला जाकर नदी द्वारसे संयुक्त दक्षिण-उत्तर भद्रशाल वन की वेदी अवस्थित है ।। ६६० ।।

विशेषार्थ :—ह्रद से आगे २०९२$\frac{2}{19}$ योजन जाकर नदी द्वार से संयुक्त दक्षिण उत्तर भद्रशाल वन की वेदी अवस्थित है। इसकी वस्तु वासना—

यथा—भद्रशाल वन दक्षिण दिशा में २५० योजन और उत्तर दिशा में भी २५० योजन चौड़ा है। भूमि पर सुदर्शन मेरु की चौड़ाई १०००० योजन है इन तीनों के योग (१०००० + २५० + २५०)= १०५०० योजनों को विदेह व्यास (३३६८४$\frac{4}{19}$ योजन) में से घटा कर अवशेष का आधा करने पर ($\frac{३३६८४\frac{4}{19} - १०५००}{2}$)= ११५९२$\frac{2}{19}$ योजन प्राप्त हुए।

सीता-सीतोदा दोनों नदियों के पूर्व पश्चिम तटों पर चित्रादि चार पर्वत हैं। चित्र और विचित्र पर्वत के बीच ५०० योजन का तथा यमक और मेघ के बीच ५०० योजन का अन्तराल है। चित्रादि यमक गिरि का भू व्यास १००० योजन है। चित्र पर्वत से सरोवर का अन्तर ५०० योजन है एक द्रह

की लम्बाई एक हजार योजन की है, अतः पाँच द्रहों की लम्बाई ५००० योजन हुई। एक द्रह से दूसरे द्रह का अन्तराल ५०० योजन है, अतः पाँच द्रहों के चार अन्तरालों का योग २००० योजन हुआ। इन सबके योग (५००+५००+१०००+५००+५०००+२०००)=९५०० योजनों को पूर्वोक्त ११५९२$\frac{२}{१९}$ योजनों में से घटा देने पर (११५९२$\frac{२}{१९}$ — ९५००)=२०९२$\frac{२}{१९}$ योजन अवशेष रहे। यही अन्तिमद्रह और भद्रशाल की वेदी के बीच का अन्तराल है। इसीलिए गाथा में कहा गया है कि द्रह से २०९२$\frac{२}{१९}$ योजन आगे जाकर भद्रशाल की वेदी अवस्थित है।

अथ दिग्गजपर्वतानां स्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

कुरुभद्दसालमज्झे महाणदीणं च दोसु पासेसु।
दो दो दिसागइंदा सयसयियतद्दलुदयतिया ॥६६१॥

कुरुभद्रशालमध्ये महानद्योश्च द्वयोः पार्श्वयोः।
द्वौ द्वौ दिशागजेन्द्रौ शतशतवतद्दलमुदयत्रयाणि ॥६६१॥

कुरु। कुरुक्षेत्रभद्रशालयोः पूर्वापरभद्रशालयोश्च मध्ये महानद्योरुभयपार्श्वयोर्द्वौ द्वौ दिग्गजेन्द्रपर्वतौ तिष्ठतः तेषामष्टदिग्गजपर्वतानामुदयभूमुखव्यासा यथासंख्यं शत १०० शत १०० पञ्चाश ५० योजनानि स्युः ॥ ६६१ ॥

दो गाथाओं द्वारा दिग्गज पर्वतों का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—कुरु अर्थात् देवकुरु और उत्तर कुरु क्षेत्र में तथा पूर्व-पश्चिम भद्रशाल वनों के मध्य में महानदी सीता और सीतोदा के दोनों पार्श्व भागों (तटों) पर दो दो दिग्गजेन्द्र पर्वत हैं। इनका उदय, भूव्यास और मुखव्यास ये तीनों क्रम से १०० योजन, सौ योजन और तद्दल अर्थात् ५० योजन है ॥ ६६१ ॥

विशेषार्थ :—देवकुरु, उत्तरकुरु इन दो भोगभूमियों में तथा पूर्व भद्रशाल और पश्चिम भद्रशाल वन के मध्य में महानदी सीता और सीतोदा के दोनों तटों पर दो दो दिग्गजेन्द्र पर्वत स्थित हैं। इन आठ दिग्गज पर्वतों का उदय (ऊँचाई) १०० योजन, भूमि पर पर्वतों की चौड़ाई १०० योजन और मुख अर्थात् शिखर पर ५० योजन चौड़ाई है।

तण्णामा पुव्वादी पउमुत्तरणीलसोत्थियंजणया।
कुमुदपलासवतंसयरोचणमिह दिग्गजिंदसुरा ॥६६२॥

तन्नामानि पूर्वादिः पद्मोत्तरनीलस्वस्तिकाञ्जनकाः।
कुमुदपलाशावतंसरोचनमिह दिग्गजेन्द्रसुराः ॥ ६६२ ॥

तण्णामा । पूर्वविदिशः आरभ्य पद्मोत्तरनीलस्वस्तिकाञ्जनकुमुदपलाशावतंसरोचनमिति तेषां नामानि । इह दिग्गजेन्द्रसुराः तिष्ठन्ति ॥ ६६२ ॥

गाथार्थ :—पूर्वादि दिशाओं में उनके नाम क्रम से पद्मोत्तर, नील, स्वस्तिक अञ्जन, कुमुद, पलाश, अवतंस और रोचन हैं। इन पर्वतों के ऊपर दिग्गजेन्द्र देव रहते हैं ॥ ६६२ ॥

विशेषार्थ:—सुदर्शन मेरु पर्वत की पूर्व दिशा में भद्रशाल वन है वहाँ से बहने वाली सीता नदी के उत्तर तट पर पद्मोत्तर और दक्षिण तट पर नीलवान् नाम के पर्वत हैं। इसी सुमेरु को दक्षिण दिशा में देवकुरु भोग भूमि की अवस्थिति है, इसके मध्य सीतोदा नदी के पूर्व तट पर स्वस्तिक और पश्चिम तट पर अञ्जन नाम के पर्वत हैं। सुमेरु की पश्चिम दिशा में जो भद्रशाल वन है, उसके मध्य सीतोदा नदी के दक्षिण तट पर कुमुद और उत्तर तट पर पलाश पर्वत है तथा मेरु की उत्तर दिशा स्थित उत्तर कुरु भोगभूमि के मध्य सीता नदी के पश्चिम तट पर अवतंश और पूर्व तट पर रोचन नाम के पर्वत हैं। इन आठों पर्वतों पर दिग्गजेन्द्र देव निवास करते हैं।

अथ गजदन्तपर्वतानां नामादिकं गाथाद्वयेनाह—

मल्लव महसोमणसो विज्जुप्पह गंधमादणिभदंता ।
ईसाणादो वेलुरियरुप्पतवणीयहेममया ॥ ६६३ ॥
णीलणिसहे सुरद्दिं पुट्ठा मल्लवगुहादु सीता सा ।
विज्जुप्पहगिरिगुहदो सीतोदाणिस्सरित्तु गया ॥ ६६४ ॥

माल्यवान् महासोमनसः विद्युत्प्रभः गन्धमादन इभदन्ताः ।
ईशानतः वैडूर्यरूप्यतपनीय हेममयाः ॥ ६६३ ॥
नीलनिषधौ सुराद्रि स्पृष्टाः माल्यवद्गुहायाः सीता सा ।
विद्युत्प्रभगिरिगुहातः सीतोदा निसृत्य गता ॥ ६६४ ॥

मल्लव । माल्यवान् महासौमनसो विद्युत्प्रभो गन्धमादन इतीभदन्ताः वैडूर्यरूप्यतपनीयहेममयाः मेरोरीशानदिशः आरभ्य तिष्ठन्ति ॥ ६६३ ॥

णील । ते च नीलनिषधौ सुराद्रिं च स्पृष्टाः । तत्र माल्यवतो गुहायाः निःसृत्य सा सीता गता विद्युत्प्रभगिरिगुहायाश्च निर्गत्य सीतोदा गता ॥ ६६४ ॥

अब दो गाथाओं द्वारा गजदन्त पर्वतों के नामादिक कहते हैं :—

गाथार्थ :—मेरु पर्वत की ऐशान दिशा से प्रारम्भ कर चारों विदिशाओं में क्रम से वैडूर्य रूप्य, तपनीय स्वर्ण और स्वर्ण सदृश वर्ण वाले माल्यवान, महासौमनस, विद्युत्प्रभ और गन्धमादन नाम के गजदन्त पर्वत हैं। वे गजदन्त पर्वत सुमेरु पर्वत से नील और निषध कुलाचल का स्पर्श करते हैं। माल्यवान् पर्वत की गुफा से सीता नदी और विद्युत्प्रभ पर्वत की गुफा से सीतोदा नदी निकल कर गई है ॥ ६६३, ६६४ ॥

विशेषार्थ :—मेरु पर्वत के ईशान कोण में वैडूर्य मणिमय माल्यवान् पर्वत है। आग्नेय कोण में रूप्यमय महासौमनस, नैऋत्य में तपाये हुए स्वर्ण सदृश वर्ण वाला विद्युत्प्रभ और वायव्य कोण में स्वर्ण सदृश वर्ण वाला गन्धमादन नामक गजदन्त पर्वत है। ये चारों पर्वत मेरु पर्वत से नील और निषध कुलाचलों तक (३०२०९$\frac{6}{19}$ योजन) लम्बे हैं। अर्थात् उन्हें स्पर्श करते हैं माल्यवान् पर्वत की गुफा से निकलकर सीता नदी मेरु की अर्ध प्रदक्षिणा देती हुई गई है और विद्युत्प्रभ गजदन्त की गुफा से निकल कर सीतोदा नदी भी मेरु की अर्धप्रदक्षिणा देती हुई गई है।

इदानीं विदेहदेशानां विभागं निदर्शयति—

उभयंतगवणवेदिंग मज्झगवेभंगणदितियाणं च।
मज्झगवक्खारचऊ पुव्ववरविदेहविजयद्धा ॥ ६६५ ॥
उभयान्तगवनवेदिकामध्यगविभङ्गनदीत्रयाणां च।
मध्यगवक्षारचतुर्भिः पूर्वापरविदेहविजयार्धाः ॥ ६६५ ॥

उभयंत। उभयप्रान्तगतवनवेदिकामध्यगतविभङ्गनदीत्रयाणां मध्यस्थितवक्षारपर्वतैश्चतुर्भिः पूर्वापरविदेहदेशाः अर्धीकृताः ॥ ६६५ ॥

अब विदेह देशों के विभाग का निरूपण करते हैं—

गाथार्थ :—पूर्व विदेह और पश्चिम विदेह क्षेत्र के सीता और सीतोदा नदी के द्वारा अर्ध अर्ध भाग हुए हैं। इनमें से प्रत्येक भाग के दोनों प्रदेशों के वनवेदियों के मध्य में तीन तीन विभङ्गा नदी और मध्य में ही चार चार वक्षारगिरि हैं ॥ ६६५ ॥

विशेषार्थ :—मेरु पर्वतकी पूर्व दिशा में पूर्वविदेह और पश्चिम दिशामें पश्चिम विदेह है। पूर्व विदेहके मध्यसे सीता नदी और अपर विदेहके मध्यसे सीतोदा नदी बही है। इन नदियों के दक्षिण–उत्तर तटों के द्वारा चार क्षेत्र बन गये हैं इन्हीं एक एक क्षेत्र अर्थात् विभागों में आठ आठ विदेह देश हैं। इनका विभाग दो वन वेदियों, तीन तीन विभङ्गा नदियों और चार चार वक्षार पर्वतों द्वारा हुआ है। यथा—सर्व प्रथम पूर्व व पश्चिम भद्रशाल की वेदी, उसके आगे वक्षार पर्वत, उसके आगे विभङ्गा नदी, फिर वक्षार पर्वत, फिर विभङ्गा, उसके आगे पुनः वक्षार पर्वत, उसके आगे पुनः विभङ्गा नदी, उसके आगे वक्षार पर्वत और उसके आगे देवारण्य व भूतारण्य वन की वेदियाँ हैं। ये सब मिलकर नौ हैं। इन नौ के बीच में आठ आठ विदेह देश हैं। इस प्रकार चार विभागों के कुल मिलाकर ३२ विदेह देश होते हैं।

अथ वक्षाराणां विभंगनदीनां च नामादिकं गाथाषट्केनाह—

तण्णामा सीदुत्तरतीरादो पदमदो पदक्खिणदो।
चेत्तादिकूडपडमादिमकूडा णलिण एगसेलगगो ॥६६६॥

गाहदहपंकवदिणदी तिकूडवेसवणअंजणप्पादि ।
अंजणगो तत्तजला मत्तजलुम्मत्तजल सिंधू ॥ ६६७ ॥
सद्दावं विजडावं आसीविस सुहवहा य वक्खारा ।
खारोदा सीतोदा सोदोवाहिणि णदी मज्झे ॥ ६६८ ॥
तो चंदसूरणागादिममाला देवमाल वक्खारा ।
गंभीरमालिणी फेणमालिणी उम्मिमालिणी सरिदा ॥६६९॥
हेममया वक्खारा वेभंगा रोहिसरिसवण्णणमा ।
तासिं पवेसतोरणगेहे णिवसंति दिक्कण्णा ॥ ६७० ॥

तन्नामानि सीतोत्तरतीरात् प्रथमतः प्रदक्षिणतः ।
चित्रादिकूटपद्मादिमकूटौ नलिनः एकशैलकगः ॥ ६६६ ॥
गाधह्रदपङ्कवतीनद्यः त्रिकूटवैश्रवणाञ्जनात्मादिः ।
अञ्जनकाः तप्तजला मत्तजला उन्मत्तजला सिन्धुः ॥ ६६७ ॥
श्रद्धावान् विजटावान् आशीविषः सुखावहश्च वक्षाराः ।
क्षारोदा सीतोदा श्रोतोवाहिनी नद्यः मध्ये ॥ ६६८ ॥
ततः चन्द्रसूर्यनागादिममालदेवमालाः वक्षाराः ।
गम्भीरमालिनी फेनमालिनी ऊर्मिमालिनी सरितः ॥ ६६९ ॥
हेममया वक्षाराः विभङ्गा रोहितसदृशवर्णनकाः ।
तासां प्रवेशतोरणगेहे निवसन्ति दिक्कन्याः ॥ ६७० ॥

तण्णामा । सीतानद्युत्तरतीरं प्रथमं कृत्वा प्रदक्षिणतस्तेषां वक्षाराणां विभङ्गनदीनां च नामान्याह । अथ चित्रकूटपद्मकूटनलिनैकशैलाख्याश्चत्वारो वक्षारपर्वताः ॥ ६६६ ॥

गाह । गाधवती ह्रदवती पङ्कवत्याख्यास्तिस्रो विभङ्गनद्यः । त्रिकूटवैश्रवणाञ्जनात्माञ्जनाख्याश्चत्वारः सीतादक्षिणविकस्थवक्षारपर्वताः । तप्तजलामत्तजलोन्मत्तजलेति तिस्रः तत्रस्थनद्यः ॥६६७॥

सद्दावं । श्रद्धावान् विजटावान् आशीविषः सुखावहश्चेति चत्वारोऽपरविदेहसीतोदादक्षिणविकस्थवक्षाराः क्षारोदासीतोदास्रोतोवाहिनी चेति तिस्रो नद्यो वक्षाराणां मध्ये संति ॥ ६६८ ॥

तो । ततश्चन्द्रमालः सूर्यमालो नागमालो देवमाल इति चत्वारोऽपरविदेहसीतोदोत्तरविकस्थवक्षाराः । गम्भीरमालिनी फेनमालिनी ऊर्मिमालिनीति तिस्रस्तत्रस्थसरितः ॥ ६६९ ॥

हेम । ते वक्षाराः हेममया, विभङ्गनद्यो रोहितसदृशवर्णनकाः । यथा रोहितनिर्गमादौ व्यासादयस्तथात्रापि । नदीनिर्गमे १२½ प्रवेशव्यासो १२५ । परिवारनद्यः २८००० निर्गमे प्रवेशे च तोरणोत्सेधः १८¾ । १८७½ ज्ञातव्यः । तासां निर्गमप्रवेशतोरणोपरिमगेहे दिक्कन्या निवसंति ॥६७०॥

वक्षार पर्वतों और विभंगा नदियों के नामादिक छह गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—सीता नदी के उत्तर तट से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणा रूप से चार वक्षार पर्वतों के नाम चित्रकूट, पद्मकूट, नलिन और एकशैल हैं। तथा गाधवती, द्रहवती और पङ्कवती नाम की तीन विभंगा नदियां हैं। सीता नदी के दक्षिण तट को आदि करके क्रम से त्रिकूट, वैश्रवण, अञ्जनात्मा और अञ्जन नामक चार वक्षार पर्वत और तप्तजला, मत्तजला एवं उन्मत्तजला नामकी तीन विभंगा नदियाँ हैं।

[पश्चिम विदेह में सीतोदा के दक्षिण तट पर भद्रशाल वेदी से प्रारम्भ कर क्रम से] श्रद्धावान, विजटावान्, आशीविष और सुखावह नाम के चार वक्षार पर्वत हैं, तथा इनके बीचों बीच क्षारोदा, सीतोदा और स्रोतवाहिनी नाम की तीन विभंगा नदियां हैं। इसके बाद चन्द्रमाल, सूर्यमाल, नागमाल और देवमाल नाम के चार वक्षार पर्वत तथा गम्भीरमालिनी, फेनमालिनी और ऊर्मिमालिनी नाम की तीन विभंगा नदियाँ हैं। [उपर्युक्त सोलह] वक्षार पर्वत हेममय हैं, तथा विभंगा नदियों का सम्पूर्ण वर्णन रोहित नदी के सदृश है। इन नदियों के प्रवेश और निर्गम स्थानों के तोरणों पर स्थित गृहों में दिक्कन्याएँ रहती हैं॥ ६६६ से ६७० ॥

विशेषार्थ :—सीता नदी के उत्तर तट को आदि करके भद्रशाल की वेदी के आगे से प्रदक्षिणा रूप वक्षार पर्वतों के चित्रकूट, पद्मकूट, नलिन और एक शैल नाम हैं, तथा गाधवती, द्रहवती और पङ्कवती नाम की तीन विभंगा नदियां हैं। सीता नदी के दक्षिण तट को आदि करके देवारण्य की वेदी के आगे क्रम से त्रिकूट, वैश्रवण, अञ्जनात्मा और अञ्जन नाम के चार वक्षार पर्वत और तप्तजला, मत्तजला एवं उन्मत्तजला नाम की तीन विभंगा नदियाँ हैं। पश्चिम विदेह क्षेत्र में सीतोदा नदी के दक्षिण तट पर भद्रशाल की वेदी से प्रारम्भ कर क्रम से श्रद्धावान्, विजटावान्, आशीविष और सुखावह नाम के चार वक्षार पर्वत हैं, तथा इन्हीं के बीचों बीच क्षारोदा, सीतोदा और स्रोतवाहिनी नाम की तीन विभंगा नदियाँ हैं।

सीतोदा नदी के दक्षिण तट के बाद पश्चिम विदेह क्षेत्र में उसी सीतोदा के उत्तर तट पर देवारण्य की वेदी से आगे क्रम से चन्द्रमाल, सूर्यमाल, नागमाल और देवमाल नाम के चार वक्षार पर्वत हैं, तथा इन्हीं के बीचों बीच गम्भीरमालिनी, फेनमालिनी और ऊर्मिमालिनी नाम की तीन विभंगा नदियाँ बहती हैं।

पूर्व अपर विदेह सम्बन्धी चारों विभागों के सोलह ही वक्षार पर्वत स्वर्णमय हैं, तथा इन चारों क्षेत्र सम्बन्धी बारह ही विभङ्गा नदियों का वर्णन रोहित नदी के सदृश है। जिस प्रकार रोहित नदी के निर्गमादि स्थानों के व्यास आदि का प्रमाण है उसी प्रकार विभङ्गा नदियों का है। ये विभंगा नदियाँ नील और निषध कुलाचलों के निकटवर्ती कुण्डों से निकलकर सीता-सीतोदा नदियों में मिलीं हैं। ये निर्गम स्थान पर १२½ ($\frac{२५}{२}$) योजन और प्रवेश स्थान पर १२५ योजन चौड़ी हैं। प्रत्येक की परिवार नदियों का प्रमाण २८००० है। कुण्ड की वेदी के तोरण द्वार अर्थात् कुण्ड के जिस द्वार से

ये नदियाँ निकलतीं हैं उसकी ऊँचाई का प्रमाण १८¾ योजन और सीता-सीतोदा की वेदी के तोरण द्वार अर्थात् जिस द्वार से सीता-सीतोदा महानदियों में प्रवेश करती हैं, उन द्वारों की ऊँचाई १८७½ योजन है। इन नदियों के निर्गम और प्रवेश तोरण द्वारों पर स्थित गृहों में दिक्कुमारियाँ निवास करती हैं। इन सब पर्वत, नदी एवं देश आदि का चित्रण निम्न प्रकार है :—

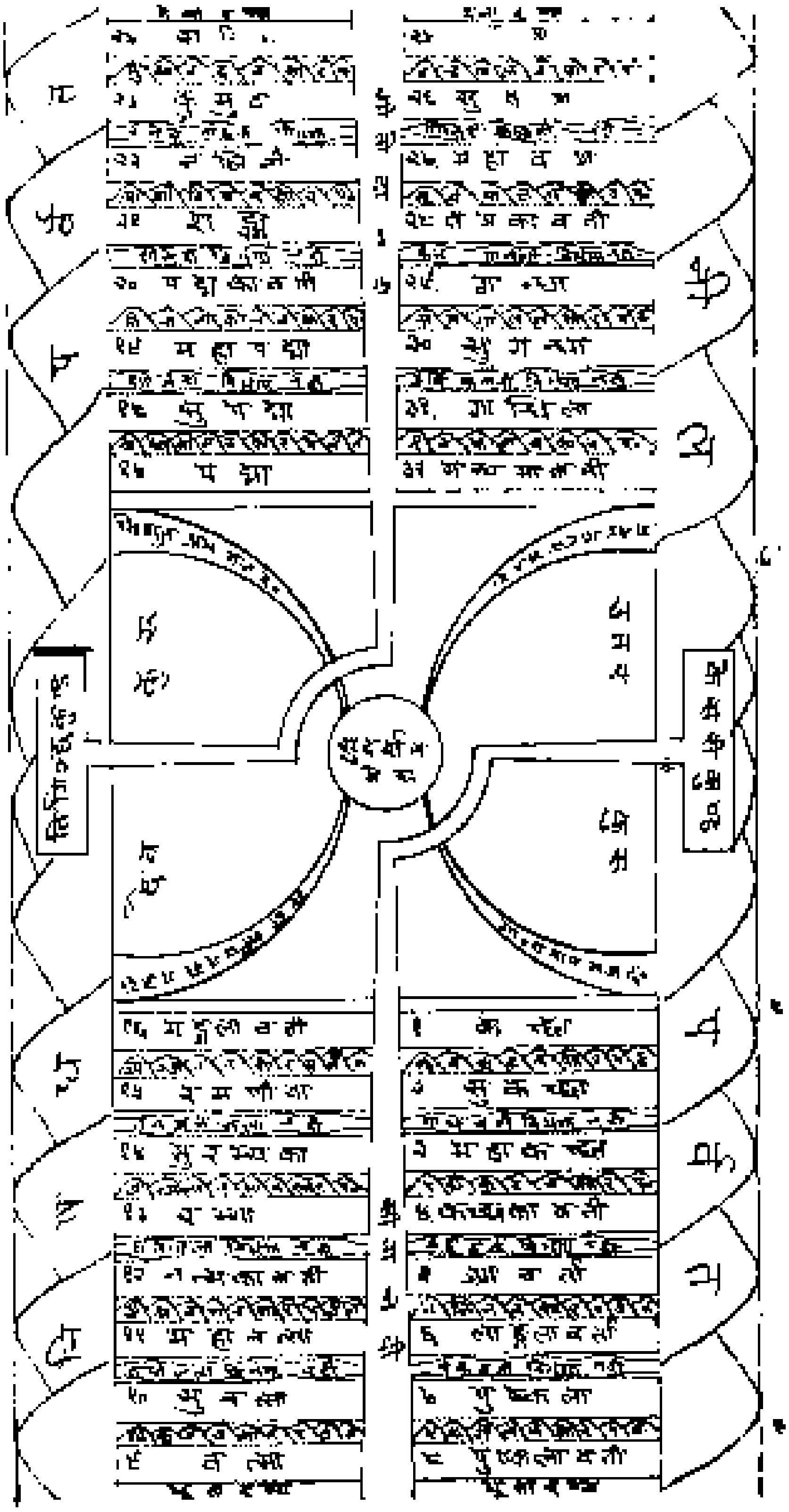

अथ तद्वक्षाराणामुपरिस्थदेवानाह—

वीसदिवक्खाराणं सिहरे तव्विसेसणामसुरा ।
चिट्ठंति तण्णगाणं पुह कंचणवेदियावणेहिं जुदा ॥६७१॥
विंशतिवक्षाराणां शिखरे तत्तद्विशेषनामसुराः ।
तिष्ठन्ति तन्नगानां पृथक् काञ्चनवेदिकावनैः युताः ॥६७१॥

वीस । गजदन्तसहितविंशतिवक्षाराणां शिखरे तत्तद्वक्षारपर्वतनामानः सुरास्तिष्ठन्ति । ते च नगाः पृथक् पृथक् काञ्चनवेदिकाभिर्वनैश्च युक्ताः ॥ ६७१ ॥

उन वक्षार पर्वतों पर स्थित देवों के सम्बन्ध में कहते हैं—

गाथार्थ :—चार गजदन्त पर्वत और १६ वक्षार पर्वत, कुल २० पर्वतों के शिखरों पर अपने अपने पर्वत के नामधारी देव रहते हैं। वे पर्वत पृथक् पृथक् स्वर्णमय वेदियों और वनों से संयुक्त हैं ॥ ६७१ ॥

इदानीं देवारण्यानां स्थानमाह—

पुव्वावरविदेहंते सीतदु दुतडेसु देवरण्णाणि ।
चारि लवणुवहिपासे तव्वेदी भद्दसालसमा ॥६७२॥
पूर्वापरविदेहान्ते सीताद्वयोः द्वितटेषु देवारण्यानि ।
चत्वारि लवणोदधिपार्श्वे तद्वेदी भद्रसालसमा ॥ ६७२ ॥

पुव्व । पूर्वापरविदेहान्ते सीतासीतोदयोर्द्वितटेषु देवारण्यानि चत्वारि सन्ति । यथा पूर्वापरभद्रशालवेदिका निषधनीलौ स्पृष्ट्वा तिष्ठति तथा लवणोदधिपार्श्वे देवारण्यवेदिकापि ॥ ६७२ ॥

अब देवारण्य वनों का स्थान कहते हैं—

गाथार्थ :—पूर्व और अपर विदेह के अन्त में सीता और सीतोदा नदी के दक्षिण और उत्तर दोनों तटों पर चार देवारण्य वन हैं। जिस प्रकार पूर्व, पश्चिम भद्रशाल की वेदी निषध और नील पर्वत को स्पर्श करती है, उसी प्रकार लवण समुद्र के निकट देवारण्य की वेदी निषध और नील कुलाचलों को स्पर्श करती है ॥ ६७२ ॥

साम्प्रतं तदरण्यवृक्षादिकमाह—

जंबीरजंबुकेलीकंकेल्लीमल्लिवल्लिपहुदीहिं ।
बहुदेवसरोवावीपासादगिहेहिं जुत्ताणि ॥ ६७३ ॥
जम्बीरजम्बूकदलीकङ्केल्लिमल्लिवल्लिप्रभृतिभिः ।
बहुदेवसरोवापीप्रासादगृहैः युक्तानि ॥ ६७३ ॥

जंबीर । तान्यरण्यानि जम्बीरजम्बूकदलीकङ्केल्लीमल्लिकाबिल्वप्रभृतिवृक्षैः बहुभिर्देवसरोभिर्वापीभिः प्रासादगृहैश्च युक्तानि ॥ ६७३ ॥

उन वनों के वृक्ष आदि के सम्बन्ध में कहते हैं :—

गाथार्थ :—वे देवारण्य वन जम्बीर, जम्बू, कदली, अशोक, चमेली एवं बेल आदि वृक्षों तथा बहुत से देव सरोवरों, बावड़ियों, प्रासादों एवं गृहों से संयुक्त हैं ॥ ६७३ ॥

अथ विदेहदेशानां ग्रामादिलक्षणं गाथात्रयेणाह—

देसे पुह पुह गामा छण्णउदीकोडि णयरखेडा य ।
खव्वड मडंव पट्टण दोणा संवाह दुग्गडवी ॥ ६७४ ॥

छव्वीसमदो सोलं चउवीसचउक्कमव अडदालं ।
णवणउदीचोद्दस अडवीसं कमसो सहस्सगुणा ॥६७५॥

देशे पृथक् पृथक् ग्रामाः षण्णवतिकोट्यः नगरखेटाः च ।
खर्वडा मडंबाः पट्टनानि द्रोणाः सम्बाहा दुर्गाटव्यः ॥ ६७४ ॥
षड्विंशमतः षोडश: चतुर्विंशं चतुष्कमेव अष्टचत्वारिंशत् ।
नवनवतिः चतुर्दश अष्टाविंशं क्रमशः सहस्रगुणानि ॥ ६७५ ॥

देसे । विदेहस्थेषु द्वात्रिंशद्देशेषु पृथक् पृथक् ग्रामाः षण्णवतिकोटयः ९६००००००० नगराणि खेटाः खर्वडाः मडंबाः पत्तनानि द्रोणाः सम्बाहाः दुर्गाटव्यः ॥ ६७४ ॥

छव्वीस । नगरादीनां संख्या यथाक्रमं षड्विंशतिसहस्राणि २६००० षोडशसहस्राणि १६००० चतुर्विंशतिसहस्राणि २४००० चत्वारिसहस्राणि ४००० अष्टचत्वारिंशत्सहस्राणि ४८००० नवनवतिसहस्राणि ९९००० चतुर्दशसहस्राणि १४००० अष्टाविंशतिसहस्राणि २८००० भवन्ति ॥ ६७५ ॥

तीन गाथाओं द्वारा विदेह देशों के ग्रामादिकों का लक्षण कहते हैं :—

गाथार्थ :—प्रत्येक विदेह क्षेत्र में पृथक् पृथक् छ्यानवे करोड़ ग्राम हैं, तथा नगर, खेट, खर्वड, मडंब, पत्तन, द्रोण, संवाह और दुर्गाटवी छब्बीस, सोलह, चौबीस, चार, अड़तालीस, निन्यानवे चौदह और अट्ठाईस क्रम से हजार गुणे हैं। अर्थात् एक हजार में क्रम से छब्बीस, सोलह आदि का गुणा करने से नगर खेट आदि का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ६७४, ६७५ ॥

विशेषार्थ :—पूर्व और अपर विदेह के सीता-सीतोदा नदियों के द्वारा चार विभाग हुए थे। दो वेदियों, चार वक्षार पर्वतों और तीन विभङ्गा नदियों इन ९ के मध्य प्राप्त हुए ८ अन्तरालों में ८ विदेह हैं। इस प्रकार चार विभागों में ३२ विदेह क्षेत्र स्थित हैं। प्रत्येक विदेह में ९६ करोड़ ग्राम, २६ हजार नगर, १६ हजार खेट, २४ हजार खर्वड, ४ हजार मडंब, ४८ हजार पत्तन, ९९ हजार द्रोण, १४ हजार संवाह और २८ हजार दुर्गाटवी हैं।

वइ चउगोउरसालं णदिगिरिणगवेढि सपणसयगामं ।
रयणाइदसिंधुवेलावलइय णगुवरिट्ठियं कमसो ॥ ६७६ ॥
वृतः चतुर्गोपुरशालः नदीगिरिनगवेष्टं सपञ्चशतग्रामं ।
रत्नपदसिन्धुवेलावलयितः नगोपरि स्थितं क्रमशः ॥ ६७६ ॥

वइ । वृत्या वृतो ग्रामः चतुर्गोपुरशालयुतं नगरं नद्यद्रिवेष्टितं खेटं नगवेष्टितं खर्वटं पञ्चशतग्रामयुतं मडंबं रत्नानां स्थानं पत्तनं नदीवेष्टितो द्रोणः जलधिवेलावलयितः सम्वाहः नगोपरि स्थिता दुर्गाटवी क्रमशः ॥ ६७६ ॥

गाथार्थ :—जो वृत्ति-बाड़, चार दरवाजों से युक्त कोट, नदी, पर्वत और पर्वतों से वेष्टित होते हैं उन्हें क्रम से ग्राम, नगर, खेट और खर्वड कहते हैं। पाँच सौ ग्रामों से संयुक्त को मडंब, रत्नादि प्राप्त होने वाले स्थान को पत्तन, नदी वेष्टित को द्रोण, समुद्र वेला से वेष्टित को संवाह तथा जो पर्वतों पर स्थित होते हैं उन्हें दुर्गाटवी कहते हैं ॥ ६७६ ॥

विशेषार्थ :—जो चारों ओर कांटों की बाड़ से वेष्टित होता है, उसे ग्राम कहते हैं। चार दरवाजों से युक्त कोट से वेष्टित क्षेत्र को नगर कहते हैं। जो नदी और पर्वत दोनों से वेष्टित होते हैं, वे खेट हैं। पर्वत से वेष्टित को खर्वड कहते हैं। जो ५०० ग्रामों से संयुक्त हैं, वे मडंब हैं। जहाँ रत्न आदि वस्तुओं की निष्पत्ति होती है, वे पत्तन कहलाते हैं। नदी से वेष्टित को द्रोण और समुद्र की वेला से वेष्टित को संवाह कहते हैं। पर्वत के ऊपर जो बने हुए हैं, उन्हें दुर्गाटवी कहते हैं।

अथ विदेहदेशस्थोपसमुद्राभ्यन्तरद्वीपस्वरूपमाह—

छप्पण्णंतरदीवा छव्वीससहस्स रयणआयरया ।
रयणाण कुक्खिवासा सत्तसयं उवसमुद्दम्हि ॥ ६७७ ॥
षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपाः षड्विंशसहस्रं रत्नाकराः ।
रत्नानां कुक्षिवासाः सप्तशतानि उपसमुद्रे ॥ ६७७ ॥

छप्पण्णं । विदेहदेशस्थोपसमुद्रषट्पञ्चाश ५६ अन्तरद्वीपाः षड्विंशतिसहस्र २६००० रत्नाकराः रत्नानां क्रयविक्रयस्थानभूतकुक्षिवासाः सप्तशतानि ७०० भवन्ति ॥ ६७७ ॥

विदेह देश स्थित उपसमुद्रों के अभ्यन्तर द्वीपों का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—[एक एक विदेह देश में एक एक उपसमुद्र है, उन पर एक एक टापू है।] वहाँ छप्पन अन्तरद्वीप, छब्बीस हजार रत्नाकर और रत्नाकरों के सात सौ कुक्षिवास हैं ॥ ६७७ ॥

विशेषार्थ :—प्रत्येक विदेह देश में प्रधान नगरी और महानदी के बीच स्थित आर्यखण्ड में एक एक उपसमुद्र है, और उस उपसमुद्र में एक एक टापू है, जिस पर ५६ अन्तरद्वीप, २६००० रत्नाकर और रत्नों के क्रय विक्रय के स्थान भूत ७०० कुक्षिवास होते हैं।

अथ मागधादीनां त्रयाणां स्थानमाह :—

सीतासीतोदाणदितीरसमीवे जलम्हि दीवतियं ।
पुव्वादी मागहवरतणुपभासामराण हवे ॥ ६७८ ॥

सीतासीतोदानदीतीरसमीपे जले द्वीपत्रयं ।
पूर्वादिना मागधवरतनुप्रभासामराणां भवेत् ॥ ६७८ ॥

सीता । सीतासीतोदानदीतीरसमीपे जले पूर्वापरेण मागधवरतनुप्रभासाख्यव्यन्तरामराणां द्वीपत्रयं भवेत् ॥ ६७८ ॥

मागधादि तीन स्थानों को कहते हैं :—

गाथार्थ :—सीता सीतोदा नदियों के तीर के समीप जल में पूर्वादि दिशाओं में मागध, वरतनु और प्रभास नाम व्यन्तर देवों के तीन द्वीप हैं ॥ ६७८ ॥

विशेषार्थ :—सीता-सीतोदा नदियों के तीर के समीप पूर्व और पश्चिम में मागध, वरतनु और प्रभास नाम के तीन देवों के तीन द्वीप हैं।

चक्रवर्ती द्वारा साधने योग्य मागध, वरतनु और प्रभास देवों के स्थान जैसे भरत, ऐरावत के समुद्र में हैं, वैसे ही पूर्व विदेह में सीता के तट के समीप जल में हैं, और पश्चिम विदेह में सीतोदा के तीर के समीप जल में हैं। प्रत्येक देश की दो दो नदियाँ जिन द्वारों से सीता-सीतोदा नदी में प्रवेश करतीं है उन द्वारों के और उन द्वारों के बीच में जो द्वार हैं उनके समीप जल में उन देवों के द्वीप हैं।

अथ विदेहक्षेत्रगतवर्षादिस्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

वरसंति कालमेहा सत्तविहा सत्त सत्त दिवसवही ।
वरिसाकाले धवला बारस दोणाभिहाणब्भा ॥ ६७९ ॥

वर्षन्ति कालमेघाः सप्तविधाः सप्त सप्त दिवसावधीन् ।
वर्षाकाले धवला द्वादश द्रोणाभिधाना अभ्राः ॥ ६७९ ॥

वरसंति । सप्तविधाः कालमेघाः सप्तसप्तदिवसावधीन् वर्षाकाले वर्षन्ति । धवलवर्णा द्रोणाभिधाना द्वादशाभ्राः तथा वर्षन्ति ॥ ६७९ ॥

दो गाथाओं द्वारा विदेहक्षेत्रगत वर्षादि का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—वर्षा काल में सात प्रकार के कालमेघ सात सात दिन तक (४९ दिनों तक) और द्रोण नाम वाले बारह प्रकार के धवल (श्वेत) मेघ सात सात दिन तक (८४ दिनों तक) वर्षा करते हैं। इस प्रकार वर्षा ऋतु में वहाँ कुल १३३ दिन मर्यादापूर्वक वर्षा होती है ॥ ६७९ ॥

देसा दुब्भिक्खीदीमारिकुदेववण्णलिंगिमदहीणा ।
भरिदा सदावि केवलिसलागपुरिसिड्ढिसाहूहिं ॥ ६८० ॥

देशा दुर्भिक्षेतिमारिकुदेववर्णलिङ्गिमतहीनाः ।
भृताः सदापि केवलिशलाकापुरुषर्धिसाधुभिः ॥ ६८० ॥

देसा । विदेहस्था देशा दुर्भिक्षेणातिवृष्ट्यनावृष्टिमूषकशलभशुकस्वचक्रपरचक्रलक्षणसप्तविधे-तिभिः गोमार्यादिमारिभिः कुदेवताभिरन्यलिङ्गिमतैश्च हीनाः सदापि केवलिभिः शलाकापुरुषैः ऋद्धि-सम्पन्न साधुभिर्भृता वर्तन्ते ॥ ६८० ॥

गाथार्थ :— विदेह देशों में दुर्भिक्ष, ईति, मारि रोग, कुदेव, कुलिङ्ग और कुमतों का अभाव तथा केवलज्ञानी, तीर्थङ्करादि शलाका पुरुषों एवं साधुओं का निरन्तर सद्भाव रहता है ॥६८०॥

विशेषार्थ :— विदेह स्थित देशों में कभी दुर्भिक्ष नहीं पड़ता । (१) अतिवृष्टि, (२) अनावृष्टि, (३) मूषक, (४) शलभ (टिड्डी), (५) शुक, (६) स्वचक्र और (७) परचक्र है लक्षण जिसका ऐसी सात प्रकार की ईतियाँ तथा गाय, मनुष्य आदि जिन में अधिक मरते हैं ऐसे मारि आदि रोग वहाँ कभी नहीं होते । वे देश कुदेव, कुलिङ्ग अर्थात् जिन लिंग से भिन्न लिङ्ग और कुमत से रहित तथा केवलज्ञानियों, तीर्थङ्करादि शलाका पुरुषों और ऋद्धि सम्पन्न साधुओं से निरन्तर समन्वित रहते हैं ।

अथ तीर्थंकृत्सकलचक्रार्धचक्रिणां पञ्चमन्दरापेक्षया जघन्योत्कृष्टसंख्यया वर्तनमाह—

तित्थद्धसलयचक्की सट्ठिसयं पुह वरेण अवरेण ।
वीसं वीसं सयले खेत्ते सत्तरिसयं वरदो ॥ ६८१ ॥

तीर्थार्धसकलचक्रिणः षष्टिशतं पृथक् वरेण अवरेण ।
विंशं विंशं सकले क्षेत्रे सप्ततिशतं वरतः ॥ ६८१ ॥

तित्थद्ध । तीर्थंकृतः अर्धचक्रिणः सकलचक्रिणश्च पृथक् पृथगुत्कृष्टेन षष्ट्युत्तरं शतं १६० जघन्येन ते सीतासीतोदयोर्दक्षिणोत्तरतटे एकैका इत्येका प्रत्येकमन्दरापेक्षया चत्वार इति मिलित्वा पञ्चमन्दरविदेहापेक्षयैव विंशतिर्विंशतिर्भवन्ति २० । ते च वरत उत्कृष्टतः पञ्चभरतपञ्चैरावतसमन्विते सकले क्षेत्रे सप्तत्युत्तरशतं १७० भवन्ति ॥ ६८१ ॥

तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती और अर्धचक्रवर्तियों की पञ्चमेरुओं की अपेक्षा जघन्योत्कृष्ट संख्या का प्रवर्तन कहते हैं ।—

गाथार्थ :— तीर्थंकर, चक्रवर्ती और अर्धचक्री पृथक् पृथक् यदि एक एक देश में हों तो उत्कृष्टता से १६० होते हैं, और जघन्यता से २० ही होते हैं, तथा समस्त क्षेत्रों के मिलाकर उत्कृष्टतः १७० होते हैं ॥ ६८१ ॥

विशेषार्थ :—एक मेरु सम्बन्धी ३२ विदेह देश हैं, अतः ५ मेरु पर्वत सम्बन्धी कुल विदेह देश १६० हुए। प्रत्येक विदेह देश में यदि पृथक् पृथक् एक एक तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती और अर्धचक्रवर्ती अर्थात् नारायण और प्रतिनारायण हों तो उत्कृष्टतः १६० हो सकते हैं।

एक मेरु सम्बन्धी पूर्व अपर दो विदेह क्षेत्रों के सीता-सीतोदा नदियों ने दक्षिणोत्तर तट सम्बन्धी चार क्षेत्र बना दिए हैं। इस प्रकार पाँच मेरु सम्बन्धी कुल २० क्षेत्र हुए। प्रत्येक विभाग में यदि पृथक् २ एक एक तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, और अर्धचक्रवर्ती हों तो जघन्यतः कुल (४×५) = २० ही होते हैं। पाँच भरत, पाँच ऐरावत और १६० विदेह देशों के कुल मिलाकर उत्कृष्टतः (१६०+५+५=) १७० तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती और अर्धचक्रवर्ती एक साथ हो सकते हैं।

इदानीं चक्रिणः सम्पत्स्वरूपमाह—

चुलसीदिलक्ख भद्दिभ रहा हया बिगुणणवयकोडीओ।
णवणिहि चोद्दसरयणं चक्किस्थीओसहस्सछण्णउदी ॥६८२॥

चतुरशीतिलक्षभद्रेभाः रथा हया द्विगुणनवकोट्यः।
नवनिधयः चतुर्दशरत्नानि चक्रिस्त्रियः सहस्रं षण्णवतिः ॥६८२॥

चुलसी। चतुरशीतिलक्षभद्रेभाः ८४००००० रथाश्च तावन्तः ८४००००० हया द्विगुणनवकोट्यः १८०००००००। ऋतुयोग्यवस्तुदायी कालः, भाजनप्रदो महाकालः, धान्यप्रदः पाण्डुः, आयुधप्रदो माणवकः, तूर्यप्रदः शङ्खः, हर्म्यप्रदो नैसर्पः, वस्त्रप्रदः पद्मः, आभरणप्रदः पिङ्गलः, विविध-रत्ननिकरप्रदो नानारत्नः इत्येते नवनिधयः। चक्रासिछत्रदण्डमणिचर्मकाकिणीगृहपतिसेनापतीभाश्वत-क्षयोषित्पुरोहिता इति चतुर्दशरत्नानि षण्णवतिसहस्रस्त्रियश्च ९६००० चक्रिणो भवन्ति ॥६८२॥

अब चक्रवर्ती की सम्पदा का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—चक्रवर्ती के कल्याणरूप चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रथ, द्विगुणनवकोटि अर्थात् १८ करोड़ घोड़े, नवनिधियाँ, चौदह रत्न और ९६ हजार स्त्रियाँ होती हैं ॥ ६८२ ॥

विशेषार्थ :—प्रत्येक चक्रवर्ती के पास कल्याणरूप ८४००००० हाथी, ८४००००० रथ, १८०००००००० घोड़े, ऋतुयोग्य वस्तु प्रदायि कालनिधि, भाजनप्रद महाकाल निधि, धान्यप्रद पाण्डु, आयुधप्रद माणवकः, तूर्य अर्थात् वादित्र प्रद शंख, प्रासादप्रद नैसर्प, वस्त्रप्रद पद्म, आभरणप्रद पिङ्गल और नानाप्रकार रत्नप्रद नानारत्न निधि, इस प्रकार ये नवनिधियाँ चक्र, असि, छत्र, दण्ड, मणि, चर्म और काकिणी ये सात अचेतन और गृहपति, सेनापति, हाथी, अश्व, तक्ष (शिल्पी), स्त्री और पुरोहित ये सात चेतन, इस प्रकार १४ रत्न तथा ९६००० रानियाँ होतीं हैं।

साम्प्रतं राजाधिराजादीनां लक्षणं गाथात्रयेणाह—

अण्णे सगपदविठिया सेणागणवणिजदंडवइमंती ।
महयरतलयरवण्णा चउरंगपुरोहमच्चमहमच्चा ॥ ६८३ ॥
इदि अट्ठारससेढीणहिओ राजो हवेज्ज मउडधरो ।
पंचसयरायसामी अहिराजो तो महाराजो ॥ ६८४ ॥
तह अद्धमंडलीओ मंडलिओ तो महादिमंडलिओ ।
तियछक्कखंडाणहिवा पहुणो राजाण दुगुणदुगुणाणं ॥६८५॥

अन्ये स्वकपदवीं स्थिताः सेनागणवणिग्दण्डपतिः मंत्री ।
महत्तरः तलवरः वर्णाः चतुरंगपुरोहितामात्यमहामात्यः ॥६८३॥
इति अष्टादशश्रेणीनामधिपो राजा भवेत् मुकुटधरः ।
पञ्चशतराजस्वामी अधिराजः ततः महाराजः ॥ ६८४ ॥
तथा अर्धमण्डलिकः मण्डलिकः ततो महादिमण्डलिकः ।
त्रिकषट्खण्डानामधिपाः प्रभवः राज्ञां द्विगुणद्विगुणानाम् ॥६८५॥

अण्णे । अन्ये राजानः स्वकीयस्वकीयपदवीस्थिताः तत्र सेनापतिर्गणकपतिर्वणिक्पतिर्दण्ड-पतिस्समस्तसेनानायक इत्यर्थः । मन्त्री पञ्चांगमन्त्रकुशल इत्यर्थः महत्तरः कुलवृद्ध इत्यर्थः तलवरः क्षत्रियादिचतुर्वर्णाः चतुरंगसेनापुरोहितः अमात्यः देशाधिकारीत्यर्थः महामात्यः सर्वाधिकारी-त्यर्थः ॥ ६८३ ॥

इदि । इत्यष्टादशश्रेणीनामधिपो राजा स एव मुकुटधरो भवेत्, पञ्चशतराजस्वामी अधिराजः सहस्रराजस्वामी महाराजः ॥ ६८४ ॥

तह । तथा द्विसहस्रराजस्वामी अर्धमण्डलिकः, चतुःसहस्रराजस्वामी मण्डलिकः, ततोऽष्ट-सहस्रराजस्वामी महामण्डलिकः, षोडशसहस्रराजस्वामी त्रिखण्डाधिपतिः, द्वात्रिंशत्सहस्रराजस्वामी षट्खण्डाधिपतिः इत्यधिराजादयः सर्वे राज्ञः सकाशात् द्विगुणद्विगुणा ज्ञातव्याः ॥ ६८५ ॥

तीन गाथाओं में राजाधिराजों के लक्षण कहते हैं—

गाथार्थ :—अन्य राजा अपनी अपनी पदवी पर स्थित हैं। वहाँ सेनापति, गणकपति, वणिक्पति, दण्डपति, मन्त्री, महत्तर, तलवर (कोतवाल), चार वर्ण, चतुरंग सेना, पुरोहित, अमात्य और महामात्य इन अठारह श्रेणियों के स्वामी को राजा कहते हैं। यही मुकुटधारी होते हैं। ऐसे ही पाँच सौ राजाओं के स्वामी को अधिराजा और हजार राजाओं के स्वामी को महाराजा कहते हैं, तथा अर्धमण्डलीक, मण्डलीक, महामण्डलीक त्रिखण्डाधिप (अर्ध चक्री) और षट्खण्डाधिप (चक्रवर्ती) ये सभी दूने दूने राजाओं से सेवित होते हैं॥ ६८३, ६८४, ६८५ ॥

विशेषार्थ :—अन्य राजा आदि अपनी अपनी पदवी पर स्थित हैं। वहाँ सेना का अधिनायक सेनापति, ज्योतिषज्ञों का अधिनायक गणक पति, व्यापारियों का अधिनायक वणिक्पति, समस्त सेना का नायक दण्डपति, पञ्चाङ्ग मन्त्र में प्रवीण मन्त्री, कुल में जो बड़ा है ऐसा महत्तर, कोटवाल, क्षत्रिय आदि चार वर्ण, चतुरंग सेना, पुरोहित, देश का अधिकारी अमात्य और सर्व राज्य कार्य का अधिकारी महामात्य ऐसी अठारह श्रेणियों का जो स्वामी होता है उसे राजा कहते हैं। यही मुकुटधारी होता है। इसी प्रकार के मुकुटधारी ५०० राजाओं के स्वामी को अधिराजा १०००, राजाओं के स्वामी को महाराजा, २००० राजाओं के स्वामी को अर्धमण्डलीक, ४००० राजाओं के स्वामी को मण्डलीक, ८००० राजाओं के स्वामी को महामण्डलीक, १६००० राजाओं के स्वामी को त्रिखण्डाधिपति (अर्धचक्रवर्ती—नारायण और प्रतिनारायण) तथा ३२००० मुकुटबद्ध राजाओं के अधिप को चक्रवर्ती कहते हैं।

इदानीं तीर्थकृतो विशेषस्वरूपमाह—

सयलभुवणेक्कणाहो तित्थयरो कोमुदीव कुंदं वा।
धवलेहिं चामरेहिं चउसट्ठिहिं विज्जमाणो सो ॥ ६८६ ॥

सकलभुवनैकनाथः तीर्थकरः कौमुदीव कुन्दं वा।
धवलैः चामरैः चतुःषष्टिभिः वीज्यमानः सः ॥ ६८६ ॥

सयल। यः सकलभुवनैकनाथः कौमुदीव कुन्दमिव चतुःषष्टिसंख्यैर्धवलैश्चामरैर्वीज्यमानः स तीर्थंकरो ज्ञातव्यः ॥ ६८६ ॥

अब तीर्थङ्करों का विशेष स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—जो सकललोक का एक अद्वितीय नाथ है तथा चाँदनी एवं कुन्द के पुष्प सदृश चौंसठ चमरों से जो वीज्यमान है, वह तीर्थंकर है ॥ ६८६ ॥

अथ विदेहविजयानां[1] नामानि गाथाचतुष्टयेनाह—

कच्छा सुकच्छा महाकच्छा चउत्थी कच्छकावदी।
आवत्ता लांगलावत्ता पोक्खला पोक्खलावदी ॥ ६८७ ॥
वच्छा सुवच्छा महावच्छा चउत्थी वच्छकावदी।
रम्मा सुरम्मगा चेव रमणिज्जा मंगलावदी ॥ ६८८ ॥
पम्मा सुपम्मा महापम्मा चउत्थी पम्मकावदी।
संखा च णलिणी चेव कुमुदा सरिदा तहा ॥ ६८९ ॥
वप्पा सुवप्पा महावप्पा चउत्थी वप्पकावदी।
गंधा खलु सुगंधा च गंधिला गंधमालिणी ॥ ६९० ॥

कच्छा सुकच्छा महाकच्छा चतुर्थी कच्छकावती।
आवर्ता लाङ्गलावर्ता पुष्कला पुष्कलावती ॥ ६८७ ॥

१ विजयानां देशानां (ब० टि०)।

वत्सा सुवत्सा महावत्सा चतुर्थी वत्सकावती।
रम्या सुरम्यका चैव रमणीया मङ्गलावती॥ ६८८ ॥
पद्मा सुपद्मा महापद्मा चतुर्थी पद्मकावती।
शङ्खा च नलिनी चैव कुमुदा सरित्तथा॥ ६८९ ॥
वप्रा सुवप्रा महावप्रा चतुर्थी वप्रकावती।
गन्धा खलु सुगन्धा च गन्धिला गन्धमालिनी॥ ६९० ॥

कच्छा । वच्छा । पम्मा । वप्पा । छायामात्रमेवार्थ: ॥ ६८७—६९० ॥

चार गाथाओं द्वारा विदेह देशों के नाम कहते हैं—

गाथार्थ :—१ कच्छा, २ सुकच्छा, ३ महाकच्छा, ४ कच्छकावती, ५ आवर्ता, ६ लाङ्गलावर्ता, ७ पुष्कला और ८ पुष्कलावती ये आठ देश सीता नदी के उत्तर तट पर भद्रशाल की वेदी से आगे क्रम पूर्वक हैं। १ वत्सा, २ सुवत्सा, ३ महावत्सा, ४ वत्सकावती, ५ रम्या, ६ सुरम्यक, ७ रमणीया और ८ मंगलावती ये आठ देश क्रम से सीता महानदी के दक्षिण तट पर देवारण्य वेदी के आगे क्रम पूर्वक है। १ पद्मा, २ सुपद्मा, ३ महापद्मा, ४ पद्मकावती, ५ शङ्खा, ६ नलिनी, ७ कुमुद और ८ सरित ये आठ देश सीतोदा नदी के दक्षिण तट पर भद्रशाल की वेदी से आगे क्रम पूर्वक हैं। १ वप्रा, २ सुवप्रा, ३ महावप्रा, ४ वप्रकावती, ५ गन्धा, ६ सुगन्धा, ७ गन्धिला, ८ गन्धमालिनी, ये आठ देश सीतोदा नदी के उत्तर तट पर देवारण्य की वेदी से आगे यथाक्रम अवस्थित हैं॥ ६८७—६९० ॥

अथ एतेषु देशेषु खण्डानि कथं जानीयादित्युक्ते प्राह—

विजयं पडिवेयड्ढो गंगासिंधुसमदोण्णिदोण्णि णई ।
तेहिं कया छक्खंडा विदेह बत्तीस विजयाणं ॥ ६९१ ॥

विजयं प्रति विजयार्धः गंगासिन्धुसमे द्वे द्वे नद्यौ।
तैः कृतानि षट्खण्डानि विदेहे द्वात्रिंशत् विजयानाम्॥ ६९१ ॥

विजयं । देशं प्रति देशं प्रति एकैको विजयार्धोऽस्ति विजयोदेशो यर्धीकृतोऽस्मादिति विजयार्ध इत्याधिकरणात् । तत्रैव गङ्गासिन्धुसमाने द्वे द्वे नद्यौ स्तः । तैर्नदीविजयार्द्धैः विदेहस्थद्वात्रिंशद्देशानां प्रत्येकं षट्खण्डानि कृतानि ॥ ६९१ ॥

इन देशों में खण्ड कैसे जाने ? ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं—

गाथार्थ :—प्रत्येक विदेह देश में एक एक विजयार्ध पर्वत और गंगा सिन्धु के सदृश दो दो नदियाँ हैं। इन विजयार्ध और दो दो नदियों ने बत्तीस विदेह देशों के छह छह खण्ड किए हैं॥ ६९१ ॥

विशेषार्थ :—३२ विदेह देश हैं। प्रत्येक देश में एक एक विजयार्ध पर्वत हैं। ये विजय अर्थात् देश को आधा करते हैं, इसलिए विजयार्ध इनका ये सार्थक नाम है। कुलाचलों से महानदी पर्यन्त देशों की जो लम्बाई है, उसके ठीक मध्य प्रदेश में विजयार्ध पर्वतों की अवस्थिति है। इन्हीं प्रत्येक देशों में गंगा सिन्धु सदृश दो दो नदियाँ हैं। जो निर्गम स्थान पर ६¼ योजन और प्रवेश स्थान पर ६२½ योजन चौड़ी हैं इन दो दो नदियों और एक एक विजयार्ध पर्वतों ने विदेह स्थित ३२ देशों में से प्रत्येक के छह छह खण्ड किए हैं। जिनका चित्रण निम्न प्रकार है—

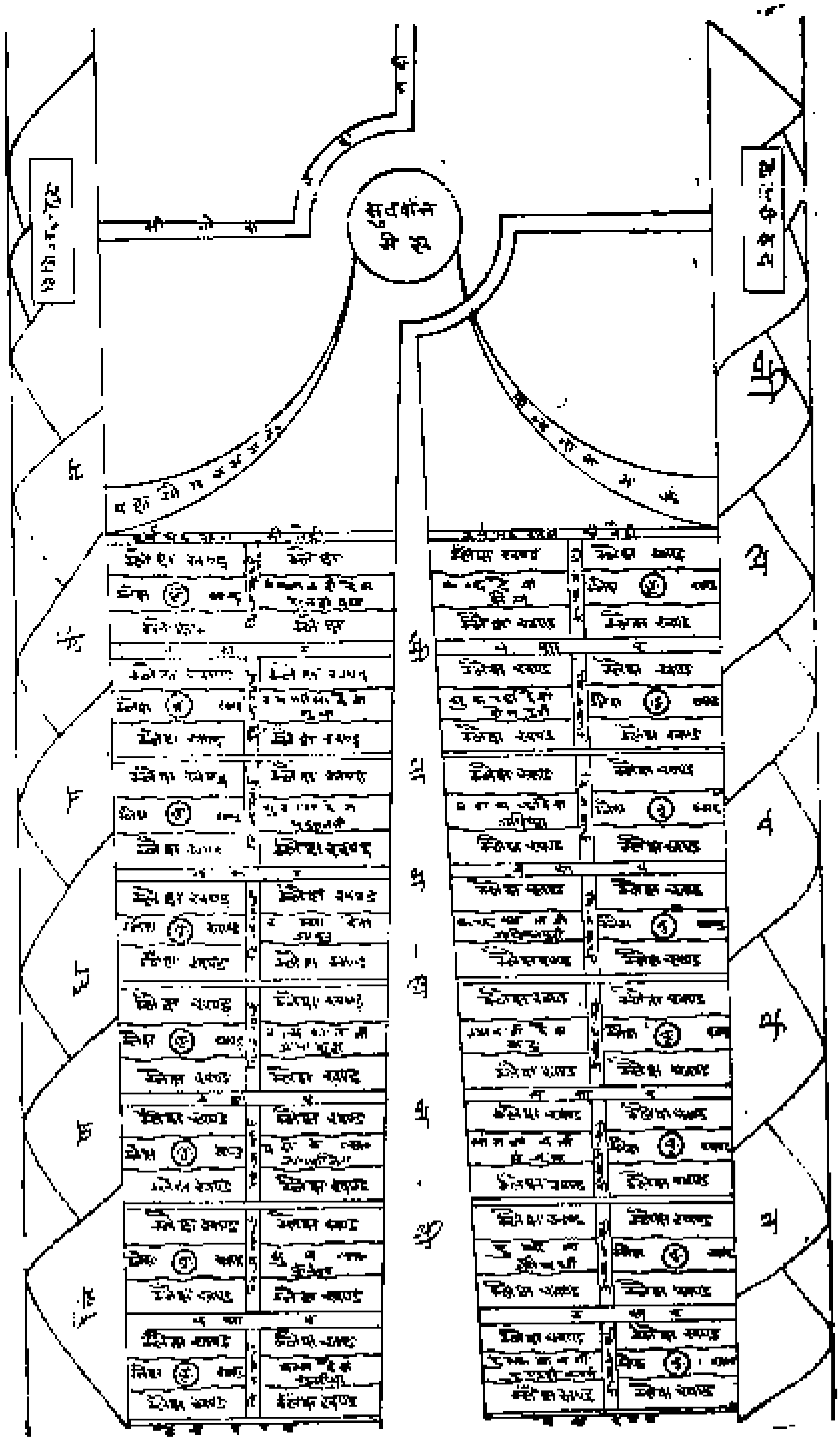
सुदर्शन मेरु

अथ तत्रस्थविजयार्धानां नदीनां च विन्यासादिकं गाथाद्वयेनाह—

ते पुव्वावरदीहा जणवयमज्झे गुहादु पुव्वं वा ।
गंगादु णीलमूलगकुंडा रत्तदुग णिसहणिस्सरिदा ॥६९२॥

ते पूर्वापरदीर्घा जनपदमध्ये गुहाद्वयं पूर्वं वा ।
गङ्गाद्वयं नीलमूलगकुण्डा रक्ताद्विकं निषधनिःसृताः ॥६९२॥

ते । ते विजयार्धाः पूर्वापरदीर्घा जनपदमध्ये सन्ति । तत्रस्थगुहाद्वयं तु भरतविजयार्धोक्तवद् ज्ञातव्यं । गंगासिन्धू द्वे नीलपर्वतमूलस्थितकुण्डान्निर्गत्य सीतासीतोदयोः प्रविष्टे । रक्तारक्तोदे द्वे निषधपर्वतमूलस्थितकुण्डान्निःसृत्य सीतासीतोदयोः प्रविष्टे ॥ ६९२ ॥

वहाँ स्थित विजयार्ध और नदियों के व्यास आदि को दो गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :— वे विजयार्ध पर्वत जनपद-देश के ठीक मध्य में पूर्व पश्चिम लम्बे हैं, तथा उनमें पूर्व (भरत स्थित विजयार्ध) के सदृश दो दो गुफाएँ हैं। नील कुलाचल के निकट मूल में स्थित कुण्ड से गंगा सिन्धु और निषध कुलाचल के मूल में स्थित कुण्ड से रक्ता रक्तोदा ये दो दो नदियाँ (प्रत्येक देश में) निकली हैं॥ ६९२ ॥

विशेषार्थ :— वे विजयार्ध पर्वत पूर्व पश्चिम लम्बे और जनपद प्रत्येक देशों के ठीक मध्य भाग में स्थित हैं। भरतक्षेत्र स्थित विजयार्ध में जैसे दो गुफाएँ कही थीं, वैसी ही दो दो गुफाएँ यहाँ पर जानना चाहिए। प्रत्येक देश में दो दो नदियाँ हैं। सीता और सीतोदा के दक्षिण तट स्थित जो १६ देश हैं उनमें गंगा सिन्धु नाम की दो दो नदियाँ हैं, और सीता-सीतोदा के उत्तर तट स्थित जो १६ देश हैं, उनमें से प्रत्येक देश में रक्ता रक्तोदा नाम की दो दो नदियाँ हैं। गंगा-सिन्धु ये दोनों नदियाँ नील कुलाचल के मूल में स्थित कुण्ड के उत्तर द्वार से निकल कर सीधी जाती हुई विजयार्ध की गुफा से होती हुई सीता-सीतोदा की वेदी के तोरण द्वारों में से होती हुई सीता-सीतोदा में प्रवेश करती है तथा रक्ता-रक्तोदा ये दोनों नदियाँ निषध कुलाचल के मूल स्थित कुण्ड के दक्षिण द्वारों से निकल सीधी जाती हुई विजयार्ध की गुफा में प्रवेश करती हैं। वहाँ से निकल कर महानदियों (सीता-सीतोदा) की वेदी के तोरण द्वारों से होती हुई सीता सीतोदा में प्रवेश करती हैं।

दसदसपणोच्चि पण्णं तीसं दसयं च रूप्पगिरिवासा ।
खयराभिजोग सेढी सिहरे सिद्धादिकूडं तु ॥ ६९३ ॥

दश दश पञ्चोच्छ्रितं पञ्चाशत् त्रिंशत् दशकं च रूप्यगिरिव्यासः ।
खचराभियोग्या श्रेणी शिखरे सिद्धादिकूटं तु ॥ ६९३ ॥

दस । तस्य विजयार्धस्य दश योजनोत्सेधा प्रथमा श्रेणी पञ्चाशद्योजनसमव्यासा । तत उपरि दशयोजनोत्सेधा द्वितीया श्रेणिस्त्रिंशद्योजनसमव्यासा, तत उपरि पञ्चयोजनोत्सेध उपरिमशिखरो

दशयोजनव्यास: । तत्र प्रथमोभयतटगतश्रेण्यो खचरा निवसन्ति, द्वितीयायामाभियोग्या: शिखरे तु सिद्धादिनवकूटानि संति ॥ ६९३ ॥

गाथार्थ :—उन विजयार्ध पर्वतों की दश योजन, दश योजन और पाँच योजन की ऊँचाई तक क्रमश: पचास योजन, तीस योजन और दश योजन व्यास-चौड़ाई है। इसकी प्रथम श्रेणी पर विद्याधर, द्वितीय श्रेणी पर आभियोग्य जाति के देव रहते हैं। तथा शिखर पर सिद्धायतन आदि कूट हैं ॥ ६९३ ॥

विशेषार्थ :—उन विजयार्ध पर्वतों की कुल ऊँचाई २५ योजन है जिसमें नीचे से दश योजन की ऊँचाई पर्यन्त ५० योजन चौड़ा है। इसके ऊपर दक्षिणोत्तर दिशा में दश दश योजन की कटनी को छोड़ बीच में दश योजन की ऊँचाई तक तीस योजन चौड़ा है। पुनः दक्षिणोत्तर दिशा में दश-दश योजन की कटनी छोड़ कर पाँच योजन की ऊँचाई तक दश योजन चौड़ा है। दक्षिणोत्तर दोनों तटों की प्रथम श्रेणी पर विद्याधर और द्वितीय श्रेणी स्वरूप कटनी पर आभियोग्य जाति के देव निवास करते हैं, तथा शिखर पर सिद्धायतन आदि नव कूट हैं। जिसका चित्रण निम्न प्रकार है—

विजयार्ध पर्वत

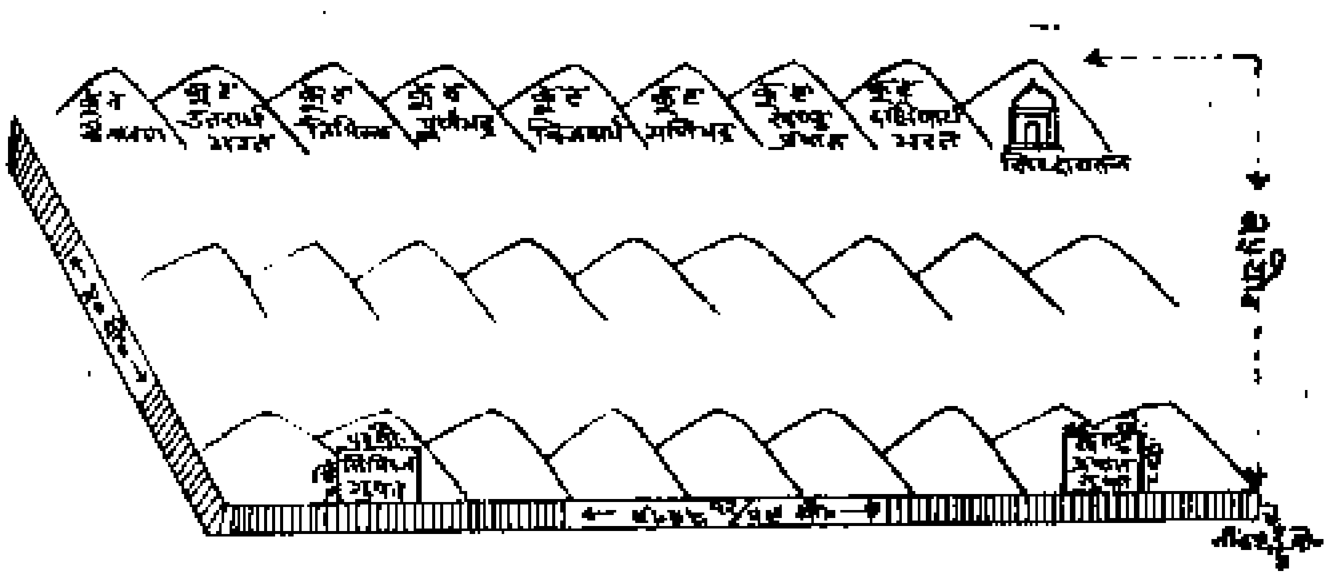

अथ तत्रैव द्वितीयादिश्रेण्यो विशेषमाह—

सोहम्मआभिओग्गगमणिचित्तपुराणि बिदियसेढिम्हि ।
वेयड्ढकुमारवई सिहरतले पुण्णभद्दक्खे ॥ ६९४ ॥

सौधर्माभियोग्यगमणिचित्रपुराणि द्वितीयश्रेण्याम् ।
विजयार्धकुमारपति: शिखरतले पूर्णभद्राख्ये ॥ ६९४ ॥

सोहम्म । तत्रैव द्वितीयायां श्रेण्यां सौधर्मसम्बन्ध्याभियोग्यानां मणिमयानि विचित्रपुराणि सन्ति । तस्य शिखरतले पूर्णभद्राख्ये कूटे विजयार्धकुमारपतिरस्ति ॥ ६९४ ॥

अब वहाँ ही द्वितीयादि श्रेणी पर विशेष कहते हैं—

गाथार्थ :—द्वितीय श्रेणी पर सौधर्म सम्बन्धी आभियोग्य देवों के नाना प्रकार के मणिमय नगर हैं तथा शिखर के नीचे पूर्णभद्र नाम कूट पर विजयार्धकुमारपति (देव) रहता है ॥ ६९४ ॥

अथ तत्र प्रथमश्रेण्योः स्थितविद्याधरनगराणां संख्यां तन्नामानि च पञ्चदशभिर्गाथाभिराह—

पणवण्णं पणवण्णं विदेहवेयड्ढपढमभूमिम्हि ।
णयराणि पण्ण सट्ठी जंबुउभयंतवेयड्ढे ॥ ६९५ ॥

पञ्चपञ्चाशत् पञ्चपञ्चाशत् विदेहविजयार्धप्रथमभूमौ ।
नगराणि पञ्चाशत् षष्टिः जम्बूभयान्तविजयार्धे ॥ ६९५ ॥

पण । विदेहविजयार्धप्रथमोभयश्रेण्योः प्रत्येकं यथासंख्यं पञ्चाधिकपञ्चाशत् ५५ पञ्चाधिकपञ्चाशत् ५५ नगराणि सन्ति । जम्बूद्वीपोभयान्तभरतैरावतस्थविजयार्धे प्रथमोभयश्रेणौ च पञ्चाशत् ५० षष्टि ६० नगराणि सन्ति ॥ ६९५ ॥

अब वहाँ प्रथम (दक्षिणोत्तर दोनों) श्रेणी पर स्थित विद्याधरों के नगरों की संख्या और उनके नाम पन्द्रह गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—विदेह स्थित विजयार्ध की प्रथम अर्थात् दक्षिण और उत्तर श्रेणी पर पचपन, पचपन नगर हैं, तथा जम्बूद्वीप के दोनों अन्त स्थित भरतैरावत सम्बन्धी विजयार्धों की दक्षिणोत्तर श्रेणियों पर ५० और ६० नगर हैं ॥ ६९५ ॥

विशेषार्थ :—विदेह स्थित विजयार्ध पर्वत की प्रथम कटनी गत दक्षिण और उत्तर इन दोनों श्रेणियों पर यथाक्रम ५५, ५५ नगर हैं, तथा जम्बूद्वीप के दोनों अन्तिम भागों पर स्थित भरतैरावत सम्बन्धी विजयार्ध की प्रथम कटनी गत दक्षिणोत्तर दोनों श्रेणियों पर ५० और ६० नगर हैं।

सेलायामे दक्खिणसेढीए पण्णमुत्तरे सट्ठी ।
तण्णामा पुव्वादी किंणामिद किंणरगीदं ॥ ६९६ ॥

णरगीदं बहुकेदू पुंडरियं सीहसेदगरुडधजं ।
सिरिपहधरलोहग्गलमरिंजयं वज्जअग्गलद्दपुरं ॥६९७॥

होइ विमोह पुरंजय सयडमदुक्कहुमुही य अरजक्खा ।
विरजक्खा रहणूपुर मेहलअग्गपुर खेमचरी ॥ ६९८॥

अवराजिद कामादीपुप्फं गगणचरि विणयचरि सुक्कं ।
तो संजयंतिणयरं जयंति विजया वइजयंती य ॥ ६९९ ॥

खेमंकर चंदाहं सूराहं चित्तकूड महकूडं ।
हेमतिमेहविचित्तयकूडं वेसवणकूडमदो ॥ ७०० ॥

सूरपुर चंदपुरणिच्चुज्जोदिणि विमुहिणीचवाहिणियो ।
सुमुही चरिमा पच्छिमभागादो अज्जुणी अरुणी ॥ ७०१ ॥

केलास वारुणीपुरि विज्जुप्पह किलिकिलं च चूडादि ।
मणि ससिपह वंसालं पुप्फादी चूलमिह दसमं ॥ ७०२ ॥

तत्तोवि हंसगब्भं बलाहगं तेरसं सिवंकरयं ।
सिरिसोध चमरसिवमंदिर वसुमक्का वसुमदी य ॥ ७०३ ॥

सिद्धत्थं सत्तुञ्जय धयमालसुरिंदकंत गयणादि ।
णंदणमवि वीदादिमसोगो अलगा तदो तिलगा ॥ ७०४ ॥

अंबरतिलगं मंदर कुमुदं कुंदं च गयणवल्लभयं ।
तो दिव्वतिलय भूमीतिलयं गंधव्वणयरमदो ॥ ७०५ ॥

मुत्ताहारं णेमिसमग्गिमहज्जालसिरिणिकेदपुरं ।
जयवह सिरिवासं मणिवज्जं भद्दस्सपुरं धणंजययं ॥ ७०६ ॥

गोखीरफेणमक्खोभं गिरिसिहरं च धरणि धारिणियं ।
दुग्गं दुद्धरणयरं सुदंसणं तो महिंदविजयपुरं ॥ ७०७ ॥

णगरी सुगंधिणी वज्जद्धतरं रयणपुव्वआयरयं ।
रयणपुरं चरिमंते रयणमया राजधाणीओ ॥ ७०८ ॥

शैलस्याग्रे दक्षिणश्रेण्यां पञ्चाशदुत्तरस्यां षष्टिः ।
तन्नामानि पूर्वादितः किन्नामितं किन्नरगीतं ॥ ६९६ ॥
नरगीतः बहुकेतुः पुण्डरीकं सिंहश्वेतगरुडध्वजं ।
श्रीप्रभश्रीधरं लोहार्गलमरिञ्जयं वज्रार्गलाढ्यपुरं ॥ ६९७ ॥
भवति विमोचि पुरञ्जयं शकटचतुर्बहुमुखी च अरजस्का ।
विरजस्का रथनूपुरं मेखलाग्रपुरं क्षेमचरी ॥ ६९८ ॥
अपराजितं कामादिपुष्पं गगनचरी विनयचरी सुकान्ता ।
सञ्जयन्तिनगरं जयन्ती विजया वैजयन्ती च ॥ ६९९ ॥

क्षेमङ्करं चन्द्राभं सूर्याभं चित्रकूटं महाकूटं ।
हेमत्रिमेघविचित्रकूटं वैश्रवणकूटमतः ॥ ७०० ॥
सूर्यपुरं चन्द्रपुरं नित्योद्योतिनी विमुखी नित्यवाहिनी ।
सुमुखी [illegible]भागात् अर्जुनी अरुणी ॥ ७०१ ॥
कैलाशं वारुणी पुरी विद्युत्प्रभं किलिकिलं च चूडादिः ।
मणिः शशिप्रभं वंशालं पुष्पादिः चूलमिह दशमं ॥ ७०२ ॥
ततोऽपि हंसगर्भं बलाहकं त्रयोदशं शिवङ्करं ।
श्रीसौधं चमरं शिवमन्दिरं वसुमत्का वसुमती च ॥ ७०३ ॥
सिद्धार्थं शत्रुञ्जयं ध्वजमालं सुरेन्द्रकान्तं गगनादिः ।
नन्दनमपि वीतादिमशोकः अलका ततस्तिलका ॥ ७०४ ॥
अम्बरतिलकं मन्दरं कुमुदं कुन्दं च गगनवल्लभं ।
ततो दिव्यतिलकं भूमितिलकं गन्धर्वनगरमतः ॥ ७०५ ॥
मुक्ताहारं नैमिषमग्निमहाज्वालं श्रीनिकेतपुरं ।
जयावहं श्रीवासं मणिवज्रं भद्राश्वपुरं धनञ्जयं ॥ ७०६ ॥
गोक्षीरफेनमक्षोभं गिरिशिखरं च धरणिः धारिणिकं ।
दुर्गं दुर्धरनगरं सुदर्शनं ततो महेन्द्रविजयपुरं ॥ ७०७ ॥
नगरी सुगन्धिनी वज्रार्धतर रत्नपूर्वमाकरं ।
रत्नपुरं चरमं ताः रत्नमया राजधान्यः ॥ ७०८ ॥

सेला । भरतैरावतविजयार्धशैलायामे दक्षिणश्रेण्यां पञ्चाशत् ५० नगराणि, उत्तरश्रेणौ तु षष्टि ६० नगराणि । तेषां नगराणां नामानि पूर्वदिशः आरभ्य कथ्यन्ते—१ किन्नामितं २ किन्नरगीतं ॥ ६९६ ॥

णरगीदं । ३ नरगीतः ४ बहुकेतुः ५ पुण्डरीकं ६ सिंहध्वजं ७ श्वेतध्वजं ८ गरुडध्वजं ९ श्रीप्रभं १० श्रीधरं ११ लोहार्गलं १२ अरिञ्जयं १३ वज्रार्गलं १४ वज्राढ्यपुरं ॥ ६९७ ॥

होइ । भवति १५ विमोचि १६ पुरं (पुरोत्तमं) १७ जयं १८ शकटमुखी १९ चतुर्मुखी २० बहुमुखी २१ अरजस्का २२ विरजस्का २३ रथनूपुरं २४ मेखलाग्रपुरं २५ क्षेमपुरी ॥ ६९८ ॥

अवराजिद । २६ अपराजितं २७ कामपुष्पं २८ गगनचरी २९ विनयचरी ३० सुकान्ता ३१ सञ्जयन्तिनगरं ३२ जयन्ती ३३ विजया ३४ वैजयन्ती ॥ ६९९ ॥

खेमंकर । ३५ क्षेमङ्करं ३६ चन्द्राभं ३७ सूर्याभं ३८ चित्रकूटं ३९ महाकूटं ४० हेमकूटं ४१ त्रिकूटं ४२ मेघकूटं ४३ विचित्रकूटं ४४ वैश्रवणकूटमतः ॥ ७०० ॥

सूर । ४५ सूर्यपुरं ४६ चन्द्रपुरं ४७ नित्योद्योतिनी ४८ विमुखी ४९ नित्यवाहिनी ५० सुमुखी चरमा ५० उत्तरश्रेण्याम् । पश्चिमभागादारभ्य कथ्यन्ते—१ अर्जुनी २ अरुणी ॥ ७०१ ॥

केलास । ३ कैलाशं ४ वारुणीपुरी ५ विद्युत्प्रभं ६ किलिकिलं ७ चूडामणिः ८ शशिप्रभं ९ वंशालं १० पुष्पचूलमिह वशमम् ॥ ७०२ ॥

तत्तोवि । ततोऽपि ११ हंसगर्भं १२ बलाहकं १३ शिवङ्करं १४ श्रीसौधं १५ चमरं १६ शिवमंदिरं १७ वसुमत्का च १८ वसुमती ॥ ७०३ ॥

सिद्धत्थं । १९ सिद्धार्थं २० शत्रुञ्जयं २१ ध्वजमालं २२ सुरेन्द्रकान्तं २३ गगननन्दनं २४ अशोका २५ विशोका २६ वीतशोका २७ अलका, ततः २८ तिलका ॥ ७०४ ॥

अंबर । २९ अम्बरतिलकं ३० मन्दरं ३१ कुमुदं ३२ कुन्दं च ३३ गगनवल्लभं, ततः ३४ दिव्य-तिलकं ३५ भूमितिलकं ३६ गन्धर्वनगरं ॥ ७०५ ॥

मुत्ता । ३७ मुक्ताहारं ३८ नैमिषं ३९ अग्निज्वालं ४० महाज्वालं ४१ श्रीनिकेतपुरं ४२ जयावहं ४३ श्रीवासं ४४ मणिवज्राख्यं ४५ भद्राश्वपुरं ४६ धनञ्जयं ॥ ७०६ ॥

गोखीर । ४७ गोक्षीरफेनं ४८ अक्षोभं ४९ गिरिशिखरं ५० धरणिपुरं ५१ धारिणीपुरं ५२ दुर्गं ५३ दुर्धरनगरं ५४ सुदर्शनं ततो ५५ महेन्द्रपुरं ५६ विजयपुरं ॥ ७०७ ॥

णगरी । ५७ सुगन्धिनी नगरी ५८ वज्रार्धतरं ५९ रत्नाकरं ६० रत्नपुरं चरमं ६० ता: रत्नमया राजधान्यः स्युः ॥ ७०८ ॥

गाथार्थ :—भरतैरावत सम्बन्धी विजयार्धों की पूर्व पश्चिम लम्बाई में दक्षिण श्रेणी पर पचास और उत्तर श्रेणी पर साठ नगर हैं। पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर उन नगरों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१ किनामित, २ किन्नरगीत, ३ नरगीत, ४ बहुकेतु, ५ पुण्डरीक, ६ सिंहध्वज, ७ श्वेतध्वज, ८ गरुड़ध्वज, ९ श्रीप्रभ, १० श्रीधर, ११ लोहार्गल, १२ अरिञ्जय, १३ वज्रार्गल, १४ वज्राढ्यपुर, १५ विमोचि, १६ पुर (पुरोत्तम), १७ जय, १८ शकटमुखी, १९ चतुर्मुखी, २० बहुमुखी, २१ अरजस्का, २२ विरजस्का, २३ रथनूपुर, २४ मेखलाग्रपुर, २५ क्षेमचरी, २६ अपराजित, २७ कामपुष्प, २८ गगन-चरी, २९ विनयचरी, ३० सुकान्ता, ३१ सञ्जयन्ति नगर, ३२ जयन्ती, ३३ विजया, ३४ वैजयन्ती, ३५ क्षेमङ्कर, ३६ चन्द्राभ, ३७ सूर्याभ, ३८ चित्रकूट, ३९ महाकूट, ४० हेमकूट, ४१ त्रिकूट, ४२ मेघकूट, ४३ विचित्रकूट, ४४ वैश्रवणकूट, ४५ सूर्यपुर, ४६ चन्द्रपुर, ४७ नित्योद्योतिनी, ४८ विमुखी, ४९ नित्य-वाहिनी और अन्तिम ५० सुमुखी है (ये दक्षिण श्रेणीगत ५० नगरियाँ हैं) । अब उत्तर श्रेणी में पश्चिम भाग से प्रारम्भ कर क्रमशः १ अर्जुनी, २ अरुणी, ३ कैलाश, ४ वारुणीपुरी, ५ विद्युत्प्रभ, ६ किलिकिल, ७ चूड़ामणि, ८ शशिप्रभ, ९ वंशाल, १० पुष्पचूल, ११ हंसगर्भ, १२ बलाहक, १३ शिवङ्कर, १४ श्रीसौध, १५ चमर, १६ शिवमन्दिर, १७ वसुमत्का, १८ वसुमति, १९ सिद्धार्थ, २० शत्रुञ्जय, २१ ध्वजमाल,

२२ सुरेन्द्रकान्त, २३ गगननन्दन, २४ अशोका, २५ विशोका, २६ वीतशोका, २७ अलका, २८ तिलका, २९ अम्बरतिलका, ३० मन्दर, ३१ कुमुद, ३२ कुन्द, ३३ गगनवल्लभ, ३४ दिव्यतिलक, ३५ भूमितिलक, ३६ गन्धर्व नगर, ३७ मुक्ताहार, ३८ नैमिष, ३९ अग्निज्वाल, ४० महाज्वाल, ४१ श्रीनिकेतपुर, ४२ जयावह, ४३ श्रीवास, ४४ मणिवज्र, ४५ भद्राश्वपुर, ४६ धनञ्जय, ४७ गोक्षीरफेन, ४८ अक्षोभ, ४९ गिरिशिखर, ५० धरणिपुर, ५१ धारणीपुर, ५२ दुर्ग, ५३ दुर्धर नगर, ५४ सुदर्शन, ५५ महेन्द्रपुर, ५६ विजयपुर, ५७ सुगन्धिनी नगरी, ५८ वज्रार्धतर, ५९ रत्नाकर और अन्तिम ६० रत्नपुर नाम का नगर है। ये सभी नगरियाँ रत्नमयी राजधानियाँ हैं। अर्थात् राजाओं के निवास स्थान इन्हीं नगरों में हैं॥ ६९६ से ७०८॥

पायारगोउरट्टालचरियासरवण विराजिया तत्थ।
विज्जाहरा तिविज्जा वसंति छक्कम्मसंजुत्ता ॥ ७०९ ॥
प्राकारगोपुराट्टालचर्यासरोवनैः विराजिता तत्र।
विद्याधरा त्रिविद्या वसन्ति षट्कर्मसंयुक्ता ॥ ७०९ ॥

पायार। तत्र पुनः प्राकारगोपुराट्टालकचर्यासरोवनैर्विराजिताः। तत्र साधितकुलजाति-विद्याभिः त्रिविद्याः षट्कर्मसंयुक्ताः इज्या असिमष्यादिजीवनोपायव्यापारो वार्ता दत्तिश्च स्वाध्यायः संयमस्तपः इत्येतानि षट्कर्माणि एतैर्युक्ता विद्याधरा वसन्ति ॥ ७०९ ॥

गाथार्थ :—वे समस्त नगरियाँ कोट, दरवाजे, मन्दिर मार्ग, सरोवर और वनों से सुशोभित हैं। वहाँ पर तीन प्रकार की विद्याओं और षट्कर्म संयुक्त विद्याधर निवास करते हैं॥ ७०९॥

विशेषार्थ :—भरतैरावत क्षेत्र स्थित विजयार्ध की दक्षिणोत्तर दोनों श्रेणियों की ११० नगरियाँ प्राकार, गोपुर (दरवाजा), मन्दिर मार्ग, सरोवर और वनों से सुशोभित हैं। वहाँ रहने वाले विद्याधर स्वयं साधना से प्राप्त, पितृपक्ष (कुल क्रम) से प्राप्त और मातृपक्ष (जाति) से प्राप्त त्रिविद्याओं एवं इज्या, वार्ता, दत्ति, स्वाध्याय, संयम और तप इन षट्कर्मों से संयुक्त हैं।

१. पूज्य पुरुषों की पूजना इज्या कहलाती है। २. असि, मसि आदि जीविका के उपाय रूप व्यापार को वार्ता कहते हैं। ३. स्वपरोपकारार्थ दान देने का नाम दत्ति है। ४. पठन पाठन को स्वाध्याय कहते हैं। ५. अविरतित्याग का नाम संयम और रत्नत्रय का आविर्भाव करने के लिए इच्छा का निरोध करना तप है।

अथ विजयार्धकृतषट्खण्डस्थम्लेच्छखण्डमध्यस्थितवृषभाद्रीणां स्वरूपं निरूपयति—

सचरिसयवसहगिरी मज्झगयमिलेच्छखंडबहुमज्झे।
कणयमणिकंचणुदयति भरिया गयचक्किणामेहिं ॥७१०॥

सप्ततिशतं वृषभगिरयः मध्यगतम्लेच्छखण्डबहुमध्ये ।
कनकमणिकाञ्चनोदयत्रिकं भृता गतचक्रिनामभिः ॥ ७१० ॥

सत्तरि । कनकवर्णा मणिमयाः काञ्चनपर्वतोदय १०० भू १०० मुख ५० व्यासाः गतचक्रिणां नामभिर्भृताः सप्तत्युत्तरं शतं १७० वृषभगिरयः मध्यगतम्लेच्छखण्डबहुमध्ये तिष्ठन्ति ॥ ७१० ॥

विजयार्ध द्वारा किए हुए छह खण्डों में से म्लेच्छ खण्ड के मध्य स्थित वृषभाचल के स्वरूप का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—मध्यगत म्लेच्छ खण्ड के ठीक मध्य भाग में स्वर्ण वर्ण वाले मणिमय वृषभाचल पर्वत हैं। ये प्रत्येक देश में एक एक हैं, अतः इनकी कुल संख्या १७० है। इनके उदय आदि तीनों प्रमाण काञ्चन पर्वत सदृश हैं। ये पर्वत अतीत कालीन चक्रवर्ती राजाओं के नामों से भरे हुए हैं ॥ ७१० ॥

विशेषार्थ :—विजयार्ध पर्वत और गङ्गा सिन्धु नदियों के द्वारा किए हुए खण्डों में जो मध्य का म्लेच्छ खण्ड है, उसके ठीक मध्य में काञ्चन पर्वतों के सदृश १०० योजन ऊँचे, भूमि पर १०० योजन चौड़े और शिखर पर ५० योजन चौड़े, स्वर्ण वर्ण वाले मणिमय १७० वृषभाचल हैं। छह खण्डों पर विजय प्राप्त कर जो चक्रवर्ती होते हैं, वे इन पर्वतों पर अपना नाम लिखते हैं। अतीत काल में होने वाले चक्रवर्ती राजाओं के नामों से ये पर्वत भरे हुए हैं।

अथ तथार्यखण्डमध्यस्थितराजधान्या व्यासायामौ कथयति—

सत्तरिसयणयराणि य उवजलधिगअज्जखंडमज्झम्हि ।
चक्कीण णव य बारस वासायामेण होंति कमे ॥ ७११ ॥

सप्ततिशतनगराणि च उपजलधिगार्यखण्डमध्ये ।
चक्रिणां नव द्वादश व्यासायामाभ्यां भवन्ति क्रमेण ॥७११॥

सत्तरि । उपजलधिगतार्यखण्डमध्ये व्यासायामाभ्यां क्रमेण नव ९ द्वादश १२ योजनानि सप्तत्युत्तरशतं चक्रिणां नगराणि भवन्ति ॥ ७११ ॥

आर्यखण्डों के मध्यस्थित राजधानियों का व्यास और आयाम कहते हैं—

गाथार्थ :—उपसमुद्रगत आर्यखण्ड के मध्य में चक्रवर्ती के निवास योग्य ९ योजन चौड़ी और १२ योजन लम्बी १७० क्षेत्रों से सम्बन्धित १७० मुख्य राजधानियाँ हैं।

अथ तेषां नामानि गाथाचतुष्टयेनाह—

खेमा खेमपुरी चेवरिट्ठारिट्ठपुरी तहा ।
खग्गा य मंजुसा चेव ओसही पुंडरीकिणी ॥७१२॥
सुसीमा कुंडला चेव पराजिद पहंकरा ।
अंका पउमावदी चेव सुभा रयणसंचया ॥ ७१३ ॥
अस्सपुरी सींहपुरी महापुरी तह य होदि विजयपुरी ।
अरया विरया चेव असोगया वीदसोगा य ॥ ७१४ ॥
विजया च वइजयंती जयंत अवराजिदा य बोद्धव्वा ।
चक्कपुरी खग्गपुरी होदि अयोज्झा अवज्झा य ॥७१५॥

क्षेमा क्षेमपुरी चैव अरिष्टा अरिष्टपुरी तथा ।
खड्गा च मञ्जूषा चैव ओषधी पुण्डरीकिणी ॥ ७१२ ॥
सुसीमा कुण्डला चैव अपराजिता प्रभङ्करा ।
अङ्का पद्मावती चैव शुभा रत्नसंचया ॥ ७१३ ॥
अश्वपुरी सिंहपुरी महापुरी तथा च भवति विजयपुरी ।
अरजा विरजा चैव अशोका वीतशोका च ॥ ७१४ ॥
विजया च वैजयन्ती जयन्ता अपराजिता च बोद्धव्या ।
चक्रपुरी खड्गपुरी भवति अयोध्या अवध्या च ॥ ७१५ ॥

खेमा । सुसीमा । अस्सपुरी । छायामात्रमेवार्थः ॥ ७१२—७१४ ॥

विजया । छायामात्रमेवार्थः ॥ ७१५ ॥ भरतैरावतगतचक्रिनगरयोस्तु नाम्नोरनियतत्वात् एतां नाम्नां मध्ये अन्यतमं भवतीति पृथक् न गृहीते ॥

चार गाथाओं में उन राजधानियों के नाम कहते हैं—

गाथार्थ :—[पूर्वोक्त कच्छादि विदेह देशों में मुख्य राजधानियों के नाम क्रमशः] १ क्षेमा, २ क्षेमपुरी, ३ अरिष्टा, ४ अरिष्टपुरी, ५ खड्गा, ६ मञ्जूषा, ७ औषधी, ८ पुण्डरीकिणी, ९ सुसीमा, १० कुण्डला, ११ अपराजिता, १२ प्रभङ्करा, १३ अङ्का, १४ पद्मावती, १५ शुभा, १६ रत्नसञ्चया, १७ अश्वपुरी, १८ सिंहपुरी, १९ महापुरी, २० विजयपुरी, २१ अरजा, २२ विरजा २३ अशोका, २४ वीतशोका, २५ विजया, २६ वैजयन्ती, २७ जयन्ता, २८ अपराजिता, २९ चक्रपुरी, ३० खड्गपुरी, ३१ अयोध्या और ३२ अवध्या ये ३२ नाम हैं ॥ ७१२—७१५ ॥

विशेष—भरतैरावत क्षेत्रों में चक्रवर्ती राजाओं की राजधानियों के नाम कोई एक नियम रूप नहीं हैं, इसलिए पूर्वोक्त नामों में से ही कोई एक नाम होगा, अतः उनका अलग नाम नहीं कहा ।

अथ तेषां नगराणां विशेषस्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

रयणकवाडवरावर सहस्सदलदार हेमपायारा ।
बारसहस्सा वीही तत्थ चउप्पह सहस्सेक्कं ।। ७१६ ।।
णयराण बहिं परिदो वणाणि तिसदं समट्ठि पुरमज्झे ।
जिणभवणा णरवइजणगेहा सोहंति रयणमया ।। ७१७ ।।

रत्नकपाटवरावरा सहस्रदलद्वारा हेमप्राकाराः ।
द्वादशसहस्राणि वीथ्यः तत्र चतुष्पथानि सहस्रैकम् ।।७१६।।
नगराणां बहिः परितः वनानि त्रिशतं समष्टि पुरमध्ये ।
जिनभवनानि नरपतिजनगेहानि शोभन्ते रत्नमयानि ।। ७१७ ।।

रयण । तेषां नगराणां रत्नमयकवाटाः उत्कृष्टसहस्रद्वाराः जघन्यतद्दल ५०० द्वाराः हेममयप्राकाराः भवन्ति । तदभ्यन्तरे द्वादशसहस्राणि वीथ्यः तत्रैकसहस्रं चतुष्पथानि स्युः ।।७१६।।

णयराण । नगराणां बहिः परितः षष्टिसमन्वितत्रिशतं ३६० वनानि सन्ति । पुरमध्ये जिनभवनानि नरपतिगृहाणि जनगृहाणि रत्नमयानि शोभन्ते ।। ७१७ ।।

अब उन नगरों का विशेष स्वरूप दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—उन नगरों के एक हजार उत्कृष्ट द्वार और पाँच सौ जघन्य द्वार हैं । जिनके कपाट रत्नमय हैं । जिनका प्राकार स्वर्णमय है । जिनमें बारह हजार वीथियाँ (गलियाँ) और एक हजार चतुष्पथ हैं । नगरों के बाहर चारों ओर ३६० वन (बाग) हैं, तथा नगर के मध्य में रत्नमय जिन भवन, राजभवन एवं अन्य मनुष्यों के भी भवन शोभायमान होते हैं ।। ७१६, ७१७ ।।

विशेषार्थ :—उन नगरों के प्राकार (कोट) स्वर्णमय हैं । उनमें १००० उत्कृष्ट (बड़े) द्वार और ५०० जघन्य (छोटे) द्वार हैं, जिनके कपाट रत्नमय हैं उन नगरों में १२००० अभ्यन्तर वीथियाँ और १००० चतुष्पथ हैं । नगरों के बाहर चारों ओर १६० वन (बाग) हैं, तथा नगर के मध्य में रत्नमय जिनभवन, राजभवन एवं अन्य जन (अन्य मनुष्यों के) भवन शोभायमान होते हैं ।

इदानीं नाभिगिरीणामवस्थितस्थानं तदुत्सेधादिकं च गाथाद्वयेनाह—

थिरभोगावणिमज्झे णाभिगिरीओ हवंति वीसाणि ।
वट्टा सहस्सतुंगा मूलुवरिं तत्तिया रुंदा ।। ७१८ ।।

स्थिरभोगावनिमध्ये नाभिगिरयः भवन्ति विंशतिः ।
वृत्ताः सहस्रतुङ्गा मूलोपरि तावन्तः रुन्द्राः ।। ७१८ ।।

चिर। स्थिरभोगावनिमध्ये वृत्ताः सहस्रोत्सेधाः मूलोपरि तावन्मात्र १००० रुन्द्रा विंशतिनाभिगिरयः सन्ति ॥ ७१८ ॥

अब नाभिगिरि (पर्वतों) के अवस्थान का स्थान और उनका उत्सेधादि दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—स्थिर भोगभूमियों के मध्य में गोलाकार, एक हजार ऊँचे तथा मूल में और ऊपर इतने (१००० योजन) ही चौड़े बीस नाभिगिरि हैं ॥ ७१८ ॥

विशेषार्थ :—एक मेरु सम्बन्धी हैमवत, हरि, रम्यक और हैरण्यवत क्षेत्रों में चार स्थिर भोग भूमियाँ हैं, अतः पाँच मेरु सम्बन्धी २० स्थिर भोग–भूमियाँ हुईं। इन प्रत्येक क्षेत्रों के ठीक मध्य भाग में गोलाकार एक एक नाभिपर्वत है जिसकी ऊँचाई १००० योजन, तल भाग की चौड़ाई १००० योजन और उपरिम भाग की भी चौड़ाई १००० योजन है। इस प्रकार खड़े स्तम्भ के आकार वाले पाँच मेरु सम्बन्धी २० नाभिगिरि हैं।

सद्दावं विजडावं पउमगंधवण्णाम सुक्किला सिहरे ।
सक्कदुगणुचर सादीचारणपउमप्पहास वाणसुरा ॥ ७१९ ॥

श्रद्धावान् विजटावान् पद्मगन्धवन्नामानि शुक्लाः शिखरे ।
शक्रद्विकानुचराः स्वातिचारणपद्मप्रभासाः वानसुराः ॥ ७१९ ॥

सद्दावं। श्रद्धावान् विजटावान् पद्मवान् गन्धवान् इत्येतान्येव प्रत्येकं पञ्चमन्दरसम्बन्धिनां चतुर्णां नाभिगिरीणां नामानि। ते च शुक्लवर्णाः, तेषां शिखरेषु सौधर्मैशानयोरनुचराः स्वातिचारणपद्मप्रभासाख्यव्यन्तरदेवा निवसन्ति ॥ ७१९ ॥

गाथार्थ :—उपर्युक्त नाभिगिरि श्रद्धावान्, विजटावान्, पद्मवान् और गन्धवान् नाम वाले तथा श्वेत वर्ण हैं। इनके शिखरों पर सौधर्मेशान इन्द्रों के अनुचर स्वाति, चारण, पद्म और प्रभास नाम के व्यन्तर देव रहते हैं ॥ ७१९ ॥

विशेषार्थ :—हैमवत क्षेत्र के ठीक मध्य भाग में श्रद्धावान्, हरिक्षेत्र के मध्य विजटावान्, रम्यक् क्षेत्र के मध्य पद्मवान् और हैरण्यवत क्षेत्र के मध्य गन्धवान् श्वेत वर्ण नाभिगिरि हैं। इनके शिखरों पर सौधर्मेशान इन्द्रों के अनुचर स्वाति, चारण, पद्म और प्रभास नाम के व्यन्तर देव रहते हैं। पाँचों मेरु सम्बन्धी २० नाभि पर्वतों के नामादिक यही हैं।

इदानीं हिमवदादिकुलगिरीणां विजयार्धाणां चोपरिस्थितकूटानां संख्यादिकमाचष्टे—

एक्कारसट्ठणवणव अट्ठेक्कारस हिमादिकूडाणि[1] ।
वेयड्ढाणं णवणव पुव्वगकूडम्हि जिणभवणं ।। ७२० ।।

एकादशाष्ट नव नव अष्टैकादश हिमादिकूटानि ।
विजयार्धानां नव नव पूर्वगकूटे जिनभवनानि ।। ७२० ।।

एक्का । एकादश ११ अष्ट ८ नव ९ नव ९ अष्ट ८ एकादश ११ प्रमितानि यथासंख्यं हिमवदादि-कुलपर्वतोदुपरि स्थितकूटानि विजयार्धानां तूपरि नव ९ नव ९ कूटानि । तत्र पूर्वदिग्गतकूटे जिनभवनानि सन्ति ।। ७२० ।।

अब हिमवन् आदि कुलाचल और विजयार्धों के ऊपर स्थित कूटों की संख्यादि कहते हैं—

गाथार्थ :— हिमवदादि पर्वतों पर क्रमशः ग्यारह, आठ, नौ, नौ, आठ और ग्यारह कूट हैं तथा विजयार्ध पर्वतों के ऊपर नौ, नौ कूट हैं। पूर्व दिशा सम्बन्धी कूटों पर जिनभवन हैं ।। ७२० ।।

विशेषार्थ :— हिमवन् पर्वत के ऊपर ११, महाहिमवन् पर ८, निषध पर ९, नील कुलाचल पर ९, रुक्मी कुलाचल पर ८ और शिखरिन् कुलाचल पर ११ कूट अवस्थित हैं । प्रत्येक विजयार्ध पर्वत पर ९, ९ कूट हैं । ये कूट पर्वतों के ऊपर और गोल आकार के होते हैं । ये नीचे बहुत चौड़े और उपरिम भाग में कम चौड़े होते हैं । पूर्व दिशागत सिद्धायतन नामा कूटों के ऊपर जिन मन्दिर हैं ।

अथ उक्तकूटानां नामादिकं गाथादशकेन निगदति—

कमसो सिद्धायदणं हिमवं भरहं इला य गंगा य ।
सिरिकूडरोहिदस्सा सिंधु सुरा हेमवदय वेसवणं ।। ७२१ ।।
पढमे जिणिंदगेहं देवीओ जुवदिणामकूडेसु ।
सेसेसु कूडणामा वेंतरदेवावि णिवसंति ।। ७२२ ।।
वट्टा सव्वे कूडा रयणमया सगणगस्स तुरियुदया ।
तच्चियभूवित्थारा तदद्धवदणा हु सव्वत्थ ।। ७२३ ।।

क्रमशः सिद्धायतनं हिमवान् भरतं इला च गङ्गा च ।
श्रीकूटं रोहितास्या सिन्धुः सुरा हैमवतकं वैश्रवणं ।। ७२१ ।।
प्रथमे जिनेन्द्रगेहं देव्यो युवतिनामकूटेषु ।
शेषेषु कूटनामानः व्यन्तरदेवा अपि निवसन्ति ।। ७२२ ।।

---

1 कुलादि (ब०, प०) ।

वृत्ताः सर्वे कूटा रत्नमयाः स्वकनगस्य तुर्योदयाः।
तावद्भूविस्ताराः तदर्धवदनाः हि सर्वत्र ॥ ७२३ ॥

कमसो। क्रमशस्तेषां नामानि सिद्धायतनं हिमवान् भरतं इला च गङ्गा च श्रीकूटं रोहितास्या सिन्धुः सुरा हैमवतकं वैश्रवणं ॥ ७२१ ॥

पढमे। तत्र प्रथमकूटे जिनेन्द्रगेहं स्त्रीलिङ्गाख्यकूटेषु व्यन्तरदेव्यो निवसन्ति। शेषेषु तत्कूट-नामव्यन्तरदेवा निवसन्ति ॥ ७२२ ॥

वट्टा। ते सर्वे कूटाः वृत्ताः रत्नमयाः स्वकीय स्वकीयनगस्य चतुर्थांशोदयाः तावन्मात्रभूविस्तारा-स्तदर्धवदनाः सर्वत्र खलु भवन्ति ॥ ७२३ ॥

उपर्युक्त कूटों के नामादिक दश गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ:—[हिमवन् कुलाचल के ऊपर स्थित ११ कूटों के नाम] क्रम से १ सिद्धायतन, २ हिमवान्, ३ भरत, ४ इला, ५ गङ्गा, ६ श्रीकूट, ७ रोहितास्या, ८ सिन्धु, ९ सुराकूट, १० हैमवतक, और वैश्रवण हैं। इनमें प्रथम कूट पर जिनेन्द्र भवन, स्त्री लिङ्ग नामधारी कूटों पर व्यन्तर देवियाँ और शेष कूटों पर कूट नाम धारी व्यन्तर देव निवास करते हैं वे सर्व कूट गोल और रत्नमय हैं। सर्व कूटों की ऊँचाई अपने अपने पर्वतों की ऊँचाई का चतुर्थ भाग है। भू व्यास भी इतना ही है, तथा मुखव्यास भूव्यास का अर्ध प्रमाण है ॥ ७२१, ७२२, ७२३ ॥

विशेषार्थ :—क्रम से सिद्धायतन, हिमवान्, भरत, इला, गंगा, श्रीकूट, रोहितास्या, सिन्धु, सुरा, हैमवतक और वैश्रवण ये ११ कूट हिमवन् कुलाचल के ऊपर स्थित हैं। इनमें से प्रथम सिद्धायतन कूट के ऊपर जिन मन्दिर है, तथा स्त्री लिंग नाम धारी इला, गंगा, श्रीकूट, रोहितास्या, सिन्धु और सुरा कूटों पर व्यन्तर देवांगनाएँ निवास करती हैं और अवशेष कूटों पर अपने अपने कूटनामधारी व्यन्तर देव रहते हैं। वे सर्व कूट रत्नमय और गोल आकार वाले हैं। इन कूटों की ऊँचाई अपने पर्वत की ऊँचाई के चौथाई भाग प्रमाण है, ऊँचाई प्रमाण सदृश ही भू व्यास और भू व्यास के अर्धभाग प्रमाण मुख व्यास है। हिमवन् पर्वत १०० योजन ऊँचा है, अतः कूटों की ऊँचाई ($\frac{१००}{४}$) = २५ योजन, जमीन पर चौड़ाई २५ योजन और ऊपर की चौड़ाई १२½ योजन प्रमाण है।

तो सिद्ध महाहिमवं हेमवदं रोहिदा हिरीकूडं।
हरिकंता हरिवरिसं वेलुरियं पच्छिमं कूडं ॥ ७२४ ॥

ततः सिद्धं महाहिमवान् हैमवतं रोहिता ह्रीकूटं।
हरिकान्ता हरिवर्षं वैडूर्यं पश्चिमं कूटं ॥ ७२४ ॥

तो। पश्चिमं चरमं इत्यर्थः। शेषं छायामात्रमेवार्थः ॥ ७२४ ॥

गाथार्थ :—(महाहिमवन् पर्वत पर) १ सिद्धकूट २ महाहिमवन् ३ हैमवत ४ रोहिता ५ ह्रीकूट ६ हरिकान्ता ७ हरिवर्ष ८ वैडूर्य नामके कूट हैं ॥ ७२४ ॥

विशेषार्थ :—उपर्युक्त आठ कूटों में से सिद्ध कूट पर जिन भवन हैं। स्त्रीलिंगधारी कूटों पर (व्यन्तर) देवांगनाएँ और शेष कूटों पर व्यन्तर देवों का निवास है। इन सभी कूटों की ऊँचाई ५० योजन, भूव्यास ५० योजन और मुखव्यास २५ योजन है।

> **सिद्धं णिसहं च हरिवरिसं पुव्वविदेहं हरिधिदीकूडं ।**
> **सीतोदा णाममदो अवरविदेहं च रुजगंतं ॥ ७२५ ॥**
>
> सिद्धं निषधं च हरिवर्षं पूर्वविदेहं हरिधृतिकूटं ।
> सीतोदा नाम अतः अपरविदेहं च रुचकान्तम् ॥ ७२५ ॥

सिद्धं । सिद्धं निषधं च हरिवर्षं पूर्वविदेहं हरिकूटं धृतिकूटं सीतोदा नाम अतोऽपरविदेहं चान्तं रुचकं ॥ ७२५ ॥

गाथार्थ :—१ सिद्धकूट, २ निषध, ३ हरिवर्ष, ४ पूर्वविदेह, ५ हरिकूट, ६ धृतिकूट, ७ सीतोदा कूट, ८ अपर विदेह कूट और अन्तिम रुचक कूट निषध पर्वत पर हैं ॥ ७२५ ॥

विशेषार्थ :—जिनगृह और देवों के निवास आदि पूर्वोक्त प्रकार ही हैं किन्तु यहाँ के कूटों की ऊँचाई १०० योजन, भूव्यास १०० योजन और मुखव्यास ५० योजन है।

> **सिद्धं णीलं पुव्वविदेहं सीदा य कित्ति णरकंता ।**
> **अवरविदेहं रम्मगमपदंसणमंतिमं णीले ॥ ७२६ ॥**
>
> सिद्धं नीलं पूर्वविदेहं सीता च कीर्तिः नरकान्ता ।
> अपरविदेहं रम्यकं अपदर्शनं अन्तिमं नीले ॥ ७२६ ॥

सिद्धं । छायामात्रमेवार्थः ॥ ७२६ ॥

गाथार्थ :—१ सिद्ध २ नील ३ पूर्वविदेह ४ सीता ५ कीर्ति ६ नरकान्ता ७ अपरविदेह ८ रम्यक और अन्तिम ९ अपदर्शन ये ९ कूट नील पर्वत के ऊपर हैं ॥ ७२६ ॥

विशेषार्थ :—इनका सर्व विशेष वर्णन निषधपर्वतस्थित कूटों के समान ही है।

> **सिद्धं रुम्मी रम्मग णारी बुद्धी य रुप्पकूलक्खा ।**
> **हेरण्णं कूडमदो मणिकंचणमट्ठमं होदि ॥ ७२७ ॥**
>
> सिद्धं रुक्मी रम्यकं नारी बुद्धिश्च रूप्यकूलाख्या ।
> हैरण्यं कूटमतो मणिकाञ्चनमष्टमं भवति ॥ ७२७ ॥

सिद्धं । छायामात्रमेवार्थः ॥ ७२७ ॥

गाथार्थ :—१ सिद्ध २ रुक्मी ३ रम्यक ४ नारी ५ बुद्धि ६ रूप्यकूला ७ हैरण्यकूट और ८ मणिकाञ्चन ये आठ कूट रुक्मी कुलाचल के ऊपर हैं ॥ ७२७ ॥

विशेषार्थ :—इनका सभी वर्णन महाहिमवन् पर्वत पर स्थित कूटों के समान ही है।

सिद्धं सिहरि य हेरण्णं रसदेवी तदो य रत्तक्खा।
लच्छी सुवण्ण रत्तवदी गंधवदीय कूडमदो ॥ ७२८ ॥
एरावदमणिकंचणकूडं सिहरिम्हि सव्वसेलाणं।
मूले सिहरेवि हवे दहेवि वणसंडमेदस्स ॥ ७२९ ॥
गिरिदीहो जोयणदलवासो वेदी दुकोसतुंगजुदा।
धणुपणसयवासा णगवणणदिदहपहुदिएसु समा ॥ ७३० ॥

सिद्धं शिखरी च हैरण्यं रसदेवी ततश्च रक्ताख्या।
लक्ष्मीः सुवर्णं रक्तवती गन्धवती कूटमतः ॥ ७२८ ॥
ऐरावतमणिकाञ्चनकूटं शिखरे सर्वशैलानाम्।
मूले शिखरेऽपि भवेत् ह्रदेऽपि वनखण्डमेतस्य ॥ ७२९ ॥
गिरिदैर्घ्यं योजनदलव्यासं वेदी द्विक्रोशतुङ्गयुता।
धनुः पञ्चशतव्यासा नगवननदीह्रदप्रभृतिषु समाः ॥ ७३० ॥

सिद्धं। छायामात्रमेवार्थः ॥ ७२८ ॥

एराव। ऐरावतं मणिकाञ्चनकूटं ११ शिखरे पर्वते सर्वेषां शैलानां मूले शिखरेऽपि ह्रदेऽपि वनखण्डं भवेत्। एतस्य वनखण्डस्य ॥ ७२९ ॥

गिरि। गिरिदैर्घ्यमेव दैर्घ्यं योजनार्धव्यासं तस्यवेदी तु धनुः पञ्चशतव्यासा क्रोशद्वयोत्तुङ्गयुता स्यात्। सा वेदी नगवननदीह्रदप्रभृतिषु सर्वत्र समाना ॥ ७३० ॥

गाथार्थ :—१ सिद्धायतन २ शिखरी ३ हैरण्य ४ रसदेवी ५ रक्तानाम ६ लक्ष्मी ७ सुवर्ण ८ रक्तवती ९ गन्धवती १० ऐरावत ११ मणिकाञ्चन, ये ११ कूट शिखरिन पर्वत पर स्थित हैं। सभी पर्वतों के मूल में, शिखर पर और ह्रदों के चारों ओर वन हैं। इन वनखण्डों की लम्बाई अपने अपने पर्वतों की लम्बाई प्रमाण है, तथा व्यास (चौड़ाई) अर्ध योजन प्रमाण है। वन खण्डों की वेदी दो कोश ऊँची और ५०० धनुष चौड़ी है। पर्वत, वन नदी और ह्रद आदि सभी की वेदियों का प्रमाण समान है ॥ ७२८, ७२९, ७३० ॥

विशेषार्थ :—शिखरिन् पर्वत स्थित उपर्युक्त ११ कूटों की ऊँचाई आदि का तथा उनमें निवास करने वाले व्यन्तर आदि देवों का वर्णन हिमवन् शैल स्थित कूटों के सदृश ही है। समस्त कुलाचलों

के मूल भाग में और शिखर अर्थात् उपरिम भाग में तथा ह्रदों के चारों ओर भी वन हैं। इन वन खण्डों की लम्बाई कुलाचलों की लम्बाई प्रमाण और चौड़ाई अर्ध योजन है। वन खण्डों की वेदी दो कोश ऊँची और ५०० धनुष चौड़ी है। पर्वत, वन, नदी और ह्रद आदि सभी की वेदियों का प्रमाण (ऊँचाई और चौड़ाई) सदृश ही है।

साम्प्रतं पर्वतादिषु सर्वत्र वेदिकासंख्यामाह—

> तिसदेक्कारससेले णउदीकुंडे दहाण छव्वीसे।
> तावदिया मणिवेदी णदीसु सगमाणदो दुगुणा ॥७२१॥
>
> त्रिशतैकादशशैलेषु नवतिकुण्डेषु ह्रदानां षड्विंशतौ।
> तावन्त्यः मणिवेद्यः नदीषु स्वकमानतः द्विगुणाः ॥ ७२१ ॥

तिस। जम्बूद्वीपस्य त्रिशतैकादश ३११ शैलेषु तावन्त्यो मणिमयवेद्यः नवतिकुण्डेषु ९० तावन्त्यो मणिमयवेद्यः ह्रदानां षड्विंशतौ २६ तावन्त्यो मणिमयवेद्यः नदीषु स्वकीयप्रमाणतो द्विगुणा मणिमयवेद्यः स्युः ॥ इत उक्तार्थं विवृणोति – तत्रैको मन्दरः १ षट् कुलाचलाः ६ चत्वारो यमकगिरयः ४ द्विशतं काञ्चनपर्वताः २०० अष्टौ दिग्गजपर्वताः ८ षोडश वक्षाराः १६ चत्वारो गजदन्ताः ४ चतुस्त्रिंशद्विजयार्धाः ३४ चतुस्त्रिंशद् वृषभाचलाः ३४ चत्वारो नाभिनगाः ४ एतेषु मिलितेषु त्रिशतैकादश ३११ शैलसंख्या भवति। गङ्गादिमहानदीपतनकुण्डानि चतुर्दश १४ विभङ्गनद्युत्पत्तिकुण्डानि द्वादश १२ गंगासिन्धुसमाननद्युत्पत्तिकुण्डानि चतुः षष्टिः ६४ एतेषु मिलितेषु नवतिकुण्डानि ९० भवन्ति। कुलगिरिह्रदाः षट् ६ सीताह्रदा दश १० सीतोदा ह्रदा दश १० एतेषु मिलितेषु षड्विंशति ह्रदा २६ भवन्ति। गंगासिन्धुरक्तारक्तोदानां ४ प्रत्येकं परिवारनदी १४००० स्वगुणकारेण ४ गुणयित्वा ५६००० रोहिद्रोहितास्यासुवर्णरूप्यकूलानां ४ प्रत्येकं परिवारनदीः २८००० स्वगुणकारेण ४ गुणयित्वा ११२००० हरिद्धरिकान्तानारीनरकान्तानां ४ प्रत्येकं परिवारनदीः ५६००० स्वगुणकारेण ४ गुणयित्वा २२४००० देवोत्तरकुरुस्थयोः सीतासीतोदयोः २ प्रत्येकं परिवारनदीः ८४००० तथा २ गुणयित्वा १६८००० विभङ्गनदीनां १२ प्रत्येकं परिवारनदीः २८००० तथा १२ गुणयित्वा ३३६००० गंगासिन्धुरक्तारक्तोदानां विदेहस्थनदीनां ६४ प्रत्येकं परिवारनदीः १४००० तथा ६४ गुणयित्वा ८९६००० एतानि सर्वाण्येकानि मेलयित्वा १७९२०००। अत्र गुणकारमुख्यनदीः ९० मेलने १७९२०९० जम्बूद्वीपसर्वनदीसंख्या। अत्र स्वप्रमाणतो १७९२०९० द्विगुणा ३५८४१८० मणिमयवेद्यो ज्ञातव्याः ॥ ७२१ ॥

अब पर्वत आदि पर सर्वत्र वेदिकाओं की संख्या कहते हैं :—

गाथार्थ :—जम्बूद्वीप में तीन सौ ग्यारह पर्वत, ९० कुण्ड और छब्बीस ह्रद हैं। इनकी इतनी इतनी ही मणिमय वेदियाँ हैं, तथा नदियों का जितना प्रमाण है, मणिमय वेदियाँ उससे दूने प्रमाण वाली हैं। (क्योंकि नदियों के दोनों पार्श्व भागों में वेदियाँ होती हैं) ॥ ७२१ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप में ३११ पर्वतों की ३११ ही मणिमय वेदियाँ हैं। तथा ९० कुण्डों की ९० और २६ ह्रदों की २६ ही मणिमय वेदियाँ हैं। नदियों के अपने प्रमाण से वेदियों का प्रमाण दूना है।

इसी कहे हुए अर्थ का विशेष वर्णन करते हैं :—जम्बूद्वीप में १ सुदर्शन मेरु, ६ कुलाचल, ४ यमकगिरि, २०० काञ्चन पर्वत, ८ दिग्गज पर्वत, १६ वक्षार पर्वत, ४ गजदन्त, ३४ विजयार्ध पर्वत, ३४ वृषभाचल और ४ नाभिगिरि हैं, इन सबका योग करने पर (१+६+४+२००+८+१६+४+३४+३४+४)=३११ पर्वत होते हैं।

गङ्गा, सिन्धु, रोहित् रोहितास्या आदि चौदह महानदियाँ कुलाचल पर्वतों से जहाँ नीचे गिरतीं हैं, वहाँ (नीचे) कुण्ड हैं जिनकी संख्या १४ है। बारह विभङ्गा नदियों के उत्पत्ति कुण्डों की संख्या १२, बत्तीस विदेह देशों में से प्रत्येक देश में गंगा सिन्धु समान दो दो नदियाँ कुण्डों से निकलतीं हैं, अत: वहाँ के कुण्डों का प्रमाण ६४ है, इस प्रकार से कुल (१४+१२+६४)=९० कुण्ड होते हैं।

छह कुलाचलों पर ६ ह्रद, सीता नदी में १० और सीतोदा नदी में भी १० इस प्रकार कुल ह्रदों की संख्या (६+१०+१०)=२६ है।

भरतैरावत क्षेत्र स्थित गंगा सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा इन चार महानदियों में से प्रत्येक की परिवार नदियाँ १४००० हैं, अत: अपने गुणकार का गुणा करने पर कुल प्रमाण (१४०००×४)=५६००० हुआ। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र स्थित रोहित् रोहितास्या, स्वर्णकूला और रूप्यकूला, इन प्रत्येक की सहायक २८००० नदियाँ हैं, अत: परिवार नदियों का कुल प्रमाण (२८०००×४)=११२००० हुआ। हरि और रम्यक क्षेत्र स्थित हरित्, हरिकान्ता, नारी और नरकान्ता, इन प्रत्येक की परिवार नदियाँ ५६००० हैं अत: उनका कुल प्रमाण (५६०००×४)=२२४००० हुआ। देवकुरु उत्तरकुरु स्थित सीता-सीतोदा में प्रत्येक की परिवार नदियाँ ८४००० हैं, अत: उनका कुल प्रमाण (८४०००×२)=१६८००० हुआ। बारह विभङ्गा नदियों में प्रत्येक की परिवार नदियाँ २८००० हैं, अत: २८०००×१२=३३६००० परिवार नदियों का प्रमाण हुआ। बत्तीस विदेह देशों में गंगा-सिन्धु, रक्ता और रक्तोदा नाम की ६४ नदियाँ हैं, तथा प्रत्येक की परिवार नदियाँ १४००० हैं, अत: इनकी परिवार नदियों का कुल प्रमाण (१४०००×६४)=८९६००० हुआ। इन सम्पूर्ण परिवार नदियों का योग करने पर (५६०००+११२०००+२२४०००+१६८०००+३३६०००+८९६०००)=१७९२००० कुल प्रमाण प्राप्त हुआ। यहाँ गुणकार स्वरूप मुख्य नदियों का प्रमाण (४+४+४+२+१२+६४)=९० है। परिवार नदियों के प्रमाण में इन मुख्य नदियों का प्रमाण मिला देने पर (१७९२०००+९०)=१७९२०९० जम्बूद्वीप स्थित सम्पूर्ण नदियों का प्रमाण प्राप्त हुआ।

जम्बूद्वीपस्थ ९० प्रमुख नदियों का चित्रण निम्नप्रकार है—

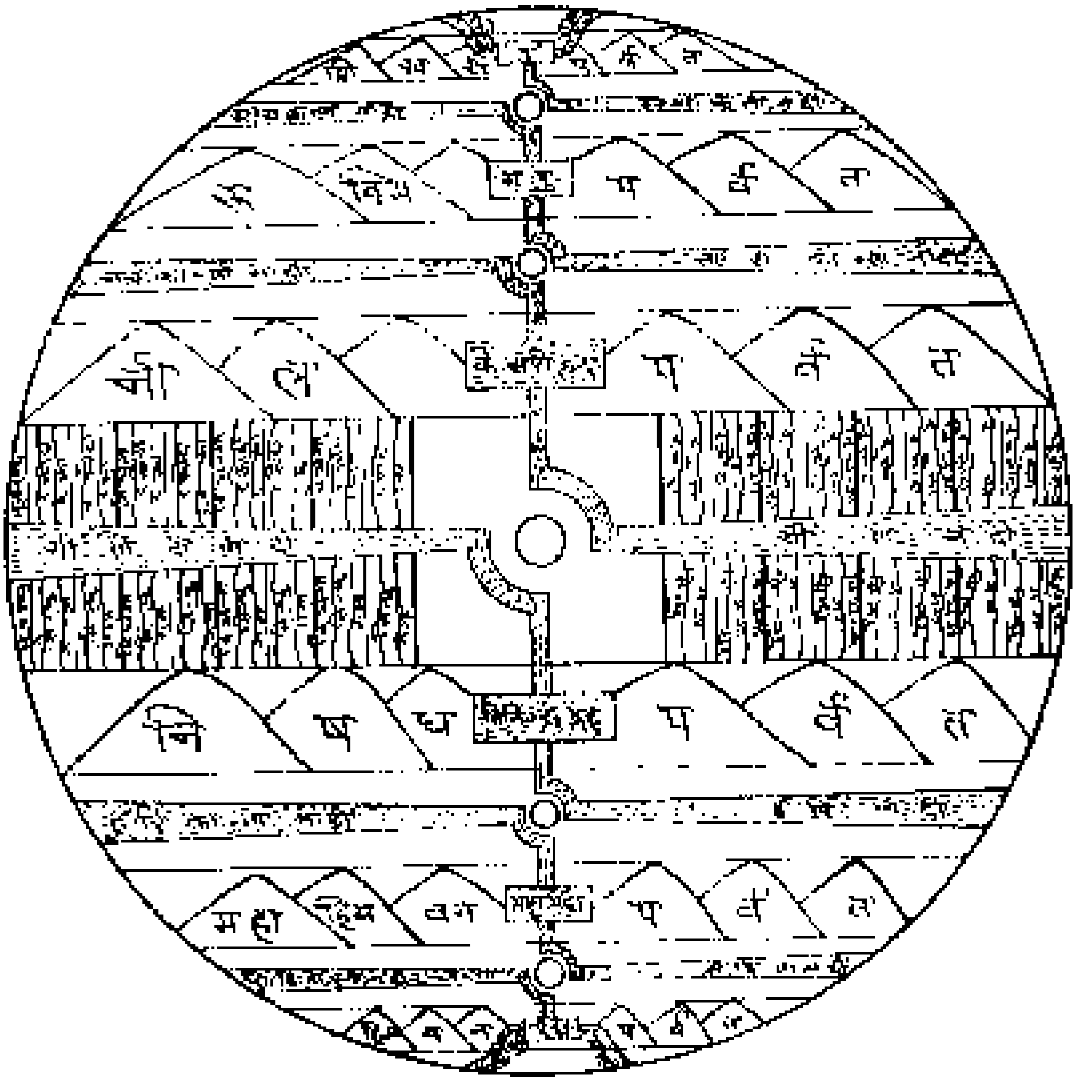

नदियों के दोनों तटों पर वेदियाँ होती हैं। अतः नदी सम्बन्धी वेदियों का प्रमाण (१७९२०९० × २) = ३५८४१८० है।

इस प्रकार जम्बूद्वीप स्थित ३११ पर्वतों की ३११ वेदियाँ, ९० कुण्डों की ९० वेदियाँ, २६ ह्रदों की २६ वेदियाँ और १७९२०९० नदियों की ३५८४१८० वेदियाँ हैं, जिनका सम्पूर्ण योगफल ३५८४६०७ (३५८४१८० + ३११ + ९० + २६) होता है। ये सभी वेदियाँ मणिमय हैं।

अथ भरतैरावतस्थविजयार्धकूटान् तत्रस्थदेवांश्च गाथाचतुष्टयेनाह—

सिद्धं दक्खिणअद्धादिमभरहं खंडयप्पवादमदो ।
तो पुण्णभद्द वेयड्ढकुमारं माणिभद्दक्खं ॥ ७१२ ॥

तामिस्सगुहमथुत्तरभरहकूडं च वेसवण चरिमं ।
सिद्धुत्तरद्धतामिस्सादिमगुहगं च माणिभद्दमदो ॥७१३॥

तो वेयड्ढकुमारं पुण्णादीभद्द खंडयपवादं ।
दक्खिणरेवतअद्धं वेसवणं पुव्वदो दुवेयड्ढे ॥ ७३४ ॥

सिद्धं दक्षिणार्धादिमभरतं खण्डप्रपातमतः ।
ततः पूर्णभद्रं विजयार्धकुमारं माणिभद्राख्यं ॥ ७३२ ॥
तामिश्रगुहमुत्तरभरतकूटं च वैश्रवणं चरमं ।
सिद्धोत्तरार्धतामिश्रादिमगुहं च माणिभद्रमतः ॥७३३॥
ततो विजयार्धकुमारं पूर्णादिभद्रं खण्डप्रपातं ।
दक्षिणैरावतार्धं वैश्रवणं पूर्वतः द्विविजयार्धे ॥ ७३४ ॥

सिद्ध । सिद्धकूटं दक्षिणार्धभरतं खण्डप्रपातं, ततः पूर्णभद्रं विजयार्धकुमारं माणिभद्राख्यं ॥ ७३२ ॥

तामिस्स । तामिस्रगुहं उत्तरभरतकूटं चरमं वैश्रवणं । इत उपर्यैरावतविजयार्धकूटानि सिद्धकूटं उत्तरार्धैरावतं तमिस्रगुहं माणिभद्रमतः ॥ ७३३ ॥

तो । ततो विजयार्धकुमारं पूर्णभद्रं खण्डप्रपातं दक्षिणैरावतार्धं वैश्रवणं ९ एतानि कूटानि १८ भरतैरावतस्थयोविजयार्धयोः भवन्ति ॥ ७३४ ॥

भरतैरावत स्थित विजयार्धों के कूट और उन पर अवस्थित देवों का वर्णन चार गाथाओं द्वारा करते हैं—

गाथार्थ :—१ सिद्धकूट, २ दक्षिणार्ध भरतकूट, ३ खण्डप्रपात, ४ पूर्णभद्र, ५ विजयार्धकुमार, ६ मणिभद्र नामा कूट, ७ तमिस्रगुह कूट, ८ उत्तरभरत कूट और अन्तिम ९ वैश्रवण कूट ये भरतक्षेत्र स्थित विजयार्ध पर्वत पर ९ कूट हैं, तथा १ सिद्धकूट, २ उत्तरार्ध ऐरावत कूट, ३ तमिस्रगुह, ४ मणिभद्र, ५ विजयार्धकुमार, ६ पूर्णभद्र, ७ खण्डप्रपात, ८ दक्षिणैरावतार्ध और ९ वैश्रवण ये ऐरावत क्षेत्र स्थित विजयार्ध पर्वत पर पूर्व दिशा से लगाकर क्रम पूर्वक हैं ॥ ७३२, ७३३, ७३४ ॥

विशेषार्थ :—उपर्युक्त ९ कूट भरतैरावत स्थित विजयार्ध पर्वतों पर हैं। ये पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर क्रम से स्थित हैं।

कंचणमयाणि खंडप्पवादए णट्टमाल तामिस्से ।
कदमालो छक्कूडे वसंति सगणामवाणसुरा ॥ ७३५ ॥

काञ्चनमयानि खण्डप्रपाते नृत्यमालः तमिस्रे ।
कृतमालः षट्कूटेषु वसंति स्वकनामवानसुराः ॥ ७३५ ॥

कंचण । तानि कूटानि काञ्चनमयानि, तत्र खण्डप्रपातकूटे नृत्यमालाख्यो व्यन्तरदेवोस्ति । तमिस्रकूटे कृतमालाख्यः इतरेषु षट्सु कूटेषु स्वकीयस्वकीयकूटनाम व्यन्तरदेवा वसन्ति ॥ ७३५ ॥

गाथार्थ :—भरतैरावतस्थित विजयार्धों के सभी १८ कूट काञ्चनमय हैं। इनमें से खण्डप्रपात नाम कूट पर नृत्यमाल और तमिस्र कूट पर कृतमाल तथा अन्य अवशेष कूटों पर अपने अपने कूट-नामधारी व्यन्तर देव निवास करते हैं ॥ ७३५ ॥

अथ उक्तानां विजयार्धजिनालयानामुदयादित्रयमाह—

कोसायामं तद्दलविस्थारं तुरियहीणकोसुदयं ।
जिणगेहं कूडुवरिं पुव्वमुहं संठियं रम्मं ॥ ७३६ ॥

कोशायामं तद्दलविस्तारं तुरीयहीनक्रोशोदयं ।
जिनगेहं कूटोपरि पूर्वमुखं संस्थितं रम्यं ॥ ७३६ ॥

कोसा । सिद्धकूटस्योपरि क्रोशायामं २००० तदर्धविस्तारं १००० । चतुर्थांश ५०० हीनक्रोशोदयं १५०० पूर्वमुखं रम्यं जिनेन्द्रगेहं संस्थितं ॥ ७३६ ॥

उक्त विजयार्ध स्थित जिनालयों के उदय आदि तीन (उदय, व्यास और लम्बाई) कहते हैं—सिद्ध कूटों पर एक कोश लम्बे, अर्ध कोश चौड़े तथा चतुर्थ भाग हीन अर्थात् पौन कोश ऊँचे, पूर्वाभिमुख अतिरमणीक जिन मन्दिर हैं ॥ ७३६ ॥

विशेषार्थ :—भरतैरावत क्षेत्रों के दोनों विजयार्धों पर स्थित सिद्धकूटों के ऊपर २००० धनुष (१ कोश) लम्बे, १००० धनुष (½ कोस) चौड़े और १५०० धनुष (¾ कोश) ऊँचे, पूर्वाभिमुख रमणीक जिनमन्दिर हैं।

अथ गजदन्ताख्यानां वक्षाराणामितरवक्षाराणां च कूटसंख्यातन्नामादिकं गाथाष्टकेनाह—

णवसत्तय णवसत्तय ईसाणदिसा दुदंतसेलाणं ।
वक्खाराणं चउचउकूडं तण्णाममणुकमसो ॥ ७३७ ॥

नव सप्त च नव सप्त च ईशानदिशः द्विदन्तशैलानां ।
वक्षाराणां चत्वारि चत्वारि कूटानि तन्नामानि अनुक्रमशः ॥७३७॥

णव । ईशानदिशः आरभ्य गजदन्तशैलानां क्रमेण कूटसंख्या नव ९ सप्त ७ नव सप्त च स्युः । इतरवक्षाराणां चत्वारि ४ चत्वारि कूटानि तेषां नामान्यनुक्रमशः कथयति ॥ ७३७ ॥

अब गजदन्त हैं नाम जिनके ऐसे चार वक्षार और अन्य १६ वक्षार पर्वतों पर स्थित कूटों की संख्या और उनके नामादिक आठ गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—ऐशान दिशा से प्रारम्भ कर चारों गजदन्त पर्वतों पर क्रम से नव, सात, नव और सात कूट हैं, तथा सोलह वक्षार पर्वतों पर चार, चार कूट हैं उनके नाम अनुक्रम से [निम्न प्रकार] हैं ॥ ७३७ ॥

विशेषार्थ :—ऐशान दिशा से प्रारम्भ कर चार गजदन्त पर्वतों के ऊपर क्रम से कूटों की संख्या ९, ७, ९ और ७ है, तथा अन्य १६ वक्षार पर्वतों के ऊपर चार, चार कूट हैं। उन कूटों के नाम अनुक्रम से कहते हैं।

सिद्धं मल्लवमुत्तरकउरव कच्छं च सागरं रजदं।
पुण्णादिभद्द सीदा हरिसहकूडं हवे णवमे ॥ ७३८ ॥
तो सिद्धं सोमणसं कूडं देवकुरु मङ्गलं विमलं।
कंचण अवसिट्ठमंते सिद्धं विज्जुप्पहं तत्तो ॥ ७३९ ॥
देवकुरु पउम तवणं सोत्थियकूडं सदज्जलं तत्तो।
सीतोदा हरि चरिमं तो सिद्धं गंधमादणयं ॥ ७४० ॥
उत्तरकुरु गंधादीमालिणि तो लोहिदक्खफलिहंते।
आणंदं सायरदुग तिया सुभोगा य भोगमालिणिया ॥७४१॥
विमलदुगे वच्छादीमित्त सुमित्ता य वारिसेण बला।
तवणदुगे भोगंकर भोगवदी फलिहलोहिदे देवी ॥ ७४२ ॥

सिद्धं माल्यवान् उत्तरकौरवं कच्छं च सागरं रजतं।
पूर्णादिभद्रं सीता हरिसहकूटं भवेत् नवमं ॥ ७३८ ॥
ततः सिद्धं सौमनसं कूटं देवकुरु मङ्गलं विमलं।
काञ्चनं अवशिष्टमन्ते सिद्धं विद्युत्प्रभं ततः ॥ ७३९ ॥
देवकुरुः पद्मं तपनं स्वस्तिककूटं शतज्वालं ततः।
सीतोदा हरि चरमं ततः सिद्धं गन्धमादनकं ॥ ७४० ॥
उत्तरकुरुः गन्धादिमालिनी ततो लोहिताक्षं स्फटिकमन्ते।
आनन्दं सागरद्विके स्त्रियौ सुभोगा च भोगमालिनी ॥ ७४१ ॥
विमलद्विके वत्सादिमित्रा सुमित्रा च वारिषेणा बला।
तपनद्विके भोगङ्करी भोगवती स्फटिकलोहितयोः देव्यौ ॥७४२॥

सिद्धं। सिद्धकूटं माल्यवान् उत्तरकौरवं कच्छं च सागरं रजतं पूर्णभद्रं सीता हरिसहकूटं नवमं भवेत् ॥ ७३८ ॥

तो। ततः सिद्धकूटं सौमनसकूटं देवकुरुकूटं मङ्गलं विमलं काञ्चनं अन्ते अवशिष्टं ७ ततः सिद्धकूटं विद्युत्प्रभं ॥ ७३९ ॥

देव । देवकुरुः पद्मं तपनं स्वस्तिककूटं शतज्वालं ततः सीतोदा चरिमं हरिकूटं ९ ततः सिद्धकूटं गन्धमादनं ॥ ७४० ॥

उत्तर । उत्तरकुरुः गन्धमालिनी ततो लोहिताक्षं स्फटिकं अन्ते आनन्दं ७ तेषां मध्ये सागर-रजतकूटयोः सुभोगाभोगमालिन्याख्ये व्यन्तरदेव्यौ स्थिते ॥ ७४१ ॥

विमल । विमलकाञ्चनकूटयोः वत्समित्रासुमित्राख्ये व्यन्तरदेव्यौ स्तः, तपनस्वस्तिककूटयोर्वारि-षेणबलाख्ये व्यन्तरदेव्यौ स्तः, स्फटिकलोहितकूटयोर्भोगङ्करीभोगवत्याख्ये व्यन्तरदेव्यौ स्तः ॥ ७४२ ॥

गाथार्थ :— १ सिद्धकूट, २ माल्यवान्, ३ उत्तर कौरव, ४ कच्छ, ५ सागर, ६ रजत, ७ पूर्णभद्र, ८ सीता और ९ हरिसहकूट हैं। ये नौ कूट ऐशान दिशागत माल्यवान् गजदन्त पर स्थित हैं।

गाथार्थ :— इसके बाद १ सिद्धकूट, २ सौमनस, ३ देवकुरु, ४ मङ्गल, ५ विमल, ६ काञ्चन और अन्तिम ७ वशिष्ठ नाम सात कूट दूसरे सौमनस गजदन्त पर्वत के ऊपर स्थित हैं। इसके बाद १ सिद्धकूट, २ विद्युत्प्रभ, ३ देवकुरु, ४ पद्म, ५ तपन, ६ स्वस्तिककूट, ७ शतज्वाल, ८ सीतोदा और अन्तिम ९ हरिकूट, ये ९ कूट तीसरे विद्युत्प्रभ गजदन्त के ऊपर अवस्थित हैं। इसके बाद १ सिद्धकूट, २ गन्धमादन, ३ उत्तरकुरु, ४ गन्धमालिनी, ५ लोहिताक्ष, ६ स्फटिक और अन्तिम ७ आनन्द ये सात कूट चौथे गन्धमादन गजदन्त के ऊपर अवस्थित हैं। इन उपर्युक्त कूटों में से सागर एवं रजतकूटों पर सुभोगा और भोगमालिनी व्यन्तर देवियाँ निवास करती हैं। विमल और काञ्चन कूटों पर वत्समित्रा और सुमित्रा, तपन और स्वस्तिक कूटों पर वारिषेणा और अबला तथा स्फटिक और लोहित कूटों पर भोगङ्करा और भोगवती नाम की व्यन्तर देवियाँ निवास करती हैं ॥ ७३८—७४२ ॥

विशेषार्थ :— सुगम है।

सिद्धं वक्खारक्खं हेट्ठुवरिमदेसणामकूडदुगं ।
दुगणव पण सोलं दुगकला य वक्खारदीहत्तं ॥ ७४३ ॥

सिद्धं वक्षाराख्यं अधस्तनोपरिमदेशनामकूटद्वयं ।
द्विनव पञ्च षोडश द्विककला च वक्षारदीर्घत्वम् ॥ ७४३ ॥

सिद्धं । इत उपरि वक्षारकूटानि, सिद्धकूटं वक्षाराख्यं सर्ववक्षाराणामधस्तनोपरिमदेशनाम कच्छासुकच्छादिकूटद्वयमित्येतान्येव चत्वारि सर्ववक्षाराणां कूटनामानि भवन्ति। वक्षाराणां दैर्घ्यं तु द्विनव पञ्च षोडशयोजनानि एकोनविंशतिद्विकलाधिकानि भवन्ति। कथमेतत् ? 'चुलसीदिछस्सेसीसा वक्षारविहिलेति' गाथोक्तविदेहविष्कम्भे ३३६८४ $\frac{४}{१९}$ सीतासीतोदयोः विवक्षितनद्योव्यास ५०० मपनीय ३३१८४ $\frac{४}{१९}$ मर्धीकृते १६५९२ $\frac{२}{१९}$ वक्षारदैर्घ्यमायाति ॥ ७४३ ॥

गाथार्थ :—प्रत्येक वक्षार पर चार चार कूट हैं जिनमें एक कूट का नाम सिद्ध, दूसरे का अपने अपने वक्षार का जो नाम है, वही नाम कूट का है, तथा शेष दो कूटों के नाम वक्षार पर्वतों के दोनों पार्श्व भागों में स्थित देशों के जो नाम हैं, वह हैं। प्रत्येक वक्षार पर्वतों की लम्बाई सोलह हजार पाँच सौ बानवे योजन और $\frac{2}{19}$ भाग अर्थात् १६५९२$\frac{2}{19}$ योजन है ॥ ७४३ ॥

विशेषार्थ :—सोलह वक्षार पर्वत हैं और प्रत्येक पर चार चार कूट हैं, उन कूटों के नाम निम्नलिखित हैं :—

क्रमांक	वक्षार पर्वतों के नाम	१ ले कूटों के नाम	२ रे कूटों के नाम	३ रे कूटों के नाम	४ थे कूटों के नाम
१	चित्रकूट	सिद्ध कूट	चित्रकूट	कच्छा	सुकच्छा
२	पद्मकूट	" "	पद्मकूट	महाकच्छा	कच्छकावती
३	नलिन	" "	नलिन	आवर्ता	लाङ्गलावर्ता
४	एक शैल	" "	एकशैल	पुष्कला	पुष्कलावती
५	त्रिकूट	" "	त्रिकूट	वत्सा	सुवत्सा
६	वैश्रवण	" "	वैश्रवण	महावत्सा	वत्सकावती
७	अञ्जनात्मा	" "	अञ्जनात्मा	रम्या	सुरम्यका
८	अञ्जन	" "	अञ्जन	रमणीया	मङ्गलावती
९	श्रद्धावान्	" "	श्रद्धावान्	पद्मा	सुपद्मा
१०	विजटावान्	" "	विजटावान्	महापद्मा	पद्मकावती
११	आशीविष	" "	आशीविष	शङ्खा	नलिनी
१२	सुखावह	" "	सुखावह	कुमुद	सरित
१३	चन्द्रमाल	" "	चन्द्रमाल	वप्रा	सुवप्रा
१४	सूर्यमाल	" "	सूर्यमाल	महावप्रा	वप्रकावती
१५	नागमाल	" "	नागमाल	गन्धा	सुगन्धा
१६	देवमाल	" "	देवमाल	गन्धिला	गन्धमालिनी

वक्षार पर्वतों की लम्बाई १६५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन है। इतनी लम्बाई कैसे है ?

'चुलसीदि छत्तीसा' गाथा संख्या ६०५ में विदेह का विष्कम्भ ३३६८४ $\frac{४}{१९}$ योजन कहा गया है। सीता सीतोदा दोनों नदियों में से विवक्षित नदी व्यास ५०० योजन घटाकर आधा करने पर (३३६८४ $\frac{४}{१९}$ — ५०० = $\frac{३३१८४\frac{४}{१९}}{२}$) १६५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन प्रत्येक वक्षार पर्वत की लम्बाई का प्रमाण प्राप्त होता है।

कुलगिरिसमीवकूडे दिक्कण्णाओ वसंति सेसेसु ।
वाणा कूडपमाहिद णगदीहो कूडअंतरयं ॥७४४॥

कुलगिरिसमीपकूटे दिक्कन्याः वसन्ति शेषेषु ।
वानाः कूटप्रमाहितं नगदैर्घ्यं कूटान्तरं ॥ ७४४ ॥

कुल। कुलगिरिसमीपस्थवक्षारे २० प्रथमकूटे दिक्कन्या वसन्ति, शेषेषु कूटेषु ७।५।२ व्यन्तरदेवास्तिष्ठन्ति स्वस्वकूटप्रमाणैः ९।७।४ स्तस्वनगदैर्घ्यं गजदन्तदैर्घ्यं ३०२०९ $\frac{६}{१९}$ इतरवक्षारदैर्घ्यं च १६५९२ $\frac{२}{१९}$ हृते स्वस्वकूटान्तरं स्यात्। नवकूटान्तराणामेतावति गजदन्तक्षेत्रे ३०२०९ $\frac{६}{१९}$ एककूटान्तरस्य कियत्क्षेत्रमिति सम्पात्याप्तिहिते ३०२०९ अंशे च $\frac{६}{१९}$ भक्ते ३३५६ लभ्यांशे $\frac{५}{९}$। $\frac{६}{१७१}$। $\frac{५}{९}$ समच्छेदेन $\frac{९५}{१७१}$। $\frac{६}{१७१}$ मेलने $\frac{१०१}{१७१}$ एककूटान्तरक्षेत्रं स्यात्। एतदेव नवकूटान्तरं। एवं सप्तकूटान्तरस्य त्रैराशिक-विधिरियम्: प्र ७ फ ३०२०९ $\frac{६}{१९}$ इ १ लब्धं सप्तकूटान्तरं ४३१५ $\frac{८२}{१३३}$ चतुः कूटान्तराणामेतावति वक्षार-क्षेत्रे १६५९२ $\frac{२}{१९}$ एककूटान्तरस्य किमिति सम्पात्याप्तिनांशे च भक्ते तन्मेलने एककूटान्तरं स्यात् ४१४८ $\frac{२}{७६}$ एतदेव चतुः कूटान्तरं स्यात् ॥ ७४४ ॥

गाथार्थ:—कुलाचलों के समीपवर्ती कूटों पर दिक्कुमारियाँ और शेष कूटों पर व्यन्तर देव निवास करते हैं। जिन पर्वतों पर जितने कूट हैं, उन कूटों के प्रमाण से अपने अपने पर्वतों की लम्बाई के प्रमाण को भाजित करने पर एक कूट से दूसरे कूट का अन्तर प्राप्त होता है ॥ ७४४ ॥

विशेषार्थ :—चार गजदन्त और १६ वक्षारों को मिलाकर २० वक्षार पर्वत हैं। इनके ऊपर क्रम से ९, ७, ९, ७ और ४, ४ ..... कूट हैं। इन ९६ कूटों में से जो एक एक कूट कुलाचलों के समीप-वर्ती हैं उन (२० कूटों) पर दिक्कुमारियों का निवास है, तथा प्रत्येक पर्वत के प्रथम सिद्ध या सिद्धायतन नामक (२०) कूटों पर जिन भवन हैं और अवशेष दो गजदन्तों के सात, सात, दो गजदन्तों के पाँच, पाँच और १६ वक्षार पर्वतों के दो दो इस प्रकार ५६ कूटों पर व्यन्तर देवों का निवास है।

गजदन्त पर्वतों की लम्बाई ३०२०९ $\frac{६}{१९}$ योजन तथा वक्षार पर्वतों की लम्बाई का प्रमाण १६५९२ $\frac{२}{१९}$ योजन है। इनको अपने अपने कूट प्रमाण ९, ७ और ४ से भाग देने पर एक कूट से दूसरे कूट के अन्तर का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—जबकि ९ कूटों के अन्तराल पर ३०२०९ $\frac{६}{१९}$ योजन क्षेत्र

प्राप्त होता है, तो एक कूट के अन्तर पर कितना क्षेत्र प्राप्त होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{३०२०९\frac{६}{१९}}{९}$)= ३३५६ यो० प्राप्त हुये और $\frac{५}{९}$ योजन अवशेष रहे। $\frac{६}{१९}$ योजन में ९ का भाग देकर $\frac{५}{९}$ मिला देने पर [$\frac{५}{९}$+($\frac{६}{१९}$ × $\frac{१}{९}$)]=$\frac{१०१}{१७१}$ अर्थात् गजदन्त स्थित कूटों में एक कूट से दूसरे कूट का अन्तर ३३५६$\frac{१०१}{१७१}$ योजन है। ९ कूटों के परस्पर अन्तराल का प्रमाण भी इतना ही है।

इसी प्रकार जबकि ७ कूटों के अन्तराल पर ३०२०९$\frac{६}{१९}$ योजन क्षेत्र है, तो एक कूट के अन्तर पर कितना क्षेत्र प्राप्त होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{३०२०९\frac{६}{१९}}{७}$) = ४३१५$\frac{८२}{१३३}$ योजन द्वितीय गजदन्त ऊपर एक कूट से दूसरे कूट का अन्तर है। इसी प्रकार सातों कूटों का जानना चाहिए।

एक एक वक्षार पर्वतों की लम्बाई १६५९२$\frac{२}{१९}$ योजन है, और एक एक वक्षार ऊपर चार, चार कूट हैं। जबकि ४ कूटान्तरों पर १६५९२$\frac{२}{१९}$ योजन क्षेत्र है, तब १ कूटान्तर पर कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{१६५९२\frac{२}{१९}}{४}$) = ४१४८$\frac{१}{३८}$ योजन वक्षार स्थित कूटों में एक कूट से दूसरे कूट का अन्तर है। इसी प्रकार चारों कूटों में जानना चाहिए।

अथ वक्षाराणामुदयं तत्रस्थाकृत्रिमचैत्यालयस्थाननिर्देशं च करोति—

वक्खारसयाणुदओ कुलगिरिपासम्हि चउसयं वुड्ढा ।
णइमेरुस्स य पासे पंचसया तत्थ जिणगेहा ॥ ७४५ ॥

वक्षारशतानामुदयः कुलगिरिपार्श्वे चतुःशतं वृद्धया ।
नदीमेरोश्च पार्श्वे पञ्चशतानि तत्र जिनगेहाः ॥ ७४५ ॥

वक्खार शतवक्षारपर्वतानामुदयः कुलगिरिपार्श्वे चतुःशत ४०० योजनानि, ततः परमनुक्रमेण वृद्धया विदेहगतानां नदीपार्श्वे गजदन्तानां मेरुपार्श्वे पञ्चशत ५०० योजनान्युत्सेधः तत्र पञ्चशतयोजनोत्सेधस्थकूटे जिनगेहाः सन्ति ॥ ७४५ ॥

वक्षार पर्वतों की ऊँचाई एवं वहाँ स्थित अकृत्रिम चैत्यालयों के स्थान का निर्देश करते हैं :—

गाथार्थ :—[पञ्चमेरु सम्बन्धी गजदन्त सहित] वक्षार पर्वतों का कुल प्रमाण १०० है। कुलाचलों के पार्श्व भागों में उनकी ऊँचाई ४०० योजन है। इसके आगे क्रमिक वृद्धि से युक्त होते हुए सीता-सीतोदा के निकट और मेरु के पार्श्व भागों में ५०० यो० ऊँचे हैं, और उन पर जिन-मन्दिर हैं ॥ ७४५ ॥

विशेषार्थ :—गजदन्त सहित एक मेरु के २० वक्षार पर्वत हैं, अतः पञ्चमेरु सम्बन्धी कुल वक्षार पर्वतों का प्रमाण १०० है। अर्थात् वक्षार पर्वत १०० हैं। जिनकी ऊँचाई कुलाचलों के पार्श्व भागों

में ४०० योजन है। इसके बाद अनुक्रम से वृद्धि होते हुए विदेहगत सीता–सीतोदा नदी के निकट और मेरु के पार्श्व भागों में गजदन्तों की ऊँचाई ५०० योजन है। जो वक्षार ५०० योजन ऊँचे हैं, उनके ऊपर स्थित कूटों पर जिनमन्दिर हैं।

अथ नवादिकूटानामुत्सेधानयने करणसूत्रमाह—

गिरितुरियं पढमंतिमकूडुदओ उभयसेसमवहरिदं।
वेगपदेण चयो सो इट्ठगुणो मुहजुदो इट्ठं ॥ ७४६ ॥

गिरितुरीयं प्रथमान्तिमकूटोदयः उभयशेषमपहृतं।
व्येकपदेन चयः स इष्टगुणः मुखयुतः इष्टः ॥ ७४६ ॥

गिरि। वक्षारगिरीणामुत्सेधः ४०० । ५०० चतुर्थांश एव तदुपरिमप्रथमान्तिमकूटोदयः १०० । १२५ एतदुभयं विशोधयित्वा २५ प्रथमस्य हानिवृद्धयोरभावात् विगतैकपदेन ८ । ६ । ३ अपहृते सति ३ भा $\frac{१}{८}$ । ४ भा $\frac{१}{६}$ । ८$\frac{१}{३}$ हानिचयो भवति। स एव रूपोनेष्टगच्छगुणितः ३$\frac{१}{८}$ । ६$\frac{२}{८}$ । ९$\frac{३}{८}$ । १२$\frac{४}{८}$ । १५$\frac{५}{८}$ । १८$\frac{६}{८}$ । २१$\frac{७}{८}$ । २५ मुख १०० युतश्चेत् १०३$\frac{१}{८}$ । १०६$\frac{२}{८}$ । १०९$\frac{३}{८}$ । ११२$\frac{४}{८}$ । ११५$\frac{५}{८}$ । ११८$\frac{६}{८}$ । १२१$\frac{७}{८}$ । १२५ द्वितीयादीष्टकूटस्योत्सेधो भातव्यः। एवं सप्तकूटचतुःकूटानामानेतव्यम् ॥ ७४६ ॥

अब नव आदि कूटों की ऊँचाई प्राप्त करने के लिए करणसूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—वक्षार पर्वतों का चौथाई भाग प्रथम और अन्तिम कूटों की ऊँचाई होती है। अन्तिम कूट की ऊँचाई के प्रमाण में से प्रथम कूट की ऊँचाई घटाने पर जो अवशेष रहे उसको एक कम पद से भाजित करने पर हानिचय का प्रमाण प्राप्त होता है। इस हानिचय के प्रमाण में इष्ट (विवक्षित) कूट का गुणा कर मुख प्रमाण जोड़ देने से इष्ट कूट की ऊँचाई का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ७४६ ॥

विशेषार्थ :—वक्षार पर्वतों का उत्सेध ४०० और ५०० योजन है। इन दोनों का चतुर्थांश ही प्रथम और अन्तिम कूटों की ऊँचाई है। अर्थात् ($\frac{४००}{४}$)=१०० योजन प्रथम कूट की और ($\frac{५००}{४}$)= १२५ योजन अन्तिम कूट की ऊँचाई है। इन दोनों को आपस में घटाने पर (१२५—१००)=२५ योजन प्राप्त हुए। प्रथम कूट में हानि वृद्धि का अभाव है, अतः २५ योजनों को एक कम पद अर्थात् (९—१)=८, (७—१)=६ और (४—१)=३ से भाजित करने पर ($\frac{२५}{८}$)=३$\frac{१}{८}$, ($\frac{२५}{६}$)= ४$\frac{१}{६}$ और ($\frac{२५}{३}$)=८$\frac{१}{३}$ हानिचय होता है। इस हानि चय के प्रमाण को एक कम इष्ट गच्छ से गुणित करने पर ($\frac{२५}{८}$×१)=३$\frac{१}{८}$, ($\frac{२५}{८}\times\frac{२}{१}$)=६$\frac{२}{८}$, ($\frac{२५}{८}\times\frac{३}{१}$)=९$\frac{३}{८}$, ($\frac{२५}{८}\times\frac{४}{१}$)=१२$\frac{४}{८}$, ($\frac{२५}{८}\times\frac{५}{१}$)=१५$\frac{५}{८}$, ($\frac{२५}{८}\times\frac{६}{१}$)=१८$\frac{६}{८}$, ($\frac{२५}{८}\times\frac{७}{१}$)=२१$\frac{७}{८}$, ($\frac{२५}{८}\times\frac{८}{१}$)=२५ योजन प्राप्त हुआ। इन सभी में १०० योजन मुख जोड़ने से (१००+३$\frac{१}{८}$)=१०३$\frac{१}{८}$, १०६$\frac{२}{८}$, १०९$\frac{३}{८}$, ११२$\frac{४}{८}$, ११५$\frac{५}{८}$, ११८$\frac{६}{८}$, १२१$\frac{७}{८}$ और १२५ योजन क्रम से द्वितीयादि इष्ट कूटों की ऊँचाई का प्रमाण जानना चाहिये। तथा इसी प्रकार

सात एवं ४ कूटों की ऊँचाई भी जानना चाहिये। यथा—$\frac{२५}{६}\times १=४\frac{१}{६}$, $\frac{२५}{६}\times २=८\frac{१}{३}$, $\frac{२५}{६}\times ३=१२\frac{१}{२}$ योजन, $\frac{२५}{६}\times ४=१६\frac{२}{३}$ योजन, $\frac{२५}{६}\times ५=२०\frac{५}{६}$ योजन और $\frac{२५}{६}\times ६=२५$ योजन, इन सभी को भिन्न भिन्न १०० योजन मुख में जोड़ देने पर १०४$\frac{१}{६}$ योजन, १०८$\frac{१}{३}$ योजन, ११२$\frac{१}{२}$ योजन, ११६$\frac{२}{३}$ योजन, १२०$\frac{५}{६}$ योजन और १२५ योजन, दूसरे एवं चौथे गजदन्तों के ऊपर स्थित द्वितीयादि कूटों की ऊँचाई का प्रमाण प्राप्त होता है।

इसी प्रकार वक्षार पर्वतों के ऊपर अवस्थित कूटों की ऊँचाई $\frac{२५}{३}\times १=८\frac{१}{३}$, $\frac{२५}{३}\times २=१६\frac{२}{३}$ योजन, $\frac{२५}{३}\times ३=२५$ योजन हुई। इनमें १०० योजन मुख जोड़ने से १०८$\frac{१}{३}$, ११६$\frac{२}{३}$ और १२५ योजन प्राप्त होते हैं। अर्थात् वक्षार पर्वतों पर ४, ४ कूट हैं, उनमें से पहिले की ऊँचाई १०० योजन, दूसरे कूट की १०८$\frac{१}{३}$ योजन और तीसरे कूट की ११६$\frac{२}{३}$ योजन और चौथे कूट की ऊँचाई १२५ योजन है। वक्षार के कूटों की ऊँचाई भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

इदानीं भरतादिक्षेत्राश्रयेण परिवारनदीप्रमाणं गाथाचतुष्केणाह—

भरहेरावदसरिदा विदेहजुगले च चोद्दससहस्सा।
णइपरिवारा तत्तो दुगुणा हरिरम्मगोत्ति दिति ॥ ७४७ ॥
भरतैरावतसरितः विदेहयुगले च चतुर्दशसहस्राणि।
नदीपरिवाराः ततः द्विगुणा हरिरम्यकक्षेत्रान्तं ॥ ७४७ ॥

भरह। भरतैरावतयोः सरितां ४ पूर्वापरविदेहयोर्गङ्गादिसरितां च ६४ प्रत्येकं चतुर्दशसहस्राणि १४००० परिवारनद्यः ततः परं भरताद्धरिवर्षपर्यन्तं ऐरावताद्रम्यकक्षेत्रपर्यन्तं द्विगुणद्विगुणक्रमो ज्ञातव्यः ॥ ७४७ ॥

अब भरतादि क्षेत्रों के आश्रय से परिवार नदियों का प्रमाण चार गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—भरतैरावत क्षेत्र में पूर्व और पश्चिम विदेह युगल स्थित प्रत्येक नदी की चौदह चौदह हजार परिवार नदियाँ हैं तथा भरत से हरि और ऐरावत से रम्यक क्षेत्र पर्यन्त परिवार नदियों का प्रमाण दूना दूना है ॥ ७४७ ॥

विशेषार्थ :—भरतैरावत दो क्षेत्रों में गङ्गा, सिन्धु और रोहित् रोहितास्या इस प्रकार ४ नदियाँ हैं। पूर्व पश्चिम दोनों विदेह के ३२ देशों में गङ्गा, सिन्धु रोहित और रोहितास्या ये ६४ नदियाँ हैं। इन (६४+४)=६८ नदियों में प्रत्येक नदी की सहायक नदियाँ १४००० हैं, अतः इन ३४ देशों की कुल परिवार नदियों की संख्या (१४००० × ६८)=९५२००० है। भरत से हरिवर्ष पर्यन्त और ऐरावत से रम्यक क्षेत्र पर्यन्त परिवार नदियाँ दुगुने दुगुने क्रम से हैं। अर्थात् हैमवत और हैरण्यवत दो क्षेत्र सम्बन्धी चार नदियों में प्रत्येक की सहायक २८ हजार हैं, अतः दोनों क्षेत्रों की कुल परिवार

नदियों का प्रमाण (२८००० × ४) = ११२००० है। इसी प्रकार हरि और रम्यक इन दो क्षेत्र सम्बन्धी चार नदियों में प्रत्येक की परिवार नदियाँ ५६००० हैं, अतः दोनों क्षेत्रों में चारों नदियों की कुल परिवार नदियों का प्रमाण (५६००० × ४) = २२४००० है।

बादालसहस्सं पुह कुरुदुणदी दुगदुपासजादणदी ।
चोद्दसलक्खडसद्दरी विदेहदुगसव्वणइसंखा ॥ ७४८ ॥

द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि पृथक् कुरुद्वयनद्यः द्विकद्विपार्श्वजातनद्यः ।
चतुर्दशलक्षाष्टसप्ततिः विदेहद्विकसर्वनदीसंख्या ॥ ७४८ ॥

बादाल । देवोत्तरकुर्वोः नद्योर्द्वयोरुभयपार्श्वजाता नद्यः पृथक् पृथक् द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि देवकुरुजा नद्यः ८४००० उत्तरकुरुजा नद्यः ८४००० विदेहद्वयगतसर्वनदीसंख्या अष्टसप्तत्युत्तरचतुर्दश-लक्षाणि १४०००७८। तत्कथं ? विदेहगतगङ्गासिन्धुसमनदीनां ६४ प्रत्येकं परिवारनद्यः १४००० विभङ्गनदीनां १२ प्रत्येकं परिवारनद्यः २८००० देवोत्तरकुर्वोः सीतासीतोदयोः २ प्रत्येकं परिवारनद्यः ८४००० एतासु स्वस्वगुणकारेण गुणयित्वा तत्र तत्र मुख्यनदी ७८ सहितं सर्वासु मिलितासु विदेहद्वय-गतसर्वनदीसंख्या ॥ ७४८ ॥

गाथार्थ :—देवकुरु, उत्तरकुरु दोनों क्षेत्रों की दो नदियों के दोनों पार्श्व भागों पर पृथक् पृथक् ४२ हजार, ४२ हजार परिवार नदियाँ हैं, तथा दोनों विदेहों की सम्पूर्ण नदियों की संख्या चौदह लाख अठत्तर है ॥ ७४८ ॥

विशेषार्थ :—देव कुरु क्षेत्र में सीतोदा नदी के दोनों पार्श्व भागों से उत्पन्न पृथक् पृथक् ४२००० परिवार नदियाँ और उत्तर कुरु क्षेत्र में सीता नदी के दोनों पार्श्व भागों से पृथक् पृथक् उत्पन्न ४२००० परिवार नदियाँ हैं। इस प्रकार देवकुरु गत सीतोदा की सहायक ८४००० और उत्तर कुरु गत सीता की परिवार नदियाँ भी ८४००० हैं।

दोनों विदेह क्षेत्रों में सम्पूर्ण नदियों का प्रमाण १४०००७८ है। वह कैसे ? विदेहस्थ ६४ गङ्गासिन्धु और रोहित् रोहितास्या की कुल परिवार नदियाँ (१४००० × ६४) = ८९६०००, १२ विभङ्गा की कुल परिवार नदियाँ (२८००० × १२) = ३३६०००, देवकुरु उत्तरकुरु गत सीता-सीतोदा की परिवार नदियाँ (८४००० × २) = १६८००० तथा मुख्य नदियाँ (६४ + १२ + २) = ७८ हैं। इन सम्पूर्ण नदियों का कुल योग (८९६००० + ३३६००० + १६८००० + ७८) = १४०००७८ है। अर्थात् पूर्वपश्चिम दोनों विदेह क्षेत्र गत सम्पूर्ण नदियों का प्रमाण १४०००७८ है।

लक्खतियं बाणउदीसहस्स बारं च सव्वणइसंखा ।
भरहेरावदपहुदी हरिरम्मगखेत्तओत्ति णादव्वा ॥७४९॥

लक्षत्रयं द्वानवतिसहस्रं द्वादश च सर्वनदीसंख्या ।
भरतैरावतप्रभृति हरिरम्यकक्षेत्रान्तं ज्ञातव्या ॥ ७४९ ॥

लक्ख । लक्षत्रयं द्वानवतिसहस्राणि द्वादश च ३९२०१२ भरतैरावतप्रभृतिहरिरम्यकक्षेत्रपर्यन्तं सर्वनदीसंख्या ज्ञातव्या । तत्कथं ? भरते गङ्गासिन्ध्वोः २ प्रत्येकं परिवारनद्यः १४००० हैमवते रोहिद्रोहितास्ययोः २ प्रत्येकं परिवारनद्यः २८००० हरिक्षेत्रे हरिद्धरिकान्तयोः २ प्रत्येकं परिवारनद्यः ५६००० एवमैरावते रक्तारक्तोदयोः १४००० हैरण्यवते सुवर्णरूप्यकूलयोः २८००० रम्यकक्षेत्रे नारीनरकान्तयोः ५६००० स्वस्वगुणकारेण गुणयित्वा मिलिते भवन्ति ॥ ७४९ ॥

गाथार्थ :— भरतक्षेत्र से हरिक्षेत्र पर्यन्त और ऐरावत क्षेत्र से रम्यक क्षेत्र पर्यन्त की सम्पूर्ण नदियों का प्रमाण तीन लाख, बानवे हजार, बारह है ॥ ७४९ ॥

विशेषार्थ :— भरत से हरिक्षेत्र पर्यन्त और ऐरावत से रम्यक पर्यन्त के समस्त क्षेत्रों की सम्पूर्ण नदियों का प्रमाण तीन लाख बानवे हजार बारह (३९२०१२) है वह कैसे ? भरतक्षेत्र में गंगा-सिन्धु प्रत्येक की परिवार नदियाँ १४००० हैं, अतः (१४००० × २) = २८००० कुल प्रमाण हुआ । हैमवत क्षेत्र गत रोहित-रोहितास्या में प्रत्येक की परिवार नदियाँ २८००० हैं, अतः (२८००० × २) = ५६०००, हरिक्षेत्र गत हरित् हरिकान्ता प्रत्येक की सहायक ५६००० हैं, अतः (५६००० × २) = ११२०००, ऐरावत में रक्ता-रक्तोदा प्रत्येक की परिवार नदियाँ १४००० हैं अतः (१४००० × २) = २८००० हैं । हैरण्यवत में सुवर्णकूला-रूप्यकूला प्रत्येक की २८००० परिवार नदियाँ हैं, अतः (२८००० × २) = ५६००० हैं, तथा रम्यक क्षेत्र में नारी-नरकान्ता प्रत्येक की सहायक नदियाँ ५६००० हैं, अतः (५६००० × २) = ११२००० हैं । इस प्रकार विदेह क्षेत्र को छोड़कर शेष छह क्षेत्रों की सम्पूर्ण नदियों का कुल योग (२८००० + ५६००० + ११२००० + २८००० + ५६००० + ११२००० + १२) = ३९२०१२ है ।

सत्तरसं बाणउदी णभणवसुण्णं णईण परिमाणं ।
गंगासिंधुमुहाणं जंबूदीवप्पभूदाणं ॥ ७५० ॥

सप्तदश द्वानवतिः नभोनवशून्यं नदीनां परिमाणं ।
गङ्गासिन्धुमुखानां जम्बूद्वीपप्रभूतानाम् ॥ ७५० ॥

सत्तरसं । सप्तदश द्वानवतिर्नभोनव शून्यं १७९२०९० जम्बूद्वीपोद्भूतानां गङ्गासिन्धुप्रमुखानां सर्वनदीनां प्रमाणं स्यात् । एतच्चोक्तगाथयोरङ्कानां मेलने स्यात् ॥ ७५० ॥

गाथार्थ :— जम्बूद्वीप में उत्पन्न गङ्गा सिन्धु हैं प्रमुख जिनमें ऐसी सम्पूर्ण नदियों का प्रमाण सतरह लाख बानवे हजार नब्बे है ॥ ७५० ॥

विशेषार्थ :—पूर्वापरविदेह क्षेत्रोत्पन्न १४०००७८ नदियाँ और भरतादि छह क्षेत्रोत्पन्न ३९२०१२ नदियाँ मिलाकर १७९२०९० नदियाँ जम्बूद्वीप में हैं।

अथ जम्बूद्वीपस्थमन्दरादीनां व्यासं निरूपयति—

गिरिभद्दसालविजयावक्खारविभंगदेवरण्णाणं।
पुव्वावरेण वासा एवं जंबूविदेहम्हि ॥ ७५१ ॥

गिरिभद्रशालविजयवक्षारविभंगदेवारण्यानाम्।
पूर्वापरेण व्यासा एवं जम्बूविदेहे ॥ ७५१ ॥

गिरि। मेरुगिरेः १ भद्रशालयोः २ देशानां १६ वक्षाराणां ८ विभङ्गनदीनां ६ देवारण्ययोः २ जम्बूद्वीपस्थविदेहे पूर्वापरेण व्यासा एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण कथ्यन्ते ॥ ७५१ ॥

जम्बूद्वीपस्थित मेरु आदि के व्यास का निरूपण करते हैं—

गाथार्थ :—जम्बूद्वीप स्थित विदेह क्षेत्र में एक मेरु, दो भद्रशाल, सोलह विदेह देश, आठ वक्षार, पर्वत, छह विभंगा नदी और दो देवारण्यों का पूर्व पश्चिम व्यास (आगे कहे जानेवाले प्रमाण के अनुसार) है ॥ ७५१ ॥

अथ तेषां मेर्वादीनां व्यासानयनविधानमाह—

गिरिपहुदीणं वासं इट्ठूणं सगगुणेहि गुणिय जुदं।
अवणिय दीवे सेसं इट्ठगुणोवट्ठिदे दु तव्वासं ॥ ७५२ ॥

गिरिप्रभृतीनां व्यासं इष्टोनं स्वकगुणैः गुणयित्वा युतं।
अपनीय द्वीपे शेषं इष्टगुणापवर्तिते तु तद्व्यासं ॥ ७५२ ॥

गिरि। शालक्येतुमन्दराद्यन्यतमव्यासं परित्यज्य इतरेषां गिरिप्रभृतीनां वक्ष्यमाणव्यासं भद्र २२००० देश २२१२⅞ वक्षार ५०० विभंग १२५ देवारण्य २९२२ स्वकीयस्वकीयगुणकारेण २। १६। ८। ६। २ गुणयित्वा ४४०००। ३५४०६। ४०००। ७५०। ५८४४ एवं सर्वं मेलयित्वा ९०००० एतज्जम्बूद्वीपव्यासे १००००० अपनीय शेषे १०००० इष्टगुणकारेणापहृते सति शालक्येतुव्यास आयाति १०००० ॥ ७५२ ॥

अब उन मेरु आदिकों के व्यास प्राप्त करने का विधान कहते हैं :—

गाथार्थ :—मेरु आदिक किसी इष्ट व्यास को छोड़ कर अन्य सभी के व्यास को अपने अपने गुणकार से गुणा कर परस्पर में सभी को जोड़ लेवे। तथा योगफल को जम्बूद्वीप के व्यास में से घटाने पर जो अवशेष बचे उसका इष्ट (विवक्षित) मेरु आदि के प्रमाण से भाजित करने पर इष्ट पर्वत आदि का व्यास प्राप्त होता है ॥ ७५२ ॥

विशेषार्थ :—जिस मेरु, पर्वत और नदी आदि का व्यास प्राप्त करना हो अन्य सभी के व्यासों को अपने अपने गुणकार से गुणा कर जोड़े और योगफल को जम्बूद्वीप के व्यास में से घटाने पर जो अवशेष रहे उसको विवक्षित मेरु आदि के प्रमाण से भाजित करने पर इष्ट पर्वत आदि के व्यास का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा :—सुदर्शन मेरु का व्यास प्राप्त करना है तो मेरु को छोड़कर भद्रशाल का व्यास २२००० योजन, विदेह देश का २२१२$\frac{७}{८}$ योजन, वक्षारगिरि का ५०० योजन, विभंगा नदी का १२५ योजन और देवारण्य का २९२२ योजन जो व्यास है उसे अपने अपने गुणकार, २, १६, ८, ६ और दो से गुणित करने पर (२२०००×२)=४४००० योजन दो भद्रशालों का, (२२१२$\frac{७}{८}$×१६)=३५४०६ योजन १६ विदेह देशों का, (५००×८)=४००० योजन ८ वक्षार पर्वतों का, (१२५×६)=७५० योजन ६ विभंगा नदियों का और (२९२२×२)=५८४४ योजन दो देवारण्य वनों का व्यास प्राप्त होता है। इन सबका योगफल (४४०००+३५४०६+४०००+७५०+५८४४)=९०००० योजन प्राप्त हुआ, इसे जम्बूद्वीपके एक लाख योजन व्यास में से घटाने पर (१००००० — ९००००)=१०००० योजन अवशेष रहा। हमारा इष्ट सुमेरु पर्वत है और उसकी प्रमाण संख्या एक है अतः अवशेष १०००० योजनों को १ से भाजित करने पर ($\frac{१००००}{१}$)=१०००० योजन ही प्राप्त हुआ। यही हमारे इष्ट मेरु पर्वत के व्यास का प्रमाण है। इसी प्रकार अन्य का भी जानना चाहिए।

एवमानीतव्यासप्रमाण सिद्धाङ्कमुच्चारयति—

दसबावीससहस्सा बारसबावीस सत्तअट्ठकला ।
कमसो पणसय पणघण बावीसुगुतीसमंककमो ॥७५३॥

दशद्वाविंशसहस्राणि द्वादशद्वाविंशतिः सप्ताष्टकला ।
क्रमशः पञ्चशतानि पञ्चघनः द्वाविंशैकोनत्रिंशदङ्कक्रमः ॥७५३॥

दस । दशसहस्राणि १०००० द्वाविंशतिसहस्राणि २२००० द्वादशोत्तरद्वाविंशतिः सप्ताष्टकला २२१२$\frac{७}{८}$ क्रमशः पञ्चशतानि ५०० पञ्चघनः १२५ द्वाविंशत्युत्तरएकोनत्रिंशत् २९२२ इति मन्दरादिव्यासाङ्कक्रमो ज्ञातव्यः ॥ ७५३ ॥

इस प्रकार ज्ञात व्यास प्रमाण के सिद्ध अङ्क कहते हैं—

गाथार्थ :—दस हजार योजन, बाईस हजार योजन, दो हजार दो सौ बारह और सप्ताष्ट कला ($\frac{७}{८}$ भाग) पाँचसौ योजन, एक सौ पच्चीस योजन, दो हजार नौ सौ बाईस योजन क्रमशः मेरु आदि के व्यास के प्राप्त हुए अङ्कों का प्रमाण है।

विशेषार्थ :—मेरु पर्वत का व्यास १०००० योजन, भद्रशाल का २२००० योजन, विदेह देश का २२१२$\frac{७}{८}$ योजन, वक्षारगिरि का ५०० योजन, विभंगा नदी का १२५ योजन और देवारण्य का २९२२ योजन पूर्व पश्चिम व्यास का प्रमाण है।

इदानीं धातकीखण्डपुष्करार्धं स्थितमेरूणां तद्भद्रशालवनद्वयस्य च व्यासं निरूपयति—

चउणउदिसयं णवसगअडसगिगिलक्खमडुपणसगं।
पण्णरसं वेलक्खा खुल्ले तं भद्दसालदुगे ॥ ७५४ ॥

चतुर्नवतिशतानि नवसप्ताष्टसप्तैकलक्षमष्टपञ्च सप्त।
पञ्चदश द्वे लक्षे क्षुल्लके ते भद्रशालद्वये ॥ ७५४ ॥

चउ। [1]चतुर्नवतिशतानि ९४०० नवसप्ताष्टसप्ताङ्कोत्तरैकलक्षं १०७८७९ अष्टपञ्चसप्तपञ्चदशाङ्कोत्तरे द्वे लक्षे २१५७५८ यथासंख्यं क्षुल्लकमन्दरधातकीखण्डपूर्वापरभद्रशालद्वये पुष्करार्धे पूर्वापरभद्रशालद्वये च व्यासाङ्कक्रमो ज्ञातव्यः। धातकीखण्डपूर्वापरभद्रशालाङ्कं १०७८७९ पुष्करार्धपूर्वापरभद्रशालाङ्कं २१५७५८। 'पढमवणऽडसीदंसो दक्खिण उत्तरगभद्दसालवणं' इत्युक्तत्वादष्टाशीत्या ८८ भागे कृते तयोर्दक्षिणोत्तरभद्रशालवनव्यासो भवति १२२५ $\frac{७९}{८८}$। २४५१ भा $\frac{३५}{४४}$ ॥ ७५४ ॥

अब धातकी खण्ड और पुष्करार्ध में स्थित मेरु पर्वतों और उन सम्बन्धी दोनों भद्रशाल वनों के व्यास का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :— चौरानवे सौ योजन, एक लाख सात हजार आठ सौ उन्यासी योजन और दो लाख पन्द्रह हजार सात सौ अट्ठावन योजन क्रम से क्षुल्लक मेरु और दोनों भद्रशाल वनों के व्यास का प्रमाण है ॥ ७५४ ॥

विशेषार्थ :— चारों क्षुल्लक मेरु पर्वतों का व्यास ९४०० योजन है, धातकी खण्ड सम्बन्धी भद्रशाल वनों का पूर्व-पश्चिम व्यास १०७८७९ योजन है, तथा पुष्करार्ध सम्बन्धी भद्रशाल वनों का पूर्व-पश्चिम व्यास २१५७५८ योजन है। "पढमवणऽडसीदंसो, दक्खिण उत्तरगभद्दसाल वणं" इत्यादि पूर्वोक्त गाथा ६१२ के अनुसार धातकी खण्ड सम्बन्धी भद्रशाल वनों के पूर्व-पश्चिम व्यास (१०७८७९ योजनों) को ८८ से भाजित करने पर ($\frac{१०७८७९}{८८}$) = १२२५ $\frac{७९}{८८}$ योजन दक्षिणोत्तर भद्रशाल वनों का व्यास प्राप्त होता है, तथा पुष्करार्ध सम्बन्धी भद्रशाल वनों के पूर्व-पश्चिम व्यास (२१५७५८) को ८८ से भाजित करने पर ($\frac{२१५७५८}{८८}$) = २४५१ $\frac{३५}{४४}$ योजन दक्षिणोत्तर भद्रशाल वनों का व्यास प्राप्त होता है।

अथ द्वीपद्वयावस्थितविजयानां व्याससंख्यामाह—

तिगुणभट्ठणव तिण्णद्वमं तु चउणउदिसगणउदेक्कं।
जोयणचउत्थभागं दुदीवविजयाण विक्खंभो ॥ ७५५ ॥

---

[1] चतुः शतोत्तरनवतिशतानि (ब०, प०)।

त्रिनभः षण्णव त्र्यष्टमं तु चतुर्णवति सप्तनवत्येकं ।
योजनं चतुर्थभागं द्विद्वीपविजयानां विष्कम्भः ॥ ७५५ ॥

तिय । त्रिनभः षण्णवयोजनानि त्र्यष्टमांशानि ९६०३ भा ३/८ चतुर्णवतिसप्तनवत्येकयोजनानि योजनचतुर्थभागाधिकानि १९७९४¼ यथासंख्यं धातकीखण्डपुष्करार्धद्वीपद्वयविजयानां विष्कम्भः स्यात् ॥ ७५५ ॥

अब दोनों द्वीपों में अवस्थित विदेह देशों के व्यास की संख्या कहते हैं :—

गाथार्थ :— दोनों द्वीपों में स्थित विदेह देशों का विष्कम्भ क्रमशः नौ हजार छह सो तीन योजन और एक योजन के आठ भागों में से तीन भाग (३/८ योजन) तथा उन्नीस हजार सात सो चोरानवे योजन और एक योजन के चार भागों में से एक भाग (¼) प्रमाण है ॥ ७५५ ॥

विशेषार्थ :— धातकी खण्ड द्वीप में स्थित विदेह देशों के व्यास का प्रमाण ९६०३३/८ योजन और पुष्करार्ध द्वीप में स्थित विदेह देशों के व्यास का प्रमाण १९७९४¼ योजन है।

साम्प्रतं द्वीपत्रयावस्थितगजदन्तानामायामं गाथाद्वयेनाह—

सरिसायदगजदंता णवणभदुगसुण्णतिण्णि छच्चकला ।
तिघणदुगछक्कपणतिय णवपणकदिणवयछप्पण्णं ॥७५६॥
सोलेकट्ठिविसट्ठिगि णवेक्कदुगदोण्णिदुकदिणभदोण्णि ।
देउत्तरकुरुचावं जीवा बाणं च णायव्वो ॥ ७५७ ॥

सदृशायतगजदन्ता नवनभोद्विकशून्यत्रीणि षट्कलाः ।
त्रिघनद्विकषट्पञ्चत्रीणि नवपञ्चकृतिनवकषट्पञ्चाशत् ॥७५६॥
षोडशैकषष्ठिद्विषष्ठ्येकं नवैकद्विकद्वयद्विकृतिनभो द्वे ।
देवोत्तरकुरुचापं जीवा बाणं च ज्ञातव्याः ॥ ७५७ ॥

सरिसा । जम्बूद्वीपस्थसदृशगजदन्तानां नवनभोद्विकशून्योत्तरत्रियोजनानि षट्कलाधिकानि ३०२०९ ६/१९ आयामः स्यात् । धातकीखण्डस्थमहागजदन्तानामायामो यथासंख्यं त्रिघनद्विकषट्कपञ्चत्रीण्युत्तरत्रियोजनानि ३५६२२७ नव पञ्चकृतिनवषडंकोत्तरपञ्चयोजनानि स्युः ५६९२५९ ॥ ७५६ ॥

सोले । पुष्करार्धस्थमहागजदन्तानामायामो यथासंख्यं षोडशैकषष्ठिद्विषष्ठ्येकोत्तरैकयोजनानि १६२६११६ नवैकद्विकद्वयद्विकृतिशून्योत्तरद्वियोजनानि स्युः २०४२२१९ देवोत्तरकुर्वोश्चापं जीवा बाणं च वक्ष्यमाणप्रकारेण ज्ञातव्याः ॥ ७५७ ॥

अब तीनों (ढाई) द्वीपों में स्थित गजदन्त पर्वतों का आयाम दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—जम्बूद्वीपस्थ चारों गजदन्त समान हैं और इनका आयाम तीस हजार दो सौ नौ योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से छह भाग प्रमाण है। धातकी खण्ड स्थित दो गजदन्तों का आयाम तीन लाख छप्पन हजार दो सौ सत्ताईस योजन और शेष दो गजदन्तों का आयाम पाँच लाख उनहत्तर हजार दो सौ उनसठ योजन है, तथा पुष्करार्ध सम्बन्धी दो गजदन्तों का आयाम सोलह लाख छब्बीस हजार एक सौ सोलह योजन और अवशेष दो गजदन्तों का आयाम बीस लाख बयालिस हजार दो सौ उन्नीस योजन है। देवकुरु, उत्तर कुरु का चाप, जीवा और बाण का प्रमाण भी आगे कहे अनुसार जानना चाहिए ॥ ७५६, ७५७ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीपस्थ चारों गजदन्त लम्बाई की अपेक्षा सदृश हैं। प्रत्येक की लम्बाई का प्रमाण ३०२०९$\frac{६}{१९}$ योजन है। धातकी खण्डस्थ दो छोटे गजदन्त जो लवण समुद्र की ओर हैं उनकी लम्बाई का प्रमाण ३५६२२७ योजन और जो दो बड़े गजदन्त कालोदधि की ओर हैं, उनकी लम्बाई का प्रमाण ५६९२५९ योजन प्रमाण है। इसी प्रकार पुष्करार्ध स्थित दो छोटे गजदन्त जो कालोदधि की ओर हैं उनकी लम्बाई का प्रमाण १६२६११६ योजन और जो दीर्घ गजदन्त मानुषोत्तर पर्वत की ओर हैं उनकी लम्बाई का प्रमाण २०४२२१९ योजन है। देवकुरु, उत्तर कुरु का चाप, जीवा और बाण का प्रमाण आगे कहे अनुसार जानना चाहिए।

देवकुरु, उत्तरकुरु क्षेत्र धनुषाकार हैं क्योंकि दोनों गजदन्तों के बीच कुलाचलों की लम्बाई का जो प्रमाण है वह तो जीवा है, तथा जीवा और मेरु गिरि के मध्य का क्षेत्र बाण है और दोनों गजदन्तों की लम्बाई मिलकर चाप होता है।

अथ चापाद्यानयनप्रकारं गाथानवकेनाह—

वक्खारवास विरहिय पढमे दुगुणिदे जुदे मेरुं।
जीवा कुरुस्स चावं गजदंतायाममेलिदे होदि ॥ ७५८ ॥

वक्षारव्यासं विरहितं प्रथमे द्विगुणिते युते मेरौ।
जीवा कुरोः चापो गजदन्तायाममेलिते भवति ॥७५८॥

वक्खार। वक्षारव्यासं ५०० भद्रशालाख्यप्रथमवने २२००० विरहितं कृत्वा २१५०० एतद्द्विगुणीकृत्य ४३००० तत्र मेरुव्यासे १०००० युते सति कुरुक्षेत्रस्य जीवा प्रमाणं स्यात् ५३०००। उभयगजदन्तायामे ३०२०९$\frac{६}{१९}$। ३०२०९$\frac{६}{१९}$ मिलिते सति कुरुक्षेत्रस्य चापो भवति ६०४१८$\frac{१२}{१९}$ ॥ ७५८ ॥

चापादिक प्राप्त करने का विधान नौ गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—वक्षार (गजदन्त) के व्यास को प्रथम भद्रशाल वन के व्यास में से घटा कर दूना करना तथा जो लब्ध आवे उसे मेरु व्यास में जोड़ देने से कुरुक्षेत्र की जीवा का प्रमाण होता है और दोनों गजदन्तों का आयाम मिलादेने से कुरुक्षेत्र का चाप होता है ॥ ७५८ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप में वक्षार (गजदन्तों) का व्यास ५०० योजन और पूर्व-पश्चिम भद्रशाल का व्यास २२००० योजन है। भद्रशाल के व्यास में से गजदन्त का व्यास घटा कर दूना करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसे मेरु व्यास में जोड़ देने से कुरुक्षेत्र की जीवा का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा :—२२००० — ५०० = २१५०० × २ = ४३००० + १०००० = ५३००० योजन कुरु क्षेत्र की जीवा है। अर्थात् दोनों गजदन्त पूर्व-पश्चिम भद्रशाल की वेदी के समीप कुलाचलों को स्पर्श करते हैं, अतः दोनों गजदन्तों के बीच कुलाचलों की लम्बाई ५३००० योजन है। प्रत्येक गजदन्त का आयाम (लम्बाई) ३०२०९ $\frac{६}{१९}$ योजन है। दोनों गजदन्तों की लम्बाई मिला देने पर (३०२०९ $\frac{६}{१९}$ + ३०२०९ $\frac{६}{१९}$) = ६०४१८ $\frac{१२}{१९}$ योजन कुरु क्षेत्र के चाप का प्रमाण होता है।

मेरुगिरिभूमिवासं अवणीय विदेहवस्सवासादो।
दलिदे कुरुविक्खंभो सो चेव कुरुस्स बाणं च ॥ ७५९ ॥

मेरुगिरिभूमिव्यासं अपनीय विदेहवर्षव्यासतः।
दलिते कुरुविष्कम्भः स चैव कुरोः बाणः च ॥ ७५९ ॥

मेरु। एतावच्छलाकानां १९० एतावति क्षेत्रे १००००० एतावच्छलाकानां ६४ किमिति सम्पात्यापवर्तिते $\frac{६४००००}{१९}$ विदेहवर्षव्यासः स्यात्। अत्र मेरुगिरिभूमिव्यासं १०००० समच्छेदेन $\frac{१९००००}{१९}$ पनीय $\frac{४५००००}{१९}$ दलिते $\frac{२२५०००}{१९}$ कुरुविष्कम्भः स्यात्। स चैव कुरुक्षेत्रस्य बाणः स्यात्। तद्युत्वा जीवाकृतिं धनुःकृतिं चानयति ॥ ७५९ ॥

गाथार्थ :—विदेह क्षेत्र के व्यास में से मेरुगिरि का भू व्यास घटा कर आधा करने पर कुरुक्षेत्र के विष्कम्भ का प्रमाण होता है, और यही कुरुक्षेत्र के बाण का प्रमाण है ॥ ७५९ ॥

विशेषार्थ :—जब कि जम्बूद्वीप की १९० शलाकाओं का १००००० योजन क्षेत्र होता है, तब विदेह क्षेत्र की ६४ शलाकाओं का कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{१००००० × ६४}{१९०}$) = $\frac{६४००००}{१९}$ योजन विदेह क्षेत्र का व्यास प्राप्त हुआ। इसमें से मेरुगिरि का भूव्यास—१०००० योजन घटा कर आधा कर देने पर ($\frac{६४००००}{१९}$ — $\frac{१००००}{१}$ = $\frac{६४०००० - १९००००}{१९}$) = $\frac{४५००००}{१९}$ × $\frac{१}{२}$ = $\frac{२२५०००}{१९}$ अर्थात् ११८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन कुरुक्षेत्र का व्यास प्राप्त होता है, और यही अर्थात् $\frac{२२५०००}{१९}$ योजन ही कुरु क्षेत्र के बाण का प्रमाण है इसीको रखकर जीवाकृति और धनुषकृति का प्रमाण प्राप्त करते हैं।

इसुहीणं विक्खंभं चउगुणिदिसुणा हदे दु जीवकदी।
बाणकदिं छहिं गुणिदे तत्थ जुदे धणुकदी होदि ॥ ७६० ॥

इषुहीनं विष्कम्भं चतुर्गुणितेषुणा हते तु जीवाकृतिः।
बाणकृतिं षड्भिः गुणिते तत्र युते धनुःकृतिः भवति ॥७६०॥

इषु । अत्रे वक्ष्यमाणकुरुवृत्तविष्कम्भे $\frac{१२१६५४९०}{१७१}$ इषु $\frac{२२५०००}{१९}$ नवभिः समानच्छेदं कृत्वा $\frac{२०२५०००}{१७१}$ हीनं कृत्वा $\frac{१०१४०४९०}{१७१}$ चतुर्गुणितेषुरूप $\frac{९०००००}{१९}$ पञ्चशून्यानि हीनराशयो $\frac{१०१४०४९०}{१७१}$ स्थापयित्वा $\frac{१०१४०४९००००००}{१७१}$ तद्राशिस्य हारं १७१ चतुर्गुणितेषुस्यनवाङ्केन समं नवभिरपवर्त्य १९ तदिषुस्यहारेण १९ अपवर्तितहारे १९ गुणिते ३६१ कुरुक्षेत्रे जीवायाः कृतिः स्यात् $\frac{१०१४०४९००००००}{३६१}$ तन्मूलं गृहीत्वा $\frac{१००७०००}{१९}$ स्वहारेण भक्ते कुरुक्षेत्रे जीवा स्यात् ५३००० । बाण $\frac{२२५०००}{१९}$ कृतिं $\frac{५०६२५००००००}{३६१}$ षड्भिर्गुणयित्वा $\frac{३०३७५००००००}{३६१}$ एतस्मिन् राशौ तत्र जीवाकृतौ $\frac{१०१४०४९००००००}{३६१}$ युते सति $\frac{१३१७७९९००००००}{३६१}$ धनुःकृतिः स्यात् । तां मूलं गृहीत्वा $\frac{११४७९५४}{१९}$ स्वहारेण भक्ते $६०४१८\frac{१२}{१९}$ कुरुक्षेत्रस्य चापं स्यात् । प्रागानीतबाणकृतिं $\frac{५०६२५००००००}{३६१}$ मूलं गृहीत्वा $\frac{२२५०००}{१९}$ हारेण भक्ते $११८४२\frac{२}{१९}$ कुरुक्षेत्रस्य बाणं स्यात् ॥ ७६० ॥

गाथार्थ :—बाण (इषु) से हीन वृत्त विष्कम्भ को चौगुणे बाण से गुणित करने पर जीवा की कृति होती है, तथा छह गुणी बाणकृति उस जीवाकृति में मिलाने से धनुष कृति होती है ॥ ७६० ॥

विशेषार्थ :—वर्गरूप राशि का नाम कृति है। जम्बूद्वीप में देवकुरु उत्तरकुरु का आगे कहे जाने वाले वृत्त विष्कम्भ का प्रमाण $\frac{१२१६५४९०}{१७१}$ योजन है तथा कुरु क्षेत्र के बाण का प्रमाण $\frac{२२५०००}{१९}$ योजन है, इसे (भाज्य भाजक को) ९ से समच्छेद करने पर ($\frac{२२५०००}{१९} \times \frac{९}{९}$) = $\frac{२०२५०००}{१७१}$ योजन हुए। इन्हें कुरु क्षेत्र के वृत्त विष्कम्भ में से घटाने पर $\frac{१२१६५४९०}{१७१} - \frac{२०२५०००}{१७१} = \frac{१०१४०४९०}{१७१}$ योजन अवशेष रहे, इसको चौगुणे बाण अर्थात् ($\frac{२२५०००}{१९} \times \frac{४}{१}$) = $\frac{९०००००}{१९}$ से गुणित करने पर ($\frac{१०१४०४९०}{१७१} \times \frac{९०००००}{१९}$) = $\frac{९१२६४४१००००००}{३२४९}$ योजन हुए। अथवा गुणकार $\frac{९०००००}{१९}$ योजन की पाँचों बिन्दु गुण्य $\frac{१०१४०४९०}{१७१}$ योजनों के साथ स्थापित कर देने से $\frac{१०१४०४९००००००}{१७१}$ हुए और $\frac{९}{१९}$ शेष बचे। इस १७१ भागहार को ९ से अपवर्तन करने पर १९ प्राप्त हुए, अब गुण्य और गुण्यमान दोनों के भागहारों को परस्पर गुणित करने से (१९ × १९) = ३६१ भागहार प्राप्त हुआ, अतः $\frac{१०१४०४९००००००}{३६१}$ योजन देवकुरु, उत्तरकुरु की जीवा की कृति का प्रमाण प्राप्त होता है। इसका वर्गमूल निकालने पर $\frac{१००७०००}{१९}$ हुआ, इसमें अपने भागहार का भाग देने पर ५३००० योजन देवकुरु उत्तर कुरु की जीवा का प्रमाण प्राप्त हुआ।

कुरु क्षेत्र के बाण का प्रमाण $\frac{२२५०००}{१९}$ योजन की कृति (वर्ग) करने पर ($\frac{२२५०००}{१९} \times \frac{२२५०००}{१९}$) = $\frac{५०६२५००००००}{३६१}$ योजन हुए तथा इन्हें छह से गुणित करने पर ($\frac{५०६२५००००००}{३६१} \times ६$) = $\frac{३०३७५००००००}{३६१}$ योजन हुए यही छह गुणी बाण की कृति का प्रमाण है। इस राशि को जीवा की कृति में जोड़ देने पर ($\frac{१०१४०४९००००००}{३६१} + \frac{३०३७५००००००}{३६१}$) = $\frac{१३१७७९९००००००}{३६१}$

योजन धनुष (चाप) की कृति होती है, तथा इसी के वर्गमूल $\frac{११४८११५४}{१९}$ में अपने ही भागहार (१९) का भाग देने पर ६०४१८$\frac{१२}{१९}$ योजन देवकुरु उत्तरकुरु के चाप का प्रमाण होता है तथा पहिले प्राप्त की हुई $\frac{५०६२५००००००}{३६१}$ योजन बाण की कृति के वर्गमूल $\frac{२२५०००}{१९}$ योजनों को अपने भागहार (१९) से भाजित करने पर ११८४२$\frac{२}{१९}$ योजन कुरुक्षेत्र के बाण का प्रमाण प्राप्त होता है।

अनन्तरं कुर्वादीनां वृत्तविष्कम्भानयनमाह—

> इसुवग्गं चउगुणिदं जीवावग्गम्हि पक्खिविदाणं।
> चउगुणिदिसुणा भजिदे णियमा वट्टस्स विक्खंभो ॥७६१॥
>
> इषुवर्गं चतुर्गुणितं जीवावर्गे प्रक्षिप्य।
> चतुर्गुणितेषुणा भक्ते नियमात् वृत्तस्य विष्कम्भः ॥७६१॥

इषु। कुरुक्षेत्रेषु $\frac{२२५०००}{१९}$ वर्गयित्वा $\frac{५०६२५००००००}{३६१}$ इदं चतुर्भिर्गुणयित्वा $\frac{२०२५००००००००}{३६१}$ एतज्जीवावर्गे $\frac{१०१४०५४९००००००}{३६१}$ प्रक्षिप्य $\frac{१२१६५४९००००००}{३६१}$ चतुर्भिर्गुणितेषुणा $\frac{९०००००}{१९}$ भागीकरणे तत्रिवुभयपञ्चशून्यानि भाज्यस्यपञ्चशून्यैः सहापवर्त्य $\frac{१२१६५४९०००००००}{३६१} \div \frac{९०००००}{१९}$ 'हारस्य हारो गुणकोंशराशेः' इत्यागतमेकोनविंशति १९ गुणकारं भाज्यस्यैकवर्तुलेन सह ३६१। एकोनविंशत्यापवर्त्यं $\frac{१२१६५४९०}{१९×९}$ शेषहारयोः १९×९ परस्परगुणने कृते $\frac{१२१६५४९०}{१७१}$ हारेण भक्ते च ७११४३$\frac{३७}{१७१}$ नियमात्कुरुक्षेत्रस्य वृत्तविष्कम्भः स्यात् ॥ ७६१ ॥

अब इसके अनन्तर कुरु आदि क्षेत्रों का वृत्त विष्कम्भ लाने के लिए करण सूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—चौगुणे बाण के वर्ग में जीवा का वर्ग मिलाकर चौगुणे बाण के प्रमाण से भाजित करने पर नियम से वृत्त क्षेत्र के विष्कम्भ का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ७६१ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप में कुरुक्षेत्र के $\frac{२२५०००}{१९}$ योजन बाण का वर्ग करने पर $\frac{५०६२५००००००}{३६१}$ योजन होता है, तथा इसे चौगुणा करने पर $\frac{२०२५००००००००}{३६१}$ योजन अथवा $\frac{२०२५}{३६१}$ और $\frac{०}{८}$ अर्थात् ८ शून्य प्राप्त हुए इसमें जीवा का वर्ग $\frac{१०१४०५४९}{३६१}$ और ६ शून्य अथवा $\frac{१०१४०५४९००००००}{३६१}$ योजन जोड़ कर बाण के चौगुणे प्रमाण ($\frac{९०००००}{१९}$) का भाग देने पर $\frac{२०२५००००००००}{३६१} + \frac{१०१४०५४९००००००}{३६१} = \frac{१२१६५४९००००००}{३६१} \div \frac{९०००००}{१९}$ को पहिले की हुई अपवर्तन विधि से अपवर्तन करने पर $\frac{१२१६५४९०}{१७१}$ योजन प्राप्त हुए। इन्हें अपने ही भागहार १७१ से भाजित करने पर नियम से कुरुक्षेत्र का वृत्त विष्कम्भ ७११४३$\frac{३७}{१७१}$ योजन प्राप्त होता है। यही कुरुक्षेत्र के बाण का प्रमाण है।

अथ कुर्वादिक्षेत्राणां स्थूलसूक्ष्मक्षेत्रफलानयने करणसूत्रमाह—

जीवाहदइसुपादं जीवाइसुजुददलं च पत्तेयं ।
दसकरणिवाणगुणिदे सुहुमिदरफलं च धणुखेत्ते ॥७६२॥

जीवाहतेषुपादं जीवाइषुयुतदलं च प्रत्येकं ।
दशकरणिबाणगुणिते सूक्ष्मेतरफलं च धनुः क्षेत्रे ॥७६२॥

जीवा । कुरुक्षेत्रयो: $\frac{२२५०००}{१९}$ चतुर्थांश $\frac{५६२५०}{१९}$ जीवया ५३००० हत्वा $\frac{२९८१२५००००}{१९}$ पृथक् संस्थाप्य जीवां ५३००० समच्छेदीकृत्य $\frac{१००७०००}{१९}$ इषौ $\frac{२२५०००}{१९}$ संयोज्य $\frac{१२३२०००}{१९}$ दलयित्वा $\frac{६१६०००}{१९}$ इदमपि पृथक्निक्षिप्य स्थापितयोरनयोर्मध्ये प्रत्येकं प्राक् स्थापितं $\frac{२९८१२५००००}{१९}$ विक्खंभवग्गेत्यादिना करणि कृत्वा $\frac{८८८७८५१५६२५०००००००००००}{३६१}$ मूले गृहीते $\frac{९४२७५४०२७४}{१९}$ एतत् कुरुधनुः क्षेत्रस्य सूक्ष्मफलं भवति। पुरस्तात् स्थापितं तु $\frac{६१६०००}{१९}$ बाणेन $\frac{२२५०००}{१९}$ गुणिते कुरोर्धनुषः स्थूलफलं भवति $\frac{१३८६००००००००}{३६१}$ ॥ ७६२ ॥

अब कुरु आदि क्षेत्रों का स्थूल सूक्ष्म क्षेत्रफल लाने के लिये करण सूत्र कहते हैं—

गाथार्थ :—जीवा द्वारा गुणित बाण का चतुर्थपाद तथा जीवा और बाण के योग का अर्ध भाग इनमें से एक का वर्ग कर दशगुणित करने पर और दूसरे को बाण के प्रमाण से गुणित करने पर क्रम से धनुष क्षेत्र का सूक्ष्म और स्थूल क्षेत्रफल प्राप्त होता है ॥ ७६२ ॥

विशेषार्थ :—कुरुक्षेत्र के बाण का प्रमाण $\frac{२२५०००}{१९}$ योजन है। इसके चतुर्थ भाग $\frac{५६२५०}{१९}$ को जीवा के प्रमाण ५३००० योजन से गुणित करने पर ($\frac{५६२५०}{१९}\times\frac{५३०००}{१}$)= $\frac{२९८१२५००००}{१९}$ योजन लब्ध प्राप्त हुआ। इसे पृथक् स्थापित करना, तथा $\frac{१९}{१९}$ से समच्छेद किया हुआ ५३००० योजन जीवा का प्रमाण ($\frac{५३०००}{१}\times\frac{१९}{१९}$)= $\frac{१००७०००}{१९}$ योजन और बाण के $\frac{२२५०००}{१९}$ योजन प्रमाण को जोड़कर ($\frac{१००७०००}{१९}+\frac{२२५०००}{१९}$)= $\frac{१२३२०००}{१९}$ योजन हुए। इनके अर्ध भाग ($\frac{१२३२०००}{१९\times२}$)= $\frac{६१६०००}{१९}$ योजनों को भी अलग स्थापित कर दोनों में से प्रथम स्थापित $\frac{२९८१२५००००}{१९}$ योजनों का "विक्खम्भवग्ग" इत्यादि गाथा सूत्र ९६ के अनुसार वर्ग कर दश गुणित करने पर—($\frac{२९८१२५००००}{१९}\times\frac{२९८१२५००००}{१९}\times१०$)= $\frac{८८८७८५१५६२५०००००००००००}{३६१}$ योजन हुए तथा इनका वर्गमूल ग्रहण करने पर $\frac{९४२७५४०२७४}{१९}$ योजन होता है। यही कुरु क्षेत्र के सूक्ष्म क्षेत्रफल का प्रमाण है। अर्थात् कुरुक्षेत्र के तारतम्यता से एक एक योजन लम्बे चौड़े $\frac{९४२७५४०२७४}{१९}$ टुकड़े हो सकते हैं।

अब पीछे स्थापित $\frac{६१६०००}{१९}$ योजनों को बाण के प्रमाण $\frac{२२५०००}{१९}$ से गुणित करने पर ($\frac{६१६०००}{१९}\times\frac{२२५०००}{१९}$)= $\frac{१३८६००००००००}{३६१}$ योजन होते हैं। यही कुरुक्षेत्र का स्थूल क्षेत्रफल है।

अथ प्रकारान्तरेण वृत्तविष्कम्भबाणयोरानयने करणसूत्रमाह—

> दुगुणिसु कदिजुद जीवावग्गं चउबाणभाजिए वट्टं ।
> जीवा धणुकदिसेसो छब्भत्तो तप्पदं बाणं ॥७६३॥
>
> द्विगुणेषु कृतियुतं जीवावर्गं चतुर्बाणभक्तं वृत्तं ।
> जीवा धनुःकृतिशेषः षड्भक्तः तत्पदं बाणं ॥ ७६३ ॥

दुगु । इषुं $\frac{२२५०००}{१९}$ द्विगुणीकृत्य $\frac{४५००००}{१९}$ वर्गं गृहीत्वा $\frac{२०२५०००००००००}{३६१}$ । अत्र जीवा ५३००० वर्गं २८०९०००००० समच्छेदीकृतं $\frac{१०१४०४९००००००}{३६१}$ संयोज्य $\frac{१२१६५४९००००००}{३६१}$ अस्मिन्चतुर्गुणितबाणेन $\frac{९०००००}{१९}$ प्राग्वदपवर्तनविधिना भक्ते कुरुक्षेत्रस्य वृत्तविष्कम्भः स्यात् $\frac{१२१६५४९}{१७१}$ । समच्छेदीकृते जीवावर्गे $\frac{१०१४०४९००००००}{३६१}$ धनुः कृतौ $\frac{१३१७७९९००००००}{३६१}$ अपनीय $\frac{३०३७५००००००००}{३६१}$ षड्भिर्भक्त्वा $\frac{५०६२५००००००}{३६१}$ मूले गृहीते $\frac{२२५०००}{१९}$ कुरुक्षेत्रस्य बाणः स्यात् ॥ ७६३ ॥

अब प्रकारान्तर से वृत्त विष्कम्भ और बाण के प्रमाण को प्राप्त करने के लिए करण सूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :— दुगुण बाण के वर्ग में जीवा का वर्ग जोड़ने से जो लब्ध प्राप्त हो उसको चौगुणे बाण के प्रमाण से भाजित करने पर वृत्तविष्कम्भ का प्रमाण होता है तथा जीवा की कृति को धनुष की कृति में से घटा कर अवशेष को ६ से भाजित कर वर्गमूल निकालने पर जो प्रमाण प्राप्त हो वही कुरुक्षेत्र के बाण का प्रमाण है ॥ ७६३ ॥

विशेषार्थ :— जम्बूद्वीप के कुरुक्षेत्र का बाण $\frac{२२५०००}{१९}$ योजन है इसके दूने $\frac{४५००००}{१९}$ योजनों का वर्ग ($\frac{४५००००}{१९} \times \frac{४५००००}{१९}$) = $\frac{२०२५०००००००००}{३६१}$ योजन हुआ। इसमें जीवा के प्रमाण ५३००० के वर्ग (५३००० × ५३०००) = २८०९०००००० को $\frac{३६१}{३६१}$ से समच्छेद कर ($\frac{२८०९००००००}{१} \times \frac{३६१}{३६१}$) = $\frac{१०१४०४९००००००}{३६१}$ योजनों को जोड़ने पर ($\frac{२०२५०००००००००}{३६१}$ + $\frac{१०१४०४९००००००}{३६१}$) = $\frac{१२१६५४९००००००}{३६१}$ योजन लब्ध प्राप्त हुआ। इसको चौगुणे बाण के प्रमाण $\frac{९०००००}{१९}$ से पूर्वोक्त अपवर्तन विधि के अनुसार भाजित करने पर ($\frac{१२१६५४९००००००}{३६१} \times \frac{१९}{९०००००}$) = $\frac{१२१६५४९}{१७१}$ योजन कुरुक्षेत्र के वृत्त विष्कम्भ का प्रमाण प्राप्त हुआ।

समच्छेद किए हुए जीवा के वर्ग ($\frac{१०१४०४९००००००}{३६१}$) को धनुष की कृति—

($\frac{१२१७६९०००००००}{३६१}$) में से घटा देने पर $\frac{२०२५००००००००}{३६१}$ योजन अवशेष रहे, इसमें ४ का भाग देने पर ($\frac{२०२५००००००००}{३६१\times४}$)= $\frac{५०६२५००००००}{३६१}$ योजन लब्ध प्राप्त हुआ, और इसका वर्गमूल $\frac{२२५०००}{१९}$ योजन होता है, यही कुरुक्षेत्र के बाण का प्रमाण है।

अथ प्रकारान्तरेण बाणानयने करणसूत्रमाह—

जीवाविक्खंभाणं वग्गविसेसस्स होदि जम्मूलं।
तं विक्खंभा सोहय सेसद्धमिसुं विजाणाहि ॥ ७६४ ॥

जीवाविष्कम्भयोः वर्गविशेषस्य भवति यन्मूलं।
तद् विष्कम्भात् शोधय शेषार्धमिषुं विजानीहि ॥७६४॥

जीवा। जीवा ५३००० वर्ग २८०९०००००० विष्कम्भ $\frac{१२१६४४९०}{१७१}$ वर्गेण समं $\frac{१४७९७४८१६९६०१००}{२९२४१}$ समच्छेदं कृत्वा $\frac{८२१३७९६९००००००}{२९२४१}$ परस्परं शोधयित्वा $\frac{६५८३६८४७९६०१००}{२९२४१}$ मूलं गृहीत्वा $\frac{८११४४९०}{१७१}$ तद्विष्कम्भात् $\frac{१२१६४४९०}{१७१}$ शोधय $\frac{४०५००००}{१७१}$ शेषमर्धं $\frac{२०२५०००}{१७१}$ विधाय अस्य हारं १७१ एकोनविंशतिनवेति द्विधाकृत्य १९×९ तत्रस्थनवाङ्केन ९ तस्मिन्नर्धे २०२५००० भक्ते सति कुरोर्बाणमायाति $\frac{२२५०००}{१९}$ ॥ ७६४ ॥

प्रकारान्तर से बाण प्राप्त करने के लिए करण सूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—वृत्त विष्कम्भ के वर्ग में से जीवा का वर्ग घटाने पर जो अवशेष रहे, उसका वर्गमूल निकालना, तथा उस वर्गमूल को वृत्तविष्कम्भ के प्रमाण में से घटा कर, अवशेष का आधा करने पर जो प्रमाण प्राप्त हो वही बाण का प्रमाण है ॥ ७६४ ॥

विशेषार्थ :—जम्बू द्वीप के कुरुक्षेत्र की जीवा का प्रमाण ५३००० योजन है, और इसका वर्ग (५३०००×५३०००)=२८०९०००००० योजन है। वृत्त विष्कम्भ के प्रमाण $\frac{१२१६४४९०}{१७१}$ योजन का वर्ग ($\frac{१२१६४४९०}{१७१}$)^२= $\frac{१४७९७४८१६९६०१००}{२९२४१}$ योजन है। जीवा के वर्ग २८०९०००००० योजनों को $\frac{२९२४१}{२९२४१}$ से गुणित करने पर ($\frac{२८०९००००००}{१}\times\frac{२९२४१}{२९२४१}$)= $\frac{८२१३७९६९००००००}{२९२४१}$ योजन हुए। इसे वृत्त विष्कम्भ के वर्ग में से घटाने पर $\frac{१४७९७४८१६९६०१००}{२९२४१}-\frac{८२१३७९६९००००००}{२९२४१}$= $\frac{६५८३६८४७९६०१००}{२९२४१}$ योजन अवशेष रहे। इस अवशेष के वर्गमूल $\frac{८११४४९०}{१७१}$ योजनों को वृत्त विष्कम्भ $\frac{१२१६४४९०}{१७१}$ योजनों में से घटाकर ($\frac{१२१६४४९०}{१७१}-\frac{८११४४९०}{१७१}$)= $\frac{४०५००००}{१७१}$ अवशेष का

आधा करने से ($\frac{४०५००००}{१७१} \times \frac{१}{२}$) = $\frac{२०२५०००}{१७१}$ योजन हुआ। इस १७१ भागहार के १९×९ अर्थात् १९ और ९ ऐसे दो टुकड़े कर ९ से २०२५००० को अपवर्तन करने पर २२५००० योजन प्राप्त हुए और भागहार १९ ही रहा अतः $\frac{२२५०००}{१९}$ योजन कुरुक्षेत्र के बाण का प्रमाण प्राप्त हुआ। अथवा $\frac{२०२५०००}{१७१}$ को ९ अंक से अपवर्तन अर्थात् अंश और भागहार दोनों में ९ का भाग देने पर $\frac{२२५०००}{१९}$ योजन कुरुक्षेत्र के बाण का प्रमाण प्राप्त होता है।

अथ प्रकारान्तरेण वृत्तविष्कम्भबाणयोरानयने करणसूत्रमाह—

दुगुणिदुहिदधणुवग्गो बाणोणो अद्धिदो हवे वासो।
वासकदिसहिदधणुकदिदलस्स मूलेवि वासमिसुसेसं ॥७६५॥

द्विगुणेषुहितधनुर्वर्गो बाणोनः अर्धितो भवेत् व्यासः।
व्यासकृतिसहितधनुःकृतिदलस्य मूलेऽपि व्यासमिषुशेषं ॥७६५॥

दुगु। इषुं $\frac{२२५०००}{१९}$ द्विगुणीकृत्य $\frac{४५००००}{१९}$ अनेन धनुर्वर्गं $\frac{१३१७७९९००००००}{३६१}$ प्रागवदपवर्तनविधिना भक्त्वा १५४१२८ शेषे $\frac{४६०}{८५५}$ अत्र उपरि पञ्चभिरपवर्तिते एवं $\frac{९२}{१७१}$ अत्र स्वांशं समच्छेदेन मेलयित्वा $\frac{२६३५५९८०}{१७१}$ अस्मिन् समच्छेदबाणं $\frac{२०२५०००}{१७१}$ ऊनयित्वा $\frac{२४३३०९८०}{१७१}$ अर्धीकृत्य $\frac{१२१६५४९०}{१७१}$ भक्ते सति ७११४३ $\frac{३७}{१७१}$ कुरोः वृत्तव्यासः स्यात्। समच्छेदेन स्वांश $\frac{३७}{१७१}$ युक्तं तं वृत्तव्यासं $\frac{१२१६५४९०}{१७१}$ वर्गं गृहीत्वा $\frac{१४७९९९१४६९४०१००}{२९२४१}$ अत्र धनुःकृते $\frac{१३१७७९९००००००}{३६१}$ अर्धं $\frac{६५८८९९५०००००}{३६१}$ एकाशीत्या ८१ समच्छेदं कृत्वा $\frac{५३३७०८५९५०००००}{२९२४१}$ संयोज्य — $\frac{२०१३७०००६४४०१००}{२९२४१}$ मूलं गृहीत्वा $\frac{१४१९०४९०}{१७१}$ अत्र व्यासं $\frac{१२१६५४९०}{१७१}$ हीनं कृत्वा $\frac{२०२५०००}{१७१}$ अस्य हारमेकोनविंशतिनवभिश्छित्वा १९×९ अपवर्तनवाङ्केन ९ भक्ते कुरुक्षेत्रस्य बाणः स्यात् $\frac{२२५०००}{१९}$ ॥७६५॥

आगे अन्य प्रकार से वृत्तविष्कम्भ और बाण का प्रमाण लाने के लिए करण सूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :— धनुष के वर्ग को दुगुणे बाण का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें से बाण के प्रमाण को घटा कर अवशेष का आधा करने पर वृत्तविष्कम्भ के व्यास का प्रमाण प्राप्त होता है, तथा वृत्त व्यास के वर्ग में धनुष का वर्ग जोड़ने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसका आधा कर वर्गमूल निकालना और इस वर्गमूल के प्रमाण में से वृत्त व्यास का प्रमाण घटा देने पर बाण का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ॥ ७६५ ॥

विशेषार्थ।—जम्बूद्वीप में कुरुक्षेत्र के बाण का प्रमाण $\frac{२२५०००}{१९}$ योजन है इसका दूना ($\frac{२२५०००\times२}{१९}$) = $\frac{४५००००}{१९}$ योजन होता है। इसका भाग धनुष के वर्ग $\frac{१३१७७९९००००००}{३६१}$ योजनों में देना है, अतः $\frac{१३१७७९९००००००}{३६१}\times\frac{१९}{४५००००}=\frac{१३१७७९९००}{८५५}$ को पूर्वोक्त विधि से अपवर्तन करने पर १५४१२८ योजन प्राप्त हुए और $\frac{४६०}{८५५}$ अवशेष रहे। इनको ऊपर नीचे ५ से अपवर्तित करने पर $\frac{९२}{१७१}$ हुए। इन्हें स्व अंश १५४१२८ योजनों में समच्छेद विधान से मिलाने पर ($१५४१२८\frac{९२}{१७१}$) = $\frac{२६३५५९८०}{१७१}$ योजन हुए। अथवा $\frac{१३१७७९९००००००}{३६१}\times\frac{१९}{४५००००}$ = $\frac{२६३५५९८०}{१७१}$ योजन हुए। इनमें से समुच्छिन्न किया हुआ $\frac{२०२५०००}{१७१}$ योजन बाण का प्रमाण घटाने पर ($\frac{२६३५५९८०}{१७१}-\frac{२०२५०००}{१७१}$) = $\frac{२४३३०९८०}{१७१}$ योजन अवशेष रहे। इन्हें आधा करने पर ($\frac{२४३३०९८०}{१७१}\times\frac{१}{२}$) = $\frac{१२१६५४९०}{१७१}$ योजन प्राप्त हुआ। इसमें अपने ही भागहार (१७१) का भाग देने पर $७११४३\frac{३७}{१७१}$ योजन कुरुक्षेत्र के वृत्तविष्कम्भ का प्रमाण प्राप्त हुआ। तथा समच्छेद द्वारा अपने अंश ७११४३ में जोड़े हुए $\frac{३७}{१७१}$ से प्राप्त हुए $\frac{१२१६५४९०}{१७१}$ योजन वृत्त व्यास के प्रमाण का वर्ग—($\frac{१२१६५४९०}{१७१}\times\frac{१२१६५४९०}{१७१}$) = $\frac{१४७९९९१४६९४०१००}{२९२४१}$ योजन होता है। इसमें—$\frac{१३१७७९९००००००}{३६१}$ धनुष कृति के अर्धप्रमाण $\frac{६५८८९९५०००००}{३६१}$ को ८१ से समच्छेद करने पर अर्थात् भाज्य भाजक दोनों को ८१ से गुणित करने पर जो ($\frac{६५८८९९५०००००}{३६१}\times\frac{८१}{८१}$) = $\frac{५३३७०८५९५०००००}{२९२४१}$ योजन प्रमाण जोड़ कर प्राप्त हुए ($\frac{१३१७७९९००००००}{३६१}$ + $\frac{५३३७०८५९५०००००}{२९२४१}$) = $\frac{२०१३७०००६४४०१००}{२९२४१}$ योजनों का वर्गमूल निकालने पर $\frac{१४१९०४९०}{१७१}$ योजन प्राप्त हुए। इसमें से वृत्त व्यास $\frac{१२१६५४९०}{१७१}$ योजन घटा कर अवशेष रहे—($\frac{१४१९०४९०}{१७१}$ — $\frac{१२१६५४९०}{१७१}$) = $\frac{२०२५०००}{१७१}$ योजन के भागहार १७१ के १९ और ९ अर्थात् १९ × ९ ऐसे दो हिस्से कर ($\frac{२०२५०००}{१५३९}$) ९ के अङ्क से भाजित करने पर $\frac{२२५०००}{१९}$ योजन कुरुक्षेत्र के बाण का प्रमाण प्राप्त होता है।

अथ प्रकारान्तरेण धनुःकृतिजीवाकृत्योरानयने करणसूत्रमाह—

इसुदलजुदविक्खंभो चउगुणिदिसुणा हदे दु धणुकरणी।
बाणकदिं छहिं गुणिदं तत्थूणे होदि जीवकदी ॥ ७६६ ॥

इषुदलयुतविष्कम्भः चतुर्गुणितेषुणा हते तु धनुः करणी।
बाणकृतिं षड्भिः गुणितां तत्रोने भवति जीवकृतिः ॥ ७६६ ॥

इषु । इषुं २२५०००/१९ दलयित्वा ११२५००/१९ समानच्छेदेन १०१२५००/१७१ वृत्तविष्कम्भे १२१६५४९०/१७१ योजयित्वा १३१७७९९०/१७१ एतच्चतुर्गुणितेषुणा ९०००००/१९ गुणिते गुण्यराशौ १३१७७९९०/१७१ हारं एकोनविंशतिर्नवेति १९ । ९ द्विधाकृत्य गुणकारस्थपञ्चशून्यानि ९००००० गुण्यराशेरग्रे संस्थाप्य १३१७७९९०००००० गुणकारनवाङ्केन गुण्यहारनवाङ्कमपवर्त्य शेषहारे १९×१९ परस्परगुणिते ३६१ कुरोर्धनुःकृतिः स्यात् १३१७७९९००००००/३६१ । बाणकृतिं ५०६२५००००००/३६१ षड्भिर्गुणयित्वा ३०३७५०००००००/३६१ एतस्मिन् धनुःकृतौ ऊनिते १०१४०४९००००००/३६१ कुरुक्षेत्रस्य जीवाकृतिर्भवति । एवं 'इसुहीणं विक्खंभं' इत्यादि सप्तगाथोक्तविधानं भरतादिक्षेत्रेषु हिमवदादिपर्वतेषु च ज्ञातव्यं ॥ ७६६ ॥

अब अन्य प्रकार से धनुष की कृति और जीवा की कृति प्राप्त करने के लिए करण सूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—वृत्त विष्कम्भ के प्रमाण में बाण का अर्ध प्रमाण जोड़ने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसको बाण के चौगुणे प्रमाण से गुणित करने पर धनुष की कृति का प्रमाण प्राप्त होता है, तथा बाण की कृति को छह गुणित कर धनुष की कृति में से घटा देने पर जीवा की कृति का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ७६६ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप के कुरु क्षेत्र में बाण का प्रमाण २२५०००/१९ योजन है। इसके अर्ध भाग का प्रमाण ११२५००/१९ हुआ। इसको ९ से समच्छेद करने पर (११२५००/१९ × ९/९) = १०१२५००/१७१ योजन प्राप्त हुए इन्हें वृत्त विष्कम्भ के प्रमाण (१२१६५४९०/१७१) में जोड़ कर प्राप्त हुए १३१७७९९०/१७१ योजन लब्ध को चौगुणे बाण के प्रमाण ९०००००/१९ से गुणित करने के लिए गुण्य राशि के भागहार १७१ के १९ और ९ इस प्रकार दो भाग कर (१३१७७९९०/(१९×९) × ९०००००/१९) गुणकारस्थ (९००००० के) ५ शून्यों को गुण्य राशि (१३१७७९९०) के आगे स्थापन करने से १३१७७९९००००००/(९×१९) × ९/१९ इस प्रकार की स्थिति प्राप्त हुई। इसमें गुणकार के ९ के अङ्क से गुण्यकार के ९ का अपवर्तन कर अवशेष भागहारों को परस्पर में (१९×१९) गुणित करने पर ३६१ अर्थात् १३१७७९९००००००/३६१ योजन कुरुक्षेत्र के धनुष की कृति का प्रमाण प्राप्त हुआ।

कुरुक्षेत्र के (२२५०००/१९ योजन) बाण के वर्ग का प्रमाण ५०६२५००००००/३६१ योजन है। इसे ६ से गुणित करने पर ३०३७५०००००००/३६१ योजन प्राप्त हुए इन्हें धनुष की कृति में से घटा देने पर (१३१७७९९००००००/३६१ — ३०३७५०००००००/३६१) = १०१४०४९००००००/३६१ योजन = २८०९०००००० योजन कुरुक्षेत्र की जीवा की कृति का प्रमाण प्राप्त होता है।

कुरुक्षेत्रों के धनुषाकार क्षेत्र की जीवा आदि का प्रमाण निकालने का विधान जिस प्रकार

"इसुहीणं विक्खम्भं" गाथा ७६० से ७६६ तक अर्थात् सात गाथाओं द्वारा किया गया है, उसी प्रकार भरत आदि क्षेत्रों और हिमवन् आदि पर्वतों में भी लगा लेना चाहिए।

अथ दक्षिणभरतविजयार्धोत्तरभरतक्षेत्राणां बाणानयने करणसूत्रमाह—

रूप्पगिरिहीणभरहव्वासदलं दक्खिणद्धभरहइसू ।
णगजुद णगसरमुत्तरभरहजुदं भरहखिदिबाणो ॥७६७॥

रूप्यगिरिहीनभरतव्यासदलं दक्षिणार्धभरतेषुः ।
नगयुते नगशरः उत्तरभरतयुते भरतक्षेत्रबाणः ॥ ७६७ ॥

रूप्प । रूप्यगिरिव्यासं ५० भरतव्यासे $५२६\frac{६}{१९}$ हीनयित्वा $४७६\frac{६}{१९}$ अर्धीकृते $२३८\frac{३}{१९}$ दक्षिणार्धभरतेषुः स्यात् । अत्र विजयार्धव्यासे ५० युते सति विजयार्धबाणः स्यात् $२८८\frac{३}{१९}$ अत्रोत्तरभरतव्यासे $२३८\frac{३}{१९}$ युते $५२६\frac{६}{१९}$ सम्पूर्णभरतक्षेत्रबाणः स्यात् । उक्तानां बाणत्रयाणां समानच्छेदेन स्वकीयस्वकीयांशं मेलयेत् $\frac{४५२५}{१९}$ । $\frac{५४७५}{१९}$ । $\frac{१००००}{१९}$ ॥ ७६७ ॥

अब दक्षिण भरत, विजयार्ध और उत्तर भरतक्षेत्र के बाण का प्रमाण प्राप्त करने के लिए करण सूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—भरत क्षेत्र के व्यास में से रूप्यगिरि (विजयार्ध) का व्यास घटा कर अवशेष को आधा करने पर अर्धदक्षिण भरतक्षेत्र के बाण का प्रमाण तथा इसी प्रमाण में विजयार्ध का व्यास जोड़ देने से विजयार्ध के बाण का प्रमाण प्राप्त होता है, और इस विजयार्ध के बाण में उत्तर भरतक्षेत्र का प्रमाण जोड़ देने से सम्पूर्ण भरतक्षेत्र अर्थात् उत्तर भरत के बाण का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ७६७ ॥

विशेषार्थ :—भरत क्षेत्र का व्यास $५२६\frac{६}{१९}$ योजन है। इसमें से विजयार्ध का व्यास ५० योजन घटा देने पर ($५२६\frac{६}{१९}$ — ५०) = $४७६\frac{६}{१९}$ योजन अवशेष रहे। इन्हें आधा करने पर $२३८\frac{३}{१९}$ योजन दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र के बाण का प्रमाण प्राप्त हुआ। इस $२३८\frac{३}{१९}$ में विजयार्ध का ५० योजन व्यास जोड़ देने पर $२८८\frac{३}{१९}$ योजन विजयार्ध के बाण का प्रमाण प्राप्त होता है, तथा इस विजयार्ध के बाण में उत्तर भरत का व्यास $२३८\frac{३}{१९}$ योजन जोड़ देने से ($२८८\frac{३}{१९}+२३८\frac{३}{१९}$) = $५२६\frac{६}{१९}$ योजन सम्पूर्ण भरतक्षेत्र अर्थात् उत्तर भरत क्षेत्र के बाण का प्रमाण प्राप्त हुआ। उपर्युक्त तीनों बाणों के अपने अपने अंशों को समान छेद द्वारा मिला देने पर क्रम से $\frac{४५२५}{१९}$, $\frac{५४७५}{१९}$ और $\frac{१००००}{१९}$ प्राप्त होते हैं।

अथ हिमवदादिपर्वतानां हैमवतादिक्षेत्राणां च बाणानयने करणसूत्रमाह—

हिमणगपहुदीबाणो दुगुणो भरहूणिदो य णिसहोत्ति ।
ससबाणा णिसहसरो सविदेहदलो विदेहस्स ॥ ७६८ ॥

हिमनगप्रभृतिव्यासः द्विगुणः भरतोनितश्च निषधान्तम् ।
स्वस्वबाणा निषधशरः सविदेहदलः विदेहस्य ॥ ७६८ ॥

हिम । एतावतां शलाकानां १९० एतावति १००००० क्षेत्रे हिमवदादिशलाकानां २ । ४ । ८ । १६ । ३२ किमिति सम्बन्धापवर्तिते हिमवन्नगप्रभृतीनां व्यासः स्यात् । हिमवतो व्यासः २००००/१९ हैमवतक्षेत्रे ४००००/१९ महाहिमवद्गिरौ ८००००/१९ हरिक्षेत्रे १६००००/१९ निषधगिरौ ३२००००/१९ तद्द्विगुणं कृत्वा ४००००/१९ । ८००००/१९ । १६००००/१९ । ३२००००/१९ । ६४००००/१९ सर्वत्र भरतबाणप्रमाणे १००००/१९ अपनीते सति हिमवदादीनां निषधपर्यन्तं स्वस्वबाणाः स्युः ३००००/१९ । ७००००/१९ । १५००००/१९ । ३१००००/१९ । ६३००००/१९ निषधबाण एव ६२००००/१९ विदेहव्यासा ६४००००/१९ र्धेन ३२००००/१९ युक्तश्चेत् ९५००००/१९ विदेहार्धस्य बाणो भवति । एतान् बाणान् धृत्वा तत्तत्क्षेत्रपर्वतानां जीवाकृतिः धनुः कृतिः 'इसुहीणं विक्खंभमि'त्यादिना यानेतव्या । तत्र दक्षिणभरते तावत् समच्छिन्नेषु ४५२३५/१९ वृत्तविष्कम्भे समच्छिन्ने १९००००००/१९ हीनयित्वा १८५४७६५/१९ एतस्मिश्चतुर्गुणितेषुणा ४५२५००/१९ हते सति ३४३०८०५७५००/३६१ जीवाकृतिः स्यात् । तस्या मूलं गृहीत्वा १८५२२४/१९ स्वहारेण भक्ते ९७४८ १२/१९ दक्षिणभरतस्य शुद्धजीवा स्यात् । बाण ४५२३५/१९ कृति २०४६२४१२२५/३६१ षड्भिर्गुणयित्वा १२२७७४४७३५०/३६१ एतस्मिंस्तत्र जीवाकृतौ योजिते ३४६५८२५४८५०/३६१ दक्षिणभरतस्य धनुः कृतिः स्यात् । एतन्मूलं गृहीत्वा १८६१६५/१९ स्वहारेण भक्ते दक्षिणभरतस्य धनुः स्यात् ९७६६ १/१९ । विजयार्धे तावत् समच्छिन्नेषु ५४२३५/१९ समच्छिन्नविष्कम्भे १९००००००/१९ हीनयित्वा १८४५७६५/१९ एतस्मिंश्चतुर्गुणितेषुणा २१६९४०/१९ हते सति ४००४१३४६४१००/३६१ विजयार्धजीवाकृतिः स्यात् । अस्या मूलं गृहीत्वा २०४१११/१९ स्वहारेण भक्ते १०७२० ११/१९ विजयार्धनगस्य जीवा स्यात् । बाण ५४२३५/१९ कृति २९४१४७५२२५/३६१ षड्भिर्गुणयित्वा १७६४८८५१३५०/३६१ तत्र जीवा कृतौ योजिते ४१७७६२३१४५०/३६१ धनुः कृतिः स्यात् । तन्मूलं गृहीत्वा २०४३९२/१९ स्वहारेण भक्ते १०७४३ १५/१९ विजयार्धनगस्य धनुः स्यात् । उत्तरभरते समच्छिन्नेषु १००००/१९ विष्कम्भे १९००००००/१९ हीनयित्वा १८९०००००/१९ एतस्मिंश्चतुर्गुणितेषुणा ४००००/१९ हते सति ७५६००००००००/३६१ जीवाकृतिः स्यात् । अस्या मूलं २७४९५४/१९ स्वहारेण भक्ते लब्धः १४४७१ ५/१९ उत्तरभरतजीवा स्यात् । बाण १००००/१९ कृति १०००००००००/३६१ षड्भिर्गुणयित्वा ६०००००००००/३६१ एतस्मिन् जीवाकृतौ योजिते सति ७६२००००००००/३६१ धनुःकृतिः स्यात् । अस्या मूलं २७६०४३/१९ स्वहारेण भक्ते १४५२८ ११/१९ उत्तरभरतस्य धनुः स्यात् । हिमवत्पर्वते इषुं ३००००/१९ विष्कम्भे १९००००००/१९ हीनयित्वा १८७०००००/१९ एतस्मिंश्चतुर्गुणितेषुणा १२००००/१९ हते सति २२४४००००००००/३६१ जीवाकृतिः । अस्या मूलं गृहीत्वा ४७३७०९/१९ स्वहारेण भक्ते लब्धं २४९३२ १/१९ हिमवतो जीवा स्यात् । बाणकृति ९०००००००००/३६१ षड्भिर्गुणयित्वा ५४०००००००००/३६१ तत्र जीवाकृतौ युक्ते २२९८००००००००/३६१ धनुः कृतिः स्यात् । तस्या मूलं गृहीत्वा ४७९३७४/१९ स्वहारेण भक्ते २५२३० ४/१९ हिमवद्गिरेर्धनुः स्यात् । हैमवतक्षेत्रे

इषुं $\frac{७००००}{१९}$ विष्कम्भे $\frac{१९०००००}{१९}$ अपनीय $\frac{१८३००००}{१९}$ तस्मिश्चतुर्गुणितेषुणा $\frac{२८००००}{१९}$ हते $\frac{५१२४०००००००००}{३६१}$ जीवाकृतिः स्यात्। अस्या मूलं गृहीत्वा $\frac{७१५८२२}{१९}$ स्वहारेण भक्ते ३७६७४$\frac{१६}{१९}$ हैमवतक्षेत्रस्य जीवा स्यात्। बाणकृतिं $\frac{४९००००००००}{३६१}$ षड्भिर्गुणयित्वा $\frac{२९४००००००००}{३६१}$ एतस्मिंस्तत्र जीवाकृतौ युते $\frac{५४१८०००००००००}{३६१}$ धनुःकृतिः स्यात्। अस्या मूलं गृहीत्वा $\frac{७३६०७०}{१९}$ स्वहारेण भक्ते ३८७४०$\frac{१०}{१९}$ हैमवतक्षेत्रस्य धनुः स्यात्। महाहिमवद्गिरेरिषुं $\frac{१५००००}{१९}$ विष्कम्भे $\frac{१९०००००}{१९}$ हीनयित्वा $\frac{१७५००००}{१९}$ तस्मिंश्चतुर्गुणितेषुणा $\frac{६०००००}{१९}$ हते तु $\frac{१०५००००००००००}{३६१}$ जीवाकृतिः स्यात्। अस्या मूलं गृहीत्वा $\frac{१०२४६९५}{१९}$ स्वहारेण भक्ते ५३९३१$\frac{६}{१९}$ महाहिमवतो जीवा स्यात्। बाणकृतिं $\frac{२२५००००००००}{३६१}$ षड्भिर्गुणयित्वा $\frac{१३५०००००००००}{३६१}$ एतस्मिंस्तत्र जीवाकृतौ योजिते $\frac{११८५००००००००००}{३६१}$ धनुःकृतिः स्यात्। अस्या मूलं गृहीत्वा $\frac{१०८८५७७}{१९}$ स्वहारेण भक्ते ५७२९३$\frac{१०}{१९}$ महाहिमवद्गिरेर्धनुः स्यात्। हरिवर्षक्षेत्रे इषुं $\frac{३१००००}{१९}$ विष्कम्भे $\frac{१९०००००}{१९}$ हीनयित्वा $\frac{१५९००००}{१९}$ अस्मिंश्चतुर्गुणितेषुणा $\frac{१२४००००}{१९}$ हते तु $\frac{१९७१६००००००००}{३६१}$ जीवाकृतिः स्यात्। अस्या मूलं गृहीत्वा $\frac{१४०४१३६}{१९}$ स्वहारेण भक्ते ७३९०१$\frac{१७}{१९}$ हरिवर्षक्षेत्रे जीवा स्यात्। बाणकृतिं $\frac{९६१००००००००}{३६१}$ षड्भिर्गुणयित्वा $\frac{५७६६०००००००००}{३६१}$ तस्मिन् तत्र जीवाकृतौ योजिते — $\frac{२५४८२००००००००}{३६१}$ धनुःकृतिः स्यात्। अस्या मूलं गृहीत्वा $\frac{१५९६३०८}{१९}$ स्वहारेण भक्ते ८४०१६$\frac{४}{१९}$ हरिवर्षक्षेत्रस्य धनुः स्यात्॥ निषधगिरौ इषुं $\frac{६३००००}{१९}$ विष्कम्भे $\frac{१९०००००}{१९}$ हीनयित्वा $\frac{१२७००००}{१९}$ अस्मिंश्चतुर्गुणितेषुणा $\frac{२५२००००}{१९}$ हते तु $\frac{३२००४००००००००}{३६१}$ जीवाकृतिः स्यात्। अस्या मूलं गृहीत्वा $\frac{१७८८९६६}{१९}$ स्वहारेण भक्ते ९४१५६$\frac{२}{१९}$ निषधगिरिजीवा स्यात्। बाणकृतिं $\frac{३९६९००००००००}{३६१}$ षड्भिर्गुणयित्वा $\frac{२३८१४००००००००}{३६१}$ तत्र जीवाकृतौ योजिते $\frac{५५८१८००००००००}{३६१}$ धनुःकृतिः स्यात्। अस्या मूलं गृहीत्वा $\frac{२३६२५८३}{१९}$ स्वहारेण भक्ते लब्धं १२४३४६$\frac{९}{१९}$ निषधगिरौ धनुः स्यात्॥ विदेहार्धे इषुं $\frac{९५००००}{१९}$ विष्कम्भे $\frac{१९०००००}{१९}$ हीनयित्वा $\frac{९५००००}{१९}$ अस्मिंश्चतुर्गुणितेषुणा $\frac{३८०००००}{१९}$ हते तु $\frac{३६१००००००००००}{३६१}$ जीवाकृतिः स्यात्। अस्या मूलं गृहीत्वा $\frac{१९०००००}{१९}$ स्वहारेण भक्ते १००००० विदेहार्धजीवा स्यात्। बाणकृतिं $\frac{९०२५००००००००}{३६१}$ षड्भिर्गुणयित्वा $\frac{५४१५०००००००००}{३६१}$ तत्र जीवाकृतौ योजिते $\frac{९०२५०००००००००}{३६१}$ धनुःकृतिः स्यात्। अस्या मूलं गृहीत्वा $\frac{३००४१६४}{१९}$ स्वहारेण भक्ते ल० १५८११४ विदेहार्धधनुः स्यात्॥ ७६८॥

अब हिमवत् आदि पर्वतों और हैमवत आदि क्षेत्रों के बाण का प्रमाण प्राप्त करने के लिए करणसूत्र कहते हैं :—

गाथार्थ :—हिमवत् पर्वत आदिकों के व्यास को दूना करके उसमें से भरत का व्यास घटा देने से निषध पर्यन्त अपना अपना वाण अर्थात् अपने अपने पर्वत एवं क्षेत्रों के वाण का प्रमाण प्राप्त हो जाता है, तथा निषध के वाणमें विदेह का अर्ध व्यास जोड़ देने से अर्ध विदेह के वाण का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ७६८ ॥

विशेषार्थ :—जम्बू द्वीपस्थ क्षेत्र एवं पर्वतों की सम्पूर्ण शलाकाएं १९० हैं, अतः जबकि १९० शलाकाओं का १००००० योजन क्षेत्र होता है, तब क्रम से २, ४, ८, १६ और ३२ शलाकाओं का कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर हिमवत् पर्वत का $\frac{२०००००}{१९}$ योजन व्यास हैमवत क्षेत्र का $\frac{४०००००}{१९}$ योजन, महाहिमवन् पर्वत का $\frac{८०००००}{१९}$ योजन, हरिक्षेत्र का $\frac{१६०००००}{१९}$ योजन और निषध पर्वत का $\frac{३२०००००}{१९}$ योजन व्यास है। इन सबको दूना करने पर $\frac{४०००००}{१९}$ योजन, $\frac{८०००००}{१९}$ योजन, $\frac{१६०००००}{१९}$ यो०, $\frac{३२०००००}{१९}$ योजन और $\frac{६४०००००}{१९}$ योजन होता है। इन सभी में से भरत का व्यास ($\frac{१०००००}{१९}$ योजन) घटा देने पर हिमवत् पर्वत से निषध पर्यन्त के सभी पर्वत एवं क्षेत्रों के वाण का प्रमाण क्रम से $\frac{३०००००}{१९}$ योजन, $\frac{७०००००}{१९}$ योजन, $\frac{१५०००००}{१९}$ योजन, $\frac{३१०००००}{१९}$ योजन और $\frac{६३०००००}{१९}$ योजन प्राप्त होता है तथा निषध के वाण $\frac{६३०००००}{१९}$ योजनों में विदेह व्यास $\frac{६४०००००}{१९}$ योजनों का अर्ध भाग ($\frac{३२०००००}{१९}$ योजन) जोड़ देने पर ($\frac{६३०००००}{१९} + \frac{३२०००००}{१९}$) $= \frac{९५०००००}{१९}$ योजन अर्धविदेह के वाण का प्रमाण प्राप्त होता है।

इन उपर्युक्त वाणों के प्रमाण को रख कर "इसुहीणं विक्खम्भं" इस गाथा ७६० के अनुसार प्रत्येक पर्वतों एवं क्षेत्रों की जीवाकृति और धनुषकृति का प्रमाण प्राप्त कर लेना चाहिये। यथा—

दक्षिण भरत के वाण का प्रमाण २३८$\frac{३}{१९}$ योजन है। इसको समुच्छिन्न करने पर $\frac{४५२५}{१९}$ योजन होता है तथा जम्बूद्वीप का एक लाख योजन व्यास ही यहाँ जम्बूद्वीप का वृत्तविष्कम्भ है। इसे १९ से समुच्छिन्न करने पर अर्थात् १००००० को $\frac{१९}{१९}$ से गुणित करने पर $\frac{१९०००००}{१९}$ योजन होता है। इस वृत्त विष्कम्भ में से दक्षिण भरत के वाण का प्रमाण घटा देने पर ($\frac{१९०००००}{१९} - \frac{४५२५}{१९}$) $= \frac{१८९५४७५}{१९}$ योजन अवशेष रहे। इसको चौगुणे वाण के प्रमाण ($\frac{४५२५}{१९} \times \frac{४}{१}$) $= \frac{१८१००}{१९}$ से गुणित करने पर ($\frac{१८९५४७५}{१९} \times \frac{१८१००}{१९}$) $= \frac{३४३०८०९७५००}{३६१}$ योजन जीवा की कृति का प्रमाण प्राप्त हुआ। इसके वर्गमूल का प्रमाण $\frac{१८५२२४}{१९}$ योजन होगा। इसमें अपने ही भागहार (१९) का भाग देने पर ९७४८$\frac{१२}{१९}$ योजन दक्षिण भरत की शुद्ध जीवा का प्रमाण प्राप्त हुआ। तथा दक्षिण भरत के वाण $\frac{४५२५}{१९}$ की कृति (वर्ग) का प्रमाण—$\frac{२०४७५६२५}{३६१}$ योजन है, इसे ६ से गुणित करने पर $\frac{१२२८५३७५०}{३६१}$ योजन प्राप्त हुए। इसमें जीवा की कृति जोड़ देने पर ($\frac{३४३०८०९७५००}{३६१} + \frac{१२२८५३७५०}{३६१}$) $= \frac{३४४३०९५१२५०}{३६१}$ योजन दक्षिण भरत की धनुषकृति का प्रमाण प्राप्त होता है, तथा

इसके $\frac{१८५५५५}{१९}$ वर्गमूल को अपने ही भागहार का भाग देने पर ९७६६ $\frac{१}{१९}$ योजन दक्षिण भरत के धनुष का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

विजयार्ध के बाण का प्रमाण २८८ $\frac{३}{१९}$ योजन है। इसका समुच्छेद करने पर $\frac{५४७५}{१९}$ योजन हुआ। इसे जम्बूद्वीप के वृत्त विष्कम्भ $\frac{१९०००००}{१९}$ में से घटा देने पर $\frac{१८९४५२५}{१९}$ योजन अवशेष रहे। इसको चौगुणे बाण के प्रमाण ($\frac{५४७५}{१९}\times\frac{४}{१}$) $=\frac{२१९००}{१९}$ से गुणित करने पर ($\frac{१८९४५२५}{१९}\times\frac{२१९००}{१९}$) $=\frac{४१४९००९७५००}{३६१}$ योजन विजयार्ध की जीवाकृति का प्रमाण हुआ और इसके वर्गमूल $\frac{२०३६९१}{१९}$ को अपने ही भागहार का भाग देने से १०७२० $\frac{११}{१९}$ योजन विजयार्ध पर्वत की जीवा का प्रमाण प्राप्त होता है। विजयार्ध के बाण $\frac{५४७५}{१९}$ की कृति $\frac{२९९७५६२५}{३६१}$ को ६ से गुणित करने पर $\frac{१७९८५३७५०}{३६१}$ योजन हुए। इसमें जीवा कृति जोड़ देने पर ($\frac{४१४९००९७५००}{३६१}+\frac{१७९८५३७५०}{३६१}$) $=\frac{४१६६९९५१२५०}{३६१}$ योजन विजयार्ध की धनुषकृति हुई, तथा इसके वर्गमूल $\frac{२०४१३२}{१९}$ को अपने ही भागहार का भाग देने पर १०७४३ $\frac{१५}{१९}$ योजन विजयार्ध पर्वत के धनुष का प्रमाण प्राप्त हुआ।

उत्तर भरत में समुच्छिन्न बाण (५२६ $\frac{६}{१९}$) के प्रमाण $\frac{१००००}{१९}$ को जम्बूद्वीप के वृत्तविष्कम्भ $\frac{१९०००००}{१९}$ में से घटा देने पर $\frac{१८९००००}{१९}$ योजन अवशेष रहे। इसको चौगुणे बाण के प्रमाण $\frac{४००००}{१९}$ से गुणित करने पर $\frac{७५६०००००००००}{३६१}$ योजन उत्तर भरत की जीवाकृति का प्रमाण हुआ, तथा इसी के वर्गमूल $\frac{२७४९५४}{१९}$ को अपने ही भागहार से भाजित करने पर १४४७१ $\frac{५}{१९}$ योजन उत्तर भरत की जीवा का प्रमाण प्राप्त हुआ। उत्तर भरत के बाण $\frac{१००००}{१९}$ की कृति $\frac{१०००००००००}{३६१}$ योजन हुई। इसे ६ से गुणित करने पर $\frac{६०००००००००}{३६१}$ योजन प्राप्त हुए। इसको जीवा की कृति में जोड़ देने पर ($\frac{७५६०००००००००}{३६१}+\frac{६०००००००००}{३६१}$) $=\frac{७६२०००००००००}{३६१}$ धनुष कृति प्राप्त होती है, तथा इसके वर्गमूल $\frac{२७६०४३}{१९}$ को अपने ही भागहार से भाजित करने पर १४५२८ $\frac{११}{१९}$ योजन उत्तर भरत के धनुष का प्रमाण प्राप्त होता है।

हिमवत् पर्वत के बाण $\frac{३००००}{१९}$ योजन को जम्बूद्वीप के वृत्तविष्कम्भ $\frac{१९०००००}{१९}$ में से घटा देने पर $\frac{१८७००००}{१९}$ योजन शेष रहे। इसको चौगुणे बाण के प्रमाण $\frac{१२००००}{१९}$ से गुणित करने पर $\frac{२२४४०००००००००}{३६१}$ योजन हिमवद् पर्वत की जीवा कृति का तथा इसी के वर्गमूल $\frac{४७३७०९}{१९}$ को अपने ही भागहार से भाजित करने पर २४९३२ $\frac{१}{१९}$ योजन हिमवद् पर्वत की जीवा का प्रमाण प्राप्त होता है। हिमवद् पर्वत के बाण ($\frac{३००००}{१९}$) की कृति $\frac{९०००००००००}{३६१}$ को ६ से गुणित करने पर $\frac{५४०००००००००}{३६१}$ योजन हुए। इसको जीवा की कृति में जोड़ देने पर ($\frac{२२४४०००००००००}{३६१}+\frac{५४०००००००००}{३६१}$) =

$\frac{२२९८००००००००००}{३६१}$ योजन धनुषकृति तथा इसी के वर्गमूल $\frac{४७९३७४}{१९}$ को अपने ही भागहार (१९) से भाजित करने पर २५२३०$\frac{४}{१९}$ हिमवत् पर्वत के धनुष का प्रमाण प्राप्त होता है।

हैमवत क्षेत्र के बाण $\frac{७००००}{१९}$ को वृत्त विष्कम्भ $\frac{१९०००००}{१९}$ में से घटा देने पर $\frac{१८३००००}{१९}$ योजन अवशेष रहे। इसको चौगुणे बाण के प्रमाण $\frac{२८००००}{१९}$ से गुणित करने पर $\frac{५१२४००००००००}{३६१}$ योजन जीवा की कृति होती है, तथा इसी जीवा कृति के वर्गमूल $\frac{७१५८२२}{१९}$ को अपने ही भागहार से भाजित करने पर ३७६७४$\frac{१६}{१९}$ योजन हैमवत क्षेत्र की जीवा का प्रमाण प्राप्त होता है। हैमवत क्षेत्र के बाण $\frac{७००००}{१९}$ की कृति $\frac{४९०००००००००}{३६१}$ को ६ से गुणित करने पर $\frac{२९४०००००००००}{३६१}$ योजन प्राप्त हुए, इन्हें जीवा कृति में जोड़ देने पर—($\frac{५१२४००००००००}{३६१}$ + $\frac{२९४०००००००००}{३६१}$) = $\frac{५४१८००००००००}{३६१}$ योजन हैमवत क्षेत्र की धनुष कृति होती है। तथा धनुषकृति के वर्गमूल $\frac{७३६०७०}{१९}$ को अपने ही भागहार से भाग देने पर ३८७४०$\frac{१०}{१९}$ हैमवत क्षेत्र के धनुष का प्रमाण प्राप्त होता है।

महाहिमवत् पर्वत के बाण $\frac{१५००००}{१९}$ योजन को वृत्त विष्कम्भ $\frac{१९०००००}{१९}$ में से कम करने पर $\frac{१७५००००}{१९}$ अवशेष रहे। इनको चौगुणे बाण के प्रमाण ($\frac{६०००००}{१९}$) से गुणित करने पर $\frac{१०५००००००००००}{३६१}$ योजन जीवा की कृति का प्रमाण होता है। तथा इसी के वर्गमूल $\frac{१०२४६९५}{१९}$ को अपने ही भागहार से भाजित करने पर ५३९३१$\frac{६}{१९}$ महाहिमवत् पर्वत की जीवा का प्रमाण होता है। महाहिमवत् पर्वत के बाण $\frac{१५००००}{१९}$ की कृति $\frac{२२५००००००००}{३६१}$ योजनों को ६ से गुणित करने पर $\frac{१३५००००००००००}{३६१}$ योजन होता है, इसको जीवाकृति में जोड़ देने पर ($\frac{१०५००००००००००}{३६१}$ + $\frac{१३५००००००००००}{३६१}$) = $\frac{११८५००००००००००}{३६१}$ योजन धनुष की कृति होती है, और इसीके वर्गमूल $\frac{१०८८५७७}{१९}$ को अपने ही भागहार से भाजित करने पर ५७२९३$\frac{१०}{१९}$ योजन महाहिमवत् पर्वत के धनुष का प्रमाण प्राप्त होता है।

हरिवर्ष क्षेत्र के बाण $\frac{३१००००}{१९}$ योजनों को वृत्तविष्कम्भ $\frac{१९०००००}{१९}$ योजनों में से घटा देने पर $\frac{१५९००००}{१९}$ योजन अवशेष रहे। इन्हें चौगुणे बाण के प्रमाण $\frac{१२४००००}{१९}$ योजनों से गुणित करने पर $\frac{१९७१६००००००००}{३६१}$ योजन जीवा की कृति होती है, और इसी जीवाकृति के वर्गमूल $\frac{१४०४१३६}{१९}$ को अपने ही भागहार से भाजित करने पर ७३९०१$\frac{१७}{१९}$ योजन हरिवर्ष क्षेत्र में जीवा का प्रमाण होता है, तथा इसी क्षेत्र के बाण $\frac{३१००००}{१९}$ की कृति $\frac{९६१००००००००}{३६१}$ को ६ से गुणित करने पर $\frac{५७६६००००००००}{३६१}$ योजन हुए। इसको जीवा की कृति में जोड़ देने पर ($\frac{१९७१६००००००००}{३६१}$ +

$\frac{५७६१००००००००}{३६१}$) = $\frac{२४४८२०००००००००}{३६१}$ योजन धनुष कृति का प्रमाण होता है तथा इसीके वर्गमूल $\frac{१५९६३०८}{१९}$ को अपने ही भागहार का भाग देने पर ८४०१६$\frac{४}{१९}$ योजन हरिवर्ष क्षेत्र के धनुष का प्रमाण प्राप्त होता है।

निषधगिरि के बाण $\frac{६३००००}{१९}$ योजनों को वृत्त विष्कम्भ $\frac{१९०००००}{१९}$ में से कम करने पर $\frac{१२७००००}{१९}$ योजन अवशेष रहे। इसको चौगुणे बाण के प्रमाण $\frac{२५२००००}{१९}$ से गुणित करने पर $\frac{३२००४००००००००}{३६१}$ योजन जीवा की कृति होती है, और इसीके वर्गमूल $\frac{१७८८९६६}{१९}$ को अपने भागहार का भाग देने पर ९४१५६$\frac{२}{१९}$ योजन निषधगिरि की जीवा का प्रमाण प्राप्त होता है। तथा निषधगिरि के बाण $\frac{६३००००}{१९}$ योजन की कृति $\frac{३९६९००००००००}{३६१}$ योजनों को ६ से गुणित करने पर $\frac{२३८१४००००००००}{३६१}$ होते हैं। इसको जीवा की कृति में जोड़ देने पर ($\frac{३२००४००००००००}{३६१}$ + $\frac{२३८१४००००००००}{३६१}$) = $\frac{५५८१८००००००००}{३६१}$ योजन धनुष की कृति होती है, और इसीके वर्गमूल $\frac{२३६२५८३}{१९}$ को अपने भागहार का भाग देने पर १२४३४६$\frac{९}{१९}$ निषध गिरि के धनुष का प्रमाण प्राप्त होता है।

विदेह के अर्ध बाण $\frac{९५००००}{१९}$ को वृत्त विष्कम्भ $\frac{१९०००००}{१९}$ में से घटा देने पर $\frac{९५००००}{१९}$ अवशेष रहे। इन्हें चौगुणे बाण $\frac{३८०००००}{१९}$ से गुणित करने पर $\frac{३६१००००००००००}{३६१}$ जीवा कृति का प्रमाण हुआ, तथा इसी के वर्गमूल $\frac{१९०००००}{१९}$ को अपने ही भागहार का भाग देने पर १००००० अर्ध विदेह की जीवा का प्रमाण प्राप्त होता है तथा अर्धविदेह के बाण $\frac{९५००००}{१९}$ की कृति $\frac{९०२५००००००००}{३६१}$ को ६ से गुणित करने पर $\frac{५४१५००००००००}{३६१}$ योजन हुए। इनको जीवा की कृति $\frac{३६१००००००००००}{३६१}$ में मिला देने पर $\frac{९०२५००००००००}{३६१}$ योजन धनुष की कृति का प्रमाण प्राप्त होता है, तथा इसी के वर्गमूल $\frac{३००४१६४}{१९}$ को अपने ही भागहार का भाग देने पर १५८११४ योजन अर्धविदेह के धनुष का प्रमाण प्राप्त होता है।

नोट :—कृति स्वरूप संख्या का वर्गमूल निकालने के बाद अवशेष बचे अंकों को छोड़ दिया गया है।

अथ दक्षिणभरतादिक्षेत्रपर्वतानां जीवाधनुषोः प्रमाणमानीताङ्कं गाथानवकेनाह—

दक्खिणभरहे जीवा अडणउदसगणवय होंति चारकला।
चावं अडक्कसगसयणवयसहस्सं च एक्ककला ॥ ७६१ ॥

वैयड्ढंते जीवा णभदुगसगदहसहस्सेगारकला ।
तेदालसगणमेक्कं पण्णरसकला य तच्चावं ॥ ७७० ॥

भरहस्संते जीवा इगिसगचउचोद्दसं च पञ्चकला ।
चावं अडदुगपणचउरेक्कं एक्कारसकला य ॥ ७७१ ॥

हिमवण्णगंत जीवा दुगतिगणवचउदुगं कला चूणा ।
चावं णभतियदुगपणवीससहस्सं च चारिकला ॥ ७७२ ॥

हेमवदंतिमजीवा चउसगछस्सगति ऊणसोलकला ।
धणुहं णभचउसगअडतिण्णि विसेसहियदसयकला ॥७७३॥

महहिमवचरिमजीवा इगतिणवतिगपंच छक्ककला ।
तच्चावं तियणवदुगसगवण्णसहस्स दसयकला ॥ ७७४ ॥

हरिजीवा इगिणभणवतियसचयमिह कलावि सत्तरसा ।
चावं सोलसणभचउसीदिसहस्सं च चारिकला ॥ ७७५ ॥

णिसहावसाणजीवा छप्पणइगिचारिणवयदोण्णिकला ।
धणुपुट्ठं छादालतिचउरीसेक्कं च णवयकला ॥७७६॥

दक्षिणभरते जीवा अष्टचतुः सप्तनव भवन्ति द्वादशकलाः ।
चापं षट्षट्सप्तशतनवसहस्रं च एककला ॥ ७६९ ॥

विजयार्धान्ते जीवा नभोद्विकसप्तदशसहस्रं एकादशकला ।
त्रिचत्वारिंशत् सप्त नभः एकं पञ्चदशकलाश्च तच्चापं ॥ ७७० ॥

भरतस्यान्ते जीवा एक सप्त चतुश्चतुर्दश च पञ्चकलाः ।
चापं अष्टद्विकपञ्चचतुरेकं एकादशकलाः च ॥ ७७१ ॥

हिमवन्नगान्ते जीवा द्विकत्रिकनवचतुर्द्वयं कला ऊना ।
चापं नभस्त्रिद्विपञ्चविंशतिसहस्रं च चतुः कलाः ॥ ७७२ ॥

हैमवतान्तिमजीवा चतुःसप्तषट्सप्तत्रयः ऊनषोडशकला ।
धनुः नभश्चतुःसप्ताष्टत्रीणि विशेषाधिकदशकला ॥ ७७३ ॥

महाहिमवच्चरमजीवा एकत्रिनवत्रिपञ्च षट्ककलाः ।
तच्चापं त्रिनवद्विसप्तपञ्चाशत्सहस्रं दशकलाः ॥ ७७४ ॥

हरिजीवा एकनभोनवत्रिसप्तकं इह कला अपि सप्तदश ।
चापं षोडशनभश्चतुरशीतिसहस्रं च चतस्रः कलाः ॥ ७७५ ॥

निषधावसानजीवा षट्पञ्चैकचतुर्नवकं द्वे कले ।
धनुःपृष्ठं षट्चत्वारिंशत् त्रिचतुर्विंशत्येकं च नव कलाः ॥ ७७६ ॥

दक्षिण । दक्षिणभरते जीवा अष्टचत्वारः सप्तनवयोजनानि द्वादशकलाश्च ९७४८$\frac{१२}{१९}$ भवन्ति । तच्चापं च षट्षष्ठ्युत्तरसप्तशतसहितनवसहस्राणि एक कला च ९७६६$\frac{१}{१९}$ स्यात् ॥७६९॥

वेय । विजयार्धान्ते जीवा नभोद्विकसप्तसहितदशसहस्राणि एकादश कला च स्यात् १०७२०$\frac{११}{१९}$ तच्चापं त्रिचत्वारिंशत् सप्तनभः एकं पञ्चदश कलाश्च स्यात् १०७४३$\frac{१५}{१९}$ ॥७७०॥

भरह । भरतक्षेत्रान्ते जीवा एक सप्त चतुश्चतुर्दश पञ्चकलाश्च १४४७१$\frac{५}{१९}$ स्यात् । तच्चापं अष्टद्विकपञ्चचतुरेकं एकादशकलाश्च स्यात् १४५२८$\frac{११}{१९}$ ॥ ७७१ ॥

हिम । हिमवन्नगान्ते जीवा द्वित्रिनवचतुर्द्वयं किञ्चिन्न्यूनैककला च स्यात् २४९३२$\frac{१}{१९}$ तच्चापं नभः त्रिद्विपञ्चाधिकविंशतिसहस्राणि चतस्रः कलाश्च स्यात् २५२३०$\frac{४}{१९}$ ॥ ७७२ ॥

हेम । हैमवतान्तिमजीवा चतुःसप्तषट्सप्तत्रयः किञ्चिन्न्यूनषोडशकलाश्च स्यात् । ३७६७४$\frac{१६}{१९}$ तद्धनुः नभश्चतुःसप्ताष्टत्रीणि साधिकदशकलाश्च स्यात् ३८७४०$\frac{१०}{१९}$ ॥ ७७३ ॥

मह । महाहिमवतश्चरमजीवा एकत्रिनवत्रित्रयपञ्चयोजनानि षट्कलाश्च स्यात् ५३९३१$\frac{६}{१९}$ तच्चापं त्रिनवद्विसहितसप्तपञ्चाशत्सहस्रयोजनानि दशकलाश्च स्यात् ५७२९३$\frac{१०}{१९}$ ॥७७४॥

हरि । हरिवर्षे जीवा एकनभोनवत्रिसप्तयोजनानि द्वे सप्तदशकलाश्च स्यात् ७३९०१$\frac{१७}{१९}$ तच्चापं षोडशनभश्चतुरशीतिसहस्रयोजनानि चतस्रः कलाश्च स्यात् ८४०१६$\frac{४}{१९}$ ॥७७५॥

णिसहा । निषधावसानजीवा षट्पञ्चैकचतुर्नवयोजनानि द्विकलाश्च स्यात् ९४१५६$\frac{२}{१९}$ धनुःपृष्ठं च षट्चत्वारिंशत् त्रिचतुर्विंशत्येकयोजनानि नवकलाश्च स्यात् १२४३४६$\frac{९}{१९}$ ॥७७६॥

अब दक्षिण भरतादि क्षेत्र और पर्वतों की जीवा एवं धनुष के पूर्व प्राप्त अङ्कों को नौ गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—दक्षिण भरत क्षेत्र में जीवा नौ हजार सात सौ अड़तालीस योजन और एक योजन के उन्नीस भागों में से बारह भाग (९७४८$\frac{१२}{१९}$ यो०) प्रमाण है तथा उसी के चाप (धनुष) का प्रमाण नौ हजार सात सौ छयासठ योजन और उन्नीस कलाओं में से एक कला अर्थात् ९७६६$\frac{१}{१९}$ योजन प्रमाण है ।

विजयार्ध के अन्त में जीवा दश हजार सात सौ बीस योजन और ग्यारह कला (१०७२०$\frac{११}{१९}$ यो०) प्रमाण तथा चाप दश हजार सात सौ तेतालीस योजन पन्द्रह कला (१०७४३$\frac{१५}{१९}$ यो०) प्रमाण है ।

भरत क्षेत्र के अन्त में जीवा चौदह हजार चार सौ इकहत्तर योजन और पाँच कला (१४४७१$\frac{५}{१९}$ यो०) प्रमाण है, तथा उसी का चाप चौदह हजार पाँच सौ अट्ठाईस योजन और ग्यारह कला (१४५२८$\frac{११}{१९}$ यो०) प्रमाण है।

हिमवन् पर्वत के अन्त में जीवा चौबीस हजार नौ सौ बत्तीस योजन और कुछ कम एक कला (२४९३२$\frac{१}{१९}$ यो०) प्रमाण है तथा उसी का चाप पच्चीस हजार दो सौ तीस योजन चार कला (२५२३०$\frac{४}{१९}$ यो०) प्रमाण है।

हैमवत क्षेत्र के अन्त में जीवा सैंतीस हजार छह सौ चौहत्तर योजन और कुछ कम सोलह कला (३७६७४$\frac{१६}{१९}$ यो०) प्रमाण है, तथा धनुष अड़तीस हजार सात सौ चालीस योजन और कुछ अधिक दश कला (३८७४०$\frac{१०}{१९}$ यो०) प्रमाण है।

महाहिमवन् पर्वत के अन्त में जीवा त्रेपन हजार नौ सौ इकतीस योजन और छह कला (५३९३१$\frac{६}{१९}$ यो०) प्रमाण है तथा चाप सत्तावन हजार दो सौ तेरानवे योजन और दश कला (५७२९३$\frac{१०}{१९}$ यो०) प्रमाण है।

हरिक्षेत्र मे जीवा तिहत्तर हजार नौ सौ एक योजन और सत्रह कला (७३९०१$\frac{१७}{१९}$ यो०) प्रमाण है, तथा चाप चौरासी हजार सोलह योजन और चार कला (८४०१६$\frac{४}{१९}$ यो०) प्रमाण है।

निषध पर्वत के अन्त में जीवा ९४१५६$\frac{२}{१९}$ योजन प्रमाण है तथा चाप एक लाख चौबीस हजार तीन सौ छियालीस योजन और नौ कला १२४३४६$\frac{९}{१९}$ योजन प्रमाण है ॥ ७६९—७७६ ॥

जीवदु विदेहमज्झे लक्खा परिहिदलमेवमवरद्धे ।
माहवचंदुद्धरिया गुणधम्मपसिद्ध सव्वकला ॥७७७॥

जीवाद्वयं विदेहमध्ये लक्षं परिधिदलं एवमपरार्धे ।
माधवचन्द्रोद्धृताः गुणधर्मप्रसिद्धाः सर्वकलाः ॥ ७७७ ॥

जीव । विदेहमध्ये जीवा धनुरित्येतद्द्वयं यथासंख्यं लक्षयोजनानि १ ल जम्बूद्वीपपरिधे (३१६२२७ को ३ दं० १२८ अं १३ भा $\frac{१}{२}$) रर्धप्रमाणं च स्यात् १५८११४ एवमैरावताद्यपरार्धेऽपि गुणो ज्या धर्मो धनुः तयोः प्रसिद्धाः पूर्वोक्ताः सर्वाः कला योजनांशाद्यङ्कसंज्ञया माधव-चन्द्राङ्केन १९ उद्धृताभक्ताः पक्षे गुणेषु धर्मे च प्रसिद्धाः सर्वाः कला माधवचन्द्रत्रैविद्येनोद्धृताः प्रकाशिताः ॥ ७७७ ॥

गाथार्थ :—विदेह के मध्य में जीवा और धनुष ये दोनों क्रम से एक लाख योजन और जम्बू द्वीप की परिधि के अर्ध भाग प्रमाण हैं। ऐरावतादि क्षेत्रों और अर्ध जम्बू द्वीप में भी ऐसा ही जानना,

तथा पूर्वोक्त कही हुई गुण अर्थात् जीवा और धर्म अर्थात् धनुष के प्रमाण की सम्पूर्ण कला माधव अर्थात् ९ और चन्द्र = १ अर्थात् १९ भाग रूप हैं ॥ ७७७ ॥

विशेषार्थ :—विदेह क्षेत्र के मध्य में जीवा का प्रमाण १००००० योजन और धनुष का प्रमाण जम्बूद्वीप की परिधि ३१६२२७ योजन ३ कोश, १२८ दण्ड और १३½ अंगुल के अर्ध भाग प्रमाण अर्थात् कुछ कम १५८११४ योजन है। इसी प्रकार ऐरावत आदि क्षेत्र, पर्वत और अर्ध जम्बूद्वीप में भी जानना। गुण अर्थात् जीवा और धर्म अर्थात् धनुष के प्रमाणों की पूर्वोक्त कही हुई सम्पूर्ण कला अर्थात् योजन के अंश माधव (नारायण) के ९ और चन्द्र का एक अर्थात् १९ भाग स्वरूप है तथा पक्ष में-ज्ञानादि गुण और अहिंसादि धर्मों में प्रसिद्ध जो सम्पूर्ण चातुर्य है वह माधव चन्द्र त्रैविद्यदेव के द्वारा उद्धृत अर्थात् प्रकाशित है।

अथ जीवानां धनुषां च चूलिकां पार्श्वभुजं चाह—

पुव्वावरजीवसेसे दलिदे इह चूलियात्ति णाम हवे।
धणुदुगसेसे दलिदे पासभुजा दक्खिणुत्तरदो ॥७७८॥

पूर्वापरजीवाशेषे दलिते इह चूलिका इति नाम भवेत्।
धनुर्द्विकशेषे दलिते पार्श्वभुजः दक्षिणोत्तरतः ॥ ७७८ ॥

पुव्व। दक्षिणे भरतादौ उत्तरस्मिन्नैरावतादौ च पूर्वापरजीवयोरधिके हीनं शोधयित्वा दलिते शेषस्य चूलिकेति नाम भवेत्। पूर्वापरधनुषोर्द्वयं प्राग्वच्छोधयित्वा अर्धिते पार्श्वभुजः स्यात्। एतदेव विवृणोति—दक्षिणभरतजीवा ९७४८ $\frac{१२}{१९}$ विजयार्धजीवयो १०७२० $\frac{११}{१९}$ रधिके हीनं शोधयित्वा ९७२ तदंशे $\frac{११}{१९}$ इतरांशस्य $\frac{१२}{१९}$ शोधनाभावात् अंशिनि ९७२ एकं गृहीत्वा ९७१ समच्छेदं कृत्वा $\frac{१९}{१९}$ अत्रेतरांश $\frac{१२}{१९}$ मपनीय $\frac{७}{१९}$ स्वांशे $\frac{११}{१९}$ मेलयेत् $\frac{१८}{१९}$ राशे ९७१ विषमत्वादेकमपनीय ९७० अर्धयित्वा ४८५ अंशं $\frac{१८}{१९}$ चार्धयित्वा $\frac{९}{१९}$ अपनीतैकमर्धितराश्यंशत्वादर्धयित्वा $\frac{१}{२}$ द्वयमपि तांशं च $\frac{९}{१९}$ परस्परहार-गुणनेन समच्छेदं कृत्वा $\frac{१९}{३८}$ । $\frac{१८}{३८}$ मेलयेत् $\frac{३७}{३८}$ एतावता विजयार्धचूलिका स्यात्। दक्षिणभरतचाप ९७६६ $\frac{१}{१९}$ विजयार्धचापयो १०७४३ $\frac{१५}{१९}$ रन्योन्यं शोधयित्वा ९७७ $\frac{१४}{१९}$ प्रागवर्धीकृत्य ४८८ $\frac{७}{१९}$ अंशयोः $\frac{१}{२}$ + $\frac{७}{१९}$ प्राग्वन्मेलने $\frac{३३}{३८}$ विजयार्धस्य पार्श्वभुजः स्यात्। एवमितरत्र चूलिका पार्श्वभुजः चानेतव्याः ॥ ७७८ ॥

अब जीवा की चूलिका और धनुष की पार्श्व भुजा कहते हैं :—

गाथार्थ :—दक्षिणोत्तर में पूर्वापर जीवा को (परस्पर में) घटा कर अवशेष को आधा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसका 'चूलिका' यह नाम होता है, और पूर्वापर धनुष को परस्पर घटा कर अवशेष को आधा करते पर जो लब्ध प्राप्त हो उसका नाम पार्श्व भुजा है ॥ ७७८ ॥

विशेषार्थ :—दक्षिण में भरतादि क्षेत्र और हिमवन् आदि पर्वतों की तथा उत्तर में ऐरावतादि क्षेत्र और शिखरिन् आदि पर्वतों की जो पूर्वापर अर्थात् पहिले और पीछे कही हुई जीवा के प्रमाण में जो अधिक प्रमाण वाली जीवा है उसमें से हीन प्रमाण वाली को घटाकर अवशेष को आधा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसका नाम चूलिका है तथा पूर्वापर कहे हुए धनुष के अधिक प्रमाण में से हीन प्रमाण को घटाकर अवशेष का आधा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसका नाम पार्श्व भुजा है। जैसे—दक्षिण भरत की जीवा का प्रमाण ९७४८ $\frac{12}{19}$ योजन है और विजयार्ध की जीवा का प्रमाण १०७२० $\frac{11}{19}$ योजन है, जो दक्षिण भरत की जीवा के प्रमाण से अधिक प्रमाण वाली है, अतः १०७२० $\frac{11}{19}$ — ९७४८ $\frac{12}{19}$ = ९७२ योजन अवशेष रहे, किन्तु $\frac{11}{19}$ अंशों में से $\frac{12}{19}$ अंश नहीं घट सकते अतः ९७२ अंशों में से १ अङ्क ग्रहण करने पर ९७१ योजन रहे और उस एक अंक को भिन्न रूप करने पर $\frac{19}{19}$ हुए। इनमें से $\frac{12}{19}$ अंश घटाने पर ($\frac{19}{19}$ — $\frac{12}{19}$) = $\frac{7}{19}$ अवशेष बचे जो $\frac{11}{19}$ में जोड़ देने से ($\frac{11}{19}$ + $\frac{7}{19}$) = $\frac{18}{19}$ अर्थात् ९७१ $\frac{18}{19}$ योजन अवशेष रहे। इस राशि का अर्ध भाग करना है किन्तु विषम राशि का अर्ध भाग नहीं होता, अतः ९७१ में से १ अङ्क घटा कर शेष ९७० का अर्ध भाग ४८५ योजन और $\frac{18}{19}$ अंश का अर्ध भाग $\frac{9}{19}$ हुआ। घटाए हुए १ अंक का अर्धभाग $\frac{1}{2}$ होता है। इस $\frac{1}{2}$ और $\frac{9}{19}$ अंश को समच्छेद करने पर ($\frac{1}{2}$ × $\frac{19}{19}$) = $\frac{19}{38}$ और ($\frac{9}{19}$ × $\frac{2}{2}$) = $\frac{18}{38}$ प्राप्त हुए। इन दोनों को मिलाने पर ($\frac{19}{38}$ + $\frac{18}{38}$) = $\frac{37}{38}$ अर्थात् ४८५ $\frac{37}{38}$ योजन विजयार्ध पर्वत की चूलिका का प्रमाण है। अथवा :—विजयार्ध की जीवा $\frac{203691}{19}$ (१०७२० $\frac{11}{19}$) योजन और दक्षिण भरत की $\frac{185224}{19}$ (९७४८ $\frac{12}{19}$) योजन है इसे घटा कर आधा करने पर चूलिका का प्रमाण प्राप्त होता है, अत :— $\frac{203691}{19}$ — $\frac{185224}{19}$ = $\frac{203691-185224}{19}$ = $\frac{18467}{19}$ (९७१ $\frac{18}{19}$) × $\frac{1}{2}$ = $\frac{18467}{38}$ अर्थात् ४८५ $\frac{37}{38}$ योजन विजयार्ध की चूलिका का प्रमाण है।

दक्षिण भरत का चाप ९७६६ $\frac{1}{19}$ योजन और विजयार्ध का चाप १०७४३ $\frac{15}{19}$ योजन है। इन्हें परस्पर घटाने से ९७७ $\frac{14}{19}$ योजन अवशेष रहे। इन्हें पूर्वोक्त विधि के अनुसार आधा करने पर ४८८ योजन हुआ। शेष $\frac{7}{19}$ अंश को $\frac{1}{2}$ अंशों में पूर्वोक्त विधि से मिलाने पर $\frac{33}{38}$ अर्थात् ४८८ $\frac{33}{38}$ योजन विजयार्ध पर्वत की पार्श्व भुजा का प्रमाण है।

अथवा :—विजयार्ध का धनुष $\frac{204132}{19}$ योजन और दक्षिण भरत का धनुष $\frac{185555}{19}$ योजन है। इन्हें परस्पर घटाने पर $\frac{204132}{19}$ — $\frac{185555}{19}$ = $\frac{18577}{19}$ × $\frac{1}{2}$ = $\frac{18577}{38}$ अर्थात् ४८८ $\frac{33}{38}$ योजन विजयार्ध की पार्श्व भुजा का प्रमाण है। इसी प्रकार विदेह पर्यन्त अन्य सभी क्षेत्रों और पर्वतों की चूलिका का प्रमाण निम्न प्रकार है तथा उत्तर विदेह से उत्तर ऐरावत पर्यन्त की चूलिका का प्रमाण यथाक्रम इन्हीं क्षेत्र पर्वतों के सदृश है :—

[कृपया चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्रमांक	नाम क्षेत्र-पर्वत	पूर्वजीवा	अपरजीवा	अन्तर	चूलिका का प्रमाण
१	उत्तर भरत	२०३६११/१९	२७४६५४/१९	७१०४३/१९	७१०४३/१९ × १/२ = १८६९ २१/३८ योजन
२	हिमवन् पर्वत	२७४६५४/१९	४७३४०१/१९	१९८७४७/१९	१९८७४७/१९ × १/२ = ५२३० ७/३८ 〃
३	हैमवत क्षेत्र	४७३४०१/१९	७१५८९२/१९	२४२४९१/१९	२४२४९१/१९ × १/२ = ६३८१ १३/३८ 〃
४	महाहिमवन्	७१५८९२/१९	१०२४६६५/१९	३०८७७३/१९	३०८७७३/१९ × १/२ = ८१२५ २३/३८ 〃
५	हरिक्षेत्र	१०२४६६५/१९	१४०४११६/१९	३७९४५१/१९	३७९४५१/१९ × १/२ = ९९८५ २१/३८ 〃
६	निषध पर्वत	१४०४११६/१९	१७८८९६६/१९	३८४८५०/१९	३८४८५०/१९ × १/२ = १०१२७ २४/३८ 〃
७	दक्षिण विदेह	१७८८९६६/१९	१९०००००/१९	१११०३४/१९	१११०३४/१९ × १/२ = २९२१ ३६/३८ 〃

विजयार्ध पर्वत की पार्श्व भुजा का प्रमाण ऊपर कहा जा चुका है। उत्तर भरत से दक्षिण विदेह पर्यन्त पार्श्व भुजा का प्रमाण निम्न प्रकार है तथा उत्तर विदेह से उत्तर ऐरावत पर्यन्त पार्श्व भुजा का प्रमाण यथाक्रम इन्हीं क्षेत्र पर्वतों के सदृश है।

[कृपया चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्रमांक	नाम पर्वत-क्षेत्र	पूर्व धनुष	उत्तर धनुष	अन्तर	पार्श्व भुजा का प्रमाण
१	उत्तर भरत	$\frac{२०४१३२}{१९}$	$\frac{२७६०४३}{१९}$	$\frac{७१९११}{१९}$	$\frac{७१९११}{१९} \times \frac{१}{२} = १८९२\frac{१५}{३८}$ योजन
२	हिमवन्	$\frac{२७६०४३}{१९}$	$\frac{४७९३७४}{१९}$	$\frac{२०३३३१}{१९}$	$\frac{२०३३३१}{१९} \times \frac{१}{२} = ५३५०\frac{३१}{३८}$ "
३	हैमवत क्षेत्र	$\frac{४७९३७४}{१९}$	$\frac{७३६०७०}{१९}$	$\frac{२५६६९६}{१९}$	$\frac{२५६६९६}{१९} \times \frac{१}{२} = ६७५५\frac{३}{१९}$ "
४	महाहिमवन्	$\frac{७३६०७०}{१९}$	$\frac{१०८८५७७}{१९}$	$\frac{३५२५०७}{१९}$	$\frac{३५२५०७}{१९} \times \frac{१}{२} = ९२७६\frac{१}{२}$ "
५	हरिक्षेत्र	$\frac{१०८८५७७}{१९}$	$\frac{१५९६३०८}{१९}$	$\frac{५०७७३१}{१९}$	$\frac{५०७७३१}{१९} \times \frac{१}{२} = १३३६१\frac{१३}{३८}$ "
६	निषधपर्वत	$\frac{१५९६३०८}{१९}$	$\frac{२३६२५८३}{१९}$	$\frac{७६६२७५}{१९}$	$\frac{७६६२७५}{१९} \times \frac{१}{२} = २०१६५\frac{५}{३८}$ "
७	दक्षिण विदेह	$\frac{२३६२५८३}{१९}$	$\frac{३००४१६४}{१९}$	$\frac{६४१५८१}{१९}$	$\frac{६४१५८१}{१९} \times \frac{१}{२} = १६८८३\frac{२७}{३८}$ "

दक्षिण भरत से उत्तर ऐरावत क्षेत्र पर्यन्त व्यास, बाण, जीवा, चूलिका, धनुष और पार्श्व भुजा का एकत्रित प्रमाण (योजनों में) निम्न प्रकार है :—

[कृपया चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिए]

क्रमांक	नाम	व्यास	बाण	जीवा	चूलिका	धनुष	पार्श्वभुजा
१	दक्षिण भरत	२३८$\frac{३}{१९}$	२३८$\frac{३}{१९}$	९७४८$\frac{१२}{१९}$	×	९७६६$\frac{१}{१९}$	×
२	विजयार्ध	५० योजन	२८८$\frac{३}{१९}$	१०७२०$\frac{११}{१९}$	४८५ [illegible]	१०७४३$\frac{१५}{१९}$	४८८ [illegible]
३	उत्तर भरत	२३८$\frac{३}{१९}$	५२६$\frac{६}{१९}$	१४४७१$\frac{५}{१९}$	१८७५ [illegible]	१४५२८$\frac{११}{१९}$	१८९२ [illegible]
४	हिमवान् पर्वत	$\frac{२००००}{१९}$	$\frac{३००००}{१९}$	२४९३२$\frac{१}{१९}$	५२३० [illegible]	२५२३०$\frac{४}{१९}$	५३५० [illegible]
५	हैमवत	$\frac{४००००}{१९}$	$\frac{७००००}{१९}$	३७६७४$\frac{१६}{१९}$	६२७१ [illegible]	३८७४० [illegible]	६७५५ [illegible]
६	महा हि०	$\frac{८००००}{१९}$	$\frac{१५००००}{१९}$	५३९३१$\frac{६}{१९}$	८१२८ [illegible]	५७२९३ [illegible]	९२७६ [illegible]
७	हरिक्षेत्र	$\frac{१६००००}{१९}$	$\frac{३१००००}{१९}$	७३९०१ [illegible]	९९८५ [illegible]	८४०१६ [illegible]	१३३६१ [illegible]
८	निषध	$\frac{३२००००}{१९}$	$\frac{६३००००}{१९}$	९४१५६$\frac{२}{१९}$	१०१२७ [illegible]	१२४३४६ [illegible]	२०१६५ [illegible]
९	दक्षिण विदेह	$\frac{६४००००}{१९}$	$\frac{९५००००}{१९}$	१०००००	२९९२१ [illegible]	१५८११४	१६८८३ [illegible]
१०	उत्तर वि०	$\frac{६४००००}{१९}$	$\frac{९५००००}{१९}$	१०००००	२९९२१ [illegible]	१५८११४	१६८८३ [illegible]
११	नील	$\frac{३२००००}{१९}$	$\frac{६३००००}{१९}$	९४१५६$\frac{२}{१९}$	१०१२७ [illegible]	१२४३४६ [illegible]	२०१६५ [illegible]
१२	रम्यक	$\frac{१६००००}{१९}$	$\frac{३१००००}{१९}$	७३९०१ [illegible]	९९८५ [illegible]	८४०१६ [illegible]	१३३६१ [illegible]
१३	रुक्मी	$\frac{८००००}{१९}$	$\frac{१५००००}{१९}$	५३९३१$\frac{६}{१९}$	८१२८ [illegible]	५७२९३ [illegible]	९२७६ [illegible]
१४	हैरण्यवत	$\frac{४००००}{१९}$	$\frac{७००००}{१९}$	३७६७४$\frac{१६}{१९}$	६२७१ [illegible]	३८७४० [illegible]	६७५५ [illegible]
१५	शिखरिन्	$\frac{२००००}{१९}$	$\frac{३००००}{१९}$	२४९३२$\frac{१}{१९}$	५२३० [illegible]	२५२३० [illegible]	५३५० [illegible]
१६	द० ऐरावत	२३८$\frac{३}{१९}$	५२६$\frac{६}{१९}$	१४४७१$\frac{५}{१९}$	१८७५ [illegible]	१४५२८ [illegible]	१८९२ [illegible]
१७	विजयार्ध	५० यो०	२८८$\frac{३}{१९}$	१०७२०$\frac{११}{१९}$	४८५ [illegible]	१०७४३$\frac{१५}{१९}$	४८८ [illegible]
१८	उ० ऐरावत	२३८$\frac{३}{१९}$	२३८$\frac{३}{१९}$	९७४८$\frac{१२}{१९}$	×	९७६६$\frac{१}{१९}$	×

अथ भरतैरावतक्षेत्रेषु कालवर्तनक्रमं प्रतिपादयति—

भरहेसुरेवदेसु य ओसप्पुस्सप्पिणित्ति कालदुगा ।
उस्सेधाउबलाणं हाणीवड्ढी य होंतित्ति ॥ ७७९ ॥

भरतेषु ऐरावतेषु च अवसर्पिण्युत्सर्पिणीति कालद्वयं ।
उत्सेधायुर्बलानां हानिवृद्धी च भवत इति ॥ ७७९ ॥

भरहे । पञ्चभरतेषु पञ्चैरावतेषु चावसर्पिण्युत्सर्पिणीति कालद्वयं वर्तते । तत्रस्थजीवानामुत्सेधायुर्बलानां यथासंख्यं हानिवृद्धी भवत इति तात्पर्यं ॥ ७७९ ॥

अब भरतैरावत क्षेत्र में कालवर्तन क्रम का प्रतिपादन करते हैं :

गाथार्थ :—पञ्च मेरु सम्बन्धी पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रों में अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी नाम के दो काल वर्तते हैं । इन क्षेत्रों में स्थित जीवों के शरीर की ऊँचाई, आयु और बल की क्रमशः अवसर्पिणी काल में हानि और उत्सर्पिणी काल में वृद्धि होती है, ऐसा जानना चाहिए ॥ ७७९ ॥

अथ कालद्वयभेदानां संज्ञाः कथयति—

सुसमसुसमं च सुसमं सुसमादी अंतदुस्समं कमसो ।
दुस्समसमतिदुस्समिदि पढमो बिदियो दु विवरीयो ॥७८०॥

सुषमसुषमः च सुषमः सुषमादिः अन्तदुःषमः क्रमशः ।
दुःषमः अतिदुःषम इति प्रथमः द्वितीयस्तु विपरीतः ॥ ७८० ॥

सुसम । १ सुषमसुषमः २ सुषमः ३ सुषमदुःषमः ४ दुःषमसुषमः ५ दुःषमः ६ अतिदुःषमः इति क्रमेण प्रथमोऽवसर्पिणीकालः षड्भेदः । द्वितीय उत्सर्पिणीकालः एतद्वैपरीत्येन षड्भेदः ॥ ७८० ॥

दोनों कालों के भेद एवं नाम कहते हैं :—

गाथार्थ :—प्रथम अवसर्पिणी काल सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमादुःषमा, दुःषमा-सुषमा, दुःषमा और अतिदुःषमा के नाम से ६ भेदवाला है, तथा दूसरा उत्सर्पिणी काल इससे विपरीत क्रम वाला है ॥ ७८० ॥

विशेषार्थ :—प्रथम अवसर्पिणी काल क्रम से सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमादुःषमा, दुःषमा-सुषमा, दुःषमा और अतिदुःषमा के नाम से छह भेद वाला है । तथा उत्सर्पिणी काल भी क्रम से अतिदुःषमा, दुःषमा, दुःषमासुषमा, सुषमादुःषमा, सुषमा और अतिसुषमा के भेद से छह प्रकार का है ।

अथ प्रथमादिकालानां स्थितिप्रमाणमाह—

चदुतिदुगकोडकोडी बादालसहस्सवासहीणेक्कं ।
उदधीणं हीणदलं तत्तियमेत्तट्ठिदी ताणं ॥ ७८१ ॥

चतुस्त्रिद्विककोटीकोटिः द्वाचत्वारिंशत्सहस्रवर्षहीनैकम् ।
उदधीनां हीनदलं तावन्मात्रा स्थितिः तेषां ॥ ७८१ ॥

चदु । तेषां षट्कालानां क्रमेण स्थितिः चतुः कोटीकोटिसागरोपमा त्रिकोटीकोटिसागरोपमा द्विकोटीकोटिसागरोपमा द्वाचत्वारिंशत्सहस्रवर्षहीनैककोटीकोटिसागरोपमा । हीनस्य ४२००० दलं उभयत्र प्रत्येकं २१००० तावन्मात्रा च ज्ञातव्या ॥ ७८१ ॥

प्रथमादि कालों का स्थितिप्रमाण कहते हैं—

गाथार्थ :— उन सुखमा सुखमा आदि कालों की स्थिति क्रमशः चार कोड़ाकोड़ी सागर, तीन कोड़ाकोड़ी सागर, दो कोड़ाकोड़ी सागर, बयालिस हजार वर्ष हीन एक कोड़ाकोड़ी सागर, बयालिस हजार वर्ष का अर्ध अर्थात् इक्कीस हजार वर्ष और इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण है ॥ ७८१ ॥

अथ षट्कालजीवानामायुः प्रमाणं निरूपयति—

तत्थादि अंत आऊ तिदुगेक्कं पल्लपुव्वकोडी य ।
वीसहियसयं वीसं पण्णरसा होंति वासाणं ॥ ७८२ ॥

तत्रादौ अन्ते आयुः त्रिद्विकैकं पल्यं पूर्वकोटिः ।
विंशत्यधिकशतं विंशं पञ्चदश भवन्ति वर्षाणां ॥ ७८२ ॥

तत्थादि । तेषु कालेषु प्रथमकालस्यादौ जीवानामायुस्त्रिपल्योपमं तस्यान्ते द्विपल्यं एतदेव द्वितीयकालस्यादौ तस्यान्ते एकपल्यं एतदेव तृतीयकालस्यादौ तस्यान्ते पूर्वकोटिः एतदेव चतुर्थकालस्यादौ तस्यान्ते विंशत्यधिकं शतं एतदेव पञ्चमकालस्यादौ तस्यान्ते विंशतिः एतदेव षष्ठकालस्यादौ तस्यान्ते पञ्चदश एताः सर्वाः संख्या वर्षाणां भवन्ति ॥ ७८२ ॥

अब छह काल के जीवों की आयु का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—उन छह कालों के आदि और अन्त में आयु का प्रमाण क्रम से तीन पल्य और दो पल्य, दो पल्य एवं १ पल्य, एक पल्य एवं पूर्वकोटि, पूर्व कोटि एवं १२० वर्ष, १२० वर्ष एवं २० वर्ष तथा २० वर्ष एवं १५ वर्ष प्रमाण है ॥ ७८२ ॥

विशेषार्थ :—उन छह कालों में से प्रथम काल की आदि में जीवों की आयु का प्रमाण तीन पल्योपम और अन्त में दो पल्योपम प्रमाण है। दूसरे काल के प्रारम्भ में दो पल्योपम और अन्त में एक पल्योपम प्रमाण है। तीसरे काल के प्रारम्भ में आयु का प्रमाण एक पल्योपम और अन्त में

पूर्वकोटि प्रमाण है। चतुर्थ काल के आदि में पूर्वकोटि और अन्त में १२० वर्ष प्रमाण है। पञ्चम काल की आदि में १२० वर्ष और अन्त में २० वर्ष प्रमाण है, तथा छठे काल की आदि में २० वर्ष और अन्त में १५ वर्ष प्रमाण है।

तथा मनुष्योत्सेधमाह—

तिदुगेक्कोसमुदयं पणसयचावं तु सत्त रदणी य।
दुगमेक्कं च य रदणी छक्कालादिम्हि अंतम्हि ॥ ७८३ ॥

त्रिद्विकैककोशमुदयः पञ्चशतचापं तु सप्तरत्नयः च।
द्विकमेकं च रत्निः षट्कालादौ अन्ते ॥ ७८३ ॥

तिदु। प्रथमकालस्यादौ त्रिकोशमुदयः तस्यान्ते द्विकोशमुदयः स एव द्वितीयकालस्यादौ तस्यान्ते एककोशमुदयः स एव तृतीयकालस्यादौ तस्यान्ते पञ्चशत ५०० चापोत्सेधः स एव चतुर्थकालस्यादौ तस्यान्ते सप्तरत्न्युत्सेधः स एव पञ्चमकालस्यादौ तस्यान्ते द्विरत्न्युदयः स एव षष्ठकालस्यादौ तस्यान्ते एकरत्न्युत्सेधः। एवं षट्कालानामादौ अन्ते च मर्त्यानामुत्सेधो ज्ञातव्यः ॥ ७८३ ॥

वैसे ही मनुष्यों की ऊँचाई का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—उन्हीं छह कालों के आदि और अन्त में मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई क्रम से तीन कोश और दो कोश, दो कोश और एक कोश, एक कोश और ५०० धनुष, ५०० धनुष और ७ हाथ, ७ हाथ और दो हाथ तथा दो हाथ और एक हाथ प्रमाण है ॥ ७८३ ॥

विशेषार्थ :—प्रथम काल के आदि में मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई तीन कोश और अन्त में दो कोश प्रमाण है। दूसरे काल के आदि में दो कोश और अन्त में एक कोश प्रमाण है। तीसरे काल के आदि में एक कोश और अन्त में ५०० धनुष प्रमाण है। चौथे काल के आदि में ५०० धनुष और अन्त में ७ हाथ प्रमाण है। पञ्चम काल के आदि में ७ हाथ और अन्त में दो हाथ प्रमाण है तथा छठे काल के आदि में दो हाथ और अन्त में एक हाथ प्रमाण है।

अथ षट्कालवर्तिनां मर्त्यानां वर्णक्रमं निरूपयति—

उदयरवी पुण्णिंदू पियंगुसामा य पंचवण्णा य।
लुक्खसरीरावण्णो धूमसियामा य छक्काले ॥ ७८४ ॥

उदयरवयः पूर्णेन्दवः प्रियंगुश्यामाश्च पञ्चवर्णाश्च।
रूक्षशरीरावर्णाः धूमश्यामाः च षट्काले ॥ ७८४ ॥

उदय। प्रथमकाले नराः उदयरविवर्णाः द्वितीयकाले पूर्णेन्दुवर्णाः, तृतीयकाले प्रियंगुवर्णाः

हरितश्यामवर्णाः, चतुर्थकाले पञ्चवर्णाः, पञ्चमकाले कान्तिहीनमिश्रपञ्चवर्णाः षष्ठे काले धूमश्यामवर्णाश्च। एवं षट्काले वर्णक्रमो ज्ञातव्यः ॥ ७८४ ॥

अब छह कालवर्ती मनुष्यों के वर्णक्रम का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—छहों कालवर्ती मनुष्यों के शरीर का वर्ण क्रम से उदित होते हुए सूर्य के सदृश, सम्पूर्ण चन्द्र सदृश, हरित-श्याम सदृश, पाँचों वर्णों के सदृश कान्ति हीन पाँचों वर्णों के सदृश और अन्तिम काल में धूम सदृश श्याम वर्ण का होता है ॥ ७८४ ॥

विशेषार्थ :—प्रथम कालवर्ती मनुष्यों के शरीर का वर्ण उदित होते हुए सूर्य के सदृश, द्वितीय कालवर्ती मनुष्यों के शरीर का वर्ण पूर्ण चन्द्र सदृश, तृतीय कालवर्ती मनुष्यों के शरीर का वर्ण प्रियंगु-हरित श्याम वर्ण सदृश, चतुर्थ कालवर्ती मनुष्यों के शरीर का वर्ण पाँचों वर्णों सदृश, पञ्चम कालवर्ती मनुष्यों के शरीर का वर्ण कान्ति हीन पाँचों वर्णों सदृश और षष्ठ कालवर्ती मनुष्यों के शरीर का वर्ण धूम सदृश श्याम होता है।

अथ तेषामाहारक्रमं निरूपयति—

अट्ठमछट्ठचउत्थेणाहारो पडिदिणेण पायेण।
अतिपायेण य कमसो छक्कालणरा हवंतित्ति ॥७८५॥

अष्टमषष्ठचतुर्थेनाहारः प्रतिदिनेन प्राचुर्येण।
अतिप्राचुर्येण च क्रमशः षट्कालनरा भवन्तीति ॥ ७८५ ॥

अट्ठ। प्रथमकाले अष्टमवेलायां त्रिदिनान्यन्तरित्वा इत्यर्थः, द्वितीयकाले षष्ठवेलायां दिनद्वयमन्तरित्वेत्यर्थः, तृतीयकाले चतुर्थवेलायां एकदिनमन्तरित्वेत्यर्थः, चतुर्थकाले प्रतिदिनमेकवारं, पञ्चमकाले बहुवारं, षष्ठकालेऽतिप्रचुरवृत्त्या। एवं षट्काले नराणामाहारक्रमो भवति ॥ ७८५ ॥

उनके आहार क्रम का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—छह काल के मनुष्य क्रम से अष्टमवेला अर्थात् तीन दिन के बाद, षष्ठ बेला अर्थात् दो दिन के बाद, चतुर्थ बेला अर्थात् एक दिन बाद, प्रतिदिन, प्रचुरता से और अतिप्रचुरता से भोजन करते हैं ॥ ७८५ ॥

विशेषार्थ :—प्रथमकालवर्ती मनुष्य तीन दिन के बाद, द्वितीय कालवर्ती दो दिन के बाद, तृतीय कालवर्ती एक दिन के बाद, चतुर्थ कालवर्ती प्रतिदिन अर्थात् दिन में एक बार, पञ्चम कालवर्ती बहुत बार और षष्ठ कालवर्ती मनुष्य अति प्रचुर वृत्ति से अर्थात् बारम्बार आहार करते हैं।

छह कालों के नाम, काल का प्रमाण, मनुष्यों की आयु, उत्सेध, शरीर का वर्ण और आहार आदि का संक्षिप्त वर्णन :—

क्रम	कालों के नाम	स्थिति प्रमाण	मनुष्यों की आयु	शरीर का उत्सेध	वर्ण	आहार
१	सुषमासुषमा	४ कोड़ा०सागर	३ पल्य–२ पल्य	तीन कोश-दो कोश	उदित सूर्य के सदृश	तीन दिन बाद
२	सुषमा	३ कोड़ा० "	२ पल्य–१ पल्य	दो कोश–१ कोश	पूर्ण चन्द्र सदृश	दो " "
३	सुषमा-दुषमा	२ " "	१ पल्य–पूर्वकोटि	१कोश-५०० धनुष	प्रियंगु "	एक " "
४	दुःषमा-सुषमा	४२००० वर्ष कम १ को०सा.	१ पूर्वकोटि–१२० वर्ष	५०० धनुष-७ हाथ	पाँचों वर्ण "	प्रतिदिन एक बार
५	दुःषमा	२१००० वर्ष	१२० वर्ष–२० वर्ष	७ हस्त-दो हस्त	कान्ति हीन-पाँचों वर्ण "	बहुत बार
६	दुःषमादुःषमा	२१००० "	२० वर्ष–१५ वर्ष	दो हस्त–१ हस्त	धूम वर्ण "	बारम्बार

अथ भोगभूमिजानामाहारप्रमाणं निवेदयति—

बदरक्खामलयप्पमकप्पदुमदिण्णदिव्वआहारा ।
वरपहुदितिभोगभुमा मंदकसाया विणीहारा ॥ ७८६ ॥

बदराक्षामलकप्रमकल्पद्रुमदत्तदिव्याहाराः ।
वरप्रभृतित्रिभोगभूमानः मन्दकषाया विनीहाराः ॥७८६॥

वर । उत्कृष्टादित्रिविधभोगभूमिजाः क्रमेण बदराक्षामलकप्रमाणकल्पद्रुमदत्तदिव्याहाराः मन्दकषाया विनीहारा भवन्ति ॥ ७८६ ॥

भोग भूमिज मनुष्यों के आहार का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—कल्प वृक्षों द्वारा प्रदत्त उत्कृष्टादि तीनों भोग भूमिज मनुष्य क्रमशः बदरी फल, अक्ष फल और आँवला प्रमाण दिव्य आहार करते हैं। ये सभी जीव मन्द कषायी और निहार से रहित होते हैं ॥ ७८६ ॥

विशेषार्थ :—उत्तम भोग भूमिज मनुष्य बदरी (बेर) फल के बराबर, मध्यम भोगभूमिज मनुष्य, अक्ष (बहेड़ा) फल के बराबर और जघन्य भोगभूमिज मनुष्य आँवले के बराबर कल्पवृक्षों द्वारा प्रदत्त दिव्य आहार करते हैं। ये सभी जीव मन्द कषायी तथा निहार अर्थात् मलमूत्र से रहित होते हैं।

अथ तत्कल्पतरूणां प्रमाणमाह —

तूरंगपत्तभूसणपाणाहारंगपुप्फजोइतरू ।
गेहंगा वत्थंगा दीवंगेहिं दुमा दसहा ॥ ७८७ ॥

तूर्याङ्गपात्रभूषणपानाहाराङ्गपुष्पज्योतिस्तरवः ।
गेहाङ्गा वस्त्राङ्गा दीपाङ्गैः द्रुमा दशधा ॥ ७८७ ॥

तूरंग । तूर्याङ्गपात्राङ्गभूषणाङ्गपानाङ्गाहाराङ्गपुष्पांगज्योतिरंगगृहांगवस्त्रांगदीपांगैः कल्पद्रुमा दशधा भवन्ति ॥ ७८७ ॥

भोगभूमिज कल्पवृक्षों का प्रमाण कहते हैं—

गाथार्थ :—तूर्याङ्ग, पात्राङ्ग, भूषणांग, पानांग, आहाराङ्ग, पुष्पांग, ज्योतिरंग, गृहांग, वस्त्रांग और दीपांग ये दस प्रकार के कल्पवृक्ष तीनों भोगभूमियों में होते हैं ॥ ७८७ ॥

अथ भोगभूमेः स्वरूपमाह—

दप्पणसम मणिभूमी चउरंगुलसुरसगंधमउगतणा ।
खीरुच्छुतोयमहुघदपरीदवावीदहाइण्णा ॥ ७८८ ॥

दर्पणसमा मणिभूमिः चतुरङ्गुलसुरसगन्धमृदुतृणा ।
क्षीरेक्षुतोयमधुघृतपरीतवापीह्रदाकीर्णा ॥ ७८८ ॥

दप्पण । क्षीरेक्षुरसतोयमधुघृतपूरितवापीह्रदाकीर्णा चतुरंगुलसुरसगन्धमृदुकतृणा दर्पणसमा मणिमयभोगभूमिर्ज्ञातव्या ॥ ७८८ ॥

भोगभूमि का स्वरूप—

गाथार्थ :—भोगभूमि दर्पण सदृश, मणिमय, चार अंगुल ऊँची, उत्तम रस गन्ध वाली कोमल घास युक्त तथा दूध, इक्षुरस, जल, मधु और घृत से भरी हुई वापियों एवं ह्रदों से व्याप्त होती है ॥ ७८८ ॥

अथ भोगभूमिजानामुत्पत्त्यवसानान्तविधानं गाथात्रयेणाह—

जादजुगलेसु दिवसा सगसग अंगुट्ठलेहरंगिदए ।
अथिरथिरगदि कलागुणजोवणदंसणगहे जांति ॥७८९॥

जातयुगलेषु दिवसा सप्तसप्त अंगुष्ठलेहे रङ्गिते ।
अस्थिरस्थिरगत्योः कलागुणयौवनदर्शनग्रहे यान्ति ॥७८९॥

जाद । जातयुगलेषु अंगुष्ठलेहे उत्तानपरिवर्तने अस्थिरगतौ स्थिरगतौ कलागुणग्रहणे यौवनग्रहणे दर्शनग्रहणे च प्रत्येकं सप्त सप्त दिवसा यान्ति ॥ ७८९ ॥

भोगभूमिजों की उत्पत्ति से मरण पर्यन्त के विधान को तीन गाथाओं में कहते हैं—

गाथार्थ :—युगलिया उत्पन्न होने वाले भोगभूमिज क्रमशः सात सात दिन तक अंगुष्ठ चूसते हैं, औंधे सीधे होते हैं अर्थात् रेंगते हैं, अस्थिरगति से चलते हैं, स्थिरगति से चलते हैं, कलागुणों से सम्पन्न होते हैं, यौवन प्राप्त करते हैं और परस्पर दर्शन करते हैं अर्थात् स्त्री पुरुष रूप में एक दूसरे को देखते हैं ॥ ७८९ ॥

विशेषार्थ :—भोगभूमि में स्त्रीपुरुष युगल उत्पन्न होते हैं। उत्पत्ति दिन से सात दिन तक वे अपना अंगुष्ठ चूसते हैं, सात दिन तक औंधे होते हैं अथवा औंधे औंधे रेंगने लगते हैं, तीसरे सप्ताह में अस्थिरगति से और चौथे सप्ताह में स्थिरगति से चलते हैं। पाँचवें सप्ताह में सम्पूर्ण कलाओं एवं गुणों से युक्त हो जाते हैं। छठे सप्ताह में सम्पूर्ण यौवन युक्त हो जाते हैं और सातवें सप्ताह में एक दूसरे को स्त्री पुरुष रूप से देखने लगते हैं।

> तद्दंपदीणमादिमसंहदिसंठाणमज्जणामजुदा ।
> सुलहेसुवि णो तित्ती तेसिं पंचक्खविसएसु ॥७९०॥
>
> तद्दंपतीनामादिमसंहृतिसंस्थानं आर्यनामयुताः ।
> सुलभेषु अपि नो तृप्तिः तेषां पञ्चाक्षविषयेषु ॥ ७९० ॥

तद्दंप । तद्दम्पतीनामादिमसंहननसंस्थाने स्यातां वज्रवृषभनाराचसंहननसमचतुरस्रसंस्थाने इत्यर्थः। ते चार्यनामयुताः, तेषां सुलभेष्वपि पञ्चाक्षविषयेषु न तृप्तिः ॥ ७९० ॥

गाथार्थ :—वे दम्पत्ति, आदि संहनन, आदि संस्थान एवं आर्य नाम से सहित होते हैं। पञ्चेन्द्रियों के विषय अति सुलभ होने पर भी वे कभी तृप्ति को प्राप्त नहीं होते ॥ ७९० ॥

विशेषार्थ :—भोगभूमिज प्रत्येक युगल दम्पति अर्थात् स्त्री पुरुष दोनों के प्रथम (वज्रवृषभनाराच) संहनन और प्रथम (समचतुरस्र) संस्थान होता है। वे 'आर्य' नाम से युक्त होते हैं। अर्थात् स्त्री, पुरुष को 'आर्य' और पुरुष, स्त्री को आर्या नाम से सम्बोधन करते हैं। पञ्चेन्द्रियों के विषय अति सुलभ होते हुए भी वे कभी तृप्ति अर्थात् सन्तोष को प्राप्त नहीं होते।

> चरमे खुदजंभवसा णरणारि विलीय सरदमेघं वा ।
> भवणतिगामी मिच्छा सोहम्मदुजाइणो सम्मा ॥ ७९१ ॥
>
> चरमे क्षुतजृम्भवशात् नरनार्यौ विलीय शरन्मेघं वा ।
> भवनत्रिगामिनः मिथ्याः सौधर्मद्वियायिनः सम्यञ्चः ॥ ७९१ ॥

चरमे । आयुष्यावसाने क्षुतजृम्भयोर्वशात्पञ्चात्संख्यं नरनार्यः शरत्कालमेघवद्विलीय तत्र मिथ्यादृष्टयो भवनत्रयगामिनः सम्यग्दृष्टयः सौधर्मद्विकयायिनः स्युः ॥ ७९१ ॥

गाथार्थ :—आयु के अन्त में पुरुष और स्त्री क्रमशः छींक और जम्भाई के द्वारा मरण को प्राप्त होते हैं। मृत्यु के बाद उनके शरीर शरद् ऋतु के मेघ के समान विलीन हो जाते हैं। इनमें मिथ्यादृष्टि जीव भवनत्रिक में और सम्यग्दृष्टि जीव सौधर्मेशान स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं ॥ ७९१ ॥

अथ कर्मभूमिप्रवेशक्रमं तत्रस्थमनूनां च स्वरूपं गाथात्रयेण प्रतिपादयति—

पल्लट्ठमं तु सिट्ठे तदिए कुलकरणरा पडिस्सुदिओ ।
सम्मदिखेमंकरधर सीमंकरधर विमलादिवाहणवो ॥ ७९२ ॥

चक्खुम्मजसस्सी अहिचंदो चंदाहओ मरुदेओ ।
होदि पसेणजिदंको णाभी तण्णंदणो वसहो ॥ ७९३ ॥

वरदाणदो विदेहे बद्धणराउग खइयसंदिट्ठि ।
इह खत्तियकुलजादा केइजाइंभरा ओही ॥ ७९४ ॥

पल्याष्टमे तु शिष्टे तृतीये कुलकरनराः प्रतिश्रुतिः ।
सम्मतिः क्षेमङ्करधरः सीमङ्करधरः विमलादिवाहनः ॥७९२॥
चक्षुष्मान् यशस्वी अभिचन्द्रः चन्द्राभः मरुद्देवः ।
भवति प्रसेनजिताङ्कः नाभिस्तन्नन्दनो वृषभः ॥ ७९३ ॥
वरदानतो विदेहे बद्धनरायुषः क्षायिकसंदृष्टयः ।
इह क्षत्रियकुलजाताः केचिज्जातिस्मरा अवधयः ॥ ७९४ ॥

पल्ल । तृतीयकाले पल्याष्टमभागेऽवशिष्टे कुलकराः नराः उत्पद्यन्ते । ते के । प्रतिश्रुतिः सन्मतिः क्षेमङ्करः क्षेमन्धरः सीमङ्करः सीमन्धरः विमलवाहनः ॥ ७९२ ॥

चक्खु । चक्षुष्मान् यशस्वी अभिचन्द्रश्चन्द्राभः मरुद्देवः प्रसेनजित् नाभिः तन्नन्दनो वृषभो भवति ॥ ७९३ ॥

वर । सत्पात्रदानवशाद्विदेहे बद्धनरायुषः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः 'भाविनि भूतवदुपचार' इति न्यायेनेह क्षत्रियकुले जाताः केचिज्जातिस्मराः केचिदवधिज्ञानिनः ॥ ७९४ ॥

अब तीन गाथाओं द्वारा कर्मभूमि के प्रवेश का क्रम और वहाँ स्थित कुलकरों के स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं—

गाथार्थ :—तृतीयकाल में पल्य का आठवाँ भाग अवशिष्ट रहने पर प्रतिश्रुति, सन्मति, क्षेमङ्कर, क्षेमन्धर, सीमङ्कर, सीमन्धर, विमलवाहन, चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचन्द्र, चन्द्राभ, मरुदेव, प्रसेनजित्, नाभिराय और उनके पुत्र वृषभदेव ये कुलकर मनुष्य उत्पन्न हुए हैं।

विदेह में सत्पात्रदान के फल से जिन्होंने मनुष्यायु का बंध करने के बाद क्षायिक सम्यक्त्व

प्राप्त किया है। अर्थात् क्षायिक सम्यग्दृष्टि हुए हैं, वे यहाँ क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होते हैं। उनमें से कोई तो जातिस्मरण से और कोई अवधिज्ञान से संयुक्त होते हैं ॥ ७९२, ७९३, ७९४ ॥

विशेषार्थ :—इस अवसर्पिणी काल के तृतीयकाल (सुषमादुःषमा) में जब मात्र पल्य का आठवाँ भाग अवशेष रहा तब कुलकर उत्पन्न हुए। वे कौन हैं ? १ प्रतिश्रुति, २ सन्मति, ३ क्षेमङ्कर, ४ क्षेमन्धर, ५ सीमंकर, ६ सीमन्धर, ७ विमलवाहन, ८ चक्षुष्मान्, ९ यशस्वी, १० अभिचन्द्र, ११ चन्द्राभ, १२ मरुद्देव, १३ प्रसेनजित् और १४ नाभिराय ये चौदह कुलकर मनुष्य उत्पन्न हुए हैं तथा नाभिराय कुलकर के पुत्र वृषभदेव प्रथम तीर्थंकर हुए हैं। ये सभी कुलकर विदेह में सत्पात्र दान से मनुष्यायु बांध कर पीछे क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो यहाँ क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होते हैं। यद्यपि इनकी उत्पत्ति के समय कुलादि की प्रवृत्ति प्रारम्भ नहीं हुई थी किन्तु 'भाविनि भूतवदुपचारः' इस न्याय के अनुसार भविष्य में भूत सदृश उपचार कर क्षत्रिय कुल में उत्पत्ति कही गई है। इन कुलकरों में कोई तो जातिस्मरण और कोई अवधिज्ञान सहित थे।

अथ कुलकराणां शरीरोत्सेधमाह—

> अट्ठारस तेरस अट्ठसदाणि पणुवीसहीणयाणि तदो ।
> चावाणि कुलयराणं सरीरतुंगत्तणं कमसो ॥ ७९५ ॥
>
> अष्टादश त्रयोदश अष्टशतानि पञ्चविंशतिहीनानि ततः ।
> चापानि कुलकराणां शरीरतुङ्गत्वं क्रमशः ॥ ७९५ ॥

अट्ठारस । अष्टादशशतानि १८०० त्रयोदशशतानि १३०० अष्टशतानि ८०० ततः परं क्रमशः पञ्चविंशतिहीनानि ७७५ । ७५० । ७२५ । ७०० । ६७५ । ६५० । ६२५ । ६०० । ५७५ । ५५० । ५२५ । ५०० एतानि सर्वाणि चापानि कुलकराणां शरीरतुङ्गत्वमिति ज्ञातव्यम् ॥ ७९५ ॥

कुलकरों के शरीर का उत्सेध कहते हैं—

गाथार्थ :—कुलकरों के शरीर की ऊँचाई क्रमशः १८०० धनुष, १३०० धनुष, ८०० धनुष और इसके बाद पच्चीस पच्चीस धनुषहीन अर्थात् ७७५, ७५०, ७२५, ७००, ६७५, ६५०, ६२५, ६००, ५७५, ५५०, ५२५ और ५०० धनुष प्रमाण थी ॥ ७९५ ॥

तेषामायुष्यं कथयति—

> आऊ पल्लदसंसो पढमे सेसेसु दसहि भजिदकमं ।
> चरिमे दु पुव्वकोडी जोगे किंचूण तण्णवमं ॥ ७९६ ॥
>
> आयुः पल्यदशांशः प्रथमे शेषेषु दशभिः भक्तक्रमः ।
> चरमे तु पूर्वकोटिः योगे किञ्चिदून तन्नवमं ॥ ७९६ ॥

अत्र । प्रथमकुलकरे आयुः पल्यदशमांशः प $\frac{१}{१०}$ शेषेषु दशभिर्भक्तक्रमः $\frac{१}{१००}$ प, $\frac{१}{१०००}$ प, $\frac{१}{१००००}$ प, $\frac{१}{१०००००}$ प । $\frac{\text{प १}}{\text{ल १}}$ । $\frac{\text{प १}}{\text{१० ल}}$ । $\frac{\text{प १}}{\text{१ को}}$ । $\frac{\text{प १}}{\text{१० को}}$ । $\frac{\text{प १}}{\text{१०० को}}$ । $\frac{\text{प १}}{\text{१००० को}}$ । $\frac{\text{प १}}{\text{१०००० को}}$ । $\frac{\text{प १}}{\text{१ ल० को}}$ । $\frac{\text{प १}}{\text{१० ल० को}}$ चरमे तु पूर्वकोटिः । एतेषां पूर्वकोटिव्यतिरिक्तानां समानच्छेदेन मेलने प $\frac{\text{११११११११११११११}}{\text{१०००००००००००००००}}$ पुनरपवर्तनार्थमत्रैकैकं तावद्धरणं पल्य $\frac{\text{१}}{\text{१०००००००००००००००}}$ समच्छेदेन — प $\frac{\text{९९९९९९९९९९९९९९}}{\text{९०००००००००००००००}}$ प्रक्षिप्य प $\frac{\text{१०००००००००००००००}}{\text{९०००००००००००००००}}$ अपवर्त्य प $\frac{१}{९}$ प्राक् प्रक्षिप्तऋणे निष्कासिते प $\frac{\text{१}}{\text{९०००००००००००००००}}$ तत्किञ्चिन्न्यूनपल्यनवमांशः स्यात् । एतदेव करणसूत्रेण साधयति अन्तधनं प $\frac{१}{१०}$ गुण १० गुणितं प $\frac{१०}{१०}$ आदि प $\frac{\text{१}}{\text{१०००००००००००००००}}$ समच्छेदेन प— $\frac{\text{१००००००००००००००००}}{\text{१००००००००००००००००}}$ विहीनं प $\frac{\text{९९९९९९९९९९९९९९९}}{\text{१००००००००००००००००}}$ एकोनगुणकार ९ भजितं प $\frac{\text{९९९९९९९९९९९९९९९}}{\text{९००००००००००००००००}}$ अत्रैकं तावद्धरणं प $\frac{\text{१}}{\text{९००००००००००००००००}}$ प्रक्षेप्य प $\frac{\text{१००००००००००००००००}}{\text{९००००००००००००००००}}$ अपवर्त्य प $\frac{१}{९}$ अत्र प्राक् प्रक्षिप्तं ऋणं न्यूनं कर्तव्यं प $\frac{१}{९}$ । अस्य प्रकारस्य संदृष्टिः दर्शयति—अभिन्नराशि $\frac{४०}{४}$ छेदावहरण $\frac{२०}{२}$ अपनीय $\frac{२०}{४}$ भक्ते यल्लब्धमुपलभ्यते १० तस्मिन्नेव राशौ $\frac{४०}{४}$ हार ४ मधिकं कृत्वा $\frac{४०}{८}$ भक्तेऽपि तावदेव लब्धं स्यात् १० । अधिकप्रमाणं कथं जायत इतिचेत्, ऋणे २० लब्धेन १० भक्ते सति २ हाराधिकप्रमाणमागच्छति; किं च, ऋणे अज्ञाते अधिकाङ्केन २ लब्धे गुणिते ऋणप्रमाण २० मागच्छति ॥ ७९९ ॥

अब उनकी (कुलकरों की) आयु कहते हैं :—

गाथार्थ :—प्रथम कुलकर की आयु पल्य के दशवें भाग प्रमाण थी तथा शेष कुलकरों की दश से भाजित अर्थात् पूर्व पूर्व कुलकरों की आयु को दश से भाजित करने पर अपर अपर कुलकरों की आयु का प्रमाण प्राप्त होता है । अन्तिम कुलकर की आयु पूर्वकोटि प्रमाण थी । (इसके बिना) सम्पूर्ण आयु का योग करने पर कुछ कम पल्य का नवमां भाग प्राप्त होता है ॥ ७९९ ॥

विशेषार्थ :—प्रथम कुलकर की आयु पल्य के दशवें भाग अर्थात् $\frac{१}{१०}$ पल्य प्रमाण थी तथा शेष १२ कुलकरों की आयु क्रमशः उत्तरोत्तर दश से भाजित अर्थात् $\frac{१}{१००}$ पल्य, $\frac{१}{१०००}$ पल्य, $\frac{१}{१००००}$ पल्य, $\frac{१}{१०००००}$ पल्य, $\frac{१}{१००००००}$ प०, $\frac{१}{१०००००००}$ प०, $\frac{१}{१००००००००}$ प०, $\frac{१}{१०००००००००}$ प०, $\frac{१}{१००००००००००}$ प०, $\frac{१}{१०००००००००००}$ प०, $\frac{१}{१००००००००००००}$ प०, $\frac{१}{१०००००००००००००}$ पल्य तथा अन्तिम चौदहवें कुलकर की आयु एक पूर्व कोटि वर्ष की थी । इस पूर्व कोटि के अतिरिक्त

शेष १३ कुलकरों की आयु का जोड़ $\frac{१११११११११११११}{१००००००००००००००}$ पल्य होता है। यदि इसमें पल्य का $\frac{१}{९००००००००००००००}$ भाग मिला दिया जाय तो—($\frac{१११११११११११११}{१००००००००००००००}$ + $\frac{१}{९००००००००००००००}$ = $\frac{९९९९९९९९९९९९९+१}{९००००००००००००००}$) = $\frac{१००००००००००००००}{९००००००००००००००}$ पल्य = $\frac{१}{९}$ पल्य होता है; क्योंकि अंश और हर के १३ शून्यों का अपवर्तन हो गया है। यदि इसमें से उपर्युक्त ऋण—$\frac{१}{१००००००००००००००}$ ($\frac{१}{१० \text{ लाख करोड़}}$) को कम कर दिया जाय तो कुछ कम $\frac{१}{९}$ पल्य होता है।

इसको करण सूत्र से इस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है:—$\frac{१}{१० \text{ लाख करोड़}}$ से प्रारम्भ कर उत्तरोत्तर १० गुणा किया जाय तो अन्तिम धन $\frac{१}{१०}$ पल्य प्राप्त होता है इसको १० से गुणित करने पर $\frac{१०}{१०}$ अर्थात् १ पल्य होता है। इसमें से आदि धन $\frac{१}{१० \text{ ला० क०}}$ अर्थात् $\frac{१}{१००००००००००००००}$ पल्य को घटा देने पर $\frac{९९९९९९९९९९९९९}{१००००००००००००००}$ पल्य अवशेष रहते हैं। इसमें एक कम गुणकार अर्थात् (१० — १) = ९ का भाग देने पर ($\frac{९९९९९९९९९९९९९}{१००००००००००००००\times ९}$) = $\frac{१११११११११११११}{१००००००००००००००}$ प्राप्त होता है। इसमें पूर्वोक्त ऋण $\frac{१}{९००००००००००००००}$ मिला देने पर $\frac{१००००००००००००००}{९००००००००००००००}$ = $\frac{१}{९}$ पल्य होता है। इस $\frac{१}{९}$ पल्य में से $\frac{१}{१० \text{ लाख करो०}}$ ऋण (कम) कर देने पर कुछ कम $\frac{१}{९}$ पल्य प्राप्त होता है। इसी करण सूत्र को दृष्टान्त (अङ्कसंदृष्टि) द्वारा दिखाते हैं:—मानलो राशी $\frac{६०}{४}$ है, इसमें से ऋण राशि $\frac{२०}{४}$ घटाने पर ($\frac{६०}{४}$ — $\frac{२०}{४}$) = $\frac{४०}{४}$ अवशेष रहते हैं। ४० को ४ से भाग देने पर १० प्राप्त हुए और $\frac{६०}{४}$ के हर ४ में २ अधिक (जोड़ने) करने से ६ प्राप्त होते हैं। इस ६ से ६० को भाग देने पर १० लब्ध आता है। अधिक का प्रमाण कैसे जाना जाता है ? ऋण २० को लब्ध १० से भाग देने पर हर के अधिक का प्रमाण २ प्राप्त हो जाता है। विशेष यह है कि ऋण के अज्ञात होने पर अधिक के प्रमाण २ से लब्ध १० को गुणित करने पर ऋण का प्रमाण (१० × २) = २० प्राप्त हो जाता है।

नोट :—इस दृष्टान्त का पूर्वोक्त करण सूत्र से कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं देता। विद्वज्जन इस पर विचार करें।

अथ तेषां मनूनामन्तरकालमाह—

पल्लासीदिममंतरमादिममवसेसमेत्थ दसभजिदा।
जोगे बावत्तरिमं सयलजुदे अट्ठमं हीणं ॥ ७९७ ॥

पल्याशीतिममन्तरमादिममवशेषमत्र दशभक्तं।
योगे द्वासप्ततिः सकलयुते अष्टमो हीनः ॥ ७९७ ॥

पल्ला । पल्यस्याशीतितमभागे आदिममन्तरं $\frac{\text{प}}{\text{८०}}$ शेषान्तरं तु तदेव दशभक्तं चेद्भवति-

$\frac{\text{प १}}{\text{८००}}$ | $\frac{\text{प १}}{\text{८०००}}$ | $\frac{\text{प १}}{\text{८००००}}$ | $\frac{\text{प १}}{\text{८ ल}}$ | $\frac{\text{प १}}{\text{८० ल}}$ | $\frac{\text{प १}}{\text{८ को}}$ | $\frac{\text{प १}}{\text{८० को}}$ | $\frac{\text{प १}}{\text{८०० को}}$ | $\frac{\text{प १}}{\text{८००० को}}$ | $\frac{\text{प १}}{\text{८०००० को}}$ | $\frac{\text{प १}}{\text{८ ल० को}}$ |

$\frac{\text{प १}}{\text{८० ल० को}}$ एतेषां समच्छेदेन मेलनं कृत्वा प $\frac{\text{१११११११११११११}}{\text{८०००००००००००००००}}$ अत्र लघूकरणार्थमेतावदृणं

$\frac{\text{प १}}{\text{७२ ल० को}}$ नवभिः समच्छेदं कृत्वा $\frac{\text{प ९९९९९९९९९९९९९९}}{\text{७२००००००००००००००}}$ प्रक्षिप्य $\frac{\text{प १००००००००००००००}}{\text{७२००००००००००००००}}$ अपवर्त्य

$\frac{\text{प १}}{\text{७२}}$ प्राक्तनऋणे अपनीते $\frac{\text{प १}}{\text{७२}}$ | $\frac{\text{प १}}{\text{७२ ल० को}}$ पल्यस्य किञ्चिन्न्यूनद्वासप्ततितमांशः स्यात् प $\frac{\text{१}}{\text{७२}}$ ।

एतदेव करणसूत्रेणानयति । अंतधणं $\frac{\text{प १}}{\text{८०}}$ गुण १० गुणियं $\frac{\text{प १०}}{\text{८०}}$ आदि $\frac{\text{प १}}{\text{८ ल० को}}$ | समच्छेदेन

$\frac{\text{प १००००००००००००००}}{\text{८०००००००००००००००}}$ विहीणं $\frac{\text{प १}}{\text{८ ल० को}}$ = $\frac{\text{प ९९९९९९९९९९९९९९}}{\text{८०००००००००००००००}}$ रूऊणुत्तरभजियं-

$\frac{\text{प ९९९९९९९९९९९९९९}}{\text{७२००००००००००००००}}$ अत्रैव तावदृणं $\frac{\text{प १}}{\text{७२००००००००००००००}}$ संयोज्य $\frac{\text{प १००००००००००००००}}{\text{७२००००००००००००००}}$

अपवर्त्य $\frac{\text{प १}}{\text{७२}}$ प्राक् प्रक्षिप्तऋणे न्यूनं कृते किञ्चिन्न्यूनपल्यद्वासप्ततितमांशः स्यात् $\frac{\text{१}}{\text{७२}}$ । सर्वेषामायु-

ष्याणां $\frac{\text{प १}}{\text{९}}$ मन्तराणां च $\frac{\text{प १}}{\text{७२}}$ अष्टभिः समच्छेदं कृत्वा $\frac{\text{प ८}}{\text{७२}}$ संयोज्य $\frac{\text{प ९}}{\text{७२}}$ नवभिरपवर्तिते किञ्चिन्न्यून-

पल्याष्टमांशः स्यात् $\frac{\text{प १}}{\text{८}}$ ॥ ७९७ ॥

अब उन कुलकरों का अन्तर काल कहते हैं :—

गाथार्थ :—कुलकरों के अन्तरालों में से प्रथम अन्तर, पल्य का ८० वाँ भाग था । शेष अन्तर उत्तरोत्तर दशवें दशवें भाग प्रमाण था । इन सम्पूर्ण अन्तरालों का जोड़ $\frac{१}{७२}$ पल्य और सम्पूर्ण अन्तराल एवं आयु का जोड़ कुछ कम $\frac{१}{८}$ पल्य प्रमाण होता है ॥ ७९७ ॥

विशेषार्थ :—प्रथम अन्तर $\frac{१}{८०}$ पल्य और शेष अन्तर दश दश का भाग देने पर प्राप्त होते हैं । जैसे :— $\frac{१}{८००}$ पल्य, $\frac{१}{८०००}$, $\frac{१}{८००००}$, $\frac{१}{८०००००}$, $\frac{१}{८००००००}$, $\frac{१}{८०००००००}$, $\frac{१}{८००००००००}$, $\frac{१}{८०००००००००}$, $\frac{१}{८००००००००००}$, $\frac{१}{८०००००००००००}$, $\frac{१}{८००००००००००००००}$ और $\frac{१}{८०००००००००००००००}$ पल्य है, इनका समच्छेद करके जोड़ने पर $\frac{१११११११११११११}{८०००००००००००००००}$ पल्य प्राप्त होते हैं । इसको संक्षिप्त करने के लिए $\frac{१}{७२ ला० क०}$ ऋणराशि मिलाना है, अतः $\frac{१११११११११११११}{८०००००००००००००००}$ को $\frac{९}{९}$ से समच्छेद करने पर $\frac{९९९९९९९९९९९९९९}{७२००००००००००००००}$ पल्य प्राप्त हुए । इनमें ऋणराशि $\frac{१}{७२००००००००००००००}$ मिलाने

पर १०००००००००००००० / ७२००००००००००००००० पल्य प्राप्त होते हैं। इनमें अंश के १४ शून्यों का हर के १३ शून्यों से अपवर्तन करने पर १/७२ पल्य प्राप्त हुए। इन १/७२ पल्य में से १/७२ लाख क० ऋण घटा देने पर कुछ कम १/७२ पल्य अवशेष रहता है। इसे ही करण सूत्र द्वारा सिद्ध करते हैं :— १/८ ला० क० से प्रारम्भ कर प्रत्येक को दश दश से गुणित करते हुए अन्तधन १०/८० पल्य प्राप्त हो जाता है। गुणकार १० से गुणा करने पर १०/८० × १०/१ = १००/८० प्राप्त होता है। इसमें से आदि धन प० १/८ ला० क० घटाने के लिए समच्छेद करने पर १०००००००००००००० / ८०००००००००००००० पल्य प्राप्त होते हैं। इनमें से आदि धन प० १/८ ला० क० घटाने पर— ९९९९९९९९९९९९९ / ८०००००००००००००० पल्य अवशेष रहे। इसमें एक कम गुणकार (१० — १) = ९ का भाग देने पर ११११११११११११११ / ७२००००००००००००००० प्राप्त हुए। इसमें पूर्वोक्त ऋण प० १ / ७२०००००००००००००० मिलाने पर— १०००००००००००००० / ७२००००००००००००००० पल्य होते हैं और इनका अपवर्तन करने पर १/७२ पल्य हुए तथा प० १/७२ ला० क० ऋण को १/७२ पल्य में से कम कर देने पर कुछ कम १/७२ पल्य अवशेष रहते हैं।

इन १/७२ पल्यों में सर्व कुलकरों की आयु का प्रमाण कुछ कम १/९ पल्य जोड़ देने से (१/७२ + ८/७२) = ९/७२ पल्य से कुछ कम प्राप्त होते हैं। इन्हें ९ से अपवर्तित करने पर कुछ कम (९/७२) = १/८ पल्य हुए। अर्थात् कुछ कम पल्य का आठवाँ (कुछ कम १/८ पल्य) भाग प्राप्त होता है।

अथ मनुभिः क्रियमाणशिक्षां तेषामङ्गवर्णं चाह—

हा हामा हामाधिक्कारा पणपंच पण सियामलया ।
चक्खुम्मदुग पसेणाचंदाहो धवलसेस कणयणिहा ।। ७९८।।

हा हामा हामाधिक्काराः पञ्च पञ्च पञ्च श्यामलौ ।
चक्षुष्मद्विकं प्रसेनचन्द्राभौ धवलौ शेषाः कनकनिभाः ।।७९८।।

हा हा। प्रथमपञ्चमनवः अपराधिनो हाकारेण दण्डयन्ति, ततः परं पञ्च मनवः हामाकारेण दण्डयन्ति, तदुपरिमपञ्चमनवः हामाधिक्कारेण दण्डयन्ति। चक्षुष्मान् यशस्वीति द्वौ श्यामलौ प्रसेन-चन्द्राभौ धवलौ, शेषाः सर्वे कनकनिभाः ॥ ७९८ ॥

आगे कुलकरों के द्वारा किया हुआ दण्ड विधान (शिक्षा) एवं उनके शरीर का वर्ण कहते हैं :—

गाथार्थ :—आदि के पाँच कुलकर अपराधी पुरुषों को 'हा', आगे के अन्य पाँच कुलकर 'हा–मा' तथा अवशेष अन्तिम पाँच कुलकर 'हा–मा–धिक्' इस प्रकार दण्ड देते थे। चक्षुष्मान् और

यशस्वी ये दो कुलकर श्यामवर्ण, प्रसेनजित् और चन्द्राभ ये दो धवल वर्ण तथा अवशेष सभी कुलकर स्वर्ण सदृश वर्ण के धारक थे ॥ ७९८ ॥

विशेषार्थ :—आदि के पाँच कुलकर अपराधियों के लिए 'हा' अर्थात् हाय यह बुरा किया मात्र इतना ही दण्ड देते थे। आगे के अन्य पाँच कुलकर 'हा-मा' अर्थात् हाय बुरा किया अब नहीं करना; इतना दण्ड देते थे तथा अवशेष अन्तिम पाँच कुलकर 'हा-मा-धिक्' अर्थात् हाय! मत करो तुम्हें धिक्कार है, इस प्रकार का दण्ड देते थे।

नोट :—वृषभनाथ तीर्थङ्कर को भी कुलकर माना गया है, इसीलिए उपर्युक्त गाथा में १५ कुलकर कहे गये हैं।

चक्षुष्मान् और यशस्वी ये दो कुलकर श्यामवर्ण, प्रसेनजित् और चन्द्राभ ये दो धवलवर्ण तथा शेष कुलकर स्वर्ण सदृश वर्ण के धारक थे।

अथ तत्तत्काले तैः क्रियमाणकृत्यं गाथाचतुष्टयेनाह—

इणससितारासावदविभयं दंडादिसीमचिण्हकदि ।
तुरगादिवाहणं सिसुमुहदंसणणिब्भयं वेंति ॥ ७९९ ॥
आसीवादादिं ससिपहुदिहि केलिं च कदिचिदिणओचि ।
पुत्तेहिं चिरंजीवण सेदुवहिचादि तरणविहिं ॥ ८०० ॥
सिक्खंति जराउछिदिं णाभिविणासिंदचावतडिदादिं ।
चरिमो फलअकदोसहिभुत्तिं कम्मावणी तत्तो ॥ ८०१ ॥

इनशशितारादश्वापदविभयं दण्डादिसीमचिह्नकृतिं ।
तुरगादिवाहनं शिशुमुखदर्शननिर्भयं ब्रुवन्ति ॥ ७९९ ॥
आशीर्वादादि शशिप्रभृतिभिः केलिं च कतिचिद्दिनातम् ।
पुत्रैः चिरं जीवनं सेतुवहित्रादिभिः तरणविधिं ॥ ८०० ॥
शिक्षयति जरायुच्छिदिं नाभिविनाशं इन्द्रचापतडिदादि ।
चरमः फलाकृतौषधिभुक्तिं कर्मावनिस्ततः ॥ ८०१ ॥

इण। प्रथमो मनुः प्रजानामिनशशिदर्शनाज्जातभयं निवारयति, द्वितीयस्तारादर्शनभयं, तृतीयः क्रूरमृगादृभयं तर्जनेन, चतुर्थस्तावद्भयं पुनर्दण्डादिना निवारयति, पञ्चमोल्पफलदायिनो कल्पवृक्षे झकटं दृष्ट्वा सीमां करोति तथापि झकटे जाते षष्ठः सीमाचिह्नं करोति, सप्तमो गमने तुरगादिवाहनं करोति अष्टमः शिशुमुखदर्शनान्निर्भयं ब्रवीति ॥ ७९९ ॥

आसी। नवमः शिशूनामाशीर्वादादिकं शिक्षयति, दशमः कतिचिद्दिनपर्यन्तं शशिप्रभृतिभिः

केलिं च शिक्षयति, एकादशः पुत्रैश्चिरजीवनभयं निवारयति, द्वादशः सेतुबहित्राभिस्तरणविधिं शिक्षयति ॥ ८०० ॥

सिक्थं । त्रयोदशो जरायुच्छित्तिं शिक्षयति, चरमो नाभिच्छित्तिं शिक्षयति, इन्द्रचापतडिदादिदर्शन-भयं निवारयति फलाकृत्यौषधिभुक्तिं च शिक्षयति, ततः परं कर्मभूमिर्वर्तते ॥ ८०१ ॥

अब कुलकरों के काल में उनके द्वारा किए हुए कार्यों का वर्णन चार गाथाओं द्वारा करते हैं :—

गाथार्थ :—प्रथमादि चौदह कुलकरों ने क्रमशः सूर्य चन्द्र से, तारागणों से एवं श्वापद आदि से उत्पन्न भय का निवारण, उनका दण्डादि से तर्जन, कल्पवृक्षों की सीमा का निर्धारण, सीमा की चिह्नाकृति, घोड़े आदि की सवारी, सन्तान के मुख दर्शन से उत्पन्न भय का निवारण, आशीर्वादादि वचनों की प्रवृत्ति, सन्तान के समक्ष कुछ काल तक जीवित रहने वाले माता पिता को चन्द्रमा आदि दिखा कर बच्चों को क्रीड़ा आदि कराने की कला का शिक्षण, सन्तान के समक्ष बहुत काल तक जीवित रहने से उत्पन्न होने वाले भय का निवारण, पुल, नाव आदि द्वारा नदी आदि पार करने का विधान, जरायु छेदन, नाभिछेदन, इन्द्र धनुष दिखने एवं बिजली आदि चमकने से उत्पन्न होने वाले भय का निवारण तथा फलों की आकृति में यह औषध है, यह भोजन योग्य है इत्यादि का निर्धारण किया था। यहीं से कर्मभूमि का प्रारम्भ हुआ था ॥ ७९९, ८००, ८०१ ॥

विशेषार्थ :—प्रथम प्रतिश्रुति नामक कुलकर ने पूर्व में कभी नहीं देखे गए ऐसे सूर्य चन्द्र को देख कर भयभीत हुए प्रजाजन के भय का निवारण किया था। (२) सन्मति कुलकर ने ताराओं को देखने से उत्पन्न हुए भय का निवारण किया था। (३) क्षेमङ्कर कुलकर ने क्रूर श्वापद आदि के शब्दों को सुनकर उत्पन्न हुए भय का निवारण किया था। (४) क्षेमन्धर कुलकर ने अत्यन्त क्रूरता को धारण करने वाले पशुओं को लाठी (दण्ड) आदि से तर्जन करना सिखाया था। (५) सीमङ्कर कुलकर के समय में कल्प वृक्ष विरल रह गए थे और फल भी अल्प देने लगे थे इसलिए लोगों को आपस में झगड़ते देख कर इन्होंने उन कल्पवृक्षों की सीमा (मात्र वचन से) का विधान बना दिया था। (६) सीमन्धर कुलकर ने कल्पवृक्षों की उपर्युक्त सीमा को झाड़ी आदि चिह्नों से चिह्नित किया था। (७) विमलवाहन कुलकर ने घोड़े आदि की सवारी का विधान बताया था। (८) चक्षुष्मान् कुलकर के समय में संतानोत्पत्ति के क्षणभर बाद माता-पिता का मरण होने लगा था अतः सन्तान का मुख देखने से जो भय उत्पन्न हुआ था, उसे चक्षुष्मान् ने दूर किया। (९) यशस्वी कुलकर के समय में माता पिता कुछ अधिक समय तक जीवित रहने लगे अतः इन्होंने सन्तान को आशीर्वाद आदि देने की शिक्षा दी थी। (१०) अभिचन्द्र कुलकर ने सन्तानोत्पत्ति के बाद कुछ दिनों तक जीवित रहने वाले माता पिता को चन्द्रमा आदि दिखा कर बालकों को क्रीड़ा कराने की शिक्षा

दी थी। (११) चन्द्राभ कुलकर ने सन्तानोत्पत्ति के बाद बहुत काल तक जीवित रहने से जो भय उत्पन्न हुआ था, उसका निवारण किया था। (१२) मरुद्देव ने नदी आदि को पार करने के लिए नाव एवं पुल आदि बनाने की तथा पर्वतादि पर चढ़ने के लिए सीढ़ी आदि की शिक्षा दी थी। (१३) प्रसेनजित् ने जरायु पटल के छेदने का उपाय निर्दिष्ट किया था। (१४) अन्तिम कुलकर नाभिराय ने नाभिनाल छेदने का उपाय बताया था, तथा इन्द्र धनुष के देखने और बिजली आदि चमकने से उत्पन्न हुए भय का निवारण किया था। फलाकृति में कौन फल औषधि रूप हैं और कौन भोजन योग्य हैं, यह भी सिखाया था। यहीं से ही कर्मभूमि की रचना प्रारम्भ हुई थी।

> पुरगामपट्टणादी लोहियसत्थं च लोयववहारो।
> धम्मो वि दयामूलो विणिम्मियो आदिबम्हेण ॥८०२॥
>
> पुरग्रामपट्टनादिः लौकिकशास्त्रं च लोकव्यवहारः।
> धर्मोऽपि दयामूलः विनिर्मितः आदिब्रह्मणा ॥ ८०२ ॥

पुर। पुरग्रामपत्तनादिर्लौकिकशास्त्रं च लोकव्यवहारो दयामूलो धर्मोऽपि आदिब्रह्मणा विनिर्मितः ॥ ८०२ ॥

गाथार्थ:—नगर, ग्राम, पत्तन आदि की रचना; लौकिक शास्त्र, असि मसि कृषि आदि लोकव्यवहार; और दयाप्रधान धर्म का स्थापन आदिब्रह्मा श्री ऋषभनाथ तीर्थङ्कर ने किया ॥ ८०२ ॥

अथ चतुर्थकालसमुत्पन्नशलाकापुरुषान्निरूपयति—

> चउवीसबारतिघणं तित्थयरा छत्तिखंडभरहवई।
> तुरिए काले होंति हु तेवट्ठिसलागपुरिसा ते ॥ ८०३ ॥
>
> चतुर्विंशतिः द्वादश त्रिघनः तीर्थंकराः षट्त्रिखण्डभरतप्रभवः।
> तुर्ये काले भवन्ति हि त्रिषष्टिशलाकापुरुषास्ते ॥ ८०३ ॥

चउवीस। चतुर्विंशतितीर्थंकराः द्वादश षट्खण्डभरतपतयः सप्तविंशतिस्त्रिखण्डभरतपतयः इत्येते त्रिषष्टि ६३ शलाकापुरुषाश्चतुर्थकाले भवन्ति ॥ ८०३ ॥

चतुर्थकाल में उत्पन्न हुए शलाका पुरुषों का निरूपण करते हैं:—

गाथार्थ:—चतुर्थ काल में चौबीस तीर्थङ्कर, बारह षट्खण्ड भरतक्षेत्र के अधिपति (चक्रवर्ती) और तीन का घन अर्थात् सत्ताईस त्रिखण्ड भरत के अधिपति ये त्रेशठ शलाका पुरुष होते हैं ॥ ८०३ ॥

विशेषार्थ:—२४ तीर्थंकर, १२ षट्खण्ड भरतपति अर्थात् चक्रवर्ती और (३ × ३ × ३)=

२७ त्रिखण्ड भरतपति अर्थात् ९ नारायण ९ प्रतिनारायण और ९ बलभद्र ये ६३ शलाका पुरुष चतुर्थ-काल में होते हैं।

अथ तीर्थंकरशरीरोत्सेधमाह—

धणु तणुतुंगो तित्थे पंचसयं पण्ण दसपणूणकमं।
अट्ठसु पंचसु अट्ठसु पासदुगे णवयसत्तकरा ॥ ८०४ ॥

धनूंषि तनुतुङ्गः तीर्थे पञ्चशतं पञ्चाशद्दशपञ्चोनकमः।
अष्टसु पञ्चसु अष्टसु पार्श्वद्विकयोः नव सप्तकराः ॥ ८०४ ॥

धणु। प्रथम तीर्थकरे तनुतुंगः पञ्चशत ५०० धनूंषि, तत उपर्यष्टसु तीर्थकरेषु पञ्चाशत् पञ्चाशदून ४५० । ४०० । ३५० । ३०० । २५० । २०० । १५० । १०० धनूंषि। ततः पञ्चसु तीर्थकरेषु दशदशोनधनूंषि ९० । ८० । ७० । ६० । ५० ततोऽष्टसु तीर्थकरेषु पञ्चपञ्चोनधनूंषि तनुतुङ्गः स्यात् ४५ । ४० । ३५ । ३० । २५ । २० । १५ । १० पार्श्वजिनो वर्द्धमानजिन इति द्वयोः तनूत्सेधो नव ९ सप्त ७ हस्तौ भवतः ॥ ८०४ ॥

तीर्थंकरों के शरीर का उत्सेध :—

गाथार्थ :—प्रथम तीर्थङ्कर के शरीर की ऊँचाई पाँच सौ धनुष, इससे आगे आठ तीर्थंकरों में प्रत्येक की ५० धनुष कम, अन्य पाँच की १० धनुष कम और अन्य आठ को ५, ५ धनुष कम तथा पार्श्वद्विक अर्थात् पार्श्वनाथ और महावीर की नव हाथ एवं सात हाथ प्रमाण थी ॥ ८०४ ॥

विशेषार्थ :—प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान् के शरीर की ऊंचाई ५०० धनुष, द्वितीयादि आठ तीर्थंकरों की ५०-५० धनुष कम अर्थात् ४५०, ४००, ३५०, ३००, २५०, २००, १५०, १०० धनुष थी। दशवें आदि पाँच तीर्थंकरों की १०-१० धनुष कम अर्थात् ९०, ८०, ७०, ६० और ५० धनुष थी, तथा पन्द्रहवें आदि आठ तीर्थंकरों की ५-५ धनुष कम अर्थात् ४५ । ४० । ३५ । ३० । २५ । २० । १५ और १० धनुष प्रमाण, पार्श्वनाथ भगवान को ९ हाथ और महावीर भगवान के शरीर की ऊँचाई ७ हाथ प्रमाण थी।

अथ तीर्थंकरायुष्यं गाथाद्वयेनाह—

तित्थाऊ चुलसीदीबिहत्तरीसट्ठि पणसु दसहीणं।
बिगि पुव्वलक्खमेत्तो चुलसीदि बिहत्तरी सट्ठी ॥८०५॥

तीसदसएक्कलक्खा पणणवदीचदुरसीदिपणवण्णं।
तीसं दसिगिसहस्सं सय बावत्तरिसमा कमसो ॥८०६॥

तीर्थायुः चतुरशीतिद्वासप्ततिषष्टिः पञ्चसु दशहीनं ।
द्व्येकं पूर्वलक्षमात्रं चतुरशीतिः द्वासप्ततिः षष्टिः ॥ ८०५ ॥
त्रिंशद्दशैकलक्षाणि पञ्चनवतिचतुरशीतिपञ्चपञ्चाशत् ।
त्रिंशत् दशैकसहस्रं शतं द्वासप्ततिसमाः क्रमशः ॥ ८०६ ॥

तित्था। तीर्थंकराणां क्रमेणायुः चतुरशीतिलक्षपूर्वाणि ८४ द्वासप्ततिलक्षपूर्वाणि ७२ षष्टिलक्षपूर्वाणि ६०। इत उपरि पञ्चसु तीर्थंकरेषु पूर्वस्मात्पूर्वस्माद्दश दश हीनलक्षपूर्वाणि ५० ल० पू०। ४० ल० पू०। ३० ल० पू०। २० ल० पू०। १० ल० पू०। ततो द्विलक्षपूर्वमेकलक्षपूर्वं च स्यात्। इत उपरि चतुरशीति लक्षाणि ८४ द्वासप्ततिलक्षाणि ७२ षष्टिलक्षाणि ६० ल ॥ ८०५ ॥

तीस। त्रिंशल्लक्षाणि ३० दशलक्षाणि १० एकलक्षाणि। तत उपरि पञ्चनवतिसहस्राणि ९५००० चतुरशीतिसहस्राणि ८४००० पञ्चपञ्चाशत् सहस्राणि ५५००० त्रिंशत्सहस्राणि ३०००० दशसहस्राणि १०००० एकसहस्राणि १००० शतं १०० द्वासप्ततिः ७२ एतानि क्रमशो वर्षाणि स्युः ॥ ८०६ ॥

आगे तीर्थंकरों की आयु दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—तीर्थंकरों की आयु क्रम से चौरासी लाख पूर्व, बहत्तर लाख पूर्व, साठ लाख पूर्व, इससे आगे पाँच तीर्थंकरों को १०-१० लाख पूर्व कम, इसके आगे दो लाख पूर्व और एक लाख पूर्व, इसके आगे चौरासी लाख वर्ष, बहत्तर लाख, साठ लाख, तीस लाख, दश लाख और एक लाख वर्ष थी। इसके आगे ९५ हजार वर्ष, ८४ हजार, ५५ हजार, ३० हजार, १० हजार, १ हजार वर्ष, १०० वर्ष और ७२ वर्ष प्रमाण थी ॥ ८०५, ८०६ ॥

विशेषार्थ:—तीर्थंकरों की आयु क्रम से ८४ लाख पूर्व, ७२ लाख पूर्व, ६० लाख पूर्व, ५० लाख पूर्व, ४० लाख पूर्व, ३० लाख पूर्व, २० लाख पूर्व, १० लाख पूर्व, २ लाख पूर्व, १ लाख पूर्व, ८४ लाख वर्ष, ७२ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष, ३० लाख वर्ष, १० लाख वर्ष, ९५००० वर्ष, ८४००० वर्ष, ५५००० वर्ष, ३०००० वर्ष, १०००० वर्ष, १००० वर्ष, १०० वर्ष और ७२ वर्ष प्रमाण थी।

इदानीं तीर्थंकराणामन्तराणि गाथासप्तकेनाह—

उवहीण पण्णकोडी सतिवासद्धमासपक्खया पढमं ।
अंतरमेत्तो तीसं दस णव कोडी य लक्खगुणा ॥ ८०७ ॥
दसदसभजिदा पंचसु तो कोडी सायराण सदहीणा ।
छव्वीससहस्ससमा छावट्ठीलक्खरणावि ॥ ८०८ ॥

चउवण्णतीसणवचउजलहिदिवं एगतिप्पिपादूणं ।
पल्लस्स दलं पादो सहस्सकोडीसमाहीणो ॥ ८०९ ॥

वस्सा कोडिसहस्सा चउवण्णछपंचलक्खवस्साणि ।
तेसीदिसहस्समदो सगसयपण्णाससंजुत्तं ॥ ८१० ॥

सदलयिसदं समातिय पक्खडमासूणमंतिमं तत्तु ।
मोक्खंतरं सगाउगहीणं तमिणं जिणंतरयं ॥ ८११ ॥

उदधीनां पञ्चाशत्कोटिः सत्रिवर्षाष्टमासपक्षकः प्रथमं ।
अन्तरमितः त्रिंशत् दश नव कोटिश्च लक्षगुणा ॥ ८०७ ॥
दश दश भक्तानि पञ्चसु ततः कोटिः सागराणां शतहीना ।
षड्त्रिंशसहस्रसमा षट्षष्टिलक्षकेनापि ॥ ८०८ ॥
चतुः पञ्चाशत् त्रिंशन्नवचतुर्जलधित्रयं पल्यत्रयपादोनं ।
पल्यस्य दलं पादः सहस्रकोटिसमाहीनः ॥ ८०९ ॥
वर्षाणि कोटिसहस्राणि चतुष्पञ्चाशत् षट् पञ्चलक्षवर्षाणि ।
त्र्यशीतिसहस्रमतः सप्तशतपञ्चाशत्संयुक्तं ॥ ८१० ॥
सदलद्विशतं समात्रयं पक्षाष्टमासोनमन्तिमं तत्तु ।
मोक्षान्तरं स्वकायुष्कहीनं तदिदं जिनान्तरं ॥ ८११ ॥

उद । प्रथममन्तरं पञ्चाशत्कोटिलक्षसागरोपमाणि ५० को० ल० सा० त्रिवर्षा ३ष्ट मास ८ एकपक्ष १५ सहितानि, इत उपरि क्रमेण त्रिंशत्कोटिलक्षसागरोपमाणि ३० दशकोटिलक्षसागरोपमाणि १० नवकोटिलक्षसागरोपमाणि ९ को० ल० सा० ॥ ८०७ ॥

दश । तत उपरि पञ्चस्वन्तरेषु प्रमाणानि प्राक्तननवकोटिलक्षसागरोपमाण्येव दश दश भक्तानि ९०००० को० सा० ९००० को० सा० ९०० को० सा० ९० को० सा० ९ को० सा० तत उपरि शत १०० सागरोपमैः षड्विंशतिसहस्रोत्तर षड्विंशतिसहस्रोत्तरषट्षष्टिलक्षवर्षैश्च हीनान्येककोटिसागरोपमाणि अन्तरं ज्ञातव्यं ९९९९९०० ॥ ८०८ ॥

चउ । तत उपरि चतुः पञ्चाश ५४ त्सागरोपमाणि त्रिंशत्सागरोपमाणि नव ९ सागरोपमाणि चत्वारि ४ सागरोपमाणि पल्यत्रिपादोनानि त्रीणि सागरोपमाणि सा० ३ प $\frac{3}{4}$ पल्यस्यार्धं प $\frac{1}{2}$ सहस्रकोटीवर्षहीनः पल्यचतुर्थांशः प $\frac{1}{4}$—१००० को० अन्तरं स्यात् ॥ ८०९ ॥

वस्सा । तत उपरि सहस्रकोटिवर्षाणि १००० को० चतुः पञ्चाशल्लक्षवर्षाणि ५४ ल षड्लक्ष-वर्षाणि ६ पञ्चलक्षवर्षाणि ५ सप्तशतपञ्चाशत्सहितानि त्र्यशीतिसहस्राण्यत उपरि अन्तरं ज्ञातव्यं ८३७५० ॥ ८१० ॥

सदल । अन्तिमान्तरं तु समा अर्धचतुर्थवर्षाष्टमासोनं वलसहितद्विशतं २५० व० ३ प० १ मा० ८ शेष २४६ मास ३ प० १ पूर्वोक्तमन्तरं सर्वं मोक्षमोक्षान्तरं ज्ञातव्यं । एतदेव स्वकीयस्वकीयायुर्हीनं चेद् जिनात् जिनान्तरं स्यात् ॥ ८११ ॥

अब तीर्थंकरों का अन्तरकाल सात गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ:—प्रथम अन्तर पचास करोड़ लाख सागर तीन वर्ष आठमाह और एक पक्ष प्रमाण था। अर्थात् ऋषभदेव भगवान के बाद ५० करोड़ लाख सागर ३ वर्ष ८½ माह व्यतीत हो जाने पर अजित नाथ भगवान् हुए। इसके बाद दूसरे आदि अन्तराल क्रम से तीस लाख करोड़ सागर, दश लाख करोड़ सागर, ९ लाख करोड़ सागर इसके बाद पांच अन्तराल पूर्वोक्त अन्तरालों में क्रम से १०–१० से भाजित हैं। अर्थात् (९ लाख करोड़ सागर / १०)=९०००० करोड़ सागर, (९००००/१०)=९००० करोड़ सागर, (९०००/१०)=९०० करोड़ सागर, (९००/१०)=९० करोड़ सागर और (९०/१०)=९ करोड़ सागर था इसके बाद दशवां अन्तराल ६६ लाख २६ हजार १०० (एक सौ) सागरों से हीन एक करोड़ सागर (३३७३९०० सागर) था। इससे आगे चौवन सागर, तीस सागर, नौ सागर, चार सागर, पौन पल्य कम तीन सागर, अर्ध पल्य, हजार करोड़ वर्ष कम चौथाई पल्य, हजार करोड़ वर्ष, चौवन लाख वर्ष, छह लाख वर्ष, पांच लाख वर्ष, तेरासी हजार सात सौ पचास वर्ष और अन्तिम तेईसवां अन्तर दो सौ पचास वर्ष में तीन वर्ष आठ मास, एक पक्ष हीन अर्थात् दो सौ छयालीस वर्ष तीन मास, एक पक्ष प्रमाण का था। यह मोक्ष से मोक्ष का अन्तर है। इस अन्तर में से अपनी अपनी आयु का प्रमाण कम कर देने पर एक जिनेन्द्र से दूसरे जिनेन्द्र भगवान् का अन्तर प्राप्त हो जाता है ॥ ८०७–८११ ॥

विशेषार्थ :—पूर्व तीर्थंकर के जितने काल बाद दूसरे तीर्थंकर होते हैं, उस बीच के काल को अन्तराल कहते हैं। वृषभनाथ भगवान के मोक्ष जाने के पचास करोड़ सागर, ३ वर्ष ८½ मास बाद अजितनाथ भगवान मोक्ष गए थे। अजितनाथ के बाद दूसरा अन्तराल ३० लाख करोड़ सागर, (३) दश लाख करोड़ सागर, (४) ९ लाख करोड़ सागर, (५) ९ लाख करो० सागर / १० = ९०००० करोड़ सागर, (६) ९००००/१० = ९००० करोड़ सागर, (७) ९०००/१० = ९०० करोड़ सागर, (८) ९००/१० = ९० करोड़ सागर, (९) ९०/१० = ९ करोड़ सागर, (१०) १ करोड़ सागर—६६ ला० २६ हजार १०० सागर (१०००००० — ६६२६१००)=३३७३९०० सागर, (११) ५४ सागर, (१२) ३० सागर, (१३) ९ सागर, (१४) चार सागर, (१५) ३ सागर — ¾ पल्य = २ सागर ९९९९९९९९९९९९९९१/४ पल्य, (१६) आधा पल्य, (१७) ¼ पल्य—१००० करोड़ वर्ष अर्थात् हजार करोड़ वर्ष कम पाव पल्य, (१८) १००० करोड़ वर्ष, (१९) ५४०००० वर्ष, (२०) ६००००० वर्ष, (२१) ५००००० वर्ष, (२२) ८३७५० वर्ष और अन्तिम (२३) अन्तराल २५० वर्ष — ३ वर्ष ८½ मास = २४६ वर्ष, ३ मास, १ पक्ष प्रमाण था। यह मोक्ष से मोक्ष का अन्तराल है। अर्थात् एक तीर्थंकर के मोक्ष जाने के

जितने काल बाद दूसरे तीर्थंकर मोक्ष गए वही उनका अन्तराल काल है। इसी अन्तराल काल में से अपनी अपनी आयु का प्रमाण हीन कर देने से एक जिन से दूसरे जिन के अन्तराल के काल का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। जैसे :—प्रथम अन्तराल के प्रमाण ५० करोड़ सागर, ३ वर्ष, ८½ माह में से अजितनाथ भगवान् की आयु का प्रमाण ७२ लाख पूर्व घटा देने पर जो अवशेष बचे वह प्रथम तीर्थंकर को मुक्ति के समय से द्वितीय तीर्थंकर के जन्म काल के अन्तर का प्रमाण है। दूसरे अन्तराल के प्रमाण ३० लाख करोड़ सागर में से सम्भवनाथ भगवान् की आयु का प्रमाण ६० लाख पूर्व घटा देने पर जो अवशेष बचे वही अजितनाथ भगवान के मुक्तिकाल से सम्भवनाथ भगवान के जन्मकाल के अन्तर का प्रमाण है। इसी प्रकार सर्वत्र लगा लेना चाहिए।

वीरजिणतित्थकालो इगिवीससहस्सवास दुस्समगो।
इह सो तेत्तियमेत्तो अइदुस्समगोवि मिलिदव्वो ॥ ८१२ ॥
तदिए तुरिए काले तिवासअडमासपक्खपरिसेसे।
वसहो वीरो सिद्धो पुव्वे तित्थेयराउस्सं ॥ ८१३ ॥

वीरजिनतीर्थकालः एकविंशतिसहस्रवर्षाणि दुःषमः।
इह सः तावन्मात्रः अतिदुःषमकोऽपि मेलयितव्यः ॥ ८१२ ॥
तृतीये तुर्ये काले त्रिवर्षाष्टमासपक्षपरिशेषे।
वृषभो वीरः सिद्धः पूर्वे तीर्थंकरायुष्यं ॥ ८१३ ॥

वीर। दुःषमाख्यः वीरजिनतीर्थकालः एकविंशतिसहस्रवर्षाणि २१००० इहातिदुःषमाख्यः। स अतिदुःषमोऽपि तावन्मात्र २१००० एव मेलयितव्यः ॥ ८१२ ॥

तदिए। तृतीये चतुर्थे काले त्रिवर्षाष्टमासैकपक्षावशेषे सति यथासंख्यं वृषभो वीरजिनश्च सिद्धिमगमत्। पूर्वपूर्वतीर्थान्तरे उत्तरतीर्थंकरायुष्यं तिष्ठतीति ज्ञातव्यं। वीरजिनमुक्तेरवशेषकालं व० ३ मा० ८ प० १ पार्श्वभट्टारकान्तरे २४६ मास ३ प० १ मेलयित्वा २५० अस्माद्यथायोग्यं सर्वेष्वन्तरेषु मिलितेष्वेककोटीकोटिसागरोपमं भवति ॥ ८१३ ॥

गाथार्थ :—इक्कीस हजार वर्ष है प्रमाण जिसका ऐसे दुःषम नाम पञ्चमकाल में वीर जिनेन्द्र का तीर्थकाल है। अतिदुःषम नामक षष्ठ काल भी इक्कीस हजार वर्ष का है, उसे भी इसी में मिला देना चाहिए। तृतीय काल के तीन वर्ष साढ़े आठ मास अवशेष थे तब वृषभनाथ सिद्ध हुए और चतुर्थ काल का भी इतना ही समय अवशेष था तब वीर प्रभु मुक्त गए, पूर्व पूर्व तीर्थंकर के अन्तरकाल में उत्तर उत्तर तीर्थंकर की आयु का प्रमाण सम्मिलित है ॥ ८१२-८१३ ॥

विशेषार्थ :—दुःषम नामक पञ्चम काल २१००० वर्ष का है, इसमें वीर नाथ भगवान् का तीर्थकाल वर्त रहा है। अतिदुःषम नामक छठवाँ काल भी २१००० वर्ष का है उसे भी इसमें मिला देने

से (२१००० + २१०००) ४२००० वर्ष हो जाते हैं। तृतीय काल का ३ वर्ष ८ मास १ पक्ष अवशेष था तब प्रथम तीर्थंकर वृषभदेव भगवान् मोक्ष गए और चतुर्थ काल का भी ३ वर्ष, ८ मास १ पक्ष अवशेष था तब वीर प्रभु मोक्ष गए। पूर्व पूर्व तीर्थङ्कर के अन्तर में उत्तर उत्तर तीर्थङ्कर की आयु संयुक्त ही जानना चाहिए। जैसे :—प्रथम अन्तराल काल वृषभदेव का तीर्थकाल है, इसमें अजितनाथ भगवान् की आयु मिली हुई है। अर्थात् वृषभदेव के मुक्ति काल से अजित देव के मुक्ति काल पर्यन्त वृषभदेव का ही तीर्थकाल रहा है। अजित नाथ के मुक्तिकाल से सम्भवनाथ के मुक्ति काल पर्यन्त अजितनाथ का तीर्थकाल रहा। ऐसा ही अन्यत्र लगा लेना चाहिए। वीरनाथ के मुक्तिकाल के बाद चतुर्थ काल के अवशेष रहे ३ वर्ष ८ मास १ पक्ष को पार्श्व जिनेश के अन्तर काल २४६ वर्ष, ३ मास, १ पक्ष में मिला देने पर २५० वर्ष होते हैं और सम्पूर्ण अन्तर कालों को मिला लेने पर एक कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण होता है।

इदानीं जिनधर्मोच्छित्तिकालं दर्शयति—

पल्लतुरियादि चय पल्लंतचउत्थूण पादपरकालं।
ण हि सद्धम्मो सुविधीदु संति अंते सगंतरए ॥८१४॥

पल्लतुर्यादि: चय: पल्यमन्तं चतुर्थोनं पादपरकालं।
न हि सद्धर्म: सुविधित: शान्त्यन्ते सप्तान्तरे ॥ ८१४ ॥

पल्ल। पल्यचतुर्थांश आदि: प $\frac{1}{4}$ तावानेव चय: एकपल्यमन्तं तत: पश्चे पल्यचतुर्थांशोनं यावत्पल्यपादावसानकालं प० $\frac{1}{4}$ । $\frac{2}{4}$ । $\frac{3}{4}$ । $\frac{4}{4}$ । $\frac{3}{4}$ । $\frac{2}{4}$ । $\frac{1}{4}$ । एतेषु सुविधित: पुष्पदन्तादारभ्य शान्तिनाथावसानेषु सप्तस्वन्तरेषु वक्तृश्रोतृचरिष्णूनामभावात्[1] सद्धर्मो नास्ति ॥ ८१४ ॥

अब जिनधर्म का उच्छेद काल दर्शाते हैं :—

गाथार्थ :—सुविधिनाथ से शान्तिनाथ पर्यन्त के सात अन्तरालों में से प्रथम अन्तराल में पल्य के चौथाई भाग ($\frac{1}{4}$ पल्य) प्रमाण, इसके आगे पल्य पर्यन्त इसी $\frac{1}{4}$ पल्य की चय वृद्धि के क्रम से और वहाँ से $\frac{1}{4}$ पल्य पर्यन्त इतने ही चय की हानि के क्रम से धर्म विच्छेद रहा है ॥ ८१४ ॥

विशेषार्थ :—प्रथम अन्तराल में पल्य के चतुर्थांश अर्थात् पल्य $\frac{1}{4}$ भाग तक धर्म विच्छेद रहा। इसके आगे पल्य पर्यन्त इसी चय वृद्धि से बढ़ते हुए और $\frac{1}{4}$ पल्य की हानि क्रम से $\frac{1}{4}$ पल्य पर्यन्त काल तक अर्थात् $\frac{1}{4}$, $\frac{2}{4}$, $\frac{3}{4}$, $\frac{4}{4}$, $\frac{3}{4}$, $\frac{2}{4}$, $\frac{1}{4}$ पल्य पर्यन्त काल तक सातों अन्तरालों में वक्ता, श्रोता और धर्माचरण करने वालों का अभाव होने से सद्धर्म अर्थात् जैनधर्म का विच्छेद रहा है।

---

1 वक्तृश्रोतृणामभावात् (प०)।

पुष्पदन्त और शीतलनाथ के अन्तराल में $\frac{1}{4}$ पल्य तक, शीतलनाथ और श्रेयांसनाथ के अन्तराल में $\frac{1}{2}$ पल्य तक, श्रेयांस और वासुपूज्य के अन्तराल में $\frac{3}{4}$ पल्य तक, वासुपूज्य और विमलनाथ के अन्तराल में १ पल्य तक, विमलनाथ और अनन्तनाथ के अन्तराल में $\frac{3}{4}$ पल्य तक, अनन्तनाथ और धर्मनाथ के अन्तराल में $\frac{1}{2}$ पल्य तक, धर्मनाथ और शान्तिनाथ के अन्तराल में $\frac{1}{4}$ पल्य तक जैनधर्म का अत्यन्त अभाव (विच्छेद) रहा है। अर्थात् चतुर्थ काल में ४ पल्य तक जैनधर्म के अनुयायियों का सर्वथा अभाव रहा है।

अथ चक्रिणां नामान्याह—

चक्की भरहो सगरो मघव सणक्कुमार संतिकुंथुजिणा ।
अरजिण सुभोममहपउमा हरिसेणजयब्रम्हदत्तक्खा ॥ ८१५ ॥

चक्रिणः भरतः सगरः मघवा सनत्कुमारः शान्तिकुन्थुजिनौ ।
अरजिनः सुभौममहापद्मौ हरिषेणजयब्रह्मदत्ताख्याः ॥ ८१५ ॥

चक्की । भरतः सगरो मघवान् सनत्कुमारः शान्तिजिनः कुन्थुजिनः अरजिनः सुभौमो महापद्मो हरिषेणो जयो ब्रह्मदत्ताख्यः । एते द्वादश १२ चक्रिणः ॥ ८१५ ॥

चक्रियों के नाम :—

गाथार्थ :—भरत, सगर, मघवान, सनत्कुमार, शान्तिजिन, कुन्थुजिन, अरजिन, सुभौम, महापद्म, हरिषेण, जय और ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्ती हुए हैं ॥ ८१५ ॥

एतेषां वर्तनाकालं गाथाद्वयेनाह—

भरहदु वसहदुकाले मघवदु धम्मदुगअंतरे जादा ।
तिजिणा सुभोमचक्की अरमल्लीणंतरे होदि ॥ ८१६ ॥
मल्लिदुमज्झे णवमो मुणिसुव्वयणमिजिणंतरे दसमो ।
णमिदुविरहे जयक्खो बम्हो णेमिदुग अंतरगो ॥ ८१७ ॥

भरतद्वयं वृषभद्वयकाले मघवद्वौ धर्मद्वयान्तरे जातौ ।
त्रिजिनाः सुभौमचक्री अरमल्ल्योरन्तरे भवति ॥ ८१६ ॥
मल्लिद्वयमध्ये नवमो मुनिसुव्रतनमिजिनान्तरे दशमः ।
नमिद्विविरहे जयाख्यो ब्रह्मो नेमिद्वयान्तरगः ॥ ८१७ ॥

भरह । भरतसगरौ द्वौ वृषभाजितयोः काले जातौ, मघवसनत्कुमारौ द्वौ धर्मशान्तिजिनयोरन्तरे जातौ, ततः परं शान्तिकुन्थ्वराख्यौ जिनाः अत्र स्वयमेव जिनत्वाज्जिनान्तराभावः सुभौमचक्री अरमल्लिजिनयोरन्तरे भवति ॥ ८१६ ॥

मल्लि। मल्लिमुनिसुव्रतयोर्मध्ये नवमो महापद्मो जातः मुनिसुव्रतनमिजिनयोरन्तरे दशमो हरिषेणो जातः, नमिनेमिजिनयोरन्तरे जयाख्यो जातः[1]; नेमिपार्श्वजिनयोरन्तरे ब्रह्मदत्ताख्यो जातः ॥ ८१७ ॥

दो गाथाओं द्वारा इन चक्रवर्तियों का वर्तना काल कहते हैं :—

गाथार्थ :—भरत और सगर ये दो चक्रवर्ती क्रमशः वृषभ और अजित जिनेन्द्र के काल में, मघवान् और सनत्कुमार धर्म और शान्तिनाथ के अन्तराल में, शान्ति, कुन्थु और अर ये तीन चक्रवर्ती स्वयं जिन थे। सुभौम चक्री अर और मल्लिनाथ के अन्तराल में, महापद्म चक्रवर्ती मल्लिनाथ और मुनिसुव्रत नाथ के अन्तराल के मध्य में, हरिषेण, मुनिसुव्रत और नमि के अन्तराल में, जय चक्रवर्ती नमि और नेमिनाथ के अन्तराल में और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती नेमिनाथ और पार्श्वनाथ के अन्तराल में हुए हैं ॥ ८१६, ८१७ ॥

अथ चक्रधराणां शरीरस्य वर्णमुत्सेधं तदायुष्यं च गाथात्रयेणाह —

सव्वे सुवण्णवण्णा तद्देहुदओ धणूण पंचसयं।
पण्णासूणं सदलं बादालिगिदालयं तालं ॥ ८१८ ॥
पणतीस तीस अड्ढुगवीसं पण्णरसमाउ चुलसीदि।
बावत्तरिपुव्वाणं पणतिगिवासाणमिह लक्खा ॥ ८१९ ॥
संवच्छरा सहस्सा पणणउदी चउरसीदि सट्ठी य।
तीसं दसयं तिदयं सत्तसया बम्हदत्तस्स ॥ ८२० ॥

सर्वे सुवर्णवर्णा तद्देहोदयो धनुषां पञ्चशतं।
पञ्चाशदूनं सदलं द्वाचत्वारिंशदेकचत्वारिंशत् चत्वारिंशत् ॥८१८॥
पञ्चत्रिंशत् त्रिंशदष्ट द्विःविंशतिः पञ्चदशकमायुः चतुरशीतिः।
द्वासप्ततिपूर्वाणां पञ्चत्रिकैकवर्षाणामिह लक्षाणि ॥ ८१९ ॥
संवत्सरा। सहस्राः पञ्चनवतिः चतुरशीतिः षष्टिश्च।
त्रिंशत् दशकं त्रितयं सप्तशतानि ब्रह्मदत्तस्य ॥ ८२० ॥

सव्वे। सर्वे चक्रिणः सुवर्णवर्णाः तेषां देहोत्सेधः क्रमेण धनुषां पञ्चशतं ५०० पञ्चाशदूनं तदेव ४५० दल ½ सहिता द्वाचत्वारिंशत् ४२½ दलसहितैकचत्वारिंशत् ४१½ चत्वारिंशच्च ४० ॥ ८१८ ॥

पण। पञ्चत्रिंशत् ३५ त्रिंशत् ३० अष्टाविंशतिः २८ द्वाविंशतिः २२ विंशतिः २० पञ्चदश १५

---

[1] नमिनेम्योर्मध्ये जयाख्य एकादशो जातः (ब०, प०)।

सप्त ७ धनूंषि भवन्ति । इतः परं तेषामायुर्यथासंख्यं चतुरशीतिपूर्वलक्षवर्षाणि ८४ पू० ल० द्वासप्तति पूर्वलक्षवर्षाणि ७२ पञ्चलक्षवर्षाणि ५ ल० त्रिलक्षवर्षाणि ३ ल० एकलक्षवर्षाणि १ ल० ॥ ८१६ ॥

पंच । पञ्चनवतिसहस्रवर्षाणि ९५००० चतुरशीतिसहस्रवर्षाणि ८४००० षष्टिसहस्रवर्षाणि ६०००० त्रिंशत्सहस्रवर्षाणि ३०००० दशसहस्रवर्षाणि १०००० त्रिसहस्रवर्षाणि ३००० ब्रह्मदत्तस्य सप्तशतवर्षाणि ७०० ॥ ८२० ॥

अब चक्रवर्तियों के शरीर का वर्ण, उत्सेध और उनकी आयु तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—सर्व चक्रवर्ती स्वर्ण सदृश वर्ण वाले थे । उनके शरीर की ऊँचाई क्रम से पाँच सौ, पचास कम (४५०), अर्ध सहित ४२ (४२½), अर्ध सहित इकतालीस (४१½), चालीस, पैंतीस, तीस, अट्ठाईस, बाईस, बीस, पन्द्रह और सात धनुष प्रमाण है तथा उनकी आयु क्रम से चौरासी लाख पूर्व, बहत्तर लाख पूर्व, पाँच लाख वर्ष, तीन लाख वर्ष, एक लाख वर्ष, पञ्चानवे हजार वर्ष, चौरासी हजार वर्ष, साठ हजार वर्ष, तीस हजार वर्ष, दश हजार वर्ष, तीन हजार वर्ष और सात सौ वर्ष प्रमाण है ॥ ८१८—८२० ॥

विशेषार्थ :—भरतादि सभी चक्रवर्ती स्वर्ण सदृश वर्ण वाले थे । भरत चक्रवर्ती के शरीर का उत्सेध ५०० धनुष और आयु ८४००००० पूर्व की थी । सगर चक्रवर्ती का उत्सेध ४५० धनुष और आयु ७२००००० पूर्व, मघवान् का उत्सेध ४२½ धनुष और आयु ५००००० वर्ष, सनत्कुमार का उत्सेध ४१½ धनुष और आयु ३००००० वर्ष, शान्तिनाथ का उत्सेध ४० धनुष और आयु १००००० वर्ष, कुन्थुनाथ चक्रवर्ती का उत्सेध ३५ धनुष और आयु ९५००० वर्ष, अरनाथ चक्रवर्ती का उत्सेध ३० धनुष और आयु ८४००० वर्ष, सुभौम का उत्सेध २८ धनुष और आयु ६०००० वर्ष, महापद्म का उत्सेध २२ धनुष और आयु ३०००० वर्ष, हरिषेण का उत्सेध २० धनुष और आयु १०००० वर्ष, जय चक्रवर्ती का उत्सेध १५ धनुष और आयु ३००० वर्ष तथा अन्तिम ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का उत्सेध ७ धनुष और आयु ७०० वर्ष प्रमाण थी ।

अथ तेषां नवनिधिसंज्ञामाह—

> कालमहकालमाणवपिंगलणेसप्पपउमपंडू तदो ।
> संखो णाणारयणं णवणिहिओ देंति फलमेदं ॥ ८२१ ॥
>
> कालमहाकालमाणवक पिङ्गल नैसर्पपद्मपाण्डुस्ततः ।
> शङ्खः नानारत्नः नवनिधयः ददति फलमेतत् ॥ ८२१ ॥

काल । कालमहाकालौ माणवक पिङ्गलो नैसर्पः पद्मः पाण्डुस्ततः शङ्खो नानारत्नाख्य इति नवनिधयः एतत्प्रे वक्ष्यमाणं फलं ददति ॥ ८२१ ॥

नवनिधियों के नाम—

गाथार्थ :- काल, महाकाल, माणवक, पिङ्गल, नैसर्प, पद्म, पाण्डु, शङ्ख और अनेक रत्न ये नवनिधियाँ आगे कहे जाने वाले फल देती हैं।

अथ नवनिधिभिर्दीयमानफलमाह—

उडुजोग्गकुसुमदामप्पहुदिं भाजणयमाउहाभरणं ।
गेहं वत्थं धण्णं तूरं बहुरयणमणुकमसो ॥ ८२२ ॥

ऋतुयोग्यकुसुमदामप्रभृति भाजनायुधाभरणं ।
गेहं वस्त्रं धान्यं तूर्यं बहुरत्नमनुक्रमशः ॥ ८२२ ॥

उडु । ते निधयोऽनुक्रमेण ऋतु॰योग्यकुसुमदामप्रभृतिभाजनमायुधमाभरणं गेहं वस्त्रं धान्यं तूर्यं बहुरत्नं च ददते ॥ ८२२ ॥

नवनिधियों द्वारा दिए जाने वाले फल को कहते हैं :—

गाथार्थ :—वे निधियाँ क्रमशः ऋतु योग्य पुष्प, माला आदि, बर्तन, आयुध, अलङ्कार, गृह, वस्त्र, धान्य, तूर्य (बाजे) और नाना प्रकार के रत्न देती हैं ॥ ८२२ ॥

विशेषार्थ :—काल नाम की प्रथम निधि ऋतुयोग्य पुष्प, माला आदि देती है। महाकाल, बर्तन देती है। माणवक निधि आयुध, पिङ्गल निधि अलङ्कार नैसर्प निधि गृह-मकान, पद्म निधि वस्त्र, पाण्डुनिधि धान्य, शङ्खनिधि वादित्र और नानारत्न नामक निधि नाना प्रकार के रत्न देती है। इन निधियों का आकार आठ चक्के की गाड़ी के सदृश होता है, उनमें से ये वस्तुएँ निकालती रहती हैं।

अथ चतुर्दशरत्नानां संज्ञापूर्वकमुत्पत्तिस्थानमाह—

सेणागिहवइथवदि पुरहो गयहयजुवई हवंति वेयड्ढे ।
सिरिगेहे कागिणिमणिचम्मा उहगेसिदंडछत्तमरी ॥ ८२३ ॥

सेनागृहस्थपतिः पुरोधा गजो हयो युवतिः भवन्ति विजयार्धे ।
श्रीगेहे काकिणीमणिचर्म आयुधके असिदण्डछत्रमरी[1] ॥ ८२३ ॥

सेणा । सेनापतिः गृहपतिः स्थपतिः पुरोधाः गजो हयो युवतिरित्येते विजयार्धे भवन्ति श्रीगेहे काकिणी चूडामणिश्चर्मरत्नमित्येतानि भवन्ति । आयुधगेहे असिर्दण्डश्छत्रं चक्ररत्नमित्येतानि भवन्ति ॥ ८२३ ॥

---

१ अरा विद्यन्ते यस्य सोऽरी, चक्ररत्नमित्यर्थः (टि०)।

चौदह रत्नों के नाम व उत्पत्तिस्थान कहते हैं—

गाथार्थ :—सेनापति, गृहपति, स्थपति (कारीगर), पुरोधा (पुरोहित), गज, घोड़ा और युवती ये सात रत्न विजयार्ध पर्वत पर, काकणी रत्न, चूड़ामणि रत्न और चर्मरत्न ये तीन रत्न श्रीगृह में तथा असि, दण्ड, छत्र और चक्ररत्न ये चार रत्न आयुधशाला में उत्पन्न होते हैं ॥ ८२३ ॥

विशेषार्थ :—सेनापति-सेनानायक, गृहपति-भण्डारी, स्थपति-कारीगर, पुरोधाः - पुरोहित, गज, घोड़ा और युवति ये सात रत्न विजयार्ध पर्वत पर उत्पन्न होते हैं। वृषभाचल पर नाम लिखने का कारणभूत काकणी रत्न, विजयार्ध की गुफा में प्रकाश का कारणभूत चूड़ामणि रत्न और जल बाधा निवारण का कारणभूत चर्मरत्न श्री गृह में उत्पन्न होते हैं तथा असि, दण्ड, छत्र और चक्ररत्न ये आयुधशाला में उत्पन्न होते हैं।

अथ तेषां गतिविशेषमाह—

> **मघवं सणक्कुमारो सणक्कुमारं सुभोम बम्हा य ।**
> **सत्तम पुढविं पत्ता मोक्खं सेसट्ठचक्कहरा ॥ ८२४ ॥**
>
> मघवान् सनत्कुमारः सनत्कुमारं सुभौमो ब्रह्मा च ।
> सप्तमपृथिवीं प्राप्तौ मोक्षं शेषाष्टचक्रधराः ॥ ८२४ ॥

मघवं । मघवान् सनत्कुमारश्च सनत्कुमारं[1] स्वर्गमापतु, सुभौमो ब्रह्मदत्तश्च सप्तमीं पृथ्वीं प्रापतु, शेषा अष्टचक्रधरा मोक्षमापुः ॥ ८२४ ॥

उन चक्रवर्तियों की गतिविशेष कहते हैं—

गाथार्थ :—मघवान् और सनत्कुमार, सानत्कुमार, स्वर्ग गए हैं। सुभौम और ब्रह्मदत्त सप्तम पृथ्वी (सातवें नरक) गए हैं तथा शेष आठ चक्रवर्ती मोक्षपद को प्राप्त हुए हैं ॥ ८२४ ॥

[कृपया चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिए]

---

१ सनत्कुमाराख्यं (ब०) ।

कुलकरों, तीर्थङ्करों और चक्रवर्तियों के नाम-उत्सेध एवं आयु आदि—

कुलकरों के				तीर्थंकरों के				चक्रवर्तियों के				
क्रमांक	नाम	उत्सेध	आयु	क्रमांक	नाम	उत्सेध धनुषों में	आयु	क्रमांक	नाम	उत्सेध	आयु	प्राप्त गति
१	प्रतिश्रुति	१८०० धनुष	पल्य/१०	१	वृषभ	५००	८४ ला. पू.	१	भरत	५०० धनुष	८४ लाख पूर्व	मोक्ष
				२	अजित	४५०	७२ " "					
२	सन्मति	१३००	पल्य/१००	३	सम्भव	४००	६० " "	२	सगर	४५०	७२ " "	"
				४	अभिनंदन	३५०	५० " "	३	मघवान्	४२½	५ " वर्ष	३ रे स्वर्ग
३	क्षेमङ्कर	८००	पल्य/१०००	५	सुमति	३००	४० " "					
				६	पद्म	२५०	३० " "	४	सनत्कु०	४१½	३ " "	" "
४	क्षेमन्धर	७७५	पल्य/१००००	७	सुपार्श्व	२००	२० " "					
				८	चन्द्र	१५०	१० " "	५	शान्ति	४० ध.	१ " "	मोक्ष
५	सीमङ्कर	७५०	पल्य/१ लाख	९	पुष्प	१००	२ " "	६	कुन्थु	३५ ध.	९५ हजार वर्ष	"
६	सीमन्धर	७२५	पल्य/१० ला०	१०	शीतल	९०	१ " "					
				११	श्रेयांस	८०	८४ " वर्ष	७	अरह	३० "	८४ " "	"
७	विमलवाहन	७००	पल्य/१ करोड़	१२	वासपूज्य	७०	७२ " "	८	सुभौम	२८ "	६० " "	७ वें नरक
८	चक्षुष्मान	६७५	पल्य/१० करोड़	१३	विमल	६०	६० " "					
				१४	अनन्त	५०	३० " "	९	महापद्म	२२ "	३० " "	मोक्ष
९	यशस्वी	६५०	पल्य/१०० क०	१५	धर्म	४५	१० " "					
				१६	शान्ति	४०	१ " "	१०	हरिषेण	२० "	१० " "	"
१०	अभिचन्द्र	६२५	पल्य/१००० क.	१७	कुन्थु	३५	९५ हजार वर्ष	११	जय	१५ "	३ " "	"
११	चन्द्राभ	६००	पल्य/१० ह. क.	१८	अरह	३०	८४ " "	१२	ब्रह्मदत्त	७ धनुष	७०० वर्ष	७ वें नरक
				१९	मल्लि	२५	५५ " "					
१२	मरुद्देव	५७५	पल्य/१ ला. क.	२०	मुनिसुव्रत	२०	३० " "					
				२१	नमि	१५	१० " "					
१३	प्रसेनजित्	५५०	पल्य/१० ला. "	२२	नेमि	१०	१ " "					
१४	नाभि	५२५ धनुष	पूर्व कोटि वर्ष	२३	पार्श्वप्रभु	९ हाथ	१०० वर्ष					
				२४	वर्धमान	७ हाथ	७२ "					

९ निधियाँ — १ काल, २ महाकाल, ३ माणवक, ४ पिङ्गल, ५ नैसर्प, ६ पद्म, ७ पाण्डु, ८ शंख और ९ नानारत्न

१४ रत्न — सेनापति, गृहपति, स्थपति, पुरोहित, गज, अश्व, युवति, काकणीरत्न, चूड़ामणिरत्न, चर्मरत्न, असि, दण्ड, छत्र, चक्र

साम्प्रतमर्धचक्रिणो नामान्याह—

तिविट्ठदुविट्ठसयंभू पुरिसुत्तमपुरिससिंहपुरिसादी ।
पुंडरियदत्त णारायण किण्हो अद्धचक्कहरा ॥ ८२५ ॥

त्रिपृष्ठद्विपृष्ठस्वयम्भूः पुरुषोत्तमः पुरुषसिंहः पुरुषादिः ।
पुण्डरीकदत्तः नारायणः कृष्णः अर्धचक्रधराः ॥ ८२५ ॥

तिविट्ठ । त्रिपृष्ठो द्विपृष्ठः स्वयम्भूः पुरुषोत्तमः पुरुषसिंहः पुरुषपुण्डरीकः पुरुषदत्तो नारायणः कृष्णश्चेति नवार्धचक्रधराः स्युः ॥ प्रसङ्गेन बलवासुदेवयोर्यथासंख्य मायुधरत्नमाह—

"असिः शङ्खो धनुश्चक्रं मणिः शक्तिर्गदा हरेः ।
रत्नमाला हलं भास्वन्मुशलं गदा ॥ ८२५ ॥"

अब अर्ध चक्री (नारायण) के नाम कहते हैं :—

गाथार्थ :—त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुष पुण्डरीक पुरुषदत्त, नारायण और कृष्ण ये नव अर्ध चक्रवर्ती (नारायण) हुए हैं ॥ ८२५ ॥

विशेषार्थ :—१ त्रिपृष्ठ, २ द्विपृष्ठ, ३ स्वयम्भू, ४ पुरुषोत्तम, ५ पुरुषसिंह, ६ पुरुष पुण्डरीक, ७ पुरुषदत्त, ८ नारायण (लक्ष्मण) और ९ कृष्ण ये ९ अर्धचक्री हुए हैं। प्रसङ्ग पाकर यहाँ क्रमशः बलभद्र और नारायण के आयुधरत्न कहते हैं :—१ असि, २ शङ्ख, ३ धनुष, ४ चक्र, ५ मणि, ६ शक्ति और ७ गदा ये सात नारायण के आयुध रत्न हैं, तथा १ रत्नों की माला, २ हल, ३ मूसल और ४ गदा ये चार बलभद्र के आयुध रत्न हैं।

अथ तेषां बलदेववासुदेवप्रतिवासुदेवानां वर्तनाकालमाह—

सेयादिपणसु हरिपण छट्ठरदुगविरह मल्लिदुगमज्झे ।
दत्तो अट्ठम सुव्वयदुगविरहे णेमिकालजो किण्हो ॥ ८२६ ॥

श्रेयोआदिपञ्चसु हरिपञ्च षष्ठः अरद्विकविरहे मल्लिद्विकमध्ये ।
दत्तः अष्टमः सुव्रतद्वयविरहे नेमिकालजः कृष्णः ॥ ८२६ ॥

सेया । श्रेयोजिनादिपञ्चतीर्थंकरकालेषु त्रिपृष्ठादयः पञ्च भवन्ति । षष्ठः पुरुषपुण्डरीकोऽरमल्लितीर्थंकरयोरन्तरे भवति, पुरुषदत्तो मल्लिमुनिसुव्रतयोर्मध्ये भवति, अष्टमो नारायणो मुनिसुव्रतनमिजिनयोर्विरहकाले स्यात्, कृष्णस्तु नेमीश्वरकाले उत्पन्नः ॥ ८२६ ॥

अब उन बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेवों का वर्तना काल कहते हैं :—

गाथार्थ :—श्रेयांसनाथ आदि पाँच तीर्थंकरों के काल में क्रम से त्रिपृष्ठ आदि पाँच नारायण

हुए हैं। अरनाथ और मल्लिनाथ के अन्तराल में छठवाँ नारायण, मल्लिनाथ और मुनिसुव्रतनाथ के अन्तराल में सातवाँ पुरुषदत्त नारायण, मुनिसुव्रत और नमिनाथ के अन्तराल में आठवाँ और नेमिनाथ के काल में नवमा कृष्ण नामक नारायण की उत्पत्ति हुई थी ॥ ८२६ ॥

विशेषार्थ :—श्रेयांसनाथ भगवान के समय में त्रिपृष्ठ नारायण उत्पन्न हुआ था, वासुपूज्य के समय में द्विपृष्ठ, विमलनाथ के समय में स्वयम्भू, अनन्तनाथ के समय में पुरुषोत्तम, धर्मनाथ के समय में पुरुषसिंह, अर और मल्लिनाथ के अन्तराल में पुरुष पुण्डरीक, मल्लि और मुनिसुव्रतनाथ के अन्तराल में पुरुषदत्त, मुनिसुव्रत और नमिनाथ के अन्तराल में लक्ष्मण और नेमिनाथ के काल में कृष्णनारायण की उत्पत्ति हुई थी। नारायणों का जो वर्तना काल है वही वर्तना काल बलदेव और प्रतिनारायणों का है।

अथ बलदेवप्रतिवासुदेवानां नामानि गाथाद्वयेनाह—

बलदेवा विजयाचलसुधम्मसुप्पहसुदंसणा णंदी ।
तो णंदिमित्त रामा पउमा उवरिं तु पडिसत्तू ॥ ८२७ ॥
अस्सग्गीओ तारय मेरय णिसुंभ कइडहंत महू ।
बलि पहरण रावणया खचरा भूचर जरासंधो ॥ ८२८ ॥

बलदेवा विजयाचलसुधर्मसुप्रभसुदर्शना नन्दी ।
ततो नंदिमित्र: राम: पद्म: उपरि तु प्रतिशत्रव: ॥ ८२७ ॥
अश्वग्रीव: तारक: मेरकश्च निशुम्भ: कैटभान्तो मधु: ।
बलि: प्रहरण: रावण: खचरा: भूचरो जरासन्ध: ॥ ८२८ ॥

बल। विजयोऽचल: सुधर्म: सुप्रभ: सुदर्शनो नन्दी ततो नन्दिमित्रो राम: पद्म इत्येते नव बलदेवा: स्यु:। इत उपरि तेषां प्रतिशत्रव: कथ्यन्ते ॥ ८२७ ॥

अस्स। अश्वग्रीवस्तारको मेरकश्च निशुम्भो मधुकैटभो बलि: प्रहरणो रावणश्चेति खचरा: भूचरो जरासन्ध:। इत्येते नव प्रतिवासुदेवा: ॥ ८२८ ॥

बलदेव और प्रतिवासुदेव के नाम दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नन्दी, नन्दिमित्र, राम और पद्म ये नव बलदेव हैं। इनके प्रतिशत्रु अश्वग्रीव, तारक, मेरक, निशुम्भ, मधुकैटभ, बलि, प्रहरण और रावण ये आठ विद्याधर और भूमिगोचरी जरासिन्धु ये नौ प्रतिवासुदेव हैं ॥ ८२७-८२८ ॥

अथबलदेवादिप्रयाणापुत्सेधमाह—

देहुदओ चावाणं सीदी तिसु दसयहीण पणदालं ।
णवदुगवीसं सोलं दस बलकेसव समचूणं ॥ ८२९ ॥

देहोदयः चापानां अशीतिः त्रिषु दशहीन पञ्चचत्वारिंशत् ।
नवद्विकविंशतिः षोडश दशबलकेशवानां समचूर्णा ॥ ८२९ ॥

देहु । समचूर्णा बलकेशवानां शरीरोत्सेधो यथासंख्यं अशीति ८० चापानि, ततस्त्रिषु दशदश-हीनानि ७० । ६० । ५० ततः पञ्चचत्वारिंशत् ४५ नवविंशतिः २९ द्वाविंशतिः २२ षोडश १६ दश १० धनूंषि भवन्ति ॥ ८२९ ॥

अब बलदेवादि तीनों का उत्सेध कहते हैं :—

गाथार्थ :—बलदेव, नारायण और प्रतिनारायणों के शरीर का उत्सेध प्रथमादिक के क्रम से ८० धनुष, तीन में दस दस धनुष हीन अर्थात् ७०, ६० और ५० धनुष, ४५ धनुष, २९, २२, १६ और १० धनुष प्रमाण था ॥ ८२९ ॥

विशेषार्थ :—बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव इन तीनों के शरीर की ऊँचाई समान ही होती है। प्रथम बलदेव, नारायण और प्रतिनारायण के शरीर की ऊँचाई ८० धनुष प्रमाण थी। इसके बाद द्वितीयादिक की यथाक्रम ७०, ६०, ५०, ४५, २९, २२, १६ और अन्तिम की १० धनुष प्रमाण थी।

अथ वासुदेवप्रतिवासुदेवानामायुष्यमाह—

सम चुलसीदि बहत्तरि सट्ठी तीस दस लक्ख पणसट्ठी ।
बत्तीसं बारेक्कं सहस्समाउस्समद्धचक्कीणं ॥ ८३० ॥

समा चतुरशीतिः द्वासप्ततिः षष्टिः त्रिंशत् दश लक्षाणि पञ्चषष्टिः ।
द्वात्रिंशत् द्वादशकं सहस्रं आयुष्यमर्धचक्रिणाम् ॥ ८३० ॥

सम । अर्धचक्रिणां वासुदेवानां प्रतिवासुदेवानामायुष्यं चतुरशीतिलक्षवर्षाणि ८४ ल० द्वासप्ततिलक्षवर्षाणि ७२ षष्टिलक्षवर्षाणि ६० त्रिंशल्लक्षवर्षाणि ३० दशलक्षवर्षाणि १० पञ्चषष्टिसहस्र ६५००० वर्षाणि द्वात्रिंशत्सहस्रवर्षाणि ३२००० द्वादशसहस्रवर्षाणि १२००० एकसहस्रवर्षाणि १००० भवन्ति ॥ ८३० ॥

अब वासुदेव और प्रतिवासुदेवों की आयु का प्रमाण कहते हैं :—

गाथार्थ :—दोनों की आयु सदृश ही होती है। प्रथमादिक के क्रम से इनकी आयु यथाक्रम ८४ लाख वर्ष, ७२ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष, ३० लाख वर्ष, १० लाख वर्ष, ६५ हजार वर्ष, ३२ हजार वर्ष, १२ हजार वर्ष और एक हजार वर्ष प्रमाण थी ॥ ८३० ॥

विशेषार्थ :—नारायण और प्रतिनारायण इन दोनों की आयु सदृश ही होती है। प्रथम नारायण और प्रतिनारायण की आयु ८४००००० वर्ष की थी। इसके बाद द्वितीयादिक की यथासंख्य ७२००००० वर्ष, ६०००००० वर्ष, ३०००००० वर्ष, १०००००० वर्ष, ६५००० वर्ष, ३२००० वर्ष, १२००० वर्ष और अन्तिम की १००० वर्ष प्रमाण थी।

इतो [1]बलानामायुष्यमाह—

सगसीदि दुसु दसूणं सगतीसं सत्तरससमा लक्खा ।
सगसट्ठितीस सत्तर सहस्स बारसयमाउ बले ॥ ८३१ ॥

सप्ताशीतिः द्वयोः दशोनं सप्तत्रिंशत् सप्तदशसमा लक्षाणि ।
सप्तषष्टिः त्रिंशत् सप्तदश सहस्रं द्वादशमायुः बले ॥ ८३१ ॥

सग। बलदेवानामायुः प्रमाणं सप्ताशीतिलक्षवर्षाणि ८७ ततो द्वयोर्दशदशोनं ७७ ल० । ६७ ल० । ततः सप्तत्रिंशल्लक्षवर्षाणि ३७ ल० सप्तदशलक्षवर्षाणि १७ ल० सप्तषष्टिसहस्रवर्षाणि ६७००० सप्तत्रिंशत्सहस्रवर्षाणि ३७००० सप्तदशसहस्रवर्षाणि १७००० द्वादशशतवर्षाणि १२०० भवन्ति ॥ ८३१ ॥

बलदेवों की आयु का प्रमाण कहते हैं—

गाथार्थ :—बलदेवों की आयु क्रमशः ८७ लाख वर्ष, दो की दस दस कम अर्थात् ७७ लाख वर्ष, ६७ लाख वर्ष, इसके बाद ३७ लाख वर्ष, १७ लाख वर्ष, ६७ हजार वर्ष, ३७ हजार वर्ष, १७ हजार वर्ष और १२०० वर्ष प्रमाण थी।

अथ वासुदेवादित्रयाणां प्राप्तगतिं गाथाद्वयेनाह—

पढमो सत्तमिमण्णे पण छट्ठी पंचमिं गदो दत्तो ।
णारायणो चउत्थीं कसिणो तदियं गुरुयपावा ॥ ८३२ ॥
णिरयं गया पडिरिवो बलदेवा मोक्खमट्ठ चरिमो दु ।
बम्हं कप्पं किण्णे तित्थयरे सोवि सिज्झेदि ॥ ८३३ ॥

प्रथमः सप्तमीमन्ये पञ्च षष्ठीं पञ्चमीं गतो दत्तः ।
नारायणः चतुर्थीं कृष्णः तृतीयां गुरुपापात् ॥ ८३२ ॥
निरयं गताः प्रतिरिपवो बलदेवा मोक्षं अष्ट चरमस्तु ।
ब्रह्म कल्पं कृष्णे तीर्थंकरे सोऽपि सेत्स्यति ॥ ८३३ ॥

पढमो। प्रथमस्त्रिपृष्ठस्सप्तमीं पृथिवीं प्राप। अन्ये पञ्च षष्ठीं पुण्डरीकः पुरुषदत्तः

---

[1] बलदेवाना—(ब०, प०)।

पञ्चमीं पृथ्वीं गतः नारायणः चतुर्थीं भूमिपवाप, कृष्णस्तृतीयां भुवं प्रापत् । एते गुरुपापाः ॥ ८३२ ॥

णिरयं । एतेषां प्रतिरिपवश्च तत्तन्नरकं गताः । अष्टौ बलदेवाः मोक्षं गताः, चरमस्तु पद्मो ब्रह्मकल्पं गतः सोऽपि कृष्णे तीर्थंकरे सति तस्मिन् काले सेत्स्यति सिद्धिं प्राप्स्यति ॥ ८३३ ॥

अब वासुदेवादि तीनों जिस गति को प्राप्त हुए हैं, उसे दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :— महत् पाप के भार से प्रथम नारायण सप्तम नरक, अन्य पाँच नारायण छठवें नरक, पुरुदत्त पाँचवें नरक, नारायण (लक्ष्मण) चौथे नरक और कृष्ण तीसरे नरक गए हैं। इनके प्रतिशत्रु प्रतिनारायण भी उसी उसी नरक में गए हैं जिनमें नारायण गए हैं। आदि के आठ बलदेव मोक्ष गए हैं और अन्तिम बलदेव ब्रह्म स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं सो भी कृष्ण नारायण का जीव जब तीर्थङ्कर होगा तब वे मोक्ष प्राप्त करेंगे ।। ८३२, ८३३ ।।

विशेषार्थ :— पहिला नारायण त्रिपृष्ठ और पहिला प्रतिनारायण अश्वग्रीव ये दोनों सप्तम नरक गए हैं। अन्य द्विपृष्ठ, स्वयम्भू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह और पुरुष पुण्डरीक ये पाँच नारायण तथा तारक, मेरक, निशुम्भ, मधुकैटभ और बलि ये पाँच प्रतिनारायण छठे नरक गए हैं। पुरुषदत्त, नारायण और प्रहरण प्रतिनारायण ये पाँचवें नरक लक्ष्मण नारायण और रावण प्रतिनारायण ये चौथे नरक तथा कृष्ण नारायण और जरासिन्धु प्रतिनारायण ये तीसरे नरक को प्राप्त हुए हैं। आदि के आठ बलभद्र मोक्ष गए हैं तथा पद्म नाम का नौवां बलभद्र ब्रह्मस्वर्ग को प्राप्त हुआ है किन्तु जब कृष्ण का जीव तीर्थङ्कर होगा उस समय वे भी सिद्धगति प्राप्त करेंगे।

अथ नारदानां नामादिकं गाथाद्वयेनाह—

भीम महभीम रुद्दा महरुद्दो कालओ महाकालो ।
तो दुम्मुह णिरयमुहा अहोमुहो णारदा एदे ॥ ८३४ ॥
कलहप्पिया कदाइं धम्मरदा वासुदेवसमकाला ।
भव्वा णिरयगदिं ते हिंसादोसेण गच्छंति ॥ ८३५ ॥

भीमो महाभीमः रुद्रो महारुद्रो कालो महाकालः ।
ततो दुर्मुखो निरयमुखः अधोमुखो नारदा एते ॥ ८३४ ॥
कलहप्रियाः कदाचिद्धर्मरताः वासुदेवसमकालाः ।
भव्याः नरकगतिं ते हिंसादोषेण गच्छन्ति ॥ ८३५ ॥

भीम । भीमो महाभीमो रुद्रो महारुद्रः कालो महाकालस्ततो दुर्मुखो नरकमुखोऽधोमुख इत्येते नव नारदाः ॥ ८३४ ॥

कलह । कलहप्रियाः कदाचिद्धर्मरताः वासुदेवसमकाला भव्यास्ते हिंसादोषेण नरकगतिं गच्छन्ति ॥ ८३५ ॥

अब नारदों के नामादि दो गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, दुर्मुख, नरकमुख और अधोमुख ये ९ नारद थे। ये कलहप्रिय, कदाचिद्धर्मरत और भव्य होते हैं। इनका वर्तना काल नारायणों के सदृश है। ये हिंसा दोष के कारण नरक गति को ही प्राप्त होते हैं ॥ ८३४, ८३५ ॥

विशेषार्थ :—१ भीम, २ महाभीम, ३ रुद्र, ४ महारुद्र, ५ काल, ६ महाकाल, ७ दुर्मुख, ८ नरकमुख और अधोमुख ये नव नारद होते हैं। इनका स्वभाव कलहप्रिय होता है, ये कदाचिद्धर्मरत भी होते हैं। इनका वर्तनाकाल नारायणों के सदृश ही होता है। अर्थात् ये नारायणों के काल में ही होते हैं। ये भव्य हैं अतः परम्परा सिद्धि प्राप्त करेंगे किन्तु वर्तमान पर्याय में हिंसा दोष के कारण नरकगति को ही प्राप्त होते हैं।

इदानीं रुद्राणां संज्ञापूर्वकं संख्यामाह—

भीमावलि जिदसत्तू रुद्द विसालणयण सुप्पदिट्ठचला ।
तो पुंडरीय अजिदंधर जिदणाभीय पीढ सच्चइजो ॥८३६॥

भीमावलिः जितशत्रुः रुद्रः विशालनयनः सुप्रतिष्ठोऽचलः ।
ततः पुण्डरीक अजितन्धरो जितनाभिः पीठः सत्यकिजः ॥८३६॥

भीमा । भीमावलिर्जितशत्रुः रुद्रो विशालनयनः सुप्रतिष्ठोऽचलस्ततः पुण्डरीकोऽजितन्धरो जितनाभिः पीठः सत्यकात्मज इत्येते एकादश रुद्राः स्युः ॥ ८३६ ॥

रुद्रों के नाम और उनकी संख्या कहते हैं—

गाथार्थ :—भीमावलि, जितशत्रु, रुद्र, विशालनयन, सुप्रतिष्ठ, अचल, पुण्डरीक, अजितन्धर, जितनाभि, पीठ और सत्यकात्मज ये ग्यारह रुद्र हुए हैं ॥ ८३६ ॥

अथ तेः प्रवर्तितकालमाह—

उसहदुकाले पढमदु मवण्णे सत्त सुविहिपहुदीसु ।
पीढो संतिजिणिंदे वीरे सच्चइसुदो जादो ॥ ८३७ ॥

वृषभद्विकाले प्रथमद्वौ सप्तान्ये सप्त सुविधिप्रभृतिषु ।
पीठः शान्तिजिनेन्द्रे वीरे सत्यकिसुतो जातः ॥ ८३७ ॥

उसह । वृषभाजितयोः काले प्रथमद्वितीयौ भवतः ततः परमन्ये सप्त सप्त सुविधादिजिनकालेषु च भवन्तीति । पीठः शान्तिजिनेन्द्रकाले स्यात् । सत्यकिसुतो वीरजिनेन्द्रकाले जातः ॥ ८३७ ॥

अब इनका प्रवर्तन काल बताते हैं—

गाथार्थ :—वृषभ और अजित जिनेन्द्र के काल में क्रमशः प्रथम और द्वितीय रुद्र हुए। अन्य सात रुद्र पुष्पदन्तादि सात जिनेन्द्रों के कालों में हुए। पीठ नामक दसवाँ रुद्र शान्ति जिनेन्द्र के काल में और अन्तिम सत्यकात्मज रुद्र वीर जिनेन्द्र के काल में उत्पन्न हुआ॥ ८३७॥

विशेषार्थ :—वृषभ जिनेन्द्र के काल में भीमावलि, अजितजिनेन्द्र के काल में जितशत्रु तथा पुष्पदन्त से धर्मनाथ पर्यन्त सात तीर्थङ्करों के काल में रुद्र से जितनाभि पर्यन्त सात, शान्तिनाथ के काल में पीठ और वीर जिनेन्द्र के काल में अन्तिम सत्यकात्मज नामक रुद्र हुए हैं।

अथ तेषां शरीरोत्सेधमाह—

पणसय पण्णूणसयं पंचसु दसहीणमट्ठ चउवीसं।
तक्कायधणुस्सेहो सच्चइतणयस्स सत्तकरा॥ ८३८॥

पञ्चशतं पञ्चाशदूनशतं पञ्चसु दशहीनं अष्ट चतुर्विंशतिः।
तत्कायधनुरुत्सेधः सत्यकितनयस्य सप्तकरः॥ ८३८॥

पण। तेषां शरीरोत्सेधः क्रमेण पञ्चशतचापानि ५०० तान्येव पञ्चाशदूनानि ४५० शतचापानि १०० ततः परं पञ्चसु दशहीनानि ९०। ८०। ७०। ६०। ५०। अष्टाविंशतिचापानि २८ चतुर्विंशतिचापानि २४ सत्यकितनयस्य तु सप्त हस्ताः स्युः॥ ८३८॥

अब उनके शरीर का उत्सेध कहते हैं—

गाथार्थ :—उन रुद्रों के शरीर की ऊँचाई क्रमशः ५०० धनुष, ४५० धनुष, १०० धनुष, ९० धनुष, ८० धनुष, ७० धनुष, ६० धनुष, ५० धनुष, २८ धनुष, २४ धनुष तथा अन्तिम सत्यकितनय की (ऊँचाई) सात हाथ प्रमाण थी॥ ८३८॥

अथ तेषामायुष्यमाह—

तेसीदिगिसत्तरि बिगि लक्खा पुव्वाणि वास लक्खाओ।
चुलसीदि सट्ठि दसु दसहीणदलिगि वस्सणवसट्ठी॥८३९॥

त्र्यशीतिरेकसप्ततिः द्व्येकं लक्षपूर्वाणि वर्षलक्षाणि।
चतुरशीतिः षष्टिः द्वयोः दशहीनदलैकं वर्षनवषष्टिः॥ ८३९॥

तेसी। तेषामायुः क्रमेण त्र्यशीति ८३ लक्षपूर्वाणि, एकसप्तति ७१ लक्षपूर्वाणि, द्वि २ लक्षपूर्वाणि, एकलक्षपूर्वाणि। ततः परं चतुरशीति ८४ लक्षवर्षाणि, षष्टि ६० लक्षवर्षाणि इतो द्वयोर्दश दशहीनानि ५०। ४०। ल० तद्दलप्रमितानि २० ल० एकलक्षवर्षाणि १ ल० नवषष्टिवर्षाणि ६९ स्युः॥ ८३९॥

अब उनकी आयु बताते हैं :—

गाथार्थ :—उन रुद्रों की आयु क्रमशः ८३ लाख पूर्व, ७१ लाख पूर्व, २ लाख पूर्व, एक लाख पूर्व, ८४ लाख वर्ष, ६० लाख वर्ष, ५० लाख वर्ष, ४० लाख वर्ष, २० लाख वर्ष, एक लाख वर्ष और ६९ वर्ष प्रमाण थी ।। ८३९ ।।

इतस्तैराप्तगतिविशेषमाह—

पढमदु माघविमज्झे पण मघवि अट्ठमो दु रिट्ठमहिं ।
दो अंजणं पवण्णा मेघं सच्चइतणू जादो ।। ८४० ।।

प्रथमद्वौ माघवीमध्ये पञ्च मघवीमष्टमस्तु अरिष्टमहीं ।
द्वौ अञ्जनां प्रपन्नौ मेघां सत्यकितनुर्जातः ।। ८४० ।।

पढम । तेषु प्रथमद्वितीयौ माघवी ७ मापतुः, ततोऽन्ये पञ्च मघवी ६ मापुः, अष्टमस्त्वरिष्ट ५ महीमाप, ततः परं द्वावञ्जनां ४ प्रपन्नौ, सत्यकितनुजातो मेघां ३ गतः ।। ८४० ।।

अब उन रुद्रों द्वारा प्राप्त की गई गति के सम्बन्ध में कहते हैं—

गाथार्थ :—प्रथम और द्वितीय रुद्र माघवी (सातवीं) पृथ्वी को प्राप्त हुए हैं। अन्य पाँच रुद्र मघवी (छठी) को; अष्टम रुद्र अरिष्ट (पाँचवीं) पृथ्वी को; नवाँ और दसवाँ रुद्र अञ्जना (चौथी) पृथ्वी को तथा अन्तिम रुद्र सत्यकितनु मेघा (तीसरी) पृथ्वी को प्राप्त हुए हैं ।। ८४० ।।

अथ तेषां विशेषस्वरूपमाह—

विज्जाणुवादपढणे दिट्ठफला णट्ठसंजमा भव्वा ।
कदिचि भवे सिज्झंति हु गहिदुज्झियसम्ममहिमादो ।।८४१।।

विद्यानुवादपठने दृष्टफला नष्टसंयमा भव्याः ।
कतिचिद्भवेषु सिध्यन्ति हि गृहीतोज्झितसम्यमहिम्नः ।।८४१।।

विज्जा । विद्यानुवादपठने दृष्टफला नष्टसंयमा भव्यास्ते गृहीतोज्झितसम्यक्त्वमाहात्म्यात् कतिचिद्भवेषु सिध्यन्ति ।। ८४१ ।।

अब उनका विशेष स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—वे रुद्र विद्यानुवाद नामक पूर्व को पढ़ते हुए इह लोक सम्बन्धी फल के भोक्ता, ग्रहण किए हुए संयम को नष्ट करने वाले, भव्य और ग्रहण किए हुए सम्यक्त्व को छोड़ देने के माहात्म्य से अनेक पर्यायों को धारण करने के बाद सिद्ध पद प्राप्त करेंगे ।। ८४१ ।।

विशेषार्थ :—वे सभी रुद्र विद्यानुवाद नाम दशम पूर्व के पढ़ते समय व्यामोह में आकर इह लोक सम्बन्धी फल के भोक्ता, ग्रहण किए हुए संयम को नष्ट करने वाले और भव्य हैं तथा ग्रहण किए हुए सम्यक्त्व को छोड़ देने के कारण अनेक भव धारण करने के बाद सिद्ध पद के स्वामी होंगे।

नारदों के उत्सेध और आयु आदि का उपदेश प्राप्त नहीं है।

बलभद्रों, नारायणों, प्रतिनारायणों—रुद्रों और नारदों के नाम—उत्सेध और आयु आदि

बलभद्रों के					नारायणों एवं प्रतिनारायणों के					रुद्रों के						नारदों के		
क्रमांक	नाम	उत्सेध धनुषों में	आयु	प्राप्त गति	क्रमांक	नारायण–प्रति-नारायण	उत्सेध धनुषों में	आयु	प्राप्त गति	क्रमांक	नाम	उत्सेध (धनुष)	आयु	प्राप्त गति	क्रमांक	नाम	प्राप्त गति
१	विजय	८० ध.	८७ ला० वर्ष	मोक्ष	१	त्रिपृष्ठ-अश्वग्रीव	८० ध.	८४ लाख वर्ष	सप्तम् नरक	१	भीमावलि	५०० धनुष	८३ लाख पूर्व	७ वें नरक	१	भीम	नरक
२	अचल	७० ,,	७७ ,,	मोक्ष	२	द्विपृष्ठ-तारक	७० ध.	७२ ,, ,,	षष्ठम् नरक	२	जितशत्रु	४५०	७१ ,, ,,	,,	२	महाभीम	,,
३	सुधर्म	६० ,,	६७ ,,	मोक्ष	३	स्वयंभू-मेरक	६० ,,	६० ,, ,,	,,	३	रुद्र	१०० धनुष	२ ,, ,,	६ वें नरक	३	रुद्र	,,
४	सुप्रभ	५० ,,	३७ ,,	मोक्ष	४	पुरुषोत्तम-निशुंभ	५० ,,	३० ,, ,,	,,	४	विशाल-नयन	९० ध०	१ ,, ,,	,,	४	महारुद्र	,,
५	सुदर्शन	४५ ,,	१७ ,,	मोक्ष	५	पुरुषसिंह-मधुकै	४५ ,,	१० ,, ,,	,,	५	सुप्रतिष्ठ	८० ,,	८४ ,, वर्ष	,,	५	काल	,,
६	नन्दी	२९ ,,	६७ हजा. ,,	मोक्ष	६	पुरुष–बलि	२९ ,,	६५ हजार वर्ष	,,	६	अचल	७० ,,	६० ,, ,,	,,	६	महाकाल	,,
७	नन्दिमित्र	२२ ,,	३७ ,,	मोक्ष	७	पुरुषदत्त-प्रहरण	२२ ,,	३२ ,, ,,	पञ्चम् नरक	७	पुण्डरीक	६० ,,	५० ,, ,,	,,	७	दुर्मुख	,,
८	राम	१६ ,,	१७ ,,	मोक्ष	८	लक्ष्मण-रावण	१६ ,,	१२ ,, ,,	चतुर्थ	८	अजितंधर	५० ,,	४० ,, ,,	५ वें नरक	८	नरकमुख	,,
९	पद्म	१० ,,	१२०० ,,	ब्रह्म स्वर्ग	९	कृष्ण-जरासिन्धु	१० ,,	१ ,, ,,	तृतीय नरक	९	जितनाभि	२८ ,,	२० ,, ,,	४ थे नरक	९	अधोमुख	,,
										१०	पीठ	२४ ,,	१ ,, ,,	,,			
										११	सात्यकितनय	७ हाथ	६९ वर्ष	३ रे नरक			

अथ चक्रयर्धचक्रिरुद्राणां वर्तनाकालं पुनरपि युगपदेव रचनाविशेषेण गाथापञ्चकेनाह—

जिणसमकोट्ठट्ठविदा समकाले सुण्णहेट्ठिमे रचिदा ।
उहयजिणंतरजादा सण्णेया चक्कहररुद्दा ॥ ८४२ ॥

जिनसमकोष्ठस्थापिताः समकाले शून्याधस्तने रचिताः ।
उभयजिनान्तरजाता संज्ञेया चक्रधररुद्राः ॥ ८४२ ॥

जिण। जिनेन्द्राणां समकोष्ठे स्थापिताश्चक्रयर्धचक्रिरुद्राः तेषां समकाले जाता इति ज्ञातव्याः शून्याधस्तनभागे रचितास्ते उभयजिनान्तराले जाता इति ज्ञातव्याः ॥ ८४२ ॥

चक्री, अर्धचक्री और रुद्रों का वर्तनाकाल पुनः युगपत् रचना विशेष द्वारा पाँच गाथाओं में कहते हैं—

गाथार्थ :—जिनेन्द्र के समान कोठों में स्थापित किए हुए चक्रवर्ती, अर्धचक्रवर्ती एवं रुद्रों को उनके समकालीन जानना तथा शून्य के नीचे स्थापित चक्रवर्ती आदि को दो जिनेन्द्र देवों के अन्तराल में उत्पन्न हुआ जानना चाहिए ॥ ८४२ ॥

तेषां कोष्ठानां विन्यासक्रमः कथमिति चेत्—

पण्णर जिण खदु तिजिणा, सुण्णदु
जिण गयणजुगल जिण खदुगं ।
जिण खं जिण खं दुजिणा,
इदि चोत्तीसालया णेया ॥ ८४३ ॥

पञ्चदशजिना खद्वयं त्रिजिनाः, शून्यद्वयं जिनः गगनयुगलं जिनः खद्वयं ।
जिनः खं जिनः खं द्विजिनौ इति चतुस्त्रिंशदालया ज्ञेयाः ॥ ८४३ ॥

पण्णर। पञ्चदशजिनास्तत्पुरस्ताच्छून्यद्वयं ततस्त्रयो जिनाः ततः शून्यद्वयं ततः पुनर्जिन ततः शून्ययुगलं ततो जिनस्ततः शून्यद्वयं ततो जिनस्ततः शून्यं ततो जिनस्ततः शून्यं द्वौ जिनौ इति पंक्तिक्रमेण चतुस्त्रिंशत्कोष्ठा ज्ञातव्याः ॥ ८४३ ॥

उनके कोठों का विन्यास क्रम कैसे है ? उसे कहते हैं :—

गाथार्थ :—वृषभादि पन्द्रह जिन, उससे आगे दो शून्य, उससे आगे तीन जिन, आगे दो शून्य, फिर जिन, फिर दो शून्य, आगे एक जिन, फिर दो शून्य, उससे आगे एक जिन, एक शून्य, फिर एक जिन, एक शून्य और उसके बाद दो जिन इस प्रकार चौंतीस कोठे जानना ॥ ८४३ ॥

विशेषार्थ :—प्रथमादि पन्द्रह कोठों में वृषभादि पन्द्रह जिनेन्द्रों के नाम लिखकर दो कोठों में दो शून्य रखना, उससे आगे तीन जिनेन्द्रों के नाम पुनः स्थापन करना, उससे आगे के कोठों में दो

शून्य फिर एक जिन दो शून्य फिर एक जिन दो शून्य पुनः एक जिन एक शून्य, उससे आगे एक जिन एक शून्य और उसके आगे दो जिनेन्द्रों का स्थापन करना चाहिए।

तदधस्तनपंक्तौ किमिति चेत्—

चक्किदु तेरस सुण्णा छच्चक्की गयणतिदय चक्की खं।
चक्की णभदुग चक्की गयणं चक्कहर सुण्णदुगं॥ ८४४॥

दसगयणपंचकेसवछस्सुण्णा पउमणाभणभविण्हू।
गयणति केसव सुण्णदु मुरारि सुण्णतियं कमसो॥८४५॥

रुद्दुगं छस्सुण्णा सत्त हरा गयणजुगलमीसाणो।
पण्णर णभाणि तत्तो सच्चइतणओ महावीरे॥ ८४६॥

चक्रिद्वौ त्रयोदशशून्यानि षट्चक्रिणः गगनत्रितयं चक्री खं।
चक्री नभोद्विकं चक्री गगनं चक्रधरः शून्यद्वयं॥ ८४४॥

दशगगनं पञ्चकेशवाः षट्शून्यानि पद्मनाभनभोविष्णुः।
गगनत्रयं केशवः शून्यद्वयं मुरारिः शून्यत्रयं क्रमशः॥ ८४५॥

रुद्रद्विकं षट्शून्यानि सप्तहराः गगनयुगलमीशानः।
पञ्चदशनभांसि ततः सत्यकीतनयः महावीरे॥ ८४६॥

चक्कि। चक्रिणौ द्वौ तत्पुरस्तात् त्रयोदशशून्यानि, ततः षट्चक्रिणस्ततो गगनत्रयं, ततश्चक्री ततः खं ततश्चक्री ततो नभोद्विकं ततश्चक्री ततो गगनं ततश्चक्रधरः ततः शून्यद्वयमित्येवं स्थापनीयं॥ ८४४॥

दस। तृतीयपंक्तौ तु दशशून्यानि ततः पुरस्तात् पञ्चकेशवाः ततः षट्शून्यानि ततः केशवस्ततो नभस्ततो विष्णुस्ततो गगनत्रयं ततः केशवस्ततः शून्यद्वयं ततो मुरारिस्ततः शून्यत्रयं इत्येवं क्रमेण स्थापनीयं॥ ८४५॥

रुद्द। चतुर्थपंक्तौ पुना रुद्रौ द्वौ ततः षट् शून्यानि ततः सप्तरुद्रास्ततो गगनयुगलं ततः ईशानस्ततः पञ्चदशनभांसि ततः सत्यकितनयः श्रीमहावीरजिनकाले स्यात्। इत्येवं क्रमेण संस्थापनीयं॥ ८४६॥

उसके नीचे की दूसरी पंक्ति में क्या रखना ? उसे कहते हैं—

गाथार्थ :—दो चक्रवर्ती उससे आगे तेरह शून्य उसके आगे छह चक्रवर्ती और तीन शून्य उसके आगे एक चक्रवर्ती एक शून्य इसके आगे एक चक्रवर्ती दो शून्य उसके आगे एक चक्री

एक शून्य और इसके भी आगे एक चक्री और दो शून्य द्वितीय पंक्ति में स्थापन करना चाहिए। इसके आगे तीसरी पंक्ति में दश शून्य पाँच नारायण उसके आगे छह शून्य एक नारायण उसके आगे एक शून्य एक नारायण, उसके आगे तीन शून्य एक नारायण उसके आगे दो शून्य एक नारायण और उसके आगे तीन शून्य स्थापन करना चाहिए।

इसके बाद चौथी पंक्ति में दो रुद्र छह शून्य उसके आगे सात रुद्र, दो शून्य उसके आगे एक रुद्र और पन्द्रह शून्य तथा इसके आगे महावीर जिनेन्द्र के काल में होने वाले ग्यारहवें सत्यकितनय रुद्र की स्थापना करना चाहिए ॥ ८४४, ८४५, ८४६ ॥

विशेषार्थ :—बलदेव और प्रतिनारायण की दो पंक्तियों सहित विशेषार्थ का चार्ट निम्न प्रकार है :—

[कृपया चार्ट अगले पृष्ठ पर देखिए]

तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण

१	तीर्थङ्कर	वृषभ	अजित	सं०	अ०	सु०	पद्म	सुपा०	चन्द्र	पुष्प	शीतल	श्रेयां०	वासु०	विम०	अनन्त	धर्म	०
२	चक्रवर्ती	भरत	सगर	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	म-घ.
३	बलदेव	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	विजय	अचल	सुधर्म	सुप्रभ	सुदर्श०	०
४	नारायण	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	त्रिपृष्ठ	द्विपृष्ठ	स्वयंभू	पुरुषो-त्तम	पुरुष-सिंह	०
५	प्रतिनारा०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	अश्व-ग्रीव	तारक	मेरक	निशुंभ	मधु-कैटभ	०
६	नारद	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	भीम	महा-भीम	रुद्र	महारुद्र	काल	०
७	रुद्र	भीमा-वलि	जित-शत्रु	०	०	०	०	०	०	रुद्र	विशाल नयन	सुप्र०	अचल	पुण्ड-रीक	अजितं-धर	जित-नाभि	०

और रुद्रोंका–वर्तना काल

•	शांति	कुं∘	अ.	•	∘	म.	•	∘	मुनि∘	∘	•	नमि	•	नेमि	∘	पार्श्व	वर्धमान
सन.	शां∘	कुं∘	अ.	सु.	•	•	•	महा∘	•	हरि∘	∘	•	जय	•	ब्रह्म∘	•	∘
•	•	•	∘	•	नन्दी	•	न.मि.	•	•	•	राम	•	∘	पद्म	∘	•	•
•	•	•	•	∘	पुरुषपुण्डरीक	•	पु.दत्त	∘	•	•	लक्ष्मण	•	•	कृष्ण	•	∘	•
∘	∘	∘	∘	∘	बलि	•	प्रह्-रण	∘	•	∘	रावण	∘	∘	जरा∘	•	∘	∘
•	•	•	∘	∘	महाकाल	∘	दुर्मुख	•	•	∘	नरकमुख	•	∘	अधोमुख	•	∘	∘
•	पीठ	∘	∘	∘	∘	•	•	•	∘	∘	•	∘	•	∘	∘	∘	सत्यकि•

अथ तीर्थंकरशरीरवर्णादिकं तद्वंशं च गाथात्रयेणाह—

पउमप्पहवसुपुज्जा रत्ता धवला हु चंदपहसुविही ।
णीला सुपासपासा णेमीमुणिसुव्वया किण्हा ॥ ८४७ ॥
सेसा सोलस हेमा वसुपुज्जो मल्लिणेमिपासजिणा ।
वीरो कुमारसवणा महवीरो णाहकुलतिलओ ॥ ८४८ ॥
पासो दु उग्गवंसो हरिवंसो सुव्वओ वि णेमीसो ।
धम्मजिणो कुंथु अरा कुरुजा इक्खाउगा सेसा ॥ ८४९ ॥

पद्मप्रभवासुपूज्यौ रक्तौ धवलौ हि चन्द्रप्रभसुविधी ।
नीलौ सुपार्श्वपार्श्वौ नेमिमुनिसुव्रतौ कृष्णौ ॥ ८४७ ॥
शेषाः षोडश हेमा वासुपूज्यो मल्लिनेमिपार्श्वजिनाः ।
वीरः कुमारश्रमणा महावीरो नाथकुलतिलकः ॥ ८४८ ॥
पार्श्वस्तु उग्रवंशः हरिवंशः सुव्रतोऽपि नेमीशः ।
धर्मजिनः कुन्थुः अरः कुरुजाः इक्ष्वाकवः शेषाः ॥ ८४९ ॥

पउम । पद्मप्रभवासुपूज्यौ रक्तवर्णौ चन्द्रप्रभपुष्पदन्तौ धवलवर्णौ सुपार्श्वपार्श्वजिनौ नीलवर्णौ नेमिमुनिसुव्रतौ कृष्णवर्णौ ॥ ८४७ ॥

सेसा । शेषाः षोडशतीर्थंकरा हेमवर्णाः वासुपूज्यो मल्लिर्नेमिपार्श्वजिनौ वीरजिन इति पञ्च कुमारश्रमणाः महावीरो नाथकुलतिलकः ॥ ८४८ ॥

पासो । पार्श्वजिनस्तूग्रवंशो मुनिसुव्रतो नेमीश्वरश्च हरिवंशः धर्मकुन्थ्वरजिनाः कुरुवंशजाः शेषाः इक्ष्वाकुवंशजाः ॥ ८४९ ॥

तीर्थङ्करों के शरीर का वर्णादि और उनके वंश को तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—पद्मप्रभ और वासुपूज्य ये दो तीर्थङ्कर रक्त वर्ण, चन्द्र प्रभु और पुष्पदन्त ये दो श्वेत वर्ण, सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ ये दो नील वर्ण, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ ये दो कृष्ण वर्ण तथा शेष सोलह तीर्थङ्कर स्वर्ण सदृश वर्ण वाले थे । वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर ये पाँच तीर्थंकर कुमार श्रमण हैं । महावीर नाथवंश के तिलक हैं । तथा पार्श्वनाथ उग्रवंश में, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ हरिवंश में, धर्म, कुन्थु और अरनाथ कुरुवंश में तथा अवशेष सत्रह तीर्थंकर इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए थे ॥ ८४७, ८४८, ८४९ ॥

विशेषार्थ :— पद्मप्रभ और वासुपूज्य ये दो तीर्थङ्कर रक्तवर्ण, चन्द्रप्रभ पुष्पदन्त श्वेतवर्ण, सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ नीलवर्ण, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ कृष्णवर्ण तथा शेष सोलह तीर्थंकर

स्वर्ण सदृश वर्ण वाले थे। वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर ये पाँच तीर्थंकर कुमार श्रमण अर्थात् बालब्रह्मचारी हुए हैं। अवशेष १९ तीर्थंकरों का विवाह हुआ था। महावीर नाथवंश में, पार्श्वनाथ उग्रवंश में, मुनिसुव्रत और नेमिनाथ हरिवंश में, धर्म, कुन्थु और अरनाथ कुरु-वंश में तथा अवशेष सत्रह तीर्थंकर इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुए थे।

इदानीं शककल्किनोरुत्पत्तिमाह—

पणछस्सयवस्सं पणमास जुदं गमिय वीरणिव्वुइदो।
सगराजो तो कक्की चदुणवतियमहियसगमासं ॥ ८५० ॥

पञ्चषट्शतवर्षं पञ्चमासयुतं गत्वा वीरनिर्वृतेः।
शकराजो ततः कल्की चतुर्णवत्रिकमधिकसप्तमासं ॥८५०॥

पण। श्रीवीरनाथनिर्वृतेः सकाशात् पञ्चोत्तरषट्छतवर्षाणि ६०५ पञ्च ५ मासयुतानि गत्वा पश्चात् विक्रमाङ्कशकराजो जायते। तत उपरि चतुर्णवत्युत्तरत्रिशत् ३९४ वर्षाणि सप्तमासाधिकानि गत्वा पश्चात् कल्की जायते ॥ ८५० ॥

अब शक और कल्कि की उत्पत्ति कहते हैं—

गाथार्थ :—श्री वीर प्रभु के मोक्ष जाने के छह सौ पाँच वर्ष पाँच माह बीत जाने पर शक राजा उत्पन्न हुआ था और इसके तीन सौ चौरानवें वर्ष सात माह बीत जाने पर कल्कि की उत्पत्ति हुई थी ॥ ८५० ॥

विशेषार्थ।—श्री वर्धमान स्वामी के मोक्ष जाने के ६०५ वर्ष ५ माह बाद विक्रमनामका शक राजा और इसके ३९४ वर्ष ७ माह बाद कल्कि उत्पन्न हुआ अर्थात् वीर जिनेश के मोक्ष जाने के (६०५,५ + ३९४,७) १००० वर्ष बाद कल्कि की उत्पत्ति हुई।

इदानीं कल्किनः कृत्यं गाथाषट्केनाह—

सो उम्मग्गाहिमुहो चउम्मुहो सदरिवासपरमाऊ।
चालीस रज्जओ जिदभूमी पुच्छइ समंतिगणं ॥८५१॥

अम्हाणं के अवसा णिग्गंथा अत्थि केरिसायारा।
णिद्धणवत्था भिक्खाभोजी जहसत्थमिदिवयणे ॥८५२॥

तप्पाणिउडे णिवडिद पढमं पिंडं तु सुक्कमिदिगेज्झं।
इदि णियमे सचिवकदे चत्ताहारा गया मुणिणो ॥ ८५३ ॥

तं सोढुमक्खमो तं णिहणदि वज्जाउहेण असुरवई।
सो भुंजदि रयणपहे दुक्खग्गाहेक्कजलरासिं ॥ ८५४ ॥

तब्भयदो तस्स सुतो अजिदंजयसण्णिदो सुरारिं तं ।
सरणं गच्छइ चेलयसण्णाए सह समहिलाए ॥ ८५५ ॥
सम्मद्दंसणरयणं हिययाभरणं च कुणदि सो सिग्घं ।
पच्चक्खं दट्ठूणिह सुरकयजिणधम्ममाहप्पं ॥ ८५६ ॥

सः उन्मार्गाभिमुखः चतुर्मुखः सप्ततिवर्षपरमायुष्यः ।
चत्वारिंशत् राज्यः जितभूमिः पृच्छति स्वमन्त्रीगणं ॥ ८५१ ॥
अस्माकं के अवशाः निर्ग्रन्थाः सन्ति कीदृशाकाराः ।
निर्धनवस्त्राः भिक्षाभोजिनः यथाशास्त्रमिति वचने ॥ ८५२ ॥
तत्पाणिपुटे निपतितं प्रथमं पिण्डं तु शुल्कमिति ग्राह्यं ।
इति नियमे सचिवकृते त्यक्ताहाराः गताः मुनयः ॥ ८५३ ॥
तं सोढुमक्षमः तं निहन्ति वज्रायुधेन असुरपतिः ।
स भुङ्क्ते रत्नप्रभायां दुःखप्राह्यैकजलराशिं ॥ ८५४ ॥
तद्भयतः तस्य सुतः अजितञ्जयसंज्ञितः सुरारिं तं ।
शरणं गच्छति चेलकासंज्ञया सह स्वमहिलया ॥ ८५५ ॥
सम्यग्दर्शनरत्नं हृदयाभरणं च करोति सः शीघ्रं ।
प्रत्यक्षं दृष्ट्वा इह सुरकृतजिनधर्ममाहात्म्यं ॥ ८५६ ॥

सो । स कल्की उन्मार्गाभिमुखश्चतुर्मुखाख्यः सप्ततिवर्षपरमायुष्यश्चत्वारिंशद्वर्षं ४० राज्यो जितभूमिः सन् स्वमन्त्रिगणं पृच्छति ॥ ८५१ ॥

अम्हा । अस्माकं के अवशा इति ? मन्त्रिणः कथयन्ति—निर्ग्रन्थाः सन्ति इति । पुनः पृच्छति ते कीदृशाकारा इति ? निर्धनवस्त्रा यथाशास्त्रं भिक्षाभोजिनः । इति मन्त्रिणः प्रतिवचनं श्रुत्वा ॥ ८५२ ॥

तप्पाणि । तेषां निर्ग्रन्थानां पाणिपुटे निपतितं प्रथमपिण्डं शुल्कमिति ग्राह्यमिति राज्ञो नियमे सचिवेन कृते सति त्यक्ताहाराः सन्तो मुनयो गताः ॥ ८५३ ॥

तं । तमपराधं सोढुमक्षमोऽसुरपतिश्चमरेन्द्रो वज्रायुधेन तं राजानं निहन्ति स मृत्वा रत्नप्रभायां दुःखप्राह्यैकजलराशिं भुङ्क्ते ॥ ८५४ ॥

तब्भय । तस्मादसुरपतिभयात्तस्य राज्ञः सुतोऽजितञ्जयसंज्ञितः चेलकासंज्ञया स्वमहिलया सहितं सुरारिं शरणं गच्छति ॥ ८५५ ॥

सम्म । स पुनः सुरकृतजिनधर्ममाहात्म्यं प्रत्यक्षं दृष्ट्वा शीघ्रं सम्यग्दर्शनरत्नं हृदयाभरणं करोति ॥ ८५६ ॥

अब छह गाथाओं द्वारा कल्कि राजा के कार्य कहते हैं :—

गाथार्थ :—वह कल्कि उन्मार्गाभिमुख होता है। उसका नाम चतुर्मुख और परमायु सत्तर वर्ष की होती है। उसके राज्यकाल की अवधि चालीस वर्ष प्रमाण है। भूमि को जीतता हुआ वह अपने मन्त्रीगणों से पूछता है कि कौन हमारे वश में नहीं है ? मंत्रीगण बोले—निर्ग्रन्थ साधु नहीं हैं। उसने पूछा—उनका आकार कैसा है ? मन्त्री बोले—वे धन वस्त्र रहित होते हैं और शास्त्रानुसार भिक्षावृत्ति से भोजन लेते हैं। मन्त्री के ऐसे वचन सुनकर कल्कि ने मन्त्रियों सहित नियम बनाया कि उन निर्ग्रन्थों के पाणिपुट में रखा गया प्रथम ग्रास शुल्क रूप में ग्राह्य है नियमानुसार प्रथम ग्रास टैक्स रूप में मांगे जाने पर मुनि आहार छोड़ कर वन को चले गए। इस अपराध को सहन करने में असमर्थ असुरपति (चमरेन्द्र) ने वज्रायुध द्वारा उस कल्कि को मार डाला। वह कल्कि रत्नप्रभा पृथिवी में दुःख स्वरूप एक सागर प्रमाण आयु को भोग रहा है। उस असुरपति के भय से उस कल्कि का अजितञ्जय नामक पुत्र अपनी चेलका नाम की स्त्री के साथ उस पिता के शत्रु असुरपति की शरण को प्राप्त हुआ तथा असुरेन्द्र के द्वारा किए हुए जैन धर्म के माहात्म्य का प्रत्यक्ष फल देख कर उसने शीघ्र ही सम्यग्दर्शन रूपी रत्न को अपने हृदय का आभरण बनाया ॥ ८५१ से ८५६ तक ॥

विशेषार्थ :—सुगम है।

अथ चरमकल्कीस्वरूपं गाथापञ्चकेनाह—

इदि पडिसहस्सवस्सं वीसे कक्कीणदिक्कमे चरिमो ।
जलमंथणो भविस्सदि कक्की सम्मग्गमत्थणओ ॥ ८५७ ॥
इह इंदरायसिस्सो वीरंगद साहु चरिम सव्वसिरी ।
अज्जा अग्गिल सावय वरसाविय पंगुसेणावि ॥ ८५८ ॥
पंचमचरिमे पक्खद्धमासतिवासोवसेसए तेण ।
मुणिपढमपिंडगहणे सण्णसणं करिय दिवसतियं ॥ ८५९ ॥
सोहम्मे जायंते कत्तियअमवास सादि पुव्वण्हे ।
इगिजलहिठिदी मुणिणो सेसतिए साहियं पल्लं ॥ ८६० ॥
तव्वासरस्स आदीमज्झंते धम्मराय अग्गीणं ।
णासो तत्तो मणुसा णग्गा मच्छादिआहारा ॥ ८६१ ॥

इति प्रतिसहस्रवर्षं विंशतौ कल्कीनामतिक्रमे चरमः ।
जलमन्थनो भविष्यति कल्की सन्मार्गमन्थनः ॥ ८५७ ॥
इह इन्द्रराजशिष्यो वीराङ्गदः साधुश्चरमः सर्वश्रीः ।
आर्या अग्गिलः श्रावकः वरश्राविका पंगुसेनाऽपि ॥ ८५८ ॥

पञ्चमचरमे पक्षाष्टमासत्रिवर्षे अवशेषे तेन ।
मुनिप्रथमपिण्डग्रहणे सन्न्यसनं कृत्वा दिवसत्रयं ॥८५९ ॥

सौधर्मे जायन्ते कार्तिकामावस्यां स्वातौ पूर्वाह्णे ।
एकजलधिस्थितयो मुनयः शेषत्रयः साधिकं पल्यं ॥ ८६० ॥

तद्वासरस्य आदिमध्यान्ते धर्मराजाग्नीनां ।
नाशः ततो मनुष्या नग्ना मत्स्याद्याहाराः ॥ ८६१ ।

इदि । इत्येवं प्रतिसहस्रवर्षं विंशतिकल्किनामतिक्रमे सति चरमो जलमन्थनामकः सन्मार्गमन्थनः कल्की भविष्यति ॥ ८५७ ॥

इह । तस्मिन् काले इन्द्रराजाचार्यशिष्यो वीराङ्गदश्चरमः साधुः आर्यिका सर्वश्रीः श्रावकोऽग्निलो वरश्राविका पंगुसेनाऽपि ॥ ८५८ ॥

पचम । ते चत्वारः पञ्चमकालचरमे एकपक्षे अष्टमासे त्रिवर्षे अवशिष्टे सति तेन राज्ञा मुनि-प्रथमपिण्डग्रहणे कृते सति दिवसत्रयं सन्न्यसनं कृत्वा ॥ ८५९ ॥

सोहम्मे । तत्र मुनयः [1]कार्तिकामावस्यां स्वातिनक्षत्रे पूर्वाह्णे एकसागरोपमायुषः सौधर्मे जायन्ते शेषास्त्रयस्तत्रैव साधिकपल्यायुषो जायन्ते ॥ ८६० ॥

तव्वासर । तद्वासरस्यादौ मध्ये अन्ते च यथाक्रमं धर्मस्य राज्ञोऽग्नेश्च नाशः । ततः परं मनुष्या नग्ना मत्स्याद्याहाराः ॥ ८६१ ॥

अब अन्तिम कल्कि का स्वरूप पाँच गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—इस प्रकार एक एक हजार वर्ष बाद एक एक कल्कि होगा, तथा बीस कल्कियों का अतिक्रम हो जाने पर सन्मार्ग का मन्थन करने वाला जलमन्थन नामका अन्तिम कल्कि होगा। उसी काल में इन्द्रराजा नामक आचार्य के शिष्य वीराङ्गद नामक अन्तिम साधु, सर्वश्री नाम की आर्यिका, अग्निल नामक उत्कृष्ट श्रावक और पंगुसेना नाम की श्राविका होगी। पञ्चमकाल के अन्त में तीन वर्ष, ८ माह और एक पक्ष अवशिष्ट रहने पर उस कल्कि द्वारा पूर्वोक्त प्रकार मुनिराज के हस्तपुट का प्रथम ग्रास शुल्क स्वरूप ग्रहण किया जाएगा। तब वे चारों तीन दिन के सन्यास पूर्वक कार्तिक वदी अमावस्या को स्वाति नक्षत्र एवं पूर्वाह्ण काल में मरण को प्राप्त हो सौधर्म स्वर्ग में मुनि तो एक सागर आयु के धारी और शेष तीनों साधिक एक पल्य की आयु के धारी उत्पन्न होंगे। उसी दिन आदि मध्य और अन्त में क्रम से धर्म, राजा एवं अग्नि का नाश हो जाएगा इसलिए उसके बाद मनुष्य मत्स्यादि का भक्षण करने वाले और नग्न होंगे ॥ ८५७ से ८६१ ॥

---

1 कार्तिकमासेऽमावस्यायां (ब०, प०)।

विशेषार्थ :—इस प्रकार इस पञ्चम काल में प्रत्येक एक हजार वर्ष बाद एक कल्कि राजा होगा तथा बीस कल्कि राजाओं के हो जाने के बाद सन्मार्ग का मन्थन करने वाला जलमन्थन नाम का अन्तिम कल्कि होगा। उसी काल में इन्द्रराज आचार्य के शिष्य वीराङ्गद नाम के अन्तिम मुनि, सर्वश्री नामकी आर्यिका, अग्निल नामक उत्कृष्ट श्रावक और पंगुसेना नामकी श्राविका होगी। जब पञ्चम काल के ३ वर्ष ८½ माह अवशेष रहेंगे तब वह जल मन्थन नामक कल्कि राजा पूर्वोक्त प्रकार मुनिराज के पाणिपुट में आए हुए प्रथम ग्रास को शुल्क स्वरूप से ग्रहण करेगा, तब वे चारों जन सल्लेखना धारण कर लेंगे और सल्लेखना धारण करने के तीन दिन बाद ही कार्तिक बदी अमावस्या को पूर्वाह्न काल एवं स्वाति नक्षत्र में मरण को प्राप्त हो सौधर्म स्वर्ग में मुनिराज तो एक सागर की आयु लेकर और अवशेष तीन साधिक एक पल्य की आयु लेकर उत्पन्न होंगे। उसी दिन के आदि में अर्थात् प्रातःकाल धर्म का, मध्याह्न में राजा का और सन्ध्याकाल में अग्नि का नाश हो जाएगा। इसके बाद मनुष्य नग्न रहेंगे और मत्स्यादि का आहार (भक्षण) करेंगे।

अथ धर्मादीनां विनाशकारणमाह—

पोग्गलअइरुक्खादो जलणे धम्मे णिरासएण हदे।
असुरवइणा णरिंदे सयलो लोओ हवे अंधो ॥ ८६२ ॥

पुद्गलातिरौक्ष्यात् ज्वलने धर्मे निराश्रयेण हते।
असुरपतिना नरेन्द्रे सकलो लोको भवेत् अन्धः ॥८६२॥

पोग्गल । पुद्गलानामतिरौक्ष्यात् ज्वलने नष्टे निराश्रयेण धर्मे हते असुरपतिना नरेन्द्रे च हते सति पश्चात् सकलो लोकोऽन्धो भवेत् ॥ ८६२ ॥

अब धर्मादिक के नाश का कारण कहते हैं—

गाथार्थ :—पुद्गल द्रव्य में अत्यन्त रूक्षता आ जाने से अग्नि का नाश, समीचीन धर्म के आश्रयभूत मुनिराज का अभाव हो जाने से धर्म का नाश तथा असुरेन्द्र द्वारा राजा का नाश हो जाने से सम्पूर्ण लोक अन्धा हो जाएगा अर्थात् मार्गदर्शक कोई नहीं रहेगा ॥ ८६२ ॥

अथ तत्रस्थजीवानां गत्यन्तरगमनागमनस्वरूपमाह—

एत्थ मुदा णिरयदुगं णिरयतिरिक्खादु जणणमेत्थ हवे।
थोवजलदाइ मेहा भू णिस्सारा णरा तिव्वा ॥ ८६३ ॥

अत्र मृता निरयद्वयं नरकतिर्यग्भ्यां जननमत्र भवेत्।
स्तोकजलदायिनो मेघा भूः निस्सारा नरास्तीव्राः ॥ ८६३ ॥

एत्थ । अत्र मृता नरकद्वयं गच्छन्ति नान्यत्र, नरकतिर्यग्गतिभ्यामागतानामेवात्र जननं भवेत् नान्येषां । अत्र मेघाः स्तोकजलदायिनो भूः निःसारा नरास्तीव्राः ॥ ८६३ ॥

उस काल में स्थित जीवों के गति में गमनागमन का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थ :—यहाँ से मरे हुए जीव नरक तिर्यञ्च इन दोनों गतियों में जाएंगे, अन्यत्र नहीं। नरक और तिर्यञ्च गति से आगत जीवों का ही यहाँ जन्म होगा, अन्य का नहीं। इस काल में मेघ बहुत थोड़ा जल देंगे, पृथ्वी सारभूत पदार्थों से रहित होगी और मनुष्य तीव्र कषायी होंगे ॥ ८६३ ॥

इदानीं अतिदुःषमचरमवर्तनाक्रमं गाथाचतुष्टयेनाह—

संवट्टयणामणिलो गिरितरुभूपहुदि चुण्णणं करिय।
भमदि दिसंतं जीवा मरंति मुच्छंति छट्ठंते ॥ ८६४ ॥

सम्वर्तकनामानिलः गिरितरुभूप्रभृतीनां चूर्णनं कृत्वा।
भ्रमति दिशान्तं जीवा म्रियन्ते मूर्छन्ति षष्ठान्ते ॥ ८६४ ॥

संवट्ट। सम्वर्तकनामानिलः षष्ठकालान्ते गिरितरुभूप्रभृतीनां चूर्णनं कृत्वा दिशान्तं भ्रमति। तत्रस्था जीवा मूर्छन्ति म्रियन्ते च ॥ ८६४ ॥

अब अतिदुःषमा काल के अन्त में होने वाली वर्तना के क्रम को चार गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ:—छठे काल के अन्त में संवर्तक नाम की वायु पर्वत, वृक्ष और पृथ्वी आदि का चूर्ण करती हुई (स्वक्षेत्र अपेक्षा) दिशाओं के अन्त पर्यन्त भ्रमण करती है, जिससे जीव मूर्छित हो जाते हैं और मर जाते हैं ॥ ८६४ ॥

विशेषार्थ :—छठे काल के अन्त में संवर्तक नाम की वायु, पर्वत, वृक्ष और भूमि आदि का चूर्ण करती हुई दिशाओं के अन्त पर्यन्त भ्रमण करती है जिससे वहाँ स्थित जीव मूर्छित हो जाते हैं और कुछ मर भी जाते हैं।

खगगिरिगंगदुवेदी खुद्दबिलादिं विसंति आसण्णा।
णेंति दया खचरसुरा मणुस्सजुगलादिबहुजीवे ॥ ८६५ ॥

खगगिरिगङ्गाद्वयवेदीं क्षुद्रबिलादि विशन्ति आसन्नाः।
नयन्ति दयाः खचरासुराः मनुष्ययुगलादिबहुजीवान् ॥८६५॥

खग। विजयार्धगङ्गासिन्धूनां वेदीं तत्क्षुद्रबिलादिकं च तदासन्नाः प्राणिनो विशंति सदयाः खचराः सुराश्च मनुष्ययुगलादिबहुजीवान् नयन्ति च ॥ ८६५ ॥

गाथार्थ :—विजयार्धपर्वत, गङ्गा सिन्धु की वेदी और क्षुद्र बिल आदि के निकट रहने वाले जीव इनमें स्वयं प्रवेश कर जाते हैं तथा दयावान् विद्याधर और देव मनुष्य युगलों को आदि कर बहुत से जीवों को वहाँ ले जाते हैं ॥ ८६५ ॥

छट्ठमचरिमे होंति मरुदादी सत्तसत्त दिवसवही ।
अदिसीदखारविसपरुसग्गीरजधूमवरिसाओ ॥ ८६६ ॥

षष्ठचरमे भवन्ति मरुदादयः सप्तसप्त दिवसावधि ।
अतिशीतक्षारविषपरुषाग्निरजोधूमवर्षाः ॥ ८६६ ॥

छट्ठम । षष्ठकालचरमे मरुदादयः सप्त सप्त दिवसावधि ४९ भवन्ति । ते के ? मरुदतिशीत-क्षारविषपरुषाग्निरजोधूमवृष्टयः ॥ ८६६ ॥

गाथार्थ :—छठे काल के अन्त में क्रमशः पवन, अतिशीत, क्षाररस, विष, कठोर अग्नि, धूल और धुआं-इन सातों की सात सात दिन पर्यन्त अर्थात् ४९ दिनों तक वर्षा होती है।

तेहिंतो सेसजणा णस्संति विसग्गिवरिसदड्ढमही ।
इगिजोयणमेत्तमधो चुण्णीकिज्जदि हु कालवसा ॥ ८६७ ॥

तेभ्यः शेषजनाः नश्यन्ति विषाग्निवर्षदग्धमही ।
एकयोजनमात्रमधः चूर्णीक्रियते हि कालवशात् ॥ ८६७ ॥

तेहिं । तेभ्यो वर्षेभ्योऽवशेषजनाः नश्यन्ति विषाग्निवर्षदग्धमही एकयोजनमात्रमधः कालवशात् चूर्णीभवति ॥ ८६७ ॥

गाथार्थ :— अवशेष रहे मनुष्य भी उन वर्षाओं से नष्ट हो जाते हैं। काल के वश से विष एवं अग्नि की वर्षा से दग्ध हुई पृथ्वी एक योजन नीचे तक चूर्ण (चूर चूर) हो जाती है ॥ ८६७ ॥

इदानीमुत्सर्पिणीप्रवेशक्रमं गाथात्रयेणाह—

उस्सप्पिणीयपढमे पुक्खरखीरघदमिदरसा मेघा ।
सत्ताहं वरसंति य णग्गा मच्चादि आहारा ॥ ८६८ ॥

उत्सर्पिणीप्रथमे पुष्करक्षीरघृतामृतरसान् मेघाः ।
सप्ताहं वर्षन्ति च नग्ना मृताद्याहाराः ॥ ८६८ ॥

उस्स । उत्सर्पिणीप्रथमकाले मेघाः उदकक्षीरघृतामृतरसान् सप्त सप्ताहं वर्षन्ति । तत्कालस्था जीवा नग्ना मृत्तिकाद्याहाराः ॥ ८६८ ॥

अब उत्सर्पिणी काल के प्रवेश का क्रम तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—उत्सर्पिणी के प्रथमकाल में मेघ क्रमशः जल, दूध, घी, अमृत और रस की वर्षा सात सात दिन तक करते हैं। इस काल में स्थित जीव नग्न रहने वाले और मृत्तिका (मिट्टी का) आहार करने वाले होंगे ॥ ८६८ ॥

उण्हं छंडदि भूमी छविं सणिद्धत्तमोसहिं धरदि ।
वल्लिलदागुम्मतरू वड्ढंदि जलादिवरसेहिं ।। ८६९ ।।

उष्णां त्यजति भूमिः छवि सस्निग्धत्वमौषधि धरति ।
वल्लिलतागुल्मतरवो वर्धन्ते जलादिवर्षैः ।। ८६९ ।।

उण्हं । जलादिवर्षैर्भूमिरुष्णं त्यजति छविं सस्निग्धत्वं धान्याद्योषधिं च धरति । वल्ल्यादयो वर्धन्ते तत्र भूमौ मूलं विना प्रसरन्ती वल्ली वृक्षाश्रयेण प्रसरन्ती लता कदाचिदपि स्थूलस्कन्धताम-प्राप्नुवन्तो गुल्माः स्थूलस्कन्धयोग्या वृक्षाः एते वर्धन्ते जलादिवर्षैः ।। ८६९ ।।

गाथार्थ :—जलादिक की वर्षा के कारण पृथ्वी उष्णता को छोड़ती है, शोभा, सचिक्कणता, अन्न और औषधि आदि को धारण करती है तथा बेल, लता, गुल्म और वृक्ष वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।। ८६९ ।।

विशेषार्थ :—जलादि की वर्षा से पृथ्वी उष्णता को छोड़ती है, छवि-शोभा, स्निग्धता और धान्य औषधि आदि को धारण करती है तथा बेल आदि बढ़ती हैं । जो भूमि पर जड़ के बिना फैलती है उसे बेल कहते हैं । जो वृक्ष का आश्रय लेकर फैलती है उसे लता कहते हैं । जो कदाचित् भी स्थूल वृक्षपने को प्राप्त नहीं होते उन्हें गुल्म कहते हैं और जो स्थूल वृक्ष होने योग्य होते हैं उन्हें वृक्ष कहते हैं । जल आदि की वर्षा से ये सब वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।

णदितीरगुहादिठिया भूसीयलगंधगुणसमाहूया ।
णिग्गमिय तदो जीवा सव्वे भूमिं भरंति कमे ।।८७०।।

नदीतीरगुहादिस्थिता भूशीतलगन्धगुणसमाहूताः ।
निर्गत्य ततो जीवाः सर्वे भूमिं भरन्ति क्रमेण ।। ८७० ।।

णदि । नदीतीरगुहादिस्थिता जीवा भूशीतलगन्धगुणसमाहूताः सन्तः सर्वे ततो निर्गत्य क्रमेण भूमिं भरन्ति ।। ८७० ।।

गाथार्थ :—(गङ्गा सिन्धु) नदी के तीर तथा (विजयार्ध की) गुफा आदि में स्थित जीव पृथ्वी के शीतल, गन्ध गुण से बुलाए हुए ही मानों वहाँ से निकल कर सम्पूर्ण पृथ्वी को भर देते हैं ।। ८७० ।।

इदानीमुत्सर्पिणीद्वितीयकालादिवर्तनक्रममाह—

उस्सप्पिणीयबिदिए सहस्ससेसेसु कुलयरा कणयं ।
कणयप्पहरायद्धयपुंगव तह णलिण पउम महपउमा ।।८७१।।

उत्सर्पिणीद्वितीये सहस्रशेषेषु कुलकराः कनकः ।
कनकप्रभराजध्वजपुङ्गवाः तथा नलिनः पद्मः महापद्मः ।।८७१।।

उस्स । उत्सर्पिण्योद्वितीयकाले सहस्रवर्षे अवशिष्टे सति कुलकराः भवन्ति । ते तु कनकः कनकप्रभः कनकराजः कनकध्वजः कनकपुङ्गवस्तथा नलिनो नलिनप्रभो नलिनराजो नलिनध्वजो नलिनपुङ्गवः पद्मः पद्मप्रभः पद्मराजः पद्मध्वजः पद्मपुङ्गवः महापद्म इति षोडश मनवः स्युः ॥ ८७१ ॥

अब उत्सर्पिणी के द्वितीय आदि कालों में वर्तना का क्रम कहते हैं :—

गाथार्थ—उत्सर्पिणी के द्वितीय काल में एक हजार वर्ष अवशेष रहने पर कनक, कनकप्रभ, कनकराज, कनकध्वज, कनकपुङ्गव तथा नलिन, नलिनप्रभ, नलिनराज, नलिनध्वज, नलिनपुङ्गव, पद्म, पद्मप्रभ, पद्मराज, पद्मध्वज, पद्मपुङ्गव और महापद्म ये सोलह कुलकर होंगे ॥ ८७१ ॥

विशेषार्थ—उत्सर्पिणी काल के दूसरे दुःषमा नामक काल में जब एक हजार वर्ष अवशेष रहेंगे तब १ कनक, २ कनकप्रभ, ३ कनकराज, ४ कनकध्वज, ५ कनकपुङ्गव, ६ नलिन, ७ नलिनप्रभ, ८ नलिनराज, ९ नलिनध्वज, १० नलिनपुङ्गव, ११ पद्म, १२ पद्मप्रभ, १३ पद्मराज, १४ पद्मध्वज, १५ पद्मपुङ्गव और १६ महापद्म ये सोलह कुलकर होंगे। नोट :—तिलोयपण्णत्ति में १४ कुलकरों का कथन है, पद्म व महा पद्म इन दो कुलकरों का नाम नहीं है।

अथ तेषां कृत्यं तृतीयकालस्थत्रिषष्टिशलाकापुरुषांश्च गाथाचतुष्टयेनाह—

> तस्सोलसमणुहि कुलायाराणलपक्कपहुदिया होंति ।
> तेवट्ठिणरा तदिए सेणियचर पढमतित्थयरो ॥ ८७२ ॥
>
> तत्षोडशमनुभिः कुलाचारानलपक्वप्रभृतयो भवन्ति ।
> त्रिषष्टिनरास्तृतीये श्रेणिकचरः प्रथमतीर्थंकरः ॥ ८७२ ॥

तस्सोलस । तैः षोडशमनुभिः कुलाचारानलपक्वप्रभृतयो भवन्ति । तृतीये काले पुनस्त्रिषष्टि-शलाकाः पुरुषा भवन्ति । तत्र श्रेणिकचरः प्रथमतीर्थंकरः स्यात् ॥ ८७२ ॥

अब उन कुलकरों के कार्य और तृतीय कालस्थ त्रेसठ शलाका के पुरुषों को चार गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—उन सोलह कुलकरों के द्वारा कुलानुरूप आचरण और अग्नि आदि से पाचन आदि कला सिखाई जाती है। इसके बाद तृतीय काल में त्रेसठ शलाका के पुरुष होंगे जिनमें श्रेणिक राजा का जीव प्रथम तीर्थंकर होगा ॥ ८७२ ॥

विशेषार्थ :—उन सोलह कुलकरों के द्वारा क्षत्रिय आदि कुलों के अनुरूप आचरण और अग्नि द्वारा पाचन आदि का विधान सिखाया जाएगा। इसके बाद दुःषमा सुषमा नामका तृतीय काल प्रारम्भ होगा जिसमें राजा श्रेणिक का जीव प्रथम तीर्थंकर होगा।

महपउमो सुरदेवो सुपासणामो सयंपहो तुरियो ।
सव्वप्पभूद देवादीपुत्तो होदि कुलपुत्तो ॥ ८७३ ॥
तित्थयरुदंक पोट्ठिल जयकित्ती मुणिपदादिसुव्वदओ ।
अरणिप्पावकसाया विउलो किण्हचरणिम्मलओ ॥ ८७४ ॥
चित्तसमाहीगुत्तो सयंभु अणिवट्टओ य जय विमलो ।
तो देवपाल सच्चइपुत्तचरोऽणंतविरियंतो ॥ ८७५ ॥

महापद्मः सुरदेवः सुपार्श्वनामा स्वयम्प्रभः तुर्यः ।
सर्वात्मभूतो देवादिपुत्रो भवति कुलपुत्रः ॥ ८७३ ॥
तीर्थंकर उदंकः प्रोष्ठिलः जयकीर्तिः मुनिपदादिसुव्रतः ।
अरनिष्पापकषाया विपुलः कृष्णचरो निर्मलः ॥ ८७४ ॥
चित्रसमाधिगुप्तः स्वयम्भूरनिवर्तकश्च जयो विमलः ।
ततो देवपालः सत्यकिपुत्रचरोऽनन्तवीर्योन्तः ॥ ८७५ ॥

महपउमो। महापद्मः सुरदेवः सुपार्श्वनामा स्वयम्प्रभस्तुर्यः सर्वात्मभूतो देवपुत्रः कुलपुत्रो भवति ॥ ८७३ ॥

तित्थये। उदङ्कतीर्थंकरः प्रोष्ठिलो जयकीर्तिर्मुनिसुव्रतोऽरो निष्पापो निष्कषायो विपुलः कृष्णचरो निर्मलः ॥ ८७४ ॥

चित्त। चित्रगुप्तः समाधिगुप्तः स्वयम्भूरनिवर्तकश्च जयो विमलस्ततो देवपालस्सत्यकिपुत्रचरोनन्तवीर्यश्चरमः। एते चतुर्विंशतितीर्थंकराः स्युः ॥ ८७५ ॥

गाथार्थ—महापद्म, सुरदेव, सुपार्श्व, स्वयम्प्रभ, सर्वात्मभूत, देवपुत्र, कुलपुत्र, उदङ्कतीर्थङ्कर, प्रोष्ठिल, जयकीर्ति, मुनिसुव्रत, अर, निष्पाप, निःकषाय, विपुल, कृष्ण नारायण का जीव निर्मल, चित्रगुप्त, समाधिगुप्त, स्वयम्भू, अनिवर्तक, जय, विमल, देवपाल और सात्यकितनय अन्तिम रुद्र का जीव अन्तिम तीर्थंकर अनन्तवीर्य होगा ॥ ८७३–८७५ ॥

अथ तत्र प्रथमान्तिमतीर्थंकरयोरायुरुत्सेधावाह—

पढमजिणो सोलससयवस्साऊ सत्तहत्थदेहुदओ ।
चरिमो दु पुव्वकोडीआऊ पंचसयधणुतुंगो ॥८७६॥

प्रथमजिनः षोडशशतवर्षायुः सप्तहस्तदेहोदयः ।
चरमः तु पूर्वकोट्यायुः पञ्चशतधनुस्तुङ्गः ॥ ८७६ ॥

पउम । प्रथमजिनः षोडशोत्तरशतवर्षायुः ११६ सप्तहस्तदेहोदयः चरमो जिनः पूर्वकोट्यायुः पञ्चशतधनुस्तुङ्गः ॥ ८७६ ॥

अब वहाँ के प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर की आयु एवं उत्सेध कहते हैं :—

गाथार्थ :—उत्सर्पिणीकाल के प्रथम तीर्थङ्कर महापद्म की आयु ११६ वर्ष और शरीर की ऊँचाई सात हाथ प्रमाण तथा अन्तिम तीर्थङ्कर अनन्तवीर्य की आयु एक पूर्वकोटि और शरीर की ऊँचाई ५०० धनुष प्रमाण होगी ॥ ८७६ ॥

अथ चक्रयर्धचक्रिबलदेवानां नामानि गाथाचतुष्केणाह—

चक्की भरहो दीहादिमदंतो मुत्तगूढदंता य ।
सिरिपुव्वसेणभूदी सिरिकंतो पउम महपउमा ॥८७७॥
तो चित्तविमलवाहण अरिट्ठसेणो बलो तदो चंदो ।
महचंद चंदहर हरिचंदा सीहादिचंद वरचंदा ॥ ८७८॥
तो पुण्णचंदसुहचंदा सिरिचंदो य केसवा णंदी ।
तं पुव्वमित्तसेणा णंदी भूदी यचलणामा ॥ ८७९ ॥
मह अइबला तिविट्ठो दुविट्ठ पडिसत्तुणो य सिरिकंठो ।
हरिणीलअस्ससुसिहिकंठा अस्स हयमोरगीवा य ॥ ८८० ॥

चक्रिणः भरतः दीर्घादिमदन्तो मुक्तगूढदन्तौ च ।
श्रीपूर्वसेनभूती श्रीकान्तः पद्मो महापद्मः ॥ ८७७ ॥
ततः चित्रविमलवाहनौ अरिष्टसेनः बलाः ततः चन्द्रः ।
महाचन्द्रः चन्द्रधरः हरिचन्द्रः सिंहादिचन्द्रो वरचन्द्रः ॥८७८॥
ततः पूर्णचन्द्रः शुभचन्द्रः श्रीचन्द्रः च केशवाः नन्दी ।
तत्पूर्वमित्रसेनौ नन्दिभूतिश्चाचलनामा ॥ ८७९ ॥
महातिबलौ त्रिपृष्ठः द्विपृष्ठः प्रतिशत्रवः च श्रीकण्ठः ।
हरिनीलाश्वसुशिखिकण्ठाः अश्वहयमयूरग्रीवाश्च ॥ ८८० ॥

चक्की । भाविनो चक्रिणः कथ्यन्ते—भरतो दीर्घदन्तो मुक्तदन्त गूढदन्तश्च श्रीषेणः श्रीभूतिः श्रीकान्तः पद्मो महापद्मः ॥ ८७७ ॥

तो । ततश्चित्रवाहनो विमलवाहनो अरिष्टसेनः इति द्वादश चक्रिणः । ततो बलदेवाः कथ्यन्ते— चन्द्रो, महाचन्द्रश्चन्द्रधरो हरिचन्द्रः सिंहचन्द्रो वरचन्द्रः ॥ ८७८ ॥

तो पुण्ण । ततः पूर्णचन्द्रः शुभचन्द्रः श्रीचन्द्रश्चेति नवबलदेवाः । इतः परं केशवाः कथ्यन्ते— नन्दी नन्दिमित्रो नन्दिषेणो नन्दिभूतिश्चाचलनामा ॥ ८७९ ॥

मह। महाबलोऽतिबलस्त्रिपृष्ठो द्विपृष्ठश्चेति नव वासुदेवाः। इतस्तत्प्रतिशत्रवः कथ्यन्ते— श्रीकण्ठो हरिकण्ठो नीलकण्ठोऽश्वकण्ठः सुकण्ठः शिखिकण्ठोऽश्वग्रीवो हयग्रीवो मयूरग्रीवश्चेति नव प्रतिवासुदेवाः ॥ ८८० ॥

अब चक्रवर्ती, अर्धचक्रवर्ती और बलदेवों के नाम चार गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—भरत, दीर्घदन्त, मुक्तदन्त, गूढदन्त, श्रीषेण, श्रीभूति, श्रीकान्त, पद्म, महापद्म, चित्रवाहन, विमलवाहन और अरिष्टसेन ये बारह चक्रवर्ती होंगे। तथा चन्द्र, महाचन्द्र, चन्द्रधर, हरिचन्द्र, सिंहचन्द्र, वरचन्द्र, पूर्णचन्द्र, शुभचन्द्र और ९ श्रीचन्द्र ये ९ बलदेव होंगे तथा नन्दी, नन्दिमित्र, नन्दिषेण, नन्दिभूत, अचल, महाबल, अतिबल, त्रिपृष्ठ और द्विपृष्ठ ये नव केशव अर्थात् नारायण होंगे और इनके ही प्रतिशत्रु श्रीकण्ठ, हरिकण्ठ, नीलकण्ठ, अश्वकण्ठ, सुकण्ठ, शिखिकण्ठ, अश्वग्रीव, हयग्रीव और मयूरग्रीव ये नव प्रतिनारायण होंगे ॥ ८७७ से ८८० ॥

विशेषार्थ—सर्व प्रथम चक्रवर्तियों के नाम कहते हैं—१ भरत, २ दीर्घदन्त, ३ मुक्तदन्त, ४ गूढदन्त, ५ श्रीषेण, ६ श्रीभूति, ७ श्रीकान्त, ८ पद्म, ९ महापद्म, १० चित्रवाहन, ११ विमलवाहन और १२ अरिष्टसेन ये बारह चक्रवर्ती होंगे। १ चन्द्र, २ महाचन्द्र, ३ चन्द्रधर, ४ हरिचन्द्र, ५ सिंहचन्द्र, ६ वरचन्द्र, ७ पूर्णचन्द्र, ८ शुभचन्द्र और ९ श्रीचन्द्र ये ९ बलभद्र होंगे। १ नन्दी, २ नन्दिमित्र, ३ नन्दिषेण, ४ नन्दिभूत, ५ अचल, ६ महाबल, ७ अतिबल, ८ त्रिपृष्ठ और ९ द्विपृष्ठ ये नव नारायण तथा इनके प्रतिशत्रु १ श्रीकण्ठ, २ हरिकण्ठ, ३ नीलकण्ठ, ४ अश्वकण्ठ, ५ सुकण्ठ, ६ शिखिकण्ठ, ७ अश्वग्रीव, ८ हयग्रीव और ९ मयूरग्रीव ये ९ प्रतिनारायण होंगे।

इदानीमुक्तार्थानां निगमनमाह—

> **एसो सव्वो भेओ परूविदो बिदियतदियकालेसु।**
> **पुव्वं व गहीदव्वो सेसो तुरियादिभोगमही ॥ ८८१ ॥**
>
> एषः सर्वो भेदः प्ररूपितः द्वितीयतृतीयकालयोः।
> पूर्वमिव गृहीतव्यः शेषः तुर्यादिभोगमही ॥ ८८१ ॥

एसो। एष सर्वोऽपि भेद उत्सर्पिणीद्वितीयतृतीयकालयोः प्ररूपितः, शेषः चतुर्थादिभोगमहीति पूर्वमिव ग्रहीतव्यः ॥ ८८१ ॥

कहे हुए अर्थ का उपसंहार करते हैं—

गाथार्थ :—उपर्युक्त सब भेद उत्सर्पिणी के दूसरे तीसरे कालों के प्ररूपित किए गए हैं। अवशेष चतुर्थादि कालों में भोगभूमि की रचना है, ऐसा पूर्वोक्त प्रकार से ग्रहण करना चाहिए ॥ ८८१ ॥

विशेषार्थ :—चतुर्थ सुषमा-दुःषमा काल में जघन्य भोगभूमि की रचना है, पञ्चम सुषमा काल में मध्यम और छठे सुषमासुषमा काल में उत्कृष्ट भोगभूमि की रचना है।

एवं भरतैरावतक्षेत्रेषूक्तषट्कालान् क्षेत्रान्तरे नियमेन योजयितुं गाथात्रयमाह—

> पढमादो तुरियोत्ति य पढमो कालो अवट्ठिदो कुरवे ।
> हरिरम्मगे य हेमवदेरण्णवदे विदेहे य ॥ ८८२ ॥
>
> प्रथमतः तुर्यान्तं च प्रथमः कालः अवस्थितः कुर्वोः ।
> हरिरम्यके च हैमवद्धैरण्यवतयोः विदेहे च ॥ ८८२ ॥

पढमा । प्रथमकालत आरभ्य चतुर्थकालपर्यन्तं नियमः कथ्यते । कथं ? तत्र प्रथमः कालो देवोत्तरकुर्वोरवस्थित एव, द्वितीयः कालो हरिरम्यकक्षेत्रयोरवस्थित एव, तृतीयः कालो हैमवतहैरण्यवतक्षेत्रयोरवस्थित एव, चतुर्थकालो विदेहे चावस्थित एव ॥ ८८२ ॥

भरतैरावत क्षेत्रों में कहे हुए छह कालों को नियम पूर्वक अन्य क्षेत्रों में जोड़ने के लिए तीन गाथाएँ कहते हैं—

गाथार्थ :—प्रथम काल से चतुर्थ काल पर्यन्त का नियम कहते हैं—प्रथम काल देवकुरु और उत्तर कुरु में अवस्थित है। दूसरा काल हरि और रम्यक् क्षेत्रों में, तीसरा काल हैमवत और हैरण्यवत में तथा चतुर्थकाल विदेह क्षेत्र में अवस्थित है ॥ ८८२ ॥

विशेषार्थ :—प्रथम काल से चतुर्थकाल पर्यन्त की अवस्थिति का नियम कहते हैं—सुषमा-सुषमा नाम का प्रथम काल देवकुरु और उत्तरकुरु में अवस्थित है। अर्थात् प्रथमकाल के प्रारम्भ में आयु उत्सेध एवं सुख आदि की जो वर्तना है वैसी ही वर्तना देवकुरु और उत्तरकुरु में निरन्तर रहती है। इसी प्रकार सुषमा नामक द्वितीय काल की जो वर्तना है वैसी ही वर्तना हरि और रम्यक् क्षेत्रों में निरन्तर रहती है तथा सुषमा-दुःषमा नामक तृतीय काल की वर्तना के सदृश हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रों में निरन्तर रहती है। इसी प्रकार दुःषमा-सुषमा नामक चतुर्थकाल की जो वर्तना है वैसी ही वर्तना विदेह क्षेत्र में निरन्तर अवस्थित रहती है।

> भरहइरावद पण पण मिलेच्छखंडेसु खयरसेढीसु ।
> दुस्समसुसमादीदो अंतोत्ति य हाणिवड्ढी य ॥ ८८३ ॥
>
> भरतैरावतः पञ्च पञ्च म्लेच्छखंडेषु खचरश्रेणिषु ।
> दुःषमसुषमादितः अन्त इति च हानिवृद्धी च ॥ ८८३ ॥

भरह । भरतैरावतस्थितपञ्चपञ्चम्लेच्छखण्डेषु खचरश्रेणिषु च दुःषमसुषमस्यादितः आरभ्य तस्यैवान्तपर्यन्तं वर्णायुरादेर्हानिः स्यात् । तत्र पञ्चमषष्ठकालौ न प्रवर्तेते । उत्सर्पिण्यां तु

तृतीयकालस्यादित आरभ्य तस्यैवान्तपर्यन्तं वृद्धिरेव स्यात् । तत्र चतुर्थपञ्चमषष्ठकाला न प्रवर्तन्ते ॥ ८८३ ॥

गाथार्थः—भरत और ऐरावत क्षेत्रों के पाँच पाँच म्लेच्छ खण्डों में तथा विद्याधरों की श्रेणियों में दुःषमा-सुषमा काल के आदि से लगाकर उसी काल के अन्त पर्यन्त हानि वृद्धि होती है ॥ ८८३ ॥

विशेषार्थ :—भरत और ऐरावत क्षेत्रों में स्थित पाँच पाँच म्लेच्छ खण्डों में तथा विजयार्ध की विद्याधर की श्रेणियों में अवसर्पिणी के चतुर्थकाल के आदि से उसी काल के अन्त तक आर्यखण्ड में आयु और उत्सेध आदि की जैसी हानि होती है वैसी ही हानि होती रहती है। वहाँ अवसर्पिणी के पाँचवें और छठवें तथा उत्सर्पिणी के पहिले और दूसरे काल सदृश वर्तना नहीं होती। जो अवसर्पिणी का चतुर्थकाल है वही उत्सर्पिणी का तृतीय काल है अतः आर्यखण्ड में उत्सर्पिणी के तृतीय काल में आदि से अन्त तक आयु आदि में जैसी क्रमिक वृद्धि होती है वैसी ही वृद्धि वहाँ होती रहती है। उत्सर्पिणी के चौथे, पाँचवें और छठवें काल सदृश वर्तना भी वहाँ नहीं होती। अर्थात् आर्य खण्ड में जब उत्सर्पिणी के चौथे, पाँचवें और छठवें काल का तथा अवसर्पिणी के पहले, दूसरे और तीसरे काल का प्रवर्तन होता है तब भी वहाँ आर्यखण्ड की उत्सर्पिणी के तृतीय काल के अन्त की वर्तना सदृश एक रूप ही वर्तना पाई जाती है।

पढमो देवे चरिमो णिरए तिरिए णरेवि छक्काला ।
तदियो कुणरे दुस्समसरिसो चरिमुवहिदीवद्धे ॥ ८८४ ॥
प्रथमः देवे चरमः निरये तिरश्चि नरेऽपि षट्कालाः ।
तृतीयः कुनरे दुःषमसदृशः चरमोदधिद्वीपार्धे ॥ ८८४ ॥

पढमो । देवगतौ प्रथमकालो वर्तते, नरके चरमकालो वर्तते, तिर्यग्गतौ मनुष्यगतौ च षट्काला वर्तन्ते, कुमनुष्यभोगभूमौ तृतीयकालो वर्तते, स्वयम्भूरमणद्वीपार्धे तत्समुद्रे च दुःषमसदृशः कालो वर्तते ॥ ८८४ ॥

गाथार्थः—देवगति में प्रथम काल सदृश और नरक गति में छठवें काल सदृश वर्तना होती है। मनुष्य और तिर्यञ्च गति में छहों कालों का वर्तन है कुमनुष्य (भोगभूमि) में तृतीय काल सदृश और अर्धस्वयंभू रमण द्वीप और सम्पूर्ण स्वयम्भूरमण समुद्र में निरन्तर दुःषम काल सदृश वर्तना रहती है ॥ ८८४ ॥

विशेषार्थः—देवगति में निरन्तर प्रथम काल सदृश और नरकगति में निरन्तर छठवें काल सदृश वर्तना होती है। (यहाँ अत्यन्त सुख एवं अत्यन्त दुःख की विवक्षा है आयु आदि की नहीं) मनुष्य और तिर्यञ्च गति में छहों कालों का वर्तन है। कुमानुष अर्थात् कुभोगभूमि में तृतीय काल सदृश

एवं अर्धस्वयम्भूरमण द्वीप और सम्पूर्ण स्वयम्भूरमण समुद्र में दुःषमा नामक पञ्चम काल सदृश वर्तना होती रहती है।

एवं जम्बूद्वीपवर्णनं परिसमाप्य लवणार्णववर्णनमुपक्रममाणस्तयोर्मध्यस्थितप्राकारस्वरूप-निरूपणव्याजेन शेषद्वीपसमुद्रान्तस्थितान् प्राकारान् गाथाद्वयेन निरूपयति—

चउगोउरसंजुत्ता भूमिमुहे बार चारि अट्ठुदया।
सयलरयणप्पया ते वेकोसवगाढया भूमिं ॥ ८८५ ॥

वज्जमयमूलभागा वेलुरियकयाइरम्मसिहरजुदा।
दीवोवहीणमंते पायारा होंति सव्वत्थ ॥८८६ ॥

चतुर्गोपुरसंयुक्ता भूमिमुखे द्वादश चत्वारः अष्टोदयाः।
सकलरत्नात्मकास्ते द्विक्रोशावगाढा भूमिं ॥ ८८५ ॥

वज्रमयमूलभागा वैडूर्यकृतातिरम्यशिखरयुताः।
द्वीपोदधीनामन्ते प्राकारा भवन्ति सर्वत्र ॥ ८८६ ॥

चउ। चतुर्गोपुरसंयुक्ता भूमौ द्वादशयोजनव्यासा मुखे चतुर्योजनव्यासाः अष्टयोजनोदयाः सकलरत्नात्मकास्ते भूमि द्विक्रोशोदयमवगाह्य स्थिताः ॥ ८८५ ॥

वज्ज। वज्रमयमूलभागाः वैडूर्यकृतातिरम्यशिखरयुताः प्राकाराः वेदिका इत्यर्थः। द्वीपाम्बुधीनामन्ते सर्वत्र भवन्ति ॥ ८८६ ॥

अब जम्बूद्वीप के वर्णन की परिसमाप्ति कर लवणसमुद्र का वर्णन प्रारम्भ करते हुए आचार्य सर्वप्रथम जम्बूद्वीप और लवण समुद्र के मध्य में स्थित कोट के स्वरूप निरूपण के बहाने (मिष से) सर्व द्वीप समुद्रों के अन्त में स्थित प्राकारों का स्वरूप दो गाथाओं द्वारा प्ररूपित करते हैं :—

गाथार्थ:— सम्पूर्ण द्वीप समुद्रों के अन्त में (परिधि स्वरूप) प्राकार होते हैं। वे प्राकार चार चार गोपुर द्वारों से संयुक्त होते हैं। उनकी भूमि (नीचे) बारह योजन और मुख (ऊपर) चार योजन चौड़ा तथा ऊँचाई आठ योजन प्रमाण होती है। भूमि पर उनका अवगाह (नींव) दो कोश प्रमाण है। वे सर्वकोट रत्नमय हैं। वे वज्रमय मूलभाग (नींव) तथा वैडूर्यरत्नों से निर्मित अत्यन्त रमणीक शिखर से संयुक्त हैं ॥ ८८५, ८८६ ॥

विशेषार्थ:—सम्पूर्ण द्वीप समुद्रों के अन्त में परिधिस्वरूप एक एक प्राकार है। जो चार चार गोपुर द्वारों से संयुक्त हैं। जो नीचे (भूमि) बारह योजन और ऊपर (मुख) चार योजन चौड़े तथा आठ योजन ऊँचे हैं। वे सम्पूर्ण ही प्राकार रत्नमय हैं। दो कोश भूमि को अवगाह कर स्थित हैं।

अर्थात् पृथ्वी के नीचे इनकी नींव दो कोश प्रमाण है जो वज्रमय मूलभाग (नींव) और वैडूर्य मणियों से निर्मित अत्यन्त रमणीक शिखरों से संयुक्त हैं।

अथ तेषां प्राकाराणामुपरि स्थितवेदिकां निरूपयति —

पायाराणं उवरिं पुह मज्झे पउमवेदिया हेमी।
बेकोसपंचसयधणुतुंगा वित्थारया कमसो ॥ ८८७ ॥

प्राकाराणामुपरि पृथक् मध्ये पद्मवेदिका हैमी।
द्विक्रोशपञ्चशतधनुस्तुङ्गविस्तारा क्रमशः ॥ ८८७ ॥

पायाराणं। तेषां प्राकाराणामुपरि पृथक् पृथक् मध्ये द्विक्रोशोत्तुङ्गा पञ्चशतधनुर्व्यासा हैमी पद्मवेदिकास्ति ॥ ८८७ ॥

अब उनके ऊपर स्थित वेदिका का निरूपण करते हैं—

गाथार्थ:—उन प्राकारों के ऊपर मध्य में पृथक् पृथक् दो कोस ऊँची और पांच सौ धनुष चौड़ी स्वर्णमय पद्मवेदिका है।

अथ वेदिकान्तर्बहिः स्थितवनादिकं गाथाचतुष्केण निवेदयति—

तिस्से अंतो बाहिं हेमसिलातलजुदं वणं रम्मं।
वावी पासादोवि य चित्ता अत्थंति तहिं वाणा ॥८८८॥

तस्या अन्तर्बहिः हेमशिलातलयुतं वनं रम्यं।
वाप्यः प्रासादा अपि च चित्रा आसते तत्र वानाः ॥८८८॥

तिस्से। तस्याः पद्मवेदिकायाः अन्तर्बहिर्हेमशिलातलयुतं रम्यं वनमस्ति तत्र चित्राः वाप्यः प्रासादाश्च सन्ति। तत्र प्रासादेषु वानाव्यन्तरा आसते ॥ ८८८ ॥

अब चार गाथाओं द्वारा उन वेदिकाओं के भीतर और बाहर स्थित वनादिकों का निरूपण करते हैं—

गाथार्थ:—उन वेदिकाओं के बाह्याभ्यन्तर दोनों ओर स्वर्णमय शिला से संयुक्त रमणीक वन, नाना प्रकार की बावड़ियाँ और प्रासाद हैं। प्रासादों में व्यन्तर देव निवास करते हैं ॥ ८८८ ॥

वरमज्झजहण्णाणं वावीणं चाव विसद वित्थारा।
पण्णासूणं कमसो गाढा सगवासदसभागो ॥८८९॥

वरमध्यजघन्यानां वापीनां चापाः द्विशतं विस्ताराः।
पञ्चाशदूनं क्रमशो गाधः स्वकव्यासदशमभागः ॥ ८८९ ॥

वर। वरमध्यमजघन्यानां वापीनां विस्तारः क्रमेण द्विशत २०० चापाः पञ्चाशत्पञ्चाशदून-चापाश्च १५० । १०० । तासां गाधस्तु स्वकीयव्यासदशमभागः स्यात् २० । १५ । १० ॥ ८८९ ॥

गाथार्थ:—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य वापिकाओं का विस्तार चौड़ाई क्रमशः दो सौ धनुष और पचास पचास धनुष कम अर्थात् डेढ़ सौ और सौ योजन प्रमाण है, तथा गाध (गहराई) अपने अपने व्यास के दशवें भाग प्रमाण है ॥ ८८९ ॥

विशेषार्थ:—उत्कृष्ट बावड़ियों की चौड़ाई २०० धनुष तथा गाध ($\frac{२००}{१०}$) = २० धनुष प्रमाण है। इसी प्रकार मध्यम बावड़ियों का विस्तार १५० धनुष और गाध १५ धनुष तथा जघन्य बावड़ियों का विस्तार १०० धनुष और गाध (गहराई) १० धनुष प्रमाण है।

> वासुदयादीहत्तं जहण्णपासादयस्स चावाणं।
> पण्णपणसदरिसयमिह दारे छब्बार चउगाढो ॥८९०॥
> मज्झिमउक्कस्साणं विगुणा तिगुणा कमेण वासादी।
> दोद्दारा मणिमय णट्टणकीडादिगेहावि ॥ ८९१॥
>
> व्यासोदयदीर्घत्वं जघन्यप्रासादस्य चापानां।
> पञ्चाशत्पञ्चसप्ततिशतं इह द्वारे षट् द्वादश चतुर्गाढः ॥८९०॥
> मध्यमोत्कृष्टानां द्विगुणास्त्रिगुणाः क्रमेण व्यासादिः।
> द्विद्विद्वाराः मणिमयाः नर्तनक्रीडादिगेहा अपि ॥ ८९१ ॥

वासु। जघन्यप्रासादस्य व्यासोदयदीर्घत्वं यथासंख्यं पञ्चाशत् ५० पञ्चसप्तति ७५ शत १०० चापाः। इह द्वारे व्यासोदयौ षट् ६ द्वादश १२ चापौ तद्गाधस्तु चतुश्चापः ॥ ८९० ॥

मज्झिम। मध्यमोत्कृष्टप्रासादानां व्यासादयः क्रमेण जघन्यव्यासादेर्द्विगुणास्त्रिगुणाश्च भवन्ति तद्द्वारेऽपि तथा ते जघन्यादयः प्रासादा द्विद्विद्वाराः तत्र मणिमया नर्तनक्रीडादिगेहा अपि च भवन्ति[1] ॥ ८९१ ॥

गाथार्थ:—जघन्य प्रासादों की चौड़ाई (व्यास), ऊँचाई (उदय), और लम्बाई क्रमशः पचास, पचहत्तर और एक सौ धनुष प्रमाण है। इनके द्वारों की चौड़ाई ६ धनुष, ऊँचाई बारह धनुष और गाध चार धनुष प्रमाण है। मध्यम एवं उत्कृष्ट प्रासादों का व्यासादिक जघन्य प्रासादों के व्यासादिकों से यथाक्रम दुगुणा और तिगुणा है। उनके द्वारों का व्यासादिक भी जघन्य प्रासादों के द्वारों के व्यासादिक की अपेक्षा दुगुणा तिगुणा है। जघन्यादि प्रासाद दो दो दरवाजों से संयुक्त तथा नृत्यगृह और क्रीडागृह आदि की रचना से सहित हैं ॥ ८९०, ८९१ ॥

---

१ सन्ति (ब०, प०)।

विशेषार्थ:—जघन्य प्रासादों का व्यास ५० धनुष, उदय ७५ धनुष और लम्बाई १०० धनुष है। इन्हीं के द्वारों की चौड़ाई ६ धनुष, ऊँचाई १२ धनुष और गाध ४ धनुष प्रमाण है। मध्यम प्रासादों का व्यास १०० धनुष, उदय १५० धनुष और लम्बाई २०० धनुष है। इन्हीं के द्वारों की चौड़ाई, ऊँचाई एवं गाध क्रम से १२, २४ और ८ धनुष प्रमाण है। इसी प्रकार उत्कृष्ट प्रासादों का व्यास, उदय और लम्बाई क्रम से १५०, २२५ और ३०० धनुष प्रमाण है, तथा दरवाजों की चौड़ाई ऊँचाई और गाध क्रम से १८ धनुष, ३६ धनुष और १२ धनुष प्रमाण है।

बावड़ियों, प्रासादों और दरवाजों का प्रमाण:—

क्रमांक	भेद	बावड़ियों का		प्रासादों का			दरवाजों का		
		गाध	चौड़ाई	चौड़ाई	ऊँचाई	लम्बाई	गाध	चौड़ाई	ऊँचाई
१	जघन्य	१० धनुष	१०० धनुष	५० ध०	७५ ध०	१०० ध०	४ ध०	६ ध०	१२ ध०
२	मध्यम	१५ ,,	१५० ध०	१०० ध०	१५० ,,	२०० ,,	८ ,,	१२ ,,	२४ ,,
३	उत्कृष्ट	२० ,,	२०० ,,	१५० ,,	२२५ ,,	३०० ,,	१२ ,,	१८ ,,	३६ ध०

इदानीं प्रकृतप्राकारद्वाराणां संख्यातद्व्यासादिकं चाह—

विजयं च वैजयंतं जयंत अपराजियं च पुव्वादी।
दारचउक्काणुदओ अडजोयणमद्धविस्थारा ॥ ८९२ ॥
विजयं च वैजयन्तं जयन्तमपराजितं च पूर्वादि।
द्वारचतुष्काणामुदयः अष्टयोजनानि अर्धविस्ताराः ॥८९२॥

विजयं। विजयं च वैजयन्तं जयन्तमपराजितमिति प्राकाराणां पूर्वादि द्वाराणि। तेषां द्वारचतुष्काणामुदयोऽष्टयोजनानि विस्तारस्तदर्धयोजनानि ॥ ८९२ ॥

अब प्रकृत प्राकारों के दरवाजों की संख्या और उनका व्यासादिक कहते हैं—

गाथार्थ:—विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नाम वाले क्रमशः पूर्वादि दिशाओं में एक एक द्वार हैं। इन चारों दरवाजों की ऊँचाई आठ योजन और चौड़ाई उसके अर्धप्रमाण है ॥ ८९२ ॥

विशेषार्थ:—उन प्राकारों की पूर्व दिशा में विजय, दक्षिण में वैजयन्त, पश्चिम में जयन्त और उत्तर में अपराजित नामवाले द्वार हैं। इन चारों दरवाजों की ऊँचाई आठ योजन और चौड़ाई चार योजन प्रमाण है।

अथ तद्द्वारोपरिमस्वरूपादिकं गाथात्रयेणाह—

तोरणजुददारुवरिं दुगवास चउक्कतुंग पासादो।
बारसहस्सायद्दलवासं विजयपुरमुवरि गयणतले ॥८९३॥

एवं सेसतिठाणे विजयादिट्ठिदी दु साहियं पल्लं।
जगदीमूले बारस दाराणि णदीण णिग्गमणे ॥८९४॥

पायारंतरभागे वेदिजुदं जोयणद्धवासवणं।
दारूणपरिहितुरियो विजयादीदारअंतरयं ॥ ८९५ ॥

तोरणयुतद्वारोपरि द्विव्यासः चतुष्कतुङ्गः प्रासादः।
द्वादशसहस्रायतदलव्यासं विजयपुरमुपरि गगनतले ॥८९३॥

एवं शेषत्रिस्थाने विजयादिस्थितिस्तु साधिकं पल्यं।
जगतीमूले द्वादश द्वाराणि नदीनां निर्गमने ॥ ८९४ ॥

प्रकारान्तर्भागे वेदीयुतं योजनार्धव्यासं वनं।
द्वारोनपरिधितुर्यो विजयादिद्वारान्तरं ॥ ८९५ ॥

तोरण। तेषां तोरणयुतचतुर्द्वाराणामुपरि द्वियोजनव्यासः चतुर्योजनोत्तुङ्गः प्रासादोऽस्ति, तस्योपरि गगनतले द्वादशसहस्र १२००० योजनायामं तद्दलव्यासं ६००० विजयाख्यं पुरमस्ति ॥ ८९३ ॥

एवं। शेषद्वारत्रयेऽप्येवं ज्ञातव्यं। तत्पुरस्थितविजयादिव्यन्तराणामायुष्य साधिकपल्यं स्यात्। पुनर्जगतीमूले सीतासीतोदावर्जितनदीनिर्गमने द्वादश द्वाराणि सन्ति। सीतासीतोदयोः पुनः पूर्वापर-द्वारेण निर्गमनत्वात् पृथग्द्वाराभावः ॥ ८९४ ॥

पायारं। तत्प्राकारान्तर्भागे वेदिकायुतं योजनार्धव्यासं वनमस्ति चतुर्द्वारव्यासं १६ जम्बूद्वीपस्य सूक्ष्मपरिधौ ३१६२२८ न्यूनयित्वा ३१६२१२ चतुर्भिर्भक्तान्येव ७९०५३ विजयादिद्वाराद् द्वारान्तरं स्यात् ॥ ८९५ ॥

द्वीपसमुद्रमध्यस्थितप्राकारवर्णनसहितं जम्बूद्वीपवर्णनं परिसमाप्तं।

अब उन द्वारों के उपरिम स्वरूप आदि को तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं:—

गाथार्थ:—तोरण से संयुक्त विजय द्वार के ऊपर दो योजन चौड़ा और चार योजन ऊँचा

प्रासाद है। उस प्रासाद के ऊपर गगनतल में बारह हजार योजन लम्बा और लम्बाई के अर्ध भाग प्रमाण चौड़ा विजय नाम का नगर है। अवशेष तीन द्वारों पर भी ऐसे ही प्रासाद एवं वैजयन्तादिक नाम के नगर हैं। उन चारों नगरों में साधिक पल्य प्रमाण आयु वाले व्यन्तर देव रहते हैं। जम्बूद्वीप की जगती के मूल भाग में नदी निकलने के बारह द्वार हैं उन प्राकारों के अभ्यन्तर (भीतर वाले) भाग में वेदिका सहित अर्धयोजन व्यास वाले वन हैं। चारों द्वारों के व्यास से हीन सूक्ष्म परिधि को चार से भाजित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो वही विजयादि द्वारों का परस्पर में अन्तर है ॥ ८९३, ८९४, ८९५ ॥

विशेषार्थ:—तोरणद्वार से संयुक्त विजय द्वार के ऊपर दो योजन चौड़ा और चार योजन ऊंचा प्रासाद है जिसके ऊपर आकाश तल में १२००० योजन लम्बा और ६००० योजन चौड़ा विजय नाम का नगर है। अवशेष तीन द्वारों के ऊपर भी ऐसे ही प्रासाद एवं वैजयन्तादि नगर बसे हुए हैं। उन विजयादि चारों नगरों में विजयादिक नाम वाले ही व्यन्तर देव रहते हैं जिनकी आयु साधिक एक पल्य प्रमाण है। जम्बूद्वीप की वेदी के मूलभाग में सीता-सीतोदा को छोड़कर अवशेष गङ्गादि १२ महानदियों के निकलने के १२ द्वार बने हुए हैं। सीता–सीतोदा नदी जगती के पूर्व-पश्चिम द्वारों से ही समुद्र में प्रवेश करती है अतः इनके निर्गमद्वार अलग से नहीं है।

उन प्राकारों के भीतर की ओर पृथ्वी के ऊपर वेदिका सहित अर्ध योजन चौड़े वन हैं। प्राकार के चारों द्वारों का व्यास सोलह योजन है, इसे जम्बूद्वीप की सूक्ष्मपरिधि ३१६२२८ योजनों में से घटा देने पर ३१६२१२ योजन अवशेष रहे। मुख्य द्वार चार हैं अतः ३१६२१२ को चार से भाजित करने पर ($\frac{३१६२१२}{४}$)=७९०५३ योजन विजयादि एक द्वार से दूसरे द्वार का अन्तर प्राप्त होता है।

इस प्रकार द्वीप और समुद्रों के मध्य में स्थित प्राकारों सहित जम्बूद्वीप का वर्णन पूर्ण हुआ।

अथ लवणार्णवाभ्यन्तरवर्तिनां पातालानामवस्थानं तत्संख्यां तत्परिमाणं चाह—

लवणे दिसविदिसंतरदिसासु चउ चउ सहस्स पायाला।
मज्झुदयं तलवदणं लक्खं दसमं तु दसमकमं ॥ ८९६ ॥

लवणे दिशाविदिशान्तरदिशासु चत्वारि चत्वारि सहस्रं पातालानि।
मध्योदयः तलवदनं लक्षं दशमं तु दशमकमं ॥ ८९६ ॥

लवणे। लवणसमुद्रे दिक्षु ४ विदिक्षु ४ अन्तरदिक्षु च ८ यथासंख्यं चत्वारि चत्वारि सहस्र पातालानि। तत्र दिग्गतपातालानां मध्यमेकलक्षव्यासं १ ल० उदयश्च तथा १ ल० तलव्यासो मुखं च १ ल० दशमांशः १०००० वदनव्यासश्च तथा विदिग्गतपातालानां दिग्गतपातालदशमांशक्रमो ज्ञातव्यः अन्तरदिग्गतपातालानां च विदिग्गतपातालदशमांशक्रमो ज्ञातव्यः ॥ ८९६ ॥

आगे लवण समुद्र के अभ्यन्तरवर्ती पातालों के नाम, उनका अवस्थान, संख्या एवं परिमाण कहते हैं—

गाथार्थ :—लवण समुद्र की मध्यम परिधि की चार दिशाओं, चार विदिशाओं और आठ अन्तरालों में क्रम से चार, चार और १००० पाताल हैं। दिशा सम्बन्धी पातालों के उदय के मध्यभाग का व्यास एक लाख योजन, सम्पूर्ण पाताल का उदय (ऊँचाई) एक लाख योजन, तल व्यास उदय का दशवाँ भाग और मुख व्यास भी उदय का दशवाँ भाग है। दिशा सम्बन्धी पातालों के व्यासादिक का दशवाँ भाग विदिशा सम्बन्धी पातालों का अनुक्रम है और विदिशा सम्बन्धी पातालों के व्यासादिक का दशवाँ भाग अन्तराल सम्बन्धी पातालों का अनुक्रम है ॥ ८९६ ॥

विशेषार्थ :—लवण समुद्र की मध्यम परिधि की चार दिशाओं में चार पाताल, चार विदिशाओं में चार पाताल और आठ अन्तरालों में १००० पाताल (गड्ढे) हैं। दिशा सम्बन्धी पातालों का उदय (ऊँचाई) एक लाख योजन है, तथा ऊँचाई के ठीक मध्य में पाताल का व्यास (चौड़ाई) १००००० योजन है। पाताल का तल व्यास और मुख व्यास ये दोनों व्यास ऊँचाई के दशवें भाग अर्थात् ($\frac{१०००००}{१०}$) दश, दश हजार योजन प्रमाण हैं।

शंका—पातालों (गड्ढों) की एक लाख योजन की गहराई किस प्रकार सम्भव है ?

समाधान—रत्नप्रभा पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है जिसमें ८० हजार मोटे अब्बहुल भाग को छोड़ कर खरभाग और पङ्कभाग पर्यन्त इन पातालों की गहराई है।

विदिशा सम्बन्धी पातालों का व्यासादिक दिग्गतपातालों का दशवाँ भाग है। अर्थात् विदिग्गत पातालों की गहराई ($\frac{१०००००}{१०}$) १०००० योजन, मध्यव्यास भी १०००० योजन है। तल व्यास एवं मुख व्यास ($\frac{१००००}{१०}$) एक हजार, एक हजार योजन के हैं।

अन्तर दिग्गत पातालों का व्यासादिक विदिग्गत पातालों का दशवाँ भाग है। अर्थात् अन्तरदिग्गत पातालों की गहराई और मध्य व्यास ($\frac{१००००}{१०}$)= एक हजार, एक हजार योजन के हैं तथा तल व्यास और मुख व्यास ये दोनों ($\frac{१०००}{१०}$)= सौ सौ योजन प्रमाण को लिए हुए हैं।

निम्नाङ्कित चित्रण द्वारा स्पष्ट विवेचन ज्ञातव्य है—

[कृपया चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

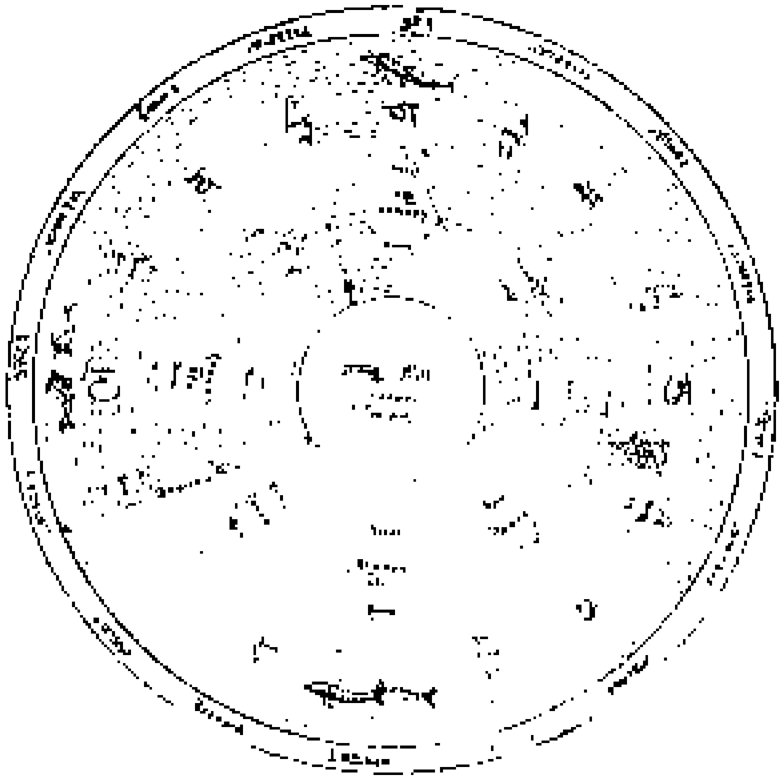

अथ दिग्गतपातालानां संज्ञादिमाह—

बडवामुहं कदंबगपायालं जूवकेसरं वट्टा ।
पुव्वादिवज्जकुड्डा पणसय बाहल्ल दसम कमा ॥८९७॥
बडवामुखं कदम्बक पातालं यूपकेशरं वृत्तानि ।
पूर्वादिवज्रकुड्यानि पञ्चशतबाहल्य दशमं क्रमात् ॥८९७॥

बडवा। बडवामुखं कदम्बकं पातालं यूपकेसरमिति पूर्वादिदिग्गतपातालनामानि। तानि वृत्तानि वज्रमयकुड्यानि, दिग्गतपातालानां कुड्यबाहल्यं पञ्चशतयोजनानि ५०० एतद्दशमांशो ५० विदिग्गतपातालकुड्यबाहल्यं तद्दशमांशो ५ अन्तरदिग्गतपातालकुड्यबाहल्यं स्यात् ॥ ८९७ ॥

अब दिग्गत पातालों के नाम आदि कहते हैं—

गाथार्थ :—बड़वामुख, कदम्बक, पाताल और यूपकेशर ये क्रमशः पूर्वादि दिशा सम्बन्धी पातालों के नाम हैं। सर्व पाताल गोल और वज्रमयी कुण्डों से संयुक्त हैं। दिशा सम्बन्धी पातालों के कुण्डों का बाहुल्य (मोटाई) पाँच सौ धनुष है। इनसे विदिग्गत पातालों के कुण्डों का बाहुल्य दशवें भाग तथा इनसे भी अन्तर दिग्गत पातालों के कुण्डों का बाहुल्य १० वें भाग प्रमाण है ॥ ८९७ ॥

विशेषार्थ :—पूर्व दिशा में बड़वामुख, दक्षिण में कदम्बक, पश्चिम में पाताल और उत्तर में यूपकेशर नामके पाताल हैं। इन पातालों के कुण्डों का बाहुल्य ५०० योजन है तथा विदिशागत पातालों के कुण्डों का बाहुल्य (मोटाई) दिग्गत पाताल कुण्डों का दसवाँ भाग अर्थात् ५० योजन और

अन्तरदिग्गत पाताल कुण्डों का बाहुल्य विदिग्गत पाताल कुण्डों का दसवाँ भाग अर्थात् १ योजन प्रमाण है। ये सभी कुण्ड गोलाकार और वज्रमयी हैं।

तत्पातालोदरवर्तिनोर्जलानिलयोर्वर्तनक्रममाह—

हेट्ठुवरिमतियभागे णियदं वादं जलं तु मज्झम्हि।
जलवादं जलवड्ढी किण्हे सुक्के य वादस्स ॥ ८९८ ॥

अधस्तनोपरिमत्रिभागे नियतः वातो जलं तु मध्ये।
जलवातः जलवृद्धिः कृष्णे शुक्ले च वातस्य ॥ ८९८ ॥

हेट्ठुव। तेषां पातालानामधस्तनतृतीयभागे दिशः ३३३३३$\frac{1}{3}$ विदिशः ३३३३$\frac{1}{3}$ अन्तरदिशः ३३३$\frac{1}{3}$ वात एव नियतः, उपरिमतृतीयभागे च जलमेव नियतं। मध्यमतृतीयभागे तु जलवातमिश्रः। कृष्णपक्षे तन्मध्यमतृतीयभागस्थजलस्य वृद्धिः, शुक्लपक्षे पुनस्तत्र वातस्य वृद्धिः स्यात् ॥ ८९८ ॥

उन पातालों के अभ्यन्तरवर्ती जल और वायु के प्रवर्तन का क्रम कहते हैं—

गाथार्थ :—उन पातालों के अधस्तन भागों में नियम से वायु है तथा उपरिम भाग में जल और मध्यम भाग में जल, वायु दोनों हैं। कृष्ण पक्ष में जल की और शुक्ल पक्ष में वायु की वृद्धि होती है ॥ ८९८ ॥

विशेषार्थ :—इन पातालों के ऊँचाई की अपेक्षा तीन भाग करने पर दिग्गतपातालों का तृतीय भाग ($\frac{100000}{3}$)=३३३३३$\frac{1}{3}$, विदिग्गत पातालों का ($\frac{10000}{3}$)=३३३३$\frac{1}{3}$ और अन्तरदिग्गत पातालों का तृतीय भाग ($\frac{1000}{3}$)=३३३$\frac{1}{3}$ योजन प्रमाण होता है। इन पातालों के अधस्तन तृतीय भाग में वायु, मध्यम तृतीय भाग में जलवायु मिश्र और उपरिम तृतीय भाग में मात्र जल पाया जाता है। कृष्ण पक्ष में मध्यमतृतीय भागस्थ जल की वृद्धि होती है और शुक्ल पक्ष में उसी मध्यमतृतीय भागस्थ वायु की वृद्धि होती है। यथा—

[कृपया चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

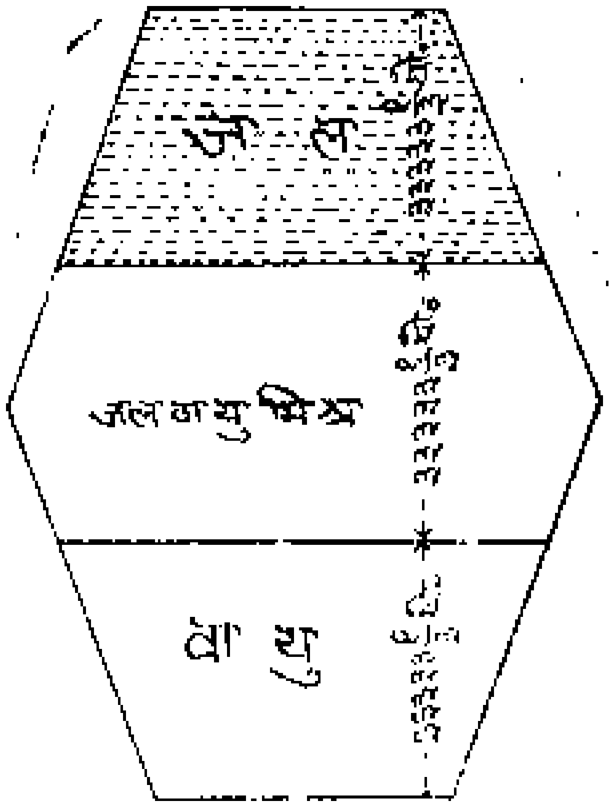

इदानीं तद्धानिवृद्धिप्रमाणमाह—

> तम्मज्झिमतियभागे लवणसिहा चरिमपणसहस्से य ।
> पण्णरदिणेहि भजिदे इगिदिण जलवादवड्ढि जलवड्ढी ॥८९९॥
>
> तन्मध्यमत्रिभागे लवणशिखा चरमपञ्चसहस्रे च ।
> पञ्चदशदिनैः भक्ते एकदिने जलवातवृद्धिः जलवृद्धिः ॥८९९॥

तम्म । तेषां पातालानां मध्यमतृतीयभागे ३३३३३$\frac{१}{३}$ दिवि ३३३३$\frac{१}{३}$ अन्तरदिवा: ३३३$\frac{१}{३}$ लवणसमुद्रशिखाचरमपञ्चसहस्रे च ५००० पञ्चदश १५ विभंभक्ते सति दि० २२२२$\frac{२}{३}$ द्विदि० २२२$\frac{२}{३}$ म० दि० २२$\frac{२}{३}$ इदं मध्यमतृतीयभागे एकैकदिनस्य जलवातहानिवृद्धिः स्यात् ३३३$\frac{१}{३}$ इदं लवणसमुद्रशिखायां प्रतिदिनं जलहानिवृद्धिप्रमाणं स्यात् । अमुमेवार्थं विवृणोति—पञ्चदश १५ दिनानामेतावति ३३३३३$\frac{१}{३}$ हानिचये एकदिनस्य १ कियदिति सम्पात्य समच्छेदेनांशांशिनो $\frac{९९९९९}{३}$ + $\frac{१}{३}$ मीलनं कृत्वा $\frac{१०००००}{३}$ हारं ३ हारेण १५ गुणयित्वा ४५ तेन भक्त्वा २२२२ शेषे $\frac{१०}{४५}$ पञ्चभिरपवर्तिते सति २२२२$\frac{२}{९}$ इदमेकैकदिनस्य जलवातहानिवृद्धिप्रमाणं स्यात् । एवं लवणसमुद्रशिखायामितरपातालद्वये च क्रमेण मध्यमशिखयोर्हानिवृद्धिक्रमो ज्ञातव्यः ॥ ८९९ ॥

अब उस हानिवृद्धि के प्रमाण को कहते हैं :—

गाथार्थ :—उन पातालों के मध्यमत्रिभाग को पन्द्रह दिनों से भाजित करने पर (कृष्णपक्ष के प्रत्येक दिन की) जलवृद्धि का और (शुक्लपक्ष के प्रत्येक दिन में) वायु वृद्धि का प्रमाण प्राप्त होता है

तथा लवण समुद्र की शिखा के अन्तिम पाँच हजार योजनों को पन्द्रह से भाजित करने पर लवण समुद्र की शिखा में प्रतिदिन जलवृद्धि का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ८९९ ॥

विशेषार्थ :—इन पातालों में से दिग्गत पातालों के मध्यम त्रिभाग को १५ से भाजित करने पर ($\frac{३३३३३३\frac{१}{३}}{१५}$)=२२२२२$\frac{२}{९}$ योजन, विदिग्गत पातालों के मध्यम त्रिभाग को भाजित करने पर ($\frac{३३३३३\frac{१}{३}}{१५}$)=२२२२$\frac{२}{९}$ योजन और अन्तरदिग्गत पातालों के मध्यम त्रिभाग को भाजित करने पर ($\frac{३३३३\frac{१}{३}}{१५}$)=२२२$\frac{२}{९}$ योजन जल और वायु की वृद्धि का प्रमाण प्राप्त होता है। अर्थात् कृष्ण पक्ष में जल की और शुक्ल पक्ष में वायु की वृद्धि होती है : पातालों के मध्यम त्रिभागों में नीचे पवन और ऊपर जल है अतः कृष्ण पक्ष में प्रत्येक दिन पवन के स्थान पर जल होता जाता है और शुक्ल पक्ष में प्रत्येक दिन जल के स्थान पर पवन होता जाता है।

लवण समुद्र में समभूमि से ऊपर जो जलराशि है उसका नाम शिखा है। इस शिखा के अन्तिम ५००० योजनों को १५ से भाजित करने पर ($\frac{५०००}{१५}$)=३३३$\frac{१}{३}$ योजन प्राप्त हुआ, यही लवण समुद्र में प्रतिदिन जलवृद्धि का प्रमाण है। लवण समुद्र में समभूमि से ११००० योजन ऊँचा जल तो स्वाभाविक ही है, इसके ऊपर शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन ३३३$\frac{१}{३}$ योजन की जलवृद्धि होती हुई पूर्णिमा को जलराशि की सम्पूर्ण ऊँचाई १६००० योजन हो जाती है तथा कृष्ण पक्ष में इसी क्रम से घटती हुई अमावस्या को जल की ऊँचाई मात्र ११००० योजन रह जाती है। यथा :—जबकि १५ दिनों में हानिचय का प्रमाण ३३३३३३$\frac{१}{३}$ योजन है तब एक दिन में हानिचय का क्या प्रमाण होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक कर समच्छेद विधान से अंश और अंशी को मिला देने पर $\frac{१००००००}{३}$ योजन प्राप्त हुए। इस ३ हार को १५ हार से गुणित करने पर ४५ हुए। इसका ($\frac{१००००००}{४५}$) भाग देने पर २२२२२ योजन प्राप्त हुए और $\frac{१०}{४५}$ अवशेष रहे। इनका ५ से अपवर्तन करने पर २२२२२$\frac{२}{९}$ योजन मध्यम तृतीय भाग में जल एवं पवन की हानि एवं वृद्धि का प्रमाण प्राप्त हुआ। यह दिग्गत पातालों की हानि चय का प्रमाण है। इसी विधान से लवण समुद्र की शिखा का तथा विदिग्गत एवं अन्तरदिग्गत पातालों में क्रम से जल, वायु एवं शिखा की हानि वृद्धि का प्रमाण प्राप्त कर लेना चाहिए।

एवं हानिवृद्धियुक्तस्य लवणसमुद्रस्य भूमुखव्यासमाह—

पुण्णदिणे अमवासे सोलसकारससहस्स जलउदओ ।
वासं मुहभूमीए दसयसहस्सा य वेलक्खा ॥ ९०० ॥

पूर्णदिने अमावास्यायां षोडशैकादशसहस्रं जलोदयः ।
व्यासः मुखभूम्योः दशसहस्रं च द्विलक्षं ॥ ९०० ॥

पुण्ण। पूर्णिमादिने अमावास्यायां च यथासंख्यं षोडशसहस्र १६००० मेकादशसहस्रं च

११००० लवणे जलोदयः स्यात् तस्य षोडशसहस्रोदये मुखव्यासो दशसहस्रं १०००० षोडशसहस्रोदयस्य १६००० एतावद्धानौ १९०००० पञ्चसहस्रोदयस्य ५००० किमिति सम्पात्यापवर्त्य गुणयित्वा $\frac{190000 \times 5000}{16000}$ भागहारेण भक्त्वा ५९३७५ अस्मिन्मुखव्यासे १०००० युते स्यात् ६९३७५। इयमेकादशसहस्रो ११००० दये मुखव्यासः स्यात्। भूव्यासस्तु द्विलक्षयोजनं स्यात् ॥ ९०० ॥

इस प्रकार हानि वृद्धि युक्त लवण समुद्र का भूव्यास और मुख व्यास कहते हैं :—

गाथार्थ:—लवण समुद्र के मध्य में समुद्र का जल पूर्णिमा को सोलह हजार ऊंचा और अमावस्या को ग्यारह हजार ऊंचा होता है। सोलह हजार ऊंचाई वाले जल का भूव्यास दो लाख योजन और मुख व्यास दश हजार योजन प्रमाण है ॥ ९०० ॥

विशेषार्थ:—लवण समुद्र के मध्य में अमावस्या के दिन जल की ऊंचाई समभूमि से ११००० योजन रहती है। इसके बाद प्रतिदिन ३३३⅓ योजन की वृद्धि होती हुई पूर्णिमा को वह ऊंचाई १६००० योजन हो जाती है। पुनः प्रतिदिन ३३३⅓ योजन की हानि होती हुई अमावस्या को जल की ऊंचाई ११००० योजन रह जाती है। जब जल १६००० योजन ऊंचा होता है तब उसका भू व्यास अर्थात् नीचे की चौड़ाई दो लाख योजन और मुख व्यास अर्थात् ऊपर की चौड़ाई १०००० योजन की रहती है।

जबकि १६००० योजन की ऊँचाई पर १९०००० योजन की चौड़ाई का ह्रास होता है, तब (१६०००—११०००)=५००० योजन की ऊँचाई पर कितना ह्रास होगा? इस प्रकार त्रैराशिक कर ($\frac{190000 \times 5000}{16000}$) शून्यों का शून्यों से अपवर्तन एवं गुणन राशि का गुणा कर अपने भागहार का भाग देने से ५९३७५ योजन प्राप्त हुए। इनमें मुख व्यास १०००० योजन जोड़ देने से (५९३७५+१००००)=६९३७५ योजन मुख व्यास का प्रमाण प्राप्त हुआ। अर्थात् जब जल समभूमि से ११००० योजन ऊँचा होता है तब उसकी ऊपर की चौड़ाई ६९३७५ योजन और भूव्यास अर्थात् जमीन पर जल की ऊँचाई दो लाख योजन होती है।

इदानीं जम्बूद्वीपस्थचन्द्रादित्ययोर्लवणजलस्य तिर्यगन्तरमाह—

मुरवायारो जलही हाणिदलं सोदयेण संगुणियं।
विसमुद्दचारमंबुहिजंबूचंदरवि अंतरयं ॥ ९०१ ॥

मुरजाकारः जलधिः हानिदलं स्वोदयेन सगुण्य।
विसमुद्रचारमम्बुधिजम्बूचन्द्रव्यन्तरं ॥ ९०१ ॥

मुरवा। मुरजाकारो जलधिः हानिदलं भूमेः सकाशाच्चन्द्रा ८८० दित्ययो ८०० रुत्सेधेन संगुणियं तु विगतसमुद्रचारं यत् तदम्बुधेर्जम्बूद्वीपस्थचन्द्ररव्योस्तिर्यगन्तरं स्यात् ॥ अमुमेवार्थं विवरयति—तत्कथं? मुखं १०००० भूमौ २ ल० शोधयित्वा १९०००० अर्धीकृत्य ९५०००

यत्रावेतावद्योजनोदयस्य १६००० एतावद्धानौ ९५००० एकयोजनोदयस्य किमिति सम्पात्यापवर्तिते $\frac{९५}{१६}$ एकयोजनोदयहानिः स्यात्। एक १ योजनोदयस्य एतावद्धानिश्चये $\frac{९५}{१६}$ एतावतः ८८० किमिति सम्पात्य $\frac{९५}{१६}$। ८८० षोडशभिस्तिर्यगपवर्त्य $\frac{५५}{१}$। ५५ गुणयित्वा ५२२५ अत्र समुद्रचारक्षेत्रं ३३०$\frac{४८}{६१}$ अपनीय ४८९५ अत्रैकं गृहीत्वा रविबिम्बेन $\frac{४८}{६१}$ समच्छेदं कृत्वा $\frac{६१}{६१}$ अत्र बिम्बे अपनीते $\frac{१३}{६१}$ चन्द्राम्बुध्योस्तिर्यगन्तरं स्यात्। तदानू एतावद्गतो $\frac{९५}{१६}$ एकयोजनोदये एतावद्गतो ३३०$\frac{४८}{६१}$ किमिति सम्पात्य चारक्षेत्रं ३३० रविबिम्बेन $\frac{४८}{६१}$ समच्छेदीकृत्यान्योन्यं मेलयित्वा $\frac{२०१७८}{६१}$ एतद्धारस्य ९५ हारेण च १६ गुणयित्वा $\frac{३२२८४८}{५७९५}$ भक्ते लब्धं ५५ शेष $\frac{४१२३}{५७९५}$ चन्द्रप्रणिधिजलधेः जलोदयः स्यात्। एतच्चन्द्रोदये ८८० अपनीते ८२४ शेष $\frac{१६७२}{५७९५}$ चन्द्रार्णवोर्ध्वान्तरं स्यात्। साम्प्रतं रवेस्तिर्यगन्तरादिकमानीयते। एकयोजनोदयस्य १ तदावेतावद्गतिक्षेत्रे $\frac{९५}{१६}$ एतावतः ८०० किमिति सम्पात्य षोडशभिस्तिर्यगपवर्त्य $\frac{५०}{१}$। ५० गुणयित्वा ४७५० अत्र समुद्रचारे ३३०$\frac{४८}{६१}$ अपनीते ४४१९$\frac{१३}{६१}$ सति सूर्यार्णवतिर्यगन्तरं स्यात्। चन्द्रार्णवोर्ध्वान्तरे ८२४ शे $\frac{१६७२}{५७९५}$ अशीति ८० योजने अपनीते ७४४ $\frac{१६७२}{५७९५}$ सूर्यार्णवोर्ध्वान्तरं स्यात्। अथ प्रसङ्गेन लवणसमुद्रलब्धवन्हिसूर्यप्रणिधौ जलोदयः साध्यते। रविबिम्बस्य व्यासं $\frac{४८}{६१}$ द्विगुणीकृत्य $\frac{९६}{६१}$ तत्समच्छेदीकृते लवणव्यासे $\frac{१२२०००००}{६१}$ अपनयेत्। $\frac{१२१९९९०४}{६१}$ इदं सर्वान्तरालक्षेत्रं स्यात्। द्वयोरन्तरयोरेतावति क्षेत्रे $\frac{१२१९९९०४}{६१}$ एकान्तरस्य किमिति सम्पात्य द्वाभ्यामपवर्त्य $\frac{६०९९९५२}{६१}$ भक्ते ९९९९९ भा $\frac{१३}{६१}$ इदं लवणसमुद्रीयसूर्ययोरन्तरं स्यात्। एतदेव समच्छेदीकृत्य स्वार्धेन प्रहिमन्तर्विते ४९९९९ शे $\frac{३७}{६१}$ इदं लवणसमुद्रीयसूर्यवेदिकान्तरं स्यात्। एतदेव समच्छेदीकृत्य स्वांशेन मेलयित्वा $\frac{३०४९९९७१}{६१}$ पश्चादेतावदायामे $\frac{९५}{१६}$ एकयोजनोदयश्चेत् एतावदायामे $\frac{३०४९९९७१}{६१}$ किमिति सम्पात्य हारस्य हारेण संगुण्य $\frac{३०४९९९७१}{५७९५}$ भक्ते ८४२० शे $\frac{४७९१}{५७९५}$ सतीदं लवणसमुद्रीयसूर्यप्रणिधौ जलोदयः स्यात् ॥ ९०१ ॥

अब जम्बूद्वीपस्थ चन्द्र सूर्य से लवण समुद्र के जल का तिर्यग् अन्तर कहते हैं :—

गाथार्थः—लवण समुद्र मुरजाकार है। इसकी हानि के प्रमाण को आधा कर ($\frac{९५०००}{१६०००}$) चन्द्र, सूर्य की अपनी अपनी ऊँचाई के प्रमाण से गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें से समुद्र सम्बन्धी चार क्षेत्र घटा देने पर लवण समुद्र के जल का चन्द्र सूर्य से तिर्यगन्तर का प्रमाण प्राप्त हो जाता है ॥ ९०१ ॥

विशेषार्थः—लवण समुद्र का जल मुरजाकार है तथा चन्द्रमा भूमि से ८८० योजन और सूर्य भूमि से ८०० योजन की ऊँचाई पर स्थित है। लवण समुद्र की हानि के प्रमाण को आधा कर ($\frac{९५०००}{१६०००}$) चन्द्र सूर्य की अपनी अपनी ऊँचाई के प्रमाण से गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो, उसमें से समुद्र सम्बन्धी चार क्षेत्र का प्रमाण घटा देने पर जम्बूद्वीपस्थ चन्द्र सूर्य का लवण समुद्र के जल से तिर्यग् अन्तर प्राप्त होता है।

इसी अर्थ का विवेचन करते हैं :—लवण समुद्र के जल में जहाँ १६००० योजन की वृद्धि होती

है वहाँ मुख १०००० योजन और भूमि २००००० योजन है। भूमि में से मुख का प्रमाण घटा कर आधा करने पर (२००००० — १०००० = १९०००० ÷ २) = ९५००० योजन एक पार्श्व भाग में हानि का प्रमाण प्राप्त हुआ। जबकि १६००० योजन की ऊँचाई पर ९५००० योजनों की हानि होती है तो १ योजन की ऊँचाई पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{९५०००}{१६०००}$) = $\frac{९५}{१६}$ योजन हानि चय प्राप्त हुआ। जबकि १ योजन की ऊँचाई पर $\frac{९५}{१६}$ योजन की हानि होती है, तो चन्द्रमा की ८८० योजन की ऊँचाई पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{९५ \times ८८०}{१६}$) ८८० को १६ से अपवर्तन करने पर $\frac{९५}{१} \times \frac{५५}{१}$ प्राप्त हुआ। इनका परस्पर में गुणा करने पर ५२२५ योजन हुए। समुद्र सम्बन्धी चार क्षेत्र का प्रमाण ३३० $\frac{४८}{६१}$ योजन है। ५२२५ योजनों में से ३३० $\frac{४८}{६१}$ योजन घटाने पर ५२२५—३३० = ४८९५ यो० हुए। इसमें से १ अङ्क ग्रहण कर $\frac{४८}{६१}$ घटाने के लिए एक का समच्छेद करने पर $\frac{६१}{६१}$ योजन हुए, अतः $\frac{६१}{६१}$ — $\frac{४८}{६१}$ = $\frac{१३}{६१}$ अवशिष्ट रहे। अर्थात् ४८९४ $\frac{१३}{६१}$ योजन अवशिष्ट रहे। यही चन्द्रमा और समुद्र जल का तिर्यग् अन्तर है। अर्थात् लवण समुद्र के तट से ३३० $\frac{४८}{६१}$ योजन तिर्यग् जाने पर चन्द्रमा की ऊँचाई ८८० योजन प्राप्त होती है और समुद्र तट से ५२२५ योजन तिर्यग् जाने पर समुद्र जल की ८८० योजन की ऊँचाई प्राप्त होती है अतः ५२२५—३३० $\frac{४८}{६१}$ = ४८९४ $\frac{१३}{६१}$ योजन चन्द्रमा और समुद्र जल का तिर्यगन्तर प्राप्त हुआ।

चन्द्र और समुद्र जल का ऊर्ध्व अन्तर—जबकि $\frac{९५}{१६}$ योजन जाने पर जल की ऊँचाई १ योजन प्राप्त होती है तो समुद्र तट से ३३० $\frac{४८}{६१}$ योजन आगे जाने पर जल की कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{१६ \times ३३० \frac{४८}{६१}}{९५}$ प्राप्त हुआ। इसमें ३३० चार क्षेत्र को समच्छेद कर रविबिम्ब के प्रमाण $\frac{४८}{६१}$ में मिला देने पर $\frac{२०१७८}{६१}$ योजन प्राप्त हुए, इन्हें ९५ भागहार से और १६ अंश से गुणा करने पर ($\frac{२०१७८ \times १६}{६१ \times ९५}$) = $\frac{३२२८४८}{५७९५}$ प्राप्त हुए इसमें अपने भागहार का भाग देने पर ५५ $\frac{४१२३}{५७९५}$ योजन प्राप्त हुए। यही चन्द्र के नीचे समभूमि से जल की ऊँचाई है। अर्थात् समुद्र तटसे ३३० $\frac{४८}{६१}$ योजन भीतर जाकर चन्द्रमा की अन्तिम गली अर्थात् चारक्षेत्र की समाप्ति होती है। वहाँ चन्द्रमा भूमि से ८८० योजन ऊपर है और वहीं समुद्र का जल समभूमि से ५५ $\frac{४१२३}{५७९५}$ योजन ऊँचा है। चन्द्रमा की ऊँचाई ८८० योजनों में से जल की ऊँचाई ५५ $\frac{४१२३}{५७९५}$ योजन घटा देने पर ($\frac{८८०}{१}$ — $\frac{३२२८४८}{५७९५}$) = $\frac{४७७६७५२}{५७९५}$ = ८२४ $\frac{१६७२}{५७९५}$ योजन समुद्र जल और चन्द्रमा के बीच का ऊर्ध्व अन्तर प्राप्त हुआ।

सूर्य से समुद्र जल का तिर्यगन्तर :—जबकि समभूमि से एक योजन की ऊँचाई पर समुद्र तट से आगे $\frac{९५}{१६}$ योजन क्षेत्र प्राप्त होता है, तब ८०० योजन की ऊँचाई पर कितना क्षेत्र प्राप्त होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{९५ \times ८००}{१६}$ प्राप्त हुए। इन्हें १६ से अपवर्तित कर अवशेष ९५ और ५० का गुणा करने पर ४७५० योजन क्षेत्र प्राप्त हुआ। इसमें से समुद्र सम्बन्धी चार क्षेत्र ३३० $\frac{४८}{६१}$ घटा देने पर ($\frac{४७५०}{१}$ — $\frac{२०१७८}{६१}$) = ४४१९ $\frac{१३}{६१}$ योजन सूर्य और समुद्र जल का तिर्यगन्तर है।

सूर्य और समुद्र जल का ऊर्ध्व अन्तर :—सूर्य और समुद्र जल के ऊर्ध्व अन्तर ८२४ $\frac{...}{...}$
में से (८८०—८००)=८० योजन घटा देने पर (८२४ $\frac{...}{...}$ — ८०)=७४४ $\frac{...}{...}$ योजन सूर्य का
समुद्र जल से ऊर्ध्व अन्तर का प्रमाण है।

अब प्रसङ्ग प्राप्त लवण समुद्र सम्बन्धी सूर्यों के समीप जल की ऊंचाई को साधते हैं :—लवण
समुद्र में चार सूर्य हैं, जो एक एक परिधि में दो दो हैं। एक सूर्य के विमान का व्यास $\frac{४८}{६१}$ योजन है,
अतः दो सूर्य विमानों के व्यास का प्रमाण ($\frac{४८}{६१}$ × $\frac{२}{१}$) = $\frac{९६}{६१}$ योजन हुआ। लवण समुद्र का व्यास
२००००० योजन है इसे $\frac{६१}{६१}$ से समच्छेद करने पर ($\frac{२०००००}{१}$ × $\frac{६१}{६१}$)= $\frac{१२२०००००}{६१}$ योजन हुए।
इसमें से $\frac{९६}{६१}$ योजन घटाने पर ($\frac{१२२०००००}{६१}$ — $\frac{९६}{६१}$)= $\frac{१२१९९९०४}{६१}$ योजन प्राप्त हुए। यह सम्पूर्ण
(दोनों) अन्तरालों का प्रमाण है। जबकि दो अन्तरालों का प्रमाण $\frac{१२१९९९०४}{६१}$ योजन है, तब १
अन्तराल का क्या प्रमाण होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{१२१९९९०४}{६१×२}$) = $\frac{६०९९९५२}{६१}$ योजन
हुए। इनमें अपने ही भागहार का भाग देने पर ९९९९९ $\frac{५३}{६१}$ योजन लवण समुद्रस्थ एक सूर्य से दूसरे सूर्य
के बीच का अन्तराल का प्रमाण है। अर्थात् दोनों परिधिवर्ती दो सूर्यों के बीच का अन्तराल है इसी को आधा
करने पर ($\frac{६०९९९५२}{६१×२}$)=४९९९९ $\frac{३७}{६१}$ यो० लवण समुद्र सम्बन्धी सूर्य और वेदिकाओं का अन्तर है।
अर्थात् जम्बूद्वीप की वेदी से ४९९९९ $\frac{३७}{६१}$ योजन दूर प्रथम परिधि का प्रथम सूर्य है और लवण समुद्र की
वेदी से अभ्यन्तर की ओर ४९९९९ $\frac{३७}{६१}$ योजन पर दूसरी परिधि का दूसरा सूर्य है। इस प्रकार जम्बूद्वीप
की वेदी से ४९९९९ $\frac{३७}{६१}$ योजन दूर प्रथम सूर्य, $\frac{४८}{६१}$ योजन सूर्य बिम्ब, ९९९९९ $\frac{५३}{६१}$ योजन सूर्य से
सूर्य का अन्तर, $\frac{४८}{६१}$ योजन सूर्य बिम्ब और ४९९९९ $\frac{३७}{६१}$ योजन द्वितीय सूर्य से लवण समुद्र की वेदी का
अन्तर है, और इन सभी का योग करने पर २००००० योजन लवण समुद्र का व्यास प्राप्त हो जाता है।

सूर्य और वेदिका के ४९९९९ योजन अन्तराल को $\frac{६१}{६१}$ से समच्छेद करने पर ($\frac{४९९९९}{१}$ × $\frac{६१}{६१}$)
= $\frac{३०४९९३९}{६१}$ प्राप्त हुए। इनमें अवशेष अंश $\frac{३७}{६१}$ जोड़ देने से ($\frac{३०४९९३९}{६१}$ + $\frac{३७}{६१}$) = $\frac{३०४९९७६}{६१}$
योजन हुए। जबकि समुद्र तट से $\frac{९५}{१६}$ योजन आगे जाने पर १ योजन ऊंचा जल प्राप्त होता है, तब
$\frac{३०४९९७६}{६१}$ योजन दूर जाने पर जल की कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक कर
($\frac{१६}{९५}$ × $\frac{३०४९९७६}{६१}$) भागहार को भागहार से और अंश को अंश से गुणा करने पर $\frac{४८७९९६१६}{५७९५}$
योजन हुए। इनको अपने ही भागहार से भाजित करने पर ८४२० $\frac{...}{५७९५}$ योजन लवणसमुद्र सम्बन्धी
सूर्यों के समीप जल की ऊंचाई का प्रमाण है।

वेदी से ४९९९९ $\frac{३७}{६१}$ योजन दूर सूर्य की वीथी है, वहाँ सूर्य तो भूमितल से ८०० योजन ऊपर
है और जल ८४२० $\frac{...}{५७९५}$ योजन ऊपर है, अतः वहाँ सूर्यादिकों का सञ्चार जल के भीतर ही होता है।
यथा :—

[कृपया चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

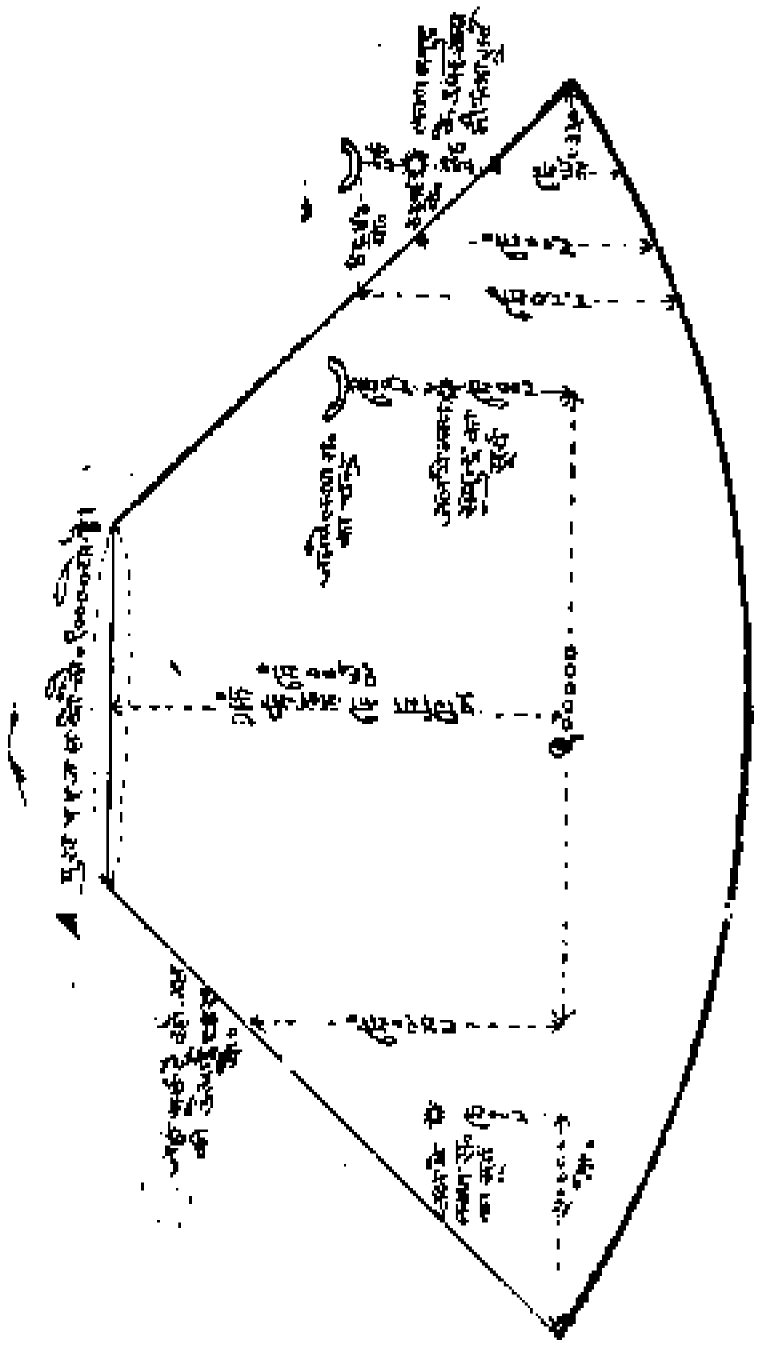

इदानीं पातालानामन्तरालं निरूपयति—

मज्झिमपरिधिचउत्थं विवरमुहं तंपि मज्झमुहमद्धं ।
सयगुणपणघणहीणं तं सयछव्वीसभाजिदे विरहं ॥ ९०२ ॥
मध्यमपरिधिचतुर्थं विवरमुखं तदपि मध्यमुखमर्धं ।
शतगुणपंचघनहीनं तत् शतषड्विंशभाजिते विरहं ॥९०२॥

मज्झिम । लवणसमुद्रस्य मध्यव्यासस्य ३ ल० स्थूलपरिधौ ९ ल० चतुर्भिर्भक्ते सति दिग्गतपातालानां मुखान्मुखप्रान्तक्षेत्रं स्यात् २२५००० इद विगतमध्यं १ ल० चेत् दिग्गतपातालयो-र्मध्यान्तरं स्यात् १२५००० एतदेव विगतमुखं १०००० चेत् तयोः पातालयोर्मुखयोरन्तरं स्यात् २१५००० एतदेव विदिग्गतपातालमुख १००० हीन २१४००० मधितं चेत् विदिग्विदिग्गतपातालयोर्मुख-

योरन्तरालक्षेत्रं स्यात् १०७५०० । एतस्मिन् पुनः शतगुणितपञ्च घनं १२५०० हीनं कृत्वा ९५००० एतस्मिन् षड्विंशत्युत्तरशतेन १२६ भागीकृते विदिग्दिग्गतपातालान्तरं पातालमुखान्तरं स्यात् ७५० ॥ ९०२ ॥

अब पातालों के अन्तरालों का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—लवण समुद्र की मध्यम परिधि का चतुर्थ भाग (९०००००/४) दिशा सम्बन्धी एक पाताल के मुख के अन्त से दिशागत दूसरे पाताल के मुख के अन्त तक के क्षेत्र का प्रमाण होता है। इनमें से पातालों का मध्य व्यास घटा देने पर एक पाताल का दूसरे पाताल के मध्य भाग का अन्तर प्राप्त होता है। तथा इस मध्यम अन्तर के प्रमाण में से उसी पाताल का मुख व्यास घटा देने पर मुख से मुख का अन्तर प्राप्त होता है, इस अन्तर के प्रमाण में से विदिग्गत पातालों का मुख व्यास घटाकर उसे आधा करने पर जो प्रमाण प्राप्त हो वह दिशा सम्बन्धी पातालों और विदिशा सम्बन्धी पातालों के मुख का अन्तर प्राप्त होता है। इस अन्तर के प्रमाण में से सौगुणा पाँच का घन अर्थात् बारह हजार पाँच सौ घटाकर अवशेष को एक सौ छब्बीस का भाग देने पर दिशा विदिशा सम्बन्धी पातालों के मुख से अन्तर दिग्गत पातालों के मुख का अन्तर प्राप्त होता है ॥ ९०२ ॥

विशेषार्थ :—लवण समुद्र का मध्यम सूची व्यास तीन लाख योजन है। इसकी स्थूल परिधि ९००००० योजन की हुई, इसका चतुर्थ भाग अर्थात् (९०००००/४)=२२५००० योजन एक दिशागत पाताल के मुख के अन्त से प्रारम्भ कर दिशागत द्वितीय पाताल के मुख के अन्त तक अन्तर है। इस मुखगत २२५००० योजनों में से दिग्गत पातालों का मध्यम व्यास १००००० योजन घटा देने पर (२२५००० — १०००००)=१२५००० योजन अवशेष रहा। यही दिग्गत पातालों के मध्य का अन्तर है। उस दो लाख पच्चीस हजार में से दिशागत पातालों का मुख व्यास दश हजार योजन घटा देने पर (२२५००० — १००००)=२१५००० योजन पातालों के मुखों के बीच का अन्तर है।

यथा :—

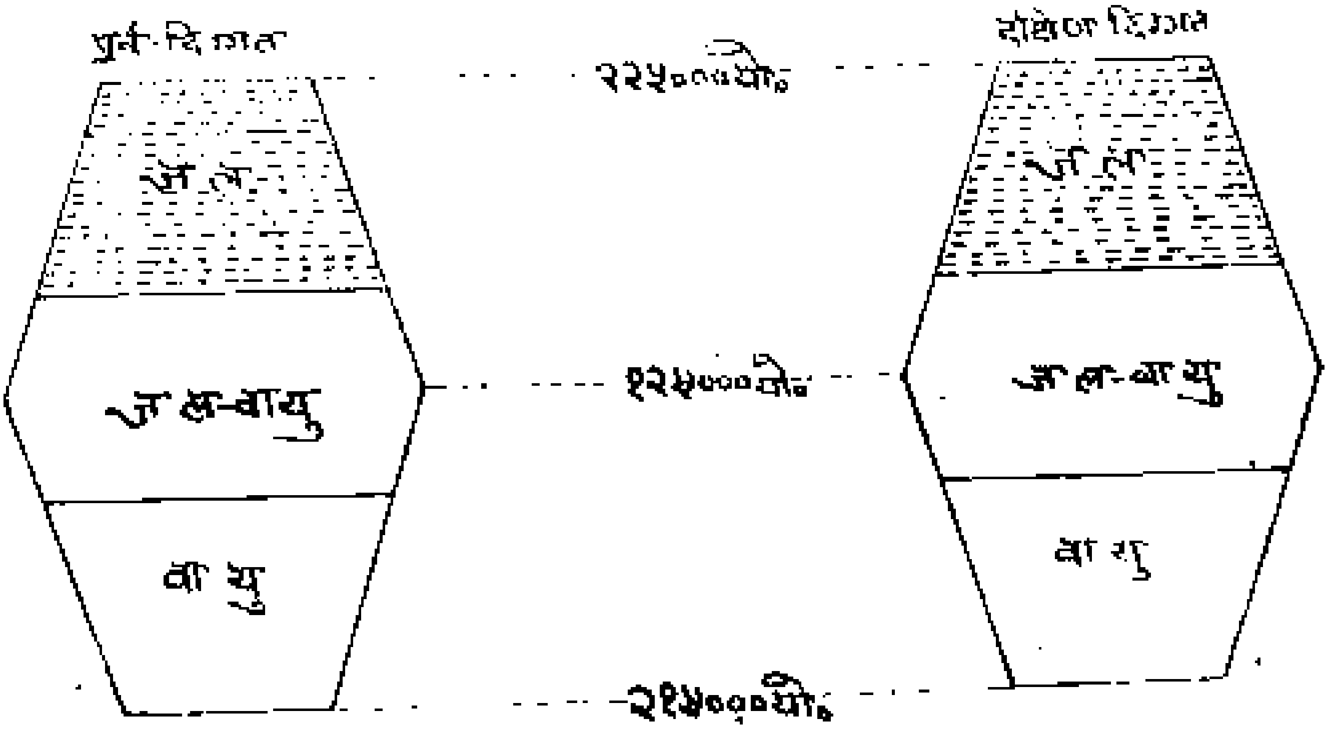

इस २१५००० योजन अन्तर प्रमाण में से विदिशा सम्बन्धी पातालों का मुख व्यास १००० योजन घटा कर अवशेष रहे—(२१५००० — १०००) = २१४००० योजनों को आधा करने पर ($\frac{२१४०००}{२}$) = १०७००० योजन दिशागत और विदिशागत पातालों के मुखों का अन्तर है।

इस १०७००० योजन अन्तर प्रमाण में से सौगुणा पाँच का घन अर्थात् ५ × ५ × ५ = १२५ × १०० = १२५०० योजन घटा देने पर (१०७००० — १२५००) = ९४५०० योजन अवशेष रहे। इन्हें १२६ (दिशागत पाताल और विदिशागत पाताल के बीच में १२५ अन्तर दिग्गत पाताल हैं अतः १२७ पातालों के १२६ अन्तराल होते हैं) से भाजित करने पर दिशा विदिशा सम्बन्धी पातालों के बीच में जो पाताल हैं उनके मुखों के बीच का अन्तराल ($\frac{९४५००}{१२६}$) = ७५० योजन प्रमाण प्राप्त होता है। यथा :—

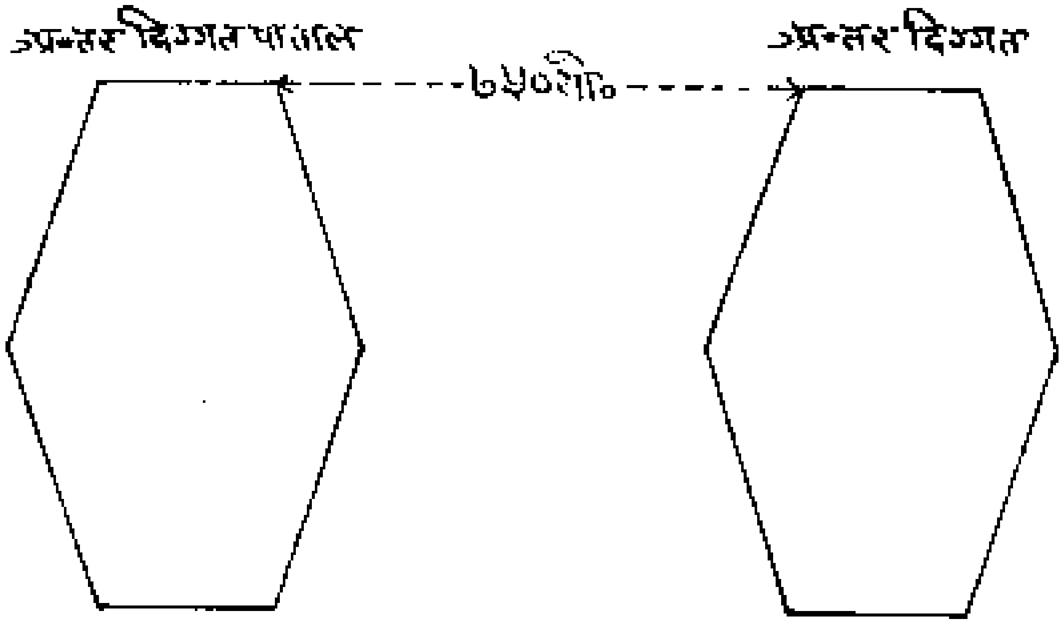

अनन्तरं लवणोदकपरिपालकानां भुजगानां विमानसंख्यां स्थानत्रयाश्रयेणाह—

बेलंधर भुजगविमाणाण सहस्साणि बाहिरे सिहरे ।
अंते बावत्तरि अडवीसं बादालयं लवणे ॥ ९०३ ॥

वेलन्धरभुजगविमानानां सहस्राणि बाह्ये शिखरे ।
अन्ते द्वासप्ततिः अष्टविंशतिः द्वाचत्वारिंशत् लवणे ॥९०३॥

बेलं। जम्बूद्वीपापेक्षया लवणसमुद्रस्य बाह्ये शिखरे अभ्यन्तरे च यथासंख्यं वेलंधरभुजगानां विमानानि द्वासप्ततिसहस्राणि ७२००० अष्टाविंशतिसहस्राणि २८००० द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि ४२००० स्युः ॥ ९०३ ॥

अब लवणोदक समुद्र के प्रतिपालक नागकुमार देवों के विमानों की संख्या को तीन स्थानों के आश्रय से कहते हैं :—

गाथार्थ :—लवण समुद्र के बाह्य में, शिखर में और अभ्यन्तर में बेलन्धर जाति के नागकुमार देवों के विमान क्रम से बहत्तर हजार, अट्ठाईस हजार और ब्यालीस हजार हैं ॥ ९०३ ॥

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप की अपेक्षा लवण समुद्र के बाह्य में, वेलन्धर जाति के नागकुमार देवों के ७२००० विमान हैं। शिखर में (१६००० ऊँची जलराशि के ऊपर) २८००० और अभ्यन्तर में ४२००० विमान हैं।

अथ तद्विमानानामवस्थानविशेषं तद्व्यासं चाह—

दुतडादो सत्तसयं दुकोसमहियं च होइ सिहरादो।
णयराणि हु गयणतले जोयणदसगुणसहस्सवासाणि ॥९०४॥

द्वितटात् सप्तशत द्विकोशाधिकं च भवति शिखरात्।
नगराणि हि गगनतले योजनदशगुणसहस्रव्यासानि ॥९०४॥

दुतडा। लवणसमुद्रस्योभयतटात्सप्तशतयोजनानि ७०० तच्छिखराच्च द्विकोशाधिकानि सप्तशतयोजनानि ७०० को २ गत्वा गगनतले दशसहस्रयोजनव्यासानि १०००० नगराणि सन्ति ॥ ९०४ ॥

अब उन विमानों का अवस्थानविशेष और व्यास कहते हैं।—

गाथार्थ :—लवण समुद्र के दोनों (बाह्य, अभ्यन्तर) तटों से सात सात सौ योजन और शिखर से दो कोस अधिक सात सौ योजन ऊपर जाकर अर्थात् जल से ऊपर मात्र आकाश में दस दस हजार (प्रत्येक) योजन व्यास वाले नगर हैं।

द्विपदपातालपार्श्वस्थपर्वतान् तस्मिन्निवासिदेवादिकं च गाथाचतुष्टयेनाह—

वडवामुहपहुदीणं पासदुगे पव्वदा हु एक्केक्का।
पुव्वे कोत्थुभसेलो इय विदियो कोत्थुभासो दु ॥९०५॥

तहि तण्णामदुवाणा दक्खिणदो उदगउदगवासणगा।
इहसिवसिवदेवसुरा संखमहासंखगिरिदु पच्छिमदो ॥९०६॥

दगदगवासदिजुगलमुत्तरदो।
लोहिदलोहिदयंका तहिं णाणा विविहवण्णणया ॥९०७॥

धवला सहस्समुग्गय मूल्वणगा मद्धवदसमायारा।
उभयतडादो गत्ता बादालसहस्समरथंति ॥ ९०८ ॥

वडवामुखप्रमुखीनां पार्श्वद्वये पर्वता हि एकैकाः।
पूर्वस्यां कौस्तुभशैलः इह द्वितीयः कौस्तुभासस्तु ॥९०५॥

तत्र तन्नामद्विकानौ दक्षिणद्वये उदकउदकवासनगौ।
इह शिवशिवदेवसुरौ शङ्खमहाशङ्खौ गिरिद्वयौ पश्चिमद्वये ॥९०६॥

तत्रोदकोदकवासामरौ दकदकवासाद्रियुगलमुत्तरद्वये ।
लोहितलोहिताङ्कौ तत्र नाणा विविधवर्णनका: ॥ ६०७ ॥
धवला: सहस्रमुद्गता: सर्वनगा: अर्धघटसमाकारा: ।
उभयतटात् गत्वा द्वाचत्वारिंशत्सहस्रमासते ॥ ६०८ ॥

पतेषां । वडवामुखप्रभृतीनां पातालानां पार्श्वद्वये एकैका: पर्वता: सन्ति । तत्र पूर्वदिक्स्थ-पातालस्य पूर्वदिशि कौस्तुभशैल: इह द्वितीयस्तु कौस्तुभासाख्य: ॥ ६०५ ॥

तेहिं । तयोरुपरि तन्नामानौ द्वौ व्यन्तरौ स्त:, दक्षिणदिक्स्थपातालस्य पार्श्वद्वये उदकोदक-वासाख्यौ नगौ स्त:, अनयोरुपरि शिवशिवदेवाख्यौ सुरौ स्त: । पश्चिमपातालस्य पार्श्वद्वये शङ्खमहा-शङ्खाख्यौ गिरी स्त: ॥ ६०६ ॥

तेसु । तयो: पर्वतयोरुपरि उदकोदकवासाख्यावमरौ स्त: । उत्तरपातालपार्श्वद्वये दकदकवासा-ख्याद्रियुगलमस्ति तयोरुपरि लोहितलोहिताङ्कौ अमरौ स्त: । ते सर्वे व्यन्तरा: विविधवर्णना-युता: ॥ ६०७ ॥

धवला । ते सर्वे पर्वता धवलवर्णा: जलादुपरि सहस्रयोजनमोत्तुङ्गा: अर्धघटसमाकारा: उभय-तटात् द्वाचत्वारिंशत्सहस्रयोजनानि ४२००० गत्वा आसते ॥ ६०८ ॥

दिग्गत पातालों के पार्श्वभागों में स्थित पर्वतों को और उन पर निवास करने वाले देवादिकों के बारे में चार गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—वडवामुख आदि पातालों के दोनों पार्श्व भागों में एक एक पर्वत है। पूर्वदिशा सम्बन्धी पाताल की पूर्व दिशा में कौस्तुभ पर्वत और उसी की पश्चिम दिशा में कौस्तुभास पर्वत है इन दोनों पर्वतों के ऊपर पर्वत समान नाम वाले देव रहते हैं। दक्षिणदिग्गत पाताल के दोनों पार्श्व भागों में उदक और उदकवास पर्वत हैं, जिन पर शिव और शिवदेव नाम के देव रहते हैं। पश्चिम दिग्गत पाताल के दोनों पार्श्व भागों में शङ्ख और महाशङ्ख नाम के पर्वत हैं, जिनके ऊपर उदक और उदकवास नाम के देव रहते हैं, तथा उत्तर दिग्गत पाताल के दोनों पार्श्वभागों में दक और दकवास नाम के युगल पर्वत हैं, जिनके ऊपर लोहित और लोहिताङ्क नाम के व्यन्तर देव रहते हैं। ये व्यन्तर देव नाना प्रकार की विभूति से सहित हैं, तथा वे सम्पूर्ण (आठों) पर्वत धवल वर्ण वाले, जल से हजार योजन ऊँचे, अर्धघटाकार वाले तथा दोनों तटों से ४२००० योजन दूर जाकर स्थित हैं ॥ ६०५ से ६०८ ॥

विशेषार्थ:—वडवामुख आदि पातालों के दोनों पार्श्वभागों में एक एक पर्वत है। वहाँ पूर्वदिशा सम्बन्धी वडवामुख पाताल की पूर्वदिशा में कौस्तुभ पर्वत और पश्चिम दिशा में कौस्तुभास नाम का पर्वत है। इन दोनों पर्वतों पर कौस्तुभ और कौस्तुभास नामधारी ही व्यन्तर देव रहते हैं। दक्षिणदिक् सम्बन्धी कदम्ब पाताल की पूर्वदिशा में उदक और पश्चिम में उदकवास पर्वत हैं जिनके ऊपर शिव और शिवदेव नाम के देव निवास करते हैं।

पश्चिमदिग्गत पाताल नाम के पाताल की पूर्व दिशा में शङ्ख और पश्चिम दिशा में महाशङ्ख नाम के पर्वत हैं, जिन पर क्रम से उदक और उदकवास नाम के देव रहते हैं, तथा उत्तर दिग्गत यूपकेशर नाम के पाताल की पूर्व दिशा में दक और पश्चिम दिशा में दकवास नाम के पर्वत हैं, जिनके ऊपर क्रम से लोहित और लोहिताङ्क नाम के देव रहते हैं। ये सर्व व्यन्तर देव नाना प्रकार की विभूतियों से सहित हैं। सर्व ही पर्वत श्वेत वर्ण और अर्धघट सदृश आकार वाले हैं। जल से १००० योजन ऊपर हैं, तथा दोनों तटों से ४२००० योजन दूर जाकर स्थित हैं।

लवणसमुद्राभ्यन्तरद्वीपान् तद्व्यासादिकं च गाथाचतुष्टयेनाह—

तडदो गंता तेत्तियमेत्तियवासा हु विदिस अंतरगा।
अडसोलस ते दीवा वट्टा सूरक्खचंदक्खा ॥ ९०९ ॥

तटतो गत्वा तावन्मात्रव्यासा हि विदिक्षु अन्तरकाः।
अष्टषोडश ते द्वीपा वृत्ताः सूर्याख्यचन्द्राख्याः ॥ ९०९ ॥

तडदो। उभयतटात्तावन्मात्राणि योजनानि ४२००० गत्वा तावन्मात्रव्यासा ४२००० विदिक्ष्वन्तरदिक्षु च यथासंख्यं अष्ट षोडशसंख्या सूर्याख्यचन्द्राख्यास्ते द्वीपाः वृत्ताः स्युः ॥ ९०९ ॥

लवण समुद्र के अभ्यन्तर द्वीपों और उनके व्यासादिक को चार गाथाओं द्वारा कहते हैं:—

गाथार्थ:—जितने योजन व्यास वाले द्वीप हैं दोनों तटों से उतने ही योजन दूर जाकर विदिशा और अन्तर दिशाओं में सूर्य नामक आठ और चन्द्र नामक सोलह वृत्ताकार द्वीप हैं ॥ ९०९ ॥

विशेषार्थ:—अभ्यन्तर तट से बाहर की ओर और बाह्य तट से भीतर की ओर ब्यालीस ब्यालीस हजार योजन दूर जाकर विदिशाओं और अन्तरदिशाओं में ४२००० योजन व्यास वाले द्वीप हैं। वहाँ चारों विदिशाओं के दोनों पार्श्वभागों में आठ सूर्य नाम के द्वीप हैं तथा अन्तर दिशाओं के दोनों पार्श्व भागों में सोलह चन्द्र नाम के द्वीप हैं। ये सर्व द्वीप गोल आकार वाले हैं।

तडदो बारसहस्सं गंतूणिह तेत्तियुदयवित्थारो।
गोदमदीओ चिट्ठदि वायव्वदिसम्हि वट्टुलगो ॥ ९१० ॥

तटतो द्वादशसहस्रं गत्वेह तावदुदयविस्तारः।
गौतमद्वीपः तिष्ठति वायव्यदिशि वर्तुलः ॥ ९१० ॥

तड। इह लवणे अभ्यन्तरतटाद् द्वादशसहस्र १२००० योजनानि गत्वा तावन्मात्रोदयः १२००० तावन्मात्रविस्तारः १२००० वृत्ताकारो वायव्यां दिशि गौतमाख्यो द्वीपस्तिष्ठति ॥ ९१० ॥

गाथार्थ:—जितने योजन विस्तार और ऊँचाई वाला द्वीप है, लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट

से बाहर की ओर उतने ही योजन दूर जाकर वायव्य दिशा में गोल आकार वाला गौतम नाम का द्वीप है ॥ ९१० ॥

विशेषार्थ :—लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट से बाहर की ओर वायव्य दिशा में १२००० योजन दूर जाकर १२००० योजन ऊँचा और १२००० योजन चौड़ा गोल आकार वाला गौतम नाम का द्वीप है।

बहुवण्णणपासादा वणवेदीसहिय तेसु दीवेसु ।
तस्सामी वेलंधरणागा सगदीवणामा ते ॥ ९११ ॥

बहुवर्णनप्रासादाः वनवेदीसहितेषु तेषु द्वीपेषु ।
तत्स्वामिनो वेलन्धरनागाः स्वकद्वीपनामानस्ते ॥ ९११ ॥

बहु । वनैर्वेदिकाभिः सहितेषु तेषु द्वीपेषु सर्वेषु बहुवर्णनोपेताः प्रासादाः सन्ति । तद्द्वीपस्वामिनो ये वेलंधरनागास्ते स्वकीयस्वकीयद्वीपनामानः ॥ ९११ ॥

गाथार्थ:—वे सब द्वीप वनों और वेदिकाओं से युक्त हैं, उनमें महान् विभूति युक्त प्रासाद हैं, उन द्वीपों के स्वामी अपने अपने द्वीप सदृश नाम वाले वेलन्धर जाति के नागकुमार देव हैं ॥ ९११ ॥

मागहतिदेवदीवतियं संखेज्जजोयणं गत्ता ।
तीरादो दक्खिणदो उत्तरभागेवि होदित्ति ॥ ९१२ ॥

मागधत्रिदेवद्वीपत्रितयं संख्यातयोजनं गत्वा ।
तीरात् दक्षिणतः उत्तरभागेऽपि भवतीति ॥ ९१२ ॥

मागह । भरतक्षेत्रे दक्षिणतस्तीरात् संख्यातयोजनानि गत्वा मागधवरतनुप्रभासाख्यामराणां त्रयाणां देवानां तत्तन्नामद्वीपत्रयमस्ति, ऐरावतोत्तरभागेऽपि तथा द्वीपत्रयमस्ति ॥ ९१२ ॥

गाथार्थ :—समुद्र के दक्षिण तट से संख्यात योजन आगे जाकर मागध आदि तीन देव हैं और इन्हीं नाम के धारी तीन द्वीप हैं। उत्तर भाग अर्थात् ऐरावत क्षेत्र में भी तीन द्वीप हैं ॥९१२॥

विशेषार्थ:—भरत क्षेत्र की गङ्गा सिन्धु नदियों के प्रवेशद्वार और एक जम्बूद्वीप का द्वार इन तीनों द्वारों के सम्मुख संख्यात योजन आगे जाकर मागध, वरतनु और प्रभास नामक तीन देवों के इसी नाम वाले तीन द्वीप हैं। इसी प्रकार उत्तर भाग अर्थात् ऐरावत क्षेत्र में भी तीन द्वीप हैं।

साम्प्रतं लवणकालोदकसमुद्रान्तस्थितान् षण्णवतिकुमानुष्यद्वीपानाह—

दिसिविदिसंतरगा हिमरजताचलसिहरिरजदपणिधिगया ।
लवणदुगे चउठिदी कुमणुसदीवा हु छण्णउदी ॥ ९१३ ॥

दिशाविदिशान्तरकाः हिमरजताचलशिखरिरजतप्रणिधिगताः ।
लवणद्विके पल्यस्थितयः कुमनुष्यद्वीपा हि षण्णवतिः ॥ ९१३ ॥

दिसि । लवणसमुद्रस्य दिक्षु चत्वारो ४ विदिक्षु चत्वारो ४ अन्तरदिक्ष्वष्टौ ८ हिमवद्रजतशिखरिरजतपर्वतानामुभयप्रान्तप्रणिधिगतौ प्रत्येकं द्वौ द्वौ इति मिलित्वाष्टौ ८ इति सर्वेऽपि मिलित्वा लवणसमुद्रस्याभ्यन्तरतटे चतुर्विंशतिः २४ बाह्यतटेऽपि चतुर्विंशतिः २४ मिलित्वाष्टचत्वारिंशत् ४८ । एवं कालोदकोभयतटेष्वष्टचत्वारिंशत् ४८ इति सर्वेऽपि मिलित्वा षण्णवतिसंख्याप्रमिताः ९६ कुमनुष्यद्वीपाः सन्ति । तत्रस्था मनुष्याः पल्यस्थितिका भवन्ति ॥ ९१३ ॥

अब लवण और कालोदक समुद्रों के अभ्यन्तर तटों पर स्थित कुमानुषों के ९६ द्वीपों को कहते हैं :—

गाथार्थ:—लवण एवं कालोदक समुद्र की दिशाओं, विदिशाओं एवं अन्तर दिशाओं में तथा हिमवन् कुलाचल, भरत क्षेत्र सम्बन्धी विजयार्ध, शिखरी कुलाचल और ऐरावत क्षेत्र सम्बन्धी विजयार्ध पर्वत के निकट ९६ कुमानुष्य द्वीप हैं जिनमें रहने वाले मनुष्य एक पल्य की आयु वाले होते हैं ॥ ९१३ ॥

विशेषार्थ :—लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट की दिशाओं में चार कुमानुष द्वीप हैं, विदिशाओं में चार और आठ अन्तर दिशाओं में आठ द्वीप हैं तथा हिमवन् कुलाचल, भरत सम्बन्धी विजयार्ध, शिखरी कुलाचल और ऐरावत सम्बन्धी विजयार्ध इन चारों पर्वतों के दोनों अन्तिम भागों के निकट एक एक अर्थात् आठ द्वीप हैं। इस प्रकार लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट के कुल द्वीपों की संख्या (४+४+८+८)=२४ है। इस के बाह्य तट पर भी २४ द्वीप हैं अतः लवण समुद्र सम्बन्धी ४८ द्वीप हुए। इसी प्रकार कालोदक समुद्र के दोनों तटों के ४८ हैं अतः कुल कुमानुष द्वीपों का प्रमाण (४८+४८)=९६ है। यथा :—

[कृपया चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

लवण समुद्रगत ४८ कुभोग भूमियों का चित्रण :—

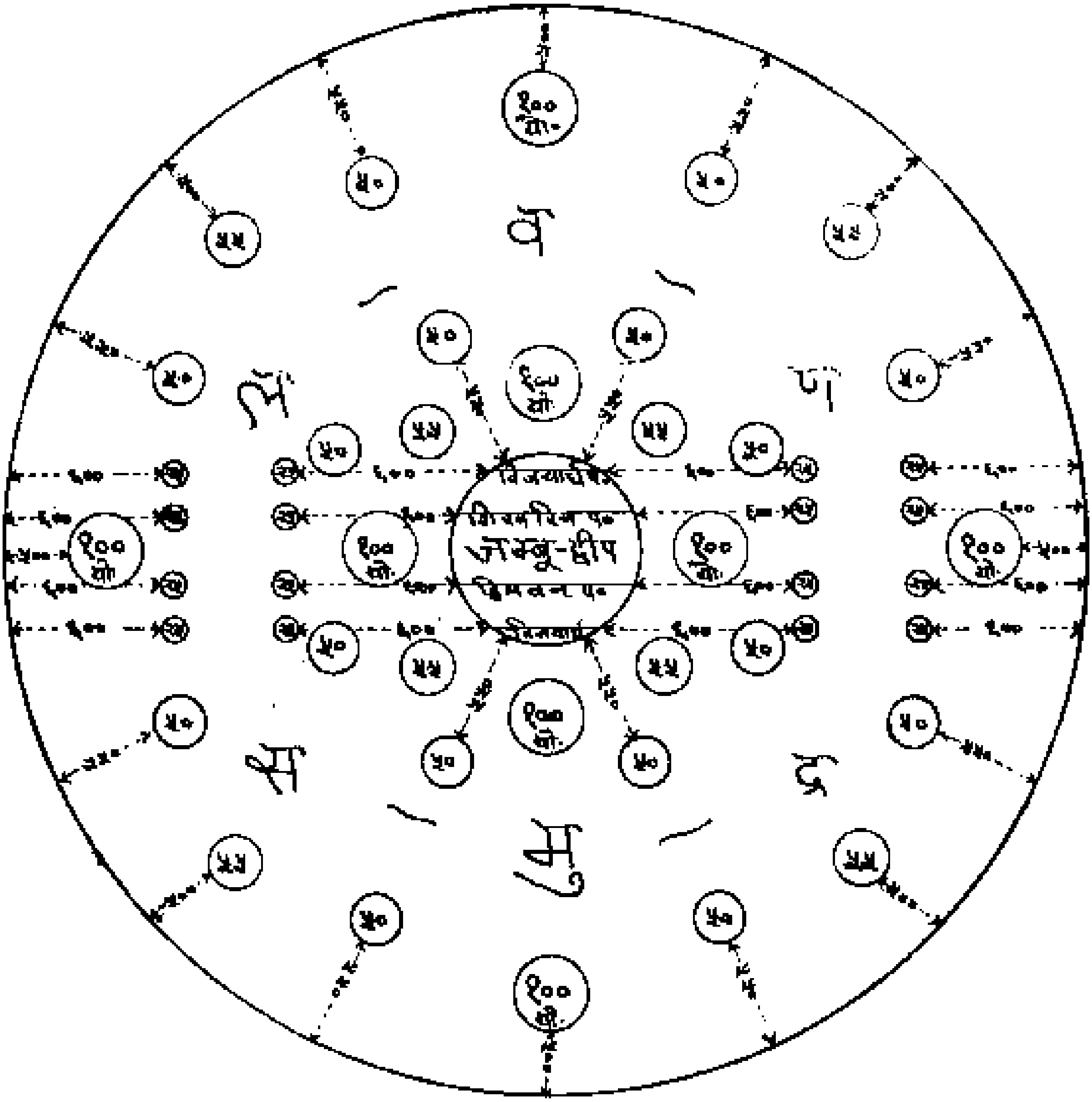

कालोदक समुद्र में भी इसी प्रकार जानना चाहिए।

उभयतटात्तेषामभ्यन्तरं तद्विस्तारं च क्रमेणाह—

दसगुण पण्णं पण्णं पणवण्णं सट्ठिमुवहिमहिगम्म ।
सय पणवण्णं पण्णं पणुवीसं वित्थडा कमसो ॥ ९१४ ॥

दशगुणं पञ्चाशत् पञ्चाशत् पञ्चपञ्चाशत् षष्टिमुदधिमधिगम्य ।
शतं पञ्चपञ्चाशत् पञ्चाशत् पञ्चविंशतिः विस्तारः क्रमशः ॥९१४॥

दश। दिग्गतद्वीपा दशगुणपञ्चाशत् ५०० योजनानि गत्वा विदिग्गता दशगुणितपञ्चाशत् ५०० योजनानि गत्वा अन्तरदिग्गता दशगुणितपञ्चपञ्चाशत् ५५० योजनानि गत्वा गिरिप्रणिधिगताश्च दश-गुणितषष्टि ६०० योजनानि गत्वा तिष्ठन्ति। तेषां विस्तारः क्रमेण शतयोजनानि १०० पञ्चपञ्चाशद् ५५ योजनानि पञ्चाशद्योजनानि ५० पञ्चविंशतियोजनानि २५ भवन्ति ॥ ९१४ ॥

दोनों तटों से उन द्वीपों का अन्तर और उनका (द्वीपों का) विस्तार क्रम पूर्वक कहते हैं :—

गाथार्थ:—वे द्वीप समुद्र तट से जल की ओर यथा क्रम दश गुणा पचास (पाँच सौ), दश गुणा पचास (५००), दश गुणा पचपन (५५०) और दशगुणा साठ (६००) योजन भीतर जाकर हैं। उन द्वीपों का विस्तार भी क्रम से १०० योजन, पचपन योजन, पचास योजन और पच्चीस योजन प्रमाण है ॥ ९१४ ॥

विशेषार्थ:—दोनों समुद्रों के अभ्यन्तर तटों से बाहर की ओर और बाह्यतटों से भीतर की ओर दिशा सम्बन्धी, १००, १०० योजन विस्तार वाले ८ द्वीप ५०० योजन दूर (जल की ओर) जाकर हैं। विदिशा सम्बन्धी ५५, ५५ योजन विस्तार वाले ८ द्वीप ५०० योजन दूर हैं। अन्तर दिशा सम्बन्धी, ५०, ५० योजन विस्तार वाले १६ द्वीप ५५० योजन दूर हैं और पर्वतों के निकटवर्ती, २५, २५ योजन विस्तार वाले १६ द्वीप ६०० योजन दूर जाकर स्थित हैं।

तेषां द्वीपानां जलादुपर्युदयमाह—

इगिगमणे पणणउदिमतुंगो सोलगुणमुवरि किं पयदे ।
दुगजोगे दीउदओ सवेदिया जोयणुग्गया जलदो ॥९१५॥

एकगमने पञ्चनवतितुङ्गः षोडशगुणमुपरि किं प्रकृते ।
द्विकयोगे द्वीपोदयः सवेदिका योजनोद्गता जलतः ॥ ९१५ ॥

इगि। भूमौ २ ल० मध्ये मुखं १०००० शोधयित्वा १९०००० अर्धीकृत्य ९५००० पश्चादेतावद्धानौ ९५००० सहस्रोदये १००० एकयोजनहानौ १ कियानुदय इति सम्पात्यापवर्तिते एकयोजनगमने जलोदयः एकयोजनपञ्चनवतितमभागः $\frac{1}{95}$ तुङ्गः स्यात् तदा स्यात् $\frac{1}{95}$ एवं धृत्वा एकयोजनगमने १ यद्येकयोजनपञ्चनवतितमभागः $\frac{1}{95}$ तुङ्गः स्यात् तदा स्यात् $\frac{1}{95}$ एवं धृत्वा एकयोजनगमने १ पञ्चशतादि योजनगमने ५०० । ५०० । ५५० । ६०० कियान् तुङ्ग इति सम्पात्य भक्त्वा शेषे सर्वत्र पञ्चभिरपवर्तिते सति। पञ्चशतादियोजनगते तत्र तत्राधोजलोदयः स्यात् ५ भो $\frac{25}{19}$ । ५ शो $\frac{25}{19}$ । ५ शेष $\frac{15}{19}$ । ६ शे $\frac{6}{19}$ । इत उपरि जलोदय आनीयते—षोडशसहस्रोदये १६००० एतावद्धानौ ९५००० एकयोजनोदये किमिति सम्पात्यापवर्तिते एकयोजनोदयहानिः स्यात् $\frac{95}{16}$ एवं धृत्वा एतावत्क्षेत्रगतौ $\frac{95}{16}$ एकयोजन जलोदयस्तदा एकयोजनगमने किमिति सम्पातिते लब्ध एकयोजनगमने उपरि जलोदयः

स्यात् $\frac{१}{९५}$ एकयोजनगतो पञ्चनवत्येकभागः षोडशगुणितः $\frac{१६}{९५}$ उपरि जलोदयश्चेत् प्रकृतपञ्चशतादि-योजनगमने ५०० । ५०० । ५५० । ६०० किमिति सम्पात्य सर्वत्र पञ्चभिरपवर्त्य $\frac{१६००}{१९}$ । $\frac{१६००}{१९}$ । $\frac{१७६०}{१९}$ । $\frac{१९२०}{१९}$ भक्ते पञ्चशतादियोजनगमने तत्तदुपरिजलोदयः स्यात् ८४ शे $\frac{४}{१९}$ । ८४ शे $\frac{४}{१९}$ । ९२ शे $\frac{१२}{१९}$ । १०१ शे $\frac{१}{१९}$ अथ उपरिमजलोदययोर्योगे जलप्रमिततत्तद्द्वीपोदयः जलादुपरि ते द्वीपाः सवेदिका एकयोजनोदयाः तदेकयोजनमपि जलगतोदये मिलिते सर्वोदयः स्यात् । लब्धं ९० शे $\frac{९}{१९}$ । ९० शे $\frac{९}{१९}$ । ९९ शे $\frac{८}{१९}$ । १०८ शे $\frac{७}{१९}$ एवमुक्त विधानं सर्व कौस्तुभादिष्वपि द्रष्टव्यम् ॥ ९१५ ।

उन द्वीपों का जल से ऊपर और नीचे का उदय (ऊँचाई) कहते हैं :—

गाथार्थ:—(तट से लवण समुद्र में) एक योजन प्रवेश करने पर जल की गहराई $\frac{१}{९५}$ योजन और सोलह से गुणित अर्थात् $\frac{१६}{९५}$ योजन ऊपर ऊँचाई है, तो प्रकृत दूर जाने पर कितनी होगी ? गहराई और ऊँचाई दोनों का योग द्वीप का उदय है तथा वेदिका सहित द्वीप जल से एक योजन ऊँचा है ॥ ९१५ ॥

विशेषार्थ :—लवण समुद्र के जल का व्यास (भूमि तल पर) दो लाख योजन है, यही भूमि है तथा समभूमि से नीचे की ओर क्रम से ह्रास होते हुए जहाँ एक हजार योजन की गहराई है वहाँ जल का व्यास दश हजार योजन है यही उसका मुख है। भूमि में से मुख घटाने पर (२००००० — १००००)=१९०००० योजन अवशेष रहे। एक पार्श्व ग्रहण करने के लिए इसे आधा किया जिसका प्रमाण ($\frac{१९००००}{२}$)=९५००० योजन प्राप्त हुआ। जबकि जल व्यास में ९५००० योजन की हानि होती है, तब (नीचे से) जल की ऊँचाई १००० योजन है, तो १ योजन की हानि पर जल की ऊँचाई कितनी होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{१०००×१}{९५०००}$)=$\frac{१}{९५}$ योजन जल की ऊँचाई प्राप्त हुई।

जब कि समुद्र तट से १ योजन भीतर जाने पर जल की ऊँचाई $\frac{१}{९५}$ योजन प्राप्त होती है, तब ५०० योजन (दिशा सम्बन्धी), ५०० योजन (विदिशा सम्बन्धी), ५५० योजन (अन्तर दिशा सम्बन्धी) और ६०० योजन (पर्वतनिकटवर्ती) दूर जाने पर जल की कितनी गहराई प्राप्त होगी ? इस प्रकार चारों त्रैराशिक भिन्न भिन्न करने पर क्रम से $\frac{१×५००}{९५}$, $\frac{१×५००}{९५}$, $\frac{१×५५०}{९५}$ और $\frac{१×६००}{९५}$ योजन प्राप्त होता है। इन्हें पाँच से अपवर्तित कर अपने अपने भागहार का भाग देने पर क्रम से वहाँ वहाँ जल की ऊँचाई ५$\frac{५}{१९}$ योजन, ५$\frac{५}{१९}$ योजन, ५$\frac{१५}{१९}$ यो० और ६$\frac{६}{१९}$ योजन प्राप्त होता है। अर्थात् दिशा एवं विदिशा सम्बन्धी आठ, आठ द्वीप समुद्र तट से ५००, ५०० योजन भीतर जाकर हैं और वहाँ नीचे से जल की ऊँचाई ५$\frac{५}{१९}$ और ५$\frac{५}{१९}$ योजन है। इसी प्रकार अन्तर दिशा सम्बन्धी द्वीप ५५० योजन दूर हैं और वहाँ जल की ऊँचाई ५$\frac{१५}{१९}$ योजन है, तथा पर्वतों के निकटवर्ती द्वीप समुद्र तट से ६०० योजन दूर हैं और वहाँ जल की ऊँचाई ६$\frac{६}{१९}$ योजन है। इस ऊँचाई का अर्थ गहराई है। अर्थात् समुद्र तट से ५०० योजन दूर जाने पर समुद्र की गहराई ५$\frac{५}{१९}$ योजन प्राप्त होती है।

अब समभूमि से ऊपर जल की ऊँचाई प्राप्त करने के लिए कहते हैं :—समभूमि पर जलव्यास दो लाख योजन है, यह भूमि है, तथा सोलह हजार की ऊँचाई पर जल का व्यास दश हजार योजन है यह मुख है। भूमि में से मुख घटा कर आधा करने पर (२००००० — १०००० = १९०००० ÷ २) = ९५००० योजन की हानि प्राप्त हुई। समभूमि से जल १६००० योजन ऊपर है। जब कि जल की १६००० ऊँचाई है तब ९५००० जल व्यास की हानि होती है, तो जल की एक योजन की ऊँचाई पर कितनी हानि होगी ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर (९५०००/१६०००) = ९५/१६ योजन जल व्यास की हानि प्राप्त हुई।

जबकि तट से ९५/१६ योजन जाने पर जल की ऊँचाई १ योजन प्राप्त होती है, तब एक योजन दूर जाने पर जल की कितनी ऊँचाई प्राप्त होगी ? इस प्रकार के त्रैराशिक से १६/९५ योजन जल की ऊँचाई एक योजन पर प्राप्त होती है।

जबकि तट से एक योजन की दूरी पर जल की ऊँचाई १६/९५ योजन है, तब क्रम से ५०० योजन, ५०० योजन, ५५० योजन और ६०० योजनों की दूरी पर जल की ऊँचाई क्या प्राप्त होगी ? इस प्रकार चार त्रैराशिक करने पर क्रम से १६×५००/९५, १६×५००/९५, १६×५५०/९५ और १६×६००/९५ योजन प्राप्त हुए। इन्हें ५ से अपवर्तन करने पर १६००/१९, १६००/१९, १७६०/१९ और १९२०/१९ हुए। इन्हें अपने भागहार से भाजित करने से प्रत्येक स्थान पर जल की ऊँचाई का प्रमाण प्राप्त होता है। यथा—जहाँ दिशा और विदिशा सम्बन्धी द्वीप हैं वहाँ जल की ऊँचाई समभूमि से ८४ ४/१९, ८४ ४/१९ योजन है अन्तर दिशा सम्बन्धी द्वीप जहाँ हैं वहाँ के जल की ऊँचाई ९२ १२/१९ योजन है और पर्वतों के निकटवर्ती द्वीप जहाँ हैं वहाँ के जल की ऊँचाई १०१ १/१९ योजन प्रमाण है।

इस प्रकार समभूमि से नीचे जल की गहराई और समभूमि से जल की ऊँचाई इन दोनों का योग कर देने पर जो जल के अवगाह का प्रमाण प्राप्त होता है वही उन उन द्वीपों की ऊँचाई का प्रमाण जानना। प्रत्येक द्वीपों की वेदी एक योजन की है अतः वेदी सहित द्वीप जल से एक योजन ऊँचे हैं। यथा :—जहाँ जहाँ द्वीप स्थित हैं, वहाँ वहाँ के जल की—

गहराई + ऊँचाई = अवगाह + वेदिका = वेदी सहित द्वीपों की ऊँचाई।

१. ५ ५/१९ + ८४ ४/१९ = ८९ ९/१९ + १ = ९० ९/१९ योजन दिशा सम्बन्धी।

२. ५ ५/१९ + ८४ ४/१९ = ८९ ९/१९ + १ = ९० ९/१९ यो० विदिशा सम्बन्धी।

३. ५ १५/१९ + ९२ १२/१९ = ९८ ८/१९ + १ = ९९ ८/१९ " अन्तरदिशा " ।

४. ६ ६/१९ + १०१ १/१९ = १०७ ७/१९ + १ = १०८ ७/१९ " पर्वतों के निकटवर्ती द्वीपों की ऊँचाई।

इसी उपर्युक्त विधान द्वारा कौस्तुभ आदि पर्वतों (द्वीपों) की ऊँचाई भी ज्ञातव्य है।

इदानीं तेषु भोगभूमिषु उत्पन्नानां मनुष्याणामाकृतिं तत्स्थानं गाथापञ्चकेनाह—

एगुरुगा लंगुलिगा वेसणगा भासगा य पुव्वादी ।
सक्कुलिकण्णा कण्णप्पावरणा लंबकण्ण ससकण्णा ॥९१६॥

सिंहस्समाणमहिसवराहमुहा वग्घघूयकपिवदणा ।
झसकालमेसगोमुहमेघमुहा विज्जुदप्पणिभवदणा ॥९१७॥

अग्गिदिसादी सक्कुलिकण्णादी सिंहवदणणरपमुहा ।
एगूरुगसक्कुलिसुदिपहुदीणं अंतरे णेया ॥ ९१८ ॥

गिरिमत्थयत्थदीवा पुव्वुत्ता सगणगस्स पुव्वदिसि ।
पच्छा भणिदा पच्छिमभागे अत्थंति ते कमसो ॥९१९॥

एगोरुगा गुहाए वसंति जेमंति मिट्ठतरमट्टिं ।
सेसा तरुतलवासा कप्पद्दुमदिण्णफलभोजी ॥ ९२० ॥

एकोरुकाः लाङ्गूलिकाः वैषाणिकाः अभाषकाः च पूर्वादिषु ।
शष्कुलिकर्णाः कर्णप्रावरणाः लम्बकर्णाः शशकर्णाः ॥ ९१६ ॥

सिंहाश्वश्वमहिषवराहमुखाः व्याघ्रघूककपिवदनाः ।
झषकालमेषगोमुखमेघमुखाः विद्युद्दर्पणेभवदनाः ॥ ९१७ ॥

अग्निदिशादिषु शष्कुलिकर्णादयः सिंहवदननरप्रमुखाः ।
एकोरुशष्कुलिश्रुतिप्रभृतीनां अन्तरे ज्ञेयाः ॥ ९१८ ॥

गिरिमस्तकस्थद्वीपाः पूर्वोक्ता स्वकनगस्य पूर्वदिशि ।
पश्चात् भणिताः पश्चिमभागे आसते ते क्रमशः ॥ ९१९ ॥

एकोरुका गुहायां वसंति जेमंति मृष्टतरमृत्तिकां ।
शेषाः तरुतलवासाः कल्पद्रुमदत्तफलभोजिनः ॥ ९२० ॥

एगुरु । एकोरुकाः लाङ्गूलिकाः पुच्छवन्तः इत्यर्थः वैषाणिकाः शृङ्गिणः इत्यर्थः अभाषकाः अभाषणाः मूकाः इत्यर्थः एते यथासंख्यं पूर्वादिदिक्षु तिष्ठन्ति । शष्कुलिकर्णाः कर्णप्रावरणाः लम्बकर्णाः शशकर्णाः एते विदिक्षु तिष्ठन्ति ॥ ९१६ ॥

सिंह । सिंहमुखाः अश्वमुखाः शुनकमुखाः महिषमुखाः वराहमुखाः व्याघ्रमुखाः घूकवदनाः कपिवदनाः इत्यष्टौ ८ झषमुखाः कालमुखाः मेषमुखाः गोमुखाः मेघमुखाः विद्युद्वदनाः दर्पणवदनाः इभवदनाः इत्यष्टौ ८ ॥ ९१७ ॥

अग्गि । अग्निदिशादिषु विदिक्षु शष्कुलिकर्णादयश्चत्वारः सन्ति । सिंहाश्वमहिषप्रमुखा अष्टौ एकोरुकशष्कुलिकर्णप्रभृतीनामन्तरे तिष्ठन्ति इति शेषाः ॥ ९१८ ॥

गिरि । हिमवद्रजतशिखरिरजताचलाग्रगिरिमस्तकस्थद्वीपस्थानां झषमुखादियुगलानां मध्ये पूर्वोक्ताः क्रमेण स्वकीयस्वकीयनगस्य पूर्वदिशि तिष्ठन्ति । पश्चात् भणिताः स्वस्वनगस्य पश्चिमभागे आसते ॥ ९१९ ॥

एगोरुगा । तत्रापि एकोरुकाः गुहायां वसन्ति मृष्टतरां मृत्तिकां जेमन्ति च । शेषाः सर्वे तरुतलवासाः कल्पद्रुमदत्तफलभोजिनो भवन्ति ॥ ९२० ॥

अब कुभोगभूमि में उत्पन्न मनुष्यों की आकृति और उनके रहने के स्थान पाँच गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थः—लवण समुद्र की पूर्वादि दिशाओं के द्वीपों में क्रम से एकोरुक, लांगूलिक, वैषाणिक और अभाषक ये चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं तथा (चारों विदिशाओं में क्रम से) शष्कुलिकर्ण, कर्णप्रावरण, लम्ब कर्ण और शशकर्ण ये चार प्रकार के मनुष्य रहते हैं। सिंह, अश्व, श्वान, भैंसा तथा वराह मुख वाले तथा व्याघ्र, घुग्घू और बन्दर सदृश मुख वाले और मत्स्य मुख, काल मुख, मेषमुख, गोमुख, मेघमुख, विद्युत्मुख, दर्पणमुख और हस्ति मुख वाले कुमानुष रहते हैं। इनमें से आग्नेयादि विदिशाओं में शष्कुलिकर्ण आदि तथा एकोरुक और शष्कुलिकर्ण आदि के अन्तरालों में सिंहवदन हैं प्रमुख जिनमें ऐसे आठ प्रकार के मनुष्य रहते हैं। पर्वत के मस्तक ऊपर स्थित द्वीपों में झषमुख आदि युगलों में से जिनका नाम पहिले आता है वे चार अपने पर्वत के पूर्वभाग में और जिनका नाम पीछे आता है वे पश्चिम भाग में रहते हैं।

एकोरुक आदि कुमनुष्य गुफाओं में रहते हैं और वहाँ की अत्यन्त मीठी मिट्टी का भोजन करते हैं; शेष कुमानुष वृक्षों के नीचे रहते हैं और कल्पवृक्षों द्वारा दिए हुए फलों का भोजन करते हैं ॥ ९१६ से ९२० ॥

विशेषार्थः—लवण समुद्र की पूर्व दिशागत द्वीपों में एकोरुक–एक जङ्घा वाले, दक्षिण में लांगूलिक–पूँछवाले, पश्चिम में वैषाणिक–सींग वाले और उत्तर दिशा में अभाषक अर्थात् गूँगे कुमनुष्य रहते हैं। ये चारों प्रकार के कुमानुष गुफाओं में निवास करते हैं और वहाँ की अत्यन्त मीठी मिट्टी का भोजन करते हैं। तथा आग्नेय में शष्कुलि कर्ण—शष्कुलि सदृश कर्ण वाले, नैऋत्य में कर्ण प्रावरण—जिनके कान वस्त्र के सदृश शरीर का आच्छादन आदि करते हैं, वायव्य में लम्बकर्ण—लम्बे कर्णवाले और ईशान विदिशा में शशकर्ण—सुसा सदृश कर्ण वाले कुमानुष रहते हैं। चार दिशाओं में रहने वाले एकोरुक आदि और चारों विदिशाओं में रहने वाले शष्कुलिकर्ण आदि आठ प्रकार के मनुष्यों के आठ अन्तरालों में क्रम से सिंहमुख, अश्वमुख, श्वानमुख, भैंसामुख, शूकरमुख, व्याघ्रमुख घुग्घूमुख और

बन्दर मुख मनुष्य रहते हैं तथा हिमवत् कुलाचल, भरत वैताढ्य, शिखरी कुलाचल और ऐरावत-वैताढ्य इन चारों के मस्तक पर स्थित द्वीपों में अर्थात् पर्वतों की पूर्वदिशा में मीनमुख, मेषमुख, मेघमुख और दर्पणमुख मनुष्य रहते हैं। पर्वतों की पश्चिम दिशा में कालमुख, गोमुख, विद्युन्मुख और हाथीमुख मनुष्य रहते हैं।

उपर्युक्त सभी मनुष्य वृक्षों के नीचे निवास करते हैं और कल्पवृक्षों द्वारा प्रदत्त फलों का भोजन करते हैं। यहाँ जन्मादिक की सर्व प्रवृत्ति जघन्य भोगभूमि सदृश है। उपर्युक्त सभी मनुष्यों का जो कर्ण एवं मुख आदि का विशेष आकार कहा है उसके अतिरिक्त उनका सम्पूर्ण आकार मनुष्य सदृश ही है।

तेषां षण्णवतिद्वीपानां संख्याया विशेषविवरणमाह—

> चउवीसं चउवीसं लवणदुतीरेसु कालदुतडेवि ।
> दीवा तावदियंतरवासा कुणरा वि तण्णामा ॥ ९२१ ॥
>
> चतुर्विंशं चतुर्विंशं लवणद्वितीरयोः कालद्वितटयोरपि ।
> द्वीपाः तावदन्तरव्यासाः कुनरा अपि तन्नामानः ॥ ९२१ ॥

चउवीसं। लवणसमुद्रस्य द्वयोस्तीरयोः चतुर्विंशतिः चतुर्विंशतिर्द्वीपाः कालोदकसमुद्रस्य द्वयोस्तटयोरपि द्वीपास्तटान्तराणि व्यासाश्च लवणसमुद्रवत्तावन्तः। तत्रत्याः कुनरा अपि तत्तद्द्वीप-समाननामानः स्युः ॥ ९२१ ॥

उन ९६ द्वीपों की संख्या का विशेष विवरण कहते हैं :—

गाथार्थ :—लवण समुद्र के दोनों तटों पर चौबीस चौबीस तथा कालोदक समुद्र के दोनों तटों पर भी चौबीस चौबीस द्वीप हैं। यहाँ कालोदक सम्बन्धी द्वीपों का अन्तर और व्यास उतना ही है जितना लवण समुद्र गत द्वीपों का है। उन सभी द्वीपों में स्थित कुमनुष्यों के नाम अपने अपने द्वीप सदृश ही हैं ॥ ९२१ ॥

विशेषार्थ :—लवण समुद्र के बाह्याभ्यन्तर दोनों तटों पर चौबीस चौबीस और कालोदक समुद्र के दोनों तटों पर भी चौबीस चौबीस द्वीप हैं। इनमें दिशा, विदिशा और अन्तर दिशा सम्बन्धी द्वीप तो सर्वत्र अर्थात् चारों तटों की दिशाओं, विदिशाओं एवं अन्तर दिशाओं में ही हैं, किन्तु पर्वत सम्बन्धी द्वीप लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट पर तो जम्बूद्वीप सम्बन्धी पर्वतों के दोनों अन्तिम भागों में स्थित हैं तथा लवण समुद्र के बाह्य तट पर और कालोदक के अभ्यन्तर तट पर धातकी खण्ड सम्बन्धी पर्वतों के एक एक अन्तिम भाग में ही हैं। (देखिए चित्रण गा० नं० ९१९)। तटों से द्वीपों का अन्तराल एवं द्वीपों का व्यास जितना लवण समुद्र में कहा था उतना ही कालोदक में है। उन द्वीपों में रहने वाले मनुष्यों के नाम अपने अपने द्वीपों के नाम सदृश ही हैं।

तेषु कुमनुष्यद्वीपेषु उत्पद्यमानान् गाथात्रयेणाह—

जिणलिंगे मायावी जोइसमंतोवजीवि धणकंखा।
अइगउरवसण्णजुदा करंति जे परविवाहंपि ॥ ९२२ ॥

दंसणविराहया जे दोसं णालोचयंति दूसणगा।
पंचग्गितवा मिच्छा मोणं परिहरिय भुंजंति ॥ ९२३ ॥

दुब्भावअसुचिसूदगपुप्फवईजाइसंकरादीहिं।
कयदाणा वि कुवत्ते जीवा कुणरेसु जायंते ॥ ९२४ ॥

जिनलिङ्गे मायाविनो ज्योतिर्मन्त्रोपजीविनः धनकांक्षिणः।
अतिगारवसंज्ञायुताः कुर्वन्ति ये परविवाहमपि ॥ ९२२ ॥

दर्शनविराधका ये दोषं नालोचयन्ति दूषणकाः।
पञ्चाग्नितपसः मिथ्याः मौनं परिहृत्य भुञ्जते ॥ ९२३ ॥

दुर्भावाशुचिसूतकपुष्पवतीजातिसङ्करादिभिः।
कृतदाना अपि कुपात्रेषु जीवाः कुनरेषु जायन्ते ॥९२४॥

जिण। जिनलिङ्गे मायाविनो जिनलिङ्गे ज्योतिर्मन्त्रवैद्याद्युपजीविनो जिनलिङ्गे धनकांक्षिणो जिनलिङ्गे ऋद्धियशःसातगारवयुक्ताः जिनलिंगे आहारभयमैथुनपरिग्रहसंज्ञायुक्ताः ये जिनलिंगे परविवाहं कुर्वन्ति ॥ ९२२ ॥

दंसण। ये जिनलिंगे दर्शनविराधकाः ये च जिनलिंगे स्वदोषं नालोचयन्ति, ये जिनलिंगे परदूषकाः ये मिथ्यादृष्टयः पञ्चाग्नितपसः ये मौनं परिहृत्य भुञ्जते ॥ ९२३ ॥

दुब्भाव। दुर्भावेनाशुच्या सूतकेन पुष्पवतीसंसर्गेण जातिसङ्करादिभिश्च ये कृतदानाः ये कुपात्रेषु च कृतदानास्ते जीवाः कुनरेषु जायन्ते ॥ ९२४ ॥

कुमनुष्य द्वीपों में कौन उत्पन्न होते हैं ? सो तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं—

गाथार्थ :—जो जीव जिनलिङ्ग धारणकर मायाचारी करते हैं, ज्योतिष एवं मन्त्रादि विद्याओं द्वारा आजीविका करते हैं, धन के इच्छुक हैं, तीन गारव एवं चार संज्ञाओं से युक्त हैं, गृहस्थों के विवाह आदि कराते हैं, सम्यग्दर्शन के विराधक हैं, अपने दोषों की आलोचना नहीं करते, दूसरों को दोष लगाते हैं, जो मिथ्यादृष्टि पञ्चाग्नि तप तपते हैं, मौन छोड़ कर आहार करते हैं तथा जो दुर्भावना, अपवित्रता, सूतक आदि से एवं पुष्पवती स्त्री के स्पर्श से युक्त तथा जातिसङ्कर आदि दोषों से सहित होते हुए भी दान देते हैं और जो कुपात्रों को दान देते हैं वे जीव मरकर कुमनुष्यों में उत्पन्न होते हैं ॥ ९२२—९२४ ॥

विशेषार्थ:—जो जीव जिनलिङ्ग धारणकर मायाचारी करते हैं। जिनलिङ्ग में ज्योतिष एवं मन्त्र आदि विद्याओं का प्रयोग कर आजीविका (आहारादि को) प्राप्त करते हैं। जिनलिङ्ग धारण कर धन के इच्छुक हैं। ऋद्धि रस और सात गारव से युक्त हैं। जिनलिङ्ग में आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञा से युक्त हैं तथा जो जिनलिङ्ग धारण कर दूसरों के विवाह करते हैं (करवाते हैं)। जो जिनलिङ्ग में सम्यग्दर्शन के विराधक हैं। जो जिनलिङ्ग धारण कर अपने दोषों की आलोचना नहीं करते तथा जो जिनलिङ्गी होकर दूसरों को दूषण लगाते हैं। जो मिथ्यादृष्टि पञ्चाग्नि तप तपते हैं तथा जो मौन छोड़ कर भोजन करते हैं। जो दुर्भावना से, अपवित्रता से, सूतकादि के सूतक से, पुष्पवती के संसर्ग से तथा **विपरीत[1] कुलों का मिलना है लक्षण जिसका ऐसे जातिसंकर आदि दोषों से संयुक्त होते हुए भी दान देते हैं और जो कुपात्रों को दान देते हैं वे सभी जीव कुमनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।**

इसी विषय का प्रतिपादन तिलोय पण्णत्ती के चतुर्थ महाधिकार में निम्न प्रकार से किया गया है :—

अभिमाणपव्विदा जे साहूण कुणंति किंचि अवमाणं ।
सम्मत्ततवजुदाणं जे णिग्गंथाण दूसणा देंति ॥ २५०३ ॥

जे मायाचाररदा संजमतवजोगवज्जिदा पावा । इड्ढिरस सादगारवगरुवा जे मोहमावण्णा ॥२५०४॥
थूलसुहुमादिचारं जे णालोचंति गुरुजण समीवे । सज्झाय वंदणाओ जे गुरुसहिदा ण कुव्वंति ॥२५०५॥
जे छंडिय मुणिसंघं वसंति एकाकिणो दुराचारा । जे कोहेण य कलहं सव्वेसिंतो पकुव्वंति ॥२५०६॥
आहारसण्णसत्ता लोहकसाएण जणिद मोहा जे । धरिऊण जिण लिंग पावं कुव्वंति जे घोरं ॥२५०७॥
जे कुव्वंति ण भत्ति अरहंताणं तहेव साहूण । जे वच्छल्ल विहीणा चाउव्वण्णम्मि संघम्मि ॥२५०८॥
जे गेण्हंति सुवण्णप्पहुदि जिणलिंग धारिणो हिट्ठा । कण्णाविवाहपहुदि संजदरूवेण जे पकुव्वंति ॥२५०९॥
जे भुंजंति विहीणा मोणेण घोरपाव संलग्गा । अण अण्णद रुवयादो सम्मत्त जे विणासंति ॥२५१०॥
ते कालवसं पत्ता फलेण पावाणविसम पाकाणं । उप्पज्जंति कुरूवा कुमाणुसा जलहि दीवेसु ॥२५११॥

गाथार्थ :—जो लोग तीव्र अभिमान से गर्वित होकर सम्यक्त्व और तप से युक्त साधुओं का किञ्चित भी अपमान करते हैं; जो दिगम्बर साधुओं की निन्दा करते हैं; जो पापी संयम, तप व प्रतिमा-योग से रहित होकर मायाचार में रत रहते हैं, जो ऋद्धि, रस और सात इन तीन गारवों से महान होते हुए मोह को प्राप्त हैं, जो स्थूल व सूक्ष्म दोषों की आलोचना गुरुजनों के समीप नहीं करते हैं, जो गुरु के साथ स्वाध्याय व वन्दना कर्म को नहीं करते हैं; जो दुराचारी मुनि संघ को छोड़ कर एकाकी

१ त्रि० सार हिन्दी पं० टोडरमलजी, पृ० ३६२ ।

रहते हैं; जो क्रोध के कारण सबसे कलह करते हैं; जो अरहन्त तथा साधुओं की भक्ति नहीं करते; जो चातुर्वर्ण्य संघ के विषय में वात्सल्य भाव से विहीन होते हैं; जो जिन लिंग के धारी होकर हर्ष पूर्वक स्वर्णादिक ग्रहण करते हैं; जो संयमी के वेष में कन्या विवाहादिक करते हैं; जो मौन के बिना भोजन करते हैं; जो घोर पाप में संलग्न रहते हैं; जो अनन्तानुबन्धि चतुष्टय में से किसी एक के उदय होने से सम्यक्त्व को नष्ट करते हैं; वे मृत्यु को प्राप्त होकर विषम परिपाक वाले पाप कर्मों के फल से समुद्र के इन द्वीपों में कुत्सित रूप से युक्त कुमानुष उत्पन्न होते हैं ॥ २५०३ – २५११ ॥

नोट :—जम्बूद्वीप पण्णत्ती में भी सर्ग १० गाथा नं० ५६ से ७९ तक यही विषय द्रष्टव्य है।

साम्प्रतं धातकीखण्डपुष्करार्धयोरेकप्रकारत्वादपि वक्ष्यमाणक्षेत्रविभागहेतून् तयोरुभयपार्श्वस्थितमिष्वाकारपर्वतानाह—

> चउरिसुगारा हेमा चउकूड सहस्सवास णिसहुदया ।
> सगदीववासदीहा इगिइगिवसदी हु दक्खिणुत्तरदो ॥९२५॥

> चतुरिष्वाकारा हैमाः चतुःकूटाः सहस्रव्यासा निषधोदयाः ।
> स्वकद्वीपव्यासदीर्घा एकैकवसतयः हि दक्षिणोत्तरतः ॥ ९२५ ॥

चउ । धातकीखण्डपुष्करार्धयोर्मिलित्वा हेममयाश्चतुः कूटाः सहस्रव्यासाः निषधोदया ४०० स्वकीयद्वीपव्यासदैर्घ्याः एकैकवसतयश्चत्वार इष्वाकारपर्वतास्तयोर्द्वीपयोर्दक्षिणोत्तरतस्तिष्ठन्ति ॥९२५॥

धातकी खण्ड और पुष्करार्ध में क्षेत्र व पर्वतादि एक प्रकार के हैं। इनमें क्षेत्रों का विभाग करने वाले दोनों पार्श्व भागों में स्थित इष्वाकार पर्वतों को कहते हैं :—

गाथार्थ:—दोनों द्वीपों के दक्षिणोत्तर दिशा में चार इष्वाकार पर्वत हैं जो स्वर्णमय और चार चार कूटों से संयुक्त हैं। जिनका एक हजार योजन व्यास, निषध कुलाचल सदृश उदय और अपने अपने द्वीपों के व्यास प्रमाण लम्बाई है तथा जो दक्षिण और उत्तर दिशा में एक एक स्थित हैं, एवं दक्षिणोत्तर लम्बे हैं ॥ ९२५ ॥

विशेषार्थ :—धातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीपों की दक्षिणोत्तर दिशा में स्वर्ण मय चार इष्वाकार पर्वत हैं। ये चारों पर्वत चार चार कूटों से संयुक्त हैं, उनकी पूर्व पश्चिम चौड़ाई १००० योजन प्रमाण है निषध कुलाचल सदृश ४०० योजन ऊँचे हैं तथा अपने अपने द्वीपों के व्यास सदृश चार और आठ लाख योजन प्रमाण लम्बे हैं। ये दक्षिण और उत्तर दिशा में एक एक स्थित हैं तथा दक्षिणोत्तर लम्बे हैं।

अथ तद्द्वीपद्वयावस्थितानां कुलगिरिप्रभृतीनां स्वरूपं निरूपयति—

कुलगिरिवक्खारणदीद्दहवणकुंडाणि पुक्खरद्दलोत्ति ।
ओगेधुस्सेहसमा दुगुणा दुगुणा दु वित्थिण्णा ॥ ९२६ ॥

कुलगिरिवक्षारनदीह्रदवनकुण्डानि पुष्करदल इति ।
अवगाधोत्सेधसमा द्विगुणा द्विगुणाः तु विस्तीर्णाः ॥ ९२६ ॥

कुल । धातकीखण्डादारभ्य पुष्करार्धपर्यन्तं तत्र सम्बन्धाः कुलगिरयः १२ वक्षाराः ४० नद्यः १८० ह्रदाः ५२ वनानि a कुण्डानि १८० । एते सर्वे जम्बूद्वीपस्थकुलगिरिप्रभृतीनामवगाधोत्सेधाभ्यां समानाः एतेषां विस्तारास्तु जम्बूद्वीपस्थविस्तारेभ्यो द्विगुणद्विगुणाः ॥ ९२६ ॥

आगे दोनों द्वीपों में अवस्थित कुलाचल आदि का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—धातकी खण्ड से पुष्करार्ध पर्यन्त अवस्थित कुलाचल वक्षार गिरि, नदी, द्रह, वन और कुण्डों की गहराई एवं ऊँचाई जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलादि के सदृश है तथा विस्तार दुगुना दुगुना है। अर्थात् जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलादिक के व्यास से धातकी खण्ड स्थित कुलाचलादिकों का व्यास दुगुना है और धातकी खण्ड की अपेक्षा पुष्करार्ध का विस्तार दुगुना है ॥ ९२६ ॥

विशेषार्थ :—धातकी खण्ड से प्रारम्भ कर पुष्करार्ध पर्यन्त एक एक द्वीप में दो दो मेरु सम्बन्धी कुलाचल १२, गजदन्तों सहित वक्षार पर्वत ४०, गङ्गा सिन्धु और विभङ्गा आदि तथा कच्छादि विदेह सम्बन्धी दो दो नदियाँ और सब मिलाकर कुल नदियाँ १८०, कुलाचलों और भद्रशाल वनों में स्थित द्रह ५२, पर्वतों और नदियों के पार्श्वभागों में स्थित वन संख्यात तथा गङ्गादि नदियों के गिरने के और विभङ्गादि नदियों के निकलने के कुल कुण्ड १८० हैं। इन सबकी गहराई और ऊँचाई तो जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलादिकों के सदृश है, किन्तु जम्बूद्वीपस्थ कुलाचलादिकों के विस्तार से धातकी खण्डस्थ कुलाचलादिकों का विस्तार दूना है तथा धातकी खण्ड की अपेक्षा पुष्करार्ध द्वीपस्थ कुलाचलादिकों का विस्तार दूना है।

अथ द्वयधंद्वीपस्थितवर्षवर्षधरपर्वतानामाकारं निरूपयति—

सयडुद्धिणिभा वस्सा दिवड्डदीवम्हि तत्थ सेलाओ ।
अंते अंकमुहाओ खुरप्पसंठाणया बाहिं ॥ ९२७ ॥

शकटोद्धिनिभा वर्षा द्वयधंद्वीपे तत्र शैलाः ।
अन्तः अङ्कमुखाः क्षुरप्रसंस्थानका बहिः ॥ ९२७ ॥

सयडु । द्वयधंद्वीपे वर्षाः शकटोद्धिकानिभाः तत्र शैला अभ्यन्तरे अङ्कमुखाः बाह्ये क्षुरप्रसंस्थानाः ॥ ९२७ ॥

अब ढेढ द्वीप में स्थित क्षेत्र और कुलाचलों का आकार कहते हैं—

गाथार्थ :—द्व्यर्धद्वीपे अर्थात् डेढ़ द्वीप में स्थित क्षेत्रों का आकार तो शकटोद्धिका अर्थात् गाड़ी के पहिये के सदृश है तथा वहाँ के कुलाचलों का अभ्यन्तर आकार अङ्क मुख एवं बाह्य आकार क्षुरप्रसंस्थान सदृश है ॥ ९२७ ॥

विशेषार्थ :—धातकी खण्ड और अर्ध पुष्कर वर द्वीप में क्षेत्र का आकार गाड़ी के पहिये के दो आरों के बीच के आकार सदृश है तथा पर्वतों का आकार पहिये के आरों सदृश है। जिनके अभ्यन्तर की ओर का आकार अङ्क मुख और बाह्य की ओर का आकार खरपा मुख है। जिसका चित्र निम्न प्रकार है :—

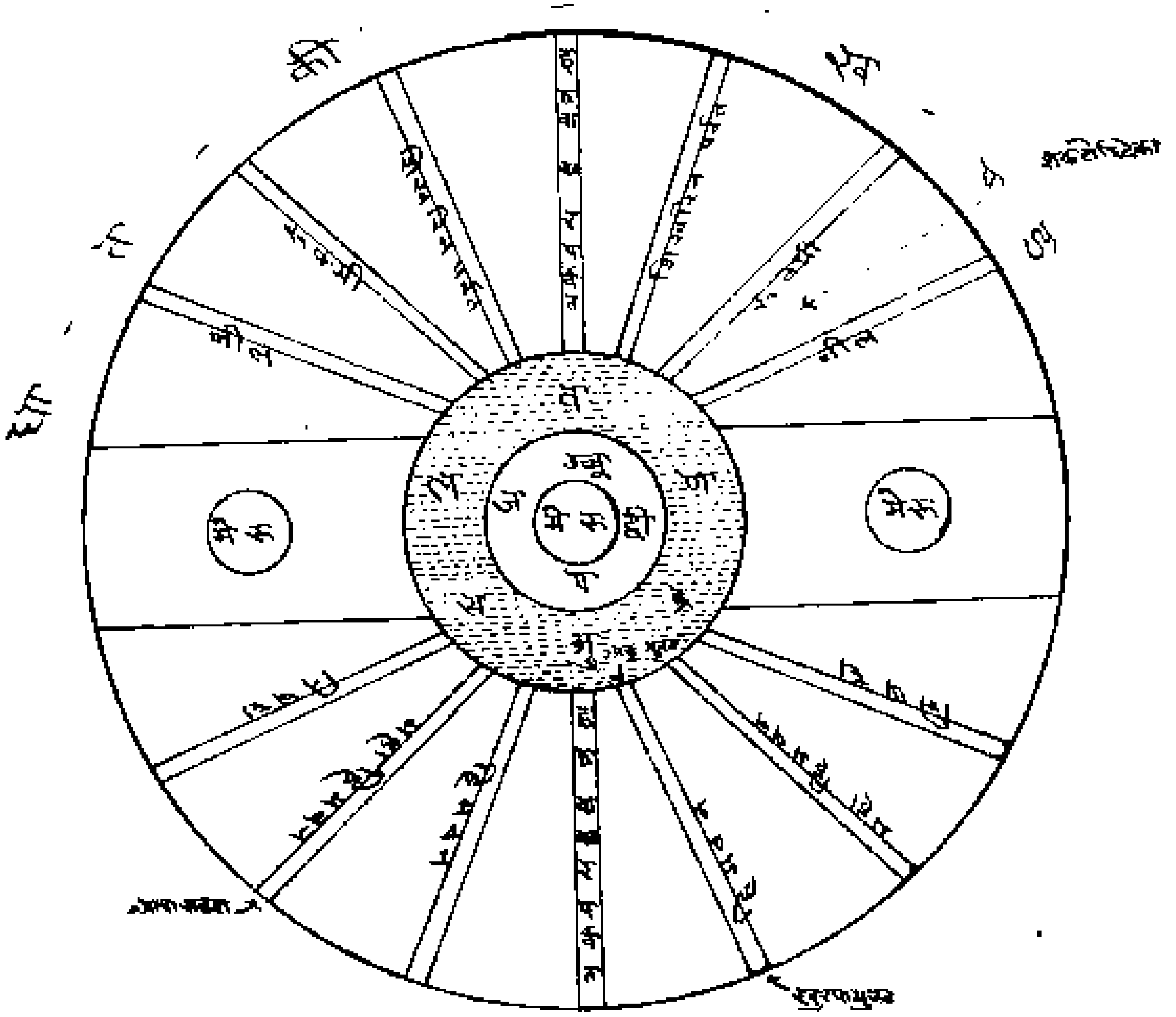

अथ धातकीखण्डपुष्करार्धयोः पर्वतावरुद्धक्षेत्रमनुवदन् तयोः परिधीमानयति—

दुगचदुरदुकसगइगि दुकला चउरद्धपंचपणतिण्णि ।
खकलमणकख्खरा आणादि मज्झचरिमपरिहि च ॥९२८॥

द्विकचतुरष्टाष्टसप्तैक द्विकले चतुरष्टषट्पञ्चपञ्चत्रीणि ।
चतुष्कलमवरुद्धवरा आनीहि आदिममध्यचरमपरिधीन् च ॥९२८॥

द्विग । द्विकचतुरष्टाष्टसप्तैकयोजनानि एकान्नविंशतिभक्तद्विकलाधिकानि १७८८४२ $\frac{२}{१९}$ धातकीखण्डस्य पर्वतावरुद्धक्षेत्रं स्यात् । चतुरष्टषट्पञ्चपञ्चत्रीणि योजनानि एकान्नविंशतेश्चतुः कलाधिकानि ३५५६८४ $\frac{४}{१९}$ पुष्करार्धस्य पर्वतावरुद्धधरा स्यात् । तयोर्धरिताविक्षेत्रव्यासमानार्थं-मादिममध्यमबाह्यपरिधिं आनीहि । पर्वतावरुद्धक्षेत्रानयनप्रकारं कथयति । सर्वपर्वतसमस्तक्षेत्रशलाका-मिश्रणान्निश्रशलाकेत्युच्यते । एतावन् निश्रशलाकायाः १९० एतावति निश्रक्षेत्रे १ ल० एता ८४ षट्कुलपर्वतशलाकयोः किमिति सम्पातिते जम्बूद्वीपस्थ पर्वतावरुद्धक्षेत्रं स्यात् $\frac{१ल \times ८४}{१९०}$ एवं कृत्वा एकशलाकाक्षेत्रस्यद्विगुणविस्तारेएतावत् शलाकाक्षेत्रस्य $\frac{१ल \times ८४}{१९०}$ किमिति सम्पातिते धातकीखण्डस्यैकभागे पर्वतावरुद्धक्षेत्रं $\frac{२ल \times ८४}{१९०}$ एकस्मिन् भागे १ एतावति क्षेत्रे $\frac{२ल \times ८४}{१९०}$ उभयोर्भागयोः किमिति सम्पातिते धातकीखण्डस्य सर्वपर्वतावरुद्धक्षेत्रं स्यात् $\frac{४ल \times ८४}{१९०}$ एतावच्चतुर्दशशलाकायाः १६८ एतावति त्रिगुणि सति $\frac{४ल \times ८४}{१९०}$ एतावन्निश्रशलाकायाः ३८० किमिति सम्पाद्य ४ल × $\frac{८४}{१९०}$ × $\frac{३८०}{१६८}$ इच्छां ३८० द्वाभ्यां सम्भेद्य १९० × २ तेन द्रूपेन चतुरशीतिं संगुण्य ४ल × $\frac{१६८}{१९०}$ × $\frac{३८०}{१६८}$ पवर्तिते ४ ल० धातकीखण्डस्य निश्रपिण्डः स्यात् । एतावन्निश्रशलाकानां ३८० एतावति क्षेत्रे ४ ल० एतावच्चतुर्दशपर्वतशलाकानां १६८ किमिति सम्पाद्य $\frac{४ल \times १६८}{३८०}$ द्वाभ्यामपवर्त्य ४ल × $\frac{८४}{१९०}$ इच्छया ८४ संगुण्य $\frac{३३६००००००}{१९०}$ भक्त्वा १७६८४२ $\frac{२}{१९}$ अत्रेष्वाकारयोर्व्यासे २००० युते १७८८४२ $\frac{२}{१९}$ धातकीखण्डस्य पर्वतावरुद्धक्षेत्रं स्यात् । तदेव १७६८४२ $\frac{२}{१९}$ पुनर्द्विगुणीकृत्य ३५३६८४ $\frac{४}{१९}$ अत्रेष्वाकारयोर्व्यासे २००० मिलिते ३५५६८४ $\frac{४}{१९}$ पुष्करार्धस्य पर्वतावरुद्धक्षेत्रं स्यात् । इदानीं धातकीखण्डस्य व्यासं ४ ल० त्रिस्थाने संस्थाप्य 'लवणादीनां वास' मित्यादिना तस्यादि ५ल० मध्यम ९ ल० बाह्यसूची १३ ल० मानीय 'विक्खंभवग्गदहगुण' इत्यादिना तत्र तत्र करणिं कृत्वा वा २५०००००००००००० म ८१०००००००००००० बा १६९०००००००००००० मूले गृहीते यथासंख्यं धातकीखण्डस्याभ्यन्तरपरिधिः १५८११३९ मध्यमपरिधिः २८४६०५० बाह्यपरिधिः ४११०९६१ स्यात् एषु त्रिषु परिधिषु प्रागानीतधातकीखण्डस्य पर्वतावरुद्धक्षेत्रे १७८८४२ $\frac{२}{१९}$ अपनीते यथासंख्यं अभ्यन्तर-परिधौ पर्वतरहितक्षेत्रं १४०२२९७ मध्यमपरिधौ पर्वतक्षेत्ररहितं २६६७२०८ बाह्यपरिधौ पर्वतरहितक्षेत्रं ३९३२११९ स्यात् ॥ ९२८ ॥

अब धातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीपों में स्थित पर्वतों द्वारा अवरुद्ध क्षेत्र को कहते हुए उन दोनों द्वीपों की परिधि को लाते हैं।—

गाथार्थ :—धातकी खण्ड स्थित पर्वतों द्वारा दो, चार, आठ, आठ, सात, एक और दो कला अर्थात् १७८८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन क्षेत्र अवरुद्ध किया गया है और पुष्करार्धस्थ पर्वतों द्वारा चार, आठ, छह,

पाँच पाँच तीन और चार कला अर्थात् ३५५६८४ $\frac{४}{१९}$ योजन क्षेत्र अवरुद्ध किया गया है। अब इन द्वीपों में स्थित भरतादि क्षेत्रों का व्यास ज्ञात करने के लिए हे शिष्य ! तू इन द्वीपों की आदि, मध्य और बाह्य परिधि को जान ॥ ९२८ ॥

विशेषार्थ:— धातकी खण्ड के पर्वतों से अवरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण १७८८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन है और पुष्करार्ध के पर्वतों से अवरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण ३५५६८४ $\frac{४}{१९}$ योजन है। इन दोनों द्वीपों में स्थित भरतादि क्षेत्रों का व्यास ज्ञात करने के लिए हे शिष्य तुम इन द्वीपों की आदि मध्य और बाह्य परिधि जानो।

पर्वत अवरुद्ध क्षेत्र प्राप्त करने का विधान प्रगट करते हैं :—

सर्व पर्वतों और सर्व क्षेत्रों की शलाकाओं के मिश्रण को मिश्रशलाका कहते हैं। यथा—जम्बूद्वीपस्थ भरतादि क्षेत्रों की शलाकाएँ क्रम से एक, चार, सोलह, चौंसठ, सोलह, चार और एक है, इन सबका योग (१ + ४ + १६ + ६४ + १६ + ४ + १) = १०६ प्राप्त हुआ तथा इसी द्वीप सम्बन्धी पर्वतों की शलाकाएँ क्रम से दो, आठ, बत्तीस, बत्तीस, आठ और दो हैं, इनका योग (२ + ८ + ३२ + ३२ + ८ + २) = ८४ हुआ। इन सम्पूर्ण क्षेत्र और पर्वतों की शलाकाओं का मिश्रण (१०६ + ८४) = १९० होता है और इन्हीं को मिश्र शलाकाएँ कहते हैं। जबकि १९० शलाकाओं का मिश्र (पर्वतों एवं क्षेत्रों द्वारा अवरुद्ध) क्षेत्र १००००० योजन प्रमाण है, तब क्षेत्र रहित पर्वतों की ८४ शुद्ध शलाकाओं का कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{१०००००\times८४}{१९०}$) = $\frac{१ ला० \times ८४}{१९०}$ योजन पर्वतों द्वारा अवरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त हुआ।

जम्बूद्वीप की प्रत्येक शलाका से धातकी खण्ड की प्रत्येक शलाका दूने दूने प्रमाण वाली है, अतः—जबकि जम्बूद्वीपस्थ एक शलाका क्षेत्र का विस्तार धातकी खण्ड में दूना है, तब $\frac{१ ला० \times ८४}{१९०}$ शलाका क्षेत्र का कितना क्षेत्र प्राप्त होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{२ ला० \times ८४}{१९०}$ योजन धातकी खण्ड के एक मेरु सम्बन्धी एक भाग में पर्वतों द्वारा अवरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त हुआ। जबकि एक भाग में $\frac{२ ला० \times ८४}{१९०}$ योजन क्षेत्र है, तब दोनों मेरु सम्बन्धी दोनों भागों में कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर धातकी खण्ड के सम्पूर्ण कुलाचलों से अवरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण $\frac{४ ला० \times ८४}{१९०}$ योजन प्राप्त होता है।

अब इसी का दूसरा विधान कहते हैं :—जम्बूद्वीपस्थ पर्वतों और क्षेत्रों के विस्तार से धातकी खण्डस्थ पर्वतों और क्षेत्रों का विस्तार दूना दूना है, इसलिए जम्बूद्वीपस्थ पर्वतों की शुद्धशलाका ८४ से धातकी खण्डस्थ पर्वतों की शुद्धशलाकाएँ दूनी अर्थात् (८४ × २) = १६८ होंगी। इसीप्रकार मिश्र शलाकाएँ भी १९० की दूनी अर्थात् ३८० होंगी।

जबकि पर्वतों की शुद्ध शलाका १६८ का $\frac{४ ला० \times ८४}{१६८}$ योजन क्षेत्र प्राप्त होता है, तब ३८० मिश्र शलाकाओं का कितना क्षेत्र प्राप्त होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{४ ला० \times ८४ \times ३८०}{३८० \times १६८}$ योजन प्राप्त हुए। यहां इच्छा राशि ३८० को दो से अपवर्तन पर १९० रहे और ८४ को दो से गुणित करने पर १६८ हुए अतः ४ ला० × $\frac{१९०}{१९०}$ × $\frac{१६८}{१६८}$ योजनों का परस्पर में संभेद करने पर धातकी खण्ड का मिश्र क्षेत्रफल ४ लाख योजन का हुआ। जबकि ३८० मिश्रशलाकाओं का क्षेत्र ४००००० योजन होता है, तब धातकी खण्डस्थ पर्वतों की शुद्धशलाका १६८ का कितना क्षेत्रफल होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{४ ला० \times १६८}{३८०}$ योजन प्राप्त हुये। इन्हें दो से अपवर्तन कर $\frac{४ ला० \times ८४}{१९०}$ योजन हुए। ४००००० लाख को ८४ से गुणित कर ($\frac{३३६०००००}{१९०}$) अपने भागहार का भाग देने पर १७६८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन हुए। इनमें दो इष्वाकारों का व्यास १००० योजन मिला देने पर १७७८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन धातकी खण्ड के पर्वतों द्वारा अवरुद्ध क्षेत्र प्राप्त हो जाता है और इसी प्रमाण को दूना कर दो इष्वाकारों का व्यास २००० योजन मिला देने पर (१७७८४२ $\frac{२}{१९}$ × २ = ३५५६८४ $\frac{४}{१९}$ + २०००) = ३५७६८४ $\frac{४}{१९}$ योजन पुष्करार्ध द्वीप के पर्वतों द्वारा अवरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

अब क्षेत्रव्यास प्राप्त करने को कहते हैं :—धातकी खण्ड के व्यास ४ लाख योजन को तीन जगह स्थापन कर "लवणादीणं वासं" गाथा ३१० के अनुसार धातकी खण्ड का लवण समुद्र के निकट आदि सूची ५ लाख योजन, मध्य में मध्यम सूची व्यास ९ लाख योजन और कालोदक समुद्र के निकट बाह्य सूची व्यास १३ लाख योजन प्राप्त होता है। यथा :—विवक्षित समुद्र या द्वीप के व्यास को दो, तीन और चार से गुणित कर प्रत्येक में से ३ घटा देने पर क्रम से अभ्यन्तर, मध्य और बाह्य सूची व्यास होता है। (गा० ३१०) अतः—४ ल० × २ = ८ ल० — ३ ल० = ५ लाख योजन धातकी खण्ड का अभ्यन्तर सूची व्यास। ४ ल० × ३ = १२ ल० — ३ ल० = ९ लाख यो० मध्यम सूची व्यास और ४ ला० × ४ = १६ ल० — ३ ल० = १३ लाख यो० बाह्य सूची व्यास है।

धातकी खण्ड के उपर्युक्त प्रकार से प्राप्त हुए अभ्यन्तर, मध्यम और बाह्य सूची व्यास का "विक्खम्भवग्गदहगुणकरणी" गाथा ९६ के अनुसार वर्ग कर उसे दश से गुणित करने पर वर्गरूप अभ्यन्तर परिधि का प्रमाण (५ ला० × ५ ला० × १०) = २५०००००००००००० योजन, वर्गरूप मध्यम परिधि का प्रमाण (९ ला० × ९ ला० × १०) = ८१०००००००००००० योजन और वर्गरूप बाह्य परिधि का प्रमाण (१३ ला० × १३ ला० × १०) = १६९०००००००००००० योजन प्राप्त होता है। इन तीनों का यथाक्रम वर्गमूल ग्रहण करने पर धातकी खण्ड की अभ्यन्तर परिधि १५८११३९ योजन, मध्यम परिधि २८४६०५० योजन और बाह्य परिधि ४११०९६१ योजन हुई। इन तीनों परिधियों में से पहले प्राप्त किए धातकी खण्ड के पर्वत अवरुद्ध क्षेत्र का प्रमाण १७७८४२ $\frac{२}{१९}$ योजन घटा देने पर यथाक्रम अभ्यन्तर परिधि में पर्वतरहित क्षेत्र का प्रमाण (१५८११३९ — १७७८४२ $\frac{२}{१९}$) = १४०३२९६ $\frac{१७}{१९}$ योजन, मध्यम परिधि में (२८४६०५० — १७७८४२ $\frac{२}{१९}$) = २६६८२०७ $\frac{१७}{१९}$ योजन और बाह्य परिधि

में पर्वत रहित क्षेत्र का प्रमाण (४११०९६१ — १७८८४२)=३९३२११८ योजन प्राप्त होता
है। पर्वत रहित जो क्षेत्र का प्रमाण है, वही भरतादि सात सात क्षेत्रों द्वारा अवरुद्ध होता है।

इमानि त्रीणि पर्वतरहितक्षेत्राणि धृत्वा भरतादीनामभ्यन्तरादिविष्कम्भमाह—

> भरहेरावदवस्सा विदेहवस्सोत्ति चउविगुणा वस्सा।
> गिरिविरहियपरिहीणं हारो बिण्णिसयबारं च ॥ ९२९ ॥
>
> भरतैरावतवर्षात् विदेहवर्षान्तं चतुः द्विगुणा वर्षाः।
> गिरिविरहितपरिधीनां हारः द्विशतं द्वादश च ॥ ९२९ ॥

भरह। भरतवर्षादैरावतवर्षाद्वारभ्य विदेहपर्यन्तं वर्षाश्चतुर्गुणिताः। भर० १+४+१६+
६४+१+४+१६ एषां मेलनं कृत्वा १०६ उभयभागार्थमस्मिन् द्विगुणीकृते द्विशतं द्वादशोत्तरं २१२
गिरिविरहितपरिधीनां हारः स्यात्। कथं? एतावच्छलाकाया २१२ एतावदभ्यन्तरपरिधौ
पर्वतरहितक्षेत्रे १४०२२९७ भरतादीनामेकादिस्वस्वशलाकायाः १+४+१६+६४+१६+४+१
किमिति त्रैराशिकं कृत्वा लब्धभरतशलाकापेक्षया भक्ते भरतस्य प्रथमविष्कम्भः ६६१४ स्यात्।
एवं मध्यमेन तस्य मध्यमविष्कम्भं १२५८१ बाह्यविष्कम्भं १८५४७ आनयेत्। हैमवतादिष्वपि
कर्त्तव्यं। अथवा भरताभ्यन्तरविष्कम्भादिषु प ६६१४ मध्यं १२५८१ बा १८५४० चतुर्भि-
र्गुणितेषु हैमवतस्य प्रथमादिविष्कम्भः स्यात् अ० वि०=२६४५८ म० वि०=५०३२४ बा०
वि०=७४१९० अस्मिन्नेव चतुर्भिर्गुणिते हरिवर्षस्य प्रथमादिविष्कम्भः स्यात्। अ० वि०=
१०५८३३ म० वि०=२०१२९८ बा० वि०=२९६७६३ अस्मिन् पुनश्चतुर्भिर्गुणिते विदेहस्य
प्रथमादिविष्कम्भः स्यात्। अ० वि०=४२३३३४ म० वि० = ८०५१९४ बा० वि०=
११८७०५४ एवमैरावतादारभ्य विदेहपर्यन्तं ज्ञातव्यं। पुष्करार्धस्याभ्यन्तरादिपरिधौ अ० प०=
९१७०६०५ म० प०=११७००४२७ बा० प०=१४२३०२४९ प्रत्येकं पर्वतावरुद्धक्षेत्रे ३५५९८४ अपनीते
अभ्यन्तरादिपरिधौ पर्वतरहितक्षेत्रं स्यात्। अ० ८८१४९२१ म० ११३४४७४३ बा० १३८७४५६५
अस्मिन् भरतशलाकया १ संगुण्य द्वादशोत्तरद्विशतेन भक्ते पुष्करार्धभरतस्याभ्यन्तरादिविष्कम्भः
स्यात्। अ० वि० ४१५७९ म० वि० ५३५१२ बा० वि० ६५४४६ अस्मिंश्चतुर्भिर्गुणिते
हैमवतस्याभ्यन्तरादिविष्कम्भः स्यात्। अ० वि०=१६६३१६ म० वि०=२१४०५१ बा०
वि०=२६१७८४ अस्मिन् पुनश्चतुर्भिर्गुणिते हरिवर्षस्याभ्यन्तरादिविष्कम्भः स्यात्। अ० वि०=
६६५२६५ म० वि०=८५६२०७ बा० वि०=१०४७१३६ अस्मिन्नपि चतुर्भिर्गुणिते-
विदेहस्याभ्यन्तरादिविष्कम्भः स्यात्। अ० वि०=२६६११०८ म० वि०=३४२४८२८ बा०
वि०=४१८८५४७ एवमैरावतादारभ्य विदेहपर्यन्तं ज्ञातव्यं ॥ ९२९ ॥

इन तीनों पर्वत रहित क्षेत्रों को रखकर अब भरतादि क्षेत्रों का अभ्यन्तरादि विष्कम्भ
कहते हैं —

गाथार्थ :—भरतक्षेत्र से विदेह क्षेत्र पर्यन्त और ऐरावत से विदेह पर्यन्त क्षेत्रों का विष्कम्भ क्रम से चौगुणा है जिनकी शलाकाओं का योग १०६ है। दोनों भागों का ग्रहण करने के लिए इन्हें दूना किया। अर्थात् (१०६ × २) = २१२ शलाकाएँ हुईं। यही २१२ शलाकाएँ पर्वत रहित परिधि का भागहार हैं ॥ ९२१ ॥

विशेषार्थ :—भरतक्षेत्र से और ऐरावत क्षेत्र से विदेह पर्यन्त क्षेत्रों का विष्कम्भ चौगुणा है अतः भरत की शलाका १, हैमवत की ४, हरि की १६, विदेह की (चौसठ) ६४, ऐरावत की १, हैरण्यवत की ४ और रम्यक की १६। इन सबका योग (१ + ४ + १६ + ६४ + १ + ४ + १६) = १०६ हुआ। दो मेरु सम्बन्धी दोनों भागों का ग्रहण करने के लिए इन्हें दूना करने पर (१०६ × २) = २१२ प्राप्त हुए। यही २१२ शलाकाएँ पर्वत रहित परिधि का भागहार हैं। कैसे ? उसे कहते हैं—जबकि २१२ शलाकाओं का अभ्यन्तर परिधि में पर्वत रहित क्षेत्र १४०२१९७ योजन प्रमाण है, तब भरतादि क्षेत्रों की अपनी अपनी १, ४, १६, ६४, १, ४, १६ शलाकाओं पर पर्वत रहित क्षेत्र कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर भरत की एक शलाका की अपेक्षा पर्वत रहित क्षेत्र को २१२ से भाजित करने पर भरत का अभ्यन्तर विष्कम्भ (१४०१६३०७/२१२) = ६६११४ १३९/२१२ योजन प्राप्त होता है। इसी विधान से भरत का मध्यम विष्कम्भ (२६६७२०८/२१२) = १२५८१ ३६/२१२ योजन और बाह्य विष्कम्भ (३९३२११९/२१२) = १८५४७ १५५/२१२ योजन प्राप्त होता है। इसी प्रकार हैमवत आदि क्षेत्रों का भी विष्कम्भ प्राप्त कर लेना चाहिए। अथवा—भरत के अभ्यन्तर विष्कम्भ ६६११४ १३९/२१२, मध्य वि० १२५८१ ३६/२१२ और बाह्य विष्कम्भ १८५४७ १५५/२१२ को चार से गुणित करने पर हैमवतका अभ्यन्तर वि० २६४४५८ १३२/२१२ योजन, मध्यम विष्कम्भ ५०३२४ १४४/२१२ योजन और बाह्य विष्कम्भ ७४१९० १९६/२१२ योजन है। इसी को पुनः चार से गुणित करने पर हरिवर्ष क्षेत्र का अभ्यन्तर विष्कम्भ (२६४४५८ १३२/२१२ × ४) = १०५७८३४ १०४/२१२ योजन, मध्य विष्कम्भ (५०३२४ १४४/२१२ × ४) = २०१२९८ १५२/२१२ योजन और बाह्य विष्कम्भ (७४१९० १९६/२१२ × ४) = २९६७६३ १४८/२१२ योजन प्रमाण प्राप्त होता है।

इस उपर्युक्त विष्कम्भ को चार से गुणित करने पर विदेह क्षेत्र का अभ्यन्तर वि० (१०५७८३४ १०४/२१२ × ४) = ४२३१३३७ २०४/२१२ योजन, मध्यम विष्कंभ (२०१२९८ १५२/२१२ × ४) = ८०५१९४ १८४/२१२ योजन और बाह्य विष्कम्भ (२९६७६३ १४८/२१२ × ४) = ११८७०५४ १६८/२१२ योजन प्रमाण हुआ। इसी प्रकार ऐरावत से विदेह पर्यन्त ज्ञात कर लेना चाहिए।

पुष्करार्ध द्वीप का कालोदक के समीप अभ्यन्तर सूची व्यास २९ लाख योजन, व्यास के मध्य में मध्य सूची व्यास ३७ लाख योजन और मानुषोत्तर पर्वत के निकट बाह्य सूची व्यास ४५ लाख योजन प्रमाण है।

यथा—

[कृपया चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

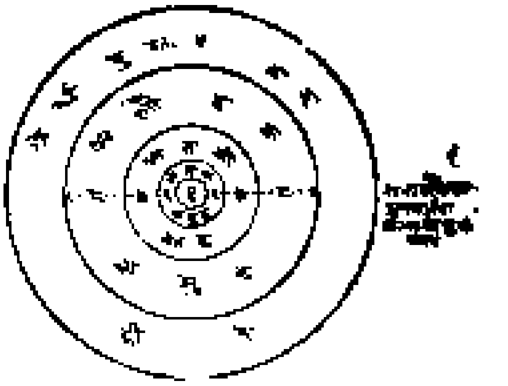

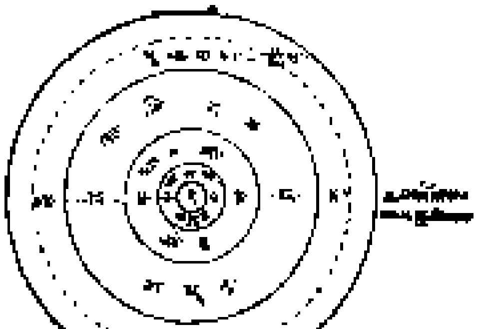

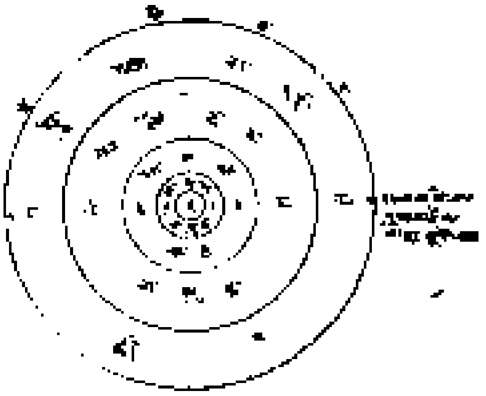

पुष्करार्ध की अभ्यन्तर परिधि ९१७०६०५ योजनों में से, मध्यम परिधि ११७००४२७ योजनों में से और बाह्य परिधि १४२३०२४९ यो० में से पर्वत अवरुद्ध क्षेत्र ३५५६८४ योजन (प्रत्येक में से) घटा देने पर अभ्यन्तर परिधि में पर्वत रहित क्षेत्र ८८१४९२१ योजन, मध्य परिधि में ११३४४७४३ योजन और बाह्य परिधि में पर्वत रहित क्षेत्र—१३८७४५६५ योजन अवशेष रहता है। इनमें भरत क्षेत्र की एक शलाका का गुणा कर २१२ शलाकाओं का भाग देने पर पुष्करार्धस्थ भरतक्षेत्र का अभ्यन्तर विष्कम्भ (८८१४९२१×१ / २१२) = ४१५७९ १३३/२१२ योजन, मध्यम विष्कम्भ (११३४४७४३×१ / २१२) = ५३५१२ १९९/२१२ योजन और बाह्य विष्कम्भ (१३८७४५६५×१ / २१२) = ६५४४६ १३/२१२ योजन प्राप्त हुआ। इनमें पुनः चार का गुणा कर देने पर हैमवत क्षेत्र का अभ्यन्तर वि० १६६३१८ १०८/२१२ योजन, मध्यम विष्कम्भ २१४०५१ १६०/२१२ योजन और बाह्य विष्कम्भ २६१७८४ ५२/२१२ योजन प्राप्त होता है। इन्हीं विष्कम्भों को पुन चार से गुणित करने पर हरिक्षेत्र का अभ्यन्तर विष्कम्भ ६६५२७४ ८/२१२ योजन, मध्यम विष्कम्भ ८५६२०७ ४/२१२ योजन और बाह्य विष्कम्भ १०४७१३६ २०८/२१२ योजन प्राप्त होता है। इनको भी चार से गुणित करने पर विदेह का अभ्यन्तर विष्कम्भ २६६१०९६ ३२/२१२ योजन, मध्यम विष्कम्भ ३४२४८२८ १६/२१२ योजन और बाह्य विष्कम्भ ४१८८५४७ १९६/२१२ यो० है। इसी प्रकार ऐरावत से प्रारम्भ कर विदेह पर्यन्त जानना चाहिए।

अढाई द्वीपस्थ—भरतादि—सात क्षेत्रों—का—विष्कम्भ

क्रमांक	क्षेत्र–नाम	जम्बूद्वीपस्थ क्षेत्रों का विष्कम्भ	धातकी खण्ड में स्थित भरतादि क्षेत्रों का—			पुष्करार्ध द्वीप में स्थित भरतादि क्षेत्रों का—		
			अभ्यन्तर वि०	मध्य विष्कम्भ	बाह्य विष्कम्भ	अभ्यन्तर वि०	मध्य विष्कम्भ	बाह्य विष्कम्भ
१	भरत	५२६ $\frac{६}{१९}$ योजन	६६१४ $\frac{१२९}{२१२}$ योजन	१२५८१ $\frac{३६}{२१२}$ यो०	१८५४७ $\frac{१५५}{२१२}$ योजन	४१५७९ $\frac{१७३}{२१२}$ यो०	५३५१२ $\frac{१९९}{२१२}$ यो०	६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$ योजन
२	हैमवत	२१०५ $\frac{५}{१९}$ "	२६४५८ $\frac{९२}{२१२}$ "	५०३२४ $\frac{१४४}{२१२}$ "	७४१९० $\frac{१९६}{२१२}$ "	१६६३१९ $\frac{५६}{२१२}$ "	२१४०५१ $\frac{१६०}{२१२}$ "	२६१७८४ $\frac{५२}{२१२}$ "
३	हरि	८४२१ $\frac{१}{१९}$ "	१०५८३३ $\frac{१५६}{२१२}$ "	२०१२९८ $\frac{१५२}{२१२}$ "	२९६७६३ $\frac{१४८}{२१२}$ "	६६५२७७ $\frac{३२}{२१२}$ "	८५६२०७ $\frac{४}{२१२}$ "	१०४७१३६ $\frac{२०८}{२१२}$ "
४	विदेह	३३६८४ $\frac{४}{१९}$ "	४२३३३४ $\frac{२००}{२१२}$ "	८०५१९४ $\frac{१८४}{२१२}$ "	११८७०५४ $\frac{१६८}{२१२}$ "	२६६११०८ $\frac{४८}{२१२}$ "	३४२४८२८ $\frac{१६}{२१२}$ "	४१८८५४७ $\frac{१९६}{२१२}$ "
५	रम्यक	८४२१ $\frac{१}{१९}$ "	१०५८३३ $\frac{१५६}{२१२}$ "	२०१२९८ $\frac{१५२}{२१२}$ "	२९६७६३ $\frac{१४८}{२१२}$ "	६६५२७७ $\frac{३२}{२१२}$ "	८५६२०७ $\frac{४}{२१२}$ "	१०४७१३६ $\frac{२०८}{२१२}$ "
६	हैरण्यवत	२१०५ $\frac{५}{१९}$ "	२६४५८ $\frac{९२}{२१२}$ "	५०३२४ $\frac{१४४}{२१२}$ "	७४१९० $\frac{१९६}{२१२}$ "	१६६३१९ $\frac{५६}{२१२}$ "	२१४०५१ $\frac{१६०}{२१२}$ "	२६१७८४ $\frac{५२}{२१२}$ "
७	ऐरावत	५२६ $\frac{६}{१९}$ "	६६१४ $\frac{१२९}{२१२}$ "	१२५८१ $\frac{३६}{२१२}$ "	१८५४७ $\frac{१५५}{२१२}$ "	४१५७९ $\frac{१७३}{२१२}$ "	५३५१२ $\frac{१९९}{२१२}$ "	६५४४६ $\frac{१३}{२१२}$ "

इदानीं धातकीखण्डस्थ विदेहस्थकच्छादीनामायामं गाथाद्वयेनाह—

गिरि जुद दु भद्दसालं मज्झिमसूइम्हि घणरिणे सूई।
पुव्ववरमेरुबाहिर अब्भंतरभद्दसालबंतस्स ॥ ९३० ॥

गिरियुतं द्विभद्रशालं मध्यमसूचौ धनर्णे सूची।
पूर्वापरमेरुबाह्याभ्यन्तरभद्रशालान्तस्य ॥ ९३० ॥

गिरि। धातकीखण्डस्थपूर्वापरमन्दरयोरर्धार्धं गृहीत्वा एकमन्दरव्यासं कृत्वा ९४०० तत्र तयोर्बाह्यभद्रशालद्वयव्यासं २१५७५८ मेलयित्वा २२५१५८ इदं मध्यमसूच्यां ९००००० धने कृते ११२५१५८ पूर्वापरमेर्वोर्बाह्यभद्रशालयोर्बाह्यसूचिर्भवति। तत्सूच्यां ९ ल० पुनरस्मिन् २२५१५८ ऋणे कृते तयोरभ्यन्तरसूचिः स्यात् ६७४८४२ तदभ्यन्तरभद्रशालसूचीव्यासं ६७४८४२ विक्खंभवग्गेत्यादिना करणेन कृत्वा ४५५४११७२४९६४० अस्य मूले गृहीते २१३४०३७ तत्सूचीपरिधिः स्यात्। अस्मिन् पर्वतावरुद्धक्षेत्रे १७८८४२ अपनीते गिरिरहितपरिधिः स्यात् १९५५१९५ ॥ ९३० ॥

अब धातकी खण्ड के विदेह क्षेत्र में स्थित कच्छादि देशों का आयाम (लम्बाई) दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—मेरु पर्वत का व्यास और दोनों बाह्य भद्रशालवनों के दुगुने व्यास को धातकी खण्ड के मध्यम सूची व्यास में जोड देने पर पूर्व पश्चिम मेरु पर्वतों के दो भद्रशाल वनों का (कालोदक की ओर) बाह्य सूची व्यास का प्रमाण प्राप्त होता है और उसी मध्यम सूची व्यास में से मेरु का व्यास और भद्रशाल वनों का दुगुना व्यास घटा देने पर दोनों भद्रशाल वनों का (लवण समुद्र की ओर) अभ्यन्तर सूची व्यास का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ९३० ॥

विशेषार्थ :—धातकी खण्ड सम्बन्धी विदेहस्थ कच्छादि देशों की दक्षिणोत्तर लम्बाई परिधि में है, इसलिए वहाँ की परिधि कहते हैं :—

धातकी खण्ड के पूर्व पश्चिम मेरु पर्वतों का अर्ध अर्ध व्यास ग्रहण करने पर एक मेरु का व्यास ९४०० योजन हुआ। इसमें दो मेरु सम्बन्धी कालोदक की ओर के दोनों बाह्यभद्रशाल वनों का व्यास २१५७५८ योजन जोड देने पर (२१५७५८+९४००)=२२५१५८ योजन हुआ, इसे मध्यम सूचीव्यास ९००००० योजनों में जोड देने पर (९०००००+२२५१५८)=११२५१५८ योजन पूर्व पश्चिम मेरु पर्वतों के बाह्य भद्रशाल वनों का (कालोदक समुद्र की ओर) बाह्य सूची व्यास प्राप्त होता है तथा उसी मध्य सूची व्यास ९ लाख योजनों में से उन्हीं दोनों मेरु पर्वतों का अर्ध अर्ध व्यास और अभ्यन्तर भद्रशाल वनों का २१५७५८ योजन मिलाकर प्राप्त हुए (२१५७५८+९४००)=२२५१५८ योजनों को घटा देने पर (९०००००—२२५१५८)=६७४८४२ योजन दोनों अभ्यन्तर भद्रशाल वनों का

(लवण समुद्र की ओर) अभ्यन्तर सूची व्यास प्राप्त होता है। इस ६७४८४२ योजन अभ्यन्तर भद्रशाल के सूची व्यास का "विक्खंभवग्गदहगुण" गाथा ९६ के नियमानुसार वर्ग कर दश से गुणित करने पर ४५५४११७२४९६४० योजन होते हैं, इनका वर्गमूल निकालने पर २१३४०३७ योजन उस अभ्यन्तर भद्रशाल की सूची व्यास की परिधि हुई। इस परिधि के प्रमाण में से धातकी खण्डस्थ पर्वतों द्वारा अवरुद्ध क्षेत्र १७८८४२ योजन घटा देने पर (२१३४०३७ — १७८८४२) = १९५५१९५ योजन पर्वत रहित परिधि का प्रमाण प्राप्त हुआ। यथा :—

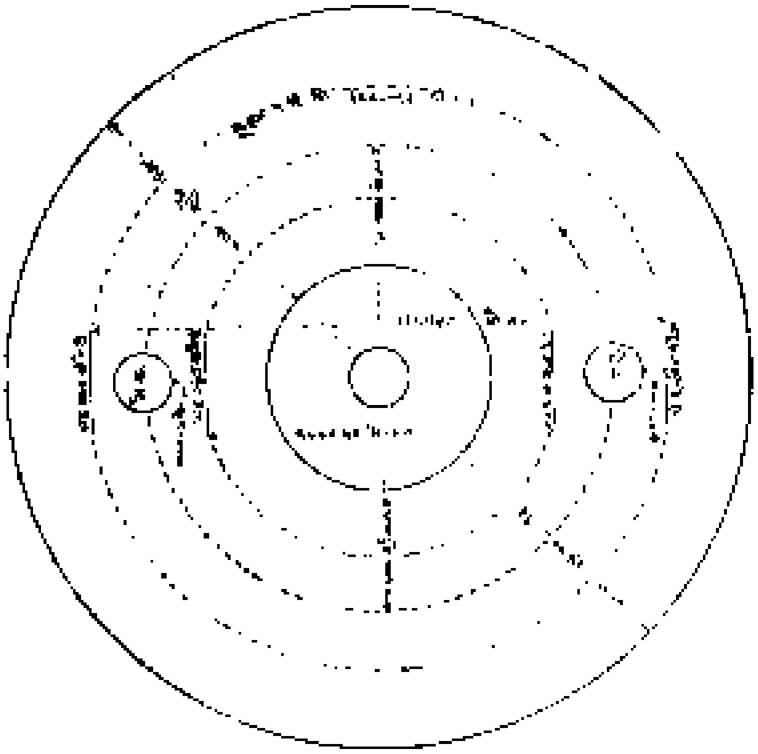

गिरिरहिदपरिहिगुणिदं अडकदिणा विसयबारसेहि हिदं ।
णदिहीणदलं दीहं कच्छादिमगंधमालिणी अंते ॥ ९११ ॥

गिरिरहितपरिधिगुणितं अष्टकृतिना द्विशतद्वादशैः हृतं ।
नदीहीनदलं दीर्घं कच्छादिमं गन्धमालिनी अन्ते ॥ ९११ ॥

गिरि। एतावच्छलाकयोः २१२ एतावति क्षेत्रे १९५५१९५ एतावद्विदेहशलाकयोः ६४ किमिति सम्पात्य गिरिरहितपरिधिमष्टकृत्या संगुण्य १२५१३२४८० प्रमाणेन द्वादशोत्तरद्विशतेन २१२ हृते ऽभ्यन्तरसूचीस्थले विदेहविष्कम्भः स्यात् ॥ ५९०२४७ ११६/२१२ अत्र नदीव्यासं १००० हीनयित्वा ५८९२४७ ११६/२१२ अर्धिते २९४६२३ १६४/२१२ गन्धमालिन्याद्यदेशस्याभ्यन्तरायामः स्यात्। प्रागानीतधातकीखण्ड-बाह्यभद्रशाल सूचीव्यासं ११२५१५८ पूर्ववत्करणि कृत्वा १२६५९८०५२४९६४० मूले गृहीते तत्परिधिः स्यात् ३५५८०६२ अस्मिन् पर्वतावरुद्धक्षेत्रं १७८८४२ मपनीय ३३७९२२० प्राग्वत्त्रैराशिकविधिनाष्टकृत्या ६४ संगुण्य २१६२७००८० द्वादशोत्तरद्विशतेन २१२ भक्ते बाह्यभद्रशालसूचीस्थाने विदेहविष्कम्भः

स्यात् १०२०१४१ १८८/२१२ । अत्र नदीव्यास १००० अपनीय १०१९१४१ १८८/२१२ दलिते ५०९५७० ४००/४२४ कच्छाया आयाम: स्यात् ॥ ६३१ ॥

भावार्थ :—अभ्यन्तर भद्रशाल की पर्वत रहित परिधि को आठ की कृति से गुणित कर दो सौ बारह का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें से नदी (सीतोदा) का व्यास घटाकर शेष को आधा करने पर गन्धमालिनी देश की लम्बाई का प्रमाण प्राप्त होता है और बाह्य भद्रशाल की पर्वत रहित परिधि को आठ की कृति से गुणित कर दो सौ बारह का भाग देने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसमें से सीता नदी का व्यास घटा कर अवशेष को आधा करने पर कच्छदेश के आयाम का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ६३१ ॥

विशेषार्थ :—जबकि २१२ शलाकाओं का पर्वत रहित पर्वतों के क्षेत्र का प्रमाण १९५५१९५ योजन है, तब विदेह की ६४ शलाकाओं का कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर (१९५५१९५×६४/२१२) पर्वत रहित क्षेत्र के १९५५१९५ योजन प्रमाण को ६४ से गुणित करने पर १२५१३२४८० योजन हुए । इन्हें २१२ से भाजित करने पर लवण समुद्र की ओर अभ्यन्तर भद्रशाल की अभ्यन्तर सूची पर विदेह क्षेत्र का विष्कम्भ ५९०२४७ ११६/२१२ योजन प्राप्त हुआ, इसमें से सीतोदा नदी का १००० योजन व्यास घटा कर अवशेष को आधा करने पर अभ्यन्तर भद्रशाल की वेदी के समीप गन्धमालिनी नाम देश के अन्त में दक्षिणोत्तर लम्बाई का प्रमाण (५९०२४७ ११६/२१२ — १०००= ५८९२४७ ११६/२१२ ÷ २)=२९४६२३ ३२८/४२४ योजन प्राप्त होता है ।

पूर्व में लाए हुए धातकी खण्ड के बाह्य भद्रशाल के ११२५१५८ योजन सूची व्यास का वर्ग कर उसे १० से गुणित करने पर (११२५१५८×११२५१५८×१०)=१२६५९८०५२१६६४० योजन हुए और इसका वर्गमूल ग्रहण करने पर उसकी परिधि का प्रमाण ३५५८०६२ योजन हुआ । इसमें से पर्वत अवरुद्ध क्षेत्र १७८८४२ योजनों को घटाकर अवशेष रहे (३५५८०६२ — १७८८४२)= ३३७९२२० योजनों का पूर्वोक्त प्रकार त्रैराशिक विधि से आठ की कृति ६४ से गुणित करने पर २१६२७००८० योजन हुए, इन्हें २१२ से भाजित करने पर कालोदक की ओर बाह्य भद्रशाल की सूची के स्थान पर उस भद्रशाल की वेदी के निकट विदेह क्षेत्र का विस्तार (२१६२७००८०/२१२)= १०२०१४१ १८८/२१२ योजन प्राप्त हुआ । इसमें से सीता नदी का १००० योजन व्यास घटा देने पर १०१९१४१ १८८/२१२ योजन अवशेष रहे, इनका अर्ध भाग अर्थात् (१०१९१४१ १८८/२१२ ÷ २)=५०९५७० ४००/४२४ योजन बाह्य भद्रशाल की वेदी के निकट कच्छ देश का अभ्यन्तर आयाम (लम्बाई) है ।

इदानीं कच्छादिविजयादीनां मध्यायाममन्त्यायाममानेतुमवतारं गाथाद्वयेनाह—

विजयाणक्खाराणं विभंगणदिदेवरण्ण परिहीओ ।
विणिसयवारभजिदा बत्तीसगुणा तहिं वड्ढी ॥ ९३२ ॥

सगसगवड्ढी णियणियपढमायामम्हि संजुदा मज्झे ।
दीहो पुणरवि सहिदो तिरिए णियचरिमदीहत्तं ॥ ९३३ ॥

विजयवक्षाराणां विभंगनदीदेवारण्यानां परिधयः ।
द्विशतद्वादशभक्ता द्वात्रिंशद्गुणा तस्मिन् वृद्धयः ॥ ९३२ ॥

स्वस्वकवृद्धयः निजनिजप्रथमायामे संयुता मध्ये ।
दीर्घः पुनरपि सहिताः तिर्यक् निजचरमदीर्घत्वम् ॥ ९३३ ॥

विजया । विजयवक्षारविभङ्गनदीदेवारण्यानां चतुर्णां परिधयः द्वात्रिंशद्गुणिताः द्वादशोत्तर द्विशतेन २१२ भक्ताश्चेत् तस्मिंस्तस्मिन् वृद्धयो भवन्ति ॥ ९३२ ॥

सग । विजयादीनां चतुर्णां स्वकीयस्वकीयवृद्धयः निजनिजप्रथमायामे संयुक्ताश्चेत् तत्र तत्र मध्ये दीर्घत्वं स्यात् तत्तन्मध्यायामे पुनरपि सहिताश्चेत् तत्र तत्र निजनिजचरमदीर्घत्वं स्यात् । गाथाद्वयमेव विवरयति—

धातकीखण्डव्यासे ४ ल० गिरियुक्तभद्रशालद्वये २२५१५८ अपनीते विदेहस्य पूर्वापरप्रान्तयोः क्षेत्रं स्यात् । १७४८४२ अस्मिन्नर्धितेऽर्धप्रान्त क्षेत्रं स्यात् ८७४२१ अस्मिन् पुनर्वक्षारचतुष्टयव्यासं ४००० विभङ्गत्रयव्यासं ७५० देवारण्यव्यासं च ५८४४ सर्वं मेलयित्वा १०५९४ अपनीते शेषं विदेहस्यैक-प्रान्तगुणक्षेत्रव्यासः स्यात् ७६८२७ एतं धृत्वा देशाष्टकस्य ८ एतावति क्षेत्रे ७६८२७ एकस्य देशस्य किमिति सम्पात्य भक्ते कच्छाया व्यासः स्यात् ९६०३ $\frac{३}{८}$ अत्र समच्छेदेनांशांशिनोर्मेलनं कृत्वा $\frac{७६८२७}{८}$ अमुं विष्कम्भवर्गेत्यादिना करणं कृत्वा $\frac{५९०२३८७९२९०}{६४}$ मूलं गृहीत्वा $\frac{२४२९४९}{८}$ भक्ते कच्छाव्यास-परिधिः स्यात् ३०३६८ $\frac{५}{८}$ अस्मिन्नंशांशिनोः समच्छेदेनमेलने कृत्वा $\frac{६०७३७}{२}$ एकभागस्य १ तावत्परिधौ $\frac{६०७३७}{२}$ द्वयो २ र्भागयोः किमिति सम्पात्य $\frac{६०७३७}{२}$ × २ पश्चात् पर्वतानां समव्यासत्वेन वृद्ध्यभावात् तच्छलाकाः १६८ धातकीखण्डसर्वशलाकासु ३८० अपनीयावशिष्टाः क्षेत्रशलाकाः २१२ स्युः । एतावतीनां शलाकानां २१२ एतावति वृद्धिक्षेत्रे $\frac{६०७३७ \times २}{२}$ एतावद्विदेहशलाकानां ६४ किमिति सम्पातिते विदेह-सर्ववृद्धिक्षेत्रं स्यात् $\frac{६०७३७ \times २ \times ६४}{२१२ \times २}$ उभयोः प्रान्तयोरेतावति वृद्धिक्षेत्रे $\frac{६०७३७ \times २ \times ६४}{२१२ \times २}$ एकस्मिन् प्रान्ते १ किमिति सम्पातिते कच्छाया अन्त्यायामवृद्धिक्षेत्रं स्यात् $\frac{६०७३७ \times २ \times ६४}{२१२ \times २ \times २}$ अस्मिन् मुखभूमिसमासार्धमिति न्यायेनार्धीकृत्य $\frac{६०७३७ \times २ \times ६४ \times १}{२१२ \times २ \times २ \times २}$ यथायोग्यमपवर्तिते—
$\frac{६०७३७ \times ३२}{२१२ \times २}$ 'बत्तीसगुणातेहिं वड्ढीति' गाथोक्तं स्यात् । पुनर्द्वाभ्यामपवर्तिते १६ गुणयित्वा $\frac{९७१७९२}{२१२}$ भक्ते कच्छाया मध्यायामवृद्धिक्षेत्रं स्यात् ४५८३ $\frac{४९}{५३}$ अस्मिन् कच्छाया आद्यायामे ५०९५७० $\frac{३९}{५३}$ युक्ते मध्यायामो भवति ५१४१५४ $\frac{३५}{५३}$ अस्मिन् पुनस्तदेव वृद्धिक्षेत्रं युक्ते कच्छाया बाह्यायामः

स्यात् ५१८७३८२$\frac{१६}{२१२}$ साम्प्रतं वक्षारव्यासं १००० विष्कंभवर्गदशगुणकरणि कृत्वा १०००००० मूले गृहीते वक्षारपरिधि: स्यात् ३१६२ एकस्मिन् भागे एतावति क्षेत्रे ३१६२ द्वयो २ भागयो: किमिति सम्पाद्य ३१६२ × २ पश्चादेतावच्छलाकाना २१२ येतावति वृद्धिक्षेत्रे ३१६२ × २ एतावच्छलाकानां ६४ किमिति सम्पादिते विदेहगतपरिधिवृद्धि: $\frac{३१६२ \times २ \times ६४}{२१२}$ स्यात् । उभयप्रान्तयोरेतावति क्षेत्रे $\frac{३१६२ \times २ \times ६४}{२१२}$ एकस्मिन् प्रान्ते किमिति सम्पाद्य $\frac{३१६२ \times २ \times ६४ \times १}{२१२ \times २}$ इदं मुखभूमिसमासेति गुणकार्धीकृत्य $\frac{३१६२ \times २ \times ६४ \times १}{२१२ \times २ \times २}$ अपवर्तिते द्वात्रिंशद्गुणिते गाथोक्तं स्यात् $\frac{३१६२ \times ३२}{२१२}$ पुनर्गुणकारेण ३२ गुणयित्वा $\frac{१०११८४}{२१२}$ भक्ते [illegible] वृद्धिक्षेत्रं स्यात् ४७७$\frac{३०}{२१२}$ प्रागानीतकच्छाबाह्यायाम एव वक्षारस्याद्यायाम: ५१८७३८२$\frac{१६}{२१२}$ । अस्मिन् प्रागानीतवक्षारवृद्धिक्षेत्रे ४७७$\frac{३०}{२१२}$ युक्ते मध्यायाम: स्यात् ५१९२१६$\frac{}{२१२}$ । अस्मिन् पुनस्तद्वृद्धिक्षेत्रे युक्ते बाह्यायाम: स्यात् ५१९६९३$\frac{}{२१२}$ । वक्षारस्य बाह्यायाम एव सुकच्छाया आद्यायाम: । अत्र प्रागानीतदेशवृद्धिक्षेत्रे ४५८३$\frac{}{२१२}$ युक्ते तस्या मध्यायाम: ५२४२७७$\frac{}{२१२}$ । अस्मिन् तद्वृद्धिक्षेत्रे युक्ते तस्या बाह्यायाम: ५२८८६१$\frac{४५}{२१२}$ स्यात् । विभङ्गव्यासं २५० विष्कंभवर्गदशगुणकरणि कृत्वा ६२५०० मूले गृहीते ७९० विभङ्गपरिधि: । अमुं धृत्वा एकस्मिन् भागे १ एतावति क्षेत्रे ७९० द्वयोर्भागयो: किमिति सम्पाद्य ७९० × २ पश्चादेतावच्छलाकाया २१२ एतावति क्षेत्रे ७९० × २ एतावच्छलाकानां ६४ किमिति सम्पादिते विदेहवृद्धिक्षेत्रं स्यात् $\frac{७९० \times २ \times ६४}{२१२}$ उभयप्रान्तयोरेतावति क्षेत्रे $\frac{७९० \times २ \times ६४}{२१२}$ एकप्रान्तस्य किमिति सम्पाद्ये $\frac{७९० \times २ \times ६४}{२१२ \times २}$ इदं मुखभूमिसमासार्धमिति गुणकार्धीकृत्य $\frac{७९० \times २ \times ६४}{२१२ \times २ \times २}$ अपवर्त्य $\frac{७९० \times ३२}{२१२}$ गुणयित्वा $\frac{२५२८०}{२१२}$ भक्ते ११९$\frac{५२}{२१२}$ विभङ्गवृद्धि: स्यात् । सुकच्छाबाह्यायाम एव विभङ्गस्याद्यायाम: ५२८८६१$\frac{४५}{२१२}$ एतस्मिन् वृद्धिक्षेत्रे ११९$\frac{५२}{२१२}$ युक्ते विभंगस्य मध्यायाम: ५२८९८०$\frac{}{२१२}$ अस्मिन् वृद्धिक्षेत्रे युक्ते तस्य बाह्यायाम: ५२९०९९$\frac{}{२१२}$ स्यात् । इत: परं महाकच्छा-विदेशायामा: वक्षारायामा: विभंगायामाश्च तत्तद्वृद्धिक्षेत्रमेलनेनानेतव्या: । देवारण्यव्यासं ५८४४ विष्कंभवर्गदशगुणकरणिमानीय ३४१५२३३६० मूले गृहीते देवारण्यपरिधि: स्यात् १८४८० । एकभागस्यैतावति क्षेत्रे द्वयोर्भागयो: किमिति सम्पाद्य १८४८० × २ एतावच्छलाकाया २१२ एतावति क्षेत्रे १८४८० × २ एतावच्छलाकानां ६४ किमिति सम्पादिते विदेहगतदेवारण्यवृद्धिक्षेत्रं स्यात् $\frac{१८४८० \times २ \times ६४}{२१२}$ । उभयप्रान्तयोरेतावति क्षेत्रे $\frac{१८४८० \times २ \times ६४}{२१२}$ एकस्मिन् प्रान्ते किमिति सम्पाद्ये $\frac{१८४८० \times २ \times ६४}{२१२ \times २}$ इदं मुखभूमिसमासार्धमिति गुणकार्धीकृत्य $\frac{१८४८० \times २ \times ६४ \times १}{२१२ \times २ \times २}$ अपवर्त्य $\frac{१८४८० \times ३२}{२१२}$ गाथार्थं कृत्वा पुनरपि गुणकारेण ३२ गुणयित्वा $\frac{५९१३६०}{२१२}$ भक्ते देवारण्यमध्यक्षेत्रवृद्धि:

स्यात् २७८९ [illegible] पुष्कलावतीबाह्यायाम एव देवारण्यबाह्यायामः ५८७४४७ [illegible] । अन्त्यानयनप्रकारं विवृणोति—देशवृद्धि ४५८३ [illegible] षोडशभि १६ र्गुणयित्वा ७३३२८ [illegible] वक्षारवृद्धि ४७७ [illegible] अष्टभि ८ र्गुणयित्वा ३८१६ [illegible] विभंगवृद्धि ११९ [illegible] षड्भिर्गुणयित्वा ७१४ [illegible] कच्छाया आद्यायामोऽपि [illegible] सहितान् सर्वानप्यन्मेलयित्वा [illegible] स्यात् । तत्सर्व १९ मेकत्रीकृत्य मेलयित्वा कच्छाद्यायामोऽपि ५०१५७० सहितानां सर्वेषामंशानां मेलने ५८७४४७ देवारण्याद्यायामः । अत्र देवारण्यवृद्धिक्षेपे २७८९ [illegible] युक्ते मध्यायामः ५९०२३६ [illegible] अस्मिन् पुनस्तद्वृद्धिक्षेपे युक्ते बाह्यायामः ५९३०२६ [illegible] स्यात् । एवं सीताया दक्षिणतटेऽपि विजय-वक्षारविभंगदेवारण्यानां व्यासपरिधिवृद्धिक्षेपायामास्तत्रानेतव्याः । एवं पुष्करार्धेऽपि विजयवक्षार-विभंगदेवारण्यव्यासानां परिधीनामेव उभयोर्मध्यभागोत्पन्नगुणकारद्विकेन गुणयित्वा द्वात्रिंशोत्तर-द्विशत्या क्षेत्रशलाकाभि २१२ र्भक्त्वा चतुःषष्ट्या विदेहशलाकाभि ६४ र्गुणयित्वा लब्धं विदेहवृद्धिक्षेपं तत्तद्वृद्धिकेन भक्तं लब्धमेकप्रान्तवृद्धिक्षेपं मुखभूमिसमासार्धमित्यर्धयित्वा [illegible] तत्तल्लब्धवृद्धिक्षेपं तत्तदाद्यायामेषु युञ्ज्यात् । तथा सति तत्तन्मध्यायाम आगच्छति, पुनस्तत्तद्वृद्धिक्षेपे तत्तन्मध्यायामेषु प्रक्षिप्ते तत्तद्बाह्यायामा आगच्छन्ति ॥ ९३३ ॥

अब कच्छादि देशों का मध्य आयाम और अन्तायाम प्राप्त करने का व्याख्यान दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ:—विदेह, वक्षार, विभङ्गानदी और देवारण्य की परिधि को बत्तीस से गुणित कर दो सौ बारह का भाग देने पर वहाँ वहाँ की वृद्धि का प्रमाण प्राप्त होता है तथा अपनी अपनी वृद्धि का प्रमाण अपने अपने प्रथम आयाम में जोड़ देने पर मध्यम आयाम और मध्यम आयाम में जोड़ देने पर अपने अपने अन्तिम आयाम का प्रमाण प्राप्त होता है ॥ ९३२, ९३३ ॥

विशेषार्थ:—विदेह देश, वक्षार पर्वत, विभङ्गानदी और देवारण्य वन इन चारों की परिधियों को पृथक् पृथक् ३२ से गुणित कर २१२ का भाग देने पर निज निज स्थानों की वृद्धि का प्रमाण प्राप्त होता है। उस निज निज स्थानों की वृद्धि के प्रमाण को निज निज स्थानों के प्रथम आयामों में जोड़ देने से मध्यम आयाम और मध्यम आयाम के प्रमाणों में जोड़ देने से अपने अपने स्थानों का अन्तिम आयाम प्राप्त हो जाता है।

दोनों गाथाओं का विशेष वर्णन करते हैं :—धातकी खण्ड के ४००००० व्यास में से मेरु और दोनों भद्रशाल वनों का २२५१५८ योजन व्यास घटा देने पर विदेहस्थ भद्रशाल वनों के आगे पूर्व पश्चिम में अन्त का क्षेत्र १७४८४२ योजन अवशेष रहता है। इसे आधा करने पर मेरु से एक ओर के आगे प्रान्त क्षेत्र की लम्बाई ८७४२१ योजन प्रमाण प्राप्त होती है। अर्थात् पूर्व पश्चिम में भद्रशाल की वेदी से आगे समुद्र पर्यन्त विदेह क्षेत्र की लम्बाई का प्रमाण ८७४२१ योजन है। इसमें से चार वक्षार

पर्वतों का व्यास ४००० योजन, तीन विभङ्गा नदियों का व्यास ७५० योजन और देवारण्य का व्यास
५८४४ योजन मिलाकर प्राप्त हुए (४००० + ७५० + ५८४४) = १०५९४ योजनों को घटा देने पर
पर्वतादि से रहित विदेह के एक भाग सम्बन्धी शुद्ध क्षेत्र का व्यास (८७४२१ — १०५९४) = ७६८२७
योजन होता है। यह क्षेत्र का प्रमाण आठ विदेह देशों का है।

जबकि (आठ) ८ विदेह देशों का शुद्ध क्षेत्र ७६८२७ योजन है, तब १ देश का कितना क्षेत्र
होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ($\frac{७६८२७}{८}$ × १) = ९६०३$\frac{३}{८}$ योजन व्यास कच्छा देश के पूर्व
पश्चिम भाग का हुआ। यहाँ समच्छेद विधान से अंश और अंशि को मिलाने पर $\frac{७६८२७}{८}$ योजन हुए,
इसका "विक्खम्भवग्गदह गुण" गाथा ९६ के नियमानुसार करणी रूप परिधि $\frac{५९०२३८७९२९०}{६४}$ योजन
हुई। इसका वर्गमूल ग्रहण करने पर $\frac{२४२९४८}{८}$ योजन हुए इसे अंशभागहार से भाजित करने पर कच्छा
देश के व्यास की परिधि का प्रमाण ३०३६८$\frac{१}{२}$ योजन प्राप्त हुआ। यहाँ समच्छेद विधान से अंश अंशि
को मिला देने पर $\frac{६०७३७}{२}$ योजन होते हैं।

जबकि धातकी खण्ड के एक भाग में कच्छा देश के व्यास की परिधि का प्रमाण $\frac{६०७३७}{२}$ योजन
है, तब दोनों भागों का कितना प्रमाण होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{६०७३७}{२}$ × २ योजन
प्राप्त हुए। यहाँ पर्वतों का व्यास समान है अतः उनमें वृद्धि का अभाव है, इसलिए पर्वतों की १६८
शलाकाएँ धातकी खण्ड की ३८० मिश्र शलाकाओं में से घटा देने पर २१२ शलाकाएँ अवशिष्ट रहीं।
जबकि २१२ शलाकाओं का वृद्धिक्षेत्र $\frac{६०७३७}{२}$ × २ योजन है, तब विदेह की ६४ शलाकाओं का कितना
क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर विदेह का सर्व वृद्धि क्षेत्र का प्रमाण $\frac{६०७३७ \times ६४ \times २}{२ \times २१२}$
योजन हुआ। जबकि (नदी के दक्षिणोत्तर तट रूप) दो प्रान्तों का वृद्धि क्षेत्र $\frac{६०७३७ \times २ \times ६४}{२ \times २१२}$
योजन है, तब एक एक प्रान्त का कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर भद्रशाल की वेदी के
आयाम से कच्छा देश के अन्त में आयाम का वृद्धि प्रमाण क्षेत्र $\frac{६०७३७ \times २ \times ६४}{२१२ \times २ \times २}$ योजन हुआ।

'मुखभूमि समासार्धं मध्यफलं' इस न्याय से आदि से अन्त पर्यन्त वृद्धि का जो यह प्रमाण है, उसको
आधा करने के लिए दो का भाग देने पर $\frac{६०७३७ \times २ \times ६४}{२१२ \times २ \times २ \times २}$ योजन होता है। इसको यथायोग्य अपवर्तन
करने पर $\frac{६०७३७ \times ३२}{२१२ \times २}$ योजन रहा। जो "बत्तीसगुणा तेहिं वड्ढी" गाथा ६३२ के अनुसार सिद्ध
हुआ। अर्थात् गाथा में कहा गया था कि कच्छा देश के व्यास की परिधि को ३२ से गुणित कर २१२ का
भाग देने पर $\frac{६०७३७ \times ३२}{२१२ \times २}$ योजन वृद्धि का प्रमाण प्राप्त होता है अतः यह पूर्वोक्त कथन सिद्ध हुआ।

अब पुनः इस कच्छदेश के वृद्धि प्रमाण $\frac{६०७३७ \times ३२}{२१२ \times २}$ के अंश के भागहार दो से अपवर्तन करने पर १६ गुणाकार रहा। अर्थात् $\frac{६०७३७ \times १६}{२१२}$ हुआ, इसमें गुणाकार का गुणा करने पर $\frac{९७१७९२}{२१२}$ योजन हुए। इन्हें अपने भागहार से भाजित करने पर कच्छ देश सम्बन्धी मध्यायाम क्षेत्र ४५८३ $\frac{१९६}{२१२}$ योजन प्रमाण प्राप्त होता है। इसको भद्रशाल के अन्त आयाम सदृश जो कच्छ देश का अभ्यन्तर आयाम ५०९५७० $\frac{१८०}{२१२}$ योजन है, उसमें जोड़ देने से (५०९५७० $\frac{१८०}{२१२}$ + ४५८३ $\frac{१९६}{२१२}$) = ५१४१५४ $\frac{१६४}{२१२}$ योजन प्रमाण मध्यायाम होता है और इस मध्यायाम में पुनः पूर्वोक्त वृद्धि क्षेत्र जोड़ देने पर (५१४१५४ $\frac{१६४}{२१२}$ + ४५८३ $\frac{१९६}{२१२}$) = ५१८७३८ $\frac{१४८}{२१२}$ योजन कच्छ देश के अन्त में आयाम का प्रमाण प्राप्त हुआ।

वक्षार पर्वत का व्यास १००० योजन प्रमाण है। "विक्खम्भवग्गदहगुण" गाथा ९६ से १००० की करणि रूप परिधि १०००००० योजन हुई, इसका वर्गमूल ग्रहण करने पर ३१६२ योजन हुए, यही ३१६२ योजन प्रमाण वक्षार व्यास की परिधि का प्रमाण है। जबकि १ भाग का ३१६२ योजन क्षेत्र है, तब दोनों भागों का कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ३१६२×२ योजन हुए। पश्चात् जबकि २१२ शलाकाओं का ३१६२×२ योजन वृद्धि क्षेत्र है तब विदेह की ६४ शलाकाओं का कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर विदेह में प्राप्त परिधि का वृद्धि क्षेत्र $\frac{३१६२ \times २ \times ६४}{२१२}$ योजन प्रमाण हुआ। (यदि नदी के दो तट रूप) दो प्रान्तों के क्षेत्र में परिधि का वृद्धिगत क्षेत्र $\frac{३१६२ \times २ \times ६४}{२१२}$ योजन है, तो एक प्रान्त में कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{३१६२ \times २ \times ६४}{२१२ \times २}$ योजन हुआ। यही वक्षार के अन्त में परिधि के वृद्धि का प्रमाण है।

"मुखभूमि समासार्धं मध्यफलं" इस न्याय से इसका आधा करने पर $\frac{३१६२ \times २ \times ६४}{२१२ \times २ \times २}$ योजन हुए। इन्हें यथायोग्य अपवर्तित करने पर "बत्तीसगुणा तहिं वड्ढी" गाथा ६३२ में कहा हुआ $\frac{३१६२ \times ३२}{२१२}$ अर्थात् वक्षार की परिधि (३१६२ यो०) को ३२ से गुणित कर २१२ का भाग देने पर परिधि में क्षेत्रवृद्धि का प्रमाण प्राप्त होता है, इस कथन की सिद्धि हुई। यहाँ गुणाकार ३२ से गुणित करने पर $\frac{१०११८४}{२१२}$ योजन हुए, इन्हें अपने ही भागहार (२१२) से भाजित करने पर ४७७ $\frac{६०}{२१२}$ योजन वक्षार के अभ्यन्तर आयाम से मध्यायाम की वृद्धि का प्रमाण हुआ। पूर्वोक्त कच्छदेश का बाह्यायाम ५१८७३८ $\frac{१४८}{२१२}$ योजन ही वक्षार का अभ्यन्तर आयाम है, अतः इसमें पूर्व में निकाला हुआ वक्षार में क्षेत्र वृद्धि के प्रमाण ४७७ $\frac{६०}{२१२}$ योजनों को जोड़ देने पर वक्षार के मध्य में आयाम का

प्रमाण (५१८७३८ $\frac{१४३}{२१२}$ + ४७७ $\frac{८०}{२१२}$) = ५१९२१६ $\frac{११}{२१२}$ योजन होता है। इसमें पुनः उसी वृद्धिक्षेत्र को *मिला देने पर (५१९२१६ $\frac{११}{२१२}$ + ४७७ $\frac{८०}{२१२}$) = ५१९६९३ $\frac{९१}{२१२}$ योजन वक्षार के* अन्त में आयाम का प्रमाण प्राप्त हुआ।

वक्षार के बाह्य आयाम का ५१९६९३ $\frac{९१}{२१२}$ योजन प्रमाण ही सुकच्छा देश का आद्यायाम है। इसमें पूर्व में प्राप्त किए हुए देश सम्बन्धी वृद्धि क्षेत्र के ४५८३ $\frac{१९१}{२१२}$ योजन जोड़ देने पर सुकच्छा देश का मध्यायाम (५१९६९३ $\frac{९१}{२१२}$ + ४५८३ $\frac{१९१}{२१२}$) = ५२४२७७ $\frac{७०}{२१२}$ योजन प्रमाण होता है। इसमें उसी वृद्धिक्षेत्र का प्रमाण जोड़ देने पर सुकच्छा देश का बाह्यायाम (५२४२७७ $\frac{७०}{२१२}$ + ४५८३ $\frac{१९१}{२१२}$) = ५२८८६१ $\frac{४९}{२१२}$ योजन प्रमाण होता है।

विभङ्गानदी का व्यास २५० योजन है, इसकी "विक्खम्भवग्ग" गाथा ९६ से करणि रूप परिधि का प्रमाण ६२५०० योजन हुआ। इसका वर्गमूल ग्रहण करने पर ७९० योजन हुए यही विभंगा की परिधि का प्रमाण है। जबकि १ भाग में ७९० योजन क्षेत्र होता है, तब दोनों भागों में कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर ७९० × २ योजन हुए। पश्चात् २१२ शलाकाओं का ७९० × २ योजन क्षेत्र है तो विदेह की ६४ शलाकाओं का कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार पुनः त्रैराशिक करने पर विदेह सम्बन्धी वृद्धिक्षेत्र का प्रमाण $\frac{७९० \times २ \times ६४}{२१२}$ योजन हुआ। (पश्चात् नदी के तट रूप) दो प्रान्तों का $\frac{७९० \times २ \times ६४}{२१२}$ योजन क्षेत्र है, तो एक प्रान्त का कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{७९० \times २ \times ६४}{२१२ \times २}$ योजन हुए।

इसे 'मुखभूमिसमासार्धं' इस न्याय से आधा करने को दो का भाग देने पर $\frac{७९० \times २ \times ६४}{२१२ \times २ \times २}$ योजन होता है। इसका यथायोग्य अपवर्तन करने पर $\frac{७९० \times ३२}{२१२}$ योजन रहा और इसी से गाथा ९३१ में कहे हुए 'बत्तीसगुणा तहिं वड्ढी' की सिद्धि हुई। यहाँ ३२ गुणकार का गुणा करने पर $\frac{२५२८०}{२१२}$ योजन हुए, इन्हें अपने भागहार से भाजित करने पर विभङ्गा नदी सम्बन्धी वृद्धि का प्रमाण ११९ $\frac{५२}{२१२}$ योजन प्राप्त होता है सुकच्छा देश के बाह्यायाम का प्रमाण ५२८८६१ $\frac{४९}{२१२}$ योजन है और यही प्रमाण विभंगा नदी के आद्यायाम का है, अतः इसमें विभंगा सम्बन्धी वृद्धि क्षेत्र का प्रमाण मिला देने पर विभंगा के मध्य में आयाम का प्रमाण (५२८८६१ $\frac{४९}{२१२}$ + ११९ $\frac{५२}{२१२}$) = ५२८९८० $\frac{१०१}{२१२}$ योजन होता है और इसी में पुनः वही वृद्धि का प्रमाण मिला देने पर विभंगा के अन्त में आयाम का प्रमाण (५२८९८० $\frac{१०१}{२१२}$ + ११९ $\frac{५२}{२१२}$) = ५२९०९९ $\frac{१५३}{२१२}$ योजन होता है। इससे आगे महाकच्छादि देशों का, वक्षार आदि पर्वतों का और विभंगा आदि नदियों का आयाम पूर्व पूर्व प्रमाण में निज निज वृद्धि का प्रमाण जोड़कर प्राप्त कर लेना चाहिए।

देवारण्य का व्यास ५८४४ योजन है। "विक्खम्भवग्गदहगुण" गाथा ९६ से इसकी करणि रूप परिधि ३४१५२३३६० योजन होती है। इसका वर्गमूल ग्रहण करने पर देवारण्य की परिधि का प्रमाण १८४८० योजन होता है। जबकि एक भाग का परिधि क्षेत्र १८४८० योजन है तब दो भागों का कितना होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर १८४८० × २ योजन क्षेत्र प्राप्त हुआ। यदि २१२ शलाकाओं का १८४८० × २ योजन क्षेत्र है, तब विदेह की ६४ शलाकाओंका कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर $\frac{१८४८० \times २ \times ६४}{२१२}$ योजन विदेहगत देवारण्य की वृद्धिक्षेत्र का प्रमाण प्राप्त होता है। जबकि २ प्रान्तों का $\frac{१८४८० \times २ \times ६४}{२१२}$ योजन क्षेत्र है, तब एक प्रान्त का कितना क्षेत्र होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर— $\frac{१८४८० \times २ \times ६४}{२१२ \times २}$ योजन हुए। इन्हें "मुखभूमिसमासार्धमिति" इस युक्ति से आधा करने पर $\frac{१८४८० \times २ \times ६४}{२१२ \times २ \times २}$ योजन हुए। इसे यथायोग्य अपवर्तन करने पर गाथोक्त देवारण्य सम्बन्धी वृद्धिक्षेत्र का प्रमाण $\frac{१८४८० \times ३२}{२१२}$ योजन प्राप्त होता है। इसे ३२ गुणाकार से गुणित करने पर $\frac{५९१३६०}{२१२}$ योजन हुए और अपने भागहार से भाजित करने पर देवारण्य सम्बन्धी मध्य क्षेत्रवृद्धि का प्रमाण २७८९ $\frac{९२}{२१२}$ योजन हुआ। पुष्कलावती का बाह्य आयाम ५८७४४७ $\frac{२००}{२१२}$ योजन है और यही देवारण्य का आद्यायाम है। अर्थात् पुष्कलावती का बाह्य आयाम ही देवारण्य का आद्यायाम है। इसी प्रमाण को प्राप्त करने का विधान कहते हैं :—

नदी के एक तट पर आठ देश, चार वक्षार और तीन विभंगा नदियाँ हैं तथा आदि आयाम से मध्य में और मध्य आयाम से अन्त में, इस प्रकार प्रत्येक में दो दो बार स्व वृद्धि का प्रमाण बढ़ता है। यथा—देशवृद्धि का प्रमाण ४५८३ $\frac{१९६}{२१२}$ योजन है। इसे १६ (देशों) से गुणा करने पर ७३३२८ $\frac{३१३६}{२१२}$ योजन हुए। वक्षार पर्वत की वृद्धि का प्रमाण ४७७ $\frac{६०}{२१२}$ योजन है। इसको ८ (वक्षार पर्वतों) से गुणित करने पर ३८१६ $\frac{४८०}{२१२}$ योजन हुए। विभंगा नदी की वृद्धि का प्रमाण ११९ $\frac{५६}{२१२}$ योजन है, इस प्रमाण को ६ (विभंगा नदियों) से गुणित करने पर ७१४ $\frac{३३६}{२१२}$ योजन हुए। यहाँ उपर्युक्त तीनों प्रमाणों में जो अंश हैं, उन्हें जोड़कर उनमें कच्छदेश के आद्यायाम के $\frac{२००}{२१२}$ अंश भी जोड़ देने पर— ($\frac{३१३६}{२१२} + \frac{४८०}{२१२} + \frac{३३६}{२१२} + \frac{२००}{२१२}$) = $\frac{४१५२}{२१२}$ प्राप्त हुए। इन्हें अपने भागहार (२१२) से भाजित करने पर १९ योजन प्राप्त हुए और $\frac{२००}{२१२}$ अंश अवशेष रहे, ये देवारण्य के आद्यायाम के अंश हैं। यहाँ १९ योजन तो ये प्राप्त हुए तथा १६ देश, ८ वक्षार एवं ६ विभंगा की वृद्धि का प्रमाण—(७३३२८ + ३८१६ + ७१४) = ७७८५८ योजन और कच्छ देश के आद्यायाम के अंशि का प्रमाण ५०९५७० योजन का योगफल (५०९५७० + ७७८५८ + १९) = ५८७४४७ योजन हुआ, यही देवारण्य का आद्यायाम है। अर्थात् कच्छदेश के आद्यायाम का प्रमाण ५०९५७० $\frac{२००}{२१२}$ योजन, १६ देशों का वृद्धि प्रमाण

७३३२८ योजन, ८ वक्षार पर्वतों का वृद्धि प्रमाण ३८१६५ योजन और ६ विभङ्गा नदियों का वृद्धि प्रमाण ७१४ योजन है। इन चारों का योग ५८७४४७ योजन हुआ। यही देवारण्य का आद्यायाम है इस आद्यायाम में देवारण्य सम्बन्धी वृद्धि क्षेत्र १७८६ योजन जोड़ देने पर देवारण्य के मध्यमायाम का प्रमाण ५६०२३६ योजन तथा इसी में पुनः वही वृद्धि प्रमाण जोड़ देने पर कालोदक के निकट देवारण्य के बाह्यायाम का प्रमाण ५६१०२६ योजन होता है।

इस प्रकार जैसे सीता नदी के उत्तर तट का वर्णन किया है, उसी प्रकार सीता के दक्षिणतट के विदेह देश, वक्षार पर्वत, विभङ्गा नदी और देवारण्य के व्यास, परिधि, वृद्धिक्षेत्र और आयाम का प्रमाण वहाँ वहाँ प्राप्त कर लेना चाहिए। जिस प्रकार यहाँ मेरु की पूर्व दिशा में अधिक अधिक अनुक्रम से वर्णन किया है, उसी प्रकार मेरु की पश्चिम दिशा में भद्रशाल वन से हीन हीन अनुक्रम द्वारा वर्णन करना चाहिए। यहाँ हानि का प्रमाण वृद्धि प्रमाण सदृश ही है।

इसी प्रकार पुष्करार्ध में भी देश, वक्षार, विभङ्गा और देवारण्य के यथासम्भव व्यास और परिधि का प्रमाण निकाल कर, दोनों भागों के ग्रहण हेतु दो से गुणित कर, २१२ शलाकाओं से भाजित कर प्राप्तांकों को विदेहशलाका ६४ से गुणित करने पर जो लब्ध प्राप्त हो, वह विदेह वृद्धिक्षेत्र है। उसको दो से भाजित करने पर एक प्रान्त सम्बन्धी वृद्धि क्षेत्र प्राप्त हुआ, उसे "मुखभूमिसमासार्धं" न्याय द्वारा आधा कर अपवर्तन करने से स्व स्व स्थान का लब्ध मात्र वृद्धि क्षेत्र का प्रमाण प्राप्त हो जाता है, उस वृद्धि क्षेत्र को अपने अपने आदि आयाम में जोड़ देने पर अपना अपना मध्यायाम और स्व स्व मध्यायाम के प्रमाण में जोड़ देने पर अपने अपने बाह्यायाम का प्रमाण प्राप्त होता है। पूर्व पूर्व का बाह्यायाम ही उत्तर उत्तर का आदि आयाम होता है। मेरु की पश्चिम दिशा में हीन क्रम से जानना चाहिए।

अथ धातकीखण्डपुष्करद्वीपयोः किञ्चिद्विशेषस्वरूपं गाथाद्वयेन—

धादइपुक्खरदीवा धादइपुक्खरतरूहिं संजुत्ता।
तेसिं च वण्णणा पुण जंबुदुमवण्णणं व हवे ॥ ९३४ ॥
धादइगंगारत्तद्दु हिमसिहरिणगोवरि उजु आदि।
णवणभतिणविगि चलणं जंबू व पुक्खरे दुगुणं ॥ ९३५ ॥

धातकीपुष्करद्वीपौ धातकीपुष्करतरुभ्यां संयुक्तौ।
तयोः च वर्णना पुनः जम्बूद्रुमवर्णना इव भवेत् ॥ ९३४ ॥
धातकीगङ्गारक्ताढ्ये हिमशिखरिनगोपरि ऋजु यातः।
नवनभस्त्रिनवैकं चलनं जम्बू व पुष्करे द्विगुणं ॥ ९३५ ॥

धादइ । धातकीखण्डपुष्करद्वीपौ धातकीपुष्करतरुभ्यां संयुक्तौ, तयोर्वृक्षयोर्वर्णना पुनर्जम्बूवृक्षवर्णनावद्भवेत् ॥ ९३४ ॥

धादइ । धातकीखण्डस्थगङ्गासिन्धू रक्तारक्तोदे द्वे नद्यौ यथासंख्यं हिमवच्छिखरिनगयोरुपरि नवनअधिकनवाग्रोत्तरैकयोजनानि १९३०९ ऋजु यातः वलनादिकं पुनर्जम्बूद्वीपवत् ज्ञातव्यं । पुष्करद्वीपे पुनर्नगोपरि नदीगमनं एतस्माद्द्विगुणं ज्ञातव्यं ३८६१८ ॥ ९३५ ॥

॥ एवं नरलोको व्याख्यातः ॥

अब धातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीपों का कुछ विशेष स्वरूप दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ:—धातकी खण्ड और पुष्कर द्वीप क्रमशः धातकी और पुष्कर वृक्षों से संयुक्त हैं । इन दोनों वृक्षों का वर्णन जम्बूद्वीपस्थ जम्बूवृक्ष के वर्णन सदृश ही होता है । धातकी खण्ड सम्बन्धी गंगा-सिन्धु और रक्ता रक्तोदा क्रमशः हिमवन् और शिखरी पर्वत पर उन्नीस हजार तीन सौ नौ योजन सीधी जाती हैं । इसके आगे उनके मोड़ आदि का वर्णन जम्बूद्वीप सदृश है । पुष्करार्ध द्वीप में पर्वत के ऊपर नदियों का सीधा गमन दुगुना अर्थात् ३८६१८ योजन है ।। ९३४, ९३५ ।।

विशेषार्थ :—धातकी खण्ड द्वीप धातकी वृक्ष से और पुष्करार्ध द्वीप पुष्कर वृक्ष से संयुक्त हैं । इन दोनों वृक्षों का वर्णन जम्बूद्वीप के जम्बूवृक्ष सदृश ही है । धातकी खण्डस्थ गङ्गा सिन्धु नदियाँ हिमवत् पर्वत पर १९३०९ योजन और रक्ता रक्तोदा शिखरी पर्वत पर १९३०९ योजन सीधी जाती हैं । इसके बाद इनके मोड़ आदि का वर्णन जम्बूद्वीप सम्बन्धी गंगा सिन्धु आदि के सदृश ही है । पुष्कर द्वीप में इन्हीं नदियों का पर्वत के ऊपर सीधा गमन ३८६१८ योजन प्रमाण है ।

इस प्रकार नरलोक का व्याख्यान समाप्त हुआ ।

इदानीं तिर्यग्लोकं प्रतिपादयन् तावदुभयत्रापि स्थितानां शैलार्णवानां गाधं बोधयति—

मेरुणरलोयबाहिरसेलागाढं सहस्सपरिमाणं ।
सेसाणं सगतुरियं सव्वुवहीणं सहस्सं तु ।। ९३६ ।।

मेरुनरलोकबाह्यशैलावगाधं सहस्रपरिमाणं । .
शेषाणां स्वकतुर्यं सर्वोदधीनां सहस्रं तु ।। ९३६ ।।

मेरु । मेरुनगस्य मानुषोत्तरं वर्जयित्वा नरलोकबहिः स्थितानां[1] शैलानाम् अवगाधं सहस्र १००० परिमाणं ज्ञातव्यं तदभ्यन्तरस्थितानां शेषाणां हिमवदादिशैलानामवगाधः पुनः स्वकीयस्वकीयोदयचतुर्थांशो ज्ञातव्यः । सर्वेषामुदधीनामवगाधं तु सहस्रयोजनं जानीयात् ॥ ९३६ ॥

---

१ मन्येषां च (प०) ।

अब तिर्यग्लोक का प्रतिपादन करते हुए आचार्य मनुष्य और तिर्यग्लोक में स्थित पर्वत एवं समुद्रों का गाध-अवगाह कहते हैं :—

गाथार्थ—मेरु पर्वतों का और नरलोक के बाह्य भाग में स्थित सम्पूर्ण पर्वतों का अवगाध एक हजार योजन प्रमाण है। शेष पर्वतों का गाध अपनी ऊंचाई के चतुर्थ भाग प्रमाण है। सर्व समुद्रों का अवगाह-गहराई भी १००० योजन प्रमाण ही है ॥ ९३६ ॥

विशेषार्थ :—मेरु पर्वतों का और मानुषोत्तर बिना मनुष्यलोक के बाह्य भाग में स्थित सर्व पर्वतों का अर्थात् मेरु पर्वत और अढ़ाई द्वीप के बाहर के सर्व पर्वतों का गाध (नींव या जमीन के भीतर पर्वतों की गहराई) १००० योजन जानना चाहिए तथा मनुष्य लोक के अभ्यन्तर भाग में स्थित हिमवन् आदि पर्वतों का अवगाध अपनी अपनी ऊंचाई के चतुर्थ भाग प्रमाण है। सर्व समुद्रों की गहराई भी १००० योजन प्रमाण है।

अनन्तरं मानुषोत्तरस्वरूपं गाथात्रयेणाह :—

अंतो टंकच्छिण्णो बाहिं कमवड्ढिहाणि कणयणिहो ।
णदिणिग्गमपहचोद्दसगुहाजुदो माणुसुत्तरगो ॥ ९३७ ॥

अन्तः टङ्कच्छिन्नो बाह्यं क्रमवृद्धिहानिकः कनकनिभः ।
नदीनिर्गमपथचतुर्दशगुहायुतः मानुषोत्तरः ॥ ९३७ ॥

अंते । अभ्यन्तरे टङ्कच्छिन्नो बाह्ये शिखराद् क्रमवृद्धः मूलात् क्रमहानियुक्तः कनकनिभः नदीनिर्गमपथैश्चतुर्दशगुहाभिर्युतो मानुषोत्तराख्यशैलो ज्ञातव्यः ॥ ९३७ ॥

अब मानुषोत्तर पर्वत का स्वरूप तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ:—पुष्कर द्वीप के मध्य में मानुषोत्तर पर्वत है। वह अभ्यन्तर में टङ्कछिन्न और बाह्य भाग में क्रमिक वृद्धि एवं हानि को लिए हुए है। स्वर्ण सदृश वर्ण वाला एवं नदी निकलने के चौदह गुफाद्वारों से युक्त है ॥ ९३७ ॥

विशेषार्थ :—पुष्कर द्वीप के मध्य में मानुषोत्तर नाम का पर्वत स्थित है। वह अभ्यन्तर-मनुष्य लोक की ओर टङ्कछिन्न अर्थात् नीचे से ऊपर तक एक सदृश है तथा बाह्य-तिर्यग्लोक की ओर शिखर से क्रमिक वृद्धि और मूल से क्रमिक हानि को लिए हुए है। उसका वर्ण स्वर्ण सदृश है तथा चौदह महानदियों के निर्गम स्वरूप चौदह गुफाद्वारों से युक्त है।

माणुसुत्तरुदयभूमुहमिगिवीसं सगसयं सहस्सं च ।
बावीसहियसहस्सं चउवीसं चउसयं कमसो ॥९३८॥

मानुषोत्तरोदयभूमुखमेकविंशं सप्तशतं सहस्रं च ।
द्वाविंशाधिकसहस्रं चतुर्विंशतिः चतुःशतं क्रमशः ॥ ९३८ ॥

मणुसु । मानुषोत्तरोदयभूमुखव्यासाः क्रमेण एकविंशतिसप्तशतोत्तरसहस्रयोजनानि १७२१ द्वाविंशत्यधिकसहस्रयोजनानि १०२२ चतुर्विंशत्युत्तरचतुः शतयोजनानि ४२४ भवन्ति ॥ ९३८ ॥

गाथार्थ :—मानुषोत्तर पर्वत का उदय, भू व्यास और मुख व्यास क्रमशः एक हजार सात सौ इक्कीस योजन, एक हजार बाईस योजन और चार सौ चौबीस योजन प्रमाण है ॥ ९३८ ॥

विशेषार्थ :—मानुषोत्तर पर्वत की ऊंचाई १७२१ योजन, भू व्यास अर्थात् मूल में चौड़ाई १०२२ योजन और मुख व्यास अर्थात् ऊपर की चौड़ाई ४२४ योजन प्रमाण है, तथा इसकी नींव $\frac{१७२१}{४}$=४३० योजन १ कोश है।

तण्णगसिहरे वेदी चावाणं चदुसहस्सतुंगजुदा ।
सोहइ वलयायारा चरणण्णिदकोसवित्थारा ॥ ९३९ ॥

तन्नगशिखरे वेदी चापानां चतुः सहस्रतुङ्गयुता ।
शोभते वलयाकारा चरणान्वितक्रोशविस्तारा ॥ ९३९ ॥

तण्णग । तन्मानुषोत्तरनगस्य शिखरे चापानां चतुः सहस्रतुङ्गयुता चतुर्थांशान्वितक्रोशविस्तारा २५०० वलयाकारा वेदी शोभते ॥ ९३९ ॥

गाथार्थ:—उस मानुषोत्तर पर्वत के शिखर पर चार हजार धनुष ऊंची और सवा कोस (१¼) चौड़ी वलयाकार वेदी शोभायमान है ॥ ९३९ ॥

अथात्र स्थितानि कूटानि कथयति—

णइरिदिवायव्वदिसं वज्जिय छस्सुवि दिसासु कूडाणि ।
तियतियमावलियाए तामब्भंतरदिसासु चउवसई ॥ ९४० ॥

नैऋतीं वायव्यदिशं वर्जयित्वा षट्स्वपि दिशासु कूटानि ।
त्रिकत्रिकमावल्या तेषामभ्यन्तरदिशासु चतुष्कवसत्यः ॥ ९४० ॥

णइ । नैऋतीं वायवीं च दिशं वर्जयित्वा षट्स्वपि दिशासु पंक्तिक्रमेण त्रीणि त्रीणि कूटानि सन्ति । तेषामभ्यन्तरदिशासु चतुरस्रो वसत्यः सन्ति ॥ ९४० ॥

अब इस पर्वत के ऊपर स्थित कूट कहते हैं :—

गाथार्थ:—नैऋत्य और वायव्य इन दो विदिशाओं को छोड़ कर अवशेष छह दिशाओं में पंक्तिरूप तीन तीन कूट हैं तथा उन कूटों के अभ्यन्तर की ओर चार दिशाओं में चार वसतिका हैं ॥ ९४० ॥

विशेषार्थ :—उस मानुषोत्तर पर्वत पर नैऋत्य और वायव्य इन दो दिशाओं को छोड़ कर

अवशेष छह दिशाओं में पंक्ति स्वरूप तीन तीन कूट हैं तथा उन कूटों के अभ्यन्तर अर्थात् मनुष्य लोक की ओर चार दिशाओं में चार वसतिका अर्थात् जिन मन्दिर हैं।

अथ तत्कूटवासिदेवानाह—

अग्गीसाणछकूडे गरुडकुमारा वसंति सेसे दु।
दिग्गयबारसकूडे सुवण्णकुलदिक्कुमारीओ ॥ ९४१ ॥

अग्नीशानषट्कूटे गरुडकुमारा वसन्ति शेषेषु तु।
दिग्गतद्वादशकूटेषु सुवर्णकुलदिक्कुमार्यः ॥ ९४१ ॥

अग्गी। आग्नेय्यैशानदिक्स्थेषु षट्सु कूटेषु गरुडकुमारा वसन्ति। शेषेषु पुनर्दिग्गत द्वादशकूटेषु सुवर्णकुलदिक्कुमार्यो वसन्ति ॥ ९४१ ॥

उन कूटों में बसने वाले देवों को कहते हैं:—

गाथार्थ:—आग्नेय और ईशान दिशा सम्बन्धी छह कूटों में गरुडकुमार देव तथा अवशेष दिशागत बारह कूटों में सुवर्णकुमार देव एवं दिक्कुमारी देवांगनाएँ निवास करतीं हैं ॥ ९४१ ॥

अथ मानुषोत्तरस्य स्थानादिकमाह—

पणदाललक्खमाणुसखेत्तं परिवेढिऊण सो होदि।
उदयचउत्थोगाढो पुक्खरबिदियद्धपढमम्हि ॥ ९४२ ॥

पञ्चचत्वारिंशल्लक्षमानुषक्षेत्रं परिवेष्ट्य स भवति।
उदयचतुर्थावगाधः पुष्करद्वितीयार्धप्रथमे ॥ ९४२ ॥

पण। पञ्चोत्तरचत्वारिंशल्लक्षयोजन ४५००००० प्रमितमानुषक्षेत्रं परिवेष्ट्य पुष्करद्वीपद्वितीयार्धस्य प्रथमभागे स मानुषोत्तरो भवति। तस्यावगाधः उदयचतुर्थांशः ४३०$\frac{१}{४}$ स्यात् ॥ ९४२ ॥

आगे मानुषोत्तर पर्वत का स्थान आदि कहते हैं:—

गाथार्थ:—पुष्कर द्वीप के द्वितीय अर्ध भाग के प्रथम भाग में, ४५००००० योजन प्रमाण मनुष्य लोक को वेष्टित किए हुए मानुषोत्तर पर्वत है। जिसका अवगाध ऊँचाई का चतुर्थ भाग प्रमाण है ॥ ९४२ ॥

विशेषार्थ:—४५००००० योजन प्रमाण मनुष्य लोक को घेरे हुए पुष्कर द्वीप के द्वितीय अर्ध भाग के प्रथम भाग का जो आदि क्षेत्र है उसमें मानुषोत्तर पर्वत है। इसकी नींव—गाध ऊँचाई का चतुर्थांश अर्थात् ($\frac{१७२१}{४}$) = ४३०$\frac{१}{४}$ योजन है।

अथ कुण्डलरुचकाचलयोरुदयादित्रयमाह—

कुंडलगो दसगुणिओ पणसदरिसहस्स तुंगओ रुजगे।
चउरासीदिसहस्सा सव्वत्थुमयं सुवण्णमयं ॥ ९४३ ॥
कुण्डलगो दशगुणितो पञ्चसप्ततिसहस्रं तुङ्गो रुचके।
चतुरशीतिसहस्राणि सर्वत्रोभयो सुवर्णमयो ॥ ९४३ ॥

कुंडल। मानुषोत्तरभूमुखव्यासात् कुण्डलपर्वतस्य भूमुखव्यासो दशगुणितो भू १०२२० मुख ४२४० तत्तुङ्गस्तु पञ्चसप्ततिसहस्रयोजनानि ७५००० रुचके सर्वत्रउदये व्यासे च चतुरशीतिसहस्रयोजनानि ८४०००। उभयो कुण्डलरुचको सुवर्णमयौ स्यातां ॥ ९४३ ॥।

अब कुण्डल गिरि और रुचक गिरि के उदयादि तीनों कहते हैं :—

गाथार्थ :—कुण्डलगिरि का भूव्यास और मुख व्यास मानुषोत्तर के भू मुख व्यास से दशगुणा है और ऊँचाई पचहत्तर हजार योजन है तथा रुचक गिरि सर्वत्र चौरासी हजार योजन प्रमाण है। ये दोनों पर्वत स्वर्णमय हैं ॥ ९४३ ॥

विशेषार्थ :—मानुषोत्तर पर्वत के भू मुख व्यास से कुण्डलगिरि का भू मुख व्यास दशगुणा है। अर्थात् कुण्डल गिरि का भूव्यास १०२२० योजन, मुखव्यास ४२४० योजन और ऊँचाई ७५००० योजन है तथा रुचकगिरि का उदय, भू व्यास और मुख व्यास ये तीनों ८४००० योजन प्रमाण हैं। दोनों पर्वत स्वर्णमय हैं।

साम्प्रतं कुण्डलस्योपरिमकूटानि गाथात्रयेणाह—

चउ चउ कूडा पडिदिसम्हि कुंडलपव्वदस्स सिहरम्मि।
ताणब्भंतरदिग्गय चत्तारि जिणिंदकूडाणि ॥ ९४४ ॥
वज्जं तप्पह कणयं कणयप्पह रजदकूड रजदाहं।
सुमहप्पह अंकंकप्पह मणिकूडं च मणिपहयं ॥ ९४५ ॥
रुजगरुजगाह हिमवं मंदरमिह चारि सिद्धकूडाणि।
अत्थंति सेसि कूडे कूडक्खसुरा कदावासा ॥ ९४६ ॥
चत्वारि चत्वारि कूटानि प्रतिदिशमिह कुण्डलपर्वतस्य शिखरे।
तेषामभ्यन्तरदिग्गतानि चत्वारि जिनेन्द्रकूटानि ॥ ९४४ ॥
वज्रं तत्प्रभं कनकं कनकप्रभं रजतकूटं रजताभं।
सुमहत्प्रभं अङ्कमङ्कप्रभं मणिकूटं च मणिप्रभं ॥ ९४५ ॥
रुचकरुचकाभं हिमवत् मन्दरमिह चत्वारि सिद्धकूटानि।
आसते शेषेषु कूटेषु कूटाख्यसुराः कृतावासाः ॥ ९४६ ॥

चउ । इह कुण्डलपर्वतस्य शिखरे प्रतिदिशं चत्वारि ४ चत्वारि ४ कूटानि । तेषामभ्यन्तर-दिग्गतानि चत्वारि ४ जिनेन्द्रकूटानि ॥ ९४४ ॥

वज्जं । वज्रं वज्रप्रभं कनकं कनकप्रभं रजतकूटं रजताभं सुप्रभं महाप्रभं अङ्कं अङ्कप्रभं मणिकूटं मणिप्रभं ॥ ९४५ ॥

रुजग । रुचकं रुचकाभं हिमवत् मन्दरं ४ एभ्यः कूटेभ्यः सकाशादन्यानि इह चत्वारि सिद्ध-कूटानि सन्ति । शेषकूटेषु १६ कूटाख्याः सुराः कृतावासा भूत्वा आसते १६ ॥ ९४६ ॥

अब कुण्डल गिरि के ऊपर स्थित कूटों को तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—इस कुण्डल गिरि के शिखर पर एक एक दिशा में चार चार कूट हैं। इनके अभ्यन्तर की ओर चारों दिशाओं में (एक एक) चार कूट जिनेन्द्र भगवान सम्बन्धी हैं उनके नाम— १ वज्र, २ वज्रप्रभ, ३ कनक, ४ कनकप्रभ, ५ रजतकूट, ६ रजताभ, ७ सुप्रभ, ८ महाप्रभ, ९ अङ्क, १० अङ्कप्रभ, ११ मणिकूट, १२ मणिप्रभ, १३ रुचक, १४ रुचकाभ, १५ हिमवत और मन्दर ये सोलह कूट हैं। अन्य चार सिद्धकूट हैं जिनमें भगवान के चैत्यालय हैं। अवशेष १६ कूटों में अपने अपने कूट सदृश नाम वाले देव निवास करते हैं ॥ ९४४, ९४५, ९४६ ॥

विशेषार्थ:—इस कुण्डलगिरि के शिखर पर पूर्व दिशा में वज्र, वज्रप्रभ कनक और कनकप्रभ ये चार एवं एक सिद्ध कूट इस प्रकार कुल पाँच कूट हैं। इसी प्रकार दक्षिण में रजतकूट, रजताभ, सुप्रभ, महाप्रभ और एक सिद्धकूट; पश्चिम में अङ्क, अङ्कप्रभ, मणिकूट, मणिप्रभ और एक सिद्धकूट तथा उत्तर में रुचक, रुचकाभ, हिमवत्, मन्दर और एक सिद्धकूट हैं। इस प्रकार कुल कूट २० हैं। जिनमें ४ सिद्ध कूटों में चैत्यालय हैं और अवशेष सोलह कूटों में अपने कूट नाम वाले देव निवास करते हैं। यथा :—

[कृपया चित्र अगले पृष्ठ पर देखिए]

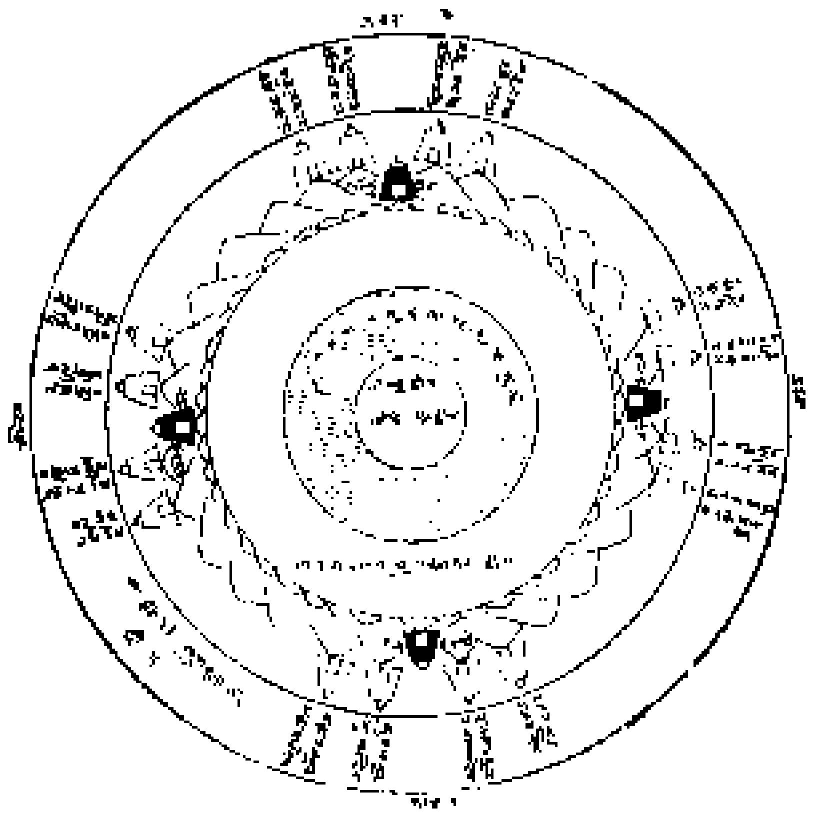

इदानीं रुचकोपरिमकूटानि तन्निवासिनीदेवीस्तत्कृत्यं च त्रयोदशगाथाभिराह—

पुव्वादिसु पुह अट्ठ अट्ठ अंते चउ चारि चारि कूडाणि ।
रुजगे सव्वब्भंतरचत्तारि जिणिंदकूडाणि ॥ ९४७ ॥

पूर्वादिषु पृथक् अष्टौ अष्टौ अन्तः चतसृषु चत्वारि चत्वारि कूटानि ।
रुचके सर्वाभ्यन्तरचत्वारि जिनेन्द्रकूटानि ॥ ९४७ ॥

पुव्वा । रुचकगिरौ पूर्वादिषु चतसृषु दिक्षु पृथक् पंक्तिक्रमेणाष्टावष्टौ कूटानि । तेषामभ्यन्तरे चतसृषु दिक्षु एकवारं चत्वारि कूटानि । तदभ्यन्तरे पुनरप्येकवारं चत्वारि कूटानि तदभ्यन्तरे च पुनरप्येकवारं चत्वारि कूटानि एवमभ्यन्तरे प्रतिदिशं त्रीणि त्रीणि कूटानि तेषु सर्वाभ्यन्तराणि चत्वारि जिनेन्द्रकूटानि ॥ ९४७ ॥

अब रुचक पर्वत के ऊपर स्थित कूट, उनमें निवास करने वाली देवांगनाएँ और उन देवांगनाओं के कार्य तेरह गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—रुचक गिरि पर्वत के ऊपर पूर्वादि चारों दिशाओं में पृथक् पृथक् आठ आठ कूट हैं। जिनके अभ्यन्तर की ओर चारों दिशाओं में चार कूट हैं। उन चार कूटों की अभ्यन्तर चार दिशाओं में पुनः चार कूट हैं और सर्व अभ्यन्तर चार दिशाओं में चार जिनेन्द्र कूट हैं ॥ ९४७ ॥

विशेषार्थ :—रुचक पर्वत पर पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन चार दिशाओं में से पृथक् पृथक् दिशा में पंक्ति क्रम से अर्थात् पंक्ति बद्ध आठ आठ कूट हैं। इन आठ कूटों की अभ्यन्तर चारों

दिशाओं में चार कूट हैं। अर्थात् प्रत्येक दिशा में एक एक कूट है। इन चारों कूटों के अभ्यन्तर चार कूट हैं जो एक एक दिशा में एक एक है। इस प्रकार प्रत्येक दिशा में आठ कूटों के अभ्यन्तर में तीन तीन कूट और हैं जिनमें चार सर्व अभ्यन्तर कूट जिनेन्द्र सम्बन्धी हैं। अर्थात् इन चारों कूटों पर जिनेन्द्र भवन हैं, देवियों का वास नहीं है।

कणयं कंचण तवणं सोत्थियकूडं सुभद्दमंजणयं।
अंजणमूलं वज्जं तत्थेदा दिक्कुमारी ओ ॥ ९४८ ॥
विजयाय वइजयंती जयंति अवरजिदाय णंदेत्ति।
णंदवदी णंदुत्तर णामाओ णंदिसेणोत्ति ॥९४९॥

कनकं काञ्चनं तपनं स्वस्तिककूटं सुभद्रमञ्जनकं।
अञ्जनमूलं वज्रं तत्रैता दिक्कुमार्यः ॥ ९४८ ॥
विजया वैजयन्ती जयन्ती अपराजिता नन्दा इति।
नन्दवती नन्दोत्तरा नाम्नामस्ते नन्दिषेणा इति ॥ ९४९ ॥

कणयं। कनकं काञ्चनं तपनं स्वस्तिककूटं सुभद्रमञ्जनकं अञ्जनमूलं वज्रमित्येतानि पूर्वदिश्यष्टौ कूटानि। तत्रैता अग्रे वक्ष्यमाणा दिक्कुमार्यो निवसन्ति ॥ ९४८ ॥

विजया। विजया वैजयन्ती जयन्त्यपराजिता नन्दा नन्दवती नन्दोत्तरा नन्दिषेणेत्यष्टौ ता दिक्कुमार्यः ॥ ९४९ ॥

गाथार्थ:—रुचक पर्वत के ऊपर पूर्व दिशा में १ कनक, २ काञ्चन, ३ तपन, ४ स्वस्तिक कूट, ५ सुभद्र, ६ अञ्जनक, ७ अञ्जनमूल और ८ वज्र नाम के कूट हैं, जिनमें क्रम से विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, नन्दा, नन्दावती, नन्दोत्तरा और नन्दिषेणा ये आठ देव कुमारियाँ निवास करती हैं ॥ ९४८, ९४९ ॥

विशेषार्थ :—रुचक पर्वत के ऊपर पूर्व दिशा के कनक कूट में विजया काञ्चन में वैजयन्ती, तपन में जयन्ती, स्वस्तिक में अपराजिता, सुभद्र में नन्दा, अञ्जनक में नन्दावती, अञ्जनमूल में नन्दोत्तरा और वज्रकूट में नन्दिषेणा देवकुमारी निवास करती हैं। ये भृङ्गार धारण कर माता की सेवा करती हैं।

फलिह रजदं च कुमुदं णलिणं पउमं ससीय वेसवणं।
वेलुरियं देवीओ इच्छापहमा समाहारा ॥ ९५० ॥
सुपइण्णाय जसोहर लच्छी सेसवदि चित्तगुत्तोत्ति।
चरिम वसुंधरदेवी अमोहमद सोत्थियं कूडं ॥ ९५१ ॥

तो मंदर हेमवदं रज्जं रज्जुत्तमं च चंदमावे ।
पच्छिम सुदंसणं पुण इलादिदेवी सुरादेवी ॥ ९५२ ॥

पुढवी पउमवदी इगिणासो देवी य णवमिया सीदा ।
भद्दा तो विजयादी चउकूडं कुंडलं रुजगं ॥ ९५३ ॥

तो रयणवंत सव्वादीरयणं उत्तरे अलंभूसा ।
बिदिया दु मिस्सकेसीदेवी पुण पुंडरीगिणि सा ॥९५४॥

वारुणि आसासच्चा हिरिसरि पुव्वगयदिक्कुमारीओ ।
भिंगारं धरिदूणिह दक्खिणदेवीउ मुकुरंदं ॥ ९५५ ॥

पश्चिमगा छत्ततयं उत्तरगा चामरं पमोदजुदा ।
तित्थयरजणणिसेवं जिणजणिकाले पकुव्वंति ॥ ९५६ ॥

स्फटिकं रजतं वा कुमुदं नलिनं पद्मं राशि वैश्रवणं ।
वैडूर्यं देव्यः इच्छाप्रथमा समाहाराः ॥ ९५० ॥

सुप्रकीर्णा यशोधरा लक्ष्मीः शेषवती चित्रगुप्ता इति ।
चन्द्रमा वसुन्धरा देव्यः अमोघमथ स्वस्तिकं कूटं ॥९५१॥

ततो मन्दर हैमवतं राज्य राज्योत्तमं च चन्द्रमपि ।
पश्चिम सुदर्शनं पुनः इलादिका सुरादेवी ॥ ९५२ ॥

पृथ्वी पद्मावती एकनासा देवी च नवमिका सीता ।
भद्रा ततो विजयादिचतुष्कूटानि कुण्डलं रुचकं ॥ ९५३ ॥

ततो रत्नवत् सर्वादिरत्नं उत्तरे अलम्भूषा[1] ।
द्वितीया तु मिश्रकेशी देवी पुनः पुण्डरीकिनी सा ॥९५४॥

वारुणी आशासत्या ह्रीः श्रीः पूर्वगतदिक्कुमार्यः ।
भृङ्गारं धृत्वा इह दक्षिणदेव्यो मुकुरन्द ॥ ९५५ ॥

पश्चिमगाः छत्रत्रयं उत्तरगाः चामरं प्रमोदयुताः ।
तीर्थंकरजननीसेवां जिनजनिकाले प्रकुर्वन्ति ॥ ९५६ ॥

फलिह । स्फटिकं रजतं कुमुदं नलिनं पद्मं शशि वैश्रवण वैडूर्यं इत्यष्टौ द क्षिणदिक्कूटानि । तत्रस्था देव्यः इच्छासमाहाराः ॥ ९५० ॥

---

१ अलंबुसा (ब०) ।

सुपइ । सुप्रकीर्णा यशोधरा लक्ष्मीः शेषवती चित्रगुप्ता वसुन्धरा इत्यष्टौ ८ देव्यः अमोघमथ स्वस्तिकं कूटं ॥ ९५१ ॥

तो । ततो मन्दरं हैमवतं राज्यं राज्योत्तमं चन्द्रमपि सुदर्शनमित्यष्टौ ८ पश्चिमदिक्कूटानि तत्र स्थिता देव्यः इलावती सुरादेवी ॥ ९५२ ॥

पुढवी । पृथ्वी पद्मावती एकनासा देवी नवमिका सीताभद्रा इत्यष्टौ ता देव्यः । ततो विजय-वैजयन्तजयन्तापराजितानीति चत्वारि कूटानि कुण्डलं रुचकं ॥ ९५३ ॥

तो । ततो रत्नवत् सर्वरत्नमित्यष्टौ ८ उत्तरदिक्कूटानि, तत्र स्थितास्तु देव्यः अलंभूषा मिश्रकेशी देवी पुण्डरीकिणी ॥ ९५४ ॥

वारुणि । वारुणी आशा सत्या ह्री श्रीरित्यष्टौ देव्यः । एतासु तावत्पूर्वगतदिक्कुमार्यो भृङ्गारं धृत्वा इह दक्षिणदेव्यो मुकुरन्दं धृत्वा ॥ ९५५ ॥

पच्छिम । पश्चिमदिग्गता देव्यश्छत्रत्रयं धृत्वा उत्तरदिग्गता देव्यश्चामराणि धृत्वा प्रमोदयुता सत्यस्ताः सर्वा देव्यो जिनजननकाले तीर्थंकरजननीसेवां प्रकुर्वते ॥ ९५६ ॥

गाथार्थ :—दक्षिण दिशा में १ स्फटिक, २ रजत, ३ कुमुद, ४ नलिन, ५ पद्म, ६ शशि, ७ वैश्रवण और ८ वैडूर्य ये आठ कूट हैं। इनमें क्रम से इच्छा, समाहारा, सुप्रकीर्णा, यशोधरा, लक्ष्मी, शेषवती, चित्रगुप्ता और वसुन्धरा ये आठ देवांगनाएँ रहती हैं तथा १ अमोघ, २ स्वस्तिक कूट, ३ मन्दर, ४ हैमवत, ५ राज्य, ६ राज्योत्तम, ७ चन्द्र और ८ सुदर्शन ये पश्चिम दिशा के आठ कूट हैं और इन पर क्रम से इलादेवी, सुरादेवी, पृथ्वी, पद्मावती, एकनासा, नवमिका, सीता और भद्रा ये आठ देवकुमारियाँ रहती हैं। इसके बाद १ विजय, २ वैजयन्त, ३ जयन्त, ४ अपराजित, ५ कुण्डल, ६ रुचक, ७ रत्नवत् और ८ रत्न ये उत्तर दिशा सम्बन्धी आठ कूट हैं इनमें क्रम से अलंभूषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीकिणी, वारुणी, आशा, सत्या, ह्री और श्री ये आठ देव कुमारियाँ निवास करती हैं। पूर्व दिशा सम्बन्धी देवकुमारियाँ भृङ्गार धारण कर दक्षिणगत देवियाँ मुकुरन्द (दर्पण), पश्चिमगत देवियाँ तीन छत्र और उत्तरगत देवियाँ चमर धारण कर महाप्रमोद से युक्त होती हुई तीर्थङ्कर के जन्मकाल में तीर्थङ्कर की माता की सेवा करती हैं ॥ ९५० से ९५६ ॥

विशेषार्थ :—दक्षिण दिशा में स्फटिक कूट में इच्छा नाम की देवकुमारी वास करती है। रजत कूट में समाहारा, कुमुद में सुप्रकीर्णा नलिन में यशोधरा, पद्म में लक्ष्मी, शशि में शेषवती, वैश्रवण में चित्रगुप्ता और वैडूर्य में वसुन्धरा ये आठ देवांगनाएँ रहती हैं। ये आठों देवकुमारियाँ हाथ में दर्पण लेकर माता की सेवा करती हैं। पश्चिम दिशा के अमोघ कूट में इलादेवी, स्वस्तिक में सुरादेवी, मन्दर में पृथ्वी, हैमवत में पद्मावती, राज्य में एकनासा, राज्योत्तम में नवमिका, चन्द्र में

सीता और सुदर्शन में भद्रा नाम की देवकुमारियाँ रहती हैं। ये हाथ में तीन छत्र धारण कर अति प्रमोद युक्त होती हुई जिन माता की सेवा करती हैं।

इसके बाद उत्तरदिशागत विजयकूट में अलम्बूषा, वैजयन्त में मिश्रकेशी, जयन्त में पुण्डरीकिणी, अपराजित में वारुणी, कुण्डल में आशा, रुचक में सत्या, रत्नवत् में ह्री और रत्न में श्री देवियाँ रहती हैं। ये सभी जिनेन्द्र भगवान के जन्मकाल में चँवर धारण कर अतिप्रमोदपूर्वक जिनमाता की सेवा करती हैं।

पुव्वे विमलं कूडं णिच्चालोयं सयंपहं अवरे।
णिच्चुज्जोदं देवी कमसो कणया सदाहिदा ॥९५७॥

कणयादिचित्त सोदामणि सव्वदिसप्पसण्णदं देंति।
तित्थयरजम्मकाले कूडं वेलुरियरुजगमदो ॥ ९५८ ॥

मणिकूडं रज्जुत्तममिह रुजगा रुजगकित्ति रुजगादी।
कंता रुजगादिपहा जिणजादयकम्मकदिकुसला ॥ ९५९ ॥

पूर्वयोः विमलं कूटं नित्यालोकं अपरयोः।
नित्योद्योतं देव्यः क्रमशः कनका शताह्वदा ॥ ९५७ ॥

कनकादिचित्रा सौदामिनी सर्वदिशाप्रसन्नतां दधते।
तीर्थंकरजन्मकाले कूटं वैडूर्यं रुचकमतः ॥ ९५८ ॥

मणिकूटं राज्योत्तममिह रुचका रुचककीर्तिः रुचकादिः।
कान्ता रुचकादिप्रभा जिनजातककर्मकृतिकुशलाः ॥ ९५९ ॥

पुव्वे। **रुचकस्याभ्यन्तरकूटेषु तावत्पूर्वदिशि विमलंकूटं दक्षिणदिशि नित्यालोकं अपरदिशि स्वयंप्रभं उत्तरदिशि नित्योद्योतमिति चत्वारि कूटानि। अत्रस्थिताः देव्यः क्रमशः कनका शतह्वदा ॥ ९५७ ॥**

कणया। **कनकचित्रा सौदामिनी चतस्रस्ता देव्यः तीर्थंकरजन्मकाले सर्वदिशां प्रसन्नतां दधते। अतो अभ्यन्तरे पूर्वादिदिक्षु वैडूर्यं रुचकं ॥ ९५८ ॥**

मणि। **मणिकूटं राज्योत्तममिति चत्वारि कूटानि, इहस्था देव्यः रुचका रुचककीर्तिः रुचककान्ता रुचकप्रभा चतस्रो देव्यो जिनजातकर्मकृतौ कुशलाः ॥ ९५९ ॥**

गाथार्थ :—रुचक पर्वत के अभ्यन्तर कूटों में से पूर्व और दक्षिण में क्रमशः विमल और नित्यालोक तथा पश्चिम और उत्तर में क्रमशः स्वयम्प्रभ और नित्योद्योत नाम के कूट हैं। इनमें क्रम से कनका, शतह्वदा, कनकचित्रा और सौदामिनी ये चार देवियाँ रहती हैं। ये तीर्थङ्कर के जन्मकाल

में सर्वदिशाओं को निर्मल करती हैं। इन कूटों के अभ्यन्तर की ओर चारों दिशाओं में क्रम से वैडूर्य, रुचक, मणिकूट और राज्योत्तम ये चार कूट हैं। इनमें क्रम से रुचका, रुचककीर्ति, रुचककान्ता और रुचकप्रभा ये चार देवियाँ रहती हैं। ये तीर्थङ्कर के जन्म समय जात कर्म करने में कुशल होती हैं ॥ ९५७-९५८-९५९ ॥

विशेषार्थः—रुचक पर्वत के अभ्यन्तर कूटों में पूर्वदिशा में विमल कूट है जिसमें कनका देवी वास करती है। दक्षिण के नित्यालोक कूट में शतह्रदा, पश्चिम के स्वयम्प्रभ कूट में कनकचित्रा और उत्तर के नित्योद्योत कूट में सौदामिनी देवी रहती है। ये चारों देवियाँ तीर्थङ्कर के जन्मकाल में सम्पूर्ण दिशाओं को प्रसन्न रखती हैं। इन कूटों के अभ्यन्तर की ओर पूर्व के वैडूर्य कूट में रुचका, दक्षिण दिशा के रुचक कूट में रुचककीर्ति, पश्चिम दिशा के मणिकूट में रुचककान्ता और उत्तर दिशा के राज्योत्तम कूट में रुचकप्रभा ये चार देवियाँ रहती हैं। तीर्थङ्कर के जन्म समय ये जात कर्म करती हैं। ये सभी जात कर्म में अतिनिपुण होती हैं। यथा :—

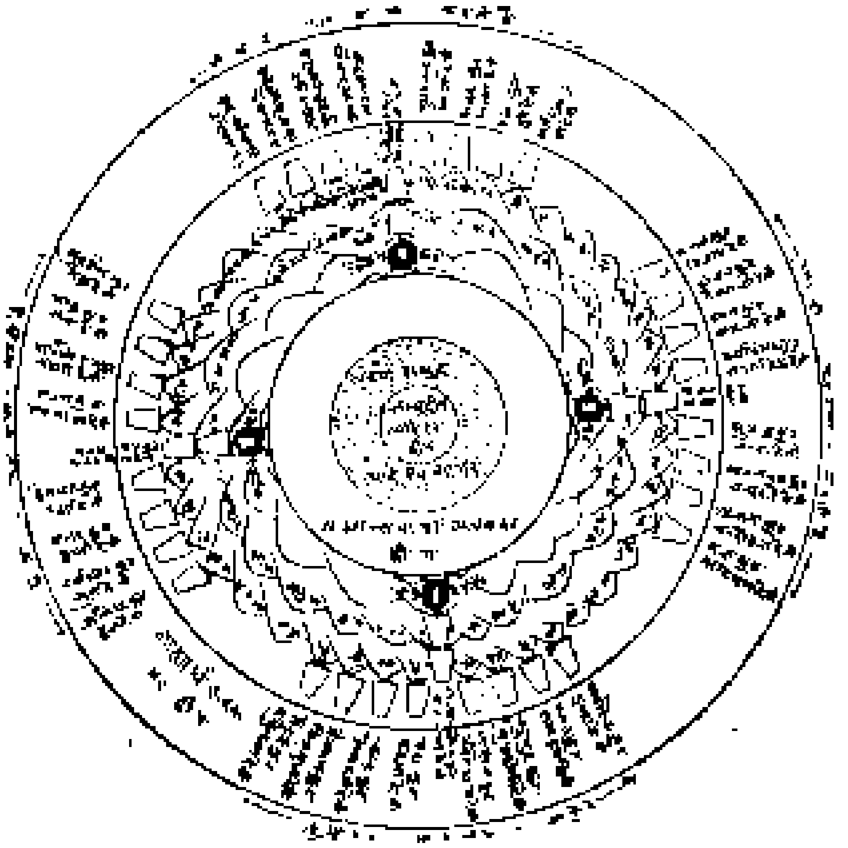

अथ कुण्डलरुचकरुचककूटानां व्यासादिकमाह—

सव्वेसिं कूडाणं जोयणपंचसय भूमिवित्थारो।
पणसयमुदओ तद्दलमुहवासो कुण्डले रुजगे ॥ ९६० ॥

सर्वेषां कूटानां योजनपञ्चशतं भूमिविस्तारः।
पञ्चशतमुदयः तद्दलमुखव्यासः कुण्डले रुचके ॥ ९६० ॥

सव्वे । कुण्डले रुचके च सर्वेषां कूटानां योजनपञ्चशतं ५०० भूमिविस्तारः उदयश्च पञ्चशत-योजनानि ५०० तेषां मुखव्यासस्तु पञ्चशतार्धयोजनानि २५० ॥ ९६० ॥

आगे कुण्डल और रुचक पर्वतस्थ कूटों का व्यासादिक कहते हैं :—

गाथार्थ :—कुण्डल गिरि और रुचक गिरि के ऊपर स्थित सम्पूर्ण कूटों का भूमि विस्तार पाँच सौ योजन, उदय पाँच सौ योजन और मुख विस्तार उदय का अर्ध प्रमाण अर्थात् २५० योजन है ॥ ९६० ॥

विशेषार्थ :—कुण्डलगिरि के ऊपर स्थित २० कूट और रुचक गिरि सम्बन्धी ४४ कूट इस प्रकार कुल ६४ ही कूटों का भूव्यास अर्थात् जमीन पर कूटों की चौड़ाई ५०० योजन मुखव्यास–ऊपर की चौड़ाई २५० योजन और ऊँचाई ५०० योजन प्रमाण है।

अथ द्वीपसमुद्राणामधीशान् गाथापञ्चकेनाह—

जंबूदीवे वाणो अणादरो सुट्ठिदो य लवणेवि ।
धादइखंडे सामी पभासपियदंसणा देवा ॥ ९६१ ॥
कालमहकाल पउमा पुंडरियो माणुसुत्तरे सेले ।
चक्खुमसुचक्खुमा सिरिपहधर पुक्खरुवहिम्हि ॥९६२॥
वरुणो वरुणादिपहो मज्झो मज्झिमसुरो य पंडुरओ ।
पुप्फादिदंत विमला विमलप्पह सुप्पहा महप्पहओ ॥९६३॥
कणय कणयाह पुण्णा पुण्णप्पहा देवगंधमहागंधा ।
तो णंदी णंदिपहो भद्दसुभद्दा य अरुण अरुणपहा ॥९६४॥
ससुगंध सव्वगंधो अरुणसमुद्दम्हि इदि पहू दो दो ।
दीवसमुद्दे पढमो दक्खिणभागम्हि उत्तरे विदियो ॥९६५॥

जम्बूद्वीपे वानो अनादरः सुस्थितश्च लवणेऽपि ।
धातकीखण्डे स्वामिनौ प्रभासप्रियदर्शनौ देवौ ॥ ९६१ ॥
कालमहाकालौ पद्मः पुण्डरीकः मानुषोत्तरे शैले ।
चक्षुष्मसुचक्षुष्माणौ श्रीप्रभधरौ पुष्करोदधौ ॥ ९६२ ॥
वरुणो वरुणादिप्रभो मध्यः मध्यमसुरः च पाण्डुरः ।
पुष्पादिदन्तः विमलो विमलप्रभः सुप्रभः महाप्रभः ॥ ९६३ ॥
कनकः कनकाभः पुण्यः पुण्यप्रभो देवगन्धमहागन्धौ ।
ततो नन्दी नन्दिप्रभः भद्रसुभद्रौ च अरुणः अरुणप्रभः ॥९६४॥

ससुगन्धः सर्वगन्धः अरुणसमुद्रे इति प्रभू द्वौ द्वौ ।
द्वीपसमुद्रे प्रथमः दक्षिणभागे उत्तरे द्वितीयः ॥ ९६५ ॥

जंबू । जम्बूद्वीपे लवणसमुद्रे च स्वामिनौ व्यन्तरावनादरसुस्थिताख्यौ धातकीखण्डे स्वामिनौ प्रभासप्रियदर्शनौ देवौ ॥ ९६१ ॥

काल । कालोदकसमुद्रे नाथौ कालमहाकालौ पुष्करार्धे मानुषोत्तरे चाधीशौ पद्मपुण्डरीकौ पुष्करद्वीपे द्वितीयार्धे प्रभू चक्षुष्मत्सुचक्षुष्मन्तौ पुष्करोदधौ नाथौ श्रीप्रभश्रीधरौ स्यातां ॥ ९६२ ॥

वरुणो । वारुणीद्वीपे नाथौ वरुणवरुणप्रभौ, वारुणीसमुद्रे नाथौ मध्यमध्यमदेवौ, क्षीरद्वीपे नाथौ पाण्डुरपुष्पदन्तौ, क्षीरसमुद्रे नाथौ विमलविमलप्रभौ घृतद्वीपे नाथौ सुप्रभमहाप्रभौ ॥ ९६३ ॥

कणय । घृतसमुद्रे प्रभू कनककनकप्रभौ, क्षौद्रद्वीपे प्रभू पुण्यपुण्यप्रभौ क्षौद्रसमुद्रे प्रभू देवगन्धमहागन्धौ । ततो नन्दीश्वरद्वीपे प्रभू नन्दीनन्दिप्रभौ नन्दीश्वरसमुद्रे प्रभू भद्रसुभद्रौ, अरुणद्वीपे प्रभू अरुणारुणप्रभौ ॥ ९६४ ॥

ससुगंध । अरुणसमुद्रे नामकौ ससुगन्धसर्वगन्धौ इति द्वीपे समुद्रे च द्वौ द्वौ प्रभू भवतः । तत्र दक्षिणभागे प्रथमोक्तः स्यात् उत्तरभागे द्वितीयोक्तः स्यात् ॥ ९६५ ॥

अब द्वीपसमुद्रों के स्वामियों के सम्बन्ध में पाँच गाथाएँ कहते हैं :—

गाथार्थ :—जम्बूद्वीप और लवणसमुद्र में अनादर और सुस्थितनामके व्यन्तर देव स्वामी हैं। धातकी खण्ड में प्रभास और प्रियदर्शन देव स्वामी हैं।

कालोदक समुद्र में काल और महाकाल तथा पुष्करार्ध एवं मानुषोत्तर में पद्म और पुण्डरीक, बाह्य अर्ध पुष्करार्ध द्वीप एवं पुष्कर समुद्र में क्रम से चक्षुष्मान और सुचक्षुष्मान तथा श्रीप्रभ और श्रीधर देव हैं। वारुणी द्वीप में वरुण और वरुणप्रभ, वारुणी समुद्र में मध्य और मध्यम, क्षीरद्वीप में पाण्डुर और पुष्पदन्त, क्षीर समुद्र में विमल और विमलप्रभ तथा घृत द्वीप में सुप्रभ और महाप्रभ स्वामी हैं। घृत समुद्र में कनक और कनकप्रभ, क्षौद्र द्वीप में पुण्य और पुण्यप्रभ, क्षौद्र समुद्र में देवगन्ध और महागन्ध, नन्दीश्वर द्वीप में नन्दि और नन्दिप्रभ, नन्दीश्वर समुद्र में भद्र और सुभद्र, अरुण द्वीप में अरुण और अरुणप्रभ, अरुण समुद्र में सुगन्ध और सर्वगन्ध नाम के देव स्वामी हैं। इसी प्रकार प्रत्येक द्वीप और समुद्र में दो दो व्यन्तर देव स्वामी हैं। इन सभी में जिनका नाम पहिले कहा है वे दक्षिण भाग में और जिनका नाम पीछे कहा है वे उत्तर भाग में स्थित हैं ॥ ९६१—९६५ ॥

विशेषार्थ :—जम्बू द्वीप के दक्षिण भाग में अनादर और उत्तर भाग में सुस्थित देव स्वामी हैं।

२	लवण समुद्र के	दक्षिण	भाग में	अनादर	और उत्तर	भाग में	सुस्थित	देव	स्वामी है।
३	धातकी खण्ड	"	"	प्रभास	"	"	प्रियदर्शन	"	" ।
४	कालोदक	"	"	काल	"	"	महाकाल	"	" ।
५	पुष्करार्धं एवं मानुषोत्तर	"	"	पद्म	"	"	पुण्डरीक	"	" ।
६	बाह्य पुष्करार्धं द्वीप	"	"	चक्षुष्मान्	"	"	सुचक्षुष्मान्	"	" ।
७	पुष्कर समुद्र	"	"	श्रीप्रभ	"	"	श्रीधर	"	" ।
८	वारुणी द्वीप	"	"	वरुण	"	"	वरुणप्रभ	"	" ।
९	वारुणी समुद्र	"	"	मध्य	"	"	मध्यम	"	" ।
१०	क्षीर द्वीप	"	"	पाण्डुर	"	"	पुष्पदन्त	"	" ।
११	क्षीर समुद्र	"	"	विमल	"	"	विमलप्रभ	"	" ।
१२	घृत द्वीप	"	"	सुप्रभ	"	"	महाप्रभ	"	" ।
१३	घृत समुद्र	"	"	कनक	"	"	कनकप्रभ	"	" ।
१४	क्षौद्र द्वीप	"	"	पुण्य	"	"	पुण्यप्रभ	"	" ।
१५	क्षौद्र समुद्र	"	"	देवगन्ध	"	"	महागन्ध	"	" ।
१६	नन्दीश्वर द्वीप	"	"	नन्दि	"	"	नन्दिप्रभ	"	" ।
१७	नन्दीश्वर समुद्र	"	"	भद्र	"	"	सुभद्र	"	" ।
१८	अरुण द्वीप	"	"	अरुण	"	"	अरुणप्रभ	"	" ।
१९	अरुण समुद्र	"	"	सुगन्ध	"	"	सर्वगन्ध	"	" ।

इसी प्रकार आगे भी प्रत्येक द्वीप समुद्रों में दो दो व्यन्तर देव स्वामी हैं।

इदानीं नन्दीश्वरद्वीपं सविशेषं प्रतिपादयन् तावत्तस्य वलयव्यासमाह—

आदीदो खलु अट्ठमणंदीसरदीववलयविक्खंभो ।
सयसमहियतेवट्ठीकोडी चुलसीदिलक्खा ये ॥ ९६६ ॥

आदितः खलु अष्टमनन्दीश्वरद्वीपवलयविष्कम्भः ।
शतसमधिकत्रिषष्टिकोटिः चतुरशीतिलक्षश्च ॥ ९६६ ॥

आदीदो । जम्बूद्वीपादारभ्याष्टमनन्दीश्वरद्वीपवलयविष्कम्भः शतसमधिकत्रिषष्टिकोटिचतुरशीतिलक्षयोजनप्रमितः खलु १६३८४०००००० एतावत्त्वं नन्दीश्वरद्वीपसहितप्राक्तनद्वीपसमुद्राणां संख्या १५ कृत्वा रूऊणाहियपदमित्यादिना कृते सति भवति ॥ ९६६ ॥

अब नन्दीश्वर द्वीप का सविशेष वर्णन करते हुए सर्वप्रथम उसका वलय व्यास कहते हैं :—

गाथार्थ:—जम्बूद्वीप से प्रारम्भ कर आठवें नन्दीश्वर द्वीप पर्यन्त का वलय व्यास एक सौ त्रेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन प्रमाण है ।। ९६६ ।।

विशेषार्थ :—जम्बूद्वीप से प्रारम्भ कर नन्दीश्वर द्वीप का वलय व्यास एक सौ त्रेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन प्रमाण है। इतना प्रमाण कैसे होता है ? जम्बूद्वीप से नन्दीश्वर द्वीप पर्यन्त के समस्त द्वीप समुद्रों की संख्या १५ है। इसे "रूऊणाहिय पदमिद" गाथा ३०६ के नियमानुसार पद (गच्छ) स्वरूप करके पद में से एक कम करके (१५ — १)=अवशेष १४ का विरलन कर प्रत्येक के ऊपर दो का अङ्क देय स्वरूप देकर परस्पर में गुणा कर, लब्ध में से ० (शून्य) घटा देने पर तथा ४ शून्यों से सहित करने पर नन्दीश्वर द्वीप का वलय व्यास १६३८४०००० योजन प्रमाण है। यथा :—पद १५ — १ = १४ $\overset{2}{1}\ \overset{2}{1}\ \overset{2}{1}\ \overset{2}{1}\ \overset{2}{1}\ \overset{2}{1}\ \overset{2}{1}\ \overset{2}{1}\ \overset{2}{1}\ \overset{2}{1}\ \overset{2}{1}\ \overset{2}{1}\ \overset{2}{1}\ \overset{2}{1}$ = १६३८४ अंक प्राप्त हुए। इन्हें ५ शून्यों से सहित कर एक शून्य घटा देने पर (१६३८४००००० — ०)=१६३८४०००० योजन नन्दीश्वर द्वीप के वलय व्यास का प्रमाण प्राप्त होता है।

अथात्र दिक्चतुष्टयस्थितानां पर्वतानामाख्यां संख्यामवस्थानं च निरूपयति—

एक्कचउक्कट्ठंजणदहिमुहरइयरणगा पडिदिसम्हि ।
मज्झे चउदिसवावीमज्झे तब्बाहिरदुकोणे ।। ९६७ ।।

एकचतुष्काष्टाञ्जनदधिमुखरतिकरनगाः प्रतिदिशं ।
मध्ये चतुर्दिग्वापीमध्ये तद्बाह्यद्विकोणे ।। ९६७ ।।

एक्क । प्रतिदिशं मध्ये चतुर्दिक्स्थवापीमध्ये तद्वापीबाह्यद्विकोणे च यथासंख्यं एक चतुष्काष्ट-संख्याकाः अञ्जनदधिमुखरतिकराख्याः नगा नन्दीश्वरद्वीपे ज्ञातव्याः ।। ९६७ ।।

आगे इस द्वीप की चारों दिशाओं में स्थित पर्वतों के नाम, संख्या और अवस्थान का निरूपण करते हैं :—

गाथार्थ :—नन्दीश्वर द्वीप की प्रत्येक दिशा के मध्य में एक, चारों दिशा सम्बन्धी बावड़ियों के मध्य में चार और बावड़ियों के बाह्य दो दो कोनों में एक एक अर्थात् ८ क्रमशः अञ्जन, दधिमुख और रतिकर नाम के पर्वत हैं ।। ९६७ ।।

विशेषार्थ:—नन्दीश्वर द्वीप की प्रत्येक दिशा के मध्य भाग में अञ्जन नाम का एक एक पर्वत है। इस पर्वत की चारों दिशाओं में चार बावड़ियां हैं जिनके मध्य में दधिमुख नाम का एक एक अर्थात् ४ दधिमुख पर्वत हैं तथा इन बावड़ियों के दो दो बाह्य कोनों पर एक एक अर्थात् आठ रतिकर पर्वत हैं। इस प्रकार एक दिशा में (अञ्जन १, दधिमुख ४ और रतिकर ८)=१३ पर्वत और ४ बावड़ियां हैं अतः चारों दिशाओं में (अञ्जन ४, दधिमुख १६ और रतिकर ३२)=५२ पर्वत और ४ बावड़ियां हैं।

अथ तद्गिरीणां वर्णं परिमाणं च प्रतिपादयति—

अंजणदहिकणयणिहा चुलसीदिदहेक्कजोयणसहस्सा ।
वट्टा वासुदएणय सरिसा बावण्णसेलाओ ॥ ९६८ ॥

अञ्जनदधिकनकनिभाः चतुरशीतिदशैकयोजनसहस्राः ।
वृत्ताः व्यासोदयेन सदृशाः द्वापञ्चाशच्छैलाः ॥ ९६८ ॥

अंजण । अञ्जनाद्यस्त्रयः पर्वताः यथासंख्यं अञ्जनदधिकनकाभाः तेषां प्रमाणं चतुरशीतिसहस्र ८४००० दशसहस्रं १०००० कसहस्र १००० योजनानि । ते च वृत्ताः व्यासोदयेन सदृशाः सर्वे मिलित्वा द्वापञ्चाशच्छैला ५२ भवन्ति ॥ ९६८ ॥

अब उन पर्वतों के वर्ण और प्रमाण का प्रतिपादन करते हैं :—

गाथार्थ :— अञ्जन, दधिमुख और रतिकर पर्वत यथाक्रम अञ्जन, दधि और स्वर्ण सदृश वर्ण वाले हैं। ये क्रमशः चौरासी हजार, दस हजार और एक हजार योजन प्रमाण वाले हैं। इनका उदय (ऊँचाई) और व्यास सदृश है। आकार गोल है। इस प्रकार ये बावन पर्वत हैं ॥ ९६८ ॥

विशेषार्थ :— चार अञ्जन पर्वत अञ्जन-कज्जल सदृश, १६ दधिमुख पर्वत दधि सदृश (श्वेत) और ३२ रतिकर पर्वत तपाए हुए स्वर्ण सदृश वर्ण वाले हैं। अञ्जन पर्वतों की ऊँचाई एवं भूमुख व्यास ८४००० योजन, दधिमुखों का १०००० योजन और रतिकरों का एक-१००० योजन है। अर्थात् इन पर्वतों की जितनी ऊँचाई है, उतनी ही नीचे ऊपर चौड़ाई है। ये खड़े हुए ढोल के सदृश गोल आकार वाले हैं। इनकी सम्पूर्ण संख्या ५२ है।

इदानीं तद्वापीनां नामानि गाथाद्वयेनाह—

णंदा णंदवदी पुण णंदुत्तर णंदिसेण अरविरया ।
गयवीदसोगविजया वइजयंती जयंती य ॥ ९६९ ॥
अवराजिदा य रम्मा रमणीया सुप्पभा य पुव्वादी ।
रयणतहा लक्खपमा चरिमा पुण सव्वदोभद्दा ॥ ९७० ॥

नन्दा नन्दवती पुनः नन्दोत्तरा नन्दिषेणा अरविरजे ।
गतवीतशोकाविजयाः वैजयन्ती जयन्ती च ॥ ९६९ ॥
अपराजिता च रम्या रमणीया सुप्रभा च पूर्वादितः ।
रत्नतट्यः लक्षप्रमाः चरमा पुनः सर्वतोभद्रा ॥ ९७० ॥

णंदा । नन्दा नन्दवती पुनर्नन्दोत्तरा नन्दिषेणा अरजा विरजा गतशोका वीतशोका विजया वैजयन्ती जयन्ती च ॥ ९६९ ॥

प्रवरा। अपराजिता च रम्या रमणीया सुप्रभा च चरमा पुनः सर्वतोभद्रा। एताः सर्वा रत्नमतट्यो लक्षयोजनप्रमिताः पूर्वदिग्भागादितो ज्ञातव्याः ॥ ९७० ॥

अब उन वापियों के नाम दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—पूर्वादि चारों दिशाओं में क्रमशः नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा, नन्दिषेणा, अरजा, विरजा, गतशोका, वीतशोका, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता, रम्या, रमणीया, सुप्रभा और सर्वतोभद्रा रत्नमय तट से युक्त ये सर्व वापिकाएँ एक लाख योजन प्रमाण वाली हैं ॥ ९६९-९७० ॥

विशेषार्थ :—नन्दीश्वर द्वीप की पूर्व दिशा में नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा और नन्दिषेणा ये चार वापिकाएँ हैं। दक्षिण दिशा में अरजा, विरजा, गतशोका और वीतशोका; पश्चिम दिशा में विजया, वैजयन्ती, जयन्ती और अपराजिता तथा उत्तर दिशा में रम्या, रमणीया, सुप्रभा और सर्वतोभद्रा ये चार वापिकाएँ हैं। इन सब वापिकाओं के तट रत्नमय हैं तथा ये १००००० योजन प्रमाण वाली हैं।

अनन्तरं तासां वापीनां स्वरूपमाह—

सव्वे समचउरस्सा टंकुक्किण्णा सहस्समोगाढा।
वेदियचउवण्णजुदा जलयरउम्मुक्कजलपुण्णा ॥ ९७१ ॥

सर्वाः समचतुरस्राः टङ्कोत्कीर्णाः सहस्रमवगाधाः।
वेदिकाचतुर्वनसंयुता जलचरोन्मुक्तजलपूर्णाः ॥ ९७१ ॥

सव्वे। ताः सर्वाः समचतुरस्राष्टङ्कोत्कीर्णाः सहस्रयोजनावगाधाः वेदिकाभिश्चतुर्वनैश्च युक्ताः जलचरोन्मुक्तजलपूर्णाः स्युः ॥ ९७१ ॥

अब उन वापिकाओं का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—वे सर्व वापिकाएँ समचतुरस्र, टङ्कोत्कीर्ण, एक हजार योजन अवगाह युक्त, चार चार वनों से सहित, जलचर जीवों से रहित और जल से परिपूर्ण हैं ॥ ९७१ ॥

विशेषार्थ :—वे सर्व वापिकाएँ एक लाख योजन लम्बी और एक लाख योजन चौड़ी अर्थात् समचतुरस्र आकार वाली हैं। टङ्कोत्कीर्ण अर्थात् ऊपर नीचे एक सदृश हैं। उनकी गहराई १००० योजन प्रमाण है ये वेदिकाएँ चारों दिशाओं में एक एक वन अर्थात् प्रत्येक चार चार वनों से संयुक्त हैं। ये जलचर जीवों से रहित और जल से परिपूर्ण हैं।

अथ तद्वापीनां वनस्वरूपमाह—

वावीणं पुव्वादिसु असोयसत्तच्छदं च चंपवणं।
चूदवणं च कमेण य सगवावीदीहदलवासा ॥ ९७२ ॥

वापीनां पूर्वदिषु अशोकसप्तच्छदं च चम्पवनं ।
चूतवनं च क्रमेण च स्वकवापीदीर्घदलव्यासानि ॥९७२॥

वावीणं । तद्वापीनां पूर्वादिदिक्षु यथाक्रमेण स्वकीयस्वकीयवापीदीर्घाणि १ ल० तद्दलव्यासानि ५०००० अशोकसप्तच्छदचम्पकचूतवनानि भवन्ति ॥ ९७२ ॥

अब उन वापिकाओं के वनों का स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—उन वापिकाओं की पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः अपनी वापी की दीर्घता के सदृश लम्बे (१००००० यो०) और लम्बाई के अर्धप्रमाण चौड़े (५०००० यो०) अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम के वन हैं ॥ ९७२ ॥

इदानीमञ्जनादिगिरीन्द्रेषु प्रत्येकमेकैकं चैत्यालयं प्रतिपादयन् तेषु चतुर्णिकायामरैः कालविशेषाश्रयेण क्रियमाणपूजाविशेषं प्रतिपादयितुं गाथापञ्चकेनाह—

तब्बावण्णणगेसुवि बावण्णजिणालया हवंति तहिं ।
सोहम्मादी बारसकप्पिंदा ससुरभवणतिया ॥ ९७३ ॥
गयहयकेसरिवसहे सारसपिकहंसकोकगरुडे य ।
मयरसिहिकमलपुप्फयविमाणपहुदिं समारूढा ॥ ९७४ ॥
दिव्वफलपुप्फहत्था सत्थाभरणा सचामराणीया ।
बहुधयतूरारावा गत्ता कुव्वंति कल्लाणं ॥९७५ ॥
पडिवरिसं आसाढे तह कत्तियफग्गुणे य अट्ठमिदो ।
पुण्णदिणोत्ति यभिक्खं दो दो पहरं तु ससुरेहिं ॥९७६॥
सोहम्मो ईसाणो चमरो वइरोचणो पदक्खिणदो ।
पुव्ववरदक्खिणुत्तरदिसासु कुव्वंति कल्लाणं ॥ ९७७ ॥

तद्द्वापञ्चाशन्नगेष्वपि द्वापञ्चाशज्जिनालया भवन्ति तेषु ।
सौधर्मादयो द्वादशकल्पेन्द्राः ससुरभवनत्रिकाः ॥ ९७३ ॥
गजहयकेसरिवृषभान् सारसपिकहंसकोकगरुडान् च ।
मकरशिखिकमलपुष्पकविमानप्रभृति समारूढाः ॥ ९७४ ॥
दिव्यफलपुष्पहस्ताः शस्ताभरणाः सचामरानीकाः ।
बहुध्वजतूर्यारावाः गत्वा कुर्वन्ति कल्याणं ॥ ९७५ ॥
प्रतिवर्षमाषाढे तथा कार्तिके फाल्गुने च अष्टमीतः ।
पूर्णदिनान्तं चाभीक्ष्णं द्वौ द्वौ प्रहरौ तु स्वसुरैः ॥ ९७६ ॥

सौधर्म ईशानः चमरो वैरोचनः प्रदक्षिणतः ।
पूर्वापरदक्षिणोत्तरदिशासु कुर्वन्ति कल्याणं ॥ ९७७ ॥

तव्वाव । तेषु द्वापञ्चाश ५२ नगेष्वपि द्वापञ्चाश ५२ जिनालया भवन्ति । तेषु इतरसुरैः भवनत्रयदेवैश्च सहिताः सौधर्मादयो द्वादशकल्पेन्द्राः ॥ ९७३ ॥

गय । गजहयकेसरिवृषभान सारसपिकहंसकोकगरुडांश्च मकरशिखिकमलपुष्पकविमानप्रभृति समारूढाः ॥ ९७४ ॥

दिव्व । दिव्यफलपुष्पहस्ताः शस्ताभरणाः सचामरानीकाः बहुध्वजतूर्यारावाः नन्दीश्वरं गत्वा ऐन्द्रध्वजादिकल्याणं कुर्वन्ति ॥ ९७५ ॥

पडि । प्रतिवर्षमाषाढमासे तथा कार्तिकमासे फाल्गुनमासे चाष्टमीत आरभ्य पूर्णिमादिनपर्यन्तमभीक्ष्णं द्वौ द्वौ प्रहरौ स्वस्वसुरैः सह ॥ ९७६ ॥

सोह । सौधर्म ईशानश्चमरो वैरोचनश्च प्रदक्षिणतः पूर्वापरदक्षिणोत्तरदिशासु कल्याणं पूजां कुर्वन्ति ॥ ९७७ ॥

अब अञ्जनादि प्रत्येक पर्वत के ऊपर एक एक चैत्यालय का प्रतिपादन करते हुए आचार्य उन चैत्यालयों में चतुर्निकाय देवों द्वारा काल विशेष में की हुई पूजा विशेष को पाँच गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—उन बावन पर्वतों पर बावन ही जिनालय हैं। उनमें अन्य कल्पवासी देवों और भवनत्रिक देवों सहित सौधर्मादि बारह कल्पों के इन्द्र, हाथी, घोड़ा, सिंह, बैल, सारस, कोयल, हंस, चकवा, गरुड़, मगर, मोर, कमल और पुष्पक विमान आदि पर समारूढ़ हो (अपने परिवार देवों सहित) हाथों में दिव्य फल और दिव्य पुष्प धारण कर प्रशस्त आभरणों, चामरों, सेनाओं, ध्वजाओं एवं वादित्रों के शब्दों से संयुक्त होते हुए, नन्दीश्वर द्वीप जाकर प्रत्येक वर्ष को आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास की अष्टमी से प्रारम्भ कर पूर्णिमा पर्यन्त निरन्तर दो दो पहर तक कल्याण अर्थात् ऐन्द्रध्वज आदि पूजन करते हैं ॥ ९७३–९७६ ॥

किस प्रकार करते हैं ? :—

गाथार्थ :—सौधर्मेन्द्र, ईशानेन्द्र, चमर और वैरोचन ये प्रदक्षिणा रूप से पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओं में पूजा करते हैं ॥ ९७७ ॥

विशेषार्थ :—नन्दीश्वर द्वीप के (४ + १६ + ३२) = ५२ पर्वतों पर ५२ ही जिनमन्दिर हैं। उनमें अन्य देवों और भवनत्रिक के साथ सौधर्मादि कल्पों के बारह इन्द्र, हाथी, घोड़ा, सिंह, बैल, सारस, कोयल, हंस, चकवा, गरुड़, मगर, मोर, कमल और पुष्पक विमान आदि पर आरूढ़ हो, हाथों में दिव्य फल एवं पुष्प धारण कर प्रशस्त आभरणों, चामरों, सेनाओं, ध्वजाओं एवं वादित्रों के शब्दों

से सहित होते हुए नन्दीश्वर द्वीप जाकर प्रत्येक वर्ष की आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास की अष्टमी से प्रारम्भ कर पूर्णिमा पर्यन्त निरन्तर दो दो पहर तक पूजा करते हैं।

प्रथम युगल के सौधर्मेशान एवं असुर कुमारों के चमर और वैरोचन ये चारों इन्द्र प्रदक्षिणा रूप पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशाओं में पूजा करते हैं। अर्थात् पूर्व दिशा में पूजन करने वाले देव जब दक्षिण में आते हैं, तब दक्षिण दिशा वाले देव पश्चिम में और पश्चिम वाले उत्तर में तथा उत्तर दिशा वाले पूर्व में आकर ऐन्द्रध्वज आदि महापूजा करते हैं। उपर्युक्त ५२ चैत्यालयों का चित्रण निम्न प्रकार है :—

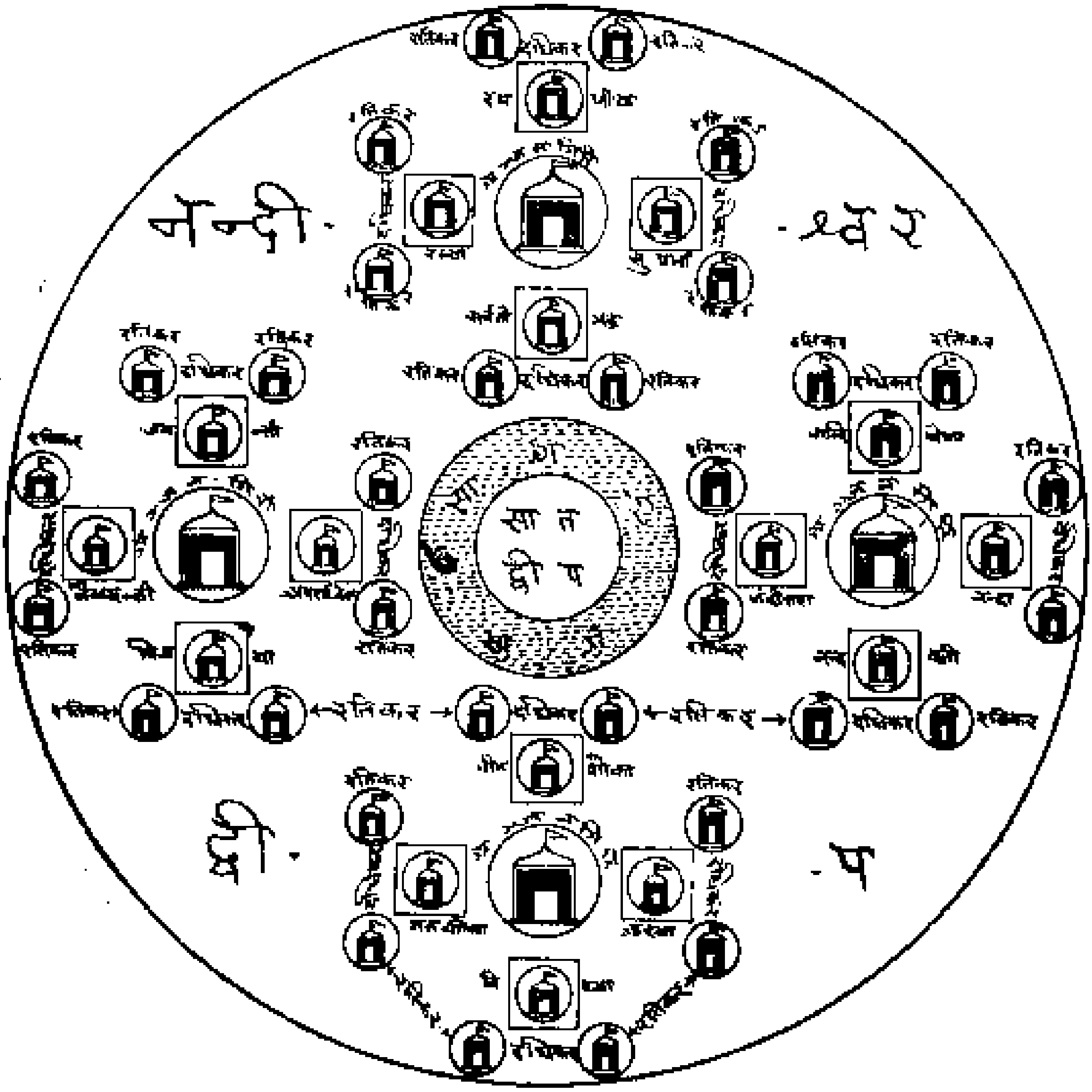

इदानीं त्रिलोकस्थिताकृत्रिमचैत्यालयानां सामान्येन व्यासादिकमाह—

आयामदलं वासं उभयदलं जिणघराणमुच्चत्तं ।
दारुदयदलं वासं अणिद्दाराणि तस्सद्धं ॥ ९७८ ॥

आयामदलं व्यासं उभयदलं जिनगृहाणामुच्चत्वं ।
द्वारोदयदलं व्यासः अणुद्वाराणि तस्यार्धं ॥ ९७८ ॥

आयाम । उत्कृष्टादिचैत्यालयानामायामा १०० । ५० । २५ एषां तेषां व्यासः ५० । २५ । $\frac{25}{2}$ आयामव्यासयोरुभयो उ० १५० म० ७५ ज० $\frac{75}{2}$ दलं जिनगृहाणामुच्चत्वं ७५ । $\frac{75}{2}$ । $\frac{75}{4}$ तेषां द्वारोदयः १६ । ८ । ४ दलं द्वार व्यासः ८ । ४ । २ क्षुल्लकद्वाराणि बृहद्द्वारार्धोदयव्यासानि ॥ ९७८ ॥

अब त्रैलोक्यस्थित अकृत्रिम चैत्यालयों का सामान्य से व्यासादिक कहते हैं :—

गाथार्थ :—उत्कृष्ट आदि चैत्यालयों के आयाम के अर्ध भाग प्रमाण उनका व्यास है तथा आयाम और व्यास के योग का अर्ध भाग प्रमाण उन जिनालयों का उदय (ऊँचाई) है। द्वारों की ऊँचाई के अर्धभाग प्रमाण द्वारों का व्यास (चौड़ाई) है तथा बड़े द्वारों के व्यासादि से छोटे द्वारों का व्यासादिक अर्ध अर्ध प्रमाण है ॥ ९७८ ॥

विशेषार्थ :—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य जिनालयों का आयाम क्रम से १०० योजन, ५० योजन और २५ योजन प्रमाण है। इन्हीं जिनालयों का व्यास (चौड़ाई) आयाम के अर्ध भाग प्रमाण अर्थात् ५० योजन, २५ योजन और १२½ योजन प्रमाण है तथा इनकी ऊँचाई, लम्बाई और चौड़ाई के अर्ध भाग प्रमाण अर्थात् (१००+५०)=१५०÷२=७५ योजन, (५०+२५)=७५÷२=३७½ योजन और (२५+१२½)=$\frac{75}{2}$÷२=१८¾ योजन प्रमाण है। उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य जिनालयों के द्वारों की ऊँचाई क्रम से १६ योजन, ८ योजन और ४ योजन प्रमाण है तथा इन्हीं द्वारों की चौड़ाई, ऊँचाई के अर्धभाग प्रमाण अर्थात् ८ योजन, ४ योजन और २ योजन प्रमाण है। छोटे द्वारों का उदय एवं व्यास बड़े द्वारों के उदय एवं व्यास से अर्ध अर्ध प्रमाण है। अर्थात् उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य जिनालयों में जो छोटे छोटे दरवाजे हैं उनकी ऊँचाई क्रम से ८ योजन, ४ योजन और २ योजन है तथा उनका व्यास (चौड़ाई) ४ योजन, २ योजन और एक योजन प्रमाण है।

उक्तार्थमेव विशेषतो गाथाद्वयेनाह—

वरमज्झिमअवराणं दलक्कमं भद्दसालणंदणगा ।
णंदीसरगविमाणगजिणालया होंति जेट्ठा हु ॥ ९७९ ॥

सोमणसरुजगकुंडलवक्खारिसुयारमाणुसुत्तरगा ।
कुलगिरिगा वि य मज्झिम जिणालया पांडुगा अवरा ॥९८०॥

वरमध्यमावराणां दलक्रमं भद्रशालनन्दनकाः ।
नन्दीश्वरकविमानगजिनालया भवन्ति ज्येष्ठाः हि ॥९७९ ॥

सौमनसरुचककुण्डलवक्षारेष्वाकारमानुषोत्तरगाः ।
कुलगिरिगा अपि च मध्यमा जिनालया पाण्डुगा अवराः ॥९८०॥

वर । उत्कृष्टमध्यमजघन्यचैत्यालयानां व्यासादिकमर्धार्धक्रमं जानीहि । भद्रशालनन्दन-नन्दीश्वरविमानगतजिनालया ज्येष्ठाः खलु भवन्ति ॥ ९७९ ॥

सोमण । सौमनसरुचककुण्डलवक्षारेष्वाकारमानुषोत्तरगाः कुलगिरिगता अपि च जिनालयाः मध्यमाः, पाण्डुकवनगता जघन्याः ॥ ९८० ॥

इस कहे हुए अर्थ का ही विशेष-दो गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य जिनालयों का व्यासादिक क्रम से आधा आधा है। भद्रशाल वन, नन्दन वन, नन्दीश्वर द्वीप और वैमानिक देवों के विमानों में जो जिनालय हैं, वे उत्कृष्ट व्यासादिक प्रमाण वाले हैं तथा सौमनस् वन, रुचकगिरि, कुण्डलगिरि, वक्षार, इष्वाकार, मानुषोत्तर पर्वत और कुलाचलों पर जो जिनालय हैं, उनका व्यासादिक मध्यम और पाण्डुक वन स्थित जो जिनालय हैं, उनका व्यासादिक जघन्य प्रमाण वाला है ॥ ९७९-९८० ॥

विशेषार्थ :—उत्कृष्ट जिनालयों के व्यासादिक से मध्यम जिनालयों का व्यासादिक अर्धभाग प्रमाण है और मध्यम से जघन्य जिनालयों का व्यासादिक अर्धभाग प्रमाण है। भद्रशाल वन, नन्दन वन, नन्दीश्वर द्वीप और देवों के विमानगत जो जिनालय हैं, वे उत्कृष्ट प्रमाण वाले हैं। सौमनस् वन, रुचक गिरि, कुण्डलगिरि, वक्षार, इष्वाकार, मानुषोत्तर पर्वत और कुलाचलों पर जो जिनालय हैं, वे मध्यम तथा पाण्डुक वनस्थ जिनालय जघन्य प्रमाण वाले हैं।

तदनन्तरं ज्येष्ठजिनालयानामायामागाढद्वारोत्सेधानाह:—

जोयणसय आयामं दलगाढं सोलसं तु दारुदयं ।
जेट्ठाणं गिहपासे आणिदाराणि दो दो दु ॥ ९८१ ॥

योजनशतमायामः दलावगाढः षोडश तु द्वारोदयः ।
ज्येष्ठानां गृहपार्श्वे अणुद्वारे द्वे द्वे तु ॥ ९८१ ॥

जोयण । ज्येष्ठजिनालयानामायामो योजनशतं अर्धयोजनावगाढः षोडशयोजनानि तद्द्वारोदयः तज्जिनगृहपार्श्वे द्वे द्वे क्षुल्लकद्वारे भवतः ॥ ९८१ ॥

इसके बाद उत्कृष्ट जिनालयों का आयाम, गाध (नींव) और द्वारों की ऊँचाई कहते हैं :—

गाथार्थ :— उत्कृष्ट जिनालयों का आयाम सौ योजन प्रमाण और गाध अर्ध योजन प्रमाण है।

इनके द्वारों की ऊँचाई सोलह योजन प्रमाण है। उत्कृष्ट द्वारों के दोनों पार्श्व भागों में दो दो छोटे द्वार हैं ॥ ९८१ ॥

विशेषार्थ :—उत्कृष्ट जिनालयों की लम्बाई १०० योजन और अवगाह अर्ध योजन प्रमाण है। इन जिनालयों के उत्कृष्ट द्वारों की ऊँचाई १६ योजन प्रमाण है। उत्कृष्ट द्वारों के दोनों पार्श्व भागों में दो दो छोटे दरवाजे हैं।

उत्कृष्टादिविशेषणविरहितानां वसतीनामायामः कियानित्युक्ते आह—

वेयड्ढजंबुसामलिजिणभवणाणं तु कोस आयामं ।
सेसाणं सगजोग्गं आयामं होदि जिणदिट्ठं ॥ ९८२ ॥

विजयार्धजम्बूशाल्मलिजिनभवनानां तु कोश आयामः ।
शेषाणां स्वकयोग्यः आयामो भवति जिनदृष्टः ॥ ९८२ ॥

वेयड्ढ । विजयार्धगिरौ जम्बूवृक्षे शाल्मलीवृक्षे च जिनभवनानामायामः एककोशः शेषाणां भवनादिजिनालयानां स्वयोग्यायामो जिनदृष्टः ॥ ९८२ ॥

उत्कृष्टादि विशेषण से रहित जिनालयों का आयाम कितना है? ऐसा पूछने पर कहते हैं:—

गाथार्थ:—विजयार्ध पर्वत, जम्बू और शाल्मली वृक्षों पर स्थित जिनालयों का आयाम एक कोस प्रमाण है तथा अवशेष जिनालयों (भवनवासियों के भवनों एवं व्यन्तरदेवों के आवासों में स्थित) का अपने अपने योग्य आयामादिक का प्रमाण जिनेन्द्र देव के द्वारा देखा हुआ है अर्थात् अनेक प्रकार का है अतः यहाँ कहा नहीं जा सकता ॥ ९८२ ॥

उक्तानां जिनभवनानां परिकरं गाथासप्तकेनाह—

चउगोउरमणिसालत्ति वीहिं पडि माणथंभ णवथूहा ।
वणधयचेदियभूमी जिणभवणाणं च सव्वेसिं ॥ ९८३ ॥

चतुर्गोपुरमणिशालत्रयं वीथीं प्रति मानस्तम्भनवस्तूपाः ।
वनध्वजाचैत्यभूमयः जिनभवनानां च सर्वेषां ॥ ९८३ ॥

चउ । सर्वेषां जिनभवनानां चतुर्गोपुरयुक्तमणिमयशालत्रयं प्रतिवीथ्येकैकमानस्तम्भाः नव नव स्तूपाश्च भवन्ति । तच्छालत्रयान्तराले बाह्यादारभ्य क्रमेण वनध्वजचैत्यभूमयो भवन्ति ॥९८३॥

ऊपर कहे हुए जिनालयों का परिवार सात गाथाओं द्वारा कहते हैं:—

गाथार्थ :—समस्त जिन भवनों के चार गोपुर द्वारों से संयुक्त मणिमय तीन कोट हैं। प्रत्येक वीथी में एक एक मानस्तम्भ और नव नव स्तूप हैं। उन कोटों के अन्तरालों में क्रम से वन, ध्वजा और चैत्यभूमि है ॥ ९८३ ॥

विशेषार्थ :—समस्त जिन भवनों के चारों ओर चार गोपुर द्वारों से संयुक्त मणिमय तीन कोट हैं। प्रत्येक वीथी में एक एक मानस्तम्भ और नव नव स्तूप हैं। बाहर से प्रारम्भ कर प्रथम और द्वितीय कोट के अन्तराल में वन हैं। द्वितीय और तृतीय कोट के अन्तराल में ध्वजाएँ तथा तृतीय कोट के बीच चैत्यभूमि है।

जिणभवणे अट्ठसया गब्भगिहा रयणथंभवं तत्थ।
देवच्छंदो हेमो दुगअडचउवासदीहुदओ ॥ ९८४ ॥
जिनभवनेषु अष्टशतानि गर्भगृहाणि रत्नस्तम्भवान् तत्र।
देवच्छंदो हैमः द्विकाष्टचतुर्व्यासदीर्घोदयः ॥ ९८४ ॥

जिण। तेषु जिनभवनेष्वष्टोत्तरशतप्रमितानि गर्भगृहाणि सन्ति। तत्र जिनभवनमध्ये रत्नस्तम्भवान् हेममयद्विकाष्टचतुर्योजनव्यासदीर्घोदयो देवच्छन्दोऽस्ति ॥ ९८४ ॥

गाथार्थ :—उन समस्त जिन भवनों में प्रत्येक में एक सौ आठ गर्भगृह हैं तथा जिनभवनों के मध्य में रत्नों के स्तम्भों से युक्त स्वर्णमय एक एक मण्डप है जिसकी लम्बाई ८ योजन, चौड़ाई दो योजन और ऊँचाई चार योजन प्रमाण है।

सिंहासणादिसहिया विणीलकुंतल सुवज्जमयदंता।
विद्दुमअहरा किसलयसोहायरहत्थपायतला ॥ ९८५ ॥
दसतालमाणलक्खणभरिया पेक्खंत इव वदंता वा।
पुरुजिणतुंगा पडिमा रयणमया अट्ठअहियसया ॥९८६॥
सिंहासनादिसहिता विनीलकुन्तलाः सुवज्रमयदन्ताः।
विद्रुमाधराः किसलयशोभाकरहस्तपादतलाः ॥ ९८५ ॥
दशतालमानलक्षणभरिताः प्रेक्ष्यमाणा इव वदंत इव।
पुरुजिनतुङ्गाः प्रतिमाः रत्नमय्यः अष्टाधिकशताः ॥ ९८६ ॥

सिंहासणादि। सिंहासनादिसहिता विनीलकुन्तलाः सुवज्रमयदन्ताः विद्रुमाधराः किसलयशोभाकरहस्तपादतलाः ॥ ९८५ ॥

दस। दशतालमानलक्षणभरिताः प्रेक्षमाणा इव वदंत इव पुरुजिनतुङ्गाः ५०० रत्नमय्यः अष्टाधिकशतप्रमिताः जिनप्रतिमास्तेषु गर्भगृहेष्वेकैकाः सन्ति ॥ ९८६ ॥

गाथार्थ :—उन गर्भगृहों के मध्य में सिंहासनादि से सहित तथा विशेष नीले केश, सुन्दर वज्रमय दाँत, मूँगा सदृश ओंठ तथा नवीन कोंपल की शोभा को धारण करने वाले हैं हाथ और पैर के तलभाग जिनके दश ताल प्रमाण लक्षणों से भरी हुईं, देख रही हों मानों, बोल ही रहीं हों मानों और

आदिनाथ भगवान् के बराबर है (५०० धनुष) ऊँचाई जिनकी ऐसी रत्नमय एक सौ आठ प्रतिमाएँ हैं ।। ९८५, ९८६ ।।

विशेषार्थ :—उन १०८ गर्भगृहों के मध्य में सिंहासनादि से सहित रत्नमय १०८, १०८ प्रतिमाएँ हैं। जिनके विशेष नीले केश, सुन्दर वज्रमय दाँत, मूँगा सदृश ओंठ तथा नवीन कोंपल की शोभा को धारण करने वाले हाथ पैर के तल भाग हैं। जो दश ताल प्रमाण लक्षण से भरी हुई हैं। जो देखती हुई के सदृश, बोलती हुई के सदृश एवं आदिनाथ भगवान के सदृश ५०० धनुष ऊँची हैं।

ताः कथम्भूता :—

चमरकरणागजक्खगबत्तीसंमिहुणगेहि पुह जुत्ता ।
सरिसीए पंतीए गब्भगिहे सुट्ठु सोहंति ।। ९८७ ।।

सिरिदेवी सुददेवी सव्वाण्हसणक्कुमारजक्खाणं ।
रूवाणि य जिणपासे मंगलमट्ठविहमवि होदि ।।९८८।।

भिंगारकलसदप्पणवीयणधयचामरादवत्तमहा ।
सुवइट्ठ मंगलाणि य अट्ठहियसयाणि पत्तेयं ।। ९८९ ।।

चमरकरनागयक्षगद्वात्रिंशन्मिथुनैः पृथक् युक्ताः ।
सदृश्या पंक्त्या गर्भगृहे सुष्ठु शोभन्ते ।। ९८७ ।।
श्रीदेवी श्रुतदेवी सर्वाह्णसनत्कुमारयक्षाणाम् ।
रूपाणि च जिनपार्श्वे मङ्गलमष्टविधमपि भवति ।।९८८।।

भृङ्गारकलशदर्पणवीजनध्वजचामरातपत्रमथ ।
सुप्रतिष्ठं मङ्गलानि च अष्टाधिकशतानि प्रत्येकम् ।।९८९।।

चमर । चमरकरनागयक्षगतद्वात्रिंशन्मिथुनैः पृथक् पृथक् गर्भगृहे सदृश्या पंक्त्या युक्ताः सुष्ठु शोभन्ते ।। ९८७ ।।

सिरि । तज्जिनप्रतिमापार्श्वे श्रीदेवी श्रुतदेवी सर्वाह्णसनत्कुमारयक्षाणां रूपाणि अष्टविधानि मङ्गलानि च भवन्ति ।। ९८८ ।।

भिंगार । भृङ्गारकलशदर्पणवीजनध्वजचामरातपत्रसुप्रतिष्ठान्यष्टमङ्गलानि । तानि मङ्गलानि पुनः प्रत्येकमष्टाधिकशतप्रमितानि भवन्ति ।। ९८९ ।।

वे प्रतिमाएँ कैसी हैं ?

गाथार्थ :—वे जिन प्रतिमाएँ, चमरधारी नागकुमारों के बत्तीस युगलों और यक्षों के बत्तीस युगलों सहित, पृथक् पृथक् एक एक गर्भगृह में सदृश पंक्ति से भली प्रकार शोभायमान होती हैं। उन

जिन प्रतिमाओं के पार्श्व भाग में श्रीदेवी, श्रुतदेवी, सर्वाह्न यक्ष और सानत्कुमार यक्ष के रूप अर्थात् प्रतिमाएँ हैं तथा अष्टमङ्गल द्रव्य भी होते हैं। झारी, कलश, दर्पण, पङ्खा, ध्वजा, चामर, छत्र और ठोना ये आठ मंगल द्रव्य हैं। ये प्रत्येक मंगल द्रव्य १०८, १०८ प्रमाण होते हैं ॥ ९८७, ९८८, ९८९ ॥

विशेषार्थ:— वे जिन प्रतिमाएँ चौंसठ चमरों से वीज्यमान हैं। अर्थात् हाथों में हैं चमर जिनके ऐसे नागकुमार के ३२ युगलों और यक्षों के ३२ युगलों से सहित हैं। पृथक् पृथक् एक एक गर्भगृह में सदृश पंक्ति से भली प्रकार शोभायमान होती हैं। उन प्रतिमाओं के पार्श्वभाग में श्री (लक्ष्मी) देवी, श्रुत (सरस्वती) देवी, सर्वाह्न यक्ष और सानत्कुमार यक्ष की प्रतिमाएँ तथा अष्ट मंगल द्रव्य हैं। झारी, कलश, दर्पण, पङ्खा, ध्वजा, चामर, छत्र और ठोना ये आठ मङ्गल द्रव्य हैं। ये प्रत्येक मंगल द्रव्य एक सौ आठ, एक सौ आठ प्रमाण होते हैं।

इसी प्रकार तिलोयपण्णत्ती में भी कहा है :—

सिरिसुददेवीणतहासव्वाण्हसणक्कुमार जक्खाणं।
रूवाणि पत्तेक्कं पडि वररयणाइरइदाणि ॥ १८८१ ॥ (चतुर्थ अधिकार)

अर्थ :—प्रत्येक प्रतिमा के प्रति उत्तम रत्नादिकों से रचित श्रीदेवी, श्रुतदेवी तथा सर्वाह्न व सानत्कुमार यक्षों की मूर्तियाँ रहती हैं ॥ १८८१ ॥

अथ गर्भगृहाद्बाह्यस्वरूपं गाथाचतुष्टयेनाह—

मणिकणयपुप्फसोहियदेवच्छंदस्स पुव्वदो मज्झे ।
वसईए रूप्पकंचणघडासहस्साणि बत्तीसं ॥ ९९० ॥
महदारस्स दुपासे चउवीससहस्समत्थि धूवघडा ।
दारबहिं पासदुगे अट्ठसहस्साणि मणिमाला ॥ ९९१ ॥
तम्मज्झे हेममाला चउवीसं वदणमंडवे हेमा ।
कलसामाला सोलस सोलसहस्साणि धूवघडा ॥९९२॥
महुरसणसणणिणादा मोत्तियमणिणिम्मिया सकिंकिणिया ।
बहुविहघंटाजाला रइदा सोहंति तम्मज्झे ॥ ९९३ ॥

मणिकनकपुष्पशोभितदेवच्छन्दस्य पूर्वतो मध्ये।
वसत्यां रूप्यकाञ्चनघटसहस्राणि द्वात्रिंशत् ॥ ९९० ॥
महाद्वारस्य द्विपार्श्वे चतुर्विंशसहस्रं सन्ति धूपघटाः।
द्वारबहिः पार्श्वद्वये अष्टसहस्राणि मणिमालाः ॥ ९९१ ॥
तन्मध्ये हेममाला चतुर्विंशतिः वदनमण्डपे हेमाः।
कलशमालाः षोडश षोडशसहस्राणि धूपघटाः ॥ ९९२ ॥

मधुरझनझननिनादाः मौक्तिकमणिनिर्मिताः सकिङ्किणिकाः ।
बहुविधघण्टाजालाः रचिताः शोभन्ते तन्मध्ये ॥ ९९३ ॥

मणि । मणिकनकपुष्पशोभितदेवच्छन्दस्य पूर्वतो बसत्यां मध्ये रूप्यकाञ्चनमयानि द्वात्रिंशद्घट-सहस्राणि भवन्ति ॥ ९९० ॥

महा । महाद्वारस्य द्वयोः पार्श्वयोश्चतुर्विंशतिसहस्राणि २४००० धूपघटाः सन्ति । तद्द्वारबाह्ये पार्श्वद्वये अष्टसहस्राणि ८००० मणिमालाः सन्ति ॥ ९९१ ॥

तस्स । तासां मणिमालानां मध्ये चतुर्विंशतिसहस्राणि २४००० हेममालाः सन्ति । मुखमण्डपे पुनर्हेममयानि कलशानि तन्मयमालाश्च षोडशषोडशसहस्राणि सन्ति १६००० । १६००० तत्रैव पुनः षोडशसहस्राणि १६००० धूपघटाश्च सन्ति ॥ ९९२ ॥

महु । तन्मण्डपस्यैव मध्ये पुनर्मधुरझणझणनिनादाः मौक्तिकमणिनिर्मिताः सकिङ्किणिकाः बहुविधघण्टाजाला अनेकरचनायुक्ताः शोभन्ते ॥ ९९३ ॥

अब गर्भगृह के बाह्य का कथन चार गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—मणि और स्वर्ण के पुष्पों से सुशोभित देवच्छन्द के पूर्व में आगे जिनमन्दिर है, उसके मध्य में चाँदी और स्वर्ण के बत्तीस हजार घड़े हैं। महाद्वार के दोनों पार्श्व भागों में चौबीस हजार धूपघट हैं तथा उस महाद्वार के दोनों बाह्य पार्श्वभागों में आठ हजार मणिमय मालाएँ हैं। उन मणिमय मालाओं के मध्य में चौबीस हजार स्वर्णमय मालाएँ हैं तथा मुखमण्डप में स्वर्णमय सोलह हजार कलश, सोलह हजार मालाएँ और सोलह हजार धूपघट हैं तथा उसी मुख मण्डप का मध्य भाग मोती और मणियों से बनी हुई मधुर झण झण शब्द करने वाली छोटी छोटी किंकिणियों से युक्त नाना प्रकार के घन्टा जालों की रचना से शोभायमान है ॥ ९९०—९९३ ॥

विशेषार्थ :—मणि और स्वर्ण के पुष्पों से सुशोभित जो देवच्छन्द है, उसके पूर्व में आगे जिन मन्दिर का मध्य चाँदी और स्वर्ण के बत्तीस हजार घड़ों से युक्त है। मन्दिर के महाद्वार के दोनों पार्श्व भागों में २४००० धूपघट हैं तथा उसी महाद्वार के दोनों बाह्य पार्श्व भागों में ८००० मणिमय मालाएँ हैं और उन्हीं मणिमय मालाओं के मध्य में २४००० स्वर्णमय मालाएँ हैं तथा उस महाद्वार के आगे मुखमण्डप है जिसमें स्वर्णमय १६००० कलश, १६००० मालाएँ और १६००० धूप के घड़े हैं। उसी मुखमण्डप का मध्य भाग, मोती एवं मणियों से बनी हुई मधुर झन झन शब्द करने वाली छोटी छोटी किंकिणियों से संयुक्त नाना प्रकार के घंटाओं के समूह की रचना से शोभायमान है।

तद्वसतेः क्षुल्लकद्वारादिस्वरूपमाह—

वसईमज्झगदक्खिणउत्तरतणुदारगे तदद्धं तु ।
तप्पुह्वे मणिकंचणमालदुचउवीससहस्सं ॥ ९९४ ॥

वसतिमध्यगदक्षिणोत्तरतनुद्वारे तदर्धं तु ।
तत्पृष्ठे मणिकाञ्चनमाला अष्टचतुर्विंशकसहस्राणि ॥९९४॥

वसई । तद्वसतेर्दक्षिणोत्तरपार्श्वमध्यगतक्षुल्लकद्वारे मुख्यद्वारोक्तविधानं सर्वमर्धं भवति । तद्वसतेः पृष्ठभागे पुनर्मणिमालाः काञ्चनमालाश्चाष्टसहस्राणि ८००० चतुर्विंशतिसहस्राणि २४००० च स्युः ॥ ९९४ ॥

उस मन्दिर के छोटे द्वारों का स्वरूप कहते हैं—

गाथार्थः—जिन मन्दिर के दक्षिणोत्तर पार्श्व भागों में छोटे छोटे द्वार हैं। उनकी मालादिक का प्रमाण महाद्वार के प्रमाण से अर्धभाग प्रमाण है। उस मन्दिर के पृष्ठभाग में आठ हजार मणिमय मालाएँ और २४००० स्वर्णमय मालाएँ हैं ॥ ९९४ ॥

उक्तस्य मुखमण्डपादेर्व्यासादिकं ततः पुरस्तात् स्थितानां सर्वेषां स्वरूपं गाथापञ्चदशकेनाह—

जिणगिहवासायामो तप्पुरदो सोलसोच्छिओ होदि ।
मुहमंडओ तदग्गे पिक्खण चउरस्स मंडवओ ॥ ९९५ ॥

सदवित्थारो साहियसोलुदओ हेमपीढियं पुरदो ।
चउरस्सं जोयणदुगसमुच्छयं सीदिवित्थारं ॥ ९९६ ॥

तम्मज्झे चउरस्सो मणिमय चउविंदवास सोलुदओ ।
अद्धाणमंडओ तप्पुरदो तालुदयथूवमणिपीढं ॥ ९९७ ॥

तं पुण चउगोउरजुदबारंघुक्कवेदियाहि संजुत्तं ।
मज्झे मेहलतियजुद चउघणदीहुदयवास बहुरयणो ॥९९८॥

थूहो जिणबिंबचिदो णवण्हमेवं कमेण तप्पुरदो ।
वासायामसहस्सं बारमवेदिजुद हेममयपीढं ॥ ९९९ ॥

तहिं चउदीहिगिवासक्खंधा बहुमणिमया ससालतिया ।
बारहजोयण आयदचउमहसाहा अणेयतणुसाहा ॥१०००॥

बारहजोयणवित्थडसिहरा सिद्धत्थचेत्तणामतरू ।
णाणादलपुप्फफला पंचहियापउमपरिवारा ॥ १००१ ॥

जिनगृहव्यासायामः तत्पुरतः षोडशोच्छ्रितो भवति ।
मुखमण्डपः तदग्रे प्रेक्षणः चतुरस्रः मण्डपः ॥ ९९५ ॥
शतविस्तारः साधिकषोडशोदयः हेमपीठं पुरतः ।
चतुरस्रं योजनद्विकसमुच्छ्रयं अशीतिविस्तारं ॥ ९९६ ॥

तन्मध्ये चतुरस्रः मणिमयः चतुर्षष्टिव्यासः षोडशोदयः ।
आस्थानमण्डपः तत्पुरतः चत्वारिंशदुदयस्तूपमणिपीठं ॥ ९९७ ॥
तत् पुनः चतुर्गोपुरयुतद्वादशाम्बुजवेदिकाभिः संयुक्तं ।
मध्ये मेखलात्रययुतः चतुर्षष्टिदीर्घोदयव्यासः बहुरत्नः ॥ ९९८ ॥
स्तूपः जिनबिम्बचितः नवानामेवं क्रमेण तत्पुरतः ।
व्यासायामसहस्रं द्वादशवेदीयुतं हेममयपीठं ॥ ९९९ ॥
तस्मिन् चतुर्दीर्घैकव्यासस्कन्धौ बहुमणिमयौ सशालत्रयौ ।
द्वादशयोजनायतचतुर्महाशाखौ अनेकतनुशाखौ ॥ १००० ॥
द्वादशयोजनविस्तृतशिखरौ सिद्धार्थचैत्यनामतरू ।
नानादलपुष्पफलौ पद्माधिकपद्मपरिवारौ ॥ १००१ ॥

जिण । जिनगृहव्यासा ५० यामः १०० षोडश १६ योजनोच्छ्रितो मुखमण्डपः तज्जिनगृहपुरतो भवन्ति । तस्याग्रे चतुरस्रप्रेक्षणमण्डपश्च स्यात् ॥ ९९५ ॥

सद । स च कियानिति चेत् शतयोजन १०० विस्तारः साधिक षोडश १६ योजनोदयः । तत्प्रेक्षणमण्डपस्य पुरतो योजनद्विकसमुच्छ्रयमशीतियोजन ८० विस्तारं चतुरस्रं हेममयपीठमस्ति ॥ ९९६ ॥

तम्म । तत्पीठमध्ये चतुरस्रो मणिमयश्चतुर्षष्टि ६४ व्यासः षोडश १६ योजनोदय आस्थानमण्डपः स्यात् । तत्पुरतः पुनश्चत्वारिंश ४० योजनोदय स्तूपस्य मणिमयं पीठमस्ति ॥ ९९७ ॥

तं पुण । तत्पीठं पुनश्चतुर्गोपुरयुतद्वादशाम्बुजवेदिकाभिः संयुक्तं । तत्पीठमध्ये मेखलात्रययुतश्चतुर्षष्टि ६४ दीर्घोदयव्यासो बहुरत्नः ॥ ९९८ ॥

थूहो । जिनबिम्बचितः स्तूपोऽस्ति नवानां स्तूपानामेवं क्रमेण स्वरूपं स्यात् । ततः स्तूपस्य पुरतो व्यासायामसहस्रं द्वादश १२ वेदीयुतं हेममयपीठमस्ति ॥ ९९९ ॥

तस्हि । तस्मिन् पीठे चतुर्योजनदीर्घैकयोजनव्यासस्कन्धौ बहुमणिमयौ शालत्रयसहितौ द्वादशयोजनायतचतुर्महाशाखौ अनेकतनुशाखौ ॥ १००० ॥

बारह । द्वादशयोजनविस्तृतशिखरौ नानादलपुष्पफलौ पद्माधिकपद्मपरिवारौ सिद्धार्थचैत्यनामानौ तरू स्तः ॥ १००१ ॥

ऊपरि कथित मुखमण्डपादिकों का व्यास आदि तथा उनके आगे स्थित रचना का स्वरूप पन्द्रह गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ:—जिन मन्दिर के आगे जिनमन्दिर सदृश ही व्यास एवं आयामवाला और १६ योजन ऊंचा मुखमण्डप है। उस मुखमण्डप के आगे चौकोर प्रेक्षण मण्डप है, जिसका व्यास सौ योजन और

ऊँचाई साधिक सोलह योजन है। उस प्रेक्षण मण्डप के आगे दो योजन ऊँचा, अस्सी योजन चौड़ा, चौकोर और स्वर्णमय पीठ है। उस पीठ के मध्य में चार के घन (६४ योजन) प्रमाण चौड़ा और सोलह योजन ऊँचा, चौकोर मणिमय आस्थान मण्डप है। उसके आगे चालीस योजन ऊँचे स्तूप का मणिमय पीठ है। जो चार द्वारों और बारह पद्मवेदियों से संयुक्त है। उस पीठ के मध्य में तीन मेखलाओं कटनियों से सहित, चार के घन प्रमाण अर्थात् ६४ योजन लम्बा, ६४ योजन चौड़ा और ६४ योजन ऊँचा, बहुरत्नों से रचित और जिनबिम्ब से उपचित स्तूप है। नवों स्तूपों का स्वरूप इसी क्रम से है। उस स्तूप के आगे हजार योजन लम्बा, हजार योजन चौड़ा बारह वेदियों से संयुक्त स्वर्णमय पीठ है। उस पीठ के ऊपर मणिमय तीन कोटों से संयुक्त सिद्धार्थ और चैत्य नाम के दो वृक्ष हैं। उन वृक्षों के स्कन्ध ४ योजन लम्बे और एक योजन चौड़े हैं। बारह योजन लम्बी चार महाशाखाएँ एवं अनेक छोटी शाखाएँ हैं। उन वृक्षों का उपरिम भाग बारह योजन चौड़ा है। वे वृक्ष नाना प्रकार के पत्र, फूल और फलों से सहित हैं। उनके परिवार वृक्षों की संख्या पद्मद्रह के मुख्य कमल के परिवार कमलों के प्रमाण से पाँच अधिक है॥ ९९५ से १००१ तक॥ (समक)

विशेषार्थ :—जिनमन्दिर के आगे जिनमन्दिर के ही सदृश १०० योजन लम्बा, ५० योजन चौड़ा और १६ योजन ऊँचा मुखमण्डप है। उस मुख मण्डप के आगे चौकोर प्रेक्षण मण्डप है। जो १०० योजन चौड़ा, १०० योजन लम्बा और साधिक १६ योजन ऊँचा है। उस प्रेक्षण मण्डप के आगे ८० योजन लम्बा, ८० योजन चौड़ा और दो योजन ऊँचा (चौकोर) स्वर्णमय पीठ है। चबूतरे का नाम पीठ है। उस पीठ के मध्य में चौकोर, मणिमय, ६४ योजन लम्बा, चौड़ा और १६ योजन ऊँचा आस्थान मण्डप है। सभामण्डप का नाम आस्थान मण्डप है। इस आस्थान मण्डप के आगे ४० योजन ऊँचे स्तूप का मणिमय पीठ है। वह पीठ चार गोपुर द्वारों एवं बारह पद्म वेदियों से सहित है। उस पीठ के मध्य में तीन मेखलाओं अर्थात् कटनी से सहित ६४ योजन लम्बा, ६४ योजन चौड़ा और ६४ योजन ऊँचा, बहुरत्नों से रचित और जिन बिम्ब से उपचित स्तूप है। इसी प्रकार के नव स्तूप हैं। अर्थात् नव ही स्तूपों के स्वरूपों का वर्णन इसी स्तूप सदृश है। इन स्तूपों के ऊपर जिनबिम्ब विराजमान हैं। इस स्तूप के आगे अर्थात् चारों ओर १००० योजन लम्बा, १००० योजन चौड़ा बारह वेदियों से संयुक्त स्वर्णमय पीठ है। उस पीठ के ऊपर सिद्धार्थ और चैत्य नाम के दो वृक्ष हैं। जिन वृक्षों का स्कन्ध ४ योजन लम्बा और एक योजन चौड़ा है। जिनके चार चार महाशाखाओं की लम्बाई १२ योजन प्रमाण है। इनमें छोटी शाखाएँ अनेक हैं। इनका उपरिम भाग अर्थात् शिखर १२ योजन चौड़ा है। ये वृक्ष नाना प्रकार के पत्र पुष्प और फलों से सहित हैं। इनके परिवार वृक्षों की संख्या पद्मद्रह के मुख्य कमल के परिवार कमलों के प्रमाण से ५ अधिक है अर्थात् एक लाख चालीस हजार एक सौ बीस है।

मूलगपीठणिसण्णा चउद्दिसं चारि सिद्धजिणपडिमा ।
तप्पुरदो महकेदू पीठे चिट्ठंति विविहवण्णणया ॥ १००२ ॥

मूलगपीठनिषण्णाः चतुर्दिक्षु चतस्रः सिद्धजिनप्रतिमाः ।
तत्पुरतः महाकेतवः पीठेतिष्ठन्ति विविधवर्णनकाः ॥ १००२ ॥

मूलग । तत्तद्मूलगतपीठनिषण्णाश्चतुर्दिक्षु चतस्रः सिद्धतरुमूले सिद्धप्रतिमाश्चैत्यतरुमूले जिनप्रतिमाः सन्ति । तत्पुरतः पीठे विविधवर्णनका महाकेतवस्तिष्ठन्ति ॥ १००२ ॥

गाथार्थ :—चारों दिशाओं में उन वृक्षों के मूल में जो पीठ अवस्थित हैं उन पर चार सिद्ध प्रतिमाएं और चार अरहन्त प्रतिमाएं विराजमान हैं। उन प्रतिमाओं के आगे पीठ हैं जिनमें नाना प्रकार के वर्णन से युक्त महाध्वजाएं स्थित हैं ॥ १००२ ॥

विशेषार्थ :—चारों दिशाओं में स्थित सिद्धार्थ वृक्ष की पीठ पर सिद्ध प्रतिमाएं और चैत्यवृक्ष की पीठ पर अरहन्त प्रतिमाएं विराजमान हैं उन प्रतिमाओं के आगे पीठ हैं जिनमें नाना प्रकार के वर्णन से युक्त महाध्वजाएं स्थित हैं।

शंका :—सिद्ध प्रतिमा और अरहन्त प्रतिमा में क्या अन्तर है ?

समाधान :—अरहन्त प्रतिमा अष्ट प्रातिहार्य संयुक्त ही होती है, किन्तु सिद्ध प्रतिमा अष्ट प्रातिहार्य रहित होती है। यथा :—

१ वसुनन्दि प्रतिष्ठा पाठ तृतीय परिच्छेद :—

प्रातिहार्याष्टकोपेतं, सम्पूर्णावयवं शुभम् ।
भावरूपानुविद्धाङ्गं, कारयेद् बिम्बमर्हतः ॥ ६९ ॥

प्रातिहार्यैर्विना शुद्धं, सिद्धं बिम्बमपीदृशः ।
सूरीणां पाठकानां च, साधूनाम् च यथागमम् ॥ ७० ॥

अर्थ :—अष्टप्रातिहार्यों से युक्त, सम्पूर्ण अवयवों से सुन्दर तथा जिनका सन्निवेश (आकृति) भाव के अनुरूप है ऐसे अरहन्त बिम्ब का निर्माण करें ॥ ६९ ॥

सिद्ध प्रतिमा शुद्ध एवं प्रातिहार्य से रहित होती है। आगमानुसार आचार्य, उपाध्याय एवं साधुओं की प्रतिमाओं का भी निर्माण करें ॥ ७० ॥

२ जयसेन प्रतिष्ठा पाठ के बिम्ब निर्माण प्रकरण में भी कहा है कि—

सल्लक्षणं भावविवृद्ध हेतुकं, सम्पूर्ण शुद्धावयवं दिगम्बरं ।
सत्प्रातिहार्यैर्निजचिह्नभासुरं, संकारये बिम्बमथार्हतः शुभम् ॥ ८० ॥

सिद्धेश्वराणां प्रतिमाऽपियोज्या, तत्प्रातिहार्यादि विना तथैव ।

आचार्य सत्पाठक साधु सिद्ध, क्षेत्रादिकानामपि भाववृद्ध्यै ॥ १८१ ॥

अर्थ :—प्रशस्त हैं लक्षण जिनके, जो भावों की विशुद्धि में कारण हैं, निर्दोष सर्व अवयवों से सहित, नग्न दिगम्बर, सुन्दर प्रतिहार्य एवं स्वकीय चिह्न से समन्वित हैं ऐसे मनोहर अरहन्त बिम्ब का निर्माण करावें । इसी प्रकार भावों की विशुद्धि के लिए प्रातिहार्य बिना सिद्धों की (आगमानुसार) आचार्य, उपाध्याय एवं साधुओं की भी प्रतिमाओं का निर्माण करावें । सिद्ध क्षेत्र आदि की आकृतियों की भी स्थापना करें ॥ १८०, १८१ ॥

१ श्री वसुनन्दि प्रतिष्ठासारोद्धार के प्रथम अध्याय में भी कहा है कि :—

शान्तप्रसन्नमध्यस्थ, नासाग्रस्था विकार हक् ।

सम्पूर्णभावरूपानु, विद्धाङ्ग लक्षणान्वितम् ॥ ६३ ॥

रौद्रादिदोष निर्मुक्तं, प्रातिहार्याङ्कयक्षयुक् ।

निर्माप्य विधिना पीठे, जिनबिम्बं निवेशयेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ :—शान्त, प्रसन्न, मध्यस्थ, नासाग्र और अविकार दृष्टि, सम्पूर्ण भावानुरूप, स्वकीय लक्षण से समन्वित, रौद्रादि (क्रूर आदि) दृष्टि से रहित तथा यक्ष यक्षणी सहित जिनबिम्ब का निर्माण कराकर विधि पूर्वक वेदिका में विराजमान करें ॥ ६३, ६४ ॥

नोट :—उपर्युक्त प्रमाण पं० प्यारेलालजी जैन राजवैद्य टीकमगढ़ के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं ।

सोलुदय कोसविच्छिद कणयत्थंभग्गगा हु रयणमया ।
चिंधधयछत्तजुदा बहुगा अणणयणमणरमणा ॥ १००३ ॥

तप्पुरदो जिणभवणं तच्चउदिस विविहकुसुम चउ दहगा ।
दसगादसयदलायदवासा मणिकणयवेदिजुदा ॥ १००४ ॥

पुरदो सुरकीडणमणिपासादद्दु होंति वीहिपासद्दुगे ।
पण्णुदयं दलवासो तप्पुरदो तोरणं होदि ॥ १००५ ॥

तं मणिथंभग्गठियं मुत्ताघंटासुजाल पण्णुदयं ।
तद्दलजोयणवासं जिणबिंबकदंबरमणिज्जं ॥ १००६ ॥

पुरदो पासादद्दुगं फलिहादिमसालदारपासद्दुगे ।
अब्भंतरे सदुदयं दलवासं रयणसंघडियं ॥ १००७ ॥

जं परिमाणं भणिदं पुव्वगदारम्हि मंडवादीणं ।
दक्खिणउत्तरदारे तदद्धमाणं मुणेदव्वं ॥ १००८ ॥

वंदणभिसेयणच्चणसंगीयवलोयमंडवेहिं जुदा ।
कीडणगुणणगिहेहि य विसालवरपट्टसालेहिं ॥१००९॥

षोडशोदयाः क्रोशविस्तारा: कनकस्तम्भाग्रगा हि रत्नमयाः ।
चित्रपटछत्रध्वजिता बहुका जननयनमनोरमणाः ॥ १००३ ॥

तत्पुरतः जिनभवनं तच्चतुर्दिक्षु विविधकुसुमाः चत्वारो ह्रदाः ।
दशावगाधशतदलायतव्यासाः मणिकनकवेदीयुताः ॥ १००४ ॥

पुरस्तात् सुरक्रीडनमणिमयप्रासादद्वयं भवन्ति वीथिपार्श्वद्वये ।
पञ्चाशदुदयं दलव्यासं तत्पुरतस्तोरणं भवति ॥ १००५ ॥

तत् मणिस्तम्भाग्रस्थितं मुक्ताघण्टासुजालं पञ्चाशदुदयं ।
तद्दलयोजनव्यासं जिनबिम्बकदम्बरमणीयं ॥ १००६ ॥

पुरतः प्रासादद्वयं स्फटिकादिमशालद्वारपार्श्वद्वये ।
अभ्यन्तरे शतोदयं दलव्यासं रत्नसङ्घटितम् ॥ १००७ ॥

यत् परिमाणं भणितं पूर्वद्वारे मण्डपादीनाम् ।
दक्षिणोत्तरद्वारे तदर्धमानं ग्रहीतव्यं ॥ १००८ ॥

वन्दनाभिषेकनर्तनसङ्गीतावलोकमण्डपैः युतानि ।
क्रीडनगुणनगृहैश्च विशालवरपट्टशालैः ॥ १००९ ॥

सोलुदय । षोडश १६ योजनोदया एकक्रोशविस्ताराः तद् केतूनां कनकस्तम्भाः तेषामग्रगा रत्नमया बहुकाः जननयनमनोरमणाश्चित्रपटछत्रध्वजा शोभन्ते ॥ १००३ ॥

तप्पुर । तद्ध्वजात्पुरतो जिनभवनमस्ति तस्य चतुर्दिक्षु विविधकुसुमा दशयोजनावगाधाः शतयोजनायतास्तदर्धं ५० व्यासा मणिकनकवेदीयुताश्चत्वारो ह्रदाः सन्ति ॥ १००४ ॥

पुरदो । ततः पुरस्ताद्वीथीपार्श्वद्वये पञ्चाश ५० योजनोदयं तद्दल २५ व्यासं सुरक्रीडनमणिमय-प्रासादद्वयं भवति । तस्य पुरतस्तोरणं भवति ॥ १००५ ॥

तं मणि । तत्तोरणं मणिस्तम्भाग्रस्थितं मुक्ताघण्टासुजालं पञ्चाश ५० योजनोदयं तद्दल २५ योजनव्यासं जिनबिम्बकदम्बरमणीयं भवति ॥ १००६ ॥

पुरदो । तत्तोरणस्य पुरतः स्फटिकमयादिमशालस्याभ्यन्तरे द्वारपार्श्वद्वये शतयोजनोदयं तद्दल ५० व्यासं रत्नघटितं प्रासादद्वयमस्ति ॥ १००७ ॥

जं परि । पूर्वस्मिन् द्वारे मण्डपादीनां यत्परिमाणं भणितं तदर्धप्रमाणं दक्षिणद्वारे उत्तरद्वारे च ग्रहीतव्यम् ॥ १००८ ॥

मंडपाः। तानि चैत्यालयानि पुनर्वन्दनाभिषेकनर्तनसङ्गीतावलोकनमण्डपैः तानि क्रीडनगुणन-गृहैश्च विशालवरपट्टशालैश्च युतानि भवन्ति ॥ १००६ ॥

गाथार्थ :—उन ध्वजाओं के स्वर्णमय स्तम्भ सोलह योजन ऊँचे और एक कोश चौड़े हैं। उन स्वर्ण स्तम्भों के अग्रभाग रत्नमय एवं मनुष्यों के नेत्र और मन को सुन्दर लगने वाले बहुत से नाना प्रकार के ध्वजा रूप वस्त्रों एवं तीन छत्रों से शोभायमान हैं। उस ध्वजापीठ के आगे जिन मन्दिर हैं, जिनकी चारों दिशाओं में नाना प्रकार के फूलों से एवं मणिमय और स्वर्णमय वेदियों से संयुक्त, सौ योजन लम्बे, ५० योजन चौड़े और दश योजन गहरे चार द्रह हैं। इन द्रहों के आगे जो वीथी (मार्ग) है उनके दोनों पार्श्व भागों में देवों के क्रीडा करने के मणिमय दो प्रासाद हैं, जिनकी ऊँचाई ५० योजन और चौड़ाई २५ योजन है। इन प्रासादों के आगे तोरण हैं। वे तोरण मणिमय स्तम्भों के अग्र भाग में स्थित, मोतीमाल और घण्टाओं के समूह से युक्त तथा जिनबिम्बों के समूह से रमणीक हैं। उनकी ऊँचाई पचास योजन और चौड़ाई पच्चीस योजन प्रमाण है। उस तोरण के आगे स्फटिकमय प्रथम कोट है। उस कोट द्वार के दोनों पार्श्व भागों में कोट के भीतर सौ योजन ऊँचे और ऊँचाई के अर्धभाग प्रमाण अर्थात् ५० योजन चौड़े रत्ननिर्मापित दो मन्दिर हैं। पूर्वद्वार में मण्डपादिक का जो प्रमाण कहा था उसका अर्ध प्रमाण दक्षिणोत्तर द्वारों में ग्रहण करना चाहिए।

वे दोनों मन्दिर वन्दना मण्डप, अभिषेक मण्डप नर्तन, संगीत और अवलोकन मण्डपों से तथा क्रीड़ागृह, गुणन गृह (शास्त्राभ्यास आदि का स्थान) और विशाल एवं उत्कृष्ट पट्टशाला से संयुक्त हैं ॥ १००३ से १००६ ॥

विशेषार्थ :—उन ध्वजाओं के स्वर्णमय स्तम्भ १६ योजन ऊँचे और एक कोश चौड़े हैं। उन ध्वजाओं के स्वर्णमय स्तम्भों के अग्रभाग रत्नमय एवं मनुष्यों के मन और नेत्रों को रमणीक लगने वाले, तथा नाना प्रकार के ध्वजा रूप वस्त्रों से युक्त बहुत सी ध्वजाओं और तीन छत्रों से शोभायमान हैं। सम्पूर्ण ध्वजाएं रत्नमय हैं। अर्थात् पुद्गल का ही परिणमन वस्त्र रूप हुआ है। उस ध्वजा पीठ के आगे जिनमन्दिर हैं, जिनकी चारों दिशाओं में विविध प्रकार के फूलों से एवं मणिमय और स्वर्णमय वेदियों से संयुक्त, सौ योजन लम्बे, ५० योजन चौड़े और दश योजन गहरे चार द्रह हैं। इन द्रहों के आगे जो मार्ग है, उनके दोनों पार्श्व भागों में देवों के क्रीड़ा करने के मणिमय दो प्रासाद हैं जिनकी ऊँचाई ५० योजन और चौड़ाई २५ योजन है। इन प्रासादों के आगे तोरण हैं; जो मणिमय स्तम्भों के अग्रभाग में स्थित, मोतीमाल और घण्टाओं के समूह से युक्त एवं जिनबिम्बों के समूह से रमणीक हैं। उनकी ऊँचाई ५० योजन और चौड़ाई २५ योजन प्रमाण है। उन तोरणों के आगे स्फटिकमय प्रथम कोट है। उस कोट द्वार के दोनों पार्श्व भागों में कोट के भीतर १०० योजन ऊँचे और ५० योजन चौड़े, रत्न-निर्मापित दो मन्दिर हैं। पूर्वद्वार में मण्डपादिक का जो प्रमाण कहा था उसका अर्ध प्रमाण दक्षिण और उत्तर द्वारों में ग्रहण करना चाहिए। वे दोनों मन्दिर वन्दना मण्डप, अभिषेक मण्डप, नर्तन मण्डप,

संगीत मण्डप और अवलोकन मण्डपों से तथा क्रीड़ागृह, गुणन गृह (शास्त्राभ्यास आदि का स्थान) और विशाल एवं उत्कृष्ट पट्टशाला (चित्राम आदि दिखाने का स्थान) से संयुक्त है।

साम्प्रतं प्रथमद्वितीयशालयोरन्तरालस्वरूपमाह—

सिहगयवसहगरुडसिहिंदिणहंसारविंदचक्कधया ।
पुह अट्ठसया चउदिसमेक्केक्के अट्ठसय खुल्ला ॥१०१०॥

सिंहगजवृषभगरुडशिखीन्द्विनहंसारविन्दचक्रध्वजाः ।
पृथक् अष्टशतानि चतुर्दिशमेकैकस्मिन् अष्टशतं क्षुल्लाः ॥१०१०॥

सिह। सिंहगजवृषभगरुडशिखीन्द्विनहंसारविन्दचक्रध्वजाः पृथक् पृथगष्टोत्तरशतानि। एवं प्रत्येकं चतुर्दिक्षु भवन्ति। अत्रैकैकस्मिन् मुख्यध्वजे अष्टोत्तरशतक्षुल्लकध्वजा भवन्ति ॥ १०१० ॥

अब प्रथम और द्वितीय कोटों के अन्तराल का स्वरूप कहते हैं।—

गाथार्थ :—प्रत्येक जिन मन्दिर की चारों दिशाओं में सिंह, हाथी, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, कमल और चक्र के आकार की १०८, १०८ ध्वजाएँ हैं तथा इन १०८, १०८ मुख्य ध्वजाओं में प्रत्येक की १०८, १०८ छोटी ध्वजाएँ हैं ॥ १०१० ॥

विशेषार्थ :—प्रत्येक जिन मन्दिर की चारों दिशाओं में सिंह, हाथी, वृषभ, गरुड़, मयूर, चन्द्र, सूर्य, हंस, कमल और चक्र के चिह्नों से चिह्नित १०८, १०८ मुख्य ध्वजाएँ हैं तथा इन १०८, १०८ मुख्य ध्वजाओं में प्रत्येक की १०८, १०८ ही छोटी ध्वजाएँ हैं।

प्रथम और द्वितीय कोट के बीच के अन्तराल में ध्वजाएँ हैं। प्रत्येक जिन मन्दिर की, एक दिशा में सिंह चिह्नाङ्कित ध्वजाएँ १०८ हाथी चिन्हाङ्कित १०८ इसी प्रकार वृषभादि चिह्नाङ्कित भी १०८, १०८ मुख्य ध्वजाएँ हैं। अर्थात् मन्दिर की एक दिशा में सिंह आदि दश प्रकार के चिह्नों को धारण करने वाली (१०८ × १०) = १०८० मुख्य ध्वजाएँ हैं। एक दिशा में १०८० हैं, अतः चार दिशाओं में (१०८० × ४) = ४३२० मुख्य ध्वजाएँ हुईं। एक मुख्य ध्वजा की छोटी परिवार ध्वजाएँ १०८ हैं अतः ४३२० मुख्य ध्वजाओं की (४३२० × १०८) = ४६६५६० परिवार ध्वजाओं का प्रमाण है और एक मन्दिर सम्बन्धी सम्पूर्ण ध्वजाओं का प्रमाण (४६६५६० + ४३२०) = ४७०८८० है। ये ध्वजाएँ प्रथम और द्वितीय कोट के अन्तराल में हैं।

द्वितीयप्राकारप्राकारत्रययोरन्तरालस्वरूपं गाथाद्वयेनाह—

चउवणमसोयसत्तच्छदचंपयचूदमेत्थ कप्पतरू ।
कणयमयकुसुमसोहा मरगयमयविविहपत्तड्ढा ॥१०११॥

वेलुरियफला विद्दुमविसालसाहा दसप्पयारा ते ।
पल्लंकपाडिहेरग चउदिसमूलगय जिणपडिमा ॥१०१२॥
सालत्तयपीढत्तयजुत्ता मणिसाहपत्तपुप्फफला ।
तच्चउवणमज्झगया चेदियरुक्खा सुसोहंति ॥१०१३॥

चतुर्वनमशोकसप्तच्छदचम्पकचूतमत्र कल्पतरवः ।
कनकमयकुसुमशोभाः मरकतमयविविधपत्राढ्याः ॥१०११॥
वैडूर्यफला विद्रुमविशालशाखाः दशप्रकारास्ते ।
पल्यङ्कप्रातिहार्यगाः चतुर्दिशामूलगता जिनप्रतिमाः ॥१०१२॥
शालत्रयपीठत्रययुक्ताः मणिशाखापत्रपुष्पफलाः ।
तच्चतुर्वनमध्यगताः चैत्यवृक्षाः सुशोभन्ते ॥ १०१३॥

चउ । अशोकसप्तच्छदचम्पकचूतमयानि चत्वारि वनानि सन्ति । अत्र पुनः कनकमयकुसुमशोभिताः मरकतमयविविधपत्राढ्याः कल्पतरवश्च सन्ति ॥ १०११ ॥

वेलुरिय । ते च पुनः वैडूर्यफला विद्रुमविशालशाखाः दशप्रकाराः स्युः । तत्रैव वने पुनः पल्यङ्कप्रातिहार्ययुक्तचतुर्दिग्मूलगतजिनप्रतिमाः ॥ १०१२ ॥

साल । शालत्रयपीठत्रययुक्ताः मणिमयशाखापत्रपुष्पफलास्तच्चतुर्वनमध्यगताश्चैत्यवृक्षाः सुशोभन्ते ॥ १०१३ ॥

अब द्वितीय कोट और तृतीय (साल) कोट के अन्तराल का स्वरूप तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं :—

गाथार्थ :—द्वितीय और तृतीय कोट के अन्तराल में अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र के चार वन हैं। उन वनों में भोजनाङ्गादि दश प्रकार के कल्पवृक्ष हैं, जो स्वर्णमय फूलों से सुशोभित, मरकत मणिमय नाना प्रकार के पत्रों से सहित, वैडूर्य रत्नमय फलों से युक्त और विद्रुम मूँगामय डालियों से संयुक्त हैं। उन चारों वनों के मध्य में तीन कोट और तीन पीठ से संयुक्त तथा मणिमय डाली, पत्र, पुष्प और फलों से युक्त चैत्यवृक्ष शोभायमान होते हैं। उन चैत्य वृक्षों के मूल की चारों दिशाओं में पल्यङ्कासन और प्रातिहार्यों से युक्त जिन बिम्ब विराजमान हैं ॥ १०११–१०१३ ॥

विशेषार्थ :—दूसरे और तीसरे कोट के अन्तराल में अशोक, सप्तच्छद, चम्पक और आम्र के चार वन हैं। उन वनों में स्वर्णमय फूलों से सुशोभित, मरकत मणिमय नाना प्रकार के पत्रों से सहित, वैडूर्यरत्नमय फलों से युक्त और विद्रुम मूँगामय डालियों से संयुक्त भोजनाङ्गादि दश प्रकार के कल्प वृक्ष हैं। उन चारों वनों के मध्य में तीन कोट एवं तीन पीठ से संयुक्त तथा मणिमय डाली, पत्र, पुष्प और फलों से युक्त चार चैत्यवृक्ष शोभायमान होते हैं। उन चैत्यवृक्षों के मूल की चारों दिशाओं में पल्यङ्कासन एवं छत्र, चमरादि प्रातिहार्यों से युक्त जिन बिम्ब विराजमान हैं।

नन्दादिवापीनां मानस्तम्भानां च विशेषस्वरूपमाह—

णंदादीय तिमेहल तिपीढया भंति धम्मविहवावि ।
पडिमाधिट्ठियमुद्धा वणभूचउवीहिमज्झम्हि ॥ १०१४ ॥

नन्दादिकाः त्रिमेखलाः त्रिपीठका भान्ति धर्मविभवा अपि ।
प्रतिमाधिष्ठितमूर्धानः वनभूचतुर्वीथीमध्ये ॥ १०१४ ॥

णंदा । प्रागुक्ता नन्दादिषोडशवाप्यस्त्रिमेखलायुक्ता भान्ति । वनभूप्रणिधिचतुर्वीथीमध्ये प्रतिमाधिष्ठितमूर्धानः धर्मविभवा अपि मानस्तम्भा इत्यर्थः त्रिपीठयुक्ता भान्ति ॥ १०१४ ॥

इति श्रीनेमिचन्द्राचार्यविरचिते त्रिलोकसारे नरतिर्यग्लोकाधिकारः ॥ ६ ॥

नन्दादि वापियों और मानस्तम्भों का विशेष स्वरूप कहते हैं :—

गाथार्थ :—नन्दादि सोलह वापिकाएँ तीन कोटों से संयुक्त हैं तथा वन की भूमि के निकट चतुर्थ वीथी के मध्य में तीन पीठों युक्त जिन प्रतिमा से अधिष्ठित हैं, ऊर्ध्व (अग्र) भाग जिनका तथा जो धर्म रूपी वैभव से युक्त हैं ऐसे मानस्तम्भ शोभायमान होते हैं ॥ १०१४ ॥

विशेषार्थ :—पूर्वोक्त नन्दादि सोलह वापिकाएं तीन कोटों से संयुक्त शोभायमान होती हैं, और उन्हीं वनों की भूमि के निकट चतुर्थ वीथी के मध्य में, तीन पीठों से युक्त, उपरिम भाग पर जिन प्रतिमा से अधिष्ठित तथा धर्म रूपी वैभव से युक्त मानस्तम्भ शोभायमान होते हैं।

इति श्रीनेमिचन्द्राचार्यविरचित त्रिलोकसार ग्रन्थ में
नरतिर्यग्लोकाधिकार का वर्णन
पूर्ण हुआ ॥ ६ ॥

अथ प्रशस्तिः

अन्त्यमङ्गलार्थं सर्वेषां सर्वज्ञप्रतिरूपाणां वन्दनां करोति—

जिणसिद्धाणं पडिमा अकिट्टिमा किट्टिमा दु अदिसोहा ।
रयणमया हेममया रूप्पमया ताणि वंदामि ॥ १०१५ ॥

जिनसिद्धानां प्रतिमा अकृत्रिमाः कृत्रिमास्तु अतिशोभाः ।
रत्नमया हेममया रूप्यमय्यः ताः वन्दे ॥ १०१५ ॥

जिण । अकृत्रिमाः कृत्रिमा अतिशोभा रत्नमय्यो हेममय्यो रूप्यमय्यो जिनानां सिद्धानां च प्रतिमास्तानि बिम्बानि वन्दे ॥ १०१५ ॥

अन्त्यमङ्गल हेतु सर्वज्ञ के सम्पूर्ण प्रतिबिम्बों की वन्दना करते हैं—

गाथार्थ:—अत्यन्त शोभा संयुक्त रत्नमय, हेममय और रूप्यमय अकृत्रिमकृत्रिम सभी अर्हन्त और सिद्ध प्रतिमाओं को नमस्कार करता हूँ ॥ १०१५ ॥

पुनरन्त्यमङ्गलार्थमेव गणनासमेतानां समुदिताकृत्रिमजिनगृहाणां वन्दनां कुर्वन्नाह—

कोडी लक्खा सहस्सं अट्ठय छप्पण्ण सत्तणउदी य ।
चउसदमेगासीदी गणणगए चेदिए वंदे ॥ १०१६ ॥

कोट्यः लक्षाणि सहस्राणि अष्ट षट्पञ्चाशत् सप्तनवतिः च ।
चतुः शतमेकाशीतिः गणनागतानि चैत्यानि वन्दे ॥ १०१६ ॥

कोडी । अष्टौ कोट्यः षट्पञ्चाशल्लक्षाणि सप्तनवतिसहस्राणि चतुः शतानि एकाशीतिप्रमितानि ८५६९७४८१ गणनागतानि चैत्यालयानि वन्दे ॥ १०१६ ॥

पुनः अन्तिम मंगल हेतु संख्या सहित समुदायरूप अकृत्रिम जिनमन्दिरों को नमस्कार करते हैं :—

गाथार्थ:— आठ करोड़ छप्पन लाख सत्तानवे हजार चार सौ इक्यासी चैत्यालयों को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १०१६ ॥

विशेषार्थ:—भवनवासी, वैमानिक एवं मध्यलोक सम्बन्धी ८५६९७४८१ जिनमन्दिरों को नमस्कार हो । ज्योतिष व्यन्तर देवों के जिनमन्दिर असंख्यात हैं, अत: वे गणना में नहीं आते किन्तु उपलक्षण से उन्हें भी नमस्कार हो ।

साम्प्रतं शास्त्रमिदं परिसमापयन्नन्त्यमंगलार्थमेव त्रिलोकगोचराणां कृत्रिमाकृत्रिमजिनभवनानां वन्दनां कुर्वन्नाह :—

तिहुवणजिणिंदगेहे अकिट्टिमे किट्टिमे तिकालभवे ।
वणकुमरविहंगामरणरखेचरवंदिए वंदे ॥ १०१७ ॥

त्रिभुवनजिनेन्द्रगेहान् अकृत्रिमान् कृत्रिमान् त्रिकालभवान् ।
वानकुमारविहङ्गामरनरखेचरवन्दितान् वन्दे ॥ १०१७ ॥

तिहु । अकृत्रिमान् कृत्रिमान् त्रिकालभवान् व्यन्तरभवनवासिज्योतिष्ककल्पवासिनरखेचर-वन्दितान् त्रिभुवनजिनेन्द्रगेहान् वन्दे ॥ १०१७ ॥

अब इस शास्त्र को पूर्ण करते हुए आचार्य अन्तिम मंगल हेतु त्रिलोकगोचर अकृत्रिम कृत्रिम सभी जिनमन्दिरों की वन्दना करने के लिए कहते हैं—

गाथार्थ :—व्यन्तर, भवनवासी, ज्योतिष्क, कल्पवासी, मनुष्य एवं विद्याधरों से वन्दित त्रिकालसम्बन्धी तीन लोक स्थित कृत्रिम अकृत्रिम जिनमन्दिरों की वन्दना करता हूँ ॥ १०१७ ॥

विशेषार्थ :—अतीत, अनागत और वर्तमान सम्बन्धी, ऊर्ध्व, मध्य और पाताल लोक में व्यन्तर, भवनवासी, ज्योतिष्क, कल्पवासी, मनुष्य और विद्याधरों द्वारा वन्दित सम्पूर्ण अकृत्रिम कृत्रिम चैत्यालयों की मैं वन्दना करता हूँ।

अन्त्यमंगलानन्तरं ग्रन्थकारः स्वकीयौद्धत्यं परिहरति—

**इदि णेमिचंदमुणिणा अप्पसुदेणभयणंदिवच्छेण ।
रइयो तिलोयसारो खमंतु तं बहुसुदाइरिया ॥ १०१८ ॥**

इति नेमिचन्द्रमुनिना अल्पश्रुतेनाभयनन्दिवत्सेन ।
रचितस्त्रिलोकसारः क्षमन्तु तं बहुश्रुताचार्याः ॥ १०१८ ॥

इदि । इत्येवं प्रकारेणाल्पश्रुतेनाभयनन्दिसिद्धान्तचक्रिवत्सेन श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्र[1]गणिना त्रिलोकसाराख्यो ग्रन्थो रचितः तं बहुश्रुताचार्याः क्षमन्तु ॥ १०१८ ॥

अन्तिम मंगल के बाद ग्रंथकार अपने औद्धत्य का परिहार करते हैं—

गाथार्थ :—अभयनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के वत्स (शिष्य), अल्प श्रुतज्ञान के धारी आचार्य श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती द्वारा यह त्रिलोकसार ग्रंथ रचा गया है। उन्हें बहुश्रुतधारक आचार्य क्षमा करें ॥ १०१८ ॥

विशेषार्थ :—अभयनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती के अल्पश्रुतज्ञानधारी शिष्य आचार्य श्रीनेमिचन्द्र-सिद्धान्तचक्रवर्ती द्वारा प्रस्तुत त्रिलोकसार ग्रंथ लिखा गया है। इसमें यदि किसी प्रकार की भूल हुई हो तो बहुश्रुतधारी आचार्य क्षमा प्रदान करें।

---

१ चक्रवर्ति (ब०) ।

टीकाकारवक्तव्यम्

तं त्रिलोकसारमलङ्कुर्विष्णुर्माधवचन्द्रत्रैविद्यदेवो अपि आत्मीयमौद्धत्यं परिहरति—

गुरुणेमिचंदसम्मदकदिवयगाहा तहिं तहिं रइदा ।
माहवचंदतिविज्जेणिणमणुसरणिज्जमज्जेहिं ॥ १ ॥

गुरुनेमिचन्द्रसम्मतकतिपयगाथाः तत्र तत्र रचिताः ।
माधवचन्द्रत्रैविद्येनेदमनुसरणीयमार्यैः ॥ १ ॥

स्वकीयगुरुनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रिणां सम्मताः अथवा ग्रंथकर्तुणां नेमिचन्द्रसिद्धान्तदेवानामभिप्रायानुसारिण्यः कतिपयगाथाः माधवचन्द्रत्रैविद्येनापि तत्र तत्र रचिताः । इदमप्यार्यैराचार्यैरनुसरणीयम् ॥ १ ॥

इस त्रिलोकसार ग्रन्थ को अलङ्काररूप करने वाले माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव भी अपने औद्धत्य का परिहार करते हैं—

गाथार्थ :—अपने गुरु श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की सम्मति से अथवा उनके अभिप्रायानुसार कुछ गाथाएँ माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव द्वारा भी यत्र तत्र रची गई हैं; ऐसा प्रधान आचार्यों द्वारा जानना चाहिए ॥ १ ॥

साम्प्रतमलङ्कारकर्तान्त्यमङ्गलं कुर्वन्नभीष्टाशंसनं करोति—

अरहंतसिद्ध आइरियुवज्झयसाहु पंचपरमेट्ठी ।
इय पंचणमोक्कारो भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥ २ ॥

अरहन्तसिद्धाचार्योपाध्यायसाधवः पञ्चपरमेष्ठिनः ।
इति पञ्चनमस्कारः भवे भवे मम सुखं ददतु ॥ २ ॥

इति टीकाकारवक्तव्यम् ।

अब ग्रन्थ को अलंकृत करने वाले माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव भी अन्तमंगल करते हुए अपने अभीष्ट फल की याचना करते हैं—

गाथार्थ :—अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पञ्च परमेष्ठी हैं। पञ्चपरमेष्ठी स्वरूप पञ्चनमस्कार मंत्र मुझे भव भव में सुखकारी हो ॥ २ ॥

संस्कृत टीकाकार का वक्तव्य पूर्ण हुआ ।

प्रशस्तिः

स पातु पार्श्वनाथोऽस्मान् सुरासुरकृतानतिः । अगाधसारसंसारसागरोत्तारकारणम् ॥ १ ॥
कुन्दकुन्दान्वये पूते विश्रुते गगनोपमे । सूरिः सूर्यनिभो जात आचार्यः शान्तिसागरः ॥ २ ॥
तस्याचार्यपदं लेभे मुनिपो वीरसागरः । कृशाङ्गस्तस्य सच्छिष्यो जातः श्रीशिवसागरः ॥ ३ ॥
शिष्यानुग्रहसंदक्षो मेधावी च सुशिक्षकः । विवेकैश्वर्यसम्पन्नो गुरुवाणीप्रसारकः ॥ ४ ॥
अशुद्धमतिमाश्रित्य पतिताहं भवार्णवे । आर्यिकायाः पदं दत्त्वा गुरुणा तेन तारिता ॥ ५ ॥
मां विशुद्धमति कृत्वा दत्त्वा च ज्ञानसम्पदम् । स्वयं समाधि सम्प्राप्य स्वर्गलोकं समाश्रितः ॥६॥
तस्य पट्टे स्थितः सूरिर्धर्मसिन्धुर्मुनीश्वरः । प्रसन्नवदनो योगी विनयेन समन्वितः ॥ ७ ॥
गुणज्ञः सन्मतिः सिन्धुर्ज्ञानामृतसुपूरितः । उपदेष्टा व्रतज्येष्ठो गरिष्ठः सर्वसाधुषु ॥ ८ ॥
शरणागतसंत्राता श्रुतसिन्धुः श्रुताम्बुधिः । ज्ञानाम्भोधिः कृपाम्भोधिः शरण्यो मे सदा भवेत् ॥९॥
वात्सल्यादिगुणोपेतो लोकाचारधुरन्धरः । बालवैद्यः सुमर्मज्ञो निष्णातः श्रुतसागरे ॥ १० ॥
तत्प्रसादात्कृता टीका राष्ट्रभाषामयी मया । ग्रन्थत्रिलोकसारस्य नेमीन्दुरचितस्य वै ॥ ११ ॥
अभीक्ष्णज्ञानतायुक्तोऽजितसिन्धुर्मुनीश्वरः । मम विद्यागुरुर्जीयाद् देववाणीविशारदः ॥ १२ ॥
अतन्द्रालुर्भवाद्भीतो भवाब्धेः सेतुसन्निभः । शान्तस्वान्तः सुधीः शिष्टो हृषीकजयतत्परः ॥ १३ ॥
ज्ञानध्यानतपोरक्ताः सर्वे निर्ग्रन्थसाधवः । कुर्वन्तु मङ्गलं मेऽत्र भक्त्या तान् विनमाम्यहम् ॥१४॥
राजस्थानप्रदेशस्य रम्ये जयपुराभिधे । पत्तने खानियाक्षेत्रे निर्मलक्ष्मामण्डले ॥ १५ ॥
जनानां श्रेयसे भव्ये भासिते जिनमन्दिरे । तत्र श्रीवासुपूज्यस्य मन्दिरेऽतिमनोहरे ॥ १६ ॥
पर्वतोपत्यकाप्रान्ते रम्यारामविभूषिते । बारादरीति विख्याते प्रकोष्ठे स्वासनस्थिता ॥ १७ ॥
ज्येष्ठमासे सिते पक्षे राकायां शुक्रवासरे । एकाग्रसार्धसहस्र-द्वयेऽब्दे वीरवत्सरे ॥ १८ ॥
(२४९९)
नभस्त्रिशून्यनयन-मिते विक्रमहायने । पूर्णां चकार संक्षिप्तां टीकामेतामहं शुभाम् ॥ १९ ॥
(२०३०)
राजतां भुवि टीकेयं यावच्चन्द्रदिवाकरौ । कुर्वाणाज्ञानविध्वंसं दधानामोदसम्भरम् ॥ २० ॥
ग्रन्थस्त्रिलोकसाराख्यो गम्भीरः सागरो यथा । स्खलितं तत्र क्षन्तव्यं बुधैर्मे मन्दमेधसः ॥ २१ ॥

—आर्यिका विशुद्धमति

परिशिष्ट खंड १

करणसूत्र

गा० सं०	
१७, ९६, ३११	व्यास से तिगुणी स्थूल परिधि होती है। व्यास के वर्ग को १० से गुणा करके वर्गमूल प्राप्त करने पर सूक्ष्म परिधि होती है। व्यास के चौथाई से परिधि को गुणा करने पर क्षेत्रफल होता है। क्षेत्रफल को वेध से गुणा करने पर खातफल (घनफल) होता है।
१९	व्यास के अर्धभाग का घन करना चाहिये। उस घन का पुनः अर्ध भाग कर ९ से गुणा करने पर जो लब्ध प्राप्त हो वही गोल वस्तु (गेंद आदि) का घनफल है।
९२	परिधि के ग्यारहवें भाग को परिधि के छठवें भागके वर्गसे गुणित करने पर शिखाउ का घनफल (शिखाफल) प्राप्त होता है।
११४, २८०, ७४६	मुख और भूमि में से जिसका प्रमाण अधिक हो उसमें से हीन प्रमाण को घटाकर, एक कम पद से भाजित करने पर 'चय' का प्रमाण प्राप्त होता है इस चय को विवक्षित पद की संख्या से गुणा कर, गुणनफल को हीन प्रमाण में जोड़ने पर विवक्षित पद का प्रमाण प्राप्त होता है।
११५, १६३	मुख और भूमि को जोड़कर आधा करके पद से गुणा करने पर पदधन या क्षेत्र फल की प्राप्ति होती है।
१६३	एक कम पद का चय में गुणाकर, गुणनफल को भूमिमें से घटा देने पर मुख की प्राप्ति होती है तथा मुखमें जोड़ने से भूमि की प्राप्ति होती है।
१६४	पद में से एक घटाकर दो से भाजित करके उत्तर (चय) से गुणा करने पर, उसमें प्रभव (मुख) जोड़कर पदसे गुणित करने पर पद धन प्राप्त होता है।
१६५	विवक्षित पृथ्वी के इन्द्रक बिलोंकी संख्यामें से एक घटा कर आधा करने पर, जो लब्ध प्राप्त हो, उसका वर्ग कर, उसमें उसका वर्गमूल जोड़ देनेसे तथा ८ से गुणा कर ४ जोड़ने पर जो लब्ध प्राप्त हो उसको इन्द्रक बिलोंकी संख्यासे गुणित कर देने पर विवक्षित पृथ्वी का सङ्कलित धन प्राप्त होता है।
२३१	पद का जितना प्रमाण है, उतनी बार गुणाकार का परस्परमें गुणाकर प्राप्त गुणनफलमें से एक घटा कर, एक कम गुणाकारसे भाजित करने पर जो लब्ध

परिशिष्ट खंड ३

वासना

गाथा १७ : पृष्ठ १९–२०

परिधि व्यास की तिगुणी होती है। इसकी वासना इस प्रकार है—एक लाख योजन व्यास वाले गोलाकार क्षेत्र को आधा कर पुनः दोनों अर्धभागों का आधा आधा करने से चार भाग हो जाते हैं। इन चारों खण्डों में से मध्य के दो खण्डों को मिला देने पर मध्य में अर्धक्षेत्र हो जाता है। इस अर्धभाग में करण [illegible] अर्धभाग के पुनः दो भाग हो जाते हैं।

इनमें से पुनः प्रत्येक का अर्ध भाग करके मध्य के दो खण्ड मिला देने से परिधि के अर्धव्यास बराबर छह खण्ड हो जाते हैं। छह खण्डों में से दो दो खण्डों को मिला देने से व्यास के बराबर परिधि के तीन खण्ड हो जाते हैं। एतत्सम्बन्धी चित्रों के लिए पृष्ठ २० देखना चाहिए।

त्रिज्या (अर्ध व्यास) से वृत्त की परिधि पर किसी एक बिन्दु से परिधि पर चाप लगाकर, पुनः परिधि पर उस चाप के बिन्दु से पुनः परिधि पर चाप लगाने से और परिधि पर चाप बिन्दु को केन्द्र मानकर पुनः परिधि पर चाप लगाते लगाते त्रिज्या (अर्ध व्यास) बराबर परिधि के छह खण्ड हो जाते हैं। अर्धव्यास-बराबर छह खण्ड व्यास-बराबर तीन खण्डों के समान हैं। इस प्रकार स्थूल रूप से परिधि व्यास की तिगुणी सिद्ध हो जाती है।

गाथा १९ : पृष्ठ २६–२८

गेंद सदृश गोल वस्तु का घनफल समचतुरस्र घनात्मक के घनफल का ९/१६ होता है, इसकी वासना इस प्रकार है—

एक व्यास और एक खात वाले गेंद जैसी गोल वस्तु को आधा करके, उसमें से एक अर्धभाग का उपरिम भाग, जो कि पूर्ण वृत्तरूप है, के तीन खण्ड करके, उनमें से एक तृतीय अंश के ऊपर से नीचे तक दो खण्ड करके, इस प्रकार रखा जावे कि एक चतुरस्र क्षेत्र बनजावे। गोलक रूप गेंद के अर्ध खण्ड के बहुमध्य भागमें वेध यद्यपि १/२ है तथापि दोनों पार्श्व भागों में क्रमशः हीन होता गया है। इस हीन स्थान में चतुर्थांश अर्थात् आधे का चौथाई (१/२ × १/४) ऋण रूप से निःक्षिप्त करने पर समस्थल हो जाता है।

इस समस्थल का तिर्यग्रूप से छेदकर ऊपर रख देनेसे और ऋण निकाल लेने पर शेष { १/२—(१/२ × १/४) }=१/२×३/४ रह जाता है। अर्धगोलक के तीसरे खण्ड की भुजा और कोटि ३/४ ३/४ है। भुजा ३/४ और कोटि ३/४ को परस्पर गुणा करने से (३/४×३/४)=९/१६ क्षेत्रफल प्राप्त होता है। इस क्षेत्रफल

को वेध ($\frac{३}{२}\times\frac{१}{२}$) से गुणित करने पर अर्धगोलक के तीसरे भाग का घनफल ($\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}$) प्राप्त होता है। पूर्ण गेंद के इस प्रकार के छह भाग होते हैं। जबकि अर्धगेंद के एक त्रिभाग का घनफल ($\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}$) = $\frac{१}{२४}$ तब पूर्ण गोलगेंद के छह भागों का कितना क्षेत्रफल होगा ? इस प्रकार त्रैराशिक करने पर छह भागों अर्थात् पूर्ण गेंद का घनफल $\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{२}\times\frac{१}{६}=\frac{१}{४८}$ प्राप्त होता है। (चित्र ग्रंथ में देखने चाहिए)

गाथा २२ । पृष्ठ ३०

कुण्ड की शिखा के घनफल की वासना —

वृत्ताकार क्षेत्र में व्यास से तिगुणी परिधि होती है। परिधि को चौथाई व्याससे गुणा करने पर वृत्ताकार का क्षेत्रफल होता है। कुण्ड की शिखाउ भरनेसे शिखा की ऊंचाई परिधि का ग्यारहवां भाग होता है। शिखाउ चोटी से नीचे तक ढालु रूप होती है अतः उसका क्षेत्रफल तिहाई होता है। अतः शिखा का घनफल = व्यास × ३ × $\frac{\text{व्यास}}{४}\times\frac{\text{परिधि}}{११}\times\frac{१}{३}$ = व्यास × $\frac{\text{व्यास}}{४}\times\frac{\text{परिधि}}{११}$ = $\frac{\text{व्यास}}{२}\times\frac{\text{व्यास}}{२}\times\frac{\text{परिधि}}{११}$ = $\frac{३\ \text{व्यास}}{६}\times\frac{३\ \text{व्यास}}{६}\times\frac{\text{परिधि}}{११}=\left(\frac{\text{परिधि}}{६}\right)^{२}\times\frac{\text{परिधि}}{११}$ अर्थात् परिधि के ग्यारहवें भाग में परिधि के छठवें भाग के वर्ग को गुणा करने से शिखाउ का घनफल प्राप्त होता है।

गाथा ९६ । पृष्ठ ९०–९१

वृत्ताकार क्षेत्र की परिधि विष्कम्भ से $\sqrt{१०}$ गुणी होती है, इसकी वासना इस प्रकार है—

गोल घेरे के व्यास के बराबर समचतुरस्र क्षेत्र की भुजा व कोटी वि १ व वि १ है। इस चतुर्भुज के करण का वर्ग वि १ × वि १ + वि १ × वि १ है। अर्थात् २ वि वि है। इस करणवर्ग को आधा करने पर दो अर्ध भाग हो जाते हैं। पुनः अर्ध करने पर चतुर्थांश हो जाता है। इसका भी आधा करने पर आठवां अंश हो जाता है। इस अष्टमांश की भुजा $\frac{\text{वि वि २}}{८}$ अर्थात् $\frac{\text{वि वि}^{२}}{४}$ और कोटि $\frac{\text{वि वि}^{२}}{८}=\frac{\text{वि}}{८}\frac{\text{वि}^{२}}{८}$ है। भुज और कोटि का समान छेद करने पर भुज = $\frac{\text{वि}}{८}\frac{\text{वि}}{८}$ २ × २ × २ और कोटि $\frac{\text{वि}}{८}\frac{\text{वि}^{२}}{८}$ हो जाता है। इन दोनों को जोड़ने पर $\frac{\text{वि}}{८}\frac{\text{वि}}{८}$ १० प्राप्त होता है। जब कि एक अष्टमांश का प्रमाण $\frac{\text{वि}}{८}\frac{\text{वि}}{८}$ १० तब ८ अंशों का प्रमाण कितना होगा ? वर्ग राशि का गुणाकार वर्ग रूप होता है। अतः आठ अंशों का प्रमाण $\frac{\text{वि}}{८}\frac{\text{वि}}{८}$ १० × ८ × ८ अर्थात् वि वि १० अर्थात् परिधि का वर्ग विष्कम्भ वर्गसे दस गुणित है। वर्गमूल करने पर १० के वर्गमूल से गुणित-व्यास परिधि का प्रमाण होता है। (चित्र पृ० ९०–९१ पर है)

गाथा १०३ । पृष्ठ ९८

लवण समुद्र अर्थात् अन्तरंग और बहिरंग दो वृत्तों के बीच के क्षेत्र का क्षेत्रफल चतुरस्र रूप में प्राप्त करने की वासना—लवण समुद्र के वलय-व्यास को ऊपर से छेद कर फैला देने पर एक विषम

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
पल्लो सायरसूई	९२	८६
पव्वदवावीकुंडा	६१८	५२३
पंचमचरिमे पव्वद	८६५	६६३
पंच[illegible]	[illegible]	[illegible]
पंचाहुद्धिठदिरज्जू	१३७	१४८
पंचुत्तरसत्तसया	३७२	३१५
पंडुकपांडुकंबल	६११	५१०
पायारगोउरट्टाल	७०१	५६१
पायारंतरभागे	८६५	६५१
पायाराणं उवरि	८८०	६०६
पासे उववादगिहं	५२१	४४९
पासो हु उग्गवंसो	८४६	६६०
पिट्ठकपजमित्तपहा	४६६	४०६
पुक्खरसयंभुरमणा	३२९	२१८
पुक्खरसिंधुपयवण्णं	१६०	१०४
पुट्ठविदयमेगुणं	१६५	१६६
पुव्वो पउमद्दहो दगि	१५३	७३६
पुणरवि छिण्णे पच्छिम	१५४	२६७
पुण्णदिणे अमवासे	६००	१८५
पुण्णायणायपूगा	४८०	४१२
पुण्णा सहस्सपावत्था	२६	३४
पुरगामपट्टणादी	८०२	६३५
पुरदो गंतूण बहिं	२८८	२४४
पुरदो पासाददुगं	१००७	७६०
पुरदो सुरकोडणमणि	१००५	७६०
पुरिसपिया पुंकंता	२७६	२३६
पुरिसा पुरिसुत्तमस	२५६	२३१
पुव्ववरजीवसेसे	७०८	६१२
पुव्ववर विदेहंते	६०२	५५०
पुव्वादिसु पुव अड अड	६४०	७१४
पुव्वावरेण परिही	१२१	१२५
पुव्वुत्तरदक्खिणदिस	५१६	४४३
पुव्वे तिमल कुलं	१५७	७३८
पोग्गलमइकंतलादो	८६२	६६५
पोराणिया तदा ते	१८३	१८५
फ		
फणिमच्छकसंसमाणं	२४५	२२३
फलिहरयदं च कुसुमं	१५०	७३५
ब		
बगामुह कदंबय	८६७	६८२
बत्तीसट्ठावीसं	४५१	४०४
बत्तीसमट्ठवीसं	१४९	१५७
बत्तीस वे सहस्सा	२३५	२१७
बलगोविंदसिहामणि	१	३
बलदेवा विजयाचल	८९७	६५७
बलभद्दणामकुडे	६२४	५२९
बहुवण्णपासादा	१११	११६
बादालमट्ठघणहगि	२०	३१
बादालसहस्स पुढ	७४८	५८७
बादाल सोलसकदि	२०	२८
बारस चोद्दस सोलस	४१८	४३०
बारहजोयणविच्छव	१००१	७५६
बावत्तरि बादाल	३३०	२७८
बावीसं च सहस्सा	६१०	५१३
बावीस सोलविण्णिय	३८५	३१५
बासट्ठी वेढिगया	४०१	४१२
बाहिरसुई वलय	३१८	२६५
बाहिरसुई वग्गं	३१६	२६३
बिगुणणवपंकतीदे	४९१	३८१

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
बिगुणे सगिट्ठ हसुपे	४२७	३८३
बिदिये वारे पुण्ण	३२	११
बिदिये पढमं कुंडं	३१	३६
बेयादि बिउत्तरिया	५५	५०
बेरूवतदियपंचम	४४	३१
बेरूववग्गधारा	६६	५६
बेरूवविंदधारा	७७	७०
बेलंधर भुजगविमाणाण	९०३	६९२
बेसदछप्पण्णगुल	३०२	२५१
भ		
भज्जस्सद्धच्छेदा	१०६	१०१
भरहइरावद पणपण	८८३	६७३
भरहइरावदवस्सा	९२१	७१३
भरहइरावदसरिदा	७४६	५८६
भरहदु वसहदुकाले	८१६	६४०
भरहवरविदेहेरा	६३४	५३०
भरहस्सते जीवा	७०१	६१०
भरहस्स य विक्खंभो	६०४	५०१
भरहे पण कदिमचलं	५८६	४९३
भरहे सुरेवदेसु य	७७१	६१८
भवणक्खिदरजोइस	२	६
भवणं भवणपुराणिय	२९७	२४८
भवणावासादीणं	३०१	२५०
भवणेसु सत्तकोडी	२०८	२०१
भिंगारकलसदप्पण	९८९	७५३
भीम महाभीम रुद्दा	८३४	६५०
भीममहाभीम विग्घवि	२६०	२३४
भीमावलि जिदसत्तु	८३६	६५१
भीमो य महाभीमो	२६८	२३४
भुक्कोडि कदिसमासो	११२	१३६
भुजगा भुजंगसाली	२६१	२३२
भूदाणं तु सुरूवा	२६६	२३५
भूदाणंदो धरणो	२१०	२०२
भूदाण रक्खसाणं	२१०	२४५
भूभद्दसाल सागुग	६०७	५११
भूमज्झगो वासो	५८८	४६५
भूमीदो दसभागो	६१७	५२०
भोमिन्दकं मज्झे	२८४	२४१
म		
मघवं मणक्कुमारो	८२४	६५४
मज्जारसाणसूयर	१७८	१८२
मज्झिमउक्कस्साणं	८४१	६७७
मज्झिमचउजुगलाणं	४५४	४००
मज्झिमपरिधि चउत्थं	९०२	६९०
मज्झे दीवो जलदी	५८७	४६५
मज्झेसिंहासणयं	६३६	५३२
मणिकरणयपुप्फ सोहिय	९९०	७५४
मणिकुड रज्जुत्तम	९५६	७३८
मणितोरणरयणुब्भव	६३०	५२८
मणुसुत्तरसेलादो	३४६	२९२
मणुसुत्तरदयमूमुह	९३८	७२६
मणुसुत्तरोत्ति मणुसा	३२३	२९८
मल्लव महसोमणसो	६६३	५४५
मल्लिदुमज्झे णवमो	८१७	६४०
महअइबला तिविहो	८८०	६७१
महकायो अतिकायो	२६२	२३१
महगंध भुजग पीदिकं	२९२	२४५
महवामेट्ठि मिदगादी	४९७	४१०
महवारस दुपासे	९६१	७४४
महपउमो सुददेवो	८७१	६७०

गाथा	गा० सं	पृ०सं०
महपूजासु जिणाणं	५५४	४७३
महहिमवचरिमजीवा	४७४	६१०
महुरक्खणामणिणादा	९९१	६५४
मंदरकुलवक्खारिसु	५६२	४७१
मंदरगिरिमज्झादो	३१७	३५६
मंदारकुदचंपय	६०८	५१२
मायहुतिदेवदेवदीव	६११	६१६
माघे सत्तमि किण्हे	४१६	१७५
माणं दुविहं लोगिग	१	१२
माणीचारणसंघ	६१९	५२४
माणुसखित्तपमाणं	४७२	४०९
माणुसखेत्तपमाणं	१६९	१७२
माहवचंदुद्धरिया	३१४	१५४
मुत्ताहारं णेमिस	७०६	५६३
मुव वदले सत्तमही	१४४	१२४
मुर वायारो वलहो	९०१	६८६
मुह भूमीण विसेसे	११४	११०
मूलपीठणिसण्णा	१००२	७६९
मेरुगिरि भूमिवासं	७५९	५१४
मेरुणगस्सोयबाहिर	९३६	७२८
मेरुतलादु दिवड्ढं	४५८	४०३
मेरुविदेहमज्झे	६०१	५१०
मेरुंकरमेहवदी	६२७	५२७

र

गाथा	गा० सं	पृ०सं०
रज्जुतयस्सोसरणे	११६	११५
रज्जुदुगहाणिठाणे	११९	१११
रज्जूदलिदे मंदिर	३४१	२९५
रविपियजेट्ठा हंदा	२५८	२३१
रयणकणयकवाडे	७१६	५६९

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
रयणप्पहपंकट्ठे	२२२	२०८
रयणप्पहपुढवीए	२०२	१९७
रयणप्पहपुढवीदो	१५२	१५८
रयणप्पहा तिहा खर	१४६	१५६
रविखंडादो वारस	४०५	३६३
रायजुवंततराए	२२४	२०९
राहुअरिट्ठ गंतू	३४०	२८६
राहुअरिट्ठविमाणा	३३१	२८५
रिट्ठसुरसमिदिवम्हं	४६७	४०७
रुचकं मंदरलोकं	४८५	४२३
रुचगरुचिरक फलिहं	४६५	४०६
रुजगरुजगाह हिमवं	९४६	७३२
रुद्दव्व रुद्दरिसिए	२८७	२३७
रुद्दगं मस्सुण्णा	८४६	६५६
रूऊणसलावारस	३१७	२६४
रूऊणहियपदमिव	३०९	२५४
रूऊणाद्विगुणं	३१९	३५८
रूपगिरि हीणभरहं	७६७	६०१
रूपसुवण्णायपभाय	३०६	२५२
रूवहियपुढाविसंखी	१७१	१७१
रोमहदं खरकेसण	१०४	९९

ल

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
लक्खतियं वाणउदी	७४९	५८०
लद्धं तिवार वग्गिय	५१	४६
लवणादुगंसमुद्दं	३२१	२६७
लवणांबुहिकालोदय	३०७	२५२
लवणं बुहिमुहमज्झे	१०२	९५
लवणं वारुणितियमिदि	३१९	२६५
लवणादिणं वासं	३१०	२५६
लवणे दिसविदिसं	८१६	६८०

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
लवणे दु पविदेक्कं	३५८	३०१
लोगो अकिट्टिमो खलु	४	५
लोयतले वादवये	१२७	१४१
लोयबहुमज्झदेसे	१४६	१५४
लोहोदयभरिदाओ	१६०	१८८
व		
वइरउगोउरसालं	६७६	५५२
वक्खारवास विरहिय	७५८	५६३
वक्खारसयाणुदओ	७४५	५८४
वग्गसलागाणत्तिदयं	८५	८१
वग्गसलागप्पहुदी	८६	८१
वग्गसला रूवहिया	७५	६७
वग्गादुवरिमवग्गो	७४	६०
वग्गिदवाराबद्धस	७६	६२
वच्छा सुवच्छा महावच्छा	६८८	५५७
वज्जघणाभित्तिभावा	१७७	१८२
वज्जमयमूलभागा	८८६	६७५
वज्जमुहदो जणित्ता	५८२	४६३
वज्ज तप्पइ कणयं	९४५	७३२
वट्टवणरोचगोनग	६८	६२
वट्टादीण पुराणं	३००	२४६
वट्टा सव्वे कूडा	७२३	५७१
वडवामुहपहुदीणं	९०५	६६३
वदक्खामसयप्पम	७८६	६२१
वप्पा सुवप्पा महावप्पा	६९०	५५७
वयवरधणुगकाणहि	१८५	१८६
वरदाणओ विदेहे	७९४	६३५
वरमज्झजहण्णाणं	८८९	६७६
वरमज्झिमअवराणं	९७१	७४९
वरविरहं छम्मासं	५३०	४४५
वरसंति कालमेहा	६७९	५५३
वरुणो वरुणादिपहो	९६३	७४०
ववहारुद्धारद्धा	९३	८०
ववहाररोमाणं	९१	८६
ववहारेयं रोमं	१००	९४
वसई मज्झगदविवरण	९९४	७४५
वस्ससदे वस्ससदे	९९	९१
वसहिदु कामचरणि	५१८	४६२
वस्सा कोडिसहस्सा	८१०	६३६
वंदणअभिसेयणच्चण	१००९	७६१
वंसलवगे असिणच्छा	१६०	१६२
वाहणि आसासच्चा	९५५	७१६
वावीणं पुव्वादिसु	९७२	७४५
वासद्धकदी तिगुणा	२६	३१
वासद्धवग्गं दलियं	१९	२५
वासदिणमास वारस	३२९	२७८
वासायांमोगाढं	५६८	४८३
वासिगि कमले संबंधु	३२६	२७०
वासुदयभुजं रज्जू	१३८	१४८
वासुदवादीहुत्त	८९०	६७७
वासो तिगुणो परिही	१७	१८
विक्खंभवग्गदहगुण	९६	८८
विच्छिण्णसहस्सवेयण	१९१	१८९
विजयावक्खाराणं	९३९	७१९
विजयकूडादो दुगुणा	६०३	५०८
विजयं च वेजयंतं	८९२	६७८
विजयं पडि वेयड्ढो	६६१	५५८
विजया च वइजयंती	७१५	५६८
विजया यणांद०	९४२	७३१

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
विजयो दु वेजयंतो	५६७	४८३
विज्जाणुवादपढणे	८४१	६४३
विधुणिधिणगणाइ	२१	२८
विमलदुगे वक्खादी	७४२	५८०
विरलिज्जमाणरासिं	१०७	१०२
विरलिदरासिच्छेदा	१०८	१०२
विरलिदरासीदो पुण	११०	१०६
विरलि० हीण०	१११	१०७
विविहवरयणभूसा	५५५	४०३
वितरणिलयतियाणि य	२१४	२४७
वीयणसयलुद्धीए	४४२	३१३
वीरजिणतित्थकाले	८१२	६३८
वीसदिवक्खाराणं	६७१	५५०
वेगपदं छग्गुणं इगि	४२८	३८४
वेगपदं चयगुणिदं	१६३	१६४
वेधावड्ढिगुणंते	४२०	३७६
वेदालगिरी भीमा	१८६	१८७
वेदीवणभयपासे	६१३	५१५
वेयड्ढ जंबु सामलि	६८२	५५१
वेयड्ढे ते जीवा	७७०	६१०
वेलंधर भुजगविमा	९०३	६६२
वेलुरियफलाविद्दुम	१०१२	७६४
वेंतर अप्पमहद्धिय	२९१	२०७
वेंतर जोयिसियाणं	९२५	२०६

स

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
सहमादिमूलवग्गो	७१	६५
सगरविदल बिवणा	२७३	३१९
सगसग चरिमिंदयवय	४०१	४०६
सगसग ओहिक्खेत्तं	३५८	२६२
सगसग परिधि परिविध	३५१	२६४
सगसग वड्ढी णियणिय	६३३	५२०
सगसग संखेज्जणा	४७६	४१८
सगसग हाणि विहीणे	६१५	५१७
सगसीदि दुसु दसूणं	८३१	६४६
सच्चिपदम सिवसियमा	५१०	४३६
सट्ठि हिदपदपरिहि	३८६	३३६
सट्ठीसत्तएहिं	१४०	१५२
सद्दाण विजदाणं	६६८	५४७
सद्दवं विज. पत.	७१६	५७०
सत्तपदे अट्ठम	५०६	४३६
सत्तपदे देवीणं	५०८	४३७
सत्तपदे वल्लभिया	५१३	४४१
सत्तमखिदिपणिधिम्हि य	१९५	१३८
सत्तमखिदिबहुमज्झे	१५०	१५०
सत्तम जम्मा खीणं	६४	८७
सत्तरस वाण उदी	७५०	५८८
सत्तदिसयणयदाणिय	७११	५६७
सत्तदिसयवसहगिरी	७१०	५६६
सत्तासीदि चदुस्सय	१३६	१५३
सत्तिपंचम चउदिवसे	४०६	३६७
सतोय य अणीया	२३०	२१२
	४६५	४२६
सदभिस भरणी अद्दा	३६६	३५८
सदमविसदं समादिय	८११	६३६
सदविरधारी साहिय	९९६	७५६
सप्पुरुसमहापुरुसा	२६०	२३१
समकदिसल विकदीए	६१	५५
समचुक्कसीदि वहत्तरि	८३०	६४८
सम्मदंसण रयणं	८५६	६६२

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
सम्मे धादेऊणं	५३३	४५७
सयलसुवण्णकणाहो	१८६	५५०
सयलुद्धिणिभा वस्सा	९१७	७०८
सरजा गंगा सिंधू	५०८	४९१
सरिदा सुवण्णरूप्पम	५७९	४९१
सरिसायदगअदंता	७५६	५९२
सव्वट्ठोत्ति सुदिट्ठी	५४६	४६९
सव्वं च लोयणालिं	५९८	५५२
सव्वागासमणंतं	१	१
सव्वे समचउरस्सा	९७१	७५०
सव्वेसिं कुडाणं	६६०	७३९
सव्वे सुवण्णवण्णा	८१८	७४१
ससुगंधपुप्फसोहिय	२१८	१०५
ससुगंध सव्वगंधो	९६५	७४०
संखमसंखमणंतं	७९	७२
संखेज्जरूवसंजुद	३५०	१००
संखेज्जवासणिरद	१०५	१८२
संवच्छरासहस्सा	८२०	६४१
संवत्तयणामणिलो	८६४	६६६
साणक्कुमारजुयले	५२१	४४७
सादिकुहिदातिगंधं	१५९	१८९
सामण्णं दो सायर	११५	११३
सामण्णं वसंयं	११८	१२५
सायरदसमं तुरिये	१६६	१६३
सारस्सद आइच्चम्	६६७	४९२
सारस्सद आइच्चा	६३६	४९१
सालत्तयपीढत्तय	१०१३	७६४
सावणमाघे सव्व	३८१	३३०
साहियपल्लं अवरं	५४२	४६५

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
सिक्खंति जराउच्छिंदिं	८०१	६२१
सिद्धत्थं सत्तुंजय	७०४	५६३
सिद्धं णिसहं च हरि	७२५	५७३
सिद्धं णीलं पुव्वविं	७२६	५७३
सिद्धं दक्खिणभद्दा	७३२	५७७
सिद्धं मल्लवमुत्तर	७३८	५८०
सिद्धं रम्मी रम्मय	७२७	५७३
सिद्धं वक्खारक्खो	७४३	५८१
सिद्धं सिहरिय हेर	७२८	५७४
सिद्धा णिगोदसाहिय	४९	४६
सिरिगिहदलमिदरगिहं	५७७	४९१
सिरिगिहसीसट्ठियंबुज	५६०	४९५
सिरिदेवी सुददेवी	९८८	७५१
सिरिमति णाम सुसीमा	५११	४४९
सिरिहिरिधिदि कित्तीवि य	५७२	४८६
सिहगयवसहयरहसि	१०१०	७६३
सिहगयवसहजडिल	३४१	२८८
सिहस्ससाणमहिसव	९१७	७०२
सिहाउ विउल काला	३६७	३११
सिहासणावि सहिया	१८५	७५२
सीतासीतोदाणादि	६७८	५५३
सीतोदावरतीरे	६५१	५३८
सीमंकर खेमभयं	३६९	३१३
सीमंतणिरयरोरव	१५४	१६०
सुक्कदसमी विसाहे	८१४	२७४
सुक्कमहासुक्कगदो	४५३	३९९
सुद्धखरभूजलाणं	३२८	२७०
सुपइण्णाय मणोहर	६५१	७२५
सुरगिरि चंदरवीणं	३०८	३२४
सुरपुर चंदपुर	७०२	५६३

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
सुरपुरवड़ि असोयं	५०२	४३४
सुरलोहिमावि भिच्छा	५५१	४७२
सुसमसुसमं च सुसमं	७८०	६१८
सुस्सर मणि दिदवक्खा	२७७	२३०
सुसीमाकुंडला चेव	७१३	५६८
सुहसयणगे देवा	५५०	४७१
सूरपुरचंदपुराणि	७०१	५५३
सूरादो दिणरत्ती	३७६	३२८
सेढीछरज्जु चोद्दस	१३२	१४५
सेढीण विच्चा णिर	४७५	४१५
सेढीणं विच्चाले	१६६	१७०
सेणगिहपवदिपुरहो	८२१	६५१
सेणाधयपुव्वावर	४४४	३६३
सेणादेवाणं पुण	२३९	२१९
सेणामहत्तराणं	६४६	५३६
सेणामहत्तरासु	२८१	२३३
सेणावईण मवरे	५१८	४४४
सेण्णावदितणुरक्खा	५००	४२३
सेयादिपणसु हरिपण	८२६	६५६
सेलायामे दक्खिण	६९६	५६२
सेसा कप्पंता दहु	५६८	५०२
सेसा सोलस हेमा	८४८	६६०
सोडम्मगाहिमुहो	८५१	६६१
सोचिदठाणासिवधवि	६३२	५२९
सोमणसदुगे वज्जं	६२०	५२४
सोमणसरजगकुण्डल	९८०	७४१
सोमहुमकणहुवाऊ	६११	५२१

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
सोलुदय कोडविरयस	१००३	७६०
सोलेकट्ठिविसट्ठिगि	६५०	५५२
सोहम्म आभिजोगाव	६५४	५६१
सोहम्मवरं पल्लं	५३२	४५६
सोहम्मादिचउक्के	४८८	४२४
सोहम्मादीबारस	४८६	४९३
सोहम्मीसाणसण	४५२	६६६
सोहम्मे जायते	८६०	६६३
सोहम्मो ईसाणो	९७०	७४६
सोहम्मो वरदेवी	५४८	४७०

ह

गाथा	गाथा सं०	पृष्ठ सं०
हत्थपमाणे णीचु	२६१	२४५
हत्थं मूलतियं विम	४३९	३९१
[illegible]	६६१	२४४
हरिजीवा इगिणवणव	७७५	६१०
हरिसेणो हरिकंतो	९११	२०९
हा हामा हामाधिक	७१८	६३०
हाहा हूहू णारय	२६३	२३३
हिट्ठिममज्झिमउवरिम	४५५	४०१
हिमवा णीला पंका	१६२	१६१
हिमवग पहुदीवासो	७६८	६०३
हिमवण्णभरह जीवा	७७२	६१०
हिमवं महाहिमवं	५६५	४८१
हेट्ठुवरिमतियभागे	८९८	६८३
हेमज्जुणं तवणीया	५६६	४८२
हेममया तुंगधरा	६९६	५२७
हेममया वक्खारा	६७०	६४७
हेमवदंतिम जीवा	७७३	६१०
होइ विमोह पुरंधय	६६८	५६१

अकारादिक्रम से विशिष्ट शब्दों की सूची

अ

अकृति धारा ४१,४३
अघन धारा ४१,५५,५६
अङ्का १५६,१५७
अञ्जन मूलिका १५६,१५७
अञ्जना १५५,१५६,१५७
अद्धापल्य ६१,६२
अधिक दिन ३६६,३६७
अधिक मास ३७१,३७२
अधि देवता ३८८,३८६
अधो लोक ११३-१२०
अनन्त १४,४४,७२
अनवस्था कुण्ड १५,३४,३५,३६,४०
अनन्तानन्त १४,४३,५४,६२
अनल्प ६३,३५१
अन्धेन्द्रक बिल १६०,१६१
अनीक २०८,२०९,२१२,२१४
अपवर्तना घात ४५८
अपबहुल्य भाग १५६,१५७
अभव्य ४५,४६
अर्धच्छेद ११,१२,६०,६१,६२,६३,
६७,६८,६६,७४-८०,१०१-
१०३,१०६
अर्ध स्तम्भ ऊर्ध्वलोक १२५,
१२८,१२६
अर्हन्त प्रतिमा ७५६,७६०
अरिष्टा १५५
अलोकाकाश ६,१०,१२
अलौकिकमान १२,१३
अवस्थाकृति १८
अवक्रान्त १६०,१६१
अवगाहना (सिद्ध) १५१-१५४
अवमान १२,१३
अवविभाग ४८,७४-८०
अवसन्नासन २३
असंख्यात १४,५४,७१

असंख्यातासंख्यात १४,४०,४१,
४२,४३,५४
असम्भ्रान्त १६०,१६१

आ

आकाश ७,६,१०,६२,६३,७१
आकाश प्रतर ६२,६३
आकाश श्रेणी ६२,६३
आठ मध्य प्रदेश ७
आत्मांगुल २३,२४
आभियोग्य २०८,२०६
आरा बिल १६०,१६१
आवली ४०,७०
आवास २०७
आसन्न घन ५४,५५,५८,५६

इ

इन्द्र २०८, २०६
इन्द्रक बिल १५६-१६१

उ

उज्ज्वलित बिल १६०,१६१
उत्तरायण ३३०
उत्सेध १७
उत्सेधांगुल २३
उद्भ्रान्त बिल १६०,१६१
उद्धार पल्य ८०,६४
उन्मान १२,१३
उपमा प्रमाण १३,१४,८१

ऊ

ऊर्ध्वायत अधोलोक ११३,११४
ऊर्ध्वलोक क्षेत्र फल १२५-१२८

अं

अंगुल १२,२३,२४

क

करणी ८८,८६,६१
कर्क राशि ३१८,३२६

काञ्चन शैल ५४१,५४२
काल ६१,६२
किल्विषिक २०८,२०६
कृति १८
कृति धारा ४१,४२,४३
कृति मातृका धारा ४१,४७
केवल ज्ञान ४८,५५,५६,६४,
६५,७३

ख

खड़ा बिल १६०,१६१
खड़िका बिल १६०,१६१
खर भाग १५६,१५७
खात फल १८,१६

ग

गजदन्त पर्वत ६४५
गणना १८
गणिमान १२,१३
गत दिवस ३६५-३६७
ग्रहण २८६,
गिरिकटक अधोलोक ११६,
१२४,१२५
गुणकार राशि १०६,१०७
गुणकार शलाका ७४,७७,७८
गोमेदा १५६,१५७
गोल का घनफल २५-२८
गोस्तनाकार ७

घ

घटा बिल १६०,१६१
घन धारा ४६,५४,५५,
घन फल १६,११०-११२
घनमातृका धारा ४१,५८
घनलोक ८६,१०६,१०७,११८
घन वातवलय १३७-१४२
घनांगुल १२,७१,८६,१०३-१०५
घाटा बिल १६०,१६१

घातायुष्क ४५७-४६०,४६५
घनोदधिवातवलय १३७-१४२

च

चन्दना १५६,१५७
चन्द्रा २११,२१२
चय ११०-११२
चर्चा १६०,१६१
चामुण्डराय ३,४,६
चित्रा १५६,१५७
चूलिका ६१३-६१७

ज

जगत् प्रतर ७१,८६,१०७
जगत श्रेणी ११,१२,६१,६२
जघन्य श्रुतज्ञान ६४,६५
जघन्य क्षायिक सम्यग्दर्शन ६४,६५
जतु २११,२१२
जम्बू वृक्ष ५३४,५३८
ज्योतिरसा १५६,१५७
जिह्वा बिल १६०,१६१
जिह्विक बिल १६०,१६१
जीव ६२,६३,७१
जूं २३
जौ २३

झ

झषका बिल १६०,१६१

त

ततक बिल १६०,१६१
तत्प्रतिमान १२,१३
तनुरक्षक २०८,२०९
तनुवातवलय १३७-१४३
तपन बिल १६०,१६१
तप्त बिल १६०,१६१
तपित बिल १६०,१६१
तमका बिल १६०,१६१
तमकी बिल १६०,१६१
तमप्रभा १४४,१५५,१५७
तापन बिल १६०,१६१
तारा बिल १६०,१६१
तिमिश्रका बिल १६०,१६१
तिर्यगायत अधोलोक ११३-११५
तेजस्काय स्थिति ७४-८०
तेजस्कायिक जीव ७४-८०

द

दक्षिणायन ३३०
दिग्गज पर्वत ५४४
दिगिन्द्र २०८,२०९
द्विरूप घन धारा ४६,६६ ७०-७४
द्विरूप घनाघन धारा ४६,६६, ७४-८५
द्विरूप वर्ग धारा ४१,४६,६०,६६
दूष्य अधोलोक ११६,१२२,१२३, १२४
द्वैयराशि ४०,४१,४२,४३,४६, ४७,६६,७५-८०

ध

धर्मा १४४
धूम प्रभा १४४,१५५,१५७

न

नरक १४४-२००
निगोद ८२,८३
निगोद काय स्थिति ८१-८३
निगोद शरीर ८१-८३
निदाघ १६०,१६१
निरय बिल १६०,१६१
नीचोपपाद देव २४५-२४७
नोकृति १८

प

पङ्क प्रभा १४४,१५५,१५७
पङ्क भाग १४६,१५७
पटल १५९,१६०
पथ व्यास ३५१,
परिधि १८,१९,८८,८६,१३५,१३६
परिवार नदियां ५८६-५८८
परिषद २०८,२०९
परीतानन्त १४,४३,४४,६२,६३
परीतासंख्यात १४,३६,४०,४१, ४३,४४,६०,६१,७०
पर्याय श्रुत ज्ञान ६४,६५
पल्य ६१,६२,७१,८६,८७,१००, १०२,१०६
पृथ्वी (७) १४३-१४४
प्रकीर्णक १७०,२०८,२०९
प्रज्वलित बिल १६०,१६१
प्रतरावली ६०,६१,७०
प्रतरांगुल १२,६१,६२,८६,१०२
प्रतिमान १२,१३
प्रतिशलाका कुण्ड १५,१७,३८,३९
प्रतीन्द्र २०८,२०९
प्रत्येक ऊर्ध्वलोक १२५-१२७, १२८-१३४
प्रभाला १५६,१५७
प्रमाण १४
प्रमाणांगुल २१
पाण्डुक शिला ५३०-५३६
पार्श्वभुजा ३४५,६१२-६१७
पिनष्टि ऊर्ध्वलोक १३०,१३४
पुद्गल ६२,६३

ब

बकुला १५६,१५७
बृहद् धारा परिकर्म ८६
बालुका प्रभा १४४,१५५,१५७
बिल १५८

भ

भवन २०७
भ्रमका बिल १६०–१६१
भ्रान्त बिल १६०–१६१
भुक्ति ३६२–३६६
भूमि ११०–१११
भूमि (७) १५३,१५४

म

मकर राशि ३२८,३२९
मघवी १५५
मध्य प्रदेश ७
मनक बिल १६०,१६१
मन्दर अधोलोक ११८–१२२
मसार कल्पा १५६,१५७
महातम प्रभा १५४,१५५
महाशलाका कुण्ड १५,१७,३९
माघवी १५५
मान १२,१३,१६
मारा बिल १६०,१६१
मुख ११०,१११
मेघा १५५

य

यमक गिरि ५४०
यवमध्य अधोलोक ११६–११८
यवमुरज अधोलोक ११५–११७
युक्तानन्त ५३,५४,६२,६३
युक्तासंख्यात १४,४०,४१,५३,५४
योग ८१,८२,८३,८४

र

रत्नप्रभा १५४–१५६
रथरेणु २३
रज्जु ११
राम मल्ल (मनुष्यका नाम)४,६
राजू ११
रेणु २३

रोम ८७,९२,९३,९९,१००
रोरव बिल १६०,१६१

ल

लल्लकि बिल १६०,१६१
लोक ७,९,७४–७७,८६,११०
लोक परिधि १२५,१२६
लोकिक बिल १६०,१६१
लौकिक मान १२,१३
लोलवत्स बिल १६०,१६१
लोहित १५६,१५७

व

वक्रान्त बिल १६०,१६१
वज्रुला १५६,१५७
वज्रा १५६,१५७
वनक बिल १६०–१६१
वर्गमातृक धारा ५७
वर्गमूल ६०,६१,७४
वर्गशलाका ६०,६१,६७,६८,
६९,७४–८०,१०१–१०४
वर्गितसंवर्गित ७५,७६,७९,८०
वंसा १५५
व्यवहार पल्य ८७,९३
व्यवहार योजन २२,२४
व्यास १७,८८,८९
वातवलय १३७,१५२
वार्दलिल बिल १६०,१६१
वासना १९
विक्रान्त बिल १६०,१६१
विभ्रान्त बिल १६०,१६१
विमान २०७
विरलन ४०–४३,४६,४७,६६,७४
विष्कम्भ ८९–९०
विषम धारा ४९,५१,५२
विषुप–३८०–३८३
वेध १८,१९

वैडूर्या १५६,१५७

श

शर्करप्रभा १५४,१५५
शलाका कुण्ड १५,१२,३८
शलाका त्रय निष्ठापन ४३,७८
शलाकाराशि ४०–४३,४६,४७,७५
श्रुतज्ञान ४८,६४,६५
श्रेणीबद्ध बिल १५९,१६०
शाल्मली वृक्ष ५३८
शिखा फल २५,२६,२९,३०
शिखा वेध ३०,३१
शीला १५६,१५७
श्रेणी (देखो जगत् श्रेणी)

स

सञ्ज्वलित १६०,१६१
सत्वासन २३
समधारा ४९–५२
सम्यज्वलित १६०,१६१
सम्भ्रान्त बिल १६०,१६१
समित २११,२१२
सर्वधारा ४९–५२
सर्वाधिंका १५६,१५७
संख्या प्रमाण १४
संख्यात १४,१८,३९,७२
स्तनक बिल १६०,१६१
स्तन लोला १६०,१६१
स्तम्भऊर्ध्वलोक १२९
स्थिति बंध कषाय परिणाम
८१–८३
स्फटिका १५६,१५७
सागर ८६,९५,९६,९९,१०१,१०६
सामान्य अधोलोक ११३,११४
सामान्य ऊर्ध्वलोक १२५,१२६
सामानिक २०८,२०९

सिद्ध (अवगाहना) १५२-१५४
सिद्ध प्रतिमा ७५९,७६०
सीमन्त बिल १६०,१६१
सूच्यंगुल १२,६१,६२,८६,
 १०२,१०३
सूचीफल २५,२६,[illegible]

ह

हानि ११०-११२
हिम बिल १६०,१६१

क्ष

क्षेत्रफल १८,१९,३१,३२
 ११०-११२
क्षेत्र (अवधिज्ञान का) ७४
क्षायिक सम्यग्दर्शन (जघन्य)
 ६४,६५

त्र

त्रसनाली १५४
त्रस रेणु २३
त्रस्त बिल १६०,१६१
त्रसित बिल १६०,१६१
त्रायस्त्रिंश देव २०८,२०८
त्रुटि रेणु २३

❀ समाप्त ❀

शुद्धि–पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	२६	(४२=)=	(४२=)
१४	१०	त्रिकवारम्	द्विकवारम्
१५	८	अनवस्था शलाका	अनवस्था, शलाका
२२	२१	गुणकोश राशेः	गुणकोश राशे।
२४	१७	२	१ल.
२४	२४	द्वार गुणाकार	द्वार अंश का गुणाकार
२५	२७	वर्गितं	गुणितं
२६	६	७ ६,	७, ६,
२६	२०	शिखाफं	शिखाफलं
३०	११	पश १ल ×	पश १ल ×
३३	१	(१ल × ३ल/४ × ३)	(१ल × १ल/४ × ३)
४१	२५-२६	जघन्य...(जघन्यपरीतासंख्यात)	(जघन्यपरीतासंख्यात)जघन्यपरीता-संख्यात = जघन्ययुक्तासंख्यात
४४	१६	योगात्कृष्ट:	योगोत्कृष्ट:
४५	७	बन्धाध्यवसाय	बंधाध्यवसाय
४६	२-३	(जघन्यपरीतानन्त)ज.प.अनन्त	(जघन्यपरीतानन्त)जघन्यपरीतानन्त
४८	२६	क्रमात्	कमात्
४८	२८	क्रमाज्जानीहि	कमाज्जानीहि
५०	३	समधारा	सर्वधारा
५६	१३	४० नं०	४० वं
६०	१२	णव णव	णव पण
६४	२५	सप्तममलं	सप्तममूलं
६८	१५	घन ६४	वर्ग ६४
७६	१५	एतस्मिन्योग्या	एतस्मिनन्योग्या
७६	१६	शलाकाराशासु	गुणकारशलाकासु
८८	२४	(२३)	२(३)
१००	१२	४= × असं०	४१ = असं०
१०३	६	(छे छे छे २)	(छे छे २)
१०३	२७	विरलिज्ज	विरलिज्ज
१०४	१०	व२	वं२
१०४	२१, २३	४	३
१०५	१६-२०	की शलाकाओं	की वर्गशलाकाओं
१११	५	विशेषे ५ सति	विशेषे सति
१११	६	अर्धचतुर्थस्य १	अर्धचतुर्थस्य ३
११५	६	(नं० १ और नं० २)	(नं० १ और २)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११८	३	(१ ÷ ३/२)	(१ × ३/२)
१२०	२०	१/३ १/२	१/३ १/२
१२२	२५	अर्ध	अर्ध
१२५	२१	अर्धचतुर्थोदयस्य*	अर्धचतुर्थोदयस्य६
१२७	५,७,८,६	वर्गा राजू	राजू
१२८	६	२ २/१४	२ १/१४
१२८	८	१ ३/७	१ १/१४
१३२	३	३/७	७/७
१४०	१६	१२ ३/४	१२ ३/५
१४६	४	= ६०० / ७	= ६०८ / ४९
१४९	७	३०३ / ९२७	३०३ / ३२७
१६६	४	कुल बिलों	कुल श्रेणीबद्ध बिलों
१७०	१८	२५६७४०५	२४९७३०५
१७४	४	४५०८३३३ १/३	४४०८३३३ १/३
१७४	१	१२५००	६२५०००
१७७	२१	३/८	३/८
१७८	१०	३२४२	३२४८
१७६	६	३२४६	३२४८
१६६	५	(७–३–६–०–३–०)	(७–३–६)—(०–३–०)
१६६	१७	३/३ अ०	३/३ अ०
१६७	४	२ ६	२६
२१४	१८	१२७५६०००	१२७/५६०००
२१५	३१	(१+५×२५+१२५)	(१+५+२५+१२५)
२६३	१६	लवण समुद्र के	× ×
२६४	२०	५	३
३१०	१७	अर्धच्छेद ६ हैं।	अर्धच्छेद—६ हैं।
३१०	२०	४२×७२+१४४+१५२	४२+७२+१४४+१४८+१५२
३११	१२, १३	एक स्थान से	एक से
३७०	१८	एक वर्ष	दोनों अयन
४१८	३	गेजनों में	योजनों में
५५०	१२	पत्नबंद	पुत्रबन्ध
५६६	११	०००००१/१३	१००००००/१३
७१९	११	१७८८४९	१७६८५४२
७२१	१२	६२५००	६२५०००
७२५	१०	६२५००	६२५०००
७३४	१०	कद	कूद.
७४३	२६	४ बावड़ियां	१६ बावड़ियां